

भगवानुं ठेकाळु :  
 श्री अक्षय वे. स्थानठवासी  
 नैन शास्त्रोद्धार समिति,  
 ठे अरेडियाडूवा रोड,  
 राजठोट, ( सौराष्ट्र )

Published by  
 Shri Akhil Bharat S S.  
 Jain Shastroddhara Samiti,  
 Garedia Kura Road RAJKOT  
 (Saurashtra) W Ry India.



ये नाम केचिदिह नः प्रययन्त्यवशां,  
 जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।  
 उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,  
 काखो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥ १ ॥



हरिगीतच्छन्दः



करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।  
 जो जानते हैं वस्त्र कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥  
 अनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई वस्त्र इससे पायगा ।  
 हे काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यान में यह मायगा ॥ १ ॥

मूल्यः ३ १५=००

प्रथम आवृत्ति : प्रत १२००  
 वीर सप्त : २४६१  
 विक्रम सप्त २०२२  
 धसवीसन १६६५

। मुद्रकः  
 मज्जिवाल छत्रनवाळ शाळ  
 नवप्रसाद प्रिन्टींग प्रेस  
 धीशंटा रोड, अमरावाड.

आद्यमुख्जीश्री



श्रीमान् सेठश्री खीमराजजी सा. चोरडिया





## श्रीमान् सेठ श्री खीमराजजी सा, चोरडियाका संक्षिप्त जीवन चरित्र

संसारके विशाल प्रांगणमें कार्यरूपी क्रीडा करते हुए विरलेही पुरुष असीम सफलताके भागी बनते हैं। दानवीर महोदय श्रीमान् खीमराजजी साहब चोरडिया उन उन्नायकोंमें से है, जिन्होंने अपनी सुकार्यदक्षता एवं सुव्यवस्थासे अच्छी उन्नति की।

आपका जन्म सं. १९७१ मिति आसोज सुदि ९ को हुआ। आपका निवास नागोरके समीप चन्दावतीका नोखा है। इस नोखा गावके नवनिर्माणमें चोरडिया-परिवारका महत्वपूर्ण योग रहा है। आपके पिता स्व० श्रीमान् सीरे-मलजी साहब चोरडियाका आप पर धार्मिकताका अच्छा असर पड़ा। बचपनसे ही आप प्रतिभाशाली छात्रोंमेंसे। अतः म्वल्प समयमेंही शिक्षा समाप्त कर व्यापारक्षेत्रमें उतर पड़े जिसमें से आपने अच्छी सफलता प्राप्त की। पिताके स्वर्गवासके पश्चात् आप मद्रास चले गये। आपकी वैज्ञानिक बुद्धिके कारण थोड़ेही दिनोंमें इस कार्यमें कुशलता प्राप्त कि "खीमराज मोटर्स-जिसमें वेड-फोर्ड ट्रक, एम्बेसडरकार टेम्पो, ओटोरिक्शा और वेल्पा स्कुटरकी एजेन्सियां हैं। आपने अपने जीवनमें व्यवसायिक कार्योंमें अतिशय उन्नति की। आप मद्रासके एक प्रभुत्व श्रीमन्त व्यवसायी हैं।

आप स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी एवं उदार धर्मप्रेमी सज्जन हैं। सार्वजनिक जनहितके कार्योंमें पूरी दिलचस्पी रखते हैं। उदारचेता हैं। साहित्य-रसिक होनेके साथ साथ धार्मिक नित्यनियम व्रत, उपवास आदि तपश्चर्यामें भी अच्छी रुचि रखते हैं।

जैन हाइस्कूलमें २१००)की लागतका एक हॉल बनवाकर अपने अपनी शिक्षाप्रेमका अच्छा परिचय दिया। आपकी ओरसे मद्रासमें 'खीमराज डीस्पें-

भरती चलती है। नोस्वामें दूसरे सज्जनोंकी मददके साथ 'सिरेमल खोराबर मल' 'हेल्थसेन्टर' चल रहा है। धानकी ओर आपका ध्यान इतना अधिक है कि कोई भी व्यक्ति किसी प्रकारकी सहायताके लिये आपके पास पहुँचता है तो वह निराश नहीं लौटता है। आप वहाँ वहीं भी जाते हैं वहाँकी संस्थाओंकी कुछ न-कुछ सहायता जरूर करते हैं। विद्यादानमें आपकी ओरसे हजारों रुपये लगते हैं। कई छात्रासयोंको आपकी ओर आर्थिक सहायता मिलती है।

जैन साहित्य प्रकाशन कार्यमें आपकी बड़ी दिलचस्पी है। कई ग्रन्थोंके प्रकाशनमें आपका आर्थिक सहयोग रहा है। आगम प्रकाशनकी अब आपसे पर्चा की गई तो आपने स्वयमेव पाँच हजार रुपयेकी महान सहायता प्रदान करनेकी उदा रता प्रगट की।

आप स्वयं धर्म प्रवृत्त हैं और धार्मिक कार्योंमें तन मन व धनसे सदा आगेबान रहते हैं। यही कारण है कि स्थानरूपासी समाजमें और ओसबाळ समाजमें आपका नाम सर्वोपरि आगेबान पुरुषोंमें बड़े सन्मानके साथ आता है। समाजप्रसार तथा जन जाणविके कामोंमें आपकी अच्छी रुचि है।

आपने अ० भा० श्वे० स्या० सास्रोंडार समितिकी आगम प्रकाशनके हेतु ५०००) रुपया प्रदान कर स्थाईसदस्यता स्वीकार की है अतः समिति आपका हार्दिक आभार मानती है।

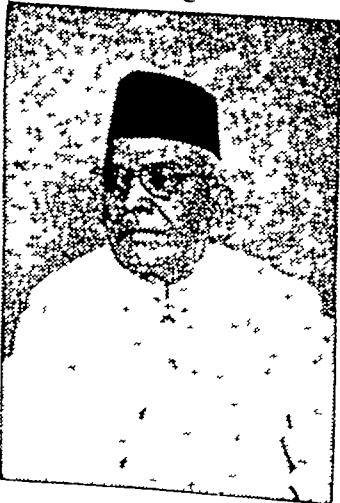
# આવમુરખીશ્રીઓ



શ્રી શાંતિલાલ મ ગળદાસભાઈ  
અમદાવાદ



(સ્વ) શ્રી શામભાઈ વેલભાઈ  
વીરાણી-રાજકોટ



શ્રી રામભાઈ શામભાઈ  
વીરાણી-રાજકોટ.



(સ્વ) શ્રી હરખચ દ કાલીદાસ વારિઆ  
ભાણવડ.



(स्व.) सा० श्री कारशीबाळ छत्रकृष्ण  
पारसी



ठाकरी बंशविहारे वेंकटबाळ  
रावठे



(स्व.) सा० श्री विठ्ठलबाळ कान्होदास शंभर  
अभयवाडे



स्व सा० श्री आ० नारायण भाविकदास  
अभयवाडे

# આધ્યમુરખીશ્રીઓ



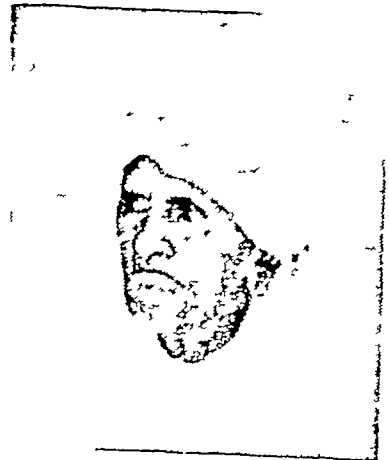
(સ્વ) શેઠશ્રી છગનલાલ શામદાસ ભાવસાર  
અમદાવાદ



(સ્વ) શેઠ રંગલભાઈ મેહનલાલ શાહ  
અમદાવાદ



ગૃહશ્રી નેસિંગભાઈ ષોચાલાલભાઈ  
અમદાવાદ



સ્વ. શ્રીમાન્ શેઠશ્રી મુકુન્દલ શાહ સા.  
બાલિયા પાલીમારવાડ.

## ଆସମୁରୁଦ୍ଧୀଶ୍ରୀଯୋ



- ୧ ବସ୍ତେ ଗୋଟା ଶ୍ରୀମାତାମାଧୁ ଶ୍ରୀମାନ୍ ମୁଖ୍ୟ ଡ଼ାକ୍ତର  
 ବ୍ୟାଘ୍ରଶିକ୍ଷାକ୍ରମେ ଉପସ୍ଥିତ  
 ୨ ଗାନ୍ଧୀ ଗୋଟା ଡାକ୍ତର ଶ୍ରୀମାତାମାଧୁ ଉପସ୍ଥିତ  
 ୩ ଗୋଟା ଶ୍ରୀମାତାମାଧୁ ଶ୍ରୀମାନ୍ ମୁଖ୍ୟ ଡ଼ାକ୍ତର ଉପସ୍ଥିତ

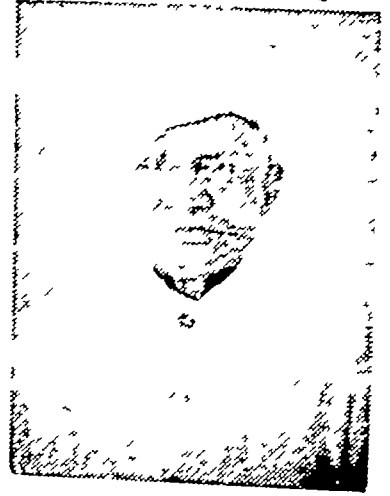


ଶ୍ରୀମାତାମାଧୁ ଶ୍ରୀମାନ୍ ମୁଖ୍ୟ ଡ଼ାକ୍ତର  
 ଓ ଶ୍ରୀମାତାମାଧୁ ଶ୍ରୀମାନ୍ ମୁଖ୍ୟ ଡ଼ାକ୍ତର

# આવમુરખીશ્રીઓ



શ્રી વિનોદકુમાર વીરાણી



શ્રી વૃજસાલ દુર્લભજી પારેખ  
રાજકોટ.



સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ  
ખંભાત.



વચ્ચે બેઠેલા  
લાલાજી કિશનચંદજી સા બોહરી  
ઉબેલા સુપુત્ર ચિ મહેતાખચંદજી સા. જૈન  
નાના - અનિલકુમાર જૈન (દોષતા)





स्व श्रेष्ठ वाराचदजी साहेब गेलबा  
मद्रास

श्री स्थानाङ्गमंत्र भा. तीसरे की  
विषयानुक्रमणिका

अनुक्रमाङ्क

विषय

पृष्ठाङ्क

स्था. ४ तीसरा उद्देश

१	उदकदृष्टान्तसे चार प्रकारके भावोंका निरूपण	१-५
२	पक्षीके दृष्टान्तसे चार प्रकारके पुरुषजातका निरूपण	५-१४
३	दृष्टान्त सहित पुरुषजातका निरूपण	१४-१६
४	दृष्टान्त सहित श्रमणोपासकके आश्वास-विश्राम का निरूपण	१७-२५
५	फिरभी पुरुष विशेषका निरूपण	२५-३२
६	भावसे जीवोंका निरूपण	३२-३४
७	छेदया का निरूपण	२५-३६
८	यानादिके दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	३६-४३
९	युग्य-वृषभादि के दृष्टान्तसे दार्ष्टान्तिक पुरुषजात का निरूपण	४४-४६
१०	सारथीके दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	४७-५१
११	गजके दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	५२-५६
१२	पुष्पके दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	५६-५७
१३	जातिसम्पन्नादि पुरुषजातका निरूपण	५८-६६
१४	चार प्रकारके फलके स्वरूपका निरूपण	६६-६८
१५	चार प्रकारके पुरुषजातका निरूपण	६८-७८
१६	चार प्रकारके आचार्यके स्वरूपका निरूपण	७९-८३
१७	निर्यन्थके स्वरूपका निरूपण	८३-८८
१८	श्रमणोपासकके स्वरूपका निरूपण	८८-९२
१९	महावीरस्यामीके श्रमणोपासकोंके सौधर्म कल्पस्थित अरुणाभ विमानकी स्थितिका निरूपण	९३-
२०	मनुष्यलोकमें देवोंके आगमन-आना और अनाग- मन्-नहीं आनेके कारणोंका निरूपण	९४-१०८
२१	लोकान्धकार-एवं लोकोद्घोत के कारणोंका निरूपण	१०८-११३

२२	दुःस्थित साधुकी दुःस्वप्न्या और सुस्थित साधुकी सुस्वप्न्याका निरूपण	११४-१३१
२३	चार प्रकारके पुरुषजात विषयके चौदह चतुर्भूतिका निरूपण	१३२-१५७
२४	कन्यके दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	१५८-१७६
२५	अपविष्टान आदि नरकोंका आयाम और विष्कम्भसे साम्य का निरूपण	१७६-१७९
२६	ऊर्ध्व-भ्रमस्तीर्यग्लोकके द्विशरीरि जीवोंका निरूपण	१७९-१८३
२७	हीसत्व-मादि चार प्रकारके पुरुषजातका निरूपण	१८३-१८५
२८	चार प्रकारके अभिप्रदका निरूपण	१८५-१८९
२९	चार प्रकारके शरीरका निरूपण	१८९-१९३
३०	चार प्रकारके अम्बिकापसे उत्पद्यमान वादरकायसे लाकस्पृष्टत्वका निरूपण	१९३-१९७
३१	सहस्रविध भस्त्रिकायादिकोंका मदेशामनुव्यत्य आदिका निरूपण	१९८-१९९
३२	पृथिवीकाय भादि चारोंका सूक्ष्मशरीरके भद्रव्यत्व का निरूपण	१९९-२०३
३३	जीव और पुद्गलके गतिभर्मका निरूपण	२०३-२०५
३४	दृष्टान्तके भदों का कथन	२०६-२५८
३५	अधोलोक-ऊर्ध्वलोकमें रहे हुवे अन्वहार और उर घोष के कारणोंका निरूपण साथे स्थानका शेषा श्रेण —	२५९-२६१
३६	मसर्पकोंका निरूपण	२६२-२६५
३७	नारकोंके आहारका निरूपण	२६५-२६६
३८	तिर्यह-मनुष्य-भौर देशोंके आहारका निरूपण	२६६-२६९
३९	मात्रीरिप-सर्पोंके स्वरूपका निरूपण	२६९-२७२
४०	ध्यापिके भेदों का निरूपण	२७३-२७७
४१	विद्विस्तरके स्वरूपका निरूपण	२७७-२८८
४२	मग आदि दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	२८९-२९९
४३	क्रियावादी शरीर शीर्षिकोंके स्वरूपका निरूपण	३००-३०३
४४	मयके दृष्टान्त द्वारा पुरुषजातका निरूपण	३०३-३१८

४५	करण्डकके दृष्टान्तसे आचार्यादिकोंका निरूपण	३१८-३२०
४६	वृक्षके दृष्टान्तसे आचार्यके स्वरूपका निरूपण	३२२-३२५
४७	मत्स्यादिके दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	३२६-३२७
४८	क्षुद्रमाणियोंका निरूपण	३३७-३४०
४९	पक्षीके दृष्टान्तसे भिक्षुकका निरूपण	३४०-३४१
५०	पुरुषजातका निरूपण	३४१-३४८
५१	चार प्रकारके दिव्यादि संवातका निरूपण	३४८-३५२
५२	अमुरादि चार प्रकारके अपध्वंसका निरूपण	३५३-३६३
५३	प्रब्रज्याके स्वरूपका निरूपण	३६३-३७५
५४	सज्ञाके स्वरूपका निरूपण	३७५-३७८
५५	कामके स्वरूपका निरूपण	३७९-३८०
५६	उदकके दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	३८१-३९२
५७	कुरुमके दृष्टान्तसे पुरुषजातका निरूपण	३९२-४०५
५८	उपसर्गके स्वरूपका निरूपण	४०६-४१३
५९	कर्म विशेषका निरूपण	४१३-४१८
६०	चार प्रकारके संघके स्वरूपका निरूपण	४१८-४२१
६१	चार प्रकारकी बुद्धिके स्वरूपका निरूपण	४२१-४३२
६२	जीवके स्वरूपका निरूपण	४३२-४३५
६३	जीवके अन्तर्गत पुरुषविशेषका निरूपण	४३६-४४१
६४	द्वीन्द्रिय जीवोंको असमारभमाण और समारभमाण के संयमासंयमका निरूपण	४४२-४४४
६५	नैरयिक जीवोंकी क्रियाका निरूपण	४४५-४४६
६६	क्रियावान् जीवका विद्यमान गुणोंका नाश और अवि- द्यमान् गुणोंका प्रकट होनेका कथन	४४६-४५२
६७	धर्मद्वारका निरूपण	४५२-४५३
६८	नारकत्वादिके साधनभूत कर्म द्वारका निरूपण	४५४-४५८
६९	वाद्यादिके भेदोंका निरूपण	४५९-४६७
७०	सनत्कुमारादिकोंके विमानोंके स्वरूपका निरूपण	४६८-४७१
७१	जलगर्भका निरूपण	४७२-४७४
७२	मानुषीके गर्भका निरूपण	४७५-४७८
७३	चार प्रकारके काव्योंके स्वरूपका निरूपण	४७९-४८०

७४	समुद्रयातके स्वरूपका निरूपण	४८१-
७५	छन्दिके स्वरूपका निरूपण	४८२-
७६	मगवान् महाधीरके पूर्वपरीक्षा निरूपण	४८३
७७	कल्पोंके स्वरूपका निरूपण	४८४-
७८	समुद्ररूप क्षेपका निरूपण	४८५-४८६
७९	कपायोके स्वरूपका निरूपण	४८६-४९०
८०	कर्मपुद्गलोंके घटनादि निमित्तोंका निरूपण पाँचव स्यानका परसा उद्देश	४९१-४९४
८१	पाँच प्रकारके महाप्रतोंका निरूपण	४९५-५०३
८२	पर्जादिका निरूपण	५०४-५११
८३	सपनके विषयभूत एकन्द्रिय जीवोंका निरूपण	५११-५१४
८४	अवधिदर्शनके सोमके कारणोंका निरूपण	५१४-५२१
८५	कल्पज्ञान दर्शनमें सीम न होनेका निरूपण	५२१-५२२
८६	नैरयिक आदिकोंके शरीरका निरूपण	५२२-५३०
८७	शरीरगतधर्मविशेषका निरूपण	५३०-५५२
८८	निर्ग्रन्थोंको महानिर्नरादिकी प्राप्तिके कारणका निरूपण	५५२-५५५
८९	आज्ञाके अत्रिराधनके कारणका निरूपण	५५६-५६१
९०	पाँच प्रकारके विग्रहस्थानका निरूपण	५६२-५६८
९१	विषयादि स्थानोंका निरूपण	५६९-५७१
९२	दशोंके पाँच प्रकारका निरूपण	५७१-५७२
९३	देवोंके परिपारणाका निरूपण	५७३-५७५
९४	देवोंके अप्रमदिविषयोंका निरूपण	५७५-
९५	चमरेन्द्रादिकोंके अनीक और अनीकापिपतिषयोंका निरूपण	५७६-५८४
९६	प्रतिपातका निरूपण	५८५-५८८
९७	उत्तमगुणके भेदोंका निरूपण	५८८-५८९
९८	परीषद महानका निरूपण	५९०-६०२
९९	हेतु और अहेतुक स्वरूपका निरूपण	६०२-६१०
१००	शीर्षहरोंके घटनादिका निरूपण	६१०-६१८

## शुद्धि पत्र

### सुज्ञ पाठकरण

सविनय निवेदन है कि शास्त्रोंमें मुफ और प्रिटिंग सम्बन्धी कई गलती होना संभवित हैं, जो सुज्ञ वाचकवृन्द नीरक्षीर न्याय से समझ कर पढलेगे, पर जो शास्त्रीय गलती रह गई है जो देखनेमें अगर सुज्ञ वाचकजन द्वारा दृष्टि-गोचर हुई हैं, इनका शुद्धिपत्र देनेमें आता है।

सूत्रका नाम	पृ.	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
समवायज्ञ सूत्र	१६४	५	रामः खलु वलदेवो द्वादश वर्ष सहस्राणि सर्वायुपं	रामः खलु वलदेवो द्वादश वर्षशतानि सर्वायुपं
"	"	१६	वारह हजार वर्ष-वारहसौ वर्ष	
"	"	२८	१५२२ वर्ष—	१५२२ वर्ष
ज्ञातधर्मकथाज्ञ सूत्र भा. २	२६१	१	पहली पंक्ति पूरी होने पर	त्रैमासिकीं पद छूट गया है सो त्रैमा- सिकीं यह पद बहाकेपदे
ज्ञातधर्मकथाज्ञ सूत्र	२६१	११		आठवीं भिक्षुप्रतिमाके अनन्तर प्रथम सात- दिकरात प्रमाणवाली नववीं भिक्षुप्रतिमा यह पाठ छूटा है सो 'नववीं भिक्षु पडिमा' वहां इतना झोडके पढे
ज्ञातधर्म कथाज्ञसूत्र भा. ३	३९७	१७	प्रवचनसिद्ध	प्रवचनविरुद्ध
"	"	२१	प्रवचनसिद्ध	प्रवचनविरुद्ध

ज्ञातपर्यकपाद्ग्रन्थ मा २	१४७	१७ मद्यपानमें जातक-निद्रामनक द्रव्यमें भासक
” ”	१४७	२६ मद्यपानमां - निद्राजनक द्रव्य भासक
ज्ञातपर्यकपाद्ग्रन्थ मा ३	१३४	३ मगनुताऽऽवश्यके-मगवताऽनुयोगद्वारे
ज्ञातपर्यकपाद्ग्रन्थ मा ३	३३४	१७ भावश्यकत्वमें अनुयोगद्वारसूत्रमें
” ”	३६	भावश्यकत्वमें अनुयोगद्वारसूत्रमें
अन्तःकरणसूत्र	२९५	१० वसदस - - वसमद
अन्तःकरणसूत्र	२९५	११ - - सप्तमपद्मे चैरस उत्प्रेषणा इतना प्रोठ छूट गमाई सो पदां-समस्त लेखें
आचारांग सूत्र मा २	१२२	८ नेत्र परिष्णाणां अपरिहीणा फरिस- परिष्णाणा अपरि हीणा नेत्रपरिष्णाणा अपरिहीणा भीर परिष्णाणा अप रिहीणा फरिस परिष्णाणा अपरिहीणा
आचारांग सूत्र मा २	२८१	१४ निद्रानवे - - अद्रानवे
दशाधुतस्वरूप	४३०	२० फालकरके प्रेयपक आदि } फालकरके देवप्रोक्तमें से
दशाधुतस्वरूप	४३०	२६ हाल करीने देवप्रोक्तमादि } हाल करीने देवप्रोक्तमादि
ज्ञातपर्यकपाद्ग्रन्थ मा २	७३०-२१	शुद्धचित्तक मेल्य (केन देशसह) - शुद्धचित्तक मेल्य उद्यान अगीश्व

॥ श्री घीतरागाय नमः ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालत्रिविरचितया  
सुधारूपया व्याख्यया समलङ्कृतम्

## श्री-स्थानाङ्गसूत्रम्

( तृतीयो भागः )

गतो द्वितीयोद्देशः, तत्र जीवक्षेत्रपर्याया उक्ताः, प्राग्भ्यमाणे तृतीयोद्देशके  
तु जीवपर्याया उच्यन्ते, इत्येवं सम्बन्धेनायात्रस्यास्येदमाद्यं सूत्रम्—

मूलम्—चत्वारि उद्गा पणत्ता, तं जहा—कद्दमोदए १,  
खंजणादए २, वालुओदए ३, सेलोदए ४। एवामेव चउद्विहे  
भावे पणत्ते, तं जहा—कद्दमोदगसमाणे १, खंजणोदगसमाणे  
२, वालुओदगसमाणे ३, सेलोदगसमाणे ४,

कद्दमोदगसमाणं भावमणुप्पविट्ठे जीवे कालं करेइ णेर-  
एसु उववज्जइ, एवं जात्र सेलोदगसमाणं भावमणुप्पविट्ठे जीवे  
कालं करेइ देवेषु उववज्जइ । सू० १ ॥

चौथे स्थानके तीसरा उद्देशा प्रारम्भ—

“ दूसरा उद्देशा समाप्त हो चुका इस में जीव-और क्षेत्र की  
पर्याय कही गई है, अब-प्रारम्भमाण तृतीय उद्देशे में केवल जीव की  
ही पर्याय कही जायेगी इसी सम्बन्ध को लेकर आगत इस उद्देशे का  
आद्य सूत्र है—‘ चत्वारि उद्गा पणत्ता ’—इत्यादि—१

येथा स्थानना त्रीण उद्देशानो प्रारभ

णीणे उद्देशक पुरो थये तेमां एव अने क्षेत्रनी पर्याय, कडेवाभां  
आवी. हुवे शइ थता आ त्रीण उद्देशाभां मात्र एवनी पर्यायितुण् कथन  
करवाभां आवशे आगता उद्देशा साथे आ प्रकारने सणध धरावता आ  
उद्देशानु प्रथम सूत्र आ प्रभाणु छे—“ चत्वारि उद्गा पणत्ता ” इत्यादि—



छाया—चत्वारि उदकानि महत्तानि, तद्यथा—कर्दमोदक १, स्वज्जनोदकं २, वालुकोदकं ३, शैलोदकम् ४ एवमेव चतुर्विधो मातः महत्तः, तद्यथा—कर्दमोदकसमान १, स्वज्जनोदकसमानः २, वालुकोदकसमानः ३, शैलोदकसमान ४।

कर्दमोदकप्रमाणं मातमनुप्रविष्टो जीवः कायं करोति नेरयिकेपूपपचते, एवं यावत् शैलोदकसमानं मातमनुप्रविष्टो जीवः कालं कराति त्वेपूपपचते ॥६०॥

टीका—“ चत्वारि उदका ” इत्यादि अप्रैतस्मादुदकप्रभात् पूर्वं यदेक रात्रिसूत्रं तद्विद्वितीयोदके गतम् उदकानि - जलानि, चत्वारि महत्तानि, तद्यथा—कर्दमोदकं १, स्वज्जनोदकं २, वालुकोदकं ३, शैलोदकं ४ चेति । तत्र कर्दमोदकं—कर्दमप्रधानमुदकं, यत्र प्रविष्ट पादाद्यङ्ग कर्दमवाहुरयेन सहसाऽऽकण्ठं न पचते, सत् १। तथा—स्वज्जनोदकं—स्वजन—दीपादीनां कञ्जल तच्च पादादि खेपकारककर्दमविशेषरूपमेव, तत्प्रधानमुदकं स्वज्जनोदकम्, तच्च लग्नं सत् चर

सूत्रार्थ—जल चार प्रकार के कहे गये हैं, कर्दमोदक १ स्वज्जनोदक २ वालुकोदक-१ शैलोदक-४। भाव चार प्रकारका कहा गया है, जैसे—कर्दमोदक समान-१ स्वज्जनोदक समान-२ वालुकोदक समान-३ और शैलोदक समान-४। कर्दमोदक समान भाव में अनुप्रविष्ट हुआ जीव यदि कालयश होता है, तो—वह नरक में उत्पन्न होता है, इस तरह से यावत्—शैलोदक समान भाव में अनुप्रविष्ट हुआ जीव यदि काल यश होता है तो—वह देवों में उत्पन्न होता है।

टीकार्थ — कर्दम प्रधान जो उदक होगा है वह—कर्दमोदक है ऐसे कर्दमोदक में फसा हुआ पैर आदि शारीरिक अङ्ग सहसा उस से खींचा नहीं जा सकता है। दीपादिकों के कज्जल—स्याही का नाम सज्जन है, यह—पादादि का में लिप्त करने पर

सूत्रार्थ—उदक (जल) चार प्रकारं कहे छे—(१) कर्दमोदक, (२) स्वज्जनोदक, (३) वालुकोदक जने (४) शैलोदक जन्नी जेम भाव पक्ष चार प्रकारका कहा छे—कर्दमोदक समान (२) स्वज्जनोदक समान (३) वालुकोदक समान जने शैलोदक समान कर्दमोदक समान भावमां प्रवेशित्वा एव जे भरषु पाये छे, तो नारकोमां उत्पन्न याम छे पर तु शैलोदक समान भावमां प्रवेशित्वा एव जे भरषु पाये छे तो देवोमां उत्पन्न याम छे

टीका—कर्दमप्रधान पाणीने कर्दमोदक कहे छे जेवां कर्दमोदकमां (कारणमां) जे पत्र आदि होय अत्र इसामु डोय तो तेने अज्ञताभी जेभी लथ सक्तानु नथी तेमां इसायेल माळी नकार नीकणवानो प्रयत्न जेम वधु करे तेम तेमां पधार ने पधार भूषु लय छे विपादिहोना कारणेने जलन कहे छे आ

णादिकं मलिनो करोति पुनर्जलादिना विशोधयते २। तथा-वालुकोदकं-वालुका-  
प्रसिद्धा, तत्प्रधानमुदकं वालुकोदकम्, तच्च पादाद्यङ्गे लग्नं शुष्कं च ततोऽङ्गस-  
ञ्चालनमात्रेण वालुका दूरीभवति ३। तथा-शैलोदकं-शिलाः-पापाणाः, तासां  
विकाराः शैलाः-शर्करा. 'करुर' इति भाषाप्रसिद्धाः, तत्प्रधानमुदकं शैलोदकं,  
शैलास्तु चिकणाः, ते पादादि स्पृष्टाः किञ्चिद्दुःखं कुर्वन्तोऽपि कर्दमादिवन्न लेपं  
कुर्वन्ति ४। इत्युदकदृष्टान्तसूत्रम् ।

अथ दार्ष्टान्तिकभावसूत्रमाह—“ एवामेव-त्यादि - एवमेव-कर्दमाद्युदकव-  
देव, भावः-जीवस्य रागादि परिणामः। स चतुर्विधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-कर्दमोदक-

कर्दम विशेष का जैसा होना है अर्थात्-कज्जल को मथकर इस से  
पैर आदिकों में यदि लेप किया जाता है, तो वह भी कर्दम जैसा ही  
चिपक जाता है-और उस स्थान को काला कर देता है इसकी प्रधानता  
वाला जो उदक है वह-खज्जनोदक है। यह खज्जनोदक भी यदि कहीं  
पर लग जाता है, तो वह भी उस स्थान को मलिन कर देता है, फिर  
पानीसे उसे साफ करने पर शुद्ध हो जाता है। वालुकाप्रधान जो  
उदक है वह-वालुकोदक है, यह-वालुकोदक भी यदि कहीं अङ्ग में  
लग जाय, और-शुष्क हो जाय, तो वह वालुका अङ्ग सञ्चालनमात्र से ही  
दूर हो जाती है। तथा-जिस जल में शैल-पत्थर के ककड प्रधान होते हैं  
वे-शैलोदक हैं, कङ्कड चिकने होते हैं वे-चरण-पग आदि से स्पृष्ट होने  
पर कुछ दुःख तो देते हैं तो भी कर्दम आदिके जैसे चिपकते नहीं हैं।

काञ्चने पाष्णीनी साथे धुतीने जे लेप तैयार थाय तेने डाय, पग आदि पर  
लगाववाथी कादवनी जेम ज ते अगेने काणा करी नाजे छे आ प्रकारना  
अञ्जननी प्रधानतावाणा पाष्णीने अञ्जनोदक कडे छे आ अञ्जनोदकने जे  
ज्याये स्पर्श थाय छे ते ज्या पशु मलिन थय नय छे, परन्तु ते अधने  
पाष्णीनी महदधी साई करी शकय छे वालुकाप्रधान जे पाष्णी छे तेने वालु-  
कोदक कडे छे, आ प्रकारनु रतिमिश्रित पाष्णी शरीरना केथ पशु लागने के  
केथ पशु वस्तुने लागवाथी शरीरना ते लाग अथवा ते वस्तु साथे रती  
चोटी नय छे, परन्तु जेवु पाष्णी सूकाथ नय छे के तुरतज शरीरना सथा  
लन मात्रथी ज अने वस्तुने अजेरवाथी ज ते रती अरी नय छे जे  
पाष्णीमां काकरा डाय छे ते पाष्णीने शैलोदक कडे छे, ते कांकरा पर पग पड  
वाथी सडेज पीडा तो थाय छे, पशु ते कांकरा कादव आदिनी जेम शरीर  
चोटी जतां नथी “ एवामेव ” धत्यादि-जेम पाष्णीना थार प्रकार छे, तेम

समानः १, स्वजनोदकसमानः २, घालुकोदकसमानः ३, शैलोदकसमान ४  
 भेति । भावे कर्दमोदकादि समानत्व घ लेपकत्वेन, तत्र कर्दमोदकसमानो भाव-  
 यथा कर्दमोदके स्मृतो महता मयासेन विमोच्यते तथा भावोऽपि १, तथा-  
 स्वजनसमानो भावः-यथा स्वजनं ( कज्जलं ) लग्नं-लित्त कर्दमापेक्षया किञ्चिद्वा  
 यासेनापनीयते तथा भावोऽपि तथा-घालुकोदकसमाना भाव-यथा घालुकाऽपि  
 लग्नाऽप्येन मयासेनापनीयते, तथा भावोऽपि ३, तथा-शैलोदकसमानोभावः-

“ एषामेव ”-इत्यादि, जल की चतुर्विधता जैसे जीव के राग परि  
 णाम भी चार प्रकार के होते हैं । जैसे—कोई एक रागादि परिणाम  
 कर्दमोदक समान है कोई एक स्वजनोदक समान, तो कोई एक रागादि  
 परिणाम घालुकोदक समान, और—कोई एक रागादि परिणाम शैलो  
 दक के समान होता है ।

भाष में यह कर्दमोदक आदि से समानता प्रकट की गई है, यह-  
 लेपकारक होने के कारण चिकनाहट-चिकनापन से प्रगट की गई है ।  
 इन में कर्दमोदक समान जो भाव होता है, यह-कर्दम जैसे अङ्ग में  
 लग जाता है और-प्रति मयास से छुड़ाया जाता है, वसी तरह दूर  
 किया जाता है । जो-स्वजनोदक समान भाव होता है वह-जैसे स्वजन  
 लग जाने पर किञ्चित् मयास से ही कर्दम को अपेक्षा दूर कर दिया  
 जाता है, उसी तरह दूर किया जाता है । तथा-घालुकोदक समान जो  
 भाव होता है वह जैसे घालुका अङ्ग में लग जाने पर अन्य ही मयास

राजपरिवारना पञ्च आर प्रकट छे । कोर्छि अेक रागादि परिवारम कर्दमोदक  
 समान अेव छे, कोर्छि अेक स्वजनोदक समान तो कोर्छि अेक घालुकोदक समान  
 तो कोर्छि अेक रागादि परिवारम शैलोदक समान अेव छे ।

भावमा कर्दमोदक आदिनी सधे के समानता प्रकट करवामां ज्ञानी छे  
 तेनुं कर्दम अे छे के कर्दम आदिनी नेम तेमां विनाश होवाने कर्दमे तेने  
 कर्दमे आत्मा कर्मिनी ल घ करे छे नेम शरीर पर वायेवा कर्दवने अति  
 मयासभी दूर करी शक्य छे तेम कर्दमोदक समान भावने पञ्च अति मया  
 सभी दूर करी शक्य छे नेम कर्दम कर्त्ता अजन ( कज्जल ) ना लघने  
 वधारे सङ्केताधी दूर करी शक्य छे तेम स्वजनोदक समान भावने पञ्च  
 कर्दमोदक समान भाव कर्त्ता वधारे सज्जताभी दूर करी शक्य छे नेम शरीरे  
 शैलोदकी रती लघने मयासभी ल दूर करी शक्य छे तेम घालुकोदक समान  
 भावने शैला मयासभी ल दूर करी छे नेम पञ्चर, कर्दम आदिनी पावा

यथा शैलाः=पापाणशर्कराः पादादौ स्पृष्टाः किञ्चिद्दुःखं जनयन्ति न तु लिप्यन्ते,  
तथा भावोऽपि ४।

एतद्भात्रचतुष्टयानुप्रविष्टजीवस्य कळमाह—“कर्मोद्गममाणं” इत्यादि,  
क्रमेण चतुर्णां फलं-नैरयिक-तिर्यङ्-मनुष्य-देवगतिप्रतिरूपं बोध्यम् । सू० १ ।

अनन्तरं भाव उक्तः, साम्प्रत भात्रत्पुरुषजातं दृष्टान्तप्रदर्शनपुरस्सर  
निरूपयति—

मूलम्—चत्वारि पक्खी पणत्ता, तं जहा—रूयसंपन्ने णाम-  
मेगे णो रूवसंपन्ने १, रूवसंपन्ने णाममेगे णो रूयसंपन्ने २,  
एगे रूवसंपन्नोऽवि रूयसंपन्नेऽवि ३, एगे नो रूयसंपन्ने नो  
रूवसंपन्ने ४ । एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं  
जहा—रूयसंपन्ने णाममेगे णो रूवसंपन्ने १-४, । १ ।

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा—पत्तियं करेमीतेगे  
पत्तियं करेइ १, पत्तियं करेमीतेगे अपत्तियं करेइ २, अप्पत्तियं

से दूर कर दी जाती है, उसी तरह दूर कर दिया जाता है, और—जो  
भाव शैलोदक समान होता है वह जैसे—पापाण शर्करा पादादिकों में  
स्पृष्ट होने पर कुछ दुःख देती है किन्तु—चिपकती नहीं है, उसी तरह  
चिपकता नहीं है । इन चार प्रकार के भावों में प्रविष्ट जीव क्रम गतिसे  
नैरयिक-तिर्यञ्च मनुष्य और देवोंमें जाना है । अर्थात् कर्मोद्गक जैसे मलीन  
भाववाला नरकमें, और खन्नोदक समान भाववाला तिर्यञ्चमें और  
वालुकासमान भाववाला मनुष्य में एवं शैलोदक समान भाववाला  
देवताओं में जाता है ॥ सू० १ ॥

दिकाने स्पर्श यतां सडेज पीडा थाय छे पञ्च ते ङकरा आदि पगनी साथे  
थोटी जतां नथी, जे ज प्रमाणे शैलोदक समान भाव आत्माभा थोटी जता  
नथी—स्थिर यता नथी आ चार प्रकारना भावोभा प्रविष्ट ज्व कर्मशः नैर-  
यिक, तिर्यञ्च, मनुष्य अने देवोभां उत्पन्न थाय छे अर्थात् कर्मोद्गक जेवा  
मलीन भाववाणो नरकभा, तेम ज ङज्जण जेवा भाववाणो तिर्यञ्चभां अने  
वालुका देती समान भाववाणो मनुष्यभा अने शैलोदक समान भाववाणो  
देवोभां उत्पन्न थाय छे ॥ सू. १ ॥



करेमीतेगे पत्तिय करेइ ३, अपत्तिय करेमीतेगे अपत्तिय करेइ ४ । २ ।

चत्तारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा-अप्पणो णाममेगे पत्तिय करेइ णो परस्स १, परस्स णाममेगे पत्तिय करेइ णो अप्पणो ० ४, । ३ ।

चत्तारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा-पत्तिय पवेसामी तेगे पत्तिय पवेसेइ १, पत्तिय पवेसामीतेगे अपत्तिय पवेसेइ ० ४,

चत्तारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा-अप्पणो णाममेगे पत्तिय पवेसेइ णो परस्स, १, परस्स णाममेगे पत्तिय पवेसेइ णो अप्पणो २-४ ॥ सू० २ ॥

छाया—चत्तारः पक्षिण प्रहाराः, षडधा—रुतसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्नः १, रूपसम्पन्नो नामैका नो रुतसम्पन्नः २, एको रूपसम्पन्नोऽपि रुतसम्पन्नः ३

अथ सूत्रकार वाचान्तिक भावसे पुरुषजात का निरूपण करते हैं—

चत्तारि पक्षी पणत्ता—इत्यादि—२

सुत्रार्थ—पक्षी चार प्रकारके कहे गये हैं, जैसे—कोई एक पक्षी ऐसा होता है, जिस का शब्द तो आनन्द वाचक होता है पर-वह स्वयं सुन्दर भाकार वाला नहीं होता है—१ । कोई एक पक्षी ऐसा होता है जो रूप में तो सुन्दर है पर-उसका शब्द आनन्द वाचक नहीं होता है—२ । कोई एक पक्षी ऐसा होता है जो रूप में भी सुन्दर होता है और—

इसे सूत्रकार वाचान्त अने वाचान्तिक सूत्रों द्वारा पुरुषोत्तम प्रकार प्रकृत करे थे “ चत्तारि पक्षी पणत्ता ” इत्यादि—

सुत्रार्थ—पक्षीना नीचे प्रमाणों चार प्रकार कहे थे—(१) कोई एक पक्षी जेवुं डोष छे के जेने अथवा आनन्दवाचक डोष छे, पक्ष ते सुन्दर डोषु नथी (२) कोई एक पक्षी जेवुं डोष छे के जे सुन्दर डोष छे पक्ष तेने अथवा आनन्दवाचक डोषे नथी. (३) कोई एक पक्षी जेवुं डोष छे के जे डोषवर्मा

म्पन्नोऽपि ३, एको नो रतसम्पन्नो नो रूपसम्पन्न ४। एवमेव चत्वारि पुरुष-  
जातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रतसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्न. ४। १॥

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—प्रीतिकं करोमीत्येकः प्रीतिकं  
करोति १, प्रीतिकं करोमीत्येकोऽप्रीतिकं करोति २, अप्रीतिकं करोमीत्येकः  
प्रीतिकं करोति ३, अप्रीतिकं करोमीत्येकोऽप्रीतिकं करोति ४। २।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—आत्मनो नामैकोऽप्रीतिकं करोति  
नो परस्य १, परस्य नामैकः प्रीतिकं करोति नो आत्मनः ४, । ३ ।

शब्द भी उसका आनन्द दायक होता है—३ और—कोई एक पक्षी ऐसा  
होता है. जो—नतो बोलने में और—न देखने में सुन्दर होता है—४ .

इसी प्रकार पुरुष जात चार हैं कोई एक ऐसा होता है जिसका  
शब्द आनन्द दायक होता है किन्तु—आकार सुन्दर नहीं होता है—१  
कोई पुरुष ऐसा होता है जो रूप में तो सुन्दर, पर—बोलने में नहीं—२  
कोई एक ऐसा होता है जो बोलने में भी और—आकार में भी सुन्दर  
होता है—३ कोई एक न तो बोलने में—न देखने में सुन्दर होता है—४  
फिर भी—चार प्रकार के पुरुष होता हैं, जैसे—कोई एक ऐसा होता है  
जो—“मैं प्रीति करूं”—ऐसा निश्चय करके प्रीति करता है—१ कोई एक  
मैं प्रीति करूं ऐसा निश्चय करके भी प्रीति नहीं करता है—२ कोई एक पुरुष  
“मैं अप्रीति करूं ” ऐसा निश्चय करके भी अप्रीति नहीं करता है—३

पण सुंदर डोय छे अने तेना अवाज पण आनददायक डोय छे: (४) कोछ  
ओक पक्षी ओबुं डोय छे के बेने अवाज पण मधुर डोतो नथी अने देभाव  
पण सुंदर डोतो नथी.

ओ ज प्रभाणु पुरुष पण यार प्रकारना डोय छे. (१) कोछ ओक पुरु  
षनी वाणी आनददायक डोय छे, पण देभाव सुंदर डोतो नथी (२) कोछने  
देभाव सुंदर डोय छे पण वाणी मधुर डोती नथी (३) कोछनी वाणी पण  
मधुर डोय छे अने देभाव पण सुंदर डोय छे (४) कोछनी वाणी पण भीठी  
डोती नथी अने देभाव पण सुंदर डोतो नथी पुरुषना आ प्रभाणु पण  
यार प्रकार पडे छे—(१) कोछ ओक पुरुष ओवो डोय छे के बे प्रीति कर-  
वानो निश्चय करीने प्रीति करी शके छे (२) कोछ प्रीति करवानो निश्चय  
करवा छता प्रीति करतो नथी. (४) कोछ पुरुष अप्रीति करवानो निश्चय  
करीने अप्रीति ज करे छे.

षट्कारि पुरुषजातानि महत्तानि, तद्यथा-मीतिकं प्रवेशयामीत्येकः मीतिकं प्रवेशयति मीतिकं प्रवेशयामीत्येकोऽमीतिकं प्रवेशयति० ४।

षट्कारि पुरुषजातानि महत्तानि, तद्यथा-आत्मनो नामैकः मीतिकं प्रवेशयति नो परस्य १, परस्य नामैकः मीतिकं प्रवेशयति नो स्वस्य २-४ ॥ सू० २ ॥

कोई एक मैं अप्रीति करूँ ऐसा निश्चय कर के अप्रीति ही करता है-४

फिर भी-पुरुष जात चार हैं, जैसे-कोई एक ऐसा होता है जो-अपने प्रति मीति करता है, परके प्रति नहीं-१ कोई एक परके प्रति मीति करता है, अपने प्रति नहीं-२ कोई एक अपने, और-परके प्रति भी मीति करता है-३ एक कोई नतो अपन प्रति न परके प्रति ही मीति करता है-४-३। फिर भी-पुरुष चार हैं, कोई एक अपने स्नेह को परचित्तमें प्रविष्ट कराऊँ ऐसा निश्चय करके परचित्तमें अपने स्नेहको स्थापित करता है-१ कोई एक अपने स्नेहको परचित्त में प्रविष्ट कराऊँ निश्चय करके भी परचित्त में अपनी मीति प्रविष्ट नहीं करता है-२ एक ऐसा होता है जो परचित्त में अप्रीति प्रविष्ट कराऊँ निश्चय करके भी मीति को प्रविष्ट करता है-३ कोई एक परचित्त में अप्रीति प्रविष्ट कराऊँ निश्चय न करके उसके चित्त में अपनी अप्रीति ही प्रविष्ट करता है-४-४

पुरुषना आ प्रभावे चार प्रकार पक्ष पडे थे-(१) कोइ कोइ पुरुष कोइ कोइ पुरुष के कोइ पिताना प्रत्ये मीति राजे थे अन्य तरह मीति राजते नथी. (२) कोइ पुरुष कोइ कोइ पुरुष के कोइ परप्रत्ये मीति राजे थे पक्ष पिताना प्रत्ये राजते नथी (३) कोइ स्व अपने पर जन्ने प्रत्ये मीति राजे थे (४) कोइ स्व के पर केइ प्रत्ये मीति राजते नथी.

पुरुषना आ प्रभावे चार प्रकार पक्ष पडे थे-(१) कोइ पिताना स्नेहने परचित्तमां प्रविष्ट कर्षववानो निश्चय करीने परचित्तमां पिताना प्रत्ये स्नेह उत्पन्न कर्षवी शकते थे (२) कोइ पिताने भाटे परचित्तमां मीति उत्पन्न कर्षववानो निश्चय कर्षवा उत्तां परचित्तमां पिताना प्रत्ये मीति उत्पन्न कर्षवी शकते नथी. (३) कोइ पुरुष परचित्तमां अप्रीति उत्पन्न कर्षववानो निश्चय कर्षवा उत्तां पक्ष पिताना प्रत्ये मीति उत्पन्न कर्षवे थे (४) कोइ कोइ पुरुष परचित्तमां अप्रीति उत्पन्न कर्षववानो निश्चय करीने अप्रीति उत्पन्न करे थे

टीका—“ चत्वारि पक्षी ”—त्यादि-रूपम्, नवर-रुतं-शब्दः, रूपं च सर्वेषां पक्षिणां भवत्येव, अत एतद्द्वयं विशिष्टमेव गृह्यते, एवं च रुतं-श्रवणाऽऽह्लादको मनोज्ञशब्दस्तेन सम्पन्नो-युक्तः एकः पक्षी भवति, परन्तु नो रूपसम्पन्नः-सुन्दराऽऽकारो न भवति, कोकिलवत्, इति प्रथमो भङ्गः १।

तथा—पुरुषजात चार हैं, कोई एक तो ऐसा होता है जो, अपने चित्त में प्रीति को प्रविष्ट करता है, पर-परके चित्त में प्रीति को प्रविष्ट नहीं करता है—१ कोई एक ऐसा होता है जो परचित्त में प्रीति को स्थापित करता है, अपने चित्त में नहीं—२ कोई एक ऐसा होता है जो अपने चित्त में प्रीति को स्थापित करता है, और-परचित्त में भी—३ और-कोई एक अपने चित्त में भी और-परचित्त में-भी स्थापित नहीं करता है—४-४

टीकार्थ—इस सूत्र में पक्षी का दृष्टान्त देकर पुरुष चार प्रकार प्रकट किये गये हैं उस सम्बन्ध में ऐसा कथन जानना चाहिये कि—रुत, ज्वद, आवाज, बोली पक्षियों का होता है, और रूप भी पक्षियों का होता है, परन्तु-यहां जो ये दो बातें प्रकट की गई हैं, इस से ये दोनों विशिष्ट रूप से गृहीत हुवे हैं। तथा च-जो मनुष्यों के श्रोत्रेन्द्रियों का आनन्ददायक होनाई ऐसा मनोज्ञ शब्द और जो रूप रुचिर-सुन्दर आकार वाला होना है उसे ऐसा मनोज्ञ रुत और-रूप से समझना चाहिये। इस प्रकार समझ कर फिर इस दृष्टान्त सूत्र का इस

पुरुषना आ प्रभाषे चार प्रकार पणु पडे छे—(१) कोछ ओछ पुरुष ओवो डोय छे के ने पोताना चित्तमां तो प्रीति उत्पन्न करी शके छे पणु परना चित्तमा प्रीति उत्पन्न करावी शक्ते नथी (२) कोछ पुरुष परमां प्रीति उत्पन्न करावी शके छे पणु पोताना चित्तमा प्रीतिने स्थापित करी शक्ते नथी (३) कोछ ओछ पुरुष पोताना अपने परना, णन्नेना चित्तमां प्रीति स्थापित करी शके छे (४) कोछ पुरुष पोताना चित्तमा पणु प्रीतिने स्थापित करी शक्ते नथी अपने परना चित्तमा पणु प्रीतिने स्थापित करी शक्ते नथी

टीकार्थ—पडेल्ले सूत्रमा पक्षीनु दृष्टान्त आपीने चार प्रकारना पुरुषो प्रकट कर-वामां आन्वा छे. पक्षाओमां अवाञ्ज ( ओली, शण्ड ) अपने इप णन्नेना सहसाव डोय छे परन्तु अर्ही ते णन्ने आबतोने विशिष्ट इपे अडणु कर वामा आवेल छे अर्ही ‘ इप ’ पदथी ओवुं समञ्जुं नेछओ के मनुष्योनी दृष्टिने गमे तेषु मनोज्ञ ( रुचिर ) इप अपने ‘ शण्ड ’ पदथी मनुष्योनी कर्णेन्द्रियने मनोज्ञ लागे ओवो मधुर अवाञ्ज अडणु थवे नेछओ.



एकः-कश्चित् पक्षी रूपसम्पन्नः-सुन्दराऽऽकारो भवति, किन्तु नो रक्तसम्पन्नः साधारणशुकवत्, इति द्वितीयो मङ्गः १। एको रुरूपो मयसम्पन्नो भवति मयूरवत्, इति तृतीयो मङ्गः २। एको नो रक्तसम्पन्नो नो रूपसम्पन्नश्च भवति काकवत्, इति चतुर्थो मङ्गः ४।

“ एवमेव ” इत्यादि-एवमेव=पक्षिभिरिव पुरुषभ्रातृानि चत्वारि मङ्गलानि, सर्वेषां-रक्तसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्न इत्यादि । अत्रेदं बोध्यम्-पुरुषो द्वि-लौकिकलोकोत्तरमेवेन द्विधा । तत्र लौकिकपुरुषपक्ष चत्वारो मङ्गा एव बोध्याः, तथाहि-एका पुरुषः प्रियरादित्येन रक्तसम्पन्नः-मनोऽश्लक्ष्णयुक्तो भवति, किन्तु

प्रकार से अर्थ करना चाहिये । कोई एक पक्षी ऐसा है कि-उसकी आवाज सुरीली मीठी, आकर्षक, आनन्ददायक, कर्णप्रिय होती है परन्तु वह रूप सम्पन्न नहीं होता, जैसे-कोकिल-कोयल ? कोई एक देवने में इतना सुन्दर कि दर्शकोंका मन खींचले, किन्तु-उसका शब्द आकारका अनुरूप नहीं, जैसे साधारण शुक, (तोता) २ कोई एक उमय था, (दोनों तरइसे ) सुन्दर होता, जिसका शब्द भी कर्ण सुखावह और-रुचिररूप भी, जैसे-मोर-३ कोई एक दोनों प्रकारसे ठीक नहीं होता है शब्दसे भी-रूप से भी, जैसे-कौषा-४ इस दृष्टान्त का समन्वय पुरुषों के साथ करते हूये सूत्रकारने पुरुषमें चार प्रकारका भेद कहा है । पुरुष लौकिक-अलौकिक भी होते हैं, सो इन लौकिकपुरुषोंमें पक्षी सम्पत्ती चार भङ्ग होंगे । जैसे-कोई एक प्रिय रक्त (शब्द) सम्पन्न होता है किन्तु-रूप से सम्पन्न नहीं-१ कोई एक सुन्दर रूप वाला है तो-सुन्दर बोलबाल

આ દષ્ટિએ વિચાર કરવામાં આવે તો પક્ષીઓના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પડે છે—(૧) કોઈ પક્ષીનો અવાજ મધુર શ્વપ્રિય હોય છે, પણ તે રૂપાવર્માં સુંદર હોતું નથી. ઢા. ત. કૌયલ. (૨) કોઈ એક પક્ષીનો રૂપાવર્ મનોહર હોય છે પણ તેનો અવાજ મીઠો હોતો નથી. ઢા ત સામાન્ય પોષ્ટ. (૩) કોઈ એક પક્ષીનો અવાજ પણ શ્વપ્રિય હોય છે અને રૂપાવર્ પણ મનોહર હોય છે ઢા ત મોર. (૪) કોઈ એક પક્ષીનો અવાજ પણ શ્વપ્રિય હોય છે અને રૂપાવર્ પણ અસાધ્ય હોય છે ઢા ત કાકા.

પક્ષીની જેમ પુરુષના પણ ચાર પ્રકાર પડે છે—પુરુષ લૌકિક પણ હોય છે અને અલૌકિક પણ હોય છે લૌકિક પુરુષોના પણ પક્ષી જેવા ચાર પ્રકાર સમજવા—(૧) કોઈ એક પુરુષનો અવાજ શ્વપ્રિય હોય છે પણ તે સુંદર હોતો નથી (૨) કોઈ એક પુરુષ પક્ષી જેવાએ સુંદર હોય છે પણ તેની

यथोक्तरूप रहितत्वेन नो रूपसम्पन्नः—सुन्दराऽऽकारवान् न भवति, इति प्रथमो भङ्गः । १। तथा—एकः पुरुषो रूपसम्पन्नो भवति न तु रूतसम्पन्न, इति द्वितीयः २।

एको रूतसम्पन्नोऽपि रूपसम्पन्नोऽपि भवति । इति तृतीयः ३। एको न रूतसम्पन्नो नापि रूपसम्पन्न इति चतुर्थः ४। लोकोत्तरपुरुषपक्षत्वेवं, तथाहि—एकः साधुपुरुषो रूतसम्पन्नः — रूतेन — जिनप्ररूपितशुद्धधर्मदेशनादिप्रवन्धरूपगव्देन सम्पन्नो—युक्तो भवति, किन्तु रूपसम्पन्नः — रूपेण — लोचाल्पकेशशिरस्कत्व—तपः कृशीकृतशरीरत्व—मलमलिनकायत्वाऽल्पोपकरणत्वप्रभृतिसाधूचितरूपेण सम्पन्नो न भवति, इति प्रथमो भङ्गः १। एवमेवावशिष्टं भङ्गत्रयमपि यथायोग्यं बोध्यम् । १।

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि—स्पष्टम्, नवरं—प्रीतिकं—प्रीतिरेव प्रीतिकं—प्रेम करोमीति निश्चित्य एकः प्रीतिकं करोति १, एकः—अन्यस्तु प्रीतिकं करो-

चाला नहीं—२ कोई एक देखने में भी सुहावना और चोल से भी—३ कोई एक गधा—गदहा, और—छट जैसा न तो शब्द से—न तो रूप से सुन्दर होता है—४ । अब लोकोत्तर में घटाना है—कोई एक साधु (शब्द) से (जिनप्रणीत धर्मदेशना से) सम्पन्न होता है, किन्तु—रूप से—लोच करना, अल्प केशोंसे युक्त शिरवाला होना, तप से कृश शरीर वाला होना, शरीर संस्कार वर्जित होना, अल्पोपकरण रखना, आदि साधूचित सम्पन्न नहीं होता है—१ इसी प्रकार शेष भङ्ग त्रय को—यथायोग्य समझना चाहिये ४ । “ चत्वारि पुरिसजाया ”—इत्यादि सूत्र स्पष्ट है । यहाँ—प्रीतिक शब्द का अर्थ प्रेम है । प्रीति शब्द से स्वार्थ में ही कन्

वाणी आन दहायक डोती नथी (३) कोर्ध अेक पुरुष देणावभां पणु सुहर डोय छे अने तेनी वाणी पणु भीठी डोय छे (४) कोर्ध अेक पुरुषनी वाणी पणु मधुर डोती नथी अने देणाव पणु सुहर डोतो नथी डवे डोकोत्तर पुरुषेना आर प्रकार प्रकट करवामा आवे छे—(१) कोर्ध अेक साधु रूतथी (जिन प्रणीत धर्मदेशनाथी) संपन्न डोय छे, परन्तु इप संपन्न डोतो नथी अेटके के डोय करवो, अटप केशोथी युक्त शिरवाणो डोवुं, तपथी कृश शरीर वाणो डोवुं, शरीर सस्कारविडीन डोवु, अटपोपकरण राणवा, आदि साधू चित इपथी सपन्न डोतो नथी अे न प्रभाणु आठीना तणु प्रकारो पणु समणु देवा.

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि सूत्रनेो अर्थ स्पष्ट छे. अडी प्रतिक शब्द प्रेमना अर्थमा वपराये छे ‘ प्रीति ’ पदने स्वार्थ ‘ कन् ’ प्रत्यय लगा



पुरुषः आत्मनः परस्य च प्रीतिक्रमं भोजनाऽऽच्छादनादिभिः करोति स्वार्थपरमार्थपरायणत्वात्, इति तृतीयः ३। तथा-एकः पुरुषो न स्वस्य प्रीतिक्रमं करोति न च परस्य, स्वार्थपरमार्थरहितत्वादिति चतुर्थः ४।

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि-स्पष्टम्, नवरम्-एकः पुरुषः प्रीतिक्रम-सम्बन्धि प्रेम परकीयचित्ते प्रवेशयामीत्येवं निश्चित्य प्रीतिक्रमं परचित्ते प्रवेशयति-स्थापयति १, एक पुरुषः प्रीतिक्रमं प्रवेशयामीत्येव निश्चित्यापि केनापि कारणेन पूर्वभावपरिवर्तनाद्प्रीतिक्रमं परचित्ते प्रवेशयति १, एकः पुरुषोऽप्रीतिक्रमं परचित्ते प्रवेशयामीत्येवं निश्चित्यापि प्रीतिक्रमं प्रवेशयति ३। एकः पुरुषस्तु अप्रीतिक्रमं परचित्ते प्रवेशयामीत्येवमप्रीतिक्रमं परचित्ते प्रवेशयति द्वेषयतीति भावः ४।

कोई एक उभय था. स्वार्थ-और परमार्थ परायणतासे अपने और पर दोनों को भोजन वस्त्रादि से आनन्द सम्पन्न बनाये रखता है-३ कोई एक स्वार्थ और-परमार्थ वञ्चित होने के कारण भोजन वस्त्रादि द्वारा अपने आपको-और-औरों को भी आनन्द युक्त करने कराने से वञ्चित रखता है-४ “ चत्वारि पुरिसजाया ”-इत्यादि स्पष्ट है, इस में-यह सम्बन्धाया गया है कि-कोई एक स्वसम्बन्धित स्नेह को परकीयचित्त में प्रवेश कराऊ. ” निश्चित करके परचित्त में स्थापित करता है-१ कोई एक पुरुष अपना स्नेह “ परचित्त में स्थापित करू ” निश्चय करके भी किसी कारण से पूर्व भाव परिवर्तन हो जाने पर परचित्तमें अप्रीति को ही स्थापित करता है-२ कोई एक “ अप्रीति को ही स्थापित करू ” निश्चय करके फिर भी वह प्रीति को ही परचित्त में स्थापित करता है-३

छुताने कारणे पोते पणु सुदर लोचन, वस्त्रादिथी आनन्द माने छे अने भीजने पणु लोचन, वस्त्रादि आपीने आनन्द करावे छे. (४) कोष्ठ अेक पुरुष स्वार्थ अने परमार्थथी रहित होवाने कारणे पोताने पणु लोचन वस्त्रादि द्वारा आनन्द करावने नथी अने अन्यने पणु अे रीने आनन्दित करतो नथी

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि आ सूत्रमां आर प्रकारना पुरुषो कथा छे. (१) कोष्ठ अेक पुरुष “ अन्यना चित्तमा मारा प्रत्ये स्नेह स्थापित करावु ” आ प्रकारने निश्चय करीने अन्यना चित्तमां पोताना प्रत्ये स्नेह स्थापित करी हे छे (२) कोष्ठ अेक पुरुष परचित्तमां पोताना प्रत्ये स्नेह स्थापित करवाने निश्चय करना छता पणु कोष्ठ कारणे पूर्व भावमां परिवर्तन यथं नवाथी परचित्तमा अप्रीति न स्थापित करे छे (३) कोष्ठ अेक पुरुष

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि-स्पष्टम्, नवरम्-एकः पुरुषा आत्मनः-  
स्वस्य विषे प्रीतिकं प्रवेशयति, किन्तु परस्य विषे प्रीतिकं नो प्रवेशयति, इति  
प्रथमा मद् १। शेषमद्प्रथम पूर्ववद्वोष्यम् । सू० २ ।

पुनः सदृष्टान्त पुरुषजातै निरूपयति—

मूमम्—चत्वारि रुक्खा पणत्ता, त जहा पत्तोवप १, पुष्फो  
वप २, फलोवप ३, छायोवप ४ । ष्वामेष चत्वारि पुरिस  
जाया पणत्ता, त जहा-पत्तोवगरुक्खसमाणे १, पुष्फोवगरुक्ख  
समाणे २, फलावगरुक्खसमाणे ३, छायोवगरुक्खसमाणे ४। सू० ३।

छाया—चत्वारो वृक्षा मद्गताः, तयथा-पत्रोपग १, पुष्पोपगः २, फलो  
पगः ३, छापोपगः ४। एतेष्वेव चत्वारि पुरुषजातानि मद्गतानि, तद्यथा-पत्रोपग  
कोऽ एक परचित्त में अभीति स्थापित करू निश्चय करके पूर्व विचार क  
अनुसार अभीति को ही परकीय चित्त में स्थापित करता है—४

“ चत्वारि पुरिसजाया ”—इत्यादि स्पष्ट हैं, इस में कहा गया है  
कि-कोई एक अपने ही चित्त को प्रथम रखता है परचित्त को नहीं—१  
शेष मद् प्रथम पूर्व की तरह जानना चाहिये—॥ सू० २ ॥

“ पुनः सूत्रकार सदृष्टान्त पुरुषजातकी प्ररूपणा करते हैं—

“ चत्वारि रुक्खा पणत्ता ”—३

सूत्रार्थ—चार प्रकारके वृक्ष कहे गये हैं, जैसे-कोई एक वृक्ष पत्रोपग होता  
है १ कोई एक पुष्पोपग होता है, २ कोई एक फलोपग होता है, ३

परचित्तमें अभीति स्थापित करवाने। निश्चय करवा छत्ता पत्र प्रीति व  
स्थापित करे छे (४) कोऽ कोऽ पुरुष पुरिस परचित्तमें अभीति स्थापित करवाने  
विचार करीने पूरा काय अनुसार अभीति व स्थापित करे छे

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि। आ प्रकारे पञ्च पुरुषोत्तमा व्यार प्रकार  
कहा छे (१) कोऽ कोऽ पुरुष पुरिस पुरिस चित्तने व प्रथम शप्ते छे अन्यथा  
चित्तने प्रथम शप्ते नथी आदित्ता तत्र प्रथमे आत्रया सूत्रमें कहा प्रभावे  
व समर्थ देवा ॥ सू० २ ॥

वृक्षाना दृष्टान्त द्वारा सूत्रकार पुरुषजात प्रकारेणी प्ररूपणा करे छे—

“ चत्वारि रुक्खा पणत्ता ” इत्यादि—( सू० ३ )

सूत्रार्थ—वृक्षाना चार प्रकारे कहा छे (१) कोऽ वृक्ष पत्रोपग ( पत्रमुपग ) टोप  
छे, (२) कोऽ वृक्ष पुष्पोपग टोप छे (३) कोऽ वृक्ष फलोपग टोप छे,

વૃક્ષસમાનઃ ૧, પુષ્પોપગવૃક્ષસમાનઃ ૨, ફલોપગવૃક્ષસમાનઃ ૩, છાયોપગવૃક્ષસમાનઃ ૪। મૂ૦ ૩।

ટીકા—“ચત્તારિ સ્વભા” ઇત્યાદિ-સ્પષ્ટમ્, નવરં-પત્રોપગઃ-પત્રાણ્યુપ-ગચ્છતિ-પ્રાપ્નોતીતિ પત્રોપગઃ-પત્રયુક્તઃ, એવં પુષ્પોપગાદયસ્ત્રયઃ ૪। “એવામેવ” ઇત્યાદિ-એવામેવ-પત્રોપગાદિ વૃક્ષવટેવ પુરુષજાતાનિ ચત્તારિ પ્રજ્ઞાનિ, તથયા-પત્રોપગવૃક્ષસમાનઃ ૧, પુષ્પોપગવૃક્ષસમાનઃ ૨, ફલોપગવૃક્ષસમાનઃ ૩, છાયોપગવૃક્ષસમાનઃ ૪। પત્રોપગાદિવૃક્ષસમાનત્વં લૌકિકાનાં લોકોત્તરાણાં ચ પુરુષાણાં સંભ-વતિ । તત્ર લૌકિકપક્ષે-યથા પત્રોપગવૃક્ષઃ પત્રમાત્રેણ જનમુપકરોતિ તથૈવ તત્સ-માનઃ પુષ્પો વચનમાત્રેણ જનમુપકરોતીતિ પ્રથમઃ ૧। પુષ્પોપગવૃક્ષો યથા પુષ્પેણ

ઔર-કોઈ એક છાયોપગ હોતા હૈ, ૪। હમી પ્રકાર સે પુરુષજાત ચાર કહે ગયે હૈ, જૈસે-કોઈ એક પુરુષ પત્રોપગ વૃક્ષ સમાન હોતા હૈ, ૧ કોઈ એક પુષ્પોપગ વૃક્ષ સમાન હોતા હૈ, ૨ કોઈ એક ફલોપગ વૃક્ષ સમાન હોતા હૈ, ૩ ઔર કોઈ એક પુરુષ છાયોપગ વૃક્ષ સમાન હોતા હૈ, ૪।

હસ સૂત્રકા તાત્પર્ય એસા હૈ કિ-કોઈ એક વૃક્ષ એમા હૈ જો પત્રોપગ પત્રો સે યુક્ત હોતા હૈ, ૧ કોઈ એક વૃક્ષ પુષ્પોપગ-પુષ્પોસે સંયુક્ત હોતા હૈ, ૨ કોઈ એક વૃક્ષ એસા હોતા હૈ જો ફલોપગ, ફલો સે યુક્ત હોતા હૈ, ૩ ઔર-કોઈ એક વૃક્ષ એસા હોતા હૈ જો છાયોપગ-છાયા સે યુક્ત હોતા હૈ, ૪ હનકે સમાન ચાર પુરુષ હોતેહૈ હમકા તાત્પર્ય હૈ કિ-કોઈ એક લૌકિક પુરુષ એસા હોતા હૈ જો, પત્રોપગ વૃક્ષ સમાન હોતા હૈ, અર્થાત્-જૈસે પત્રોપગ વૃક્ષ કેવલ અપને પત્રો સે હી જન-ઉપકાર કરતા હૈ ડસી પ્રકાર પુરુષ ખી કેવલ વચન સે હી જનો કા ઉપકાર કરતા હૈ, ૧ પુષ્પો-

અને (૪) કોઈ વૃક્ષ છાયોપગ હોય છે એ જ પ્રમાણે પુરુષો પણ ચાર પ્રકારના હોય છે. (૧) કોઈ પુરુષ પત્રોપગ વૃક્ષ સમાન હોય છે, (૨) કોઈ પુષ્પોપગ વૃક્ષ સમાન હોય છે, (૩) કોઈ ફલોપગ વૃક્ષ સમાન હોય છે અને (૪) કોઈ છાયોપગ વૃક્ષસમાન હોય છે

આ સૂત્રનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે (૧) કોઈ એક વૃક્ષ પાનથી યુક્ત હોય છે (૨) કોઈ વૃક્ષ પુષ્પોથી યુક્ત હોય છે, (૩) કોઈ વૃક્ષ ફલોથી યુક્ત હોય છે અને (૪) કોઈ વૃક્ષ છાયાથી યુક્ત હોય છે વૃક્ષની જેમ પુરુષો પણ ચાર પ્રકારના હોય છે (૧) પત્રોપગ વૃક્ષ સમાન પુરુષ-જેમ પત્રોપગ વૃક્ષ પોતાના પાન વડે જ લોકો પર ઉપકાર કરે છે, એ જ પ્રમાણે કોઈ એક લૌકિક પુરુષ પોતાની વાણી દ્વારા જ લોકોનું ભલું કરે છે.

जनस्युपकरोति तत्रैव सम्मानः पुरुष फलनिवारणोपायप्रदानेनोपकारी भवति, इति द्वितीयः २। फलोपगृह्य फलप्रदानेन यथा विशिष्टोपकारको भवति, तथैव तत्समान पुरुष आपन्नवान् जनानर्यादि प्रदानेनोपकारीति तृतीयः ३। तथा-छायोपगृह्यो यथा छायाया जनानां सन्ताप इरति, तथैव तत्समान पुरुष आश्रयप्रदानादिनाऽऽपन्नवान् जनानुपकरोति, इति चतुर्थः ४।

लोकोत्तरपक्षेद् यः स्वप्रदानेन जनस्युपकरोति स पत्रोपगृह्यसमानः । १। य पुनरर्थप्रदानेनोपकरोति स पुष्पोपगृह्यसमानः । २। यस्तु सुप्रार्थोमयप्रदानेनोपकरोति स फलोपगृह्यसमानः । ३। य पुनर्ममभरामरुणारूपाऽपायाद् रक्षति स छायोपगृह्यसमान इति । सू० ३ ॥

पग पुरुष फल निवारण उपाय प्रदान करता है जैसे-पुष्पोपगृह्य अपने पुष्पों से जनका उपकार करता है, २ तथा-फलोपगृह्य समान वह पुरुष है जो आपन्ननों को अर्थादि प्रदान से वसका उपकारक होता है जैसे-फलोपगृह्य अपने फलों से खलते जनों का उपकार करता है, ३ छायोपगृह्य का जैसा वह पुरुष होता है जो-आश्रय प्रदान द्वारा उपकार करता है जैसे-छायोपगृह्य छायासे जनों का सन्ताप करता है, ४ लोकोत्तर पुरुष इन वृक्षों के समान होते हैं-जो लोकोत्तर पुरुष सूत्रदान से जन उपकारक होता है वह पत्रोपगृह्य समान है, १ जो अथप्रदान से उपकारक होता है वह पुष्पोपगृह्य समान है, २ जो सुत्र

(१) पुष्पोपगृह्य वृक्ष समान पुरुष—जैम केई पुष्प पे ताना पुष्पोपगृह्य वृक्षोके पर उपकार करे छे तेम केई पुरुष फल निवारण उपाय जता वीने वृक्षोके अक्ष करे छे (२) ह्योपगृह्य वृक्ष समान पुरुष—जैवी रीते ह्योपगृह्य वृक्ष पिताना ह्यो आ पीने जय आपता वृक्षोके उपकार करे छे तेम केई पुरुष अथोदिनु प्रदान करीने वृक्षोके उपकार करे छे

(३) छायोपगृह्य वृक्ष समान पुरुष—जैम केई वृक्ष पे ताना छायाया वृक्षोके आश्रय आपे छे तेम केई पुरुष आश्रय प्रदान करीने पक्ष वृक्षोके उपकार करे छे अथवा सन्ताप हर करे छे

लोकोत्तर पुरुषोने वृक्षोनी साथे आ प्रभावे सरजावी शक्य—

(१) जै वृक्षोत्तर पुरुष सूत्रदान द्वारा जन उपकारक होय छे तेने पत्रोपगृह्य वृक्ष समान कही शक्य (२) जै अथप्रदान द्वारा उपकारक होय छे तेने पुष्पोपगृह्य वृक्ष समान कही शक्य (३) सूत्र जने अथ जने द्वारा उपकार करीने वृक्षोत्तर पुरुषोने ह्योपगृह्य वृक्ष समान कही शक्य (४) जै

अथ श्रमणोपासकस्याऽऽश्वास सदृष्टान्तमाह—

मूलम्—भारं णं वहमाणस्स चत्तारि आसासा पणत्ता, तं जहा—जत्थ णं अंसाओ अंसं साहरइ तत्थवि य से एगे आसासे पणत्ते १, जत्थवि य णं उच्चारं वा पासवणं वा परिट्टावेइ तत्थवि य से एगे आसासे पणत्ते २, जत्थवि य णं णागकुमारावासंसि वा सुवण्णकुमारावासंसि वा वासं उवेइ तत्थवि य से एगे आसासे पणत्ते ३, जत्थवि य णं आवकहाए चिद्धइ तत्थवि य से एगे आसासे पणत्ते ४। एवमेव समणोवासगस्स चत्तारि आसासा पणत्ता, तं जहा—जत्थ णं सीलव्वयगुणव्वयवेरमणपच्चक्खाणपोसहोववासाइं पडिवज्जेइ तत्थवि अ से एगे आसासे पणत्ते १, जत्थवि य णं सामाइयं देसावगासियं सम्ममणुपालेइ तत्थवि य से एगे आसासे पणत्ते २, जत्थवि य णं चाउहसट्टमुद्दिट्टुपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेइ, तत्थवि य से एगे आसासे पणत्ते ३, जत्थवि य णं अपच्छिममारणंतिअसंलेहणाजोसणाजूसिए भत्तपाणपडियाइ—क्खिए पाओवगए कालमणवक्खमाणै विहरइ तत्थवि य से एगे आसासे पणत्ते ४ ॥ सू० ४ ॥

अर्थ दोनों से जन कल्याण करता है वह फलोपग वृक्ष समान है, ३ और जो जन्म जरा मरण रूप अपापों से बचाता है, संरक्षण करता है वह लोकोत्तर पुरुष छायोपग समान है, ४ ॥ सू० ३ ॥

जन्म, जरा અને મરણ રૂપ અપાયોથી બચાવે છે, તે લોકોત્તર પુરુષને છાયોપગ વૃક્ષ સમાન કહી શકાય છે ॥ सू० ३ ॥



छाया—भार स्वच्छ बहमानस्य चत्वारि भाषासाः प्रहस्ताः, तद्यथा—यत्र स्वच्छ  
 अंसादस सहस्रति तत्रापि च तस्य एक भाषासाः प्रहस्ताः १, यत्रापि च स्वच्छ  
 उच्चर ना मन्त्रवण वा परिष्ठापयति तत्रापि च तस्य एक भाषासाः प्रहस्त २  
 यत्रापि च स्वच्छ नागकुमारावासे वा सुपर्णकुमारावासे वा वाससुपैति तत्रापि च  
 तस्य एक भाषासा प्रहस्तः ३, यत्रापि च स्वच्छ — यादरुषया — तिष्ठति  
 तत्रापि च तस्यैक भाषासा प्रहस्तः ४। एवमेव अमणोपासकस्य चत्वारि भाषासा  
 प्रहस्ता, तद्यथा—यत्र स्वच्छ शीलव्रतगुणव्रत — विरमणप्रत्याख्यानपोषोपवासान्  
 प्रतिपद्यते तत्रापि च तस्यैक भाषासा प्रहस्तः १, यत्रापि च स्वच्छ सामायिक

“अथ सूत्रकार सदृष्टान्त अमणोपासकको भद्रवासन देते हैं—

सूत्रार्थ—“भारं ण बहमाणसस चत्वारि भासासा पण्णसा” —इत्यादि—  
 एक स्थान से दूसरे स्थान तक भार पहुँचाने वाले पुरुषों के लिये चार  
 विभाग कहे गये हैं जैसे—बह अपने भार को जहाँ पर एक कच्चे से  
 दूसरे कच्चे पर रखता है, एक विग्राम, १ वह जहाँ—टही, या, पेशाम  
 की बाधा दूर करता है, दूसरा विग्राम २ तीसरा विभाग वहाँ कहा  
 गया है, जहाँ कि नागकुमाराऽऽवास में, या—सुपर्णकुमारावासमें वह  
 ठहर जाता है, ३ चौथा विभाग वहाँ कहा गया है जहाँ उसे भार पहुँ  
 चाने के लिये कहा गया है पहुँच कर भारको उतारेगा, ४। इसी तरह  
 से चार (आधाम ) विग्राम अमणोपासक के भी हैं—एक भाषासा वह  
 जबकि—शीलव्रत, गुणव्रत विरमण, अनर्थदण्डविरमण प्रत्याख्यान,  
 और—पोषोपवास को स्वीकार करता है, १ दूसरा विग्राम वह कहा

रहे सूत्रकार दृष्टान्त द्वारा अमणोपासकने भाषासन दे छे—

‘ भार ण बहमाणसस चत्वारि भासासा पण्णसा ’ इत्यादि—

सूत्रार्थ—जैसे स्थानेकी जीने स्थाने भार वहन करीने छे वतार पुत्र्य भाटे  
 चार विभागस्थान कथा छे पड़ेहो विग्राम ते छे के न्यां ते पोताना भार  
 (बिना) ने जेके जला परभी जीला जला पर भूके छे जीने विग्राम ते  
 छे के न्यां ते ज्यज पेशाज रूप पुत्रती काजत इर करी शके छे नीने  
 विग्राम जे छे के न्यां नागकुमारावास ज्यवा सुपर्णकुमारावास रूप केछ  
 स्थानमां ते बायो समय बाणी ज्य छे बायो विसाभि जे छे के न्यां ते  
 जाने पडेगाजानो डोव त्या पडेगीने जालने कापमने भाटे जला परभी  
 उतारी नाजे छे

जे ४ प्रभाजे अमणोपासकने भाटे पण्ण चार विभागस्थान (भाषासा)  
 कथां छे—(१) शीलव्रत गुणव्रत अनर्थदण्ड विरमण, प्रत्याख्यान जने पोषो  
 पवास ब्रह्मण कथा रूप पड़ेहो विभागस्थान समर्थव (२) सामायिक, देशा

देशावकाशिकं सम्यगनुपालयति तत्रापि च तस्यैक आश्वासः प्रज्ञप्तः २, यत्रापि च खलु चतुर्दशष्टम्बुद्विष्टयोर्णमासीषु प्रतिपूर्णं पौषधं सम्यगनुपालयति तत्रापि च तस्यैक आश्वासः प्रज्ञप्तः ३, यत्रापि च खलु अपश्चिममरणान्तिकसलेखनाजो-  
पणाजुष्टो भक्तपानप्रत्याख्यातः पादपोषगतः कालमनवकाङ्क्षन् विहरति तत्रापि च तस्यैक आश्वासः प्रज्ञप्तः । सू० ४ ।

टीका—“ भारं णं ” इत्यादि—भारं धान्यादीनां वहमानस्य—एकस्मात् स्थानादपरस्थानं प्रापयतः पुरुषस्य आश्वासा-विश्रामाः चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तत्तथा—यत्र—यस्मिन्नवसरे, 'खलुः' वाक्यालङ्कारे सर्वत्र अंसात्—असं एकस्मात् स्कन्धात् अपरंस्कन्धं संहरति—भारं प्रापयति, तत्रापिच—स्कन्धात्, स्कन्धान्तरे भारस्य नयनावसरेऽपि च तस्य—भारवाहकस्य एकः—प्रथम, आश्वासः प्रज्ञप्तः

गया है जबकि सामाधिक देगावकाशिक का सम्यक् रीतिसे वह—पालन करने लगता है, २ तीसरा विश्राम उसका वह कहा गया है जब वह चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, और—पूर्णिमा तिथियों में पौषध का पूर्ण रूप से पालन करता है, ३ तथा चौथा आवास वह कहा गया है जब वह मरणकाल सम्बन्धिनी अपश्चिम संलेखना को धारण कर लेता है भक्तपान का प्रत्याख्यान कर देता है. और—अपने काल की आकाङ्क्षा रहित हुवा पादपोषगमन “संधारा”—वाला होता है, ४

टीकार्थ—दृष्टान्तमें आये भारवाहकके विश्राम जैसा श्रमणोपासकके चार आवासका तात्पर्य है कि—जो व्यक्ति साधुजनों की सुश्रूषा करता है वह सेवक श्रमणोपासक कहलाता है, जिस प्रकार भारवाहक भारसे अक्रान्त रहता है उसी प्रकार श्रमणोपासक भी सावद्यव्यापार रूप से अक्रान्त होता है। भारवाहक भार को निश्चित स्थानपर पहुँचाने

पकाशिकनु सम्यक् रीते पालन करवुं ते णीने विश्राम छे (३) आठम, चौदश, पूर्णिमा अने अमावास्यानी तिथियोमा पौषधमतनु सारी रीते पालन करवुं ते त्रीने विश्राम छे (४) मरणकाल नष्टक आवता अपश्चिम सलेखना धारण करनी, आहार पाणीना प्रत्याख्यान करवा, अने मृत्युनी आकांक्षा राण्या विना पादपोषगमन संधारे करवा इप ये थे विश्राम समजवे।

टीकार्थ—दृष्टान्त सूत्रमा दर्शाववामां आवेला भारवाहकना चार विसामा नेवा श्रमणोपासकना पण्य चार विसामा कहां छे ने व्यक्ति श्रमणोनी सुश्रूषा करे छे तेने श्रमणोपासक कहे छे नेम भारवाहक भारथी अकाल रहे छे ओ न प्रमाणे श्रमणोपासक पण्य सावद्य व्यापार इप भारथी अकाल होय छे. नेम

१। यत्रापि च उच्चारं वा प्रसङ्गण वा परिष्ठापयति-निवारयति, तत्रापि च तस्य एकः-प्रपरो द्वितीय इत्यर्थः, आश्वासः प्रसङ्गः २। यत्रापि य 'नागकुमारावासे वा सुवर्णकुमाराऽऽवासे वा' अत्र नागकुमाराऽऽवास-सुवर्णकुमाराऽऽवासयोरुपलक्षणतयाऽप्येऽपि देवावासा गृह्यन्ते, तेन - नागसुवर्णकुमारादिदेवविशेषस्य आवास-स्थाने इत्यर्थः, वासम् उपैति=माप्नोति, तत्रापि च तस्यैकः-अन्यस्त्वृतीय इत्यर्थः, आश्वासः प्रसङ्गः ३, यत्रापि च स्थाने तत्र आपद्दयया-प्रापनम् आप' प्रापण तस्य कथा, तथा मारस्यामिना मारमापमपिपय यस्य स्थानस्य निर्देशः कृतस्तदनुसारेण मारवाहको मारमत्तार्यं सिन्धवि-स्थितो भवति तत्रापि च तस्य एक-अरमत्तुर्थ इत्यर्थः आश्वासः प्रसङ्गः । यद्वा- 'यावत्कथया' इति श्रुत्या, यावत्-यस्परिमाणस्य स्थानस्य कथा कृता-कथनं कृतं मारस्यामिना, तदनुसारेण च यत्र मारं स्थापयतीत्यादि पूर्ववद्बोध्यम् ४। इति ।

इति इष्टान्तमूत्रम् ।

अथ दार्ष्टान्तिकमूत्रम्—

“ एवामेवे ”—स्यादि - एवमेव=मारवाहकस्याऽऽवासत्रदेव, भ्रमणोपासकस्य-भ्रमणानां-साधूनाम् उपासक -सेवकः भ्रमणोपासकाः=भाषकाः, तस्य सावध्यापारमाराऽऽक्रान्तस्य आश्वासा-वद्विमोचनेन विधामाः-विचित्रमाधिरूपा चत्वारः प्रकृताः । अयं भाषा-भ्रमणोपासको विनाऽऽज्ञानसम्बन्धविमलीकृतबुद्धि तथा ' नरकनिगोशदि विविधदुःखपरम्पराजनकाचारम्परिग्रहो हेयाविति

तक के सिलसिले में पीछे पीछे में विभ्रान्ति लेना चलना है, उसी प्रकार भ्रमणोपासक भी सावध व्यापार को छोड़ने के लिये उमका परित्याग करने के लिये अपने त्याग को उत्तरोत्तर बढ़ाता है उस यही इसका विधाम है। विधाम बिना समाधि रूप होता है, यद्यपि-भ्रमणोपासक जिनागम के सम्बन्ध से, गुर्वाधिकों के सदुपदेशोंसे निर्मल बुद्धि होकर ' आरम्भ '-और परिग्रह नरक निगोश आदि विविध दुःख परम्परा का जनक है, देख ली रहा हू-आरम्भ, परिग्रहों से अभी तक अकल्याण

मारवाहक मारने निश्चित स्थाने पहुँचाइता सुभीमां वश्ये वश्ये विद्यामा देतो रडे छे जे अ भ्रमणो भ्रमणोपासक पक्ष सावध पापाराने छोड़वाने भटे-तेमने परित्याग करवाने भाटे भीरे भीरे त्यागनी मात्रा वधारतो जाय छे जस जेतेना विधाम छे विधाम जित्तसमाधि रूप होय छे जे के भ्रमणोपासक जिनागमना सम्बन्धी, अरु आदिना सदुपदेशोभी जेहु तो सम्बन्ध शके छे के ' आरम्भ' अने परिग्रह नरक निगोश आदि विविध दुःख परपसना जनक छे आरम्भ परिग्रह आदिने कारणे कछु सुभी माह अथ

જાનન્નપિ દુર્દમેન્દ્રિયમટપટલચીભૂતસ્તત્ર પ્રવર્તમાનઃ સમય સન્તાપકલાપમ્ભુવૈતિ,  
માવયતિ ચૈત્રમ્—

“ હિયમ્ જિગાણં આણા, ચરિયં મહ્ એરિસં અપુન્નસ્સ ।

એયં આલપ્પાલ, અવ્વો ? દુરં વિસંત્રયમ્ । ૧ ।

હયમમ્હાણં નાણં, હયમમ્હાણં મણુસ્સમાહપ્પ ।

જે કિલ્લ લઢ્ઢવિવેયા, વિવેદ્ધિમો વાલવાલવ્વ । ૨ ।

હી હોતા ચલા આ ગ્હાહે, કલ્યાણાભિલાષી મેરે લિયે અવજ્ય હેવ ત્યાજ્ય  
હૈ, એસા જાન લેના હૈ । તથાપિ-દુર્દમ ઇન્દ્રિય સમૂહ રૂપ નટો સે વચ્ચી  
શૂન હોકર પ્રવૃત્ત તો હોતા હૈ ફિર ઓ આસક્તિ સે નહીં, કિન્તુ-ગરમ  
લોહેકા તવાજો પકડનેકે લિયે જૈસે ડરતા ડરતા અપની પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ ।  
ઉસ પ્રવૃત્તિ મેં મોદ યુક્ત નહીં હોતા હૈ । કિન્તુ-પશ્ચાત્તાપ હી કરતા હૈ  
વ્યોકિ-ઉસકી વિચારધારા ઉસ સમય એસી હો જાતી હૈ—

“ હિયમ્ જિગાણં આણા ”—ઈત્યાદિ

અરે ? મેં કિતના નાસમદ્ધ હું જો મેરે હૃદય મેં જિનેન્દ્રદેવ કી  
આજ્ઞા વિરાજિત હોને પર ઓ મેરા ચરિત્ર-રહન સહન એસા વન રહા  
હૈ. મેરા યહ્ જ્ઞાન કિસ કામક્રા જય કિ જ્ઞાનકે રહને પર ઓ મેરા  
મનુષ્યભવ મેરે હાથોં નષ્ટ કિયા જા રહા હૈ, મેં તો-સર્વથા અજ્ઞાની  
જૈસા હી અપની પ્રવૃત્તિ કરને મેં અભી તક લગા હુવા હું, ડસ પ્રકાર

વ્યાણુ જ થતું રહ્યું છે કલ્યાણની અભિલાષા રાખના એવા મારે માટે તો  
તે અવશ્ય હેય ( ત્યાજ્ય ) છે ” છતાં પણ દુર્દમ ઇન્દ્રિય સમૂહ રૂપ લટોથી  
પરાસ્ત થઈને તેમાં પ્રવૃત્ત તો થાય છે. પરન્તુ તેમાં આસક્ત થઈને પ્રવૃત્તિ  
કરતો નથી પણ ગરમ લોઢાના તવાને પકડવાની જેમ ડરતા ડરતા પોતાની  
પ્રવૃત્તિ કરે છે. તે પ્રવૃત્તિથી આનંદ પામતો નથી, પણ તેના હૃદયમાં પશ્ચા-  
ત્તાપ જ કર્યા કરે છે, કારણ કે તે સમયે તેની વિચારધારા આ પ્રકારની હોય છે—

“ હિયમ્ જિગાણ આણા ” ઇત્યાદિ—

“ અરે ! હું કેવો અણુસમજુ છું કે મારા હૃદયમાં જિનેન્દ્ર દેવની  
આજ્ઞા વિરાજિત હોવા છતાં પણ મારું ચારિત્ર અને રહેણીકરણી આ પ્રકાર-  
ના બની ગયાં છે. મારું આ જ્ઞાન શા કામનું છે ? કારણ કે આ જ્ઞાન  
હોવા છતાં પણ હું મારો મનુષ્ય ભવ મારે હાથે જ ફેાગટ ગુમાવી રહ્યો  
છું ? હું તો ખિલકદ અજ્ઞાની હોઉં એવી રીતે મારી પ્રવૃત્તિમાં હજી સુધી  
લીન રહ્યા જ કરું છું. ” આ પ્રકારની ભાવનાથી ઓતપ્રોત થયેલા તે શ્રમ-

छाया—“ इत्ये जिनात्मज्ञा चरित्र ममेदंशमपुण्यस्य ।

एतदालप्यासम् अन्वो ( भद्रो-आभय ) दूर विसर्दति । १ ।

इतमस्माकं शानं इतमस्माकं मनुष्यमाहात्म्यम् ।

यत् किल लम्बविवेका विचेष्टामहे बालवासा इव । २ । ” इति,

इत्य भावयतस्त्वस्य चरित्तर आभासा भवन्तीति । तद्यथा-यत्रापि स्वच्छ-  
यस्मिन्नवसरे श्रीलघ्नत-गुणघ्न-विरमण-प्रत्याख्यान-पोषपोषवासान्-तत्र श्रीलं-  
घिससमाधिक्य, घ्नानि-स्थूलप्राणातिपात-विरमणादीनि पञ्च गुणघ्नते-दिग्घ्नो  
पभोगपरिभोगत्ररूप, विरमणम्-अनर्थदण्डविरमण रागादिविरमण वा, प्रत्या  
ख्यानानि-नमस्कारसहितानीनि पोषपोषवाप्त-अष्टम्यादिपर्वदिचसेवाहारादि  
त्यागः, एवामिदरेतत्यागद्वयः तान् प्रतिपद्यते-स्वीकरोति, तत्राग्नि-श्रील-  
घ्नतादि स्वीकारेऽपि । तस्य-भावकस्य एक आभासः प्रकृतः ।

यत्रापि च खलु सामायिकं-समा-समत्वं रागद्वेषरहितत्वेन सर्वेषु जीवेषु  
स्वममानत्वं, समशब्दस्यात्र भावमघाननिर्दिष्टत्वात्, तस्याऽऽयः-प्राप्ति समायः-

की भावना से ओतप्रोत पने हुए इस अमणोपासक के चार आवास  
होते हैं । इनमें इसका सर्व प्रथम आवास उस समय होता है जब यह  
चित्त समाधि रूप शीलको, स्थूल प्राणातिपात विरमण आदि पांच घटों  
को दिग्घ्न उपभोग परिभोग रूप गुणघ्नों को, और-अनर्थदण्ड विर  
मण रूप विरमण को, अथवा-रागादि विरमण को तथा-नमस्कार  
सहित पोषपोषवास को-अष्टमी आदि पच दिनों में आहारादि त्याग  
को स्वीकार करता है—१

द्वितीय विग्राम तय होता है, जब-यह सामायिक को, तथा-देशा  
वकाशिक को धारण कर लेता है, रागद्वेष रहित होकर सब जीवों में

लोपासना नीचे प्रभावे चार आवास ( विग्राम ) होय छे-अमणोपासकने  
सावध व्यापारना त्याग रूप पड़ेवे। विग्राम आ प्रकृतने होय छे-त्यारे ते  
चित्तसमाधि रूप शीलने, स्थूल प्राणातिपात विरमण आदि पांच घटने, दिग्  
घ्न उपभोग परिभोग रूप गुणघ्नने, अने अनर्थदण्ड विरमणरूप विरमणने,  
अथवा रागादि विरमणने तथा नमस्कार सहित पोषपोषवासाने अष्टम आदि  
पच दिनोंमें आहारादि त्यागने स्वीकार करे छे

जीने विग्राम आ प्रकृतने होय छे-त्यारे ते सामायिक तथा देशा  
वकाशिकने धारण करे छे त्यारे सावध व्यापारना त्याग रूप जीने विग्राम

પ્રવર્ધમાનશારદચન્દ્રકલાવત્ પ્રતિક્ષણવિલક્ષણજ્ઞાનાદિલાભઃ, યદ્વા - સમ - સામ્યં સમભાવજનિતઃ પ્રતિક્ષણમપૂર્વાપૂર્વકર્મનિર્જરાહેતુભૂત આન્મપરિણામઃ, તસ્ય આયો-  
લાભઃ સમાડડય', સ પ્રયોજનમસ્યેતિ સામાયિક વ્રતમ્, યદ્વા-સમસ્યાડડયો  
યસ્માત્ તત્ સમાય તદેવ સામાયિકમ્, તત્ યત્ર સ્થિતઃ શ્રાવકઃ શ્રમણભૂતો ભવતિ,  
તત્ સાવધયોગપરિવર્જનનિરવધયોગપ્રતિસેવનલક્ષણં સામાયિકમુચ્યતે । ઉક્તંચ-

“ સામાયિકં ગુણાનામાધારઃ સ્વમિત્ત સર્વભાવાનામ્ ।

ન હિ સામાયિકહીનાશ્રવણાદિગુણાન્વિતા યેન । ૧ ।

તસ્માજ્જગાદ ભગવાન્ સામાયિકમેવ નિરૂપમોપાયમ્ ।

શરીરમાનસાનેકદુઃખનાશસ્ય મોક્ષસ્ય । ૨ ।” ઇતિ,

સામાયિકવિવરણં વિસ્તરત ઉપાસકદશાઙ્ગમૂત્રસ્યાસ્મત્કૃતાગાર-ધર્મસંજીવની  
ટીકાતોડવસેયમ્ ।

અપની સમાનતા કી ભાવના કા નામ સમ હૈ, સમ શબ્દ ભાવપ્રધાન હૈ,  
સમ પ્રાપ્તિ સમાય હૈ । યહ-સમાય પ્રવર્ધમાન શરચન્દ્ર ચાન્દની જૈસા  
પ્રતિક્ષણ વિલક્ષણ જ્ઞાનાદિ કા લાભ રૂપ હોતા હૈ ।

અથવા—સમનામ, સામ્ય કા હૈ, યહ-સામ્ય સમભાવ જનિત-  
આત્મપરિણામ હૈ, ઓર-યહ પ્રતિપલ અનિર્વચનીય કર્મનિર્જરાકા હેતુ  
હોતા હૈ, હમ સમકા જો આય-લાભ હૈ વહ સમાય હૈ યહ સમાય  
જિસકા પ્રયોજન હૈ વહ સામાયિક હૈ । અથવા-સમકા લાભ જિસસે  
હોતા હૈ વહ-સમાય હૈ, યહ-સમાય હી સામાયિક હૈ । હમ સામાયિક  
મેં સ્થિત શ્રાવક શ્રમણ સમાન હોતા હૈ, કયોંકિ-સામાયિક વ્રત સાવધ  
યોગકા પરિવર્જન-ઓર નિરવધ યોગકા પ્રતિ સેવનરૂપ હોતા હૈ । કહા  
મી હૈ—‘સામાયિકં ગુણાનામાધાર’-ઈત્યાદિ, હમ સામાયિક કા

પ્રાપ્ત થાય છે રાગદ્વેષથી રહિત થઇને સમસ્ત જીવો પ્રત્યે સમાનતાની ભાવના  
રાખવી તેનું નામ ‘સમ’ છે ‘સમ’ શબ્દ ભાવપ્રધાન છે સમ પ્રાપ્તિનું  
નામ ‘સમાય’ છે તે સમાય પ્રવર્ધમાન શરદ્ ચન્દ્રની ચાન્દની સમાન પ્રતિ-  
ક્ષણ વિલક્ષણ જ્ઞાનાદિના લાભરૂપ હોય છે અથવા ‘સમ’ એટલે ‘સામ્ય’  
તે સામ્ય સમભાવ જનિત આત્મપરિણામ છે, અને તે પ્રતિપલ અનિર્વચનીય  
કર્મનિર્જરાના કારણ રૂપ બને છે. આ સમનો જે આય (લાભ) છે તેનું નામ સમ ય  
છે આ સમાય જેનું પ્રયોજન છે, તે સામાયિક છે અથવા સમનો લાભ જેનાથી થાય  
છે તે સમાય છે, અને તે સમાય જ સામાયિક છે આ સામાયિકની આરાધના  
કરનો શ્રાવક શ્રમણ સમાન હોય છે, કારણ કે સામાયિક ત્ર સાવધયોગના  
પરિવર્જન રૂપ અને નિરવધ યોગના પ્રતિસેવન રૂપ હોય છે કહ્યું પણ છે  
કે—“સામાયિક ગુણાનામાધાર” ઈત્યાદિ આ સામાયિકનું વિશેષ વિવરણ

तथा-देशावकाशिक-देशे दिग्गतगृहीतस्य दिग्परिमाणस्य विभागे अवकाशो-  
ऽवम्भान विषयो यस्य तद्देशावकाश, तदेव देशावकाशिक, तत् दिग्गतगृहीतस्य  
दिग्परिमाणस्य प्रतिदिन सप्तकरणनक्षत्र सर्वघट-सप्तकरणनक्षत्र वा सम्पक्-  
साधनतया अनुपालयति, तथापि च=सामायिकदेशावकाशिकानुपालनेऽपि च  
तस्य एक आश्वासः महत्तः २

यथापि च चतुर्दश्यष्टम्युद्दिष्टौर्णामामीषु-चतुर्दशी, अष्टमी, उरिष्ठा=अमावास्या  
पौर्णमासी-पूर्णिमा, एतासु तिथिषु प्रतिपूर्णे-सम्पूर्णमहोरात्र पोषध सम्पगन्तुरा  
लपति, तथापि-चतुर्दश्यादितिथिषु प्रतिपूर्णेपोषधानुपालनेऽपि च तस्यैक आश्वासः  
महत्तः ३।

यथापि च खलु धमणोपामक अपश्चिममरणान्तिरुसलेखना जोषणाजुष्ट -  
पश्चाद्-भक्ते मत्ता पश्चिमा न विद्यते पश्चिमा-अन्तिमा यस्या सा अपश्चिमा=  
सा चामौ मरणातिरुसलेखना-मरणात्तमीरवर्तिनपोविशेषः, तस्या जोषणा-सेयन  
तथा जुष्ट-सेवितः-युक्तो वा, जुष्टा अपश्चिममरणान्तिरुसलेखनाजोषणा येन  
स तथा, कान्तस्याप्र परनिपातः। तथा-भक्तपानप्रत्याख्यातः-प्रत्याख्याते-

विशेष विवरण मने उपासक द्वाङ्ग सूत्रकी अगार मजीबनी टीका में  
लिखा है वहाँ देखें। दिग्घन में की गई दिशाओं में आने जाने की  
मर््यादा को प्रतिदिन सक्षिप्त करना, अथवा-सर्व घटोंको सक्षिप्त करना  
इसका नाम-देशावकाशिक घट है, इस सामायिक पय-देशायकाशिक  
घट को सम्पक् रूप से पालना द्वितीय आषाढ विध्राम स्थान कहा गया  
है, २। जहाँ-चतुर्दशी, अष्टमी आदि पर्यतिथियों में सम्पूर्ण अहोरात्र  
का जो पोषध घट पालन किया जाता है वह-उपासक का तीसरा  
आषाढ-विध्रामस्थान है, ३ जहाँ धमणोपामक अपश्चिम-सर्वान्तिम-  
मरणान्तिक सलेखना रूप तप विशेष का प्रीतिपूर्वक सेवन करता है,

उपासकदशात्र सूत्रकी अगारसलेखनी टीका में लिखे हुए हैं तो त्योंही  
वांछी हेतु अत्रुक्त निमत दिशाओं अथवा अथवा अथवा प्रतिदिन सक्षिप्त  
करनी अथवा सब मनेने सक्षिप्त करवाते नान देशावकाशिक घट है आ  
सामायिक अने देशावकाशिक घटनुं सम्पक् रीते पालन करवुं जेने अ लीगु  
विध्रामस्थान कहें है धमणोपामकनुं विध्रामस्थान-अहम यौदश अ द्वि पर्व  
तिथिजोभां अ पूष अहोरात्र ( दिनरात) त्नुं जे पोषधघन करवाभां आवे है  
ते तेनुं त्रीगु विध्रामस्थान है (४) अपश्चिम ( अन्तिम )-मरणान्तिक सले  
अना ३५ तपविशेषनुं प्रतिपूर्वक सेवन करवुं, थारे प्रकारना आचारना परि

त्यक्ते भक्तपाने येन स तथा-त्यक्तभक्तपान इत्यर्थः, अत्रापि क्तान्तरय परप्रयोगः ।  
 तथा-पादपोषणतः-पादपो-वृक्षः स इव निर्व्यापारतया उपगतः-पादपोषणमन-  
 नामकानशनविशेषं प्रतिपन्नः, तथा कालं-मरणकालम्-अनवकाङ्क्षन्-अनभिल-  
 षन्, विहरति-सर्वतो निवृत्तस्तिष्ठतीति भावः, तत्रापि च तस्य एक आश्वासः  
 प्रज्ञप्तः ४। ( सू० ४ ) ।

पुनः पुरुषविशेषं निरूपयितुमाह—

मूलम्—चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा-उदिओदिष्  
 णाममेगे १, उदिवत्थमिष् णाममेगे २, अत्थमिओदिष् णाम-  
 मेगे ३, अत्थमियत्थमिष् णाममेगे ४। भरहे राया चाउरंत-  
 चक्कवट्ठी णं उदिओदिष् १, बंभदत्ते णं राया चाउरंतचक्कवट्ठी  
 उदिअत्थमिष् २, हरिणसबले णाममणगारेणं अत्थमिओदिष्  
 ३, काले णं सोयरिये अत्थमिअत्थमिष् ४। सू० ५ ।

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-उदितोदितो नामैकः  
 १, उदितास्तमितो नामैकः २, अस्तमितोदितो नामैकः ३, अस्तमितास्तमितो  
 नामैकः ४; भरतो राजा चातुरन्तचक्रवर्ती खलु उदितोदितः १, ब्रह्मदत्तः खलु

तथा-भक्त पानका प्रत्याख्यान करता है, एवं-मरणाशंसा रहित हो  
 कर पादपोषणन नामक अनशन विशेष को सर्वतोभाव से धारता  
 है वह-श्रमणोपासकका चौथा आवास विश्राम स्थान है ॥ सू० ४ ॥

“ पुनः पुरुष विशेषका निरूपण—

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि— ५

सूत्रार्थ—चार पुरुषजात कहे गये हैं, जैसे-प्रथम उदितोदित १ उदितास्त-  
 मित-२ अस्तमितोदित-३ और-अस्तमितास्तमित-४ ।

त्याज पूर्वक भरथुनी आकाक्षाथी रडित गनीने पादपोषणमन नामना संथारानु  
 सर्वतो भाव पूर्वक आराधन करतु, ते श्रमणोपासकनु येथु विश्रामस्थान छे ॥ सू० ४ ॥

पुरुष विशेषनु सूत्रकार निरूपणु करे छे—

‘ चत्वारि पुरिसजाया ’ इत्यादि—( सू. ५ )

सूत्रार्थ—चार प्रकारना पुरुषो कहे छे—(१) उदितोदित (२) उदितास्तमित (३)  
 अस्तमितोदित



राजा चातुरन्तचक्रवर्ती उद्वितास्तमितः २, हरिकेशचलो नामानगरं स्वच्छ अस्तमितोदित ३, कामः स्वच्छ सौकरिक अस्तमितास्तमित । (सू० ५) ।

टीका—“ चचारि पुंसिप्राया ” इत्यादि-स्पष्टम्-नवरम्-एक पुरुष उद्वितोदितः-पूर्वमुदित - उत्तमकुलवत्ससमुद्धिपुण्यकर्मादिमिरभ्युदय प्राप्तः पश्चादपि उदित -अमन्दानन्द सन्दोहरूपमोक्षोदयं प्राप्त उद्वितोदितः, एतद्वत् पुरुषमुदाहरति-‘ मरहे राये ”-त्यादि-यथा-चातुरन्त-चक्रवर्ती-चत्वारः-द्विस्तये समुद्राः एकस्यां हिमवांश अन्ता -अवधयो यस्याः सा चातुरन्ता पृथिवी,

चातुरन्त चक्रवर्ती भरत नरेश उद्वितोदित ये, १ चातुरन्त चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त उद्वितास्तमित ये, २ हरिकेश नामके अनगर अस्तमितोदित ये, ३ एव-सूकरका शिकार करनेवाला कालसौकरिक अस्तमितास्तमित था, ४ ।

टीकार्थ-इस सूत्रद्वारा जो चार प्रकारके पुरुष कहे गये हैं, उनके सम्बन्ध में स्पष्टीकरणयों हैं-कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो-उत्तम कुल में जन्म लेना, बल समुद्धि से सम्पन्न होना, तथा पुण्यकर्मादिका अनुभव करना आदि अभ्युदय को पहले से जन्म से ही प्राप्त करता है, और बाद में भी वह अस्यन्न आनन्द समूह अक्याबाध-मोक्षोदय को प्राप्त कर लेता है, इस प्रयत्न में चातुरन्त चक्रवर्ती अथ अमन्दानन्द भरतराजा हुये हैं। तीन दिशाओं में समुद्र और एक दिशा में हिमवान् ये चार जिसके अन्त हैं अवधिर्था हैं, ऐसी चातुरन्ता पृथिवी का जो स्वामी हों वे चातुरन्त हैं, तथा चक्रसे छम्बड में वर्तन करना (राजकरना)

चातुरन्त चक्रवर्ती भरतराज उद्वितोदित इत्या चातुरन्त चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त उद्वितास्तमित इत्या हरिकेश नामना अन्तर अस्तमितोदित इत्या, अने सुवर्णे शिकार करनेपर कालसौकरिक अस्तमितास्तमित इत्या,

या चार प्रकारना पुरुषोर्णु स्पष्टीकरणे या प्रमाणे समञ्जसु —

(१) उद्वितोदित—कौं अने पुरुष जेवो होय ते ते जे उत्तम कुलमां जन्म ले ते अग समुद्धि आदिधी सफलता पुण्यकर्माने अतएव आदि अमुदय के मधी के प्राप्त करे ते अने या अनुभवलेतु आमुषे पूई करीने अत्यन्त आनन्ददायक अन्धात्राध भोक्षोदयने पक्ष प्राप्त करे ते चातुरन्त चक्रवर्ती अमन्दानन्द भरत राजने या प्रकारना पुरुष कही शक्य वक्षु दिशा जेमां समुद्र अने जे दिशाभां हिमवान् पर्वत या चार जेतां अन्त (अवधि-इह) होय ते जेवी चातुरन्त पृथ्वीने जे स्वामी होय तेने

अयं (स्वामी) चातुरन्तः, स चासौ चक्रवर्ती—चक्रेण सह वर्तत इत्येवंशिलश्चक्रवर्ती  
च चातुरन्तचक्रवर्ती भरतः—ऋषभनन्दनः प्रसिद्धो राजा खलु उदितोदितोवोध्यः १।

तथा—एकः पुरुषः उदितास्तमितः—उदितश्चासावस्तमितश्च तथा=पूर्व सूर्य  
इवोदितः पश्चात् सकलसमृद्धिभ्रष्टत्वाद् दुर्गतिप्राप्तत्वाच्च अस्तमितो भवति ।  
यथा—ब्रह्मदत्तश्चातुरन्त द्वादश चक्रवर्ती राजा, स हि पूर्व सुकुलोत्पन्नत्वादिना निज-  
बाहुबलोपार्जितमहासाम्राज्यत्वेन चाभ्युदितः पश्चाच्चानुचितकारणज्जातकोप  
ब्राह्मणप्रयुक्तपशुपाल प्रक्षिप्तधनुर्गोलिकाघातभग्ननेत्रगोरुकत्वेन कालधर्मप्राप्त्य-  
नन्तरं सप्तमनरके प्रतिष्ठानाख्यनरकावासस्य महातीव्रवेदनानुभवेन चास्त-  
मित इति २।

जिसका स्वभाव हों वे चक्रवर्ती हैं, ऐसे चातुरन्त चक्रवर्ती ऋषभदेव तीर्थ  
करके पुत्र राजा भरत उदितोदित कहे गये हैं । तथा—कोई एक पुरुष  
ऐसा होता है जो उदितास्तमित होता है पहले वह सूर्य जैसा उदित  
होता है—पश्चात्—सकल समृद्धि से भ्रष्ट होजाने से और दुर्गतिमें  
पतित होने से अस्तमित हो जाता है—२ ऐसा चातुरन्त चक्रवर्ती ब्रह्म-  
दत्त हुवा है, यह पहले अच्छे कुलमें उत्पन्न हुवा, वहाँपर उसने  
अपने बाहुबल प्रतापसे षट् खण्डका महान् साम्राज्य स्थापित कर लिया,  
चक्रवर्ती बन गया, पश्चात् किसी अनुचित निमित्तवश उत्पन्न कोपसे  
युक्त हो गया, इत्यादि और सब कथन इसकी कथामें निषद्ध हैं ।  
बादमें यह मर कर सप्तम नरकमें अप्रतिष्ठान नामक नरकावासकी  
महा तीव्र वेदनाको अनुभव करता करता अस्तमित हो गया । इस

आतुरन्त कहे छे अकथी वर्तन करवाने जेना स्वभाव डोय तेने अकवती  
कहे छे. जेवा आतुरन्त अकवती ऋषभदेव तीर्थ करना पुत्र राजा भरतने उदि-  
तोदित कहेवाभा आवेल छे.

(२) उदितास्तमित पुरुष—डोय पुरुष पडेलां सूर्य जेवो उदित अथवा  
अभ्युदय स पत्र डोय छे, पणु पाछणथी सकण समृद्धि शुभावी जेसवाथी  
अने दुर्गतिभा जवाथी अस्तमित (अभ्युदयविहीन) थछ नय छे. आतुरन्त  
अकवती ब्रह्मदत्त राजने आ प्रकारभा गणुावी शकय. पडेलां तो ते सारा  
कुणभा उत्पन्न थये हुतो तेजे पोताना आहुणजना प्रतापथी छ अउनु महान्  
साम्राज्य स्थाभ्यु—अकवती थछ गये। त्पार आह डोय अनुचित निमित्तथी,  
उत्पन्न थयेला डोधने अधीन थये, इत्यादि कथन तेनी कथामाथी जणुी लेवु.  
त्पार आह ते मरीने सातरी नरकना अप्रतिष्ठान नामना नरकवासभा उत्पन्न  
थछने मडा तीव्र वेदनाने अनुभव करवा जाये। आ रीते ते अस्तमित थछ

તથા—પુરુષઃ અસ્તમિતોદિત્—અસ્તમિતશ્વાસાવુદિતશ્ચ તથા—પૂર્ણે હીન કુલોત્પન્નસ્ત્વ—કુર્મગત્વાદિનામ્સ્તમિતઃ—અવનતઃ, પશ્ચાત્ સમૃદ્ધિસુકીર્તિસુમતિ સામાદિનોદિતો મન્વતિ, યંયા—હરિકેશબલઃ—તદામ્બ્યઃ અનગારઃ—સાધુરમ્ભૂત, ઇદિ જન્માન્તરોપામિતનીચગોષ્ઠર્મમાપ્ત્વામ્બાલકુલસ્ત્વેન દૌર્ભોગ્યદારિદ્ર્યા કુલસ્ત્વેન શાસ્તમિતોઽપિ પશ્ચાત્ પ્રવ્રજિતો નિશ્ચલધરણગુણવક્ત્રીકૃતદેવસ્ત્વેન પ્રસિદ્ધિ સુગતિશામેન નોદિતોઽમ્ભૂત ૧૩।

તરહ ઇવિત શ્લોકર અસ્તમિત હોનેવાલા પ્રાણી હસ દ્વિતીય મજ્જમે પરિ ગણિત હોતા હૈ । હસ કપાકો વિસ્તૃત રુપમે મૈને ઉત્તરામ્બ્યવનની પ્રિય દર્શિની ટીકાકે ૧૩થે અધ્યન ૭૨૫ પૃષ્ઠમે લિહ્લાહૈ વહાં દેખ્વલે । કોઈપક પુરુષ ઁસા હોના હૈ ઓ પહલે હીન કુલમે ઉત્પન્ન હુવા કુર્મગત્વ—કુર્મ ત્યાદિમે અસ્તમિત રહા પાદ મે સમૃદ્ધિ—સુગતિ—સુકીર્તિ લામસે ઉદિત હો જાના હૈ, જૈસે—હરિકેશબલ અનગાર । હસને જન્માન્તરમે ઉપા મિત કમોદયસે શાળદાલ કુલમે જન્મ લિયા ઓર દૌર્ભોગ્ય દારિદ્ર્યાદિસે આકુલ રહા પાદમે પ્રવ્રજિત હોકર શારિત્ર આરાધનાની જિસસે મરણકા લમે કાલકર દેશપર્યાય સે ઉત્પન્ન હુવા । યહ શારિત્ર ૩ કે ચારહથે અમ્બ્યવન મે કથિત હૈ ઁસા વ્યક્તિ અસ્તમિતોદિત કહા ગયા હૈ ૩।

અર્થા. આ રીતે ઉદિત યપ્તિ અસ્તમિત યતા ઇવનું આ બીજા કામમાં પ્રતિ પાદન કરવામાં આવ્યું છે પહેલાં અભ્યુદય અને પછી પતન પામતાં પુરુષના આ ભાંજામાં સમાવેશ થાય છે પ્રજાદત્તની કથા ઉત્તરામ્બ્યવનની પ્રિયદર્શિની ટીકાના ૧૩ માં અમ્બ્યવનના ૭૨૫ માં પાન્ય પર આપી છે તેા ત્યાંથી તે વાંચી લેવી.

(૩) અસ્તમિતોદિત પુરુષ—કોઈ એક પુરુષ પહેલાં કુર્મગતિમાં હોય અને ત્યાંથી હીનકુલમાં ઉત્પન્ન થાય અને ત્યારબાદ સમૃદ્ધિ, સુકીર્તિ, અને સુગતિ પામે તેા એવા પુરુષને આ પ્રકારમાં મળાવી શકાય છે એવો પુરુષ પતનના પંચ તરકથી ઉત્થાનને પમે વળે છે હરિકેશબલ અલગાર આ પ્રકારના પુરુષ યપ્તિ અર્થા. તેમને જ માન્તરમાં ઉપજિત પાપકર્મોના ઉદ્ધથી આકાશ કુળમાં જ મ લીપા હનેા, તેઓ અતિશય દારિદ્ર્યથી પીડાતા હતા તેમ ત્યારબાદ પ્રવ્રજ્યા અગ્નિકાર કરીને શારિત્રારાધના કરીને મનુષ્યભવનું આયુ પૂર્ણ કરીને તેમની પશ્ચિ ઉત્પન્ન થા જ્યા તેમની કથા પણ અન્ય ધન્યોમાંથી વાંચી લેવી એવા પુરુષને 'અસ્તમિતોદિત' કહે છે

तथा—एकः पुरुषः अस्तमितास्तमितः—अस्तमितश्चासावस्तमितस्तथा= पूर्वमधार्मिकाधर्मानुरागाधर्मसेव्यधर्मिष्ठाधर्माख्यायधर्मराग्यधर्मप्रलोक्यधर्मजौत्रि दुष्कुलोत्पन्नत्व सावध व्यापारस्वादिना कीर्तिसमृद्धिरूपतेजोरहितत्वात् सायंकालसूर्यइवास्तमितः पश्चादपि दुर्गतिगमनादस्तमितो भवति, यथा— निश्शीलो निर्मर्यादो निष्ठुरो निष्करुणः कालः—तदाख्या सौकरिकोऽस्तमितास्तमितोऽभूत्, स हि सूकरैश्वरतीति सौकरिकः—सूकरमृगयाकारीति यथार्थे प्रति दिने पञ्चशतमहिषघातको दुष्कुलोत्पन्नत्वात् सकललोकनिन्दितत्वात् अकृत्यकारित्वाच्च पूर्वमस्तमितः पश्चादपि मृत्ना सप्तमपृथिवी गत इति अस्तमित इति । ४ । ( सू० ५ ) ।

तथा कोई एक पुरुष अस्तमित होकर अस्तमितही बना रहता है, ऐसा पुरुष अधार्मिक अधर्मरागी—अधर्माख्यायी—अधर्मानुष्ठाता—अधर्म जीवी होता है और सर्वदा सावधव्यापारसे कीर्ति—समृद्धिरूप—तेजोरहित बनकर सायं सूर्य के समान अस्तमित बन जाता है । और फिर बादमें भी दुर्गति गमनसे अस्तमित बन जाना है । इसमें दृष्टान्तभूत कालसौकरिक है, यह निश्शील—मर्यादारहीत था दयाहीन था सूकरकी शिकारका प्रेमी था, जोकि—प्रतिदिन पांचसौ भैसा का घात करता था, दुष्कुलोत्पन्न होनेके नति सकलजनों द्वारा निन्दित था, और अकृत्यकारी था इस कारण यह पहलेही से अस्तमित हुआ और बादमें भी मरकर सप्तम पृथिवीमें गया—अस्तमित बना रहा ॥ सू० ५

(४) अस्तमितास्तमित पुरुष—कोई एक पुरुष पड़ेला पण अस्तमित (अव्युद्यविहीन) होय छे अने पछी पण अस्तमित न रहे छे ओवो पुरुष अधार्मिक, अधर्मरागी, अधर्माख्यायी, अधर्मानुष्ठाता अने अधर्मजीवी होय छे, अने सर्वदा सावध व्यापारमा प्रवृत्त रहेवाने कारणे कीर्ति, समृद्धि, रूप अने तेज रहित न रहेवाने कारणे सायंकालिन सूर्यसमान अस्तमित न भनी जाय छे वणी भरीने दुर्गतिमा नवाने लीधे अस्तमित न आबु रहे छे कालसौकरिकने आ प्रकारमा गण्ठावी शिकार. ते नि.शील—मर्यादाविहीन हुतो. दयाहीन हुतो, सूवरना शिकारने शोणीन हुतो, ते दररोज ५०० पाठाने घात करतो हुनो, हीन कुणमा नभेदो होवार्थी सकण नने तेनी निंदा करता हुता अने अकृत्यकारी हुतो. आ रीते पड़ेलां पण ते अस्तमित हुतो अने आभी निंदणी पण ओवो न रह्यो. ते भरीने सातमी नरकमा उत्पन्न थयो, आ रीते तेणे दुर्गति रूप अस्तमिता प्राप्त करी । सू. ५ ।

ये एवं विविधप्रमाणैश्चिन्त्यन्ते ते सर्व एव जीवाश्चतुर्षु राशिष्ववतरन्तीति  
तान् पदर्शयितुमाह—

मूष्म-चत्वारि जुम्मा पण्णत्ता त जहा-कडजुम्मे १  
तेओए २, दावरजुम्मे ३, कलिओए ४। सू० ६।

छाया—चत्वारो युग्माः प्रहृष्टाः, तद्यथा—कृतयुग्मः १, ज्योत्र ३, द्वापर  
युग्मः २, कल्पयुज ४। (सू० ६)।

टीका—“चत्वारि जुम्मा” इत्यादि=युग्माः—राशिद्विधेयाः चत्वारः प्रहृष्टाः  
तद्यथा—कृतयुग्मः—चतुष्कापहारेण अपह्रियमाणश्चतुर्पर्यवसितो राशिः १। तथा—  
ज्योत्र—त्रिपर्यवसितो राशिः २, द्वापरयुग्म—द्विपर्यवसितो राशिः ३ कल्पयुजः—

इस प्रकारके विविध भावोंसे जीव यिधारे जाते हैं, ये ही सभ  
जीव चार राशिधोंमें अवतरित होतेहैं, यही पात अथ सूत्रकार प्रदर्शित  
करते हैं—“चत्वारि जुम्मा पण्णत्ता—” इत्यादि—

सूत्रार्थ—युग्म चार कहे गये हैं, एक—कृत युग्म १ दूसरा—भोज-२  
तीसरा द्वापर युग्म-३ और चौथा—कल्पयुज-४

टीका—युग्म शब्दसे यहाँ राशि विशेष गृहीतहैं, ये युग्म चार प्रकारके  
जो कहे गये हैं उसका तात्पर्य ऐसा है—जिस राशिमें चारको घटाने  
पर अन्तमें चार ही बचते हों यह कृतयुग्म रूप राशि है, जिस राशिमें  
तीनको घटाने पर तीनही बचते हों यह राशि ज्योत्र है, जिस राशिमें  
से दो को घटाने पर दोही बचें यह राशि द्वापर युग्म है, और जिस  
राशिमेंसे एकको घटाने पर अन्तमें एक ही बचता है यह—राशि कल्पयुज  
है। यहाँ गणितकी परिभाषामें युग्म शब्द से सम राशि और—भोज

विविध भावोनी अपेक्षाञ्च एवोनी प्रहृष्टा इतीने इवे सूत्रकार सधत्ता  
एवोने चार राशिज्योत्रां विभज्ज इती नाजे छे—“चत्वारि जुम्मा पण्णत्ता”  
इत्यादि—

सूत्रार्थ—युग्म चार इत्यादि—(१) कृत युग्म (२) ज्योत्र, (३) द्वापर युग्म  
अने (४) कल्पयुज

‘युग्म’ यह अर्थात् राशिद्विधेयनु चत्वार छे तेना चार  
प्रकारानु इवे स्पष्टीकरण करवायां आवे छे—जे राशिमां चारने घटाववायां अन्ते  
चार न बचे छे तेने कृतयुग्म रूप राशि इहे छे जे राशिमां त्रयने घटाव  
वायां अने त्रय न बचे छे ते राशिने ज्योत्र इहे छे जे राशिमां दोने  
घटाववायां अने दो न बचे छे ते राशिने द्वापर युग्म इहे छे जे राशिमां जोने  
घटाववायां अन्ते जो न बचे छे ते राशिने कल्पयुज इहे छे अनी यदि  
तनी परिकल्पनां युग्म य इयो सभराशि अने ज्योत्र सभयो विभज्जराशि

एकपर्यवसिती राशिः । ४ । इह गणितपरिभाषायां युग्मशब्देन समराशिरुच्यते, ओजशब्देन-तु विषमराशिः । इति सिद्धान्तः । सू० ६ ॥

उत्तराशीन् नारकादिषु निरूपयितुमाह—

मूलम्—नेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पणत्ता, तं जहा- कडजुम्मे १, तेओए २, दावरजुम्मे ३, कलिओए ४, एवं अंसुरं कुमाराणं जाव थणियकुमाराणं, एवं पुढविकाइयाणं आउकाइयाणं तेउ-काइयाणं वाउकाइयाणं सव्वेसिं जहा णेरइयाणं । सू० ७ ।

छाया—नैरयिकाणां चत्वारो युग्माः प्रद्वप्ताः, तद्यथा—कृतयुग्मः १, ज्योज २, द्वापरयुग्मः ३, कलयोजः ४ । एवमसुरकुमाराणां यावत् स्तनितकुमाराणाम्, एवं पृथिवीकायिकानामपकायिकानां तेजस्कायिकानां वायुकायिकानां सर्वेषां यथा नैरयिकाणाम् । (सू० ७)

टीका—“नेरइयाणं चत्तारि” इत्यादि-स्पष्टम् । नवरं-नैरयिकादारभ्य वैमानिक पर्यन्ताश्चद्विंशति दण्डकस्थाः सर्वेऽपि जीवाः कृतयुग्मादि श्रतुर्विधा एव भवन्ति जन्म-मरणाभ्यां न्यूनाधिकत्वसम्भवात् । (सू० ७)

शब्दसे विषम राशि कही जाती है, तथा-लोकमें कृतयुग्मादि शब्दसे तो सत्ययुग आदि युग चतुष्टय कहा जाता है । सू० ६ ॥—

अब सूत्रकार उक्त राशियोंका निरूपण नरकादिकोमें करते हैं—

“नेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पणत्ता” इत्यादि ७ ॥

नैरयिकों के चार युग्म होते हैं, कृतयुग्म-१ ज्योज-२ द्वापर युग्म ३ और कलयोज-४ इसी तरह-असुर कुमारोंसे लेकर यावत् स्तनित-कुमार तक पृथिवीकायिक-अपकायिक-तेजस्कायिक-वायुकायिकों में

कडेवाभा आवे छे, तथा लोकसा कृतयुग्म आदि शब्द द्वारा सत्ययुग आदि चार युग व अष्टयुग थाय छे ॥ सू. ६ ॥

इसे सूत्रकार उपर्युक्त राशियोंका नारकादिकोंमें निरूपण करे छे—

“नेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पणत्ता” इत्यादि—

नारकांना चार युग्म डोय छे—(१) कृतयुग्म, (२) ज्योज, (३) द्वापर युग्म अने (४) कलयोज अने प्रभाषे असुरकुमारोधी लधने स्तनितकुमारो सुधीना, पृथिवीकायिक, अपकायिक, तेजस्कायिक अने वायुकायिकोंमा पण्यु चार युग्म कइया छे, आ कथननो भावार्थ अने छे के नारक आदि चार युग्म

पुनर्भीचानेन भावैर्निरूपयति—

मूषम् चत्वारि सूरा पण्यत्ता, त जहा-खतिसूरे १, तवसूरे  
२, दाणसूरे ३, जुद्धसूरे ४। खतिसूरा-अरहता १, तवसूरा-  
अणगारा २, दाणसूरे-वैसमणे ३, जुद्धसूरा-वासुदेवा ४। सू० ८।

जाया—चत्वारः सूरा प्रकृताः, तपसा-क्षान्तिसूराः १, तपःशूराः २, दान  
शूर ३, युद्धशूराः ४। क्षान्तिसूराः-अर्हन्तः १, तपःशूराः-अनगाराः २, दान  
शूरः-वैसमण ३। युद्धशूराः-वासुदेवा ४। (सू० ८)।

टीका—“ चत्वारि सूरा ” इत्यादि-सप्टम, नवरं-शूराः-वीराः, क्षान्तिः-  
समा-तप शूरः, एव तप शूरादयो घोष्याः १ क्रमेण तानुदाहरति-‘ खतिसूरा ’  
इत्यादि-क्षान्तिसूरा-अर्हन्तः थीमहावीरस्वामिषद् १, तपःशूराः-मनगाराः-  
चार युग्म कहे गये हैं। तात्पर्य ऐसा है कि-नैरपिक आदि चार प्रकारके  
युग्म बांछे हो करभी जग्म-मरग छेकर न्यूनाधिक होते रहतेहैं। सू ७।

अप सूत्रकार भावोंको छेकर जीवोत्ती प्ररूपणा करते हैं—

“ चत्वारि सूरा पण्यत्ता ” इत्यादि ८

सुप्रार्थ-शूर चार प्रकारके होते हैं क्षान्तिसूर-१ तपःशूर-२ दानशूर  
-३ और युद्धशूर-४ इनमें-क्षान्तिसूर अर्हन्त हैं-१ तपःशूर-अन  
गार हैं-२ दानशूर-वैसमण हैं-३ युद्धशूर-वासुदेव हैं ४

टीकार्य-क्षान्तिमें अग्नेमरको क्षान्तिसूर, तपस्थामें प्रधानज्ञो तपःशूर, दान  
देनेमें जो द्विषकिषाष्ट नहीं करे वे दानशूर, युद्धमें नाम कमानेबांछेको  
युद्धशूर कहते हैं। इसी पात्रको सूत्रकारने उल्लान्न देकर समझाया हैं,

मुग्म ( शशि ) वाजा देवा उर्जा पत्र न म-भरवनी अपेक्षाके न्यूनाधिक  
वर्ता रहे छे । सू ७।

द्वे सूत्रकार भावोनी अपेक्षाके लोवोनी प्ररूपणा करे छे—

‘ चत्वारि सूरा पण्यत्ता ’ इत्यादि—

सूत्रार्थ-शूर चार प्रकारना कहा छे-(१) क्षान्तिसूर, (२) तपःशूर, (३) दान  
शूर अने (४) युद्धशूर क्षान्तिसूर अर्हन्त दोष छे तपःशूर अनगार देष  
छे दानशूर वैसमण छे अने युद्धशूर वासुदेव छे

टीका—क्षान्ति प्रधानपुरुषने क्षान्तिसूर उक्ततपस्था करनारने तप शूर दान  
आपचारों के पाठो प ते। तभी ते दानशूर अने युद्धमें वीरता बतावना  
रने युद्धशूर उठे छे अर्हन्त प्रदावीर प्रभु क्षान्ति ( क्षमा ) भा शूर जगुषा,

साधवः धन्यनामानगारवत् २, दानशूरः-वैश्रवणः-कुबेराख्य उत्तरदिग्बोकपालः,  
तस्य तीर्थङ्कगदिजन्मपारणक=प्रभृतिकल्याणकेषु रत्नवृष्टिकारित्वात्, प्रभुसेवक-  
दैन्यदूरीकरत्वाच्च । उक्तं च-“ वेसमणवयणसंपेरिया उ ते तिरियजंमगा देवा ।

कोडिगसो हिरण्णा, रयणाणि य तत्थ उवणेति । १।”

छाय —“ वैश्रवणवचनसंपेरितास्तुते तिर्यग्जृम्भका देवाः ।

कोटघग्रशो हिरण्यानि रत्नानि च तत्रोपनयन्ति । १ । ” इति,

युद्धशूरा वासुदेवाः श्रीकृष्णवत्, तस्य षष्ठ्यधिकशतत्रयसंख्य-युद्धेषु विज-  
यित्वात् । (सू० ८) ।

पुनर्जीवानेव भावैर्निरूपयति-

मूलम्-चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा-उच्चै गाममेगे  
उच्चच्छंदे १, उच्चै गाममेगे णीअच्छंदे २, णीए गाममेगे  
उच्चच्छंदे ३, णीए गाममेगे णीयच्छंदे ४। ॥ सू० ९ ॥

छाया —चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-उच्चो नामैक उच्चच्छन्दः

अर्हन्त महावीर स्वामी क्षान्ति क्षमामे शूर कहे गये हैं १ धन्य नामक  
अनगारकी तरह साधुजन तपःशूर होते हैं-२ उत्तरदिक्पाल कुबेर  
दानशूर हैं-३ यह कुबेर आदिके जन्म कल्याणके अवसर पर  
और पारणक आदि समयमें रत्नोंकी वर्षा करता है, इसलिये-इसे  
दानशूर कहा गया है उम समय यह प्रभु सेवकके भेदभावको दूर  
कर देता है । कहा भी है-वेसमाणवयणसपेरिया-इत्यादि कृष्णकी  
तरह वासुदेव युद्धशूर होते हैं श्री कृष्ण तीनसौ साठ युद्धमें विजयी  
हुवे हैं ॥ सू० ८ ॥

पुनः भावोंको लेकर सूत्रकार जीवोंको ही निरूपण करते हैं-

“ चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता ”-इत्यादि ९

पुरुष जात चार कहे गये हैं, उच्च उच्चच्छन्दवाला-१ उच्च नीच

धन्य नामना अष्टगार जेवा साधुओ तपःशूर गणाय छे उत्तर दिशानो दिक्-  
पाल दानशूर गणाय छे आ कुबेर तीर्थ करना जन्म कल्याणक, पारणा आदि  
अवसरे रत्नोनी वृष्टि करे छे तेथी तेने दानशूर कही छे ते समथे तेस्वामी  
अने सेवकना लेहलावने हर करी नाथे छे, कहु पद्य छे ३-“ वेसमण वयण-  
संपेरिया ” इत्यादि कृष्णनी जेम वासुदेव युद्धशूर होय छे श्री कृष्णे ३६०  
युद्धोमा विजय प्राप्त कर्यो छते । सू ८ ।

भावोनी अपेक्षाये सूत्रकार एवोतुं विशेष निरूपण करे छे-

“ चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता ” इत्यादि-

चार प्रकारना पुरुषो कही छे-(१) उच्च उच्च छन्दवाणो, (२) उच्च



૧, ત્થો નામૈકો નીચચ્છન્દ ૨, નીચો નામૈક ઉચ્ચચ્છન્દ ૩, નીચો નામૈકો નીચચ્છન્દઃ ૪ । ( સૂ ૯ ) ।

|| ટીકા—“ ચત્તારિ પુરિમમાયા ” ઇત્યાદિ-સ્પષ્ટમ્ । નવરમ્-૧૬૫: ક્રમિત્ પુરુષ: ઉચ્ચ-:શરીરકુલસમૃદ્ધિપાદિમિર્મહાન, ઉચ્ચચ્છન્દ-ઉચ્ચચ્છન્દોઽભિપ્રાયો યસ્ય સ તથા=ઉચ્ચચ્છન્દાભિપ્રાયવાન મરતિ, ઐદાર્યોદિસમ્પન્નત્વાત્ ૧, તથા-૧૬૫:- અપ: પુરુષ: ત્થોઽપિસન્ નીચચ્છન્દ:-અપકૃષ્ટાભિપ્રાયવાન મરતિ મલિનચિષાર સ્વાત્ ૨, તથા-૧૬૫:-અપ પુરુષ નીચ-શરીરકુલવિમલાદિમિર્મહોઽપિ ઉચ્ચચ્છન્દો મરતિ ૩, તથા-૧૬૫:-શર: પુરુષસ્તુ નીચો નીચચ્છન્દો મરતિ ૪। સૂ ૯।

અનન્તર નીચાભિપ્રાય ઉક્તઃ સ ચ લેશ્યાવિશેષાઙ્ગરતીતિ છેદ્યાં નિરુપપતિ- મૂલમ્ અસુરકુમારાણાં ચત્તારિ લેસાઓ પળ્લતાઓ, ત જહા કળહલેસા ૧, ણીલલેસા ૨, કાઝલેસા ૩, તેઝલેસા ૪।

ચ્છન્દવાલા-૨ નીચ ઉચ્ચ ચ્છન્દવાલા-૩ ૧૬૫ નીચ નીચચ્છન્દવાલા-૪ તાત્પર્ય યહ છે કિ જો પુરુષ શરીર-કુલ-સમૃદ્ધિ આદિ સે મહાન મહાન હોતા હુવા મી ઉદારતા આદિ ગુણો સે યુક્ત હોને કે કારણ અભિપ્રાય સે મહાન હોતા છે યહ-પ્રથમ મજ્જાં પરિણત હુવા છે । તથા-જો શરીર-કુલાદિસે મહાન હોતા હુવા મી મલિન ચિષાર વાલા હોને કે કારણ અપકૃષ્ટ અભિપ્રાયવાલા હોતા છે, યહ-દ્વિતીય મજ્જાં મિના ગયા છે । તથા-જો શરીર-કુલ-વિમલા આદિ સે હીન હોતા હુવા મી ઉચ્ચ ચિષાર વાલા હોતા છે યહ-તૃતીય મજ્જાં મિના ગયા છે । ઐર-જો શરીર-કુલ-આદિ સે હીન હોતા છે-ઐર અભિપ્રાય સે મી હીન હોતા છે-યહ ચતુર્થમજ્જાં મિના ગયા છે ॥ સૂ ૯ ॥

નીચ-છદવાલો, (૩) નીચ ઉચ્ચ છદવાલો અને (૪) નીચ નીચ છદવાલો.  
 હવે આ ચાર પ્રકારનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે-(૧) કેઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે શરીર કુલ અને સમૃદ્ધિની અપેક્ષાએ પણ મહાન હોય છે અને ઉદારતા આદિ શુભેથી સુષ્ટ હોવાને કારણે વિચારની અપેક્ષાએ પણ મહાન હોય છે (૨) કેઈ પુરુષ શરીર કુલ આદિની અપેક્ષાએ મહાન હોય છે ત્થાં મલિન ચિષાર હોલ આદિને કારણે અપમ હોય છે (૩) કેઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે શરીર, કુલ, સમૃદ્ધિ આદિની અપેક્ષાએ હીન હોવા છતાં પણ ઉચ્ચ વિચારવાળો હોય છે (૪) કેઈ પુરુષ શરીર, કુલ, વેલવ આદિની અપેક્ષાએ પણ હીન હોય છે અને ઐદાર્ય આદિ શુભે અને વિચારની અપેક્ષાએ પણ હીન જ હોય છે । સૂ ૬ ।

एवं जाव थणियकुमाराणां, एवं पुढविकाइयाणं आउवणस्सइका-  
इयाणं वाणमन्तराणं सव्वेसिं जहा असुरकुमाराणं ॥सू०१०॥

छाया—असुरकुमाराणां चतस्रो लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कृष्णलेश्या १,  
नीललेश्या २, कापोतलेश्या ३, तेजोलेश्या ४। एव यावत् स्तनितकुमाराणाम्।  
एवं पृथिवीकायिकानामव्वनस्पतिकायिकानां व्यन्तराणां यथा असुरकुमाराणाम्।  
॥ सू० १० ॥

टीका—“ असुरकुमाराणं ” इत्यादि—असुरकुमाराणां लेश्याः—लिङ्ग्यते-  
श्लिष्यते कर्मणा संबध्यते जीवो याभिस्ता लेश्याः—कर्मणा सह सम्बन्धे हेतुभूता  
आत्मपरिणामविशेषाः, चतस्रः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—कृष्णलेश्या—कृष्णाचासौ लेश्या  
कृष्णलेश्या १, एव नीललेश्या २, कापोतलेश्या ३, तेजोलेश्या ४। एवम्—अनेन  
प्रकारेण स्तनितकुमारान्तानां देवानां चतस्रो लेश्या बोध्याः। एताश्चतस्रो लेश्या  
असुरकुमारादिस्तनितकुमारान्तानां द्रव्यतो भवन्ति। भावतस्तु सर्वेषां देवानां पञ्च-

नीच अभिप्रायवाला होना—यह लेश्या विशेष से होता है, अतः—  
अब सूत्रकार लेश्या की प्ररूपणा करते हैं—

“ असुरकुमाराणं चत्तारि लेसाओ ”—इत्यादि—१०

टीकार्थ—असुरकुमारों को चार लेश्याएं कही गई हैं। जिसके द्वारा जीव  
कर्मों से बद्ध होता है वह लेश्या है. यह लेश्या कर्म के साथ सम्बन्ध  
होने में हेतु है—आत्मा का परिणाम विशेष है। कृष्णलेश्या, नीललेश्या,  
कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, ये लेश्याएं असुरकुमारों को जैसे होती हैं.  
वैसे—स्तनितकुमार तक के देवों को भी होती हैं। इन में ये लेश्याएं  
द्रव्य की अपेक्षा से कही गई हैं, क्योंकि—भाव की अपेक्षा तो छे के-

विचारो अथवा लावोमा नीयता लेश्याविशेषोने कारणे उत्पन्न थाय छे.  
तेथी सूत्रकार लेश्याओनी प्ररूपणा करे छे

“ असुरकुमाराणं चत्तारि लेसाओ ” इत्यादि—

टीकार्थ—असुरकुमारांमां चार लेश्याओने सदभाव डोय छे जेना द्वारा आत्मा  
कर्मों वडे अद्ध थाय छे, तेनु नाम लेश्या छे कर्मनी साथे आत्मानो सम्बन्ध  
करवामा आ लेश्या कारणेभूत अने छे जेथेले के ते आत्माना परिणाम विशेष  
रूप डोय छे असुरकुमारांमां कृष्ण, नील, कापोत अने तेजोलेश्याने सदभाव  
डोय छे स्तनितकुमार पर्यन्तना भवनपतिओमा पणु आ चार लेश्याओने  
सदभाव डोय छे तेमनांमां द्रव्यनी अपेक्षाओ आ चार लेश्याओने सदभाव  
सम्बन्धो. लावनी अपेक्षाओ तो छये छे लेश्याओने—कृष्ण, नील, कापोत,

छेद्या ह्युक्तछेद्या सहिताः पूर्वोक्तावतस्र इति पद छेद्या भवन्ति । तथा असुर  
रुक्माराणां—एवमव पृथिवीकायिकानाम् अफ्कायिकानां वनस्पतिकायिकानां  
सर्वेषां व्यन्तराणां च चतस्रवतस्रो छेद्या बोध्याः । पृथिव्यन्वनस्पतिषु देवाना  
ह्यवपिसमवापेषां तेजोछेद्याऽपि भवतीति चतस्रो छेद्या मोक्ता इति । सू० १० ।

अनन्तरोक्तछेद्यां विशेषेण मनुष्या विविधपरिणामा भवतीति यानादिह  
द्वान्तचतुर्मेद्विकामि पुरुषात् दर्शयितुमाह—

मृत्म्—चत्वारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे  
जुत्ते १, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते २, अजुत्ते णाममेगे जुत्ते ३,  
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते ४ । एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पण्णत्ता,  
त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते । जुत्ते णाममेगे अजुत्ते ४ । १ ।

चत्वारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरि  
णप्, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणप् ० ४ । एवामेव चत्वारि पुरि-  
सजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणप् ० ४ । २ ।

चत्वारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे १,  
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे २, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूव ३, अजुत्ते  
णाममेगे अजुत्तरूवे ४ । एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पण्णत्ता,  
त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूव ० ४ । ३ ।

छवो कृष्ण, नील, कापोत, पीत, तेज, पद्म, शुक्ल छेद्याए छेद्याए  
होती हैं । असुररुक्मारों के जैसे ही पृथिवीकायिक—अफ्कायिक, वनस्प-  
तिकायिक, और—व्यन्तरों को भी चार छेद्याए होती हैं । पृथिवी—भद्र,  
तेजस्कायिकोंमें देवोंकी उत्पत्ति सम्भावनासे तेजोछेद्या होती है । सू १० ॥

तेजे चतुर् अने शुक्ल देवशाब्देने सदृशाव दोष उ पृथ्वीकायिके अपृथा  
बिडे, वनस्पतिकायिके अने वान वन्तरांमां यव असुररुक्मारो जेवी चार  
देवशाब्देने च सदृशाव दोष उ पृथ्वीकायिके अपृथायिके अने तेजस्कायि-  
केमां देवोनी उत्पत्तिनी सम्भावनानी अपेक्षाने तेजेदेवशाब्दे सदृशाव कछो  
उ । सू. १० ।

चत्वारि जाणा पणत्ता, तं जहा-जुत्ते णाममेगे जुत्तसोहे०  
४। एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा-जुत्ते णाम-  
मेगे जुत्तसोहे० ४॥ सू० ११ ॥

छाया—चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तं नामैक युक्तं १, युक्तं  
नामैकमयुक्तम् २, अयुक्तं नामैकं युक्तम् ३, अयुक्तं नामैकमयुक्तम् ४। एवमेव  
चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तो नामैको युक्तः, युक्तो नामैकोऽयुक्तः ४।

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तं नामैकं युक्तपरिणतं, युक्तं नामैक-  
मयुक्तपरिणतम् ० ४। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तो  
नामैको युक्तपरिणतः ४,

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तं नामैकं युक्तरूपं १, युक्तं नामैक-

अनन्तरोक्त लेश्या विशेष से मनुष्य विचित्र परिणामवाले होते  
हैं, अतः—अथ सूत्रकार यानादि दृष्टान्त की चतुर्भङ्गी द्वारा पुरुषों की  
प्ररूपणा करते हैं—“ चत्वारि जाणा पणत्ता ”—इत्यादि—११

इस सूत्र के अन्तर्गत चार सूत्र हैं। यान चार कहे गये हैं—युक्त  
युक्त-१ युक्ताऽयुक्त-२ अयुक्तयुक्त-३ अयुक्ताऽयुक्त-४, ऐसे ही  
युक्तयुक्त आदि के भेद से पुरुष भी चार प्रकार के हैं।

फिर भी—यान चार प्रकारके हैं—युक्तयुक्त-परिणत-१ युक्ताऽयुक्त-  
परिणत-२ अयुक्तयुक्त-परिणत-३ और - अयुक्ताऽयुक्त - परिणत-४  
इसी प्रकारसे युक्तयुक्त परिणत आदि भेदवाले पुरुष भी चार होते हैं ४,

(२) फिर भी—यान चार हैं, युक्त युक्त-रूप, १ युक्तायुक्त-रूप, २

लेश्याविशेषना सहभावे करीने मनुष्य विचित्र परिणामवाणो थाय छे तेथी  
इवे सूत्रकार यानादिना दृष्टान्त द्वारा चार प्रकारना पुरुषोनी प्ररूपणा करे  
छे—“ चत्वारि जाणा पणत्ता ” इत्यादि—

आ सूत्रमा चार सूत्रोने समावी लीधा छे यानना चार प्रकार कछा  
छे—(१) युक्तयुक्त, (२) युक्ताऽयुक्त, (३) अयुक्तयुक्त, (४) अयुक्ताऽयुक्त अ  
प्रभाण्णु युक्तयुक्त आदिना लेदथी चार प्रकारना पुरुषो पण्णु डोय छे. (१)  
यानना नीचे प्रभाण्णु चार प्रकार पण्णु कछा छे (१) युक्त युक्तपरिणत, (२)  
युक्तायुक्त परिणत, (३) अयुक्तयुक्त परिणत अने (४) अयुक्तायुक्त परिणत  
अने प्रभाण्णु पुरुषना पण्णु युक्तयुक्त परिणत आदि चार लेद छे । २।

यानना नीचे प्रभाण्णु चार प्रकार पण्णु पडे छे—(१) युक्तयुक्त ३५, (२)

छेदया शुक्लछेदया सहिताः पूर्वोक्ताश्चतस्र इति पद छेदया भवन्ति । तथा वसु  
रङ्गमारानाम्-एषमेव पृथिवीकायिकानाम् अष्कायिकानां वनस्पतिकायिकानां  
सर्वेषां व्यन्तराणां च चतस्रश्चतस्रो छेदया बोध्याः । पृथिव्यन्वनस्पतियु इवाना-  
हुरपिसमन्तात्तेषां तेजोछेदयाऽपि मरतीति चतस्रो छेदयाः मोक्ता इति । सू० १० ।

अनन्तरोक्तछेदयां विशेषेण मनुष्या विविधपरिणामा भवन्तीति यानादि  
ष्टान्तवतुर्मन्त्रिकाभिः पुरुषान् दर्शयितुमाह—

मूलम्—चत्वारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे  
जुत्ते १, जुत्ते णाममेगे अजुत्ते २, अजुत्ते णाममेगे जुत्त ३,  
अजुत्ते णाममेगे अजुत्ते ४ । एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पण्णत्ता,  
त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते । जुत्ते णाममेगे अजुत्ते ४ । १ ।

चत्वारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरि  
णप्प, जुत्ते णाममेगे अजुत्तपरिणप्प० १ । एवामेव चत्वारि पुरि  
सजाया पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तपरिणप्प० ४ । २ ।

चत्वारि जाणा पण्णत्ता, त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे १,  
जुत्ते णाममेगे अजुत्तरूवे २, अजुत्ते णाममेगे जुत्तरूव ३, अजुत्ते  
णाममेगे अजुत्तरूवे ४ । एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पण्णत्ता,  
त जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्तरूवे० ४ । ३ ।

एषो कृष्ण नील, कापोत्त, पीत्त, तेज, पद्म, शुक्ल छेदयाए छेदयाए  
होती हैं । असुरकुमारों के जैसे ही पृथिवीकायिक-अष्कायिक, वनस्प  
तिकायिक, और-व्यन्तरों को भी चार छेदयाए होती हैं । पृथिवी-अष्ट  
तेजस्कायिकोंमें देवोंकी उत्पत्ति सम्भावनासे तेजोछेदया होतीहै। सू० १० ।

तेजे, पद्म अने शुक्ल देखायेनेो सदृशाव होय छे पृथ्वीकायिको, अप्पुत्ता  
यिको, वनस्पतिकायिको अने वान०व्यन्तरांमां पयु अमुरकुमारो नेनी चार  
देखायेनेो च सदृशाव होय छे पृथ्वीकायिको, अप्पुत्तायिको अने तेजस्कायि  
कोमां देवोनी उत्पत्तिनी सम्भावनानी अपेक्षाये तेजेदेखानो सदृशाव होये  
छे । सू. १० ।

चत्वारि जाणा पणत्ता, तं जहा-जुत्ते णाममेगे जुत्तसोहे०  
४। एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा-जुत्ते णाम-  
मेगे जुत्तसोहे० ४। सू० ११ ॥

छाया—चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तं नामैक युक्तं १, युक्तं  
नामैकमयुक्तम् २, अयुक्तं नामैकं युक्तम् ३, अयुक्तं नामैकमयुक्तम् ४। एवमेव  
चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तो नामैको युक्तः, युक्तो नामैकोऽयुक्तः ४।

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तं नामैकं युक्तपरिणतं, युक्तं नामैक-  
मयुक्तपरिणतम् ४। एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तो  
नामैको युक्तपरिणतः ४,

चत्वारि यानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तं नामैकं युक्तरूपं १, युक्तं नामैक-

अनन्तरोक्त लक्ष्या विशेष से अनुष्य विचित्र परिणामवाले होते  
हैं, अतः—अब सूत्रकार यानादि दृष्टान्त की चतुर्भङ्गी द्वारा पुरुषों की  
प्ररूपणा करते हैं—“ चत्वारि जाणा पणत्ता ”-इत्यादि-११

इस सूत्र के अन्तर्गत चार सूत्र हैं। यान चार कहे गये हैं—युक्त  
युक्त-१ युक्ताऽयुक्त-२ अयुक्तयुक्त-३ अयुक्ताऽयुक्त-४, ऐसे ही  
युक्तयुक्त आदि के भेद से पुरुष भी चार प्रकार के हैं।

फिर भी—यान चार प्रकारके हैं—युक्तयुक्त-परिणत-१ युक्ताऽयुक्त-  
परिणत-२ अयुक्तयुक्त-परिणत-३ और - अयुक्ताऽयुक्त - परिणत-४  
इसी प्रकारसे युक्तयुक्त परिणत आदि भेदवाले पुरुष भी चार होते हैं ४,

(२) फिर भी—यान चार हैं, युक्त युक्त-रूप, १ युक्तायुक्त-रूप, २

लक्ष्याविशेषना सहलावे करीने अनुष्य विचित्र परिणामवाणो थाय छे तेथी  
हुवे सूत्रकार यानादिना दृष्टान्त द्वारा चार प्रकारना पुरुषोनी प्ररूपणा करे  
छे—“ चत्वारि जाणा पणत्ता ” इत्यादि—

आ सूत्रमा चार सूत्रोने समानी लीधा छे यानना चार प्रकार कथा  
छे—(१) युक्तयुक्त, (२) युक्ताऽयुक्त, (३) अयुक्तयुक्त, (४) अयुक्ताऽयुक्त अने  
प्रमाणे युक्तयुक्त आदिना लेदथी चार प्रकारना पुरुषो पण्ड डोय छे, (१)  
यानना नीचे प्रमाणे चार प्रकार पण्ड कथा छे (१) युक्त युक्तपरिणत, (२)  
युक्तायुक्त परिणत, (३) अयुक्तयुक्त परिणत अने (४) अयुक्तायुक्त परिणत  
अने प्रमाणे पुरुषना पण्ड युक्तयुक्त परिणत आदि चार लेद छे । २।

यानना नीचे प्रमाणे चार प्रकार पण्ड पडे छे—(१) युक्तयुक्त ३५, (२)

मयुक्तरूपम् २, अयुक्तं नामैक युक्तरूपम् ३, अयुक्त नामैकमयुक्तरूपम् ४।  
एवमेव चत्वारि पुरुषप्रातानि पञ्चतानि, तद्यथा—युक्तो नामैको युक्तरूपाः ४,

चत्वारि यानानि पञ्चतानि, तद्यथा—युक्ता नामैक युक्तशोमम् ४, एवमेव  
चत्वारि पुरुषप्रातानि पञ्चतानि, तद्यथा—युक्तो नामैको युक्तशोमः ४। सू० ११॥

टीका—“ चत्वारि ज्ञाना ” इत्यादि—यानानि—शकटादीनि, चत्वारि पञ्च  
तानि, तद्यथा—एकं यान युक्त—बलीवर्षादिभिः सयुक्तं सत् पुनर्युक्त—सकलसाम  
ग्रीरहित, यद्वा—पूर्वकालेऽपरकाले च बलीवर्षादिभिर्युक्तं भवति, इति प्रथमो  
मन्त्रः १। एकं बलीवर्षादिभिर्युक्तं सदपि अयुक्तं सामग्रीरहितम् अपरकाले बली  
वर्षादिभिरहितं वा भवति । इति द्वितीयो मन्त्रः । २। तथा—एकं वर्तमानकाले

अयुक्तयुक्त—रूप, १ अयुक्ताऽयुक्त—रूप, ४, इसी प्रकार से पुरुष भी  
युक्तयुक्त—रूप आदि चार प्रकार के होते हैं—४, १३।

फिर भी—यान चार प्रकारके हैं, युक्त युक्त—शोभावाले—१ युक्ताऽ  
युक्त—शोभावाले—२ अयुक्तयुक्त—शोभावाले—३ अयुक्तयुक्त शोभावाले  
४, इसी प्रकार से पुरुष भी चार प्रकार के हैं, जैसे—युक्तयुक्त शोभा  
वाला—१ आदि—(४)

टीकार्थ—कोई एक यान ( प्रवहण ) ऐसा होता है जो—बली  
वर्ष आदि से भी युक्त होता है और—सकल सामग्री से भी युक्त होता  
है। अथवा—पूर्वकाल में भी, और—अन्यकाल में भी बलीवर्षादिकों से  
युक्त होता है, या—क्रिया जाता है—१ कोई एक यान बलीवर्षादि तों से  
युक्त होता तो है पर—यान सामग्री से रहित होता है—२ अथवा—पूर्व

मुक्त अमुक्त इय (३) अमुक्त मुक्त इय अने (३) अमुक्त अमुक्त इय  
अने प्रभावे पुरुषना पक्ष मुक्त मुक्त इय आदि चार प्रकार समजना । ३।

यानना आ प्रभावे चार प्रकार पक्ष पडे छे—(१) मुक्तमुक्त योभावाले,  
(२) मुक्त अमुक्त योभावाले (३) अमुक्त मुक्त योभावाले अने (४) अमुक्त  
अमुक्त योभावाले अने प्रभावे पुरुषना पक्ष ‘मुक्त मुक्त योभावाले’  
आदि चार प्रकार समजना । ४।

इसे पढेला सूत्रना चार जात्रांजु स्पष्टीकरण करवामा  
आवे छे (१) केछ अनेक यान ( २५ गाडु आदि वाहन ) जण्ड  
आदिथी पक्ष मुक्त होय छे अने सकल सामग्रीथी पक्ष मुक्त होय छे  
अथवा पढेलां जण्डादिथी मुक्त रहे छे अने पछी पक्ष मुक्त व रहे छे  
(२) केछ अनेक यान अनरयोथी मुक्त होय छे पक्ष अन्य सामग्रीथी रहित  
होय छे अथवा पढेलां जण्ड आदिथी मुक्त होय छे पक्ष पछी तेमनाथी  
रहित जनी अय छे (३) केछ अनेक यान पतमान बावे तो जण्ड आदिथी

अयुक्तं-सामग्रीरहित वलीवर्दादियोगरहित वा सदपि अपरकाले युक्तं भवतीति तृतीयो भङ्गः । ३ । तथा-एकं वर्तमानकाले अयुक्तं, भविष्यत्कालेऽप्ययुक्तं भवतीति चतुर्थो भङ्गः । ४ ।

“ एवामेवे ”-त्यादि-एवमेव पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-एकः पुरुषः युक्तः-समृद्ध्यादिभिः सम्पन्नः, पुनरपि युक्तः-सदाचारादिभिः सम्पन्नो भवति, यद्वा-पूर्वं युक्तः-यनादिभिः सम्पन्नः, स एव पश्चादपि युक्तः-धनादिभिः सम्पन्नो भवति, इति साधारणपुरुषमाश्रित्य प्रथमभङ्ग व्याख्या १, एवं शेषास्तु योऽपि भङ्गा बोध्याः ४। साधुपुरुषमाश्रित्य तु-पूर्वं युक्तः-द्रव्यलिङ्गेन भावलिङ्गेन च सहितः, स एव पश्चादपि युक्तः-तथाभूतः, इति प्रथमो भङ्गः १। तथा-एको

काल में वलीवर्दादि से युक्त होता है और-अपरकाल में नहीं-२ तथा-कोई एक यान वर्तमान काल में तो सामग्री से-अथवा वलीवर्दादिकों के योगसे रहित होता है, वाद में-युक्त हो जाता है-३, कोई एक रथा-दियान वर्तमान-और भविष्यत् काल में भी वलीवर्दादिकों के, या-सामग्रियों के योग से रहित ही बना रहता है-४, इसी प्रकार से पुरुष जात भी चार होते हैं, जैसे-कोई एक जन्मकाल से ही समृद्धि सम्पन्न होता है और-सदाचार आदि से भी-१ अथवा-जो पहले से भी सम्पन्न होता है. और-वाद में भी अपने अन्तिम काल तक भी धनादि सम्पन्न बना रहता है, यह प्रथम भङ्ग साधारण पुरुष को लेकर घनाया गया है। इसी प्रकार शेष भङ्ग त्रय भी साधारण पुरुष को लेकर कथित कर लेना चाहिये। साधु पुरुषों को आश्रित करके इन भङ्गों का व्याख्यान इस प्रकार है-कोई एक पुरुष साधु बनते समय में द्रव्यलिङ्ग,

रहित होय छे पणु लविष्यमा तेमनाथी युक्त अनि नय छे (४) कोष्ठ  
अेक रथादि यान वर्तमान काणे पणु अणद आदिथी रदित होय छे अने  
लविष्यमा पणु अणददिति रदित न रहे छे

अेन प्रमाणे पुरुषो पणु आर प्रकारना होय छे-(१) कोष्ठ पुरुष जन्म-  
काणथी न समृद्धि संपन्न पणु होय छे अने सदाचार संपन्न पणु होय छे  
अथवा न पडेता पणु समृद्धि, सदाचार आदिथी युक्त होय छे अने  
पोताना मरुकाण पर्यन्त पणु तेनाथी युक्त न रहे छे आ पडेता लागे  
सामान्य पुरुषनी अपेक्षाअे समजवे, अेन प्रमाणे आकीना त्रणु लागे  
पणु समणु शकय अेवा छे साधु पुरुषाने आ आर लागे आ प्रमाणे



યુક્તઃ-પૂર્વ દ્રવ્યલિંગેન માત્રલિંગેન વ સમ્યનો મવતિ, સ પથ્યાદ્ અયુક્તઃ-માત્ર લિંગેન રહિતો મવતિ, યયા જમારપાદિનિહ્વ, ડમામ્પા વા રહિતો મવતિ, યયા સંયમપવિત ક્ષણ્ડરીકાદિઃ । इति द्वितीयो मङ्गः २। तथा-एक पुरुष अयुक्तः-द्रव्यलिङ्गेन रहितोऽपि युक्तो-मातृलिङ्गेन युक्तो मवति यथा प्रत्येकपुत्रादि । इति तृतीयो मङ्गः ३। तथा-एकः पुरुषः पूर्वमयुक्तः-द्रव्यमात्रलिङ्गरहित, यथा अपि अयुक्तस्तथैव मवति, यथा गृहस्थादिः । इति चतुर्थो मङ्गः ४।

“ चत्वारि भाषा ” इत्यादि-स्वप्नम्, नवरं-युक्त वलीवर्णादिभि, युक्तपरि पातम्-सत्सामम्पा युक्तमात्रमातम् इति प्रथमो मङ्ग १। तथा युक्त वलीवर्णा पा-मातृलिङ्ग से युक्त होना है, वही यदि उसी लिङ्ग से अपने जीवन काल तक भी युक्त बना रहता है तो-ऐसा वह प्रथम भङ्गवाला है-१ तथा-कोई एक साधु पुरुष प्रव्रज्या छेते समय तो द्रव्यलिङ्ग से या-मातृलिङ्ग से युक्त हो जाता है, पर-भाग्य चलकर यदि वह उस लिङ्ग से-मातृ लिङ्ग से-रहित हो जाता है जमालिनिह्व की तरह अथवा-क्ષण्डीक की तरह दोनों लिङ्गों से रहित हो जाता है, तो ऐसा वह साधु पुरुष द्वितीय मङ्ग में गिना गया है-२ तथा-जो प्रत्येक पुत्र आदि की तरह द्रव्यलिङ्ग से रहित हुआ भी मातृलिङ्ग से सहित होता है उसकी अपेक्षा तृतीय मङ्ग है-३ तथा-गृहस्थादि की तरह जो पहले भी द्रव्यलिङ्ग, पा-मातृलिङ्ग से रहित हो और-वाद् में भी वह वैसा ही बना रहे तो-इसकी अपेक्षा चतुर्थ मङ्ग है ४। द्वितीय सूत्रगण चार मङ्ग इस प्रकार से व्याख्यान करना चाहिये-जैसे-कोई एक रथादियान

લામુ પડે છે-(૧) કોઈ એક પુરુષ સાધુ બનતી વખતે દ્રવ્યલિંગ કે ભાવ લિંગથી મુક્ત હોય છે અને પોતાના જીવન કાળ પરન્તુ એજ લિંગથી મુક્ત રહે છે (૨) કોઈ એક પુરુષ ડીકા જાગીશર કરતો વખતે દ્રવ્યલિંગથી કે ભાવલિંગથી મુક્ત હોય છે, પરન્તુ આગળ જાગ તે લિંગથી ભાવલિંગથી રહિત થઈ જાય છે તેવા પુરુષને બીજા ભાંગમાં ગણાવી શકાય છે જેમકે-જમાલિ નિહ્વ અથવા ક્ષણિકની જેમ બન્ને લિંગથી રહિત થઈ જનારને પણ બીજા ભાંગમાં ગણાવી શકાય છે પ્રત્યેક પુત્ર આદિની જેમ દ્રવ્યલિંગથી રહિત હોવા છતાં ભાવલિંગથી મુક્ત હોય એવા સાધુને ત્રીજા ભાંગ માં ગણાવી શકાય છે (૪) તથા ગૃહસ્થાદિની જેમ જે પહેલાં પણ દ્રવ્યલિંગ અથવા ભાવલિંગથી રહિત હોય છે પછી પણ એવો જ વ્યક્ત રહે છે તેને ચોથા ભાંગમાં ગણાવી શકાય છે

दिमि, अयुक्तपरिणतं—सत्सामग्रीवर्जितम् २, इति द्वितीयो भङ्गः २। एव शेषमङ्ग  
द्वयमपि बोध्यम् ४।

“ एवामेव ” इत्यादि—एवमेव पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एकः  
पुरुषः युक्तो=द्रव्यभावलिङ्गसम्पन्नः पश्चादपि युक्तपरिणतः—युक्तभावापन्नो भवति,  
इति प्रथमो भङ्गः । १ । एकः पुरुषः पूर्वं युक्तः पश्चाद् अयुक्तपरिणतः=भावलिङ्ग-  
रहितो भवति, यथा जमाल्यादि निहवः । उभाभ्यां वा रहितो भवति यथा कण्ड-  
रीकः । इति द्वितीयो भङ्गः । २ । तथा—एकः पुरुषः अयुक्त—पूर्वं द्रव्यलिङ्गरहितः

ऐसा होता है जो—बलीवर्द आदिकों से युक्त होता है. और—प्रशस्त-  
अच्छी, सामग्री से भी युक्त रहता है, तथा—कोई एक रथादियान  
बलीवर्दादिकों से युक्त होता हुआ भी सत्सामग्री से रहित होता है, २  
इसी तरह से शेष दो भङ्गों को भी समझ लेना चाहिये—४। इसी तरह  
चार पुरुष जात कहे गये हैं—काह एक पुरुष ऐसा होता है जो द्रव्य-  
भाव लिङ्ग से सम्पन्न होने से युक्त होता है, और पश्चात्—भी वह युक्त  
भाव से युक्त होता है, ऐसा यह—प्रथम भङ्ग है, १ द्वितीय भङ्ग इस  
प्रकार से है, जैसे कोई एक पुरुष पहले युक्त होता है, द्रव्य भाव लिङ्ग  
से सहित होता है, पश्चात्—वह अयुक्त परिणत हो जाता है, भावलिङ्ग  
से रहित हो जाता है, यथा—जमालि-आदि निहव, या—दोनों लिङ्गों से  
रहित हो जाता है जैसे—कण्डरीक ऐसा वह द्वितीय भङ्ग है, २ तृतीय  
भङ्ग इस प्रकार है, जैसे कोई एक पुरुष अयुक्त-पहले द्रव्यलिङ्ग से रहित

बीज सूत्रनाचार लागानुस्पष्टीकरण—(१) काँध अेक रथादियान अेवु डोय छे डे  
जे भणह आदिथी पणु युक्त डोय छे अने प्रशस्त सामग्रीथी पणु युक्त रहे छे (२)  
काँध अेक रथादियान भणहादिथी युक्त डोवा छतां पणु प्रशस्त सामग्रीथी रहित  
डोय छे त्रीज अने योथा नभरना लाग पणु अेज प्रमाणे समञ्ज देवा  
अेज प्रमाणे पुरुषोना चार प्रकार पडे छे—(१) काँध अेक पुरुष अेवो डोय  
छे डे जे द्रव्य-भाव लिङ्गथी सपन्न डोवाने कारणे युक्त डोय छे अने  
पछी पणु ते पुरुष ते लावथी सपन्न न रहे छे (२) काँध अेक पुरुष  
पडेवा युक्त डोय छे—द्रव्यभाव लिङ्गथी सपन्न डोय छे पणु पाछणथी ते  
अयुक्त परिणत थर् नय छे—अेटले लावलिङ्गथी रहित थर् नय छे अेभे डे  
जमालि आदि निहव अथवा अन्ने लिङ्गथी पणु रहित थर् नय छे जेभे डे  
कंडरीक या प्रकारने बीजे लागे समञ्जवे.

पश्चाद् युक्तपरिणतो-द्रव्यमात्रलिङ्ग सम्पन्नो भवति, यथा-प्रत्येकशुद्धादिः । इति तृतीयो मङ्ग । ३ । तथा-एक पूर्वमयुक्तः सन् पश्चादप्ययुक्तपरिणतो भवति, यथा-गृहस्थाः, इति चतुर्थो मङ्ग । ४ । एषा चतुर्मङ्गी विप्रिष्टपुरुषमाभित्य । सामान्य पुरुषमाभित्य तु-एकः पुरुषः पूर्व युक्त = घनधान्यादि सम्पन्न, पश्चादपि युक्तपरिणतो भवतीति प्रथमो मङ्ग । १ । एक पुरुषः पूर्व युक्त पश्चाद् अयुक्तपरिणतो-घनधान्यादिरहितो भवतीति द्वितीयो मङ्गः । २ । एवं चोपमङ्गप्रथमपि बोध्यम् । ४ ।

होता है पश्चात्-यह युक्त परिणत-द्रव्यलिङ्ग से सम्पन्न हो जाता है जैसे-प्रत्येक शुद्ध आदि ऐसा यह तृतीय मङ्ग है, ३। चतुर्थमङ्ग इस प्रकार है, जैसे-कोई एक पहले से ही अयुक्त होता है और पश्चात् भी अयुक्तपरिणत बना रहता है जैसे-गृहस्थ ऐसा यह चतुर्थ मङ्ग है, ४। यह-इस प्रकारकी चतुर्मङ्गी, विप्रिष्ट पुरुषको आश्रित करके कही गई है ।

अब सामान्य पुरुष को आश्रित करके यही चतुर्मङ्गी इस प्रकार से है-जैसे कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो पहले भी घनधान्यादि से सम्पन्न होता है, और बाद में भी वसा ही सम्पन्न बना रह जाता है, यह प्रथम मङ्ग है, १ द्वितीय मङ्ग इस प्रकार है-कोई एक पुरुष पहले तो घनधान्यादि सम्पन्न होता है बाद में उससे रहित हो जाता है २ तृतीय मङ्ग इस प्रकार है-जैसे-कोई एक पुरुष पहले तो घनधान्यादि रहित होता है और-बाद में सम्पन्न हो जाता है, ३ तथा-चतुर्थ मङ्ग

त्रीने भाषिो-—डोड् जेक पुरुष पढेता अमुक्त (द्रव्यलिङ्गधी रदित) बीप छे परन्तु पाछगधी मुक्त परिवृत-द्रव्यलिङ्गधी सपन्न थप न्य छे नेम के प्रत्येक लुद्ध वजेरे

बीयो भाषिो-—डोड् जेक पुरुष पढेता पक्ष अमुक्त (द्रव्यलिङ्गधी रदित) बीप छे अने पाछगधी पक्ष अमुक्त परिवृत न्य आहु रडे छे नेम के गृहस्थ आ प्रकारनी यतुर्मात्री विशिष्ट पुरुषोने आधारे डडेवामा आनी छे स मान्य पुरुषोनी अपेक्षाजे जेन सतुर्मात्रीने आ प्रभावे घनधान्यादि

(१) डोड् जेक पुरुष जेयो बीप छे के ने पढेता पक्ष घनधान्यादिधी सपन्न बीप छे अने त्यावण्ड पक्ष लुप्तपन्न तेनाधी मुक्त न्य आहु रडे छे (२) डोड् पुरुष पढेता घनधान्यादिधी मुक्त बीप छे पक्ष पाछगधी तेनाधी रदित लनी न्य छे (३) डोड् जेक पुरुष पढेता घनधान्यादिधी रदित बीप छे पक्ष पाछगधी घनधान्याधी सपन्न लनी न्य छे

“ चत्वारि जाणा ” इत्यादि—स्पष्टम्, नवरं—युक्तं बलीवर्द्धादिभिः युक्तरूपं-सुरचिताऽऽकारं भवति १, युक्तं सदपि अयुक्तरूप सुन्दरसंस्थानवर्जितम्, एवं शेष-भङ्गद्वयं बोध्यम् ४। एवमेव पुरुषो युक्तो-वनादिभिः ज्ञानादिगुणैर्वा सम्पन्नः सन् युक्तरूपः-उचितवेषः, यद्वा-सुरचितवेषो भवति। इति प्रथमो भङ्गः । १। शेष-भङ्गत्रयमेवमेव बोध्यम् ४। एवमेव पुरुषो युक्तः-गुणैर्युक्तः युक्तशोभः-युक्ता-उचिता शोभा यस्य स तथा भवति १। एवं शेषभङ्गत्रयमपि ४। ॥ सू० ११ ॥

इस प्रकार है—कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो—पहले भी धनधान्य रहित-होता है, और बाद में भी धनधान्य रहित बना रहता है—४।

“ चत्वारि जाणा ”—इत्यादि, सूत्रार्थ स्पष्ट है, तात्पर्य इसका यह है कि—कोई एक रथादियान ऐसा होता है जो बलीवर्द्ध आदि से युक्त होता है, और—युक्त रूपवाला सुरचित रुचिर आकारवाला भी होता है? द्वितीय भङ्ग में—जैसे कोई एक रथ ऐसा है जो, बलीवर्द्ध आदि वाहन से युक्त होता हुआ भी अयुक्त रूपवाला ( सुन्दर-सुरचित आकारवाला नहीं ) होता है, २ इसी तरह शेष ३-४-भङ्गों को भी समझना। इसी प्रकार पुरुष भी वार होते हैं, जैसे—कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो धनादि युक्त हुआ भी ज्ञानादि गुणवाला होता है, और-उचित वेषवाला होता है, अथवा-सुरचित वेषवाला होता है। द्वितीय भङ्ग में—कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो धनादि सम्पन्न तो होता है

(४) कोई एक पुरुष पहला पक्ष धनधान्यादिथी रहित होय छे अने पाछणथी पक्ष तेनाथी रहित न रहे छे. “ चत्वारि जाणा ” इत्यादि सूत्रार्थ स्पष्ट छे. द्धान्त सूत्रने भावार्थ आ प्रमाणे छे—(१) कोई एक रथादि यान अणद आदिथी पक्ष युक्त होय छे अने युक्तइय संपन्न-सुरचित रुचिर आकार-वाणुं पक्ष होय छे (२) कोई एक रथादि यान अणद आदिथी युक्त होवा छतां अयुक्तइयवाणु होय छे अरवे के सुंदर अने सुरचितर आकारवाणु होतुं नथी अने प्रमाणे आडीना ये भांगानो भावार्थ पक्ष समल शक्य अवे छे

अने प्रमाणे पुरुषो पक्ष चार प्रकारना होय छे—

- (१) कोई एक पुरुष धनादिथी पक्ष युक्त होय छे, ज्ञानादिथी पक्ष संपन्न होय छे अने उचित वेषवाणो-सुरचित वेषवाणो पक्ष होय छे
- (२) कोई एक पुरुष धनादिथी संपन्न होवा छतां अयुक्त इयवाणो होय छे अरवे के ज्ञानादि गुणैर्युक्त रहित, उचित वेषथी रहित अथवा

इति यानदृष्टान्त पुरुषदार्ष्टान्तिकसूत्राणि ॥

मूलम्—चत्वारि जुग्गा पण्णत्ता, त जहा जुत्ते णाममेगे जुत्ते  
४। एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा जुत्तेणाम  
मेगे जुत्ते ४, । ५। एव जहा जाणेण चत्वारि आलावगा, तहा,  
जुग्गोणवि, पडिक्खो तहेश पुरिसजाया जाव सोहेत्ति ॥ सू०१२ ॥

छाया—चत्वारो युग्य प्रकृत्या, तप्या -युक्त नामैकं युक्तम् ४, एवमेव  
चत्वारि पुरुषनाशानि प्रकृत्यानि, तप्या -युक्तो नामैको युक्तः ४, एवं यथा यानेन

पर-अयुक्तरूपवाला होना है-ज्ञानादि गुणवाला, या उचित वेपवाला,  
या-सुरचित वेपवाला नहीं होता है। अथशिष्ट दो भग भी इसी तरह  
से समझ लेना चाहिये। हमी प्रकार से कोई एक पुरुष ऐसा होता है,  
जो ज्ञानादि गुणों से युक्त होता है और-उचित शोभावाला भी होता  
है वह प्रथम भग है, १ अथशिष्ट तीन भग भी इसी प्रकार से जान  
लेना चाहिये ॥ सू०११ ॥

अथ पुनः सूत्रकारदृष्टान्त और-पुरुषदार्ष्टान्तिक सूत्रों को कहते हैं

“ चत्वारि जुग्गा पण्णत्ता ”—इत्यादि-१२

सूत्रार्थ—युग्य चार कहे गये हैं, युक्तयुक्त, १ युक्तायुक्त,  
२ अयुक्तयुक्त २ और - अयुक्तायुक्त, ४। ऐसे पुरुष भी  
चार कहे गये हैं जैसे युक्तयुक्त, १ इत्यादि। यान के जैसे  
युग्य के साथ भी युक्तयुक्त परिणत युक्तरूप, युक्तशोभा आदि पदों  
को जोड़कर चार आलापक बन जाते हैं ऐसा समझ लेना चाहिये।

सुरचित वेपधी रचित दीप छे भाहीना छे भांगी पक्ष जेच प्रभावे समल  
शक्य जेवा छे

यानना 'सुप्तसुप्त शोभावत्' आदि चार भांगी सरण छे

पुरुषना पक्ष जेवा च चार भांगी समकवा जेम के (१) डोप जेच  
पुरुष ज्ञानादि शुद्धीशी सुप्त दीप छे जने उचित शोभावाणे पक्ष दीप  
छे भाहीना पक्ष भांगी पक्ष आ पडेवा भांगीने आधारे समल देवा । सू. ११।  
दो वे सूत्रकार दृष्टान्त जने दार्ष्टान्तिक पुरुषना सूत्रेणु निरूपण करे  
करे छे— 'चत्वारि जुग्गा पण्णत्ता' इत्यादि—

सुप्त (वाहनने जेयानार के उपाहनार जगद अथवा पुरुष) चार  
प्रकारना दीप छे (१) सुप्तसुप्त (२) सुप्तसुप्त (३) असुप्तसुप्त जने  
(४) असुप्तसुप्त जेच प्रभावे पुरुषे पक्ष चार प्रकारना दीप छे

क्त्वार आलापकास्तथा युग्येनापि । प्रतिपक्षस्तथैव पुरुषजातानि यावत् शोभेति ।  
॥ सू० १२ ॥

टीका—“ चत्वारि जुग्मा ” इत्यादि—युग्या-युगं-रथं वहन्तीति युग्या=  
वृषभाश्वादयः, यद्वा-युग्मानि- द्विहस्तप्रमाणानि चतुरस्राणि सवेदिकानि साष्टङ्का-  
राणि गोल्लदेप्रसिद्धानि जम्पानानि तानि चत्वारि मज्ञप्तानि, तद्यथा- एकं युक्तं-

इसी तरह से पुरुष भी चार प्रकार के होते हैं ऐसा प्रारम्भ करके युक्त-  
शोभा तकके समस्त भद्रों को पुरुष सम्बन्धी चतुर्भङ्गी में कह देना  
चाहिये । युक्तयुक्त, १ युक्ताऽयुक्त, २ अयुक्तयुक्त, ३ अयुक्तायुक्त, ४  
युक्तयुक्त-परिणत, १ युक्तायुक्त-परिणत, २ अयुक्तयुक्तपरिणत, ३ अयु-  
क्ताऽयुक्त-परिणत, ४ युक्तयुक्त-रूप, १ युक्तायुक्त-रूप-२ अयुक्त  
युक्त रूप, ३ अयुक्ताऽयुक्त-रूप, ४ युक्तयुक्त-शोभासम्पन्न, १ युक्ता-  
ऽयुक्त शोभासम्पन्न, २ अयुक्तयुक्त शोभासम्पन्न, ३ और-अयुक्ताऽ-  
युक्त शोभासम्पन्न, ४, इस प्रकार से सब १६ भद्रों को युग्य दृष्टान्त में  
और-पुरुष दाष्टान्तिक में प्रतिपादक ये सूत्र हैं ।

इस सूत्र में -- “ युगं-रथाङ्गं ( प्रवहणाङ्गं ) शिविकाङ्गं वा  
वहन्ति-इति युग्याः, ४ इस व्युत्पत्ति के अनुसार युग्य  
शब्द से वृषभादि, या -- मनुष्य गृहीत होते हैं । क्योंकि-

(१) युक्तयुक्त भाकीना त्रयु प्रकार उपर सुत्रम समन्वा.

याननी जेम सुग्यनी साथे पण्य युक्त, युक्तपरिणत, युक्तइप अने  
युक्तशोभा अ द्वि पढेने जेडीने चार आलापक णनी नय छे जेम प्रभाण्ये  
पुरुष विषयक पण्य चार आलापक अने छे जेम समन्वु'. आरीने पुरुष  
विषयक चार अतुलगी अने छे

युग्य विषयक पडेली अतुर्भगी तो उपर आपत्रामा आवी छे. डवे  
णीण्य अतुर्भगी प्रकट करवामा आवे छे-(१) युक्तयुक्त परिणत, (२)  
युक्ता युक्त परिणत, (३) अयुक्तयुक्त परिणत अने (४) अयुक्तायुक्त परिणत.  
त्रीण्य अतुर्भगी-(१) युक्तयुक्त इप, (२) युक्तायुक्त इप, (३) अयुक्त-  
युक्त इप अने (४) अयुक्तायुक्त इप

चौथी अतुर्भगी-(१) युक्तयुक्त शोभासपन्न, (२) युक्तायुक्त शोभा-  
सपन्न (३) अयुक्तयुक्त शोभासपन्न, अने (४) अयुक्तायुक्त शोभासपन्न.

आ प्रकारनी चार अतुर्भगीज्यो पुरुषना विषयमा पण्य समन्ववी. आ  
सूत्रमां “ युग रथाङ्गं ( प्रवहणाङ्गं ) शिविकाङ्गं वा वहन्ति इति युग्या ” आ  
व्युत्पत्ति अनुसार युग्य शब्दधी अणद आदि प्राणी अथवा पादभी आदि

યાહનાઽઽરોહણસામઘ્યા સહિતં સત્ પુનર્પુક્ત-વેગાદિસંમ્પન્નમિતિ પ્રથમો મહ્નઃ  
 । ૧ । શેષમજ્ઞમ્ સ્વયમૂક્તમ્ ૪ । એવમેવ લૌકિકે લોકોત્તરે ચ પુરુષે ચત્વારો મહ્ના  
 ઓખ્યાઃ ૪ । એમ્=મમુના પ્રકારેણ યાનેન યથા=યાનવદ્ સુચનાઽપિ યુક્ત-યુક્ત  
 પરિણત-યુક્તરૂપ યુક્તશ્લોમાદિષ્ટિતામસ્વાર આભાષકા ઓખ્યા । પ્રતિપખા-  
 વાષ્ટાન્તિકસ્તયૈશ્વ=પૂર્વશ્વદેશ, તમ્ ' પુરુષજાતાનિ ચત્વારિ ' ઇત્યુપક્રમ્ય ' યુક્ત  
 શ્લોમ' -પર્યન્તા સર્વેઽપિ મહ્ના યક્તવ્યા ઇતિ । તમાહિ—યુક્ત યુક્તં ૧ યુક્તમયુ  
 ક્તમ્ ૨ અયુક્તં યુક્તમ્ ૧ અયુક્તમયુક્તમ્ ૪ । યુક્ત યુક્તપરિણતં ૧, યુક્તમયુક્ત  
 પરિણતમ્ ૨, અયુક્ત યુક્તપરિણતમ્ ૧ અયુક્તમયુક્તપરિણતમ્ ૪ । યુક્ત યુક્ત  
 રૂપં, ૧ યુક્તમયુક્તરૂપમ્ ૨, અયુક્ત યુક્તરૂપમ્ ૩ અયુક્તમયુક્તરૂપમ્ ૪ । યુક્ત  
 યુક્તશ્લોમં ૧, યુક્તમયુક્તશ્લોમમ્ ૨, અયુક્ત યુક્તશ્લોમમ્ ૩, અયુક્તમયુક્તશ્લોમમ્  
 ૪ । ઇતિ યુગ્મદૃષ્ટાન્તે પુરુષદાઽન્વિતક્રેઽપિ ચ સૂત્રમીયમિતિ પર્યવસિતમ્ ॥૨૦૧૨॥

મૂક્તમ્—ચત્વારિ સારહી પળળાત્તા, સજહા--જોયાવહત્તા ણામ  
 મેગે ણો વિજોયાવહત્તા ૧, વિજોયાવહત્તા ણામમેગે ણો જોયા

વિહસ્તપ્રમાણોપેત ચૌકોર વેદિકા સહિત અલક્ષ્મરયુક્ત " જમ્પાન "  
 " પાલખી ' વિશેષ, જોકિ ગોલ્લ દેશમે પ્રસિદ્ધ હે વે મી " યુગ્ય "  
 હે । ઇસમે પ્રથમ મહ્ન ઇસ પ્રકાર ચટિત કરના ચાહિયે-જેસે કોઈ એક  
 યુગ્ય એસા હોના હે, જો યુક્ત યાહન પર આરોહણ કરનેકી સાધન  
 સામગ્રી સહિત હોતા હે ઓર વેગ આદિ સે મી સમ્પન્ન હોતા હે યહ  
 યુક્ત યુક્ત ઇસ પ્રથમ મહ્નવાલા યુગ્ય હે-૧ અવશિષ્ટ મહ્નોકી ઘટના  
 સ્વય કર હેના ચાહિયે-૪ ઇસી તરહ લૌકિક એક [અલૌકિક] લોકો  
 ત્તર પુસ્ત્રો મે ચાર મજ્ઞ જાનના ચાહિયે ॥૨૦૧૨॥

ઉપાસનાર મનુષ્ય ચુકીત યાપ છે એ કે એ હામના પ્રમાણવાળી ગોલ જેમના  
 આશુલ્ય વેદિકા સહિતની અલક્ષ્મરયુક્ત " જમ્પાન " ( પાલખી વિશેષ ) ને  
 પણ મુખ્ય કહે છે પણ અહી તે પ્રકલ્પ કરવાની નથી

મુખ્યના પહેલા જાગ્રાનો ભાવાર્થ—કોઈ એક મુખ્ય ( જગદ આદિ )  
 હોય છે કે જે યુક્ત-વાહન પર આરોહણ કરવાની સાધન સામગ્રીથી  
 મુક્ત હોય છે અને વેત્ર આદિથી પણ મુક્ત હોય છે આ " મુક્તમુક્ત "  
 નામનો પહેલો જાગ્રા થયો જાગ્રીના જાગ્રાઓનો ભાવાર્થ પણ અતે જ સમજ  
 લેવો એજ પ્રમાણે લૌકિક પુરુષો અને લોકોત્તર પુરુષોને અનુશક્તિને પણ  
 આર અનુશક્તિ સમજ લેવી ॥ ૨૦ ૧૨ ॥

वइत्ता २, एगे जोयावइत्तावि विजोयावइत्तावि ३, एगे जोयावइत्ता णो विजोयावइत्ता ४। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा—जोयावइत्ता णाममेगे णो विजोयावइत्ता० ४। एवामेव चत्तारि हया पणत्ता, तं जहा—जुत्ते, णाममेगे जुत्ते, जुत्ते, णाममेगे अजुत्ते० ४। एवामेव चत्तारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते १, एवं जुत्तपरिणए, जुत्त-रूवे, जुत्तसोहे, सव्वेसिं पडिक्खो पुरिसजाया । सू० १३ ॥

छाया—चत्वारः सारथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—योजयिता नामैको नो वियो जयिता १, वियोजयिता नामैको नो योजयिता २, एको योजयिताऽपि वियो-जयिताऽपि ३, एको नो योजयिता नो वियोजयिता ४। एवमेव चत्वारि पुरुष-जातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—योजयिता नामैको नो वियोजयिता० ४, एवमेव

“ चत्तारि सारही पणत्ता ” इत्यादि—१३

सारथी चार प्रकारके होते हैं, जैसे कोई एक सारथि योजयिता होता है वियोजयिता नहीं होता है—१ कोई एक वियोजयिता होता है योजयिता नहीं—२ कोई एक योजयिता—वियोजयिता भी—३ और कोई एक न तो योजयिता, न वियोजयिता होता है—४ ऐसे ही पुरुष भी चार कहे गये हैं जैसे कोई एक पुरुष योजयिता होता है वियोजयिता नहीं—१ इत्यादि—४

“ चत्तारिसारही पणत्ता ” इत्यादि—।सू. १३।

सारथिना नीचे प्रमाणे चार प्रकार छे—(१) केछ अके सारथि योज-यिता होय छे, वियोजयिता होतो नथी. (२) केछ अके सारथि वियोजयिता होय छे पणु योजयिता होतो नथी, (३) केछ अके सारथि योजयिता पणु होय छे अने वियोजयिता पणु होय छे. केछ अके सारथि योजयिता पणु होय छे, अने वियोजयिता पणु होय छे (४) केछ अके सारथि योजयिता पणु होतो नथी अने वियोजयिता पणु होतो नथी. अने प्रमाणे पुरुषो पणु चर प्रकारना होय छे—(१) केछ अके पुरुष योजयिता होय छे, पणु वियो-जयिता होतो नथी, इत्यादि चार प्रकार समजवा



धत्वारो ह्याः प्रज्ञाः, तद्यथा—युक्तो नामैको युक्त, युक्तो नामैकोऽयुक्तः ४, एममेव चकारि पुरुषनातानि प्रज्ञानि, तद्यथा—युक्तो नामैको युक्त, एते युक्त परिणतः, युक्तरूपः, युक्तप्रोमः, सर्वेषां प्रतिपत्तः पुरुषनातानि । सू० १३ ।

टीका—“ चत्वारि सारणी ” इत्यादि — सारयथा—एवमाहकाधत्वारः प्रज्ञाः, तद्यथा—एको योत्रयिता—रघोऽश्वादीनां सङ्गतीकर्ता भवति किन्तु नो विद्योत्रयिता—रघाश्वादीनां पृथक्ता न भवति इति प्रथमो महः । १ । तथा—एको विद्योत्रयिता भवति नो योत्रयिता, इति द्वितीयः । २ । एको योत्रयिता भवति विद्योत्रयिताऽपि इति तृतीयो महः । ३ । एको नो योत्रयिता भवति नो विद्योत्र

इसी प्रकारसे चार प्रकारके 'ह्य' कहे गये हैं, जैसे कोई एक ह्य (घोडा) युक्त युक्त होता है—१ इत्यादि—४ । इसी प्रकार ४ चार पुरुष जात कहे गये हैं, जैसे युक्त युक्त इत्यादि—४ । इसी प्रकार युक्त परिणत—युक्तरूप और युक्त शीमा सम्पन्न ये सब पद जोड़कर यहाँ मह रचना कर लेनी चाहिये

तात्पर्य इस सूत्रका ऐसा है—रघवाहक नाम सारथिका है ये चार प्रकार के कहे गये हैं सो इनमें कोई एक सारथि ऐसा होता है जो रथ में भद्रव आदिकों का सङ्गन ही करता है किन्तु—रथसे उन भद्रवादिकों को अलग नहीं करता है इस प्रकार का यह प्रथम मह है । तथा—कोई एक सारथि ऐसा होता है जो केवल रथादिकोंसे भद्रवादिकोंको अलग ही करता है उन्हें उसमें सङ्गन—जोड़ना नहीं करता है ऐसा यह द्वितीय मह है—२ तथा—कोई एक सारथि ऐसा होता है जो रथादिकों को योजित और विद्योत्रयि भी करता है ऐसा यह तृतीय मह है—३ तथा—कोई एक सारथि

ये च प्रमाद्ये योऽना पञ्च अर प्रज्ञा ह्ये—(१) कोष्ठ अत्र घोडा

मुञ्जमुञ्ज डोय छे, ईत्यादि चार प्रज्ञा समञ्जसा पुरुषना पञ्च मुञ्जमुञ्ज आदि चार प्रज्ञा समञ्जसा ये च प्रमाद्ये मुञ्जपरिवृत्त, मुञ्जत्रय अने मुञ्जशीमा सप्त आ पडेने जेरीने पञ्च नील तत्र अत्रुर्भीगी ह्ये तस्य अने शास्त्रिक पुरुषस्य चिये समल बेवी

आ सूत्रने ज्ञानाथ आ प्रमाद्ये छे—२व अज्ञानाने सारथि ह्ये छे तेना नीचे प्रमाद्ये चार प्रज्ञा ह्ये छे—(१) कोष्ठ अत्र सारथि जेवा डोय छे छे ने रथ साथे अत्रदिने जेठे के अरे पञ्च तेमने रथशी छुटा करते नथी (२) कोष्ठ अत्र सारथि अत्रादिने रथशी अलग करे छे पञ्च तेमने रथ साथे जेठेना नथी (३) कोष्ठ अत्र सारथि अत्रादिने रथ साथे जेठे छे पञ्च अरे अने तेमने विद्योत्रयि (अत्र) पञ्च करे छे (४) कोष्ठ

यिता, इति चतुर्थो भद्रः ४॥ चतुर्थभङ्गनिर्दिष्टः सारथिस्तु अन्वादीन् चालयत्येवेति ।

“ एवमेवे ”—त्यादि—एवमेव पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—  
एको योजयिता—संयमयोगेषु साधुनां प्रवर्तयिता भवति किन्तु नो वियोजयिता—  
अनुचितकार्यप्रवृत्तानां निवर्तयिता न भवति, इति प्रथमः १। तथा—एको वियो-  
जयिता—अनुचितकार्यप्रवृत्तानां निवर्तयिता भवति किन्तु नो योजयिता—संयमयो-  
गेषु प्रवर्तयिता न भवतीति द्वितीयः । २। तथा—एको योजयिताऽपि—संयमयो-  
गेषु प्रवर्तयिताऽपि वियोजयिताऽपि—अनुचितकार्यप्रवृत्तानां निवर्तयिताऽपि भवति,

ऐसा होता है जो—अश्वदिकों को रथमें न तो सलज्ज्म करता है और  
न उससे उन्हें दूर—पृथक् ही करता है यह चतुर्थ भङ्ग है—४ यह  
चतुर्थ भङ्गवाला नागधि केवल अश्वदिकों को चलाता है ।

इसी तरहसं पुण्यजान जो चार कहे गये हैं उनका तात्पर्य ऐसा  
है—कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो संयमयोगोंमें साधुजनोंको  
प्रवृत्त ही करता है किन्तु—अनुचित कार्यमें प्रवृत्त को वहांसे हटाने-  
वाला नहीं होता है, ऐसा यह प्रथम भङ्ग है—१ तथा कोई एक साधु पुरुष  
ऐसा ही होता है जो—अनुचित कार्यमें प्रवृत्त हुवे जनों को वहांसे हटाने-  
वाला ही होता है किन्तु—संयमयोगोंमें प्रवृत्ति करानेवाला नहीं होता  
होता है ऐसा यह द्वितीय भङ्ग है—२ तथा—कोई एक साधुपुरुष ऐसा  
है जो संयमयोगोंमें प्रवृत्ति भी कराता है और अनुचित  
कार्योंमें प्रवृत्तों को वहांसे हटाता भी है यह—ऐसा तृतीय भङ्ग है—३

એક સારથી અશ્વાદિકોને રથ સાથે યોજિત પણ કરતો નથી અને તેમને  
રથથી વિયોજિત (અલગ) પણ કરતો નથી. આ ચોથા પ્રકારનો સારથિ માત્ર  
અશ્વાદિકોને અથવા રથને ચલાવવાનું કામ જ કરે છે.

એજ પ્રમાણે પુરુષોના પણ બે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે, તેમનું હવે સ્પષ્ટી  
કરણ કરવામાં આવે છે—(૧) કોઈ એક સાધુપુરુષ એવો હોય છે કે જે  
સાધુઓને સંયમયોગોમાં પ્રવૃત્ત જ કરાવે છે, પણ અનુચિત કાર્યમાં પ્રવૃત્ત  
થયેલા સાધુને તેમ કરતા અટકાવતો નથી (૨) કોઈ એક સાધુપુરુષ એવો  
હોય છે કે જે અનુચિત કાર્યોમાં પ્રવૃત્ત થયેલા માણસોને તે પ્રકારની પ્રવૃત્તિ  
કરતા અટકાવે છે, પણ તેમને સંયમયોગોમાં પ્રવૃત્ત કરવાનો હોતો નથી.  
(૩) કોઈ એક સાધુપુરુષ એવો હોય છે કે જે માણસોને સંયમયોગોમાં  
પ્રવૃત્ત પણ કરે છે અને અનુચિત કાર્યમાં પ્રવૃત્ત થનારને તે કાર્ય કરતાં  
અટકાવે છે પણ ખરો (૪) કોઈ એક સાધુ પુરુષ એવો હોય છે કે જે

इति तृतीयः । ३ । तथा-एको नो योजयिता नो विभोजयिता मवति, स च साधारणशक्तिवन्मन्नो मुनिः ४। इति चतुर्थः ४। इति लोकोत्तरपुरुषमपेक्ष्य व्याख्यानम् । साधारणपुरुषनिवसार्था तु-एको योजयिता-वचिन् कार्ये प्रवर्तयिता मवति, किन्तु नो विभोजयिता-उतो निवर्तयिता न मवतीति प्रथमः । १। एष शेषमङ्गप्रथममपि बोध्यम् ४।

“ एवमेव ह्यथा ” इत्यादि—एवमेव=एवमेव ह्यथा— अन्वाः चत्वारः प्रकृत्याः, तद्यथा—“ युक्तो नामैक ” इत्यादि । एतन्मूत्र यानमूत्रवद् व्याख्येयम् ।

तथा-कोई एक साधु पुरुष ऐसा भी होता है जो न सयमयोगोंमें प्रवृत्ति करता है और न अनुचित कार्योंमें फसेको वहांसे हटाता ही है ऐसा चतुर्थ भद्रवाला कोई एक साधारण शक्तिशाली मुनिजन होता है-४ इस प्रकारका यह व्याख्यान इन चार भद्रोंका लोकोत्तर पुरुष की अपेक्षा लेकर किया गया है । साधारण पुरुषकी अपेक्षासे इनका व्याख्यान ऐसा है—जैसे कोई एक पुरुष ऐसा होता है जो किसी काममें किसीको प्रवृत्त करानेवाला ही होता है वससे उसे निवृत्त करानेवाला नहीं-१ अबशिष्ट तीन भग इमी तरहसे समझ लेना चाहिये-२ एवमेव—इत्यादि यानके समान ह्य अह्वके भी चार प्रकार होते हैं जैसे कोई एक तो ऐसा अह्व होता है जो पहले भी रथादिमें जोता जाता है और पादमे भी-१ कोई एक पहलेही जोता

देवाने सयमयोगोंमें प्रवृत्त पण करते नहीं अने अनुचित काम करनेसे तेम हटाता अत्रावने पण नहीं कोइ साधारण शक्तिशाली मुनिने आस्था प्रकाशमें गवावी शक्य है आ चार अत्रानु अह्वन देवोत्तर पुरुषकी अपेक्षाके इत्यादि आ पु है हवे सामान्य पुरुषकी अपेक्षाके चार अत्रानु स्पष्टीकरण इत्यादि आवे है

(१) कोइ कोइ पुरुष कोवे देव है के ने कोइ, कामोंमें कोइ अहितने प्रवृत्त करानेवा अ देव है, पण तेमांशी तेने निवृत्त करानेवा देवो नही, आश्रीना त्रय अत्रा पण अत्र प्रभावे समस्त देवा

‘ एवमेव ’ इत्यादि—यानकी अत्र अत्रना पण चार प्रकार देव है—(१) कोइ कोइ अत्र कोवे देव है के ने पदेवां पण रथादिनी साथे कोइ शक्य है अने पही पण कोइ शक्य है (२) कोइ कोइ अत्र पदेवां कोइ शक्य है पण पही कोइ शक्यो नही. (३) कोइ कोइ अत्र कोवे

“ एवामेव चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि—एवमेव=हयनदेव पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—युक्तो नामैक इत्यादि लौकिकलोकोत्तरपक्षमनुसृत्य व्याख्येयम् ।

“ एवं जुत्परिणत ” इत्यादि । एवं—यानवद् “ युक्तपरिणतो युक्तरूपो युक्तशोभः ” इत्येतेः पदेः साकं हयसूत्रचतुर्भङ्गी बोध्या ४। “ सर्वेसिं ”—सर्वेषां प्रत्येकं भङ्गांश्चतुरश्वतुरः कृत्वाः एकैकभङ्गचतुष्टयस्य ‘ पडिवक्त्रो ’ प्रतिपक्षो—दाष्टान्तिको भणनीयः । तत्र को दाष्टान्तिकः ? इत्यपेक्षायामाह—‘ पुरिसजाया ’ इति । पुरुषजातानि—पुरुषजातरूपो दाष्टान्तिकः सर्वेषां भणनीय इति । सू० १३ ।

मूलम्—चत्वारि गया पणता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते ४, एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पणता, तं जहा—जुत्ते णाममेगे जुत्ते ४, एवंजहा हयाणं तथा गयाणं भाणियव्वं, पडिवक्त्रो तहेव पुरिसजाया । सू० १४ ।

जाता बादमें नहीं—२ कोई एक पहले भी, बादमें भी, और भी समयमें जोता जाता है—३ तथा—कोई एक ऐसा होता है जो नतो पहले, न बादमें ही जोता जाता है—४ । अथवा—इन युक्तयुक्त आदि भङ्गोंकी व्याख्या यान जैसी जाननी चाहिये और—यानके समान ही ‘ युक्त परिणत ’ ‘ युक्तरूप ’ और ‘ युक्त शोभा सम्पन्न ’ इन पदोंको घटित करके हय चतुर्भङ्गा जाननी चाहिये । और प्रत्येक चतुर्भङ्गी के समान प्रतिपक्ष दाष्टान्तिक जो पुरुषजात हैं वे भी चार प्रकारके हैं ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० १३ ॥

डोय छे के जे पडेला नेडी शकातो नथी पणु पछी नेडी शकाय छे (४) डोय अक्क अश्व ओवो डोय छे के जेने पडेला पणु नेडी शकातो नथी अने पछी पणु नेडी शकातो नथी. अथवा आ युक्तायुक्त आदि लांगाओनी व्याख्या यानना सूत्रमां कइया प्रभाणे जे समजवी अने याननी जेम जे युक्तपरिणत, युक्तरूप अने युक्तशोला सपन्न आ पढोने थोणवाथी अश्व विषयक भीण त्रणु अतुर्भंगी पणु अनावी शकाय छे, अश्वविषयक जेवी आर अतुर्भंगी कही छे ओवी जे आर अतुर्भंगी दाष्टान्तिक पुरुष विषे पणु समण देवी नेधअ. ॥ सू. १३ ॥

छाया—चत्वारो गजाः प्रवृत्ताः तद्यथा—युक्तो नामैका युक्तः १। एवमेव चत्वारि पुरुषभासानि प्रवृत्तानि, तद्यथा—युक्तो नामैको युक्तः ४ एव यथा इयानां तथा गजानामपि मणितन्त्र्यं, प्रतिपत्तस्तथैव पुरुषजातानि । सू० १४ ।

टीका—“ चत्वारि गया ” इत्यादि—सुगमम् ।

“ एवामेव चत्वारि पुरिसजाया ” इत्याद्यपि स्पष्टमेव ।

“ एव जहा—इयाणं ” इत्यादि—एवम्=इत्थं—प्रदर्शितक्रमेणेत्यर्थाः, यथा इयानां युक्तादिपदयोर्मनया प्रत्येक चत्वारश्चत्वारो मन्वा मन्विता, तथा=तेन क्रमेण गजानामपि युक्तादि श्लोमान्तपदसमुत्पन्नयोजनापुरस्सर प्रत्येक मङ्गलपद प्त्यं मणितन्त्र्यम् ।

“ पडिवक्त्रो तदेव पुरिसजाया ” पुरुषभातकादाष्टान्तिकोऽपि तस्यै मणितन्त्र्यः । सू० १४ ।

मूलम्—चत्वारि जुग्गायरिया पणत्ता, त जहा—पथजाइ णाममेगे णो उप्पहजाई १, उप्पहजाई णाममेगे णो पथजाई २, एगे पथजाई त्ति उप्पहजाईत्ति ३, एगे णो पथजाई णो उप्पहजाई ४, एवामेव चत्वारि पुरिसजाया । सू० १५ ।

“ चत्वारि गया पणत्ता ”—इत्यादि १४

सुमार्थ—गज—हाथी चार प्रकारकेहैं, युक्तयुक्त—१ युक्ताऽयुक्त—२ अयुक्त युक्त—३ और अयुक्तायुक्त—४ । ऐसे ही पुत्र्य जात भी युक्तयुक्त आदिके मेदसे चार कहे गये हैं ४।

टीका—इयोंकी युक्तादि पद योजनासे बनाई गई चतुर्भङ्गी के जैसे युक्तादि पदसे लेकर युक्त श्लोमासम्पन्न तरु के पदोंकी योजना से गजोंकी चतुर्भङ्गी बना लेनी चाहिये । और साथ साथ पुत्र्य जात भी चार हैं इन सब सूत्रोंका व्याख्यान हयसूत्र जैसा कर लेना चाहिये ॥सू० १४॥

सूत्रार्थ—‘ चत्वारि गया पणत्ता ’ इत्यादि—

अथ (दाशी) चार प्रकारना कथा छे—(१) युक्तयुक्त (२) अयुक्तयुक्त, (३) अयुक्तयुक्त अने (४) अयुक्तयुक्त अथ प्रभावे पुरुषना पणत्तयुक्त आदि चार प्रकार समझया

टीका—अथती अथ अ युक्तयुक्त अयुक्तयुक्त अने युक्त श्लोमासम्पन्न, आ पदोने दोलवाथी अथविषयक भीछ तत्र अतुर्भङ्गी पणत्त अने छे अथ प्रकारनी भीछ तत्र अतुर्भङ्गी इतिन्तिक पुरुष विरे पणत्त अथभी दक्षसूत्र (सू. १३)ना अथो अ आ सूत्रनो व्याख्यान अथवेत्त सू. १४

छाया—चतस्रो युग्याऽऽचर्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पथियायि नामैकं नो उत्पथयायि १, उत्पथयायि नामैकं नो पथियायि २, एक, पथियाय्यपि उत्पथयाय्यपि ३, एकं नो पथियायि नो उत्पथयायि ४, एवमेव चत्वारि पुरुषजातानि । सू० १५ ॥

टीका—“ चत्वारि जुग्मायरिया ” इत्यादि—युग्याऽऽचर्याः—युगं—रथं वहतीति युग्यमश्वादि वाहन तस्याऽऽचरणान्याचर्याः—वहनक्रियाः गमनक्रिया वा चतस्रः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—“ पथजाई ’ इत्यादि—एकं युग्यम्—अश्वादिवाहन पथियायि—पन्थानं—मार्गयति=गच्छतीत्येवं शीलं तथा भवति, किन्तु नो उत्पथयायि—उत्पथः—त्यक्तः पन्थाः उत्पथः=कुमार्गः, तं गच्छतीत्येवंशीलं मुत्पथयायि न भवति, इति प्रथमो भङ्गः । १ ।

तथा—एकम् उत्पथयायि भवति, किन्तु नो पथियायि, इति द्वितीयः २ ।

“ चत्वारि जुग्मायरिया पणत्ता ”—इत्यादि १५

सुत्रार्थ—युग्याचर्या चार कही गई हैं, पथियायी नो उत्पथयायी—१ उत्पथयायी नो पथियायी—२ पथियायी भी—उत्पथयायीभी—३ और नो पथियायी नो उत्पथयायी—४ । इसी प्रकारसे पुरुष जात भी चार कहे गये हैं

भावार्थ—युग्यपदसे रथ वहन करनेवाले अश्वादि वाहन यहाँ गृहीत हुवे हैं, इनकी जो वहनक्रिया या गमनक्रिया है वह आचर्या पदसे गृहीत है । इसे चार प्रकार होनेका तात्पर्य ऐसा है—कोई अश्वादि वाहन ऐसा होता है जिसका स्वभाव मार्गसे चलनेका कुमार्गसे नहीं होता है—१ यह पथियायी मार्ग में चलनेवाला का प्रथम भङ्ग है कोई एक ऐसा होता है जो कुमार्ग से चलने का स्वभाववाला होता है मार्ग से नहीं, २ यह द्वितीय भङ्ग है ।

“ चत्वारि जुग्मायरिया पणत्ता ” इत्यादि—

युग्याचर्या (अश्वादिनी गमन क्रिया) चार प्रकारनी कही छे—(१) पथियायी नो उत्पथयायी, (२) उत्पथयायी नो पथियायी, (३) पथियायी अने उत्पथयायी (४) नो पथियायी नो उत्पथयायी अने प्रभाषे पुरुषोना पण् चार प्रकार कहा छे

भावार्थ—युग्य अटके रथादिने जेथनार अश्वादि ते अश्वादिनी जे पडन क्रिया अथवा गमनक्रियाने ‘आचर्या’ कहे छे तेना चार प्रकार हुवे स्पष्ट करवाभां आवे छे—(१) कोछ अश्वादि युग्य डोय छे जे मार्गे आलवाना स्वभाववाणुं डोय छे—कुमार्गे आलतुं नथी. (२) कोछ अश्वदि वाडन कुमार्गे जे आलवाना स्वभाववाणुं डोय छे. मार्गे तो आलतुं जे नथी. (३)

तथा—एकं पथियाप्यपि मवति, उत्पथयाप्यपि, इति तृतीयः । ३।

तथा—एकं नो पथियापि मवति नो उत्पथयापि, इति चतुर्थ १ । ४।

यद्यपि सामान्यसूत्रे युग्यस्याचर्याचतुर्विंशतीयत्वेनोक्तास्तथापि आश्रयाऽऽधेयपोरमदन्विषया चर्याऽऽश्रयो युग्येष चतुर्विंशत्येनोक्तमिति । इति द्रष्टव्यमप्यप्ये । माषयुग्यपक्षेत्—युग्यशब्दस्पोपचारिकत्वन युग्यसदृश इत्यर्थं, तत्सादृश्य च समययोगमारभेत्तया साद्युषु ब्राह्म, तेषामाचर्या युग्याचर्याश्च तन्न मङ्गला इत्यर्थो षो य, अप्रापि युग्यपदलक्षितस्य साधाराचर्याद्वारेण चातुर्विंशत्य, तत्र मयमः पथियापी अप्रमथ, सदनुष्ठापित्वात् १, उत्पथयापी लिङ्गी

तथा—कोई अश्यादि वाहन ऐसा होता है जो मार्गसे जानेका स्वभाव वाला होता है और कुमार्गसेमी—३ ऐसा यह तृतीय भइ है । कोई एक अश्यादि न मार्गसे—न कुमार्गसे जानेका स्वभाववाला होता है—४ यद्यपि इस सामान्य सूत्रमें युग्यकी आचर्या चार प्रकार से कही गई है फिर भी आश्रय और आश्रेय में अमेइ विषयसे आचर्याके आश्रय भूत युग्यही चार प्रकारके कहे गये हैं ऐसा समझना चाहिये । यह कथन द्रव्य युग्यके पक्षमें किया है, भाषयुग्यके पक्षमें इन भाषोंका पों कथन करना चाहिये । युग्य शब्दको औपचारिक मानके युग्य जैसा जो हों वे युग्य हैं, ऐसे युग्य साद्यु होते हैं, क्योंकि—ये संयम भारको वहन करते हैं अतः इनमें—युग्य सादृश्य है इनकी चर्या युग्याचर्या है । यहाँ चर्या द्वारा युग्य पदोपलक्षित साद्युमें चतुर्विंशती इस

कोई अश्यादि वाहन भाषों पर बधने बालवाना स्वभाववाणु पक्ष दोष छे जने कुभाषों ब लवाना स्वभाववाणु पक्ष दोष छे (४) कोई जेके अश्यादि (युग्य) भाषों बधने बवाना स्वभाववाणु पक्ष दोष छे नधी जने कुभाषों बालवाना स्वभाववाणु पक्ष दोष छे नधी, जे के आ सामान्य सूत्रमां युग्यनी आचर्या (अश्यादिनी अभनक्रिया) चार प्रकारनी कही छे, छत्तां पक्ष आश्रय जने आश्रेयमां अश्रेयोपचारनी अपेक्षाजे आचर्याना आश्रयभूत युग्य ( अश्या दिनां ) च अश्रीं चार प्रकार समजघ जेधजे आ कथन द्रव्ययुग्यने अनुवक्षीने करवामां आश्रु छे, ज वयुग्यनी अपेक्षाजे आ लांजाजोतुं कथन आ प्रभावे धनु जेधजे युग्य शब्दने औपचारिक जघीने युग्य जेरा जे दोष तेने पक्ष युग्य कही शक्य. सबमकारतु बहन करवारे साधुने ज जेधं युग्यसमान जघी शक्य. जेरा साधुनी आचर्याने युग्याचर्या कही शक्य. अश्रीं आचर्या द्वारा युग्य पदोपलक्षित साधुमां चतुर्विंशतीतु आ प्रभावे

असदनुष्ठापित्वात् २, उभययायी प्रमत्तः, उभयानुष्ठापित्वात् ३, अनुभययायी सिद्धः, अनुभयानुष्ठापित्वादिति ४।

“ एवामेवे ”—त्यादि—एवमेव—युग्यवदेव चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि,

तद्यथा—एकः—ऋश्चित् पुरुषः पथियायी—सुशास्त्रज्ञानसम्पन्न—सुगुरूपदिष्टसुदेवाऽऽ-  
राधनादिमार्गगामी भवति, किन्तु नो उत्पथयायी—कुशास्त्रज्ञानोपहतकुगुरूपदिष्ट  
कुदेवाऽऽराधनादिकुपथगामी नो भवति? एवं शेषमङ्गत्रयं बोध्यम् । ४।

प्रकार है—कोई एक साधु ऐसा होता है जो पथियायी सदनुष्ठान  
करनेवाला अप्रमत्त होता है—१ कोई एक असदनुष्ठान करनेवाला उत्प-  
थयायी प्रमत्त होता है—१ केवल साधुलिङ्गधारी होता है—२ कोई एक  
सद्—असद् अनुष्ठान करनेवाला उभययायी प्रमत्त और अप्रमत्त भी  
होता है—३ कोई एक अनुभययायी होता है क्योंकि—वह उभय प्रकारके  
अनुष्ठानमें एक काभी अनुष्ठान करनेवाला नहीं होता है ऐसा वह  
सिद्ध होता है—४। युग्य के सम्बन्ध से सम्बद्ध पुरुष जातभी चार  
होते हैं, जैसे—कोई एक पुरुष पथियायी होता है सुशास्त्र ज्ञान सम्पन्न  
शुर्वादि उपदेशसे सुदेवकी आराधना आदिके मार्गमें गमन स्वभाव-  
वाला होता है, परन्तु उत्पथयायी नहीं होता है कुशास्त्रज्ञानसे उपहत  
कुगुरु द्वारा प्रतिपादित कुदेवाराधन आदि कुमार्गमें जानेवाला नहीं  
होता है—१ इसी प्रकारसे शेष तीन भङ्ग भी समझना चाहिये । यद्य

प्रतिपादन करी शक्य—(१) कोई एक साधु एवे होय छे के ने पथियायी  
होय छे ओटवे के सदनुष्ठान करनारे अप्रमत्त संयत होय छे (२) कोई  
एक साधु एवे होय छे के ने असदनुष्ठान करनारे उत्पथयायी प्रमत्त होय  
छे ओटवे के देवण वेषधारी साधु न होय छे (३) कोई एक साधु सदनुष्ठान  
अने असदनुष्ठान करनारे उभययायी प्रमत्त अने अप्रमत्त होय छे (४)  
कोई एक साधु अनुभययायी होय छे, कारण के ते सदनुष्ठान पथु करतो  
नथी अने असदनुष्ठान पथु करतो नथी एवे ते सिद्ध होय छे

युग्यना दृष्टान्तने अनुज्ञप्यार प्रकारना पुरुषो होय छे—(१) कोई  
एक पुरुष पथियायी होय छे ओटवे के सुशास्त्रज्ञानसम्पन्न, शुरु आदिना  
उपदेश इप मार्गे अने सुदेवनी आराधनाने मार्गे गमन करवाना स्वभाव-  
वाला होय छे, परन्तु उत्पथयायी होतो नथी, ओटवे के कुशास्त्रज्ञानने कुमार्गे,  
कुगुरु प्रतिपादित कुदेवाराधना आदि कुमार्गे गमन करनारे होतो नथी; एवे  
प्रमाणे पाकीना त्रय भांगा पथु समथ देवा.



१ पद्मा-यथुत्तरयश्चरी स्वसिद्धान्त-परसिद्धात्परी गत्यर्थस्य 'या' घातोः 'ये गत्यर्थोस्ते ज्ञानार्था' इति बोधार्थकमपि, ततश्चापमर्थ-पथियायी-स्वसिद्धान्तज्ञायी, उत्पथयायी-परसिद्धान्तज्ञायीति, शेषं प्राग्बद्धनीयम् । सू० १५ ।

- मूलम्-चत्वारि पुष्पा पणगत्ता, त जहा-रुवसपक्षे णाममेगे णो गधसपन्ने १, गधसपन्ने णाममेगे णो रुवसपन्ने २, एगे रुवसपन्नेत्रि गंधसपन्नेत्रि ३, एग णो रुवसपन्ने णो गंधसपन्ने ४। एवामेव चत्वारि पुरिसजाया पणगत्ता त जहा-रुवसपन्ने णाममेगे णो सीलसपन्ने ४। सू० १६ ।

छाया-चत्वारि पुष्पाणि प्रहृष्टानि, तथया रूपसम्पन्नं नामैकं नो गन्धसम्पन्नं १, गन्धसम्पन्नं नामैकं नो रूपसम्पन्नम् २ एक रूपसम्पन्नमपि गन्धसपथी और उत्पथ प दो शब्द स्वसिद्धान्त परसिद्धान्त परक हैं, क्योंकि गत्यर्थक घातु ज्ञानार्थक भी होता है, यहाँ-" या " घातु गत्यर्थक है अतः-यह बोधार्थक भी हो सकता है, इसलिये-" पथियायी " इस भङ्गका अर्थ स्वसिद्धान्ताऽनुयायी, तथा-" उत्पथयायी " इसका परसिद्धान्तपायी ऐसा भी अर्थ होना है । इस प्रकारका अर्थ करके शेष भङ्ग भी समझ लेना चाहिये ॥सू० १५॥

"चत्वारि पुष्पा पणगत्ता इत्यादि"—१६

समर्थ-चार प्रकारके पुष्प कहे गयेहैं, जैसे कोई एक पुष्प ऐसा होता है जो केवल रूप सम्पन्न ही होता है-गन्ध सम्पन्न नहीं-१ कोई एक पुष्प केवल गन्धसम्पन्नही होता है रूप सम्पन्न नहीं-२ तथा-कोई

अथवा-"पथी" यह स्वसिद्धान्तवाचक अने 'उत्पथ' यह परसिद्धान्तवाचक है अतएव के गत्यर्थक घातु ज्ञानार्थक पक्ष दोष है अर्थात् 'या' घातु गत्यर्थक दोषायी बोधार्थक पक्ष स भली शक्ती है तेषी 'पथियायी' अर्थात् स्वसिद्धान्तने अनुयायी अने 'उत्पथयायी' अर्थात् परसिद्धान्तने अनुयायी, आ प्रकारने अथ पक्ष थाय है आ प्रकारने अथने अनुवक्षीने णायीना अथा समल लेवा लेउले । सू १५ ।

' चत्वारि पुष्पा पणगत्ता " इत्यादि—

चार प्रकारने कृते कदां है—(१) केए लेक कृत रूप सपन्न दोष है, पक्ष गधसपन्न दोनु नथी (२) केए कृत मात्र गधसपन्न न दोष है, पक्ष रूपसपन्न दोनु नथी (३) केए लेक कृत रूपसपन्न पक्ष दोष

सम्पन्नमपि ३, एकं नो रूपसम्पन्नं नो गन्धसम्पन्नम् ४। एवमेव चत्वारि पुरुष-  
जातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रूपसम्पन्नो नामैको नो शीलसम्पन्नः ४, । सू० १६।

टीका—“ चत्वारि पुष्पा ” इत्यादि—पुष्पाणि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—  
एकं पुष्पं रूपसम्पन्नं—दर्शने सुन्दरं भवति, किन्तु नो गन्धसम्पन्नं=सुगन्धि न  
भवति १, एवं शेषभङ्गत्रयं स्वयं विवरणीयम् । ४। क्रमेण पलाश—बकुल—जाती—  
बदरीपुष्पाणि तदुदाहरणानि ।

“ एवमेव चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि—एवमेव=पुष्पवदेव चत्वारि  
पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एकः पुरुषो रूपसम्पन्नः=सुन्दरसंस्थानवान्  
भवति, किन्तु नो शीलसम्पन्नः—सद्वृत्तवान् न भवति १, एवं शेषभङ्गत्रिकं स्वय-  
मूहनीयम् ४। । सू० १६ ।

एक पुष्प रूपसम्पन्न भी और गन्ध सम्पन्नभी होता है—३ और कोई  
एक नतो रूपसम्पन्न न गन्ध सम्पन्न ही होताहै—४ इसी प्रकारसे पुरुष  
जात भी चार कहे गये हैं, जैसे कोई एक पुरुष रूपसम्पन्न होता है  
पर—शील सम्पन्न नहीं—१ इत्यादि—४

सूत्रमें पुष्प सम्बन्धी चतुर्भङ्गीका तात्पर्य है कि कोई एक पुष्प  
रूप सम्पन्न तो होता है अर्थात्—देखनेमें सुहावना होता है किन्तु—  
सुगन्धवाला नहीं, जैसे पलाश पुष्प १ इसी प्रकारसे शेष भङ्गत्रय बनाते  
समय दृष्टान्त के स्थान पर बकुल जाती—बदरिका पुष्पोंको रख लेना  
चाहिये—४ इसी तरहसे पुरुषजातमें कोई एक पुरुष देखनेमें अति

छे अने गधसंपन्न पणु डोय छे (४) केछि अेक कुल इपस पन्न पणु डोतु  
नथी अने गधसंपन्न पणु डोतुं नथी

अेज प्रमाछे पुरुषो पणु चार प्रकारना डोय छे—(१) केछि अेक  
पुरुष इपसंपन्न डोय छे पणु शीलसंपन्न डोतो नथी अेज प्रमाछे भाडीना  
त्रणु लांगा पणु समल देवा.

पुष्प विषयक अतुलंगीतु स्पष्टीकरण—(१) केछि अेक पुष्प देभावमां  
सुंदर डोय छे पणु सुगधवाणु डोतु नथी. जेभके पलाश पुष्प

अेज प्रमाछे भाडीना त्रणु लागा पणु समल देवा. गंधसंपन्न न  
इपसंपन्न पुष्प तरीके अकुल पुष्प गणुवाी शकाय गंध अने इपसंपन्न  
पुष्पमां गुलाम पुष्प गणुवाी शकाय न गध संपन्न अने न इपसंपन्न  
कुलमां अदरिका पुष्प गणुवाी शकाय. अेज प्रमाछे पुरुषोना चार प्रकार नीचे  
प्रमाछे समजवा—

मूष्म्—चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता त जहा—जाइसपन्ने  
णाममेगे णो कुलसम्पन्ने० ४। ॥१॥

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, जाइसपण्णे णाममेगे णो  
बलसपन्ने, बलसपन्ने णाममेगे णो जाइसपन्ने० ४, (२) । एव  
जाईए रूवेण ४ चत्वारि, आलात्रगा (३), एव जाईए सुएण  
४ (४), एव जाईए सीलेण ४ (५), एव जाईए चरित्तेण  
४ (६), एव कुलेण बलेण ४ (७), एव कुलेण रूवेण ४  
(८), एव कुलेण सुएण ४ (९), कुलेण सीलेण ४ (१०), कुलेण  
चरित्तेण ४ (११) ॥

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—बलसपण्णे णाम  
मेगे णो रूवसपण्णे ४ (१२) एव बलेण सुएण ४ (१३)  
एव बलेण सीलेण (१४) एव बलेण चरित्तेण ४ (१५)

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा—रूवसपन्ने णाम  
मेगे णो सुयसपण्णे ४ (१६) एव रूवेण सीलेण ४ (१७)  
रूवेण चरित्तेण ४ (१८)

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—सुयसपन्ने णाम  
मेगे णो सीलसपण्णे ४ (१९) एव सुएण चरित्तेण य ४ (२०)

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—सीलसपन्ने णाम  
मेगे णो चरित्तसपन्ने ४ (२१) एया एकवीस चउभगीओ  
माणियत्ता ॥ सू० १७ ॥

सुन्दर परन्तु सदृष्टबाला नहीं होता है । पाकीके तीन भद्र स्वयं  
समझमा चाहिये ॥१६॥

(१) के।के जे। पुरुष देजावमां अति सुंदर होय छे एव सदृष्टिबाणे  
होय नथी, जे। प्रभाजे जाहीना वषु प्रभावे। एव समल देवा ॥१६॥

छाया—चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—जातिसम्पन्नो नामैको नो कुलसम्पन्नः ४ (१)

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—जातिसम्पन्नो नामैको नो बलसम्पन्न, बलसम्पन्नो नामैको नो जातिसम्पन्नः ४ (२) एवं जात्या रूपेण चत्वार आलापकाः (३) एव जात्या श्रुतेन ४ (४) एवं जात्या शीलेन ४ (५) एवं जात्या चारित्र्येण ४ (६) एवं कुलेन बलेन ४ (७) एव कुलेन रूपेण ४ (८) एव कुलेन श्रुतेन ४ (९) कुलेन शीलेन ४ (१०) कुलेन चारित्र्येण ४ (११)

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—बलसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्नः ४ (१२) एवं बलेन श्रुतेन ४ (१३) एवं बलेन शीलेन ४ (१४) एवं बलेन चारित्र्येण ४ (१५)

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—रूपसम्पन्नो नामैको नो श्रुतसम्पन्नः ४ (१६) एवं रूपेण शीलेन ४ (१७) रूपेण चारित्र्येण ४ (१८)

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—श्रुतसम्पन्नो नामैको नो शीलसम्पन्नः ४ (१९) एवं श्रुतेन चारित्र्येण च ४ (२०)

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—शीलसम्पन्नो नामैको नो चारित्र्यसम्पन्नः ४ (२१) एत एकत्रिंशत्तिश्रुतुर्भङ्गा भणितव्याः । सू० १७ ॥

टीका—अथ पुष्पस्यैव दार्ष्टान्तिरूपाणि पुरुषसूत्राणि प्राह—

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि—स्पष्टम् । एकः पुरुषो जातिसम्पन्नः—उत्तमजातिको भवति, परन्तु नो कुलसम्पन्नः—उत्तमकुलसम्पन्नो न भवति १, एकः कुलसम्पन्नो भवति न जातिसम्पन्नः २, एक उभयसम्पन्नः ३, एक उभयवर्जितो भवति ४। इति प्रथमा चतुर्भङ्गी । १॥

“ चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता ” इत्यादि—१७

पुरुष जात चार है जातिसम्पन्न नो कुल सम्पन्न-१ अर्थात् कोई एक उत्तम जातिवाला होता है पर उत्तम कुलका नहीं-१ दूसरा कोई एक उत्तम कुलका होता है पर उत्तम जातिका नहीं-२ कोई एक पुरुष उत्तम कुलका भी और उत्तम जातिका भी होता है-३ तथा-कोई एक पुरुष उभय वर्जित होना है न उत्तम कुलका न उत्तम जातिका ४

“ चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता ” इत्यादि—

चार प्रकारना पुरुषो कक्षा छे—(१) केछ पुरुष उत्तम जातिवाणो होय छे, पण उत्तम कुणवाणो होतो नथी. (२) केछ उत्तम कुणवाणो होय छे पण उत्तम जातिवाणो होतो नथी (३) केछ केछ पुरुष उत्तम कुणवाणो पण होय छे अने उत्तम जातिवाणो-पण होय छे. (४) केछ केछ पुरुष उत्तमकुण रक्षित अने उत्तम जाति रक्षित होय छे । १ ।

પુનઃ “ ચત્તારિ પુરિસજાયા ” ઇત્યાદિ—સ્પષ્ટમ્ એકઃ પુરુષો જાતિસમ્પન્નો મરતિ કિન્તુ નો ઘલસમ્પન્ન —વીર્યસમ્પન્નો ન મરતિ ૧, એકો ઘલ સમ્પન્નો મરતિ નો જાતિસમ્પન્ન ૨, એક ઇમયસમ્પન્નઃ ૩, એક ઉભયવર્જિતો મરતિ, ઇતિ દ્વિતીયા ચતુર્મઠ્ઠી । ૨ ।

“ એવ જાર્ઘ્ય રુષેણ ” ઇતિ—એવમ્=મમુના પ્રકારેણ જાત્યા સહ રુષેણ યુક્તામ્ભવાર આલાપકા યોષ્યાઃ ? તથાદિ—જાતિસમ્પન્નો નામૈકો નો રુપસમ્પન્નઃ ૧ રુપસમ્પન્નો નામૈકો નો જાતિસમ્પન્ન ૨ એકો જાતિસમ્પન્નોઽપિ રુપસમ્પન્નો-પિ ૩, એકો નો જાતિસમ્પન્નો નો રુપસમ્પન્નઃ ૪। ઇતિ તૃતીયા ચતુર્મઠ્ઠી ૩।

“ એવ જાર્ઘ્ય સુષ્ણ ” ઇતિ—એવમ્=મનન્તરોક્તપ્રકારેણ જાત્યા સહ શુષ્ણેણ યુક્તામ્ભવાર આલાપકા, તથાદિ—જાતિસમ્પન્નો નામૈકો નો શુભસમ્પન્નઃ ૧,

ફિરમી—પુરુષજાતિ ચાર કહે ગયે હૈં જૈસે—કોઈ એક પુરુષ એમા હોના હૈં જો જાતિ સમ્પન્ન હોના હૈં પર ઘલ સમ્પન્ન નહીં—૧ અર્થાત્ વીર્ય સમ્પન્ન નહીં હોતા હૈં । કોઈ ઘલસમ્પન્ન હૈં પર—જાતિ સમ્પન્ન નહીં—૨ કોઈ એક ઇમય સમ્પન્ન હોના હૈં—૩ ઓર કોઈ એક ઉભયવર્જિત હોના હૈં—૪ એવ જાર્ઘ્ય રુષેણ—ઇત્યાદિ ઇમી પ્રકાર તરહસે જાતિકે માંય રુપને યુક્ત ચાર આલાપક જાનના ચાહિયે, જૈસે કોઈ એક પુરુષ જાતિસે સમ્પન્ન હોના હૈં પર રુપસે સમ્પન્ન નહીં—૧ કોઈ એક રુપસે સમ્પન્ન હોના હૈં પર જાતિ સમ્પન્ન નહીં—૨ કોઈ એક જાતિ ઓર રુપસે મી સમ્પન્ન હોના હૈં—૩ કોઈ એક ન તો જાતિ સમ્પન્ન હી ન રુપ સમ્પન્ન હીહોતા હૈં ૪ “ એવ જાર્ઘ્ય સુષ્ણ ” ઇતી તરહસે જાતિસે શ્રુતસે યુષ્ઠ ચાર આલાપક હોતે હૈં, જૈસે કોઈ એક પુરુષ

નીચે પ્રમાણે પણ ચાર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) કોઈ એક પુરુષ ઉત્તમ જાતિસમ્પન્ન હોય છે પણ જગત્પત્ત (વીર્યસમ્પન્ન) હોતો નથી. (૨) કોઈ જગત્પત્ત હોય છે પણ જાતિસમ્પન્ન હોતો નથી (૩) કોઈ જગત્પત્ત અને જાતિસમ્પન્ન હોય છે (૪) કોઈ જગત્પત્ત પણ હોતો નથી અને જાતિ સમ્પન્ન પણ હોતો નથી । ૨ ।

‘ એવ જાર્ઘ્ય રુષેણ ’ એજ પ્રમાણે જાતિની સાથે રૂપના યોગથી ચાર વિકલ્પો અને છે એમકે (૧) કોઈ એક પુરુષ જાતિસમ્પન્ન હોય છે, પણ રૂપસમ્પન્ન હોતો નથી (૨) કોઈ રૂપસમ્પન્ન હોય છે પણ જાતિસમ્પન્ન હોતો નથી (૩) કોઈ જાતિસમ્પન્ન પણ હોય છે અને રૂપસમ્પન્ન પણ હોય છે (૪) કોઈ જાતિસમ્પન્ન પણ હોતો નથી અને રૂપસમ્પન્ન પણ હોતો નથી । ૩ ।

‘ એવ જાર્ઘ્ય સુષ્ણ ’ એજ પ્રમાણે જાતિ અને શુભતા યોગથી નીચે પ્રમાણે ચાર ભાંજા અને છે—(૧) કોઈ એક પુરુષ જાતિસમ્પન્ન હોય છે,

श्रुतसम्पन्नो नामैको नो जातिसम्पन्नः २, एको जातिसम्पन्नोऽपि श्रुतसम्पन्नोऽपि ३, एको नो जातिसम्पन्नो नो श्रुतसम्पन्नः ४। इति चतुर्थीचतुर्भङ्गी । १।

“ एवं जाईए सीलेण ” इति-एवं-पूर्वोक्तरीत्या जात्या सह शीलेन युवता-श्रुतार आलापका बोध्याः, तथाहि-जातिसम्पन्नो नामैको नो शीलसम्पन्नः १, शीलसम्पन्नो नामैको नो जातिसम्पन्नः २, एको जातिसम्पन्नोऽपि शीलसम्पन्नोऽपि ३, एको नो जातिसम्पन्नो नो शीलसम्पन्नः ४। इति पञ्चमी चतुर्भङ्गी ५।

“ एवं जाईए चरित्तेण ” इति-एवं पूर्वोक्तप्रकारेण जात्या सह चारित्र्येण युवताश्रुतार आलापका बोध्या, तथाहि-जातिसम्पन्नो नामैको नो चारित्र्यसम्पन्नः १, चारित्र्यसम्पन्नो नामैको नो जातिसम्पन्नः २, एको जातिसम्पन्नोऽपि चारित्र्यसम्पन्नोऽपि ३, एको नो जातिसम्पन्नो नो चारित्र्यसम्पन्नः ४। इति षष्ठी चतुर्भङ्गी ६।

जातियुक्त होता है पर श्रुतसे सम्पन्न नहीं-१ कोई एक श्रुतसम्पन्न होता है तो जातिसम्पन्न नहीं-२ कोई एक जातिसे भी और श्रुतसे भी सम्पन्न होता है-३ और कोई एक न तो जातिसम्पन्न न श्रुतसम्पन्न होता है-४।

“ एवं जाईए सीलेण ”—इत्यादि इसी प्रकार शीलयुक्त जातिके चार आलापक होते हैं, कोई एक पुरुष जाति सम्पन्न होता है पर-शील सम्पन्न नहीं-१ कोई एक पुरुष शील सम्पन्न होता है तो जाति सम्पन्न नहीं-२ कोई एक जाति और शील सम्पन्न भी होता है-३ कोई एक न तो जाति सम्पन्न ही होता है न शील सम्पन्न ही-४।

“ एवं जाईए चरित्तेण ”—इसी प्रकार जातिके साथ चरित्रसे युक्त चार भङ्ग होते हैं, जैसे कोई एक पुरुष जाति सम्पन्न होता है तो चारित्र्य

पणु श्रुतसंपन्न होतो नथी (२) कोध श्रुतसंपन्न होय छे, पणु ञतिसंपन्न होतो नथी (३) कोध ञतिसंपन्न पणु होय छे अने श्रुतसंपन्न पणु होय छे (४) कोध ञतिसंपन्न पणु नथी होतो, अने श्रुतसंपन्न पणु होतो नथी । १।

“ एवं जाईए सीलेण ” अत्र प्रमाणे ञति अने शीलना योग्यी नीचे प्रमाणे चार भागा अने छे—(१) कोध अक पुरुष ञतिसंपन्न होय छे, पणु शीलसंपन्न होतो नथी (२) कोध शीलसंपन्न होय छे, पणु ञतिसंपन्न होतो नथी (३) कोध ञतिसंपन्न पणु होय छे अने शीलसंपन्न पणु होय छे. (४) कोध ञतिसंपन्न पणु होतो नथी अने शीलसंपन्न पणु होतो नथी । ५।

“ एवं जाईए चरित्तेण ” अत्र प्रमाणे ञति अने चारित्र्यना योग्यी नीचे प्रमाणे चार भागा अने छे—(१) कोध पुरुष ञतिसंपन्न होय छे पणु चारित्र्यसंपन्न होतो नथी. (२) कोध चारित्र्यसंपन्न होय छे पणु ञति-

“ एवं कुलेण बलेण ” इति—एवं कुलेन सह बलेन युक्तामपि चत्वारो मद्वा घोष्याः, तथाहि—कुलसम्पन्नो नामैको भो बलसम्पन्न १, बलसम्पन्नो नामैना नो कुलसम्पन्नः २, एकः कुलसम्पन्नोऽपि बलसम्पन्नोऽपि ३, एको नो कुलसम्पन्नो नो बलसम्पन्नः ४ इति सप्तमी चतुर्मासी । ७ ।

“ एवं कुलेण रुवेण ” इति—एवं कुलेन सह रूपेण युक्तामत्वारो मद्वा घोष्या, इत्यष्टमी चतुर्मासी । ८ ।

एवं कुलेन सह भुक्तेन युक्तामत्वारो मद्वा । इति नवमी । ९ ।

सम्पन्न नहीं—३ कोई एक चारित्र सम्पन्न होता है तो जाति सम्पन्न नहीं—२ कोई एक जाति सम्पन्न होता है और चारित्र से भी—३ कोई एक जाति—चारित्र उभयसे विकल होता है—४ । “ एवं कुलेण बलेण ”—इसी प्रकार कुल और बलके योगसे चार मद्वा होते हैं, कोई एक पुरुष कुल सम्पन्न होता है तो बल सम्पन्न नहीं—१ कोई एक बल सम्पन्न होता है तो कुल सम्पन्न नहीं—२ कोई एक कुल सम्पन्न होता है और बल सम्पन्न भी—३ कोई एक न तो बल सम्पन्न न कुल सम्पन्न ही होता है—४ “ एवं कुलेण रुवेण ”—इसी प्रकार कुल और रूपसे चार मद्वा होते हैं । कोई एक पुरुष कुल सम्पन्न होता तो रूपसम्पन्न नहीं—१ कोई एक रूप सम्पन्न होता है तो कुलसम्पन्न नहीं—२ कोई एक उभय सम्पन्न होता है—३ कोई एक उभय विहीन होता है—४ ।

४ पत्न होता नથી. (૩) કોઈ બલિ અને ચારિત્ર બન્નેથી સ પત્ન હોય છે (૪) કોઈ બલિ અને ચારિત્ર બન્નેથી વિહીન હોય છે । ૯ ।

“ एवं कुलेण बलेण ” એજ પ્રમાણે જુગ અને બજના યોગથી ચાર ભાંગા અને છે—(૧) કોઈ પુરુષ જુગસ પત્ન હોય છે પણ બજસ પત્ન હોતો નથી, (૨) કોઈ બજસ પત્ન હોય છે પણ જુગસ પત્ન હોતો નથી (૩) કોઈ બજ અને જુગ બ નેથી સ પત્ન હોય છે (૪) કોઈ બજસ પત્ન પણ હોતો નથી અને જુગસ પત્ન પણ હોતો નથી । ૭ ।

“ एवं कुलेण रुवेण ” એજ પ્રમાણે જુગ અને રૂપના યોગથી ત્રીસ પ્રમાણે ચાર ભાંગા અને છે—(૧) કોઈ જુગસ પત્ન તો હોય છે પણ રૂપ સ પ ત હોતો નથી (૨) કોઈ રૂપસ પત્ન હોય છે પણ જુગસ પત્ન હોતો નથી. (૩) કોઈ જુગસ પત્ન પણ હોય છે અને રૂપસ પત્ન પણ હોય છે (૪) કોઈ જુગસ પત્ન પણ હોતો નથી અને રૂપસ પ ત પણ હોતો નથી. ૮ । એજ પ્રમાણે જુગ અને મુક્તા યોગથી પણ ચાર ભાંગા અને છે । ૯ ।

कुलेन सह शीलेन युक्ताश्वत्वारो भङ्गा इति दशमी । १० ।

कुलेन सह चारित्र्येण युक्ताश्वत्वारो भङ्गा इत्येकादशी । ११ ।

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि—पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—बलसम्पन्नो नामैको नो रूपसम्पन्नः १, रूपसम्पन्नो नामैको नो बलसम्पन्नः २, एको बलसम्पन्नोऽपि रूपसम्पन्नोऽपि ३, एको नो बलसम्पन्नो नो रूपसम्पन्नः ४। इति द्वादशी । १२ ।

“ एव बलेण सुएण ” इति—एव बलेन सह श्रुतेन युक्ता अपि चत्वारो भङ्गा बोध्याः इति त्रयोदशी । १३ ।

“ एवं बलेण सीलेण ” इति—एवं बलेन सह शीलेन युक्ताश्वत्वारो भङ्गा बोध्याः । इति चतुर्दशी । १४ ।

इसी प्रकार कुल और श्रुतके योगमें चार भङ्ग होते हैं—४ इसी प्रकार कुल शीलसे भी चार भंग होते हैं—४ इसी प्रकार कुल चारित्र्य युक्त चार भङ्ग होते हैं—४ इस प्रकारसे यहाँ तक ग्यारह चतुर्भङ्गी है । ११

पुनश्च—“ चत्वारि पुरिसजाया ”—पुरुष जात चार हैं, जैसे कोई एक पुरुष बल सम्पन्न है तो रूप सम्पन्न नहीं—१ कोई एक रूप सम्पन्न होता है तो बल सम्पन्न नहीं—२ कोई एक बल सम्पन्न और रूप सम्पन्न भी होता है—३ कोई एक न तो बल सम्पन्न न रूप सम्पन्न होता है—४, १२

“ एवं बलेण सुएण ”—इसी प्रकार बल श्रुतके योगमें चार भङ्ग होते हैं—४, १३

“ एवं बलेण सीलेण ”—ऐसे बल और शील संयोगसे चार भङ्ग होते हैं—४, १४

એજ પ્રમાણે કુળ અને શીલના યોગથી પણ ચાર ભાગા બને છે । ૧૦ ।

એજ પ્રમાણે કુળ અને ચારિત્રના યોગથી પણ ચાર ભાગા બને છે । ૧૧ ।  
આ રીતે અહીં સુધીમાં ૧૧ ચતુર્ભંગી પ્રકટ કરવામાં આવી છે.

“ ચત્તારિ પુરિસજાયા ” ચાર પ્રકારના પુરુષો હોય છે—૧) કોઈ પુરુષ બળસંપન્ન હોય છે પણ રૂપસંપન્ન હોતો નથી (૨) કોઈ રૂપસંપન્ન હોય છે પણ બળસંપન્ન હોતો નથી (૩) કોઈ બળ અને રૂપ બંનેથી સંપન્ન હોય છે (૪) કોઈ બળસંપન્ન પણ હોતો નથી અને રૂપસંપન્ન પણ હોતો નથી । ૧૨ ।

“ એવં બલેણ સુએણ ” એજ પ્રમાણે બળ અને શ્રુતના યોગથી ચાર ભાગા બને છે । ૧૩ ।

‘ એવં બલેણ સીલેણ ’ એજ પ્રમાણે બળ અને શીલના યોગથી ચાર ભાગા બને છે । ૧૪ ।



“ એ વલેણ ચરિવેણ ” ઇતિ-એવં વલેન સદ્ ચારિત્રેણ યુક્તાઢ્વત્વારો મહા ષોધ્યાઃ । ઇતિ વચ્ચદશી । ૧૫ ।

“ ચતારિ પુરિસજ્ઞાયા ” ઇત્યાદિ-પુન પુરુષજ્ઞાતાનિ ચત્વારિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ ઠપયા-રૂપસમ્પન્નો નામૈકો નો ધ્રુતસમ્પન્નઃ ૧, ધ્રુતસમ્પન્નો નામૈકો નો રૂપ સમ્પન્નઃ ૨, ઇકો રૂપસમ્પન્નોઽપિ, ધ્રુતસમ્પન્નોઽપિ ૩, ઇકો નો રૂપસમ્પન્નો નો ધ્રુતસમ્પન્નઃ ૪ । ઇતિ પોઢ્વશી । ૧૬ ।

“ એ રૂવેણ સીલેણ ” ઇતિ-એવ રૂવેણ સદ્ શીલેન યુક્તાઢ્વત્વારો મહા ષોધ્યાઃ । ઇતિ સત્તદશી । ૧૭ ।

“ રૂવેણ ચરિવેણ ” ઇતિ-રૂવેણ સદ્ ચારિત્રેણ યુક્તાઢ્વત્વારો મહા ષોધ્યાઃ । ઇતિ સત્તદશી । ૧૮ ।

“ ચતારિ પુરિસજ્ઞાયા ” ઇત્યાદિ-પુનઃ પુરુષજ્ઞાતાનિ ચત્વારિ પ્રજ્ઞપ્તાનિ, ઠપયા-ધ્રુતસમ્પન્નો નામૈકો નો શીલસમ્પન્નઃ ૧, શીલસમ્પન્નો નામૈકો નો ધ્રુત

“ એ વલેણ ચરિવેણ ”—ઈતી પ્રકાર વલ ચારિત્રસે ચાર ઢ્વ હોતે હૈ-૪, ૧૬

‘ચત્વારિ પુરિસ જ્ઞાયા’—પુરુષ જ્ઞાત ચાર કહે ગયેહૈ, ડૈસે કોઈ ઇક પુરુષ રૂપ સમ્પન્ન હોતા હૈ ધ્રુત સમ્પન્ન નહીં-૧ કોઈ ઇક ધ્રુત સમ્પન્ન હોતા હૈ રૂપ સમ્પન્ન નહીં-૨ કોઈ ઇક રૂપ ઓર ધ્રુત સમ્પન્ન ઢી-૩ ઓર કોઈ ઇક ઢોનોસે રહિત્ત હોતા હૈ-૪, ૧૬ “ એ રૂવેણ સીલેણ ” ઇતી પ્રકાર રૂપ શીલ સે યુક્ત ૪ મહ્ હોતે હૈ, ૧૭ “ રૂવેણ ચરિવેણ ” ઇતી તરહ રૂપ ચારિત્ર યુક્ત ૪ મહ્ હોતે હૈ—૧૮

“ એ વલેણ ચરિવેણ ” જ્ઞેષ પ્રમાણે જગ અને ચારિત્રના ષોધથી ચાર જાંગા અને છે । ૧૫ ।

ચત્વારિ પુરિસ જ્ઞાયા પુરુષના નીષે પ્રમણે ચાર પ્રકાર વલ પડે છે—(૧) ડૈડ જ્ઞેષ પુરુષ ઇપસ પન્ન ડોય છે, વલ ધ્રુતસ પન્ન ડોતો નથી. (૨) ડૈડ ધ્રુતસ પન્ન વલ ડોય છે વલ ઇપસ પન્ન ડોતો નથી. (૩) ડૈડ ધ્રુતસ પ ન વલ ડોય છે અને ઇપસ પન્ન વલ ડોય છે (૪) ડૈડ ઇપસ પ ન વલ ડોતો નથી અને ધ્રુતસ પન્ન વલ ડોતો નથી । ૧૬ ।

‘ એ રૂવેણ સીલેણ ’ જ્ઞેષ પ્રમાણે ઇપ અને શીલના ષોધનાણા ચાર જાંગા અને છે । ૧૭ । ‘ એ રૂવેણ ચરિવેણ ’ જ્ઞેષ પ્રમાણે ઇપ અને ચારિત્ર વન્ન ષોધથી વલ ચાર જાંગા અને છે । ૧૮ ।

सम्पन्नः २, एकः श्रुतममानोऽपि शीलसम्पन्नोऽपि ३, एको नो श्रुतसम्पन्नो नो शीलसम्पन्नः ४। इत्येकोनविंशति चतुर्भङ्गी । १९।

“ एवं सुणए चरित्तेण य ” इति—एवं श्रुतेन सह चारित्रेण युक्ताश्चत्वारो भङ्गा बोध्याः । इति विंशतितमा चतुर्भङ्गी । २० ।

“ चत्तारि पुरिसजाया ” इत्यादि—पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तथा—शीलसम्पन्नो नामैको नो चारित्रसम्पन्नः १, चारित्रसम्पन्नो नामैको नो शीलसम्पन्नः २, एकः शीलसम्पन्नोऽपि चारित्रसम्पन्नोऽपि ३, एको नो शीलसम्पन्नो नो चारित्रसम्पन्नः ४। इत्येकविंशतितमा चतुर्भङ्गी । २१। इत्थं जाति १

पुनश्च—“ चत्तारि पुरिसजाया पणत्ता ” पुरुष जात चार कहे गये हैं जैसे कोई एक पुरुष श्रुत सम्पन्न होता है शील सम्पन्न नहीं—१ कोई एक शील सम्पन्न होता है तो श्रुतसम्पन्न नहीं—२ कोई एक श्रुत सम्पन्न भी शील सम्पन्न भी होता है—३ कोई एक न तो श्रुत सम्पन्न न शील सम्पन्न होता है—४ १९

“ एवं सुणए चरित्तेणय ”—इसी प्रकार श्रुत चारित्र युक्त ४ भङ्ग होते हैं—२०

पुनश्च—“ चत्तारि पुरिसजाया ”—इत्यादि पुरुष जात चार हैं, जैसे कोई एक मनुष्य शील सम्पन्न होता है चारित्र सम्पन्न नहीं—१ कोई एक चारित्र सम्पन्न होता है शील सम्पन्न नहीं—२ कोई एक शील से चारित्र से भी सम्पन्न होता है—३ कोई एक न तो शीलसे न चारित्रसे ही सम्पन्न होता है—४ यह एकैसर्वीं चतुर्भङ्गी है । इस प्रकार

“ चत्तारि पुरिसजाया पणत्ता ” पुरुषोना नीचे प्रमाणे चार प्रकार पद्य पडे छे—(१) केध अेक पुरुष श्रुतसंपन्न डोय छे पद्य शीलसंपन्न डोतो नथी (२) केध शीलसंपन्न डोय छे पद्य श्रुतसंपन्न डोतो नथी (३) केध श्रुत अने शील अनेथी संपन्न डोय छे (४) केध श्रुत अने शील अनेथी विहीन डोय छे । १९।

“ एवं सुणए चरित्तेणय ” अेअ प्रमाणे श्रुत अने चारित्रना योगथी चार भांगा अने छे । २०।

“ चत्तारि पुरिसजाया ” पुरुषोना नीचे प्रमाणे चार प्रकार कह्या छे—(१) केध पुरुष शीलसंपन्न डोय छे पद्य चारित्रसंपन्न डोतो नथी। (२) केध चारित्रसंपन्न डोय छे, पद्य शीलसंपन्न डोतो नथी (३) केध शील अने चारित्र अनेथी संपन्न डोय छे (४) केध शील अने चारित्र अनेथी विहीन डोय छे। आ २१ भी अतुर्भागी छे। २१।

कुल २ षड ३ रुद्र ४ ध्रुव ५ शील ६ चारित्र्ये ७ त्रिपदासके परम्पर द्विकसयो  
मेनेरु विश्वतिमहुर्मङ्गिकाः २१ मगितव्याः । एषां व्याख्या सुगमा । सू० १७ ।

गूढम्—चत्वारि फला पण्यता, त जहा—आमलगमहुरे १,  
मुद्दिभामहुरे २, स्त्रीरमहुरे ३, स्वडमहुरे ४। एवमेव चत्वारि आय  
रिया पण्यता, त जहा—आमलगमहुर फलसमाणे जाव स्वडमहुर  
फलसमाणे ॥ सू० १८ ॥

छाया—चत्वारि फलानि प्रहृतानि, तद्यथा—आमलगमधुर १, मृष्टीकामधुरं  
२, क्षीरमधुर ३ स्वण्डमधुरम् ४। एवं चत्वार आचार्या प्रहृताः, तद्यथा—आमल-  
कमधुरफलसमान यावत् स्वण्डमधुरफलसमानः । सू० १८ ॥

टीका—' चत्वारि फला ' इत्यादि—फलानि चत्वारि प्रहृतानि, तद्यथा—  
आमलगमधुरम्—आमलकी—घाभीवरुविशेषः, तस्या इरम् ( फलं ) आमलक, तद्वि  
जाति-१ कुल-२ षड-३ रूप-४ ध्रुव-५ शील-६ और चारित्र्य इन  
सात पदोंमें परस्पर द्विकसयोगसे ये २१ चतुर्मंड्री होती हैं सुगम हैं । १७

“ चत्वारि फला पण्यता ”—इत्यादि

फल चार प्रकारके हैं—आमलक मधुर-१ मृष्टीक मधुर-२ क्षीर  
मधुर-३ स्वण्ड मधुर-४ इसी प्रकार आचार्य भी चार प्रकारके हैं, आमलक  
मधुर फल समान-१ यावत् कोई एक स्वण्ड मधुर फल समान-४ ।  
इस सूत्र द्वारा प्रतिपादित आमलक मधुरका तात्पर्य ऐसा है—आम  
लकी नामका एक वृक्ष विशेष होता है, इसका दूसरा नाम घाभीतरु  
है इसका जो फल है वह आमलक है । जो फल इसका जैसा मधुर

आ शीते (१) अति (२) ध्रुव, (३) अज (४) इय (५) सुत (६)  
शील अने (७) चारित्र्य आ सात पदोंमें अनुक्रमे पडीता परे साये द्विक  
सयोग ठरवाची कुल २१ चतुर्भ जी अने छे आचार्य सुगम छे ॥सू १७॥

“ चत्वारि फला पण्यता ” इत्यादि ( सू १८ )

इहना नीचे प्रमाणे चार प्रकार कहे छे—(१) आमलक मधुर, (२)  
मृष्टीक मधुर (३) क्षीरमधुर अने (४) अठमधुर. जेव प्रमाणे आचार्यना  
पण्य ' आमलक मधुर इह समान की लडने अठमधुरफलसमान '  
पण्य-तना चार प्रकार समज्या आमलक मधुरने आचार्य नीचे प्रमाणे  
छे—आमलकी (अजगानु जाठ) नामतुं जेक वृक्ष याव छे तेतुं 'वीजु' नाम

तदेव, वा, मधुरमाभलकमधुरम् १, तथा-मृद्धीकामधुरं-मृद्धीका=द्राक्षा सेव सैव वा मधुरं तथा २, तथा-क्षीरमधुरं क्षीर-दुग्धं तदिव मधुरं क्षीरमधुरम् ३, तथा-खण्डमधुरं-खण्डं=शर्करा तदिव मधुरं खण्डमधुरम् ४, क्रमेणैमानि चत्वारि अल्प-बहु-बहुतर-बहुतममधुराणि भवन्ति ।

“ एवमेव चत्वारि आयरिया ” इत्यादि-एवमेव-उक्तफलवदेव आचार्या-श्रुत्वारः प्रज्ञाः, तद्यथा-आमलकमधुरफलसमानः, यावत्पदेन ‘ मृद्धीकामधुरफलसमानः, क्षीरमधुरफलमानः ’ इति पदद्वयग्रहणम्, तथा-खण्डमधुरफलमान इति । तत्राऽऽमलकमधुरफलसमान-आमलकवन्मधुर यत्फलं तत्तुल्यः, यथाऽऽम-

है वह आमलक मधुर है या स्वयं वही एक फल मधुर है-१ इस लिये वह आमलक मधुर (फल) है । कोई एक फल मृद्धीका मधुर होता है, मृद्धीका दाखका नाम है, द्राक्ष जैसा जो मधुर हो वह मृद्धीका मधुर है-२ या यों कहिये कि मृद्धीका स्वयं ही एक मधुर फल है । कोई एक क्षीर मधुर होता है, क्षीर-दूधका नाम है दूध जसा सीठा जो हो वह क्षीर मधुर फल है-३ कोई एक खण्ड मधुर होता है, शर्कर जैसा मधुर होनेसे खण्ड मधुर फल होता है-४ ये सब क्रमज्ञाः अल्प बहु बहुतर, और बहुतम मधुरवाले होते हैं । इसी प्रकारसे आचार्यभी चार प्रकारके होते हैं, इनमें कोई एक आचार्य आमलक मधुर फल समान होता है, आमलकके जैसे मधुर फल समान होता है, जैसे आमलक तुल्य मधुर फलमें अल्प माधुर्य होता है वैसे ही उसमें भी उपशमादि गुण अल्प मात्रामें होता है अतः-ऐसे आचार्यको आमलक मधुर

‘ धात्रीतरु ’ छे. तेना इणने आमलक (आमल) कडे छे तेना जेवा मधुर स्वादने आमलक मधुर कडे छे ते पोते जे अक मधुर इण छे

मृद्धीकामधुरने लोवाथे-मृद्धीका अटले द्राक्ष द्राक्ष जेवां मधुर रसने मृद्धीका कडे छे अथवा जेभ कही शकय छे द्राक्ष पोते जे अक मधुर इण छे.

दूध जेवा भीठा इणने क्षीर मधुर इल कडे छे साकर जेवां मधुर इणने अउमधुर इण कडे छे आ यारे अनुकमे अल्प, बहु, बहुतर अने बहुतम मधुरतावाणा डोय छे.

जेज प्रभाणे आचार्य पणु यार प्रकारना डोय छे-(१) कोठ अक आचार्य आमलक मधुर इल समान डोय छे जेभ आमलक समान इणभां अल्प माधुर्य डोय छे, जेज प्रभाणे कोठ आचार्यभा उपशम आदि शुणु अल्प मात्रामां डोय छे ते कारणे जेवा आचार्यने आमलक मधुर इणसमान कला छे जेज प्रभाणे जे आचार्यने न बहु मात्रामा, बहुतर मात्रामां अने

सकमधुरफलेऽप्य माधुर्ये तथाऽऽचार्येऽपि भव्य एषोपशमादिगुण इति तत्समान  
आचार्यो व्यवच्छेद्यते, एवं बहुबहुतर बहुतमोपशमादिगुणसम्पन्नेष्व्याचार्येषु मृद्वी  
कामधुरफलादि समानत्वं षोडशम् ४। ॥ सू० १८ ॥

मूलम्—चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—करेइ गाम  
मेगे वेयावच्च णो पढिच्छइ १, पढिच्छइ गाममेगे वेयावच्च  
णो करेइ २, एगे पढिच्छइवि करेइवि ३, एगे नो पढिच्छइ  
नो करेइ ४।

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—अट्टकरे गाममेगे  
णो माणकरे १, माणकरे गाममेगे णो अट्टकरे २, अट्टकरेऽवि  
माणकरेऽवि ३ एगे णो अट्टकरे णो माणकरे ४,

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा गणट्टकरे गाममेगे  
णो माणकरे० ४,

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा गणसगहकरे गाम  
मेगे णो माणकरे० ४,

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—गणसोह्वाकरे गाम  
मेगे णो माणकरे० ४,

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—गणसोहिकरे  
गाममेगे णो माणकरे० ४।

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—रूव गाममेगे जहइ  
फलसे उपमित किया गया है। इसी प्रकारसे जो आचार्यजन बहुमात्रा  
में, बहुततर मात्रामें, बहुतम मात्रामें उपशमादि गुणोंसे युक्त होते हैं  
उनमें क्रमशः मृद्वीका मधुर कलादि समानता जाननी चाहिये ॥ सू० १८ ॥

अट्टतम मात्रामां उपशमादि गुणेषु संपन्नो षोडशे, तेभ्यो अनुद्वये मृद्वीका  
(६।११) मधुर, क्षीरमधुर चने ५४ (सा३२) मधुर इण समान समञ्जस। १८।

णो धम्मं १, धम्मं णाममेगे जहइ णो रूवं २, एगे रूवंपि जहइ  
धम्मंपि जहइ ३, एगे णो रूवं जहइ णो धम्मं ४।

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा--धम्मं णाममेगे जहइ  
णो गणसंठिइं० ४,

चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता, तं जहा--पियधम्मे णाममेगे  
णो दढधम्मे १, दढधम्मे णाममेगे णो पियधम्मे २, एगे पिय  
धम्मेवि दढधम्मेवि ३, एगे णोपियधम्मे णो दढधम्मे ४। सू०१९

छाया--चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा--आत्मवैयावृत्त्यकरो नामैको  
नो परवैयावृत्त्यकरः ४।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा--अर्थकरो नामैको नो मानकरः १  
मानकरो नामैको नो अर्थकरः २, एकोऽर्थकरोऽपि मानकरोऽपि ३, एको न  
अर्थकरो नो मानकरः ४।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा--गणार्थकरो नामैको नो मानकरः० ४  
चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा गणसङ्ग्रहकरो नामैको नो मानकरः४  
चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा गणशोभाकरो नामैको नो मानकरः ४  
चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा गणशोधिकरो नामैको नो मानकरः४  
चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा--रूपं नामैको जहाति नो धर्मं १  
धर्मं नामैको जहाति नो रूपम् २, एको रूपमपि जहाति धर्ममपि जहाति ३  
एको नो रूपं जहाति नो धर्मम् ४।

चत्वारि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा--प्रियधर्मा नामैको नो दढधर्मा १  
दढधर्मा नामैको नो प्रियधर्मा २, एकः प्रियधर्माऽपि दढधर्माऽपि ३, एको न  
प्रियधर्मा नो दढधर्मा ४। सू० १९ ॥

टीका--“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि--पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि  
तद्यथा--एकः--कश्चित् पुरुष आत्मवैयावृत्त्यकरः--आत्मनः--स्वस्य वैयावृत्त्यं--भक्त

पुनश्च--“ चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता ” १९

टीकार्थ--पुरुष चार प्रकारके कहे गयेहैं, जैसे कोई एक पुरुष ऐसा होता  
है जो आत्म वैयावृत्त्यकर होता है, भक्तपानसे स्वयंकीही सहायत

“ चत्वारि पुरिसजाया पणत्ता ” इत्यादि--

टीकार्थ--पुरुषता नीचे प्रमाणे चार प्रकार पण्ड कथा छे--(१) डोड अेक पुरुष  
अेवो डोय छे डे ने आत्मवैयावृत्त्यकर डोय छे. अेटले डे भक्तपान आदि

પાનાદિમિઃ સાદાપ્ય ક્ષરોલીત્યવંશીઞ્ચ આત્મવૈયાટ્યપકરો મયષિ પિતુ ના પર  
 વૈયાટ્યપકરો મવસિ, સ ચાડબમો વિમમ્મોગિકો વા ૧, इति प्रथमो मद् १,  
 तथा-परवैयाट्यपकरो नामैको नो आत्मवैयाट्यपकरः, स च स्वार्थनिरपेक्षः २,  
 तथा-एह आत्मवैयाट्यपकरोऽपि परवैयाट्यपकरोऽपि, स च स्वविरकल्पिणः ३,  
 तथा-एको ना आत्मवैयाट्यपकरो नो परवैयाट्यपकरः, स चानसनविशेषप्रतिप  
 ष्चादिः ४। मक्त पानादि चर्मक इति ॥

‘ચત્તારિ પુરિસમાયા’” इत्यादि पुन पुरुषमातानि चत्वारि प्रवृत्तानि,  
 तद्यथा एक पुरुषो वैयाट्यप परस्य करात्पच, किन्तु नो प्रतीच्छति-स्वस्य वैया  
 ट्यप्य परतो न वाच्छति नि सृष्ट्यात् १, तथा-प्रतीच्छति नामैको वैयाट्यप्य नो  
 करनेका स्वभाववाला है, परकी सहायता करनेका स्वभाववाला नहीं  
 होता है-१ ऐसा जन यातो थालनी, या पिसमोगिक होता है-१  
 तथा-कोई एक भोजन पान आदिसे परकी सहायता करनेवाला होता  
 है अपनी सहायता करनेवाला नहीं होता है, ऐसा व्यक्ति स्वार्थ  
 निरपेक्ष होता है-२ तथा-कोई एक भोजन पान आदिसे अपनी और  
 परकी सहायता करनेका स्वभाववाला होता है, ऐसा व्यक्ति स्वविर  
 कल्पित होता है-३ और कोई एक पुरुष न आत्मवैयाट्यपकर होता  
 है न पर वैयाट्यपकर ही ऐसा वह अनशन विशेष को धारण किये  
 हुये व्यक्ति विशेष होता है-४

“चत्तारिपुरिसजाया” पुनश्च—पुरुष चार प्रकारके है, जैसे  
 कोई एक पुरुष परका वैयाट्यप करता है किन्तु अपना वैयाट्यप दूसरोंसे

દાશ પોતાની જ સેવા કરનારો હોય છે અન્યને તે બાબતમાં સહાયતા  
 કરવાના સ્વભાવવાળો હોવો નથી એવો પુરુષ કા તો બાબતમાં અથવા  
 તે વિષયોનિક હોય છે (૨) કેઈ પુરુષ એવો હોય છે કે જે લોકનાદિ  
 દ્વારા અન્યની સહાયતા કરનારો હોય છે પોતાની બતની જ સેવા કરનારો  
 હોવો નથી એવી બધી નિઃસ્વામ હોય છે (૩) કેઈ પુરુષ એવો હોય  
 છે કે જે લોકનાદિથી પોતાની અને પરની સહાયતા કરનારો હોય છે એવી  
 બધી સ્વવિર કલ્પિત હોય છે (૪) કેઈ વધિત એવી હોય છે કે જે  
 આત્મવૈયાટ્યપકર પણ હોતી નથી અને પરવૈયાટ્યપકર પણ હોતી નથી  
 અનશન વિશેષનેધારણ કરનાર કેઈવિશિષ્ટ સાધુને આ પ્રકારમાં ગણાવી શકાય.

“ચત્તારિ પુરિસમાયા” આર પ્રકારના પુરુષો કહ્યા છે—(૧) કેઈ  
 એક પુરુષ એવો હોય છે કે જે પરનું વૈયાટ્યપ કરે છે, પણ અન્યની પાસે

करोति, आचार्योऽग्लानो वा २। तथा-एको वैयावृत्यं करोत्यपि प्रतीच्छत्यपि, स च स्थविरविशेषः ३, तथा-एको वैयावृत्यं नो करोति नो प्रतीच्छति, स च जिनकल्पिकादिः ४, इति ।

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि-पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तत्रथा-एकः पुरुषोऽर्थकरः-अर्थान् करोतीत्येवंशीलस्तथा=राजादीनां दिग्यात्रादौ तथोपदेशतो हितप्राप्त्यहितपरिहारादिकारी भवति, किन्तु नो मानकरः-मानं-गर्वं करोतीत्येवंशीलस्तथा=कथमहमनभ्यर्थितो राजादीनेवं कथयिष्यामीत्य-क्षिमानी न भवति. अपितु तद्वहितो भवति, स च सन्मन्त्री नैमित्तिको वा १,

नहीं करवाता है, क्योंकि-वह व्यक्ति निःस्पृह होता है-१ कोई एक अपना वैयावृत्य करवाता है पर औरोंका वैयावृत्य स्वयं नहीं करता है ऐसा वह यातो आचार्य, या ग्लान होता है-२ कोई एक वैयावृत्य करता भी है और अपना भी वैयावृत्य परोसे करवाता है, ऐसा स्पविर विशेष होता है-३ कोई एक न तो वैयावृत्य करता है न अपना वैयावृत्य करानाही चाहता है ऐसा जिनकल्पिक आदि होता है ।-४

“ चत्वारि पुरिसजाया ”—इत्यादि पुनश्च—पुरुष चार कहे गये हैं, जैसे कोई एक पुरुष अर्थकर होता है मानकर नहीं, अर्थात् राजा आदिकोंके साथ दिग्यात्रा आदिके समयमें उच्च प्रकारके उपदेश से उनका हित प्राप्तिकारी और अहित परिहारकारी होता है पर अहङ्कारका करनेवाला नहीं होता है, अर्थात् वह ऐसा अहङ्कार नहीं करता है कि

पोतानु वैयावृत्यं करावतो नथी, कारण्ये ते पुरुष निःस्पृहो ङेय छे (२) कोछ व्यक्ति जेवी होय छे के जे अन्यनी पासे पोतानु वैयावृत्यं करावे छे, पणु पोते अन्यनु वैयावृत्यं करती नथी आचार्य अथवा ग्लान ( माहा साधुने आ प्रकारमा गणुवी शक्य. (३) कोछ पुरुष परनु वैयावृत्यं पणु करे छे अने अन्य द्वारा पोतानु वैयावृत्यं पणु करावे छे स्थविर विशेषने आ बांगामा समावेश करी शक्य छे (४) कोछ पुरुष जेवो होय छे के जे परनु वैयावृत्यं पणु करतो नथी अने पोतानु वैयावृत्यं करावतो पणु नथी. जिन कल्पित आदिने आ प्रकारमां गणुवी शक्य छे

“ चत्वारि पुरिसजाया ” पुरुषना नीचे प्रमाणे पणु चार प्रकार पडे छे—कोछ एक पुरुष अर्थकर होय छे पणु मानकर होतो नथी जेटके के द्विज्विज्य आदि समये राजा आदिने योग्य सलाह आपीने तेमनु हित करनार अने अहितपरिहारी होय छे, पणु अहङ्कार करनार होतो नथी आ कथनने।



तथा-मानकरो नामैको नो अर्थकर = अभिमानकरो भवति किन्तु नो अर्थकरः-  
 परहितादिरूपमर्थ न करोति, स च विद्यादिगुणामिमानो २, तथा-एकः अर्थकर  
 रोऽपि, मानकरोऽपि, स चाभिमानो मन्त्री, अभिमानि मित्र वा ३, तथा-एको  
 नो अर्थकरो ना मानकरः, स च गुणवर्जितो जनः ४।

“ वसति पुरिसजाया ” इत्यादि-पुनः पुरुषजातानि चत्वारि भवन्ति,  
 तथा-एकः पुरुषो गणार्थकर - गणस्य-साधुसमुदायस्यार्थ-भक्तपानादि प्रयो  
 जन करोतीत्येवशीलस्वया भवति, किन्तु नो मानकरः-‘ कथमहमपार्थितो गण  
 स्वार्थं करिष्यामी’त्येवमभिमानकारी न भवति प्रायनाम-तरणैव तस्य गणोपहा

‘ मैं बिना पूछे राजादिकोंसे ऐसा कैसे करू ” पता अभिमानी नहीं  
 होता है किन्तु अभिमान रहित होता है पता वह पुरुष या तो सन्मन्त्री  
 या नैमित्तिक (उपलब्धि) होता है-१ कोई एक मानकर होता है अर्थ  
 कर नहीं-२ ऐसा व्यक्ति विद्यादिगुणाऽभिमानो होता है, क्योंकि-  
 वह परहितादि रूप अर्थ को नहीं करता है। कोई एक अर्थकर और  
 मानकर भी होता है ऐसा अभिमानी वह मन्त्री, या मित्र होता है-३  
 कोई एक अर्थकर भी नहीं मानकर भी नहीं, ऐसा वह गुणवर्जित जन  
 होता है-४ ‘ वसति पुरिसजाया ” इत्यादि पुनश्च-पुरुष चार है, जैसे  
 कोई एक पुरुष गणार्थकर होता है मानकर नहीं, साधु समुदायका  
 नाम गण है इस गणके भक्तपान आदि प्रयोजनों साधनेका स्वभाव

जाया आ प्रभावे थे-ते जेवो अहंकार करते नथी के “ बिना पूछे  
 भारे राजादिके या भारे सहाय आपवी जेईजे ” ते जेवो निराभिमानो  
 होय थे के राज न पूछे ते पण तेनुं द्वित बाय जेवी सहाय आपते न  
 रहे थे केउ स मन्त्री ज्यथा नैमित्तिके (उपलब्धि) या प्रकारमा ज्ञापी  
 शक्य (२) केउ पुरुष मनकर होय थे पण अर्थकर होतो नथी विद्यादि  
 गुणनु अभिमान करनार पुरुष या प्रकारने होय थे, कारण के ते परहितादि  
 रूप अर्थ (हाय) करते नथी पण अहंकार न करते होय थे (३) केउ  
 अर्थकर पण होय थे जने मानकर पण होय थे अभिमानी मन्त्री ज्यथा  
 अभिमानी मित्रने या जायामां भूरी शक्य (४) केउ अर्थकर पण होतो  
 नथी जने मानकर पण होतो नथी गुणहीन जनने या प्रकारमा भूरी शक्य

‘ वसति पुरिसजाया ” इत्यादि पुरुषना या प्रभावे चार प्रकार पण  
 पडे थे-(१) केउ जेउ पुरुष अर्थकर होय थे पण मनकर होतो नथी  
 साधु समुदायने गण करे थे ते ज्यथा जाहार पावी आदि प्रयोजनेने

रित्वात् १, तथा-मानकरो नामैको नो गगार्थकरः २, तथा-एको गणार्थकरोऽपि मानकरोऽपि ३, तथा-एको नो गणार्थकरो नो मानकरः ४ एते सुगमाः । उक्तच-

अनन्तरं गणस्यार्थ उक्तः, स च सङ्ग्रहरूप इति गणसङ्ग्रहकरसूत्रमाह-  
 “ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि-पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-  
 एको गणसङ्ग्रहकर-गणस्य-गच्छस्य द्रव्यत आहारादिना भावतो ज्ञानादिना  
 सङ्ग्रहं करोतीत्येवशीलस्तथा भवति किन्तु नो मानकरो भवति १, तथा-मान-  
 करो नामैको नो गणसङ्ग्रहकरः २, तथा-एका गणसङ्ग्रहकरोऽपि मानकरोऽपि  
 ३, एको नो गणसङ्ग्रहकरो नो मानकरः ४।

वाला होता है “ विना कहे सुने गणका प्रयोजन कैसे साधू ” ऐसा  
 अभिमानकारी नहीं क्योंकि—वह तो प्रार्थना के विना ही गणहित  
 साधन का स्वभाववाला है, १ कोई एक मानकर होता है पर-गणार्थ  
 कर नहीं, २ कोई एक गणार्थकर भी मानकर भी होता है, ३ तथा-  
 कोई एक नतो गणार्थकर न मानकर ही होता है, ४ ए सब सुगम हैं । गण  
 संग्रह रूप होता है अब सूत्रकार गण संग्रह सूत्रका कथन करते हैं-“ चत्वारि  
 पुरिसजाया ”-पुरुष जात चार कहे गये हैं, जैसे-कोई एक पुरुष गण-  
 गच्छ का संग्रह कर होता है, द्रव्य की अपेक्षा आहारादि द्वारा और,  
 भाव की अपेक्षा ज्ञानादि द्वारा संग्रह करने का स्वभाव वाला होता  
 है, किन्तु, मानकर नहीं होता है, १ कोई एक मानकर होता है गण-  
 संग्रहकर नहीं, २ कोई एक गणसंग्रह कर भी मानकर भी होता है,  
 ३ कोई एक नतो-गणसंग्रहकर न मानकर ही होता है, ४।

साधवाना स्वभाववाणे डोय छे कोष्ठ कडे तो ज गण्डित साधवाने अद्वै  
 कोष्ठना कडेवानी अपेक्षा राग्या विना ते गण्डित साधवाने तत्पर रहे  
 छे. (२) कोष्ठ अेक साधु मानकर डोय छे पणु गणुार्थकर डोतो नथी (३)  
 कोष्ठ अेक साधु गणुार्थकर पणु डोय छे अने मानकर पणु डोय छे (४) कोष्ठ  
 साधु गणुार्थकर पणु डोतो नथी अने मानकर पणु डोतो नथी अर्थ सुगम छे

गणु सअंडरूप डेय छे, तेथी हवे सूत्रकार गणुसअंड सूत्रनु कथन  
 करे छे—“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि—पुरुषोना नीचे प्रमाणे चार प्रकार  
 पणु पडे छे—(१) कोष्ठ पुरुष गणुसअंडकर ( गच्छ सअंडकर) डोय छे  
 अेद्वै के द्रव्यनी अपेक्षाअे आहारादि द्वारा अने भावनी अपेक्षाअे ज्ञानादि  
 द्वारा सअंड करवाना स्वभाववाणे डोय छे, पणु मानकर डोतो नथी (२)  
 कोष्ठ अेक पुरुष मानकर डोय छे पणु गणुसअंडकर डोतो नथी (३) कोष्ठ  
 गणुसअंडकर पणु डोय छे अने मानकर पणु डोय छे. (४) कोष्ठ गणुसअंडकर  
 पणु डोतो नथी अने मानकर पणु डोतो नथी



करोतीत्येवंशीलस्तथा भवति, यद्वा-अकल्पनीयत्वसंशयाधिष्ठिते भक्तपानादौ अन-  
भ्यर्थित एव गृहस्थगृह गत्वा पृच्छादिना गगस्य भक्तादिपदार्थस्य शुद्धिं करोती-  
त्येवशीलस्तथा भवति, किन्तु नो मानकरो भवति १, तथा-मानकरो नामैको नो  
गणशोधिकरः २, तथा-एको गणशोधिकरोऽपि मानकरोऽपि ३, तथा-एको नो  
गणशोधिकरो नो मानकरः ४।

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि-पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि,  
तद्यथा-एको रूपं-साधूनां वेषं जहाति-राजादिकारणेन त्यजति, किन्तु नो धर्म-

शोधि कर होता है, समुनित्त प्रायश्चित्त दान आदि द्वारा गण की शुद्धि  
करने का स्वभाव वाला होता है, यद्वा आहारादि में, अकल्पनीयता की  
संशीति (संदेह)हो जाने पर विना कहे सुने ही जो गृहस्थके घर पर जा  
कर उसका निर्णय कर के उस गण सम्बन्धी आनीत भक्तादि पदार्थ  
की शुद्धि करने का स्वभाव वाला होता है, किन्तु-“ नो मानकरः ”  
मानकर नहीं होता है, १ ध्यान करने का स्वभाव वाला नहीं होता है,  
१ कोई एक पुरुष मानकर होता है पर-गणशोधि कर नहीं होता है,  
२ कोई एक ऐसा होता है जो गण शोधिकर भी होता है और-मान-  
कर भी होता है, ३ और-कोई एक न तो गणशोधिकर होता है, न मान-  
कर ही होता है, ४। पुनश्च-“ चत्वारि पुरिसजाया ”-इत्यादि. पुरुष  
जात चार कहे गये हैं, जैसे-कोई एक पुरुष राजादि विशेष कारण

आदि द्वारा गणुनी शुद्धि करवाना स्वभाववाणो होय छे, अथवा आहारादिमां  
अकल्पनीयतानो स देह उत्पन्न यतां ज केधना कडेवानी राड जेया विना,  
गृहस्थने घर जधने तेनो निर्णय करीने, ते गणुने भाटे वडोरी लाववामां  
आवेत्त आहारपाणीनी शुद्धि करवाना स्वभाववाणो होय छे. पणु “नो मानकर.”  
पणु मानकर होतो नथी-अडकार करवाना स्वभाववाणो होतो नथी. (२)  
केध पुरुष मानकर होय छे पणु गणुशोधिकर होतो नथी. (३) केध गणुशोधिकर  
पणु होय छे अने मानकर पणु होय छे (४) केध गणुशोधिकर पणु होतो  
नथी अने मानकर पणु होतो नथी.

“ चत्वारि पुरिसजाया ” पुरुषना नीचे प्रभाषे चार प्रकार पडे छे—  
(१) केध अेक साधु अेवो होय छे के जे राजादिना लयना कारणु वेषनो  
त्याग करे छे, पणु चारित्र धर्मनो त्याग करतो नथी. (२) केध अेक साधु

चारित्र्यलक्षणस्य प्रतिबोधिकात्पत्तिरिति चोक्तिरुच्यते (बौद्धमाधु) मुनिवत् १, एको धर्मस्त्यजति नो रूपं, निहृववत् २, एको रूपधर्मो मयस्य प्रति उत्पन्नामितवत्-भूत पूर्वं गृहीतसयमगृहस्थवत् ३, एको नो रूपं जहाति नो धर्मं जहाति सुसाधुवत् ४।

से धेप को छोड़ता है चरित्र धर्म नहीं, १ योत्रिक (बौद्ध) धेपधारी योत्रिक मध्य में स्थित मुनि जैसे । कोई एक धर्म छोड़ना है धेप नहीं, २ निहृव जैसे । कोई एक दोनों को छोड़ देता है, ३ गृहस्थ के जैसे । कोई एक धर्म, और धेप में एक को भी नहीं छोड़ता है, ४ सख्ये साधु जैसे । पुनश्च—“ चत्वारि पुरिसजाया ”—पुरुषजात चार होते हैं, जैसे—“ जिनाज्ञा धर्म का परित्याग कर देता है पर-गच्छ मर्यादा नहीं ” तात्पर्य है कि— ‘ योग्य साधु समुदाय को श्रुत देना चाहिये ’ तीर्थंकर की आज्ञा है, इस आज्ञा की उपेक्षा कर के गृहस्थकादि विशिष्ट भुज अन्य गच्छवाले साधु को नहीं देना है प्रवर्तक द्वारा प्रवर्तित अपनी एसी गच्छ मर्यादा का अनुसरण करता है वह जिनाज्ञा विराधक होकर धर्मका परित्याग करता है पर गणस्थिति का परित्याग नहीं करता है ऐसा वह प्रथम भङ्ग है, १। कोई एक गणस्थिति का परित्याग करता है धर्म का नहीं, २ वह योग्य साधुओं को श्रुत देनेवाला होता है । कोई एक धर्म-और

ज्ये को छोड़ छे के ने धर्म छोड़ छे पक्ष वेप छोड़तो नथी नेमके निहृव (३) के छे ज्ये साधु वेप पक्ष छोड़ छे जने धर्म पक्ष छोड़ छे (४) के छे ज्ये साधु वेप पक्ष छोड़तो नथी जने धर्म पक्ष छोड़तो नथी नेमके सत्य साधु

“ चत्वारि पुरिसजाया ” पुरुषजात नीचे प्रभाष्ये चार प्रकार पक्ष पडे छे—(१) के छे ज्ये पुरुष ज्ये को छोड़ छे के ने धर्मना परित्याग करे छे पक्ष ज्ये स्थितिना परित्याग करतो नथी — ‘ जिनाज्ञाधर्मना परित्याग करी नाये छे पक्ष ज्ये मर्यादाना परित्याग करतो नथी ज्ये कथनना सावाधे नीचे प्रभाष्ये छे—तीर्थंकरनी ज्येरी आज्ञा छे के योग्य साधु समुदायने श्रुतदान देवु ज्ये ज्ये ज्येरी आज्ञानी उपेक्षा करीने गृहस्थकादि विशिष्ट सुतनुं अन्य ज्ये ज्ये साधुने ते श्रुत देतो नथी पक्ष प्रवर्तक द्वारा प्रवर्तित ज्येरी चेतानी ज्ये मर्यादानुं तो ज्ये ज्ये करे छे ज्ये प्रकाशना साधु जिनाज्ञाने विराधक होवाने कश्चे धर्मना परित्याग करनारे ज्ये ज्ये छे पक्ष ज्येरी मर्यादानुं श्रुत करनारे होवाने कश्चे ज्ये स्थितिना परित्याग करतो नथी, (२) के छे ज्ये साधु ज्ये स्थितिना परित्याग करे छे पक्ष धर्मना परित्याग करतो नथी ते योग्य साधुज्येने श्रुतदान देतो होय छे (३) के छे धर्म जने ज्ये

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि—पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एषो धर्म—जिनाज्ञारूपं जहाति—त्यजति, किन्तु नो गणसंस्थितिं गणस्य—स्वगच्छस्य संस्थितिं=स्वगच्छप्रवर्तकप्रवर्तितमर्यादां न जहाति । इहायं विवेकः—तीर्थङ्करा एवमु रदिशन्ति— ‘ सर्वेभ्यो योग्यसाधुभ्यः श्रुतं दातव्यमिति तदाज्ञासु पेश्य बृहत्कल्पादि विशिष्टश्रुतमन्यगच्छीयाय न देयमिति स्वगच्छप्रवतकप्रवर्तित-मर्यादामनुसरन् योऽन्यगच्छीयाय श्रुतं न ददाति स धर्मं त्यजति, जिनाऽऽज्ञा विराधकत्वात्, नो गणसंस्थितिम्, इति प्रथमो भङ्ग । १ । एकः पुरुषो गणसं-स्थितिं जहाति नो धर्मं, स च योग्येभ्यः श्रुतदायकः, इति द्वितीयः २ । एको धर्मगणसंस्थित्युभयं जहाति, स चायोग्येभ्यः श्रुतदायकः इति तृतीयः । ३ । एको नो धर्मं जहाति नो गणसंस्थितिं, स च श्रुताव्यवच्छेदार्थपरगच्छस्थं साधुं स्वगणमर्यादायां संस्थाप्य श्रुतदायी । इति चतुर्थः । ४ ।

“ चत्वारि पुरिसजाया ” इत्यादि—पुनः पुरुषजातानि चत्वारि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—एकः प्रियधर्मा—प्रियो धर्मो यस्य स तथा=प्रीतिभावेन सुखेन च धर्म-स्वीकारको भवति, किन्तु नो दृढधर्मा—दृढत्वाभावाद् विपदि धर्मात् प्रचलितो भवति,—

गण स्थिति दोनों का परित्याग करता है, ३ ऐसा वह-अयोग्यों को श्रुत देने वाला होता है, ३। कोई एक पुरुष न तो-धर्म का, न गण स्थिति का परित्याग करता है, ४। पुनश्च—“ चत्वारि पुरिसजाया ”—इत्यादि, पुरुष जात चार कहे गये हैं, जैसे-कोई एक पुरुष धर्मप्रिय होता है-प्रीति भावसे सानन्द धर्मको स्वीकार कर लेता है, किन्तु-‘नो दृढ धर्मा,’ विपत्तिमें धर्मसे विचलित हो जाता है, अतः—दृढ धर्मा नहीं होता है, १। कोई एक पुरुष आपत् काल में भी अङ्गीकृत धर्म का परित्याग नहीं

स्थिति अन्नेना परित्याग करे छे अथेत्थ व्यक्तियेने श्रुतदान हेतारने आ प्रकारमा भूद्धी शक्य (४) के.छ अेक साधु धर्माने पणु परित्याग करते नथी अने गणस्थितिने पणु परित्याग करते नथी

“ चत्वारि पुरिसजाया ’ पुरुषना नीचे प्रमाणे चार प्रकार पणु कक्षा छे—(१) के.छ अेक पुरुष धर्मप्रिय होय छे—प्रीतिभावथी आनन्दपूर्वक धर्मने स्वीकारी ले छे, परन्तु “ नो दृढधर्मा. ” दृढधर्मा होतो नथी—अेतसे के विपत्तिमा धर्मथी विचलित थय जनारो होय छे.

तथा—एका दृढधर्मा—भाष्यपि स्वीकृतधर्मा परित्यागेन स्थिरधर्मा भवति, किन्तु नो मियधर्मा—मुखेन धर्मस्वीकारि न भवति, यत स कष्टेन धम गृह्णाति, २। एकः मियधर्माऽपि दृढधर्माऽपि ३, एको नो मियधर्मा नो दृढधर्मा ४।

अस्यायमर्थः—द्वितीयो दुःस्तेन धर्ममुद्रग्राहते=धर्मग्रहण कार्यत, तु=पुनरसौ गृहीत धर्म तीर=पार नपत्ति=यावज्जीवन सविधि समनुविष्टीविवृतीयः उभयान्तः=प्रियधर्मतर-दृढधर्मतरोभयस्वभाव करपाणः=शोभनो भवति ३। धरमाः अतिममत्तुर्त्यसु प्रतिक्लृप्तः=निषिद्धो निवारित इत्यर्थः । सू० १९ ।

५७३—चत्वारि आयरिया पणत्ता, त जहा पद्यायणायरिणाममेगे णो उवट्टावणायरिण १, उवट्टावणायरिण णाममेगे णो करता हे (स्थिर धर्मधारी होता है,) पर-सहसा सुम्भ से धर्म का स्वीकार नहीं करता है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति बहुत कुछ शोच समझ कर धर्म ग्रहण करता है, २ कोई एक प्रियधर्मा और दृढधर्मा भी होता है, ३ कोई एक पुरुष न तो प्रियधर्मा ही न दृढधर्मा ही होता है, ४ इसका तात्पर्य है—कि यहा जो द्वितीय पुरुष है वह सरलतासे धर्मको नहीं ग्रहण करता है बहुत ही शोच समझ कर उसे स्वीकार करता है, और जब स्वीकार कर लेता है तो फिर यावज्जीवन उसका वह सविधि पालन करता। अथ पदों का भाष्य सुगम है, ॥ सू० १० ॥

(२) कोठ ओऽ पुरुष ओवेः कोठ उ के के जमे तेयी आहत आवे तोः पवु धर्मने परित्याग करते नथी (स्थिर धर्म धारी होय उ), पवु पवु विचार धर्मा विना धर्मने अनीकार करते नथी (३) कोठ पुरुष प्रिय धर्मा पवु कोय उ जने दृढ धर्मा पवु कोय उ (४) कोठ पुरुष प्रियधर्मा पवु कोतो नथी जने दृढधर्मा पवु कोतो नथी कहु पवु उ के—

अदी के नील प्रकारने पुरुष कथो उ ते सरलताधी धर्मने ग्रहण करते नथी—पवु के विचार करीने धर्मने स्वीकारे उ आ रीते धर्मने स्वीकार्या आह ते जमे तेयी परिस्थितिमा पवु विधिपूर्वक, आश्रयन तेनु पालन करे उ आदीना पदोने भाष्य सुगम उ ॥ सू १६ ॥

पद्वायणायरिण २, एगे पद्वायणायरिण्वि उवट्टावणायरिण्वि ३,  
एगे णो पद्वायणायरिण णो उवट्टावणायरिण धम्मायरिण ४।

चत्तारि आयरिया पणत्ता, तं जहा--उद्देसणायरिण णाम-  
मेगे णो वायणायरिण, धम्मायरिण० ४,

चत्तारि अंतेवासी पणत्ता, तं जहा--पद्वायणंतेवासी णाम-  
मेगे णो उवट्टावणंतवासी १, धम्मंतवासी ४,

चत्तारि अंतेवासी पणत्ता, तं जहा--उद्देसणंतवासी णाम-  
मेगे णो वायणंतवासी १, धम्मंतवासी० ४, । सू० २० ॥

छाया-चत्वार आचार्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा प्रव्राजनाऽऽचार्यो नामैको नो उपस्था-  
पनाऽऽचार्यः १, उपस्थापनाऽऽचार्यो नामैको नो प्रव्राजनाऽऽचार्यः २, एकः  
प्रव्राजनाऽऽचार्योऽपि उपस्थापनाऽऽचार्योऽपि ३, एको नो प्रव्राजनाऽऽचार्यो नो  
उपस्थापनाऽऽचार्यः धर्माऽऽचार्यः ४।

चत्वार आचार्याः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-उद्देशनाऽऽचार्यो नामैको नो वाचनाऽऽ-  
चार्यः धर्माऽऽचार्यः ४।

चत्वारोऽन्तेवासिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्रव्राजनाऽन्तेवासी नामैको नो उपस्था-  
पनाऽन्तेवासी १, धर्मान्तेवासी ४।

चत्वारोऽन्तेवासिनः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-उद्देशाऽन्तेवामी नामैको नो वाचना  
ऽन्तेवासी १, धर्मान्तेवासी० ४। ॥सू० २० ॥

टीका—“ चत्तारि आयरिया ” इत्यादि — आचार्याश्चत्वारः प्रज्ञप्ताः,  
तद्यथा-एक प्रव्राजनाऽऽचार्यः-प्रव्राजना-प्रव्रज्यादानं तथा आचार्यो भवति,  
किन्तु नो उपस्थापनाऽऽचार्यः-उपस्थापना-शिष्ये महाव्रताऽऽरोपणं तथा आचार्य

“ चत्तारि आयरिया पणत्ता ”--इत्यादि, २० ॥

आचार्य चार कहे गये हैं, जैसे — कोई एक आचार्य  
ऐसा होता है जो - प्रव्राजनाचार्य होता है - उपस्थापनाचार्य  
नहीं, १ दीक्षा देने द्वारा जो आचार्य होता है वह -  
प्रव्राजनाचार्य है, तथा-शिष्य में महाव्रतोंका आरोपक जो हों वह-उपस्था-

“ चत्तारि आयरिया पणत्ता ” इत्यादि (२०)

आचार्यना नीचे प्रमाणे चार प्रकार कथा छे—(१) केअ ओक आचार्य  
ऐवा डाय छे के के प्रव्रजनाचार्य डाय छे, पबु उपस्थापनाचार्य डाय



उपस्थापनाऽऽचार्यं = शिष्ये महाग्रनाऽऽरोपको न भवति इति प्रथमो मङ्गल । १ ।  
 एक उपस्थापनाऽऽचार्यो भवति न तु प्रजाजनाऽऽचार्यः । इति द्वितीयः । २ ।  
 एक उभयाऽऽचार्यो भवति । इति तृतीयः । ३ । एषो नोभयाधाय, स हि  
 चर्माऽऽचार्यो भवति । इति चतुर्थः । ४ ।

“ चत्वारि आयरिया ” इत्यादि—पुनराचायाभस्वारः मङ्गलाः तद्यथा—  
 एक उद्देशनाऽऽचार्यं—उद्देशनम्—अङ्गद्विपठनापिहारित्स्वरकरणम्, तेन तत्र वाऽऽ-  
 पनाचार्यं है, अर्थात् उद्देशोपस्थापनीय चारित्र्य देनेवाला उपस्थापनाचार्य  
 है । कोई एक आचार्य शिष्य में महाग्रनों का आरोपण करने से उप-  
 स्थापनाचार्य होता है, प्रजाजनाचार्य नहीं, २ ऐसा द्वितीय मङ्गल है ।  
 तथा-कोई एक प्रजाजना से, और शिष्य में महाग्रनों की आरोपणासे  
 दोनों तरफोंसे आचार्य होता है, ३ ऐसा तृतीय मङ्गल है । तथा-कोई एक  
 आचार्य न तो प्रजाजना से, न उपस्थापनासे आचार्य होता है, ४ यह  
 चतुर्थ मङ्गल है । कहा भी है “ घन्मो जेणुषइदो ” इत्यादि पुनश्च—  
 “ चत्वारि आयरिया,—इत्यादि आचार्य चार प्रकार के होते हैं, जैसे—  
 कोई एक आचार्य ऐसा होता है जो, उद्देशनाचार्य होता है, आचा-  
 राइदि ग्यारह अद्वादिकों को पढ़ने का अधिकारी करना, इसका नाम  
 उद्देशन है, इस उद्देशन से अथवा—इन उद्देशन में जो आचार्य होता  
 है वह—उद्देशनाचार्य है, किन्तु—वह वाचनायाय नहीं होता है १ ऐसा यह

नधी दीक्षा अत्रिकार करवाने कीये आचार्य बनाने प्रवृत्तायाय कहे  
 छे तथा शिष्योभां मद्वाप्तोनु आदेशिय करवाने उपस्थापनाचार्य कहे छे  
 अथवा के उद्देशोपस्थापनीय चारित्र्य देने उपस्थापनाचार्य कहे छे (२) कौछ  
 अथवा शिष्योभां मद्वाप्तोनु आदेशिय करवाने कहे उपस्थापनाचार्य  
 होय छे पञ्च प्रजाजनायाय होता नधी (३) कौछ अथवा शिष्योभां प्रवृत्त  
 करवाने कहे प्रवृत्तायाय पञ्च होय छे अने मद्वाप्तोनु आदेशिय करवाने  
 कहे उपस्थापनाचार्य पञ्च होय छे (४) कौछ अथवा प्रजाजनानी  
 अपेक्षाये पञ्च आचार्य होता नधी अने उपस्थापनानी अपेक्षाये पञ्च  
 आचार्य होता नधी

‘ चत्वारि आयरिया ’ इत्यादि—आचार्यना नीये प्रभाजे पञ्च चार  
 प्रकार पडे छे—(१) कौछ अथवा अथवा अथवा होय छे के ७ उद्देशनायक  
 होय छे पञ्च वाचनायाय होता नधी आ कथनो वाचय नीये प्रभाजे  
 छे—आचार्यादि अत्रियर अथवा अनुपस्थापन करवाने अधिकारी करवे। तेनु

चार्य उद्देशनाऽऽचार्यो भवति, किन्तु वाचनाऽऽचार्यो न भवति १, शेषास्त्रयो भङ्गाः सुगमाः ४। तत्रोभयरहितो धर्माऽऽचार्यो ज्ञेय इति ।

“चत्वारि अंतेवासी” इत्यादि अन्तेवासिनः—अन्ते=गुरोः सन्निधौ (गुरोराज्ञायां) वसन्तीत्येवंशीला अन्तेवासिनः=शिष्याः चत्वारः ब्रह्मप्ताः, तद्यथा-एकः प्रवाजनया-दीक्षयाऽन्तेवासी तथा=दीक्षितो भवति, किन्तु नो उपस्थापनाऽन्तेवासी-उपस्थापना-पञ्चमहाव्रतसमारोपणा तत्र तथा वाऽन्तेवासी तथा=महाव्रताऽऽरोपणाशिष्यो न भवति १, एक उपस्थापनाऽन्तेवासी भवति परन्तु प्रवाजनाऽन्तेवासी न

प्रथम भङ्ग है। इस सम्बन्ध के चाकी के तीन भङ्ग सुगम हैं। जैसे—कोई एक आचार्य ऐसा होता है जो वाचनाचार्य होता है उद्देशनाचार्य नहीं, २ कोई एक उद्देशनाचार्य और वाचनाचार्य भी होता है, ३ कोई एक न तो उद्देशनाचार्य न वाचनाचार्य ही होता है, ४ यह चतुर्थ भङ्ग है। “चत्वारि अंतेवासी”—अन्तेवासी चार होते हैं, गुरु की सेवा में रहने वाला शिष्य अन्तेवासी कहा जाता है, कोई एक प्रवाजनान्तेवासी होता है पर उपस्थापनान्ते वासी नहीं होता है, जो दीक्षासे अन्तेवासी होता है वह-प्रवाजनान्तेवासी कहा गया है, और-जो पञ्चमहाव्रतों की आरोपणा में, या-आरोपणा से अन्तेवासी होता है वह-उपस्थापना अन्ते वासी कहा गया है, इस प्रकार का यह प्रथम भङ्ग है, १ कोई एक

नाम उद्देशन छे आ उद्देशननी अपेक्षाछे अथवा आ उद्देशनमा ले आचार्य डोय छे तेने उद्देशनाचार्य कडे छे, अने सूत्रादितु पठन(अध्ययन) करावनारने वाचनाचार्य कडे छे.

कैथि अेक आचार्य अेवां डोय छे के ले वाचनाचार्य डोय छे, पणु उद्देशनाचार्य डोता नथी (३) कैथि अेक आचार्य अेवा डोय छे के ले उद्देशनाचार्य पणु डोय छे अने वाचनाचार्य पणु डोय छे. (४) कैथि अेक आचार्य उद्देशाचार्य पणु डोता नथी अने वाचनाचार्य पणु डोता नथी

“चत्वारि अंतेवासी” गुरुनी समीपे रहैनार शिष्यने अन्तेवासी कडे छे ते अन्तेवासीना नीचे प्रमाणे चार प्रकार क्हा छे

(१) कैथि अेक प्रवाजनान्तेवासी डोय छे पणु उपस्थापनान्तेवासी डोतो नथी ले शिष्य दीक्षाने करणु अन्तेवासी गणुय छे, तेने प्रवाजनान्तेवासी कडे छे ले शिष्य पाच महाव्रतानी आरोपणुने करणु अन्तेवासी गणुय छे तेने उपस्थापनान्तेवासी कडे छे आ पडेवे लागे छे

મરતિ ૨, એક પ્રયાજનાન્વેષાસ્યપિ ઉપસ્થાપના તેવાસ્યપિ મરતિ ૨, એકો નો પ્રવાજનાન્વેષાસી મરતિ નાપિ ધોપસ્થાપનાન્વેષાસી મરતિ, ચતુર્થમ્મસ્વ શિષ્યો ધર્માન્વેષાસી સમમાપસ્વીકારે શિષ્યો મરતિ, યદ્વા ધર્માભિલાપિતયોપાગતમ્ચતુર્થા પોષ્યઃ ૨૧ ઇતિ ॥

“ ચત્તારિ અન્વેષાસી ” ઇત્યાદિ—પુનરન્વેષાસિનમ્ત્વારઃ પ્રજ્ઞપ્ત્વાઃ, તદ્વ્યા-એક ઉદ્દેશનાન્વેષાસી-ઉદ્દેશનેન=અદ્વાદિપઠનાપિકારિસ્વકરણેન શિષ્યો મરતિ, કિન્તુ નો ધાચનાન્વેષાસી-ધાચના-ગુરુમ્ચઃ અચળમધિગમો યા, તયા તપ્ત ધાન્વેષાસી તયા ન મરતિ ૧ એકો ધાચનાન્વેષાસી મરતિ, નો ઉદ્દેશનાન્વેષાસી અન્વેષાસી૦૬૧૦ જે કો કિ ઉપસ્થાપનાસે અન્વેષાસી હોતા૬૧૦ પ્રવાજનાસે નહીં, યદ્ શિષ્યો મરતિ, ૨ કોઈ એક અન્વેષાસી એસા હોતા૬૧૦ જે પ્રવાજનાસે મી ઓર-ઉપસ્થાપનાસે મી, યદ્ તૃતીય મરતિ, ૩ કોઈ એક પ્રવાજનાસે મી ઉપસ્થાપનાસે મી ઓર યા અન્વેષાસી નહી હોતા૬૧૦, એસા યદ્ શિષ્ય ધર્માન્વેષાસી હોતા૬૧૦ ધર્મ માત્ર કે સ્વીકાર સે શિષ્ય હોતા૬૧૦, એસા યદ્ ચૌથા મરતિ, ૪ જો ધર્માભિલાપાસે યુક્ત હો કર ગુરુ કે પાસ મેં શિષ્યસ્ય મરતિ કરતા૬૧૦, યદ્ મી ઇસ ચતુર્થ મરતિ યા હોતા૬૧૦, ૧ પુનઃ-“ ચત્તારિ અન્વેષાસી-” અન્વેષાસી ચાર કહે ગયે હૈ, જૈસે-કોઈ એક અન્વેષાસી ઉદ્દેશનાસે અદ્વાદિ પઠનાન્વેષાસી કરને સે અન્વેષાસી-શિષ્ય હોતા૬૧૦, પર ધાચનાસે ગુરુ કે પાસ અચળ સે યા-અધિગમસે અન્વેષાસી નહી હોતા૬૧૦, એસા યદ્ ઉદ્દેશનાન્વેષાસી નો ધાચનાન્વેષાસી નામકા પ્રથમ મરતિ, ૧ તયા-કોઈ એક અન્વેષાસી

(૨) કોઈ એક ઉપસ્થાપનાન્વેષાસી હોય છે, પણ પ્રવાજનાન્વેષાસી હોતો નથી (૩) કોઈ એક પ્રવાજનાન્વેષાસી પણ હોય છે અને ઉપસ્થાપનાન્વેષાસી પણ હોય છે (૪) કોઈ એક પ્રવાજનાન્વેષાસી અધિકારી પણ અન્વેષાસી હોતો નથી અને ઉપસ્થાપનાન્વેષાસી અધિકારી પણ અન્વેષાસી હોતો નથી એવા શિષ્યને ધર્માન્વેષાસી કહે છે, કારણ કે મત્ર ધર્મના સ્વીકારની અધિકારી તે અન્વેષાસી અધિકારી છે

‘ ચત્તારિ અન્વેષાસી ’ અન્વેષાસીના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર પણ કહ્યા છે—(૧) કોઈ એક અન્વેષાસી ઉદ્દેશનાન્વેષાસી હોય છે પણ ધાચનાન્વેષાસી હોતો નથી એટલે કે અજાતિનું પઠન કરવાને અધિકારી હોય છે પરન્તુ ધાચનાન્વેષાસી-ગુરુની સમીપે અચળની અધિકારી અથવા અધિકારી અધિકારી અન્વેષાસી હોતો નથી એવો આ ઉદ્દેશનાન્વેષાસી નો ધાચનાન્વેષાસી ” આ પહેલો અર્થ છે

२, एक उद्देशान्तेवास्यपि भवति वाचनाऽन्तेवास्यपि ३, एको नो उद्देशान्ते-  
वासी नापिच वाचनाऽन्तेवासी भवति ४। तत्र चतुर्थभद्रस्थोऽन्तेवासी को भव-  
तीत्याह—“ धर्मन्तेवासी ”—ति, धर्मान्तेवासी—धर्मशिष्यः, धर्ममात्रामिलापितयो-  
पपन्नो वा । ४। इति ॥ सू० २० ॥

मूलम्--चत्वारि णिग्गंथा पणत्ता, तं जहा--राइणिये समणे  
णिग्गंथे महाकस्से महाकिरिण्ण अणायावी असम्मिण्ण धम्मस्स  
अणाराहए भवइ १, राइणिए समणे णिग्गंथे अप्पकस्से अप्प-  
किरिये आयावी समिण्ण धम्मस्स आराहए भवइ २, ओमराइ-  
णिए समणे णिग्गंथे महाकस्से महाकिरिण्ण अणायावी असम्मिण्ण  
धम्मस्स अणाराहए भवइ ३, ओमराइणिए समणे णिग्गंथे  
अप्पकस्से अप्पकिरिण्ण आयावीसम्मिण्ण धम्मस्स आराहए भवइ ४।

चत्वारि णिग्गंथीओ पणत्ताओ, तं जहा--राइणिया समणी  
णिग्गंथी एवं चेव ४,

वाचनान्तेवासी होता है-उद्देशान्तेवासी नहीं, ऐसा यह द्वितीय भद्र  
है, तथा-कोई एक अन्तेवासी उद्देशान्तेवासी भी-वाचनासे भी अन्तेवासी  
होता है, ३ यह तृतीय भद्र है । एवं-कोई एक अन्तेवासी न तो उद्दे-  
शान्तेवासी, और-न वाचना से ही अन्तेवासी होता है, ऐसा अन्तेवासी  
धर्मशिष्य होता है, धर्ममात्र की अभिलाषा से युक्त हो कर वह शिष्य  
व्यनता है, ऐसा यह चतुर्थ भद्र है, ४ ॥ सू०२० ॥

(२) कोई एक अन्तेवासी वाचनान्तेवासी होय छे, पण उद्देशान्तेवासी  
होतो नथी. (३) कोई एक अन्तेवासी उद्देशान्तेवासी पण होय छे अने  
वाचनान्तेवासी पण होय छे (४) कोई एक शिष्य उद्देशान्तेवासी पण  
होतो नथी अने वाचनान्तेवासी पण होतो नथी अये. अन्तेवासी धर्म-  
शिष्य होय छे. मात्र धर्मनी अभिलाषाथी युक्त थवाने कारणे न ते शिष्य  
अन्तेवासी होय छे. ॥ सू० २० ॥

ચત્તારિ સમણોવાસગા પળ્લતા, ત જહા રાહ્ણિય સમ  
ણોવાસપ્ મહાકમ્મે તહેવ ૪,

ચત્તારિ સમણોવાસિયાઓ પળ્લતાઓ, ત જહા રાહ્ણિયા  
સમણોવાસિઆ મહાકમ્મા તહેવ ચત્તારિ ગમા । સૂ૦ ૨૧ ॥

જાયા-ચત્તારો નિર્ગ્રન્થાઃ પ્રહ્લતાઃ, તથયા-રાત્નિકઃ અમણો નિગ્રન્થો મહાકર્મા  
મહાક્રિયઃ અનાતાપી અસમિતો ધર્મસ્થાનારાધકો મરતિ ૧, રાત્નિકઃ અમણો  
નિર્ગ્રન્થોઽરપકર્માઽરપક્રિય આતાપી સમિતો ધર્મસ્થાઽરાધકો મરતિ ૨, અમ-  
રાત્નિકઃ અમણો નિગ્રન્થો મહાકર્મા મહાક્રિયોઽનાતાપી અસમિતો ધર્મસ્થાઽરા  
ધકો મરતિ ૩, અમરાત્નિકઃ અમણો નિર્ગ્રન્થોઽરપકર્માઽરપક્રિય આતાપી સમિતો  
ધર્મસ્થાઽરાધકો મરતિ ૪।

અવલો નિગ્રન્થપ પ્રહ્લતાઃ, તથયા-રાત્નિકી અમણા નિગ્રન્થી પલ્લમેષ ૪,  
અત્તાર અમણોપાસકાઃ પ્રહ્લતાઃ, તથયા-રાત્નિકઃ અમણોપાસકો મહાકર્મા  
તયેષ ૪।

અવલ્લઃ અમણોપાસિકા પ્રહ્લતાઃ, તથયા-રાત્નિકી અમણોપાસિકા મહાકર્મા  
તયેષ ચત્તારો ગમાઃ । સૂ૦ ૨૧ ॥

ટીકા—“ ચત્તારિ ણિગ્ગયા ” इत्यादि-निर्ग्रन्थाः-ब्रह्मस्यन्तरमन्यररिताः  
साधवत्त्वार प्रह्लताः, तथया-रातनिकः-रत्नैः-भाक्तो ज्ञानादित्तज्ञे र्थवहर  
तीति रातनिक-ज्ञानादिरत्नरूपवहारसम्पन्नो बृहत्पर्यायः पर्यायज्येष्ठ इत्यर्थः,

ટીકાર્થ—“ ચત્તારિ ણિગ્ગયા પળ્લતા ’-इत्यादि-। २१ ॥

નિર્ગન્થ ચાર પ્રકાર કે કહે ગયે છે, जैसे - कोई एक  
निर्ग्रन्थ अमणरातनिक पर्याय ज्येष्ठ होता है, वीक्षापर्याय  
की अपेक्षा ज्येष्ठ होता है, तपस्वरणशील होता है निर्ग्रन्थ

‘ ચત્તારિ ણિગ્ગયા પળ્લતા ’ इत्यादि—(२१)

અમણ નિર્ગ્રન્થના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે—

(૧) કેઈ એક અમણ નિર્ગ્રન્થ રાત્નિક કહે છે એટલે કે દીક્ષાપર્યાયની  
અપેક્ષાએ જ્યેષ્ઠ કહે છે, તપસ્વરણશીલ કહે છે બ્રાહ્મ અને બ્રાહ્મન્તર  
પરિશ્લેષી સ્થિત કહે છે, પરન્તુ જ્ઞાનાવસ્થાના આદિ કર્મોની સ્થિતિની

શ્રમણઃ-તપશ્ચરણશીલઃ, નિર્ગ્રંથઃ, મહાકર્મા-મહાન્તિ-શુરૂણિ સ્થિત્યાદિભિસ્તા-  
દશપ્રમાદલક્ષિતાનિ કર્માણિ=જ્ઞાનાઽઽચરણીયાદીનિ યસ્ય સ તથા, મહાક્રિયઃ=  
મહતી-વૃહતી ક્રિયા-કર્મવન્ધહેતુભૂતા કાચિકચાદિકા યસ્ય સ તથા, અનાતાપી-  
આસમન્તાત્ તાપયતિ-શીતોષ્ણાદિસહનલક્ષણામાતાપનાં કરોતીત્યેવંશીલ આતાપી,  
ન આતાપીત્યનાતાપી=શીતોષ્ણાદિપરીપહસહનરૂરણવર્જિતઃ મન્દશ્રદ્ધત્વાત્, અત  
એવ અસમિતઃ-સમિતિભિ' એર્ચ્યાપચિકચાદિધીરહિતઃ સાધુઃ ધર્મસ્ય-દુર્ગતિપત-  
ઞ્જન્તુસમુદ્ધરણપરાયણસ્ય ચારિત્રલક્ષણસ્ય અનારાધકઃ-આરાધયતીત્યારાધક સ  
ન ભવતીતિ તથા ભવતિ, ઇતિ પ્રથમો નિર્ગ્રંથો જ્ઞેયઃ । ૧ ।

તથા-રાત્નિકઃ-પર્યાયજ્યેષ્ઠઃ શ્રમણો નિર્ગ્રંથોઽલ્પકર્મા-લઘુકર્મા, અલ્પ-  
ક્રિયઃ-અલ્પા ક્રિયા કાચિકચાદિકા યસ્ય સ તથા, આતાપી-પરીપહસહનધી(ઃ),

વાહ્ય-આભ્યન્તર પરિગ્રહસે રહિત હોતા હૈ, પરન્તુ ફિરમી વહ જ્ઞાના-  
વરણીયાદિ કર્મોકી સ્થિતિકી અપેક્ષાસે મહા કર્મા હોતાહૈ કર્મવન્ધ હેતુભૂત  
પ્રાણાતિપાત આદિ કાચિકી ક્રિયાઈ જિસકી મહતી હોતી હૈ. મન્દ-  
શ્રદ્ધાવાલા હોનેસે શીત ઉષ્ણ આદિ પરીપહોંકો જીતનેસે રહિત હોતા  
હૈ અસમિત હોતા હૈ-ઈર્ચ્યાપચિકી આદિ સમિતિયોંકે પાલનેસે વિહીન  
હોતા હૈ ઓર ઇસીસે દુર્ગતિમૈં પડતે હુવે જીવોંકે ઉદ્ધરણ કરનેમૈં તત્પર  
એસે ચારિત્રરૂપ ધર્મકા વહ આરાધક નહોં હોતા હૈ એસા વહ પ્રથમ  
પ્રકારકા નિર્ગ્રંથ હૈ-૧ કોઈ એક શ્રમણ નિર્ગ્રંથ રાત્નિક દીક્ષાપર્યાયકી  
અપેક્ષા ડ્યેષ્ઠ હોતાહૈ શ્રમણ-તપશ્ચરણશીલ હોતાહૈ નિર્ગ્રંથ વાહ્ય આભ્ય-  
ન્તર પરિગ્રહકા ત્યાગી હોતા હૈ, પર લઘુકર્મા હોતા હૈ, કાચિકી આદિ  
અલ્પ ક્રિયાવાલા હોતા હૈ, આતાપી હોતા હૈ, પરીપહોંકો સહનેમૈં ધીર

અપેક્ષાએ તે મહાકર્મા હોય છે તે કારણે કર્મવન્ધના કારણે રૂપ પ્રાણુતિપાત  
આદિ કાચિકી ક્રિયાઓથી અધિક પ્રમાણુમા તે યુક્ત હોય છે, મન્દ શ્રદ્ધા-  
વાળો હોવાને કારણે શીત, ઉષ્ણ આદિ પરીપહોને છતવાને અસમર્થ હોય  
છે, અસમિત હોય છે-ઈર્ચ્યાપચિકી આદિ સમિતિઓના પાલનથી વિહીન હોય  
છે અને તે કારણે દુર્ગતિમા પડતા છવેનો ઉદ્ધાર કરવાને સમર્થ એવા  
ચારિત્રરૂપ ધર્મનો તે આરાધક હોતો નથી આ પહેલા પ્રકારનો નિર્ગ્રંથ સમજવો.

(૨) કોઈ એક શ્રમણ નિર્ગ્રંથ રાત્નિક હોય છે-દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ  
ન્યેષ્ઠ હોય છે, તપશ્ચરણુ શીલ હોય છે અને વાહ્ય-આભ્યન્તર પરિગ્રહનો  
ત્યાગી હોય છે, પરન્તુ તે લઘુકર્મા હોય છે કાચિકી આદિ અલ્પ ક્રિયાવાળો  
હોય છે, આતાપી હોય છે-પરીપહોને સહન કરવામાં ધીરશીર હોય છે, અને

અતઃ એ સમિત - સમિતિગુણસમ્પન્નમ મયત્યતો ધર્મસ્યાઽઽરાધકો મવતિ ૨।  
 इति त्रितीयो निर्ग्रन्थः २। तथा-अवमरात्तिकः-अवमो-लघु पर्यायेण स चासौ  
 रात्तिकोऽवमरात्तिकः-लघुपर्यायः, धनणो निर्ग्रन्थो महाकर्मा महाक्रियोऽनातापी  
 अत एवासमितो मवन्त्यत एव च धर्मस्याऽऽराधको मवति । इति तृतीयो निर्ग्रन्थः  
 २। तथा-अवमरात्तिक - लघुरात्तिक भ्रमणो निर्ग्रन्थोऽल्पकर्माऽऽराकिय मातापी  
 अत एव समितोऽत एव धर्मस्याऽऽराधको मवति । इति चतुर्थो निर्ग्रन्थः १४ ।

વીર હોતા હૈ, સમિત હોતા હૈ-સમિતિ ગુણ સમ્પન્ન હોતા હૈ અતઃ  
 एव धर्माराधक होता है, यह द्वितीय प्रकारका अमणनिर्ग्रन्थ है-२  
 कोई एक धमण निर्ग्रन्थ दीक्षापर्यायकी अपेक्षा लघुपर्यायवाला होता  
 है तपश्चरणशील होता है बाह्य-आम्पन्तर परिग्रहसे रहित होता है,  
 फिरभी महाकर्मा होता है, महा क्रियावाला होता है, अनातापी होता  
 है, अतएव-असमित होता है और इसी कारण यह धर्मका आराधक  
 नहीं होता है-ऐसा यह तृतीय प्रकारका अमण निर्ग्रन्थ है-३ कोई  
 एक अमण निर्ग्रन्थ अवमरात्तिक होता है-दीक्षापर्यायकी अपेक्षा लघु  
 पर्यायवाला होता है तपश्चरणशील होता है बाह्याऽम्पन्तर परिग्रहका  
 त्यागी होता है, पर यह अल्प कर्मा होता है, अल्प क्रियावाला होता  
 है आतापी होता है, समित होता है, इसलिये यह धर्मका आराधक  
 होता है-४ ।

સમિત હોય છે-ઇર્ષાવશિકા આદિસમિતિઓનુ પાલન કરનાર હોય છે, તે કારણે  
 તે નિર્ગ્રન્થ ધર્મારાધક હોય છે બીજા પ્રકારના સમણ નિર્ગ્રન્થોના આ લક્ષણો સમજવા  
 હવે ત્રીજા પ્રકારના સમણ નિર્ગ્રન્થના લક્ષણો બતાવવામાં આવે છે-  
 કોઈ એક સમણ નિર્ગ્રન્થ દીક્ષાપર્યાયની અપેક્ષાએ લઘુપર્યાયવાળો હોય છે,  
 તપશ્ચરણશીલ હોય છે અને બાહ્ય-આમ્પન્તર પરિગ્રહથી રહિત હોય છે,  
 પરન્તુ તે મહાકર્મા હોય છે મહાક્રિયાવાળો હોય છે અનાતાપી હોય  
 છે, પરીપદોને સદન કરવાને અધમર્ષ હોય છે, તે કારણે તે અસમિત  
 હોય છે અને એજ કારણે તે ધર્મને આરાધક હોતો નથી.

ચોથા પ્રકારના સમણ નિર્ગ્રન્થના લક્ષણો હવે પ્રકટ કરવામાં આવે  
 છે-કોઈ એક સમણ નિર્ગ્રન્થ 'અવમરાત્તિક' હોય છે એટલે કે લઘુ  
 દીક્ષાપર્યાયવાળો હોય છે, તપશ્ચરણશીલ હોય છે અને બાહ્ય-આમ્પન્તર  
 પરીગ્રહને ત્યાગી હોય છે પરન્તુ તે અલ્પકર્મા હોય છે અલ્પક્રિયાવાળો  
 હોય છે પરીપદોને સદન કરનારો હોય છે અને સમિત હોય છે તે કારણે  
 તે ધર્મને આરાધક હોય છે

“ चत्वारि णिगंथीओ ” इत्यादि—एतद्विवरणं निर्ग्रन्थसूत्रवद्बोधयम्, इत्यत आह—“ एवं चेव ”—एवमेव—निर्ग्रन्थवदेव भद्रचतुष्टय भणनीयम्।

“ चत्वारि समणोवासगा ” इत्यादि—एतदपि श्रमणोपासकसूत्रं निर्ग्रन्थ-सूत्रवद् बोध्यम्, इत्यत आह—“ तहेवे ”—ति—तथैव—यथा निर्ग्रन्था उक्तास्तथैव श्रमणोपासका अपि चतुर्भङ्गीयुक्ता बोध्या इति ।

संक्षेपसे श्रमण निर्ग्रन्थोंके चार भेद इस प्रकारसे हैं—कोई एक श्रमण निर्ग्रन्थ दीक्षापर्यायकी अपेक्षा ज्येष्ठ होता हुवाभी अनाराधक होता है—१ कोई एक श्रमण निर्ग्रन्थ दीक्षापर्यायकी अपेक्षा ज्येष्ठ हुवाभी आराधक होता है—२ ।

कोई एक श्रमण निर्ग्रन्थ दीक्षापर्यायकी अपेक्षा लघु हुवाभी अनाराधक होता है—३ और एक श्रमण निर्ग्रन्थ दीक्षापर्यायकी अपेक्षा लघु हुवाभी आराधक होता है—४ “ चत्वारि णिगंथीओ ” इत्यादि.

इस सूत्रका विवरण निर्ग्रन्थ सूत्र जैसा जानना चाहिये अतः पूर्वोक्त रूपसेही यहां भद्र चतुष्टय कर लेना चाहिये । “ चत्वारि समणोवासगे ” इत्यादि इस श्रमणोपासक सूत्रकी व्याख्या भी पूर्वोक्त निर्ग्रन्थ सूत्रकी तरह करलेनी चाहिये इसीलिये तहेव ऐसा कहते हुवे सूत्रकार प्रकट करते हैं कि श्रमणोपासकभी निर्ग्रन्थोंके समानही चतु-

हुवे श्रमणु निर्ग्रथेना चार लेह सक्षिप्तमा प्रकट उ-वामा आवे छे

(१) दीर्घं दीक्षा पर्यायवाणे पणु अनाराधक डोय जेवो श्रमणु निर्ग्रथ.

(२) दीर्घं दीक्षापर्यायवाणे पणु आराधक डोय जेवो श्रमणु निर्ग्रथ.

(३) लघु दीक्षापर्यायवाणे पणु अनाराधक डोय जेवो श्रमणु निर्ग्रथ.

(४) लघु दीक्षापर्यायवाणे पणु आराधक डोय जेवो श्रमणु निर्ग्रथ.

“ चत्वारि णिगंथीओ ” इत्यादि—

चार प्रकारनी श्रमणु निर्ग्रथिणीओ ( साध्वीओ ) डोय छे आ सूत्रतुं विवरणु निर्ग्रथ सूत्र अनुसार करवु जेधं जे. जेटसे के आ सूत्रमां निर्ग्रथना जे चार प्रकारो कथा छे, जेवा ज प्रकारो श्रमणु निर्ग्रथिणीना पणु समणु लेवा.

“ चत्वारि समणोवासगे ” इत्यादि—

श्रमणोपासकेना पणु चार प्रकार कथा छे श्रमणु निर्ग्रथना जे प्रकार आगण उडेवामां आन्या छे, जेवा ज चार प्रकार श्रमणोपासकेना पणु समणवा. “ तहेव ” आ पद द्वारा जे वात ज प्रकट करवामा आवी छे के श्रमणोपासके पणु श्रमणुनिर्ग्रथानी जेभ चार प्रकारना डोय छे.



“ ચત્તારિ સમખોવાસિયા ” इत्यादि—एतदपि निर्ग्रन्थसूत्रवद् बोध्यम्, अथ आह—“ तदेष चत्तारि गमा ”—तथैव—निर्ग्रन्थसूत्रे यथा चत्वारो गमाः= आलापका—मङ्गा उक्तास्तथा भ्रमणोपासिकासूत्रेऽपि चत्वार आलापका भगनीयाः॥ ॥ सू० २१ ॥

सूत्रम्—चत्तारि समणोवासगा पणत्ता, त जहा अम्मा पित्तसमाणे १, भाईसमाणे २, मिच्चसमाणे ३ सवत्तिसमाणे ४, १।

चत्तारि समणोवासगा पणत्ता, त जहा—अहागसमाणे १, पडागसमाणे २, खाणुममाणे ३, खरकटकसमाणे ४ । २। ॥ सू० २२ ॥

छाया—चत्वारः भ्रमणोपासकाः प्रकृता, तयया—मातापित्तमान १ भ्रातृ समानः २, मित्रसमानः ३, सपत्नीसमाना ४।

भક્ती युक्त होते हैं । “ चत्तारि समणोवासिमा ” इत्यादि इस सूत्रका कथनमी निर्ग्रथ सूत्र जैसा करलेना चाहिये निर्ग्रन्थ सूत्रमें जिस प्रकारसे चार आलापक कहे गये हैं वसी प्रकारसे भ्रमणोपासिका सूत्रमेंमी चार आलापक कहलेना चाहिये ॥ सू० २१ ॥

“ चत्तारि समणोवासगा पणत्ता ” इत्यादि—२२

सूत्रार्थ—भ्रमणोपासक चार प्रकारके कहे गयेहैं, जैसे कोई एक भ्रमणोपासक माता-पिताके जैसा होता है—१ कोई एक भ्रमणोपासक अपने भाईके समान होता है—२ कोई एक भ्रमणोपासक मित्रके समान होता है—३ और कोई एक भ्रमणोपासक सपत्नीके समान होता

‘ चत्तारि समणोवासिमा ’ इत्यादि—भ्रमणोपासिका (आविष्कार)ના પણ ચાર પ્રકાર ઠહ્યા છે સમજી નિર્ગ્રંથના જેવા ચાર પ્રકાર ઠહ્યા છે જેવા જ ચાર પ્રકાર ભ્રમણોપાસિકાના પણ સમજવા નિર્ગ્રંથ સૂત્ર જેવું જ કથન ભ્રમણોપાસિકા સૂત્રમાં પણ પ્રકરણ વધુ ભેદભેદે ॥ સૂ. ૨૧ ॥

“ચત્તારિ સમણોવાસગા પણત્તા” ઇત્યાદિ

સૂત્રાર્થ—ભ્રમણોપાસકોના નીચે પમાણે ચાર પ્રકાર પડે છે—(૧) કોઈ ભ્રમણોપાસક માતાપિતા સમાન હોય છે (૨) કોઈ ભ્રમણોપાસક ભાઈ જેવો હોય છે (૩) કોઈ ભ્રમણોપાસક મિત્ર જેવો હોય છે (૪) કોઈ ભ્રમણોપાસક સપત્નીના જેવો હોય છે—એટલે કે ચોક્કસસમાન હોય છે

चत्वारः श्रमणोपासकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आदर्शममानः १, पताकासमानः २, स्थाणुसमानः ३, खरकण्टकसमानः ४।

टीका—“ चत्वारि समणोवासग। ” इत्यादि—श्रमणोपासकाः—श्रमणानुपासत इति श्रमणोपासकाः=साधुसेवाकारकाः श्रावका इत्यर्थः, चत्वारः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—मातापितृसमानः—माता च पिता चेति मातापितरौ तयोस्ताभ्यां वा समान स्तथा=मातापितरौ यथा स्वपुत्रे निर्हेतुकमत्यन्तं वात्सल्यं कुरुतस्तथा यः श्रावकः साधुषु कारणं विनैवैकान्तेन वात्सल्यं करोति समातापितृतुल्यो भवति, अपूर्वधर्मानुरागरञ्जितहृदयत्वात् १, तथा—भ्रातृममानः भ्राता यथा प्रत्येक-

है—४ पुनश्च—श्रमणोपासक चार कहे गये हैं, जैसे कोई एक श्रमणोपासक आदर्शके समान होता है—१ कोई एक श्रमणोपासक पताका के समान होता है २, कोई एक श्रमणोपासक स्थाणु के समान होता है—३ कोई एक श्रमणोपासक खरकण्टकके समान होता है—४।

टीकार्थ—श्रमणोंकी जो उपासना करते हैं वे श्रमणोपासक हैं, अर्थात्—साधुजनोंकी सेवा करनेवाला श्रावक श्रमणोपासक हैं। इनमें जो चतुर्विधता है उसका तात्पर्य है कि जैसे मातापिता अपने पुत्रों पर अत्यन्त वात्सल्य रखते हैं उसी प्रकार जो श्रावक साधुओं पर विना कारणही एकान्त रूपसे वात्सल्य रखते हैं, वे श्रावक मातापिताके समान कहे गये हैं। क्योंकि इनका हृदय अपूर्व धर्मानुरागसे रञ्जित

श्रमणोपासकता नीचे प्रमाणे चार प्रकार पद्य पडे छे—(१) केछ श्रमणोपासक आदर्श (दर्पण) समान डोय छे (२) केछ श्रमणोपासक पताका समान डोय छे. (३) केछ केछ श्रमणोपासक स्थाणु (वृक्षतुं कुंहुं—थड) समान डोय छे (४) केछ केछ श्रमणोपासक खरकण्टक (भावणना कांटा) समान डोय छे.

टीकार्थ—हुवे आ सूत्रने स्पष्ट करवाभां आवे छे—श्रमणोपासकता करनारने श्रमणोपासक (श्रावक) कहे छे अटले के साधुजनोंनी सेवा करनार श्रावकने श्रमणोपासक कहे छे हुवे तेना चार प्रकारतुं स्पष्टीकरण करवाभां आवे छे जेभ मातापिता पीताना सताने प्रत्ये असीम वात्सल्य राखे छे, जेभ प्रमाणे साधुजो प्रत्ये केछ पद्य प्रकारनी स्पृहा विना अपार वात्सल्य राखनार श्रावकने मातापिता समान कहे छे, कारण के तेनु हृदय अपूर्व धर्मानुरागशी रञ्जित डोय छे. (२) जेभ लोभ प्रत्येक कार्यभां सहायक थाय

કાર્યે સહાયકો મરતિ તથા સાધૂનાં પ્રત્યેકવર્મકાર્યે યઃ ભાવકઃ સહાયકો મરતિ સ ધ્રાતૃસમાનઃ—વધુસહજ હત્યર્થે, ધ્રાતૃમિત્ર ધર્મકાર્યવિષયે સ્મરણાદિકં કર્તવ્યમ્ ઉત્તરં ચ—

“ મરગિહમજ્ઞમિ પમાયજસમજ્ઞિમમિ ।

ઠ્ઠપ્ઠ જો મુર્ચ્ચત સો તસ્સ જયો પરમર્ષુ ॥૧॥

છાયા—“ મરગુહમષ્ટ્યે પ્રમાદઞ્જનન્યન્વચિતે ।

ઉત્થાપયતિ યઃ સ્વપન્થ સ તસ્ય જનઃ પરમવન્દ્યુઃ ॥૧॥ ” ઇતિ ॥૨॥

તથા—મિત્રસમાનઃ—મિત્રતુલ્યઃ—મિત્ર યથા—સદા હિતચિન્તકં મરતિ તથા ય ભાવકઃ સાધૂનાં સદા હિતચિન્તકો મરતિ સ મિત્રસમાનઃ ૩।

ઉત્તરંચ—“ કેન રત્નમિદં સૃષ્ટં, મિત્રમિત્યસ્રપ્રયમ્ ।

આપદાં ચ પરિપ્રાણ સસારમલનાશનમ્ ॥૧॥ ” ઇતિ ।

તથા—સપત્નીસમાનઃ—સપત્ની—૧કસ્વામિકા સ્ત્રી તત્સમાનઃ, સપત્ની યથા સપત્ન્યા દૂષણં ગવેષયતિ અપકરોતિ ચ, તથા યઃ ભાવકઃ સાધુયુ હોપમન્થ પયતિ અપકરોતિ ચ સ સપત્નીસમાનો મરતિ ॥૪॥ ॥૧॥

હોતા હૈ—૧ તથા જિસ પ્રકારસે ધ્રાતા પ્રત્યેક કાર્યમે સહાયક હોતા હૈ વસી પ્રકારસે જો સાધુજનોકે પ્રત્યેક ધર્મકાર્યમે સહાયક હોતે હૈ, યે આવક ધ્રાતાકે સમાન કહે ગયે હૈ—૨ પરમ વધુકે વિષયમે પેસા કહા ગયા હૈ “ મરગિહ મજ્ઞમિ ”—હત્યાદિ

તથા જિસ પ્રકારસે હિતચિન્તક મિત્ર હોતા હૈ વસી પ્રકારસે જો સદા સાધુજનોકા હિતચિન્તક હોતા હૈ યે ભાવક મિત્રકે સમાન કહે ગયે હૈ । કહામી હૈ—“ કેન રત્નમિદં સૃષ્ટં ” હત્યાદિ । તથા જિસ પ્રકારસે સપત્ની (સૌત) સપત્નીકે દૂષણોકી ઓર નિગાહ રસતીહૈ વનકી સ્વોજમે રહતી હૈ વસકા અપકાર કરતી હૈ, વસી પ્રકારસે જો આવક

ઉ જોજ પ્રમાણે પ્રત્યેક ધર્મકાર્યમાં સાધુજનોને સહાયકૂત જનાર આવકને ધ્રાતા સમાન કહ્યો છે ઉત્તમ ધ્રાતા વિષે જા પ્રમાણે કહ્યું છે—

“ મરગિહમજ્ઞમિ ” ઇત્યાદિ—

જેમ મિત્ર પોતાના મિત્રનો હિતચિન્તક હોય છે, જોજ પ્રમાણે જે આવક સાધુજનોને હિતચિન્તક હોય છે તેને મિત્ર સમાન અમલોપાસક કહ્યો છે કહ્યું પણ છે કે—“ કેન રત્નમિદં સૃષ્ટં ” ઇત્યાદિ.

જેમ સપત્ની જીલ સપત્નીનાં (શોકજના) દૂષણો જ શોધ્યા કરે છે, અને તેના અપકાર જ કરે છે, જોજ પ્રમાણે જે આવક સાધુજનોના રોષે જ

पुनः “ चत्वारि समणोवासगा ” इत्यादि—चत्वारः श्रमणोपासकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आदर्शसमानः—आदर्शो—दर्पणः, तेन समानस्तथा=यथा—दर्पणः स्वसन्निहितानर्थान् प्रतिबिम्बितान् यथावत् प्रतिपद्यते, तथा यः श्रावकः साधुभिरुपदिश्यमानान् उत्सर्गापवादादीन् भागान् प्रतिपद्यते—स्वीकरोति स आदर्शसमानः १।

तथा—पताकासमानः—पताका यथा विचित्रपवनेन सर्वतश्चाल्यते तथा यस्य श्रावकस्यानवस्थितबोधो विचित्रदेशनया चाल्यते स पताकासमानः २। तथा—स्थाणुसमानः—तिष्ठतीति स्थाणुः—शङ्कुः, तत्समानः—स्थाणुर्यथा न नञ्चीक्रियते नापि चाल्यते तथा यः श्रावकः सुगुरुदेशनया कुतश्चिदपि कदाग्रहान्न नञ्ची क्रियते

साधुजनोके दोषोकाही अन्वेषण किया करते हैं उनकी बुराई—या अपकार करते हैं वे श्रावक सपत्नी समान कहे गये हैं। पुनश्च—आदर्श नाम दर्पण (ऐनक) जैसे अपने समीपवर्ती पदार्थोंके प्रतिबिम्बको धारण करता है उसी प्रकार साधुजन द्वारा उपदिष्ट या उपदिश्यमान उत्सर्ग और अपवादरूप भावोंको जो श्रावक यथावत् स्वीकार करता है वह आदर्शका समान कहा गया है—१ तथा पताका जिस प्रकार विचित्र पवन द्वारा सब ओर से चञ्चल करदी जाती है वैसे जिन श्रावकका अनवस्थित बोध विलक्षण देशनासे नयमिश्रित कथनसे चलायमान किया जा सके वह श्रावक पताका के समान कहा गया है—२ जैसे स्थाणु न कभी चलायमान किया जाता है और न कभी नमाया जा सकता है वैसे तो श्रावक सुगुरुकी देशनासे भी

शोधा करे छे, तेमनु अडित न करे छे अथवा तेमने उपकर करे छे, जेवा श्रावकने सपत्नी समान छह्यो छे.

श्रमणोपासकेना आदर्श समान आदि चार प्रकारांतुं हुवे स्पष्टीकरणु करवामा आवे छे—(१) आदर्श अटले दर्पणु जेम दर्पणु पोतानी सामेनी वस्तुजेना यथार्थ प्रतिगिजने धारणु करे छे, जेन प्रभाणु साधुजेना द्वारा उपदिष्ट अथवा उपदिश्य मान, उत्सर्ग अने अपवाद रुप लावेना जे श्रावक यथार्थ रुपे स्वीकार करे छे ते श्रावकने आदर्श समान कहे छे. (२) जेम पताका पवन द्वारा चलायमान थाय छे—स्थिरता छोडीने अचलता सपन्न अने छे, जेन प्रभाणु जे श्रावकना अनवस्थित बोधने विलक्षण देशना द्वारा नयमिश्रित कथन द्वारा चलायमान करी शकय छे ते श्रावकने पताका समान कह्यो छे (३) जेम स्थाणुने (पुक्ष्णा हूंकाने) कही चलायमान करी शकतुं नथी के नमावी शकतुं नथी, जेन प्रभाणु जे श्रावक सुगुरुनी देशना साधुणावा

નાપિ ચ ચાલ્યસે દુર્બોધત્વાત્ સ સ્યાણુસમાનઃ ૩। તથા-સ્વરક્રષ્ટકસમાનઃ-  
 સ્વરા-તીસ્મા ક્રષ્ટકા યસ્મિન્ તત્ સ્વરક્રષ્ટક વર્ણુરટ્સગાસ્વાદિ તસ્ય ક્વચિદ્દ્વેષ્ણે  
 વા છગ્ન સમ કેવચ્ચમ્હ વા પટં સહસા મુચ્ચતિ, અપિ તુ ત્ત મોચકપુરુષાદિકં કરા  
 દિપુ ક્રષ્ટકૈર્વિષ્યતિ, યદ્વા સ્વરક્રષ્ટયધિ-છેપચન્થ કરોતીતિ સ્વરક્રષ્ટ સ્વદેર સ્વ  
 ક્રષ્ટકમ્-મયુચ્યાદિવસ્તુ તેન સમાન સ્વરક્રષ્ટકસમાના, યદા સ્વરક્રષ્ટક સસ  
 ર્ગમાત્રાદેવાપનપનકારક દોષયુક્તં કરોતિ, તથા વઃ શ્રાવકઃ સસર્ગમાત્રાત્ સાધુ  
 'કુષોપકુશીલતાદિગ્નકલ્પેનોત્સુપ્રકરુપકોડ્ય' મિરયાઇસરોયમ્કનનયા દોષ  
 યન્ત કરોતિ સ સ્વરક્રષ્ટકસમાનઃ । ૪। સૂ૦ ૨૨ ।

અપને કદાગ્રહ અનુચિત હટસે પીછે નહીં હટતા-ટલતા હૈં નમ્રીમૂત  
 નહીં હોતા હૈં એસા વહ વુર્બોધ્ય આવક સ્પાણુ-ટૂઠા શૃક્ષકે સમાન  
 હૈં-૩ જૈસે તીક્ષ્ણ કાટોસે ખરપૂર યમૂલ આદિકા ડાલ યદિ કિસી  
 અગ્રમેં યો કપડોમેં વલખ્ત જાય તો વહ સહસા અલગ નહીં હોતી કિન્તુ  
 વસે છુઢાની પડતી હૈં એસી સ્પિતિમેં વહ છુઢાનેયાલોકે હાપકો ખી  
 ઘેષતી હૈં એસે પદાર્થોકા નામ સ્વરક્રષ્ટક હૈં, જો આવક ઇસકે સમા  
 નતાકો ધારણ કરે વહ સ્વરક્રષ્ટક સમાન હૈં, જૈસે સ્વરક્રષ્ટક વસ્તુ  
 સંસર્ગ માત્રસે દોષયુક્ત પના દેતો હૈં વૈસે જો આવક અપને સસર્ગ  
 માત્રાસેહી વસ સાધુકે અમદોષોકી વદ્માવના કરતા હુવા "વહ

છતાં પણ પીતાનો કદાગ્રહ ઊઠતો નથી-પીતાની અનુચિત વાતને જ પકડી  
 શકે છે-સહેજ પણ દૂરો (નમ્રીમૂત) થતો નથી જોવા આવકને સ્વાણુ સમાન  
 કહે છે (૪) ખરકટક સમાન અમલોપાસકનો બાવાધ-તીક્ષ્ણ કાટાજોથી  
 ભરપૂર બાવળ આદિની ડાળી કોઈ અગ્રમાં કે કપડામાં ભરાઈ જાય તો તે  
 સરળતાથી અલગ થતી નથી પણ પ્રયત્નપૂર્વક તેને અલગ કરવી પડે છે  
 અને જો વખતે અલગ કરવાનો પ્રયત્ન કરનારના હાથમાં પણ તે તીક્ષ્ણ  
 કાટા વાગી જાય છે આ પ્રકારના પદાર્થોને ખરકટક કહે છે જે આવકનો  
 સ્વભાવ આ ખરકટકના જેવો હોય છે તેને ખર સમાન કહે છે જેમ ખર  
 કટકનો સ્પર્શ માત્ર જ દોષયુક્ત અથવા વ્યથાવનક થઈ પડે છે જેમ  
 પ્રમાણે ખરકટક સમાન આવક પીતાના સસર્ગ માત્રથી સાધુમાં અસરોપોની  
 (જે દોષનું અસ્તિત્વ જ ન હોય જોવા દોષોની) ઉદ્ભાવના કરે છે "આ  
 સાધુ કુત્રોધ, કુશીલતા આદિને જનક હોવાથી ઉત્સુખ પ્રકૃષ્ક છે" ઇત્યાદિ  
 રૂપે સાધુમાં જોયા દોષોનું આરોપણ કરનાર હોય છે અને કટકની જેમ

श्रमणोपासकप्रसङ्गाच्छ्रीमहावीरस्वामिनः श्रमणोपासकानामरुणाभविमानस्थितिं  
निरूपयितुमाह—

मूलम्—समणस्स णं भगवओ महावीरस्स समणोवास-  
गाणं सोहम्मकप्पे अरुणाभे विमाणे चत्तारि पल्लिओवमाइं ठिई  
पणत्ता ॥ सू० २३ ॥

छाया—श्रमणस्य खलु भगवतो महावीरस्य श्रमणोपासकानां सौधर्मकल्पे  
अरुणाभे विमाने चत्वारि पश्योपमानि स्थितिः प्रज्ञप्ता । सू० २३ ॥

टीका—“ समणस्स णं ” इत्यादि—स्पष्टम्, नवरं—श्रमणोपासकानां दशानाम्  
आनन्द १ कामदेव २ गाथापतिचुलनीपितृ ३ सुरादेव ४ क्षुद्रशतक ५ गाथा-  
पति-कुण्डकौलिक ६ सहालपुत्र ७ महाशतक ८ नन्दिनीपितृ ९ शालेयिकापितृणा  
१० मुपासकदशाङ्गोक्तानामिति ॥ सू० २३ ॥

कुबोध-कुशीलता आदिका जनकहोनेसे उत्सूत्र प्ररूपक है ” इत्यादि  
रूपसे साधुको दोषवाला कर देता है वह खरकण्टक समानहै ॥सू०२२॥

अथ सूत्रकार श्रमणोपासकके प्रसङ्गसेही श्री महावीरस्वामीके  
श्रमणोपासकोंकी विमानमें वर्तमानस्थितिका कथन करते हैं—

“ समणस्स भगवओ ” इत्यादि २३

श्रमण भगवान् महावीरके श्रमणोपासकोंको सौधर्म कल्पमें  
अरुणाभ विमानमें चार पल्योपमकी स्थिति कही गई है । भगवान्  
महावीरके १० श्रमणोपासक थे. आनन्द-१ कामदेव-२ गाथापति  
चुलनी पिता-३ सुरादेव-४ क्षुद्रशतक-५ गाथापति कुण्डकौलिक-६  
सहालपुत्र-७ महाशनक-८ नन्दिनी पिता-९ और शालेयिका पिता-  
१० ये इनके नाम उपासकशाङ्गमें कहे गये हैं ॥सू०२३॥

तेमना हृद्यमां व्यथा उत्पन्न करनार होय छे ते कारणे अेवा श्रावकने पर  
कंटक समान कह्यो छे ॥ सू २२ ॥

श्रमणोपासकेना कथनने अनुलक्षिने हुवे सूत्रकार वैमानिक देवपर्यायने  
पामेला महावीर प्रभुना श्रमणोपासकेनी त्यांनी आयुस्थितिनी प्रपञ्चा करे छे-

“ समणस्स ण भगवओ इत्यादि सू २३

श्रमण भगवान् महावीरना ७ श्रमणोपासके सौधर्म कल्पना अरुणाल  
विमानमा देवपर्याये उत्पन्न थया छे तेमनी त्यांनी स्थिति आर पश्योपमनी  
कही छे आ प्रकारना महावीर प्रभुना १० श्रमणोपासकेना नाम आ प्रमाणे  
हता—(१) आनन्द, (२) कामदेव (३) गाथापति चुलनी पिता, (४) सुरा-  
देव, (५) क्षुद्रशतक, (६) गाथापति कुण्डकौलिक, (७) सहाल पुत्र, (८) महा-  
शनक, (९) नन्दिनी पिता (१०) शालेयिका पिता. आ नामो उपासकदश गमां  
आभ्या छे. ॥ सू २३ ॥

देवानामनागमनकारणम्—

मूलम्—चउर्हिं ठाणेर्हिं अहुणोषवण्ण देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस लोमं हवमागच्छित्तए णो चेव णं सचाणइ हवमागच्छित्तए, त जहा—अहुणोषवण्णे देवे देवलोएसु दिवेषु कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गडिए अज्झोववण्णे से णं माणुस्सए कामभोगे नो आढाइ णो परियाणाइ णो अट्ट वधइ णो णियाणं पगरेइ णो ठिइपगए पगरेइ १, अहुणोषवण्णे देवे देवलोगेसु दिवेषु कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गडिए अज्झोववण्णे तस्स णं माणुस्सए पेमे षोच्छिंसे दिवेषे पेमे सक्ते भवइ २।

अहुणोषवण्णे देवे देवलोएसु दिवेषु कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गडिए अज्झोववण्णे, तस्स णं एव भवइ इण्हिं गच्छ मुहुत्तेणं गच्छ, तेणं कालेणमप्पाउया माणुस्ता कालधम्मुणा सजुत्ता भवति ३,

अहुणोषवण्णे देवे देवलोएसु दिवेषु कामभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गडिए अज्झोववण्णे, तस्स णं माणुस्सए गधे पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ, उडुपि य णं माणुस्सए गंधे जाव चत्तारि पंच जोयणसयाइ हवमागच्छइ ४, इषेएर्हिं चउर्हिं ठाणेर्हिं अहुणोषवण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस लोमं हवमागच्छित्तए णो चेव णं सचाणइ हवमागच्छित्तए ५।

देवानामनागमनकारणम्

चउर्हिं ठाणेर्हिं अहुणोषवण्णे देवे देवलोएसु इच्छेज्जा माणुस लोमं हवमागच्छित्तए, संचाणइ हवमागच्छित्तए, तं जहा अहुणोषवण्णे देवे देवलोएसु दिवेषु कामभोगेसु अमुच्छिए

जाव अणज्झोववण्णे तस्स णं एवं भवइ--अत्थि खलु मम माणु-  
स्सए भवे आयरिएइ वा उवज्झाएइ वा पवत्तीइ वा थेरेइ वा  
गणीइ वा गणधरेइ वा गणावच्छेएइ वा, जेसिं पभावेणं मए  
इमा एयारूया दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवजुई लच्छा पत्ता अमि-  
समन्नागया, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि जाव पज्जु-  
वासामि १ ।

अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु जाव अणज्झोववण्णे, तस्स  
णमेवं भवइ--एस णं माणुस्सए भवे णाणीति वा तवस्सीति  
वा अइदुक्करदुक्करकारण, तं गच्छामि णं ते भगवंते वंदामि  
जाव पज्जुवासामि २,

अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु जाव अणज्झोववण्णे, तस्स  
णमेवं भवइ--अत्थि णं मम माणुस्सए भवे मायाइ वा जाव  
सुणहाइ वा तं गच्छामि णं तेसिमंतिअं पाउब्भवामि, पासंतु  
ता मे इममेयारूवं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवजुई लच्छं पत्तं  
अभिसमन्नागयं ३,

अहुणोववण्णे देवे देवलोएसु जाव अणज्झोववण्णे, तस्स  
णमेवं भवइ--अत्थि णं मम माणुस्सए भवे मित्तेइ वा सहीइ वा  
सुहीइ वा सहाएइ वा संगइएइ वा, तेसिं च णं अम्हे अन्नमन्नस्स  
संगारे पडिसुए भवइ, जो मे पुठिं चयइ से संबोहेयव्वे, इच्चे-  
एहिं जाव संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ४। ॥ सू० २४ ॥

छाया—चतुर्मिः स्थानैः अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु इच्छेत् मानुषं लोकं  
हव्यमागन्तुं नो चैव खलु शक्नोति हव्यमागन्तुम्, तद्यथा—अधुनोपपन्नो देवो



देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो गृद्धो ग्रथितोऽध्युपपन्नः, स खलु मानुष्यक कामभोग नो आद्रियत नो परिमानाति नो अर्थं वञ्चति नो निर्दानं प्रकरोति नो स्थितिमर्ह्यं प्रकरोति १।

अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो गृद्धो ग्रथितोऽध्युपपन्नः, तस्य खलु मानुष्यक प्रेम व्युत्थितं दिव्य प्रेम सक्रान्तं भवति । २।

देषोक्ति अनागमनका कारण—

“ वउहिं ठाणेहिं अहूणोववन्ने देवे ” इत्यादि २४

सुप्रार्थ—किन्ती एक देवलोकमें उत्पन्न हुआ देव मनुष्यलोकमें शीघ्र आनेकी इच्छा तो करता है पर इन चार कारणोंसे शीघ्र यहाँ आ नहीं सकता है । देवलोकमें उत्पन्न होते ही वहाँके कामभोगोंमें मूर्च्छित-गृद्ध-ग्रथित-अध्युपपन्न हो जाता है अतः—मनुष्य सम्पत्नी कामभोगोंको वह भावर दृष्टिसे नहीं देखता है, ये मेरे कामके हैं ऐसा उन्हें नहीं मानता है इनसे मेरा प्रयोजन सिद्ध होगा ऐसी धुन्धि उन्में नहीं करता है, ये पुनः मुझे मिलें ऐसी भावना नहीं करता है और उनमें स्थितिका निकल्पही करता है । यह प्रथम कारण है—१

दूसरा कारण—देवलोकमें उत्पन्न नया देव दिव्य कामभोगोंमें मूर्च्छित-गृद्ध-अध्युपपन्न होकर ऐसा हो जाता है कि उसको भीतरसे मनुष्य सम्पत्नी प्रेम व्युत्थित न हो जाता है और दिव्य प्रेम उसमें समाप्त हो जाता है—२

—देवाना अनागमननां कारणे—

वउहिं ठाणेहिं अहूणोववन्ने देवे ” इत्यादि—( सू. २४ )

सूत्र २—कौर्ष ङ्के देवदोःकामा उत्पन्न भवेदो देव तुरत च मनुष्यदोःकामा अपवानी भविष्ये तो करे छे पक्ष आ चार कारणोंने कीये तुरत च अही आनी शकतो नथी—(१) देवदोःकामा उत्पन्न भवानी साथे च ते त्वाना कामभोगोःकामा मूर्च्छित गृद्ध ग्रथित अने अध्युपपन्न यथं ज्ञाय छे ते कारणे मनुष्यत्ववना कामभोगोःकामा ते आहरनी दृष्टिसे जेतो नथी ते भाटे कामना छे जेपु मानतो नथी ते कामभोगोःकामा द्वारा पीतानुं प्रयोजन सिद्ध यथे जेवु ते मानतो नथी, ते करी पीताने प्राप्त साथ जेवी भावना सेवतो नथी अने दु ते काम भोगोःकामा उपभोग्य च जनी रहु जेवो स्थिति विद्वय पक्ष ते भंगतो नथी आ पक्षे च कारण छे

जी १ कारण—देवदोःकामा उत्पन्न भवेदो नवो देव दिव्य कामभोगोःकामा जेवो तो मनुष्यत्व प्रत्येनो प्रेम व्युत्थित (नष्ट) यथं ज्ञाय छे, अने देव दोःकामा प्रत्येनो प्रेम सक्रान्त यथं ज्ञाय छे

अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो गृद्धो ग्रथितोऽ-  
ध्युपपन्नः, तस्य खलु एवं भवति-इदानीं गमिष्यामि मुहूर्तेन गमिष्यामि, तेन  
कालेन अल्पायुषो मनुष्याः कालधर्मेण संयुक्ता भवन्ति ३,

अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु दिव्येषु कामभोगेषु मूर्च्छितो गृद्धो ग्रथितो-  
ऽध्युपपन्नः, तस्य खलु मानुष्यको गन्धः प्रतिकूलः प्रतिलोमश्चापि भवति, ऊर्ध्व-  
मपि च खलु मानुष्यको गन्धो यावत् चत्वारि पञ्चयोजनशतानि हव्यमाग-  
च्छति ४। इत्येतैश्चतुर्भिः स्थानैः अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु इच्छेद् मानुषं लोकं  
हव्यमागन्तुं नो चैव खलु शक्नोति हव्यमागन्तुम् ।

तृतीय कारण-ऐसा है कि देवलोकमें गया-१-उत्पन्नदेव काम-  
भोगोंमें मूर्च्छित-गृद्ध-ग्रथित अध्युपपन्न " अब जाते हूँ थोड़ी देर  
बाद जाऊंगा " आदि विचारता जब तक आना चाहता है उसके  
अन्दर-२-यहां जो उनके माता-पिता आदि परिवार होते हैं वे तब  
तक कालधर्म संयुक्त हो जाते हैं अतः फिर वह नहीं आता है-३

चौथा कारण-कि वह देवलोकमें अधुनोपपन्नदेव वहां के दिव्य  
काम भोगोंमें जब तल्लीन हो जाता है तब उसे मनुष्यगन्ध प्रतिकूल  
विलकूल अमनोज्ञ जान पड़ती है वह गन्ध मनुष्य लोकसे ऊपर ४-५  
सौ युगलियों की अपेक्षा ४०० चारसौ कर्मभूमि की अपेक्षा पांचसौ  
योजन तक ऊंची पहुंचती है जो उन्हें रुचती नहीं इससे देव यहाँ  
आते नहीं-४

त्रीणु कारण-देवलोकमां उत्पन्न थयेदो नवो देव कामलोगोमां ओवो  
तो आसक्त, गृद्ध, ग्रथित अने अध्युपपन्न थछ जय छे के " हमणुं न  
मनुष्यलोकमां नउ छु-थोडी वार आ कामलोगो लोगवीने मनुष्यलोकमां  
नधश " आ प्रकारने विचार करता करतां ओटदो लागो समय पसार थछ  
जय छे के त्या सुधीमा तेना माता, पिता आदि सगांस अधीओ काणधर्म  
पामी जय छे अने तेमने काणधर्म पावेदा जणुीने ते देव मनुष्यलोकमां  
आववानो विचार न भाडी वाणे छे

चोथुं कारण-देवलोकमां उत्पन्न थयेदो नवो देव न्यारे त्यांना काम-  
लोगोमां लीन थछ जय छे, त्यारे तेने मनुष्यगध प्रतिकूल-अमनोज्ञ लागे  
छे ते गध मनुष्यलोकनी उपर ४००-५०० योजन सुधी इलायेदी डाय छे  
ते गध नही रुचवाने कारणे ते अही आवतो नथी.

चतुर्भिः स्यान्नैरधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु इच्छेत् मानुष लोकं हृष्यमाणान्तु  
 शक्नोति हृष्यमाणान्तुम्, तद्यथा—अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु दिव्येषु काममो-  
 गेषु अपूर्च्छितो यावत् अनध्युपपन्नः, तस्य स्वल्ल एवं मवति—अस्ति स्वल्ल मम  
 मानुष्यके मये आचार्य इति वा उपाध्याय इति वा भवती इति वा स्यविर इति  
 वा गगी इति वा गणभर इति वा गगाब्रह्मेर्क इति वा, येषां प्रमावेण मया  
 इमा एतद्गणा दिव्या देवर्द्धिः दिव्या देवद्युतिः लब्धा प्राप्ता अभिसमन्वागता,  
 तत् गच्छामि स्वल्ल तान् मगवतः वन्दे यावत् पयुपासे १।

अधुनोपपन्नो देवो देवो देवलोकेषु यावत् अध्युपपन्नः, तस्य स्वल्ल एवं मवति-  
 पप स्वल्ल मानुष्यके मये ज्ञानोति वा तपस्वीति वा अस्तियुष्करदुष्करकारकः  
 तद्गच्छामि स्वल्ल तान् मगवतो वन्दे यावत् पयुपासे २।

अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु यावत् अनध्युपपन्नः, तस्य स्वस्वेष मवति-  
 अस्ति स्वल्ल मम मानुष्यके मये मातेति वा यावत् स्तुयेति वा, तद्गच्छामि  
 स्वल्ल वेगामन्तिकं मादुर्मवामि पश्यन्तु तावत् मे इमामेतद्गणां दिव्या देवर्द्धिं दिव्यां  
 देवद्युतिं लब्धां प्राप्तामभिसमन्वागताम् । ३।

अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु यावत् अनध्युपपन्नः तस्य स्वल्ल एवं मवति-  
 अस्ति स्वल्ल मम मानुष्यके मये मित्रमिति वा सखेति वा घृद्विति वा सहाय  
 इति वा माद्रुतिक इति वा, येषां च स्वल्ल अस्माभिः अन्योन्य सङ्केतः प्रतिश्रुता  
 मवति—योऽस्माकं पूर्वं व्यक्ते स सम्बोधयितव्यः । इत्येतैः यावत् शक्नोति हृष्य  
 मागन्तुम् ॥ सू० २४ ॥

टीका—‘ चतुर्भिः ठाणेर्दि ’ इत्यादि—

चतुर्भिः वक्ष्यमाणैः स्यान्नैः—कारणैः अधुनोपपन्नः—अचिरोत्पन्नः—सत्कालो  
 त्पन्न इत्यर्थः, देवो देवलोकेषु मानुष=मनुष्यसम्बन्धिन लोक-मर्त्यलोकं ‘ हृष्य ’  
 मिति दैविकशब्दोऽयं शीघ्रार्थकः, तेन शीघ्रमित्यर्थः, आगन्तुम्, इच्छेत्, नो-  
 नैव च=पुन नैव स हृष्य=शीघ्रमागन्तु शक्नोति, कुनो नाऽऽगन्तु शक्नोतीत्याह—  
 “ तद्यथा ”—अधुनोपपन्नो देवो देवलोकेषु दिव्येषु-मनोरेषु काममोगेषु-काम्यन्त  
 इति कामाः—कमनीपास्त च मोगाः—सृज्यन्त-इन्द्रियैः सेव्यन्त इति मोगाः

इस पद्यमें आवे हृष्ये अधुनोपपन्नक आदि पदोंका स्पष्टीकरण  
 सत्काल उत्पन्न को अधुनोपपन्न कहा गया है हृष्य शब्द शीघ्रार्थक  
 है चाहनाका विषयभूत जो हो यह काम है कामही भोग है । क्योंकि

भाषा—तदात् उत्पन्न धर्मेण देवने अधुनोपपन्नः देव इति ॐ  
 हृष्य ” आ १६ शीघ्रार्थक छे व्यादनाने विषयभूत वस्तुने शम छे ॐ  
 अने छे शम १६ शीघ्रार्थक छे शरत्तु के तेमने धन्त्रिये द्वारा योग्याय ॐ

शब्दादयश्चेति कामभोगाः, यद्वा-कान्येते इति कामो=शब्दरूपलक्षणौ च भोगाः-  
गन्धरसस्पर्शाश्चेति कामभोगाः, यद्वा-कामानां-कमनीयानां शब्दादीनां भोगाः=  
सेवनानि, तेषु मूर्च्छितः-कामभोगानां विनश्वरत्वादि ज्ञातुमशक्यतया मोहं गतः,  
गृद्धः=कामभोगेच्छासमन्वितो घृतसिक्तवह्निश्चाऽतृप्तः, ग्रथितः=कामभोगानुरा-  
गरज्जुवद्धः, अध्युपपन्नः-अत्यन्तं विषयपरिभोगाधीनो भवति अत एव स-देवः  
खलु मानुष्यकान्-मनुष्यलोकभवान् कामभोगान् नो आद्रियते=आदरं न करोति,

यह इन्द्रियों द्वारा भोगा जाता है अथवा—जिनमें चाहना जाती है  
ऐसे शब्दरूप काष्ठ हैं तथा गन्ध रस और स्पर्श ये भोग हैं। अथवा  
कामका अर्थ कमनीय है, ऐसे कमनीय शब्दादिकोंका जो भोग है  
वह सेवन करना है वह कामभोग है। देव कामभोगोंकी विलम्बरता  
जाननेमें असमर्थ होता है, अतः—वे उनका कामभोगोंमें मूर्च्छित—  
मोहंगत हो जाते हैं। कामभोगकी इच्छासे समन्वित हुआ देव घृत-  
सिक्त अग्नि जैसे गृद्ध-अतृप्त बन जाता है। ग्रथित कामभोगानुराग  
रूपी रस्सीसे वह जकड़ जाता है, और इस तरह वह अन्तमें अध्यु-  
पपन्नक अत्यन्त विषयभोगका सर्वथा अधीन बन जाता है। तात्पर्यकि  
देवलोकोंमेंसे किसी एक देवलोकमें अधुनोपपन्नक देव वहाँके काम-  
भोगोंको इतना अधिक आनन्ददायक मानने लगता है जिससे फिर  
वह मनुष्यलोक सम्बन्धी कामभोगोंको बिलकुल अस्मार मानने लगता  
है और इस तरहसे वह उनको आदर दृष्टिसे नहीं देखता है कारणकि

अथवा जेनी चाहना थाय छे जेवा शण्ड रूप काम डोय छे अने गंध,  
रस अने स्पर्श, जे लोगरूप छे अथवा कामने अर्थ कमनीय पणु थाय  
छे जेवा कमनीय शण्डादिकोने जे लोग छे तेने कामलोग कडे छे हेवे  
कामलोगोनी विनश्वरता (अनित्यता) लखुवाने असमर्थ डोय छे, तेथी तेजो  
ते कामलोगोनां मूर्च्छित (आसक्त) थरु नय छे कामलोगनी ध्विंछाथी  
युक्त थयेवे देव घृतसिक्त अग्नि समान गृद्ध (अतृप्त, दोषुप) पनी नय  
छे कामलोगरूपी होरडा वडे जकडावाने कारणे ते तेमां ग्रथित थरु नय छे  
अने 'अध्युपपन्न' विषय लोगने सर्वथा आधीन पनी नय छे आ कथनने  
लावार्थ जे छे के कोरु जेक देवदेवकमा उत्पन्न थयेवे नये देव (अधुना-  
पपन्नक देव) त्यांना कामलोगोने ओटला पथा आनन्ददायक मानवा लागे छे  
के मनुष्यलोक संभंधी कामलोगो तो तेने बिलकुल अस्मार लागे छे, अने  
आ रीते ते तेमने आदर दृष्टिथी जेतो नथी कारणे के ते जेवु मानतो नथी

નો પરિજ્ઞાતાનિ-एते मनुष्यसम्बन्धि कामभोगा अपि ममोपभोग्यपदार्थाः सन्तीति न मन्यते, दिव्यकामभोगापत्तया तेषां तुच्छत्वात्, तथा-मानुष्यककामभोगेषु नो अर्थं वृत्ताति-‘अमीभिरेतत्प्रयोजनं’ मित्याकाररुनिश्चयं न करोति, तथा-तेषु नो निदानम्-‘एते मे मन्वन्ति’त्येयमभिलाष नो प्रकरोति, तथा-नो स्थितिप्रकल्पम्-एषुपभोगस्तृप्तेनाह-तिष्ठामि, यद्वा-‘ममैते तिष्ठन्ति’त्येवरूप मवस्थानविकल्पं न प्रकरोति=न मारमते ‘प्र’ शब्दस्य प्रारम्भद्योतकत्वात् प्रारम्भ न करोतीत्यर्थः १। इति प्रथमकारणम् । १ ।

“अनुभवान्ने”-त्यादि-अपुनोपपन्नो देवो देवलोकपु दिव्यपु काम भोगेषु मूर्च्छितो वृद्धो प्रयितोऽप्युपभोगो भरत्यत एव तस्य देवस्य इति लख “ये मनुष्य सम्बन्धी कामभोग भी उपभोग्य पदार्थ हैं” फिर ऐसा यह उन्हें नहीं समझता है। क्योंकि-यह उन्हें दिव्यकामभोगोको अपेक्षा तुच्छ-असार मानने लगता है “इन मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों से मेरा यह प्रयोजन सधेगा इस प्रकार का निश्चय विश्वास फिर यह उनमें नहीं पाँघता है, तथा-“सुखे ये पुनः प्राप्त हों” ऐसी उनमें अभिलाष भी नहीं करता है “मैं इमका उपभोग पना रहूँ” ऐसा यह स्थितिका विकल्प भी नहीं करता है। अथवा “ये मेरे पास बने रहें” ऐसा अवस्थान रहनेका विकल्प तकभी उसे नहीं उठता है, यहाँ “प्र” शब्द आरम्भका द्योतक है। इस प्रकारका यह प्रथम कारण है मर्त्यलोकमें स्वर्गसे नहीं आनेका-१ द्वितीय कारणभी ऐसाही है परन्तु-यह देव जय पूर्वोक्त इन विशेषणोंवाला हो जाता है तब

के ‘मनुष्य सम्बन्धी कामभोगो पक्ष उपभोग्य पदार्थों છે, ” કારણ કે દિવ્ય કામભોગોની અપેક્ષાએ તો તે કામભોગો તેને બિલકુલ તુચ્છ-અસાર લાગે છે, વળી તેને એવું પણ લાગતું નથી કે “મનુષ્યભવ સબંધી કામભોગોથી મારું પ્રયોજન સિદ્ધ થશે” વળી “એ કામભોગોની મને ફરી પ્રાપ્તિ યાગ”, એવી અભિલાષા પણ તે શખતો નથી ‘હું તે કામભોગોનો ઉપભોગવા જ લની રહું” એવો તે સ્થિતિનો વિકલ્પ પણ કરતો નથી. અથવા ‘તે મારી પાસે જ કામમ રહે’ વ્યા પ્રકારનો અવસ્થાન (સ્થિતિ) રહેવાનો વિકલ્પ પણ તેના મનમાં ઉદ્ભવતો નથી. બહી “પ્ર” શબ્દ આરંભનો દ્યોતક છે વ્યા કારણે તે અપુનોપપન્ન દેવ દેવલોકમાંથી મર્ત્યલોકમાં આવતો નથી. બહી પહેલા કારણનું સ્પષ્ટીકરણ પુરૂ થાય છે

બીજા કારણનું સ્પષ્ટીકરણ-તે અપુનોપપન્ન દેવ જ્યારે મૂર્ચ્છિત બાદિ પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી સુકલ બને છે, ત્યારે મનુષ્યભવ સબંધી કામભોગ

मानुष्यकं प्रेम-मनुष्यभवसम्बन्धिकामभोगानुरागः, व्युच्छिन्नं-त्रिनष्ट, दिव्यं-  
देवलोकसम्बन्धि प्रेम संक्रान्तं-प्रविष्टं भवति । इति द्वितीयम् । २ ॥

“ अहुणोववन्ने ” इत्यादि-प्राग्बत् नवर-तस्यैवं भवति-‘ इण्हि ’ इदानीं  
गमिष्यामि-अधुना मर्त्यलोकं यास्यामि, कियता समयेनेत्याह-‘ मुहूर्तेन ’ गमि-  
ष्यामि, तेन-समयेन मनुष्या अल्पायुषः सन्तः कालधर्मेण-मृत्युना संयुक्ता-  
सयुताः मृता भवन्ति, अतो न मानुष्यलोकं समागच्छति । इति तृतीयम् । ३ ।

“ अहुणोववन्ने ” इत्यादि-प्राग्बत्, नवरं-मानुष्यकः-मनुष्यसम्बन्धी गन्धः-

उसके हृदयमें मनुष्यभव सम्बन्धी काश्चभोगानुराग नष्ट हो जाता  
है और देवलोक सम्बन्धी प्रेम प्रविष्ट हो जाता है । अतः-वह चाहता  
चाहताभी नहीं आपाता है

तृतीय कारण भी ऐसाही है परन्तु जब वह देव विशेषणसे युक्त  
हो जाता है तब वह शोचता है कि चलू जहां मेरे पूर्वभव सम्बन्धी  
माता-पिता आदि परिजन हैं उनसे मिल आऊं फिर शोचता है अभी  
चला जाऊंगा तथा-ऐसी जल्दी क्या पडी है ऐसे सोचते-२ समय निकल  
जाता है और अन्तमें यहाँ उनके पूर्वभव सम्बन्धी अल्पायुवाले परि-  
चित मनुष्य मनुष्यलोकसे काल कर जाते हैं, अतः वह फिर मनुष्य  
लोकमें नहीं आता है-३

चतुर्थ कारण भी ऐसाही है परन्तु इसमें पूर्वोक्त विशेषण विशिष्ट

प्रत्येना तेना अनुराग उत्पन्न थछ नय छे ते कारणे ते मनुष्यलोकमा आव-  
वानी धरुछा थवा छता पणु आवी शकतो नथी.

त्रीज कारणुनुं स्पष्टीकरणु—देवलोकमा उत्पन्न थयेला नवा देवना मनमां  
अेवी धरुछा थाय छे के “ मतरा पूर्वभवना माता, पिता आदिने मणवा माटे  
ज्यु जेधअे ” परन्तु तेने अेम थाय छे के थोडी ज वारमां अडींथी  
त्यां जत्रा उपडीश, थोडी वार अडींना कामलोगोने लोगरी लउ, पछी  
मनुष्यलोकमां जवा माटे उपडीश उतावण करवानी शी जरु छे ” आ  
प्रमाणु विचार करतां करतां अेटलो पधे काण व्यतीत थछ नय छे के  
मनुष्यलोकमां रडेला तेना पूर्वभवना माता, पिता आदि परिचित व्यक्तिअे  
तो अल्पायुषी होवाने कारणे मनुष्यभव स मधी आयुष्य पूरुं थछ जवाथी केध  
अन्य गतिमा उत्पन्न थछ गयेल डोय छे. आ वात नळीने ते मनुष्यलोकमां  
आववाने विचार भाडी वाणे छे

थेथा कारणुनु स्पष्टीकरणु—पूर्वोक्त भूच्छित आदि विशेषणवाणे ते

प्रतिद्व 'प्रतिकूलः प्रतिलोम' इत्युभौ समानार्थौ, तदर्थम्-इन्द्रियमनसोरना  
 वादकृत्वाद् दिव्यगन्धमपेक्ष्य विपरीतद्रव्यैः, समानार्थयोर्द्रव्योत्पादान् मानुष्यक  
 गन्धेऽतिशयितनिकृष्टत्वा सूचार्थम्, एतन् मानुष्यकगन्धां दिव्यगन्धापेक्षयाऽप्य  
 न्मनोऽहः, अत एव प्रतिकूल 'च अपि' इति समुच्चये, मन्त्रिः, स च 'उद्धृ  
 य" इत्यादि-ऊर्ध्वमपि ऊर्ध्वदेशमपि मानुष्यको गन्धः चत्वारिती - कदाचिद्  
 मरणादिष्वेकान्तसु गन्धां चत्वारि योजनशतानि पश्चेति-एकान्तसुपमातिरिक्ते तु  
 पञ्चयोजनशतानि यावत् - अमिष्टपाप्य इयमागच्छति-मनुष्यक्षेत्रमागन्तुमिच्छं  
 दं प्रति समुपैति, यतो मनुष्यपश्चेन्द्रियतिरिक्तं प्रचुरस्वेनौदारिकशरीराणां तद्वद्  
 तन्मनानां च पुष्कलत्वेन दुर्गन्धोऽपि बहुमवतीति चतुयकारणम् । ४। 'इन्धे  
 एहि' इत्यादि स्पष्टम् ।

यह देश मनुष्य सम्बन्धी गन्धको प्रतिकूल और प्रतिलोम मानने लगता  
 है क्योंकि—दिव्य गन्धकी अपेक्षा मनुष्यगन्ध इन्द्रिय और मनको  
 आह्लादाकारक नहीं होती है, मनुष्यगन्ध दिव्य गन्धकी अपेक्षा अत्यन्त  
 क्षमनोह्र होती है यही पान प्रगट करनेके लिये सूत्रकारने प्रतिकूल-  
 प्रतिलोम समानार्थक इन दोनों शब्दोंका प्रयोग किया है । मनुष्य गन्ध  
 ऊपरमेंसी कदाचित् चार-पाचसौ योजन तक मनुष्यक्षेत्रमें आनेके  
 लिये पर्युत्सुक देखोकी ओर जाती है, भरतादि क्षेत्रोंमें जब एकान्त  
 सुषम आदि काल होता है उसमें तो चारसौ योजन तक और जप  
 एकान्त सुषमासे अतिरिक्त काल होता है, उस समय पांचसौ योजन  
 तक यह गन्ध आती है । क्योंकि—मनुष्य क्षेत्रमें मनुष्य और पश्चेन्द्रिय  
 तिर्यञ्चोकी प्रचुरता होती है, अतः-उनके औदारिक शरीरोंकी और

अधुनोपपन्नक देव मनुष्य सजन्धी ज धने प्रतिकूल जाने क्षमनोह्र मानवा  
 क्षमि उ क्षम्य उ दि क्षम्य मनने आह्लादाकारक लाये उ क्षमि मनुष्य  
 ज ध मनने अतिशय क्षमनोह्र लाये उ कोल वातने प्रगट करवा भाटे  
 सूत्रकारे प्रतिकूल-प्रतिलोम, आ ने समानार्थक शब्दोंका प्रयोग किये उ मनुष्य  
 ज ध इपरनी व्याप्य ४०० थी ५० योजन सुधी व्यय उ मनुष्यक्षेत्रमा  
 आवधाने उत्सुक देवने ते ज ध क्षमनोह्र वात्रवाशी ते क्षमि आवधाने विचार  
 भांती वाजे उ क्षम्यादि क्षेत्रमा क्षमि एकान्त सुषम आदि क्षमि क्षमि उ  
 क्षमि ते मन्ध ४०० योजन क्षमि व्यय उ पञ्च ते सिवाधना क्षमिमां ते  
 ते मन्ध ५०० योजन क्षमि व्यय मनुष्यक्षेत्रमा मनुष्यो जाने पश्चेन्द्रिय लवा  
 क्षमि क्षमि उ तेमना औदारिक शरीरा क्षमि तेमना मजनी इत्य ध ४५२

अथाऽऽगमनकारणानि—

“ चउहिं ” इत्यादि—स्पष्टम्, नवरम्—‘ एवम् ’—एतादृशं वक्ष्यमाण प्रका-  
रक देवस्य मनो भवति, किं प्रकारकं तदाह—“ अत्थिणं ” इत्यादि—अस्ति—  
विद्यते मम—से मानुष्यके भवे आचार्यः—प्रतिबोधकप्रव्रज्यादायकोपस्थापकादिः

उनके मलोंकी दुर्गन्धभी पुष्कल रूपसे बहुत होती है। इस प्रकारके ये  
चोर ऐसे कारण है जो देवोंको इस मनुष्य लोकमें आनेमें बाधक होते हैं।

अब सूत्रकार देवोंके आगमनका कारण कथन करते हैं—“ चउहिं ”  
इत्यादि इन कारणोंमें एक कारण ऐसा है कि देवलोकमें अधुनोपपन्न-  
देव दिव्य कामभोगोंमें असूचिञ्चत यावत् अनध्युपपन्न होता हुआ  
ऐसा विचार करता है मनुष्य भवमें जब मैं था तबके मेरे यहां आचार्य  
हैं उपाध्याय हैं प्रवर्ता हैं, स्थविर हैं—गणी हैं—गणधर हैं गणावच्छेदक  
हैं, मैंने जो ऐसी अनुपम देवद्वि देवद्युति लब्ध की है—प्राप्त  
की है अलिसमन्वागत ( उपभोग रूप ( सर्वथा ) आशीन ) की  
हैं सो यह उन्हीं का सब प्रभाव है। अतः—उचित है कि मैं चलूं और  
उनको वन्दना करूं यावत् उनकी पर्युपासना करूं इस प्रकारके विचार  
से प्रेरित वह देव इस मनुष्य लोकमें शीघ्रही आ सकता है। इस सूत्रमें  
कथित आचार्यादि पदोंका भाव ऐसा है जो प्रतिबोध देता है प्रव्रज्या-  
दायक होता है उपस्थापक आदि होता है, पांच आचार्योंका स्वयं पालन

४००—५०० योजना सुधी इत्याय छे. आ प्रकारना चार कारणो अधुनोपपन्न  
देवने मनुष्यलोकमा आववामा बाधक थछ पडे छे.

मनुष्यलोकमा हेवोना आगमननां कारणोत्तुं निरूपणु—

“ चउहिं ” इत्यादि. पडेछु कारणु—देवलोकमा उत्पन्न थयेदो नवो  
देव दिव्य कामभोगो प्रत्ये असूच्छां लाव आद्विथी युक्त थछ ने जेवो विचार  
करे छे के—“ मनुष्यलोकमा मारा पूर्वभवना (मनुष्य लवना) आचार्य छे,  
उपाध्याय छे, प्रवर्ती छे, स्थविर छे, गणी छे, गणधर छे, अने गणावच्छेदक  
छे तेमना प्रभावथी न मे आ अनुपम देवद्वि, देवद्युति आदि लब्धि  
प्राप्त करेल छे अने अलिसमन्वागत (मारे आधीन) करेल छे तो जेव  
वात उचित गणाय के मारे अर्द्धीथी मनुष्यलोकमा नछने तेमने वदणु  
नभस्कार करवा जेछंजे अने तेमनी पर्युपासना करवी जेछंजे ” आ प्रकारना  
विचारथी प्रेराने ते देव तुरत न आ मनुष्यलोकमा आवी शके छे

आचार्य केने कडेवाय ? जेजो प्रतिबोध हे छे, प्रव्रज्या अंगीकार  
करावे छे, उपस्थापक आदि डोय छे, जेजो पोते पांच आचार्योनु पालन



उपाध्यायः-अध्यापकः-गुरुप्रद्विषया, प्रवर्ती-प्रवर्तयति आचार्योपदिष्टेषु तपो  
वैपाद्यस्यादिकार्येषु साधुनिधि प्रवर्ती=प्रवर्तकः, ।

उक्तं च—

“ त्वनियमविणयगुणनिधि पञ्चमया नाणदंसम्परिसे ।

सगहुरगगहकुसला पञ्चि पर्यारिसा हुति ॥ १ ॥ ”

છાયા—‘ તપો નિયમવિનયગુણનિધયઃ પ્રવર્તકા જ્ઞાનદર્શનવારિષ્ઠેષુ ।

સમ્પ્રસોપપ્રહ્લુચ્છલાઃ પ્રવર્તિન પવાદ્યા મવન્તિ ॥૧॥ इति ।

स्वविरः-प्रवर्तिप्रवर्तितान् समययोगेषु सँदतः साधुन् ज्ञानादिष्वैरिष्याऽऽ  
मुष्मिकापायदक्षेणतः स्थिरीकरोतीति तथा, गणी-गणः-कृतिवपसाधुसमुदायः  
सोऽस्त्यस्येति गणी, गणधरः-य आचार्यसदृशो गुणादेशात्साधुगणं गृहीत्वा  
पृथग् विहरति सः, तथा गणान्छेदकः-गणस्य अरच्छरो विभागोऽशोऽस्यास्तीति

करता है और दूसरे साधुओंसे इनका पालन कराता है वह-आचार्य  
है । शिष्योंको जो सूत्रादिका अध्ययन कराता है वह उपाध्याय है,  
तथा-जो आचार्योपदिष्ट तप-वैपाद्य-आदि कार्योंमें साधुओंको  
मनूषि कराता है वह प्रवर्तक-प्रवर्तक है । कहा भी है-“ तय नियम विणय  
गुणनिधि’ इत्यादि प्रवर्ती द्वारा प्रवर्तित हुवे साधु जनोको जो कि संयम  
योगोंमें ज्ञानादिकोंमें शिथिल हो रहे हों उन्हें इहलोक-परलोकके अपा  
पोंका दिग्दर्शन कराकर स्थिर कराता है वह स्वविर है । कितनेक साधु समु  
दायका नाम गण है, यह गण जिसको है वह गणी है, जो आचार्यका  
जैसा हो पर्व गुरुके आदेश से साधुगणको लेकर पृथक् विहार करता  
है वह-गणधर है । जिसके गणका विभाग-अंश होता है वह गणा

કરે છે અને બીજા સાધુઓ પાસે તેનું પાલન પણ કરાવે છે તેમને  
આચાર્ય’ કહે છે

शिष्योने सुत्रादिनु अध्ययन करानेने उपाध्याय कहे છે

આચાર્યોપદિષ્ટ તપ, વૈષાવૃત્ય આદિ કાર્યોમાં સાધુઓને પ્રવૃત્ત કરાવનારને  
પ્રવર્તી અથવા પ્રવૃત્ત કહે છે કહ્યું પણ છે કે- ત્વનિયમવિનયગુણનિધિ”  
ઈત્યાદિ પ્રવર્તક દ્વારા તપ આદિમાં પ્રવૃત્ત કરાવેલા ને સાધુઓ સમય  
યોગોમાં અને જ્ઞાનાદિકોમાં શિથિલ થઈ રહ્યા હોય તેમને આલોક-પરલોકના  
અપાયોનુ દિગ્દશન કરાવીને તપાદિમાં સ્થિર કરવાને સ્વવિર કહે છે કેટલાક  
સાધુઓના સમુદાયનું નામ ગણ છે તે ગણનો ને અધિપતિ હોય તેને  
ગણી કહે છે ને આચાર્યના નેવો ન હોય અને શુભના આદેશથી સાધુ

ગણાવચ્છેદઃ, સ એવ ગણાવચ્છેદકઃ—જિનશાસનપ્રભાવને ગણકાર્યમાશ્રિત્યોદ્ધા-  
વને ઋચિદ્ગમને ક્ષેત્રોપધિગવેષણાસુ ચાવિપાદી સૂત્રાર્થજ્ઞાયકશ્ચ । ઉક્તં ચ—

“ પ્રભાવનોદ્ધાવનયોઃ ક્ષેત્રોપધ્યેષણાસુ ચ ।

અવિપાદી ગણાવચ્છેદકઃ સૂત્રાર્થવિન્મતઃ ॥૧॥ ” ઇતિ ॥

યેષામ્—આચાર્યાદીનાં પ્રભાવેણ—અનુભાવેન મયા—દેવેન હ્યં—સાક્ષાદનુમૂય-  
માના એતદ્રૂપા—એતદ્ રૂપ યસ્યાઃ સા તથા=એતાદૃશી દિવ્યા દેવદ્ધિઃ વિમાન-  
રત્નાદિરૂપા સુરસંપત્તિઃ તથા—દિવ્યા દેવદ્યુતિઃ—દેવશરીરકાન્તિઃ લબ્ધા=સમુપા-  
ર્જિતા, પ્રાપ્તા—અધીના જાતા, અભિસમન્વાગતા—ભોગ્યાવસ્થાં પ્રાપ્તાઽસ્તિ, તત્-  
તસ્માત્ કારણાદ્ અહં ગચ્છામિ, ગત્વા ચ તાન્ ભગવતો વન્દે—સ્તૌમિ, ‘યાવત્’—

વચ્છેદક હૈ યહ ગણાવચ્છેદક જિનશાસનકી પ્રભાવનામેં ગણકાર્યકો  
લેકર કહીં પર જાનેમેં ઓર ક્ષેત્ર-ઉપધિ હનકી ગવેષણા કરનેમે અવિ-  
ષાદી—દુઃખ માનનેવાલા નહીં હોતા હૈ, ઓર સૂત્રાર્થવેત્તા હોતા હૈ ।  
કહામી હૈ—“ પ્રભાવનોદ્ધારવનયોઃ ” ઇત્યાદિ.

વિમાનરત્ન આદિ રૂપ સુરસંપત્તિ દેવદ્ધિ એવં દેવશરીર સમ્બન્ધી  
કાન્તિ દેવદ્યુતિ હૈ હનકા અચ્છી તરહસે ઉપાર્જન કરના સો લબ્ધ હૈ,  
ઉસે અપને આધીન કરના સો પ્રાપ્ત હૈ । તથા=ઉસે અપને ભોગ્યમેં  
લગાના હસકા નામ—અભિસમન્વાગત હૈ, “ વંદે યાવત્ પર્યુપાસે ”  
મેં આગત યાવત્ શબ્દસે નમસ્યામિ—સત્કરોમિ—સમ્માનયામિ—કલ્યાણં  
મદ્ગલં—દૈવતં—ચૈત્યં, હન પદોંકા ગ્રહણ હુવા હૈ, સ્તુતિ કરના હસકા

ગણુને સાથે લઇને વિહાર કરતો હોય તેને ગણુધર કહે છે-ગણુના વિભાગને  
ગણુાવચ્છેદક કહે છે.

એવા ગણુાવચ્છેદના અગ્રેસરને ગણુાવચ્છેદક કહે છે, તે ગણુાવચ્છેદક  
જિનશાસનની પ્રભાવનામાં, ગણુકાર્ય નિમિત્તે કોઈ પણ સ્થળે જવામાં, અને  
ક્ષેત્ર, ઉપધિ આદિની ગવેષણા કરવામાં અવિષાદી હોય છે—એટલે કે આ કાર્યો  
કરવામા હુ ખ માનનાર હોતો નથી અને સૂત્રાર્થનેા જ્ઞાના પણુ હોય છે. કહ્યું  
પણુ છે કે—“ પ્રભાવનોદ્ધાવનયો ” ઇત્યાદિ

વિમાન, રત્ન આદિ રૂપ સુરસંપત્તિને દેવદ્ધિ કહે છે દેવશરીર સંબન્ધી  
કાન્તિને દેવદ્યુતિ કહે છે તેને સારી રીતે ઉપાર્જિત કરવી તેનુ નામ ‘લબ્ધ’  
છે તેને પોતાને આધીન કરવી તેનુ નામ પ્રાપ્ત છે, અને તેને પોતાના ભોગો  
પ્રયોગમાં લેવી તેનુ નામ ‘અભિસમન્વાગત’ છે

“ વંદે યાવત્ પર્યુપાસે ” આ સૂત્રપાઠમાં વપરાયેલા ‘યાવત્’ પદથી

यावच्छब्देन-नमस्त्वामि-पञ्चाङ्गनमनपूर्वक नमस्कारोमि सत्कारोमि-आदरेण सम्मानयामि-अभ्युत्थानाद्विज्ञानया उचितप्रतिपत्त्या, परयाण-कल्याणस्वरूपान् मङ्गलमङ्गलस्वरूपान्, दैवत धर्मदेवस्वरूपान्, वैश्य ज्ञानस्वरूपान् पर्युपासे-सेवे इति प्रथममागमनकारणम् १।

“अहुणोवचण्णे” इत्यादि-पूर्ववत्, नवरम्-एषः=वक्ष्यमाणः खलु मानुष्यके भवे, ज्ञानी भुवज्ञानादिना सम्पत्ता, तपस्वी=तपश्चरणशीलः, अतिदुष्करदुष्करकारकः - कठिनातिकठिनताभिग्रहतपश्चर्यादि फारकोऽस्ति, तद्गन्धामि यावत् पर्युपासे । इति द्वितीयमागमनकारणम् २।

“अहुणोवचण्णे” इत्यादि-प्राग्वत्, नवर-मम मानुष्यके भवे माता ‘यावत्’ पदेन ‘भापाइ वा मज्जाइ वा मणीइ वा पुचाइ वा पूयाइ वा’ इति पदानि प्राप्ताणि, तच्छाया-घ्रातेति वा भार्येति मग्नीति वा पुम इति वा दुदि तेति वा, स्तुवा-पुत्रमार्पा चास्ति तत्-तस्मात् तेषां=मात्रादिपरिचागणाम्

नाम घन्दना है, पञ्चाङ्ग नमनपूर्वक नमस्कार परना इसका नाम नमस्कार है । आदर दना इसका नाम सत्कार है, अभ्युत्थानादि रूप उचित प्रतिपत्ति सेया) करना इसका नाम सम्मान है, कल्याणस्वरूप होनेसे आचार्य आदिकोंको कल्याण, मङ्गलस्वरूप होनेसे मङ्गल धर्मदेव स्वरूप होनेसे दैवत और ज्ञानस्वरूप होनेसे ज्यैत्यरूप कहा गया है, सेया करनेका नाम पर्युपासना है । ऐसा यह प्रथम कारण है-१ द्वितीयकारण भी ऐसाही है, पर इसमें ऐसा विचार करता है कि मनुष्यभवमें भूत ज्ञानादिकसे सम्पन्न ज्ञानीजन हैं तपश्चरणशील तपस्वी जन हैं, और अति दुष्कर दुष्करकारक-कठिनातिकठिन साभिग्रह तपश्चर्यादिकारक साधुजन हैं, इसलिये खलु और यावत् उनकी पर्युपासना कर ऐसा

नीचिनो सूत्रपठं ज्ञेयं वयो छ- ‘नमस्यामि, सत्कारोमि, सम्मानयामि, कल्याणं, मङ्गलं, दैवतं वैश्यं”

स्तुति करवी तेनुं नाम वड्ढा छे पांथि ज्ञेयाने नभावीने नमनु तेनुं नाम नमस्कार छे आदर देवा तेनुं नाम सत्कार छे अभ्युत्थान आदि उचित निधि करवी तेनुं नाम सम्मान छे आचार्य आदि कल्याण स्वरूप होवाथी भोजन स्वरूप होवाथी, धर्मदेव स्वरूप होवाथी ज्ञाने ज्ञानस्वरूप होवाथी तेमने अनुक्रमे कल्याणरूप, मङ्गलरूप, देवरूप ज्ञाने ज्यैत्यरूप कहेवामां ज्ञावेत्त छे सेवा करवी तेनुं नाम पर्युपासना छे

आ रीते चडेवा करणुनुं एपहीकरवु करीने कवे सूत्रकार जीव करणुने प्रकट करे छे-देवदेवतां उत्पन्न यथेतो ते नवो देव जेवो विचार करे छे हे मनुष्यदेवतां भुवज्ञानादिथी संपन्न ज्ञानीजनो छे तपश्चरणशील तपस्वीजो छे दुष्करतां दुष्कर (कठिनतां कठिन) अतिग्रह पूर्वक तपश्चर्यादि करनासा साधुजो छे तो भारे त्यां ज्येने तेमने वड्ढा, नमस्कार आदि करवा जेछे

अन्तिकं-समीपं गच्छामि, गत्वा च प्रादुर्भवामि=प्रकटो भवामि ताः=मात्रादयो मे=मम इमां-प्रत्यक्षामेतद्रूपाम्-एतादृशीं दिव्यां देवद्विं दिव्यां देवद्युतिं लब्धां प्राप्तामभिसमन्वागतां पश्यन्तु । इति तृतीयमागमनकारणम् । ३।

“अहुणोववण्णे” इत्यादि—प्राग्भूतं नवरं-मम मानुष्यके भवे मित्रं पश्चात्-त्सनेही, सत्वा-वालवयरयः, सुहृत्-हितैषी सज्जनः सहायः-सह अयते इति सहायः-सहचरः एककार्यपटुत्, साङ्गतिकः=सङ्गतिकः=सङ्गतं-परिचयोऽस्त्वस्येति साङ्गतिकः-परिचितोवाऽस्ति, तेषां=मित्रादीनां च खलु अस्माभिः अन्योऽन्यं=परस्परं सङ्केतः प्रतिश्रुतः-प्रतिज्ञातं स्वीकृतो भवतिस्म=आसीत् कीदृशः सङ्केतः ? इत्याह-“जो मे” इत्यादि—यः-जनः मे-अस्माकं मध्ये पूर्वं-प्राक्च्यवते-देवलोकात् च्युतो भवेत् स जनः सम्बोधयितव्यः-प्रतिबोधनीय इति तस्मादहं

यह द्वितीय कारण है-२ तृतीय कारण भी ऐसाही है, पर इसमें वह ऐसा विचार करता है कि मेरे मनुष्यभवके सम्यन्धी माता यावत् भ्राता-भगिनी-पुत्र-पुत्री-पुत्रवधु ये सब हैं, इसलिये मैं उनके पास जाऊं, वे मेरी ऐसी इस प्रत्यक्षभूत दिव्य देवद्विको गचं दिव्य देव द्युतिको कि जिसे मैंने लब्ध की है प्राप्तकी है अभिसमन्वागत की है देखें, ऐसा यह तृतीय कारण है-३ चतुर्थ कारण भी ऐसा ही है, पर इसमें वह ऐसा विचारता है कि मेरे मनुष्यभवके मित्र हैं, सुहृद्जन हैं, सहायक हैं, साङ्गतिक हैं, उन्होंने हमारे साथ ऐसा सङ्केत किया था ऐसी बात स्वीकार कीथी कि जो कोई भी हमलोगों के बीचमेंसे देवलोकसे पहले चवे वह जन संबोधयितव्य है-

अहीं पर्युपासना पर्यन्तना उपर्युक्त पदो पशु अर्द्धु करवा लेधये. आ कारणे पशु ते अधुनोपपन्न देव मनुष्यलोकमां आवे छे.

त्रीयुं कारणु पशु लगलग अबुं न छे तेने अबेो विचार आवे छे के मारा पूर्वभवना (मनुष्य भवना) माता, पिता, भाई, भेन, पुत्र, पुत्री, पत्नी वगेरेने मणवा भाटे मारे मर्त्यलोकमा नबुं लेधये तेओ मारी आ दिव्य देवद्विं, देवद्युति आदिना लये दर्शन करे आ रीते पोते लब्ध, प्राप्त अने अभिसमन्वागत करेकी देवद्विं, देवद्युति आदि तेमने जताववाना हेतुथी ते अधुनोपपन्न देव आ मर्त्यलोकमा आववानी धृच्छा करे छे.

चोथुं कारणु—ते अधुनोपपन्न देवने अबेो विचार थाय छे के मनुष्य-लोकमां पूर्वभवना मारा मित्रो छे, सुहृद्जनो छे, सहायक छे अने सांगतिक छे तेमणे अने मे' अरस्परसमा अबेो संकेत करेो छेतो-अबुं वचन आ'प्यु' इतुं के आपणाभावु नो केरु देवलोकमांथी पडेता अवे (त्यांनुं

पूर्वच्युवान् सशोषयितु मनुष्यश्लोक गच्छामि, सूत्रे 'म' इत्यार्षत्तादेकवचनम् ।  
इति चतुर्थमागमनकारणम् । ४। ॥ सू० २४ ॥

अनन्तरं देवाऽऽगमनमुक्त, तत्र तच्छ्रुत्वोद्द्योतो भवतीति तद्विपरीत श्लोका  
चकारं प्राइ—

मूलम्—चउहिं ठाणेहि लोमघयारे सिया, त जहा—अरह  
तेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं १, अरहतपन्नत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे  
२, पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे ३, जायतेए वोच्छिज्जमाणे ४।

चउहिं ठाणेहिं लोउज्जोए सिया, त जहा—अरहंतेहिं  
जायमाणेहिं १, अरहतेहिं पवयमाणेहिं २, अरहताणं णाणु  
एयमहिमासु ३, अरहताण परिणिव्वाणमहिमासु ४। एव  
देवघगारे देवुज्जोए देवसनिवाए देवकलिया देवकहकहे ।

चउहिं ठाणेहिं देविंदा माणुस्स लोम हव्वमागच्छति,  
प्रतियोधनीय है, इसलिये मैं पूर्वमें वधे दुष्टोंको सशोषन करनेके लिये  
मनुष्य लोकमें जाऊ ।

पश्चात्—स्नेहीका नाम मित्र है, पाल वयस्यका नाम सखा है,  
हितैषी सज्जनका नाम सुहृत् है एक किसी भी कार्यमें साथ रहनेवाले  
का नाम सहचर है जिससे जान पहिचान हो उसका नाम सात्रतिक  
है, ऐसा यह चौथा कारण है ॥ सू० २४ ॥

आशुभ्य पूरु करीने करी मनुष्यलोकमां (तपन्न वधं जय), ते आशुभ अग्नि  
धरितव्य—प्रतिये धनीय (विध प्राप्त करवाने पात्र) गच्छते नोद्ये

आ प्रकाशना विचारणी प्रेरित वर्धने शैताना पदेलां देवलोकमांभी  
नेज्जा यवेलां छे तेमने अग्निधन करवाने भाटे ते अशुभोपपन्न देव  
आ मनुष्यलोकमां आवया याडे छे

पशुा राजा समवधी नेनी साथे स्नेह होय तेने मित्र कहे छे आत्य  
शान्धी नेनी साथे मैत्री होय तेने सखा कहे छे हितैषी सज्जनने सुहृद्  
कहे छे होई जोइ शत्रुमां साथे रहनेवारे सहचर कहे छे, नेनी साथे ज्ञान-  
आशु पीछायु होय तेने सात्रतिक कहे छे ॥ सू २४ ॥

एवं जहा—तिट्टाणे जाव लोमंतिचा देवा माणुस्सं लोमं हव्व-  
सागच्छेज्जा, तं जहा—अरिहंतेहिं जायमाणेहिं जाव अरिहंताणं  
परिनिव्वाणमहिमासु ॥ सू० २५ ॥

छाया—चतुर्भिः स्थानैः लोकान्धकारः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्यवच्छिद्य  
मानेषु १, अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने २, पूर्वगते व्यवच्छिद्यमाने ३, जात-  
तेजसि व्यवच्छिद्यमाने ४,

चतुर्भिः स्थानैः लोकान्धकारः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु १, अर्हत्सु  
प्रव्रजत्सु २, अर्हतां ज्ञानोत्साहमहिमसु ३, अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु ४, एवं  
देवान्धकारः, देवोद्द्योतः, देवसन्निपातः देवोत्कलिफाः, देवकलकलः ।

चतुर्भिः स्थानैः देवेन्द्राः मानुष्यं लोकं हव्यमागच्छन्ति, एवं यथा त्रिस्थाने  
यावत् लोकान्तिफा देवा मानुष्यं लोकं हव्यमागच्छन्ति, तद्यथा—अर्हत्सु जायमा  
नेषु यावत् अर्हतां परिनिर्वाणमहिमसु ॥ सू० २५ ॥

टीका—“ चउहिं ठाणेहिं ” इत्यादि—चतुर्भिः स्थानैः लोकान्धकारः—  
लोकेऽन्धकारः—द्रव्यतो भावतश्च स्यात्—भवेत्, कैश्चतुर्भिः स्थानैरित्याह—“ तं  
जहा ” इत्यादि—तद्यथा—अर्हत्सु—जिनेषु व्यवच्छिद्यमानेषु—निर्वाणं गच्छत्सु द्रव्य  
तोऽन्धकारः स्यात्, तस्योत्पातरूपत्वात्, छत्रभङ्गादौ रजउद्धतवत्, इति प्रथमं  
लोकाऽन्धकारस्य कारणम् । १।

तथा—अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्यवच्छिद्यमाने, इति द्वितीयम् । २।

देवकृत उद्द्योत के अभावमें लोकमें किन—किन कारणोंसे अन्धकार  
हो जाता है अब सूत्रकार इस बातका कथन करते हैं—

“ चउहिं ठाणेहिं लोमघयारे सिया ” इत्यादि २४

टीकार्थ—इन चार कारणोंके हो जाने पर लोकमें द्रव्यसे और भावसे  
अन्धकार हो जाता है वे चार कारण ये हैं—एक कारण है जिनेन्द्र  
देवका निर्वाण प्राप्त कर लेना—१ द्वितीय कारण है—अर्हत् प्रज्ञप्त धर्मका

देवकृत उद्द्योतना अलावे कथा कथा कारणोत्थी लोकमां अंधकार व्यापी  
अथ छे, तेनु हवे सूत्रकार निरूपणु करे छे—

“ चउहिं ठाणेहिं लोमघयारे सिया ” इत्यादि—(२५)

टीकार्थ—नीचेना आर कारणोत्थी लोमघयारे द्रव्यांधकार अने लावांधकार व्यापी  
अथ छे—(१) जिनेन्द्र देवना निर्वाणु कणे, (२) अर्हत् प्रज्ञप्त धर्म व्युच्छिन्न

विधिष्ठा । एकैकस्मिन् समये एकैक एव वाग्योगो देवादीनां भवतीत्यर्थं । एकत्वं च वाग्योगस्य तथाविधमनोयोगपूर्वकत्वात्, एकस्मिन् समये सत्यादीनामन्यतमस्यैवसम्भवाद् वा । उक्तं चापि—

“छहिं ठाणेहिं गत्यिजीवाणं इन्हीइ वा जीव परकमेइ वा, त जहा—जीव वा अजीव करणयाए १, अजीवं वा जीव करणयाए २, एगसमएणं दो भासाओ मासिचए ” ॥

छाया—परमिः स्याने नांस्ति जीवानाम् श्रद्धिरिति वा यावत् पराक्रम इति वा, तथा—जीवं वा अजीवं कर्तुम्, अजीव वा जीवं कर्तुम्, एक समयेन द्वे माय भाषितुम् । इति ॥ सू० ४२ ॥

अथवा—एक समय में सत्यादि वाग्योगो में से किसी एक ही वाग्योग का सङ्घाय होता है इसलिये भी यहाँ एकता कही गई है ऐसा जानना चाहिये । कहा भी है—

“छहिं ठाणेहिं गत्यि जीवाणं इन्हीइवा जईइवा, जसेइवा, वळेइवा, वीरिए वा, पुरिसकारपरकमेइ वा—त जहा जीवं वा अजीव करणयाए १ अजीव वा जीवं करणयाए २, एग समएण दो भासाओ भासिचए ३, सय कइ वा कम्मं वेएमि वा मा वा वेएमि ४, परमाणुपोग्गल वा छिदि चए वा भिदिचए वा अगणिकाएण वा समोइहिए ५, पहिया वा छोगता गमणयाए ६ ” इन छह स्थानों को लेकर के जीव में न कोई ऐसीश्रद्धि है और न कोई ऐसा पराक्रम है कि जिससे वह जीव को अजीवरूप में एवं अजीव को जीव रूपमें कर सके और एक ही समय में दो भाषाओं को बोल सके अतः जब जीव में ऐसी कोई शक्ति

वाग्योग होय छे आ शीते तथाविध (ते प्रकारन) मनोयोगपूर्वक अवाधी वाग्योगमां जेहवा होय छे अथवा—सत्यादि वाग्योगमांधी जेह समये ठाई जेह न वाग्योगनो सदुभाव रहे छे तेही पक्ष जहाँ वाग्योगमां जेहव प्रकट कइ छे कइ पक्ष छे के—

(छहिं ठाणेहिं गत्यि जीवाणं इन्हीइ वा, जुईइ वा, जसेइ वा, वळेइ वा, वीरिए वा, पुरिसकारपरकमेइ वा,—त जहा जीवं वा अजीव करणयाए १ अजीवं वा जीव करणयाए २, एग समएणं दो भासाओ मासिचए ३, सय कइ वा कम्म वेएमि वा मा वा वेएमि ४ परमाणुपोग्गल वा छिदिचए वा भिदिचए वा अगणिकाएण वा समोइहिए ५, पहिया वा छोगता गमणयाए ६ )

आ छ स्थानोनी अपेक्षामे एवमां जेवी ठाई श्रद्धि पक्ष नथी के जेथी ते पराक्रम पक्ष नथी के जे ते (१) एवने अएवइये के अएवने एवइये इरनी शके, (२) के जेह न समये नि भाषामो बोली शके, इत्यादि एवमां जे

अथ कायव्यायामं निरूपयति—

मूलम्—एगे कायवायामे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि  
समयंसि ॥ सू० ४३ ॥

छाया—एकः कायव्यायामो देवासुरमनुजानां तस्मिन् तस्मिन् समये ॥ सू० ४३ ॥

टीका—‘ एगे कायवायामे ’ इत्यादि—

देवासुरमनुजानां तस्मिन् तस्मिन् समये कायव्यायामः=काययोग एकः=  
एकत्वसंख्याविशिष्टः । सप्तसु काययोगेषु मध्ये देवासुरमनुजानाम् एकदा एक  
एव काययोगो भवति, न तु द्वयादिकः, अत एवात्र एकत्वमुक्तम् ।

नहीं है तो उसके एक समय में एक ही वाग्योग होता है इत्यादि  
वाग्योग नहीं होते हैं इसलिये वह वाग्योग एकत्व संख्यावाला कहा  
गया है ॥ ४२ ॥

कायव्यायाम-योग का निरूपण किया गया है

‘ एगे कायवायामे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि ’ ॥ ४३ ॥

मूलार्थ— देव असुर और मनुष्यों के उस उस समय में एक ही  
काययोग होता है ।

टीकार्थ—यद्यपि काययोग सात प्रकार का कहा गया है परन्तु वह  
देव, असुर और मनुष्यों के एक समय में एक ही होता है इस कारण  
एकत्व संख्यावाला कहा गया है कायव्यायाम का मतलब यहाँ काययोग  
से है एक समय में वह एक ही होता है इससे ऐसा समझाया गया है

आ प्रकारनी केरु शक्तिने सदृभाव नथी, तो ते अेक समयमां अेक  
वाग्योगवाणेो होरु शके छे-ते अे, त्रणु आदि वाग्योगवाणेो होरु शकते नथी.  
ते करणेो एवेना वाग्योगमां अेकत्व प्रकट करवामां आंयु छे. ॥ सू० ४२ ॥

कायव्यायाम ( काययोग ) तु निरूपणम्—

“ एगे कायवायामे देवासुरमणुयाणं तंसि तंसि समयंसि ॥ ४३ ॥

सूत्रार्थ—काययोगमा प्रवृत्त थयेला, देव, असुर अने मनुष्येमां ते ते  
समये अेक अे काययोगने सदृभाव होय छे

टीकार्थ—जे के काययोगना सात प्रकार कथा छे, परंतु देव, असुर अने  
मनुष्येमां अेक अे समये काययोग थतो होवाथी, अर्ही तेमना काययोगमां  
अेकत्व प्रकट करुं छे ‘ कायव्यायाम ’ अेटले, “ काययोग ” अेक समयमां



विक्षिप्ता । एकैकस्मिन् समये एकैक एव वाग्योगो देवादीनां भवतीत्यर्थः । एकस्य च वाग्योगस्य तद्यथाविधमनोयोगपूर्वकत्वात्, एकस्मिन् समये सत्यादीनामप्यवमस्यै-  
षसद्भावाद् वा । उक्तं चापि—

“छहिं ठाणेहिं गत्यिजीवाणं इड्डीइ वा भीव परकमेइ वा, त जहा-जीव वा  
अजीवं करणयाए १, अजीव वा जीवं करणयाए २, एगसमएणं दो भासाओ  
भासिषए ” ॥

छाया—परमिः स्याने नास्ति जीवानाम् श्रुद्धिरिति वा यावत् पराक्रम  
इति वा, तद्यथा—जीव वा अजीवं कर्तुम्, अजीव वा जीवं कर्तुम्, एक समयेन द्वे  
भाषे मापिटुम् । इति ॥ सू० ४२ ॥

अथवा—एक समय में सत्यादि वाग्योगो में से किसी एक ही  
वाग्योग का सङ्काष होता है इसलिये भी यहां एकता कही गई है ऐसा  
जानना चाहिये । कहा मी है—

“छहिं ठाणेहिं गत्यि जीवाणं इड्डीइवा जईइवा, जसेइवा, पलेइवा,  
धीरिए वा, पुरिसकारपरकमेइ वा—तं जहा जीव वा अजीव करणयाए १  
अजीव वा जीवं करणयाए २, एग समएणं दो भासाओ भासिषए ३,  
सयं कळं वा कम्मं वेएमि वा मा वा वेएमि ४, परमाणुयोगाल वा छिंदि  
त्तए वा मिंदिषए वा अगणिकाएण वा समोदहिए ५, पहिया वा  
छोगता गमणयाए ६ ” इन छह स्थानों को लेकर के जीव में न कोई  
ऐसीश्रुद्धि है और न कोई ऐसा पराक्रम है कि जिससे वह जीव को  
अजीवरूप में एवं अजीव को जीव रूपमें कर सके और एक ही समय  
में दो भाषाओं को बोल सके अतः जब जीव में ऐसी कोई शक्ति

वाग्योग दोष छे आ रीते तद्यथाविध (ते प्रकारना) मनोयोगपूर्वकं बवाधी  
वाग्योगमां ज्येक्ता दोष छे अथवा—सत्यादि वाग्योगमांशी ज्येक समये दोष  
ज्येक च वाग्योगने सद्भावाए रहे छे तेषी पक्ष ज्येकी वाग्योगमां ज्येकत्व  
प्रकट क्युं छे क्युं पक्ष छे के—

(छहिं ठाणेहिं गत्यि जीवाणं इड्डीइ वा, सुईइ वा, वसेइ वा, पलेइ वा,  
धीरिए वा, पुरिसकारपरकमेइ वा,—त जहा जीवं वा अजीव करणयाए १, अजीवं वा  
जीवं करणयाए २, एग समएणं दो भासाओ भासिषए ३, सयं कळं वा कम्म  
वेएमि वा मा वा वेएमि ४, परमाणुयोगाल वा छिंदिषए वा मिंदिषए वा अगणिकाएण  
वा समोदहिषए ५, पहिया वा छोगतागमणयाए ६ )

आ छ स्थानोनी अपेक्षाज्ये एवमा ज्येवी दोष श्रुद्धि पक्ष नथी के  
ज्येकी ते पराक्रम पक्ष नथी के जे ते (१) एवने अएवइये के अएवने एवइये  
इएवी यके, (२) के ज्येक च समये ने भाषाज्ये भेती यके, एत्यादि एवमां ने

ययोगप्रतिपादनमसंगतं स्यात्, अत एकदा एक एव काययोगः प्रतिपत्तव्यः । एवमेव यदा चक्रवर्त्यादि वैक्रियशरीरं विकरोति, तदाऽप्यौदारिकशरीरं निर्व्यापारमेव तिष्ठति । यदि औदारिकशरीरमपि यदा सव्यापारं भवेत्तदा उभयोरपि व्यापारवत्त्वात् केवलिसमुद्घातवद् मिश्रयोगता स्यात्, अत एकदा एक एव काययोगो भवतीति मन्तव्यम् । अथ चेत् काययोगोऽपि औदारिकतया वैक्रियतया च क्रमेण व्यापारयुक्तो भवति, व्यापारस्य च शीघ्रवृत्तितया मनोयोगवत्तस्य योगपद्यभ्रान्तिर्भवति, तदाऽप्येकत्वमव्याहृतमेवेति नास्ति कश्चिद् दोषः ।

समयों में औदारिक मिश्रता होती है, इस तरह से आहारक प्रयोक्ता ही को उपलब्ध नहीं हो सकेगा तब सात प्रकार के काययोग का प्रतिपादन असंगत पड़ जावेगा इसलिये यही मानना चाहिये कि एक समय में एक जीव को एक ही काययोग होता है इसी तरह से सब चक्रवर्ती आदि वैक्रियशरीर की विकुर्वणा करते हैं उस समय भी औदारिक शरीर अपने व्यापार से रहित ही होता है यदि उस समय औदारिक शरीर भी अपने व्यापार करनेवाला माना जावेगा तो ऐसी हालत में दोनों ही काययोग अपना २ व्यापार करने वाले एक समय में हो जावेंगे तो केवली समुद्घात की तरह वहां मिश्रयोगता आ जावेगी इसलिये यही मानना चाहिये कि एक काल में एक जीव में एक ही काययोग होता है यदि इस पर यों कहा जावे कि काययोग भी औदारिकरूप से और वैक्रियरूप से यद्यपि क्रम २ से ही अपने २ व्यापार से युक्त होता है परन्तु फिर भी उनके व्यापार में आशु ( शीघ्र ) वृत्तितता होने के

थोभा न स लवी शके छे आ रीते आहारक शरीरनु निर्माण करनार एवमां ले औदारिक मिश्रता न स लवती नथी, तो सात प्रकारना काययोग तो केवी रीते स लवी न शके ? तेथी ये वात मानवी न पडशे के एक समये एक एवमां एक न काययोगना सहलाव डोर्छ शके छे. येन प्रमाणे न्यारे चक्रवर्ती आदि वैक्रिय शरीरनी विकुर्वणा करे छे, त्तारे पण औदारिक शरीरना व्यापार ( प्रवृत्ति ) ना अलाव न रहे छे. ले ते समये औदारिक शरीरने पण पोताना व्यापारथी युक्त मानवामा आवे, तो भन्ने काययोग एक न समये पोतपोताना व्यापारथी युक्त भनी नशे, येवी परिस्थितिमां तो त्यां केवली समुद्घातना नेवी मिश्रयोगता आवी नशे ते कारणे येवु न मानवु पडशे के एक क्षणे एक एवमां एक न काययोगना सहलाव रहे छे. ले अर्डी येवी दलील करवामा आवे के भन्ने काययोग-औदारिकरूपे अने वैक्रिय रूपे लसे वाराकरती पोतपोताना व्यापारथी युक्त रहेता डोय. परन्त तेयना

નવુ જીવો યદા આહારક શરીરમાહરતિ તદા, તસ્ય ઔદારિકશરીરમપ્યવસ્થિતં  
મન્વતીતિ શ્રુયતે, તર્હિ કયમેકદ્શા એક એવ કાયયોગ ઉક્તઃ ? इति चेत्,

અમોચ્યતે—સત્યપિ ઔદારિકે શરીરે તદા તસ્ય વ્યાપારો ન મન્વતિ આહાર  
ક શરીરસ્વૈય વ્યાપિયમાણત્વાત્ । યદિ ચ ઔદારિક શરીરમપિ તદા વ્યાપિય  
માણ મન્વેત્ તર્હિ મિથ્યયોગતા સ્યાત્ કેવલિસમુદ્ઘાતે દ્વિતીયપદ્મસપ્તમસમયેષુ  
ઔદારિકમિથ્યવત્, તતમ આહારકમયોક્તા એવ નોપલભ્યેત, इत्थं च सप्तविधका

કિ દ્વો આદિ કાયયોગ એક સમય મેં એક જીવ કે નહીં હોતે હેં । इसीसे  
वसमें एकता कही गई है

જાંકા—જીવ જિસ સમય આહારક શરીર કા આહરણ કરતા હૈ-  
નિર્માણ કરતા હૈ વસ સમય વસકે ઔદારિક શરીર મી રહતા હૈ એસી  
પાત સુની જાતી હૈ—તો ફિર એક સમય મેં એક હી કાયયોગ હોતા હૈ  
યહ પાત કેસે પન સકતી હૈ ?

ઉ૦—જીવ૦ છટે ગુણસ્થાનવર્તી કોઈ ૨ મુનિ-જવ આહારક શરીર  
કા નિર્માણ કરતા હૈ વસ સમય વસકે યથાપિ ઔદારિક શરીર રહતા  
હૈ પરન્તુ ફિર મી વસકે વસકા વ્યાપાર નહીં હોતા હૈ ક્યોં કિ વસ  
સમય વસકા આહાર શરીર હી વ્યાપૂત હોતા હૈ યદિ ઔદારિક શરીર  
મી વસ સમય વસકા વ્યાપૂત છુઆ માન લિયા જાવે-અર્થાત્ આહારક  
શરીર કે વ્યાપાર કરને કે સમય મેં ઔદારિક શરીર મી વ્યાપાર કર  
રહા હૈ એસા સ્વીકાર કિયા જાવે તો વસકે મિથ્યયોગતા હોની આહિયે  
જેસી કિ કેવલી સમુદ્ઘાત કે સમય મેં દ્વિતીય, પદ્મ, ઔર સપ્તમ

એક જ કાયયોગ થાય છે-છવ દ્વારા એક જ સમયે તે ત્રણ આદિ કાયયોગ  
થતા નથી. તે કારણે જ તેમાં એકતા કહી છે

શકા—છવ જે સમયે આહારક શરીરનું નિર્માણ કરે છે, તે સમયે  
તેને ઔદારિક શરીરનો પણ સદ્ભાવ રહે છે, એવું સંભળવામાં આવ્યું છે  
છતા એક સમયમાં એક જ કાયયોગ કેવી રીતે સંભવી શકે છે ?

ઉત્તર—છવ છૂા ગુણસ્થાનવર્તી કોઈ મુનિ-વ્યાપારે આહારક શરીરનું  
નિર્માણ કરે છે, ત્યારે એ કે તેના ઔદારિક શરીરનું અસ્તિત્વ તો રહે જ છે  
પરન્તુ તે સમયે તેના ઔદારિક શરીરની પ્રવૃત્તિ અથ મર્ધ બાધ છે એ તે  
સમયે તેના આહારક શરીરની સાથે સાથે તેના ઔદારિક શરીરની પ્રવૃત્તિ  
પણ આજ રહેવી હોય, તો તેને મિથ્યયોગતાનો સદ્ભાવ હોવો જોઈએ. તે  
પ્રકારની મિથ્યયોગતા તો કેવલી સમુદ્ઘાતના બીજા, છૂા અને સાતમાં સમ

ययोगप्रतिपादनमसंगतं स्यात्, अत एकदा एक एव काययोगः प्रतिपत्तव्यः । एवमेव यदा चक्रवर्त्यादि वैक्रियशरीरं विक्रोति, तदाऽप्यौदारिकशरीरं निर्व्यापारमेव तिष्ठति । यदि औदारिकशरीरमपि यदा सव्यापारं भवेत्तदा उभयोरपि व्यापारवत्त्वात् केवलिसमुद्घातवद् मिश्रयोगता स्यात्, अत एकदा एक एव काययोगो भवतीति मन्तव्यम् । अथ चेत् काययोगोऽपि औदारिकतया वैक्रियतया च क्रमेण व्यापारयुक्तो भवति, व्यापारस्य च शीघ्रवृत्तितया मनोयोगवत्तस्य योगपद्यभ्रान्तिर्भवति, तदाऽप्येकत्वमव्याहृतमेवेति नास्ति कश्चिद् दोषः ।

समयों में औदारिक मिश्रता होती है, इस तरह से आहारक प्रयोक्ता ही को उपलब्ध नहीं हो सकेगा तब सात प्रकार के काययोग का प्रतिपादन असंगत पड़ जावेगा इसलिये यही मानना चाहिये कि एक समय में एक जीव को एक ही काययोग होता है इसी तरह से सब चक्रवर्ती आदि वैक्रियशरीर की विकुर्वणा करते हैं उस समय भी औदारिक शरीर अपने व्यापार से रहित ही होता है यदि उस समय औदारिक शरीर भी अपने व्यापार करनेवाला माना जावेगा तो ऐसी हालत में दोनों ही काययोग अपना २ व्यापार करने वाले एक समय में हो जावेंगे तो केवली समुद्घात की तरह वहाँ मिश्रयोगता आ जावेगी इसलिये यही मानना चाहिये कि एक काल में एक जीव में एक ही काययोग होता है यदि इस पर यों कहा जावे कि काययोग भी औदारिकरूप से और वैक्रियरूप से यद्यपि क्रम २ से ही अपने २ व्यापार से युक्त होता है परन्तु फिर भी उनके व्यापार में आशु ( शीघ्र ) वृत्तिता होने के

थोभा न सलवी शके छे आ रीते आहारक शरीरनु निर्माण करनार एवमा ने औदारिक मिश्रता न संभवती नथी, तो सात प्रकारना काययोग तो केवी रीते सलवी न शके ? तेथी अे वात मानवी न पडशे के अेक समये अेक एवमां अेक न काययोगनो सहलाव डोळ शके छे. अेन प्रमाणे न्यारे अेकवर्ती आदि वैक्रिय शरीरनी विकुर्वणा करे छे, त्यारे पणु औदारिक शरीरना व्यापार ( प्रवृत्ति ) नो अलाव न रडे छे. ने ते समये औदारिक शरीरने पणु पोताना व्यापारथी युक्त मानवामां आवे, तो नन्ने काययोग अेक न समये पोतपोताना व्यापारथी युक्त अनी नशे, अेवी परिस्थितिमां तो त्यां केवली समुद्घातना नेवी मिश्रयोगता आवी नशे. ते कारणे अेवुं न मानवुं पडशे के अेक ढाणे अेक एवमां अेक न काययोगनो सहलाव रडे छे. ने अर्ही अेवी दलील करवाभा आवे के नन्ने काययोग-औदारिकरूपे अने वैक्रिय रूपे लडे वाराकरती पोतपोताना व्यापारथी युक्त रडेता डोळ, परन्तु तेभना

इत्थं च काययोगस्यैकत्वे सिद्धे सति मनोयोगनाग्योगयोरैकत्वं बोध्यम् । तथाहि—भौदारिकादिकाययोगाद्भवानां मनोद्रव्यनाग्ययोगां साविन्याद् यो जीष न्यापारो भवति स एव मनोयोगो नाग्योगश्च भवति । मनोयोगो नाग्योगश्च एकका ययोगपूर्वक एव । अतश्चापि—मनोयोग नाग्योगयोरैकत्वं सिध्यति ॥ सू०४३ ॥

सम्प्रति कायव्यायामस्यैव भेदानामेकत्वमाह—

मूलम्—एगो उट्टाण कम्मवलवीरियपुरिसकारपरक्कमे देवा

कारण एक जीषको एक काल में एक ही काययोग होता है ऐसी भ्रान्ति होती है, जो इन कथन में भी हमारा ही पक्ष सिद्ध होता है क्यों कि एक कालमें एक जीष को एक ही काययोग होता है यह हमारा पक्ष है और इस तुन्हारे कथन से भी इसी पक्ष की पुष्टि हो जाती है इस प्रकार से एक काल में एक जीष में एक ही काययोग होने की सिद्धि हो जाने पर मनोयोग और नाग्योग में भी एकत्व जानना चाहिये भौदारिक आदि काययोगसे आह्वन मनोद्रव्यवर्गणा और नाग्यव्यवर्गणा ओंकी महापतासे जो जीषका न्यापार होता है वही मनोयोग और नाग्योग कहा गया है, मनोयोग और नाग्योग एक काययोगपूर्वक ही होता है । इसलिये भी मनोयोग और नाग्योगमें भी एकता सिद्ध होती है ॥सू०४३॥

कायव्यायाम के ही भेदों में एकत्व का कथन

‘एगो उट्टाणकम्मवलवीरियपुरिसकारपरक्कमे देवासुरमणुयाण

આપારમા શિષ્યવૃત્તિતા હોવાને કારણે એક જીવ દ્વારા એક કાળે એક જ કાયયોગ થાય છે એવો જ્ઞાન પેદા થાય છે તે આ કથન દ્વારા તે આમારી વાતને જ સમથત મળે છે કારણ કે જમી પણુ એમ જ કહીએ છીએ કે એક કાળે એક જીવ દ્વારા એક જ કાયયોગ થાય છે, અને તમારી વાત દ્વારા પણ આમારી ઉપયુક્ત માન્યતાને જ પુષ્ટિ મળે છે આ રીતે એક કાળે એક જીવમાં એક જ કાયયોગને સદ્ભાવ હોવાની વાત સિદ્ધ થવાથી મનેશિય અને વચનયોગમા પણ એકત્વ સિદ્ધ થાય છે ભૌદારિક આદિ કાયયોગથી આદત (હુટયથેલ) મનોદ્રવ્ય વત્તણા અને વાગ્યવ્ય વત્તણાઓની સદ્.વતાથી જીવની જે પ્રવૃત્તિ (ન્યાપાર) થાય છે તેને જ મનેશિય અને નાગ્યોગ કહેવામાં આવેલ છે મનેશિય અને વાગ્યોગ એક કાયયોગ પૂર્વક જ થાય છે તેથી પણ મનેશિય અને કાયયોગમા એકતા સિદ્ધ થાય છે ॥સૂ०૪૩ ॥

કાય વ્યાયમના જ ભેદોમાં એકત્વનું કથન—

एगो उट्टाण कम्मवलवीरियपुरिसकारपरक्कमे देवासुरमणुयाणं सति

सुरमणुयाणं तंसि तंसि समयांसि ॥ सू० ४४ ॥

छाया—एकम् उत्थानकर्मवलवीर्यपुरुषकारपराक्रमं देवासुरमनुजानां तस्मिन् तस्मिन् समये ॥ सू० ४४ ॥

टीका—‘ एगे उट्टाण ’ इत्यादि—

देवासुरमनुजानां तस्मिन् तस्मिन् समये उत्थानकर्मवलवीर्यपुरुषकारपराक्रमम् -तत्र उत्थानम्=उर्ध्वोभवनरूपा चेष्टा कर्म=क्रिया-गमनादिरूपम्, बलम्-शारीरिकशक्तिः, वीर्यम्=आत्मनः शक्तिः, पुरुषकारः=पुरुषत्वाभिमानः, पराक्रमः=उत्साहः, एपां समाहारद्वन्द्वः, उत्थानादिकं प्रत्येकम् एकम्=एकत्रसंख्याविशिष्टम् । उत्थानादयश्च वीर्यान्तरायक्षयोपशमसमुत्पन्ना जीवपरिणामविशेषाः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमवैचित्र्यात् उत्थानादिकमेकैकं यद्यपि जघन्यादि भेदैरने ऋविधम्,

तंसि तंसि समयांसि ॥ ४४ ॥

मूलार्थ—देव, असुर, मनुष्य इनके उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम उस उस समय में एक होता है ॥ ४४ ॥

टीकार्थ—उर्ध्वो भवनरूप चेष्टा का नाम अर्थात् उठने का नाम उत्थान है गमनादिरूप क्रिया का नाम कर्म है शारीरिक शक्ति का नाम बल है आत्मा की शक्ति का नाम वीर्य है पुरुषत्वाभिमान-पुरुषार्थ-का नाम पुरुस्कार है उत्साह का नाम पराक्रम है इनमें से प्रत्येक देव, असुर और मनुष्यों को उस २ काल में एक ही होता है ये उत्थान आदिक वीर्यान्तरायकर्म के क्षय और क्षयोपशमसे उत्पन्न होते हैं, अतः ये जीव के ही परिणाम विशेषरूप माने गये हैं। यद्यपि ये उत्थानादिक प्रत्येक, वीर्यान्तराय के क्षय और क्षयोपशम की विचित्रता को लेकर

तंसि समयांसि ॥ ४४ ॥

सूत्रार्थ—देव, असुर अने मनुष्योना उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार अने पराक्रम ते ते समये अेक डोय छे

टीकार्थ—उत्थान अेटवे उठनुं ते अथवा उर्ध्वो-भवनरूप चेष्टा. अेटवे के उठवानी क्रियाने उत्थान कडे छे. गमनादिरूप क्रियाने कर्म कडे छे. शारीरिक शक्तिने बल कडे छे. आत्मिक शक्तिने वीर्य कडे छे पुरुषत्वाभिमान पुरुषार्थनु नाम पुरुस्कार छे, अने उत्साहनुं नाम पराक्रम छे ते उत्थान आदि छ क्रियाओमाथी अेक न समये देव, असुर अने मनुष्योमां अेक न क्रियानो सङ्ग्राव डोय छे वीर्यान्तराय कर्मना क्षय अने क्षयोपशमथी ते उत्थान आदिनी उत्पत्ति थाय छे, तेथी तेमने अुवना न परिष्ठाभ विशेषरूप मानवामां आब्यां छे. जे के वीर्यान्तरायना क्षय अने क्षयोपशमनी विचित्रताने दीधे

तथापि एक जीवस्य एकदा एकविधैव क्षयक्षयोपशममात्रा भवति, अतस्त्वज्जन्यो  
अधन्याधन्यतमविशिष्ट उत्थानादि रेक एव भवति, कारणमात्राधीनत्वात् कार्य  
मात्राया इति ॥ सू० ४४ ॥

अभ्युत्थानादिभिश्च ज्ञानादिर्मोक्षमार्गो सम्पद्यते, अतो ज्ञानादिकं निरूपयति-

मूलम्-एगे नाणे एगे दसणे एगे चरित्ते ॥ सू० ४५ ॥

छाया—एक ज्ञानम् एक दर्शनम् एकं चारिषम् ॥ सू० ४५ ॥

टीका—'एगे नाणे' इत्यादि—

ज्ञानम्-ज्ञानन्ते परिच्छिद्यन्ते यथावस्थितपदार्था अनेनति ज्ञानम्-ज्ञानावरण-  
दर्शनावरणयोः क्षयः क्षयोपशमो वा, ज्ञाति र्वा ज्ञानम्-ज्ञानावरणदर्शनावरणक्षय

जघन्यादि के मेव से अनेक प्रकार के होते हैं फिर भी एक जीव के एक  
काल में एक प्रकार के ही क्षय क्षयोपशम की मात्रा होने से तज्जन्य  
जघन्य उत्थान आदि में से कोई एक जघन्यादि उत्थान आदि ही होता  
है क्यों कि कार्यमात्र कारणमात्राका आधीन होता है ॥ सू० ४४ ॥

अभ्युत्थान आदि द्वारा ज्ञानादिरूप मोक्षमार्ग प्राप्त होता है इसलिये  
अथ सूत्रकार ज्ञानादिक का निरूपण करते हैं—

'एगे नाणे एगे दसणे एगे चरित्ते' ॥४५॥

मूलार्थ—ज्ञान एक है दर्शन एक है चारित्र्य एक है ।

टीकार्थ—पदार्थ यथा व्यवस्थितरूप से जिसके द्वारा जाने जाते हैं  
उसका नाम ज्ञान है अथवा-ज्ञानावरण और दर्शनावरण का क्षय और  
क्षयोपशम ज्ञान है अथवा ज्ञाति-जानने रूप क्रिया का नाम ज्ञान है

ते उत्थान आदि प्रत्येक क्षययोग्या अथवा जघन्य आदिना सेवथी अनेक प्रकार पडे  
छे, छत्ता पद्य जेक एवमां जेक क्षणे जेक प्रकारना ए क्षय व्यववा क्षयोपश  
मनी मात्रा डोवाथी तेना द्वारा जनित अथवा उत्थान आदिभिर्माथी डोथ जेक  
अथवा उत्थानादि ए सवथी शके छे कारण के अथमात्रा ( कार्यनी मात्रा )  
कारणमात्राने आधीन डोव छे ॥ ४४ ॥

अभ्युत्थान आदि द्वारा ज्ञानादिरूप मोक्षमार्गनी प्राप्ति थाय छे, तेथी  
हवे सूत्रकार ज्ञानादिकुं निरूपयु करे छे—

“एगे नाणे एगे दसणे एगे चरित्ते” ॥ ४५ ॥

सूत्रार्थ—ज्ञान जेक छे, दर्शन जेक छे अने चारित्र्य जेक छे

टीकार्थ—पदार्थना यथार्थ रूपने तेना द्वारा बज्जी शक्य छे, ते ज्ञान छे

अथवा-ज्ञानावरण अने दर्शनावरणने क्षय अने क्षयोपशम ए ज्ञानरूप छे

ક્ષયોપશમાવિર્ભૂતં સ્વપરસ્વરૂપપરિચ્છેદરૂપમ્ । इदं सामान्यविशेषात्मके वस्तुनि विशेषांशग्रहणपटु सामान्यांशग्राहकं च ज्ञानपञ्चकाज्ञानत्रयदर्शनचतुष्टयरूपम् । तद् ज्ञानम्-एकम्=एकत्वसंख्याविशिष्टम् । इदं चानेकविधमपि ज्ञानसामान्यमाश्रित्य एकम् । यद्वा-एकसमये एक एव उपयोगो भवतीति उपयोगापेक्षया एकत्वम् । अयं भावः-लब्धिवशादेकस्मिन् समये बहूनां ज्ञानाविशेषाणां यद्यपि संभवोऽस्ति, तथाऽप्युपयोगत एकमेव ज्ञानं भवति, जीवानामेकोपयोगित्वादिति ।

અથવા જ્ઞાનાવરણ દર્શનાવરણ કે ક્ષય ઓર ક્ષયોપશમ સે અન્યત્ર હુઆ જો સ્વપર કે સ્વરૂપકા પરિચ્છેદ હૈ (નિર્ણય) વહ જ્ઞાન હૈ યહ જ્ઞાન સામાન્ય વિશેષાત્મક વસ્તુ મેં વિશેષાંશ ઓર સામાન્યાંશ કા ગ્રાહક હોતા હૈ મતિશ્રુત આદિ પાંચ જ્ઞાન સ્વરૂપ હોતા હૈ મત્યજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન ઓર વિભંગજ્ઞાન રૂપ ત્રીન અજ્ઞાન સ્વરૂપ હોતા હૈ ચક્ષુર્દર્શન આદિ રૂપ ચાર દર્શન રૂપ હોતા હૈ એસા મી યહ જ્ઞાન એક-એકત્વ સંખ્યાવિશિષ્ટ હોતા હૈ ઇસ પ્રકાર કે કથન કા કારણ જ્ઞાન સામાન્ય હૈ અર્થાત્ પૂર્વોક્તરૂપ સે યદ્યપિ જ્ઞાન અનેક પ્રકાર કા હોતા હૈ પરન્તુ ફિર મી વહ જ્ઞાન સામાન્ય કી અપેક્ષા સે એક હૈ અથવા જીવ કો એક સમય મેં એક હી ઉપયોગ હોતા હૈ ઇસ અપેક્ષા જ્ઞાન મેં એકતા હૈ મતલબ કહને કા યહ હૈ યદ્યપિ લબ્ધિ કે વશ સે એક સમય મેં એક જીવ મેં અનેક જ્ઞાન હો સકતે હૈ ફિર મી ઉપયોગ કી અપેક્ષાસે એક જીવ મેં એક હી જ્ઞાન હોતા હૈ, ક્યોં કિ જીવ એક સમય મેં એક હી ઉપયોગ વાલા હોતા હૈ ।

અથવા-“ જ્ઞાતિ ” બાણુવારૂપ ક્રિયાને જ્ઞાન કહે છે અથવા-જ્ઞાનાવરણ અને દર્શનાવરણના ક્ષય અને ક્ષયોપશમ વિના બીજી રીતે થયેલ બે સ્વ અને પરના સ્વરૂપનો પરિચ્છેદ ( જ્ઞાન ) છે, તેને જ્ઞાન કહે છે. તે જ્ઞાન સામાન્ય વિશેષાત્મક વસ્તુમાં વિશેષાંશ અને સામાન્યાંશનું ગ્રાહક હોય છે મતિજ્ઞાન, શ્રુતજ્ઞાન આદિ પાંચ જ્ઞાનસ્વરૂપ હોય છે, અને મત્યજ્ઞાન ( મતિ-અજ્ઞાન ) શ્રુતજ્ઞાન અને વિભંગજ્ઞાન, એ ત્રણ અજ્ઞાનસ્વરૂપ હોય છે ચક્ષુર્દર્શન આદિ રૂપ ચાર દર્શનરૂપ હોય છે એવું તે જ્ઞાન પણ એકત્વ સંખ્યાવિશિષ્ટ છે. જો કે પૂર્વોક્ત રૂપે જ્ઞાન અનેક પ્રકારનું હોય છે, પણ તે જ્ઞાનને અહીં જ્ઞાનસામાન્યની અપેક્ષાએ એક કહ્યું છે અથવા જીવમાં એક સમયે એક જ ઉપયોગનો સદ્ભાવ હોય છે, તે દષ્ટિએ વિચારતા જ્ઞાનમાં એકતા દેખાય છે. કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે લબ્ધિના પ્રભાવથી જો કે એક જીવમાં એક સમયે અનેક જ્ઞાનનો સદ્ભાવ હોઈ શકે છે, છતાં પણ ઉપયોગની અપેક્ષાએ તો એક જીવમાં એક સમયે એક જ જ્ઞાન હોય છે, કારણ કે જીવ એક સમયે એક જ ઉપયોગવાળો હોય છે.



નનુ વર્ષનમપિ યદ્ જ્ઞાનપદેન વ્પવદિશ્યતે, તદયુક્તમ્, તયોર્વિપયમદાત્, ઉક્ત ચ—“ જ સામભગ્ગણ દ્સળમેય વિસેસિયં નાણં ॥ ”

છાયા—યત્સામાન્યપ્રદણં વર્દાનમતદ્ વિશેષિત જ્ઞાનમ્ ” ઇતિ ।

અત્રોક્તયત્—સામાન્યપ્રાહ્વાદ અવગ્રહેહારૂપં વજ્ઞાનમ્, તથા-વિશેષપ્રાહ્વાદ ત્વાદવાયપારણે જ્ઞાનમ્, ઇતિ વર્ષન ચ યદ્યપિ પૃથગ્વિપયમ્, તથાપિ-પ્રાગમે જ્ઞાનશબ્દેન જ્ઞાનવર્દાનોમયમપિ ગૃહીતમ્ । ઉક્ત ચ—

આમિનિશોહિયનાપે અદ્વાવીસ હ્વતિ પયલીઓ ” ।

છાયા—આમિનિશોધિકજ્ઞાનેષ્ટાવિવ્રતિ મ્ભવન્તિ મહુતય-” ઇતિ ।

ટાકા—આપને યદ્વા જો જ્ઞાનપદ્ સે વર્દાન કો ખી ગ્રહણ કર લિયા હૈ વહ ઠીક નહીં હૈ ક્યોં કિ હન દોનોં કા વિપય મિલ ૨ હૈ અતઃ હનમેં મેદ હૈ ।

ઉક્ત ચ—“ જ સામભગ્ગણં દ્સળમેય વિસેસિયં નાણં ”

સામાન્ય કો ગ્રહણ કરનેવાલા વજ્ઞાન હોતા હૈ ઓર વિશેષ કો ગ્રહણ કરને ઘાલા જ્ઞાન હોતા હૈ

૩૦—સામાન્ય પ્રાહ્વાક હોને સે અવગ્રહ એવ હ્વારૂપ વર્દાન હોતા હૈ તથા-વિશેષ પ્રાહ્વાક હોને સે અવાય ઓર ખારણારૂપ જ્ઞાન હોતા હૈ હસ તરહસે યદ્યપિ જ્ઞાન ઓર વર્દાન પૃથક્ પૃથક્ વિપયયાલે હોતે હૈં કિર ખી આગમમેં જ્ઞાન શબ્દસે જ્ઞાન ઓર વર્દાન હન દોનોંકા ખી ગ્રહણ કુખા હૈ ।

શ.કા—આપે અર્ધી જે જ્ઞાનપદ વાશ દેશનને પણ બ્રહ્મ ક્યું છે તે ચોક્ક લાગતું નથી, કારણ કે તે બન્નેના વિષય મિત્ર મિત્ર છે, તે કારણે તે બન્નેમાં ભેદ રહેલો છે કહું પણ છે કે-“ જ સામાભગ્ગણં દ્સળમેય વિસે સિયં નાણં ” “ સામાન્યને બ્રહ્મ કરનાર દર્શન છે બને વિશેષને બ્રહ્મ કરનાર જ્ઞાન છે ’

ઉત્તર—સામાન્યને બ્રહ્મ કરનાર હોવાથી વ્યવહાર બને ઇંદ્રારૂપ દર્શન હોય છે તથા વિશેષને બ્રહ્મ કરનાર હોવાથી અવાય અને ધારણારૂપ જ્ઞાન હોય છે આ રીતે જ્ઞાન અને દર્શન બુદ્ધા બુદ્ધા વિવચનાયા હોવા છતાં પણ તે બન્નેને આત્મમય જ્ઞાનરૂપે જ ગણવામાં આવે છે આ રીતે ‘ જ્ઞાન ’ પદ વાશ જ્ઞાન અને દર્શનને બ્રહ્મ કરવામાં આવે છે

કહું પણ છે કે— આમિનિશોહિયજ્ઞાને અદ્વાવીસ હ્વતિ પયલીઓ” આ ગાથાવાશ “ આમિનિશોધિક જ્ઞાન ” પદથી જ્ઞાન અને દર્શન, બે બન્નેને બ્રહ્મ કરવામાં

अत्र—आभिनिगोधिकज्ञानशब्देन ज्ञानं दर्शनं च गृहीतम् । अत एवास्य अष्टाविंशतिर्भेदा भवन्तीति बोध्यम् । तस्मात् ज्ञानसामान्याद् दर्शनमपि ज्ञानपद-  
व्यपदेश्यं भवति ।

ननु अत्र सूत्रे ' एगे दंसणे ' इत्यनेन दर्शनं पृथगेवोक्तम्, कथं पुनर्ज्ञान-  
शब्देन दर्शनमपि व्यपदिश्यते ? इति चेत्, अत्रोच्यते तत्र हि दर्शनं श्रद्धानं विव-  
क्षितम् । यतो ज्ञानादित्रयस्य सम्यग्भावविशिष्टस्यैव मोक्षमार्गत्यमुक्तं, नतु ज्ञान-

उक्तं च—“ आभिनिगोहियनाणे अट्टावीसं हवंति पयडीओ ”

इस गाथामें आभिनिगोधिक ज्ञान शब्दसे ज्ञान और दर्शन ये दोनों  
ही गृहीत हुए हैं, तभी जाकर २८ भेद हुए यहां समझाये गये हैं । इसलिये  
ज्ञान सामान्यसे दर्शन भी ज्ञानपद व्यपदेश्य हुआ है ऐसा जानना चाहिये।

शंका—इस सूत्र में “ एगे दंसणे ” इस पदसे दर्शन जब अलग ही  
कहा गया है तो फिर आप ऐसा कैसे कहते हैं कि ज्ञान शब्दद्वारा दर्शन  
भी कह दिया जाता है अर्थात् ज्ञानपदका वाच्य दर्शन भी हो जाता है ?

उ०—सूत्र में “ दर्शन ” शब्द से श्रद्धान विवक्षित हुआ है क्यों  
कि सम्यग् भाव से विशिष्ट ही ज्ञानादित्रय में मोक्षमार्ग कहा गया है  
ज्ञानदर्शन चारित्र्य मात्रा में मोक्षमार्गता नहीं कही गई है अतः मोक्ष  
के मार्गभूत ऐसे सम्यग्भाव विशिष्ट ज्ञानादित्रय में दर्शन शब्द श्रद्धान  
रूप अर्थ का ही वाचक है इसलिये कोई दोष नहीं है तात्पर्य कहने का  
यह है कि सूत्र में दर्शनपद श्रद्धान रूप दर्शन का वाचक है सामान्य

करवामां आवेल छे त्पारे ज आभिनिगोधिक ज्ञानना २८ लेद थयेला जतावी  
शकाया छे. आ रीते ' ज्ञान सामान्य ' पदना प्रयोग द्वारा दर्शन पदना पणु  
तेमां समावेश थया छे, जेम समजबु

प्रश्न—आ सूत्रमा “ एगे दंसणे ” आ पदना प्रयोगद्वारा दर्शनतु अलग  
इपे प्रतिपादन करवामां आव्यु छे, तो आप शा कारणे जेवुं कडा छे के  
ज्ञान शब्दना प्रयोगद्वारा दर्शनने पणु अडणु करवामां आवेल छे ? अथवा  
ज्ञान पदतु वाचक दर्शन पणु छे ?

उत्तर—सूत्रमां ' दर्शन ' पद श्रद्धाना अर्थमा वपरायु छे कारणे के  
सम्यग्भावथी युक्त ज्ञानादित्रयमां ( ज्ञान, दर्शन अने चारित्र्यमा ) मोक्षमार्गता  
कडी छे—ज्ञान, दर्शनचारित्र्यमा ज मोक्षमार्गता कडी नथी तेथी मोक्षना  
मार्गइप सम्यग्भावयुक्त ज्ञानादित्रयमां दर्शन शब्द श्रद्दाइप अर्थतुं ज  
वाचक छे. तेथी तेतु अलगइपे प्रतिपादन करवामां कौठि दोष जणुतो नथी  
सूत्रमा तो दर्शनपद श्रद्दावाचक छे—सामान्यने अडणु करनार दर्शनतु

दर्शनचारित्रमात्रस्य । मोक्षमार्गभूते सम्यग्भावविक्षिप्ते ज्ञानादित्रये दर्शन भद्रान रूपमत्र विशसितम्, अत्रो नास्ति कश्चिद् दोष इति ।

अयं भद्रानरूपं दर्शनं निरूपयति—' एगे दंसणे ' इति । दर्शनम्—इदमन्ते= धर्मीयन्ते पदार्थां अनेन अस्मात् अस्मि वेति दर्शनम्—दर्शनमोहनीयस्य तस्यः क्षयोपशमो वा । यद्वा—दृष्टिदर्शनम्—दर्शनमोहनीयस्यस्योपशमजन्यस्त्वय्यद्भान रूप आत्मपरिणामः । तत् एकम्=एकत्वसंख्याविक्षिष्टम् । यद्यपीदमुपाधिमेदात्

को ग्रहण करनेवाले दर्शन का नहीं इसीलिये सूत्र में उसका पाठ अलग से किया गया है परन्तु जहाँ ज्ञान दर्शन का ग्रहण होता है वहाँ वह दर्शन पद अद्भानरूप अर्थ के वाचक दर्शन का बोधक नहीं होता है किन्तु सामान्य रूप अर्थ को ग्रहण करने वाले दर्शन का ही बोधक होता है सामान्य ज्ञान की दो धाराएँ बहती हैं एक धारा विशेष ग्राहक रूप होती है और दूसरी धारा सामान्यग्राहक रूप होती है विशेष ग्राहक रूप धारा का नाम ज्ञान है और सामान्य ग्राहक रूप धारा का नाम दर्शन है इसीलिये सामान्य ज्ञान पद से ज्ञान और दर्शन इन दोनों का ग्रहण हुआ चललाया गया है ।

अद्भानरूप दर्शन का निरूपण—“ एगे दंसणे ” जिसके द्वारा अपघा जिमसे अघघा जिसके होने पर पदार्थ अद्वा के विपयभूत किये जाते हैं उसका नाम दर्शन है यह दर्शन दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय से और क्षयोपशम से जन्य होता है और तर्कों का अद्भान करने रूप आत्मा

वाचक नहीं तेषी सूत्रमा तेनु अद्यगृहे प्रतिपादन करानुं उ परन्तु न्यां ज्ञानपद द्वारा दर्शनने अद्य करवाभां आनुं होय उ त्वां दर्शन पद अद्वाइय अर्थानुं बोधक यतुं नहीं; पञ्च सामा गृह्य अर्थाने अद्य करनार इयननुं न बोधक याय उ सामान्य ज्ञाननी के धाराओ बडे उ—अेध धारा विशेष आद्यकइय होय उ अने वील धारा सामान्य आद्यकइय होय उ तेभांही विशेषआद्यकइय धारातुं नाम ज्ञान उ अने सामान्य आद्यकइय धारातुं नाम दर्शन उ सामान्य ज्ञानपदना प्रथेयद्वारा ज्ञान अने दर्शन, अे अनेने अद्य करवाभां आवे उ

अद्वाइय इयननुं निरूपण— एगे दंसणे जेना द्वारा अघघा जेना सुदभावने वीधे पद्यधीने अद्भाना विपयभूत करव उ पद्यधीपर अद्वा भूधन उ—तेनुं नाम दर्शन उ ते इयनमोहनीय कर्मना क्षयधी क्षयोपशमयी लम्ब होय उ अने तत्वे प्रत्ये अद्वा शक्याइय आत्मना अेध परिव्याम विशेषइय

नेकविधं तथापि श्रद्धानसाम्यादेकमेव । अथवा—जीवस्य एकस्मिन् समये एकमेव श्रद्धानं भवतीति हेतोरस्यैवेकत्वं त्रिवक्षितम् ।

ननु ज्ञाने दर्शने चावबोधसामान्यमस्ति, ततश्च तयोः को भेदः ? इति चेत्—अत्रोच्यते—तत्त्वश्रद्धानरूपं दर्शनमुच्यते, तत्कारणं तु ज्ञानम्, इत्येवानयोर्भेदः ।

अथ चारित्रं निरूपयति—‘ एगे चारित्ते ’ इत्यादि । चर्यते=मोक्षार्थिभिरासे-व्यते इति चारित्रम्, चर्यते—गम्यते वाऽनेन निवृत्ताविति चारित्रम्, यद्वा—अष्ट-विधकर्मणां चयस्य रिक्ताकरणात् निरुक्तविधिनाचरित्रं, तदेव चारित्रम्—चारित्रमो-

का एक परिणाम विशेष होता है यद्यपि यह श्रद्धानरूप परिणाम उपाधि के भेद से अनेक प्रकार का होता है फिर श्रद्धान के साम्य को लेकर यह एक ही होता है अथवा—जीव को एक समय में एक ही श्रद्धान होता है इस कारण भी इसमें एकता कही गई है ऐसा जानना चाहिये ।

शंका—ज्ञान और दर्शन में अवबोध सामान्य है—सामान्यबोध है इसलिये इनमें भेद क्यों कहा गया है ?

उ०—तत्त्व श्रद्धानरूप दर्शन होता है और इस दर्शन का कारण ज्ञान होता है इसलिये इन दोनों में कारण कार्य की अपेक्षा से भेद माना गया है ।

चारित्र का निरूपण—“ एगे चरित्ते ” मोक्षाभिलाषियों द्वारा जो सेवित किया जाता है उसका नाम चारित्र है अथवा मुक्ति में जिस के द्वारा जाया जाता है वह चारित्र है अथवा—आठ प्रकार से कर्मों का समूह जिसके द्वारा आत्मासे रिक्त किया जाता है उसका नाम चारित्र

होय छे. जे के श्रद्धा रूप परिष्ठाभना अनेक लेह कछां छे, छतां पणु श्रद्धाना साम्यनी अपेक्षाये तेमां अेकता गताववाभां आवी छे अथवा एवने अेक समयभां अेक न श्रद्धा थती होय छे, ते कारणे पणु तेमा अेकता प्रकट करवाभां आवी छे, अेम समजवुं.

शंका—ज्ञान अने दर्शनमा सामान्य बोधनी अपेक्षाये तो अेकता रहेली छे. छता ते अनेने अलग अलग शा भाटे गइया छे ?

उत्तर—दर्शन तत्त्वश्रद्धा रूप होय छे अने ते दर्शननु कारणे ज्ञान होय छे. तेथी कारणकार्यनी अपेक्षाये ते अनेमा लेह मानवाभां आवेल छे.

चारित्रनु निरूपण—“ एगे चरित्ते ” मोक्षाभिलाषी एवेा द्वारा जेनु सेवन करवाभा आवेल छे, तेनु नाम चारित्र छे. अथवा जेना द्वारा मुक्तिभां नवाय छे ते चारित्र छे. अथवा आठ प्रकारना कर्मोना समूहने जेना द्वारा आत्मापरथी हर करवाभा आवे छे, तेनु नाम चारित्र छे. चारित्रमोहनीयना

હનીયસ્ય ક્ષયેણ ક્ષયોપશ્ચમેન ચ જનિત આત્મનો વિરતિરૂપ પરિણામ इति । एवं एकम्—एकत्वसम्भवाविशिष्टम् । समेदानां सामायिकादीना विरतिसामान्येन ग्रहणाचारिप्रत्येकत्वम् । अथवा—एकस्मिन् समये एकमेव तद् भवतीति चारिप्रत्येकत्वमिति । ननु प्रथम ज्ञानं ततो दर्शनं तत्तत्चारिप्रमिति यः क्रमो त्रिधीयते, यत्र का युक्ति ? इति चेत्, उपपत्ते—यत् किमप्यहातं न भवतीयते, यत्र भद्रा नास्ति, नहि तदनुष्ठीयते । अत एव क्रमो निर्दिष्ट इति ॥ सू० ४५ ॥

ज्ञानादीनि इद्युत्पत्तिस्थितिविगतियुक्तानि भवन्ति, स्थितिषु समयादिरेवेति समयं प्ररूपयति—

मूलम्—एवो समये ॥ सू० ४६ ॥

छाया—एक समयः ॥ सू० ४६ ॥

हे यह चारित्र्य चारित्र्यमोहनीय के क्षय से और क्षयोपशम से उत्पन्न होता है इसलिये यह आत्मा का एक विरतिरूप परिणाम विशेष वंशपि इसके सामायिक चारित्र्य आदि अनेक मेव हैं फिर भी विरति सामान्यसे इन सब का इसी में ग्रहण हो जाता है, इसलिये यह एक है—एकत्व-संख्याविशिष्ट है अथवा—एक समयमें यह एक ही होता है—इसलिये भी उसमें एकता कही गई है ।

शंका—पहिछे ज्ञान होता है फिर दर्शन होता है बाद में चारित्र्य होता है सो इस प्रकार के क्रम में क्या युक्ति है ?

उ०—भजान कोई भी पदार्थ अज्ञान का विषय नहीं होता है और जिस पर अज्ञान नहीं होती है वह अनुष्ठानप्रिया का विषय नहीं होता है इसीलिये ऐसा क्रम रखा है यही इसमें युक्ति है ॥ सू० ४५ ॥

क्षયથી અને ક્ષયોપશમથી આ ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, તેથી તે આત્માનું એક વિરતિરૂપ પરિણામવિશેષ છે એ કે તેના સામાયિક આદિ અનેક ભેદ છે છતાં પણ વિરતિ સામાન્યની અપેક્ષાએ તેમાં એકત્વ પ્રકટ કરવામાં આનું છે અથવા—એક સમયમાં તે એક જ હોય છે તેથી પણ તેને એક કહ્યું છે પ્રશ્ન—પહેલાં જ્ઞાન થાય છે ત્યારબાદ ઇશન થાય છે અને ત્યારબાદ ચારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે તો આ ક્રમમાં શી યુક્તિ રહેલી છે ?

ઉત્તર—જ્ઞાન હોય એવા કોઈ પણ પદાર્થ પ્રત્યે અજ્ઞાન ઉત્પન્ન થતી નથી અને તેના ઉપર અજ્ઞાન ઉત્પન્ન ન થાય તે અનુજ્ઞાન (ક્રિયા) નો વિષય પણ બની શકતો નથી તેથી જ આ પ્રકારનો ક્રમ રાખવામાં આવ્યો છે, અને એજ તેમાં યુક્તિ રહેલી છે ॥સૂ०૪૫॥

टीका—' एगे ' इत्यादि—

समय—निर्विसागः सर्वसूक्ष्मकालांशः, स च शास्त्रप्रसिद्धात् जीर्ण पट्टशाटिकापाटनदृष्टान्तात् शतपत्रोत्पलवेधदृष्टान्ताद् वा बोध्यः । स समयः—एकः=एकत्वसंख्याविशिष्टः। एकत्व च अतीतानागतयोर्विनाशानुत्पन्नत्वेनासत्त्वाद् वर्तमानस्यैव एकस्य सत्त्वाद् बोध्यम्। अथवा—समयस्य निरंशत्वेनैकत्वादेकत्वं बोध्यमिति। सू० ४६।

ज्ञानादिक उत्पत्ति स्थिति और विगतियुक्त होते हैं इन में स्थिति जो है वह समयादिरूप ही होती है अतः सूत्रकार समय की प्ररूपणा करते हैं—' एगे समए ' इत्यादि ॥ ४६ ॥

मूलार्थ—समय एक है ॥ ४६ ॥

टीकार्थ—जिसका विभाग नहीं हो सकता है ऐसा जो सर्वसूक्ष्म कालांश है उसका नाम समय है यह शास्त्रप्रसिद्ध जीर्ण पट्टशाटिका के फाड़ने के उदाहरण से या शतपत्रोत्पल के वेधने के दृष्टान्त से बोध्य है यह समय एकत्व संख्याविशिष्ट है क्योंकि अतीत और अनागत समय विनष्ट एवं अनुत्पन्न होनेसे एकत्वके रूप में विवक्षित हो जाने के कारण है नहीं अतः एक वर्तमान ही वचता है और यह वर्तमान काल एक समय मात्र होता है इसलिये समय को एक कहा गया है अथवा समय निरंश होने से एक होता है इसलिये उसमें एकता कही गई है ॥ सू० ४६ ॥

ज्ञानादि उत्पत्ति, स्थिति अने विगतिरूप डोय छे. तेमां जे स्थिति डोय छे. ते समयदि रूप डोय छे तेथी सूत्रकार डवे समयनी प्ररूपणा करे छे—“ एगे समए ” इत्यादि ॥ ४६ ॥

सूत्रार्थ—समय एक छे. ॥ ४६ ॥

टीकार्थ—जेना विभाग थछ शकता नथी जेवां काणना सौथी सूक्ष्म अंशने समय कडे छे ते शास्त्रप्रसिद्ध लुण्ण पट्टशाटिका ( वस्त्र ) ने काडवाना उदाहरण द्वारा तथा शतपत्रोत्पल ( सो पांशडीवाणुं पुष्प विशेष ) ना दृष्टान्त द्वारा बोध्य छे. जेटवे के ते जे दृष्टान्तो द्वारा तेना अर्थ समलववामां आण्यो छे. ते समयमां अर्धी एकत्व प्रकट करवामां आण्यु छे, कारण के अतीत अने अनागत ( लुण्णिकाण ) काणरूप समय विनष्ट अने अनुत्पन्न होवाथी असत्त्वना रूपे ( अस्तित्वहीन ) जनी जतो होवाथी तेनु अस्तित्व रडेतुं नथी तेथी एक वर्तमानकाणतुं ज अस्तित्व रडे छे ते वर्तमानकाणतुं अस्तित्व पणु एक समयतुं डोय छे ते कारणेन समयने एक कह्यो छे अथवा समय निरंश होवाथी एक डोय छे, तेथी तेमां एकता कही छे. ॥ सू० ४६ ॥

નિરક્ષ સમય નિરૂપ્ય પ્રાપ્તાસરો નિરંશં વસ્ત્રપિ નિરૂપયતિ—

મૂલમ્-પગે પપ્સે પગે પરમાણુ ॥ સૂ૦ ૪૭ ॥

છાયા—એક પ્રદેશ, એક પરમાણુ ॥ મૂ૦ ૪૭ ॥

ટીકા—‘પગે’ ઇત્યાદિ—

પ્રદેશ—પ્રકૃષ્ટો દેશઃ પ્રદેશઃ—ધર્માધર્માકાશ્ચમીવાનાં નિરંશોડવયવવિશેષઃ,  
સ ચ એકઃ—એકત્વસંખ્યાવાન્ । એકત્વ ચાસ્ય સ્વરૂપતો બોધ્યમ્ ।

અથ પરમાણુ નિરૂપયતિ—‘પગે પરમાણુ’ ઇતિ । પરમાણુઃ—પરમમાણી  
અણુમેતિ—દ્રવ્યણુકાદિસ્ક ચકારણમૂતોડપિ ઘ્નસોડણુ, ઉક્ત ચ—

“કારણમેવ તદન્ત્યં સૂક્ષ્મો નિત્યમ્ મયતિ પરમાણુઃ ।

એકરસવર્ણગન્ધો દ્વિસ્પર્શઃ કાર્યલિજ્ઞમ્” ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

નિરક્ષ સમય ક્ષી પ્રસ્પૃણા કરકે અય સૂત્રકાર નિરક્ષ વસ્તુ ક્ષી  
પ્રસ્પૃણા કરતે હૈ—

‘પગે પપ્સે પગે પરમાણુ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—પ્રદેશ એક હૈ પરમાણુ એક હૈ ॥ ૪૭ ॥

ટીકાર્થ—પ્રકૃષ્ટ વેશ કા નામ પ્રદેશ હૈ યહ પ્રદેશ ધર્મ, અધર્મ  
આકાશ ઓર જીવદ્રવ્યકા નિરક્ષ અવયવવિશેષરૂપ હોતા હૈ યહ એકત્વ  
સંખ્યાવિશિષ્ટ હૈ એકત્ય ઇસમેં સ્વરૂપ સે કહા ગયા હૈ ।

પરમાણુ કા નિરૂપણ—પરમ જો અણુ હૈ અસકા મામ પરમાણુ હૈ  
યહ પરમાણુ દ્રવ્યણુકાદિ સ્કન્ધ ક્ષ કારણમૂત હોતા હૈ ઓર અતિ  
સૂક્ષ્મ હોતા હૈ । કહા ધી હૈ—‘કારણમેવ તદન્ત્યં’ ઇત્યાદિ

યહ પરમાણુ કારણરૂપ હી હોતા હૈ કાર્યરૂપ નહીં હોતા હૈ ક્યોં કિ  
યહ નિત્ય માના ગયા હૈ ઇસમેં એકરસ, એકવર્ણ, એકગંધ ઓર અબિ

“પગ પપ્સે પગે પરમાણુ” ઇત્યાદિ ॥ ૪૭ ॥

મૂલાર્થ—પ્રદેશ એક છે, પરમાણુ એક છે ॥ ૪૭ ॥

ટીકાર્થ—પ્રકૃષ્ટ વેશનું નામ પ્રદેશ છે તે પ્રદેશ ધર્મ, અધર્મ, આકાશ  
અને જીવદ્રવ્યના નિરક્ષ અવયવ વિશેષરૂપ છે તે એક છે તેમાં સ્વરૂપની  
અવેક્ષાએ એકત્વ સમજવાતું છે

પરમાણુનું નિરૂપણ—પરમ જે અણુ છે તેને પરમાણુ કહે છે એ, ત્રણ  
આદિ અણુવાળા રહ ધની ઉત્પત્તિમાં આ અણુ કારણમૂત હોય છે તે અતિ  
શય સૂક્ષ્મ હોય છે કહીં પણ છે—‘કારણમેવ ઇત્યાદિ

આ પરમાણુ કારણરૂપ જ હોય છે, કાર્યરૂપ હોતું નથી, કારણ કે તેને  
નિત્ય માનવામાં આવેલ છે તેમાં એક રસ, એક વર્ણ, એક ગંધ અને કોઈ

स चायं परमाणुः, एक=एकत्वसंख्यावान् । एकत्वं चास्य स्वरूपत एव बोध्यम् । अथवा-समयप्रदेशपरमाणवो यद्यप्यनन्ताः, तथापि तेषु अनन्तभेदात्मकस्य एकैकस्य तुल्यरूपत्वमपेक्ष्यैकत्वमिति ॥ सू० ४७ ॥

यथा परमाणोस्तथाविधैकत्वपरिणामविशेषादेकत्वं भवति, तथैव तथाविधैकपरिणामविशेषादेव अनन्ताणुमयस्कन्धस्यापि एकत्वं स्यादिति दर्शयन् समस्तवाद-स्कन्धशीर्षस्थानीयमीषत्प्राग्भारनामकं पृथिवीस्कन्धं प्ररूपयति—

मूलम्—एगा सिद्धी, एगे सिद्धे, एगे परिनिव्वाणे, एगे परिनिव्वुए ॥४८॥

रोधी कोई से दो स्पर्श रहते हैं तथा इस की सिद्धि इसके कार्यभूत घटादिकों से होती है ऐसा यह परमाणु एक संख्यावाला होता है यह एकता इसमें स्वरूपसे कही गई है अथवा-समय, प्रदेश और परमाणु यद्यपि अनन्त होते हैं परन्तु फिर भी इनमें से अनन्तभेदात्मक एक एक में तुल्यरूपताकी अपेक्षा लेकरके एकता है ऐसा जाना चाहिये ॥सू०४७॥

जिस प्रकार से परमाणु में तथाविध एकत्वपरिणामरूप विशेषता को लेकर एकत्व होता है उसी तरह से तथाविध एकत्वपरिणामरूप विशेषता को लेकर अनन्ताणुमय स्कन्ध में भी एकता हो सकती है इसी बात को प्रकट करने के लिये समस्त वादर स्कन्धों में प्रधान जो ईषत्प्राग्भार नाम का पृथिवी स्कन्ध है उसकी सूत्रकार प्ररूपणा करते हैं—

‘एगा सिद्धी, एगे सिद्धे, एगे, परिनिव्वाणे, एगे परिनिव्वुए’ ॥४८॥

मूलार्थ—सिद्धि एक है, सिद्ध एक है, परिनिर्वाण एक है, परिनिवृत्त एक है । ४८ ॥

पशु जे अविरोधी स्पर्श विद्यमान होय छे तेथी सिद्धि तेना कार्यभूत घटादिकेथी थाय छे. ते परमाणुमां तेना स्वरूपनी अपेक्षाजे एकत्व प्रकट करवामां आण्युं छे अथवा-जे के समय, प्रदेश अने परमाणु अनंत होय छे, परन्तु अनेक भेदात्मक एक एकमा (प्रत्येकमां) तुल्यरूपता होवाने लीधे तेमा एकता कही छे, जेम समजवुं ॥ ४७ ॥

जे प्रकारे परमाणुमां तथाविध एकत्व परिणामरूप विशेषतानी अपेक्षाजे एकत्व होय छे, जेज प्रमाणे तथाविध एकत्व परिणामरूप विशेषतानी अपेक्षाजे अनन्ताणुमय स्कन्धमां पशु एकता होई शके छे. तेथी समस्त वादर स्कन्धमां मुख्य जेवो जे ईषत्प्राग्भार नामना पृथ्वी स्कन्ध छे, तेनी सूत्रकार प्ररूपणा करे छे—

“ एगा सिद्धि, एगे सिद्धे, एगे परिनिव्वाणे, एगे परिनिव्वुए ” ॥ ४८ ॥



છાયા—एका सिद्धिः, एकः सिद्धा, एक परिनिर्वाणम्, एक परि  
निर्वृतः ॥ सू० ४८ ॥

टीका—‘एगा’ इत्यादि—

सिद्धि -सिध्यन्ति=कृतमाया भवन्ति नोवा यस्यां सा सिद्धि -ईपत्प्राग्भारा  
पृथिवी, सिद्धिश्च यद्यपि लोकाग्रम्,

उक्त च—“ इह बोधिं चहसाणं तत्प गंतूण सिज्झइ ” ।

छाया—इह शरीर त्यक्त्वा तत्र गत्वा सिध्यति—इति ॥

तथापि—तदुपलभकत्वात् ईपत्प्राग्भाराऽपि सिद्धिरुच्यते ।

उक्त च—“ वारसाहिं ज्ञोयणेहिं सिद्धी सम्बट्टसिद्धाउ ॥ ”

छाया—द्वादशभियॉननैः सिद्धिःसर्वाथिसिद्धात्—इति ॥

लोकाग्रमेव चेत् सिद्धिः स्यादर्हि—

“ निम्मलदुगरयवण्णा तुसारगोमलीरहारसरिवण्णा ’ ॥

टीकार्थ—जीव जिसमें कृतकार्य हो जाते हैं उसका नाम सिद्धि है  
यह सिद्धि ईपत्प्राग्भारापृथिवी रूप है यद्यपि लोकाग्र का नाम सिद्धि है  
जैसा कि यहां कहा है—“ इह बोधिं चहसाणं तत्प गंतूण सिज्झइ ”  
जीव यहां मनुष्य लोक शरीर को छोड़कर के वहां जाकर सिद्ध हो जाते  
हैं—तो भी यह सिद्ध पद उसका उपलक्षक होने से ईपत्प्राग्भारा पृथिवी  
भी सिद्ध पद से व्यवहृत हो जाती है

उक्त च—“ वारसाहिं ज्ञोयणेहिं सिद्धी सम्बट्टसिद्धाउ ”

सर्वाथिसिद्ध से आगे १२ योजन पर सिद्धि है इस तरह सिद्धि  
ईपत्प्राग्भारा पृथिवीरूप है यदि लोक का अग्रभाग ही सिद्धि है  
ऐसा माना जाये तो फिर यह वर्णन “ निम्मलदुगरयवण्णा तुसार

सूत्रार्थ—सिद्ध ञ्जेउ, सिद्धि ञ्जे उ, परिनिर्वाण ञ्जे उ अने  
परिनिवृत्त ञ्जे उ ॥ ४८ ॥

टीकार्थ—एव जेमां कृतकार्यं यथं वाच्ये, ते स्वानुत्त नाम सिद्धि उ  
ते सिद्धि ईपत्प्राग्भारा पृथिवीरूप उ ञ्जे उ “ इह बोधिं चहसाणं तत्प गंतूण  
सिज्झइ ’ एव ज्जहीथी मनुष्यलोक सज्जही शरीरने छेदीने त्वां ज्जने सिद्ध  
यथं वाच्ये उ ” आ कथन अनुसार लोकानुत्त नाम सिद्धि उ, तो पणु आ  
सिद्धिपद तेनु उपलक्षक बोवाथी ईपत्प्राग्भारा पृथिवी पणु सिद्धिपदभी च्छेदीत  
यथं वाच्ये उ इधुं पणु उ उ—“ वारसाह ज्ञोयणेहिं सिद्धी सम्बट्टसिद्धाउ ” सर्वाथिं  
सिद्ध विमानथी आग्रज ज्जतां १२ योजनने अतरे सिद्धाथान उ आ इति  
सिद्धि ईपत्प्राग्भारा पृथिवीरूप उ ञ्जे उ लोकना अग्रभागने च सिद्धि मान

छाया—निर्मलदकरजोवर्णा तुषारगोक्षीर हारसदृशवर्णा—इत्यादि यत् सिद्धि-  
स्वरूपवर्णनं कृतं तन्न संगच्छेत, लोकाग्रस्यामूर्त्तत्वात् । तस्मादस्मिन् सूत्रे सिद्धिप-  
देन—ईषत्प्राग्भारा पृथिव्येव बोध्या । सा च एका=एकत्वसंख्याविशिष्टा । द्रव्या-  
र्थतया पञ्चचत्वारिंशद्योजनलक्षप्रमाणस्कन्धस्यैकपरिणामत्वोत् सिद्धेरेकत्वम् । पर्या-  
यार्थतया तु सिद्धेरनन्तत्वम् । अथवा—सिद्धिः—कृतकृत्यत्वं, लोकाग्रम्, अणिमादिका  
वा । एकत्वं च सामान्यतो बोध्यम् ।

गोक्षीरहारसरिवण्णा ” कि सिद्धि निर्मल जल, तुषार, गोक्षीर, और  
हार के जैसी वर्णनवाली है संगत नहीं हो सकता है क्यों कि लोकाग्र  
अमूर्त होने से वर्ण सहित कैसे वर्णित किया जा सकता है क्यों कि  
लोक का अग्रभाग आकाश रूप है और आकाश को अमूर्त द्रव्य माना  
गया है अमूर्त का तात्पर्य होता है रूप रस गन्ध और स्पर्श इन पौद्-  
लिक गुणों से रहित होना अतः इस प्रकार का उसका वर्णन होने से  
यही मानना चाहिये कि ईषत्प्राग्भारा पृथिवी ही सिद्ध पद से यहाँ  
वाच्य हुई है । यह सिद्धि एकत्व संख्याविशिष्ट है क्यों कि द्रव्यार्थिक  
दृष्टि से यह सिद्ध रूप स्कन्ध एक परिणाम से परिणत हुआ ही माना  
गया है यद्यपि यह ईषत्प्राग्भारा पृथिवीरूप स्कन्ध ४५ लाख योजन  
प्रमाणवाला है फिर भी यह इस दृष्टि से भिन्न २ रूप से परिणत हुआ  
नहीं माना गया है अतः एक परिणाम से परिणत होने के कारण यह

वामां आवे, तो “ निम्मलदगरयणवण्णा तुसारगोक्षीरहारसरिवण्णा ” सिद्धि  
निर्मल, जल, तुषार, गोक्षीर અને હાર જેવા વર્ણવાળી છે. ” આ વર્ણન  
સંગત લાગતું નથી, કારણ કે લોકાગ્ર અમૂર્ત હોવાથી તેને વર્ણયુક્ત કેવી  
રીતે કહી શકાય ? લોકનેા અગ્રભાગ તો આકાશરૂપ છે અને આકાશને તો  
અમૂર્ત દ્રવ્ય માનવામાં આવ્યું છે. અમૂર્ત દ્રવ્ય તો રૂપ, રસ ગંધ અને સ્પર્શ,  
આ પૌદ્ગલિક ગુણોથી રહિત જ હોય છે સિદ્ધિને નિર્મલ જળ, તુષાર, ગોક્ષીર  
અને હાર જેવા વર્ણવાળી કહેલી હોવાથી એ જ વાત માનવી પડશે કે ઇષ-  
તપ્રાગ્ભારા પૃથ્વીજ અહીં સિદ્ધિપદ દ્વારા ગૃહીત થયેલ છે તે સિદ્ધિ એક છે,  
કારણ કે દ્રવ્યાર્થિકનયની દૃષ્ટિએ આ સિદ્ધરૂપ સ્કન્ધ એક પરિણામથી પરિણત  
થયેલો માનવામાં આવ્યો છે જે કે આ ઇષતપ્રાગ્ભારા પૃથ્વીરૂપ સ્કન્ધ ૪૫  
લાખ યોજનપ્રમાણવાળો છે, છતાં પણ તે એક પરિણામથી પરિણત થયેલો  
હોવાથી ભિન્ન ભિન્ન રૂપે પરિણત થયેલો માન્યો નથી આ રીતે એક પરિ-

છાયા—एका सिद्धि, एक सिद्धि, एक परिनिर्वाणम्, एकः परि  
निर्वाण ॥ सू० ४८ ॥

टीका—‘एगा’ इत्यादि—

सिद्धि—सिध्यन्ति=कृतकार्या भवन्ति जीवा यस्यां सा सिद्धि—ईषत्प्राग्भारा  
पृथिवी, सिद्धिश्च यद्यपि लोकाग्रम्,

उक्त च—“इह बोधिं चइच्छाम तत्प गंतुं सिद्धम्” ।

छाया—इह शरीरं त्यक्त्वा तत्र गत्वा सिध्यति—इति ॥

तथापि—उदुपलभ्यकत्वात् ईषत्प्राग्भाराऽपि सिद्धिरुच्यते ।

उक्त च—“वारसाहिं जोपणेहिं सिद्धी सम्बद्धसिद्धाठ ॥”

छाया—द्वादशमियोंमनैः सिद्धि सर्वापिसिद्धात्—इति ॥

लोकाग्रमेव चेत् सिद्धिः स्यादहिं—

“निम्मलदगरयषणा तुसारगोवलीरहारसरिषणा” ॥

टीकार्थ—जीव जिसमें कृतकार्य हो जाते हैं उसका नाम सिद्धि है  
यह सिद्धि ईषत्प्राग्भारापृथिवी रूप है यद्यपि लोकाग्र का नाम सिद्धि है  
जैसा कि यहां कहा है—“इह बोधिं चइच्छाम तत्प गंतुं सिद्धम्”  
जीव यहां मनुष्य लोक शरीर को छोड़कर के वहा जाकर सिद्ध हो जाते  
हैं—तो भी यह सिद्ध पद उसका उपलक्षक होने से ईषत्प्राग्भारा पृथिवी  
भी सिद्ध पद से व्यवहृत हो जाती है

उक्त च—“वारसाहिं जोपणेहिं सिद्धी सम्बद्धसिद्धाठ”

सर्वापिसिद्ध से आगे १२ योजन पर सिद्धि है इस तरह सिद्धि  
ईषत्प्राग्भारा पृथिवीरूप है यदि लोक का अग्रभाग ही सिद्धि है  
जैसा माना जाये तो फिर यह वर्णन “निम्मलदगरयषणा तुसार

सुवार्थ—सिद्ध એક છે, સિદ્ધિ એક છે, પરિનિર્વાણ એક છે અને  
પરિનિર્વાણ એક છે ॥ ૪૮ ॥

टीकार्थ—एव जेभां कृतकार्यं कर्म जायते, ते स्वान्तुं नाम सिद्धिः  
ते सिद्धि ईषत्प्राग्भारा पृथिवीरूपेण एवैके “इह बोधिं चइच्छाम तत्प गंतुं  
सिद्धम्” एव अर्थात् मनुष्यलोकं त्यक्त्वा शरीरं त्यज्यते तत्रैव सिद्धि  
कर्म जायते ॥ आ कथं अनुसारं लोकाग्रं नाम सिद्धिः, ते पञ्च  
सिद्धिपदेषु उपलक्षकं देवायै ईषत्प्राग्भारा पृथिवी पञ्च सिद्धिपदेषु मृद्वी  
यत्प जायते इत्थं पञ्च एवैके—“वारसाहिं जोपणेहिं सिद्धी सम्बद्धसिद्धाठ”  
सर्वापिसिद्धि विधानयोः आशय इत्यादि १२ योजने अतरे सिद्धिस्थाने एवैव  
सिद्धि ईषत्प्राग्भारा पृथिवीरूपेण एवैके लोकाग्रं अग्रभागमेव सिद्धि मान

यस्तु कर्मक्षयसिद्धस्तस्य धर्मस्तु परिनिर्वाणं भवतीति परिनिर्वाणस्वरूपमाह—  
‘एगे परिनिव्वाणे’ इति । परिनिर्वाणम्—परि=समन्ताद् निर्वाणं परिनिर्वाणम्—  
कर्मकृतसन्तापाभावेन शीतलीभवनम्, तत् एकम्=एकत्वसंख्याविशिष्टम् । एकदा  
परिनिर्वाणे संजाते पुनस्तत्र भवतीति तस्यैकत्वं बोध्यमिति ।

यः परिनिर्वाणधर्मयुक्तः स एव कर्मक्षयसिद्धः परिनिर्वृतो भवतीति परिनि-  
र्वृतं निरूपयति—‘एगे परिनिव्वुए’ इति । परिनिर्वृतः—परि=समन्ताद् निर्वृतः=  
स्वस्थीभूतः—शारीरिकमानसिकदुःखेन सर्वथा रहित इत्यर्थः । स च एकः=एकत्व-  
संख्यावान् । एकत्वं च द्रव्यार्थतया बोध्यम् । पर्यायार्थतया त्वनन्तत्वम् ॥सू० ४८ ॥

जो कर्मक्षय से सिद्ध होता है उसका धर्म परिनिर्वाण होता है इसलिये अब सूत्रकार परिनिर्वाण का स्वरूप प्रकट करते हैं—“एगे परिनिव्वाणे” कर्मकृत सन्ताप के अभाव से शीतलीभूत होने का नाम परिनिर्वाण है । यह परिनिर्वाण एकत्व संख्याविशिष्ट है क्योंकि एकवार परिनिर्वाण हो जाने पर फिर दुबारा वह होता नहीं है ।

जो परिनिर्वाण धर्म से युक्त होता है वही कर्मक्षय से सिद्ध हुआ जीव परिनिर्वृत होता है इसलिये अब सूत्रकार परिनिर्वृत का प्ररूपण करते हैं “एगे परिनिव्वुए” शारीरिक एवं मानसिक दुःख से सर्वथा रहित जो जीव हो जाता है वह जीव परिनिर्वृत कहा गया है इस परिनिर्वृत में द्रव्यार्थतासे एकत्व और पर्यायार्थतासे अनन्तत्व है ॥सू०४८॥

कर्मक्षयथी सिद्धपद प्राप्त करनार आत्मानो धर्म परिनिर्वाणु डोय छे ।  
तेथी डवे सूत्रकार परिनिर्वाणुना स्वइपतुं निइपणु करे छे—

“एगे परिनिव्वाणे” कर्मजनित संतापना अलावने क्षीणे शीतलीभूत  
थधे जलु तेतुं नाम परिनिर्वाणु छे ते परिनिर्वाणुमां ऐकत्व डोय छे, कारणु  
के ऐकवार परिनिर्वाणु थधे गया पछी, ते कायम जे रहे छे. तेनो अलाव  
थधे जय अने इरीथी तेनी प्राप्ति करवी पडे ऐलु अनतुं नथी

परिनिर्वाणु धर्मथी युक्ता डोय ऐवो कर्मक्षयथी सिद्ध थयेवो एव जे  
परिनिर्वृत थाय छे, तेथी डवे सूत्रकार परिनिर्वृत आत्मानी प्रइपणु करे छे.

“एगे परिनिव्वुए” शारीरिक अने मानसिक दुःखोथी सर्वथा रहित  
थयेवा एवने परिनिर्वृत कडे छे ते परिनिर्वृतमा द्रव्यार्थतानी अपेक्षाऐ  
ऐकत्व छे अने पर्यायार्थतानी अपेक्षाऐ अनन्तता छे. ॥सू०४८॥

इत्य सिद्धिं निरूप्य सम्प्रति सिद्धिमन्तं निरूपयति—‘ एगे सिद्धे ’ इत्यादि ।  
 सिद्ध-सिध्यति स्म=कृतकृत्योऽभवदिति सिद्धः, सेषतिस्म-अगच्छत् अपुनरावृत्त्या  
 लोकाग्रमिति वा सिद्धः, सित=वद् कर्मघ्यात=दग्ध येन स इति निरुक्तीत्या  
 सिद्धः । सिद्धम कमप्रपञ्चरहितः । स च एक =एकत्रसम्पाविशिष्ट । एकत्र च  
 द्रव्यार्थतया बोध्यम् । पर्यायार्थतया त्वनन्तत्वमपि । अथवा-सिद्धानामनन्तत्वेऽपि  
 सिद्धस्वरूप सामान्यमाश्रित्यैकत्वं बोध्यम् ।

एस द्रव्यार्थता की अपेक्षा से एकसंख्याविशिष्ट कहा गया है तथा पर्या  
 यार्थता की अपेक्षा से सिद्धि में अनन्तता है ।

अथवा—कृतकृत्यता का नाम सिद्धि है लोकाग्र का नाम सिद्धि है  
 अणिमादिकों का नाम सिद्धि है फिर भी सामान्य की अपेक्षा इस में  
 एकता है ऐसा जानना चाहिये

सिद्धि का निरूपण करके अब सूत्रकार सिद्धिवाले का निरूपण  
 करते हैं—“ एगे सिद्धे ” जो कृतकृत्य हो चुके हैं अपुनरावृत्तिरूप से जो  
 लोकके अग्रभागमें पहुँच चुके हैं । अथवा—यद्कर्मों को जिन्होंने दग्ध  
 कर दिया है वे सिद्ध हैं । ऐसे वे सिद्ध कर्म प्रपञ्चसे रहित होते हैं सिद्ध  
 में एकता द्रव्यार्थता की अपेक्षा से कही गई है, ऐसा जानना चाहिये  
 तथा पर्यायार्थता की अपेक्षासे अनन्तता भी कही गई है । इस प्रकारके  
 सिद्धोंमें अनन्तता होनेपर भी सामान्यरूप सिद्धस्वरूप को लेकर एकता  
 सिद्धों में प्रकट की गई है ।

શ્યામશ્વરજી પરિશુત થયેલા છે. શ્યામશ્વરજી તેને તે દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ એક કહેવ  
 છે પર્યાયાશ્વરજીની અપેક્ષાએ તે સિદ્ધિમાં અનન્તતા છે

અથવા—કૃતકૃત્યતાનું નામ સિદ્ધિ છે શ્યામશ્વરજી નામ સિદ્ધિ છે અણિ  
 માદિકોનું નામ સિદ્ધિ છે, છતાં પણ સામાન્યની અપેક્ષાએ તેમાં એકત્વ  
 સમજવું જોઈએ

સિદ્ધિનું નિરૂપણ કરીને હવે સૂત્રકાર સિદ્ધિનું ( સિદ્ધિમાં ગયેલા આત્મા  
 એવું ) નિરૂપણ કરે છે—“ એગે સિદ્ધે ” એ કૃતકૃત્ય થઈ ગયા છે, એવો  
 લોકના અગ્રભાગમાં પહોંચી ગયા છે એમનું ત્યાંથી સંચારમાં પુનરાગમન  
 થવું નથી, એવાં એવાં સિદ્ધ કહેવાય છે અથવા બદ્ધકર્મોને એમણે બાળી  
 નાખ્યા છે તેઓ સિદ્ધ કહેવાય છે એવા તે સિદ્ધો કમ પ્રપંચથી રહિત લોક  
 છે સિદ્ધમાં દ્રવ્યાર્થતાની અપેક્ષાએ એકતા પ્રકટ કરી છે અને પર્યાયાશ્વરજીની  
 અપેક્ષાએ અનન્તતા પણ કહી છે આ પ્રકારે સિદ્ધિમાં અનન્તતા દેવા છતાં પણ  
 સામાન્યરૂપ સિદ્ધ સ્વરૂપની અપેક્ષાએ સિદ્ધિમાં એકતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે

यस्तु कर्मक्षयसिद्धस्तस्य धर्मस्तु परिनिर्वाणं भवतीति परिनिर्वाणस्वरूपमाह—  
‘एगे परिनिव्वाणे’ इति । परिनिर्वाणम्—परि=समन्ताद् निर्वाणं परिनिर्वाणम्—  
कर्मकृतसन्तापाभावेन शीतलीभवनम्, तत् एकम्=एकत्वसंख्याविशिष्टम् । एकदा  
परिनिर्वाणे संजाते पुनस्तत्र भवतीति तस्यैकत्वं बोध्यमिति ।

यः परिनिर्वाणधर्मयुक्तः स एव कर्मक्षयसिद्धः परिनिर्वाणो भवतीति परिनि-  
र्वृतं निरूपयति—‘एगे परिनिव्वाणे’ इति । परिनिर्वृतः—परि=समन्ताद् निर्वृतः=  
स्वस्थीभूतः—शारीरिकमानसिकदुःखेन सर्वथा रहित इत्यर्थः । स च एकः=एकत्व-  
संख्यावान् । एकत्वं च द्रव्यार्थतया बोध्यम् । पर्यायार्थतया त्वनन्तत्वम् ॥ सू० ४८ ॥

जो कर्मक्षय से सिद्ध होना है उसका धर्म परिनिर्वाण होता है  
इसलिये अब सूत्रकार परिनिर्वाण का स्वरूप प्रकट करते हैं—“एगे  
परिनिव्वाणे” कर्मकृत सन्ताप के अभाव से शीतलीभूत होने का नाम  
परिनिर्वाण है । यह परिनिर्वाण एकत्व संख्याविशिष्ट है क्यों कि एक-  
वार परिनिर्वाण हो जाने पर फिर दुबारा वह होता नहीं है ।

जो परिनिर्वाण धर्म से युक्त होता है वही कर्मक्षय से सिद्ध हुआ  
जीव परिनिर्वृत होता है इसलिये अब सूत्रकार परिनिर्वृत का प्ररूपण  
करते हैं “एगे परिनिव्वाणे” शारीरिक एवं मानसिक दुःख से सर्वथा  
रहित जो जीव हो जाता है वह जीव परिनिर्वृत कहा गया है इस परि-  
निर्वृत में द्रव्यार्थतासे एकत्व और पर्यायार्थतासे अनन्तत्व है ॥सू०४८॥

कर्मक्षयशी सिद्धपद प्राप्त करनार आत्मानो धर्म परिनिर्वाणु डोय छे.  
तेथी डवे सूत्रकार परिनिर्वाणुना स्वप्नु निष्पणु करे छे—

“एगे परिनिव्वाणे” कर्मजनित सन्तापना अलावने दीधे शीतलीभूत  
थधे नु तेनु नाम परिनिर्वाणु छे ते परिनिर्वाणुमा ऐकत्व डोय छे, कारणु  
के ऐकवार परिनिर्वाणु थधे गया पछी, ते कायम न रहे छे. तेनो अलाव  
थधे नय अने इरीथी तेनी प्राप्ति करवी पडे ऐवुं अनतुं नथी

परिनिर्वाणु धर्मथी युक्त डोय ऐवो कर्मक्षयथी सिद्ध थयेतो एव न  
परिनिर्वृत थाय छे, तेथी डवे सूत्रकार परिनिर्वृत आत्मानी प्रष्पणु करे छे.

“एगे परिनिव्वाणे” शारीरिक अने मानसिक दुःखोथी सर्वथा रहित  
थयेतो एवने परिनिर्वृत कहे छे ते परिनिर्वृतमा द्रव्यार्थतानी अपेक्षाऐ  
ऐकत्व छे अने पर्यायार्थतानी अपेक्षाऐ अनन्तता छे. ॥सू०४८॥

પ્રાયેણ જીવધર્મા પ્રરૂપિતા । મધુના પુત્રલાના જીવોપગ્રહસ્વાત્ પુત્ર-  
રૂપાંજીવધર્મા 'એ સદે' इत्यारम्य 'जाय लुक्से' इत्येतेन एकत्वेनैव प्ररू-  
प्यन्ते । सप्राचीन्द्रियाणा परमाप्त्वादीनां पुत्रलानां सत्ताऽनुमानतोऽपगम्यते ।  
तथाहि-घटादिकार्यतस्तत्कारणभूतस्य परमाप्त्वाटः सत्ताऽनुमीयते । घटादिकार्य-  
रूपाणां सत्त्वपुत्रलानां तु सांख्यव्याहारिक प्रत्यक्षत एव सत्ताऽवबोधयते ।

પ્રાય કરકે જીવ કે ધર્મો કા તો પ્રરૂપણ હો ચુકા હૈ અવ જીવ કે  
ઉપગ્રાહક-ઉપકારક-હોને સે પુત્રલોં કે સ્વરૂપ વિગ્વલાતે હૈ અર્થાત્ "એ  
સદે" ઘટા સે લગાકર "જાય લુક્સે" યહાં તક કે સુત્ર પાઠ સે એક  
ત્વરૂપ સે પ્રરૂપિત કિયે જાતે હૈ । ઇનમૈં અતીન્દ્રિય જો પરમાણુ આદિ  
પુત્રલ હૈં ડનકી સત્તા અનુમાન સે જાની જાતી હૈ યહ અનુમાન ઇસ  
પ્રકાર સે હૈ-"પરમાણવઃ સન્તિ ઘટાદિ કાર્યાન્યયાનુપપન્ને" ઘટાદિ  
રૂપ કાર્યોં કી પરમાણુરૂપ કારણ કે અમાય મૈં ઉત્પત્તિ નહીં હો સકતી  
હૈ-અતઃ પરમાણુ હૈ" ઇમ તરહ સે પરમાણુકે કાર્યમૂત ઘટાવિકોંકે પ્રત્યક્ષ  
સે ડનકી સત્તા જાની જાતી હૈ યે ઘટાદિરૂપ કાર્ય પુત્રલ કે સ્કાચરૂપ  
હોતે હૈં । ઇનકી સત્તા વ્યવહારી જન સાંખ્યવહારિક પ્રત્યક્ષ સે જાનતે  
હૈં । તાત્પર્ય કહુને કા યહ હૈ કિ "ઇન્દ્રિયાનિન્દ્રિયનિમિત્ત વેશતઃ સાંખ્ય  
વહારિક" જો જ્ઞાન પાંચ ઇન્દ્રિયોં ઓર મન સે ઉત્પલ્લ હોતા હૈ યહ  
સાંખ્યવહારિક પ્રત્યક્ષ કહા ગયા હૈ ક્યોં કિ એસે જ્ઞાન મૈં એકવેશ સે  
વિશદતા રહતી હૈ પૂર્ણરૂપ સે નહીં । ઘટપટાદિ જિતને મી વદાર્થે હૈં યે

હવે જીવના ધર્મોની પ્રરૂપણા તો પૂરી થઈ ગઈ છે જીવનું ઉપગ્રાહક  
( ઉપગ્રાહક ) હોવાને કારણે હવે પુત્રલોનું સ્વરૂપ બતાવવામા આવે છે—

એ સદે' આ સૂત્રથી લઈને 'જાય લુક્સે' પદ્યન્તના સૂત્રપાઠ  
દ્વારા તે પુત્રલોનું એકત્વ પ્રતિષ્ઠાપિત કરવામાં આવ્યું છે જે પરમાણુ આદિ  
પુત્રલ ઈન્દ્રિયગમ્ય નથી તેમનું અસ્તિત્વ નીચેનાં અનુમાનો દ્વારા બહુ  
શકાય છે 'પરમાણવા સન્તિ ઘટાદિકાર્યાન્યયાનુપપન્ને' ઘટાદિરૂપ કાર્યોની  
પરમાણુરૂપ કારણનું અભાવમાં ઉત્પત્તિ જ શક શકતી નથી, તેથી પરમાણુના  
અવમૂત ઘટાદિકોને એવાથી તેમનું અસ્તિત્વ બહુ શકાય છે તે ઘટાદિરૂપ  
કાર્ય પુત્રલના સ્કાચરૂપ હોય છે તેમનું અસ્તિત્વ વ્યવહારીજન સાંખ્યવહારિક  
પ્રત્યક્ષથી બહુ શકે છે જે જ્ઞાન 'ઇન્દ્રિયાનિન્દ્રિયનિમિત્ત વેશતઃ સાંખ્યવહારિક'  
પાંચ ઇન્દ્રિયોં અને મનની સહાયતાથી ઉત્પલ્લ થાય છે તે જ્ઞાનને "સાંખ્ય  
વહારિક પ્રત્યક્ષ" કહે છે કારણ કે એવા જ્ઞાનમાં એક વેશની અપેક્ષાને  
વિશદતા રહે છે-પૂર્ણરૂપે રહેતી નથી ઘટપટ વગેરે જે વદાર્થો છે તે સ્કાચ

मूलम्—एगो सद्दे । एगो रूवे । एगो गंधे । एगो रसे । एगो फासे ।  
 एगो सुविभसद्दे । एगो दुविभसद्दे एगो सुरूवे । एगो दुरूवे । एगो  
 दीहे । एगो हस्से । एगो वट्टे । एगो तंसे । एगो चउरंसे । एगो  
 पिहुले । एगो परिमंडले । एगो किण्हे । एगो णीले । एगो  
 लोहिए । एगो हलिद्दे । एगो सुविकल्ले । एगो सुविभगंधे । एगो  
 दुविभ गंधे । एगो तित्ते । एगो कडुए । एगो कसाए । एगो अंविले ।  
 एगो महुरे । एगो ककखडे जाव लुक्खे ॥ सू० ४९ ॥

छाया—एकः शब्दः । एकं रूपम् । एको गन्धः । एको रसः एकः—स्पर्शः ।  
 एकः सुरभिश्चब्दः । एको दुरभिश्चब्दः । एकं सुरूपम् । एकं दूरूपम् एकं दीर्घम् ।  
 एकं ह्रस्वम् । एकं वृत्तम् । एकं व्यस्रम् । एकं चतुरस्रम् । एकं पृथुलम् एकः कृष्णः ।

सब स्कन्धरूप हैं । पुद्गल को शास्त्रकारों ने दो विभागों में विभक्त किया  
 है एक परमाणुरूप विभाग में और दूसरे स्कन्धरूप विभाग में—परमाणु  
 किसी भी इन्द्रिय से गम्य नहीं होते हैं—अतः उनकी सत्ता कार्यरूप  
 अनुमान से ही जानी जाती है तथा स्कन्धरूप पुद्गल की सत्ता इन्द्रिय-  
 जन्य प्रत्यक्ष से जानी जाती है । 'एगो सद्दे' इत्यादि ॥ ४९ ॥

मूलार्थ—शब्द एक है, रूप एक है, गन्ध एक है, रस एक है, स्पर्श  
 एक है सुरभिश्चब्द एक है दुरभिश्चब्द एक है सुरूप एक है दूरूप एक  
 है दीर्घ एक है ह्रस्व एक है वृत्त एक है व्यस्र एक है चतुरस्र एक है

इयञ्छाय छे शास्त्रकारोच्चे पुद्गलोना जे विभाग पाडया छे—(१) परमाणु  
 इय विभाग अने (२) स्कन्धइय विभाग परमाणु कोष पणु इन्द्रियथी गम्य  
 (अनुभवथी शक्य अत्र) नथी, तेथी तेमनी सत्ता (अस्तित्व) कार्यइय  
 अनुमानथी न्ज लक्ष्णी शक्य छे, तथा स्कन्धइय पुद्गलनी सत्ता (अस्तित्व)  
 इन्द्रियजन्य प्रत्यक्षथी (अनुभवथी) लक्ष्णी शक्य छे

“ एगो सद्दे ” इत्यादि ॥ ४९ ॥

मूलार्थ—शब्द अेक छे, इय अेक छे, गंध अेक छे, रस अेक छे,  
 स्पर्श अेक छे, सुरभिश्चब्द (मधुर शब्द) अेक छे, दुरभिश्चब्द अेक छे,  
 सुरूप अेक छे, दूरूप अेक छे दीर्घ अेक छे ह्रस्व अेक छे वृत्त अेक छे व्यस्र अेक छे चतुरस्र अेक छे



एको नीलः । एको लोहित । एको हारिद्र । एकं शुक्रः । एकं सुरमिगन्ध ।  
 एको दुरमिगन्धः । एकः तिक्त । एकं कटुकः । एकं कषायः । एकं भस्मः ।  
 एको मधुरः । एकः कर्कशो यावत् स्पर्श ॥ सू० ४९ ॥

टीका—' एगे स्ये ' इत्यादि—

शब्दः—शब्दपठे=अभिधीयतेऽर्पोऽनेनेति शब्दः, श्रोत्रेन्द्रियप्राप्तनियतक्रम  
 वर्णारमको ध्वनि । स एका=एकत्वसंख्याविशिष्टः । शब्दो यद्यपि नामस्थापनादि  
 भेदैश्चतुर्विधः, तथापि शब्दत्वसामान्यमाभित्यैकत्वं घोष्यमिति । तथा-रूपम्-  
 रूप्यते=प्रवलोक्यते इति रूपम्-आकारश्चतुर्विधः तत्र-एकम्=एकत्वसंख्यावि

पृथुल एक है परिमण्डल एक है कृष्ण एक है नील एक है लोहित एक  
 है हारिद्र एक है शुक्र एक है सुरमिगन्ध एक है दुरमिगन्ध एक है  
 तिक्तरस एक है कटुकरस एक है कषायरस एक है भस्मरस एक है  
 मधुररस एक है कर्कश स्पर्श एक है यावत् स्पर्श एक है ।

टीकार्थ—जिसके द्वारा अर्थ का कथन किया जाता है वह शब्द है  
 ऐसा यह शब्द श्रोत्रेन्द्रिय से प्राप्य नियतक्रमवर्णरूप ध्वनिस्वरूप  
 होता है । यह ध्वनिरूप शब्द एकत्वसंख्याविशिष्ट है यद्यपि शब्द नाम  
 स्थापना शब्द आदि के भेद से चार प्रकार का कहा गया है तथापि  
 शब्दस्वरूप सामान्य की अपेक्षा से यह एक है, जो देखा जाता है  
 उसका नाम रूप है यह रूप आकाररूप है, चक्षु इन्द्रिय से यह प्राप्य  
 होता है रूपत्व सामान्य की अपेक्षा से इसमें एकता कही गई है यहाँ

कोक छे, पत्र (त्रिकोण) कोक छे, अतुरत्र (चतुकोण) कोक छे, पृथुल  
 कोक छे, परिमण्डल कोक छे कृष्ण कोक छे, नील कोक छे, लोहित (लाल रंग)  
 कोक छे हारिद्र (पीपे १ ग) कोक छे शुक्ररस कोक छे, सुरमिगन्ध कोक  
 छे, दुरमिगन्ध कोक छे, तिक्तरस (तीजे स्वाद) कोक छे, कठको रस कोक  
 छे, कषायरस कोक छे भस्मरस कोक छे, मधुररस कोक छे, कर्कशस्पर्श कोक  
 छे अने रसस्पर्श पयन्तना प्रत्येक स्पर्श मां पञ्च कोकत्व छे

टीकार्थ—जैना द्वारा अर्थनु कथन कथन छे ते शब्द छे ते श्रोत्रेन्द्रिय  
 द्वारा प्राप्य नियतक्रमवर्णरूप ध्वनिस्वरूप होय छे ते ध्वनिरूप शब्द कोक होय  
 छे जे के शब्द नाम स्थापना शब्द आदिना भेदमां तेने चार प्रकारने कही  
 छे, उदां पञ्च शब्दस्वरूप सामान्य लक्षणनी अपेक्षाको तेमां कोकत्व प्रकट  
 कथनामां आय्यु छे जे देखावामां आवे छे ते रूप छे ते रूप आकाररूप छे  
 अने चक्षुइन्द्रिय वटे प्राप्य होय छे रूपत्व सामान्यनी अपेक्षाको तेमां कोकत्व  
 कही छे अर्थां जेमां जेमां कोकत्व प्रकट कयुं छे ते सामान्यनी अपेक्षाको ज

शिष्टम् । एकत्वं च सामान्यमाश्रित्य बोध्यम् । इति सर्वत्र संयोज्यम्, तथा-  
गन्धः-गन्ध्यते=आघ्रायते इति गन्धः-घ्राणविषयः । स च एकः=एकत्वसंख्या-  
विशिष्टः । तथा-रसः-रस्यते=आस्वादयते इति रसः-रसनेन्द्रियविषयः स च एकः ।  
तथा-स्पर्शः-स्पृश्यते=स्पर्शविषयीक्रियते इति स्पर्शः-त्वगिन्द्रियविषयः । स च  
एकः । इत्थं शब्दादीन् सामान्येनाभिधाय सम्प्रति तानेव विशेषत आह । तत्र प्रथमं  
शब्दस्य भेदद्वयमाह । तथाहि-सुरमिशब्दः-शुभशब्दो मनोज्ञशब्द इति यावत् ।  
स एकः । दुरमिशब्द-अशुभशब्दः अमनोज्ञशब्द इति यावत् । स एकः । अन्येऽपि  
शब्दभेदा अत्रैवान्तर्भूता विज्ञेयाः ।

जिनमें एकत्व कहा गया है वह सामान्य की अपेक्षा से ही कहा गया है,  
ऐसा जानना चाहिये, घ्राणेन्द्रिय द्वारा जो सूंघा जाता है वह गन्ध है  
यह भी गन्धत्व सामान्य की अपेक्षा से एक है, रसना इन्द्रिय से जिस  
का स्वाद लिया जाता है वह रस है यह रस भी रसत्व सामान्य की  
अपेक्षा से एक है, स्पर्शन इन्द्रिय से जो छूकरके जाना जाता है वह  
स्पर्श है यह स्पर्श यद्यपि आठ प्रकार का कहा गया है फिर भी सामा-  
न्य की अपेक्षा से यह एक है, इस प्रकार से सामान्यतः शब्दादिकों  
का कथन करके अब सूत्रकार उन्हीं का विशेषरूप से कथन करते हैं-  
इसमें सर्वप्रथम शब्द के दो भेद वे प्रकट करते हैं-शब्द के वे दो भेद  
सुरमिशब्द और दुरमिशब्दरूप से हैं शुभशब्द या मनोज्ञशब्दका नाम  
सुरमिशब्द है यह एक इसलिये कहा गया है कि इसमें शब्दत्वसामान्य  
रूप धर्म रहता है, अशुभशब्द या अमनोज्ञ श्रोत्रेन्द्रिय को न रुचे ऐसे

प्रकट करवाया आवेला छे, अम समञ्जुं. घ्राणेन्द्रि द्वारा जे सूंघवामां आवे  
छे, तेनुं नाम गन्ध छे तेमां पणु गन्धत्व सामान्यनी अपेक्षाअे अेकत्व छे.  
अम द्वारा जेने स्वाद लेवाय छे, ते रस छे. तेमां पणु रसत्वसामान्यनी  
अपेक्षाअे अेकत्व छे. स्पर्शेन्द्रियनी सहायताथी जे स्पर्शज्ञान थाय छे, तेमां  
पणु अेकत्व छे. जे के स्पर्शना आठ प्रकार छे, तो पणु स्पर्शत्वसामान्यनी  
अपेक्षाअे तेमां अेकत्व समञ्जुं. आ प्रकारे शब्दादिकेतुं सामान्य कथन करीने  
डेवे सूत्रकार तेमनी विशेष प्रपञ्चा करे छे

पडेलीं तेअे शब्दना जे लेहेतु कथन करे छे-ते जे लेह नीचे प्रमाणे  
छे-(१) सुरमि शब्द. अथवा मनोज्ञ शब्द, (२) दुरमि शब्द अथवा अम-  
नोज्ञ-कर्णेन्द्रियने न गमे अेवे शब्द. सुरमि शब्दमां अेकत्व प्रकट करवानु  
कारण अे छे के तेमां शब्दत्व सामान्यरूप धर्म रडेवे डेवाय छे. दुरमि शब्दमां

एको नील । एको लोहित । एको हारिद्र । एकं शुक्रः । एकः सुरमिगन्धः ।  
 एको दुरमिगन्धः । एकं तिक्त । एकं कटुकः । एकं कषायः । एकं मम्लः ।  
 एको मधुरः । एकं कर्कशो यावद् रस ॥ सू० ४९ ॥

टीका—' एगे सरे ' इत्यादि—

शब्दः—शब्दपते=अभिधीयतेऽप्योऽनेनेति शब्दः, आश्रेन्द्रियग्राह्यनियतक्रम-  
 वर्णात्मको ध्वनिः । स एकं=एकत्वसंख्याविशिष्ट । शब्दो यद्यपि नामस्थापनादि  
 भेदैश्चतुर्विधः, तथापि शब्दत्वसामान्यमाभित्यैकत्व बोध्यमिति । तथा—रूपम्-  
 रूप्यते=मवलोक्यते इति रूपम्-आकारबभ्रुर्विषयः तप-एकम्=एकत्वसंख्यावि

पृथुल एक है परिमण्डल एक है कृष्ण एक है नील एक है लोहित एक  
 है हारिद्र एक है शुक्र एक है सुरमिगन्ध एक है दुरमिगन्ध एक है  
 तिक्तरस एक है कटुकरस एक है कषायरस एक है अम्लरस एक है  
 मधुररस एक है कर्कश स्पर्श एक है घावत् स्थलस्पर्श एक है ।

टीकार्थ—जिसके द्वारा अर्थ का कथन किया जाता है वह शब्द है  
 ऐसा वह शब्द आश्रेन्द्रिय से ग्राह्य नियतक्रमबणरूप ध्वनिस्वरूप  
 होता है । यह ध्वनिरूप शब्द एकत्वसंख्याविशिष्ट है यद्यपि शब्द नाम  
 स्थापना शब्द आदि के भेद से चार प्रकार का कहा गया है तथापि  
 शब्दस्वरूप सामान्य की अपेक्षा से यह एक है, जो देखा जाता है  
 उसका नाम रूप है यह रूप आकाररूप है, यद्यु इन्द्रिय से यह ग्राह्य  
 होता है रूपत्व सामान्य की अपेक्षा से इसमें एकता कही गई है यहाँ

जेक छे, अन्न ( त्रिकोण ) जेक छे, जतुरन्न ( जतुरकोण ) जेक छे, पृथुल  
 जेक छे, परिमण्डल जेक छे, कृष्ण जेक छे, नील जेक छे, लोहित ( लाल रंग )  
 जेक छे हारिद्र ( पीणोः रंग ) जेक छे शुक्ररस जेक छे, सुरमिगन्ध जेक  
 छे दुरमिगन्ध जेक छे, तिक्तरस ( तीजो रसाह ) जेक छे, कटुकरस जेक  
 छे, कषायरस जेक छे अम्लरस जेक छे मधुररस जेक छे, कर्कशस्पर्श जेक  
 छे अने इक्षरस्य' पश्चन्तना प्रत्येक रूप्यमां पद्य जेकत्व छे

टीकार्थ—जेना द्वारा अर्थतु कथन कथाव छे ते शब्द छे ते आश्रेन्द्रिय  
 द्वारा ग्राह्य नियतक्रमबणरूप ध्वनिस्वरूप ढोव छे ते ध्वनिरूप शब्द जेक ढोव  
 छे जे के शब्द नाम स्थापना शब्द आदिना भेदधी तेने चार प्रकारने कही  
 छे, उतां पद्य शब्दस्वरूप सामान्य लक्षणनी अपेक्षाजे तेभां जेकत्व प्रकट  
 करवामां आबु छे जे देववामां आवे छे ते रूप छे ते रूप आकाररूप छे  
 अने यद्युन्द्रिय बडे ग्राह्य ढोव छे इतर सामान्यनी अपेक्षाजे तेभां जेकत्व  
 की छे अदी जेभा जेभां जेकत्व प्रकट क्युं छे ते सामान्यनी अपेक्षाजे जे

वृत्तत्वेन एकमिति । तथा-त्र्यसं-तिष्ठः अस्रयः क्रोणा अस्येति त्र्यसं-त्रिको-  
णम् । पूर्ववच्चेदमपि चतुर्विधम् । तच्च एकम्-त्र्यस्रत्वसामान्यापेक्षया । तथा-  
चतुरस्रं-चतुष्कोणम् । इदमपि पूर्ववच्चतुर्विधम् । एकत्वं चास्य सामान्यापेक्षया  
बोधम् । तथा-पृथुल=विस्तीर्णम् । तच्च एकम्=एकरसंख्याविशिष्टम् । अस्मिन्  
विषयेऽन्यत्र यत् आयतमुच्यते, तदेव चेह दीर्घह्रस्वपृथुलशब्दैर्विभज्योच्यते ।  
आयतधर्मत्वाद् दीर्घाद्यपि आयतम् । तच्च आयतं प्रतरघनश्रेणिभेदात्त्रिविधम् ।  
एकैकं पुनः समप्रदेशावगाढ विषमप्रदेशावगाढत्वेन द्विविधमिति, पञ्चविधमायतम् ।  
यच्चादौ आयतभेदयोः ह्रस्वदीर्घयोरभिधानं, तत् वृत्तादिप्रायतस्यैव प्रायः समा-

फिर भी वृत्तत्व सामान्य की अपेक्षा से यह एक कहा गया है । तीन  
कोण जिस संस्थान में होते हैं उसका नाम त्र्यस्र है पहिले की तरह  
यह भी चार प्रकार का होता है फिर भी त्र्यस्रत्व सामान्य की अपेक्षा  
यह एक कहा गया है अस्र नाम कोने का है जिस संस्थान में चार  
कोने होते हैं वह चतुरस्र संस्थान है विस्तीर्ण संस्थान का नाम आयत  
संस्थान है यह आयत संस्थान भी एक है इस विषय में जो अन्यत्र  
आयत कहा गया है वही यहाँ दीर्घ ह्रस्व पृथुलशब्दों द्वारा विभक्त कर  
के कहा गया है आयत के धर्म होने से दीर्घादिक भी आयत है । यह  
आयत प्रतर घन और श्रेणि के भेदसे त्रिविध होता है इनमें एक एक  
आयत समप्रदेशावगाढ और विषमप्रदेशावगाढ के भेद से दो २ प्रकार  
का होता है । इस तरह से आयत छह प्रकार का हो जाता है आदि में  
जो आयत के भेद ह्रस्वदीर्घ कहे गये हैं, वे इस बात को बताने के लिये

ये संस्थान ( आकार ) भा त्रयु भूषु डोय छे, ते संस्थानने त्र्यस्र  
( त्रिकोणाकार ) संस्थान कडे छे वृत्तसंस्थाननी जेम तेना पणु चार प्रकार  
छे, परन्तु त्र्यस्रत्व सामान्यनी अपेक्षाजे तेने जेक कडेनामा आवेल छे  
अस्र जेटले भूषु। जे संस्थानमां चार भूषु डोय छे ते संस्थानने चतुरस्र  
संस्थान कडे छे विस्तीर्ण संस्थानने आयत संस्थान कडे छे आ आयत  
संस्थान पणु जेक छे आ विषयने अतुलक्षीने इरीधी जे आयत संस्थाननी  
वात करवामा आवी छे, ते दीर्घ, ह्रस्व, पृथुल आदि शब्दो द्वारा विलक्षत  
करीने आयत संस्थाननी वात करी छे जेम सम-चतु, क्षण्य के आयत  
संस्थानना धर्मइप दीर्घ, ह्रस्व आदि पणु आयत जे छे ते आयतना  
(१) प्रतर, (२) घन (३) श्रेणिना लेखी त्रयु प्रकार डोय छे, ते प्रत्येकना  
समप्रदेशावगाढ अने विषमप्रदेशावगाढ नासना जणजे लेद पडे छे आ रीते  
आयतना कुल छे लेद छे. शब्दात्तमा आयतना जे ह्रस्व अने दीर्घ नामना,

अथ सुरूपादारभ्य शुक्लपर्यन्तान् रूपस्य चतुर्दश भेदानाह—' एगो सुरूपे ' इत्यादिना । सुरूपम्—शुभरूपं मनोहररूपम् इति यावत् । तच्चैकम्—रूपम्—अशुभरूपम्—भमनोहररूपमिति यावत् । तच्चैकम् । तथा—दीर्घम्=भायतम् । तच्चैकम् । इत्स्वं दीर्घमिभ, तदप्येकम् । तथा — वृत्तस्य चतुरस्रपृष्ठापरिमण्डलाख्याः पञ्चस्कन्धसंस्थानमदा बोध्या । तत्र — वृत्तं = वृत्तसंस्थानं मोदकवत् । तस्य प्रतरघनभेदाद् द्विविधम् । तदपि पुनः प्रत्येकं समप्रवेशावगाढ विषमप्रवेशावगाढभेदाद् द्विविधमित्यत्रं वृत्तं चतुर्विधम् । चतुर्विधमपीदं वृत्तं

शब्दका नाम चतुर्विधशब्द है यह सामान्यकी अपेक्षासे एक है अन्य और भी जो शब्द भेद हैं उनका अन्तर्भाव इन्हीं दो भेदों में हो जाता है ।

अथ सुरूप से लेकर शुक्लपर्यन्त जो रूप के १४ भेद हैं वे प्रकट किये जाते हैं—' एगो सुरूपे ' शुभरूप या मनोहररूप का नाम सुरूप है यह सुरूप एक है अशुभरूप या अमनोहररूप का नाम वूरूप है यह भी एक है दीर्घ, आयत, वृत्त तथा वृत्त-गोल, श्यस्र-त्रिकोण, चतुरस्र-चौकोर आयत और परिमण्डल से सब भी एक है वृत्त आदि ये पाँच स्कन्ध संस्थान के भेद हैं मोदककी तरह जो आकार गोल होता है वह वृत्तसंस्थान है यह वृत्तसंस्थान प्रतर और घन के भेद से दो प्रकार होता है इन दोनों के भी समप्रवेशावगाढ और विषमप्रवेशावगाढ ऐसे दो २ भेद और होते हैं इस तरह वृत्तसंस्थान चार प्रकार का होता है

पञ्च शब्दस्य सामान्यनी अपेक्षाये ज्येष्ठत्वं च शब्दनां नीचत्वं च तेषां च तेभ्यो समावेश आ ये वेदोर्भा च यत् त्वत्वं च त्वे सुप्रथमी लघने शुक्ल पर्यन्तना च इत्या १४ वेदो च तेभ्यो प्रकट करवाभा आवे च

“ एगो सुरूपे ” शुभरूप के मनोहर इत्यने सुप्रथ कहे छे ते ज्येष्ठ छे अशुभ रूप के अमनोहरइत्यने इत्थं कहे छे ते पञ्च ज्येष्ठ छे दीर्घ, आयत, वृत्त, वृत्त ( ज्येष्ठाक्षर ) पञ्च ( त्रिकोणाक्षर ) चतुरस्र ( चतुष्पदीशुं ), आयत अने परिमण्डल, ज्येष्ठप्रत्येकभां पञ्च ज्येष्ठत्वं समञ्जसु ज्येष्ठत्वे वृत्त आदि भां च संस्थानना वेद छे

लघुना जेभ जेना आक्षर ज्येष्ठ डोय छे तेने वृत्त संस्थान कहे छे ते वृत्त संस्थानना जे वेद छे—(१) प्रतर अने (२) घन ते जनेना पञ्च नीचे प्रभावे जे वेदो च छे—(१) समप्रवेशावगाढ अने (२) विषमप्रवेशावगाढ आ रीते वृत्तसंस्थान चार प्रकारनु डोय छे छत्वां पञ्च वृत्तस्य सामान्यनी अपेक्षाये तेने ज्येष्ठ कहेवाभा आवे च छे

वृत्तत्वेन एकमिति । तथा-त्र्यस्र-तिस्रः अस्रयः क्रोणा अस्येति त्र्यस्रं-त्रिको-  
णम् । पूर्ववच्चैदमपि चतुर्विधम् । तच्च एकम्-त्र्यस्रत्वसामान्यापेक्षया । तथा-  
चतुरस्रं-चतुष्कोणम् । इदमपि पूर्ववच्चतुर्विधम् । एकत्वं चास्य सामान्यापेक्षया  
बोधयम् । तथा-पृथुल=विस्तीर्णम् । तच्च एकम्=एकत्वसंख्याविशिष्टम् । अस्मिन्  
विषयेऽन्यत्र यत् आयतमुच्यते, तदेव चेह दीर्घह्रस्वपृथुलशब्दैर्विभज्योच्यते ।  
आयतधर्मत्वाद् दीर्घाद्यपि आयतम् । तच्च आयतं प्रतरघनश्रेणिभेदात्त्रिविधम् ।  
एकैकं पुनः समप्रदेशावगाढ विषमप्रदेशावगाढत्वेन द्विविधमिति, षड्विधमायतम् ।  
यच्चादौ आयतभेदयोः ह्रस्वदीर्घयोरभिधानं, तत् वृत्तादिष्वायतस्यैव प्रायः समा-

फिर भी वृत्तत्व सामान्य की अपेक्षा से यह एक कहा गया है । तीन  
कोण जिस संस्थान में होते हैं उसका नाम त्र्यस्र है पहिले की तरह  
यह भी चार प्रकार का होता है फिर भी त्र्यस्रत्व सामान्य की अपेक्षा  
यह एक कहा गया है अस्र नाम कोने का है जिस संस्थान में चार  
कोने होते हैं वह चतुरस्र संस्थान है विस्तीर्ण संस्थान का नाम आयत  
संस्थान है यह आयत संस्थान भी एक है इस विषय में जो अन्यत्र  
आयत कहा गया है वही यहाँ दीर्घ ह्रस्व पृथुलशब्दों द्वारा विभक्त कर  
के कहा गया है आयत के धर्म होने से दीर्घादिक भी आयत है । यह  
आयत प्रतर घन और श्रेणि के भेदसे त्रिविध होना है इनमें एक एक  
आयत समप्रदेशावगाढ और विषमप्रदेशावगाढ के भेद से दो २ प्रकार  
का होता है । इस तरह से आयत छह प्रकार का हो जाता है आदि में  
जो आयत के भेद ह्रस्वदीर्घ कहे गये हैं, वे इस बात को बताने के लिये

वे संस्थान ( आकार ) मा ऋषु षूष्वा डोय छे, ते संस्थानने त्र्यस्र  
( त्रिकोणाकार ) संस्थान कडे छे वृत्तसंस्थाननी जेम तेना षषु चार प्रकार  
छे, परन्तु त्र्यस्रत्व सामान्यनी अपेक्षाजे तेने ओक कडेनामा आवेल छे.  
अस्र ओटवे षूष्वा जे संस्थानमां चार षूष्वा डोय छे ते संस्थानने चतुरस्र  
संस्थान कडे छे विस्तीर्ण संस्थानने आयत संस्थान कडे छे आ आयत  
संस्थान षषु ओक छे आ विषयने अनुलक्षीने इरीथी जे आयत संस्थाननी  
वात इरवामा आवी छे, ते दीर्घ, ह्रस्व, पृथुल आदि शब्दों द्वारा विभक्त  
इरीने आयत संस्थाननी जे वात करी छे जेम समज्जुं, कारण के आयत  
संस्थानना धर्मरेप दीर्घ, ह्रस्व आदि षषु आयत जे ते आयतना  
(१) प्रतर, (२) घन (३) श्रेणिना लेखी ऋषु प्रकार डोय छे, ते प्रत्येकना  
समप्रदेशावगाढ अने विषमप्रदेशावगाढ नामना षषुजे लेख पडे छे आ इते  
आयतना कुल छे लेख छे, शब्दात्तमा आयतना जे ह्रस्व अने दीर्घ नामना,

વેશો મત્તવીતિ દર્શનાર્થમ્ । યયાડય સ્તન્મો દીર્ઘ ળાયત ષ્વસ્પસ્યસ્યતુરસ્ય  
સ્વાદિ । તયા-પરિમઙ્ઢલમ્-પરિમઙ્ઢલવસ્થાન-ઘલપાકારમિતિ યાઘત્ । ય્ષ્  
પ્કમ્=પ્કત્વસસપાવિશિષ્ટમ્ । યઘપીદ પ્રતરઘનમેદાદ્ દ્વિવિધ, તયાપિ સામાન્ય  
માભિત્યૈક ષોઘ્યમ્ । તયા-રૂપમેદો ઘર્ણઃ, સ ઘ કૃષ્ણનીલલોહિતહારિદ્રીકુ  
મેદાત્ પચ્ચવિધઃ । કૃષ્ણાદયઃ મસિદ્ધાઃ નવરં હારિદ્રઃ=પીતઘર્ણો ત્રિભેઃ । કપિ  
ષ્ઠાદયસ્તુ કૃષ્ણાદિ સસર્ગમન્યા ઇતિ ન તેપા પૃથગુપયાસ કૃતઃ । કૃષ્ણાદિપુ  
મસ્યેકમેકત્વ સામાન્યવિવક્ષયા ષોઘ્યમ્ । અય ગઘમેદાવાદ્-‘એ સુશ્મિગઘે,  
એ દુશ્મિગઘે’ ઇતિ । સુરમિગઘ-સુરમિઃ=મનોઙ્ઘઃ સ ઘાસૌ ગન્ધભેતિ સુરમિ

કહે ગયે છે કે વૃત્તાદિકોં મેં આયત કા હી પ્રાય સમાવેશ હોતા હૈ  
જેસે યહ સ્તન્મ દીર્ઘ હૈ ળાયત હૈ ષ્વસ્ત હૈ ગ્યસ્ત હૈ ળૌર ળતુરસ્ય હૈ  
ઇત્યાદિ, તયા ઘલપ કે આકાર જો સસ્થાન હોતા હૈ વહ પરિમઙ્ઢલ  
સંસ્થાન કહા ગયા હૈ યહ પરિમઙ્ઢલ સસ્થાન મી પ્કત્વ સસપાવિશિષ્ટ  
હૈ યઘપિ યહ પ્રતર ળૌર ઘન કે મેદ સે ઘો પ્રકાર કા હોતા હૈ ફિર મી  
યહ સામાન્ય કી અપેક્ષા સે પ્ક હી કહા ગયા હૈ, રૂપ કા હી નામ ઘર્ણ  
હૈ ળૌર યહ ઘર્ણ કૃષ્ણ નીલ લોહિત હારિદ્ર ળૌર શુક્લ કે મેદ સે પાચ  
પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ પીત (પીલે) ઘર્ણ કા નામ હારિદ્ર હૈ કૃષ્ણાદિ  
ઘર્ણો કે સંસર્ગ સે હી કપિષ્ઠાદિક ઘર્ણ ઘનતે છે ળતઃ ઇનકા પૃથકરૂપ  
સે કથન નહીં કિયા હૈ ઇન કૃષ્ણાદિકોં મેં સે પ્રત્યેક ઘર્ણ મેં પ્કતા  
સામાન્ય કી વિઘક્ષા સે હી કહી ગઈ જાનની ળાહિયે, સુરમિગઘ ળૌર  
દુરમિગઘ કે મેદ સે ગઘ ઘો પ્રકાર કા હોતા હૈ મનોઙ્ઘઘ કા નામ

બેરો કહા છે તે બે વાતને પ્રકટ કરવા માટે કહેવામાં આવેલ છે કે વૃત્તા  
દિકેમા આવતને સામાન્ય રીતે સમાવેશ થઈ જાય છે જેમકે આ સ્તભ  
વીધ છે, આયત છે, વૃત્ત છે અક્ષ છે અતુરસ્ય છે ઇત્યાદિ.

વલયના આકારના સસ્થાનને પરિમઙ્ઢલ સસ્થાન કહે છે તેના પચ્ચ  
પ્રતર બને ઘનના બેદથી બે પ્રકાર પડે છે પરંતુ સામાન્યની અપેક્ષાએ તેમાં  
બેકત્વ છે ઇપતું નામ જ વર્ણ છે તેના નીચે પ્રમાણે પાચ પ્રકાર કહા છે  
૧) કૃષ્ણવણ (૨) નીલવણ (૩) લાલવણ (૪) પીંગાવણ અને (૫) સફેદ  
વણ કૃષ્ણાદિ વણના સસર્ગથી જ કાપિષ્ઠાદિક વર્ણો બને છે તેથી જહીં  
તેમનુ અલગરૂપે કથન કયુ નથી. કૃષ્ણ આદિ પ્રત્યેક વણમાં સામાન્યની  
અપેક્ષાએ બેકત્વ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે અથવા બે પ્રકાર છે-(૧) સુરમિ  
ઘઘ, અને (૨) દુરમિગઘ મનોઙ્ઘ ઘઘને સુરમિ ઘઘ બને અમનોઙ્ઘ ઘઘને

गन्धः—शुभगन्धो मनोज्ञगन्ध इति यावत् । स च एकः । एकत्वं च सामान्यापेक्षया । तथा—दुरभिगन्धः—दुरभिः=अमनोज्ञः, स चासौ गन्धश्चेति दुरभिगन्धः—अशुभगन्धः अमनोज्ञगन्ध इति यावत् । स च एकः । एकत्वं सामान्यापेक्षया । अथ रसस्य पञ्च भेदानाह—‘ एगे तिक्ते ’ इत्यादिना । तत्र—तिक्तः, कटुकः, कषायः, अम्लः, मधुरः । तिक्तादिषु सामान्यविवक्षयैकत्वं बोध्यम् । लवणस्तु संसर्गजो रस इति पृथङ्नोक्तः । अथ स्पर्शस्य कर्कशादीन् अष्टभेदानाह—‘ एगे कक्कसे जाव लुक्खे ’ इत्यनेन । तत्र—कर्कशः=कठिनः, यावत्—यावत्करणात्—मृदु गुरुलघुशीतोष्णस्निग्धरूपाः । पट् स्पर्शा ग्राह्याः । तत्र—मृदुः=कोमलः । गुरुः=अधोगमशीलः । लघुः=प्रायस्तिर्यग्ध्वगमनशीलः । शीतः—स्तम्भनस्वभावः ।

सुरभिगन्ध और अमनोज्ञगन्ध का नाम दुरभिगन्ध है इनमें मनोज्ञगन्धरूप सुरभिगन्ध सामान्य की अपेक्षा से ही एक कहा गया है, और अमनोज्ञगन्धरूप दुरभिगन्ध भी सामान्य की अपेक्षा से एक कहा गया है, तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल और मधुर के भेद से रस पाँच प्रकार का कहा गया है इन तिक्तादिकों में सामान्य की विवक्षा से ही एकत्व कहा गया है यद्यपि लवण भी एक रस होता है परन्तु वह स्वतन्त्ररूप से रस नहीं होता है संसर्ग से जन्य होता है इसलिये इसे पृथक् रूप से रस नहीं कहा गया है “ एकके कक्कसे जाव लुक्खे ” कर्कश-कठिन यावत्-मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष इन भेदों से स्पर्श आठ प्रकार का होता है कोमल स्पर्श का नाम मृदु है अधोगमनशील स्पर्श का नाम गुरु है प्रायः तिर्यग् ध्वगमनशील स्पर्श का

दुरभिगन्ध कहे छे. ते प्रत्येक गन्धमा सामान्यनी अपेक्षाये ऐकत्व प्रकट करवाभा आण्युं छे.

रसना पाच प्रकार छे—( १ ) तिक्त ( तीक्ष्ण ), ( २ ) कटुवे, ( ३ ) कषाय ( तुरो ) ( ४ ) आटो अने ( ५ ) मधुरस ते प्रत्येकमां सामान्यनी अपेक्षाये ऐकत्व कडेवाभां आण्युं छे जे के लक्षण पण् ऐक रस छे, परन्तु तेने स्वतन्त्ररूपे रस कही शक्य तेम नथी, ते संसर्गजन्य होवाथी तेने अलगरीते रस गण्यो नथी. “ एकके कक्कसे जाव लुक्खे ” कर्कश ( कठिन ), मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध ( सुगणो ) अने रुक्ष ( भरभयडो ), आ लोहाथी स्पर्श आठ प्रकारने होय छे कोमल स्पर्शने मृदु स्पर्श कहे छे, अधोगमनशील स्पर्शने गुरु स्पर्श कहे छे, सामान्यत तिर्यग् ध्वगमनशील स्पर्शने लघु स्पर्श कहे छे, स्तम्भन स्वभाववाणा स्पर्शने शीत स्पर्श कहे छे.



ઉષ્ણો-દાહસ્વભાવઃ । સ્નિગ્ધઃ=ચિક્ષ્ણઃ સંયોગે સતિ સયોગિનાં ઘન્યકારણમ્ ।  
 રુક્ષઃ=નિ સ્નેહ , સયોગ સત્યપિ સંયોગિનામઘન્યકારણમ્ । કર્કશાદિપુ પ્રત્યેક  
 મેકત્વ સામાન્યધિવ્રત્તયા ઘોષ્યમિતિ ॥ સૂ૦ ૪૯ ॥

इस्य पुद्गलधर्माणामेकता मोक्षा । सम्प्रति पुद्गलसयुक्तजीवानां पेष्टादक्ष-  
 पापस्थानरूपा अप्रशस्तधर्मास्तेषां प्रत्येकमेकत्वं-‘ एगे पाणाइवाए ’ इत्यादिना  
 ‘ दसणसल्ले ’ इत्येतेन सन्दर्भेण प्रोच्यते—

मूलम्—एगे पाणाइवाए जाव एगे परिग्गहे । एगे कोहे  
 जाव लोमे । एगे पेजे एगे दोसे जाव एगे परपरिवाए । एगा  
 अरतिरती । एगे मायामोसे, एगे मिच्छादसणसल्ले ॥ सू० ५० ॥

छाया—एकः प्राणातिपातो यावत् एकः परिग्रहः । एकः क्रोधो यावत्

नाम लघु है स्तम्भन स्वभाव घाते स्पर्श का नाम शीत है दाहस्वभाव  
 घाते स्वभाय का नाम उष्ण है जो स्पर्श चिकना होता है वह  
 स्निग्ध स्पर्श है वह स्निग्ध स्पर्श संयोग के होने पर सयोगी पदार्थों  
 के भापस में पच होने में कारण होता है इन कर्कश आदि स्पर्शों  
 में से प्रत्येक स्पर्श में सामान्य की अपेक्षा से ही एकता है एसा  
 जानना चाहिये ॥ सू० ४९ ॥

इस प्रकारसे पुद्गलधर्मों में एकता कही । अब पुद्गल सयुक्त जीवोंके  
 जो अठारह पापस्थानरूप अप्रशस्तधर्म हैं उनमें प्रत्येक में एकता “ एगे  
 पाणाइवाए ” इत्यादि सूत्रद्वारा “ मिच्छादसणसल्ले ” इस अन्तिम  
 सूत्र तक के सदर्भ से कही जाती है

‘ एगे पाणाइवाए जाव एगे परिग्गहे ’ इत्या० ॥ ५० ॥

मूलार्थ—प्राणातिपात एक है यावत् परिग्रह एक है क्रोध एक है

કલક સ્વભાવવાળા સ્પર્શને ઉષ્ણ સ્પર્શ કહે છે મુલાના સ્પર્શને સ્નિગ્ધ સ્પર્શ  
 કહે છે આ સ્નિગ્ધ સ્પર્શને કારણે સયોગી પદાર્થો પરસ્પરમાં બંધાય છે આ  
 કઠશ આદિ પ્રત્યેક સ્પર્શમાં સામાન્યની અપેક્ષાએ એકત્વ છે, એમ સમજવું(૪૯)  
 આ પ્રમાણે પુદ્ગલ ધર્મોમાં એકતાનું પ્રતિપાદન કરીને હવે સુત્રકાર  
 પુદ્ગલ-સયુક્ત જીવોના જે ૧૮ પાપસ્થાનકરૂપ અપ્રશસ્ત ધર્મ છે તે પ્રત્યેકમાં  
 એકતાનું પ્રતિપાદન કરવા નિમિત્તે “ એગે પાણાઈવાએ ” થી શરૂ કરીને “ મિચ્છ-  
 દસણસલ્લે ’ પચન્તાનાં સુત્રોનું નિરૂપણ કરે છે—

एगे पाणाइवाए जाव एगे परिग्गहे ” इत्यादि ॥ ५० ॥

सुत्रार्थ—प्राणातिपात एक है, परिग्रह एक है क्रोध एक है, दोष

लोभः । एकं प्रेम एको द्वेषो यावत् एकः परपरिवादः । एकम् अरतिरति । एका मायामृषा, एकं मिथ्यादर्शनशल्यम् ॥ सू० ५० ॥

टीका—‘ एगे पाणाद्वाए ’ इत्यादि—

प्राणातिपातः—प्राणः=उच्छ्वासादयः, तेषाम्—अतिपातनं प्राणिभ्यो वियोजनं—प्राणातिपातो हिंसेत्यर्थः, उक्तं च—

“ पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च उच्छ्वासनिःश्वासमधान्यदायुः ।

प्राणादशीते भगवद्भिस्क्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥ इति ।

प्राणातिपातश्च द्रव्यभावभेदाद् द्विविधः, विनाशपरिताप संकलेश भेदाद् वा त्रिविधः । यद्वा—मनसा वाचा कायेन च प्राणातिपातस्य करणात् अनु-

यावत् लोभ एक है राग एक है द्वेष एक है यावत् पर परिवाद एक है रति अरति एक है मायामृषा एक है मिथ्यादर्शन शल्य एक है । ५० ।

टीकार्थ—उच्छ्वास आदिको का नाम प्राण है इन प्राणों का प्राणियों से अलग करना इसका नाम प्राणातिपात—हिंसा है ।

कहा भी है—“ पञ्चेन्द्रियाणि ” इत्यादि ।

पांच इन्द्रियों—स्पर्शन ५, रसना ४, घ्राण ३, चक्षु २, कर्ण,—तीन बल—मनोबल, वचनबल, कायबल,—श्वासोच्छ्वास, आयुः ये १० प्राण हैं इनमें से एकेन्द्रिय जीव के ४ प्राण होते हैं, दो इन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रियों तक के जीवों में क्रमशः एक एक इन्द्रिय की वृद्धि होने से ९ प्राण तक होते हैं और संज्ञी पञ्चेन्द्रियों में मनोबल की वृद्धि होने से १० प्राण हाते हैं इन यथा संभव प्राणों का घात करना

पर्यन्तना कषायो अेक छे, प्रेम अेक छे, द्वेष अेक छे, यावत् परपरिवाद अेक छे, रतिअरति अेक छे, मायामृषा अेक छे मिथ्यादर्शनशल्य अेक छे ॥५०॥

टीकार्थ—उच्छ्वास आदि इय १० प्राणु डोय छे आ प्राणुथी एवोने अलग ( रडित ) करवा तेनुं नाम प्राणातिपात ( हिंसा ) छे.

कछु पणु छे—“ पञ्चेन्द्रियाणि ” इत्यादि

पाच इन्द्रियो—स्पर्शेन्द्रिय, रसना, घ्राण, चक्षु अने कर्ण, त्रण भण-मनोभण, वचनभण अने कायभण, श्वासोच्छ्वास अने आयु, आ १० प्राणु गणाय छे तेमाथी अेकेन्द्रिय एवने आर प्राणु डोय छे, द्वीन्द्रियथी लघने असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्तना एवोमा कभश अेक अेक प्राणुनी वृद्धि यतां वधारेमां वधारेनव प्राणु सलवी शके छे अने संज्ञी पञ्चेन्द्रियोमा मनोभणनी वृद्धिनी अपेक्षाअे हस प्राणुनेा सहलाव डोय छे आ यथासलव प्राणुनेा घात करवो तेनु नाम प्राणातिपात ( हिंसा ) छे. प्राणातिपातना सुभ्य छे

मननान्च प्राणातिपातो नवविध । पुन क्रोधादिमहात् पदत्रिंशद्विधो वा भवति ।  
स प्राणातिपातश्च एक—एकत्वसख्यावान् । एकत्व च सामान्यमाश्रित्य बोध्यमिति  
मिथ्यादर्शनस्यपर्यन्तं बान्यम् । यावत्करणात् मृषावादादयो बाध्याः । उत्र—मृषा  
वाद—मृषावदन मृषावाद्—मिथ्यामापणमित्यर्थः । स च एकः । मृषावादश्च  
यद्यपि द्रव्यमात्रमहात् द्विविधः, अमृतोद्भाव १ मृतनिर्ह्वय २ वस्तवन्तस्यास ३

इसका नाम हिंसा है यह हिंसा रूप प्राणातिपात, द्रव्यप्राणातिपात और  
भावप्राणातिपात के भेद से दो प्रकार का कहा गया है

अथवा—विनाश, परिताप और स्रक्लेश के भेद से तीन प्रकार  
का भी कहा गया है ।

अथवा—मनसे हिंसा करना मनसे हिंसा कराना और मनसे हिंसा  
करनेवालेकी अनुमोदना करना, वचन से हिंसा करना, वचनसे हिंसा  
कराना और वचनसे हिंसा करनेवालेकी अनुमोदना करना कायसे हिंसा  
करना, कायसे हिंसा कराना और कायसे हिंसा करनेवालेकी अनुमोदना  
करना इस प्रकार से भी हिंसा के भेद होते हैं तथा क्रोधादि कषाय के  
साथ इनका गुणा करने से हिंसा के भेद ३६ हो जाते हैं इस तरह से  
इतने भेदों वाला भी प्राणातिपात एक रूप जो कहा गया है वह सामान्य  
की अपेक्षा लेकर ही कहा गया है इसी तरह का कषय मिथ्यादर्शन  
शस्य तक कह लेना चाहिये यावत् शब्द से मृषावाद आदिकों का ग्रहण  
हुआ है झूठ बोलने का नाम मृषावाद है इसका अपर नाम मिथ्यामा-  
पण भी है यह एकत्व सख्याविशिष्ट है यह मिथ्यामापण मृषावाद  
यद्यपि द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है

प्रकार छे—(१) द्रव्य प्राणातिपात अने (२) भाव प्राणातिपात अथवा विनाश,  
परिताप अने स्रक्लेशना सेइधी तेना नव्य प्रकार पञ्च कर्मां छे अथवा मनधी  
हिंसा करवी, मनधी हिंसा करायवी अने हिंसा करतारने मनधी अनुमोदना  
आपवी, वचनधी हिंसा करवी, वचनधी हिंसा करायवी हिंसा करतारने वच-  
नधी अनुमोदना आपवी, कायाधी हिंसा करवी, कायाधी हिंसा करायवी अने  
हिंसा करतारने कायाधी अनुमोदना आपवी, आ नकारे पञ्च हिंसाना नव  
सेह पठे छे तथा क्रोधादि आर कषायो वटे आ नव सेइतेना सुवृत्तार करवाभी  
इस उह सेह बाध छे आटका सेइवागा प्राणातिपातमां पञ्च से अनेकत्व  
कडेवाभां आन्धु छे ते सामान्यनी अपेक्षाने कडेवाभां आन्धु छे, जेभ  
समज्जुं जेव प्रकारुं कथन मिथ्यादर्शनशस्य सुधीना आपस्थानके विषे  
प्रकृत्य करु अर्था “यावत् (सुधी)” पठना प्रयोगद्वारा मृषावाद आदि  
आपस्थानके कडवु करवा अर्थजे.

निन्दाभिश्चतुर्विधो वा । तत्र-अभूतोद्भावनं यथा-‘ सर्वगत आत्मा ’ इति । भूत-  
निहवो-यथा-‘ नास्ति आत्मा ’ इति । वस्त्वन्तरन्यासो यथा-गौरपि सन्नश्वो-  
ऽयमिति । निन्दा यथा-कुट्टी त्वमसि-इति । तथा-अदत्तादानम्-अदत्तस्य-देव-  
गुरुराजस्वामिसाधर्मिकैरवितीर्णस्य-अननुज्ञातस्य-सचित्तचित्तमिश्रलक्षणस्य वस्तु  
नो यद् आदानं-ग्रहणमित्यर्थः । तच्च-एकम्=एकत्वसंख्याविशिष्टम् । तथा-मैथु-  
नम्-मिथुनस्य=स्त्रीपुंसलक्षणस्य यत्कर्म तन्मैथुनम्-अब्रह्मसेवनमित्यर्थः । औदा-

अथवा-अभूतोद्भावनं भूतनिहवर वस्त्वन्तरन्यासः और निन्दाऽ  
इस प्रकार से चार तरह का है इनमें जो वस्तु जैसी नहीं हो उसे उस  
प्रकारकी कहना इसका नाम अभूतोद्भावन है जैसे आत्माको सर्वव्यापि  
कहना मौजूदवरतु का अपलाप करना इसका नाम भूतनिहव है जैसे  
यह कहना कि आत्मा नहीं है वस्तु को विपरीतरूप से कथन करना  
इसका नाम वस्त्वन्तरन्यास है, जैसे गाय होते हुए भी उसे घोड़ा कहना,  
निन्दा करनेवाले वचन कहना इसका नाम निन्दा है जैसे तू कुट्टी  
(कोढवाला) है आदि, तथा देव गुरु राजा स्वामी एवं साधर्मिक जन  
इनके द्वारा अननुज्ञात (इनके आज्ञा विना) सचित्त अचित्त और मिश्र-  
वरतु का ग्रहण करना इसका नाम अदत्तादान है यह अदत्तादान भी  
एकत्व संख्याविशिष्ट है तथा स्त्री और पुरुष रूप मिथुन का जो कर्म है  
वह मैथुन है इसीका दूसरा नाम अब्रह्म सेवन है यद्यपि यह औदारिक

असत्य लापयुने भृषावाह कडे છે તેનું ણીણુ નામ મિથ્યાલાપણુ પણુ  
છે તે ભૃષાવાહના દ્રવ્ય અને લાવની અપેક્ષાએ બે ભેદ છે. અથવા (૧) અભૂ  
તોદ્ભાવન, (૨) ભૂતનિહવ, (૩) વસ્ત્વન્તરન્યાસ અને (૪) નિન્દા, આ પ્રમાણે  
તેના ચાર પ્રકાર પણુ છે. જે વસ્તુ જેવી ન હોય એવી કહેવી તેનું નામ  
અભૂતોદ્ભાવન છે જેમકે આત્માને સર્વગત કહેવો તે અભૂતોદ્ભાવન છે વિદ્ય-  
માન વસ્તુને અવિદ્યમાન કહેવી તેનું નામ ભૂતનિહવ છે. જેમકે “ આત્મા  
નથી ” આ પ્રમાણે કહેવું તે ભૂતનિહવ છે વસ્તુનું વિપરીત રૂપે કથન કરવું  
તેનું નામ વસ્ત્વન્તરન્યાસ છે જેમકે ગાયને ઘોડો કહેવો. નિન્દા કરનારા  
વચન બોલવા તેનું નામ નિન્દા છે જેમકે “ તું કોઠિયલ ( કોઠવાળો ) છે. ”  
છતાં મિથ્યાવાહમા સામાન્યની અપેક્ષાએ એકત્વ પ્રકટ કરવામાં આન્યું છે.  
હવે અદત્તાદાનનું સ્વરૂપ સમજવવામા આવે છે-દેવ, ગુરુ, રાજા, સ્વામી અને  
સાધર્મિકજનની આજ્ઞા લીધા વિના સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર વસ્તુને ગ્રહણ  
કરવી તેનું નામ અદત્તાદાન છે તે અદત્તાદાનમાં પણુ એકત્વ સમજવું.

સ્ત્રી અને પુરુષ સેવનરૂપ જે મિથુનકર્મ છે તેને મૈથુન કહે છે. તેનું  
બીજું નામ અબ્રહ્મસેવન છે. જે કે તે ઔદારિક અને વૈક્રિય આ બે શરી-

रिक्तवैक्रियशरीरद्वयमाहित्य मनोषाकायानां कृतकारितानुमोदितमदैरिद यद्यपि  
 अष्टादशविध भवति, विविधोपाधिवशाद् वा विविध भवति, तथापि सामान्यमा  
 भित्तयेकत्वं बोध्यम् । तथा-परिग्रहः-परिग्रहते=स्वीक्रियते इति परिग्रह । स ष  
 एकः । परिग्रहो बाह्याभ्यन्तरभेदेन द्विधा । तत्र-बाह्यः परिग्रहो धर्मोपकरणव्यक्ति-  
 रिक्तो धनभा-यद्विषयचतुष्पदादिरनेकधा । आभ्यन्तरस्तु मिथ्यात्वाविरतिरुपाय  
 प्रमादादिरनेकधा । यद्वा-परिग्रहण परिग्रह-मूच्छैत्यर्थः । तथा-क्रोधो यावत्  
 लोभ एक । यावत्पश्चाद् मानमाये च ग्राह्ये । क्रोधादयश्च जीवपरिगामा । एते

एवं वैक्रिय इत्य शरीरद्वय को आश्रित करके मन घबन और काय इनके  
 कृत कारित और अनुमोदना के भेद से १८ प्रकार का होता है ।

अथवा—विविध उपाधि के वशा से अनेक प्रकार का भी होता है  
 तब भी सामान्य की अपेक्षा से यह एकत्वसंख्याविशिष्ट कहा गया है  
 तथा परिग्रह जो स्वीकार किया जाता है वह परिग्रह है यह बाह्यपरि-  
 ग्रह और आभ्यन्तर परिग्रह के भेद से दो प्रकार का कहा गया है  
 इनमें धर्मोपकरणके व्यतिरिक्त जो धन धान्य द्विषय चतुष्पद आदि रूप  
 होता है वह याह्य परिग्रह है और यह अनेक प्रकार का होता है और  
 जो मिथ्यात्व अविरति कपाय प्रमाद आदि रूप होता है वह आभ्यन्तर  
 परिग्रह है यह आभ्यन्तर परिग्रह भी अनेक तरह का होता है ।

अथवा—मूच्छा का नाम परिग्रह है यह सब भी अपने २ सामान्य  
 की अपेक्षा एकत्वसंख्याविशिष्ट है तथा क्रोध यावत्-मान माया और

शान्ति अपेक्षासे मन, वचन अने काय द्वारा कृत, कश्चित् अने अनुभूतिमाना  
 लेशही १८ प्रकार के होते हैं, अथवा-विविध उपाधिनी अपेक्षासे अनेक  
 प्रकारके पक्ष होते हैं, जहां पक्ष सामान्यनी अपेक्षासे तेषां व्येकत्व जता  
 ववामां आभ्यु छ के वस्तुने स्वीकार (संज्ञक) करवामां आवे छ तेने  
 परिग्रह कहें छे जाह्यपरिग्रह अने आभ्यन्तर परिग्रहना लेशही तेना के  
 प्रकार कहा छे धनसाधन सिवायनां के धन, धान्य, द्विषय, चतुष्पद आदिना  
 परिग्रहने जाह्यपरिग्रह कहें छे, अने ते परिग्रह अनेक प्रकारने होव छे  
 तथा के मिथ्यात्व, अविरति, कपाय, प्रमाद आदिद्वय होव छे, ते परिग्रहने  
 आभ्यन्तर परिग्रह कहें छे ते आभ्यन्तर परिग्रह पक्ष अनेक प्रकारने होव  
 छे अथवा मूच्छाभावने पक्ष परिग्रह कहें छे ते जहां परिग्रहो पक्ष सामा-  
 न्यनी अपेक्षासे व्येकत्व संख्यावाजा छे.

च कपायमोहनीयकर्मपुद्गलोदयात् सजायन्ते । एते यद्यप्यनन्तानुबन्ध्यादिभेदाद्  
असख्याताध्यवसायस्थानभेदाद् वा बहुविधास्तथापि सामान्यमाश्रित्यैकत्वं बोध्य-  
मिति । तथा-प्रेम-प्रियस्य भावः कर्म वा प्रेम, तच्च-अनभिव्यक्तमायालोभ-  
लक्षणभेदस्वभावमासक्तिमात्रं बोध्यम् । एतच्च एकम् । तथा-द्वेषः-द्वेषणं द्वेषः,  
'दोष' इतिच्छायापक्षे दूषणं दोषः । स च-अनभिव्यक्तक्रोधमानलक्षणभेदस्वा-  
भावोऽप्रीतिमात्रम् । अयं च एकः । तथा-'यावत्' शब्दात् कलहः अभ्याख्यानं  
पैशुन्यं चेति त्रितयं ग्राह्यम् । तत्र-कलह-विग्रहः । अभ्याख्यानम्=असद्भूत-

लोभ ये चार कपाय मोहनीय कर्म के उदय से जीव में उत्पन्न होते हैं  
अतः ये जीव के विकृत परिणाम विशेष हैं । ये क्रोधादि रूप परिणाम  
अनन्तानुबन्धी आदि के भेद से अथवा असंख्यात अध्यवसायस्थानों  
के भेद से अनेक प्रकार के हैं फिर भी सामान्य की अपेक्षा से ही ये  
एकत्वसंख्या विशिष्ट हैं ऐसा कहा गया जानना चाहिये तथा राग प्रिय  
का जो भाव या कर्म है वह राग है इसमें माया और लोभ के लक्षण  
अनभिव्यक्त होते हैं और यह आसक्तिमात्र रूप होता है यह भी  
रूप से एकत्वसंख्या विशिष्ट द्वेष अनभिव्यक्त क्रोधमान वाला होता है  
और वह अप्रीतिमात्र रूप होता है यह भी सामान्य की अपेक्षा से  
एकत्व संख्याविशिष्ट कहा गया है यहाँ यावत् शब्द से कलह अभ्या  
ख्यान एवं पैशुन्य इन तीनों का ग्रहण हुआ है लडाई आदि का नाम

क्रोध, भान, माया અને લોભ, આ ચાર કપાય છે. મોહનીય કર્મના  
ઉદયથી જીવમાં આ કપાયોની ઉત્પત્તિ થાય છે તેથી તેઓ જીવના વિકૃત  
પરિણામ વિશેષરૂપ છે. તે ક્રોધાદિરૂપ પરિણામ અનન્તાનુબંધી આદિના ભેદથી  
અથવા અસંખ્યાત અધ્યવસાય સ્થાનોના ભેદથી અનેક પ્રકારના છે, છતાં પણ  
સામાન્યની અપેક્ષાએ તેમને એકત્વ સંખ્યાવાળા ગહેવામાં આંચ્યા છે.

પ્રિયનો જે ભાવ તેને પ્રેમ કહે છે. તેમાં માયા અને લોભનાં લક્ષણ  
અનભિવ્યક્ત હોય છે એટલે કે તેમાં માયા અને લોભરૂપ કારણોનો સદ્ભાવ  
હોતો નથી, પણ તે માત્ર આસક્તિરૂપ જ હોય છે તે પણ સામાન્યની અપે-  
ક્ષાએ એક છે દ્વેષ અનભિવ્યક્ત (અપ્રકટ) ક્રોધમાનવાળો હોય છે, અને  
તે માત્ર અપ્રીતિરૂપ જ હોય છે તે દ્વેષમાં પણ સામાન્યની અપેક્ષાએ એકત્વ  
હોય છે ત્યારબાદ વપરાયેલા "યાવત્" પદથી કલહ, અભ્યાખ્યાન અને  
પૈશુન્ય, આ ત્રણ પાપસ્થાનકો ગ્રહણ કરવામાં આંચ્યા છે. લડાઈ, ઝગડા  
આદિને કલહ કહે છે. અસદ્ભૂત (અવિદ્યમાન) દોષોનું આરોપણ કરવું

દોષારોપણમ્ । પૈશુન્ય=પરોક્ષે સદસદોષપ્રકરણમ્ । કલહાદિપુ પ્રત્યેકમેસ્ત્વર્ત્વમન્યા  
 વિશિષ્ટમ્ । તયા-પરપરિવાદ-પરેણા પરિવાદો=નિન્દા । સ ષ એક' । તયા-  
 અરતિરથી-અરતિષ્ રતિષ્ચેતિ દ્વન્દ્વઃ । તમ્-અરતિ-મોહનીયોદયાજ્ઞાત ઉદ્દેગલ્લ  
 ણશ્ચિત્તવિકાર' । રતિષ્ મોહનીયોદયજ્ઞ આનન્દલક્ષણશ્ચિત્તવિકાર । તન્ન એકમ્ ।  
 અરતિઃ રતિષ્ચેત્યુમયમપિ એકત્વેનામ વિવક્ષિતમ્ । યતો યમ ક્ષાપિ વિષય યા  
 રતિ સા વિષયાન્તરાપેક્ષયા અરતિર્મંવતિ । એવમેવ યમ ક્ષાપિ યા અરતિ સા  
 વિષયાન્તરાપેક્ષયા રતિર્મંવતિ । ઇત્ય ચ અરતિમેચરતિ, રતિમેચ ચારતિ વ્યપદિ

ફલહ છે અસદ્મૂલ દોષારોપણ કા નામ અમ્પાલયાન છે પરોક્ષ મેં સદ્  
 અસદ્ દોષો કા આરોપ કરના ( આલ શબ્દાના ) ઇસકા નામ પૈશુન્ય છે  
 ઇન કલહાદિકો મેં પ્રત્યેક મેં એકતા સામાન્ય કો અપેક્ષા સે ઇ કહી  
 ગઈ છે પરપરિવાદ-વૃત્તરો કો નિન્દા કરને રૂપ પરપરિવાદ મી સામાન્ય  
 કો અપેક્ષા સે એક છે તથા મોહનીય કે ઉદય સે ઉત્પન્ન હુઆ ઉદ્દેગ  
 લક્ષણશાલા જો ચિત્તવિકાર છે તસકા નામ અરતિ છે તયા મોહનીય કે  
 ઉદય સે ઉત્પન્ન હુઆ જો આનન્દરૂપ લક્ષણ શાલા ચિત્તવિકાર છે ઘ  
 રતિ છે અરતિ રતિ યે ઘોનો ઘઈ એકરૂપ સે વિવક્ષિત છુવ છે ક્યો  
 કિ જિમ કિસી મી વિષય મેં જીલ કો જો રતિ હોતી છે ઘઈ વિષયા  
 તર કો અપેક્ષા સે અરતિ હોતી છે ઇસી તરહ સે જિમ કિમી મી વિષય  
 મેં જો અરતિ હોતી છે ઘઈ વિષયાન્તર કો અપેક્ષા સે રતિ હોતી છે ઇસ

તેનુ નામ અભ્યાખ્યાન છે અને પરોક્ષરૂપે સાચા યોગ દોષેનુ આરોપણ  
 કરવુ અથવા અજ અહાવવુ તેનુ નામ પૈશુન્ય છે કલહ આદિમા સામાન્યની  
 અપેક્ષાએ એકત્વ કહેવામાં આવેલ છે પરિવાદ-ગ્રીલ લોકોની નિન્દા કરવા  
 રૂપ પરપરિવાદમાં પણ સામાન્યની અપેક્ષાએ એકત્વ પ્રકટ કરવામાં આંવુ છે,  
 એમ સમજવુ

મોહનીયતા ઉદયથી ઉત્પન્ન થયેલ ઉદ્દેગ લક્ષણયોગે જે ચિત્તવિકાર છે  
 તેને અરતિ કહે છે અને મોહનીયતા ઉદયથી ઉત્પન્ન થયેલ આનન્દરૂપ લક્ષણ  
 યોગે ચિત્તવિકારને રતિ કહે છે આ બન્નેને અહીં એકરૂપે પ્રકટ કર્યા છે,  
 કારણ કે જે કોઈ પણ વિષયમાં જીવને રતિ ઉત્પન્ન થાય છે તે વિષયાન્તરની  
 અપેક્ષાએ અરતિરૂપે પણ કાઠ અથ છે. એજ પ્રમાણે જે કોઈ વિષયમાં અરતિ  
 થાય છે તે વિષયાન્તરની અપેક્ષાએ રતિરૂપે પણ કાઠ અથ છે આ રીતે જે  
 રતિ દોષ તને જ અરતિ અને અરતિ દોષ છે તેને જ રતિ કહેવામાં આવે

शन्ति । अतश्चानयो रौपचारिकमेकत्वं बोध्यम् । तथा-मायामृषा-माया=कपटश्च  
मृषा=मिथ्या चेति द्वन्द्वः । यद्वा-मायया सहिता मृषा=मृषावाद्वा-मायामृषा=  
सकपटमसत्यवचनम् । सा च एका । 'मायामोसे' इति सूत्रे पुंस्त्वं प्राकृतत्वात् ।  
इदमुपलक्षणं-क्रोधमानलोभमृषारूपसंयोगदोषाणामपि । प्रेमादीनि विषयभेदेन  
अध्यवसायस्थानः भेदेन च यद्यपि बहुविधानि तथापि सामान्यापेक्षया एकत्वं  
बोध्यम् । तथा - मिथ्यादर्शनशल्यम्-मिथ्यादर्शनं=विपरीतदृष्टिः, तत् शल्य-  
मिव=वाणादि शल्यमिव शल्यं दुःखहेतुत्वात्, तच्च एकम् । मिथ्यादर्शनं यद्यपि  
आभिग्रहिकानाभिग्रहिकाभिनिवेशिकाऽनाभोगिकसांशयिकभेदात् पञ्चविधम्,  
उपाधिभेदाद् वा बहुतरभेदं, तथापि सामान्यापेक्षया एकम् ॥ सू० ५० ॥

तरह जो रति होती है वही अरति और जो अरति होती है वही रति  
कही जाती है इसलिये इनमें औपचारिक एकत्व है ऐसा जानना चाहिये,  
तथा-माया कपट, और मृषा मिथ्या । अथवा-मायासहित मृषावाद-  
कपटसहित असत्यवचन ये सब भी सामान्य अपेक्षासे एकत्वसंख्याविष्ट  
हैं । यह क्रोध, मान, लोभ और मृषारूप संयोगदोषोंका भी उपलक्षक है  
यद्यपि रागादिक विषयभेदसे और अध्यवसाय स्थानभेदसे अनेक प्रकार  
के होते हैं तब भी सामान्य की अपेक्षासे ही ये सब एकत्वसंख्याविशिष्ट  
कहे गये हैं । तथा-मिथ्यादर्शन शल्य विपरीतदृष्टिका नाम मिथ्यादर्शन  
है यह वाणादि शल्यकी तरह दुःखका हेतु होनेसे शल्य जैसी कही गई  
है यह भी सामान्य की अपेक्षा से एकत्वसंख्याविशिष्ट है यद्यपि  
मिथ्यादर्शन, आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, आभिनिवेशिक, अनाभो-  
गिक और सांशयिक के भेदसे पांच प्रकार का है अथवा उपाधि  
के भेद से अनेक प्रकार का भी है फिर भी सामान्य की अपेक्षा से  
ही यह एकत्वसंख्यावाला प्रकट किया गया है ॥ सू० ५० ॥

छे, ते कारणे ते अन्नेमां औपचारिक एकत्व छे, अम समञ्जु . अम प्रमाणे  
माया ( कपट ) अने मृषामिथ्या-माया सहित मृषावाद ( कपट सहित असत्य  
वचन ), आ अन्नेमां पणु सामान्यनी अपेक्षाअे एकत्व समञ्जु . ते क्रोध,  
मान, लोभ अने मृषारूप संयोग दोषोना पणु उपलक्षक छे जे के प्रेमादिक  
विषय भेदथी अने अध्यवसायस्थान भेदथी तेमना अनेक प्रकार पडे छे, छता  
पणु सामान्यनी अपेक्षाअे आ दरेकमां एकत्व अताववामा आण्युं छे

विपरीत दृष्टिने मिथ्यादर्शन कडे छे . ते तोभरादिक शल्यनी अम दु अतुं  
कारण अने छे, माटे तेने शल्य समान कडेले छे तेना नीचे प्रमाणे पात्र  
प्रकार छे-आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, आभिनिवेशिक, अनाभोगिक अने  
सांशयिक उपाधिना भेदथी ते अनेक प्रकारतुं पणु डोय छे छता पणु सामा-  
न्यनी अपेक्षाअे तेमा एकत्व अताववामां आण्यु छे . ॥ सू० ५० ॥



इत्यमष्टादश पापस्थानानि निरूपितानि, सम्पत्ति उद्विपक्षभूतानां प्राणाति-  
पातविरमगादीनामेकस्वमाह—

मूलम्—एगे पाणाइषायवेरमणे जाव परिग्गाहवेरमणे । एगे  
कोहविवेगे जाव मिच्छादसणसल्लविवेगे ॥ सू० ५१ ॥

छाया—एक प्राणातिपातविरमण यावत् परिग्रहविरमणम् । एकः क्रोधवि-  
धेको मिध्यादर्शनशक्यविवेकः ॥ सू० ५१ ॥

टीका—‘ एगे पाणाइषायवेरमणे ’ इत्यादि—

प्राणातिपातविरमणम्—प्राणातिपात=हिंसा, तस्माद् विरमण=विरति—  
अहिंसेत्यर्थः । तत्र एकम्—एकस्वसंख्याविशिष्टम् । यावत् शब्दात्—शृयावादनिर-  
मणाऽदस्तादानविरमणमधुनविरमणानि प्राणानि । तथा—क्रोधविवेका—क्रोधस्य

इस प्रकार से १८ पापस्थानों का एकस्व निरूपण किया जब उनके  
विपक्षभूत जो प्राणातिपात विरमण भावि हैं उनका एकत्व निरूपण  
किया जाता है

‘एगे पाणाइषाय वेरमणे’ इत्यादि ॥ ५१ ॥

मूलार्थ—प्राणातिपात विरमण एक है यावत् परिग्रहविरमण एक  
है क्रोधविवेक एक है यावत् मिध्यादर्शनशक्यविवेक एक है ॥५१॥

टीकार्थ—हिंसा का नाम प्राणातिपात है इस हिंसारूप प्राणातिपात  
से जो विरति हो जाती है उसका नाम प्राणातिपात विरमण है इसी  
प्राणातिपात विरमण का दूसरा नाम अहिंसा है यह एकस्व सव्याधि-  
श्राष्ट है यहाँ यावत् शब्द से शृयावादविरमण, अदस्तादानविरमण,

आ प्रकार १८ पापस्थानों का एकत्व निरूपण करीने के सूत्रकार  
तेमना विपक्षभूत जेवां प्राणातिपात विरमण आदिना एकत्व निरूपण करे छे

एगेपाणाइषायवेरमणे ” इत्यादि ॥ ५१ ॥

सूत्रार्थ—प्राणातिपात विरमणमं एकत्व छे ( यावत् ) परिग्रह विर-  
मण एक छे क्रोधविवेक ( क्रोधनो त्याग ) एक छे ( यावत् ) मिध्यादर्शन  
शक्यविवेक एक छे

टीकार्थ—हिंसाने प्राणातिपात कहे छे ते हिंसारूप प्राणातिपातधी इरे  
रहेवानी क्रियाइप विरतिने प्राणातिपात विरमण कहे छे तेनुं ज नीनु नाम  
अहिंसा छे तेमा अर्थां एकस्व प्रकट करवामां आवेस छे त्यागभाद के  
‘ यावत् ’ पदने प्रयोग कये छे तेमा द्वारा शृयावाद विरमण, अदस्तादान

विवेकः=त्यागः । यावत् शब्दात्-मानविवेको मायाविवेको लोभविवेकः प्रेमविवेको द्वेषविवेकः कलहविवेकः अभ्याख्यानविवेकः पैशुन्यविवेकः परपरिवादविवेकः अरतिरतिविवेको मायामृषाविवेकः, इत्येते ग्राह्याः । एकत्वं च सर्वत्र सामान्यापेक्षया बोध्यम् ॥ सू० ५१ ॥

इत्थं पुद्गलानां जीवधर्माणां चैकत्वमुक्तम् । सम्प्रति कालस्य स्थितिरूपत्वेन तद्वर्तत्वात् कालविशेषाणामेकत्वम्-‘ एगा ओसप्पिणी ’ इत्यादि-‘ एगा सुसमादुसमा ’ इत्यन्तेन सन्दर्भमाह—

मूलम्—एगा ओसप्पिणी । एगा सुसमसुसमा जाव एगा दूसमदूसमा । एगा उस्सप्पिणी । एगा दुस्समदुस्समा जाव एगा सुसमसुसमा ॥ सू० ५२ ॥

मैथुनविरमण इनकाग्रहण हुआ है तथा क्रोध के त्याग का नाम क्रोध विवेक है यहां पर भी यावत् शब्द से “ मानविवेक, मायाविवेक, लोभविवेक, प्रेमविवेक, द्वेषविवेक, कलहविवेक, अभ्याख्यानविवेक, पैशुन्य विवेक, परपरिवादविवेक, अरतिरतिविवेक, मायामृषाविवेक ” इनसब का ग्रहण हुआ है इन सब में एकता सामान्यकी अपेक्षा से जाननी चाहिये ॥ ५१ ॥

इस तरह से पुद्गलों के और जीव धर्मों के एकत्व को कहा, अब स्थितिरूप होने से कालके और कालके विशेषरूप कालों के एकत्व को “ एगा ओसप्पिणी ” यहां से लेकर “ एगा सुसम सुसमा ” यहां तक के संदर्भ द्वारा कहा जाता है ‘ एगा ओसप्पिणी इत्यादि ’ ॥ ५२ ॥

विरमणु अने मैथुन विरमणुने अडणु करवाभां आवेल छे. ते प्रत्येकभां पणु अेकत्व समञ्जुं. परिअड विरमणुमा पणु अेकत्व छे क्कधना त्यागने क्कध-विवेक क्कडे छे. अर्डी “ यावत् ” पदथी मानविवेक, मायाविवेक, लोभविवेक, प्रेमविवेक, द्वेषविवेक, कलहविवेक, अभ्याख्यानविवेक, पैशुन्यविवेक, परपरिवाद विवेक, रतिअरतिविवेक, अने मायामृषा विवेकने अडणु करवाभां आवेल छे. आ प्रत्येकभां तथा मिथ्यादर्शन शब्द विवेकभां अेकत्व डोय छे. ते षधामां सामान्यनी अपेक्षाअे अेकत्व ढाणुं. ॥ सू० ५१ ॥

आ रीते पुद्गलाना अने जीवधर्माना अेकत्वनुं प्रतिपादन करीने डवे स्थितिरूप होवाने लीधे क्कणनु अने क्कणना लेहोना अेकत्वनुं “ एगा ओस-प्पिणी ” थी लधने “ एगा सुसमसुसमा ” पर्यन्तना सूत्रे द्वारा निरूपणु करवाभां आवे छे—“ एगा ओसप्पिणी ” इत्यादि ॥ ५२ ॥

छाया—एका अवसर्पिणी । एका सुपमसुपमा यावत् एका दुष्पमदुष्पमा ।  
एका उत्सर्पिणी । एका दुष्पमदुष्पमा यावत् एका सुपमसुपमा ॥ सू० ५२ ॥

टीका—‘ एगा ओसर्पिणी ’ इत्यादि—

षड्गुणवर्णकश्लोकादिषु पुष्पाङ्गमो नियमेन दृश्यते, तन्नियामकश्च काल एव,  
अतः कालस्य सत्ता निश्चीयते । स च कालोऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीमेतद् द्विविधः ।  
तत्रावसर्पिण्या एकत्वं यक्तुमाह—‘ एगा ओसर्पिणी ’ इति । अवसर्पिणी—अवस  
र्पति=हीयमानारक्तयाऽवक्रामतीत्यर्थं श्लोका । यद्वा—अवसर्पिणी=प्रवसर्पयति=  
आयुष्कश्चरीरादिभाषान् हापयति स्वरुदीकरोतीत्येवं श्लोका । अवसर्पिणी च दृश्य  
सागरोपम कोटीकोटिममाणः कालविशेषः । सा च एका । एकत्वं चास्याः स्वरु  
पेणैकत्वाद् बोध्यमिति । अवसर्पिण्यां हि समस्ता अपि शुभा भावाः क्रमेण मन  
न्तगुणतया हीयन्ते । अष्टमामाराः क्रमेणानन्तगुणतया परिवर्द्धन्ते ॥ इति ।

मूलार्थ—अवसर्पिणी एक है सुपम सुपमा एक है यावत् दुष्प  
मदुष्पमा एक है उत्सर्पिणी एक है दुष्पमदुष्पमा एक है यावत् सुपम  
सुपमा एक है ।

टीकार्थ—षड्गुणवर्णक श्लोक आदि कों में जो पुष्पोद्गम नियम  
से देखनेमें आता है सो इसका नियामक काल ही है अतः इससे काल  
की सत्ता का निश्चय होता है यह काल अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी के  
मेव से दो प्रकार का होता है इनमें अवसर्पिणीकाल एकत्वं सक्याधि  
शिष्ट है जिसकाल में आयुष्क शरीरादि भावों की हीनता होती जाती  
है उसकाल का नाम अवसर्पिणी काल है यह काल १० कोटीकोटी  
सागरोपम का है इसमें जो एकता कही गई है वह स्वरूप की अपेक्षा  
से कही गई है अवसर्पिणीकाल में समस्त ही शुभ भाव अनन्त

सूत्रार्थ—अवसर्पिणी जेक ठे, सुपमसुपमा जेक ठे, (यावत्) दुष्पम  
दुष्पमा जेक ठे उत्सर्पिणी जेक ठे, दुष्पमदुष्पमा जेक ठे, (यावत्)  
सुपमसुपमा जेक ठे

टीकार्थ—जडुत यथा, अशोक आदि पुष्पि आनवानी किंवा नियमित  
रीते जडुत समये यथा करे ठे तेने नियामक काण जे आ रीते काणनी  
सत्ता पुरवार याव ठे ते काण अवसर्पिणी अने उत्सर्पिणीना जेकथी जे  
प्रकारने ठे ते काणभां आयुष्य, शरीरादि भावोनी हीनता यती जय ठे,  
ते काणने अवसर्पिणीकाण करे ठे ते १० कोटीकोटी सागरोपम प्रमादु टोय  
ठे ते अवसर्पिणी काणभां स्वरुपनी अपेक्षाजे जेकी जेकत्वं प्रकट करवाभां  
आ जु ठे आ अवसर्पिणी काणभां समस्त शुभ भाव अनन्तगुण तय

સંમ્પતિ અવસર્પિણી ભેદાનાં સુષમસુષમાદીનાં પળ્ળાં પ્રત્યેકમેકત્વં પ્રરૂપયિતુ-  
માહ—‘એગા સુષમસુષમા’ ઇત્યાદિ । સુષ્ટુ=શોભનાઃ સમા વર્ષાણિ યસ્યાં સા  
સુષમા, સા ચાસૌ સુષમા ચેતિ સુષમસુષમા । યદ્વા—સુષ્ટુ સમા સુષમા, અત્યન્તં સુષમા  
સુષમસુષમા । દ્વયોઃ સામાનાર્થયોઃ પ્રકૃટાર્થવાચકૃત્વાત્ અત્યન્તસુષમા અત્યન્તસુલ્-  
સ્વભાવા ઇતિ યાવત્ । સા ચ એકા એકત્વં ચાસ્યાઃ સ્વરૂપેણૈકત્વાત્ । એવં સુષમા-  
દિષ્વપિ એકત્વં વોધ્યમ્ । હ્ય ચાવસર્પિણ્યાઃ પ્રથમારકે ભવતિ । અસ્યાઃ પ્રમાણં તુ  
ચતુઃસાગરકોટીકોટયાત્મકં વોધ્યમિતિ । યાવચ્છબ્દેન—‘એગા સુસમા, એગા  
સુસમદુસસમા, એગા દુસસમસુસમા, એગા દુસસમા’ ઇતિ ચત્વારો ભેદા ગ્રાહ્યાઃ ।

ગુણરૂપ સે ઘટતે જાતે હૈં ઓર અશુભભાવ ક્રમ સે અનન્તગુણરૂપ સે  
વહતે જાતે હૈં । યહ અવસર્પિણીકાલ ૬ ભેદોં વાલા હોતા હૈં ઇનમેં પ્રથમ  
ભેદ સુષમસુષમા હૈ યહાં સુષમસુષમા યે દોનોં શબ્દ સમાન અર્થવાલે  
હૈં સમા શબ્દ કા અર્થ વર્ષ હોતા હૈં અચ્છે વર્ષ કા નામ સુષમા હૈં અચ્છે  
વર્ષ જિસકાલ મેં હોતે જાતે હૈં વહ સુષમસુષમા હૈં સુષમા સુષમા એસે  
યે દો શબ્દ હૈં જો અત્યન્ત સુલ્સ્વભાવ કે વાચક હૈં અર્થાત્ જિસકાલ  
મેં અત્યન્ત સુલ્સ્વભાવવાલે વર્ષ હોતે હૈં વહ સુષમ સુષમા કાલ હૈં હસ  
કાલ મેં સ્વરૂપ સે એકના હૈં એસા જાનના ચાહિયે યહ સુષમસુષમાકાલ  
અવસર્પિણી કે પ્રથમ આરક મેં હોતા હૈં હસકા પ્રમાણ ચાર કોડાકોડી  
સાગર કા હૈ યહાં યાવત્ શબ્દ સે “એગા સુસમા, એગા સુસમદુસસમા  
એગા દુસસમસુસમા, એગા દુસસમા” ઇન ચાર ભેદોં કા ગ્રહણ હુઆ હૈં ।

બય છે, અને અશુભ ભાવ ક્રમે ક્રમે અનન્તગણા વધતાં બય છે. તે અવ-  
સર્પિણી કાળના નીચે પ્રમાણે છ લેહ પડે છે.

(૧) સુષમસુષમા—આ પદમાં બન્ને શબ્દો સમાન અર્થવાળાં છે.  
‘સમા’ એટલે ‘વર્ષ’ સારા વર્ષને સુષમા કહે છે. જે કાળમાં સારાં વર્ષો  
આવે છે, તે કાળને સુષમસુષમા કહે છે. સુષમા સુષમા આ બે શબ્દો અત્યન્ત  
સુખસ્વભાવના વાચક છે કહેવાનું તાત્પર્ય એ છે કે જે કાળમાં અત્યન્ત  
સુખસ્વભાવવાળાં વર્ષો આળ્યા કરે છે, તે કાળનું નામ સુષમસુષમાકાળ છે.  
આ કાળમાં સ્વરૂપની અપેક્ષાએ એકતા સમજવી જોઈએ. આ સુષમસુષમાકાળ  
અવસર્પિણીના પહેલા આરકમાં (આરામા) આવે છે. તે ચાર કોડાકોડી  
સાગર પ્રમાણનો હોય છે અહીં ‘યાવત્’ પદથી નીચેના ચાર લેહોને ગ્રહણ  
કરવામાં આળ્યા છે “એગા સુસમા, એગા સુસમદુસસમા, એગા દુસસમસુસમા,  
એગા દુસસમા” સુષમસુષમા કાળ પછી સુષમા કાળ શરૂ થાય છે. તે કેવળ

તપ-સુપમા=મુલસ્વમાત્રા । એકત્વં ઘાસ્વાઃ સ્વરૂપેણૈકત્વાદ્ બોધ્યમ્ । અસ્વાઃ પ્રમાણ ત્રિસાગરકોટીકોટપાત્મક બોધ્યમ્ । इत्यवसर्पिण्या द्वितीयारकः २ ।

૧ તથા-સુપમદુષ્પમા-દુષ્ટુ સમા-દુષ્પમા, યદ્વા-દુષ્ટુ=દુઃસ્વાત્મકાઃસમા વર્ષાંબિ પસ્યાં સા દુષ્પમા, સુપમા ઘાસૌ દુષ્પમા ચેતિ સુપમદુષ્પમા । સુપમાનુભાવબહુલા અલ્પદુષ્પમાનુભાવેત્યર્થઃ । સા ઘેકા । અસ્વા પ્રમાણ ત્રિસાગરકોટીકોટપાત્મકમ્ । इत्यवसर्पिण्यास्तृतीयारकः ३ ।

તથા-દુષ્પમસુપમા-દુષ્પમા ઘાસૌ સુપમા ચેતિ દુષ્પમસુપમા । દુષ્પમાનુભાવ બહુલાઅલ્પસુપમાનુભાવેત્યર્થઃ । इय च एका । अस्वा प्रमाणं तु त्रिषत्वारिंशद्वर्ष सप्तोन्नमेकमागरकોटीकोटपातमकं बोध्यम् । इत्यवसर्पिण्याचतुर्थारकः ४ ।

સુપમસુપમા કાલ કી અપેક્ષા જો કેવલ સુસ્વસ્વભાવ ઘાલા કાલ હોતા હૈ વહ સુપમા કાલ હૈ હસમેં મી એકત્વ સ્વરૂપ કી અપેક્ષા સે કહા ગયા હૈ પેસા જાનના આદિયે હસકા પ્રમાણ ૩ કોટકોટી સાગર કા હૈ સુપમદુષ્પમા વહ અવસર્પિણી કા તૃતીય આરક હૈ હસમેં સુસ્વાનુભવ બહુલરૂપ સે ધૌર દુઃસ્વાનુભવ અલ્પરૂપ સે હોતા હૈ વહ મી સ્વરૂપ કી અપેક્ષા સે એક હૈ હસકા પ્રમાણ વો સાગરોપમ કોટકોટી કા હૈ દુષ્પ મસુપમા વહ અવસર્પિણી કા ચૌથા આરક હૈ હસમેં દુઃસ્વાનુભવ બહુલ ધૌર સુસ્વાનુભવ અલ્પ હોતા હૈ વહ મી સ્વરૂપતઃ એક હૈ હસકા પ્રમાણ ૪૨ હજાર વર્ષ કમ ૧ કોટકોટી સાગરકા હૈ દુષ્પમા-વહ દુઃસ્વસ્વરૂપ ભાવલા હોતા હૈ વહ મી સ્વરૂપતઃ એક કહા ગયા હૈ હસકા પ્રમાણ ૧૧ હજાર વર્ષ કા હૈ વહ અવસર્પિણી કા પાંચવા આરક હૈ દુષ્પમદુષ્પમ

સુખસ્વભાવવાળો જ હોય છે તેમાં પણ સ્વરૂપની અપેક્ષાએ એકત્વ સમજવું એકલે. તે સુખમાત્રણ વેદાકોટી આગર પ્રમાણવાળો હોય છે અવસર્પિ-ણીના ત્રીજા આશને સુખમદુષ્પમાકાળ કહે છે તેમાં અધિક પ્રમાણમાં સુખનો અને અલ્પ પ્રમાણમાં દુષ્પનો અનુભવ થાય છે તે બે કોટકોટી આગર-પ્રમાણવાળો હોય છે તેમાં પણ સ્વરૂપની અપેક્ષાએ એકત્વ સમજવું અવ સર્પિણીના ચોથા આશને દુષ્પમસુપમા કાળ કહે છે તે ચોથા આશમાં દુષ્પનો અધિક અને સુખનો અલ્પ અનુભવ થાય છે તે એક કોટકોટી આગર કરતાં ૪૨ લાખ વધુ ન્યૂન પ્રમાણવાળો છે તેમાં પણ સ્વરૂપની અપેક્ષાએ એકત્વ સમજવું અવસર્પિણીના પાંચમાં આશને દુષ્પમા કાળ કહે છે આ આશમાં હવે દુષ્પનો જ અનુભવ કરે છે, તે ૨૧ લાખ વર્ષનો કાલો છે અને તેમાં

તથા-દુષ્પમા=દુઃસ્વસ્વભાવા । સા ચ એકા । અસ્યાં પ્રમાણમ્ એકવિંશતિવર્ષ-  
સહસ્રાત્મકં વોધ્યમ્ । इत्यवसर्पिण्याः पञ्चमारकः ५ ।

તથા-દુષ્પમદુષ્પમા-અત્યન્તદુઃસ્વસ્વભાવા । સા ચૈકા । અસ્યા અપિ પ્રમાણ-  
મેકવિંશતિસહસ્રવર્ષાત્મકં વોધ્યમ્ । इत्यवसर्पिण्याः षण्ठारकः ६ ॥ इत्यवसर्पिणी ॥

અથ સમ્બેદામુત્સર્પિણીં નિરૂપયતિ-‘ એગા ઉત્સર્પિણી ’ ઇત્યાદિ । ઉત્સર્પિણી-  
ઉત્સર્પન્તિ શુભા ભાવા અસ્યામિતિ । ઉત્સર્પન્તિ=વર્દ્ધતે અરકાપેક્ષયા, યા સા-ઉત્સ-  
ર્પિણી । યદ્વા-ઉત્સર્પયતિ-વર્દ્ધયતિ ક્રમેણાયુષ્કશરીરાદિ ભાવાનિતિ ઉત્સર્પિણી ।  
સા ચૈકા । એકત્વમુત્સર્પિણ્યાઃ સ્વરૂપેનૈકત્વાદ્ વોધ્યમ્ એવં-દુષ્પમદુષ્પમાદિઘ્વપ્યે-  
કત્વં વોધ્યમ્ । ઉત્સર્પિણ્યાં હિ ક્રમેણ શુભા ભાવા અનન્તગુણતયા વર્દ્ધન્તે, અશુભા  
ભાવાશ્ચ ઠીયન્તે ઇતિ । इह यावच्छब्देन-‘ એગા દૂસમા, એગા દૂસમસુસમા,  
એગા સુસમા દૂસમા, એગા સુસમા ’ ઇતિ દ્રષ્ટવ્યમ્ । તથાચ-ઉત્સર્પિણ્યાઃ પઢ્

यह अत्यन्त दुःस्वस्वरूप होता है इस का भी प्रमाण २१ हजार वर्ष का है  
यह अवसर्पिणी का छठा आरक है ।

### ભેદ સહિત ઉત્સર્પિણી કા નિરૂપણ

जिस काल में शुभ भावों की वृद्धि होती जाती है उसका नाम  
उत्सर्पिणी है अथवा जिसमें क्रमशः आयुष्क शरीर आदिका की वृद्धि  
होती जाती है उसका नाम उत्सर्पिणी है यह उत्सर्पिणी भी स्वरूपतः  
एकत्व संख्याविशिष्ट है दुष्पमदुष्पमादिकों में भी इसी तरह से एक-  
त्व कहा गया जानना चाहिये इस उत्सर्पिणी काल में क्रमशः अरकों  
की अपेक्षा शुभभाव अनन्तगुणरूप से बढ़ते रहते हैं और अशुभभाव  
अनन्तगुणरूप से घटते रहते हैं । यहां यावत् शब्द से “ एगो दूसमा  
एगो दूसमसुसमा एगो सुसमादूसमा एगो सुसमा ” इनका ग्रहण

સ્વરૂપની અપેક્ષાએ એકત્વ ઇત્યાદિ એ અવસર્પિણીના છઠ્ઠા આરાને દુષ્પમ-  
દુષ્પમા કહે છે. આ આરા અત્યન્ત દુઃસ્વસ્વરૂપ હોય છે. તેનું પ્રમાણ પણ  
૨૧ હજાર વર્ષનું કહ્યું છે તેમાં પણ સ્વરૂપની અપેક્ષાએ એકત્વ સમજવું જોઈએ

ઉત્સર્પિણીકાળ અને તેના ભેદોનું નિરૂપણ—

જે કાળમાં શુભ ભાવનાઓની વૃદ્ધિ થતી જાય છે, તે કાળને ઉત્સર્પિણી  
કહે છે અથવા જેમા ક્રમશઃ આયુષ્ય, શરીર વગેરેની વૃદ્ધિ થતી જાય છે,  
તે કાળને ઉત્સર્પિણી કહે છે. તે ઉત્સર્પિણીમા પણ સ્વરૂપની અપેક્ષાએ એકત્વ  
સમજવું જોઈએ. તેના દુષ્પમદુષ્પમાદિક ભેદોમાં પણ સામાન્યની અપેક્ષાએ  
એકત્વ સમજવું. આ ઉત્સર્પિણી કાળમાં ક્રમશઃ એક પછી એક આરામા  
શુભ ભાવ અનન્તગણાં વધતા જાય છે અને અશુભ ભાવ અનન્તગણાં ઘટતાં  
જાય છે અહીં “ યાવત્ ” પદથી “ એગા દૂસમા, એગા દૂસમસુસમા, એગા સુસમા-

भारकाः सतीति बोध्यम् । ते यथा—दुष्पमदुष्पमा १, दुष्पमा २, दुष्पमसुपमा ३, सुपमदुष्पमा ४, सुपमा ५, सुपमसुपमा ६, इति दुष्पमदुष्पमादीनामर्थं पूर्ववद् बोध्यः । दुष्पमदुष्पमादीनां प्रत्येकमेकस्वरूपविशिष्टं बोध्यम् । परिभाषमासां पूर्ववद् बोध्यम् । इत्युत्सर्पिणी ॥ सू० ५२ ॥

इत्य जीवपुद्गलकालरूपाणां द्रव्याणां विविधधर्मविशेषा एकत्वेनोक्ताः । सम्प्रति सप्तारिगुक्तजीवपुद्गलानां द्रव्यविशेषाणां नारकपरमान्नादीनां समुदायलक्षणधर्मस्य एकत्वं ' एगा नेरइयाण वग्गणा ' इत्यारभ्य ' एगा भजइण्णुकोसयुत्तल्लक्षाम पोग्गलाण वग्गणा ' इत्यन्तेन सन्दर्भेण प्रकल्प्यते—

मूलम्—एगा नेरइयाण वग्गणा, एगा असुरकुमाराण वग्गणा, चउवीसदइओ जाव वेमाणियाण वग्गणा ॥ १ ॥

एगा भवसिद्धियाण वग्गणा, एगा अभवसिद्धियाण वग्गणा, एगा भवसिद्धियाण नेरइयाण वग्गणा, एगा अभवसिद्धियाण नेरइयाण वग्गणा, एव जाव एगा भवसिद्धियाण वेमाणियाण वग्गणा, एगा अभवसिद्धियाण वेमाणियाण वग्गणा ॥ २ ॥

एगा सम्महिट्टियाण वग्गणा, एगा मिच्छहिट्टियाण वग्गणा, एगा सम्मामिच्छहिट्टियाण वग्गणा । एगा सम्महिट्टियाण णेरइयाण वग्गणा, एगा मिच्छहिट्टियाण णेरइयाण

हुआ है इस तरह चरसर्पिणी काल के ये ६ भारक होते हैं । इनमें दुष्पमदुष्पमा १, दुष्पमा २, दुष्पमसुपमा ३ सुपमदुष्पमा ४, सुपमा ५ और सुपमसुपमा ६ ये इनके नाम हैं । इन सब का अर्थ पूर्व की तरह से है । तथा इनका परिमाण भी जैसा पहिले कहा गया है वैसा ही जानना चाहिये ॥ सू० ५२ ॥

इसमा एगा सुसमा ” आ सूत्रपाठ अठसु करणाम् आभ्यो छे आ शीते उत्सर्पिणी भागना नीचे प्रभावे छे आरा छे—(१) दुष्पमदुष्पमा, (२) दुष्पमा (३) दुष्पमसुपमा (४) सुपमदुष्पमा, (५) सुपमा अने (६) सुपमसुपमा आ उन्नेनो अर्थ पढेला इह्य भुज्ज समज्जेवा. ते अयेकं प्रभावे पञ्च पढेला इह्य अनुत्तर समज्जेव ॥ सू० ५२ ॥

वग्गणा, एगा सम्ममिच्छद्विद्वियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एवं जाव थणियकुमाराणं वग्गणा । एगा मिच्छाद्विद्वियाणं पुढविकाइयाणं वग्गणा एवं जाव वणस्सइकाइयाणं । एगा सम्मद्विद्वियाणं वेइंदियाणं वग्गणा, एगा मिच्छद्विद्वियाणं वेइंदियाणं वग्गणा । एवं तेइंदियाणं पिचउरिंदियाणवि । सेसा जहा नेरइया जाव एगा सम्ममिच्छद्विद्वियाणं वेमाणियाणं वग्गणा ॥ ३ ॥

एगा कण्हपक्खियाणं वग्गणा, एगा सुक्कपक्खियाणं वग्गणा । एगा कण्हपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एगा सुक्कपक्खियाणं णेरइयाणं वग्गणा । एवं चउत्तीसदंडओ भाणियव्वो।४।

एगा कण्हलेस्साणं वग्गणा, एगा नीललेस्साणं वग्गणा, एवं जाव सुक्कलेस्साणं वग्गणा । एगा कण्हलेस्साणं नेरइयाणं वग्गणा जाव काउलेस्साणं णेरइयाणं वग्गणा । एवं जस्स जइ लेस्साओ । भवणवइवाणमंतरपुढवि आउवणस्सइकाइयाणं च चत्तारिलेस्साओ तेउवाउवेइंदिय तेइंदिय चउरिंदियाणं तिन्नि लेस्साओ, पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं छल्लेस्साओ, जोइसियाणं एगा तेउलेसा, वेमाणियाणं तिन्नि उवरिमलेस्साओ ॥ ५ ॥

एगा कण्हलेस्साणं भवसिद्धियाणं वग्गणा, एवं छसु वि लेस्सासु दो दो पयाणि भाणियव्वणि । एगा कण्हलेस्साणं भवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा, एगा कण्हलेस्साणं अभवसिद्धियाणं णेरइयाणं वग्गणा । एवं जस्स जइ लेस्साओ तस्स तइ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं ॥ ६ ॥



एगा कणहलेस्साणसम्मादिट्ठियाणवग्गणा, एगा कणहले  
स्साणंमिच्छदिट्ठियाणं वग्गणा, एगा कणहलेस्साणं सम्मामिच्छ  
दिट्ठियाणं वग्गणा । एव छसु वि लेस्सासु जाव वेमाणियाणं  
जेसिं जइ दिट्ठियो ॥ ७ ॥

एगा कणहलेस्साण कणहपक्खियाणं वग्गणा, एगा कणह  
लेस्साणं सुक्खपक्खियाणं वग्गणा, जाव वेमाणियाणं जस्स जइ  
लेस्साओ । एए अट्ट चउवीसदइया ॥ ८ ॥

एगा तिस्थसिद्धाण, वग्गणा, एव जाव एगा एगसिद्धाणं  
वग्गणा, एगा अणेगसिद्धाण वग्गणा, एगा अपढमसमयसि  
द्धाण वग्गणा एवं जाव अणंतसमयसिद्धाणं वग्गणा । एगा  
परमाणुपोग्गलाण वग्गणा एव जाव एगा अणत्तपएसियाण  
खधाण वग्गणा । एगा एगपएसोगाहाण पोग्गलाण वग्गणा ।  
जाव एगा असखेज्जपएसोगाहाण वग्गणा । एगा एगसमयठि  
इयाण पोग्गलाण वग्गणा । जाव असखेज्जसमयट्ठिइयाणं  
पोग्गलाणं वग्गणा । एगा एगगुणकालगाणं पोग्गलाणं  
वग्गणा जाव एगा असखेज्जगुणकालगाणं वग्गणा, अणत्तगुण  
कालगाण पोग्गलाण वग्गणा । एव वण्णा गधा रसा फासा  
भाणियव्वा जाव अणंतगुणल्लुक्खाण वग्गणा । एगा जहसपए  
सियाण स्रधाण वग्गणा, एगा ठक्कोसपएसियाण खधाण वग्गणा,  
एगा अजहन्नुक्कोसपएसियाण खधाणां वग्गणा, । एव जहसो

गाहणयाणं उक्कोसोगाहणयाणं अजहन्नुक्कोसोगाहणयाणं, जह-  
न्नट्टिइयाणं उक्कोसट्टिइयाणं अजहन्नुक्कोसट्टिइयाणं, जहन्नगुणका-  
लगाणं उक्कोसगुणकालगाणं अजहन्नुक्कोसगुणकालगाणं ।  
एवं वणणगंधरसफासाणं वर्गणा भाणियव्वा, जाव एगा अज-  
हन्नुक्कोसगुणलुक्खाणं पौउगलाणं वर्गणा ॥ सू० ५२ ॥

छाया—एका नैरयिकाणां वर्गणा, एका असुरकुमाराणां वर्गणा, चतुर्विंशति-  
दंडको यावद् वैमानिकानां वर्गणा ॥ १ ॥

एका भवसिद्धिकानां वर्गणा, एका अभवसिद्धिकानां वर्गणा, एका भवसिद्धि-  
नैरयिकाणां वर्गणा, एका अभवसिद्धिकानां नैरयिकाणां वर्गणा, एवं यावत् एका  
भवसिद्धिकानां वैमानिकानां वर्गणा, एका अभवसिद्धिकानां वैमानिकानां वर्गणा ॥२॥

एका सम्यग्दृष्टिकानां वर्गणा, एका मिथ्यादृष्टिकानां वर्गणा, एका सम्यग्-  
मिथ्यादृष्टिकाणां वर्गणा । एका सम्यग्दृष्टिकानां नैरयिकाणां वर्गणा, एका मिथ्या-  
दृष्टिकानां नैरयिकाणां वर्गणा, एका सम्यग्मिथ्यादृष्टिकानां नैरयिकाणां वर्गणा एवं  
यावत् स्तनितकुमाराणां वर्गणा । एका मिथ्यादृष्टिकानां पृथिवीकायिकानां वर्गणा,  
एवं यावद् वनस्पतिकायिकानाम् । एका सम्यग्दृष्टिकानां द्वीन्द्रियाणां वर्गणा, एका  
मिथ्यादृष्टिकानां द्वीन्द्रियाणां वर्गणा । एवं त्रीन्द्रियाणामपि चतुरिन्द्रियाणामपि ।  
शेषा यथा नैरयिका यावत् एका सम्यग्मिथ्यादृष्टिकानां वैमानिकानां वर्गणा ॥३॥

एका कृष्णपाक्षिकाणां वर्गणा, एका शुक्लपाक्षिकाणां वर्गणा । एका कृष्ण-  
पाक्षिकाणां नैरयिकाणां वर्गणा, एका शुक्लपाक्षिकाणां नैरयिकाणां वर्गणा । एवं  
चतुर्विंशतिदण्डको भणितव्यः ॥ ४ ॥

एका कृष्णलेश्यानां वर्गणा, एका नीललेश्यानां वर्गणा, एवं यावत् शुक्ल-  
लेश्यानां वर्गणा । एका कृष्णलेश्यानां नैरयिकानां वर्गणा यावत् कापोतलेश्यानां  
नैरयिकाणां वर्गणा । एवं यस्य यावत्पौलेश्याः । भवनपतिव्यन्तरपृथिव्यव्यवन-  
स्पतिकायिकानां च चतस्रो लेश्याः, तेजोवायुद्वीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां तिस्रो लेश्याः,  
पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां मनुष्याणां षड् लेश्याः, ज्योतिषिकाणामेका तेजोलेश्या,  
वैमानिकानां तिस्र उपरितनलेश्याः ॥ ५ ॥

एका कृष्णलेश्यानां भवसिद्धिकानां वर्गणा, एव षट्स्रवपि लेश्यासु द्वे द्वे पदे  
भणितव्ये । एका कृष्णलेश्यानां भवसिद्धिकानां नैरयिकाणां वर्गणा, एका कृष्ण-  
लेश्यानाम् अभवसिद्धिकानां नैरयिकाणां वर्गणा । एवं यस्य यावत्पौ लेश्याः, तस्य  
तावत्पौ भणितव्या यावद् वैमानिकानाम् ॥ ६ ॥

एका कृष्णलेश्यानां सम्यग्दृष्टिकानां वर्गणा, एका कृष्णलेश्यानां मिथ्यादृष्टिकानां वर्गणा, एका कृष्णलेश्यानां सम्पन्निध्यादृष्टिकानां वर्गणा । एवं पट्टस्त्रपि लेश्यासु यावद् वैमानिकानां, येषां यावत्स्यो दृष्टयः ॥ ७ ॥

एका कृष्णलेश्यानां कृष्णपाक्षिकाणां वर्गणा, एका कृष्णलेश्यानां शुक्लपाक्षिकाणां वर्गणा, यावद् वैमानिकानां, यस्य यावत्स्यो लेश्याः एते अष्ट चतुर्बिम्बितदृष्टकाः ॥ ८ ॥

एका तीर्थसिद्धानां वर्गणा, एव यावत् एका एकसिद्धानां वर्गणा, एका अनेकसिद्धानां वर्गणा, एका अपयमसमय सिद्धानां वर्गणा, एव यावत् अनन्तसमयसिद्धानां वर्गणा । एका परमाणुपुद्गलानां वर्गणा, एवं यावत् एका अनन्तमदेशिकानां स्कन्धानां वर्गणा । एका एकप्रदेशावगाढानां पुद्गलानां वर्गणा, यावत् एका असंख्येयप्रदेशावगाढानां पुद्गलानां वर्गणा । एका एकसमयस्थितिकानां पुद्गलानां वर्गणा, यावत् असंख्येयसमयस्थितिकानां पुद्गलानां वर्गणा । एका एकगुणकालकानां पुद्गलानां वर्गणा, यावत् एका असंख्येयगुणकालकानां पुद्गलानां वर्गणा, अनन्तगुणकालकानां पुद्गलानां वर्गणा । एव यथा गन्धा रसा स्पर्शा भणितव्या यावत् अनन्तगुणरूपाणां पुद्गलानां वर्गणा एका अघन्यप्रदेशिकानां स्कन्धानां वर्गणा, एका उत्कर्षप्रदेशिकानां स्कन्धानां वर्गणा, एका अजघन्योत्कर्षप्रदेशिकानां स्कन्धानां वर्गणा । एवं जघन्यावगाहनकानाम् उत्कर्षावगाहनकानाम् अजघन्योत्कर्षावगाहनकानां, जघन्यस्थितिकानाम्, उत्कर्षस्थितिकानाम् अजघन्योत्कर्षस्थितिकानां, अघन्यगुणकालकानाम् उत्कर्षगुणकालकानाम् । एवं वर्णगणरसस्पर्शानां वर्गणा भणितव्या, यावत् एका अजघन्योत्कर्षगुणरूपाणां पुद्गलानां वर्गणा ॥ १०५२ ॥

टीका—'पगा नेरइयाणं' इत्यादि—

नैरयिकाणाम्—निर्गताः अयात्=सावधेदनीयाविरूपात् श्रुमादिति निरयाः, नरकावासाः=वेपु मवा नैरयिकाः ते च पृथिवीमस्तटनरकावासस्थितिमन्वत्वादि

इस प्रकार से जीव पुद्गल और काल इन द्रव्यों के विविध धर्मविशेषों को एकत्र संख्यायिदिष्ट कहे । अब ससारी जीव मुक्त जीव और पुद्गलद्रव्यविशेषों के तथा नारक परमाणु आदिकों के समुदाय रूप धर्म की एकता का कथन "पगा मेरइया ण" आदि सूत्र से लेकर के

आ रीते एव, पुद्गल अने काल आ द्रव्योना विविध धर्मविशेषां ज्येष्ठत्वं प्रतिपादन करीने हवे ससारी एव, मुक्त एव अने पुद्गल द्रव्य विशेषोना तथा नारक परमाणु आदिकोना समुदायधर्म धर्मोनी ज्येष्ठत्वं प्रति

ભેદાદનેકવિધાઃ, તેર્ષા વર્ગાનાં=રાશિઃ એકા = એકત્વસંખ્યાવિશિષ્ટા । એકત્વં ચ નારકત્વપર્યાયસામ્યાદ્ વોધ્યમ્ । એવમગ્રેડપિ સર્વત્ર તત્તત્પર્યાય સામ્યાદેકત્વં વોધ્યમ્ । તથા—અસુરકુમારાણામ્—અસુરાશ્ચ તે કુમારાશ્ચેતિ અસુરકુમારાઃ, કુમારત્વં

“ એગા અજહણ્ણુક્કોસગુણલુક્કલાણં પોગ્ગલાણં વગ્ગણા ” હસ અન્તિમ સંદર્ભ દ્વારા કરતે હેં—‘ એગા નેરહ્યાણં વગ્ગણા ’ ઇત્યાદિ ॥ ૫૨ ॥

ટીકાર્થ—સાતાવેદનીય આદિ શુભરૂપ કર્મોં સે જો સ્થાન નિર્ગત -રહિત હોતે હેં વે નિરય હેં યહાં નિર શબ્દ કા અર્થ નિર્ગતિ હેં ઓર અય શબ્દ કા અર્થ સાતાવેદનીય આદિરૂપ શુભકર્મ હેં ઇન નિરયોં મેં નરકાવાસોં મેં જો હોતે હેં વે નૈરયિક્ક હેં અર્થાત્ ઇન નરકાવાસોં મેં જો જન્મ લેતે હેં વે નારક હેં । યે નારક, પૃથિવી, પ્રસ્તર નરકાવાસ, સ્થિતિ ઓર ભવ્યત્વાદિ કે ભેદ સે અનેક પ્રકાર કે હોતે હેં । વર્ગણા નામ રાશિ કા હેં હસ તરહ નૈરયિક્કોં કી રાશિ એકત્વસંખ્યાવિશિષ્ટ હેં યહ એકત્વ ડનમેં નારકપર્યાય કી સમાનતા કો લેકર કહા ગયા હેં । હસી તરહ સે આગે મી અપની ૨ પર્યાય કી સમાનતા કો લેકર એકત્વ સમ-દ્ધના ચાહિયે તથા અસુરકુમારોં કી વર્ગણામેં મી એકતા હેં, ઇન અસુરોં કો જો કુમાર કહા ગયા હેં ડસકા કારણ ઇનકા સદા નવયુવક જૈસે

પાદન “ એગા નેરહ્યાણં ” આ સૂત્રથી લઇને “ એગા અજહણ્ણુક્કોસગુણલુક્કલાણં પોગ્ગલાણં વગ્ગણા ” આ સૂત્ર પર્યન્તના સદર્ભમા કરવામાં આવે છે.

“ એગા નેરહ્યાણં વગ્ગણા ” ઇત્યાદિ ॥ ૫૩ ॥

ટીકાર્થ—સાતાવેદનીય આદિ શુભરૂપ કર્મોંથી જે સ્થાન નિર્ગત (રહિત) હોય છે, તે સ્થાનને ‘ નિરય ’ કહે છે. અહીં ‘ નિઃ ’ શબ્દનો અર્થ નિર્ગતિ (રહિતતા) છે, અને ‘ અય ’ નો અર્થ સાતાવેદનીય આદિરૂપ શુભ કર્મ છે. આ નિરયોમાં ( નરકાવાસોમાં ) જન્મ લેનારા જીવોને નૈરયિક્કો કહે છે નૈર-યિક્કોતું ખીચ્ચું નામ નારકો છે. તે નારકો પૃથ્વી, પ્રસ્તર, નરકાવાસ, સ્થિતિ અને ભવ્યત્વ આદિના લેહથી અનેક પ્રકારના હોય છે. રાશિને વર્ગણા કહે છે. આ રીતે નૈરયિક્કોની રાશિને એકત્વ સંખ્યાવાળી કહી છે. નારક પર્યાયની સમાનતાની અપેક્ષાએ તેઓમા એકત્વ કહું છે. એજ પ્રમાણે આગળ પણ પોતપોતાની પર્યાયની સમાનતાની અપેક્ષાએ જ એકત્વ સમજવું. અસુરકુમા-રોની વર્ગણામાં પણ આ દૃષ્ટિએ જ એકત્વ સમજવું જોઇએ. આ અસુરોને

वैषां नवपौत्रनतया कुमारसादृश्येन षोडशम् । तेषां वर्गणा पक्षा । एषमेव षतुर्विंशतिदण्डकः=चतुर्विंशतिपदमतिवद्वा दण्डको=वाक्यपरचनाविशेषो षक्तव्यः । षतुर्विंशतिदण्डकश्च—

‘नेरइया १ असुराई १०, पुढवाइ ५ येईदियादओ वेष ४ ।

नर १ वंतर १, जोइसिय १ धमाणी १ दडभो एवं ॥”

छाया—नैरयिका असुरादि पृथिव्यादि द्वीन्द्रियादयथैव ।

नरो व्यन्तरो ज्योतिषिको वैमानिको दण्डक एवम् ॥ इति ।

वृषभ—भवनपक्षयो दशविधा भवन्ति । तथाहि—

“असुरा१, नागर, सुवर्णा३, विज्जू४, अग्नी५, य दीवद, उदही७, य ।  
दिसि८, पवण९, यभिय१०, नामा, दसहा एष भवणवासी ॥”

पने रहना है इसीलिये इनमें कुमार का सादृश्य होने से इन्हें कुमार कहा गया है इसी प्रकार से चतुर्विंशति दण्डकस्थ जीवों की वर्गणा में भी एकत्र समझना चाहिये चतुर्विंशतिपद प्रतिपद जो वाक्यपरचना विशेष है उसका नाम चौबीसदण्डक है वह चतुर्विंशति दण्डक इस प्रकार से है—‘नेरइया’ इत्यादि ।

नैरयिक का एकदण्डक, असुरकुमार आदि दशका दशदण्डक १० पृथिवीकायिक आदि पांच स्थावर का पांच दण्डक५, दो इन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रियोंका तीन (भावि शब्दसे) तिर्यच पञ्चेन्द्रियका एक दण्डक इस तरह चार दण्डक ४, नर १, व्यन्तर १, ज्योतिषिक १, वैमानिक १, इस प्रकारसे ये २४ दण्डक है ।

कुमार कडेवानुं कारणु जे छे के तेजो सदा नवधुवक केवां देजाव छे आरीते कुमारे। अने तेमनी वध्ने नवभौवनरूप सुखणी समानता देवाधी तेमने अमुरकुमारे कर्वा छे जेअ प्रभावे २४ दंडकस्थ एवानी वरंवाभां पदु जेअव समकतु जेअजे २४ पद दारा प्रतिपद जे वाक्यपरचना विशेष छे, तेने चौबीस दंडक कडे छे ने चौबीस दंडक नीअ प्रभावे छे—

‘नेरइया’ इत्यादि

नारकेतु जेअ दंडक, अमुरकुमारादि इस भवनपति देवोना इस दंडक, पृथ्वीकायिक आदि धावरना पांच दंडक द्वीन्द्रियकी अतुर्विंशति पर्यन्तना विकलेन्द्रियना त्रसु अने पञ्चेन्द्रिय तिय धातुं जेअ जेम आर दंडक, अतुथोतु जेअ दंडक, व्यन्तरानुं जेअ दंडक, ज्योतिषकेतु जेअ अने वैमानिकेतु जेअ दंडक आ प्रभावे कुत्र २४ दंडक छे

छाया—असुरा नागसुपर्णा विद्युत् अग्निश्च द्वीप उदधिश्च ।

दिक्पवन स्तनितनामानो दशधा एते भवनवासिनः ॥ इति ॥

एतदनुसृत्य चतुर्विंशतिः सूत्राणि वक्तव्यानि । क्रियद्वधि वक्तव्यानि ? इत्याह—‘ जाव ’ इत्यादि—वैमानिकानां वर्गणा एका बोधयेति । एषः सामान्य-दण्डकः । ननु नारकवर्गणाया यदेकत्वमुक्तम्, तदसंगतम्, नारकसत्ताया एव दुरु-पपादत्वात् । तथाहि—नारका असद्भूताः, तत्साधक प्रमाणाभावात्, शशशृङ्गव-दिति । अनेनानुमानप्रमाणेन गम्यते, यत् नारक जीवा न सन्तीति चेत्, उच्यते—

असुरकुमारादि१० हस प्रकार से हैं—‘ असुरा नागसुवर्णा ’ इत्यादि ।

असुरकुमार१, नागकुमार२, सुवर्णकुमार३, विद्युत्कुमार४, अग्नि-कुमार५, द्वीपकुमार६, उदधिकुमार७, दिशाकुमार८, वायुकुमार९, और स्तनितकुमार१० इन पदों का अनुसरण करके २४ दण्डक कह लेना चाहिये ये चौबीस सूत्र कहां तक कहना चाहिये—इसके लिये कहा गया है—‘ जाव वैमाणिया वर्गणा ’ वैमानिकवर्गणा तक ये २४ दण्डक कहना चाहिये यह सामान्य दण्डक है ।

शंका—आपने जो नारक वर्गणा में एकत्व कहा है वह असंगत है क्योंकि नारकों की सत्ता ही सिद्ध नहीं है तथाहि—नारकों के साधक प्रमाण का अभाव होने से नारक हैं ही नहीं जैसे साधक प्रमाण के अभाव से शशशृङ्ग नहीं है ?

असुरकुमारादि १० दंडके नीचे प्रमाणे छे—

“ असुरा नागसुवर्णा ” इत्यादि

(१) असुरकुमार (२) नागकुमार (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार (८) दिशाकुमार (९) वायु कुमार अने (१०) स्तनितकुमार

आ पढेने अनुसरिने २४ सूत्र डोवा जेधये. “जाव वैमाणिया वर्गणा” ते २४ सूत्र कथां सुधी डोवा जेधये ? तो सूत्रकार कडे छे के वैमानिक वर्गणा पर्यन्तना २४ दंडक सूत्र कडेवा जेधये. आ सामान्य दंडक छे.

शंका—आपे नारक वर्गणामा जे एकत्व प्रकृत कथुं छे ते असंगत लागे छे, कारण के नारकेतु अस्तित्व न सिद्ध थतुं नथी. नारकेना साधक प्रमाणेना अभाव डोवाथी नारकेतुं अस्तित्व न नथी जेभ मानी शक्य छे जेभ साधक प्रमाणेना अलावे, ससलाने शिंशडा डोता नथी जे वात मानवी पडे छे, जे रीते नारकेतु अस्तित्व पषु नथी, जेभ मानवाभां शो वाधे छे ?



भवसिद्धियाणं' इत्यादि। भवसिद्धिकानां-भविष्यतीति भवा=भाविनी, सा सिद्धिः=निर्वृतिर्येषां ते भवसिद्धिकाः=भव्याः, तेषां वर्णणा एका। तद्धिन्ना अभवसिद्धिका=अभव्यास्तेषामपि वर्णणा एका। भवसिद्धिकाभवसिद्धिकाभ्यां विशेषितानां चतुर्विंशतिदण्डकस्थपदानामैकैरस्य वर्णणा एका बोध्येति भावः।

इति द्वितीयश्चतुर्विंशति दण्डकः ॥ २ ॥

अथ सम्यग्दृष्टिकादि वर्णनानामेकत्वमाह—'एगा सम्मादिद्वियाणं' इत्यादि। सम्यग्दृष्टिकानां-सम्यक्=अविपरीता दृष्टिः=दर्शनं-तत्त्वं प्रति रुचिर्येषां ते सम्यग्दृष्टिकास्तेषां वर्णणा एका। मिथ्यात्वमोहनीयक्षयक्षयोपशमोपशमेभ्यः सम्यग्दृष्टिका भवन्ति। तथा-मिथ्यादृष्टिकानां-मिथ्या=विपरीता जिनोक्ततत्त्वेषु श्रद्धा

से उसी को कहा जाता है—“एगा भवसिद्धिया णं” इत्यादि जिन्हें आगे सिद्धि निर्वृत्ति ( मोक्ष ) प्राप्त होती है वे भवसिद्धिक भव्य जीव हैं इनकी वर्णणा राशि एकत्व संख्याविशिष्ट है भवसिद्धिकों से जो भिन्न हैं वे अभवसिद्धिक हैं अभव्य हैं इन अभव्यसिद्धिकों की वर्णणा भी एक है भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक इन दोनों से विशेषित चतुर्विंशति दण्डकस्थपदोंके एकर पदकी वर्णणा एकत्व संख्याविशिष्ट है यह द्वितीय चतुर्विंशति (चौबीस) दण्डकर “एगा सम्मादिद्वियाणं” इत्यादि-जिनकी दृष्टि-दर्शन तत्त्व के प्रति रुचि अविपरीत होती है उनका नाम सम्यग्दृष्टिक है इन सम्यग्दृष्टिकों की वर्णणा-एकत्व संख्याविशिष्ट होती है मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षय क्षयोपशम और उपशम से जीव सम्यग् दृष्टिक होते हैं। तथा जिनोक्त तत्त्वों में जिनकी

आ रीते २४ दंडकुं सामान्यरूपे निरूपणु करीने हुवे विशेषरूपे अनुज प्रतिपादन करवामां आवे छे—“एगा भवसिद्धियाणं” इत्यादि. जेने लविध्यमां सिद्धि-निवृत्ति ( मोक्ष ) प्राप्त थवानी छे, ते लुवोने भवसिद्धिक ( लव्य लुवो ) कडे छे. तेमनी वर्णणा ( राशी ) मां ऐकत्व समजवुं लवसिद्धिकाथी भिन्न जेवा जे अलवसिद्धिका छे, तेमनी वर्णनामा पणु ऐकत्व समजवुं. लवसिद्धिक अभवसिद्धिक, आ णन्ने पढोथी विशेषित ( युक्त ) २४ दंडकस्थ पढोना प्रत्येक पढनी वर्णनामां ऐकत्व समजवुं जेथजे. आ द्वितीय चौबीस दंडक थरुं ॥२॥

“एगा सम्मादिद्वियाणं” इत्यादि जेमनी दृष्टि जैन तत्व प्रत्ये अविपरीत रुचिवाणी डोय छे, जेवा लुवोने सम्यग्दृष्टिक कडे छे ते सम्यग्दृष्टिकानी वर्णनामा. पणु ऐकत्व समजवुं मिथ्यात्व मोहनीय कर्मता क्षयोपशमथी जेने उपशमथी लव-सम्यग्दृष्टिक जने छे. जैन तत्वोमा जेने श्रद्धा डोती नथी



रहिता दृष्टिः=दर्शनं-रुचिः पेपां ते मिथ्या दृष्टिकाः-मिथ्यात्वमोहनीयोदयाद्  
मिनवषनेषु भद्रानरहिताः ।

तेषां वर्गणा एका । तथा-सम्यग्मिथ्यादृष्टिकानां-सम्यक् च मिथ्या च  
दृष्टिर्येषां ते सम्यग्मिथ्यादृष्टिकाः - ये मिथ्यमोहनीयोदयाज्जिनमणीतत्त्वेषु  
अर्धविशुद्धभद्रानवन्त इत्यर्थः, तेषां वर्गणा एका भवतीति । सम्यग्मिथ्यादृष्टि  
जीव एवं प्रतिपद्यते, तथाहि-भ्रूयससारसमुद्रान्तराले विपरिवर्तमानो क्षीवोऽ  
नाभोगनिर्वर्तितेन गिरिसरिदुपक्रयोलनाकल्पेन यथा-प्रवृत्तिकरणेन अन्तः साग

दृष्टि अद्वा विपरीत होती है-जिनोक्त तत्त्वों में जिन्हें अद्वा नहीं होती  
है वे मिथ्यादृष्टिक हैं इन जीवों को मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उद्वय  
होता है इसलिये इन्हें जिनोक्त तत्त्वों में अद्वा नही होता है इनकी  
वर्गणा भी एकत्व सरूपाविशिष्ट है तथा जो सम्यग् मिथ्यादृष्टिक जीव  
हैं अर्थात् जिनके अद्वा नमें मिथ्यमोहनीय कर्म के उद्वय से न पूर्णरूपसे  
शुद्धि है और न अशुद्धि है अर्थात् जिन प्रणीततत्त्वोंमें अर्धविशुद्ध अद्वा  
से जो युक्त हैं ऐसे वे जीव सम्यग् मिथ्यादृष्टिक हैं, इनकी वर्गणा भी  
एक है जीव इस सम्यग् मिथ्यादृष्टिक को इस प्रकार से प्राप्त करता है  
जपार ससार रूपी समुद्र के भीतर गोते खाता हुआ जीव जिस प्रकार  
से प्रवाहित नदी के भीतर पड़ा हुआ पत्थर उसके प्रवाह से इधर से  
उधर रगड़ता हुआ गोल हो जाता है इसी प्रकार से अनाभोग द्वारा  
निर्घर्षित यथा प्रवृत्तिकरण से मिथ्यात्व वेदनीय कर्म की स्थिति को एक

जिनोक्त तत्त्वोभां जेनी इष्टि अद्वा रदित डोय छे, जेबां लोवोने मिथ्यादृष्टिक  
कडे छे ते लोवोभां मिथ्यात्व मोहनीय कर्मना उद्वय डोय छे, तेनी ते लोवोने  
जिनोक्त तत्त्वो प्रत्ये अद्वा उत्पन्न भवती नथी ते मिथ्यादृष्टिकोनी वर्तुषाभां  
पञ्च ज्येष्ठत्व समञ्जुं ज्येष्ठजे.

मिथ्यमोहनीय कर्मना उद्वयधी जेने जिनोक्त तत्त्वो प्रत्ये पूज्यूपे अद्वा  
पञ्च नथी अने पूज्यूपे अद्वा पञ्च नथी जेरवे के जेनी अद्वाभां पूज्यूपे  
शुद्धि पञ्च नथी अने अशुद्धि पञ्च नथी-जिन प्ररूपित तत्त्वोभां जे अर्ध  
विशुद्ध अद्वाधी युक्त छे जेबां लोवोने सम्यग्मिथ्यादृष्टिक कडे छे तेमनी वर्तु  
षाभां पञ्च ज्येष्ठत्व सम १७

एव आ सम्यग्मिथ्यादृष्टित्व आ प्रभावे छे-जेनी शीते नदीना प्रवा  
हभां पट्टी पत्थर तेना प्रवाहभां बसझतो बसझतो बोणप्रारूपे जनी अय  
छे, जेव प्रभावे जपार ससारूपी समुद्रभां ब्रमजु करतो-अर्थां जातो एव  
अनाभोग द्वारा निवर्तित यथा प्रवृत्तिकरणधी मिथ्यात्व वेदनीय कर्मनी

નીયં-કર્મ સમુપાર્જયતિ । તસ્ય કર્મણઃ  
 ઠરણાનિવૃત્તિકરણાભિધાનાભ્યાં વિશુ-  
 રકરણં કરોતિ । અન્તરકરણે કૃતે સતિ  
 ન્તરકરણાદધસ્તની સ્થિતિઃ પ્રથમસ્થિતિઃ  
 ઠરણાદુપરિતની દ્વિતીયસ્થિતિઃ । તત્ર  
 ઠ્ મિથ્યાદૃષ્ટિર્ભવતિ । અન્તર્મુહૂર્તેન તુ  
 મય એવ ઔપગમિકસમ્યક્ત્વં પ્રાપ્નોતિ,

૧ દેતા હૈ અર્થાત્ યથા પ્રવૃત્તિકરણ  
 ૧ કર્મ્મ કી ૭૦ કોઢાકોઢી સાગરોપમ  
 ઠરોપમ કે ખીતર ૨ કર લેતા હૈ ॥  
 અન્તર્મુહૂર્ત તક ઉદય કે વાદ અપૂર્વ  
 ઢો વિશુદ્ધિયો કે ઢારા અન્તર કરણ  
 ઠલ ખી એક અન્તર્મુહૂર્ત કા હોતા હૈ  
 ઠર્મ્મ કી ઢો સ્થિતિયાં હોતી હૈ । અન્તઃ  
 ઠિ હૈ વહ પ્રથમ સ્થિતિ હોતી હૈ યહ  
 ઠસી અન્તરકરણ સે જો ઉપરિતની  
 અન્તર્મુહૂર્ત કી હોતી હૈ પ્રથમસ્થિતિ  
 કરતા હૈ હસસે વહ મિથ્યાદૃષ્ટિ હોતા  
 યતિ સમાસ હો જાતી હૈ તવ અન્તર

હ અન્તર્મુહૂર્તના નામ ... યતિ સમાસ હો જાતી હૈ તવ અન્તર

સ્થિતિને એક સાગરોપમ કોટાકોટિથી પણ કંઈક ન્યૂન પ્રમાણવાળી બનાવી  
 હે છે. એટલે કે યથા પ્રવૃત્તિકરણના પ્રભાવથી તે મિથ્યાત્વ મોહનીય કર્મની  
 ૭૦ કોટાકોટી સાગરોપમની સ્થિતિને ઘટાડીને ૧ સાગરોપમ પ્રમાણ કરતાં  
 પણ એછા પ્રમાણવાળી બનાવી નાખે છે. ત્યારબાદ તેના ઢારા, તે કર્મની  
 સ્થિતિના અન્તર્મુહૂર્ત પર્યન્તના ઉદય બાદ અપૂર્વકરણ અને અનિવૃત્તિકરણ  
 નામની બે વિશુદ્ધિઓ ઢારા અન્તરકરણ કરાય છે. આ અન્તરકરણનો કાળ પણ  
 એક અન્તર્મુહૂર્તનો હોય છે આ અન્તરકરણ કરવાથી તે કર્મની બે સ્થિતિઓ  
 થાય છે અન્તકરણથી નીચેની બે સ્થિતિ થાય છે, તે પ્રથમ સ્થિતિ ગણાય  
 છે. તે અન્તર્મુહૂર્તમાત્રની જ હોય છે તથા એજ અન્તરકરણથી બે ઉપરિતની  
 બીજી સ્થિતિ હોય છે તે પણ એક અન્તર્મુહૂર્તની જ હોય છે પ્રથમ સ્થિતિમા  
 એવ મિથ્યાત્વ દલિલોતું વેદન કરે છે, તેથી તે મિથ્યાદૃષ્ટિ રહે છે અન્ત  
 મુહૂર્ત કાળ પછી બ્યારે તે સ્થિતિ સમાસ થઈ જાય છે ત્યારે અન્તરકરણના  
 પ્રથમ સમયમા જ એવ ઔપશમિક સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરે છે, કારણ કે તે

मिथ्यात्वदलिकयेदनाया अमायात् । यथा हि दावानलः पूर्वदग्धे घनम् ऊपरं वा  
 देशमवाप्य विध्यापति तथा मिथ्यात्ववेदनामिरन्तरकरणमवाप्य विध्यापतीति ।  
 तदेवमौपधिविशेष सद्यः सम्यक्त्वमासाद्य मदनकोद्रवस्थानीयं दर्शनमोहनीयम्  
 अशुद्ध कर्म त्रिविधं भवति—अशुद्धम् अधविशुद्ध विशुद्ध चेति । तेषां प्रयाणां पुञ्जानां  
 स्वमागीयः पृथक् पृथक् पुञ्जो भवति । तत्र यथा जीवस्यार्धविशुद्धः पुञ्जः समु  
 द्धेति, तदा तस्य तदुदयवशाद्दर्शविशुद्धमर्द्धदृष्टतरणप्रदानं भवति । तेन तदाज्ज्ञौ  
 सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्भवति अन्तर्मुहूर्त्तौचिभिः । एत ऊर्ध्वं स जीवः सम्यक्त्वपुञ्ज

करण के प्रथम समय में ही जीव औपशमिक सम्यक्त्व को प्राप्त करता  
 है क्यों कि उस समय में मिथ्यात्व दलिकों के घेदन का अभाव रहता  
 है जिस प्रकार दावानल पूर्वदग्ध ईन्धन को अधवा ऊसरभूमि को प्राप्त  
 कर पुञ्ज जाता है वसी प्रकार मिथ्यात्व घेदनरूप अग्नि भी अन्तकरण  
 को प्राप्त करके पुञ्ज जाता है इस तरह से जीव औपधि तुल्य सम्यक्त्व  
 को प्राप्तकर मदनप्रोद्रव स्थानीय के जैसे दर्शन मोहनीय कर्म को जो कि  
 अशुद्ध कर्म है तीन प्रकार का करता है दर्शनमोहनीय कर्म के जो तीन  
 पुंज होते हैं उनमें एक पुंज अशुद्धरूप होता है, दूसरा पुंज अर्धविशुद्ध  
 और तीसरा पुंज विशुद्धरूप होता है इन तीनों पुंजों के अपने २ जाति  
 के पृथक् पुंज होते हैं । इनमें जीव को जब अर्धविशुद्ध पुंज का उदय  
 होता है तब यह जीव सम्यग् मिथ्यादृष्टि होता है इस अवस्था में इसका  
 अर्द्धत् दृष्ट तर्कों का अद्वान अर्धविशुद्ध रहता है यह अवस्था इसकी  
 अन्तर्मुहूर्त्त तक रहती है इसके बाद यह जीव या तो सम्यक्त्व पुंज को

समये मिथ्यात्वदलिकानां वेदननां अभाव रहे छे जेवी रीते पूवदग्ध एभिन्  
 (दावानल) अधवा देशभूमि आवर्तान् दावानल जोलवाधं जय छे, जेव  
 प्रभावे मिथ्यात्व-वेदनश्च अग्निं पञ्च अताकरणं पासे पडोषीने जोलवाधं जय  
 छे आ रीते एव औपधि समान सम्भत्त्वेने प्राप्त करीने महनकोद्रव स्थानी  
 बना जेवां दर्शनमोहनीय कर्मने (जे अशुद्ध कर्म होय छे) तत्र प्रधारणं  
 करे छे दर्शनमोहनीय कर्मना जे तत्र पुञ्ज होय छे तेभाधी जेक पुञ्ज  
 अशुद्धरूप होय छे जीने पुञ्ज अर्धविशुद्धरूप होय छे अने तीने पुञ्ज  
 विशुद्धरूप होय छे ते त्रये पुञ्ज पितृपितामी जतिना अलग अलग पुञ्ज  
 रूपे होय छे आ तत्र पुञ्जभाधी अर्धविशुद्ध पुञ्जेना एवमां ज्यारे उदय  
 वाय छे, त्वारे ते एव सम्यग्मिथ्यादृष्टि जने छे आ अवस्थाभां अर्द्धत्  
 अत्रयान् दावा दृष्ट तर्को प्रत्ये तेने अर्धविशुद्ध मदा रहे छे तेनी आ  
 प्रधारणी अवस्था अन्तर्मुहूर्त्तं परन्तव्य रहे छे त्वारणां हां ते ते एव

मिथ्यात्वपुञ्जं वा गच्छतीति । सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिविशेषितानां नारकादिस्तनितकुमारान्तानां चतुर्विंशति दण्डकस्थपदानामेकैकस्य वर्गणा एकैका भवतीति ।

इदं दर्शनत्रयं नारकादिस्तनितकुमारान्तानामेकादशानामेव भवति, न तु पृथिव्यादिवनस्पत्यन्तानाम् । तेषां तु मिथ्यादर्शनमेव भवति । अतएवाह सूत्रकारः—‘ एगा मिच्छादिद्वियाणं ’ इत्यादि । मिथ्यादृष्टिकानां पृथिव्यादि वनस्पत्यन्तानामेकैकस्य वर्गणा एकैका बोध्येति । तथा—सम्यग्दृष्टिविशेषितानां द्वीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियाणां चतुरिन्द्रियाणां च एकैका वर्गणा बोध्या । द्वीन्द्रियादीनां

प्राप्त करता है या मिथ्यात्व पुंज को प्राप्त करता है सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि और सम्यग् मिथ्यादृष्टि वाले नारक से लेकर स्तनितकुमार तक के २४ दण्डकस्थ पदों के जीवों के एक २ जीव के एक २ वर्गणा होती है ।

ये दर्शन त्रय नारक से लेकर स्तनितकुमार तक के ११ पदों के ही होते हैं पृथिवी से लेकर वनस्पतिकायिक जीवों के नहीं होते हैं क्यों कि इनके केवल एक मिथ्यादर्शन ही होता है इसी कारण सूत्रकार ने “ एगा मिच्छादिद्वियाणं ” इत्यादि सूत्रपाठ कहा है मिथ्यादृष्टिक पृथिवीकायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक के जीवों को एक २ वर्गणा होती है तथा—सम्यग्दृष्टि एवं मिथ्यादृष्टि वाले द्वीन्द्रिय जीवों के त्रेन्द्रिय जीवों के और चौरिन्द्रिय जीवों के एक २ वर्गणा होती है इन दो इन्द्रियादिक जीवों में सम्यग् मिथ्यादृष्टिरूप उभय अवस्था नहीं होती है क्यों कि यह अवस्था ऐसी पञ्चेन्द्रिय जीवों के ही होती है इसलिये

सम्यक्त्व पुंजने प्राप्त करे छे, अथवा मिथ्यात्व पुंजने प्राप्त करे छे सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, अने सम्यग्मिथ्यादृष्टिवाणा नारकथी लधने स्तनितकुमार पर्यन्तना २४ दण्डकना लवोमां अत्येक दण्डकना लवनी वर्गणांमां अ्येकत्व समञ्जसु लोधये.

नारकथी लधने स्तनितकुमार पर्यन्तना ११ दण्डकनां अ आ दर्शनत्रयने सङ्गाव डोय छे. पृथ्वीकायिकथी लधने वनस्पतिकायिक पर्यन्तना पांच दण्डकना लवोमां मिथ्यादर्शनने अ सङ्गाव डोय छे. ते कारणे सूत्रकारे “ एगा मिच्छादिद्वियाणं ” इत्यादि सूत्रपाठं कथन कर्युं छे मिथ्यादृष्टिक पृथ्वीकायिकथी लधने वनस्पतिकायिक पर्यन्तना लवोमां अ्येक अ्येक वर्गणा डोय छे तथा—सम्यग्दृष्टि अने मिथ्यादृष्टिवाणा द्वीन्द्रिय लवोनी वर्गणांमा पञ्च अ्येकत्व समञ्जसु, त्रीन्द्रियेनी वर्गणांमा पञ्च अ्येकत्व समञ्जसु. ते द्वीन्द्रियादिक लवोमां सम्यग्मिथ्यादृष्टि इय उलय अवस्थाने सङ्गाव डोयो नथी, कारणे के आ दृष्टिने सङ्गा-

सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्तु नास्ति । सम्यग् मिथ्यादृष्टिस्तु सङ्गिनामेव भवति । अतो द्वीन्द्रियादयः सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टिम्यामेव विशेषिता भवन्तीति । तथा-पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्मनुष्यादिवैमानिकान्तानां नारकादिवद् दर्शनत्रय भवति । अतस्तेषां दर्शनत्रय विशेषितानामेकैकस्य वर्गया एकैका भवति । अत एवाह सूत्रकार - " सेसा जहा नेरहया जाय एगा सम्मामिच्छद्विष्टियाण वेमाणियाण वग्गणा ॥ "

इति तृतीयमतुर्विंशति दण्डकः ॥ १ ॥

तथा-कृष्णपासिकाणां-कृष्णपक्षोऽस्त्वेषामिति कृष्णपासिकाः=अर्धपुद्गलपरावर्तनपरिसंसारमात्रः, तेषां वर्गया एका । तथा-शुक्लपासिकाणां-शुक्लानाम्=आस्तिकरत्नेन विशुद्धानां पक्षः=वर्ग-शुक्लपक्षः, तत्र मवा शुक्लपासिकाः, अर्धपुद्गलपरावर्तनपरिसंसारमात्रः भी होते हैं और मिथ्यादृष्टि भी होते हैं मिथ्यादृष्टिवाले नहीं होते हैं तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यङ् मनुष्य और वैमानिक तक के जीव नारकादि की तरह दर्शन त्रय वाले होते हैं अतः दर्शन त्रय विशेषित उन जीवों के एक २ जीव के एक २ वर्गणा होती है इसीलिये सूत्रकार ने " सेसा जहा नेरहया जाय एगा सम्मामिच्छा दिष्टियाण वेमाणियाण वग्गणा " ऐसा कहा है इस प्रकार से यह तीसरा चतुर्विंशति दण्डक है ।

कृष्णपक्ष जिनके होते हैं वे कृष्णपाक्षिक हैं अर्थात् ऐसे जीव कृष्णपाक्षिक हैं कि जिनका संसार एक पुद्गल परावर्तन अधिकतर है अल्पतर नहीं है इनकी भी वर्गणा एक होती है तथा जो जीव शुक्लपाक्षिक हैं अर्थात् जिनका संसार केवल अर्धपुद्गल परावर्तनमात्र एव रह गया है ऐसे जीवों की भी वर्गणा एक ही होती है वे शुक्लपाक्षिक

जाय पञ्चेन्द्रिय लोकोभां ए देव उ तेधी ए द्वीन्द्रियधी अतुविन्द्रिय पर्यन्तया लोको सम्भग्दृष्टि पवु देव उ अने मिथ्यादृष्टि पवु देव उ परन्तु मिथ्यादृष्टिवाणा देवाता नधी तथा पञ्चेन्द्रिय तिर्यङ्, मनुष्य अने वैमानिक परन्तया इ देवना लोकां अके अके वर्गणा देव उ अत्र समज्जु तेधी ए सूत्रकारे " सेसा जहा नेरहया जाय एगा सम्मामिच्छद्विष्टियाण वेमाणियाण वग्गणा " आ प्रभावे इहु उ त्रीम २४ इ देवानी प्रपवु अर्धी पूरी थाय उ

ने लोकोने अके पुद्गल परावर्तन भाग कर्ता पवु अधिक भाग पर्यन्त आ संसारमां समज्जु कर्त्तवु देव उ, अेषां लोकोने कृष्णपाक्षिक इहे उ अेषां लोकोने संसार अके पुद्गल परावर्तन भाग कर्ता अेषां देवाता नधी, पवु वधारे ए देव उ ते कृष्णपाक्षिक लोकोनी पवु लोकां पवु अकेतर समज्जु तथा ने लोको शुक्लपाक्षिक देव उ तेभने संसार अथ पुद्गल पथ

દ્વલપરાવર્તનસંસારભાજઃ, તેપાં વર્ગના એકા ભવતિ । કૃષ્ણપાક્ષિકશુક્લપાક્ષિકયોર્લક્ષણમિદમુક્તમ્—

“ જેસિમવહ્નો પોગ્ગલપરિયટ્ટો સેસઓ ઉ સંસારો ।

તે સુક્લપક્ષિયા સ્વલુ અહિં પુણ ક્ષિણપક્ષીયા ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—યેપામપાર્થઃ પુદ્ગલપરાવર્તઃ શેપકસ્તુ સંસારઃ ।

તે શુક્લપાક્ષિકાઃ સ્વલુ અધિકે પુનઃ કૃષ્ણપક્ષીયાઃ ॥ ઇતિ ।

કૃષ્ણપાક્ષિક શુક્લપાક્ષિકવિશેષિતાનાં ચતુર્વિંશતિદ્વલકસ્થાનાં નારકાદિ વૈમાનિકાન્તાનાં પદાનાં વર્ગના એકેકા વોધ્યા ।

ઇતિ ચતુર્થશ્ચતુર્વિંશતિદ્વલકઃ ॥ ૪ ॥

જીવ આસ્તિક ભાવ વાલે હોતે હૈં શુક્લપાક્ષિક ઓર કૃષ્ણપાક્ષિક જીવોં કા લક્ષણ એસા કહા ગયા હૈ—

“ જેસિમવહ્નો ” ઇત્યાદિ । જિન જીવોં કા સંસાર અર્ધપુદ્ગલપરાવર્તનકાલ રૂપ હો ગયા હૈ અર્થાત્ અધિક સે અધિક ઇતને કાલ તક હી સંસાર મેં જિન જીવોં કો રહના હૈં હસકે વાદ નિયમતઃ જિનકી મુક્તિ હો જાતી હૈં એસે જીવ શુક્લપાક્ષિક હૈં ઓર જિન જીવોં કા સંસાર હસસે વિપરીત હૈ અર્થાત્ દીર્ઘતર હૈ અર્ધપુદ્ગલપરાવર્તન સે અધિક હૈ વે જીવ કૃષ્ણપાક્ષિક હૈં શુક્લપાક્ષિક ઓર કૃષ્ણપાક્ષિક જીવ ચતુર્વિંશતિદ્વલકસ્થ નારક જીવ સે લેકર વૈમાનિક જીવોં તક મેં હોતે હૈં ઇનમેં મી એક ૨ જીવ કો એક ૨ વર્ગના હાંતી હૈં હસ પ્રકાર સે યહ ચતુર્થ ચતુર્વિંશતિદ્વલક હૈં ।

વર્તન કાળ ૩૫ જ બાકી છે, એવાં જીવોની વર્ગણામાં પણ એકત્વ સમજવું. તે શુક્લપાક્ષિક જીવો આસ્તિક લાવવાળા હોય છે શુક્લપાક્ષિક અને કૃષ્ણપાક્ષિક જીવોનાં લક્ષણ નીચે પ્રમાણે બતાવ્યાં છે—

“ જેસિમવહ્નો ” ઇત્યાદિ. જે જીવોનો સંસાર અર્ધપુદ્ગલ પરાવર્તનકાળ ૩૫ થઈ ગયો છે—એટલે કે વધારેમાં વધારે એટલા કાળ સુધી જ જે જીવોને સંસારમાં રહેવાનું છે, ત્યારબાદ તે અવશ્ય જેની મુક્તિ થવાની છે, એવાં જીવોને શુક્લપાક્ષિક કહે છે. જે જીવોનો સંસાર શુક્લપાક્ષિક અને કૃષ્ણપાક્ષિક જીવો ચોવીસ ઠંડકસ્થ નારકોથી લઈને વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં હોય છે. તેમાં પણ પ્રત્યેક ઠંડકના જીવોની એક એક વર્ગણા જ હોય છે. ૨૪ ઠંડકને અનુલક્ષીને આ ચોથા વિષયની વર્ગણામાં એકત્વ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે.

તથા-કૃષ્ણલેશ્યાનાં-લિપ્યતે=સશ્લિષ્યતે પ્રાણી કર્મણા યામિસ્તા લેશ્યાઃ,  
 ઉક્ત ચ—

“શ્લેષ इव वर्णधन्स्य कर्मण चस्थिति विधाः” इति ।

“कृष्णादिद्रव्यसाधिन्यात्, परिणामो य आत्मनः ।

स्फटिकस्त्वेष तत्रायं लेश्याशब्दः प्रयुज्यते ॥ ૧ ॥” इति च ।

इयं च शरीरनामकर्मपरिणतिरूपा, योगपरिणतिरूपत्वात्, योगस्य च शरी  
 रनामकर्मपरिणतिविशेषत्वात् । उक्तं च—

“योगपरिणामो લેશ્યા” । કયં પુનર્યોગપરિણામો લેશ્યા ? યસ્માત્ સયો  
 ગિકેવમ્ની શુક્લલેશ્યાપરિણામેન વિદ્યત્યાન્તર્મુદ્દર્ષે, શ્લેષે યોગનિરોધં કરોતિ, તત્તો-

તથા—કૃષ્ણલેશ્યાબાલો ક્ષી ધી એક વર્ગણા છે જિનકે દ્વારા પ્રાણી  
 કર્મો સે સશ્લિષ્ટ હોતા છે ઠનકા નામ લેશ્યા છે કહા ધી છે—‘શ્લેષ  
 इव वर्णधस्य०’ इत्यादि ।

कृष्णादि द्रव्य साधिन्यात् परिणामो य आत्मनः “स्फटिकस्त्वेष  
 तत्रायं लेश्या शब्दः प्रयुज्यते” ॥ ૧ ॥—તાત્પર્યં इसका यही है कि कर्पायों  
 के लक्ष्य से अनुरजित जो योग प्रवृत्ति है उसका नाम लेश्या है यह  
 लेश्या योग परिणतिरूप होनेके कारण शरीर नाम कर्मकी परिणतिरूप  
 होती है क्योंकि योग शरीर नामकर्म की परिणति विशेषरूप होता है ।

उक्तं च—‘योगपरिणामो लेश्या’ लेश्या योगपरिणाम रूप इस  
 तरह से है—सयोगि केवली शुक्ललेश्या के परिणाम से विहार करके  
 जय अन्तर्मुदूर्त काल पाकी रहता है तम योगनिराप करता है इससे

તથા કૃષ્ણલેશ્યાબાળાઓની પણ એક વર્ગણા છે જેમના દ્વારા પ્રાણી  
 (૯૫) કર્મોથી સ્પૃષ્ટ (સશ્લિષ્ટ) થાય છે, તેમને લેશ્યા કહે છે કશુ પણ  
 છે કે— ‘શ્લેષ इव वर्णधन्स्य’ ઇત્યાદિ.

कृष्णादि द्रव्यसाधिन्यात् परिणामो य आत्मनः स्फटिकस्त्वेष तत्रायं  
 लेश्या शब्दः प्रयुज्यते ॥ ૧ ॥ तात्पर्यं—કર્પાધેના ઉદ્યતી અનુરજિત જે યોગપ્રવૃત્તિ  
 છે, તેનું નામ લેશ્યા છે તે લેશ્યા યોગપરિણતિ રૂપ હોવાને લીધે શરીર  
 નામકર્મની પરિણતિરૂપ હોય છે કારણ કે યોગ શરીર નામ કર્મની પરિણતિ  
 વિશેષરૂપ હોય છે કશુ પણ છે કે—‘યોગપરિણામો લેશ્યા’ લેશ્યા યોગ  
 પરિણામરૂપ આ રીતે છે—યયોગી કેવલી શુક્લ લેશ્યાના પરિણામપ્રમાથી વિહાર  
 કરીને જહાર નીકળીને ન્યારે અન્તમુદૂર્તકાળ માફી રહે છે ત્યારે યોગનિરોધ  
 કરે છે તેમ કરવાથી તે અયોગી અવસ્થા અને અલેશ્યાવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે

ડ્યોગિત્વમલેશ્યત્વં ચ પ્રાપ્નોતિ, અતોડ્વગમ્યતે—‘ યોગપરિણામો લેશ્યા ’ ઇતિ ।  
સ પુનર્યોગઃ—શરીરનામકર્મપરિણતિવિશેષઃ । ઉક્તં હિ—

“ કર્મહિ કાર્મણસ્ય કારણમન્યેષાં ચ શરીરાણામ્ ” ઇતિ । તસ્માદૌદારિકા-  
દિશરીરયુક્તસ્યાત્મનો વીર્યપરિણતિવિશેષઃ કાયયોગઃ । તથા—ઔદારિકવૈક્રિયા-  
હારકશરીરવ્યાપારાહતવાગ્દ્રવ્યસમૂહસાચિવ્યાદ્ યો જીવવ્યાપારઃ સ વાગ્યયોગઃ ।  
તથા ઔદારિકાદિ શરીરવ્યાપારાહતમનોદ્રવ્યસમૂહસાચિવ્યાદ્ યો જીવવ્યાપારઃ સ  
મનોયોગ ઇતિ । તતો યથૈવ કાયાદિકરણયુક્તસ્યાત્મનો વીર્યપરિણતિર્યોગ ઉચ્યતે  
તથૈવ લેશ્યાપીતિ । કેચિત્તુ—‘ કર્મનિસ્યન્દો લેશ્યા ’ ઇતિ દ્રુવન્તિ । સા ચ દ્રવ્ય-

વહ અયોગી અવસ્થા કો ઔર અલેશ્યાવસ્થા કો પ્રાસ કરતા હૈ હસસે  
જાના જાતા હૈ કિ યોગપરિણામ રૂપ લેશ્યા હૈ તથા યોગ શરીર નામ  
કર્મ કી પરિણતિ વિશેષ રૂપ હસ પ્રકાર સે હૈ—“ કર્મ હિ કાર્મણસ્ય  
કારણમન્યેષાં ચ શરીરાણામ્ ” કર્મ કાર્મણશરીર કા ઔર ઔદારિક  
આદિ શરીરોં કા કારણ હૈ હસ કથન સે યહી યાત જાની જાતી હૈ કિ  
ઔદારિકાદિ શરીર યુક્ત આત્મા કા જો વીર્ય પરિણામ વિશેષ રૂપ યોગ  
હોતા હૈ વહ કાયયોગ હૈ તથા—ઔદારિક વૈક્રિય ંવં આહારક શરીર  
કે વ્યાપાર સે આહત વાગ્યદ્રવ્યસમૂહ કી સહાયતા સે જો જીવ કા  
વ્યાપાર હોતા હૈ વહ વાગ્યયોગ હૈ તથા—ઔદારિકાદિ શરીર કે વ્યાપાર સે  
આહત મનોદ્રવ્યસમૂહ કી સહાયતા સે જો જીવ કા વ્યાપાર હોતા હૈ  
વહ મનોયોગ હૈ તો જિસ પ્રકાર સે કાયાદિ કરણયુક્ત આત્મા કો વીર્ય  
પરિણતિરૂપ યોગ હોતા હૈ ડસી પ્રકાર સે યોગપરિણતિરૂપ લેશ્યા ણી  
હોતી હૈ કિતનેક જન “ કર્મનિસ્યન્દો લેશ્યા ” હસકે અનુસાર ંસા ણી

તથી ંવે વાત સિદ્ધ થાય છે કે લેશ્યા યોગપરિણામ રૂપ છે તથા યોગ  
શરીર નામ કર્મની પરિણતિ વિશેષરૂપ આ રીતે છે—“ કર્મ હિ કાર્મણસ્ય  
કારણમન્યેષાં ચ શરીરાણામ્ ” કર્મ જ કાર્મણ શરીરતું અને ઔદારિક આદિ  
શરીરોતું કારણ છે આ કથનથી ંવે વાત જાણી શકાય છે કે ઔદારિકાદિ  
શરીરયુક્ત આત્માને જે વીર્યપરિણામ વિશેષરૂપ યોગ હોય છે, તે કાયયોગ  
છે તથા ઔદારિક, વૈક્રિય અને આહારક શરીરના વ્યાપારથી આહત ( જે ચ-  
વામાં આવેલ ) વાગ્દ્રવ્યસમૂહની સહાયતાથી જીવની જે પ્રવૃત્તિ આવે છે તેને  
વાગ્યયોગ કહે છે તથા ઔદારિકાદિ શરીરના વ્યાપારથી આહત મનોદ્રવ્ય  
સમૂહની સહાયતાથી જીવની જે પ્રવૃત્તિ આવે છે તેને મનોયોગ કહે છે જે  
પ્રકારે કાયાદિકરણયુક્ત આત્માની વીર્યપરિણતિરૂપ યોગ હોય છે, ંવે પ્રકારે  
યોગપરિણતિરૂપ લેશ્યા પણ હોય છે કેટલાક લોકો “ કર્મનિસ્યન્દો લેશ્યા ”



માવમનાદ્ દ્વિષા । તપ્ત દ્રવ્યલેહ્યા કૃષ્ણદ્રવ્યાણ્યત્વ । માત્રલેહ્યા તુ સજ્જન્યો જીવ પરિણામ ફિતિ । ફ્ય લેહ્યા પદ્ધિષ્યા । પદ્ધિષત્વ યાસ્યા સમ્મૂક્તમક્તકપુરુષપદ્ધક દૃષ્ટાન્તાદ્ પ્રામઘાતકચૌરપુરુષપદ્ધકદૃષ્ટાન્તાદ્ તાડ્યસેયમિતિ । કૃષ્ણદ્રવ્યસાધિ વ્યાદ્ પ્રાયમાનાડશુમપરિણામરૂપા છેહ્યા કૃષ્ણા મવતિ । સા લેહ્યા યપાં તે કૃષ્ણલેહ્યાસ્તેપાં ધર્મગા ઈકા મવતિ । યપા-નીલલેહ્યાનાં-નીલા=કૃષ્ણાપેક્ષ્યા કિંચિન્દ્રુમરૂપા છેહ્યા યપાં તે નીલલેહ્યાસ્તેપાં ધર્મગા ઈકા મવતિ । યપા-કાપો તલેહ્યાના-કાપોતી-કપોતવર્ણા=ધૂમવર્ણા નીલાપેક્ષ્યા કિંચિદધિકશુભરૂપા છેહ્યા

કહતે હૈં કિ જો ઈર્મ કે આને મૈં કારણ હોતી હૈં ઘહ લેહ્યા હૈં ઘહ લેહ્યા દ્રવ્ય ઓર ભાષ કે મેદ સે દો પ્રકાર કી હૈં કૃષ્ણદ્રવ્યરૂપ દ્રવ્યલેહ્યા તથા કૃષ્ણદ્રવ્ય જન્ય જો જીવ કા પરિણામ હૈં ઘહ માલલેહ્યા હૈં કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત આદિ કે મેદ સે મી લેહ્યા ૬ પ્રકાર કી કહી ગઈ હૈં જમ્મૂક્ત મક્તક પુરુષપદ્ધક કે દૃષ્ટાન્ત સે અથવા-પ્રામઘાતક ચૌર પુરુ પપદ્ધક કે દૃષ્ટાન્ત સે લેહ્યા મૈં પદ્ધિષતા શાસ્ત્રો મૈં કહી ગઈ હૈં કૃષ્ણદ્રવ્ય કી સદાયતા સે જાયમાન અશુભ પરિણામરૂપ લેહ્યા કૃષ્ણ ઘોતી હૈં ઘહ કૃષ્ણલેહ્યા જિનકો હોતી હૈં ઘે કૃષ્ણલેહ્ય જીવ હૈં ઈન કૃષ્ણલેહ્ય જીવોં કી ધર્મગા ઈક હોતી હૈં કૃષ્ણલેહ્યાકી અપેક્ષા કિચિત્ શુભરૂપ નીલલેહ્યા હોતી હૈં ઘહ નીલલેહ્યા જિનકો હોતી હૈં ઘે નીલલેહ્યા ઘાલે જીવ હૈં ઈનકી મી ધર્મગા ઈક હોતી હૈં ઘુમવર્ણ જેસી કાપોત લેહ્યા હોતી હૈં ઘહ નીલ લેહ્યા કી અપેક્ષા સે કુછ અધિક શુભરૂપ હોતી હૈં

આ માન્યતા અનુસાર જોવું પણ કહે છે કે જે ક્રમના આગમનના કારણથી છે જોઈ દેખ્યા છે તે લેહ્યા દ્રવ્ય અને ભાવના લેહ્યા બે પ્રકારની છે કૃષ્ણ દ્રવ્યરૂપ દ્રવ્યલેહ્યા તથા કૃષ્ણદ્રવ્યજન્ય જે જીવ પરિણામ છે તે ભાવલેહ્યા છે કૃષ્ણ નીલ કાપોત, તેજે, પણ અને શુભતા લેહ્યા લેહ્યાના છ પ્રકાર પણ કહ્યાં છે જાણુ કારણ કરતાં છ પુરુષોના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા અથવા પ્રામ ઘાતક છ ઘોરોના દૃષ્ટાન્ત દ્વારા ચાત્રઘોરોએ લેહ્યામાં પદ્ધિષતા (છ પ્રકાર ગુહનતા) બતાવી છે કૃષ્ણદ્રવ્યની સદાયતાથી જાયમાન (ઉત્પન્ન મયેદ) અશુભ પરિણામરૂપ જે લેહ્યા છે તેને કૃષ્ણલેહ્યા કહે છે તે લેહ્યાવાળા જીવોને કૃષ્ણલેહ્ય કહે છે તે કૃષ્ણલેહ્ય જીવોની વચલામાં જોઈતલ સમજવું જોએ કૃષ્ણલેહ્યા કરતાં કહક શુભરૂપ નીલલેહ્યા ગણાય છે જે જીવોમાં તે નીલ લેહ્યાનો સદુભાવ દોષ છે, તે જીવોને નીલ લેહ્યાવાળાં કહે છે તેમની પણ વચલા એક દોષ છે પ્રમાણના જેવાં વજવાળી કપિતલેહ્યા દોષ છે તે નીલ લેહ્યા કરતાં કહક અધિક શુભરૂપ દોષ છે તે પ્રવર્ણવાળાં દ્રવ્યની

“ કાપોતી ” ઇત્યુચ્યતે । ઇયં ધૂમ્રવર્ણદ્રવ્યસાહાય્યાજ્ઞાયતે । સા લેશ્યાઽસ્તિ યેપાં તે કાપોતલેશ્યાઃ, તેપાં વર્ગણા એકા ભવતિ । તથા-તેજોલેશ્યાનામ્-તેજઃ=અગ્નિ-જ્વાલા, તદ્રૂપાલેશ્યા-તેજોલેશ્યા । લોહિતવર્ણદ્રવ્યસાહાય્યાજ્ઞાયમાના લેશ્યા । ઇયં લેશ્યા શુભસ્વભાવા ભવતિ । તેજો લેશ્યાઽસ્તિ યેપાં તે તથા તેપાં વર્ગણા એકા ભવતિ । તથા-પદ્મલેશ્યાનાં-પદ્મ=કમલં તદ્ગર્ભવર્ણા પીતવર્ણા લેશ્યા, પદ્મ-લેશ્યા । પીતવર્ણદ્રવ્યસાચિવ્યાજ્ઞાયમાનાલેશ્યા । ઇયં લેશ્યા શુભતસ્વભાવા । સા લેશ્યા યેપાં તે તથાભૂતાસ્તેપાં વર્ગણા એકા ભવતિ । કાપોતલેશ્ય તેજોલેશ્ય પદ્મ-લેશ્યાનાં સંગ્રહો ‘એવં જાવ’ ઇતિ પદાદ્ વોધ્યઃ । તથા-શુક્લલેશ્યાનાં શુક્લા-શુક્લ-વર્ણા-અત્યન્તશુભેતિ યાવત્, તદ્રૂપાલેશ્યા-શુક્લલેશ્યા । ઇયં શુક્લવર્ણદ્રવ્યસાચિ-

યહ લેશ્યા ધૂમવર્ણવાલે દ્રવ્ય કી સહાયતા સે ઉત્પન્ન હોતી હૈ કાપોત લેશ્યાવાલે જીવોં કી વર્ગણા મી એક હોતી હૈ તેજ નામ અગ્નિ જ્વાલા કા હૈ હસ અગ્નિ જ્વાલા રૂપ જો લેશ્યા હોતી હૈ વહ તેજોલેશ્યા પીત-લેશ્યા હૈ યહ તેજો લેશ્યા લોહિત (લાલ) વર્ણ વાલે દ્રવ્ય કી સહાયતા સે ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઓર યહ શુભસ્વાભાવવાલી હોતી હૈ તેજોલેશ્યા વાલે જીવોં કી વર્ગણા મી એક હોતી હૈ કમલ કે ગર્ભ કે વર્ણ કી તરહ જો લેશ્યા હોતી હૈ વહ પદ્મલેશ્યા હૈ યહ લેશ્યા પીતવર્ણવાલે દ્રવ્ય કી સહાયતા સે ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઓર શુભતર સ્વભાવવાલી હોતી હૈ હસ પદ્મલેશ્યાવાલે જીવોં કી વર્ગણા મી એક હોતી હૈ કાપોતલેશ્યાવાલે તેજોલેશ્યા વાલે ઓર પદ્મલેશ્યાવાલે જીવોં કા સંગ્રહ “એવં જાવ” હન્ન પદ સે યહાં હુઆ હૈ અત્યન્તશુભરૂપ જો લેશ્યા હોતી હૈ વહ શુક્લલેશ્યા હૈ

સહાયતાથી ઉત્પન્ન થાય છે. કાપોત લેશ્યાવાળાં જીવોની વર્ગણા પણ હોય છે અગ્નિ જ્વાલાનુ નામ તેજ છે. આ અગ્નિજ્વાલા રૂપ જે લેશ્યા હોય છે, તે લેશ્યાનુ નામ તેજોલેશ્યા છે. તે તેજોલેશ્યા પીત ( પીળા વર્ણુની ) લેશ્યા છે. તે લેશ્યા લાલ વર્ણુવાળા દ્રવ્યની સહાયતાથી ઉત્પન્ન થાય છે અને તે શુભ સ્વભાવવાળી હોય છે આ તેજોલેશ્યાવાળા જીવોની વર્ગણા પણ એક હોય છે. કમલના ગર્ભના જેવા વર્ણુવાળી જે લેશ્યા છે, તેને પદ્મલેશ્યા કહે છે તે લેશ્યા પીળા વર્ણુવાળા દ્રવ્યની સહાયતાથી ઉત્પન્ન થાય છે અને તેજોલેશ્યા કરતા અધિક શુભ સ્વભાવવાળી હોય છે. આ પદ્મલેશ્યાવાળા જીવોની વર્ગણા પણ એક હોય છે કાપોતલેશ્યાવાળા, તેજોલેશ્યાવાળા અને પદ્મલેશ્યાવાળા જીવોનો સંગ્રહ ‘એવં જાવ’ આ પદ દ્વારા અહીં થયો છે. અત્યન્ત શુભ-રૂપ જે લેશ્યા છે, તેનું નામ શુક્લ લેશ્યા છે. તે લેશ્યા સફેદ વર્ણુવાળા દ્રવ્યની

व्याज्जायते ।—शुक्ल छेद्या येषां ते तथा तेषां शुक्लछेद्यावतां वर्गणा एका भवतीति । आसु पट्सु छेद्यासु चतुर्विंशतिवृण्डकस्थपदानां नारकादीनां मध्ये एकैकस्य यास्त्यो लक्ष्या भवन्ति, तावतीभिर्लक्ष्याभिर्विधेयिषानां तेषाम् एकैका वर्गणा भवति । अमृतं स्वयमेवाह सूत्रकारः—“ एषा षण्छेस्ताय नैरयाम वर्गणा जाय काउल्लेस्ताय नैरयाम वर्गणा । एष जस जइ छेस्ताओ ॥ ” अथ मात्र—कृष्णछेद्यानां नैरयिकाणां वर्गणा एका । नीलछेद्यानां नैरयिकाणां वर्गणा एका । कापोतछेद्यानां नैरयिकाणां वर्गणा एका । नैरयिकाः कृष्णादित्रिविधछेद्या भवन्ती भवन्ति । अत्रत्रिविधानां प्रत्येक वर्गणा एकैका भवति । एवम् = अनेन

यह छेद्या शुक्लवर्णवाले वृण्ड की सहायता से उत्पन्न होती है शुक्ल छेद्यावाले जीवों की वर्गणा भी एक होती है इन छह छेद्याओं में से चतुर्विंशतिवृण्डकस्थ पदवाले नारक आदि जीवों में एक २ जीव के जितनी २ छेद्याएँ होती हैं उतनी छेद्याओं से विशेषित उन २ जीवों की वर्गणा भी सामान्यरूप से एक होती है यही बात “ एषा षण्छेस्ताय नैरयाम वर्गणा जाय काउल्लेस्ताय नैरयाम वर्गणा एष जस जइ छेस्ताओ ” इन सूत्र पाठ द्वारा सूत्रकार ने कही है इसका भाव ऐसा है कि कृष्णछेद्यावाले जीवों की नैरयिकों की वर्गणा एक है नील छेद्यावाले नैरयिकों की वर्गणा एक है कापोतछेद्यावाले नैरयिकों की वर्गणा एक है नैरयिक जीव कृष्णादि तीन छेद्याओं वाले होते हैं अतः इन तीन प्रकार की छेद्याओं वाले नैरयिक जीवों की प्रत्येक की एक २ वर्गणा होती है किस जीव के किमनी छेद्याएँ होती हैं—इसी बात को

सहायतायी उत्पन्न थाय छे शुक्ल देखावाजा छेवोनी वर्गणा पण् छेक डाय छे आ छे देखावाजाभांशी २४ इत्यथ पण्वाजा नारकादि छेवोभांश प्रत्येक इत्यना छेवोभांश नैट्टी देखावाजा डाय छे नैट्टी देखावाजायी मुदा ते प्रत्येक इत्यना छेवोनी वर्गणा पण् सामान्यनी अपेक्षाये छेक डाय छे

अथ वात ‘ एषा षण्छेस्ताय नैरयाम वर्गणा जाय काउल्लेस्ताय नैरयाम वर्गणा एष जस जइ छेस्ताओ ’ आ सूत्रपाठ द्वारा सूत्रकारे इदी छे तेने आवाय आ प्रभाते छे—कृष्णदेखावाजा नारकादी वर्गणा छेक छे, नील देखावाजा नारकादी वर्गणा छेक छे कापोत देखावाजा नारकादी वर्गणा छेक छे नारक छेवो कृष्णादि वर्ग देखावाजाजा डाय छे तेषी ते वर्ग प्रभाते देखावाजाभांशी प्रत्येक देखावाजा नारकादी छेक छेक वर्गणा डाय

प्रकारेण यस्य अमुरादेर्यावन्त्योलेश्या भवन्ति, तावतीषु लेश्यासु एकैकया लेश्याया विशेषितानां तेषां प्रत्येकं वर्गणा एकैका भवति । कस्य क्रियत्यो लेश्या भवन्ति ? इति स्वयमेवाह सूत्रकारः—‘भवणवद् वाणमंतर०’ इत्यादि—भवनपतिवान-व्यन्तरपृथिव्यवन्नस्पतीनां चतस्रो लेश्याः=कृष्णनीलकापोततेजोलेश्या भवन्ति । तेजोवायु द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियाणां तिस्रो लेश्याः=कृष्णनीलकापोतलेश्या भवन्ति । पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां मनुष्याणां षड् लेश्याः=कृष्णादिशुक्लान्ताः भवन्ति । ज्योतिष्काणाम् एका तेजोलेश्या भवति । वैमानिकानाम् तिस्र उपरि-तनलेश्याः=तेजः पद्मशुक्ललेश्या भवन्ति । इति पञ्चमश्रुतिर्विगतिदण्डकः ॥५॥

तथा—कृष्णादिलेश्याविशेषितानां भवसिद्धिकानाम् अभवसिद्धिकानां च वर्गणा एकैका भवति । इममर्थं सूत्रकारः स्वयमाह—एगा कण्डलेस्साणं भवसिद्धियाणं’

सूत्रकार ने “ भवणवद् वाणमंतर० ” इत्यादि सूत्र द्वारा प्रकट क्रिया है इसमें भवनपति व्यन्तर पृथिवी अप् और वनस्पति काधिक इन जीवों के कृष्ण, नील, कापोत और तेजोलेश्या ये चार लेश्याएं होती हैं तैज-स्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चार इन्द्रिय इनके कृष्ण, नील और कापोत ये तीन लेश्याएं होती है पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्यों के और मनुष्य के छह लेश्याएं होती है कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल ये उन छह लेश्याओंके नाम हैं । ज्योतिष्क जीवोंको एक तेजोलेश्या होती है वैमानिकों को तेजोलेश्या पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या ये तीन लेश्याएं होती हैं । इस प्रकार से यह पांचवां चतुर्विंशतिदण्डक है तथा कृष्णादिलेश्याओं से विशेषित भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक जीवों की वर्गणा एक २ होती है यही बात सूत्रकार ने “ एगा कण्डलेस्साणं

छे कथा एवने डेटली देश्याओ डोय छे ते सूत्रकारे “ भवणवद् वाणमंतर० ” इत्यादि सूत्रद्वारा प्रकट क्युं छे आ सूत्रपाठमां ओ वात प्रकट करी छे के लवनपति, व्यन्तर, पृथ्वीकायिक, अपूकायिक अने वनस्पतिकायिकोमा कृष्ण, नील, कापोत अने तेजोलेश्या, आ चार देश्याओनो सद्भाव डोय छे. तैज-स्कायिक, वायुकायिक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अने चतुरिन्द्रिय एवोमां कृष्ण, नील अने कापोत, ओ त्रष्ट देश्याओनो सद्भाव डोय छे. पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्यो अने मनुष्योमा कृष्ण, नील, कापोत, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या अने शुक्ललेश्या, आ छे देश्याओनो सद्भाव डोय छे. ज्योतिष्क एवोमां तेजोलेश्यानो अने वैमानिकोमा तेजोलेश्या, पद्मलेश्या अने शुक्ल लेश्यानो सद्भाव डोय छे. आ रीते आ पाचमा बोवीस दडके समजवा.

तथा कृष्णादि देश्याओशी युक्त लवसिद्धिक अने अलवसिद्धिक एवोनी वर्गणा ओक ओक डोय छे. ओज वात सूत्रकारे “ एगा कण्डलेस्साणं भव-

इत्यादि । एका कृष्णलेश्यानां भवसिद्धिकानां वर्गणा । एव पट्स्वपि छेदयासु = कृष्णादिपट्छेदया विशेषणत्वेनाधित्य द्वे द्वे पदे मणितव्ये । अय मात्रः,—कृष्णलेश्यानां भवसिद्धिकानां वर्गणा एका । कृष्णलेश्यानाम् अमवसिद्धिकानां वर्गणा एका । एवं नीलादिविशेषिता भवसिद्धिका अमवसिद्धिकाश्च धान्या इति । सम्प्रति ययास्य कृष्णलेश्यादिविशेषितानां भवसिद्धिकानाम् अमवसिद्धिकानां च नारकादीनां प्रत्येक वर्गणाया एकस्व दर्शयति—“ एता कण्ठलेस्ताणं भवसिद्धियाणेरुपार्ण वर्गणा ’ इत्यादि । कृष्णलेश्यानां भवसिद्धिकानां नैरयिकाणां वर्गणा एका । तथा—कृष्णलेश्यानाम् अमवसिद्धिकानां वर्गणा एका एवम्=अमुना प्रकारम् यस्य यावत्यो लेश्या भवन्ति तस्य तावत्यो वर्गणा वक्तव्याः । क्रियदवधि वक्तव्याः ? इत्याह—यावद् वैमानिकानाम् । इति पठभ्रतुर्विंशति दण्डकः ॥ ६ ॥

तथा—कृष्णलेश्यादिविशेषितानां सम्प्रगृष्टिकानां मिथ्यादृष्टिकानां सम्प्रगृष्टिमिथ्यादृष्टिकानां च प्रत्येक वर्गणा एकैका बोध्या । तथा—कृष्णादिषु पट्स्वपि भवसिद्धियाण ” इत्यादि सूत्र द्वारा प्रकट की है इसका सारांश ऐसा है कि जो कृष्णलेश्यावाले भवसिद्धिक जीव हैं उनकी वर्गणा एक है तथा—जो कृष्णलेश्यावाले अमवसिद्धिक जीव हैं उनकी भी वर्गणा एक है इसी प्रकार से नीलादिलेश्याओं से विशेषित भवसिद्धिक और अमवसिद्धिक जीवों के सम्प्रघ में भी कथन जानना चाहिये इस तरह से छहों छेदनाओंमें ये दो दो पद कह लेना चाहिये जिस जीवके जितनी छेदनाएँ होती हैं उस जीव के उतनी वर्गणाएँ कही गई हैं ऐसा जानना चाहिये इस प्रकार का यह कथन नारक से लेकर वैमानिक तकके जीवों के सम्प्रघ में वक्तव्य कहा गया है यह उठा भ्रतुर्विंशतिदण्डक है ।

तथा—कृष्णलेश्यादि विशेषित सम्प्रगृष्टियों की मिथ्यादृष्टियों की और सम्प्रगृष्टिमिथ्यादृष्टियों की प्रत्येक की एक २ वर्गणा होती है तथा—

सिद्धियाणं ” इत्यादि सूत्रद्वारा प्रकट करी है तेने भावार्थ नीचे प्रभावे छेने कृष्णलेश्यावाणा भवसिद्धिक लोके छे तेमनी वर्गणा जेक छे आ रीते नीलादि लेश्यावाणा भवसिद्धिक अने अमवसिद्धिक लोकेने विरे पजु कथन समजतु आ रीते छेने लेश्यावाणी साथे आ लोके पटु कथन धरु लेख्जे के लोके नेटवी लेश्यावा लोके छे जेटवी तेनी वर्गणावा कही छे जेभ समजतु आ प्रारतु आ कथन नारकोणी लोके वैमानिको परान्तना २४ इटकना लोके विरे समजतु आ प्रारतना आ छुा धीवीस इको समजथा

तथा कृष्णादि लेश्यावाणा सम्प्रगृष्टि लोकेनी, मिथ्यादृष्टि लोकेनी अने कृष्णमिथ्यादृष्टि लोकेनी—जे प्रत्येकी जेक जेक वर्गणा देव छे तथा

लेश्यासु मध्ये नारकादिवैमानिकान्तानां यावत्यो लेश्या भवन्ति, तावतीभिलश्या-  
भिर्विशेषितानां नारकादिवैमानिकान्तानां मध्ये यस्य यस्य या या दृष्टिर्भवति  
तां तां दृष्टिमाश्रित्य तस्य तस्य एकैका वर्गणा भवति। अमुमेवार्थमाह-सूत्रकारः-  
'एवं छसु वि लेसासु' इत्यादि। एवं पटुम्बपि लेश्यासु यावद् वैमानिकानां  
येषां यावत्यो दृष्टयः। इति सप्तमश्चतुर्विंशति दण्डकः ॥ ७ ॥

• तथा-कृष्णलेश्यानां कृष्णपाक्षिकाणाम् एका वर्गणा। कृष्णलेश्यानां शुक्ल-  
पाक्षिकाणाम् एका वर्गणा। एवं नीलादिलेश्या विशेषितानां कृष्णपाक्षिकाणां शुक्ल-  
पाक्षिकाणां च एकैका वर्गणा बोध्या। तथा-कृष्णपाक्षिकाणां शुक्लपाक्षिकाणां च

कृष्णादि छ लेस्याओं के मध्य में नारक से लेकर वैमानिक तक के जीवों  
को जिस जीवके जोर दृष्टि होती है उसे उस दृष्टि को लेकर के उस २  
जीव को एक वर्गणा होती है यही बात-“एवं छसु वि लेसासु” इत्यादि  
सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है यह सातवां चतुर्विंशतिदण्डक है।

आठवां चतुर्विंशति दण्डक इस प्रकार से है-

कृष्णलेश्यावाले कृष्णपाक्षिकोंकी एक वर्गणा तथा कृष्णलेश्यावाले  
शुक्लपाक्षिकों की एक वर्गणा होती है इसी प्रकारका कथन नीलादिले-  
स्याविशेषित कृष्णपाक्षिकों के और शुक्लपाक्षिकोंके सम्बन्धमें भी कर  
लेना चाहिये अर्थात् नीललेश्यावाले कृष्णपाक्षिकों की और नीललेश्या  
वाले शुक्लपाक्षिकों की एक २ वर्गणा होती है इसी तरह से यथा  
योग्य कृष्णादि लेश्यावाले नारक से लेकर वैमानिक तक के कृष्णपा-

नारकथी लधने वैमानिक पर्यन्तना २४ दंडना लुवोमां कृष्णादि प्रत्येक लेश्या-  
वाणा लुवो आ त्रषु प्रकारनी दृष्टिओमांथी ने ने दृष्टिवाणा डोय छे, ते  
ते प्रत्येक दृष्टि अने प्रत्येक लेश्यानी अपेक्षाओ प्रत्येक दंडना लुवोनी ओक  
ओक वर्गणा डोय छे ओज वात “एवं छसु वि लेसासु” इत्यादि सूत्रपाठ  
द्वारा प्रकट करवामा आनी छे आ प्रकारना आ सातमा ओवीस दंडको समजवा.

आठमा २४ दंडको नीचे प्रमाणे छे-कृष्णलेश्यावाणा कृष्णपाक्षिकोनी ओक  
वर्गणा अने कृष्णलेश्यावाणा शुक्लपाक्षिकोनी ओक वर्गणा डोय छे. ओज  
प्रकारनु कथन नीलादिलेश्यायुक्त कृष्णपाक्षिके अने शुक्लपाक्षिके विषे पषु  
समजवु. ओटले के नीललेश्यावाणा कृष्णपाक्षिकोनी ओक अने नीललेश्यावाणा  
शुक्लपाक्षिकोनी ओक वर्गणा डोय छे. भाडीनी चारे लेश्याओवाणा उपर्युक्त  
कृष्णपाक्षिके अने शुक्लपाक्षिकोनी वर्गणाओ विषे पषु ओवुंज कथन अडलु  
करवु ओज प्रमाणे यथायोग्य (ने लुवोमा ने लेश्याओ संभवी शकती  
डोय ते लेश्याओनी अपेक्षाओ) कृष्णादि लेश्यावाणा नारकथी लधने वैमानिक

पथाम्बं कृष्णादि लेश्यावर्ता नारकादिवैमानिकान्तानां मत्प्रेक्ष्यैका रगंगा घोष्या ।  
 इममर्थं सूत्रकारः प्राह—‘जाघ वेमाणियाण इत्यादिना । यावद् वैमानिकानां, यस्य  
 यावत्या छड्या इति । इत्यमुपरिनिर्दिष्टप्रकारेण भष्टचतुर्विंशति दण्डका घोष्या ॥८॥

एतद्वृत्ती चतुर्विंशतिदण्डका एवमुक्ता , तथाहि—

“ ओहो १ भव्याईहिं विससिओ २ दंसणेहिं ३ पक्खेहिं ४ ।

खेमार्हि ५ भग् ६ दंमण ७ पक्खेहिं ८ विसिद्धलेमार्हि ॥ १ ॥

छाया—ओषो १ भग्पादिभिर्विशेषितो २ दर्शनैः ३ पक्षैः ।

लेश्यामिं मन्व्यर्शनं पक्षैर्विशिष्टलेश्यामिः ॥ इति ॥

अथ सिद्धनर्गणा प्ररूप्यत—एष सिद्धा द्विविधाः—अनन्तरसिद्धाः परम्पर  
 सिद्धाश्च । एत-अन-तरसिद्धा -न विद्यतेऽन्तरं व्यवधानम् अथौत् समयेन चपां ते

क्षिप्त और शुष्कपाक्षिक जीवों की भी प्रत्येक की एक रचगणा होती  
 है ऐसा जानना चाहिये इसी घात को “ जाघ वेमाणियाण ” इत्यादि  
 सूत्रपाठ द्वारा व्यक्त की गई है इस कथन में जिनके जितनी लेश्याएँ  
 होती हैं उतनी उमके कह लेनी चाहिये और उन प्रत्येक जीवों की  
 एक र चगणा होती है ऐसा जानना चाहिये ये आठ २४ दण्डक इस  
 प्रकार से पढ़े गये हैं—“ ओहो १ भव्याईहिं विसेमिओ ” इत्यादि ।

अथ सिद्धनर्गणाकी प्ररूपणा की जाती है—इसमें अनन्तरसिद्ध और  
 परम्परसिद्धके भेदसे सिद्ध दो प्रकारके होते हैं—जिनकी सिद्धि होनेमें एक  
 समय तकका भी अंतर व्यवधान नहीं होता है ये अनन्तरसिद्ध हैं अर्थात्  
 सिद्धत्व होने के प्रथम समय में जो विद्यमान होते हैं ये अनन्तरसिद्ध

५५ तथा कृष्णपाक्षिक अने शुष्कपाक्षिक लेश्यामांता प्रत्येक दण्डका लेश्यानी  
 ५५ अने अने वर्णवा डोष के अने वात सूत्रकार “ जाघ वेमाणियाण ”  
 इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा व्यक्त करी है आ कथनमां लेनी बेटकी वरपाओ  
 डोष ते बेटनी १ अने ते प्रत्येक वरपावागा कृष्णपाक्षिकनी अने अने  
 वर्णवा ३१ ती अने अने आ रीते आइमां २४ इजोनुं प्रतिपादन अर्था ५५  
 याव है ते आइ २४ इज आ प्रमाणे कर्था है— ओहो १ भव्याईहिं  
 विससिओ ” इत्यादि

दवे त्रिच वर्णवानुं प्रतिपादन करचामां आवे है—

अनन्तर सिद्ध अने परम्पर सिद्धता लेखी सिद्ध ले प्रमाणता डोष  
 है केमनी त्रिदि यामा अने मभय ५५ तने ५५ आंता । (व्यवधान)  
 ५५ नो नो अना सिद्धाने अनन्तर सिद्ध बदे है अनेते है सिद्धता यानता  
 पदेता समता लेखी विद्यमान है है, तेमने अनन्तर सिद्ध बदे है

तथा—सिद्धत्वप्रथमसमयवर्तिन इत्यर्थः, ते पञ्चदशविधाः । तेषु एकैकस्य वर्णनाया एकत्वमाह—‘ एषा तित्थसिद्धाणां ’ इत्यादिना । तीर्थसिद्धानाम् तीर्थते संसारसागरोऽनेनेति तीर्थम्=द्वादशाङ्गरूपं प्रवचनम्, तदाधारत्वेन सङ्घः, तस्मिन् प्रवृत्ते सति सिद्धाः—तीर्थसिद्धाः, वृषभसेनादयः—तीर्थसिद्धास्तेषां वर्णना एका । तथा—अतीर्थसिद्धानाम्—अतीर्थे=तीर्थरयानुत्पत्तौ सिद्धा—अतीर्थसिद्धा—मरुदेवीप्रभृतयः, तथा—तीर्थव्यवच्छेदे—चन्द्रप्रभस्वामि—सुविधिस्वाम्यपान्तराले जातिस्मरणादिना सिद्धास्तेषां वर्णना एका। तथा तीर्थकरसिद्धानां—तीर्थं कुर्वन्ति आनुलोम्येन हेतुत्वेन ताच्छील्येन वा येते तीर्थकराः ।

हैं ये अनन्तरसिद्ध १५ प्रकार के होते हैं इनमें एक-एक की वर्णनामें एकत्व है यही बात “ एषा तित्थसिद्धाणां ” इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है संसाररूपी सागर जिसके प्रभाव से तिरा जाना है उसका नाम तीर्थ है ऐसा वह तीर्थ द्वादशाङ्गरूप प्रवचन ही है तथा इस द्वारशाङ्गीरूप प्रवचन का आधार भूत साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकारूप चतुर्विध श्रीसंघ भी तीर्थरूप है इस तीर्थ के प्रवृत्त होने पर जो सिद्ध हुए हैं वे तीर्थसिद्ध हैं। ऐसे वे तीर्थसिद्ध वृषभसेन आदि हैं इन तीर्थसिद्धों की वर्णना एक है तथा तीर्थकी अनुत्पत्तिमें जो सिद्ध हुए हैं वे अतीर्थसिद्ध हैं ये अतीर्थसिद्ध मरुदेवी आदि हैं तीर्थके व्यवच्छेदमें जो सिद्ध हुए हैं वे तीर्थ व्यवच्छेद सिद्ध हैं ऐसे तीर्थव्यवच्छेद सिद्ध जीव जातिस्मरण आदि से होते हैं जैसे चन्द्रप्रभस्वामी एवं सुविधिनाथस्वामीके अपान्तराल में हुए हैं इनकी वर्णना एक है तथा तीर्थकरसिद्धों की भी वर्णना एक है

तेमना १५ प्रकार छे ते प्रत्येक प्रकारना अनन्तर सिद्धोनी वर्णनामा एकत्व छे ओष बात “ एषा तित्थसिद्धाणां ” इत्यादि सूत्रपाठ द्वारा प्रकट करी छे. संसार रूपी सागर जेना प्रलावथी तरी जवाय छे तेने तीर्थ कडे छे द्वादशांग ( बार अंग ) रूप प्रवचन ज ओषु तीर्थ छे. तथा आ द्वादशांगना आधारभूत साधु, साध्वी, श्रावक अने श्राविकारूप चतुर्विध श्रीसंघ पणु तीर्थरूप छे. आ तीर्थनी प्रवर्तना तथा आद सिद्ध थयेला छेवोने तीर्थसिद्धो कडे छे, परन्तु तीर्थनी प्रवर्तना विना जे सिद्धो तथा छे, तेमने अतीर्थ सिद्धो कडे छे वृषभसेन आदि तीर्थसिद्धो अने मरुदेवी आदि अतीर्थसिद्धो थई गया छे तीर्थनेा व्यवच्छेद ( नाश ) तथा आद जे सिद्धो तथा छे, तेमने तीर्थव्यवच्छेद सिद्धो कडे छे जातिस्मरण आदि द्वारा आ प्रकारना सिद्धो थाय छे जेभके चन्द्रप्रभुस्वामी अने सुविधिस्वामीना अनन्तरालमा थयेला सिद्धो. ते प्रत्येक प्रकारना सिद्धोनी ओक ओक वर्णना डेय छे.



ઉક્ત ચ—“ અનુલોમહેતુસ્તીલપાય જે માવતિત્યમેયં તુ ।

કુચ્ચતિ પગાસતિ ચ તે તીર્થગરા હિત્યકરા ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—અનુલોમહેતુ સ્ત્રીલપાય એ માવતીર્થમત્તુ ।

કુચ્ચન્તિ મકાશ્યન્તિ તુ તે તીર્થકરા હિત્યકરા ॥ ૧ ॥ ઈતિ ।

તીર્થકરાઃ સન્તો ય સિદ્ધાસ્તે તીર્થકરસિદ્ધાઃ=શ્રમમાદ્યસ્તેપાં વર્ગના એકા ।

તથા—અતીર્થકરસિદ્ધાનામ્=ગૌતમાદીના વર્ગના એકા ।

તથા—સ્વયંબુદ્ધસિદ્ધાનાં—સ્વયમ્=આત્મના બુદ્ધા=તથા જ્ઞાતવન્તો એ તે સ્વયં બુદ્ધાઃ, તે ચ સિદ્ધાએતિ સ્વયંબુદ્ધસિદ્ધાસ્તેપાં વર્ગમા એકા । તથા—પ્રત્યેકબુદ્ધા નામ્—પ્રતીત્ય=સમાશ્રિત્ય એકં કમપિ શ્રમમાદિકમનિત્યતાદિભાષનાકારણં પદાર્થ બુદ્ધાઃ=જ્ઞાતવન્તઃ પરમાર્થ એ તે પ્રત્યેકબુદ્ધાસ્તેપાં વર્ગના એકા ।

અનુલોમતા સે યા છેતુરુપ સે યા ઉમ પ્રકાર કે સ્વમાવ હોને સે જો તીર્થે કી પ્રવૃત્તિ કરતે હું વે તીર્થકર કહલાતે હું

ઉક્ત ચ—‘અનુલોમ હેતુ’ ઇત્યાદિ ।

તીર્થકર હોતે છુપ જો સિદ્ધ હોતે હું વે તીર્થકર સિદ્ધ હું એસે તીર્થકર સિદ્ધ શ્રમમ આદિ હું ઇનકી વર્ગના સામાન્ય સે એક હોતી હૈ તથા અતીર્થકર સિદ્ધ જો ગૌતમ આદિ હું સનકી ખી વર્ગના સામાન્યતઃ એક હૈ તથા—જો સ્વયંબુદ્ધ સિદ્ધ હું વનકી ખી વર્ગના એક હૈ, સ્વતઃ હી જો તસ્વોંકો જાન જાતે હું વે સ્વયંબુદ્ધ કહલાતે હું, સ્વયંબુદ્ધ હોકર જો સિદ્ધ હોતે હું વે સ્વયંબુદ્ધ સિદ્ધ હું અર્થાત્ જો કિસી કે ઉપદેશ કે વિના સ્વયં અપની હી જ્ઞાનશક્તિ કે દ્વારા વોષ પાકર સિદ્ધ હોતે હું વે સ્વયં બુદ્ધ સિદ્ધ હું તથા જો અન્યજ્ઞાની શ્રમમાદિ કો વેચકર અનિત્યાદિ મા

તથા તીર્થકર સિદ્ધોની પણ એક વગણા હોય છે અનુલોમતાથી અથવા હેતુ રૂપે અથવા તે પ્રકારને સ્વભાવ હોવાથી તેઓ તીર્થની પ્રવૃત્તિ કરે છે, તેમને તીર્થકર કહે છે તથા પણ છે કે—‘અનુલોમ હેતુ’ ઇત્યાદિ તીર્થકર થઇને તેઓ સિદ્ધ થાય છે તેમને તીર્થકર સિદ્ધ કહે છે જ્ઞાતવન્ત આદિ એવા તીર્થકર સિદ્ધ ગણાય છે તેમની વગણા સામાન્યની અપેક્ષાએ એક હોય છે, તથા ગૌતમ આદિ જે તીર્થકર સિદ્ધો છે તેમની વગણા પણ સામાન્યતાએક છે તથા જે સ્વયંબુદ્ધ સિદ્ધો છે તેમની વગણા પણ એક છે જે છવો સ્વતઃ ( પોતાની જાતે જ ) તસ્વોને જ્ઞાતી હો છે, તેમને સ્વયંબુદ્ધ કહે છે સ્વયં બુદ્ધ થાને સિદ્ધપદ પામનાર છવોને સ્વયંબુદ્ધ સિદ્ધો કહે છે એટલે કે અન્યના ઉપદેશ વિના, પોતાની જ જ્ઞાનશક્તિ દ્વારા વોષ પામીને સિદ્ધ થનાર છવોને સ્વયંબુદ્ધ કહે છે તથા જે શ્રમમાદિ એવા અન્ય જ્ઞાનીને એકને

ननु स्वयम्बुद्धप्रत्येकबुद्धानां को भेदः ? इति चेत्, अत्रोन्यते—स्वयम्बुद्ध-  
प्रत्येकबुद्धानां बोध्युपधिश्रुतलिङ्गकृतो भेदः । तथाहि—स्वयम्बुद्धानां बाह्यनिमित्तान-  
पेक्षो बोधिः । प्रत्येकबुद्धानां तु बाह्यनिमित्तापेक्षो बोधिः, एषामुपध्यादिवर्णन-  
न्यतोऽवसेयम् । तथा—बुद्धबोधितसिद्धानाम्—बुद्धैः=आचार्यादिभिर्बोधिताः सन्तो  
ये सिद्धास्ते बुद्धबोधितसिद्धास्तेषां वर्गणा एका । तथा—एतेषामेव स्त्रीलिङ्गसि-  
द्धानां च प्रत्येकमेकैका वर्गणा भवति । तथा—स्त्रीलिङ्गसिद्धानाम्—सदोरकमुखव-  
स्त्रिकारजोहरणादिधारित्वेन स्वलिङ्गे=साधुलिङ्गे सिद्धानां वर्गणा एका । तथा—

वना के कारणमृत पदार्थ को जानकर बोध को प्राप्त करते हैं वे प्रत्येक  
बुद्ध हैं इनकी भी सामान्यरूप से वर्गणा एक है ।

शंका—स्वयंबुद्ध और प्रत्येक बुद्ध में क्या अन्तर है ?

उ०—स्वयंबुद्ध और प्रत्येकबुद्ध में बोधि, उपधि श्रुत और लिङ्ग  
इनकी अपेक्षासे भेद है, स्वयं बुद्धों को बाह्य निमित्तके बिना बोधि  
प्राप्त होती है प्रत्येकबुद्धों को बाह्यनिमित्तकी अपेक्षासे बोधिप्राप्त होती  
है इनकी उपधि आदि का वर्णन अन्य शास्त्रों से जान लेना चाहिये  
आचार्य आदिकोंसे बोधित होकर जो सिद्ध होते हैं वे बुद्ध बोधित हैं  
इनकी भी वर्गणा एक है तथा स्त्रीलिङ्ग से जो बुद्धबोधित हुए हैं या  
पुरुषलिङ्ग से जो बुद्धबोधित हुए हैं इन सब की प्रत्येककी  
वर्गणा एक है तथा जो स्वलिङ्ग में सदोरकमुखवस्त्रिका रजोह-  
रण आदि के धारक होने से साधुलिङ्ग में सिद्ध हुए हैं उनकी भी वर्ग-

अनित्यादि लावनाना कारणमृत पदार्थने ज्ञानीने बोध प्राप्त करे छे, तेमने  
प्रत्येक बुद्ध कडे छे तेमनी पण सामान्यत एक वर्गणा डाय छे

प्रश्न—स्वयंबुद्ध अने प्रत्येकबुद्धमां शेा तदावत छे ?

उत्तर—स्वयंबुद्ध अने प्रत्येकबुद्धमां बोधि, उपधि, श्रुत अने लिङ्गनी  
अपेक्षासे भेद छे. स्वयंबुद्धने बोधि प्राप्तिमां बाह्य निमित्तोनी आवश्यकता  
रहेती नथी, परन्तु प्रत्येक बुद्धोने बोधिप्राप्तिमा बाह्य निमित्तोनी जरूर रहे  
छे. तेमनी उपधि आदिनुं वर्णन अन्य शास्त्रोमाथी ज्ञानी लेवु लेधसे

आचार्य वगैरे द्वारा बोधित थधने सिद्ध थनारा एवोने बुद्धबोधित  
सिद्धो कडे छे. तेमनी वर्गणा पण एक डाय छे. स्त्रीलिङ्गमाथी बुद्धबोधित  
थयेवा सिद्धोनी अने पुरुष लिङ्गमाथी बुद्धबोधित थयेवा सिद्धोनी पण एक  
एक वर्गणा डाय छे. स्वलिङ्गमाथी ( सदोरकमुखवस्त्रिका आदिना धारक  
साधुलिङ्गमाथी ) सिद्ध थयेवा एवोनी वर्गणा पण एक डाय छे. तथा

अन्यलिङ्गसिद्धानाम्=परिभाषकादिलिङ्गसिद्धानां वर्गणा एका । तथा-गृहलिङ्ग  
सिद्धानाम्-गृहिणां पण्डित् तत्र सिद्धानां मरुदेशीमृत्वीनां वर्गणा एका । अती  
र्थसिद्धानामित्यारभ्य गृहलिङ्गसिद्धानामित्यत्र पाठ 'एवं जाव' इति पदेन  
प्राप्तः । तथा-एकसिद्धानाम्=एकैकस्मिन् समये एकैकसिद्धानां वर्गणा एका । तथा-  
अनेकसिद्धानाम्-एकसमये द्विप्रभृत्यष्टोत्तरशतान्तानां सिद्धानां वर्गणा एका । तत्र-  
एक समयेऽनेके सिध्यन्ति । ते कियन्तः सिध्यन्ति ? इति प्रतिपादितमन्यत्र । तथाहि

“पचीसा अडयाला सद्दी वावचरी य बोपन्वा ।

शुद्धसीई छमउई दुयहिय अट्टोत्तरसयं च ॥ १ ॥

छाया—शार्त्तिसत् अष्टवत्वारिंशत् पष्टि श्रांसतिभ बोदव्याः ।

चतुरशीतिः पणवति इपयिकाष्टोत्तरशतं च ॥ १ ॥ इति ।

णा एक है तथा-परिभाषका आदि अन्यलिङ्गोंसे सिद्ध हुए जीयोंका भी  
वर्गणा एक है तथा-गृहलिङ्ग में-गृहस्थों के लिङ्ग में जो सिद्ध हुए जैसे  
कि मरुदेशी आदि-ये गृहलिङ्ग सिद्ध हैं इन गृहलिङ्ग सिद्धों की भी  
वर्गणा एक है “अतीर्थसिद्धानाम्” से लेकर इन गृहलिङ्ग सिद्धों तक  
का पाठ पढ़ा “एवं जाव” इस पद से ग्रहण किया गया है तथा एक  
सिद्धों की भी वर्गणा एक है एकर समय में जो एकर सिद्ध होते हैं वे  
एक सिद्ध हैं एकर समयमें सिद्ध हुए इन सिद्धों की वर्गणा साना  
न्यतः एक है तथा-अनेक सिद्धों की-एक समय में दो आदि से लेकर  
१०८ तक सिद्ध हुए जीयों की वर्गणा भी एक है एक समय में जो  
अनेकसिद्ध होते हैं वे त्रिभने होते हैं-यह मय अन्यत्र इस प्रकार से  
प्रतिपादित हुआ है ‘पचीसा अडयाला’ इत्यादि इस गाथा का भाष

परिभाषक आदि अन्य विज्ञेयार्थांश सिद्ध यथेता एवोनी पञ्च अक्ष वत्रजा  
दोष उ अक्षयार्थांश सिद्ध यथेता मरुदेशी आदि एवोने गृहलिङ्ग सिद्धी  
हरे उ ते गृहलिङ्ग सिद्धोनी पञ्च वर्गणा अक्ष उ “अतीर्थसिद्धानाम्”  
धी एवने गृहलिङ्ग सिद्धी पश्चान्तना सिद्धोना पाठ अर्था “जाव (वावत्)  
पश्ची अक्षय यथे उ तथा अक्ष अक्ष समयमां ने अक्ष अक्ष सिद्ध यथे उ,  
तेभने अक्षसिद्ध हरे उ अेषां अक्षसिद्धोनी वर्गणां पञ्च सामान्यनी अरे  
क्षाले अक्षय समयपु अक्ष समयमां क्षे मी एवने १०८ पश्चान्तना के  
सिद्धी यथे उ तेभनी वत्रजा पञ्च अक्ष दोष उ अक्ष समयमां के अनेक  
सिद्धी यथे उ ते इदं यथे उ तेनं प्रतिपादन अन्य सिद्धान्त प्रयोगां  
अप्रभावे इवार्थां अक्षयुं उ-“पचीसा अडयाला” इत्यादि अ गाथाने

अयं भावः—यदा एकसमयेन एकादय उत्कर्षेण द्वात्रिंशत् सिध्यन्ति, तदा द्वितीयेऽपि द्वात्रिंशत् सिध्यन्ति। एवमेव तृतीयसमयादारभ्याष्टौ समयान् यावत् प्रत्येकं द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशत् सिध्यन्ति। ततोऽग्रेऽवश्यमेवान्तरं भवति। पुनर्यदा त्रयस्त्रिंशत् आरभ्य अष्टचत्वारिंशत् एकसमयेन सिध्यन्ति, तदा निरन्तरं सप्तसमयान् यावत् सिध्यन्ति। ततोऽवश्यमेवान्तरं भवति। पुनर्यदा एकसमयेन एकोनपञ्चाशत् आरभ्य यावत् षष्टिः सिध्यन्ति। तदा निरन्तरं षट् समयान् सिध्यन्ति। प्रत्येकसमये षष्टिः षष्टिः सिध्यन्ति। ततोऽन्तरं भवत्येव। ततो यदा पुनरेकसमयेन एकषष्टिमारभ्य द्विसप्ततिः सिध्यन्ति, तदाऽष्टमसमयावधि तावन्त एव सिध्यन्ति। ततः परमन्तरं

ऐसा है—कि जिस समय उत्कृष्टरूप में एक से लेकर ३२ तक सिद्ध एक समय में होते हैं तब द्वितीय समय में भी ३२ ही सिद्ध होते हैं इसी तरह से तृतीय समय तक से लेकर आठ समय तक प्रत्येक समय में ३२-३२ तक सिद्ध होते हैं इस के बाद अवश्य ही सिद्ध होने में अन्तर आजाता है बाद में जब में जब ३३ से लेकर ४८ तक सिद्ध होते हैं तब निरन्तर सात समय तक ३३ से लेकर ४८ तक ही सिद्ध होते हैं इसके वा अवश्य ही अन्तर व्यवधान हो जाता है फिर जब एक समय में ४९ से लेकर ६० तक सिद्ध होते हैं तब लगातार ६ सप्तम तक ही इतने ही सिद्ध होते रहते हैं इसके बाद अवश्य ही अन्तर आ जाता है इसके बाद जब एक समय में सिद्ध होते हैं तब ६१ लेकर ७२ तक सिद्ध होते हैं तब अष्टम समय तक इतने ही सिद्ध होते हैं इसके बाद अवश्य ही अन्तर आ जाता है इस क्रम से वृद्धि होने से एक समय में

सावार्थ नीचे प्रमाणे छे-जे ओक समयमा वधारेमां वधारे उर पर्यन्तना सिद्धो थाय छे, त्यारपधीना पीला समयमां पणु उर ७ सिद्धो थाय छे, आरीते त्रीनतथी आठमां समय सुधीना प्रत्येक समयमां पणु उर-उर पर्यन्तना सिद्धो ७ थाय छे. त्यारणाद सिद्धो थवामां अवश्य आंतरो पडी नय छे. त्यारणाद न्यारे उउ थी लधने ४८ पर्यन्तना सिद्धो थाय छे, त्यारे निरन्तर सात समय सुधी उउ थी लधने ४८ पर्यन्तना ७ सिद्धो थतां रडे छे त्यारणाद अवश्य आंतरो पडी नय छे. त्यारणाद न्यारे ओके समयमा ४८ थी थी लधने ६० सुधीना सिद्धो थवा मांडे छे, त्यारे निरन्तर छ समय सुधी ओटला ७ सिद्धो थया करे छे, त्यारणाद अवश्य आंतरो पडी नय छे. त्यारणाद न्यारे ओके समयमां ६१ थी लधने ७२ सुधीना सिद्धो थवा मांडे छे, त्यारे आठमां समय सुधी ओटलां ७ सिद्ध थया करे छे, अने त्यारणाद अवश्य आंतरो पडे छे. आ ऊमे वृद्धि थतां थतां न्यारे ओके समयमां

मन्त्रत्यव एषं क्रमेण वृद्ध्या एकसमयेन यदा भ्रष्टोत्तरं धर्तं सिध्यन्ति, तदा ततः परमनक्षपमेवान्तरं मन्त्रीति ।

एव पञ्चदशप्रकाराणामनन्तरसिद्धानां वर्गणीकत्वमुक्त्वा सन्मति भयोद्गमकाराणां परम्परसिद्धानां परम्परे च ते सिद्धाव परम्परसिद्धाः सिद्धत्वसमयाद् इष्यादिसमयवर्धिनस्तेषां वर्गणेकत्वमाह—‘ एसा भयदमसमयसिद्धानां ’ इत्यादि । अथमसमयसिद्धानाम्—अथमसमयसिद्धाः सिद्धत्वद्वितीयसमयवर्तिन-तेषां वर्गणा एका । १ । ‘ एव जाय ’ इति पदेन—“ दुसमय सिद्धानां २ तिसमयसिद्धानां ३ चतसमयसिद्धानां ४ पञ्चसमयसिद्धानां ५ छसमयसिद्धानां ६ सप्तसमयसिद्धानां ७ अष्टसमयसिद्धानां ८ नवसमयसिद्धानां ९ दससमयसिद्धानां १० सल्लिज्जसमयसिद्धानां

अथ १०८ सिद्ध होते हैं तब उसके बाद अथर्व्य ही अन्तर आ जाता है

इस प्रकार से १५ मेदवाले इन अनन्तरसिद्धों की वर्गणा में एकता का कथन करके अब १३ प्रकार के जो परम्परसिद्ध हैं उनकी वर्गणा में एकताका कथन करनेके लिये सूत्रकार “अथमसमयसिद्धानां” ऐसा सूत्र पाठ कहते हैं—परम्परारूप से जो सिद्ध होते हैं वे परम्पर सिद्ध हैं सिद्ध होने के समय से लेकर इयादि समयवर्ती जो सिद्ध हैं वे सब परम्पर सिद्ध हैं इही का नाम अथमसमय सिद्ध हैं वे अथमसमयसिद्ध सिद्ध अवस्था के द्वितीय समयवर्ती होते हैं यहाँ “ एव जाय ” पद से “दुसमयसिद्धानां तिसमयसिद्धानां चतसमयसिद्धानां, पञ्चसमयसिद्धानां, छसमयसिद्धानां, सप्तसमयसिद्धानां, अष्टसमयसिद्धानां, नवसम

१०८ सिद्धो वाच्ये ते त्वारि अवश्य आतिरो पदो वाच्ये ते

आ प्रभाषे १५ वेदवाणा अनन्तर सिद्धोनी वर्गणायां ऐक्यतानुं प्रतिपादन करीने के १३ प्रकारता परम्परसिद्धोनी—अथर्व्योनी वर्गणायां ऐक्यतानुं प्रतिपादन करवाया आवे छे—‘ अथमसमयसिद्धानां ’ इत्यादि परम्परा इपे के सिद्धो वाच्ये छे तेमने परम्पर सिद्ध कहे छे सिद्ध शवाना समकथा लछ त इयादि समयवर्ती के सिद्धो छे तेमने परम्परसिद्ध कहे छे तेमनु नामक अथमसमयसिद्ध छे ते अथमसमयसिद्ध के सिद्धो वाच्ये छे, तेमो सिद्ध अवस्थाना द्वितीय समयवर्ती वाच्ये छे एव जाय ’ आ पदो “दुसमयसिद्धानां, तिसमयसिद्धानां चतसमयसिद्धानां पञ्चसमयसिद्धानां छसमयसिद्धानां, सप्तसमयसिद्धानां, अष्टसमयसिद्धानां, नवसमयसिद्धानां, दससमयसिद्धानां सल्लिज्ज

११ असंखिज्जसमयसिद्धाणं १२ ” इति ग्राह्यम् । द्विसमयसिद्धानां, त्रिसमयसिद्धानां, चतुः समयसिद्धानां, पञ्चसमयसिद्धानां, षट्समयसिद्धानां, सप्तसमयसिद्धानां, अष्टसमयसिद्धानां, नवसमयसिद्धानां दशसमयसिद्धानाम्, संख्येयसमयसिद्धानाम्, असंख्येयसमयसिद्धानामितिच्छाया । द्विसमयसिद्धादयः सिद्धत्व-तृतीयादिसमयवर्तिनः, तेषां प्रत्येकं वर्गणा एकैका भवति । तथा-अनन्तसमयसिद्धानां १२ वर्गणा एका भवति । अथवा-‘अप्रथमसमयसिद्धानाम्’ इति सामान्याभिधानम् । ‘द्विसमयसिद्धानाम्’ इत्यादि तु विशेषाभिधानम् । इति ।

सम्प्रति द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य पुद्गलवर्गणैकत्वमाह-‘एषा परमाणुपोग्गलाणं’ इत्यादि । परमाणुपुद्गलानाम्-परमाणव = निष्प्रदेशाः, ये पुद्गलास्ते पर-

यसिद्धाणं, दस समयसिद्धाणं, संखिज्जसमयसिद्धाण, असंखिज्जसमयसिद्धाणं” इन पदोंका संग्रह हुआ है इस तरह सिद्ध अवस्थाके अप्रथम समयवर्ती सिद्धोंकी सिद्ध अवस्थाके द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ आदि समयवर्ती सिद्धोंकी प्रत्येक वर्गणा एकर है इस प्रकारसे ये परम्पर सिद्ध यहां तक १२ प्रकारके कहे गये हैं १३ प्रकारके जो परम्पर सिद्ध हैं वे अनन्तसमयवर्ती सिद्ध हैं इन अनन्तसमयवर्ती सिद्धोंकी भी वर्गणा एक होनी है अथवा-“अप्रथमसमयसिद्धानाम्” ऐसा जो कथन किया गया है वह सामान्य की अपेक्षा से कहा गया है और “द्विसमयसिद्धानाम्” इत्यादि रूप से जो कथन किया गया है वह विशेषरूप से किया गया है ऐसा जानना चाहिये ।

अब द्रव्य क्षेत्र काल और आव इनको लेकर पुद्गलवर्गणामें सूत्रकार एकता का कथन करते हैं-“एषा परमाणुपोग्गला” इत्यादि जिन के

समयसिद्धाणं, असंखिज्जसमयसिद्धाण ” आ पदोंको अर्धी संग्रह थयो छे. आ शीते सिद्ध अवस्थाना समयवर्ती सिद्धोनी वर्गणामा अेकत्व डोय छे. अेअ प्रमाणे सिद्ध अवस्थाना द्वितीय, तृतीय आदि असंख्यात पर्यन्तना समयवर्ती सिद्धोनी, प्रत्येकनी वर्गणामा अेकता डोय छे. अर्धी सुधीमा पार प्रकारना परम्पर सिद्धो भताववामां आव्या. डवे ने अनन्तसमयवर्ती सिद्धो नामने १३ मेा प्रकार छे, ते प्रकारना सिद्धोनी वर्गणामां पणु अेकत्व समञ्जु लेधये अथवा “अप्रथमसमयसिद्धानाम्” आवुं ने कथन करवामां आव्यु छे ते सामान्यनी अपेक्षाअे थयेलुं समञ्जु अने “द्विसमयसिद्धानाम्” धत्यादि ड्पे ने कथन करवामां आव्युं छे, ते विशेषरूपे धयुं छे अेअ समञ्जुं डवे द्रव्यक्षेत्रकाण अने लावनी अपेक्षाअे पुद्गलवर्गणामां सूत्रकार अेकतानु प्रतिपादन करे छे-“एषा परमाणुपोग्गला” धत्यादि,

माणुपुद्गलास्तपो वर्गणा एका भवति । स्कंधा अपि पुद्गला भवन्तीति ' परमाणु ' इति विशेषणसुपासम् । तथा- ' एव जाव ' इति पद- ' दुपपसियाण ' सभाषं ति चउपपससततद्वनदससखिज्जासखिज्जापपसियाण ' इति ब्राह्मम् । त्रिपदेशिकानां चि चतु पञ्च षट् सप्ताष्टनवदशसत्ययासत्येपमदेशिकानां सप्तधानाम्- इतिच्छाया । द्विपदेशिकासत्येपमदेशिकानानां प्रत्येकमकैका वर्गणेति । इय द्रव्यस्य पुद्गलानां वर्गणा प्रोक्ता ।

अथ क्षेत्रस्तेषां वर्गणकत्वमाह- ' एगा एगपपसोगाढाण ' इत्यादि । एकप्र देशावगाढानाम्-एकप्रदेशे-क्षेत्रस्यैकस्मिन्नवयवे अवगाढा =अवस्थिता, एकप्रदे

द्वितीय आदि प्रदेश नहीं होते हैं ऐसे निरंदापुद्गल का नाम परमाणु है ऐसे परमाणुरूप पुद्गलों की वर्गणा एक होती है, स्कन्धों के व्यवच्छेद के लिये यहाँ " परमाणु " ऐसा विशेषण रखा गया है तथा- " एव जाव " इस पद से " दुपपसियाण खंधाण त्रिचउपपस छ सप्तष्ट नव दस मभि ज्जा पपसियाण " इस पाठ का अर्थ है इसका भाव ऐसा है कि दो प्रदेशों वाले स्कंध से लेकर के असंख्यात प्रदेशवाले स्कन्धों तक के स्कन्धों की प्रत्येक की वर्गणा भी एक २ है यह द्रव्य की अपेक्षा लेकर पुद्गलों की वर्गणा कही गई है ।

अथ क्षेत्र की अपेक्षा से इनकी वर्गणा की एकता " एगा एगपपसोगाढाण " इस पाठ द्वारा कही जा रही है-क्षेत्र के एक प्रदेश में

के आदि प्रदेश बिना निरंदापुद्गलने परमाणु ठहरे छे जेवां पर माणुपुद्गलाने वर्गणा जेक होय छे स्कंधाना व्यवच्छेदने भाटे जेही ' परमाणु " जेवु विशेषण सभाषामां आव्यु छे ' एव " जाव जा परना प्रयोग द्वारा ' दुपपसियाण खंधाण ति चउपपस ससततद्वनदस सखिज्जापप सियाण ' आ पाठने अर्थ है अत्रामां आव्ये छे तेनुं वात्पय जेवु छे के जेही सधने असंख्यात पर्यन्तना प्रदेशोवाणा जे स्कंधी होय छे ते प्रत्येकनी वर्गणा पयु जेक जेक होय छे आ रीते द्रव्यनी अपेक्षाजे पुद्गलाने वर्ग णानुं प्रतिपादन करीने छेवे सूत्रकार क्षेत्रनी अपेक्षाजे तेमनी वर्गणां जेकत्वतु प्रतिपादन करे छे-

' एगा एगपपसोगाढाण ' इत्यादि,

क्षेत्रना जेक प्रदेशमां-अवयवमां-जेमनी अवगाढना थाय छे जेवां जेक प्रदेशमां रहेवां पुद्गलाने जेकप्रदेशावगाढ पुद्गल ठहरे छे जेवा जेक प्रदेश

शावगाढास्तेषां तथाभूतानां पुद्गलानां वर्गणा एका । ' एवं जाव इत्यनेन द्वयादि-  
संख्येयप्रदेशावगाढान्तानां पुद्गलानां पाठः संग्राह्यः । तेषां प्रत्येकं वर्गणा एकैका  
बोध्या । तथा-असंख्येयप्रदेशावगाढानां पुद्गलानां वर्गणा एका बोध्या ।

ननु-अनन्तप्रदेशावगाढानां पुद्गलानां वर्गणाया एकत्वं कथं नोक्तम् ? इति  
चेत्, आह-लोकलक्षणस्य अवगाढक्षेत्रस्यासंख्येयप्रदेशत्वमेवास्ति नत्वनन्तप्रदेश-  
त्वम्, अत एव-असंख्येयप्रदेशपर्यन्तानां पुद्गलानां वर्गणाया एकत्वम्, इति नास्ति  
दोषः । पुद्गलाश्चात्र एकप्रदेशिकाद्यनन्तप्रदेशिकान्ता बोध्याः, द्रव्यपरिणामस्या-

अवयव में जिनका अवस्थान होता है वे एक प्रदेशावगाढ पुद्गल है  
ऐसे एकप्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा एक होती है " एवं जाव " इस  
पाठ से दो आदि प्रदेशों से लेकर संख्यात तक में अवगाढ हुए पुद्गलों  
का ग्रहण हुआ है इन दो आदि प्रदेशों में तथा संख्यातप्रदेशों में  
अवगाढ हुए पुद्गलोंकी प्रत्येककी वर्गणा एक है तथा लोकके असंख्यात  
प्रदेशों में अवगाढ हुए पुद्गलों की भी वर्गणा सामान्यतः एक है ।

शंका—अनन्तप्रदेशावगाढ पुद्गलों की वर्गणा का एकत्व यहां  
सूत्रकार ने क्यों नहीं कहा है ?

उत्तर—यहां जो ऐसा नहीं कहा है उसका कारण यह है कि लोक-  
रूप जो अवगाढ क्षेत्र है उसमें अनन्तप्रदेशता नहीं कही गई है उसमें  
तो केवल असंख्यातप्रदेशता तक ही कही गई है, इसीलिये क्षेत्र के  
असंख्यातप्रदेशों तक में अवगाढी असंख्यातप्रदेशवाले पुद्गलों की वर्गणा  
में एकता का कथन किया जाता है पुद्गल एक प्रदेशवाले भी होते हैं

गाढ पुद्गलौनी वर्गणा एकैका बोध्या । " एवं जाव " आ सूत्रपाठ द्वारा ये  
प्रदेशोत्थी लघने संख्यात पर्यन्तना प्रदेशोत्थी अवगाढनावाणां पुद्गलौ अक्षय  
करवाभा आवेल छे आ जेथी लघने संख्यात पर्यन्तना प्रदेशोत्थी अवगाढ-  
नावाणां पुद्गलौमांना प्रत्येक प्रकारना पुद्गलौनी वर्गणा एकैकै बोध्या छे  
तथा असंख्यात प्रदेशोत्थी अवगाढथयेला पुद्गलौनी पणु सामान्यनी अपेक्षाये  
एकै वर्गणा बोध्या छे

शंका—अही सूत्रकारे अनन्तप्रदेशावगाढ पुद्गलौनी वर्गणाभा शा कारणे  
एकैत्व प्रकट कर्युं नथी ?

उत्तर—लोकरूप जे अवगाढ क्षेत्र छे तेभा अनन्त प्रदेशता छेती न  
नथी तेभा तो असंख्यात प्रदेशता पर्यन्तनी प्रदेशता न संलपी शके छे  
तेथी क्षेत्रना असंख्यात पर्यन्तना प्रदेशोत्थी अवगाढी असंख्यात प्रदेशवाजा  
पुद्गलौनी वर्गणाभा एकैतानु कथन करवाभां आबुं छे. पुद्गल एकै प्रदेशवाजा



ચિન્ત્યત્વાત્ । તથા—સુવર્ણદર સત્તરૂપા પારદસ્યૈકેન કર્ણેન ચારિતા ષ્ક્રીમન્તિ, પુનસ્તે પ્રયોગેન ધામિતા સતૈવ મન્ત્વિ, તદ્દદ્ધાપિ યોધ્યમિતિ ।

અથ કાષ્ટત્ પુદ્ગલાનાં ધર્મગોક્ત્વમાહ—‘ ઇગા ઇગસમયઠિદ્યાગ ’ ઇત્યાદિ । ઇકસમયસ્થિતિકાનામ્—ઈક સમય યાત્રત્ સ્થિતિ = પરમાણુત્વાદિના ઇકપ્રદેશાઘગાદાદિસ્ત્વેન ઇકગુણકાલાદિત્વેન ધાડવસ્થાન યપાં તે—ઈકસમયસ્થિતિકા, તેપાં પુદ્ગલાનાં ધર્મગા ઇકા ‘ જાઘ ’ શ્બ્દાત્ દ્વિસમયસ્થિતિકાદિસંસ્થેયસમયસ્થિતિકાન્તાઃ પુદ્ગલા સપ્રાઘ્નાઃ, તેપાં, પ્રત્યેક ધર્મગા ઇકૈકા ઘોધ્યા । તથા—પ્રસવપેયસમયસ્થિ

મસમ્યાતપ્રદશાઘાલે મી હોતે હૈં ઓર અનન્તપ્રદેશોવાલે મી હોતે હૈં કર્યોં કિ દ્રઘ્ય કા પરિણામ અચિન્ત્ય હોતા હૈં જૈસે સાત તોલે સોને મેં ઘુસુક્ષિત પારા મિલાકર વસે ઘોંટા જાઘે તો યહ વસ્ત્ર મેં મિલ જાતા હૈં ઓર ઘાદ મેં ઘહ ઇક તોલા ઘુસુક્ષિત પારા વસ્ત્રસે જઘ અલગ કર દિયા જાતા હૈં તઘ મી ઘહ સોના ઓ તોલા હી રહતા હૈં કમતી નહીં હોતા હૈં ઇસી તરહ સે યહાં પર મી સમજના ઘાહિયે ।

અથ કાલકી અપેક્ષા સે પુદ્ગલોં કી ઘર્મગા મેં ઇકતા કહી જાની હૈં “ ઇગા ઇગસમયઠિદ્યાગ ” ઇત્યાદિ—પરમાણુરૂપ સે ઘા ઇક પ્રદેશ મેં અઘગાઘ હોને રૂપ સે ઘા ઇકગુણકાલાદિરૂપ સે જિન પુદ્ગલોં કા ઇક સમય તક અઘસ્થાન હોતા હૈં ઘે ઇક સમયસ્થિતિક પુદ્ગલ હૈં ઇસે પુદ્ગલોં કી ઘર્મગા ઇક હોતી હૈં ઘહાં “ જાઘ ” શ્બ્દ સે દ્વિસમયસ્થિતિઘાલે પુદ્ગલ આદિ સે ઠેકર મહ્યાત સમય તક કી સ્થિતિઘાલે પુદ્ગલોં કા ઘ્રહણ

પણુ ઠોષ ઠે અસમ્યાતવાળા પણ ઠોષ ઠે અને અનન્ત પ્રદેશવાળા પણ ઠોષ ઠે, કાણુકે દ્રઘ્યનું પરિણામ અચિન્ત્ય ઠોષ ઠે જેમ સાત તોલા સોનામાં ઘુસુક્ષિત ઘાશ મેળવીને તે મિશ્રણને પુદ્ગલામાં આવે તે તેમાં મળી ઠાઘ ઠે, અને ત્યાર બાદ તે બેક તોલા ઘુસુક્ષિત પાસને બધારે તે મિશ્રણમાંથી અલગ કરી નાખવામાં આવે ઠે, ત્યારે પણ સોનું તેા સાત તોલા જ રહે ઠે—તેમાં ઘટ પડતી નથી, બેલુ જ અહીં પણ સમબધુ

હવે ઠાળની અપેક્ષાએ પુદ્ગલોની વચલામાં બેકત્વ પ્રકટ કરવામાં આવે ઠે—“ ઇગા ઇગસમયઠિદ્યાગ ” ઇત્યાદિ. પરમાણુ રૂપે અઘઘ બેક પ્રદેશમાં અપઠાઠ ઘવા રૂપે અઘઘા બેકગુણ ઠાળાદિ રૂપે બે પુદ્ગલોનું બેક સમય સુધીનું અવસ્થાન ( અસ્તિત્વ ’ ઠોષ ઠે તે પુદ્ગલોને બેક સમયસ્થિતિક પુદ્ગલો કહે ઠે બેવાં પુદ્ગલોની વચલા બેક ઠોષ ઠે અહીં “ ઘાઘ ( ઘાઘત ) ” ઘથી બે સમયસ્થિતિકથી ઠાઠને સમ્યાત ઘનન્ત સમયસ્થિતિક પુદ્ગલોને

तिकानां पुद्गलानां वर्गणा एका । अनन्तसमयस्थितिकानां पुद्गलानामभावात्, असंख्येयसमयस्थितिकपर्यन्तपुद्गलानां वर्गणाया एकत्वमत्राभिहितमिति ।

अथ भावतः पुद्गलानां वर्गणाया एकत्वमाह—‘एगा एगुणकालगाणं’ इत्यादि । एकगुणकालकानाम्—एकेन गुणोगुणनं यस्य स एकगुणः, एकगुणः कालोवर्णो येषां ते एकगुणकालकाः, तेषां यथाभूतानां पुद्गलानां वर्गणा एका । यत आरभ्य कृष्णतरकृष्णतमादिरूपा क्रमश उत्कर्षप्रवृत्ति भवति ते भावा एकगुणकालका उच्यन्ते । ‘जाव’ शब्देन द्विगुणकालकादिसंख्येयगुणकालकान्ताः पुद्गला

हुआ है इन सब पुद्गलों की प्रत्येक की वर्गणा एक २ होती है, अनन्त समय तक की स्थितिवाले पुद्गल होते नहीं है इसीलिये यहां पर पुद्गलों की वर्गणा नहीं कही गई है इसी प्रकार से असंख्यात समय तक की स्थितिवाले पुद्गलों की वर्गणा में भी एकत्व जानना चाहिये ।

अब भाव की अपेक्षा से पुद्गलों की वर्गणा में एकत्व “एगा एगुण कालगाणं” इस सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है—एक गुण काला वर्ण जिनमें होता है वे एक कालक पुद्गल है इन पुद्गलों की वर्गणा एक है इसी तरह से कृष्णतर कृष्णतम आदि एक गुणे कृष्णरूपवाले जो पुद्गल हैं वे सब भी एक गुणकालक पुद्गल है इन पुद्गलों में एक गुणे कृष्णरूप की कृष्णता कृष्णतम आदि रूप से प्रकर्ष वृत्ति होती है अतः ऐसे ये पुद्गल एक गुणकालक कहे गये हैं । यहां पर “जाव” शब्द से द्विगुणे कालरूप वाले त्रिगुणे कालरूप वाले चौगुणे कालरूप वाले आदि

अदृश्य करवाया आवेक छे ते प्रत्येक प्रकारना पुद्गलौनी अेक अेक वर्गणा डोय छे. अनन्तसमय सुधीनी स्थितिवाणा पुद्गलौ डोता नथी, अहीं तेमनी वर्गणाया अेकत्व प्रकट करवाया आन्धुं नथी. अेज प्रमाणे असंख्यात समय सुधीनी स्थितिवाणा पुद्गलौनी वर्गणायां पण अेकत्व समजवुं लेधअे.

डेवे “एगा एगुणकालगाणं” धत्यादि सूत्र द्वारा सूत्रकार लावनी अपेक्षाअे पुद्गलौनी वर्गणायां अेकत्वतुं प्रतिपादन करे छे—

अेक गण्णे डायो पणुं अे पुद्गलौमां डोय छे ते पुद्गलौने “अेकशुष्कालक पुद्गलौ” कडे छे. आ पुद्गलौनी वर्गणा अेक डोय छे अेज प्रमाणे कृष्णतर, कृष्णतम आदि अेक गण्णे कृष्णवर्णवाणां अे पुद्गलौ छे, तेअो यथा पणु अेक शुष्कालक पुद्गलौ छे ते पुद्गलौमा अेक गण्णे कृष्णरूपनी कृष्णता कृष्णतम आदि अेके प्रकर्षवृत्ति वाणी डोय छे तेथी अेवा ते पुद्गलौने अेकशुष्कालक पुद्गलौ” कडेवाया आन्ध्या छे. अहीं “जाव (यावत्) पदथी अेगण्णे डायो अेपवाणाथी लधने संख्यात गण्णे पर्यन्तना डायोअेपवाणा पुद्गलौने अेदृश्य

एकान्ते, तेषां प्रत्येक वर्गणा एका घोष्या । तथा-असस्येयगुणकालकानां पुद्गलानां वर्गणा एका । तथा-अनन्तगुणकालकानां पुद्गलानां वर्गणा एका । एवम् एकगुण नीलादिप्रत्यनन्तगुणनीलादि पर्यन्तानां वर्णात्मकानां पुद्गलानाम्, एकगुणसुरमिगन्धानन्तगुणसुरमिगन्धपर्यन्तानाम्, एकगुणदुरमिगन्धानन्तगुणदुरमिगन्धपर्यन्तानां च गन्धात्मकानां पुद्गलानाम्, एकगुणत्रिकादिप्रत्यनन्तगुणत्रिकादिपर्यन्तानां रसात्मकानां पुद्गलानाम्, तथा-एकगुणकठिनादिप्रत्यनन्तगुणकठिनादि पर्यन्तानां स्पर्शात्मकानां पुद्गलानां च प्रत्येकम् एकैका वर्गणा ।  
अष्टमवार्थमाह सूत्रकारः—

पुद्गल से लेकर सङ्घातगुणे काले रूपवाले तकके पुद्गल ग्रहण किये गये हैं । जो इन पुद्गलों में से प्रत्येक द्विगुने तिगुने आदि सरूपातगुने कृष्ण वर्णवाले पुद्गलों की वर्गणा एक २ है तथा असङ्घातगुणित कृष्णवर्णवाले पुद्गलों की भी वर्गणा एक है इसी तरह से अनन्तगुणित कृष्ण वर्णवाले पुद्गलों की वर्गणा एक है तथा इसी प्रकार से एक गुने नीलादि से लगाकर अनन्तगुने नीलादि तक के वर्णवाले पुद्गलों की प्रत्येक की वर्गणा एक २ है एक गुने सुरमिगन्ध से लेकर अनन्तगुने सुरमिगन्ध तकके गंधवाले पुद्गलोंकी वर्गणा भी प्रत्येक की एक २ है एक गुने त्रिक रससे लेकर अनन्तगुने त्रिक (तीखा) रस तकके रसगुणवाले पुद्गलोंकी प्रत्येक की वर्गणा एक २ है तथा एक गुने कठिन आदि स्पर्श से लेकर अनन्तगुने कठिनादि स्पर्शवाले पुद्गलों की प्रत्येक की वर्गणा एक २ है

हराभां अपरेण च ते प्रत्येक प्रकारना कृष्णवर्णवाणां पुद्गलानां तथा असङ्घात अणु कृष्णवर्णवाणां पुद्गलानां वर्णवां ज्येष्ठ ज्येष्ठ च षोडश च ज्येष्ठ समञ्जसु ज्येष्ठ प्रमाद्ये अनन्तशुद्धि कृष्णतावाणां पुद्गलानां वर्णवां पञ्च ज्येष्ठत्व समञ्जसु ज्येष्ठमे ज्येष्ठ प्रमाद्ये ज्येष्ठ शुद्धितथी लघुने अनन्त शुद्धि पर्यन्तना नीलादि वर्णवाणां प्रत्येक प्रकारना पुद्गलानां वर्णवां ज्येष्ठ ज्येष्ठ षोडश च आ रीते षोडश पीत ज्येष्ठ शुद्धवर्णवाणां पुद्गलानां वर्णवां विषे पञ्च समञ्जसु ज्येष्ठ शुद्धि सुरमिगन्धथी लघुने अनन्तशुद्धि पर्यन्तनी सुरमि गन्धवाणां प्रत्येक प्रकारना पुद्गलानां वर्णवां पञ्च ज्येष्ठ ज्येष्ठ षोडश च ज्येष्ठ शुद्धि निष्ठा रसथी लघुने अनन्त शुद्धि पर्यन्तना त्रिकरसवाणां पुद्गलानां-प्रत्येक प्रकारना पुद्गलानां ज्येष्ठ ज्येष्ठ वर्णवां षोडश च ज्येष्ठ प्रमाद्ये ज्येष्ठ रसोवाणां पुद्गलानां वर्णवां विषे पञ्च समञ्जसु ज्येष्ठ शुद्धितथी लघुने अनन्त शुद्धि पर्यन्तना षडणु स्पर्शवाणां पुद्गलानां अपेक्षाये प्रत्येक प्रकारना पुद्गलानां ज्येष्ठ ज्येष्ठ वर्णवां षोडश च नील स्पर्शोनी वर्णवानां ज्येष्ठत्व पञ्च ज्येष्ठ

“ एव वण्णा गंधा रसा फासा भाणियव्वा ।

जाव अनतगुणलुक्खाणं पोग्गलाणं वग्गणा ॥ ” इति ।

एतानि सर्वाण्यपि भावसूत्राणि पट्टयधिकरुतद्वयप्रमाणानि भवन्ति । तथाहि—  
वर्णाः पञ्च, गन्धौ द्वौ, रसाः पञ्च, स्पर्शा अष्टौ, इति मिलिता विंशतिर्भावा भवन्ति,  
तेषाम् एरुगुणकालादितः समारभ्यदशगुणपर्यन्ताभिः, तथा—संख्याताऽसंख्याता-  
ऽनन्तगुणकालादिरूपाभिश्च, त्रयोदशसंख्याभिर्गुणनेन पट्टयधिकरुतद्वय (२६०)  
परिमिता भावभेदा भवन्ति । सम्प्रति तानेव द्रव्यक्षेत्रकालभावानाश्रित्य जघन्या-  
दिभेदभिन्नानां स्कन्धानां वर्गणाया एकत्वमाह—‘ एगा जहन्नप्पएसियाणं ’  
इत्यादि । जघन्यप्रदेगिकानाम्—जघन्याः=सर्वमृतोक्ताश्च ते प्रदेशाः=परमाणवः

इसी बात को सूत्रकार ने “ एव वण्णा, गंधा, रसा, फासा भाणियव्वा  
जाव अणंतगुण लुक्खाणं पोग्गलाणं वग्गणा ” इस सूत्र पाठ द्वारा प्रकट  
किया है इन सब भी भाव को लेकर भाव की अपेक्षा से पुद्गलों की  
वर्गणा के एकत्व का कथन वाले सूत्रों की संख्या २६० है वह इस प्रकार  
से है पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस और ८ स्पर्श ये सब मिलकर २०  
भाव होते हैं इन २० भावों के एक गुने काले वर्ण आदि से लेकर दश-  
गुने काले वर्ण आदि तक १० स्थान और संख्यात, असंख्यात और  
अनन्त तक ३ स्थान मिलकर १३ स्थान होते हैं २० को १३ से गुणित  
करने पर २६० भाव सूत्रों की संख्या आ जाती है अब उन्हीं द्रव्य क्षेत्र  
काल और भाव को आश्रित, करके जघन्यादि भेदों वाले स्कन्धों की  
वर्गणा में एकत्व का कथन किया जाता है “ एगा जहन्न प्पएसियाणं ”

प्रमाणे कथन थपु. नेधये. आ वातने सूत्रकारे “ एव वर्णा, गंधा, रसा,  
फासा भाणियव्वा जाव अणंतगुणलुक्खाण पोग्गलाण वग्गणा ” आ सूत्रपाठ  
द्वारा व्यक्त करी छे. आ अर्थां लावोने ध्यानमां लधने लावनी अपेक्षाये  
पुद्गलौनी वर्गणाया अकत्वना कथनवाणा २६० सूत्रो अने छे ते आ प्रमाणे  
समञ्जवा—पाच वर्ण, अे गंध, पांच रस, अने ८ स्पर्श, एये अर्था मणीने  
२० लावो थाय छे. ते २० लावोना अेक शुद्धित डाणो वर्ण आदिथी  
लधने १० शुद्धित डाणावर्णु पर्यन्तना इस स्थान थाय छे अने संख्यात,  
असंख्यात अने अनन्त सुधीना त्रयु स्थानो तेमा उभेरवाथी कुल १३ स्थान  
थाय छे आ १३ स्थानोने २० लावो वडे शुद्धवाथी कुल २६० भाव सूत्रो  
आवी जाय छे हवे अेक द्रव्य, क्षेत्र, काल अने लावने आधारे जघन्यादि  
लेहोवाणा स्कन्धोनी वर्गणायां अेकत्वनु प्रतिपादन करवामां आवे छे—“ एगा  
जहन्नप्पएसियाणं ” इत्यादि. जघन्य प्रदेशवाणा स्कन्धोनी वर्गणा अेक छे.

घृणन्ते, तेषां प्रत्येक वर्गणा एका घोष्या । तथा-प्रसृत्येयगुणकासकानां पुद्गलानां  
 वर्गणा एका । तथा-अनन्तगुणकासकानां पुद्गलानां वर्गणा एका । एवम् एकगुण  
 नीलादिप्रसृत्यनन्तगुणनीलादि पर्यन्तानां वर्णात्मकानां पुद्गलानाम्, एकगुणसुर  
 मिग-घाघनन्तगुणसुरमिग-घपर्यन्तानाम्, एकगुणदुरमिग-घाघनन्तगुणदुरमिग-  
 न्घपर्यन्तानां च गन्धात्मकानां पुद्गलानाम्, एकगुणत्रिकादिप्रसृत्यनन्तगुणत्रिका  
 दिपर्यन्तानां रसात्मकानां पुद्गलानाम्, तथा-एकगुणकठिनादिप्रसृत्यनन्तगुणक  
 ठिनादि पर्यन्तानां स्पर्शात्मकानां पुद्गलानां च प्रत्येकम् एकैका वर्गणा ।  
 असुमेवार्थमाह सूत्रकार —

पुद्गल से लेकर असख्यातगुणे काले रूपवाले तकके पुद्गल ग्रहण किये गये  
 हैं । सो इन पुद्गलों में से प्रत्येक दिगुने तिगुने आदि सख्यातगुने कृष्ण  
 वर्णवाले पुद्गलों की वर्गणा एक २ है तथा असख्यातगुणित कृष्णवर्ण  
 वाले पुद्गलों की भी वर्गणा एक है इसी तरह से अनन्तगुणित कृष्ण  
 वर्णवाले पुद्गलों की वर्गणा एक है तथा इसी प्रकार से एक गुने नीलादि  
 से लगाकर अनन्तगुने नीलादि तक के वर्णवाले पुद्गलों की प्रत्येक की  
 वर्गणा एक २ है एक गुने सुरमिग-घ से लेकर अनन्तगुने सुरमिग-घ  
 तकके गंधवाले पुद्गलोंकी वर्गणा भी प्रत्येक की एक २ है एक गुने तिक  
 रससे लेकर अनन्तगुने तिक (तीखा) रस तकके रसगुणवाले पुद्गलोंकी  
 प्रत्येक की वर्गणा एक २ है तथा एक गुने कठिन आदि स्पर्श से लेकर  
 अनन्तगुने कठिनादि स्पर्शवाले पुद्गलों की प्रत्येक की वर्गणा एक २ है

इसवातां आवेत्त छे ते प्रत्येक प्रकारना कृष्णवर्णवाणां पुद्गलोनी तथा अस  
 ख्यात जलु कृष्णवर्णवाणां पुद्गलोनी वजलु जेक जेक छे जेक छे जेक  
 समञ्जु जेक प्रमाद्ये अनन्तशुद्धित कृष्णतावाणां पुद्गलोनी वजलुवां पद्य  
 जेकत्व समञ्जु जेकजे जेक प्रमाद्ये जेक शुद्धितभी लधने अनन्त शुद्धित  
 पर्यन्तना नीलादि पद्यवाणां प्रत्येक प्रकारना पुद्गलोनी वजलु जेक जेक छे जेक  
 छे जेक शीते ढोद्धित पीत जेकने शुद्धवर्णवाणां पुद्गलोनी वजलु विरे पद्य  
 समञ्जु जेक शुद्धित सुरमिग-घभी लधने अनन्तशुद्धित पर्यन्तनी सुरमि  
 ग-घवाणां प्रत्येक प्रकारना पुद्गलोनी वजलु पद्य जेक जेक छे जेक छे  
 शुद्धित तिक रसभी लधने अनन्त शुद्धित पर्यन्तना तिकरसवाणां पुद्गलोनी-  
 प्रत्येक प्रकारना पुद्गलोनी जेक जेक वजलु छे जेक प्रमाद्ये अनन्त  
 रसोवाणां पुद्गलोनी वजलु विरे पद्य समञ्जु जेक शुद्धितभी लधने अनन्त  
 शुद्धित पर्यन्तना ठेक स्पर्शवाणां पुद्गलोनी अपिद्यजे प्रत्येक प्रकारना पुद्गलोनी  
 जेक जेक वजलु छे जेक स्पर्शोनी वजलुवाणां जेकत्वपद्य जेक

पर्वगाहनकानाम्-असंख्येयप्रदेशावगाहानां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-अजघन्योत्कर्षावगाहकानाम्-संख्येयासंख्येयप्रदेशावगाहानां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-जघन्यस्थितिकानाम्-जघन्या=सर्वालपासमयमपेक्ष्य स्थितियैरां ते जघन्यस्थितिकाः=एकसमयस्थितिकास्तेषां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-उत्कर्षस्थितिकानाम्=असंख्यातसमयस्थितिकानां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-अजघन्योत्कर्षस्थितिकानां=संख्येयस्थितिकानां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-

होती है सब से कम जिनकी अवगाहना होती है वे जघन्य अवगाहनक हैं ऐसी जघन्य अवगाहनावाले पुद्गल स्कन्ध एकप्रदेश में अवगाह अवस्थित होते हैं । तथा जो पुद्गल स्कन्ध उत्कृष्ट अवगाहनावाले होते हैं असंख्यातप्रदेशों में अवगाह होते हैं ऐसे उन पुद्गलों की वर्णना भी एक होती है तथा जो पुद्गलस्कन्ध अजघन्योत्कर्ष अवगाहना वाले होते हैं संख्यात असंख्यात प्रदेशों में अवगाह होते हैं ऐसे पुद्गलों की वर्णना भी एक होती है तथा समय की अपेक्षा लेकर जिनकी स्थिति सब से अल्प है वे जघन्यस्थितिक पुद्गल हैं ऐसे जघन्य स्थितिवाले पुद्गलों की भी वर्णना एक है तथा उत्कृष्टस्थितिवाले जो पुद्गल हैं असंख्यात समय की स्थिति वाले जो पुद्गल हैं उन पुद्गलों की वर्णना भी एक है तथा जो पुद्गल अजघन्योत्कर्ष स्थितिवाले हैं संख्यात समय और असंख्यात समय की स्थितिवाले हैं ऐसे पुद्गलों की भी वर्णना एक है तथा जो पुद्गल

गाहना सौथी ओधी डोय छे तेमने जघन्य अवगाहनक कडे छे ओवी जघन्य अवगाहनावाणा पुद्गल स्कंध ओक प्रदेशमां अवगाह थधने रडेला डोय छे तथा जे पुद्गल स्कंध उत्कृष्ट अवगाहनावाणा डोय छे, तेओ असंख्यात प्रदेशेमा अवगाह ( रडेला ) डोय छे ओवा ते पुद्गलेनी वर्णणा पणु ओक डोय छे. तथा जे पुद्गल स्कंध अजघन्योत्कर्ष अवगाहनावाणा डोय छे, संख्यात असंख्यात प्रदेशेमा अवगाह डोय छे, ओवा पुद्गलेनी वर्णणा पणु ओक डोय छे तथा समयनी अपेक्षाओ जेमनी स्थिति सौथी अल्पकालनी छे, ओवां जघन्यस्थितिक पुद्गलेनी वर्णणा पणु ओक डोय छे असंख्यात समयनी स्थितिवाणा जे पुद्गले छे तेमने उत्कृष्टस्थितिक पुद्गले कडे छे ते उत्कृष्ट स्थितिवाणा पुद्गलेनी वर्णणा पणु ओक डोय छे तथा जे पुद्गले अजघन्योत्कर्ष स्थितिवाणा छे-ओरडे के संख्यात अने असंख्यात समयनी स्थितिवाणा जे पुद्गले छे, तेमनी वर्णणा पणु ओक डोय छे. तथा जे पुद्गले जघन्य

द्विप्रदेशादयः जघ-पमदेशाः, जघ-पमदेशा सत्स्यपाम् इति जघन्यप्रदेशितस्त एव  
जघ-पमदेशिकास्तेषा तथाभूतानां स्फन्धानां - द्रघणुकादीनां वर्गणा एक ।  
जघन्यप्रदेशिका इति सबधनादेराकृतिगणत्वादिन्प्रत्यय\* । तथा-उत्कपमदेशिका  
नाम्-उत्कपां=उत्कृष्टसत्स्यका -परमानन्ता इति यावत् मदेशाः=अपचो येषां ते  
उत्कपमदेशिका , तेषां तथाभूतानां स्फन्धाना वर्गणा एका । एतयां यघन्यन्ता  
वर्गणा सन्ति, तथापि अजघन्योत्स्यप अरुदेन व्ययद्विपमापत्वाद् वग गैरुक्तं बोध्य-  
मिति । एयम्=अनेन प्रकारेणैव जघन्यावगाहनात् अरुगाहये=विष्ट्वि पृद्  
गञ्जा यस्यां सा-अवगाहना=मत्रमदेशरूपा, जघन्या=सर्वस्वीका अवगाहना येषां  
जघ-पावगाहका =एकमदेशावगाहस्तोपां पुद्गलानां वगणा एका । तथा-उत्क

इत्यादि जघन्य प्रदेशवाले स्फन्धों की वर्गणा एक है सय से कम प्रदेशों  
का नाम जघ-य प्रदेश है ऐसे जघन्य प्रदेश द्विप्रदेश आदि रूप होते  
हैं ऐसे जघन्य प्रदेश जिन स्फन्धों में होते हैं वे जघन्य प्रदेशिक या  
जघन्यप्रदेशी स्फन्ध हैं ऐसे उन जघ-य प्रदेशी स्फन्धों की द्रघणुकादिक  
स्फन्धों की वर्गणा एक होती है तथा जो उत्कृष्ट प्रदेशों अणुओं वाले  
स्फन्ध हैं उन स्फन्धों की वर्गणा भी एक है तथा जो स्फन्ध अजघन्यो  
त्कृष्ट प्रदेशवाले हैं-मध्य स्फन्ध रूप हैं उन स्फन्धों की भी वर्गणा एक  
है यद्यपि इन मध्यम स्फन्धों की वर्गणाए अनन्त होती हैं फिर भी ये  
अजघन्योत्कर्षशाब्द से व्ययद्विपमाण-वाच्य होती हैं इसलिये इनमें  
एकता कही गई है इसी तरह से जो पृथक् स्फन्ध जघन्य अवगाहनावाले  
हैं अर्थात् एक प्रदेशावगाही हैं उनकी भी वर्गणा एक होती है जिसमें  
पुनः रहते हैं उसका नाम अवगाहना है यह अवगाहना क्षेत्र प्रदेशारूप

सौधी आछा प्रदेशने जघन्यप्रदेश कडे छ जेवा जघन्यप्रदेश द्विप्रदेश आदि  
रूप होय छ जेवा जघन्य प्रदेशो ने स्फन्धोभां होय छ, ते स्फन्धो जघन्यप्रदे  
शिक अवगाहना जघन्यप्रदेशी स्फन्धो कडे छ जेवा ते जघन्यप्रदेशी स्फन्धी न आदि  
अवगाहना स्फन्धी वर्गणाभां जेक होय छ तथा उत्कृष्ट प्रदेशोवाला स्फन्धी  
वर्गणा पवु जेक होय छ तथा ने स्फन्धो अवगाहनात्कृष्ट प्रदेशोवाला होय छ अरु  
ते मध्यम स्फन्धोप होय छ, ते स्फन्धी वर्गणा पवु जेक होय छ जे  
ते मध्यम स्फन्धी वर्गणाभां अनन्त होय छ एतां पवु ते अवगाहना  
क्षेत्र प्रदेशी व्ययद्विपमाण (वाच्य) शाय छ तेथी तेजोभां जेकता कडेवाभां  
आवी छ जेव प्रमाणे ने पुनः स्फन्धो जघन्य अवगाहनावाला छ अरु ते  
जेक प्रदेशावगाही छ तेमनी पवु जेक वर्गणा होय छ जेभां पुनः स्फन्धो  
तेनु नाम अवगाहना छ ते अवगाहना क्षेत्रप्रदेशरूप होय छ, जेमनी जघ

पौत्रगाहनकानाम्-असंख्येयप्रदेशान्नादानां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-अजघन्योत्कर्षावगाहकानाम्=संख्येयासंख्येयप्रदेशान्नादानां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-जघन्यस्थितिकानाम्-जघन्या=सर्वालपासमयमपेक्ष्य स्थितिर्येषां ते जघन्यस्थितिकाः=एकसमयस्थितिकास्तेषां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-उत्कर्षस्थितिकानाम्=असंख्यातसमयस्थितिकानां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा अजघन्योत्कर्षस्थितिकानां=संख्येयस्थितिकानां पुद्गलानां वर्णना एका । तथा-

होती है सब से कम जिनकी अवगाहना होती है वे जघन्य अवगाहनक हैं ऐसी जघन्य अवगाहनावाले पुद्गल स्कन्ध एकप्रदेश में अवगाह अवस्थित होते हैं । तथा जो पुद्गल स्कन्ध उत्कृष्ट अवगाहनावाले होते हैं असंख्यातप्रदेशों में अवगाह होते हैं ऐसे उन पुद्गलों की वर्णना भी एक होती है तथा जो पुद्गलस्कन्ध अजघन्योत्कर्ष अवगाहना वाले होते हैं संख्यात असंख्यात प्रदेशों में अवगाह होते हैं ऐसे पुद्गलों की वर्णना भी एक होती है तथा समय की अपेक्षा लेकर जिनकी स्थिति सब से अल्प है वे जघन्यस्थितिक पुद्गल हैं ऐसे जघन्य स्थितिवाले पुद्गलों की भी वर्णना एक है तथा उत्कृष्टस्थितिवाले जो पुद्गल हैं असंख्यात समय की स्थिति वाले जो पुद्गल हैं उन पुद्गलों की वर्णना भी एक है तथा जो पुद्गल अजघन्योत्कर्ष स्थितिवाले हैं संख्यात समय और असंख्यात समय की स्थितिवाले हैं ऐसे पुद्गलों की भी वर्णना एक है तथा जो पुद्गल

गाहना सौथी ओधी डोय छे तेमने जघन्य अवगाहनक कडे छे ओवी जघन्य अवगाहनावाणा पुद्गल स्कंध ओक प्रदेशमां अवगाह थधने रडेला डोय छे तथा ओ पुद्गल स्कंध उत्कृष्ट अवगाहनावाणा डोय छे, तेओ असंख्यात प्रदेशोमा अवगाह ( रडेला ) डोय छे ओवा ते पुद्गलोनी वर्णणा पणु ओक डोय छे. तथा ओ पुद्गल स्कंध अजघन्योत्कर्ष अवगाहनावाणा डोय छे, संख्यात असंख्यात प्रदेशोमा अवगाह डोय छे, ओवा पुद्गलोनी वर्णणा पणु ओक डोय छे तथा समयनी अपेक्षाओ जेमनी स्थिति सौथी अल्पकाननी छे, ओवां जघन्यस्थितिक पुद्गलोनी वर्णणा पणु ओक डोय छे असंख्यात समयनी स्थितिवाणां ओ पुद्गलो छे तेमने उत्कृष्टस्थितिक पुद्गलो कडे छे ते उत्कृष्ट स्थितिवाणा पुद्गलोनी वर्णणा पणु ओक डोय छे तथा ओ पुद्गलो अजघन्योत्कर्ष स्थितिवाणा छे-ओटवे के संख्यात अने असंख्यात समयनी स्थितिवाणा ओ पुद्गलो छे, तेमनी वर्णणा पणु ओक डोय छे तथा ओ पुद्गलो जघन्य



द्विप्रदेशादयः जघ-यमदेशाः, जघ-यमदेशा सन्त्येषाम् इति जघन्यप्रदेशिनस्त एव  
 जघ-यमदेशिकास्तेषां तथाभूतानां स्फन्धानां - द्रघणुकादीनां वर्गणा एका ।  
 जघन्यप्रदेशिका इति सवचनादेराकृतिगणत्वादिन्प्रत्ययः । तथा-उत्कर्षप्रदेशिका  
 नाम्-उत्कर्षा = उत्कृष्टरूपका - परमानन्ता इति यावत् प्रदेशा = प्रणवो येषां ते  
 उत्कर्षप्रदेशिकाः, येषां तथाभूतानां स्फन्धानां वर्गणा एका । एतेषां यद्यप्यनन्ता  
 वर्गणा सन्ति, तथापि अजघ-पोत्कर्ष शब्देन व्यवहियमापत्वाद् एव गैकत्व बोध्य  
 मिति । एवम् = अनेन प्रकारेण जघन्यावगाहनकानाम् अवगाह-ते = तिष्ठन्ति पुद्-  
 गत्रा यस्यां सा-अवगाहना = क्षेत्रप्रदेशरूपा, जघन्या = सर्वस्वोका अवगाहना येषां  
 जघ-यावगाहना = एकमन्शावगाहनास्तेषां पुद्गलानां वर्गणा एका । तथा-उत्क

इत्यादि जघ-य प्रदेशावाले स्फन्धों की वर्गणा एक है सब से कम प्रदेशों  
 का नाम जघन्य प्रदेश है ऐसे जघन्य प्रदेश द्विप्रदेश आदि रूप होते  
 हैं ऐसे जघन्य प्रदेश जिन स्फन्धों में होते हैं वे जघ-य प्रदेशिक या  
 जघन्यप्रदेशी स्फन्ध हैं ऐसे उन जघन्य प्रदेशी स्फन्धों की द्रघणुकादिक  
 स्फन्धों की वर्गणा एक होती है तथा जो उत्कृष्ट प्रदेशों अणुओं वाले  
 स्फन्ध हैं उन स्फन्धों की वर्गणा भी एक है तथा जो स्फन्ध अजघ-पो  
 उत्कृष्ट प्रदेशावाले हैं-मध्य स्फन्ध रूप हैं उन स्फन्धों की भी वर्गणा एक  
 है यद्यपि इन मध्यम स्फन्धों की वर्गणा अनन्त होती है फिर भी य  
 अजघ-पोत्कर्षशब्द से व्यवहियमाण-वाच्य होती हैं इसलिये इनमें  
 एकता कही गई है इसी तरह से जो पुद्गल स्फन्ध जघन्य अवगाहनावाले  
 हैं अर्थात् एक प्रदेशावगाही हैं उनकी भी वर्गणा एक होती है जिसमें  
 पुद्गल रहते हैं उसका नाम अवगाहना है यह अवगाहना क्षेत्र प्रदेशरूप

श्रीषी ज्योत्सना प्रदेशने जघन्यप्रदेश कहे छ ज्येवा जघन्यप्रदेश द्विप्रदेश आदि  
 रूप होय छ ज्येवा जघन्य प्रदेशो के स्फन्धोभां होय छ ते स्फन्धो जघन्यप्रदे  
 शिक अवयवो जघन्यप्रदेशी स्फन्धो कहे छ ज्येवा ते जघन्यप्रदेशी स्फन्धो अ आदि  
 अणुवाणो स्फन्धो वर्गणां ज्येवा होय छ तथा उत्कृष्ट प्रदेशोवाणो स्फन्धो  
 वर्गणां पणु ज्येवा होय छ तथा के स्फन्धो अवगाहनाप्रदेशवाणो होय छ ज्येवा  
 के मध्यम स्फन्धो होय छ, ते स्फन्धो वर्गणां पणु ज्येवा होय छ ज्येवा  
 ते मध्यम स्फन्धो वर्गणां अनन्त होय छ ज्येवा पणु ते अवगाहना-  
 क्षेत्र प्रदेशो व्यवहियमाण (वाच्य) होय छ तेषी तेज्योभां ज्येवा कहेयामां  
 ज्येवा छ ज्येवा प्रमावे के पुद्गल स्फन्धो अवगाहनावाणो छ-ज्येवा के  
 ज्येवा प्रदेशावगाही छ तेमनी पणु ज्येवा वर्गणां होय छ ज्येवा पुद्गलो रहते  
 तेनु नाम अवगाहना छ ते अवगाहना क्षेत्रप्रदेशरूप होय छ ज्येवा ज्येवा

સામાન્યસ્કન્ધવર્ગૈકતાધિકારઃ પ્રસ્તુત, અત એવ અજઘન્યોત્કર્ષપ્રદેશિકસ્ય અજઘન્યોત્કર્ષ પ્રદેશાવગાઢસ્ય સ્કન્ધવિશેષસ્યૈકત્વમાઢ—

મૂલમ્—એગે જંબુદ્વીવે દીવે સન્વદીવસમુદ્રાણં જાવ અઢ્ઢંગુલં  
ચ કિંચિ વિસેસાહિણ પરિક્ષેવેણં ॥ સૂ ૦ ૫૪ ॥

છાયા—એકો જમ્બૂદ્વીપો દ્વીપઃ સર્વદ્વીપસમુદ્રાણાં યાવત્ અઢ્ઢાંગુલં ચ કિંચિ-  
દ્વિશેષાધિકં પરિક્ષેપેણ ॥ સૂ ૦ ૫૪ ॥

ટીકા—‘એગે જંબુદ્વીવે’ ઇત્યાદિ—

જમ્બૂદ્વીપઃ—જમ્બૂ=જમ્બૂવૃક્ષેણ ઉપલક્ષિતો દ્વીપઃ—જમ્બૂદ્વીપનામકો દ્વીપઃ,  
કીદશઃ સઃ ? ઇત્યાહ—સર્વદ્વીપસમુદ્રાણાં ‘જાવ’ યાવત્, અત્ર—યાત્રચ્છબ્દેન—  
“સન્વઠ્ઠમંતરણ સન્વઠ્ઠખુઢ્ઢાણ વઢ્ઢે તેછાપૂયસંઠાણસંઠિણ એગં જોયણસયસઢ્ઢસં આયા-  
મવિક્ષંધેણ, તિન્નિ જોયણસયસઢ્ઢસાઈં સોલસસઢ્ઢસાઈં દોન્નિ સયાઈં સત્તાવીસાઈં  
તિન્નિકોસા અઢ્ઢાવીસં ઘણુસયં તેરસઅંગુલાઈં” ઇતિ ષાઠઃ સંગ્રાહઃ । સર્વાભ્યન્ત-  
રકઃ=સર્વદ્વીપસમુદ્રમધ્યસ્થિતઃ સર્વશુદ્રકઃ=સકલદ્વીપાપેક્ષયા લઘુઃ, વૃત્તો=વર્તુલઃ,  
ગોલાકારઃ, તૈલાપૂપસંરથાનસંસ્થિતઃ—તૈલાપૂપાકૃતિકઃ, તથા—આયામવિષ્કમ્બેણ=

સામાન્ય સ્કન્ધવર્ગણા કી એકતા પ્રસ્તુત હૈ ઇસલિયે જો સ્કન્ધ  
અજઘન્યોત્કર્ષ પ્રદેશોવાલા હૈ—સંખ્યાત અસંખ્યાત પ્રદેશોવાલા હૈ ઓર  
ઇસી સે જો અજઘન્યોત્કર્ષ પ્રદેશાવગાઢ હૈ લોક કે સંખ્યાત અસંખ્યાત-  
પ્રદેશો મેં અવસ્થિત હૈ—એસે ઉસ સ્કન્ધ વિશેષ કી એકતા કા કથન  
કિયા જાતા હૈ—“એગે જંબુદ્વીવે દીવે” ઇત્યાદિ ॥ ૫૪ ॥

ટીકાર્થ—જમ્બૂ વૃક્ષ સે ઉપલક્ષિત યહ જમ્બૂદ્વીપ નામ કા દ્વીપ જો  
કિ સમસ્ત દ્વીપ ઓર સમુદ્રોં કે મધ્યમેં હૈ તથા જિસકા વિસ્તાર એક  
લાખ યોજન કા હૈ ઓર જો સમસ્તદ્વીપોં કી અપેક્ષા લઘુ હૈ આકાર  
જિસકા ગોલ હૈ ઇસી સે જો પુણ જૈસી આકૃતિવાલા હૈ પરિધિ

સામાન્ય સ્કન્ધવર્ગણાની એકતાનુ નિરૂપણ યાલી રહુ છે, તેથી જે સ્કન્ધ  
અજઘન્યોત્કર્ષ પ્રદેશોવાળો છે. સખ્યાત અસખ્યાત પ્રદેશોવાળો છે અને  
તેથી જ જે અજઘન્યોત્કર્ષ પ્રદેશાવગાઢ છે લોકના સખ્યાત અસખ્યાત પ્રદે  
શોમાં જે અવસ્થિત ( રહેલો ) છે, એવા તે સ્કન્ધવિશેષની એકતાનુ કથન  
કરવામાં આવે છે “એગે જંબુદ્વીવે” ઇત્યાદિ ॥ ૫૪ ॥

ટીકાર્થ—જમ્બૂદ્વીપ એક છે જમ્બૂવૃક્ષથી ઉપલક્ષિત આ જમ્બૂ નામનો  
દ્વીપ કે જે સમસ્ત દ્વીપો અને સમુદ્રોની મધ્યમાં આવેલો છે તથા જેનો  
વિસ્તાર એક લાખ યોજનનો છે, જે યથા દ્વીપો કરતા નાનો છે, જે માલ-

अथ षड्गुणकालकानाम् = अथ येन = अथ यस्सख्या विश्वपथ - एकसख्यया गुणो - गुणने  
 यस्य स एकगुणः, स कालः = कृष्णा वर्णो यथा ते जघन्यगुणकालकानां पर्याया  
 एका । तथा - उत्कर्षगुणकालकानाम् अजघन्योत्कर्षगुणकालकानां च षड्गुण  
 एकैवा घोष्या । एवम् - अनन प्रकारेण अथ योत्कर्षाजघन्योत्कर्षभेदे - नीलादिवर्ण  
 षठां सुरभ्यादिगन्धवर्तां तिकादिरसवर्तां कठिनादिरुक्ष्णात्स्पर्शवर्तां च पुद्गलानां  
 प्रत्येकैकैवा वर्गणा यो यति ॥ सू० ५३ ॥

जघन्यगुण कृष्णवर्णवाले हैं उनकी भी वर्गणा एक है अर्थात् जिन  
 पुद्गलों में पुद्गलस्वरुधों में कृष्णवर्ण एक गुण ही है ऐसे उन पुद्गलस्वरुधों  
 की भी वर्गणा एक ही है यद्यपि ऐसे पुद्गलस्वरुधों की वर्गणा अनन्त  
 भी होती है परन्तु फिर भी ये जघन्यगुण कृष्णवर्ण " इस एक वाच्य के  
 द्वारा वाच्य होने के समय सामान्यतः एक कही गई है । तथा जो पुद्ग  
 स्वरुध उत्कृष्टरुध से कृष्णवर्ण वाले हैं और जो पुद्गलस्वरुध सख्यातगुण  
 असख्यातगुणे कृष्णवर्णवाले हैं - उनकी भी वर्गणा सामान्यतः एक २ है ।  
 इसी प्रकार से जो पुद्गलस्वरुध जघन्य उत्कर्ष और अजघन्योत्कर्ष रूप  
 से नीलादि वर्ण वाले हैं जघन्य सुरभि आदि गन्धगुणवाले हैं तिकादि  
 रस वाले हैं और कठिनादिरुक्ष्णात्स्पर्शवाले हैं ऐसे उन पुद्गलस्वरुधों  
 की प्रत्येक की एक २ वर्गणा है ऐसा जानना चाहिये ॥ सू० ५३ ॥

शुद्धित इच्छुवत्वाणां उ-अेवे के ने पुद्गलैर्भां पुद्गल रक्षिभां इच्छुवत्  
 ज्ञेकगत्वां च उ ज्ञेवा पुद्गल रक्षिनी वगत्वा पत्वा ज्ञेक च द्वाय उ ज्ञे के  
 ते पुद्गल रक्षिनी अनत वर्त्तुवाञ्जे पत्वा दोर्ध शके उ छातां पत्वा तेञ्जे  
 ' जघन्यशुद्धित इच्छुवत् ' आ ज्ञेक शब्द द्वारा वाच्य होवाने क्षीमे तेभां  
 सामान्यनी अपेक्षाञ्जे ज्ञेकत्व प्रकट करवानां आ तु उ तथा ने पुद्गल रक्षि  
 उत्कृष्टरुधे इच्छुवत्वाणां उ-अे वे के ने पुद्गल रक्षि सख्यातगत्वां अने  
 असख्यातगत्वां इच्छुवत्वाणां द्वाय उ तेमनी वगत्वा पत्वा सामान्यतः ज्ञेक  
 द्वाय उ ज्ञेक प्रमाञ्जे ने पुद्गल रक्षि जघन्य, उत्कृष्ट अने जघन्य योत्कर्ष  
 रूपे नीलादि वगत्वाञ्जे द्वाय उ जघन्य सुरभि आदि अधवाणां द्वाय उ  
 तिकादि रसवाणां द्वाय उ, अने कठिनी तधिने इत्था पञ्चान्तना स्पर्शवाणां  
 द्वाय उ ते पुद्गल रक्षिनी प्रत्येकनी ज्ञेक ज्ञेक वगत्वा द्वाय उ  
 ज्ञेक समस्तु ॥ सू० ५३ ॥

सामान्यस्कन्धवर्गणैकताधिकारः प्रस्तुतः, अत एव अजघन्योत्कर्षप्रदेशिकस्य अजघन्योत्कर्षप्रदेशावगाढस्य स्कन्धविशेषस्यैकत्वमाह—

मूलम्—एगे जंबुद्वीवे दीवे सव्वदीवसमुद्धानं जाव अद्धंगुलं च किंचि विसेसाहिण् परिकखेवेणं ॥ सू० ५४ ॥

छाया—एको जम्बूद्वीपो द्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां यावत् अद्धाङ्गुलं च किञ्चिद्विशेषाधिकं परिक्षेपेण ॥ सू० ५४ ॥

टीका—‘एगे जंबुद्वीवे’ इत्यादि—

जम्बूद्वीपः—जम्बू=जम्बूवृक्षेण उपलक्षितो द्वीपः—जम्बूद्वीपनामको द्वीपः, कीदृशः सः ? इत्याह—सर्वद्वीपसमुद्राणां ‘जाव’ यावत्, अत्र—यावच्छब्देन—“सव्ववमंतरण सव्वखुड्डाए वट्टे तेष्सापूयसंठाणसंठिए एगं जोयणसयसहस्सं आया-मविक्खंभेणं, तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलससहस्साइं दोन्नि मयाइं सत्तावीसाइं तिन्नि कोसा अद्दावीसं धणुसयं तेरसअंगुलाइं” इति पाठः संग्राहः । सर्वाभ्यन्तरकः=सर्वद्वीपसमुद्रमध्यस्थितः सर्वक्षुद्रकः=सकलद्वीपापेक्षया लघुः, वृत्तो=वर्तुलः, गोलाकारः, तैलापूयसंस्थानसंस्थितः—तैलापूपाकृतिरुः, तथा—आयामविक्खंभेण=

सामान्य स्कन्धवर्गणा की एकता प्रस्तुत है इसलिये जो स्कन्ध अजघन्योत्कर्ष प्रदेशोंवाला है—संख्यात असंख्यातप्रदेशोंवाला है और इसी से जो अजघन्योत्कर्ष प्रदेशावगाढ है लोक के संख्यात असंख्यात-प्रदेशों में अवस्थित है—ऐसे उस स्कन्ध विशेष की एकता का कथन किया जाता है—“एगे जंबुद्वीवे दीवे” इत्यादि ॥ ५४ ॥

टीकार्थ—जम्बू वृक्ष से उपलक्षित यह जम्बूद्वीप नाम का द्वीप जो कि समस्त द्वीप और समुद्रों के मध्यमें है तथा जिसका विस्तार एक लाख योजन का है और जो समस्तद्वीपों की अपेक्षा लघु है आकार जिसका गोल है इसी से जो पुए जैसी आकृतिवाला है परिधि

सामान्य स्कन्धवर्गणानी ऐकतानु निरूपण आदी रह्यु छे, तेथी जे स्कन्ध अजघन्योत्कर्ष प्रदेशोवाणो छे सख्यात असख्यात प्रदेशोवाणो छे अने तेथी जे जे अजघन्योत्कर्ष प्रदेशावगाढ छे लोकना सख्यात असख्यात प्रदेशोमा जे अवस्थित (रहेलो) छे, अवा ते स्कन्धविशेषनी ऐकतानु कथन करवामां आव छे “एगे जंबुद्वीवे” इत्यादि ॥ ५४ ॥

टीकार्थ—जम्बूद्वीप ऐक छे जम्बूवृक्षथी उपलक्षित आ जम्बू नामनेो द्वीप के जे समस्त द्वीपो अने समुद्रोनी मध्यमा आवेलो छे तथा जेना विस्तार ऐक लाख योजनो छे, जे मथा द्वीपो करता नानो छे, जे मात-



मान् । तथा-महावीरः-विशेषेण ईरयति-मोक्षं प्रति गच्छति, गमयति वाऽन्यान् जावानिति, प्रेरयति-कर्माणि निराकरोति वा, पराक्रमयति वा रागादिशत्रून् प्रति यः स वीरः । यद्वा-विदारयति कर्माणि यः, तपसा वा विराजते यः, तपोवीर्येण वा युक्तश्च यः स निरुक्तिवशाद् वीरः । महाश्यासौ वीरश्च महावीरः । महत्त्वं चास्येतरवीरापेक्षया बोध्यम् ।

एवम्भूतश्चरमतीर्थकरः एक एव । सिद्धः-कृतकृत्यो जातः, बुद्धः=केवल-ज्ञानालोकेन सर्वं बोध्यं वस्तु बुद्धवान्, मुक्तः=सकलकर्मभ्यो मुक्तिं प्राप्तः, यावत्करणान्-परिनिवृत्त =कर्मकृतचिकारविरहात् स्वस्थीभूतः, अत एव-सर्वदुःखप्रहीणः-

तपो को तपा है इसलिये इन्हें श्रमण कहा है ये सम्पूर्ण प्रकारके ऐश्वर्य से सम्पन्न थे इसलिये इन्हें भगवान् कहा गया है इन्होंने समस्त कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया है अथवा अन्यजीवों को मोक्षप्राप्त करने के लिये प्रेरणा दी है या अपने उपदेशद्वारा अन्यजीवों को मुक्ति स्थान में पहुंचाया है या रागादिक शत्रुओं को इन्होंने परास्त किया है इसलिये ये महावीरपद से विभूषित हुए हैं । उक्तं च—

विदारयति कर्माणि तपसा वा विराजते ।

तपो वीर्येण युक्तश्च यः स वीर इत्युच्यते ॥

इन्हें जो महान् वीर कहा गया है वह अन्यवीरों की अपेक्षा इसी विशिष्टता को लेकर कहा गया है इस प्रकार से विशेषणों वाले चरमतीर्थकर एक ही है ये चरमतीर्थकर सिद्ध कृतकृत्य हुए हैं बुद्ध केवलज्ञानरूप आलोक से इन्होंने सम्पूर्ण बोध्य वस्तु को जान लिया है

हृती, तेथी तेमने श्रमणु क्ख्या छे. तेओ णथा प्रकारना ऐश्वर्यथी संपन्न हता, तेथी तेमने भगवान् क्ख्या छे तेमणु समस्त कर्मेनि सर्वथा क्षय करीने मोक्ष प्राप्त कर्ये छे, तथा अन्य लोकेने मोक्षप्राप्तिने मार्गं णताण्ये छे, अथवा रागादिक शत्रुओने तेमणु पराजय कर्ये छे, तेथी तेमने महावीर कडे छे क्खु पणु छे डे—“ विदारयति कर्माणि तपसा वा विराजते । तपो-वीर्येण युक्तश्च यः स वीर इत्युच्यते” अन्य वीरो करतां या प्रकारनी जे विशि-ष्टताओधी तेओ युक्त हता, ते विशिष्टताओने कारणे ज तेमने महावीर क्ख्या छे. या प्रकारना विशेषणुवाणा चरम तीर्थ कर ओक ज छे तेओ सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त अने समस्त कर्मेनि अंत करनारा णन्या छे. सिद्धपदनी प्राप्ति करीने तेओ कृतकृत्य थर्ध गयेला होवाथी तेमने सिद्ध क्ख्या छे. केवल-ज्ञानरूप ज्ञानना प्रभावथी तेमणु बोध्य वस्तुने सम्पूर्ण रूपे णणुली होवाथी



टीका—‘अणुत्तरोपपाद्गणं’ इत्यादि—

अनुत्तरोपपातिक्रानाम्—अनन्तरत्वात् अनुत्तराणि=विजयादिविमानानि तत्र उपपातः—अनुत्तरोपपातः, स विधने येषां ते अनुत्तरोपपातिक्राप्तेषां तथाभूतानां देवानाम् ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रमाणम् एका रत्निः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ५६ ॥

अनन्तरमनुत्तरोपपातिक्रदेवानामूर्ध्वोच्चत्वेनैकत्वमुक्तम् । तस्माद् देवाधिकारः प्रस्तुतः । अत एव—सम्प्रति नक्षत्रदेवानामैकत्वमाह—

मूलम्—अद्याणक्खत्ते एगतारे पणत्ते, चित्ताणक्खत्ते एग-  
तारे पणत्ते, सातीणदक्खत्ते एगतारे पणत्ते ॥सू० ५७॥

छाया—आर्द्रानक्षत्रमेकतारं प्रज्ञप्तम्, चित्रानक्षत्रमेकतारं प्रज्ञप्तम्, स्वातीनक्ष-  
त्रमेकतारं प्रज्ञप्तम् ॥ सू० ५७ ॥

टीका—‘अद्याणक्खत्ते’ इत्यादि—

निवासी देवों के शरीर का प्रमाण कहते हैं—

“अणुत्तरोपपाद्गणं देवाणं” इत्यादि ॥ ५६ ॥

टीकार्थ—अनुत्तर विमानवासी देवों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण एक रत्नि है विजयआदि विमानों का नाम अनुत्तर है इन अनुत्तरों में जिनका उपपात है वह अनुत्तरोपपात है यह अनुत्तरोप-  
पात जिनको होता है वे अनुत्तरोपपातिक हैं ऐसे इन देवों का ऊँचाई की अपेक्षा से शारीरिक प्रमाण एक रत्नि का कहा गया है इस अपेक्षा से इन सब में एकता है ॥ सू० ५६ ॥

देवों का अधिकार प्रस्तुत होने के कारण अब सूत्रकार नक्षत्रदेवों में एकता प्रकट करते हैं—

सूत्रकार कथन करे थे—“अणुत्तरोपपाद्गणं देवाणं” इत्यादि ॥ ५६ ॥

टीकार्थ—अनुत्तर विमानवासी देवानां शरीरानीं उच्यते एक रत्निप्रमाणं  
छे, विजय आदि पात्र विमानाने अनुत्तर विमानो कडे छे, तेमां ने उप-  
पात थाय छे तेने अनुत्तरोपपात कडे छे आ अनुत्तर विमानोमां नेमने  
उपपात थाय छे ते देवाने अनुत्तरोपपातिक देवा कडे छे, ते प्रत्येक देवनी  
शारीरिक उच्यते एक एक रत्निप्रमाणं कडी छे, आ दृष्टिने तेमनामां  
अकत्व छे, ॥सू०५६ ॥

देवानो अधिकार आली रह्यो उवाथी सूत्रकार उवे नक्षत्रदेवानी अक-  
तानुं प्रतिपादन करे छे—



સર્વાણિ=શારીરમાનસાનિ દુઃખાનિ પ્રહીણાનિ=પસ્ય સ તથા-સકલશારીરમાનસ  
 દુઃખરહિતો જાતઃ । અસ્યામવસર્વિણ્યો ચતુર્વિંશતિતીર્થકરેષુ એકાકિત્ત્વેન એકમ  
 મતીર્થકરો મહાવીર એવ મોક્ષ ગતઃ । અત એવ-મહાવીરસ્થેક્ત્વ મુક્તમિતિ ॥ સૂ. ૫૫ ॥

મગધાન્ મહાવીર એક એવ નિર્વાણ પ્રાપ્તઃ । નિર્વાણક્ષેત્રમસ્યાસમાનિ ચાનુચ  
 રથિમાનાનિ સન્તિ । અતસ્તમિત્ત્રાસિનાં દેવાનાં દર્શનમાણમાહ—

મૂલમ્—અણુત્તરોવવાહ્યાણ દેવાણ યગા રયણી ઉચ્ચ ઉચ્ચ  
 સ્ત્રેણ પળ્ણત્તા ॥ સૂ. ૫૬ ॥

છાયા—અણુતરોપપાતિકાનાં દેવાનામ્ એકા રત્નિ સ્વર્ગમુચ્ચત્વન  
 મગ્ધ્યા ॥ સૂ. ૫૬ ॥

મુક્ત સમ્પૂર્ણકર્મો સે ફનકા છુટકારા હો શુકા હૈ યાયત્-યે પરિનિવૃત્ત  
 કર્મકૃતવિકારોં કે ઘિરહ સે સ્વસ્થીમૂત હો ગયે હૈ અતએવ ફનકે સમ  
 સ્ત શારીરિક એવ માનસિક દુઃખ અસ્ત હો ગયે હૈ ફસ કારણ યે શારી  
 રિક એવ માનસિક દુઃખોંસે સર્વથા રહિત યન શુકે હૈ, ફસ અવસર્પિ  
 ણીકાલ મેં ચૌષીસ તીર્થકરોં મેં એકાકી અકેલે હી હોને કે કારણ એક  
 ચરમ તીર્થકર મહાવીર હી મોક્ષ ગયે હૈ ફસીલિયે મહાવીર કો એક  
 કહા ગયા હૈ ॥ સૂ. ૫૫ ॥

મગધાન્ મહાવીર એક હી નિર્વાણ કો પ્રાપ્ત છુપ હૈ નિર્વાણ ક્ષેત્ર કે  
 ઘિલકુલ પાસ અનુચારવિમાન હૈ ફસ કારણ અવ સૂત્રકાર ઘાં કે

તેમને શુદ્ધ કહ્યા છે તેમના જ્યાં ક્રોધોના નાશ થવાથી તેઓ ક્રમશઃ પાપોથી  
 છુટી ગયા છે, તેથી તેમને શુદ્ધ કહ્યા છે ક્રમશઃ વિકારોને અભાવે તેઓ  
 સ્વસ્થ થઈ ગયા છે-તેથી તેમના સમસ્ત શારીરિક અને માનસિક દુઃખો અસ્ત  
 પામી ગયા છે તે કારણે તેમને પરિનિવૃત્ત કહ્યા છે તેમણે સમસ્ત ક્રોધોના  
 સ્વભાવ ક્ષય કરી નાખ્યો છે તેથી તેમને સમસ્ત દુઃખોના અતકર કહ્યા છે  
 આ અવસર્પિણીકાળમાં ચૌષીસ તીર્થકરોમાં એકાકી હોવાને કારણે એક ચરમ  
 તીર્થકર મહાવીર જ મોક્ષે ગયા છે તે કારણે મહાવીરમાં એકત્વ પ્રકટ કર  
 વામાં આપ્યું છે ॥ સૂ. ૫૫ ॥

મગધાન મહાવીર નિર્વાણ પ્રાપ્ત છે. નિર્વાણમાં પણ એકત્વ હોવાનું  
 પ્રતિપાદન આગળ થઈ ચુક્યું છે નિર્વાણક્ષેત્રથી બહુ જ નજીકમાં અનુચાર  
 વિમાનો છે તે અનુચાર વિમાન નિવાસી દેવોના શરીરના પ્રમાણનું હવે

टीका—‘अणुत्तरोववाइयाणं’ इत्यादि—

अनुत्तरोपपातिकानाम्—अनन्तरत्वात् अनुत्तराणि=विजयादिविमानानि, तत्र उपपातः—अनुत्तरोपपातः, स विद्यते येषां ते अनुत्तरोपपातिकास्तेषां तथाभूतानां देवानाम् ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रमाणम् एका रत्निः प्रज्ञप्ता ॥ सू० ५६ ॥

अनन्तरमनुत्तरोपपातिकदेवानामूर्ध्वोच्चत्वेनैकत्वमुक्तम् । तस्माद् देवाधिकारः प्रस्तुतः । अत एव—सम्प्रति नक्षत्रदेवानामैकत्वमाह—

मूलम्—अद्वाणवखत्ते एगतारे पणत्ते, चित्ताणवखत्ते एग-  
तारे पणत्ते, स्वातीणवखत्ते एगतारे पणत्ते ॥सू० ५७॥

छाया—आर्द्रानक्षत्रमेकतारं प्रज्ञप्तम्, चित्रानक्षत्रमेकतारं प्रज्ञप्तम्, स्वातीनक्ष-  
त्रमेकतारं प्रज्ञप्तम् ॥ सू० ५७ ॥

टीका—‘अद्वाणवखत्ते’ इत्यादि—

निवासी देवों के शरीर का प्रमाण कहते हैं—

“अणुत्तरोववाइयाणं देवाणं” इत्यादि ॥ ५६ ॥

टीकार्थ—अनुत्तर विमानवासी देवों के शरीर की ऊँचाई का प्रमाण एक रत्नि है विजयआदि विमानों का नाम अनुत्तर है इन अनुत्तरों में जिनका उपपात है वह अनुत्तरोपपात है यह अनुत्तरोप-  
पात जिनको होता है वे अनुत्तरोपपातिक हैं’ ऐसे इन देवों का ऊँचाई की अपेक्षा से शारीरिक प्रमाण एक रत्नि का कहा गया है इस अपेक्षा से इन सब में एकता है ॥ सू० ५६ ॥

देवों का अधिकार प्रस्तुत होने के कारण अब सूत्रकार नक्षत्रदेवों में एकता प्रकट करते हैं—

सूत्रकार कथन करे छे—“अणुत्तरोववाइयाण देवाण” इत्यादि ॥ ५६ ॥

टीकार्थ—अनुत्तर विमानवासी देवानां शरीरनी उंचाई ऐक रत्निप्रमाण छे विन्य आदि पांथ विमानोने अनुत्तर विमानो कडे छे, तेमा ने उप-  
पात थाय छे तेने अनुत्तरोपपात कडे छे आ अनुत्तर विमानोमां नेमनो उपपात थाय छे ते देवोने अनुत्तरोपपातिक देवो कडे छे ते प्रत्येक देवनी शारीरिक उंचाई ऐक ऐक रत्निप्रमाण कडी छे आ दृष्टिने तेमनामां ऐकत्व छे, ॥सू०५६ ॥

देवोने अधिकार आदी रक्षो होवाथी सूत्रकार उवे नक्षत्रदेवोनी ऐक-  
तानुं प्रतिपादन करे छे—

एकतारम्—एका तारा=ज्योतिर्विमानरूपा यस्य तन्—एकतारम्। आर्द्राचित्रा-  
स्वातीनां प्रत्येकमेकैकतारकरत्रं वाच्यमिति । एतन्नक्षत्रत्रयमेव एकैकतारकम् ।  
अथ एतेषामेव एकतारकत्वेनोपादानं कृतम् ॥ सू० ५७ ॥

अनन्तरशुभे आर्द्रादिनक्षत्राणां ताराप्रमाणमुक्तम्, तारा च पुद्गलरूपेति  
पुद्गलस्वरूपमाह—

मूलम्—एगपएसोगाढा पोग्गला अणता पण्णत्ता, एव  
मेगसमयट्टिइया, एगगुणकालगा पोग्गला अणता पण्णत्ता,  
जाव एगगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता ॥ सू० ५८ ॥

॥ एग ठाण समच्च ॥ १ ॥

छाया—एकप्रदेशावगाढाः पुद्गला अनन्ता मण्णत्ताः, एवमेकसमयस्थितिका  
एकगुणकालकाः पुद्गलाः अनन्ता मण्णत्ता, यावत् एकगुणरूपा पुद्गला  
अनन्ता मण्णत्ताः ॥ सू० ५८ ॥

॥ एक स्यान्तं समाप्तम् ॥ १ ॥

टीका—' एगपएसोगाढा इत्यादि—

एकप्रदेशावगाढाः—एकस्मिन् प्रदेशे=क्षेत्रस्पर्शविशेषे भवगाढा=आधिता

“ अहाणक्खत्ते एगठारे पण्णत्ते ” इत्यादि ॥ ५७ ॥

टीकार्थ—आर्द्रानक्षत्र, एक है तारा विमानरूप ज्योति जिसकी  
पैसा है आर्द्रा, चित्रा, स्वाती ये तीन नक्षत्र प्रत्येक एक-एक तारापाले कहे  
गये हैं इसीलिये इनका ही एक तारारूपसे यहाँ ग्रहण हुआ है ॥ सू० ५७ ॥

तारा पुद्गल रूप होता है अतः पुद्गल के स्वरूप का कथन अब  
सूत्रकार कहते हैं । “ एग पएसोगाढा पोग्गला ” इत्यादि ॥ ५८ ॥

टीकार्थ—क्षेत्रांशविशेषरूप एकप्रदेश में आधित परमाणुरूप और  
एक-एक रूप पुद्गल अनन्त कहे गये हैं इसी तरह से एक समय की स्थि

' अहाणक्खत्ते एगठारे पण्णत्ते' इत्यादि ॥ ५७ ॥

टीका—आर्द्रा नक्षत्र ज्येष्ठे उ तारा विमानरूप ज्योतिषपत्त आर्द्रा,  
चित्रा अने स्वाति नक्षत्रे ज्येष्ठे ज्येष्ठे ताराणां कथां उ तेथी तेभने ए अर्द्रा  
ज्येष्ठे ताराइये अदणु इत्वाभा आवेत्त उ ॥ ५७ ॥

तारा पुद्गलरूप इति उ तेथी इवे सूत्रकार पुद्गलय स्वरूपं निरूपय  
इति उ—“ एगपएसोगाढा पोग्गला ” इत्यादि ॥ ५८ ॥

टीकार्थ—क्षेत्रांश विशेषरूप ज्येष्ठे प्रदेशभां इति परमाणुरूप अने एव

पुद्गलाः=परमाणुरूपाः स्कन्धरूपाश्च अनन्ताः प्रज्ञाः । एवम्=अनेन प्रकारेण  
एकसमयस्थितिका एकगुणकालाश्च पुद्गला अनन्ता प्रज्ञाः । तथा-एकगुणनीला-  
दिवर्णकाः, एकगुणसुरभ्यादिगन्धकाः, एकगुणतित्तादिरसकाः, एकगुणकठिनादि-  
स्पर्शकाश्च पुद्गलाः अनन्ताः प्रज्ञाः । इमं अर्थं सूचयितुमाह सूत्रकारः—‘ जाव  
एगगुणलुक्त्वा ’ इत्यादि ॥ सू० ५८ ॥

इति श्री विश्वविरचिता-जगदवल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकृतित-  
ललितकलापालापरु-प्रशिष्टद्रगद्यपद्यनरग्रन्थनिर्मापक-त्रादिमा-  
नमर्दक श्रीगणहृद्यत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त ‘ जैनगान्ध्याचार्यपद-  
भूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि जैनाचार्य-जैनधर्म-  
दिवाकर-पृथ्वी -यासीलालप्रतिविरचितायां  
स्थानाद्गद्यस्य सुधाख्यायां व्याख्यायाम्  
प्रथमं स्थानं सपूर्णम् ॥ १ ॥

तिवाले और एकगुने कृष्णवर्णवाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं । तथा  
एकगुने नीलादिवर्णवाले एकगुने सुगन्धि आदि गन्धवाले, एकगुने  
तित्तादि रसवाले और एकगुने कठिनादि स्पर्शवाले पुद्गल भी अनन्त  
कहे गये हैं । इसी अर्थ को सूचित करने के लिये ‘जाव एगगुणलुक्त्वा’  
इत्यादि रूप से सूत्रकारने कहा है ॥ सू० ५८ ॥

प्रथम स्थान समाप्त

३५ पुद्गल अनन्त कहा है और प्रमाणों के अभाव में स्थितिवाला अनेक  
गणों का वलुवाणां पुद्गल पण्य अनन्त कहा है तथा एकगण नीलादि  
वर्णवाणा, एकगण सुगन्धि आदि गन्धवाणा, एकगण तित्त आदि रसवाणा  
अनेकगण कठिनादि स्पर्शवाणां पुद्गल पण्य अनन्त कहा है. और अर्थने  
प्रकट करवा निमित्त सूत्रकारने “जाव एगगुणलुक्त्वा” इत्यादि सूत्रपाठ कहा है। ५८।

## द्वितीय स्थानकम्

प्रथमं स्थानं व्याख्यातम् । अधुना संग्रहक्रमागतं चतुर्दशेष्टात्मकं द्वितीयं स्थानं व्याख्यायते । अस्य स्थानस्य पूर्वस्थानेन सहायप्रथिमस्य च—स्याद्वाद सिद्धान्तानां जैनानां सर्वं यस्तु सामान्यविशेषात्मकमभिमतम् । तत्र सामान्यमाश्रित्य प्रथमे स्थाने एकत्वेनात्मादि यस्तु निरूपितम् । सम्प्रति विशेषमाश्रित्य तदेव चतुर्दशेष्टात्मकेन प्रत्यये, इत्यनेन सत्रधेनापातस्य चतुर्दशेष्टात्मकस्य द्वितीयस्थानस्य सूत्रानुगमे प्रथमाद्देशकस्य दमादिमूत्रम्—

मूत्रम्—जयस्थिणं लोणे त सव्व दुपओयार, त जहा—जीवा  
 षेव अजीवा षेव । तसा षेव थावरा षेव १, सजोणिया षेव  
 अजोणियाचेव २, साउयाचेव अणाउयाचेव ३, सइंदियाचेव  
 अण्णियाचेव ४, सवेयगाचेव अवेयगाचेव ५, सरूवीचेव  
 अरूवीचेव ६, सप्पोग्गलाचेव अपोग्गलाचेव ७, समारसमावद्ध  
 गाचेव अससारसमावद्धगाचेव ८, सासयाचेव असामयाचेव ९ ॥१॥

### द्वितीय स्थानक प्रारम्भ

प्रथम स्थान व्याख्यात हो चुका अब सहायक्रमागत चतुर्दशेष्टात्मक द्वितीय स्थान का व्याख्यान प्रारम्भ होता है इस स्थान का पूर्वस्थान के साथ ऐसा सम्बन्ध है कि स्याद्वादसिद्धान्त माननेवाले जैनों को सर्वत्र स्तुति सामान्यविशेष धर्मस्मय है यही बात इष्ट है अतः प्रथम स्थान में सामान्य धर्मको लेकर आत्मादि वस्तुओं में एकता का दधन किया गया है अब विरोध धर्म को लेकर वही आत्मादिरूप वस्तु में विप्रकारताका कथन किया जाता है इसी सम्बन्ध को लेकर प्रारम्भ किये गये चतुर्दशेष्टात्मक द्वितीयस्थानके सूत्रानुगममें प्रथम उद्देशकका यह सब से पहिला सूत्र है—“जयस्थिणं लोणे त सव्व दुपओयार’ इत्यादि ॥१॥

### धीनु स्थानक प्रारम्भ

पहिला स्थानकी प्रथमवा पुरी धर्म अवे चम्भाकमानुसार ने धीनु स्थान आवे छे तेनी प्रथमवा करवाभा आवे छे आ स्थानने पूर्वस्थान साथे आ प्रकारने सजब छे स्याद्वादमा माननास जेनी जे वातने स्वीकार छे के सर्व वस्तुज्जे सामान्य विशेष धर्मो भइ होय छे तेथी पहिला स्थानभा सामान्य धर्मनी अपेक्षाज्जे आत्मादि पदार्थानु प्रतिपादन करवाभा आबु छे अवे विशेष धर्मनी अपेक्षाज्जे जेक आत्म डि इप पदार्थानु विप्रकारतानु ( द्विवि धतानु ) ध्यत करवाभा आवे छे आ सजबने अनुकरीने शरु करवाभा आवेला सोसा उद्देशात्मक द्वितीय स्थानना सूत्रानुगमभा पहिला उद्देशक आ सोधी पहिलु सूत्र — जयस्थिणं लोणे त सव्व दुपओयार ’ इत्यादि ॥१॥

छाया—यदस्ति खलु लोके तत्सर्वं द्विप्रत्यवतारम्, तद्यथा—जीवाश्चैव अजीवाश्चैव । त्रसाश्चैव स्यावराश्चैव, १, सयोनिकाश्चैव अयोनिकाश्चैव २, सायुषश्चैव अनायुषश्चैव ३, सेन्द्रियाश्चैव अनिन्द्रियाश्चैव ४, सवेदकाश्चैव अवेदकाश्चैव ५, सरूपिणश्चैव अरूपिणश्चैव ६, सपुद्गलाश्चैव अपुद्गलाश्चैव ७, संसारसमापन्नकाश्चैव असंसारसमापन्नकाश्चैव ८, शाश्वताश्चैव अशाश्वताश्चैव ९ ॥ सू० १ ॥

टीका—‘ जदत्थि णं ’ इत्यादि—

लोके—लोक्यते केवलालोकेन इति लोकस्तस्मिन्—पञ्चास्तिकायात्मके लोके खलु यत् किमपि जीवादिकं वस्तु विद्यते, तत्सर्वं द्विप्रत्यवतारम्—द्वयोः=विवक्षित-वस्तुतद्विपरीतवस्तुलक्षणयोः स्थानयोः प्रत्यवतारः=समवतारः समावेशो यस्मिन् तत्तथाविधं—स्वरूपवत् प्रतिपक्षरूपवच्चेत्यर्थः । लोकान्तर्गतं सव वस्तु द्विविधमिति भावः, यद्वा—यत् अस्ति=‘ अस्ती ’ ति शब्दव्यपदेश्यं सन्मात्रं तद् द्विप्रत्यवतारं बोध्यम् । वस्तुनो द्विप्रत्यवतारत्वमेवाह—‘ तं जहा ’ इत्यादिना । तद्यथा—लोक-

केवलरूप आलोक ( प्रकाश ) के द्वारा जिनका अवलोकन क्रिया जाता है उसका नाम लोक है ऐसा यह लोक पंचास्तिकायरूप है, इस पंचास्तिकाय रूप लोक में जो भी कोई जीवादिरूप वस्तु विद्यमान है वह सध दो का समावेश है जिसमें ऐसी है अर्थात् स्वरूपवाली और प्रति-पक्षरूपवाली है द्विप्रत्यवतार शब्दका यही अर्थ है तात्पर्य केवल यही है कि लोकान्तर्गत समस्त ही वस्तुएँ दो प्रकार की हैं प्रत्येक विवक्षित वस्तु अपने से विपरीत लक्षणवाली वस्तु के समावेशवाली है अथवा जो वस्तु “ अस्ति ” इस शब्द द्वारा वाच्य है ऐसी सन्मात्र रूप वह वस्तु द्विप्र-त्यवतार (दो प्रकार) वाली है वस्तुमें द्विप्रत्यवतारता कैसे है इसी बातको

डेवणज्ञान ३प आलोक ( प्रकाश ) द्वारा जेनु अवलोकन करी शक्य छे, तेनु नाम-लोक छे. जेवो आ लोक पंचास्तिकाय ३प छे आ पंचास्तिकाय ३प लोकमा जे कोरि एवादि वस्तुओ मोनुह छे, ते जे प्रकारवाणी छे. जेटवे डे (१) स्व ३पवाणी अने (२) प्रतिपक्ष ३पवाणी छे “ द्विप्रत्यवतार ” आ पदनेो अर्थ जेवो ज छे इडेवानु तात्पर्य जे छे डे आ लोकनी समस्त वस्तुओ जे प्रकारनी छे प्रत्येक विवक्षित ( अमुक ) वस्तु पोताना करतां विपरीत लक्ष-णवाणी वस्तुना समावेशवाणी होय छे अथवा जे वस्तु “ अस्ति ” शब्द द्वारा वाच्य छे, ते प्रत्येक वस्तु द्विप्रत्यवतार ( जे प्रकार ) वाणी छे वस्तुमां

સ્વિચ્ચસ્તુનો યયા ઢિમત્યવતારત્ત્વમસ્તિ તદ્વ ધોષ્યમ્,—જીવાશ્ચ અજીવાશ્ચ ।  
 એમ શબ્દોઽપ્રાવધારણે । તેન ય યે વિચક્ષિતશ્ચાર્યાસ્તે જીવા એવ, તદ્વિપદ્યમૂતા ય  
 પદાયાસ્તે અજીવા એવ । અનેન જીરાજીયતિ રાશિદ્વયમેવ સ્વમતાઽનુમોદિત  
 મિતિ સ્થિતમ્ ।

નનુ નો જીરામ્ય રાશ્ય'તરમપ્યસ્તિ, પ્રત્યક્ષેણોપલભ્યે' ? इति चेत्, उच्यते—  
 'નો જીવ' इत्यत्र नो शब्दस्य सर्वनिषेधकत्वेन अजीव एव प्रतीयते । यदि च  
 नो शब्दोद्वेषनिषेधे, तर्हि नो जीव शब्दन जीवदेश एव प्रतीयते, दशम नदति

“ત જહા' પદ દ્વારા સૂત્રકાર ઘડી સ્પષ્ટ કરતે હૈ—“જીવા શ્વેચ અજીવા  
 શ્વેચ” જીવ ઓર અજીવ, યહાં એવ શાદ અવધારણ અર્થ મેં પ્રયુક્ત  
 હુઆ હૈ હમ તરહ જો પદાર્થ જીવરૂપ સે વિચક્ષિત હોતે હૈ યે જીવરૂપ હી  
 હ ઓર જો પદાર્થ અજીવરૂપ સે વિચક્ષિત હોતે હૈ યે અજીવ રૂપ હી હૈ  
 જીવ કે વિપક્ષ મૂત પદાર્થ અજીવ રૂપ હોતે હૈ ઇસસે જીવ અજીવ યહ  
 રાશિદ્વય હી સ્વમતાનુમોદિત હૈ યહ સ્થિત ક્રિયા ગયા હૈ ।

શંકા—નો જીવ નામ કી મી ણક તીસરી રાશિ હૈ યયો કિ ડસકી  
 મી પ્રત્યક્ષ સે ઉપલબ્ધિ હોતી હૈ ?

હૃ—“નો જીવ” મેં જો “નો” શબ્દ આયા હૈ યહ યયા સર્વ  
 નિષેધક કે રૂપ મેં આયા હૈ યા દેશનિષેધક કે રૂપ મેં આયા હૈ યદિ  
 સર્વનિષેધક કે રૂપ મેં આયા હૈ તો “નો જીવ” શબ્દ કા જો જીવ રૂપ

ને પ્રકારતા કેવી રીતે શ્લેષી છે તે વાત સુત્રકાર (તંત્રજ્ઞ) નીચે બતાવેલાં  
 ઉદાહરણો દ્વારા પુસ્તકાર કરે છે— 'જીવા શ્વેચ અજીવા શ્વેચ' આ શ્લેષમાં જીવો  
 પણ છે અને અજીવો પણ છે અર્થાત્ “અને” પણ અવધારણ અર્થમાં વપ  
 શક્યું છે. આ રીતે જે પદાર્થોને જીવરૂપે જોગબવામાં આવે છે તે જીવરૂપ  
 કોય છે અને જે પદાર્થોને અજીવરૂપે જોગબવામાં આવે છે તે અજીવરૂપ  
 કોય છે જીવથી વિપરીત શબ્દ અજીવ છે આ રીતે અર્થો જોડું સ્થિત  
 કરવામાં આનું છે કે જીવ અજીવ આરાશિદ્વય જ નૈનો દ્વારા અનુમોદિત  
 (સમત) છે

શંકા—નોજીવ નામની પણ કોઈ ત્રીજી શકિ છે, કારણ કે તેની  
 પણ પ્રત્યક્ષ ઉપલબ્ધિ થાય છે

ઉત્તર— નો જીવ' આ પદમાં જે 'નો' શબ્દ આન્યો છે તે સર્વ  
 નિષેધકરૂપે વપરાયો છે કે દેશનિષેધકરૂપે વપરાયો છે એ વાત પહેલાં વિચા  
 રવી પડશે. એ તે સર્વનિષેધકરૂપે વપરાયો કોય તો 'નોજીવ' નો આ

નોડત્યન્તવ્યતિરિક્ત ઇતિ જીવદેશોડપિ જીવ એવેતિ ન રાશિત્રયસમ્ભવ ઇતિ ।  
અસ્ય વિસ્તૃતવર્ણનમ્ ઉત્તરાધ્યયનસૂત્રસ્ય પ્રિયદર્શિનીટીકાયાં તૃતીયાધ્યયનેડ-  
સ્માભિઃ કૃતમિતિ તત્ર વિલોકનીયમ્ ।

સમ્પ્રતિ જીવતત્ત્વસ્યૈવ ભેદાન્ સપ્રતિપક્ષાનાહ-‘ તસા ચેવ ’ ઇત્યાદિ ।  
ત્રસાઞ્ચૈવ સ્થાવરાઞ્ચૈવ-ત્રસ્યન્તીતિ ત્રસાઃ=ત્રસનામકર્મોદયાજ્ઞાતા દ્વીન્દ્રિયાદયો  
જીવાઃ, તત્પ્રતિપક્ષભૂતાઃ સ્થાવરાઃ-સ્થાવ્રનામકર્મોદયાત્ તિષ્ઠન્તીત્યેવં શીલાઃ  
સ્થાવરાઃ-પૃથિવ્યાદયઃ । તથા-સયોનિકાશ્ચ અયોનિકાઞ્ચૈવ । તત્ર-સઠ યોન્યા=

નહીં હૈ વહ નોજીવ હૈ એસા અર્થ હોને પર નોજીવ શબ્દ સે અજીવ હી  
પ્રતીત હોતા હૈ ઓર યદિ વહ દેશ નિષેધ રૂપ મેં આયા હૈ તો નોજીવ  
શબ્દ સે જીવદેશ હી પ્રતીત હોતા હૈ જીવદેશ અપને દેશી જીવ સે  
અત્યન્ત ભિન્ન હોતા નહીં હૈ ઇસલિયે જીવદેશ મી જીવ રૂપ હી હૈ ઇસ  
તરહ રાશિત્રય કા સંભવ કૈસે હો સકતા હૈ ઇસ વિષય કા વિસ્તાર  
રૂપ સે વર્ણન ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર કી પ્રિયદર્શિની ટીકા મેં તૃતીય અધ્ય-  
યન મેં હમને કિયા હૈ ઇસલિયે વહીં સે ઇસે દેશ લેના ઞાહિયે ।

અવ સૂત્રકાર જીવતત્ત્વ કે પ્રતિપક્ષ સહિત ભેદોં કા વર્ણન કરતે હૈં  
“ તસા ચેવ ” ઇત્યાદિ જીવતત્ત્વ દો વિભાગોં મેં વિભક્ત હુખા હૈ એક  
વિભાગ હૈ ત્રસરૂપ ઓર દૂસરા વિભાગ હૈ સ્થાવરરૂપ ત્રસ નામકર્મ કે  
ઉદય સે જો અપની ઇચ્છા સે ચલતે ફિરતે હૈં એસે દ્વીન્દ્રિય જીવ તેહ-  
ન્દ્રિય જીવ ઞૌદ્વિન્દ્રિય જીવ ઓર પશ્ચેન્દ્રિય જીવ ત્રસ હૈં ઓર સ્થાવર જીવ

પ્રમાણે અર્થ થશે-“ જે જીવ રૂપ નથી તેને અજીવ કહે છે. ” આ રીતે  
‘ નોજીવ ’ પદ દ્વારા અજીવ જ પ્રતીત થાય છે જે તે દેશનિષેધરૂપે પ્રયુક્ત  
થયો હોય, તો “ નોજીવ ” શબ્દ દ્વારા ‘ જીવદેશ ’ જ પ્રતીત થાય છે.  
જીવદેશ પોતાના દેશીજીવથી અતિશય ભિન્ન હોતો નથી. તેથી જીવદેશ પણ  
જીવરૂપ જ છે. આ રીતે રાશિત્રય અહીં સંલલિત નથી. આ વિષયનું ઉત્ત-  
રાધ્યાયન સૂત્રની મારા દ્વારા લખાયેલી પ્રિયદર્શિની ટીકામાં ત્રીજા અધ્યયનમાં  
વિસ્તારપૂર્વક પ્રતિપાદન કરવામાં આવ્યું છે. તે જિજ્ઞાસુઓએ તે ટીકા વાંચી લેવી.

હવે સૂત્રકાર જીવતત્ત્વના પ્રતિપક્ષ રહિતના ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે-

“ તસા ચેવ ” ઇત્યાદિ જીવતત્ત્વ એ વિભાગમાં વહેંચાયેલું છે-એક વિભાગ  
ત્રસરૂપ છે અને બીજો વિભાગ સ્થાવરરૂપ છે ત્રસ નામકર્મના ઉદયથી જે  
જીવો પોતાની ઇચ્છા અનુસાર હલનચલન કરી શકે છે એવાં દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય  
ચતુરીન્દ્રિય અને પશ્ચેન્દ્રિય જીવોને ત્રસજીવો કહે છે. ત્રસજીવોના પ્રતિપક્ષ-  
ભૂત સ્થાવર જીવો છે. સ્થાવર નામકર્મના ઉદયથી જે જીવો પોતાની ઇચ્છાથી



ઉત્પત્તિસ્થાનેન વર્તન્તે એ તે સયોનિકાઃ=સસારિણો જીવાઃ, ઉત્પત્તિપક્ષમૂલામ અયોનિકાઃ=સિદ્ધાઃ । તયા-સાયુષ્મૈવ અનાયુષ્મવ । સઙ્ઘાયાયા વર્તન્તે શ્વિ સાયુષઃ=સસારિણો જીવાઃ, તસ્મિન્ના અનાયુષઃ=સિદ્ધા શ્વર્ય । તયા-સન્દ્રિયા

જો કિ इनके प्रतिपक्षभूत हैं स्थावर नाम कर्म के उदय के वशावर्ती होते हैं स्थावर नामकर्म के वशावर्ती हुआ जीव एक से दूसरे स्थानपर अपनी इच्छा से जा आ नहीं सकता है प्रत्युत वहीं का वहीं स्थिर रहता है ऐसे ये स्थावर जीव पृथिवी कायिक अप्कायिक तेजाः कायिक वायुकायिक और धनस्पतिकायिक है जीव स्वानिक और अयोनिक के मेद से भी दो प्रकार के होते हैं उत्पत्तिस्थान का नाम योनि है इस स्थानरूप योनि से जो सहित हैं ये सयोनिक हैं ऐसे ये सयोनिक जीव सप ही संसारी जीव होते हैं तथा इनके प्रतिपक्षीभूत जीव अयोनिक है, ये अयोनिक जीव सिद्ध हैं सायुष्क और अनायुष्क के मेद से भी जीव दो प्रकार के होते हैं आयु नामकर्म के उदय के वशावर्ती जो जीव हैं वे सायुष्क जीव हैं और ये सष आयु सहित जीव संसारी जीव हैं इनसे मिल जो जीव हैं वे निरायुष जीव हैं ऐसे निरायुष जीव सिद्ध है क्यों कि आयु कर्मका उदय संसारी जीवों को ही रहता है सिद्ध जीव के नहीं, सिद्ध जीव तो आयुकर्म को नाशकर ही बनते हैं इसी तरह

હલન બલન કરી શકતા નથી, પરન્તુ જે જગ્યાએ પડેલાં હોય છે, ત્યાં જ પડ્યાં રહે છે, એવાં હોવાને સ્થાવર હોવા કહે છે પૃથ્વીકામિક, અપ્કામિક, તેજાકામિક, વાયુકામિક અને વનસ્પતિકામિક હોવાને સ્થાવર હોવા કહે છે

સયોનિક અને અયોનિકતા સેદ્ધી પણ હવના બે પ્રકાર હોય છે ઉત્પત્તિ સ્થાનને યોનિ કહે છે આ ઉત્પત્તિસ્થાનરૂપ યોનિથી મુક્ત જે હોવા છે તેમને અયોનિક કહે છે બધાં સંસારી હોવા આ પ્રકારના હોય છે અયોનિકતા પ્રતિ પક્ષભૂત હોવાને અયોનિક કહે છે સિદ્ધ હોવા આ પ્રકારના હોય છે સાયુષ્ક અને અનાયુષ્કના સેદ્ધી પણ હોવા બે પ્રકારના હોય છે આયુનામ કમને અપીન હોય એવાં હોવાને સાયુષ્ક હોવા કહે છે બધાં સંસારી હોવા આયુથી મુક્ત હોય છે, માટે તેઓ સાયુષ્ક હોય છે સાયુષ્કથી ભિન્ન એવાં નિરાયુષ્ક જે હોવા છે તેમને અનાયુષ્ક કહે છે સિદ્ધવતિના હોવા આયુરહિત હોય છે, કારણ કે તેઓ આયુષ્કમને નાશ કરીને જ સિદ્ધ થયેલા હોય છે સંસારી હોવાની માફક તેમના આયુષ્કમને ઉદય હોતો નથી.

अथ अनिन्द्रियाश्च । तत्र-सेन्द्रियाः-संसारिणः, तत्रप्रतिपक्षभूता अनिन्द्रियाः सिद्धाः सयोगिकेवल्यादयश्च । सयोगिकेवल्यादीनां क्षायोपशमिकभावाभावाद-निन्द्रियत्वम् । इन्द्रियाणि हि क्षायोपशमिकानि भवन्ति । तथा-सवेदकाश्चैव अवेदकाश्च । तत्रसवेदकाः-स्त्रीवेदाद्युदयवन्तः संसारिणः, तत्रप्रतिपक्षभूता अवेदकाः=सिद्धादयः । तथा-सरूपिणश्चैव अरूपिणश्चैव । तत्र सरूपिणः-रूपेण=आकारेण सह वर्तन्ते इति सरूपिण-संस्थानवर्णादिश्रुतः । सगरीरा इत्यर्थः । तथा-

से सेन्द्रिय और अनिन्द्रिय के भेद से भी जीव दो प्रकार के कहे गये हैं इनमें सेन्द्रिय जीव संसारी हैं और इनके प्रतिपक्षभूत जीव सिद्ध अनिन्द्रिय हैं तथा सयोग केवली आदि भी अनिन्द्रिय जीव हैं सयोग केवलियों को जो अनिन्द्रिय जीव कहा गया है वह क्षायोपशमिक भाव के अभाव से कहा गया है क्योंकि उनमें क्षायिक भाव और परिणामिक भाव का भेद जो जीवत्व भाव है बही रहता है, इन्द्रियां क्षायोपशमिक होती हैं अर्थात् इन्द्रिय जन्य ज्ञान क्षायोपशमिक होता है तथा सवेदक और अवेदकके भेद से भी दो प्रकार के होते हैं जिनको स्त्रीवेद नपुंसकवेद और पुरुषवेद का उदय होता है वे सवेदक जीव हैं और जिनको इन वेदों का उदय नहीं होता है वे अवेदक जीव हैं ये अवेदक सिद्ध आदि जीव हैं तथा रूपी और अरूपी के भेद से भी जीव दो प्रकार के हैं रूप शब्द का अर्थ आकार है इस आकार से सहित जो जीव हैं वे रूपी जीव हैं और इस आकार से रहित जो जीव हैं वे अरूपी

अथ प्रमाणे सेन्द्रिय अने अनिन्द्रियता लेखी पणु एवो जे प्रकारना डोय छे संसारी एवो धन्द्रियेथी युक्त डोय छे अने सिद्धो अनिन्द्रिय डोय छे तथा सयोगीकेवली आदि पणु अनिन्द्रिय एवो छे सयोगीकेवलीअने अनिन्द्रिय कडेवातु कारणु अ छे के तेमनामां क्षायिकलाव अने परिणामिक लावने लेह के ने एवत्व लाव छे अथ रडे छे तेमनी धन्द्रिये क्षायोपशमिक डोय छे अटले के धन्द्रियजन्य ज्ञान क्षायोपशमिक डोय छे

सवेदक अने अवेदकना लेखी पणु एवो जे प्रकारना डोय छे. ने एवोमा स्त्रीवेद, पुरुषवेद अथवा नपुंसकवेदने उदय डोय छे, ते एवोने सवेदक कडे छे अने ते वेदोने उदय डोतो नथी अवा एवोने अवेदक कडे छे संसारी एवो सवेदक डोय छे अने सिद्ध आदि एवो अवेदक डोय छे.

इपी अने अइपीना लेखी पणु एवोना जे प्रकार पडे छे. इप अटले आकार. ने एवो आकारथी युक्त डोय छे तेमने इपी कडे छे अने ने एवो

तत्प्रतिपक्षभूता अरूपिणा = त रूपिणः - अरूपिणः सिद्धाः । तथा - सपुद्गलाभ्य  
 अपुद्गलाभ्य । तत्र - सपुद्गला = कर्मादिपुद्गलान्तः संसारिणो जीवाः, तत्प्रति  
 पक्षभूताः अपुद्गलाः = सिद्धाः । तथा - ससारसमापन्नकामैश्च भवसारसमापन्नक  
 म्भ्य । तत्र - ससारसमापन्नकाः - संसारं = भव = समापन्नकाः = प्रतिपक्षाः - ससारिणो  
 जीवाः, तद्विना असंसारसमापन्नका - सिद्धाः । तथा - श्वाश्वताभ्यैश्च अशाश्वताभ्य ।

जीव हैं जितने भी शरीर सहित जीव हैं वे सब सरूपी जीव हैं और  
 इनके प्रतिपक्षभूत जीव अरूपी जीव हैं जीव के साथ जब तक शरीर  
 का सम्बन्ध रहता है तब तक वह संसारी जीव माना गया है और इसी  
 कारण वह संस्थान घणादि वाला कहा गया है सिद्ध जीव शरीर से  
 रहित होकर ही सिद्ध घने हैं अतः वे संस्थान घणादिविच्छेद नहीं अरूपी  
 कहे गये हैं सपुद्गल और अपुद्गल के भेद से भी जीव दो प्रकार के कहे  
 गये हैं कर्मादिपुद्गलों सहित जीव सपुद्गल संसारी जीव हैं और इनके  
 प्रतिपक्ष भूत जीव अपुद्गल सिद्ध माने गये हैं संसारसमापन्नक और  
 असंसार समापन्नक के भेद से भी जीव दो प्रकार के कहे गये हैं संसार  
 का नाम भव है इस भवस्वरूप संसार को जो प्राप्त होते रहते हैं वे संसार  
 समापन्नक हैं ये संसार समापन्नक जीव संसारी जीव हैं और जो इन  
 से भिन्न हैं भवग्रहण से रहित हैं वे असंसार समापन्नक हैं ऐसे भव

आकाश रश्मि रश्मि डोय है तेमने आरूपी हडे है अटकां शरीरभुक्त लोको है  
 ते अथां अरूपी है अने शरीरभी रश्मि डोय जेवां लोकोने आरूपी हडां है  
 लवनी साके ज्वां सुभी शरीरने। अथ रडे है त्वां सुभी ते संसारी लव  
 मज्जाय है अने ते अरुणे ते संस्थान (आकार) वरुं आदिभी मुक्त डोय  
 है सिद्ध लोको आरूपी डोय है शरीरभी रश्मि रश्मिने ल लव सिद्ध अने  
 है तेभी तेजो संस्थान, वरुं आदिभी रश्मि डोय है अटके तेमने आरूपी  
 मानवामां आवे है अपुद्गल अने अपुद्गलना वेदधी वरुं लोकोना वे प्रकर  
 थारी शक्य है कर्मादि पुद्गलधी मुक्त लोकोने अपुद्गल लोको हडे है संसारी  
 लोको आ प्रकरना डोय है तेनाधी सित जेवां अपुद्गल लोकोनां सिद्धोनी  
 मज्जवरी याव है

संसार समापन्नक अने असंसार समापन्नकना वेदधी वरुं लोको वे  
 प्रकरना डोय है अथर्व संसारने ले लोको प्राप्त करता रडे है ते लोकोने  
 संसार समापन्नक हडे है संसारी लोको आ प्रकरना डोय है ले लोको  
 अथर्वरश्मि रश्मि रश्मि जेवां है तेमने असंसार समापन्नक हडे है सिद्धोनी

तत्र-शाश्वताः=सिद्धाः=जन्ममरणादिरहितत्वात् । तद्विधा अशाश्वताः=ससारिणी  
जीना जन्ममरणादिरहितत्वादिति ॥ सू० १ ॥

एवं जीवतत्त्वस्य द्विप्रत्ययवतारं प्रदर्श्य सप्रति अजीवतत्त्वस्य द्विप्रत्ययवतारं  
प्रदर्शयितुमाह—

मूलम्—आगासे चैव नो आगासे चैव । धम्मे चैव  
अधम्मे चैव ॥ सू० २ ॥

छाया—आकाशश्चैव नो आकाशश्चैव । धर्मश्चैव अधर्मश्चैव ॥ २ ॥

सारसमापन्नक सिद्ध हैं तथा शाश्वत और अशाश्वत के भेद से भी  
जीव दो प्रकार के हैं, सिद्ध जीव शाश्वत हैं वर्यो कि जन्म और मरण  
आदि से रहित होने के कारण ये जिस स्थान पर पहुँच चुके हैं वहाँ से  
फिर जन्म मरण के स्थानभूत संसार में ये नहीं आते हैं अतः शाश्वत  
स्थान की प्राप्ति होने से ये स्वयं शाश्वत बन गये हैं अथवा जीव का  
स्वभाव ही शाश्वत है उस शाश्वत स्वभाव को सिद्ध जीव प्राप्त हो जाते  
हैं इसलिये वे शाश्वत हैं जन्म मरण के चक्कर से रहित होने से संसारी  
जीव अशाश्वत हैं ॥ सू० १ ॥

जीवतत्त्व को इस तरह से सप्रतिपक्ष भूत कह कर अब अजीव  
तत्त्व में सप्रतिपक्षता का कथन करने के लिये सूत्रकार कहते हैं—

“ आगासे चैव नो आगासे चैव, धम्मे चैव अधम्मे चैव इत्यादि ॥ २ ॥

असंसार समापन्नकमां गण्यतरी थाय छे शाश्वत अने अशाश्वतना लेदथी  
पण्यु लवोना जे प्रकार पडे छे सिद्ध लवो शाश्वत गण्यु छे, कारणु के  
तेज्जो जन्म, जरा अने मरणथी रहित होय छे अने तेज्जो जे स्थाने  
पहोऱ्या छे त्यांथी जन्म-मरणना स्थानभूत ससारमां तेमने आववु पडतुं  
नथी आ रीते जेमने शाश्वत स्थाननी प्राप्ति थछ छे जेवां तेज्जो पोते ज  
शाश्वत अनी गया छे अथवा लवोना स्वभाव ज शाश्वत छे ते शाश्वत  
स्वभावने सिद्ध लवो प्राप्त करी ले छे, तेथी तेज्जो शाश्वत छे जन्ममरणना  
द्वेरा करता ससारी लवो अशाश्वत छे. ॥ सू १ ॥

लव तत्त्वने सप्रतिपक्षभूत कहीने हवे सूत्रकार अलवतत्त्वमां सप्रति  
पक्षतातु प्रतिपादन करवाने भाटे कहे छे के—

“ आगासे चैव नो आगासे चैव, धम्मे चैव अधम्मे चैव ” इत्यादि ॥२॥

टीकार्थ—अलव तत्त्व पांच प्रकारतु छे-पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश

टीका—‘ आकाश चैव ’ इत्यादि—

आकाशश्चैव नो आकाशश्चैव । तत्र-आकाश प्रसिद्धः, तस्मिन् नो आकाशः=  
पर्याप्तिकायादिषुम् । तथा-धर्मश्चैव अधर्मश्चैव । तत्र-धर्मः=पर्याप्तिकायाः-  
गन्तुपट्टम्भः । तस्मिन्धर्मः=अधर्मस्तिकायाः-स्थित्युपट्टम्भः ॥ सू० २ ॥

अथ जीवानां पचादीनि भवन्तीति प चादानां द्विप्रत्ययतारत्वमाह—

मूल्य-घधेचैव मोक्षलेचैव । पुष्टेचैव पाषेचैव । आसवेचैव  
सवरैचैव । वेयणाचैव निज्वराचैव ॥ सू० ३ ॥

छाया-घन्धश्चैव मोक्षश्चैव । पुण्य चैव पापं चैव । आस्रपय सवरपय । वेदना  
चैव निर्जरा चैव ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ घञ्चैव ’ इत्यादि—

सप्तसिपद्याणि बन्धादितत्त्वानि प्रथमस्थानवद् व्याख्ययानि ॥ सू० ३ ॥

टीकार्थ—अजीव तत्र पाष प्रकार का है पुत्रल घर्म अधर्म आकाश  
और काल इनमें आकाश तो प्रसिद्ध है और तो आकाश धर्मास्तिका-  
यादि रूप है तथा गति में सहायक धर्म द्रव्य है और ठहरन में सहायक  
अधर्मद्रव्य है ॥ सू० २ ॥

जीवों को घन्ध आदि होते हैं इसलिये पाष आदिकों में द्विप्रत्यय  
तारताका फपन सूत्रकार करते हैं—“पधे चैव मोक्षले चैव” इत्यादि ॥ ३ ॥

टीकार्थ—घञ्, मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर वेदना और निर्जरा  
ये सप्त अपने २ प्रतिपक्ष सहित हैं प्रतिपक्ष सहित इन पचादि तारकों  
का फपन प्रथम स्थानोक्त की तरह से कर लेना चाहिये ॥ सू० ३ ॥

अने डा.ग. तेमाधी आकाश तो प्रसिद्ध छे आकाश धर्मास्तिकाय आदि रूप  
छे. जतिमां सहायक धर्मद्रव्य छे अने स्थितिमां (सहायतामां) सहायक  
अधर्मद्रव्य छे ॥ सू० २ ॥

एवो लध आदियो मुक्त होय छे तेवी सूत्रकार हवे लध आदिमां  
द्विप्रत्ययतनु प्रतिपादन करे छे

पधे चैव मोक्षे चैव इत्यादि ॥ ३ ॥

टीकार्थ—लध मोक्ष पुण्य-पाप, आस्रव-संवर वेदना अने निर्जरा  
ये लधा योनयोन । प्रतिपक्षधी मुक्त होय छे प्रतिपक्षमहित आ लधोदि  
त.वे.लु कथन प्रथम स्थानमां हटा अनुसार करी देबु ॥ सू० ३ ॥

क्रियायां सत्यामेव आत्मानो बन्धादयो भवन्तीति क्रियाया द्विप्रत्यवतारत्वमाह-

मूलम्—दो किरियाओ पणत्ताओ, तं जहा—जीवकिरिया-  
 चेव अजीवकिरियाचेव। जीवकिरिया दुविहा पणत्ता, तं जहा—  
 सम्मत्तकिरिया चेव मिच्छत्तकिरिया चेव । अजीवकिरिया  
 दुविहा पणत्ता, तं जहा—इरियावाहिया चेव संपराइगा चेव ।  
 दो किरियाओ पणत्ताओ, तं जहा—काइया चेव अहिगरणिया  
 चेव। काइया किरिया दुविहा पणत्ता, तं जहा—अणुवरयकाय-  
 किरिया चेव दुप्पउत्तकायकिरिया चेव । अहिगरणिया किरिया  
 दुविहा पणत्ता, तं जहा—संजोयणाहिगरणिया चेव णिव्वत्तणा  
 हि गरणिया । दो किरियाओ पणत्ताओ तं जहा—पाउसिया चेव  
 पारियावणिया चेव । पाउसिया किरिया दुविहा पणत्ता, तं जहा—  
 जीवपाउसिया चेव अजीवपाउसिया चेव । पारियावणिया किरिया  
 दुविहा पणत्ता, तं जहा—सहत्थपारियावणिया चेव परहत्थपारियाव  
 णिया चेव । दो किरियाओ पणत्ताओ, तं जहा—पाणाइवाय-  
 किरिया चेव अपच्चक्खाणकिरिया चेव । पाणाइवायकिरिया  
 दुविहा पणत्ता, तं जहा—सहत्थपाणाइवायकिरिया चेव परह-  
 त्थपाणाइवायकिरिया चेव । अपच्चक्खाणकिरिया दुविहा  
 पणत्ता, तं जहा—जीवअपच्चक्खाणकिरिया चेव अजीवअपच्च-  
 क्खाणकिरिया चेव । दो किरियाओ पणत्ताओ तं जहा—आरंभिया  
 चेव परिग्गहिया चेव । आरंभिया किरिया दुविहा पणत्ता, तं जहा—  
 जीव आरंभिया चेव अजीव आरंभिया चेव । एवं परिग्गहिया वि ।

दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा-मायावत्तिया चैव मिच्छा  
दसणवत्तिया चैव । मायावत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त  
जहा-आयभावकणता चैव । परभावकणता चैव । मिच्छा,  
दंसणवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा-ऊणाइरित्तमि  
च्छादसणवत्तिया चैव, तव्वइरित्तमिच्छादसणवत्तिया चैव ।  
दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा-दिट्ठिया चैव पुट्ठिया चैव ।  
दिट्ठिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा-जीवदिट्ठिया चैव  
अजीवदिट्ठिया चैव । एव पुट्ठियावि । दो किरियाओ पण्ण  
त्ताओ, त जहा-पाडुच्चिया चैव सामतोषणिवाइया चैव । पाडु  
च्चिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-जीवपाडुच्चिया चैव ।  
अजीवपाडुच्चिया चैव । एव सामतोषणिवाइयावि । दो किरि  
याओ पण्णत्ताओ, त जहा-साहस्थिया चैव णेसस्थिया चैव ।  
साहस्थिया किरिया दुविहा पण्णत्ता, त जहा-जीवसाहस्थिया  
चैव अजीवसाहस्थिया चैव । एव णेसस्थियावि । दो किरियाओ  
पण्णत्ताओ, त जहा-आणवणिया चैव बेयारणिया चैव । जहैव  
णेसस्थियाओ । दो किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-अणामो  
गवत्तिया चैव अणवकखवत्तिया चैव । अणामोगवत्तिया किरिया  
दुविहा पण्णत्ता, त जहा-अणाउत्त आइयणता चैव अणाउत्त  
पमज्जणता चैव । अणवकखवत्तिया किरिया दुविहा पण्णत्ता,  
त जहा-आयसरीरअणवकखवत्तिया चैव परसरीरअणवक-  
खवत्तिया चैव । दो किरियाओ पण्णत्ताओ, त जहा-पेज्जव

त्तिया चैव दोसवत्तिया चैव । पेज्जवत्तिया किरिया दुविहा पणत्ता, तं जहा मायावत्तिया चैव लोभवत्तिया चैव । दोसवत्तिया किरिया दुविहा पणत्ता, तं जहा—कोहे चैव माणे चैव ॥ सू० ४ ॥

छाया—द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—जीवक्रिया चैव अजीवक्रिया चैव । जीवक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सम्यक्त्वक्रिया चैव मिथ्यात्वक्रिया चैव । अजीवक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ऐर्यापथिकी चैव, साम्परायिकी चैव । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—कायिकी चैव आधिकरणिकी चैव । कायिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अनुपरतकायक्रिया चैव दुष्प्रयुक्तकायक्रिया चैव । आधिकरणिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—संयोजनाधिकरणिकी चैव निर्वर्तनाधिकरणिकी चैव । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—प्राद्वेषिकी चैव पारितापनिकी चैव । प्राद्वेषिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—जीवप्राद्वेषिकी चैव अजीवप्राद्वेषिकी चैव । पारितापनिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्वहस्तपारितापनिकी चैव परहस्तपारितापनिकी चैव । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—प्राणातिपातक्रिया चैव अपत्याख्यानक्रिया चैव । प्राणातिपातक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया चैव, परहस्तप्राणातिपातक्रिया चैव । अपत्याख्यानक्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—जीवापत्याख्यानक्रिया चैव, अजीवापत्याख्यानक्रिया चैव । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद्यथा—आरम्भिकी चैव पारिग्रहिकी चैव । आरम्भिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—जीवारम्भिकी चैव अजीवारम्भिकी चैव । एवं पारिग्रहिकी अपि । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद् यथा—मायाप्रत्यया चैव, मिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव । मायाप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद् यथा—आत्मभाववङ्कनता चैव परभाववङ्कनता चैव । मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता । तद् यथा—ऊनातिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव तद्व्यतिरिक्तमिथ्यादर्शनप्रत्यया चैव । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद् यथा—दृष्टिका चैव, पृष्टिका चैव दृष्टिका क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, जीवदृष्टिका चैव, अजावदृष्टिका चैव । एव पृष्टिकाऽपि । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते । तद् यथा—प्रातीतिकी चैव, सामन्तोपनिपातिकी चैव । प्रातीतिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता तद् यथा—जीवप्रातीतिकी चैव, अजीवप्रातीतिकी चैव । एवं सामन्तोपनिपातिकी अपि । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते, तद् यथा—स्वाहस्तिकी चैव, नैसृष्टिकी चैव । स्वाहस्तिकी क्रिया द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद् यथा जीवस्वाहस्तिकी चैव, अजीवस्वाहस्तिकी चैव । एवं



नैऋष्टिकी अपि । द्वे क्रिये मङ्गल्ये । तद् यथा-आज्ञापनिका चैव, पैदारविका चैव । यथैव नैऋष्टिका । द्वे क्रिये मङ्गल्ये, तद् यथा-अनामोगमत्यया चैव, अनव फास्त्राप्रत्यया चैव । अनामोगमत्यया क्रिया द्विविधा मङ्गल्ये, तद् यथा-अनायुक्ताऽऽदानता चैव, अनायुक्तममाजनता चैव । अनवकाहाप्रत्यया क्रिया द्विविधा मङ्गल्ये, तद् यथा-आत्मशरीरानवकाहाप्रत्यया चैव, परशरीरानवकाहाप्रत्यया चैव । द्वे क्रिये मङ्गल्ये, तद् यथा-प्रेमप्रत्यया चैव द्वेषप्रत्यया चैव । प्रेमप्रत्यया क्रिया द्विविधा मङ्गल्ये । तद् यथा-मायाप्रत्यया चैव, लोमप्रत्यया चैव । द्वेषप्रत्यया क्रिया द्विविधा मङ्गल्ये । तद् यथा-क्रोधश्चैव, मानश्चैव ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ दो किरियाओ ’ इत्यादि—

द्वे क्रिये मङ्गल्ये-प्ररूपिते तीर्थकरैरित्यर्थः ॥ करण-क्रिया यद्वा-क्रियते इति क्रिया । जीवक्रिया अजीवक्रिया चेति । इह ‘ चैव ’ इति समुच्चय मात्र एव, अपि चेत्यादिषु । तत्र जीवक्रिया-जीवस्य व्यापार तथा-अजीवस्य-पुद्गलसमूहरूपस्य यत् कर्मत्वेन परिणमन सा अजीवक्रिया । तत्र जीवक्रिया-द्विविधा मङ्गल्ये-प्ररूपिता । सम्यक्त्वक्रिया, मिथ्यात्वक्रिया च । तत्र सम्यक्त्वम् आगमोक्तवचनविषये भद्वान्,

क्रिया के होने पर ही आत्मा में पाप आदि होते हैं अतः जब क्रिया में विप्रत्यवतारता का फयन किया जाता है—

“ दो किरियाओ पण्णाओ ” इत्यादि ॥ ४ ॥

तीर्थकरों ने दो क्रियाएँ कही हैं करने का नाम क्रिया है अथवा जो की जाये उसका नाम क्रिया है यह क्रिया जीवक्रिया और अजीव क्रियाके भेदसे दो प्रकारकी है जीवक्रिया जीवके व्यापाररूप होती है तथा अजीव क्रिया पुद्गल के कर्मरूप से परिणमन होने रूप होती है इनमें जीव क्रिया सम्यक्त्वक्रिया और मिथ्यात्वक्रिया के भेद से दो प्रकार की कही गई है आगमोक्तसर्वों का अद्वान करना यह जीव क्रिया है क्योंकि आग

क्रियाने सुज्ञाव होय तेन आत्माभां अपि आदिना सुज्ञाव रहे छे तेथी कवे सुत्रकर क्रियाभां विप्रत्यवतारता (वे प्रकारता) नुं कवन करे छे—

“ दो किरियाओ पण्णाओ ” इत्यादि ॥ ४ ॥

तीर्थकरोंने ने क्रियाओ कही छे करवाभां आवे तेनु नाम क्रिया, अथवा वे करवा तेनु नाम क्रिया छे अथवा अने अलवक्रियाना सेदथी ते क्रिया वे प्रकारनी छे अथवा अथवा व्यापाररूप होय छे अने अलवक्रिया पुद्गलाना कर्मरूपे परिणमन यथाएय होय छे तेभांथी अथवा अने सेद कही छे—(१) सम्यक्त्वक्रिया अने (२) मिथ्यात्वक्रिया आगमोक्त तत्वेभां

तदेव क्रिया, तस्य जीवव्यापाररूपत्वात् सम्यक्त्वरूपा क्रिया सम्यक्त्व क्रिया । एवं मिथ्यात्वक्रियाऽपि । एतावान् विशेषः—मिथ्यात्वम्—अतत्त्वश्रद्धानम् तस्यापि जीवव्यापाररूपत्वात् । यद्वा—सम्यक्त्वे सति या क्रिया भवति सा सम्यक्त्वक्रिया, तथा मिथ्यात्वे सति या क्रिया भवति सा मिथ्यात्वक्रिया इति । अजीवक्रिया द्विविधा प्रवृत्ता, ऐर्यापथिकी, सांपरायिकी चेति । ईरणम्—ईर्या—गमनं, तद्विशिष्टस्तत्प्रधानो वा पन्था ईर्यापथस्तत्र भवा ऐर्यापथिकी । व्युत्पत्तिमात्रमिदं प्र-

मोक्ततत्त्वों को करने रूप जो क्रिया होती है वह जीव के व्यापार रूप ही होती है इसलिये सम्यक्त्वरूप क्रिया सम्यक्त्व क्रिया है ऐसा इसका निष्कर्ष जानना चाहिये आगमोक्ततत्त्वों का श्रद्धान नहीं होना इसका नाम मिथ्यात्व क्रिया है यह मिथ्यात्वरूप क्रिया भी जीव के व्यापाररूप ही होती है जिस क्रिया में जीव का तत्व श्रद्धान रूप व्यापार होता है वह सम्यक्त्व क्रिया है और जिसमें तत्वश्रद्धान रूप व्यापार नहीं होता है अतत्व श्रद्धान रूप व्यापार होता है वह अतत्व श्रद्धान व्यापार रूप क्रिया मिथ्यात्व क्रिया है अथवा सम्यक्त्व के होने पर जो क्रिया होती है वह सम्यक्त्व क्रिया है तथा मिथ्यात्व के होने पर जो क्रिया होती है वह मिथ्यात्व क्रिया है अजीव क्रिया भी दो प्रकार की कही गई है एक ऐर्यापथिकी क्रिया और दूसरी सांपरायिकी क्रिया ईर्या नाम गमन का है इस गमन विशिष्ट या इस गमन प्रधान जो पथ होता है वह ईर्यापथ है इस ईर्यापथ में जो क्रिया होती है वह ऐर्यापथिकी क्रिया है यह तो

श्रद्धा राभवी तेनु नाम सम्यक्त्वक्रिया छे, कारणु के ते एवने तत्वश्रद्धान रूप व्यापार ( प्रवृत्ति ) आले छे. आ रीते सम्यक्त्वरूप क्रियाने सम्यक्त्वक्रिया कडे छे, अेम समञ्जु. आगमोक्त तत्त्वे प्रत्ये श्रद्धा नहीं राभवी तेनुं नाम मिथ्यात्व क्रिया छे. ते मिथ्यात्वरूप क्रिया पशु एवना व्यापार रूप न् डोय छे. जे क्रियांमां एवने तत्वश्रद्धान रूप व्यापार आलतो डोय छे, ते क्रियाने सम्यक्त्व क्रिया कडे छे परन्तु जे क्रियांमा तत्वश्रद्धान रूप व्यापार आलतो नथी. अतत्वश्रद्धान रूप व्यापार न् आले छे, ते क्रियाने मिथ्यात्व क्रिया कडे छे. अथवा सम्यक्त्वना सद्विभावमा जे क्रिया थाय छे, ते क्रियानु नाम सम्यक्त्व क्रिया छे अने मिथ्यात्वना सद्विभावमां जे क्रिया थाय छे, ते क्रियानु नाम मिथ्यात्व क्रिया छे. अएवक्रिया पशु जे प्रकारनी कही छे—

(१) ऐर्यापथिकी क्रिया अने (२) सांपरायिकी क्रिया.

धर्या अेटले गमन आ गमनने जे पथ डोय छे तेने धर्यापथ कडे छे. ते धर्यापथमां जे क्रिया थाय छे ते क्रियाने ऐर्यापथिकी क्रिया कडे छे.

શ્ચિત્તમ્ । મત્ત્વચિનિમિષ તુ યત્ ઉપશાન્તમોહસ્ય ક્ષીણમોહસ્ય, સયોગિક્ષેપલિનમ્ સાતાવેદનીયકર્મતયા અજીવસ્ય પુત્રલરાશોર્મયન, સા યેર્યાપયિકી ક્રિયા । ત્રિસ મયસ્થિતિકા પ્રમાદકપાયનર્મિતા, કાયિકી યા, વાચિકી યા ક્રિયા 'યેર્યાપયિકી' इति तत्त्वम् । યેર્યાપયિકી ક્રિયા યદ્યપિ જીવમ્પાપારારૂપા, તથાપ્ય જીવસ્ય પુત્રલરાશોઃ માખાન્યચિત્તમયા ઇયમજીવક્રિયાડમિહિતા । તયા-સાપરાયિકી-સાંપરાયા -કપાયસ્તવ્ર મથા સાંપરાયિકી । સા હિ અજીવસ્ય-પુત્રલરાશોઃ કર્મતા-પરિણતિરૂપા, જીવમ્પાપારસ્યાવિવક્ષણાદજીવક્રિયોચ્યતે । સા ચ સૂક્ષ્મસંપરાયા ન્તાનાં ઘુણસ્થાનકવર્તા મન્વતીતિ ।

કેવલ યેર્યાપયિકી ક્રિયા કી વ્યુત્પત્તિ દિશ્વલાઈ હૈ હસ યેર્યાપયિકી ક્રિયા કી પ્રવૃત્તિ કી નિમિત્ત તો જો ઉપશાન્તમોહ ઘાલે ક્ષીણમોહયાલે ઓર સયોગ કેવલીકે સાતાવેદનીય રૂપસે અજીવ પુત્રલરાશિકા આવન હોતા હૈ વહ હૈ સાત્પર્ય કહને કા યહ હૈ કિ ત્રિ સમય કી સ્થિતિવાલી પ્રમાદ પય કપાય સે ઘર્જિત પેસી જો કાયિકી અથવા વાચિકી ક્રિયા હોતી હૈ યહ યેર્યાપયિકી ક્રિયા હૈ યદ્યપિ યહ યેર્યાપયિકી ક્રિયા જીવ કે વ્યાપાર રૂપ હોતી હૈ ફિર મી હસે જો અજીવ ક્રિયા રૂપ કહા ગયા હૈ ઊસકા કારણ પેસા હૈ કિ હસમેં અજીવ પુત્રલરાશિ કી પ્રધાન રૂપ સે વિવક્ષા હુઈ હૈ અર્થાત્ અજીવ પુત્રલરાશિ હી હસમેં સાતાવેદનીયકર્મ તપ સે પરિણત હોતી હૈ સાંપરાય નામ કપાય કા હૈ હસ કપાય મેં જો ક્રિયા હોતી હૈ વહ સપરાયિકી ક્રિયા હૈ હસ ક્રિયા મેં અજીવ પુત્રલ રાશિકી

આ તો કેવળ યેર્યાપયિકી ક્રિયાની વ્યુત્પત્તિ જ બતાવવામાં આવી છે. ખરે ખર તો પ્રમાદ અને કપાયથી સ્થિતિ એવી જો ક્રિયા છે તેનું નામ જ યેર્યાપયિકી ક્રિયા છે ઉપશાન્ત મોહવાળા ક્ષીણમોહવાળા અને સયોગિક્ષેપલી દ્વારા સાતાવેદનીય રૂપે જીવ પુત્રલરાશિનું જો આદાન થાય છે, તેને યેર્યાપયિકી ક્રિયાની નિમિત્તરૂપ માનવામાં આવે છે આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે-જો સમયની સ્થિતિવાળી, પ્રમાદ અને કપાયથી સ્થિતિ જો કાયિકી અથવા વાચિકી ક્રિયા થાય છે તે યેર્યાપયિકી ક્રિયા છે એ કે તે યેર્યાપયિકી ક્રિયા જીવના વ્યાપારરૂપ કોષ છે, તો પણ અહીં તેને જો અલગક્રિયા રૂપે બતાવવામાં આવી છે તેનું કારણ એ છે કે તેમા અલગ પુત્રલ રાશિની જ પ્રધાન રૂપે (મુખ્યત્વે) વિવક્ષા થઈ કોષ છે એટલે કે અલગ પુત્રલ રાશિ જ તેમાં સાતાવેદનીય રૂપે પરિણત થાય છે સાંપરાય એટલે કપાય. તે કપાયમાં જો ક્રિયા થાય છે તેને સાંપરાયિકી ક્રિયા કહે છે. આ ક્રિયામાં અલગ પુત્રલ

પુનરન્યથા ક્રિયાયા દ્વિવિધમાહ—‘ દો કિરિયાઓ ’ ઈતિ ।

દ્વે ક્રિયે પ્રજ્ઞપ્તે । તદ્ યથા—કાયિકી ચૈવ આધિકરણિકી ચૈવ । કાયેન નિવૃત્તા કાયિકી—કાયવ્યાપારઃ । તથા—અધિક્રિયતે આત્મા નરકાદિષુ યેન, તદ-ધિકરણમ્, ઇહ સ્વજ્ઞાદિકં વાહ્યં વસ્તુ વિવક્ષિતમ્ । તત્ર ભવા આધિકરણિકી । તત્ર કાયિકી દ્વિવિધા અનુપરતકાયક્રિયા, દુષ્પ્રયુક્તકાયક્રિયા ચેતિ । તત્રાનુપરત કાયક્રિયા=અનુપરતસ્ય સાવધાનુષ્ઠાનાદનિવૃત્તસ્ય મિથ્યાદૃષ્ટેઃ સમ્યગ્દૃષ્ટે વાં યા કાયક્રિયા—ઉત્કેષાદિરૂપા કર્મવન્ધસ્ય કારણં ભવતિ યાઽનુપરતકાયક્રિયા । તથા—

કર્મરૂપ સે પરિણતિ હતી છે યહાં જીવકે વ્યાપાર કી વિવક્ષા નહીં હુઈ છે અતઃ ઇસે અજીવ ક્રિયા કહા છે યહ સાંપરાયિકી ક્રિયા સૂક્ષ્મ સાંપરાયાન્ત તક કે જીવોં કે હતી છે ।

અવ દૂસરી પ્રકાર સે ભી ક્રિયા સે દ્વિવિધતા કા પ્રતિપાદન ક્રિયા જાતા છે—“ દો કિરિયાઓ ” કાયિકીક્રિયા ઓર આધિકરણિકી ક્રિયા કે ભેદ સે ક્રિયા દો પ્રકાર કી કહી ગઈ છે કાય સે જો ક્રિયા હતી છે વહ કાયિકી ક્રિયા છે યહ ક્રિયા કાયવ્યાપારરૂપ હતી છે નરકાદિકોં મેં જિસકે દ્વારા આત્મા રહ્યા જાતા છે પહુંચાયા જાતા છે વહ આધિકરણિકી ક્રિયા છે જીવ કો નરકાદિ ગતિયોં મેં પહુંચાને કા કારણ વાહ્યરૂપ સે સ્વજ્ઞાદિવસ્તુઈં હેં અનુપરતકાય ક્રિયા ઓર દુષ્પ્રયુક્ત કાયક્રિયા કે ભેદ સે કાયિકીક્રિયા દો પ્રકાર કી છે સાવધ અનુષ્ઠાન સે અનિવૃત્ત હુઈ મિથ્યાદૃષ્ટિ કો યા સમ્યગ્દૃષ્ટિ કી જો ઉત્કેષાદિરૂપ

રાશિની કર્મરૂપે પરિણતિ થાય છે અહીં જીવના વ્યાપારની વિવક્ષા થઈ નથી, તેથી તેને અજીવ ક્રિયા કહેવામાં આવી છે તે સાંપરાયિકી ક્રિયા સૂક્ષ્મ સાંપરાયાન્ત પર્યાન્તના જીવોમાં હોય છે.

હવે બીજી રીતે ક્રિયામાં દ્વિવિધતાનું પ્રતિપાદન કરવામાં આવે છે—

“ દો કિરિયાઓ ” ઇત્યાદિ કાયિકી અને આધિકરણિકીના ભેદથી પણ ક્રિયા બે પ્રકારની કહી છે. કાયા વડે જે ક્રિયા થાય છે, તેને કાયિકી ક્રિયા કહે છે. તે ક્રિયા કાયવ્યાપાર રૂપ હોય છે જે ક્રિયા દ્વારા જીવને (આત્માને) નરકાદિ ગતિમાં જતું પડે છે તે ક્રિયાને આધિકરણિકી ક્રિયા કહે છે જીવને નરકાદિ ગતિઓમાં મોકલવામાં ખડગ આદિ વસ્તુઓ જ આધિકરણ રૂપ બને છે. કાયિકી ક્રિયાના નીચે પ્રમાણે બે ભેદ પડે છે—(૧) અનુપરતકાય ક્રિયા અને (૨) દુષ્પ્રયુક્તકાય ક્રિયા. સાવધ (દોષયુક્ત) અનુષ્ઠાનથી અનિવૃત્ત એવાં મિથ્યાદૃષ્ટિની અથવા સમ્યગ્દૃષ્ટિની જે ઉત્કેષાદિ રૂપ કાયક્રિયા થાય છે, તે

दुष्प्रयुक्तकायक्रिया=दुष्प्रयुक्तस्य-दुर्मांससपन्नस्य इन्द्रियाण्यधिन्य मनोज्ञशब्दादिस योगे हर्षेण अमनोज्ञशब्दादिसयोगे च उद्वेगेन, तथा-अनिन्द्रियमाधित्याऽशुभमन संकल्पेन, सवेगनिर्वेदापगमाद् मोक्षमार्गं प्रति दुर्णवस्थितस्य-प्रमत्तस्यतरयेत्यर्थः, या कायक्रिया भवति, सा दुष्प्रयुक्तकायक्रिया । आधिकरणिकी क्रियाऽपि द्विविधा सयोजनाधिकरणिकी, निर्वर्तनाधिकरणिकी चेति । तत्र सयोजनाधिकरणिकी=यत् स्वच्छ पूर्वनिर्मितयो स्वप्न-तन्मृष्ट्यादिकयोः पदार्थयो क्रियते, सा सयोजनाधिकरणिकी । तथा-यत् स्वच्छ स्वप्न-तन्मृष्ट्यादिकयोः पदार्थयोर्निर्वर्तन निर्माणं, सा निर्वर्तनाधिकरणिकी ।

पुनरन्यथा क्रियाया द्वैविध्यमाह-‘दो किरियाओ’ इत्यादि । द्वे क्रिये

काय क्रिया कर्मस्य च का कारण होती है यह अनुपरतकायक्रिया है तथा इन्द्रियोंको आश्रित करके मनोज्ञशब्दादिके सयोग में हर्ष होने से और अमनोज्ञशब्दादिकों के सयोग में उद्वेग होने से तथा अनिन्द्रियको आश्रित करके अशुभमन के संकल्प से सवेग निर्वेद के अपगम से मोक्षमार्ग के प्रति दुर्णवस्थित हुए दुर्मांससपन्न प्रमत्त सयत के जो काय क्रिया होती है यह दुष्प्रयुक्त कायक्रिया है सयोजनाधिकरणिकी और निर्वर्तनाधिकरणिकीके भेदसे आधिकरणिकी क्रिया दो प्रकारकी होती है पूर्वनिर्मित स्वप्न और उमकी मूठ आदि पदार्थों का आपस में सयोजन करना इसका नाम सयोजनाधिकरणिकी क्रिया है तथा स्वप्न और उमकी मूठ आदिकी रचना करना यनाना यह निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया है ।

क्रियाने अनुपरतकाय क्रिया कहे छे ते अभयभना कारखुत्त जने छे तथा इन्द्रियेने आधारे मनोज्ञ शब्दादिना सयोगमा हर्षं यवासी जने अभयेत शब्दादिठाना सयोगमा उद्वेग यवासी तथा अनिन्द्रियेनी अपेक्षाजे अशुभ मनना संकल्पथी सवेग निर्वेजना अप्रमथी भोक्षमात्र दुष्प्रव्यस्थित यवेला इकारि अ पत्र प्रमत्त सयत द्वारा के कायक्रिया याय छे तेने दुष्प्रयुक्त काय क्रिया कहे छे आधिकरखिही क्रियाना पद्य नीये प्रभावे जे प्रकार पठे छे—  
(१) सयोगनाधिकरखिही जने (२) निवतनाधिकरखिही. पूर्वनिमित्त अद्वय जने तेनी मूठ आदिनुं सयोगना करहुं तेनुं नाम सयोगनाधिकरखिही क्रिया छे परन्तु अद्वय, मूठ आदिनी रचना करवी ते निवतनाधिकरखिही क्रिया छे

प्रज्ञप्ते, तद् यथा—प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी चेति । प्रद्वेषेण निर्वृत्ता प्राद्वेषिकी । तथा—परितापनं—ताडनादिदुःखविशेषरूपं, तेन निर्वृत्ता पारितापनिकी । तत्र प्राद्वेषिकी द्विविधा—जीव-प्राद्वेषिकी, अजीवप्राद्वेषिकी चेति । तत्र जीव-प्राद्वेषिकी क्रिया जीवे प्रद्वेषाज्जायते । अजीवे—पाषाणादीं स्खलनादिना प्रद्वेषाज्जायमानाऽजीवप्राद्वेषिकी पारितापनिकी । चापि क्रिया द्विविधा—स्वहस्तपारितापनिकी, परहस्तपारितापनिकी चेति । स्वहस्तेन स्वदेहस्य परदेहस्य चाऽऽर्त्तध्यानादिभिस्ताडनादिरूपं परितापनं कुर्वतो जीवस्य या क्रिया भवति, सा स्वहस्तपारितापनिकी । तथा—परहस्तेन परितापनं कारयतो जीवरय या क्रिया भवति, सा परहस्तपारितापनिकी ।

इस प्रकार से भी क्रिया दो प्रकार की है एक प्राद्वेषिकी क्रिया और दूसरी पारितापनिकी क्रिया जो क्रिया प्रद्वेष से निष्पन्न होती है वह प्राद्वेषिकी क्रिया है तथा जो परितापन से ताडनादि दुःख विशेषरूप से उत्पन्न होती है वह पारितापनिकी क्रिया है इनमें प्राद्वेषिकी क्रिया जीव प्राद्वेषिकी और अजीव प्राद्वेषिकी के भेद से दो प्रकार की है जीव में जो क्रिया प्रद्वेष से उत्पन्न होती है वह जीव प्राद्वेषिकी क्रिया है पाषाण आदि पर स्खलित आदि होने से जन्य प्रद्वेष से जो क्रिया होती है वह अजीव प्राद्वेषिकी क्रिया है पारितापनिकी क्रिया भी दो प्रकार की है—१ स्वहस्तपारितापनिकी और २ परहस्तपारितापनिकी आर्त्तध्यान आदि के वशावर्ती होने से अपने ही हाथों द्वारा अपने शरीर का या पर के शरीर का ताडनादिरूप परितापन करनेवाले जीव को जो क्रिया होती है वह स्वहस्त पारितापनिकी क्रिया है तथा पर के

प्राद्वेषिकी, अने पारितापनिकीना लेखी पणु क्रियाना जे प्रकार पडे छे. जे क्रिया प्रद्वेषना कारणे थाय छे, ते क्रियाने प्राद्वेषिकी क्रिया कडे छे जे क्रिया परितापना द्वारा—भार भारवानी क्रिया आदि दुःख विशेषरूपे उत्पन्न थाय छे, ते क्रियाने पारितापनिकी क्रिया कडे छे प्राद्वेषिकी क्रियाना नीचे प्रमाणे जे लेख छे (१) एव प्राद्वेषिकी अने (२) अएव प्राद्वेषिकी एवमां जे क्रिया प्रद्वेषथी उत्पन्न थाय छे ते क्रियाने एवप्राद्वेषिकी क्रिया कडे छे पाषाणु आदि पर स्खलित आदि थवाथी जन्य प्रद्वेष द्वारा जे क्रिया थाय छे, ते क्रियाने अएवप्राद्वेषिकी क्रिया कडे छे. पारितापनिकी क्रियाना पणु जे लेख छे— (१) स्वहस्त पारितापनिकी (२) परहस्त पारितापनिकी आर्त्तध्यान आदिने अधीन थधने चोताना हाथे जे चोताना शरीरपर अथवा अन्यना शरीरपर भार भारवाइप जे क्रिया एवद्वारा कराय छे, ते क्रियाने स्वहस्त पारितापनिकी

दुष्पयुक्तकायक्रिया=दुष्पयुक्तस्य-दुर्मांसपत्रस्य इन्द्रियाण्यथाश्रित्य मनोऽज्ञान्दादिसंयोगे हर्षेण अमनोऽज्ञान्दादिसंयोगे च उद्वेगेन, तथा-अनिन्द्रियमाभित्याऽशुभमनसंघन्येन, सवेगनिर्वेदापगमाद् मोक्षमार्गं प्रति दुर्भ्यवस्थितस्य-प्रमत्तस्यतस्येत्यर्थः, या कायक्रिया भवति, सा दुष्पयुक्तकायक्रिया । आधिकारणिकी क्रियाऽपि द्विविधा संयोजनाधिकारणिकी, निर्घर्तनाधिकारणिकी चेति । तत्र संयोजनाधिकारणिकी=यत् स्वल्प पूर्वनिमित्तयो स्वल्प-तन्मुष्ट्यादिकयोः पदार्थयो क्रियते, सा संयोजनाधिकारणिकी, । तथा-यत् स्वल्प स्वल्प-तन्मुष्ट्यादिकयोः पदार्थयोर्निर्घर्तनं निर्माणं, सा निर्घर्तनाधिकारणिकी ।

पुनरन्यथा क्रियाया द्वैविध्यमाह-'दो किरियाओ' इत्यादि । द्वे क्रिये

काय क्रिया कर्मस्य च का कारण होती है वह अनुपरतकायक्रिया है तथा इन्द्रियोंको आश्रित करके मनोऽज्ञान्दादिके संयोग में हर्ष होने से और अमनोऽज्ञान्दादिकों के संयोग में उद्वेग होने से तथा अनिन्द्रियको आश्रित करके अशुभमन के सकल्प से सवेग निर्वेद के अपगम से मोक्षमार्ग के प्रति दुर्भ्यवस्थित हुए दुर्मांसपत्र प्रमत्त सयत के जो काय क्रिया होती है वह दुष्पयुक्त कायक्रिया है संयोजनाधिकारणिकी और निर्घर्तनाधिकारणिकीके भेदसे आधिकारणिकी क्रिया दो प्रकारकी होती है पूर्वनिमित्त स्वल्प और उसकी मूठ आवि पदार्थों का आपस में संयोजन करना इसका नाम संयोजनाधिकारणिकी क्रिया है तथा स्वल्प और उसकी मूठ आदिकी रचना करना बनाना यह निर्घर्तनाधिकारणिकी क्रिया है ।

क्रियाने अनुपरतकाय क्रिया कहे छे ते कमलभेदा कारणभूत जने छे तथा इन्द्रियोने आशारे मनोऽज्ञान्दादिना संयोगभां रूपं यवायी जने अमनोऽज्ञान्दादिना संयोगभां उद्वेग यवायी, तथा अनिन्द्रियोनी अपेक्षाने अशुभमनता संघन्येयी संवेग निर्वेजना अपत्रमयी भोक्षभाज दुर्भ्यवस्थित यवेक्षा दुर्भाव सप्त प्रमत्त सयत द्वारा के कायक्रिया थाय छे तेने दुष्पयुक्त काय क्रिया कहे छे आधिकारणिकी क्रियाना पक्ष नीचे प्रभाषे छे प्रकाश पठे छे—

(१) संयोजनाधिकारणिकी जने (२) निर्घर्तनाधिकारणिकी पूर्वनिमित्त पदार्थ जने तेनी मूठ आविनुं संयोजन करवुं तेनु नाम संयोजनाधिकारणिकी क्रिया छे परन्तु अद्वय, मूठ आविनी रचना करवी ते निर्घर्तनाधिकारणिकी क्रिया छे

પ્રજ્ઞપ્તે, તદ્ યથા—પ્રાદેષિકી, પારિતાપનિકી ચેતિ । પ્રદેષેણ નિર્વૃત્તા પ્રાદેષિકી । તથા—પરિતાપનં—તાડનાદિદુઃસ્વપ્રિશેષરૂપં, તેન નિર્વૃત્તા પારિતાપનિકી । તત્ર પ્રાદેષિકી દ્વિવિધા—જીવ-પ્રાદેષિકી, અજીવપ્રાદેષિકી ચેતિ । તત્ર જીવ-પ્રાદેષિકી ક્રિયા જીવે પ્રદેષાજ્ઞાયતે । અજીવે—પાપાણાદૌ સ્વલનાદિના પ્રદેષાજ્ઞાય-માનાઽજીવપ્રાદેષિકી પારિતાપનિકી । ચાપિ ક્રિયા દ્વિવિધા—સ્વહસ્તપારિતાપ-નિકી, પરહસ્તપારિતાપનિકી ચેતિ । સ્વહસ્તેન સ્વદેહસ્ય પરદેહસ્ય ત્રાઽઽર્ત્તધ્યાના-દિભિસ્તાડનાદિરૂપં પરિતાપનં કુર્વતો જીવસ્ય યા ક્રિયા ભવતિ, સા સ્વહસ્તપારિ-તાપનિકી । તથા—પરહસ્તેન પરિતાપનં કારયતો જીવસ્ય યા ક્રિયા ભવતિ, સા પરહસ્તપારિતાપનિકી ।

इस प्रकार से भी क्रिया दो प्रकार की है एक प्रादेक्षिकी क्रिया और दूसरी पारितापनिकी क्रिया जो क्रिया प्रदेष से निष्पन्न होती है वह प्रादेक्षिकी क्रिया है तथा जो परितापन से ताडनादि दुःस्व विशेष-रूप से उत्पन्न होती है वह परितापनिकी क्रिया है इनमें प्रादेक्षिकी क्रिया जीव प्रादेक्षिकी और अजीव प्रादेक्षिकी के भेद से दो प्रकार की है जीव में जो क्रिया प्रदेष से उत्पन्न होती है वह जीव प्रादेक्षिकी क्रिया है पाषाण आदि पर रखलित आदि होने से जन्य प्रदेष से जो क्रिया होती है वह अजीव प्रादेक्षिकी क्रिया है पारितापनिकी क्रिया भी दो प्रकार की है—१ स्वहस्तपारितापनिकी और २ परहस्तपारितापनिकी आर्त्तध्यान आदि के वशवर्ती होने से अपने ही हाथों द्वारा अपने शरीर का या पर के शरीर का ताडनादिरूप परितापन करनेवाले जीव को जो क्रिया होती है वह स्वहस्त पारितापनिकी क्रिया है तथा पर के

પ્રાદેષિકી, અને પારિતાપનિકીના લેહથી પણ ક્રિયાના બે પ્રકાર પડે છે. જે ક્રિયા પ્રદેષના કારણે થાય છે, તે ક્રિયાને પ્રાદેષિકી ક્રિયા કહે છે જે ક્રિયા પરિતાપના દ્વારા—માર મારવાની ક્રિયા આદિ દુઃસ્વ વિશેષરૂપે ઉત્પન્ન થાય છે, તે ક્રિયાને પારિતાપનિકી ક્રિયા કહે છે. પ્રાદેષિકી ક્રિયાના નીચે પ્રમાણે બે લેહ છે (૧) જીવ પ્રાદેષિકી અને (૨) અજીવ પ્રાદેષિકી જીવમાં જે ક્રિયા પ્રદેષથી ઉત્પન્ન થાય છે તે ક્રિયાને જીવપ્રાદેષિકી ક્રિયા કહે છે પાષાણ આદિ પર સ્થપિત આદિ થવાથી જન્ય પ્રદેષ દ્વારા જે ક્રિયા થાય છે, તે ક્રિયાને અજીવપ્રાદેષિકી ક્રિયા કહે છે પારિતાપનિકી ક્રિયાના પણ બે લેહ છે— (૧) સ્વહસ્ત પારિતાપનિકી (૨) પરહસ્ત પારિતાપનિકી આર્ત્તધ્યાન આદિને અધીન થઈને પોતાના હાથે જ પોતાના શરીરપર અથવા અન્યના શરીરપર માર મારવારૂપે જે ક્રિયા જીવદ્વારા કરાય છે, તે ક્રિયાને સ્વહસ્ત પારિતાપનિકી



પુનરપયા ત્રિપાયા દ્વિવિધમાદ- 'હો કિરિયાઓ' इत्यादि । द्वे क्रिये प्रकल्पे । तद् यथा-प्राणातिपातक्रिया, अप्रत्याख्यानक्रिया चेति । प्राणिप्रानि योजन-प्राणातिपात, स एव क्रिया प्राणातिपातक्रिया । यद्वा-प्राणातिपातेन-प्राणातिपाताध्यवसायन यः प्राणातिपातः क्रियते, सा प्राणातिपातक्रिया । प्राणा तिपाताध्यवसायेन जायमाना ताडनादिरूपा क्रियाऽपि प्राणविजनाभावेऽप्युपचा रत प्राणातिपातक्रियैष षोडशा । तथा-अप्रत्याख्यानक्रिया=अप्रत्याख्यानम्-अविरतिस्तन्निमित्ताक्रमण-रूपा क्रिया भवति, सा अप्रत्याख्यानक्रिया । सा चाविर तानां-भवति । प्राणातिपातक्रिया द्वित्रिधा भवति, तद् यथा-स्वहस्तप्राणातिपा तक्रिया, परहस्तप्राणातिपातक्रिया चेति । तत्र-स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया=प्रार्त्ता वस्यायां त्रिपत्मासौ च निर्देशदिना य स्वहस्तेन स्वमागान् भतिपातयति, क्रोध-दिना वा स्वहस्तेन परमाणान् भतिपातयति, तस्य स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया

હાય સે પરિતાપન કરાને ઘાઠે જીવ કે જો ક્રિયા હોતી હૈ વહ પરહસ્ત પારિતાપનિકી ક્રિયા હૈ इस प्रकार से भी क्रिया में द्विविधता है-एक प्राणातिपात क्रिया और दूसरी अप्रत्याख्यान क्रिया जिस क्रिया में प्राणियों के प्राणों का नाश किया जाता है वह प्राणातिपात क्रिया है अथवा प्राणातिपात के अध्यवसाय द्वारा जो प्राणातिपात किया जाता है वह प्राणातिपात क्रिया है प्राणातिपात करने के अभिप्राय से किया गया ताडनादिरूप कर्म भी प्राणवियोजन के अन्वय में भी प्राणातिपात क्रिया रूप ही माना गया है । अविरति का नाम अप्रत्याख्यान है इस अविरतिनिमित्तक जो कर्म का षष्ठ होता है वह अप्रत्याख्यान क्रिया है यह अप्रत्याख्यान क्रिया अविरत जीवों के होती है प्राणातिपात क्रिया दो प्रकारकी होती है एक स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया और दूसरी परहस्त

ક્રિયા કહે છે તથા પારકાને ઢાલે પરિતાપના કરાવનાર એવ દ્વારા જે ક્રિયા થાય છે તે ક્રિયાને પરહસ્ત પારિતાપનિકી ક્રિયા કહે છે

પ્રાણાતિપાત ક્રિયા અને અપ્રત્યાખ્યાન ક્રિયાના સેદશી પણ ક્રિયાના બે પ્રકાર પાઠી સંકેષ છે જે ક્રિયા દ્વારા એવાનાં પ્રાણુ કરી લેવામાં આવે છે તે ક્રિયાને-પ્રાણાતિપાત ક્રિયા કહે છે અથવા પ્રાણાતિપાતના અધ્યવસાય (વિચાર) દ્વારા જે પ્રાણાતિપાત કરાય છે તે પણ પ્રાણાતિપાત ક્રિયા જ છે પ્રાણાતિપાત કરવાના કેતુપૂવક જે તાઠનાક્રિયા કમ કરવામાં આવે છે, તેના દ્વારા પ્રાણવિયોજન થતું ન હોય તે પણ તેને પ્રાણાતિપાત ક્રિયા કૃપ જ માનવામાં આવે છે અવિરતિને અપ્રત્યાખ્યાન કહે છે આ અવિરતિને કારણે જે કર્મનો બંધ થાય છે, તે અપ્રત્યાખ્યાન ક્રિયા જ છે અવિરત એવા દ્વારા આ અપ્રત્યાખ્યાન ક્રિયા થાય છે પ્રાણાતિપાત ક્રિયાના નીચે પ્રમાણે બે સેદ છે-(૧) સ્વહસ્ત પ્રાણાતિપાત ક્રિયા અને (૨) પરહસ્ત પ્રાણાતિપાત ક્રિયા.

भवति । तथा-परहस्तेनापि प्राणातिपातक्रिया भवति, अपत्याख्यानक्रियाऽपि द्विविधा-जीवाऽप्रत्याख्यानक्रिया, अजीवाप्रत्याख्यानक्रिया चेति । जीवविषये प्रत्याख्यानाभावेन यः कर्मणां बन्धादिव्यापारः सा जीवाप्रत्याख्यानक्रिया । यत्तु अजीवेषु मद्यमांसादिषु प्रत्याख्यानाभावात् कर्मबन्धनं सा अजीवाप्रत्याख्यानक्रिया, इति ।

पुनरन्यथा-क्रियाया द्वैविध्यमाह-‘दो किरियाओ’ इत्यादि । द्वे क्रिये

प्राणातिपात क्रिया स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया उस समय होती है जब जीव आर्त्तावस्थामें विपत्तिके आजानेपर निर्वेदादिसे युक्त होकर अथवा क्रोधादि के बशवर्त्ती होकर अपने ही हाथों से अपने प्राणों को नष्टकर डालता है तथा इसी प्रकारसे जब जीव के प्राणोंका परके हस्तादि द्वारा अपहरण किया जाता है तब वहां परहस्त प्राणातिपात क्रिया होती है अप्रत्याख्यान क्रिया भी दो प्रकारकी होती है एक जीवाप्रत्याख्यानक्रिया दूसरी अजीवाप्रत्याख्यानक्रिया जीव में जो प्रत्याख्यान के अभाव से कर्मों का बन्धनादिरूप व्यापार होता है वह जीवाप्रत्याख्यान क्रिया है तथा मद्यमांस आदि अजीव पदार्थों के अप्रत्याख्यान को लेकर जो जीव के कर्मबन्ध होता है वह अजीवाप्रत्याख्यान क्रिया है ।

इस प्रकार से भी क्रिया दो प्रकार की है-एक आरम्भिकी और

एव न्याये क्राधादिने कारणे आर्त्तध्यान आदिने अधीन थधने पोताना हाथेण पोतानां प्राणाने नष्ट करी नाये छे-आपघात करे छे, अथवा अन्यना प्राणाने नाश करे छे त्याये तेना द्वारा स्वहस्त प्राणुतिपात क्रिया थती होय छे. अेण प्रभाणे अन्यने हाथे एवना प्राणाने नाश कराववा इय ने क्रिया थाय छे ते क्रियाने परहस्त प्राणुतिपात क्रिया कडे छे. अप्रत्याख्यान क्रियाना पणु नीये प्रभाणे ये लेद छे-(१) एवाप्रत्याख्यान क्रिया अने (२) अएवा प्रत्याख्यान क्रिया. प्रत्याख्यानना अलावे करीने कर्मना अधनादि इय ने व्यापार (प्रवृत्ति) एव द्वारा थाय छे, तेने एवाप्रत्याख्यान क्रिया कडे छे. तथा मद्य, मांस आदि अएव पदार्थाना अप्रत्याख्याननी अपेक्षाअे एव कर्मना अधक भने छे, आ प्रकारनी तेनी क्रियाने अएवाप्रत्याख्यान क्रिया कडे छे. आरखिकी अने पारिअखिकीना लेदथी पणु क्रिया ये प्रकारनी होय छे.

पुनरन्यथा क्रियाया द्वैविध्यमाह—‘दो किरियाओ’ इत्यादि । द्वे क्रिये मग्नप्ते । तद् यथा—प्राणातिपातक्रिया, अप्रत्याख्यानक्रिया चेति । प्राणिमात्रवि-  
योजन—प्राणातिपात, स एव क्रिया प्राणातिपातक्रिया । यद्वा—प्राणातिपातेन—  
प्राणातिपाताध्यवसायेन यः प्राणातिपात क्रियते, सा प्राणातिपातक्रिया । प्राणा-  
तिपाताध्यवसायेन जायमाना ताडनादिरूपा क्रियाऽपि प्राणविजनाभावेऽप्युपचा-  
रत प्राणातिपातक्रियैव घोष्या । तथा—अप्रत्याख्यानक्रिया=अप्रत्याख्यानम्-  
अधिरतिस्त्वभिनिष्ठाकर्मरूपा क्रिया मन्वति, सा अप्रत्याख्यानक्रिया । सा पारि-  
तानां—भवति । प्राणातिपातक्रिया द्विविधा मग्नप्ता, तद् यथा—स्वहस्तप्राणातिपा-  
तक्रिया, परहस्तप्राणातिपातक्रिया चेति । तत्र—स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया=आर्वा-  
वस्थायां विपत्प्राप्तीं च निर्वेदादिना य स्वहस्तेन स्वप्राणान् अतिपातयति, क्रोधा-  
दिना वा स्वहस्तेन परप्राणान् अतिपातयति, तस्य स्वहस्तप्राणातिपातक्रिया

हाथ से परित्यापन कराने वाले जीव के जो क्रिया होती है वह परहस्त पारित्यापनिकी क्रिया है इस प्रकार से भी क्रिया में द्विविधता है—एक प्राणातिपात क्रिया और दूसरी अप्रत्याख्यान क्रिया जिस क्रिया में प्राणियों के प्राणों का नाश किया जाता है वह प्राणातिपात क्रिया है अथवा प्राणातिपात के अध्यवसाय द्वारा जो प्राणातिपात किया जाता है वह प्राणातिपात क्रिया है प्राणातिपात करने के अभिप्राय से किया गया ताडनादिरूप कर्म भी प्राणवियोजन के अभाव में भी प्राणातिपात क्रिया रूप ही माना गया है । अधिरति का नाम अप्रत्याख्यान है इस अधिरतिनिमित्तक जो कर्म का पच होता है वह अप्रत्याख्यान क्रिया है यह अप्रत्याख्यान क्रिया अधिरत जीवों के होती है प्राणातिपात क्रिया दो प्रकारकी होती है एक स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया और दूसरी परहस्त

क्रिया कहे छे तथा पारित्यापन कराने वाले परित्यापन कराने द्वारा के क्रिया माय छे ते क्रियाने परहस्त पारित्यापनिकी क्रिया कहे छे

प्राणातिपात क्रिया अने अप्रत्याख्यान क्रियाना दोहो पक्ष क्रियाना छे प्रकार पावे शक्य छे ते क्रिया द्वारा लोकोनां प्राणु उरी लोकोनां आवे छे ते क्रियाने—प्राणातिपात क्रिया कहे छे अथवा प्राणातिपातना अध्यवसाय (विचार) द्वारा के प्राणातिपात शक्य छे ते पक्ष प्राणातिपात क्रिया छे प्राणातिपात कराना उद्योग के ताडनादि कर्म कराना आवे छे तेना द्वारा प्राणवियोजन मर्तु न होय तो पक्ष तेने प्राणातिपात क्रिया रूप अभाववाला आवे छे अधिरतिने अप्रत्याख्यान कहे छे अथ अधिरतिने करके के कर्मना लभ माय छे ते अप्रत्याख्यान क्रिया छे अधिरति लोको द्वारा अथ अप्रत्याख्यान क्रिया माय छे प्राणातिपात क्रियाना नीके प्रमाद्ये छे केह छे—(१) स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया अने (२) परहस्त प्राणातिपात क्रिया-

भवति । तथा-परहस्तेनापि प्राणातिपातक्रिया भवति, अपत्याख्यानक्रियाऽपि द्विविधा-जीवाऽप्रत्याख्यानक्रिया, अजीवाप्रत्याख्यानक्रिया चेति । जीवत्रिपये प्रत्याख्यानाभावेन यः कर्मणां बन्धादिव्यापारः सा जीवाप्रत्याख्यानक्रिया । यत्तु अजीवेषु मद्यमांसादिषु प्रत्याख्यानाभावात् कर्मबन्धनं सा अजीवाप्रत्याख्यानक्रिया, इति ।

पुनरन्यथा-क्रियाया द्वैविध्यमाह-‘दो किरियाओ’ इत्यादि । द्वे क्रिये

प्राणातिपात क्रिया स्वहस्त प्राणातिपात क्रिया उस समय होती है जब जीव आर्त्तावस्थामें विपत्तिके आजानेपर निर्वेदादिसे युक्त होकर अथवा क्रोधादि के बशवर्त्ती होकर अपने ही हाथों से अपने प्राणों को नष्टकर डालता है तथा इसी प्रकारसे जब जीव के प्राणोंका परके हस्तादि द्वारा अपहरण किया जाता है तब वहां परहसन प्राणातिपात क्रिया होती है अपत्याख्यान क्रिया भी दो प्रकारकी होती है एक जीवाप्रत्याख्यानक्रिया दूसरी अजीवाप्रत्याख्यानक्रिया जीव में जो प्रत्याख्यान के अभाव से कर्मों का बन्धनादिरूप व्यापार होता है वह जीवाप्रत्याख्यान क्रिया है तथा मद्यमांस आदि अजीव पदार्थों के अपत्याख्यान को लेकर जो जीव के कर्मबन्ध होता है वह अजीवाप्रत्याख्यान क्रिया है ।

इस प्रकार से भी क्रिया दो प्रकार की है-एक आरम्भिकी और

एव न्यारे क्राधादिने कारणे आर्त्तध्यान आदिने अधीन धरने पोताना डायेण पोतानां प्राणुने नष्ट करी नाणे छे-आपघात करे छे, अथवा अन्यना प्राणुने नाश करे छे त्यारे तेना द्वारा स्वहस्त प्राणुतिपात क्रिया थती डोय छे. अण प्रमाणे अन्यने हाथे एवना प्राणुने नाश कराववा रूप ने क्रिया थाय छे ते क्रियाने परहस्त प्राणुतिपात क्रिया कडे छे. अपत्याख्यान क्रियाना पणु नीचे प्रमाणे ये बेट छे-(१) एवाप्रत्याख्यान क्रिया अने (२) अएवा प्रत्याख्यान क्रिया. प्रत्याख्यानना अक्षावे करीने कर्मोना बंधनादि रूप ने व्यापार (प्रवृत्ति) एव द्वारा थाय छे, तेने एवाप्रत्याख्यान क्रिया कडे छे. तथा मद्य, मांस आदि अएव पदार्थोना अपत्याख्याननी अपेक्षाअे एव कर्मोना बंधक भने छे, आ प्रकारनी तेनी क्रियाने अएवाप्रत्याख्यान क्रिया कडे छे. आरम्भिकी अने पारिअडिकीना बेटथी पणु क्रिया ये प्रकारनी डोय छे.

प्रवृत्ते । तद् यथा-आरम्भिकी, पारिग्रहिकी चेति । तत्रारम्भिकी आरम्भे मया आरम्भिकी । तथा-परिग्रहे मया पारिग्रहिकी । आरम्भिकीक्रिया द्विविधा-जीवारम्भिकी, अजीवारम्भिकी चेति । यद् स्वल्प जीवान् आरममाणस्य उपमर्दयत् कर्मबन्धन सा जीवारम्भिकी । तथा-यत् स्वल्प अजीवान् जीवकलेबराणि, पिष्टादिमयान् जीवाकारान्, यस्मादीन् वा आरममाणस्य कर्मबन्धन सा अजीवारम्भिकी । पारिग्रहिकी चापि द्विविधा तस्या जीवाजीवपरिग्रहजन्यत्वादिति भाव ।

वृत्तरी पारिग्रहीकी आरम्भ के होने पर या आरम्भ के करने में जो क्रिया होती है वह आरम्भिकी क्रिया है तथा परिग्रह के होने पर या परिग्रह के जुटाने में जो क्रिया होती है वह पारिग्रहिकी क्रिया है आरम्भिकी क्रिया दो प्रकार की होती है जीवारम्भिकी और अजीवारम्भिकी आरम्भ करते हुए जीव को जीवों का उपमर्दन होने से जो कर्म का बन्धन होता है वह जीवारम्भिकी क्रिया है अजीवों के जीवकलेबरों के आरम्भ करने वाले अथवा पिष्टादिमय जीव कलेबरों या जीवाकार वस्त्रादिकों का उपमर्दन करने वाले जीव के जो कर्म का बन्धन होता है वह अजीवारम्भिकी क्रिया है तात्पर्य ऐसा है कि "मकारम्भो विना वधात्" आरम्भ विना वध के नहीं होता है इस सिद्धान्त वाक्य के अनुसार जहाँ पर भी आरम्भ है वहाँ नियमता जीव का वध है चाहे वह जीवों का आरम्भ हो चाहे अजीवों का आरम्भ हो इसी प्रकार से पारिग्रहिकी क्रिया भी जीव एवं अजीव के परिग्रह से दो प्रकार की है

आरम्भ वधाधी अथवा आरम्भ करवाधी के क्रिया यद्यपि तेने आरम्भिकी क्रिया कहे छे परिग्रह करवाधी अथवा परिग्रहकृष सामर्थ्यो ज्येष्ठ करवाधी के क्रिया यद्यपि ते क्रियाने पारिग्रहिकी क्रिया कहे छे आरम्भिकी क्रियाना जे वेद छे-(१) लघुआरम्भिकी अने (२) अलघुआरम्भिकी आरम्भ करवा छे लघु द्वारा लघुवोनु उपमर्दन वधाधी के कर्मने अथ पठे छे ते लघुआरम्भिकी क्रिया अथवा अलघुवोने-लघुकलेवरीने आरम्भ करवा छे अथवा पिष्टादिमय लघु कलेवरी अथवा लघुकार वस्त्रादिकोनु उपमर्दन करवा लघु द्वारा के कर्मने अथ करवा छे क्रिया यद्यपि तेने अलघुआरम्भिकी क्रिया कहे छे आ कथनने भाषार्थ नीचे प्रभावे छे-"मकारम्भो विना वधात्" 'वध विना आरम्भ भवते नही आ सिद्धान्त वाक्य अनुसार जहाँ जहाँ आरम्भ भवते वहाँ छे त्यों त्यों लघुवोने वध पशु अथवा भवते न वहाँ छे पशु भवते ते लघुवोना आरम्भ वध के अलघुवोने आरम्भ वध पारिग्रहिकी क्रियाना पशु जे वेद छे-(१) लघुपारिग्रहिकी अने (२) अलघुपारिग्रहिकी.

पुनरस्यथा क्रियाया द्विविध्यमाह—‘दो क्रियाओ’ इत्यादि । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते । तद् यथा—मायाप्रत्यया, मिथ्यादर्शनप्रत्यया चेति । तत्र मायाप्रत्यया=मायाप्रत्ययो—यस्याः—क्रियायाः सा तथा । मायाहेतुरुक्तमवन्धक्रियेत्यर्थः । तथा—मिथ्यादर्शनं—मिथ्यात्व, प्रत्ययः—कारणं यस्याः सा मिथ्यादर्शनप्रत्यया । मायाप्रत्यया क्रिया द्विविधा—आत्मभाववद्भूतता, परभाववद्भूतता चेति । अप्रशस्तरयात्मभावस्य वद्भूतता—वक्रीकरणं, अप्रशस्तात्मभावप्रच्छादनपूर्वकं प्रशस्तभावोपदर्शनमित्यर्थः सा आत्मभाववद्भूतता । सा च क्रिया, व्यापाररूपत्वात् । तथा—परभावस्य वद्भूतता—वचनता या कूटलेखरुणादिभिः क्रियते, सा परभाववद्भूतता मिथ्या-

क्रिया की द्विविधता इस प्रकारसे भी है एक माया प्रत्यया और दूसरी मिथ्यादर्शन प्रत्यया जिस क्रिया का कारण माया होती है वह माया प्रत्यया क्रिया है इस माया प्रत्यया क्रिया में कर्म का बन्ध जीव के मायाहेतुक होता है तथा—जिस क्रिया का कारण मिथ्यादर्शन होता है वह मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया है इस क्रिया में जो कर्म का बन्ध होता है वह मिथ्यादर्शन हेतुक होता है माया प्रत्यया क्रिया आत्म भाववद्भूतता और परभाववद्भूतता के भेद से दो प्रकार की होती है अप्रशस्त आत्मभाव को बक्र करना अर्थात् अप्रशस्त आत्मभाव का प्रच्छादन करते हुए अपने में प्रशस्तभाव का उपदर्शन करना इसका नाम आत्म भाववद्भूतता है यह क्रिया व्यापाररूप होता है जो क्रिया झूठे स्टाम्प वगैरह लिखाने आदि से होती है वह परभाववद्भूतता है इस क्रिया में परभावों की वचनता कूटलेख आदिकों द्वारा की जाती है मिथ्यादर्शन

क्रियाना नीचे प्रमाणे के प्रकार पणु पाडी शक्य छे—(१) मायाप्रत्यया अने (२) मिथ्यादर्शनप्रत्यया. जे क्रियानु निमित्त माया होय छे ते क्रियाने मायाप्रत्यया क्रिया कहे छे आ क्रियाभां एव माया निमित्ते कर्मनो बंध करतो होय छे. जे क्रियानु कारण मिथ्यादर्शन छे ते क्रियाने मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रिया कहे छे ते क्रियाभां एव मिथ्यादर्शनने कारणे कर्मनो बंध करतो होय छे. मायाप्रत्यया क्रियाना नीचे प्रमाणे के लेह पडे छे—(१) आत्म लाववकनता अने (२) परलाववकनता अप्रशस्त आत्मलावने छुपावोने (वक्र करीने) चेतानी अंदर प्रशस्तलावनु उपदर्शन करवुं तेनु नाम आत्मलाव वकनता छे आ क्रिया व्यापाररूप होय छे. जे क्रिया जुडा हस्तावेज आदि लभाववाने कारणे थाय छे तेने परलाववकनता कहे छे. ते क्रियाभां परलावोनी वचना जोटा लेण आदि द्वारा कराय छे. मिथ्यादर्शन प्रत्यया क्रियाना

दर्शनप्रत्ययाऽपि क्रिया द्विधा—ऊनातिरिक्तमिध्यादर्शनप्रत्यया, तद्व्यतिरिक्त  
मिध्यादर्शनप्रत्यया चेति । ऊनम्—स्वप्रमाणतो न्यूनम्, व्यतिरिक्त—ततोऽधिक  
यज्जीवादिवस्तु सद्रूपयक मिध्यादर्शन, तद्व्य प्रत्यय—कारण यस्याः सा ऊना  
तिरिक्तमिध्यादर्शनप्रत्यया । अथ भाषः—शरीरपरिमाणमात्मान कोऽपि मिध्या  
दृष्टिरङ्गुष्ठपर्वप्रमाण वा यथमात्र वा इयामाकृताङ्गुलमात्र वा न्यूनत्वेन जानाति,  
तथा—कोऽप्यन्य सर्वव्यापक वाऽधिकतया जानातीति । तथा — तद्व्य-  
तिरिक्तमिध्यादर्शनप्रत्यया—तस्माद् — ऊनातिरिक्तमिध्यादर्शनाद् व्यतिरिक्त  
मिध्यादर्शन—' नास्त्येषात्मा ' इत्यादिमतरूप, प्रत्ययः—कारणं यस्याः सा तथा ।

प्रत्यया क्रिया भी दो प्रकार की होती है एक ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन  
प्रत्यया और दूसरी तद्व्यतिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया जो ऊन अपने  
प्रमाण से न्यून अथवा अतिरिक्त अधिक जीवाजीवादि वस्तु को विषय  
करने वाले मिध्यादर्शनरूप कारण को लेकर क्रिया होती है वह क्रिया  
ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया है तात्पर्य कहने का यह है कि कोई  
मिध्यादृष्टि जीव अपने को ऐसा जानता है कि मैं शरीररूप ही हूँ  
अथवा अङ्गुष्ठ पर्व प्रमाणरूप हूँ अथवा यथमात्ररूप हूँ अथवा इयामाकृत  
न्यूलमात्ररूप हूँ इस प्रकार न्यूनरूपसे अपने को जानता है तथा कोई मि  
ध्यादृष्टि जीव अपनेको सर्वव्यापकरूप अधिकतासे जानता है मानता है  
उसके यह क्रिया होती है तथा इस क्रिया से अतिरिक्त मिध्यादर्शन  
जिस क्रिया का कारण होता है वह तद्व्यतिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया  
क्रिया है जैसे ऐसा मानना कि आत्मा है ही नहीं

यद्यु ने लेह छे (१) ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया अने (२) तद्व्यतिरिक्त  
मिध्यादर्शन प्रत्यया के क्रिया एव अल्पवाहिक वस्तुओंने न्यून अथवा  
अतिरिक्त (अधिक) प्रमाणां प्रतिपादित करना। मिध्यादर्शनरूप कारणने  
धीरे धीरे छे, ते क्रियाने ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया क्रिया छडे छे  
नेमके छे। मिध्यादृष्टि एव पोताना आत्माने भाटे जेवुं माने छे के हु  
शरीररूप अ छे अथवा अङ्गुष्ठपर प्रमाणांरूप छे अथवा यथमात्ररूप छे  
अथवा तद्व्य मात्ररूप छे अथवा रीते ते पोताने न्यून रूपे लखे छे त्पारे  
छे। मिध्यादृष्टि एव पोताने सर्वव्यापकरूप-अधिक रूपे माने छे जेवा एव  
दाश आ क्रिया धीरे छे तथा ते क्रिया सिवायनुं मिध्यादर्शन के क्रियां  
कारणरूप के छे, ते क्रियाने तद्व्यतिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया क्रिया छडे  
छे नेमके—जेवुं माननुं के आत्मा छे अ नहीं क्रियां अ रीते यद्यु द्विधि

पुनरन्यथा क्रियाया द्वैविध्यमाह—‘ दो किरियाओ ’ इत्यादि । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते । तद् यथा—दृष्टिका, पृष्टिका चेति । दृष्टं—दर्शनं, वस्तु वा कारणत्वेन यस्यामस्ति, सा दृष्टिका । दर्शनार्थं या गतिक्रिया सा दृष्टिका । यद्वा—‘ दिट्टिया ’ इत्यस्य दृष्टिजा इतिच्छाया । दृष्टेर्जाता दृष्टिजा दर्शनाद् यः कर्मबन्धरूपो व्यापारः सा दृष्टिजेत्यर्थः । तथा—‘ पृष्टिका ’ इति । पृष्टं—प्रश्नः, वस्तु वा कारणत्वेन यस्यमस्ति सा पृष्टिका । यद्वा—‘ पुट्टिया ’ इत्यस्य ‘ पृष्टिजा ’ इतिच्छाया । पृष्टिः—पृच्छा, ततो जाता पृष्टिजा—सावद्यप्रश्नजनितो व्यापारः । तत्र—दृष्टिका क्रिया द्विविधा—जीव दृष्टिका, अजीवदृष्टिका चेति । अश्वादिदर्शनार्थं गच्छतो

क्रिया में इस प्रकार से भी द्विविधता आती है—एक दृष्टि को लेकर और दूसरी दृष्टि को लेकर, जो क्रिया होती है वह दृष्टिका क्रिया है और पृष्टि को लेकर जो क्रिया होती है वह पृष्टि का क्रिया है दृष्ट दर्शन अथवा वस्तु जिस क्रिया में कारणरूप से है वह दृष्टिका क्रिया है दर्शन के लिये जो गति क्रिया होती है वह दृष्टिका है अथवा “ दिट्टिया ” की छाया “ दृष्टिजा ” भी हो सकती है दर्शन से देखने से जो कर्मबन्धरूप व्यापार होता है वह दृष्टिजा क्रिया है पृष्टिका प्रश्न अथवा वस्तु कारण रूप से जिस क्रिया में होता है वह पृष्टिका क्रिया है अथवा—“ पुट्टिया ” इसकी संस्कृत छाया “ पृष्टिजा ” ऐसी भी होती है पृष्टि का अर्थ पृच्छा है सावद्य प्रश्न से जनित व्यापार से जो कर्मबन्ध होता है वह पृष्टिजा क्रिया है दृष्टिका क्रिया दो प्रकार

धता स भवी शके छे—એક દૃષ્ટિની અપેક્ષાએ અને બીજી પૃષ્ટિથી અપેક્ષાએ. દૃષ્ટિની અપેક્ષાએ જે ક્રિયા થાય છે તેને દૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે અને પૃષ્ટિની અપેક્ષાએ જે ક્રિયા થાય છે તેને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે.

દૃષ્ટદર્શન અથવા વસ્તુના દર્શનરૂપ ક્રિયા જેમાં કારણરૂપ હોય છે, તે ક્રિયાને દૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે દર્શનને માટે જે ગતિક્રિયા તે થાય છે તે દૃષ્ટિકા ક્રિયા છે અથવા “ દિટ્ટિયા ” ની છાયા “ દૃષ્ટિજા ” પણ થઈ શકે છે દર્શનથી અથવા દેખવા રૂપ ક્રિયાથી જે કર્મબંધ રૂપ વ્યાપાર થાય છે તેને દૃષ્ટિજા ક્રિયા કહે છે પૃષ્ટિ એટલે પ્રશ્ન. પ્રશ્ન અથવા વસ્તુ જે ક્રિયામાં કારણરૂપ હોય છે, તે ક્રિયાને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે અથવા “ પુટ્ટિયા ” આ પદની સંસ્કૃત છાયા “ પૃષ્ટિજા ” પણ થઈ શકે છે. પૃષ્ટિ એટલે પ્રશ્ન સાવધ પ્રશ્નથી જનિત વ્યાપાર દ્વારા જે કર્મબંધ રૂપ વ્યાપાર થાય છે તેને પૃષ્ટિજા ક્રિયા કહે છે દૃષ્ટિકા ક્રિયા બે પ્રકારની હોય છે (૧) જીવદૃષ્ટિકા અને (૨)



દર્શનમત્યયાઽપિ ક્રિયા દ્વિવિધા-ઝનાતિરિક્તમિધ્યાદર્શનમત્યયા, તદ્વપતિરિક્ત મિધ્યાદર્શનમત્યયા ચત્તિ । ઝનમ્-સ્વપમાણતો ન્યૂનમ્, અતિરિક્ત-ઘતાઽધિક યજ્ઞીનાદિઘસ્તુ તદ્વિપયકં મિધ્યાદર્શન, ધદેવ મત્યયાઃ-કારણ યસ્યાઃ સા ઝના તિરિક્તમિધ્યાદર્શનમત્યયા । મય માવઃ-શરીરપરિમાણમાત્માન કોઽપિ મિધ્યા દષ્ટિરહુષ્ટપર્વમમાઠં ઘા યથમાત્ર ઘા ડ્યામાકૃત્વાણ્દુલમાત્ર ઘા ન્યૂનત્વેન જ્ઞાનાતિ, તયા-કોઽપ્યન્ય સર્વઘ્યાપક ઘાઽધિકૃતયા જ્ઞાનાતીતિ । તયા — તદ્વપ- તિરિક્તમિધ્યાદર્શનમત્યયા=તસ્માદ્ - ઝનાતિરિક્તમિધ્યાદર્શનાદ્ ઘ્વતિરિક્ત મિધ્યાદર્શન- ' નાસ્ત્યેવાત્મા ' ઇત્યાદિમત્વરૂપ, મત્યયાઃ-કારણ યસ્યાઃ સા તયા ।

પ્રત્યયા ક્રિયા ઓ દો પ્રકાર કો હોતી હૈ एक ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया और दूसरी तदवतिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया जो ऊम अपने प्रमाण से न्यून अथवा अतिरिक्त अधिक जीवाजोयादि घस्तु को विपय करने वाले मिध्यादर्शनरूप कारण को लेकर क्रिया होती है यह क्रिया ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया है तात्पर्य कहने का यह है कि कोई मिध्यादृष्टि जीव अपने को ऐसा जानता है कि मैं शरीररूप ही हूँ अथवा अक्षुष्ठ पर्य प्रमाणरूप हूँ अथवा यथमात्ररूप हूँ अथवा इयामाक त न्यूलमात्ररूप हूँ इस प्रकार न्यूनरूपसे अपने को जानता है तथा कोई मि- ध्यादृष्टि जीव अपनेको सर्वग्यापकरूप अधिकतासे जानता है मानता है उसके यह क्रिया होती है तथा इस क्रिया से अतिरिक्त मिध्यादर्शन जिस क्रिया का कारण होता है यह तदवतिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया क्रिया है जैसे ऐसा मानना कि आत्मा है ही नहीं

પણ તે ભેદ છે (૧) ઊનાતિરિક્ત મિધ્યાદર્શન પ્રત્યયા અને (૨) તદવતિરિક્ત મિધ્યાદર્શન પ્રત્યયા જે ક્રિયા એ અલ્પશાકિક વસ્તુઓને ન્યૂન અથવા અતિરિક્ત (અધિક) પ્રમાણમાં પ્રતિપાદિત કરનારા મિધ્યાદર્શનરૂપ કારણને ક્ષીણ યાજ છે, તે ક્રિયાને ઊનાતિરિક્ત મિધ્યાદર્શન પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે જેમકે કોઈ મિધ્યાદૃષ્ટિ એવ પોતાના આત્માને માટે જોવું માને છે કે હું શરીરરૂપ જ છું અથવા અક્ષુષ્ટપર પ્રમાણરૂપ છું અથવા યથમાત્રરૂપ છું અથવા ત દુલ માત્રરૂપ છું આ રીતે તે પોતાને ન્યૂન રૂપે જાણે છે ત્યારે કોઈ મિધ્યાદૃષ્ટિ એવ પોતાને સર્વગ્યાપકરૂપ-અધિક રૂપે માને છે જેવા એવ કારણ આ ક્રિયા યાજ છે તથા તે ક્રિયા સિવાયનું મિધ્યાદર્શન જે ક્રિયામાં કારણમૂલ હોય છે, તે ક્રિયાને તદવતિરિક્ત મિધ્યાદર્શન પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે જેમકે-જેવું માનવું કે આત્મા છે જ નહીં ક્રિયામા આ રીતે પણ દ્વિવિ

पुनरन्यथा क्रियाया द्वैविध्यमाह—‘दो किरियाओ’ इत्यादि । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते । तद् यथा—दृष्टिका, पृष्टिका चेति । दृष्टं—दर्शनं, वस्तु वा कारणत्वेन यस्यामस्ति, सा दृष्टिका । दर्शनार्थं या गतिक्रिया सा दृष्टिका । यद्वा—‘दिट्टिया’ इत्यस्य दृष्टिजा इतिच्छाया । दृष्टेर्जाता दृष्टिजा दर्शनाद् यः कर्मबन्धरूपो व्यापारः सा दृष्टिजेत्यर्थः । तथा—‘पृष्टिका’ इति । पृष्टं—प्रश्नः, वस्तु वा कारणत्वेन यस्यमस्ति सा पृष्टिका । यद्वा—‘पुट्टिया’ इत्यस्य ‘पृष्टिजा’ इतिच्छाया । पृष्टिः—पृच्छा, ततो जाता पृष्टिजा—सावद्यप्रश्नजनितो व्यापारः । तत्र—दृष्टिका क्रिया द्विविधा—जीव दृष्टिका, अजीवदृष्टिका चेति । अश्वादिदर्शनार्थं गच्छतो

क्रिया में इस प्रकार से भी द्विविधता आती है—एक दृष्टि को लेकर और दूसरी दृष्टि को लेकर, जो क्रिया होती है वह दृष्टिका क्रिया है और पृष्टि को लेकर जो क्रिया होती है वह पृष्टि का क्रिया है दृष्ट दर्शन अथवा वस्तु जिस क्रिया में कारणरूप से है वह दृष्टिका क्रिया है दर्शन के लिये जो गति क्रिया होती है वह दृष्टिका है अथवा “दिट्टिया” को छाया “दृष्टिजा” भी हो सकती है दर्शन से देखने से जो कर्मबन्धरूप व्यापार होता है वह दृष्टिजा क्रिया है पृष्टिका प्रश्न अथवा वस्तु कारण रूप से जिस क्रिया में होता है वह पृष्टिका क्रिया है अथवा—“पुट्टिया” इसकी संस्कृत छाया “पृष्टिजा” ऐसी भी होती है पृष्टि का अर्थ पृच्छा है सावद्य प्रश्न से जनित व्यापार से जो कर्मबन्ध होता है वह पृष्टिजा क्रिया है दृष्टिका क्रिया दो प्रकार

धता संभवी शके छे—એક દૃષ્ટિની અપેક્ષાએ અને બીજી પૃષ્ટિથી અપેક્ષાએ. દૃષ્ટિની અપેક્ષાએ જે ક્રિયા થાય છે તેને દૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે અને પૃષ્ટિની અપેક્ષાએ જે ક્રિયા થાય છે તેને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે

દૃષ્ટદર્શન અથવા વસ્તુના દર્શનરૂપ ક્રિયા જેમાં કારણરૂપ હોય છે, તે ક્રિયાને દૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે દર્શનને માટે જે ગતિક્રિયા તે થાય છે તે દૃષ્ટિકા ક્રિયા છે અથવા “દિટ્ટિયા” ની છાયા “દૃષ્ટિજા” પણ થઈ શકે છે દર્શનથી અથવા દેખવા રૂપ ક્રિયાથી જે કર્મબંધ રૂપ વ્યાપાર થાય છે તેને દૃષ્ટિજા ક્રિયા કહે છે પૃષ્ટિ એટલે પ્રશ્ન. પ્રશ્ન અથવા વસ્તુ જે ક્રિયામાં કારણરૂપ હોય છે, તે ક્રિયાને પૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે અથવા “પુટ્ટિયા” આ પદની સંસ્કૃત છાયા “પૃષ્ટિજા” પણ થઈ શકે છે. પૃષ્ટિ એટલે પ્રશ્ન સાવધ પ્રશ્નથી જનિત વ્યાપાર દ્વારા જે કર્મબંધ રૂપ વ્યાપાર થાય છે તેને પૃષ્ટિજા ક્રિયા કહે છે દૃષ્ટિકા ક્રિયા બે પ્રકારની હોય છે. (૧) જીવદૃષ્ટિકા અને (૨)

दर्शनप्रत्ययाऽपि क्रिया द्विविधा—ऊनातिरिक्तमिध्यादर्शनप्रत्यया, तद्व्यतिरिक्त  
 मिध्यादर्शनप्रत्यया चेति । ऊनम्—स्वपनामतो न्यूनम्, व्यतिरिक्त—ततोऽधिक  
 पञ्जीवादिबस्तु तद्विषयकं मिध्यादर्शन, सदेव प्रत्ययः—कारण यस्याः सा ऊना  
 तिरिक्तमिध्यादर्शनप्रत्यया । अय मासः—शरीरपरिमाणमात्रमान कोऽपि मिध्या  
 दृष्टिरद्भुष्टपर्वप्रमाण वा यथमात्र वा श्यामाकृताद्भुलमात्र वा न्यूनत्वेन जानाति,  
 तथा—कोऽप्यन्यः सर्वव्यापक वाऽधिकतया जानातीति । तथा — तद्व्य-  
 तिरिक्तमिध्यादर्शनप्रत्यया—तस्माद् - ऊनातिरिक्तमिध्यादर्शनाद् व्यतिरिक्त  
 मिध्यादर्शन - ' नास्त्येषात्मा ' इत्यादिमतरूप, प्रत्ययः—कारणं यस्याः सा तथा ।

प्रत्यया क्रिया भी दो प्रकार की होती है एक ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन  
 प्रत्यया और दूसरी तद्व्यतिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया जो ऊन अपने  
 प्रमाण से न्यून अथवा अतिरिक्त अधिक जीवाजीवादि वस्तु को विषय  
 करने वाले मिध्यादर्शनरूप कारण को लेकर क्रिया होती है यह क्रिया  
 ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया है तात्पर्य कहने का यह है कि कोई  
 मिध्यादृष्टि जीव अपने को ऐसा जानता है कि मैं शरीररूप ही हूँ  
 अथवा अद्भुष्ट पर्व प्रमाणरूप हूँ अथवा यथमात्ररूप हूँ अथवा श्यामाक त  
 न्दुलमात्ररूप हूँ इस प्रकार न्यूनरूपसे अपने को जानता है तथा कोई मि-  
 ध्यादृष्टि जीव अपनेको सर्वव्यापकरूप अधिकतासे जानता है मानता है  
 वसके यह क्रिया होती है तथा इस क्रिया से अतिरिक्त मिध्यादर्शन  
 जिस क्रिया का कारण होता है यह तद्व्यतिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया  
 क्रिया है जैसे ऐसा मानना कि आत्मा है ही नहीं

पद्य मे वेद छे (१) ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया अने (२) तद्व्यतिरिक्त  
 मिध्यादर्शन प्रत्यया के क्रिया एव अलुपादि वस्तुओंने न्यून अथवा  
 अतिरिक्त (अधिक) प्रभावमां प्रतिपादित करनेका मिध्यादर्शनरूप शरीरने  
 कीये थाक छे ते क्रियाने ऊनातिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया क्रिया छडे छे  
 केभडे डे। मिध्यादृष्टि एव चेताना आत्माने भाटे केवु माने छे के हु  
 शरीररूप अ छ अथवा अद्भुष्टपर्व प्रभावरूप छ अथवा यथमात्ररूप छ  
 अथवा त दुल मात्ररूप छ आ रीते ते चेताने न्यून रूपे लखे छे त्पारे  
 डे। मिध्यादृष्टि एव चेताने सर्वव्यापकरूप-अधिक रूपे माने छे केवु एव  
 वारा आ क्रिया थाक छे तथा ते क्रिया सिवायनुं मिध्यादर्शन के क्रियामां  
 शरीरनुं डे। छे ते क्रियाने तद्व्यतिरिक्त मिध्यादर्शन प्रत्यया क्रिया छडे  
 छे केभडे-केवु मानवुं के आत्मा छे नही. क्रियामा आ रीते पद्य द्विवि

पुनरन्यथा क्रियाया द्वैविध्यमाह—‘ दो किरियाओ ’ इत्यादि । द्वे क्रिये प्रज्ञप्ते । तद् यथा—दृष्टिका, पृष्टिका चेति । दृष्टं—दर्शनं, वस्तु वा कारणत्वेन यस्यामस्ति, सा दृष्टिका । दर्शनार्थं या गतिक्रिया सा दृष्टिका । यद्वा—‘ दिट्टिया ’ इत्यस्य दृष्टिजा इतिच्छाया । दृष्टेर्जाता दृष्टिजा दर्शनाद् यः कर्मबन्धरूपो व्यापारः सा दृष्टिजेत्यर्थः । तथा—‘ पृष्टिका ’ इति । पृष्टं—प्रश्नः, वस्तु वा कारणत्वेन यस्यमस्ति सा पृष्टिका । यद्वा—‘ पुट्टिया ’ इत्यस्य ‘ पृष्टिजा ’ इतिच्छाया । पृष्टिः—पृच्छा, ततो जाता पृष्टिजा—सावद्यप्रश्नजनितो व्यापारः । तत्र—दृष्टिका क्रिया द्विविधा—जीव दृष्टिका, अजीवदृष्टिका चेति । अश्वादिदर्शनार्थं गच्छतो

क्रिया में इस प्रकार से भी द्विविधता आती है—एक दृष्टि को लेकर और दूसरी दृष्टि को लेकर, जो क्रिया होती है वह दृष्टिका क्रिया है और पृष्टि को लेकर जो क्रिया होती है वह पृष्टि का क्रिया है दृष्ट दर्शन अथवा वस्तु जिस क्रिया में कारणरूप से है वह दृष्टिका क्रिया है दर्शन के लिये जो गति क्रिया होती है वह दृष्टिका है अथवा “ दिट्टिया ” की छाया “ दृष्टिजा ” भी हो सकती है दर्शन से देखने से जो कर्मबन्धरूप व्यापार होता है वह दृष्टिजा क्रिया है पृष्टिका प्रश्न अथवा वस्तु कारण रूप से जिस क्रिया में होता है वह पृष्टिका क्रिया है अथवा—“ पुट्टिया ” इसकी संस्कृत छाया “ पृष्टिजा ” ऐसी भी होती है पृष्टि का अर्थ पृच्छा है सावद्य प्रश्न से जनित व्यापार से जो कर्मबन्ध होता है वह पृष्टिजा क्रिया है दृष्टिका क्रिया दो प्रकार

धता स बावी शके छे—अेक दृष्टिनी अपेक्षाअे अने जीव पृष्टिथी अपेक्षाअे. दृष्टिनी अपेक्षाअे ने क्रिया थाय छे तेने दृष्टिका क्रिया कहे छे अने पृष्टिनी अपेक्षाअे ने क्रिया थाय छे तेने पृष्टिका क्रिया कहे छे

दृष्टदर्शन अथवा वस्तुना दर्शनरूप क्रिया नेमां कारणरूप होय छे, ते क्रियाने दृष्टिका क्रिया कहे छे दर्शनने माटे ने गतिक्रिया ते थाय छे ते दृष्टिका क्रिया छे अथवा “ दिट्टिया ” नी छाया “ दृष्टिजा ” पणु थर्ग शके छे दर्शनथी अथवा देणवा रूप क्रियाथी ने कर्मबंध रूप व्यापार थाय छे तेने दृष्टिज्ज क्रिया कहे छे पृष्टि अेटले प्रश्न. प्रश्न अथवा वस्तु ने क्रियामां कारणरूप होय छे, ते क्रियाने पृष्टिका क्रिया कहे छे अथवा “ पुट्टिया ” या पठनी संस्कृत छाया “ पृष्टिजा ” पणु थर्ग शके छे. पृष्टि अेटले प्रश्न सावद्य प्रश्नथी जनित व्यापार द्वारा ने कर्मबंध रूप व्यापार थाय छे तेने पृष्टिज्ज क्रिया कहे छे दृष्टिका क्रिया जे प्रकारनी होय छे. (१) जीवदृष्टिका अने (२)

યઃ કર્મણઃ ચરુપો વ્યાપાર સા ઝીવદષ્ટિકા । તથા-અજીવનાર્તા વિષ્ણુ કર્માદીનાં, વર્ણનાર્થ શબ્દો યઃ કર્મણઃ ચરુપો વ્યાપારઃ સાઽઝીવદષ્ટિકા । एवं पृष्टिकाऽपि जीवाजीवमेवेन द्विविधा । रागद्वेषाभ्यां जीवविषये, अजीवविषये वा पृच्छतो यः कर्मणः चरुपो व्यापारः, सा जीवपृष्टिका अजीवपृष्टिका चेति ।

પુનરન્યયા ક્રિયાયા દ્વૈવિષયમાહ--' દો કિરિયામો ' ઇત્યાદિ । દ્વે ક્રિયે પ્રશ્નતે । તદ્ યથા-પ્રાતીતિકી, સામન્તોપનિપાતિકી । ચેતિ । યામ વસ્તુ મતીસ્ય-આધિત્ય યા ક્રિયા મત્તિ સા પ્રાતીતિકી । તથા-સમન્તાત્-સર્વતઃ, ઉપનિગતઃ-લોકાનાં સમેલન, તદ્ મથા સામન્તોપનિપાતિકી । પ્રાતીતિકી ક્રિયા દ્વિવિધા-

કી હોતી હૈ એક ઝીવદષ્ટિકા ઝીવ દૂસરી અઝીવદષ્ટિકા અઠવાદિકોંકો દેઝવને કો ઝાતે હુવ ઝીવ કે ઝો કર્મણઃ ચરુપ વ્યાપાર હોતા હૈ વહ ઝીવ દષ્ટિકા ક્રિયા હૈ તથા અઝીવ વિષ્ણુ કર્માદિકોં કો દેઝવને કે લિયે ગાતે હુવ ઝીવ કે ઝો કર્મણઃ ચરુપ વ્યાપાર હોતા હૈ વહ અઝીવદષ્ટિકા ક્રિયા હૈ ઇત્તી પ્રકારસે પૃષ્ટિકા ક્રિયા મી ઝીવ ઝીવ અઝીવ કે મેદ્ સે દો પ્રકાર કી હૈ રાગદ્વેષ કે વશાવર્તી હોકર ઝીવ કે વિષય મેં એવં અઝીવ કે વિષય મેં પૂછને ઘાલે કો ઝો કર્મણઃ ચરુ વ્યાપાર હોમા હૈ વહ ઝીવ પૃષ્ટિકા ઝીવ અઝીવપૃષ્ટિકા ક્રિયા હૈ ।

इस प्रकार से भी क्रिया में द्विप्रकारता है एक प्रातीतिकी और दूसरी सामन्तोपनिपातिकी पाह्यवस्तु की प्रतीति करके जो क्रिया होती है वह प्रातीतिकी क्रिया है लोकों के सब तरफ से मिलने पर जो वसमें कर्मणः चरुपव्यापार होता है वह सामन्तोपनिपातिकी क्रिया है प्रती

અણવદષ્ટિકા. અભાવિષય સહજ વસ્તુને જોવાને માટે જતાં અવદારા જે કમલબંધરૂપ વ્યાપાર થાય છે તેને અણવદષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે તથા ચિત્રાદિ અણવ વસ્તુઓને જોવા જતાં અવદારા જે કમલબંધરૂપ વ્યાપાર થાય છે, તેને અણવદષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે એજ પ્રમાણે પૃષ્ટિકા ક્રિયાના પશ્ચ ભેદો છે (૧) અણવપૃષ્ટિકા અને (૨) અણવપૃષ્ટિકા. રાગદ્વેષથી યુક્ત થઈને અવને વિષે પ્રશ્ન પૂછનાર દ્વારા જે કમલબંધરૂપ વ્યાપાર થાય છે તેને અણવપૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે અને એજ પ્રમાણે અણવ વિષે પ્રશ્ન પૂછનાર અવો દ્વારા જે કમલબંધરૂપ વ્યાપાર થાય છે તેને અણવપૃષ્ટિકા ક્રિયા કહે છે

પ્રાતીતિકી ક્રિયા અને સામન્તોપનિપાતિકી ક્રિયાના ભેદથી પણ ક્રિયાના ભેદ પ્રકાર પડે છે બાહ્ય વસ્તુની પ્રતીતિ કરીને જે ક્રિયા થાય છે તેને પ્રાતીતિકી ક્રિયા કહે છે બધી વસ્તુથી એકત્ર યથામાં લોકો દ્વારા જે કમલબંધ

जीवप्रातीतिकी, अजीवप्रातीतिकी चेति । तत्र जीवं प्रतीत्य यः कर्मबन्धरूपो व्यापारः सा जीवप्रातीतिकी । अजीवं प्रतीत्य यो रागद्वेषजन्यः कर्मबन्धः सा अजीवप्रातीतिकी । सामन्तोपनिपातिकी चापि द्विविधा—जीवाजीवभेदात् । तथाहि—जीवसामन्तोपनिपातिकी अजीवसामन्तोपनिपातिकी चेति । कस्यचिद् वलीवर्द्धः सुन्दरस्तं च जनो यथा यथा प्रलोकयति—प्रशंसयति च, तथा, तत्त्वामी हृष्यतीति तस्य जीवसामन्तोपनिपातिकी क्रिया भवति । तथा—अजीवं—रथादिकं दृष्ट्वा हृष्यतोऽजीवसामन्तोपनिपातिकी ' इति ।

पुनरन्यथा क्रियाया द्वैनिध्यमाह—' दो किरियाओ ' इत्यादि । द्वे क्रिये प्रवृत्ते । तद् यथा—स्वादस्तिकी, नैऋष्टिकी चेति । स्वदस्तेन निर्गृत्ता स्वादस्तिकी ।

तिकी क्रिया दो प्रकार की है—जीवप्रातीतिकी की और अजीवप्रातीतिकी की जीव की प्रतीतिकी करके जो कर्मबन्ध रूप व्यापार होता है वह जीव प्रातीतिकी क्रिया है तथा अजीव की प्रतीतिकी करके जो रागद्वेष जन्य कर्मबन्ध होता है वह अजीव प्रातीतिकी क्रिया है सामान्तोपनिपातिकी क्रिया भी दो प्रकार की है—एक जीव सामान्तोपनिपातिकी की और दूसरी अजीव सामान्तोपनिपातिकी किसीका बेल आदि सुन्दर है उसे जैसे २ मनुष्य देखता है वैसे २ उसकी प्रशंसा करता है इस से उसका स्वामी अधिक हर्षित होता है इस तरह से उसके जीव सामान्तोपनिपातिकी क्रिया होनी है तथा अजीव रथादिक रूप पदार्थ को देखकर हर्ष मानने वाले जीव के अजीव सामान्तोपनिपातिकी क्रिया होती है

३५ व्यापार थाय छे तेने सामन्तोपनिपातिकी क्रिया कडे छे । प्रातीतिकी क्रिया भे प्रकारनी छे—(१) लवप्रातीतिकी अने (२) अलव प्रातीतिकी । लवनी प्रतीतिकी करीने के कर्मबन्ध ३५ व्यापार थाय छे तेने लवप्रातीतिकी क्रिया कडे छे तथा अलवनी प्रतीतिकी करीने के रागद्वेषजन्य कर्मबन्ध थाय छे तेने अलव प्रातीतिकी क्रिया कडे छे सामन्तोपनिपातिकी क्रियानां पञ्च भेवां के भे लेद छे—(१) लव सामन्तोपनिपातिकी अने (२) अलव सामन्तोपनिपातिकी के भेके के भेने भणद सुदर छे के के मनुष्ये तेने लेवे छे ते ते मनुष्य तेनी प्रशंसा करे छे तेथी ते भणदने भालिक पुश थाय छे आरीते तेना द्वारा लवसामन्तोपनिपातिकी क्रिया थाय छे तथा अलव रथ आदि वस्तुने लेधने हर्ष पामनार व्यक्ति द्वारा अलव सामन्तोपनिपातिकी क्रिया थाय छे ।

સ્વહસ્તગૃહીતમીષાદિના જીવં મારયતઃ ક્રિયા મ્વયિ । તયા-નિસર્જન-નિસૃષ્ટ  
 ક્ષેપણમિત્યર્થ । તપ્ત મયા નૈસૃષ્ટિકી, નિસૃષ્ટિં કુર્વતો યઃ કર્મવન્ધ્યઃ સા નૈસૃષ્ટિકી  
 નિસર્ગ એવ યા નૈસૃષ્ટિકી । સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા ત્રિવિધા-મીષસ્વાહસ્તિકી, યજી  
 ષસ્વાહસ્તિકી ચેતિ । યત્ સ્વહસ્તગૃહીતેન જીવેન જીવં હન્તિ, સા જીવસ્વા-  
 હસ્તિકી । યત્ સ્વહસ્તગૃહીતૈત્ર અજીવેન-સ્વહાદિના જીવં મારયતિ, સા  
 અજીવસ્વાહસ્તિકી । અપવા સ્વહસ્તેન જીવતાહન જીવસ્વાહસ્તિકી, અજીવતાહન

હમ પ્રકાર સે દો ક્રિયાઈ કહી ગઈ હૈં એક સ્વાહસ્તિકી ઓર દૂસરી  
 નૈસૃષ્ટિકી જીવ કો અપને હાથસે પકડકર વસકે દ્વારા જીવકો મરવાને  
 ઘાલે જીવ કો જો કર્મવન્ધ્ય રૂપ વ્યાપાર હોતા હૈં યહ સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા  
 હૈં હાથ સધર વસ્તુ કો અનામોગ પૂર્બક રચને ઘાલે જીવ કો જો કર્મ  
 વન્ધ્ય હોતા હૈં, ઘહ નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયા હૈં અથવા સ્વભાવત્ પ્રતિસમય જો  
 કર્મ વા વન્ધ્ય હોતા હૈં ઘહ નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયા હૈં સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા દો  
 પ્રકાર કી હૈં-એક જીવ સ્વાહસ્તિકી ઓર દૂસરી અજીવ સ્વાહસ્તિકી અપને  
 હાથ દ્વારા પકડે હુઈ જીવ સે જો દૂસરે જીવ કો મરવાતા હૈં ઘહ જીવ  
 સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા હૈં અથવા-અપને હાથ સે જીવ કો પકડકર દૂસરે  
 જીવ કો વસસે મારતા હૈં ઘહ સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા હૈં જૈસે કોઈ એક જીવ  
 ઘેઠા હો ઓર વસકે માથે સે દૂસરે જીવ કા માથા પકડકર હોગ માર  
 દેતે હૈં યહી સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા હૈં અપને હાથ મેં ગૃહીત અજીવ તલવાર

સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા અને નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયાના લેહથી પણ ક્રિયા ને પ્રકારની  
 કહી છે અને પોતાના હાથથી પકડીને તેના દ્વારા અપને મરણનાર અપને  
 ને કર્મવન્ધ્ય રૂપ વ્યાપાર થાય છે, તેને સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે વસ્તુને  
 અનામોગપૂર્વક અહીં તહીં રાખનાર અપ દ્વારા ને કર્મવન્ધ્ય થાય છે, તેને  
 નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયા કહે છે અથવા સ્વભાવત્ પ્રતિ સમય ને કર્મને વન્ધ્ય થાય  
 છે તેને નૈસૃષ્ટિકી ક્રિયા કહે છે સ્વાહસ્તિકી ક્રિયાના ત્રીણ પ્રમાણે ને લેહ છે

(૧) અપ સ્વાહસ્તિકી અને (૨) અજીવ સ્વાહસ્તિકી. પોતાના હાથથી  
 પકડેલા અપ વડે ને જીવના અવેગની હત્યા કરાવવામાં આવે છે તે ક્રિયાને  
 અપ સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે અથવા પોતાના હાથથી કોઈ અપને પકડવામાં  
 આવે અને તે અપ વડે કોઈ જીવના અવેગમાં આવે તો તે ક્રિયાને  
 સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે જેમકે કોઈ જોકે અપ બેઠેલા હોય તેના માથાને  
 જીવના કોઈ અવેગના માથા સાથે અહાળીને મારવામાં આવે તો તે ક્રિયાને અપ  
 સ્વાહસ્તિકી ક્રિયા કહે છે પોતાના હાથમાં અહણ કરેલ અજીવ તલવાર આદિ

तु अजीवस्वाहस्तिकी । एवं नैसृष्टिक्यपि द्विविधा-जीवनैसृष्टिकी, अजीवनै-  
सृष्टिकी चेति । राजादीनामाज्ञया जलस्य यन्त्रादिभिर्निसर्जनं जीवनैसृष्टिकी ।  
यत्तु वाणादीनां धनुरादिभिर्निसर्जनं अजीवनैसृष्टिकी ।

पुनरन्यथा क्रियाया द्वैविध्यमाह-‘ दो किरियाओ ’ इत्यादि । द्वे क्रिये  
प्रज्ञप्ते । तद् यथा-आज्ञापनिका, वैदारणिका चेति । आज्ञापनम्=आदेशस्तस्येयम्  
आज्ञापनी सैवाज्ञापनिका, तज्जनितः कर्मबन्ध इत्यर्थः । तथा-विदारणस्येयं वैदा-  
रणी, सैव वैदारणिका । तत्राज्ञापनी द्विविधा-जीवाऽऽज्ञापनिका, अजीवाऽऽज्ञाप-

आदि से जो जीव को मारता है वह अजीव स्वाहस्तिकी क्रिया है  
अथवा अपने हाथ से ही जीव का ताड़न करना यह स्वाहस्तिकी क्रिया  
है और अजीव का ताड़न करना यह अजीव स्वाहस्तिकी क्रिया है  
नैसृष्टिकी क्रिया भी दो प्रकार की है एक जीवनैसृष्टिकी और दूसरी  
अजीवनैसृष्टिकी राजादिकों की आज्ञा से जल का यन्त्रादिकों द्वारा  
निकालना यह जीव नैसृष्टिकी क्रिया है तथा वाण आदिकों का धनुष  
आदि पर चढाकर छोड़ना इसका नाम अजीव नैसृष्टिकी क्रिया है इस  
प्रकार से भी क्रिया दो प्रकार की होती है एक आज्ञापनिका और  
दूसरी वैदारणिका आज्ञापन नाम आदेशका है इस आदेशजन्य क्रिया  
से जो कर्मबन्ध होता है वह आज्ञापनिकी क्रिया है तथा विदारणजन्य  
क्रिया से जो कर्मबन्ध होता है वह वैदारणिका क्रिया है इनमें आज्ञाप-  
निका क्रिया दो प्रकारकी है जीव आज्ञापनिका और अजीवआज्ञाप-

पडे लवोने मारवानी ने क्रिया थाय छे तेने अलवस्वाहस्तिकी क्रिया कडे  
छे अथवा पोताना हाथथी न लवने मारवे। ते लवस्वाहस्तिकी क्रिया छे  
अने कौर्ध अलवतु ताडन करवुं ते अलवस्वाहस्तिकी क्रिया छे अने प्रमाळु  
नैसृष्टिकी क्रियाना पळु मे लेद पडे छे-(१) लव नैसृष्टिकी अने (२) अलव  
नैसृष्टिकी रान्दिनी आजाथी यत्रादि द्वारा नणने पडार कडवु ते लवनैस-  
ष्टिकी क्रिया छे तथा पाणु आदिने धनुषपर अडावीने छोडवा ते अलवनैस-  
ष्टिकी क्रिया छे

क्रियाना नीचे प्रमाळु मे प्रकार पळु पडे छे-(१) आज्ञापनिका क्रिया,  
(२) वैदारणिका क्रिया. आज्ञापन अष्टे आदेश आ आदेशजन्य क्रिया द्वारा  
ने कर्मबन्ध थाय छे तेने आज्ञापनिकी क्रिया कडे छे तथा विदारणजन्य  
क्रियाथी ने कर्मबन्ध थाय छे तेने वैदारणिका क्रिया कडे छे आज्ञापनिका क्रिया  
मे प्रकारनी होय छे-(१) लव आज्ञापनिका अने (२) अलव आज्ञापनिका.





પાત્રાદિત્રિપયે ગ્રહણતા-અનાયુક્તાઃસદાનતા । તથા-અનાયુક્તસ્યૈવ વસ્ત્રપાત્રાદિ-  
વિપયા પ્રમાર્જનતા-અનાયુક્તપ્રમાર્જનતા । અનવકાઙ્ક્ષાપ્રત્યયા=ઇહલોકપરલોકા-  
પાયભયરહિતસ્ય યા ક્રિયા ભવતિ, સાપિ ક્રિયા દ્વિવિધા-આત્મશરીરાનવકા-  
ઙ્ક્ષાપ્રત્યયા, પરશરીરાનવકાઙ્ક્ષાપ્રત્યયા ચેતિ । યઃ સ્વલુ સ્વશરીરાપેક્ષયા અભાવેન  
સ્વશરીરસ્યાઙ્ગવિશેષચ્છેદનકારકકર્માણિ નપુંસકૃત્વાદિજનકાનિ કરોતિ, તસ્ય ક્રિયા  
આત્મશરીરાનવકાઙ્ક્ષાપ્રત્યયા ભવતિ । યસ્તુ પરશરીરસ્ય વલીવર્દાદેરઙ્ગચ્છેદનાદિ-  
કારાણિ કર્માણિ કરોતિ, તસ્ય ક્રિયાપરશરીરાનવકાઙ્ક્ષાપ્રત્યયા ભવતિ ।

અનાયુક્તદાનતારૂપ ક્રિયા હૈ તથા ઉપયોગ કી અસ્થિરતા મૈ હી જો  
વસ્ત્રપાત્રાદિકોં કી પ્રમાર્જના રૂપ ક્રિયા કી જાતી હૈ વહ અનાયુક્ત  
પ્રમાર્જના ક્રિયા હૈ ઇહલોક ઇવં પરલોક કૈ અપાય ઇવં ભય સૈ વર્જિત  
હુઇ જીવ કી જો ક્રિયા હૈ વહ અનવકાંક્ષા ક્રિયા હૈ યહ ક્રિયા મી દો  
પ્રકાર કી હોતી હૈ ઇક આત્મશરીરાનવકાંક્ષાપ્રત્યયા ઓર દૂસરી પર-  
શરીરાનવકાંક્ષાપ્રત્યયા અપને શરીર કી અપેક્ષા કિયે વિના હી અપને  
શરીર કૈ હી અઙ્ગવિશેષોં કા છેદનકારકકર્મ જો કિ નપુંસકૃતા આદિ  
જનક હોના હૈ કરતા હૈ ઉસકી ક્રિયા આત્મશરીરાનવકાંક્ષાપ્રત્યયા હૈ  
જો વલીવર્દાદિરૂપ પરશરીરકૈ છેદનકારકકર્મો-દામ લગાનેરૂપ અર્થાત્  
તપાઈ હુઈ લોહ શલાકા સૈ અંકિત કરનેરૂપ આદિ લગાનેરૂપ  
કાર્યોં કો કરતા હૈ ઉસકો પરશરીરાનવકાંક્ષાપ્રત્યયા ક્રિયા હોતી હૈ ઇસ  
પ્રકાર સૈ મી ક્રિયા દો પ્રકાર કી હોતી હૈ ઇક પ્રેમ પ્રત્યયા ઓર દૂસરી  
દ્વેષ પ્રત્યયા ધ્યાયાલોભ રૂપ રાગ જિસકા કારણ હોતા હૈ વહ પ્રેમપ્રત્યયા

પાત્ર આદિને ગ્રહણ કરવા રૂપ જે ક્રિયા થાય છે તેને અનાયુક્ત આદાનતા  
રૂપ ક્રિયા કહે છે. તથા ઉપયોગની અસ્થિરતામા જે વસ્ત્ર, પાત્રાદિકાની પ્રમા-  
ર્જના કરવા રૂપ ક્રિયા થાય છે તેને અનાયુક્ત પ્રમાર્જનતા ક્રિયા કહે છે.  
આલોક અને પરલોકના અપાય અને ભયથી રહિત જીવની જે ક્રિયા હોય છે  
તેને અનવકાંક્ષા ક્રિયા કહે છે. તેના પણ બે પ્રકાર છે-(૧) આત્મશરીરા નવકાંક્ષા  
પ્રત્યયા, અને (૨) પરશરીરાનવકાંક્ષા પ્રત્યયા પોતાના શરીરની અપેક્ષા (દરકાર)  
કર્યા વિના પોતાનાં જ અંગવિશેષોતુ છેદન કરવા રૂપ જે ક્રિયા થાય છે તેને  
આત્મશરીરાનવકાંક્ષા પ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે. જેમકે નપુંસક જનવાની ક્રિયા.

બગદ આદિ પરશરીરને છેદવાની-તેમને ડામ દેવાની ખસી કરવાની,  
નાથવાની આદિ ક્રિયા કરનાર વ્યક્તિ પરશરીરાનવકાંક્ષા પ્રત્યયા ક્રિયા કરે છે.

પ્રેમપ્રત્યયા અને દ્વેષપ્રત્યયાના લેહથી પણ ક્રિયા બે પ્રકારની કહી છે.  
માયા લોભરૂપ રાગ જે ક્રિયાના કારણરૂપ હોય છે તે ક્રિયાને પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયા

निका चेति । जीवविषय आज्ञापयतः—क्रिया जीवाज्ञापनिका । एवमजीवविषया अजीवाज्ञापनिका । तथा—जीवमजीवं वा विदारयति—स्फोटयति यस्तस्य क्रिया जीववैदारिका, अजीववैदारिका वा भवति । एतत् सर्वं नैसृष्टिकी घर्णनवद् बोध्यम् ।

पुनरन्यथा—किमाया द्वैविध्यमाह—' दो किरियामो ' इत्यादि । द्वे क्रिये प्रकृष्ये । तद् यथा—अनामोगप्रत्यया, अनवकाङ्क्षाप्रत्यया चेति । अनामोगः—अज्ञान, प्रत्ययः—कारण यस्याः सा अनामोगप्रत्यया । तथा—अनवकाङ्क्षा स्वधरीराद्यनपेक्षत्य, सैव मत्यपो यस्याः साऽनवकाङ्क्षाप्रत्यया । अनामोगप्रत्ययाक्रिया द्विविधा — अनायुक्ताऽऽदानता, अनायुक्तमार्जनता चेति । अनायुक्तः—अनामोगरान्, अनुपयुक्त इत्यर्थः, तस्याऽऽदानता — पक्

निका जीव के विषय में आज्ञा देनेवालेको जीवाज्ञापनिका क्रिया लगती है तथा अजीव के विषय में आज्ञा देनेवाले को अजीवाज्ञापनिका क्रिया लगती है जीव या अजीव का विदारण करते हुए जो क्रिया होती है वह जीव वैदारणिकी और अजीववैदारिकी क्रिया है वह सब घर्णन नैसृष्टिकी क्रिया के घर्णन जैसा ही जानना चाहिये इस प्रकार से भी क्रिया दो प्रकार की होती है एक अनामोगप्रत्यया और दूसरी अनवकाङ्क्षाप्रत्यया जिस क्रिया का कारण अनामोग अज्ञान होता है वह क्रिया अनामोगप्रत्यया होती है तथा स्वशरीर आदि की अनपेक्षा जिस क्रिया का कारण होती है वह अनवकाङ्क्षा क्रिया है इनमें अनामोगप्रत्यया क्रिया दो प्रकार की होती है एक अनायुक्ताऽऽदानतारूप और दूसरी अनायुक्त मार्जनतारूप, जिसका उपयोग स्थिर न हो ऐसे व्यक्ति की वस्त्रपात्र आदि को ग्रहण करने रूप जो क्रिया होती है वह

अपना विषयमा आज्ञा देनेकरने अजाज्ञापनिका क्रियाकर्म होत लावे छे, तथा अअपना विषयमा आज्ञा देनेकर अपने अअजाज्ञापनिका क्रियाकर्म होत लावे छे अपनु अने अअपनु विदारण करती वअते के क्रिया बाध छे तेने अनु इमे अप वैदारणिकी अने अअप वैदारणिकी क्रिया कडे छे आ सपण वअन नैसृष्टिकी क्रियाना वअन प्रभावे समअनु

क्रियाना नीचे मुख्यतया के प्रकाशे पणु पडे छे — (१) अनामोगप्रत्यया अने (२) अनवकाङ्क्षा प्रत्यया के क्रियानुं करणु अनामोग अज्ञान होय छे ते क्रियाने अनामोगप्रत्यया क्रिया कडे छे, तथा स्वशरीर आदिनी अनपेक्षा के क्रियामं करणुअनु होय छे ते क्रियाने अनवकाङ्क्षा क्रिया कडे छे तेभानी के अनामोगप्रत्यया क्रिया छे ते के प्रकाशेनी छे—(१) अनायुक्त आद्यता इय अने (२) अनायुक्त मार्जनता इय. उपरोक्तनी अस्थित्यामं वअ,

पात्रादिषु ग्रहणता-अनायुक्ताऽऽदानता । तथा-अनायुक्तस्यैव वस्त्रपात्रादि-  
विषया प्रमार्जना-अनायुक्तप्रमार्जना । अनवकाङ्क्षाप्रत्यया=इहलोकपरलोका-  
पायभयरहितस्य या क्रिया भवति, साऽपि क्रिया द्विविधा-आत्मशरीरानवका-  
ङ्क्षाप्रत्यया, परशरीरानवकाङ्क्षाप्रत्यया चेति । यः खलु स्वशरीरापेक्षया अभावेन  
स्वशरीरस्याङ्गविशेषच्छेदनकारककर्माणि नपुंसकत्वादिजनकानि करोति, तस्य क्रिया  
आत्मशरीरानवकाङ्क्षाप्रत्यया भवति । यस्तु परशरीरस्य बलीवर्दादेरङ्गच्छेदनादि-  
कराणि कर्माणि करोति, तस्य क्रियापरशरीरानवकाङ्क्षाप्रत्यया भवति ।

अनायुक्तदानतारूप क्रिया है तथा उपयोग की अस्थिरता में ही जो  
वस्त्रपात्रादिकों की प्रमार्जना रूप क्रिया की जाती है वह अनायुक्त  
प्रमार्जना क्रिया है इहलोक एवं परलोक के अपाय एवं भय से वर्जित  
हुए जीव की जो क्रिया है वह अनवकांक्षा क्रिया है यह क्रिया भी दो  
प्रकार की होती है एक आत्मशरीरानवकांक्षाप्रत्यया और दूसरी पर-  
शरीरानवकांक्षाप्रत्यया अपने शरीर की अपेक्षा किये बिना ही अपने  
शरीर के ही अङ्गविशेषों का छेदनकारककर्म जो कि नपुंसकता आदि  
जनक होना है करता है उसकी क्रिया आत्मशरीरानवकांक्षाप्रत्यया है  
जो बलीवर्दीदिरूप परशरीरके छेदनकारककर्मों-दाम लगानेरूप अर्थात्  
तपाई हुई लोह शलाका से अंकित करनेरूप आदि लगानेरूप  
कार्यों को करता है उसको परशरीरानवकांक्षाप्रत्यया क्रिया होती है इस  
प्रकार से भी क्रिया दो प्रकार की होती है एक प्रेम प्रत्यया और दूसरी  
द्वेष प्रत्यया मायालोभ रूप राग जिसका कारण होता है वह प्रेमप्रत्यया

पात्र आदिने अङ्गु करवा रूप ने किया थाय छे तेने अनायुक्त आदानता  
रूप किया कडे छे. तथा उपयोगनी अस्थिरताभा ने वस्त्र, पात्रादिकेनी प्रमा-  
र्जना करवा रूप किया थाय छे तेने अनायुक्त प्रमार्जनाता किया कडे छे.  
आदोके अने परदोकेना अवाय अने लयथी रहित लवनी ने किया डोय छे  
तेने अनवकांक्षा किया कडे छे. तेना पणु जे प्रकार छे-(१) आत्मशरीरा नवकांक्षा  
प्रत्यया, अने (२) परशरीरानवकांक्षा प्रत्यया पोताना शरीरनी अपेक्षा (हरकार)  
कथा बिना पोतानां न अगविशेषानुं छेदन करवा रूप ने किया थाय छे तेने  
आत्मशरीरानवकांक्षा प्रत्यया किया कडे छे. जेभके नपुंसक जनवानी किया.

जगह आदि परशरीराने छेदवानी-तेभने डाम देवानी भसी करवांनी,  
नाथवानी आदि किया करनार व्यक्ति परशरीरानवकांक्षा प्रत्यया किया करे छे.  
प्रेमप्रत्यया अने द्वेषप्रत्ययाना लेदथी पणु किया जे प्रकारनी कही छे.  
माया दोलरूप राग ने कियाना कारणरूप डोय छे ते कियाने प्रेमप्रत्यया किया

પુનઃ પ્રકારાન્તરેણ ક્રિયાયા દ્વિવિધ્યામાહ-‘દો ફિરિયાઓ’ શ્યાદિ । દ્વે ક્રિયે મહત્ત્વે । તદ્ યથા-પ્રેમપ્રત્યયા, દ્વેષપ્રત્યયા ચેતિ । પ્રેમાઃ-રાગઃ, માયાહોમરૂપ સ પ્રત્યય -કારણ યસ્યાઃ સા પ્રેમપ્રત્યયા । દ્વેષઃ-ક્રોધમાનરૂપ સ પ્રત્યયઃ કારણ યસ્યા સા દ્વેષપ્રત્યયા । પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયા દ્વિવિધા-માયાપ્રત્યયા લોમપ્રત્યયા ચેતિ । તથા-દ્વેષપ્રત્યયાઽપિ દ્વિવિધા-ક્રોધપ્રત્યયા માનપ્રત્યયા ચેતિ । एतत् सुगमम् ॥૬૦॥

મૂલ્મ્-દુષિહા ગરિહા પછત્તા, સં જહા-મળાસા ઘેગે ગરિ હહ । ઘયસા ઘેગે ગરિહહ અહવા ગરિહા દુવિહા પછત્તા । ત જહા-દોહ ઘેગે અહ્હ ગરિહહ, રહસ્સ ઘેગે ગરિહહ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા-દ્વિવિધા ગર્હા મહત્ત્વા । તદ્ યથા-મનસા યા ઈકો ગર્હતે । પ્રપસા યા ઈકો ગર્હતે । અયત્તા ગર્હા દ્વિવિધા-મહત્ત્વા । તદ્ યથા-વીર્ષી યા ઈકઃ મહ્તો ગર્હતે । હસ્વા યા ઈકઃ મહ્તો ગર્હતે ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ટીકા-‘દુવિહા ગરિહા’ શ્યાદિ-

ગર્હા-ગર્હણ, પાપસ્ય પ્રકાશનમ્ । સા ષ સ્વવિપયિકા પરવિપયિકા ચેતિ દ્વિવિધા । સા પુનર્દ્રવ્યમાવમ્દેન દ્વિવિધા । તથ દ્રવ્યગર્હા-મિધ્યાહૃષ્ટિકૃતા, ઉપ

ક્રિયા હૈ તથા ક્રોધમાન રૂપ દ્વેષ જિસકા કારણ હોતા હૈ ઘહ દ્વેષ પ્રત્યયા ક્રિયા હૈ પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયા દો પ્રકારકી હોતી હૈ ઈક માયાપ્રત્યયા ઓર વૃસરી હોમ પ્રત્યયા તથા દ્વેષપ્રત્યયા ક્રિયા ણી દો પ્રકારકી હોતી હૈ ઈક ક્રોધપ્રત્યયા ઓર વૃસરી માનપ્રત્યયા ઘહ સપ સુગમ હૈ ॥૬૦॥

દુષિહા ગરિહા પછત્તા શ્યાદિ ॥૦ ॥

ટીકાર્થ-ગર્હા દો પ્રકારકી કહી ગઈ હૈ પાપકા પ્રકાશન કરના હસકા નામ ગર્હા હૈ ઘહ ગર્હા સ્વવિપયિકા ઓર પર વિપયિકા કે મેદ્ સે દો પ્રકાર કી કહી ગઈ હૈ તથા દ્રવ્ય ગર્હા ઓર આશગર્હા કે મેદ્ સે ણી

કહે છે ક્રોધમાન રૂપ દેષ એ ક્રિયામાં કારણમૂલ દેષ છે તે ક્રિયાને દ્વેષપ્રત્યયા ક્રિયા કહે છે પ્રેમપ્રત્યયા ક્રિયાના બે ભેદ કહ્યા છે-(૧) માયાપ્રત્યયા અને (૨) લોમપ્રત્યયા દ્વેષપ્રત્યયા ક્રિયાના પણ નીચે પ્રમાણે બે ભેદ પડે છે (૧) ક્રોધપ્રત્યયા અને (૨) માનપ્રત્યયા તેમના અર્થ સરળ દેવાથી વધુ સ્પષ્ટતાની જરૂર નથી ॥ સૂ૦ ૫ ॥

“દુવિહા ગરિહા પછત્તા” શ્યાદિ ॥ ૫ ॥

મહાં બે પ્રકારની છે પાપનું પ્રકાશન કરવું તેનું નામ મહાં છે તે જહાના સ્વવિપયિકા અને પરવિપયિકા નામના બે ભેદ પડે છે તથા દ્રવ્યગર્હા અને આશગર્હાના ભેદથી પણ તેના બે પ્રકાર પડે છે મિધ્યાહૃષ્ટિ એવ દ્વારા એ

योगवर्जितसम्यग्दृष्टिकृता च भवति । सा चाप्रधानगर्हा, द्रव्यशब्दस्याप्रधानार्थ-  
त्वात् । उक्तं च—

अप्पाहन्नेऽवि इहं, कत्यइ दिट्ठो हु दच्चसदो त्ति ।

अंगारमद्दओ जह, दव्वायरिओ सयाऽभव्वो ॥ १ ॥

छाया—अप्रधान्येऽपि इह, कत्यते दृष्ट एव द्रव्यशब्द इति ।

अङ्गारमर्दको यथा, द्रव्याचार्यः सदाऽभव्यः ॥ १ ॥

उपयोगयुक्तस्य सम्यग्दृष्टेस्तु भावगर्हा भवतीत्येवं चतुर्विधा गर्हा । यद्वा-  
गर्हणीय भेदाद् गर्हा बहुविधा भवति । परंत्वत्र करणापेक्षया गर्हा द्विविधा  
प्रोच्यते—‘मणसा वेगे गरिहइ’ इति । एकः=कोऽपि साध्वादिः, मनसा वा  
गर्हते=गर्ह जुगुप्सते । इह वा शब्दो विकल्पार्थः । अवधारणार्थो वा, मनसैव नतु  
वाचा गर्हते इत्यर्थः । यथा—प्रसन्नचन्द्रराजर्षिः ।

वह दो तरहकी है मिथ्यादृष्टि जीव द्वारा कृत जो गर्हा है वह द्रव्यगर्हा  
है तथा उपयोग वर्जित सम्यग्दृष्टि जीव द्वारा कृत भी द्रव्यगर्हा है  
यह गर्हा अप्रधान गर्हा है क्यों कि द्रव्यशब्द अप्रधान अर्थ वाला है ।  
कहा भी है—“अप्पाहन्ने” इत्यादि । उपयोगयुक्त सम्यग्दृष्टि जीवकी जो  
शुरु के समक्ष गर्हा है वह भावगर्हा है इस प्रकार से गर्हा चार प्रकार  
की है अथवा गर्हणीय के भेद से गर्हा यद्यपि बहुत प्रकार भी होती है  
परन्तु यहां करण की अपेक्षा से गर्हा दो प्रकार की कही गई है  
“मणसा वेगे गरिहइ” कोई एक साधु ऐसा भी होता है जो मन से  
ही गर्हा करता है इसका तात्पर्य ऐसा है कि प्रसन्न चन्द्र राज ऋषि की  
तरह कोई साधु मन से ही गर्हा करता है वचन से गर्हा नहीं करता है  
भावगर्हा में प्रसन्नचन्द्र राजऋषि का दृष्टान्त इस प्रकार से है—

गर्हा कराय छे ते गर्हाने द्रव्यगर्हा कडे छे तथा उपयोग रक्षित सम्यग्दृष्टि  
एव द्वारा कराती गर्हा पणु द्रव्यगर्हा न छे आ गर्हा अप्रधान गर्हा छे,  
कारणु के द्रव्य शब्द अप्रधान अर्थवाणो छे कहु पणु छे के—“अप्पाहन्ने”  
इत्यादि उपयोग युक्त सम्यग्दृष्टि एव द्वारा शुरुनी समक्ष ने पोतानी गर्हा  
थ.य छे तेने भावगर्हा कडे छे

आ रीते गर्हा आर प्रकारनी कही छे अथवा गर्हणीयना लेदथी तो  
गर्हा अनेक प्रकारनी होथ शके छे, परन्तु अर्ही करणुनी अपेक्षाये गर्हा के  
प्रकारनी कही छे. “मणसा वेगे गरिहइ” होथ साधु अवे। पणु होय छे के ने  
मनथी गर्हा करे छे तेना भावार्थ आ प्रमाणे छे—

अथ माघगर्हायां प्रमथचन्द्रराजर्षिदृष्टान्तः प्रोच्यते—

आसीजमन्वृद्धीपे दक्षिणमरते क्षितिप्रतिष्ठितपुर सोमचन्द्रनामा नृपति ।  
तस्य पुत्र प्रमथचन्द्रो जातः । राजा सोमचन्द्रः प्रमथचन्द्रे पुत्रे राज्यभारं दत्त्वा  
प्रयजितो जातः ।

एकदा प्रमथचन्द्रस्य राज्ञः शिरः केशान् राक्षी परिश्लोषयितुं प्रवृत्ता । राजा  
प्रमथचन्द्रः स्वमुख दर्पणे विलोकयति । तदाऽसौ शिर-केशान् विलोकमानस्य  
प्रेकं शुकुकेशमपश्यत् । ततस्त्वस्य वैराग्यं समग्रनि । राक्षी उमुदासीन विज्ञाप  
यति—नाथ ! किमघुना भवानुदासीनो जातः ? । विविध सरसमश्ननं पान मन्  
वीय-मन्ने वर्तते । ताम्बूलवीटिकाः पार्श्वे विद्यन्ते । नानाविधरत्नैर्भ्रवद्वीयको-

जम्वृद्धीप नामके द्वीपमें दक्षिण भरतक्षेत्रमें क्षितिप्रतिष्ठित नामका  
पुरथा उसमें सोमचन्द्र नामका राजा था उसके पुत्र का नाम प्रमथचन्द्र  
था राजा सोमचन्द्र प्रमथचन्द्र के ऊपर राज्य का भार रखकर वीक्षित  
हो गये एक दिन की बात है कि प्रमथचन्द्र राजा के शिर के पालों को  
रानी संभालने लगी उस समय राजा प्रमथचन्द्र ने दर्पण में अपना मुख  
देखा मुख देखते ही उनकी दृष्टि अपने एक मस्तक के सफेद केश पर  
जाकर पड़ी सफेद केश देखते ही उनके चित्त में वैराग्य ने स्थान ले  
लिया उदासीन हुए राजा को देखकर रानी ने कहा—नाथ ! आप इस  
समय उदासीन क्यों प्रतीत हो रहे हो फिस्त बात की आप को चिन्ता  
है आपके यहाँ विविध सरस अशन पान की कमी नहीं है ताम्बूल के  
पीड़े आपके सदा उपस्थित रहा करते हैं नाना प्रकार के रत्नों से आपके

प्रमथचन्द्र राजर्षिनी जेम ठोस साधु मनथी न् जदी करे छे, वसनथी  
करतो नथी. आवप्रदानी अपेक्षाजे प्रमथचन्द्र राजर्षिनुं दृष्टान्त आ प्रभावे  
छे—जम्वृद्धीप नामका द्वीपना भरतक्षेत्रमां क्षितिप्रतिष्ठित नामनुं नगर छेनुं त्वां  
सोमचन्द्र नामने राजा राज्य करतो छेतो तेरा पुत्रनुं नाम प्रमथचन्द्र छेनुं  
प्रमथचन्द्रने राज्य सोपीने सोमचन्द्रे दीक्षा अदणु करी त्पराणां जेक जपत  
जेतुं जन्तुं के प्रस नचन्द्र राजनी सखी तेरा ( प्रमथचन्द्रना ) देण ज्योनी  
रही छती, त्परे प्रमथचन्द्र ने इपद्युमां पीतानुं मुज जेवा भांड्युं इपद्युमां  
मुजनुं प्रतिभित्र निरपता ते राजजे पीताना भस्तकपर जेक सहैह वाग  
जेयो. सहैह देखने देपतानी साथे न तेनां मनमां वैराग्यलाप उपपन्न थये.  
उदास थयेता राजने जेधने राजीजे पूछ्यु- ' नाथ ! आप उदास हेम ताजे  
छे ? आपने शेनी चिन्ता पखपी रही छे ? आपने त्वां सरस अशन-पाननी  
कमीना नथी, तांबूल ( पान ) नां ज्योडां तो आपनी समस्त सदा उपस्थित

शागारं संभृतम् । धनधान्यप्रवृद्धेमकृद्धिसिद्धिसमृद्धे जनपदे तवाधिकारोऽस्ति । भवत्प्रतापानलसन्तप्ता भवदीयशत्रवो दिगन्तमाश्रिता इव न केऽपि लक्ष्यन्ते । सुरपतिसदृशं भवतेजः परिस्फुरति । राज्यलक्ष्मीरनुदिनं शुक्लपक्ष-शशिकलेव संवर्द्धमाना लीलायते । पुनः केन कारणेन भवदीयं मनः सुखेदमिति विज्ञातुमि-

भंडार सदा भरपूर बना हुआ है धन धान्य से आप का देश परिपूर्ण है सम्पूर्ण प्रकार की ऋद्धि सिद्धियां इसे अपना निवास स्थान बनाये हुए हैं इस पर आप का अखण्ड साम्राज्य छाया हुआ है आपके प्रतापरूपी अनल ( अग्नि ) से सन्तप्त हुए शत्रु ऐसे हूबने पर भी नहीं मिल रहे हैं ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे दिगन्तों का आश्रित करके ही छिप रहे हैं आप का तेज इन्द्र के तेज की तरह चारों ओर चमक रहा है प्रतिदिन राज्यलक्ष्मी राज्यमहल के प्राङ्गण में शुक्लपक्ष की शशिकला की तरह बढ़ती हुई अखण्ड क्रीडा करती रहती है अतः इतना सब कुछ होने पर भी नाथ ! मैं यह जानने के लिये उत्कण्ठित हो रही हूं कि आप की इस उदासीनता का क्या कारण है ? रानी की इस प्रकार से जिज्ञासा जानकर राजा ने कहा-देवि ! मेरी उदासीनता का कारण यम ( मृत्यु ) के संदेशको लेकर यमदूतका आना है मालुम पड़ता है कि अब थोड़ेसे ही समय में शत्रु आनेवाला है अतः उसके साथ हमारा जाना अवश्य ही होगा राजा की इस बात को सुनकर रानी ने कहा-नाथ ! आप यह

रहे थे विविध रत्नोन्मी आपने लंडार भरपूर थे. धनधान्यथी आपणु देश परिपूर्णुं थे आपने त्यां षधी प्रकारनी ऋद्धिसिद्धि विद्यमान थे. तेनापर आपनुं अण्ड साम्राज्य थे आपना प्रतापइपी अनल (अग्नि)थी सतप्त यधने शत्रुओ अेवा तो नासी गया थे के गोत्यां जडतां नथी. लणु के तेओ दिगन्तेने आश्रय लधने छुपाई गया थे आपनु तेज इन्द्रता तेजनी जेम थारे आणु यमडी रहुं थे प्रतिदिन आपनी रान्यलक्ष्मी शुक्लपक्षना चन्द्रनी जेम वृद्धि पावती लय थे लणु के ते रान्यलक्ष्मी आपणु राजमडेलना प्रांगणुमां शुक्लपक्षना चन्द्रनी कलानी जेम वृद्धि पावती अण्ड डीडा डरी रही थे. आटली आटली सुण-समृद्धि डोवा छतां आप शा डारणु उदास थई गया थे, ते लणुवाने हु धणी आतुर छु. ”

राणीनी आ प्रकारनी जिज्ञासाने लणुने प्रसन्नचन्द्र रान्ये तेने कहुं, “डे राणी ! मृत्युने पैगाम लधने यमने इत आवी रह्यो छे. थोडा ज समयमा शत्रु आवी पडोअशे. तेनी साथे थारे जरुं जवुं पडशे ते डारणु आजु थारा मनमा उदासीनता व्यापी गध छे. ”



ચામિ । રાજા પ્રાહ-દેવિ ! સંવેદમાદ્યાય યમદૂતઃ સમાગતઃ । સ્વરપેનેૈવ કાલેન  
 શ્ચુ સમાગમિપ્યસિ, વિવશસ્માક ગમન મશિમ્પતિ । રાણી પ્રાહ-મયન્તમિતો  
 નેતુ કઃ મમયોઽસ્તિ, અહમનુપમામિમાં સ્વકરમુદ્રિકાં પ્રદાય સર્વસ્થમપિ વા તસૈ  
 સમર્પ્ય મયન્તં મોઘયિષ્યામિ । રાજા પ્રાહ દેવિ ! ત્વ મદ્રાઽસિ સરલહૃદયાઽસિ,  
 તસ્મારીદશ ધવસ્તવમુલાસિ સરતિ । યદિ યસ્તુપદાનેન મૃત્યુર્નિવાર્યષે, વદા  
 નકોઽપિ મ્નિયત, સર્વેતપત્તપદાનનાપિ મૃત્યુરનિવાર્ય । રાણી વદતિ-નાથ ! કોઽપ્તૌ  
 યમદૂત સમાગતોઽસ્તિ ? । રાજા પ્રાહ-મમ શિરસિ પલિત્વ ક્ષેત્ર યમદૂતઃ ।

ક્યા કહતે હૈં ? એસા કૌન સામર્થ્યશાલી હૈ જો આપ કો યહાં સે છે  
 જા સકે યદિ કોઈ આપ કો યહા સે છેને કે લિયે આબેગા મી તો મેં  
 અપની ઇસ અનુપમ મુદ્રિકા કો યા અપને ઇસ સર્વસ્થ કો ડસક લિયે  
 વેકર આપ કો ડસસે છુઠા લૂંગી ફિર આપ ચિન્તા કિસ યાત્રી કરતે  
 હૈ ? રાની કી ઇસ મોઢેપન કી વાત સુનકર રાજા ને કહા-દેવિ ! તુમ  
 મોલી ઓર સરલહૃદય યાલી હો ઇસીલિયે તુમ્હારે મુમ્ત્ર સે એસી વાત  
 નિકલ રહી હૈ । સોચો તો સહી-કહી મૃત્યુ મી ડાલી જા સકતી હૈ યહ તો  
 સિર્ફ તુમ્હારી કોરી ધારણા હી હૈ જો તુમ એસા કહ રહી હો કિ ઇમ  
 અમૃત્ય યસ્તુ વેકર ડસે લૌટા વેગે, યદિ એસા હી હોતા તો ફિર ક્યા વા  
 કોઈ મી નહીં મરતા પ્રતઃ સર્થ સમ્પદા દે વેને પર મી મૃત્યુ અનિવાર્ય  
 હૈ યહ તુમ હૃદ ચિદ્માસ કરો રાજા કે ઇસ પ્રકાર કે મત્યાર્ય કયન કો  
 સુનકર રાની ને ડનસે પૂછા-નાથ ! કૌનસા યહ યમદૂત આયા છુઠા હૈ

રાજાની આ પ્રકારની વાત સાંભળીને રાણીએ કહ્યું-“ નાથ ! આ આપ  
 શું કહે છે । આપને અહીંથી લઈ જવાને કોણ સમર્થ છે ? ને આપને  
 અહીંથી લઈ જવાને કોઈ આવશે તે હું તેને મારી અનુપમ મુદ્રિકા અથવા  
 સર્વસ્વ આપીને પણ તેના હાથમાંથી આપને મુક્ત કરાવીશ તે આપે ચિંતા  
 થા માટે કશી બેધએ । ”

રાણીની આ લોગપણુમુક્ત વાતો સાંભળીને રાજાએ તેને કહ્યું-“ ટેની !  
 તમે લોજા અને સરળ સ્વભાવવાળાં છે તેથી તમારા મુખમાંથી આ પ્રકારની  
 વાત નીકળી રહી છે શું મેંતને શિક્ષાની કોઈમાં સક્ષિ છે ખરી ? શું અમૂલ્ય  
 મુદ્રિકાદિની ભેટ દ્વારા મેંતને શાહી શકાય છે અહીં ! ને બેવી રીતે મેંતથી  
 બચી શકાતું હોત તે અમતમાં કોઈ પણ બક્ષિ મરત જ નહીં । સવ સંપત્તિ  
 અર્પણ કરવા છતાં તેને ટાળી શકાતું નથી તેને શિક્ષાને કોઈ અમથ નથી ”

આ પ્રકારનું શબ્દનું સત્વાથ કથન સાંભળીને રાણીએ કહ્યું-“ નાથ ! ”  
 ક્યાં છે બે યમદૂત ? મને બતાવો તે ખરા । ”

शुक्रः केश एव वृचयति-मृत्यु समीपे समागत इति । विङ्माम् धिङ्गाम् । केशे शुक्रतामुपगतेऽपि मया संयमो न गृहीतः । इयं हि कुलरीतिरस्माकम्-यावत् केशः शुक्लो न भवति, ततः प्रागेवास्मत्कुलोत्पन्ना राज्यलक्ष्मीं विहाय संयमेन तपसा स्वात्मकल्याणं साधयन्ति । मम तातस्तु जराजनितकेशशौकल्यात् पूर्वमेव राज्य-समृद्धिं परित्यज्य दीक्षितो जातः ।

ततोऽसौ प्रसन्नचन्द्रो नरेन्द्रः प्रधानपञ्चशतकं समाहूय तैः सहानुमन्य, पण्मासवयस्कं पुत्रं राज्ये संस्थाप्य प्रव्रजितो जातः । स ग्रामानुग्राम विहरन् स्वल्पे-

मुझे भी उसे कहिये राजा ने कहा मुग्धे ! देखो वह यमदूत पलित (सफेद) केश के मीप से मेरे मस्तक पर ठहरा हुआ है अतः यह शुक्ल केश ही मुझे सूचित करता है कि राजन् ! तेरी मृत्यु अब निकट है मुझे वार २ धिक्कार है जो शुक्ल केश के हो जाने पर भी मैं संयम को अङ्गीकार नहीं कर रहा हूँ हमारे कुल की रीति ही ऐसी चली आ रही है कि जब तक केश सफेद न हो जावे इसके पहिले ही हमारे वंशजो ने आत्मकल्याण के लिये राजलक्ष्मी का परित्याग कर संयम और तप से अपना निजका शोधन किया है मेरे पिता ने भी ऐसा ही कार्य किया है वे वृद्ध होने से पहिले ही राज्यलक्ष्मी का परित्याग कर दीक्षित हुए हैं ।

इस प्रकार विचार कर प्रसन्नचन्द्र नरेन्द्र ने पांचसौ प्रयान पुरुषों को बुलाया और उनके साथ विचार किया विचार विमर्श करके फिर वे छहमास के पुत्र को राज्य में स्थापित कर दीक्षित हो गये ग्रामालु-

त्यादे पोताना भस्तकभांथी सद्देव वाणने जेची डादी राणीने ते षता-  
वीने कहु-“ मुग्धे ! देजो, आ यमदूत सद्देव केशनु ३५ लधने मारा भस्तक  
पर यदी जेठा छे, ते सद्देव केश ज मने जेहु सूयन करे छे के ‘ छे राजन् !  
ताइ मृत्यु नछक छे, हवे तो येत ’ धिक्कार छे के माथाभा सद्देव केश आवी  
जवां छता पणु हु संयम अङ्गीकार करी शकथे नथी अमारा कुणमा तो  
जेवो नियम आवथे आवे छे के केश सद्देव थर्ध नय ते पडेला आत्मकल्या-  
णने निमित्ते राज्यलक्ष्मीने परित्याग करीने संयम अने तपना निभाव द्वारा  
आत्मानी शुद्धि करवी मारा पिताजे पणु जे रीतने निलावी छती तेजो  
पणु राज्यलक्ष्मीने परित्याग करीने प्रव्रजित थर्ध गया छता ”

आ प्रमाणे विचार करीने प्रसन्नचन्द्र राजजे ५०० प्रधानोने  
जोलाव्या, तेमनी साथे मंत्रणा करीने पोताना छ मासना राजकुमारने गादीजे  
जेसाउथे अने पोते प्रव्रज्या अङ्गीकार करीने ग्रामालुगाम विहार करवा  
साग्या, आ रीते विहार करता करता थोडा वधतमा तेजो राजगृह नगरनी

नैव फालेन राजगृहीनगया षट्तिः प्रदेशे निर्जने वने समागत्य, एकेन घरणेनो  
 धिष्णुं सूर्याभिमुखं सूर्याऽऽतापनां ग्रहीतुं बाहुद्वयमूर्ध्वमुत्थाप्य श्रुमध्यानसंलग्नोऽ  
 भवत् । स च हृदयऽर्हन्तं निधाय, सिद्धध्यानशिरस्त्राणं—'टोप' इति मापाप्रसि-  
 द्धम्, आचार्यध्यानकवचम्, उपाध्यायध्यानरथ, साधुध्यानासं समादाय, कर्मसु  
 विजेतुं सोत्साहसुपत आसीत् ।

तदा भेणिकमूसस्य सुमुख-सुमुख नामकी दूती तदासन्नमार्गेण समागतौ । तौ  
 च तत्र ध्यानस्थ प्रसन्नचन्द्रराजपिंङ्गवन्तौ । तदा सुमुखेनोक्तम्—धन्योऽय महात्मा,  
 धन्याचाप्यस्य जननी जन्मभूमिश्च, योऽय सुदुस्त्यजां सुरप्सितामपि राज्यसम्पत्तीं  
 ग्राम विहार करते हुए वे स्वल्पकाल में ही राजगृही नगरी के बाहर के  
 निर्जन घन में आये और वहाँ आकर वे एक घरण से लपड़े हो गये और  
 सूर्य की तरफ मुड़ करके सूर्य की आतापना लेने के लिये दोनों हाथों  
 को ऊँचा करके वे श्रुम ध्यान में संलग्न हो गये उस समय उन्होंने न  
 हृदय में अर्हन्त को विराजमान करके कर्म शत्रुओं के साथ युद्ध करना  
 प्रारम्भ कर दिया इस युद्ध में सिद्ध भगवान् के ध्यान को उन्होंने टोप  
 पनाया आचार्यके ध्यानको कवच उपाध्यायके ध्यानको रथ और साधुक  
 ध्यानको अस्त्र पनाया इस प्रकार युद्ध की सामग्रीसे सजसज कर वे कर्म  
 शत्रु के साथ लड़े ही उत्साह के साथ युद्ध करने के लिये प्रसूत हो गये ।

इसी समय भेणिक राजा के सुमुख दुर्मुख नाम के दो दूत उनके  
 पास के रास्ते से होकर निकले उन दोनों ने वहाँ ध्यान में तडीन हुए  
 प्रसन्नचन्द्र राजपति को देखा देव्यकर सुमुख ने कहा—इन महात्मा को

जहारना निज्जन वनमा आवी पडेआ त्वां आवीने तेजे जिक पत्रने  
 आधारे, सुखनी वरु सुभ करीने जिला रखा. आ रीते तेजे जने दास  
 जिया करीने सुखनी आतापना देवा लाग्या, आ रीते जिलां जिलां तेजे  
 शुभध्यानमां वीन यर्ष भवा. हृदयमां अरु व कत्रवानने विश्वमान करीने  
 तेमजुं ध्यान धरीने तेमजे कम हूपी शत्रुजोनी साथे लडाईं शुरू करी. क्वां क्वां  
 शत्रुधी तेमजे ते शत्रुजोना मुकाबला करी ? अर्ह'तना ध्यानने तेजे पोताने  
 टोप जना ये, आजायना ध्यानने अरुतर जनायु, उपाध्यायना ध्यानने रथ  
 जने साधुना ध्यानने अस्त्र जनायां. आ प्रकारनी मुदनी सामग्री जोधी सब  
 बंधने ते कमशत्रुजोनी साथे पलाय उत्साहपूर्वक लडावा लाग्ये.

आ प्रमाजे ज्यारे ते ध्यानमां भग्न वती, त्यारे भेणिक राजना सुमुख  
 जने दुमुख नामता के दूते ते भजे' यर्षने नीकला तेमजे त्वां ध्यानमां  
 वरुहीन धयेदा प्रसन्नचन्द्र राजपिने जेयल तेमने जेधने सुमुखे दुमुखने

सर्वाधिकार सकलपरिवारं च परित्यज्य सुदुश्चरं तपस्तपति । तद्वचनं श्रुत्वा दुर्मुखः  
 प्राह-नायं महात्मा, किंतु नराधमोऽयम्, यतोऽयं पण्मासवयस्के बाले राज्यभारं  
 दत्त्वा मन्त्रिणामङ्गे पुत्रं निक्षिप्य संयमं गृहीतवान् । अनेन महदनुचितं कृतम्,  
 यदयं पुत्रस्य बाल्यावस्थायामसंजातबले तस्मिन्-राज्यभारं न्यस्तवान् तदद्य मन्त्रि

धन्य है इनकी माताको धन्य है और इनकी जन्मभूमिको भी धन्य है जो  
 देवदुर्लभ भी राज्यविभूति का परित्याग कर एवं अपने एक छत्र राज्य  
 से मुह मोड़कर और सकल परिवार को छोड़कर सुदुश्चर तप तप रहे  
 हैं सुमुख की इस वान को सुनकर दुर्मुख ने कहा-ये महात्मा नहीं है  
 ये तो नराधम हैं जो छहमास के बच्चे को राज्य के भार को संभालने  
 के लिये मन्त्रियों की गोद में रखकर संयम की आराधना में लग गये  
 हैं। यह इन्होंने बड़ा ही अनुचित कार्य किया है भला पुत्र को बाल्या-  
 वस्था में छोड़कर अपने हित की संभाल करना यह कौनसी बुद्धिमानी  
 है? इन्होंने जिस प्रकार से अपने हित करने का विचार किया है उस  
 प्रकार से यह विचार क्यों नहीं किया है कि अभी यह बच्चा बाल्यावस्था  
 में रहने के कारण बलवाला भी नहीं हो पाया है मैं कैसे इसके ऊपर  
 राज्य का भार स्थापित करूँ इस प्रकार दूसरे के जीवन से खिलवाड़  
 करना कहां की धर्मनीति है बालक की निर्बलता और उसके अवोधपने

आ प्रभाषे कथुं-“ धन्य छे आ महात्माने । धन्य छे तेमना मातापिताने ।  
 धन्य छे तेमनी मातृभूमिने । पोताना देवदुर्लभ रान्यवैलवने परित्याग करीने  
 तथा पोतानी अेक अकी रान्यसत्ता तथा कुटुम्भपरिवारने त्याग करीने आवी  
 दुष्कर तपस्यानु सेवन करनार आ राजर्षिने धन्यवाद धटे छे. ” सुमुभनी  
 आ प्रधारनी वात सालणीने दुर्मुखे कथुं-“ अरे ! आ महात्मा नथी पणु  
 नराधम छे. पोताना छ मासना भाणकने माथे रान्यने लार भूडीने अने  
 पोताना छ मासना भाणकने मंत्रीअेने आशरे छोडीने संयम अने तपनी  
 आराधना करनार आ राजर्षि तो धिक्कारने पात्र छे. छ मासना भाणकने  
 माथे आवडी मोटी ज्वाभदारी नाणीने पोताना ज छितने विचार करीने  
 संसार त्याग करवामां शी पुन्द्रमानी रडेवी छे ? तेखे रान्य छोडतां पडेलां  
 अेवे विचार केम न कर्यो के आ राजकुमार छे भाणक छे रान्यने लार  
 वडन करवाने ते समर्थ नथी, आवा सुकुमार भाणकने मंत्रीअेना हाथमां  
 सोपवे ते योग्य नथी. आ प्रभाषे भीजना अवन साथे जेव करवा तेने  
 धर्मनीति केम कही शक्य । असकनी निर्भणता अने तेनी अग्रुधताने लाल

नीति परिवर्तिता, यत् तस्य लघुवयस्कस्य बालस्योपचारं कृत्वा मन्त्रिणः स्वयं राज्यमपहरिष्यन्ति । दुमुस्वयचनादधानत प्रस्वलितचित्तं प्रसन्नचन्द्रराजर्षिरार्थं रौद्रध्याने मग्नः सन् मनः कल्पितास्त्रं सञ्जापि गृहीत्वा तान् मन्त्रिनान् मारयितुं भावसंग्रामे प्रवृत्तः ।

अनन्तरे राजा श्रेणिकस्तत्रागतः । स प्रसन्नचन्द्रराजर्षिं शुभध्याननिष्ठं मत्वा तं नमस्कृत्य भगवतः श्री महावीरस्य चरणोपान्ते समागतः । भगवन्तं वदित्वा नमस्कृत्य राजा श्रेणिकः पृच्छति—हे भगवन् ! प्रसन्नचन्द्रराजर्षिरधुनाऽस्यां ध्यानावस्थायां यदि कालं कुर्यात्, तर्हि स कस्यां गतौ गमिष्यति ? । भगवता प्रोक्तम्—

का लाभ पाकर आज मन्त्रियों की नीति में परिवर्तन हो गया है वे देखते २ नियम से इस लघुवयस्क बालक का उपचार करके स्वयं राज्य का अपहरण कर लेंगे दुर्मुख के इस प्रकार के बचनसे ध्यान से प्रस्वलित चित्त हुए वे प्रसन्नचन्द्र राजर्षि आसं रौद्र ध्यान में मग्न होकर मनः कल्पित अस्त्र शस्त्रों को ग्रहण करके उन मन्त्रिजनों को मारने के लिये भावसंग्राम करने में लग गये ठीक इसी समय राजा श्रेणिक वहा पर आये उन्होंने ने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को शुभ ध्यान में तल्लीन हुआ मानकर वहे नमस्कार किया फिर वे भगवान् महावीर के पास पहुँचे वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान् महावीर से वन्दना की और नमस्कार किया वन्दना नमस्कार करके फिर प्रभु से इस प्रकार उन्होंने पूछा भगवन् ! प्रसन्नचन्द्र राजर्षि जो इस समय ध्यानावस्था में तल्लीन हैं यदि इसी अवस्था में काल घर्म के पहागत हो जावें तो ये

लक्ष्मीने आने भवान्नी लुद्धि लक्ष्मी छे तेजो तेने भारी नाथीने शब्दने पध्यापी पाठया गागे छे ।

इसु अना आ शब्दो सांभगी ध्यानभांशी स्प्रखित यथेसा ते प्रसन्नचन्द्र राजर्षि रौद्रध्यानधी बुद्धि यधने कल्पित कल्पिशाशने ब्रह्म क्रीने ते मन्त्रीजोने भारी नाथीने भाटे सायसंभ्राम कस्वामां लीन यधं मया लराणर जे जे समये श्रेणिक राजा त्यां आवी पद्येसा तेमजे प्रसन्नचन्द्र राजर्षिने शुभ ध्यानभां लीन यथेसा भातीने तेमने पदया नमस्कार कर्षा पदया नमस्कार करीने त्याधी तेजो अमणु अमथान मदावीरनी पासे मया त्यां लधने तेमजे मदावीर प्रभुने पदया करी अने नमस्कार कर्षा पदया नमस्कार करीने तेमजे तेमने आ प्रभाजे प्रभु पूछयो—हे भगवन् ! प्रसन्नचन्द्र राजर्षि हे तेजो अत्यार ध्यानावस्थाभां लीन छे तेजो जे आ अपरस्थाभां जे काजधर्म पायी लय, ता कर्ष गतिभां लय ?

सप्तमे नरके । एतद्वचनं श्रुत्वा राजा श्रेणिकश्चिन्तयति-अहो ! मया किमिदं श्रुतम्, धर्मधुराणां क्रियापात्राणां विगतविकाराणां धृततपः संयमभाराणां शुभ-  
ध्यानिनां महाभुनीनामपि यदीदृशी गतिस्तिर्हि का कथाऽस्माकं राज्यलोलुपानां  
कामभोगरतानां महारम्भमहापरिग्रहधारिणां विविधविषयचिन्तातुराणाम् ? इति ।

तदानीं प्रसन्नचन्द्रराजर्षिः संकल्पविकल्पसंग्रामे रौद्रध्यानसंलग्न आसीत् ।  
तस्मिन् भावसमरे यदा तस्य संकल्पविकल्परूपाणि खड्ग-तोमर-धनुर्वाणादीनि  
सर्वाणि निष्ठितानि तदा प्रसन्नचन्द्रराजर्षिणा चिन्तितम्-मया सर्वे शत्रवः समूल-

किस गति में जावें ? श्रेणिक के इस प्रश्न को सुनकर भगवान् ने कहा  
-श्रेणिक ! यदि वे इस अवस्था में कालगत हो तो सप्तमपृथिवी में सातवें  
नरक में जावें प्रभु के इस कथन को सुनकर राजा श्रेणिक ने विचार  
किया-मैं यह क्या सुन रहा हूँ ओह ! धर्म की धुरा रूप क्रिया के पात्र  
विषय विकार विहीन तपः संयम भार युक्त ध्यानावस्थित ऐसे  
महाभुनिजनों की भी यदि ऐसी गति हो सकती है तो फिर हमारे जैसे  
राज्य लोलुप कामभोग रत, महारम्भ परिग्रह सम्पन्न एवं विविध विषय  
चिन्तातुरों की दान ही क्या है ?

प्रसन्नचन्द्रराजर्षि जब संकल्प विकल्प मय संग्राम में रौद्र ध्यान  
के वज्रवर्ती बने हुए थे, उसी भाव संग्राममें जब उनके संकल्प विकल्प  
कल्पित खड्ग, तोमर, धनुष एवं बाण आदि सब शस्त्र काम आ चुके,

महावीर प्रभुओं महाराज श्रेणिकने आ प्रभावे जवाब आये-“ हे  
श्रेणिक ! आ अवस्थाओं ज तेजो काणधर्म पासी जय, तो सातमी पृथ्वीमां  
( नरकमा ) नरक इये उत्पन्न थर् जय ”

महावीर प्रभुना आ प्रश्नना कथनने सांभलीने श्रेणिक राजना मनमां  
आ प्रश्नना विचार आये-“ आ हुं शं सांभली रहो धुं ! धर्मनी धुरा  
इय क्रियाने पात्र, विषय अने विकारोधी विहीन थर्ने तप अने संयमनी  
आराधना कर्ता, शुभ ध्यानमां लीन जेवा महाभुनिजनेनी पखु आ प्रश्ननी  
गति थर् शकती होय, तो अमारा जेवा राजलोलुप, कामभोगरत, महा  
आरज अने परिग्रह सपन्न अने विविध विषयोनी चिन्तामा ज मश रह-  
नारनी तो बात ज शी करी । ”

रौद्रध्यानने अधीन थर्ने प्रसन्नचंद्र राजर्षिजे कल्पित अडग, लाला,  
धनुष, तीर आदिनी सहायताथी मंत्रीजे साथे लावस ग्राम जेलवा भाउये।  
आ लावस ग्राममा न्यारे तेना संकल्प विकल्प कल्पित अडग, लाला, धनुष,

नीतिः परिवर्तिता, यत् तस्य लघुवयस्कस्य बालस्योपपातं कृत्वा मन्त्रिण स्व  
राज्यमपहरिष्यन्ति । दुर्मुखवचनाद्गघानत मस्त्रलितचित्तं प्रसन्नचन्द्रराजर्षिरातं  
रौद्रध्याने मग्नः सन् मनः कल्पितास्त्रं शस्त्राणि शूहीत्वा तान् मन्त्रिजनान् मारयितु  
भावसम्रायं प्रवृत्तः ।

अमान्तरे राजा भेषिकस्तत्रागतः । स प्रसन्नचन्द्रराजर्षिं शुभध्याननिष्ठं मत्वा  
तं नमस्कृत्य भगवतः श्री महावीरस्य धरणीपान्थे समागतः । भगवन्तं वन्दित्वा  
नमस्कृत्य राजा भेषिकं पृच्छति—हे भगवन् ! प्रसन्नचन्द्रराजर्षिर्ध्यानाऽस्यां ध्याना  
वस्थायां यदि कालं कुर्यात्, तर्हि स कस्यां गतौ गमिष्यति ? । भगवता मोक्षम्-

का लाम पाकर आज मन्त्रियों की नीति में परिवर्तन हो गया है वे  
देखते २ नियम से इस लघुवयस्क बालक का उपघात करके स्वयं राज्य  
का अपहरण कर लेगे कुर्मुख के इस प्रकार के बचनसे ध्यान से प्रस्त्र  
लित चित्त हृष्ट वे प्रसन्नचन्द्र राजर्षि आर्षी रौद्र ध्यान में मग्न होकर  
मनः कल्पित अस्त्र शस्त्रों को ग्रहण करके उन मन्त्रिजनों को मारने क  
लिये भावसम्राय करने में लग गये ठीक इसी समय राजा भेषिक  
घटां पर आये उन्होंने ने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को शुभ ध्यान में तल्लीन  
हुआ मानकर उन्हें नमस्कार किया फिर वे भगवान् महावीर के पास  
पहुँचे वहाँ पहुँचकर उन्होंने ने भगवान् महावीर के वन्दना की और  
नमस्कार किया वन्दना नमस्कार करके फिर प्रश्न से इस प्रकार उर्हों  
ने पूछा भगवन् ! प्रसन्नचन्द्र राजर्षि जो इस समय ध्यानावस्था में  
तल्लीन हैं यदि इसी अवस्था में काल धर्म के यद्गांत हो जावें तो वे

कहाँ जाने मन्त्रिजनों की बुद्धि जगदी छ तेज्ये तेने भादी नाथीने  
राज्यने पथावी पाइवा भाजे छे ।

दुर्मुखना या शब्दे सलज्जी ध्यानभाषी रचलित ब्येहा ते प्रसन्नचन्द्र  
राजर्षि रौद्रध्यानधी मुक्त भवने कल्पित कल्पिध्याने जदंषु करीने ते  
मन्त्रिजोने भादी नाथवाने भा? भावसम्राय करवामा बीन यर्ध भवा.  
जराजरे जे क समये भेषिक शब्द तयां भाषी पढोव्या तेमजे प्रसन्नचन्द्र  
राजर्षिने शुभ ध्यानभा बीन ब्येहा भानीने तेमने वदव्या नमस्कार कर्षा  
वदव्या नमस्कार करीने त्याधी तेज्ये अमषु अमपान भदावीरनी पास्रे जथा.  
त्यां जर्धने तेमजे भदावीर प्रजुने वदव्या करी जने नमस्कार कर्षा वदव्या  
नमस्कार करीने तेमजे तेमने या प्रभाजे प्रस पूछोवो—हे भगवन् ! प्रसन्नचन्द्र  
राजर्षि के जेज्ये अन्तारे ध्यानावस्थाभां बीन छे, तेज्ये जे या अवस्थाभां क  
क्षणधर्म भाषी भाव, तेा कर्ध अतिभां लव ?

मानेन, रागद्वेषविषमविषधरभुजङ्गमग्रसितेन, ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मरज्जुभिः  
 मत्यात्मप्रदेशं प्रतिनिवद्धेन चतुर्गतिकसंसारभयभीतेन प्राणित्राणकारकं सकल-  
 कल्याणधारकं भवजलधितारकं सकलदुःखहारकं सिद्धिपददायकं शिवसुखविधा-  
 यकं संयमशरणमुपगत्य चारित्रमोहनीयोदयेन चारित्रतः पराङ्मुखीभूयं, महाव्रत-  
 मुख्यं प्राणातिपातविरमणाख्यं प्रथमव्रत विराधितम् । एवं शुभाध्यवसायेन प्रसन्न-  
 चन्द्रराजविद्वष्टरितकारिणं स्वात्मानं निन्दन् मनसैव पूर्वकर्माणि क्षपयति स्म ।

द्वेष रूप उग्र जहरीले सर्पो के अभेद ज्ञान रूप जहर से प्रत्येक गति में  
 मूर्च्छित हुआ हूँ मेरी आत्मा का कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं बचा कि जो  
 ज्ञानावरणीय आदि रूप कर्मरज्जु से कस कर न बंधा हो अब किसी  
 भी तरह से यदि मैं भय से भीत बना हूँ और प्राणित्राण कारक सक-  
 लकल्याण धारक भवजलधितारक सकलदुःखहारक, सिद्धिपद दायक  
 और शिवसुख विधायक संयम रूप महल की छत्रछाया में आ पहुँचा  
 हूँ, तो ऐसी स्थिति में जो मैंने चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से इस  
 गृहीत चारित्र से इस प्रकार के दुर्विकल्पों के वशवर्ती होकर जो यह  
 पराङ्मुखता अपनाई है वह मेरे द्वारा एक भयङ्कर अपराध हुआ है  
 इससे मेरे आत्मशोधन को एक बहुत बड़ी ठेस पहुँची है उसकी सर्व  
 प्रथम सीढ़ी रूप प्राणातिपात विरमणव्रत इससे ढह गया है—ध्वस्त हो  
 चुका है हाँ मुझ अज्ञानी ने यह क्या कर डाला इस प्रकार आत्म गर्हा  
 रूप शुभाध्यानाध्यवसाय से प्रसन्नचन्द्र राजकृषि ने पापके चक्कर में

जेरी सर्पोना अबेद ज्ञानरूप विषयी हु प्रत्येक गतिमा मूर्च्छित थये छुं मारा  
 आत्मानो डोई पणु प्रदेश जेवो नथी के जे ज्ञानावरणीय आदि कर्मरज्जु  
 वडे कसीने बाधेयो न डोय डवे ससारना लयथी व्याकुण थधने हु सकण  
 कल्याणधारक, भवजलधितारक, सकण हु अहारक, सिद्धपददायक, अने शिवसुभ  
 विधायक संयमरूप भडेतनी छत्रछायामां आवी पडोअये छुं. तो जेवी  
 स्थितिमां, चारित्रमोहनीय कर्मना उदयथी आ दुर्विकल्पेने आधीन थधने मे  
 जे चारित्रनी आराधनाभाथी परागमुभ थवानी क्रिया करी छे ते मारा द्वारा  
 जेक लय कर अपराध थई गये छे, तेने लीधे मारा आत्मानी शुद्धिमां मोटी  
 अवरोध जाले थये छे तेना प्रथम पगधियाइप प्राणातिपात विरमणु व्रतनुं  
 तेना द्वारा अउन ( ध्वंस ) थई गयुं छे मे अजानीजे आ डेवो भडा  
 अनर्थ करी नाअये छे । ” आ प्रमाणे आत्मगर्हा रूप शुभ ध्यानाध्यवसाय



पात्र इत्यादि । अथात्राद्यानि चादि मन्त्रानि नष्टानि, परम्परक एव अनुष्ठानो मन्त्रो  
 मम पुत्रशिक्षणं, ममेनं मन्त्रमाराधितमनुष्ठानात्पानेन इतिप्यानि, इत्यादि ।  
 तानां सर्वान् मन्त्रान्प्रदाय यदा शिरसि हस्त निधिरति, तदा सुविधाद्येन मन्त्रं  
 शिरसि ग रात्रिं पश्चात्प्राप्तमुरगत मन्, स्थापनपरां कृत्वा निवेदयामास्यति  
 परि-विद्माम् यन्त्रा पुन पुनर्नमस्वामिनाधिरामिगाराह्यारसतिर्य

पान में कृष्ट नहीं बना मय प्रमदपत्र गणकपि ने पिपात्र किना में  
 मय पापुत्रां को नष्ट कर दिया है अन्त्र शत्रु भी मय समाप्त हो चुक  
 है मय जो मेरा कष्ट मन्त्री रूप एक ही शत्रु अवशेष रह गया है यह  
 इस समय मेरे समस्त उपस्थित भी है अतः मैं उसे भी मय मान  
 मन्त्रक पर रह हूँ रात्रमुकृत व दाता ही यथा म मन्त्रात् पर हूँ  
 प्रकाश की पिपात्र भाग से ओगड़ो हूँ उन प्रमदपत्र गणकपि म  
 मन्त्री को मानने के लिए उगी ही मुहूर्त को प्रयोग करने के लिये पात्र  
 नमस्क पर हाथ रखा गा ततो समय उठे सुप्रियका मन्त्रक पात्रक  
 अगनी इस अनुष्ठित पिपात्र भाग पर पदप्राणात् होन मन्त्रा तर्ही न  
 तमी समय भावनादर्श करना प्रारम्भ कर दिया मय में तर्ही । तदा  
 माया मुक्त अविश्व क परवर मी गद हूँ अगनी भावना को कायन्त्र  
 शिरसात् है मैं भक्तदि कात्र से ही तदा, तदा मरणा भाधि एवं  
 स्थापित्य वहि की उपायाओं म श्रुतमना हुआ बना भा रहा हूँ मय

भगवता प्रोक्तम्—शुद्धध्यानान्मनः समुपजातपश्चात्तापानलज्वालाकलाप-दन्दह-  
मान-सकृत्कर्मन्वनस्य प्रसन्नचन्द्रस्य केवलोत्पत्तौ सुरासुरास्तन्महिमानं कुर्वन्ति ।  
इति भावगर्हायां प्रसन्नचन्द्रदृष्टान्तः ।

तथा—‘ वयसा वेगे गरिहड् ’ इति । वचसा वा एकः कौऽपि गर्हते । इहापि  
वा शब्दो विकल्पार्थकोऽवधारणार्थको वा । ततश्च वचसैव नतु मनसा गर्हते इत्यर्थः ।  
यथा—‘ अङ्गारमर्दनाचार्यः ।

अथ द्रव्यगर्हायाम् अङ्गारमर्दनाचार्यदृष्टान्तः प्रोच्यते—

आसीद् वसन्तपुरे जितशत्रुनामको राजा । स च द्वादशवतारायकस्तीर्थकर  
शासनप्रभावकः सदोरकमुत्पत्तिकां धृत्वा उभयकाले आवश्यकं करोति । एकदा

और देवों का यह जय २ नाद किस कारण से सुनने में आ रहा है ?  
तब भगवान् ने कहा—हे श्रेणिक ! शुभध्यान वाले प्रसन्नचन्द्र राजकृषि  
को पश्चात्ताप की अग्निज्वाला में समस्त कर्म रूपी इन्धन के जल जाने  
के कारण केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई है अतः सुरासुर सब मीलकर  
उसकी महिमा प्रकट कह रहे हैं इस प्रकार का यह दृष्टान्त भावगर्हा  
के ऊपर प्रसन्नचन्द्र राजकृषि का है

तथा—“ वयसा वेगे गरिहड् ” एक कोई मुनि केवल वचन से ही  
गर्हा करता है यहां पर भी “ वा ” शब्द विकल्पार्थक अथवा अवधार-  
णार्थक है इस से कोई एक मुनि वचन से ही गर्हा करता है मात्र से  
नहीं करता है ऐसा इसका तात्पर्यार्थ है इसके ऊपर अंगारमर्दनाचार्य  
का दृष्टान्त इस प्रकार से है—वसन्तपुर में जितशत्रु नाम का राजा था

सिनाद तथा देवो द्वारा जयनाद केम यथ रहो छे ? ” त्तारे भडावीर प्रलुञ्जे  
तेमने आ प्रभाणे ज्वाभ आये—“ डे श्रेणिक ! शुभध्यानशुद्ध प्रसन्नचन्द्र  
राजर्षिना पश्चात्तापनी आगमा समस्त कर्मरूपी धधन गणीने भाभ यथ  
ज्वाथी तेने केवजज्ञान उत्पन्न यथ गयु छे तेथी सुरासुर भणीने तेनो भडिमा  
प्रकट करी रह्या छे. ” आ प्रकारतु प्रसन्नचन्द्र राजर्षितुं दृष्टान्त भावगर्हातुं  
प्रतिपादन करवाने माटे अर्डी आपवामा आव्यु छे

तथा “ वयसा वेगे गरिहड् ” कौं कौं मुनि केवज वचन द्वारा ज  
गर्हा करे छे अर्डी “ वा ” शब्द विकल्पार्थक अथवा अवधारणार्थक छे कडेवातु  
तात्पर्य अे छे के कौं कौं मुनि मात्र वचनथी ज गर्हा करे छे, मनथी  
गर्हा करता नथी. वचन द्वारा गर्हातु प्रतिपादन करवा माटे अंगारमर्दना-  
चार्यतुं दृष्टान्त अर्डी आपवामा आव्यु छे—

वसन्तपुर नामे नगर छंतुं, त्या जितशत्रु नामने राजा छतो. ते पार

अमान्तर पुनर्मगवन्त श्रेणिकरूप पृच्छति—हे मगवन् ! सप्रति स राजर्षिसिद्धि काल क्वर्षति, तर्हि कां गतिं गच्छन्? मगवता प्रोक्तम्—सर्वार्थसिद्धम्। राजा प्राह—मगवन् ! पूर्वं केनाशयेनोपदिष्टम्, सप्रति केनाशयनोपदिश्यते, इति नाचबुध्यत । ततो मगवता क्रमेण सद्यः वृत्तं तस्मै कथितम् । तस्मिन् नव समय प्रसन्नचन्द्र राजर्षिसनिधौ दुन्दुभिध्वनि समव्रति, देवानां जयजयनादम् जात । तदा श्रेणिकः प्राह—किं कारणम्, यद्यद् दुन्दुभिध्वनिः श्रूयते, देवानां जयजयनादम् ।

पकी हुई अपने आत्मा की निन्दा करते हुए मन से ही पूर्ण कर्मों का क्षय कर दिया ।

इसके बाद फिर श्रेणिक ने भगवान् से पूछा हे भगवान् ! अब राज ऋषि यदि कालघण्टायत्नी हो जाते हैं तो वे किस गति के पात्र बन सकते हैं ? भगवान् ने कहा श्रेणिक ! वे सर्वार्थसिद्ध के पात्र बन सकते हैं श्रेणिक ने पूछा हे भगवन् ! आपने पहिले किस आशय से सप्तम पृथिवी में जानेकी बात कही और अब किस आशय से आप को उन की बात सर्वार्थ सिद्धमें जानेको कह रहे हैं ? मुझे इसका कारण समझाएँ, तब भगवान् ने पूछ आशय का और वर्तमान आशय का समस्त भेद भाव उन्हें समझा दिया उसी समय प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के समीप दुन्दुभियों की ध्वनि होने लगी देवों ने मिलकर जय & शब्द का उच्चारण किया इसे सुनकर श्रेणिक ने प्रभु से पूछा हे भदन्त ! दुन्दुभिध्वनि

द्वारा ते प्रसन्नचन्द्र राजर्षिं ज्ञेयापना व्यक्तरभां पठेत्वा शिताना आत्मानां निन्दा कर्त्ता कर्त्ता मन दारा ज पूष कर्मोना क्षय करी नाच्ये।

त्यारे ते प्रसन्नचन्द्र राजर्षिं ज्ञेया प्रकारे आत्मगर्वा कर्त्तव्यां भय भयेत्वा इना त्यारे भेजिक राज्ञे मदावीर प्रभुने इरीधी ज्ञेय प्रश्न कथे " हे भगवन् ! आत्मादे ज्ञे ते राजर्षि कण्ठधर्म पाभी ज्ञय, तो कथं जतिभां ज्ञय ? " मदावीर प्रभुजे कथुं— ' हे राजन् ! ज्ञे तेजो आत्मादे ज्ञे कण्ठधर्म पाभी ज्ञय, तो सर्वार्थसिद्धने पात्र जनी शके छे "

त्यारे भेजिक राज्ञे मदावीर प्रभुने आ प्रभाजे पूछयुं— " हे भगवन् ! आपि पठेत्वां तेने सातभी नरकने पात्र कथो इतो इवे आप तेने सर्वार्थ सिद्धने पात्र कथो छे, तो आपना आ ज्वालयु काल्यु मुं छे ? " त्यारे मदावीर प्रभुजे पूष आशयने ज्ञने वर्तमान आशयने समस्त वेदभाव तेने सम ज्ञयेत्वा ज्ञशब्द ज्ञेय समये प्रसन्नचन्द्र राजर्षि पासे दुन्दुभिनाद यथा ताभ्यो देवाभ्ये ज्ञेयत्र यथने तेभ्यो ज्ञय पीकारणा भांडये। ते दुन्दुभिनाद तथा ज्ञय नाई साजगीने राज भेजिके मदावीर प्रभुने पूछयुं— ' हे भगवन् ! आ दुइ

भगवता प्रोक्तम्—शुद्धध्यानात्मनः समुपजातपश्चात्तापानलज्वालाकलाप—दन्द्य-  
मान—सकलकर्मन्वनस्य प्रसन्नचन्द्रस्य केवलोत्पत्तौ मुगामुरास्तन्महिमानं कुर्वन्ति ।  
इति भावगर्हायां प्रसन्नचन्द्रदृष्टान्तः ।

तथा—‘ वयसा वेगे गरिहइः ’ इति । वचसा वा एकः कोऽपि गर्हते । इहापि  
वा शब्दो विकल्पार्थकोऽवधारणार्थको वा । ततश्च वचसैव नतु मनसा गर्हते इत्यर्थः ।  
यथा—‘ अङ्गारमर्दनाचार्यः ।

अथ द्रव्यगर्हायाम् अङ्गारमर्दनाचार्यदृष्टान्तः प्रोन्यते—

आसीद् वसन्तपुरे जितशत्रुनामको राजा । स च द्वादशवताराधकस्तीर्थकर  
शासनप्रभावकः मयोरकमुववह्निकां श्रुत्वा उभयकाले आवश्यकं करोति । एकदा

और देवों का यह जय २ नाद किस कारण से सुनने में आ रहा है ?  
तब भगवान् ने कहा—हे श्रेणिक ! शुद्धध्यान वाले प्रसन्नचन्द्र राजकृषि  
को पश्चात्ताप की अग्निज्वाला में समस्त कर्म रूपी इन्धन के जल जाने  
के कारण केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई है अतः सुरासुर सब मीलकर  
उसकी महिमा प्रकट कर रहे हैं इस प्रकार का यह दृष्टान्त भावगर्हा  
के ऊपर प्रसन्नचन्द्र राजकृषि का है

तथा—“ वयसा वेगे गरिहइ ” एक कोई मुनि केवल वचन से ही  
गर्हा करता है यहां पर भी “ वा ” शब्द विकल्पार्थक अथवा अवधार-  
णार्थक है इस से कोई एक मुनि वचन से ही गर्हा करता है नाम से  
नहीं करता है ऐसा इसका तात्पर्यार्थ है इसके ऊपर अङ्गारमर्दनाचार्य  
का दृष्टान्त इस प्रकार से है—वसन्तपुर में जितशत्रु नाम का राजा था

बिनाह तथा देवो द्वारा ज्यनाह केम थध रह्यो छे ? ” त्पारे भडावीर प्रभुओ  
तेमने आ प्रभाणे ज्वाप आये—“ हे श्रेणिक ! शुद्धध्यानयुक्त प्रसन्नचन्द्र  
राजर्षिना पश्चात्तापनी आगमा समस्त कर्मरूपी इन्धन गणीने जाप थध  
ज्वाथी तेने केरणज्ञान उत्पन्न थध गयुं छे तेथी सुरासुर भणीने तेने महिमा  
प्रकट करी रह्या छे ” आ प्रकारतु प्रसन्नचन्द्र राजर्षितुं दृष्टान्त लावगर्हातु  
प्रतिपादन करवाने भाटे अही आपवामा आण्यु छे

तथा “ वयसा वेगे गरिहइ ” कौं कौं मुनि केवण वचन द्वारा ज  
गर्हा करे छे अही “ वा ” शब्द विकल्पार्थक अथवा अवधारणार्थक छे कडेवानु  
तात्पर्य अ छे के कौं कौं मुनि मात्र वचनधी ज गर्हा करे छे, मनथी  
गर्हा करता नथी वचन द्वारा गर्हातु प्रतिपादन करवा भाटे अङ्गारमर्दना-  
चार्यतुं दृष्टान्त अही आपवामा आण्यु छे—

वसन्तपुर नामे नगर छतुं, त्या जितशत्रु नामने राजा छतो. ते पार

प्रभाते तेन राज्ञा स्वप्नो दृष्ट - गजानां पञ्चमि शतैः परिवृतः घृकरो मम नगरे समागत इति। निद्रापगमे सति राज्ञा चिन्तितम् किमथन्मया स्वप्ने दृष्टम्, इति। तस्मिन्नेव समये शिष्याणां पञ्चमिः शतैः परिवृष्टो रुद्रदेवाचार्यस्तत्र समागतः। शुभग्रहैर्दुर्गकः खनिरिव, कल्पतरुमिः परियच्छित्तर परण्डवत् इव, इतैः परिवृष्टो बह इव रुद्रदेवाचार्यस्त्वेन राज्ञा दृष्टः स राजाऽभ्युत्थानवन्दनादिभिस्तस्य सत्कारं कृतवान्।

अथ रुद्रदेवाचार्यो वनपालात् वसतेरषषडमवष्टम सपरिवारोऽसीं तन्नोपानेऽवस्थितः। राजाऽस्मिन् मुनिसमाजे स्वप्नमदृष्टमूकरसमः को मुनिरस्तीति परीसार्य

यह १२ घण्टों का आराधक और तीर्थंकर के शासन का प्रभावक था सदोरक मुखवस्त्रिका को धारण कर वह दोनों समय में आषड्यककार्य किया करता था एक दिन उस राजा ने स्वप्न देखा कि एक सूअर पांच सौ हाथियों से घिरा हुआ होकर मेरे नगर में आया है इस स्वप्न को देखकर उषों ही उसकी निद्रा भंग हुई तो उसने विचार किया यह क्या मैंने स्वप्न में देखा है इसी समय पांच सौ शिष्यों से युक्त हुए रुद्रदेव आचार्य वहा पर विहार करते हुए आये शुभग्रहों से युक्त शानि की तरह कल्पवृक्षों से युक्त हुए परण्ड वृक्ष की तरह तथा इसो से घिरे हुए वसुला की तरह रुद्रदेवाचार्य को उस राजा ने देखा देखते ही राजाने अभ्युत्थान वन्दनादि क्रियाओं द्वारा उनका सत्कार किया।

वनपाल से वसतिफा अथग्रह लेकर वे रुद्रदेवाचार्य परिवार सहित वहाँ के उद्यान में ठहर गये राजा ने " इस मुनि मंडली में स्पष्टदृष्ट

मतोना आराधक अने तीर्थंकरना शासनने प्रभावक होते सदोरक मुखपत्ती धारण करीने ते अने समयमां आवश्यक काम (प्रतिक्रमण) करीते होते। ते सबको जेक शत्रे जेवुं स्वप्न देखुं के पांचसो हाथीजोना समूहधी वीट जायेते। जेवो जेक बुद्ध मारा नगरमां जायेते ते आ प्रकारनुं स्वप्न जायेते जाइ जाये तेनी निद्राने भंग भये। त्पारे ते आ स्वप्न जागत विचार करवा जायेते। हवे जेवुं अ बुद्ध के जेक रुद्रदेव नामना आचार्य पीताना ५०० शिष्योना समूह साथे जेक दिनसे विचार करता करता जेक नगरमां जानी पडोयेता शुभ ग्रहोधी युक्त शनिनी जेम, कल्पवृक्षोधी युक्त जेक जेरमानी जेम, अने हंसोना समूहधी शशधोला वनवाने जे प्रकारनी दृष्टिधी जेवामां जावे ते ते प्रकारनी दृष्टिधी जितशत्रुको रुद्रदेव आचार्यने जेबा देखतां अ तेसके अभ्युत्थान, वन्दनादि द्वारा तेमने सत्कार कये।

भाणीनी सब लधने रुद्रदेवाचार्य पीताना ५०० शिष्यो साथे वसतपुर नगरना जेक उद्यानमां पधाये। राजाको विचार कये के आ मंडलीमां स्वप्नमां

रात्रौ वसति समीपे चतुर्विंशु चूर्णिताङ्गाराः स्वभृत्यैर्गुप्सरीत्या प्रसारिताः । राजा च प्रच्छन्नो भूत्वा पश्यति । तदनुकश्चिन्मुनिः कायिकीं परिष्ठापयितु रजोहरणेन भूमिं प्रमार्जयन् परिष्ठापनभूमौ समागतः । परिष्ठापनभूमिं प्रमार्ज्य यावद् भूमौ पद निश्चत्ते, तावच्चरणस्पर्शजनितोऽङ्गारचूर्णानां मर्मरशब्दः संजातः । मुनिना ज्ञातम्—अत्र मत्कोटकादयस्त्रीन्द्रियजीवा अनेकराशिरूपेण वर्तन्ते अतो मच्चरण स्पर्शजनितपीडया शब्दो जातः इति । ततोऽसौ जीवोपमर्दनशङ्कया मिथ्यादुष्कृतं दत्त्वा कायिकीमपरिष्ठाप्यैव प्रतिनिवृत्तः । एवं क्रमेण प्रत्येको मुनिः परिष्ठापनार्थं

सूकरके जैसा कौन मुनि है ” इसकी परीक्षा करने के लिये रात्रि में वसति के समीप चारों दिशाओं में चूर्णितांगार अपने नोकरों द्वारा गुप्सरीति से फैलवा दिये और स्वयं वह वहीं कहीं पर छिप गया और देखने लगा इतने में कोई मुनि कायिकी क्रिया की परिष्ठापना करने के लिये रजोहरण से भूमिकी प्रमार्जना करते हुए परिष्ठापन भूमि में आया परिष्ठापन भूमि की प्रमार्जना करके जितने में उसने उस भूमि में पैर रखा कि इतने में चरण के स्पर्श से उन अंगार चूर्णोंमें से मर्मर शब्द हुआ मुनिने जाना कि यहांपर मत्कोटक(मकोडे) आदि त्रीन्द्रिय जीव अनेक राशिरूप से हैं इसलिये मेरे चरण के स्पर्श की पीडा से यह उसका शब्द उत्पन्न हुआ है तब जीवोपमर्दनकी शंका मिथ्यादुष्कृत देकर कायिकी क्रिया की परिष्ठापना नहीं की और बिना परिष्ठापना किये

येनयेन लु उ जेवा मुनि केणु छे ते मारे शोध्दी काठवु नेधये. आ कुसोटी करवा माटे रान्ने ते आश्रयस्थानरूप उद्याननी आसपास, छुपी रीते पोताना अनुचरो द्वारा चूर्णितांगार (चण्डोडीने लूके) इलावी दीधो, अने पोते अट-लाभां न केरु स्थाने छुपाय गयो. रात्रे तेणु जेवु के केरु अक मुनि लघुश का करवा माटे रनेडरणुथी लूमिनी प्रमार्जना करतां करतां परिष्ठापन लूमिमां आव्या. परिष्ठापन लूमिनी प्रमार्जना करीने तेमणु जेवो ते लूमिपर पग भूकथो के तुरत न यरणुना स्पर्शथी ते आ गारचूर्णमाथी मर्मर ध्वनि उठयो तेथी मुनिजे मान्यु के अर्डी मकोडाआदि त्रीन्द्रिय जेवो अनेक राशिरूपे रहेला छे, अने ते कारणु मारा यरणुना स्पर्शथी तेमने पीडा पडोचवाने कारणु आ मर्मर ध्वनी थयो छे. तेथी जेवोनी विराघनानी श काथी मिथ्यादुष्कृत धधने (पोतानी आ दुष्कृत मिथ्या डो जेवु कहीने—आ रीते पोताना पापकृत्यनी गडी करीने) कायिकी क्रियानी परिष्ठापना कर्या विना न तेजो त्याथी पाछा करी गया. जे न प्रमाणु प्रत्येक

बहिष्कृतिष्ठु समागत्य प्रतिनिवृत्तः । तदनन्तर रुद्रदेवाचार्य परिष्ठापनार्थमुन्मुक्त  
 गृहीत्वा मुतद्रुत बहिर्गच्छति । परिष्ठापनभूमौ चरणस्पर्शेन मर्मरक्षणं चातेऽ-  
 प्यकृतपश्चात्ताप केवल वषसा मिथ्यामुक्त्व दशा कायिकीं परिष्ठाप्य प्रति  
 निवृत्तः । राज्ञा सच वृषं धिलोषय चिह्नातम्—अयं रुद्रदेवाचार्य एव स्वप्नदृष्टम्भर  
 इति । ततः प्रभृति तस्या मध्याचार्यस्य 'अङ्गारमर्दनाचार्य' इति नाम  
 प्रसिद्धं जातम् ।

अथवा—'मणसाऽवगे' इति पाठः । इह—अपि शब्दः पठ्यते । स च संमा  
 धने सेनायमर्थ । 'मनसा एको गहते, एतेऽन्यो वचसा गर्हे' इति संभाष्यते'

ही यह घटा से लौट आया इसी क्रम से प्रत्येक मुनिपरिष्ठानके लिए  
 बाहर चारों ओर आ भाकर पीछे पड़े जाये, इसके बाद रुद्रदेवाचार्य  
 परिष्ठापना के लिये उन्मुक्त को लेकर बहुत ही शीघ्रता के साथ बाहर  
 ओर परिष्ठापन भूमि में गये वहा चरण के स्पर्श से मर्मर शङ्क होने  
 पर भी उन्हें कोई पश्चात्ताप नहीं किया केवल वचन से ही मिथ्यामु-  
 क्तून देकर वे कायिकी क्रियाकी परिष्ठापना करके वहां से लौट आये  
 राजाने यह सब उनका काम अपनी आंखोंसे देखकर जान लिया कि प  
 रुद्रदेवाचार्य ही स्वप्नदृष्ट स्मर हैं उस दिनसे लेकर उस अमध्याचार्यका  
 "अङ्गारमर्दनाचार्य" ऐसा नाम प्रसिद्ध हो गया ।

अथवा—"मणसा अवगे" जब ऐसा पाठ किया जाता है तब  
 यहाँ संभाषनार्थक "अपि" शब्द का पाठ करने पर ऐसा अर्थ होता

मुनि कायिकी क्रियानी परिष्ठापनाने भाटे लकार नीकल्या पण परिष्ठापना  
 भूमिमां क्त्वा च उपयुक्त अनुभव यथाधी तेजो परिष्ठापना (परश्वानी  
 क्रिया) क्त्वा चिन्ता च पाठा इरी जया. त्वात्कार रुद्रदेवाचार्य येते कायिकी  
 क्रियानी परिष्ठापना क्त्वा लकार आन्वा तेजो धरणी शीघ्रप्रतिधी परिष्ठापना  
 भूमिमां पठेत्त्वा त्वात् चरणाने. स्पश यथाधी भभर इति यथा ल्यां पण  
 तेभ्यो केषु प्रायश्चित्त न क्यु" केवल वचनधी "भाई मुमुक्षुय मिथ्या दो",  
 जेनु धारणीने कायिकी क्रियाने लयुक्त क इरीने पशने तेजो त्वाधी पाठा इरी  
 शालने तेभनु आ कां चितानी नन्दे। नन्दे जेधने जण्णी वीधु के रुद्रदेवा  
 व्याम च स्वप्नदृष्ट मुट छे ते विषयधी ते अमध्याचार्यतु 'अङ्गारमर्दनाचार्य'  
 नाम पटी त्रयु

अथवा "मणसा अवगे" आ प्रारने। सूत्रक ने कश्चामां जाने, ने।  
 अदी संभाषनार्थक "अपि" शब्दने पाठ उरवाधी जेवे। अथ याच छे के  
 अधीन कालसा भवन करनार "कालक मुनि भनधी अदी करे छे कालक मुनि

इति । अथवा-मनसाऽपि, न वचो मात्रेण एको गर्हते, तथा-वचसाऽपि, न मनो-  
मात्रेण एको गर्हते इति उभयथाऽप्येक एव गर्हते इति भावः ।

प्रकारान्तरेण गर्हाया द्वैविध्यमाह-‘अहवा’ इत्यादि । अथवा गर्हा द्विविधा  
प्रज्ञप्ता । तद् यथा-दीर्घां वा एकः अद्वां गर्हते, ह्रस्वां वा एकः, अद्वां गर्हते ।  
अयमर्थः-एकः-कोऽपि, दीर्घां=वृहतीम्, अद्वां=काल यावत्, यावज्जीवमित्यर्थः,  
गर्हते-गर्हणीयम्, इति भावः । अन्यप्रकारेणापि विवक्षया दीर्घत्वं भावनीयम् ।  
दीर्घह्रस्वयोरापेक्षितत्वात् । यथा-एकमासापेक्षया द्विमासादिकः कालो दीर्घो  
भवति एवम् एकोऽन्यः ह्रस्वाम्=अल्पां वा अद्वां यावद् गर्हते-गर्हणीयम् ।

है कि कोई एक मुनि मन से गर्हा करता है कोई एक मुनि वचन से  
गर्हा करता है ऐसा संभावित होता है ।

अथवा—कोई एक मुनि केवल वचन मात्र से गर्हा नहीं करता है  
किन्तु मन से भी वह गर्हा करता है तथा कोई एक मुनि केवल  
मनो मात्र से गर्हा नहीं करता है किन्तु वचन से भी गर्हा करता है  
इस तरह दोनों प्रकार से भी कोई एक मुनि गर्हा करता है ।

अब प्रकारान्तर से भी गर्हा के दो भेद प्रकट किये जाते हैं “अहवा”  
इत्यादि

अथवा गर्हा दो प्रकार की कही गई है जैसे-कोई एक दीर्घ अद्वा  
की गर्हा करता है और कोई एक ह्रस्व अद्वा की गर्हा करता है इसका  
अर्थ इस प्रकार से है कोई एक बहुत काल तक यावज्जीव गर्हणीय  
( पाप ) की गर्हा करता है दीर्घता और ह्रस्वता ये दोनों आपेक्षिक हैं  
इसलिये अन्य प्रकार से भी विवक्षा दीर्घता समझी जा सकती है जैसे

वचनथी गर्हा करे छे, जेवुं संभावित होथ शके छे ” अथवा कोथक मुनि  
वचन मात्रथी न गर्हा करता नथी पण मनथी पण गर्हा करे छे तथा कोथ  
मुनि केवण मनथी न गर्हा करता नथी, परन्तु वचनथी पण गर्हा करे छे.  
आ रीते कोथ कोथ मुनि भन्ने प्रकारे गर्हा करे छे

हुवे अन्य रीते पण गर्हाना जे लेक भताववामां आवे छे-“अहवा”  
इत्यादि-अथवा गर्हाना नीचे प्रमाणे जे प्रकार छे-(१) कोथ दीर्घकाण पर्यन्त  
गर्हा करे छे (२) कोथ ह्रस्वाद्वाणी-दूका काणनी गर्हा करे छे केटवाक साधुज्जा  
दीर्घकाण सुधी-एवन पर्यन्त गर्हाणीयनी ( पापनी ) गर्हा कर्या करे छे दीर्घता  
अने ह्रस्वता जे भन्ने आपेक्षिक छे तेथी दीर्घताजु भीए रीते पण प्रति-  
पादन करी शक्य छे. जेभके जेक भासनी अपेक्षाजे जे भास आदि सम्य



अथवा-दीर्घमेव अद्वा यावद् गर्हते गर्हणीयं नहु इत्वां यावत् । तथा-इत्नामेव यावद् गर्हते नहु दीर्घामित्यर्थः । एक एवत्र द्विभा कालमेदेन गर्हते गर्हणीय-मावानामनेकत्वादिति । अथवा-दीर्घं इत्वं वा कालमेव गर्हते । अयं भावः-विरहाकुलशक्रवाको रात्रिं गर्हते यत्-बहुदीर्घेण रात्रियां न क्षीयते । संघर्षादि प्रतिरुद्धो पुंसुस्यपीडितउलूको दिवसं गर्हते यत्-अधकारप्रदर्शको बहुदीर्घोऽप्य दिवसः, यो न क्षीयते । एषम्-आभिव्याकुलः पुरुषो रात्रिन्द्रिवरूपं कालं दीर्घत्वेन गर्हते । शतागर्षिष्ठश्च इत्स्वत्वेन रात्रिं दिवसं च गर्हते, इति ॥ सू० ५ ॥

एक मास की अपेक्षा से द्विमास भादि का समय दीर्घ होता है इसी तरह कोई एक अल्पकाल तक गर्हणीय की गर्हा करता है अथवा-दीर्घ काल तक ही गर्हणीय की गर्हा करता है थोड़े काल तक गर्हणीय की गर्हा नहीं करता है तथा थोड़े कालतक ही गर्हा करता है दीर्घकाल तक गर्हणीयकी गर्हा नहीं करता है अथवा कोई एक दो प्रकारके कालमेदसे गर्हणीय भावों में विविधता होने के कारण गर्हणीय की गर्हा करता है अथवा कोई दीर्घ और इत्सव काल मान कर उस की ही गर्हा करता है जैसे-घिरह से आकुल हुआ शक्रवाक रात्रि की गर्हा करता है कि यह रात्रि बहुत दीर्घ घड़ी है जो अभी तक भी क्षीण नहीं हो रही है संघ रणादि से प्रतिरुद्ध हुआ पुंसुक्षित उल्लू दिवस की गर्हा करता है कि यह दिवस बहुत दीर्घ है जो अभी तक क्षीण नहीं हो रहा है इसी तरह से आधि व्याधि से विकल बना हुआ पुरुष रात्रि और दिन इन दोनों

दिव गच्छाव उ आ रीते कोष्ठक साधु अल्पकाल सुधी अद्वितीयनी (पापनी) गदां करे उ अथवा-दीर्घकाल पर्यंत पापनी गदां करे उ अल्पकाल पर्यंत पापनी गदां करे नथी । त्परे कोष्ठ साधु ज्ञेवा होय उ के अल्पकाल पर्यंत पापनी गदां करे उ, दीर्घकाल पर्यंत करे नथी । अथवा कोष्ठक साधु ज्ञेवां पत्त होय उ के ते जे प्रकारता कालसेहोयी अद्वितीय पराथमा विविधता होवाधी अद्वितीयनी गदां करे उ अथवाकोष्ठ इत्सवकालने दीर्घकाल भाग्नीने जने कोष्ठ दीर्घकालने इत्सवकाल भाग्नीने तेनी न गदां करे उ जेभके विरुद्धी आधुग पापुग भयेस अथवाक पक्षि रात्रि की गदां करे उ तेने ज्ञेपु तात्रे उ के 'आ रात्रि बली बाली उ-ते उ ७५री न यनी नथी' पुनःपथी दिवसे देधी शक्तु नथी, तेधी दिवसे ते जोराउनी शोधभा नीकगी शक्तु नथी दिवसे पुंसुक्षित (पुंसु) पुनः दिवसनी गदां करे उ के 'आ दिवस यने। तात्रे उ उ ७५ री न यते नथी ।' जे रीते आधि व्याधि आधुग जनेउ

अतीते गर्हणीये कर्मणि गर्हा भवति, तु भविष्यति तु प्रत्याख्यानं भवति ।  
उक्तं च—‘ अर्ह्यं निन्दामि, पटुपन्न सवरेमि, अणागयं पञ्चकखामि ’ ।

छाया—अतीतं निन्दामि, प्रत्युत्पन्न सवृणोमि, अनागतं प्रत्याख्यामि । तत्र  
प्रत्याख्यानमाह—

मूलम्—दुविहे पञ्चकखाणे पन्नत्ते । तं जहा—मणसा वेगे  
पञ्चकखाइ, वयसा वेगे पञ्चकखाइ । अहवा पञ्चकखाणे दुविहे  
पन्नत्ते । तं जहा—दीहं वेगे अद्धं पञ्चकखाइ, रहस्सं वेगे  
अद्धं पञ्चकखाइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—द्विविधं प्रत्याख्यानं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—मनसा वा एकः प्रत्या-  
ख्याति । वचसा वा एकः प्रत्याख्याति । अथवा—प्रत्याख्यानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् ।  
तद् यथा—दीर्घां वा एरुः अद्धां प्रत्याख्याति, ह्रस्वां वा एकः अद्धां  
प्रत्याख्याति ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘ दुविहे पञ्चकखाणे ’ इत्यादि—

प्रत्याख्यानं—परिहरणीयं वस्तु प्रत्याख्यानम्=गुरुसाक्षिकं निवृत्तिकथनम् ।  
यद्वा—प्रति—प्रमादप्रतिकूल्येन—प्रमादपरिहारेण स्वेच्छा प्रवृत्तिपरिवर्जनपूर्वकम् आ—

रूप काल की दीर्घ होनेके कारण गर्हा करता है शातावेदनीय के उदयसे  
गर्विष्ठ हुआ जीव रात्रि दिनकी ह्रस्व होने के कारण गर्हा करता है ।

जो गर्हणीय कर्म अतीत होता है उस पर गर्हा होती है तथा जो  
कर्म भविष्यत्कालापन्न होता है उसके विषय में प्रत्याख्यान होता है

उक्तं च—“ अर्ह्यं निन्दामि ” इत्यादि सो अब इसी प्रत्याख्यान की  
द्विविधता का वर्णन सूत्रकार करते हैं ॥ सू०५ ॥

“ दुविहे पञ्चकखाणे पन्नत्ते ” इत्यादि ॥ ६ ॥

पुरुष रात्रि अने द्विसत्रय अन्ने काणनी गर्हा करे छे, तेभने रात्रिद्विस  
दाणा दागे छे शातावेदनीयना उदयथी गर्विष्ठ थयेला अन्ने रात्रिद्विस दूंडा  
दागे छे, तेथी तेअो तेनी गर्हा करे छे

जे गर्हाणीय काम थय गयु डोय छे तेनी गर्हा थाय छे आ रीते  
भूतकालिन कथने निन्दनीय अनुलक्षीने गर्हा थाय छे जे गर्हाणीय ( पाप ) कर्म  
सविध्यकालमा थवानु डोय छे, तेने शकवाने निमित्ते प्रत्याख्यान थाय छे  
कहुं पद्यु छे के “ अर्ह्यं निन्दामि ” इत्यादि उदयेना सूत्रमा अे प्रत्याख्याननी  
द्विविधतानुं सूत्रकार प्रतिपादन करे छे ॥ सू० ५ ॥

મર્યાદયા વિચક્ષિતકાલાદિમાનયા, સ્વાન-ગુરોષ્ચે પ્રકયન પ્રત્યાશ્વાનમ્ । ત્વ  
 દ્રવ્યમાવમેદાદ્ ધિવિધમ્ । તપ્ર દ્રવપત -મિધ્યાદષ્ટે પ્રત્યાશ્વાનમ્, અનુપયુક્તસ્ય  
 સમ્યગ્દષ્ટેષ્ઠ । યથા-રાજપુત્ર્યાઃ પ્રત્યાશ્વાનમ્ । માવપ્રત્યાશ્વાનં તુ ઉપયુક્તસ્ય  
 સમ્યગ્દષ્ટે ભવતિ । તથાનેકવિધમ્-દેશ-સર્વ-મૂલગુણોષ્ટરગુણ-મદાદ્, તથાપિ

ટીકાર્થ-પ્રત્યાશ્વાન દો પ્રકારકા કહા ગયા હૈ ફનમેં કોઈં એક ઇસ  
 પ્રત્યાશ્વાનકો મનસે કરતા હૈ કોઈં એક વચન સે કરતા હૈ ત્યાગ કરન  
 યોગ્ય વસ્તુ કે પ્રતિ આશ્વાન કરતા શુરુ સાક્ષી પૂર્વક ડસકી નિવૃત્તિ  
 કા કથન કરના હસકા નામ પ્રત્યાશ્વાન હૈ

અથવા-પ્રમાદ કો છોડકર અપની ઈચ્છા કી પ્રવૃત્તિ કે પરિવર્જન  
 કા (ત્યાગકા) વિચક્ષિત કાલ કી મર્યાદા તક શુરુ કે સમક્ષ પ્રકાશિત  
 કરના હસકા નામ મી પ્રત્યાશ્વાન હૈ જૈસે અમુક વસ્તુ કા અમુક કાલ  
 તક મુક્તે ત્યાગ હૈ યહ પ્રત્યાશ્વાન દ્રવ્ય ઓર ભાવ કે મેદ્ સે દો પ્રકાર  
 કા હૈ મિધ્યાદષ્ટિ જીષ કા જો પ્રત્યાશ્વાન હૈ યહ દ્રવ્ય પ્રત્યાશ્વાન હૈ

અથવા-અનુપયુક્ત સમ્યગ્દષ્ટિ કા જો પ્રત્યાશ્વાન હૈ યહ મી દ્રવ્ય  
 પ્રત્યાશ્વાન હૈ જૈસે રાજપુત્રી કા પ્રત્યાશ્વાન ભાવપ્રત્યાશ્વાન તો ઉપ  
 યુક્ત સમ્યગ્દષ્ટિ કો હોતા હૈ યથાપિ યહ વેશ, સર્વ મૂલગુણ ઓર ઉત્તર

‘ દુવિદે પચ્ચક્ષાણે પચ્ચત્તે ’ ઇત્યાદિ ॥ ૬ ॥

પ્રત્યાશ્વાન બે પ્રકારના કહ્યાં છે કેઈ કેઈ એવે મનથી પ્રત્યાશ્વાન  
 કરે છે અને કેઈ કેઈ એવે વચનથી પ્રત્યાશ્વાન કરે છે ત્યાગ કરવા યોગ્ય  
 વસ્તુના પચ્ચક્ષાણ કરવા-ગુરુની સાક્ષીપૂર્વક તેની નિવૃત્તિનું કથન કરતું તે  
 વસ્તુના બક્ષણ આદિને ત્યાગ કરવો, તેનું નામ પ્રત્યાશ્વાન છે.

અથવા-પ્રમાદને ત્યાગ કરીને પોતાની ઈચ્છાથી પ્રવૃત્તિને અમુક  
 સમય પયન્ત ગુરુની સમક્ષ ત્યાગ બંધેર કરવો તેનું નામ પણ પ્રત્યાશ્વાન  
 છે જેમકે કન્દમૂળ શિવાવની વસ્તુ અમુક સમય પર્ષન્ત ત્યાગ કરવાની જે પ્રતિજ્ઞા  
 કરવી તેનું નામ પ્રત્યાશ્વાન છે આ પ્રત્યાશ્વાનના દ્રવ્ય અને ભાવના લેદથી  
 બે પ્રકાર કહ્યા છે મિધ્યાદષ્ટિ એવના જે પ્રત્યાશ્વાન હોય છે તે દ્રવ્યપ્રત્યા  
 શ્વાન હોય છે અથવા-અનુપયુક્ત સમ્યગ્દષ્ટિના જે પ્રત્યાશ્વાન હોય છે તે  
 પણ દ્રવ્યપ્રત્યાશ્વાન હોય છે જેમકે નીલે જેવું દહાન્ત આપ્યું છે તે રાજ  
 કુમારીના પ્રત્યાશ્વાન, ભાવપ્રત્યાશ્વાન તો ઉપયુક્ત સમ્યગ્દષ્ટિ એવના જે  
 હોય છે બે કે તે દેશ સર્વ મૂલગુણ અને ઉત્તરમુખના ભેદથી અનેક પ્રકાર

कारणभेदाद् द्विविधम्, इत्याह—'मणसा वेगे पञ्चकखाइ' इत्यादि । मनसा वा एकः प्रत्याख्याति=प्राणातिपातादि परिहारार्थं प्रतिज्ञां करोति । शेषं प्राग्बद्ध व्याख्येयम् ।

अथ द्रव्यप्रत्याख्यानं राजपुत्र्या दृष्टान्तः प्रोच्यते—

केनचिद्राजा रजपुत्री कस्मैचिद्राज्ञे प्रदत्ता । तस्याः पतिमृतः । ततः सा पित्रा स्वभवनमानीता, उक्ता च-पुत्रि ! धर्मं समाचर । सा पाखण्डिभ्यो दानं ददाति । एरुदा वर्षाकाले समागते 'धर्मसमयः' इति विदित्वा 'मांसं न खादामि' इति तथा प्रत्याख्यानं कृतम् । ततो वर्षाकालपरिसमाप्त्वा पारणके तदाज्ञया तद-

गुण के भेद से अनेक प्रकार का होता है फिर भी कारण के भेद से यह दो प्रकार का कहा गया है कोई मन से प्राणातिपात का परिहार (त्याग) करनेकी प्रतिज्ञा करता है कोई वचनसे प्राणातिपातका परिहार (त्याग) करने की प्रतिज्ञा करता है बाकी का और सब कथन पहिले की तरह ही व्याख्या युक्त जानना चाहिये

द्रव्य प्रत्याख्यान में राजपुत्री का दृष्टान्त-

किसी राजा ने अपनी पुत्री का विवाह किसी दूसरे के साथ कर दिया कुछ समय बाद उसके पति का देहावसान हो गया सो इसका पिता इसे अपने घर पर लाया और उस से कहने लगा-पुत्रि ! आनन्द से रहो और धर्माचरणपूर्वक अपना समय व्यतीत करो पिता की आज्ञानुसार वह घर पर ज्ञान्ति से रहने लगी और धर्माचरण करने लगी यह पाखण्डियों को दान देती थी एक दिन की बात है वर्षाकाल के आ जाने पर इसने ऐसा विचार किया कि यह धर्म करने का समय

रना होय छे, छातां पणु कारणुना लेदथी तेना भे प्रकार क्छां छे कोछ मनथी प्राणुतिपातने त्याग करवानी प्रतिज्ञा करे छे, कोछ वचनथी प्राणुतिपातने त्याग करवानी प्रतिज्ञा करे छे णाकीनु सभस्त कथन पडेवांनी जेम न (गर्हानी जेम न) प्रतिपादित थयु जेधजे.

द्रव्यप्रत्याख्यानमा राजपुत्रीनु दृष्टान्त—

कोछ राजजे पोतानी कुंवरीना लक्ष कर्था. अमुक समय पछी तेना पतिनु अवसान थयु, तेथी तेना पिता तेने पोताने घर तेडी लाव्ये तेजे तेने आ प्रभाणु शिषामणु आपी—“ भेटी । आनंदपूर्वक रहे अने धर्माचरणुमां तु तारे समय व्यतीत कर ” पितानी सलाह प्रभाणु ते धर्माचरणु पूर्वक शान्तिथी रहेवा लागी ते पाणुडीअने दान देती हती. जेक वधत वर्षाकालने समय आवी पडेअथता तेने जेवे विचार आव्ये के आ जेमासाने काण तो धर्म करवा भाटेने काण छे, भारे आ काण दरमियान मांस

भृत्यैर्बहुभ्रातीयजीवानां घातं कृत्वा त्रिषिधानि मांसानि, भन्यापयि नानात्रि  
घानि भोज्यानि च निष्पाद्य सत्सर्माप समुपनोतानि । सा च यद् यस्मै रोचते  
सत्तस्मै ददाति । तदनसरे तत्र मासक्षपणपारणके मिहार्यमेकस्वरोपनोऽनगारः  
समागतः । मांसग्रहणार्थं सा प्रार्थितवती । मुनिना कथितं—मांसं न कल्पते मुनी  
नाम् । सा माह—वर्षाकालो व्यतीतस्तर्हि कथं न कल्पते ? तेनोक्तम्—मांसनिवृत्त्यर्थं  
सदैव साधूनां वर्षाकाल एव । इत्युत्तरात् स तस्यै धर्मव्यां कथयति, मांसदोषात्  
वर्णयति स्म । तथाहि—

हे सो मे मांस नहीं खाऊंगी अतः उसने मांस के प्रत्याख्यान कर दिया  
जब वर्षाकाल समाप्त हो गया तो पारणक के दिन उसकी आज्ञा के  
अनुसार उसके भृत्यों ने अनेक जातीय जीवों का घात करके विभिन्न  
प्रकार के व्यञ्जनों के साथ २ मांस को पकाया और उसके समक्ष लाकर  
उस निष्पादित घट्टु को रम्ब दिया जो जिसके लिये रुचता था वह  
उसके लिये देने लगी, ठीक इसी समय वहा मासक्षपण की पारणा क  
निमित्त मित्रा करते हुए एक तपोधन अनगार आ गये मांस ग्रहण के  
लिये उसने उनसे प्रार्थना की मुनि ने कहा मुनिजनों को मांस कल्पित  
नहीं है फिर उसने कहा महाराज ! वर्षाकाल समाप्त हो गया है फिर  
यह क्यों कल्पित नहीं है मुनि ने कहा—मांस निवृत्ति के लिये तो सदा  
ही साधुओं का वर्षाकाल ही है ऐसा कहकर उसने उसके लिये धर्म  
कथा सुनाई जिसमें मांस के दोषों का उसने वर्णन किया “ पश्चिदिय

आहुं लोभमे नही आवे। विचार करीने तेव्हे मांसाहारना प्रत्याख्यान करी।  
आपरे वर्षाकाल समाप्त भव जसे त्वारे प्रत्याख्यानने समक्ष पक्षु पूरे भव  
जवाभी तेव्हे पीतानना सेवडे। पासे अनेक जातना लोचनी उत्या कथवीने  
विविध प्रकारनी वानजीवोनी साथे साथे मांस पक्षु रंधाव्यु ने। कशेने आ  
विविध प्रकारनुं सोजत तेनी पासे दावीने भूही वीधुं ने कौधं अन्व्याजत त्या  
आवते। तेने ते भनपसठ वस्तु आपवी उवी उवे जेवुं जन्तुं हे मांस  
अभ्रवना पारणा निमित्ते कौधं जेठ तपोधन अजुजार जेवरी करवा नीकन्या  
उता तेने। ते शकभारी पासे आवी पढोव्या शकभारीजे तेभने वितति  
करी हे आ मांसने आप प्रदवु करी साधुजे जवाव आप्ये—“ मुनिजनेने  
मांस कल्पतु नही, आपरे भाटे मांसाहारने। निरेष छे ” शकभारीजे कहुं।  
‘ मुनिशक शिवायस पूं यधजु छे, उवे तो ते आपने करु करपी सके ”  
मुनिजे जवाव आप्ये— मांस निवृत्तिने भाटे तो आपरे सदा वर्षाकाल ज  
छे ” आ प्रभावे कहीने तेभजे तेने धर्म कथा सज्यावी, जेभां तेभजे मांसना

“ પંચિદિયવદ્ભૂયં, મંસં દુર્ગમ્મસુઙ્ગીમચ્છ ”

છાયા—પચ્ચેન્દ્રિયવદ્ભૂતં, માંસં દુર્ગન્ધમશુચિ વીમત્સમ્ ” ઇત્યાદિ ।

ઉક્તશ્ચાન્યત્રાપિ—

અનુમન્તા વિગસિતા નિહન્તા ક્રય વિક્રયી ।

સંસ્કર્તા ચોપહર્તા ચ શ્વાદકથ્વેતિ યાતકાઃ ॥ ૧ ॥

एव मुनिना प्रतिवोधिता सती सा राजदुहिता प्रव्रजिता । इत्येवं तस्याः पूर्वं द्रव्यप्रत्याख्यानं, पश्चाद् भावप्रत्याख्यानं जातम् ।

પ્રકારાન્તરેણાપિ દ્વૈવિધ્યમાહ—‘ અહવા પચ્ચક્ષાણે ’ ઇત્યાદિ ।

दीर्घाद्वा ह्रस्वाद्वापदयोर्व्याख्यानं गर्हासूत्रवद् बोध्यम् ॥ सू० ६ ॥

પ્રત્યાખ્યાનાદિકં જ્ઞાનપૂર્વકમેવ ક્રિયમાણં મોક્ષસાધકં ભવતીત્યત આદ—

सूत्रम्—दोहिं ठाणैहिं अणगारे संपन्ने अणादीयं अणवयगं दीहमज्जं चाउरंतसंसारकंतरं वीइवइज्जा, तं जहा-विज्जाए चैव, चरणेण चैव ॥ सू० ७ ॥

वह भूय मंसं दुर्गममसुङ्गीमचछ ” उसने कहा मांस पच्येन्द्रिय जीव के वध से उत्पन्न होता है यह दुरभिगन्ध वाला होता है अपवित्र होता है और वीमत्स होना है इत्यादि अन्यत्र भी ऐसा ही कहा है—

“ अनुमन्ता ” इत्यादि । इस प्रकार से मुनि के द्वारा प्रतिवोधित हुई वह राजपुत्री दीक्षित हो गई इस तरह उस राजपुत्रीका पहिले द्रव्य प्रत्याख्यान हुआ और बाद में भावप्रत्याख्यान हुआ

પ્રકારાન્તરે સે મી પ્રત્યાખ્યાન મેં દ્વિપ્રકારતા હૈ જો “ અહવા પચ્ચક્ષાણે ” હન પદોં દ્વારા પ્રકટ કી ગઈ હૈ હનમેં દીર્ઘાદ્વા ઓર હ્રસ્વાદ્વા પદોં કા વ્યાખ્યાન ગર્હાં સૂત્ર કી તરહ સે જાનના ચાહિયે ॥સૂ૦૬॥

हेपोतुं पञ्चुंन क्युं. “ पंचिदियवदभूय मंसं दुर्गममसुङ्गीमचछ ” तेभ्ये भताभ्युं के मांसं पच्येन्द्रिय एवना वधथी उत्पन्न थाय छे, ते दुर्गंधयुक्ता डोय छे, अपवित्र डोय छे अने भीमत्स डोय छे ” इत्यादि. अन्यत्र पञ्च अंतुं न क्यु छे के “ अनुमन्ता ” इत्यादि मुनिने आ प्रकारने उपदेश सालणी प्रतिवोधित थयेलां ते राजकुवरीअे दीक्षा अड्यु करी ते राजकुवरी द्वारा पहिले द्रव्यप्रत्याख्यान अने पाछणथी लावप्रत्याख्यान थया

બીજી રીતે પણ પ્રત્યાખ્યાનમાં દ્વિવિધતા છે, જે “ અહવા પચ્ચક્ષાણે ” ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ દ્વારા તે પ્રકટ કરવામાં આવી છે. તેમાં કાળની અપેક્ષાએ દીર્ઘતા અને હ્રસ્વતાનુ કથન ગર્હાં સૂત્રમાં કહ્યા અનુસાર સમજવું. ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા—દ્રામ્યાં સ્વાનામ્યામનગારઃ સંપન્નઃ । અનાદિકમ્ અનવદ્યમ્ વીર્ષાદ્  
ચાતુરન્તસસારકાન્તારં જ્યતિગ્રજતિ । તદ્ યથા-વિષયા ચૈવ, ધરણેન ચૈવ ॥૭૦॥

ટીકા—‘દોહિ ઠાળેહિ’ ઇત્યાદિ—

દ્રામ્યાં સ્વાનામ્યાં=શુભામ્યાં સંપન્ન.=યુક્ત અનગારઃ—નાસ્ત્યગારં શુદ્ધં યસ્ય  
સ તથા સાધુરિત્યર્થે, અનાદિકમ્=માદિરહિતમ્, અનવદ્યમ્=અન્યદ્ય—પર્યન્તસ  
શ્વાસ્તિ યસ્ય સામાન્યજીવાપેક્ષયા તદ્ અનવદ્યમ્ અન્તરહિતમિત્યર્થઃ, તદ્,  
વીર્ષાદ્યમ્-વીર્ષા-અદ્વા=કાલો યસ્ય તત્તથા તદ્-વીર્ષકાલિકમિત્યર્થ, યદ્વા-  
‘વીર્ષામ્ન્યમ્’ ઇતિચ્છાયા, વીષ અષ્ટ્વા=માર્ગો યસ્મિન્સ્તદ્ વીર્ષામ્ન્યમ્ તદ્,

પ્રત્યાખ્યાન આદિ જ્ઞાનપૂર્વક હૈ કિયે જાને પર મોક્ષ કે સાધક  
હોતે હૈ અનઃ અય ઇસી યાત કો પુષ્ટ કરને કે લિયે સુશ્રકાર કહતે હૈ—  
“દોહિ ઠાળેહિ અગગારે સપન્ને” ઇત્યાદિ ॥૭૦॥

ટીકાર્થ—દો સ્થાનોસે સમ્પન્ન અનગાર—સાધુ આદિ રહિત એવ સામાન્ય  
જીવ કી અપેક્ષા અન્તરહિત તથા વીર્ષાદ્વાષાલે-વીર્ષકાલિક અથવા  
અમ્યેમાર્ગવાલે વેસે ઇસ ચાતુરન્ત સસારકાતાર કો વિષયા જ્ઞાન ઓર  
ધરણ ધારિત્ર સે હી ઇહ્લક્રિત કરતા હૈ

સાધુ ઘર રહિત હોતા હૈ ઇસલિયે ડસકા નામ અનગાર હૈ સસાર  
કી કોઈ પ્રારમ્ભાવસ્યા નહીં હૈ ઇસલિયે ઇસે અનાદિ કહા ગયા હૈ અવ  
દ્યમ્ નામ પર્યન્ત કા હૈ યહ પયન્ત જિસકા નહીં હૈ ડસકા નામ અનવ  
દ્યમ્ હૈ સામાન્ય જીવ કી અપેક્ષા સે હી સસાર કો અન્તરહિત કહા  
ગયા હૈ અદ્વા નામ કાલકા હૈ ઇસ સસાર કા કાલ વીર્ષ હૈ ઇસલિયે

પ્રત્યાખ્યાન આદિ જ્ઞાનપૂર્વક કરવામાં આવે તો જ મોક્ષના સાધક બને  
છે એજ યાતને પુષ્ટ કરવાને માટે સુશ્રકાર કહે છે કે—

“દોહિ ઠાળેહિ અગગારે સવન્ને” ઇત્યાદિ ॥ ૭ ॥

ટીકાર્થ—એ સ્થાનોમાંથી યુક્ત અનગાર જ અનાદિ (આદિ રહિત), અનન્ત,  
(સામાન્ય જીવની અપેક્ષાએ અન્ત રહિત) વીર્ષકાલિન (સામાન્ય જીવની અપે  
ક્ષાએ અથવા લાંબા પંથવાગ્ય આ ચાતુરન્તસસાર કાન્તારને (૧) વિષય-જ્ઞાન  
અને (૨) ધરણ-ધારિત્ર બંને કોળગી થકે છે આ બે સ્થાનની આરાધનાથી જ  
સસારને તરી શકાય છે

સાધુ ઘરરહિત હોય છે તેથી તેને અનગાર કહ્યો છે જ સસારની કોઈ  
પ્રારભાવસ્યા નથી તેથી તેને અનાદિ કહ્યો છે ‘અવદ્યમ્’ અવદ્ય એટલે  
પર્યન્ત આ પર્યન્તને-અન્તને બેમાં અભાવ છે તેને અનવદ્યમ્ કહે છે સામાન્ય  
જીવની અપેક્ષાએ જ સસારને અન્તરહિત કહ્યો છે. ‘અદ્વા’ એટલે કાળ.

तादृशं चातुरन्तसंसारकान्तारम्—चत्वारः अन्ताः=नरकादिविभागा यस्य तत् चतुरन्तम्, तदेव चातुरन्तम्, तच्च संसारकान्तारं=भवकाननं, तद् व्यतिव्रजति=अतिक्रामति—स्थानद्वयेन सम्पन्नो मुनिः संसारकान्तारमुल्लङ्घयतीत्युक्तम् । तत्र किं तत् स्थानद्वयम् ? इति जिज्ञासायामाह— 'तं जहा' इत्यादि । तद्यथा—विद्यया=ज्ञानेन चैव तथा चरणेन=चारित्र्येण चैवेति ।

इह संसारकान्तारातिक्रमणं प्रति ज्ञानं चारित्र्यं चेतिद्वयं कारणमित्युक्तं तत्र ज्ञानचारित्र्ययोर्द्वयोः कारणत्वमस्ति, प्रत्येकं तयोरैहिकार्थेष्वप्यकारणत्वादिति बोध्यम् ।

इसे दीर्घाद्धा वाला कहा गया है अथवा “अद्धा की छाया” अध्वा” ऐसी भी हो सकती है सो इस पक्ष में जिसमें लम्बा मार्ग है उसका नाम दीर्घाध्व है संसार का मार्ग भी ऐसा ही है अतः यह भी इस विशेषणवाला प्रकट किया गया है इस संसार का नरकादिरूप चार विभाग है इस कारण इसे चातुरन्त कहा गया है अन्त नाम विभाग का है चतुरन्त ही यहाँ ज्ञान और चारित्र्य इन दोनों में संसारकान्तार के अतिक्रमण करने के प्रति जो कारणता कही गई है सो भिन्न २ में यह कारणता नहीं है किन्तु दोनों के मेल में ही यह कारणता है ऐसा जानना चाहिये क्यों कि इनमें से प्रत्येक में भी ऐहिककार्यों के प्रति भी कारणता नहीं है

आ संसारनेा डाण दीर्घ ( लाभा ) डोवाथी तेने दीर्घाद्धावाणे ( दीर्घाकाविने ) कह्यो छे अथवा “अद्धा” नी छाया “अध्वा” पणु थाय छे आ रीतेविचरवामा आवे तो जेमां लाभा मार्ग छे तेनुं नाम दीर्घाध्व ( लाभा मार्गवाणे ) छे, संसारनेा मार्ग पणु जेवो ज डोवाथी तेने भाटे आ विशेषण वपरायुं छे

आ संसारना नरकादिइय आर विलाग छे “अन्त” जेटले ‘विलाग’. जेना आर विलाग छे जेवा संसारने चतुरन्त संसार कह्यो छे अर्धी जेवुं जताववामा आव्युं छे के जान अने आरित्र, जे अन्नेनी आराधना द्वारा ज आ संसार इपी काननने पार करी शकय छे जेकदा ज्ञाननी आराधनाथी अथवा जेकदा आरित्रनी आराधनाथी जे वात सलवी शकती नथी. अन्ने स्थानेना जेणमां ज जे वात सलवी शके छे—अन्नेनेा जेण ज संसार कान्तारने तराववामां डारणुभूत अने छे, जेम समज्जुं, डारणु के आ जेमनाना प्रत्येकमा पणु जैहिककार्येना प्रत्ये पणु डारणुता नथी,



નવુ મોક્ષપાપ્તો જ્ઞાનચારિત્રિયો સામાન્યેન કારણત્યમુક્તમ્ અતસ્તત્ર જ્ઞાનમેવ  
પધાનં મવતુ નવુ ચારિત્રમ્ (ક્રિયા) ૧, અથવા-જ્ઞાનમપૈકં કારણ મવતુ નવુ  
ક્રિયા, ક્રિયાયા જ્ઞાનમન્યત્વાત્ ૨ । કિચ્ચ-યથા જ્ઞાનમ્ય ફલ ક્રિયાઽસ્તિ તથા  
ક્રિયાનન્તર યત્ પ્રાપ્યતે મોક્ષરૂપ ફલં તદ્વપિ જ્ઞાનસ્યેવ ફલમ્, ધતો જ્ઞાનમેવ  
વત્કારણત્વેન વાચ્યમ્ । કિચ્ચ-યોષકાલેઽપિ યત્ જ્ઞેયપરિચ્છેદાત્મકં જ્ઞાનં મવતિ  
તસ્પાપિ કારણં જ્ઞાનમેવ । કિચ્ચ-જ્ઞેયપરિચ્છેદાનન્તર રાગાદિ નિગ્રહો મવતિ  
તસ્પાપિ જ્ઞાનમેવ કારણમ્ । યથા-મૃષિકા ઘટ્સ્ય કારણ મવતિ સા તદન્તરાલ-  
વર્તિનાં પિષ્ઠ-શિવક-સ્વાસ-કોશ-કુચ્ચાદીનામપિ કારણ મવત્યેવ, તથા-૩૬

શ્લોકા—મોક્ષ પ્રાપ્તિ મેં સામાન્યરૂપ સે હી જ્ઞાનચારિત્ર મેં કારણતા  
કહી ગઈ હે હસલિયે મોક્ષપ્રાપ્તિ મેં પ્રધાન કારણ જ્ઞાન કો હી માનના  
ચાહિયે ચારિત્ર કો નહીં? અથવા એક જ્ઞાન કો હી કારણ માનના  
ચાહિયે ચારિત્રરૂપ ક્રિયા કો નહીં ક્યોં કિ ક્રિયા જ્ઞાન અન્ય હોતી હે  
૨ કિચ્ચ—જિસ પ્રકાર સે જ્ઞાન કા ફલ ક્રિયા હે વૈસે હી ક્રિયા કે અન  
ન્તર જો પ્રાપ્ત હોતા હે મોક્ષરૂપ ફલ વહ બી જ્ઞાન કા હી ફલ હે હસ  
લિયે જ્ઞાન હી મોક્ષ કા કારણ કહના ચાહિયે કિચ્ચ—યોષકાલ મેં બી  
જો જ્ઞેયપરિચ્છેદાત્મક જ્ઞાન હોતા હે હસકા બી કારણ જ્ઞાન હી હે તથા  
જ્ઞેયપરિચ્છેદ કે અનન્તર જો રાગાદિકોં કા નિગ્રહ (જીતના) હોતા હે  
તમકા બી કારણ જ્ઞાન હી હે જૈસે મૃષિકા ઘટ કા કારણ હોતા હે

શ્લોકા—જ્ઞાનચારિત્રને સામાન્યતઃ મોક્ષપ્રાપ્તિના કારણરૂપ બતાવ્યાં છે,  
તેથી મોક્ષપ્રાપ્તિમાં પ્રધાન કારણ તો જ્ઞાનને જ માનવું જોઈએ, ચારિત્રરૂપ  
ક્રિયાને સામાન્ય મળવું જોઈએ નહીં. (૨) અથવા જોકલા જ્ઞાનને જ મોક્ષ  
પ્રાપ્તિના કારણરૂપ ગણવું જોઈએ—ચારિત્રરૂપ ક્રિયાને કારણરૂપ ગણવા જોઈએ નહીં.  
જેમ જ્ઞાનવું ફળ ક્રિયા છે એવ પ્રમાણે ક્રિયા બાદ જે મોક્ષરૂપ ફળની  
પ્રાપ્તિ થાય છે તે પણ જ્ઞાનના ફળરૂપ જ હોય છે તેથી જ્ઞાનને જ મોક્ષવું  
કારણ માનવું જોઈએ.

વળી ભાષ્યકાળમાં પણ જે જ્ઞેયપરિચ્છેદાત્મક પદાર્થ જ્ઞાન થાય છે તેવું કારણ  
પણ જ્ઞાન જ હોય છે જ્ઞેયપરિચ્છેદ ના અનન્તર (પશ્ચાત્) જે રાગાદિકોના  
નિગ્રહ (છૂટવાવું) થાય છે તેવું કારણ પણ જ્ઞાન જ છે જેથી રીતે માયી  
પ્રધાની રચનામાં કારણરૂપ બને છે, એજ માયી તે પ્રધાની રચના પહેલાં જે  
ચિદ્, ચિવિર, (માયીમાંથી બનાવવામાં આવતો યાગીના જેવો આકાર વિશેષ),

ज्ञानमपि मोक्षस्य, तथा तदन्तरालवर्तिनां च ज्ञेयपरिच्छेदरागद्विनिग्रहादीनां कारणं भविष्यति ? । किञ्च—यत् खलु मन्थानुस्मरणमात्रेण विषमक्षणं, तथा नभोगमनादिकं चानेकविधं कार्यं दृश्यते तदपि ज्ञानमात्रस्यैव फलम् । यथा चैतद् लौकिकं दृष्टफलं ज्ञानस्य दृश्यते तथैव लोकोत्तरं मोक्षरूपदृष्टमपि फलमनुमीयते ? इति ।

अत्रोच्यते—‘ ज्ञानमेव प्रधानं, ज्ञानमेव चैवं कारणं, ननु क्रिया ’ इति यदुक्तं तन्न युक्तम्, ज्ञानाद्विक्रिया भवति, तत्रैष्टक्यपाप्ति, अतो द्वयमपि कारणं मन्तव्यम् । ज्ञानमात्रस्य कारणत्वे क्रियायाः ज्ञानफलत्वेन कल्पन व्यर्थम्, भव-

वही सृष्टि का तदनन्तरालवर्ती पिण्ड, जिह्वि, स्यान्, मोक्ष और कुशुलादिकों का भी कारण होता ही है उसी प्रकार से ज्ञान जब मोक्ष का कारण होता है तब वह तदनन्तरालवर्ती ज्ञेयपरिच्छेदों का और रागादि निग्रहों का भी कारण हो जाना किञ्च—यत्र के अनुस्मरण मात्र से विष का उतरना रूप फल तथा आकाश गमनादिरूप अनेकविध कार्य जैसे देखे जाते हैं तो वे ज्ञानमात्र के ही फल होते हैं तो जैसा वह ज्ञान का लौकिक दृष्ट फल प्रतीत होता है उसी तरह से लोकोत्तर जो मोक्षरूप अदृष्ट फल है वह भी ज्ञान का ही फल है ऐसा अनुमान से प्रतीत हो जाता है ।

उ०—“ ज्ञान ही प्रधान है ज्ञान ही एक कारण है क्रिया कारण नहीं है ” ऐसा जो कहा गया है वह युक्ति युक्त नहीं कहा गया है क्यों कि ज्ञान से क्रिया होती है क्रिया से इष्टफल की प्राप्ति होती है इसलिये दोनों में कारणता जाननी चाहिये यदि ज्ञानमात्र को कारण

देश अने दुःखसाहिकोनी स्थानां पणु कारणभूत डोय छे, अण प्रमाणे ज्ञान-मोक्षने माटे कारणभूत डोय तो वयगाणाना ज्ञेय परिच्छेदोनु अने रागाहिकोना निग्रहुंतुं कारणु डोवुं न लेधये. वणी मत्रना अनुसरणु मानथी विष उतरी नवाइप इण तथा आकाशगमन आदि इप अनेक प्रकारना कार्य ने लेवामा आवे छे, ते ज्ञानमात्रना इक्षस्वइप न डोय छे तो ये ज्ञाननु लेवुं लौकिक इण प्रतीत थाय छे अणुं न लोकोत्तर-मोक्ष प्राप्तिइप अदृष्ट इण पणु डोवुं न लेधये, तेने पणु जानना इणस्वइप मानवामां शा वधो छे ?

उत्तर—“ ज्ञान न प्रधान छे, ज्ञान न अणु कारणु छे—क्रिया कारणु नथी, ” आ प्रमाणु कथन युक्तियुक्त नथी, कारणु के ज्ञानथी क्रिया थाय छे अने क्रियाथी इष्टइणनी प्राप्ति थाय छे, तेथी णन्नेमां कारणुता मानवी लेधये. ने ज्ञानमात्रने कारणु मानवामा आवे, तो ज्ञानना इक्षइप क्रिया छे अणुं

न्यते-क्रियारहितमपि ज्ञानमात्र स्वकार्यं साधयेत्, परन्तु तथा न साधयति, कारणत्वेन क्रियाया स्वीकारात् । मोक्षप्राप्तौ हि चारित्र्योत्पादनेन ज्ञानमुपकारकं भवति ज्ञानाच्चारित्र्यं प्राप्नोति, चारित्र्यमत्र मोक्ष, तथा च मोक्षं प्रति क्रियैव साक्षात्कारणम्, क्रियां प्रति ज्ञान कारणम् । तस्मात् मोक्षं प्रति ज्ञान परंपरा कारणम् । साक्षात्कारणत्वेन क्रियैव प्रधानं कारणं भवतीति क्रियाया अप्रधान्य-मकारणत्वं च नोपपद्यते ।

यदि ज्ञान क्रिया चेति द्वयं मोक्षप्राप्तौ युगपदुपकारकं मन्यते, तदाऽपि माधान्यं कारणत्वं चेति द्वयं क्रियायायुक्तम्, ननु अप्रधान्यमकारणत्वं च क्रियायाः संभवति ।

माना जावेगा तो ज्ञान की फलरूप क्रिया है ऐसा मानना व्यर्थ है आपके मतानुसार क्रिया रहित भी ज्ञानमात्र अपने कार्य को सिद्ध करेगा परन्तु ऐसा वह करता नहीं है क्यों कि कारणरूप क्रिया को स्वीकार किया गया है मोक्षप्राप्ति में चारित्र्योत्पादन से ज्ञान उपकारक होता है ज्ञान से चारित्र्य की प्राप्ति होती है और चारित्र्य से मोक्ष प्राप्त होता है इसलिये मोक्ष प्राप्ति में साक्षात्कारण क्रिया ही है क्रिया के प्रति ज्ञान कारण है अतः मोक्ष प्राप्ति के प्रति ज्ञान परम्परारूप से कारण पड़ता है साक्षात् रूप से कारणतो क्रिया ही पड़ती है इसलिये वही प्रधानतर कारण है इस तरह क्रिया में अप्रधानता और अकारणता घटित नहीं होती है ।

यदि ज्ञान और क्रिया ये दो मोक्षप्राप्ति में एक साथ उपकारक माने जाते हैं तब भी क्रिया में प्रधानता और कारणता ये दोनों सध जाते हैं इस तरह अप्रधानता और अकारणता क्रिया में संभावित नहीं होती है

मानवु व्यर्थं ज्ञानी ज्ञेयेः आपन्ता अतः प्रमाद्ये तो क्रिया रहित ज्ञानमात्र ही ध्यातव्य कार्यने सिद्ध करी देये परन्तु ज्ञेयुं जन्तुं नथी । कारण के कारणरूपे क्रियानो स्वीकार करवाया जाये तो मोक्षप्राप्तिमां चारित्र्योत्पादन द्वारा ज्ञान उपकारक साधये ज्ञानही चारित्र्यकी प्राप्ति साधये ज्ञाने चारित्र्य वदे मोक्षकी प्राप्ति साधये तेषी मोक्षप्राप्तिमां साक्षात् कारणरूपेण तो क्रिया ही है ज्ञाने क्रियामां ज्ञान कारणरूपेण तेषी मोक्षप्राप्तिमां ज्ञान परम्परारूपे कारणरूपेण ज्ञाने से, साक्षात् रूपे तो क्रिया ही कारणरूपेण ज्ञाने से जा शीते क्रिया ही प्रधानतर कारणरूपेण साधये तेषी क्रियामां अप्रधानता ज्ञाने अकारणता घटावी शक्या नथी ।

जो ज्ञान ज्ञाने क्रिया, जो ज्ञानेने मोक्षप्राप्तिमां ज्ञाने साथे उपकारक मानवामां जावे तो पक्ष क्रियामां प्रधानता ज्ञाने कारणत्वानुं प्रतिपादन करी शक्या है जा शीते क्रियामां अप्रधानता ज्ञाने अकारणता घटावी शक्या नथी ।

યસ્તુ ક્રિયાયાઃ કારણત્વં ન મન્યતે, તં પ્રતિ વિશેષેણોચ્યતે ક્રિયા હિ મોક્ષં પ્રતિ સાક્ષાત્કારણત્વાદનત્યં કારણમ્, જ્ઞાનંતુ પરમ્પરાકારણત્વાદનત્ય કારણમ્ । તત્રાનત્યં કારણં વિદ્યાય યદનત્યસ્યૈવ કારણત્વેન કલ્પન તન્નિર્મૂલં શાસ્ત્રવિરુદ્ધં ચ, સૂત્રે હૈવ “ વિજ્ઞાણ ચેવ કરણેણ ચેવ ’ ઇતિ ચરણસ્યૈવાનત્યકારણત્વેન સ્વીકૃત- ત્વાત્ । एतेन क्रियायाः ज्ञानफलत्वमुपपाद्य ज्ञानमात्रस्य यत्कारणत्वमुक्तं तदपि निराकृतम् ।

યદુક્તં-વોધકાલેઽપિ યો જ્ઞેયપરિચ્છેદો ભવતિ, તસ્ય કારણં જ્ઞાનમેવેતિ તસ્માદ્ જ્ઞાનમેવ કારણં નતુ ક્રિયેતિ, તદપ્યયુક્તમ્ । યતઃ-જ્ઞેયપરિચ્છેદોઽપિ જ્ઞાન-

જો ક્રિયા મેં કારણતા નહીં માનતા હૈં ઉસકે પ્રતિ એસા કહા જાતા હૈં કિ ક્રિયા મોક્ષ કે પ્રતિ સાક્ષાત્કારણ હોને સે અનત્યકારણ હૈં તથા જ્ઞાન પરમ્પરાકારણ હોને સે અનનત્યકારણ હૈં ઇસલિયે અનનત્યકારણ કો છોડકર જો અનત્ય કો કારણરૂપ સે માનતા હૈં વહ નિર્મૂલ ઔર શાસ્ત્રવિરુદ્ધ હૈં ઇસી સે સૂત્રમેં “વિજ્ઞાણ ચેવ ચરણેણ ચેવ” ઇસ કથન સે ચરણમેં અનત્યકારણતા સ્વીકૃત હુઈ હૈં ઇસી કથનસે યહ મી નિરાકૃત હો જાતા હૈં કિ જ્ઞાનકા ફલ ક્રિયા હૈં ઇસલિયે જ્ઞાનમાત્રમેં કારણતા હૈં ।

તથા એસા જો કહા ગયા હૈં કિ વોધકાલ મેં મી જો જ્ઞેય ( પદાર્થ ) કા પરિચ્છેદ ( જ્ઞાન ) હોતા હૈં ઉસકા કારણ જ્ઞાન હી હૈં તથા રાગાદિ નિગ્રહાત્મક જો જ્ઞાન હોતા હૈં ઉસકા મી કારણ જ્ઞાન હી હૈં ઇસલિયે જ્ઞાન હી કારણ હૈં મોક્ષપ્રાપ્તિ મેં ક્રિયા નહીં હૈં સો એસા મી કહના ટીક નહીં હૈં ક્યોં કિ જ્ઞેય કા જો પરિચ્છેદ ( જ્ઞાન ) હૈં વહ સ્વયં જ્ઞાનરૂપ હી

એ લોકે ક્રિયામા કારણતાનો સ્વીકાર કરતા નથી, તેઓ એવી દલીલ કરે છે કે “ ક્રિયા મોક્ષપ્રાપ્તિમાં સાક્ષાત્ કારણભૂત હોવાથી અનત્યકારણરૂપ છે, તથા જ્ઞાન પરમ્પરા કારણરૂપ હોવાથી અનનત્ય કારણરૂપ છે ” પરંતુ આ રીતે અનત્યને કારણરૂપ ન માનતા અનનત્યને કારણરૂપ માનવું તે નિર્મૂળ અને શાસ્ત્રવિરુદ્ધ છે. તેથી જ સૂત્રમાં “ વિજ્ઞાણ ચેવ ચરણેણ ચેવ ” આ કથન દ્વારા ચરણમાં ( ક્રિયામાં ) અનત્યકારણતાનો સ્વીકાર થયો છે આ કથનથી તે વાતનું પ્રતિપાદન થઈ ગયું છે કે જ્ઞાનનું ફલ જે ક્રિયા છે, તેથી જ્ઞાનમાત્રમાં કારણતા છે

વળી એવું જે કહેવામાં આવ્યું છે કે “ બોધકાળમાં પણ જે જ્ઞેય ( પદાર્થ ) નો પરિચ્છેદ ( જ્ઞાન ) થાય છે, તેનું કારણ જ્ઞાન જ છે તેથી જ્ઞાન જ મોક્ષપ્રાપ્તિમાં કારણભૂત છે, ક્રિયા કારણભૂત નથી. ” આ વાત પણ ખરાબર નથી. કારણ કે જ્ઞેય ( પદાર્થ ) નો જે પરિચ્છેદ ( જ્ઞાન ) થાય છે તે

न्मते-क्रियारहितमपि ज्ञानमात्र स्वकार्यं साधयत्, परंतु तथा न साधयति, धारणत्वेन क्रियाया स्वीकारात् । मोक्षप्राप्तिं हि चारित्र्योत्पादनं ज्ञानमुपकारकं भवति ज्ञानाच्चारित्र्यं प्राप्नोति, चारित्र्यतश्च मोक्ष, तथा च मोक्षं प्रति क्रियैव साक्षात्कारणम्, क्रियां प्रति ज्ञानं कारणम् । तस्मात् मोक्षं प्रति ज्ञानं परंपराकारणम् । साक्षात्कारणत्वेन क्रियैव प्रधानतरं कारणं भवतीतिक्रियाया अप्राधान्यमकारणत्वं च नोपपद्यते ।

यदि ज्ञानं क्रियाचेतिद्वयं मोक्षप्राप्तिं सु उपकारकं मन्येत, तदाऽपि प्राधान्यकारणत्वं चेतिद्वयं क्रियायापुक्तम्, ननु अप्राधान्यमकारणत्वं च क्रियायाः समवति ।

माना जावेगा तो ज्ञान की फलरूप क्रिया है ऐसा मानना व्यर्थ है आपके मतानुसार क्रिया रहित भी ज्ञानमात्र अपने कार्य को सिद्ध कर देगा परन्तु ऐसा वह करता नहीं है क्यों कि कारणरूप क्रिया को स्वीकार किया गया है मोक्षप्राप्ति में चारित्र्योत्पादन से ज्ञान उपकारक होता है ज्ञान से चारित्र्य की प्राप्ति होती है और चारित्र्य से मोक्ष प्राप्त होता है इसलिये मोक्ष प्राप्ति में साक्षात्कारण क्रिया ही है क्रिया के प्रति ज्ञान कारण है अतः मोक्ष प्राप्ति के प्रति ज्ञान परम्परारूप से कारण पड़ता है साक्षात्कारण से कारणतो क्रिया ही पड़ती है इसलिये वही प्रधानतर कारण है इस तरह क्रिया में अप्रधानता और अकारणता घटित नहीं होती है ।

यदि ज्ञान और क्रिया ये दो मोक्षप्राप्ति में एक साथ उपकारक माने जाते हैं तब भी क्रिया में प्रधानता और कारणता ये दोनों सभ्य जाते हैं इस तरह अप्रधानता और अकारणता क्रिया में समाहित नहीं होती है

मानवु व्यक्तं ज्ञानी ज्ञेयं आपना भव प्रभावे तो क्रिया रहित ज्ञानमात्र ही ध्यातव्य कार्यने सिद्ध करी देये, परंतु ज्ञेयु अनर्तु नहीं । कारण है कारणरूपे क्रियानो स्वीकार करवाया आये । मोक्षप्राप्तिं च चारित्र्योत्पादनं ज्ञान उपकारकं ज्ञानं च चारित्र्यं प्राप्तिं साधयति अने चारित्र्यं च मोक्षं प्राप्तिं साधयति । मोक्षप्राप्तिं साक्षात् कारणरूपे तो क्रिया ही है अने क्रिया ही ज्ञान कारणरूपे तो मोक्षप्राप्तिं ज्ञान परम्परारूपे कारणरूपे तो साक्षात् रूपे तो क्रिया ही कारणरूपे अने ही आरिजे क्रिया ही प्रधानतर कारणरूपे साधयति । मोक्षप्राप्तिं अप्रधानता अने अकारणता बटावी शकती नहीं ।

अने ज्ञान अने क्रिया, अने अनेने मोक्षप्राप्तिं अने साथे उपकारक मानवायां आवे तो पण क्रिया ही प्रधानता अने कारणता प्रतिपादन करी शकती है आरिजे क्रिया ही अप्रधानता अने अकारणता च कथित होता नहीं ।

मात्रं, तदुन्मत्तक्रियावद् व्यर्थं स्यात् २ । ततः परिशेष्यात्तृतीयः पक्ष एव प्राह्यः—  
ज्ञानसहितक्रियायास्तत् फलमिति ३ । क्रियाज्ञानेन सह युगपद्भवतु ज्ञानानन्तरं वा  
भवतु, सा ज्ञानसहभाविनी, ज्ञानपूर्विका संयमक्रिया मोक्षस्य कारणं नतु क्रिया-  
मात्रं, न चापि ज्ञानमात्रमिति बोध्यम् ।

ननु भद्रदुक्तरीत्या ज्ञानक्रिययोः प्रत्येकं मोक्षसाधनत्वाभावात् समुदिताभ्या-  
मपि ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षो भवतीति वक्तुं न युक्तम्, सिक्तासमुदाये तैलवदिति

क्रिया की तरह व्यर्थ हो सकती है इसलिये यही मानना चाहिये कि  
ज्ञानसहित क्रिया का वह फल है क्रिया ज्ञान के साथ युगपद् होवे या  
चाहे ज्ञान के बाद होवे वह ज्ञानसहभाविनी या ज्ञानपूर्विका संयम  
क्रिया मोक्ष का कारण होती है क्रियामात्र मोक्ष का कारण नहीं होता  
है और न ज्ञानमात्र मोक्ष का कारण होना है ऐसा जानना चाहिये ।

शंका—आपके कहे अनुसार ज्ञान और क्रिया में प्रत्येक में मोक्ष  
के प्रति साधनता का अभाव है एव ज्ञान क्रिया दोनों के मेल में साध  
नता का सद्भाव है सो यह बात वन भी कैसे सकती है क्यों कि हम  
देखते हैं कि जब बालुका के एक वन में तैल नहीं तो उनके समुदाय में  
भी तैल नहीं होता है इसी तरह जब स्वतन्त्र ज्ञान और क्रियामें मोक्षके  
प्रति कारणता नहीं है तो फिर इन दोनोंके समुदायमें भी वहकैसे होगी ?

उ०—ऐसी बात एकान्तरूप से नहीं खानी गई है देखो घटादि  
पदार्थं सृष्टिकार, दण्ड, चक्र एवं खीचर इनमें से एक २ के द्वारा निष्पन्न

ये वात न स्वीकारणी पश्ये के ते ज्ञानसहित क्रियानुं ते इव छे लवे क्रिया  
ज्ञाननी साथे साथे न रहेती डोय अथवा लवे ज्ञाननी अनुगामी डोय, परतु  
ये वात तो निश्चित छे के ज्ञानसहभाविनी अथवा ज्ञानपूर्विका संयमक्रिया न  
मोक्षप्राप्तिमां कारणभूत अने छे. मात्र क्रिया न मोक्षनु कारण अन्ती नथी,  
अने मात्र ज्ञान न मोक्षनु कारण अन्तुं नथी, अने समन्वय लेधये.

शंका—आपना कक्षा प्रमाणे तो ज्ञान अने क्रियामा—ते प्रत्येकमां मोक्ष  
प्राप्तिना साधनरूप अन्वाने अभाव छे—ते अन्नेना भेजमा न साधनताने  
सहभाव छे. तो ये वात देवी रीते सलपित छे ? अने देवीना कथुमां तैल  
डोतुं नथी, तो तेना समुदायमा पशु तैल संलवी शक्तुं नथी अने प्रमाणे  
ले स्वतंत्र ज्ञानमा अथवा स्वतंत्र क्रियामा मोक्ष प्राप्ति कराववानी कारणता  
नथी, तो अन्नेना समुदायमा ते कारणता देवी रीते संलवी शके छे ?

उत्तर—देवी वातने एकान्तरूपे स्वीकारवामा आवती नथी घटादि  
पदार्थे भाटी, दण्ड, चक्र अने खीचर आ चार साधनोमाना प्रत्येक साधने

मेव, रागादिगुणश्च सयमरूपा क्रियैव, सा ज्ञेयपरिच्छेदजन्या भवतीति मन्त्यामहे ।  
 ततश्च ज्ञेयपरिच्छेदरूपाद् ज्ञानात् सयमरूपा क्रिया भवति, सा च मास प्रधिकार  
 णम् । तद्यत्त्वं निवार समुत्पद्यते-शोषरूप फल किं ज्ञानस्य १, किं वा क्रियायाः  
 २, किं वा तदुभयस्य ३ १, तत्र मयमपक्षे न ज्ञानस्यैव, क्रिया फलत्वान्मोक्षरूप,  
 यदि तत् मयमरूपाया प्रिथाय फल न भवेत्, तथा ज्ञानस्यैव फलमिति पक्षे  
 युक्तम् । यत्तु मासं क्रियाया अपि फल भवति, तत् कथं ज्ञानस्यैव फलमिति  
 पक्षे युज्यते । १ । द्वितीयपक्षे नापि केवलक्रियाया फल तत् यदि सत्तु क्रिया-

होता है तथा रागादिको का जो निग्रह होता है वह सयमरूप क्रिया  
 स्वरूप ही होता है वह क्रिया ज्ञेय परिच्छेद जन्य होती है ऐसा हम  
 मानते हैं हमसे यह बात माननी चाहिये कि ज्ञेय परिच्छेदरूप ज्ञान से  
 संयमरूप क्रिया होती है यह सयमरूप क्रिया मोक्ष के प्रति कारण है  
 इस पर ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि मोक्षरूप फल क्या ज्ञानका है ?  
 या क्रियाका है ? या इन दोनों का है ? यदि कहा जावे कि मोक्षरूपफल  
 ज्ञानका ही है तो ऐसा कहना हमलिये ठीक नहीं है कि वह मोक्षरूप  
 फल क्रिया का फल है यदि वह सयमरूप क्रिया का फल न होता केवल  
 ज्ञान का ही फल होता है ऐसा कहा जा सकता था कि वह ज्ञान का ही  
 फल है जो मोक्ष क्रिया का भी फल होता है वह एक ज्ञान का ही फल  
 है ऐसा कैसे कहा जा सकता है तथा वह मोक्ष केवल क्रिया का ही फल  
 है तो ऐसा पक्ष भी समझ नहीं हो सकता है क्योंकि क्रियामात्र उत्पन्न

स्वयं ज्ञानरूप न होय त तथा रागादिकानो न निग्रह याय त ते सयम  
 रूप क्रिया स्वरूप न होय त ते क्रिया ज्ञेयपरिच्छेदजन्य होय त ज्ञेय मभ  
 मानीते धीजे तथा नो मानवु न ज्ञेयते के ज्ञेयपरिच्छेदरूप ज्ञानधी सयम  
 रूप क्रिया याय त म् सयमरूप क्रिया मोक्षप्रतिभां कर्तव्यरूप त त्पारे  
 ज्ञेयो नियर उत्पन्न याय त के शु मोक्ष ज्ञानना इत्यर्थ त ? के क्रियाना  
 इत्यर्थ त ? के ते ज्ञानेना इत्यर्थ त ? जे ज्ञेय मानवाया जावे के मोक्ष  
 ज्ञानना इत्यर्थ न त तो जे बात जरातर लागती नथी करवु के मोक्ष  
 क्रियाना इत्यर्थ होय त जे ते सयमरूप क्रियाना इत्यर्थ न होय जने मात्र  
 ज्ञानना न इत्यर्थ होय तो जे बात पक्ष सयत लागती नथी, करवु के न  
 मोक्ष ज्ञानना पक्ष इत्यर्थ त तेने मात्र ज्ञानना न इत्यर्थ केनी हीते मानी  
 शक्य ? वही मोक्ष कथं क्रियाना इत्यर्थ न त जे बात पक्ष सयत लागती  
 नथी करवु के क्रियामात्र उत्पन्न क्रियानी जेम स्वयं नीचरी शके त तेथी

मात्रं, तदुन्मत्क्रियावद् व्यर्थं स्यात् २ । ततः परिशेष्याचृतीयः पक्ष एव प्राद्यः—  
ज्ञानसहितक्रियायारतत् फलमिति ३ । क्रियाज्ञानेन सह युगपद्रवतु ज्ञानानन्तरं वा  
भवतु, ना ज्ञानसहभाविनी, ज्ञानपूर्विका संयमक्रिया मोक्षस्य कारणं नतु क्रिया-  
मात्रं, न चापि ज्ञानमात्रमिति बोध्यम् ।

ननु मरुदुत्तरीत्या ज्ञानक्रिययोः प्रत्येकं मोक्षसाधनत्वाभावात् समुदिताभ्या-  
मपि ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्षो भवतीति वक्तुं न युक्तम्, सिक्तनासमुदाये तेलवदिति

क्रिया की तरह व्यर्थ हो सकती है इसलिये यही मानना चाहिये कि  
ज्ञानरहित क्रिया का वह फल है क्रिया ज्ञान के साथ युगपद् होवे या  
चाहे ज्ञान के बाद होवे वह ज्ञानसहभाविनी या ज्ञानपूर्विका संयम  
क्रिया मोक्ष का कारण होती है क्रियामात्र मोक्ष का कारण नहीं होता  
है और न ज्ञानमात्र मोक्ष का कारण होना है ऐसा जानना चाहिये ।

शंका—आपके कहे अनुसार ज्ञान और क्रिया में प्रत्येक में मोक्ष  
के प्रति साधनता का अभाव है एवं ज्ञान क्रिया दोनों के मेल में साध  
नता का सङ्काव है जो यह बात वन भी कैसे सकती है क्यों कि हम  
देखते हैं कि जब बालुका के एक वन में तैल नहीं तो उनके समुदाय में  
भी तैल नहीं होता है इसी तरह जब स्वतन्त्र ज्ञान और क्रियामें मोक्षके  
प्रति कारणता नहीं है तो फिर इन दोनोंके समुदायमें भी वहकैसे होगी ?

उ०—ऐसी बात एतन्निरूपण से नहीं आनी गई है देखो घटादि  
पदार्थ सृष्टिज्ञा, दण्ड, चक्र एत्र खीवर इनमें से एक २ के द्वारा निष्पन्न

ये वात न स्वीकारनी पश्ये के ते ज्ञानसहित क्रियातुं ते इल छे लले क्रिया  
ज्ञाननी साथे साथे न रहेती छेय अथवा लले ज्ञाननी अनुगामी छेय, परतु  
ये वात तो निश्चित छे के ज्ञानसहभाविनी अथवा ज्ञानपूर्विका संयमक्रिया न  
मोक्षप्राप्तिमा कारणभूत अने छे. मात्र क्रिया न मोक्षतुं कारण अनी नथी,  
अने मात्र ज्ञान न मोक्षतुं कारण अनी नथी, अने समग्रतुं लोभये.

शंका—आपना कथा प्रमाणे तो ज्ञान अने क्रियामा—ते प्रत्येकमां मोक्ष  
प्राप्तिना साधनरूप अनी अभाव छे—ते अनेना अणमां न साधनतानो  
सङ्काव छे, तो ये वात केवी रीते सलपित छे ? अने रतीना कथुमां तेल  
छेतुं नथी, तो तेना समुदायमा पश्ये तेल संभवी शक्तुं नथी अने प्रमाणे  
ने स्वतंत्र ज्ञानमां अथवा स्वतंत्र क्रियामा मोक्ष प्राप्ति कराववानी कारणता  
नथी, तो अनेना समुदायमां ते कारणता केवी रीते सलपि शके छे ?

उत्तर—येवी वातने अनेकान्तरे स्वीकारवामा आवती नथी घडादि  
पदार्थो माठी, दंड, चक्र अने खीवर आ चार साधनोमाना प्रत्येक साधनो



વેદ, અમોઘ્યતે—વટાદિવદાર્યાઃ મુદ્ગ્ઙ્ઙવક્ષીવરાવિન્ધ્યઃ પ્રમેક ન મવન્દિ, વરસમુદ્ગાવાત્ તુ તે પ્રાદુર્મન્વન્તો દ્વશ્યતે । યથમદૃષ્ટસ્ય મોનસ્યાપિ જ્ઞાનક્રિયાસમુદ્ગાવાત્ પ્રાદુર્માત્રો મવત્પેશ, અન્નપરોઽપિ દૃષ્ટાન્ત્—યઃ કોઽપિ તરીતુ જ્ઞાનમ્પિ ક્ષાય ય્યાપાર ન કરોતિ, સ પુષ્પો નર્થાં નલમ્બાહેમ પ્રવદ્ધતિ, યથ જ્ઞાનવાનપિ ચારિ મ્હીન સસારનર્થાં પ્રમાદસ્રાવસિ મવદ્ધતિ । જન્મમરણાન્ત ન પ્રાપ્નોતિ ।

યથ નિગદિતમ્—અનુસ્મરણરૂપજ્ઞાનમાત્રામન્ત્રાદીનાં ફલ દ્વશ્યતે, વદ્વશ્વો સ્વરૂપમદૃષ્ટફલમપિ જ્ઞાનસ્ય મવતીત્પન્નુમીયતે ઇતિ, તથોચ્યતે—મન્ત્રાદિષ્ટફલપ્રાપ્તી નહીં હોતે હૈં તો ક્યા વે જ્ઞાનકે સમુદાય સે ખી નિષ્પન્ન નહીં હોતે હૈં । યદિ કહીં હોતે હૈં તો જ્ઞાનકે સમુદાય સે યહાં પર ખી આપકો જ્ઞાનકર સંતોષ કરના ચાહિયે અર્થાત્ અદૃષ્ટ મોક્ષ કી પ્રાપ્તિ જ્ઞાનક્રિયા કે સમુદાય મેં જીવ કો પ્રાપ્ત હો જાતી હૈં જુમરા દૃષ્ટાન્ત ખી જ્ઞાનકે સમુદાય સે પ્રેસા હૈં કિ કોઈ પુરુષ તૈરના તો જ્ઞાનતા હૈં પરન્તુ યદિ યહ જલપ્રવાહ મેં પડ જાતા હૈં ઓર હાથ યેગ નહીં ચલાતા હૈં તો યહ પુરુષ અવદ્ય હી નદી કે પ્રવાહ મેં યહ જાતા હૈં જ્ઞાનકે સમુદાય સે જીવ ખી યદિ ચારિત્રરૂપ ક્રિયા નહીં કરતા હૈં તસસે યહીન યના રહતા હૈં તો યહ અમદ્ય હી પ્રમાદ સ્રોતચાલી જ્ઞાનકે સમુદાય સે યહ જાતા હૈં અર્થાત્ જન્મમરણ કે જન્મકો પ્રાપ્ત નહીં કર પાતા હૈં

તથા—એસા જો કહા હૈં કિ મન્ત્રાદિકોં કા અનુસ્મરણ રૂપ જ્ઞાન માત્ર સે ફલ લેખને મેં આગા હૈં જ્ઞાનકે સમુદાય સે મોક્ષરૂપ અદૃષ્ટ ફલ મી જ્ઞાન કા હોતા હૈં એસા જ્ઞાન અનુમાન લગા લેતે હૈં તો જ્ઞાનકે સમુદાય

દ્વારા બની શકવા નથી. એટલે જુ તેમના સમુદાય દ્વારા પણ બની શકવા નથી ? આપણે તેમને તે સાધનોના સમુદાય દ્વારા તે અવશ્ય નિર્માણ કરવા એકલે ધીએ. એજ પ્રમાણે આપે જાણી પણ એ વાત સ્વીકારવી જ એકલે કે અદૃષ્ટ મોક્ષની પ્રાપ્તિ એવને જ્ઞાનક્રિયાના સમુદાયથી થઈ શકે છે આ વાતનું પ્રતિપાદન કરવા માટે બીજી દૃષ્ટાન્ત લઈએ. કોઈ માણસને તરવાં આવડે છે, પરન્તુ તે પાણીના પ્રવાહમાં પડીને હાથપગ હલાવવાનું જ બંધ કરે તો તે જેમ પાણીમાં તણાઈ બચે છે, એજ પ્રમાણે સની એવ પણ એ ચારિત્રરૂપ ક્રિયા કરતો નથી—સયમથી વિહીન જ રહે છે—તો તે પણ પ્રમાદ સ્રોતચાળી આ સસારરૂપ નદીના પ્રવાહમાં તણાયા જ કરે છે, એટલે કે જન્મ મરણના દેશ જ્યાં જ કરે છે

તથા એકલે જે કહેવામાં આવ્યું છે કે ‘મન્ત્રાદિના અનુસ્મરણરૂપ જ્ઞાન માત્રનું ફલ લેવામાં આવે છે, તે જ્ઞાનને પ્રતાપે મોક્ષરૂપી અદૃષ્ટ ફલની પ્રાપ્તિ

न मन्त्रज्ञानमात्रं कारणम्, किन्तु मन्त्रस्य सविधिं जपनादि क्रियाऽपि स्वाभिलषित फलप्राप्ति साधनत्वेन कारणं भवतीति । ननु दृश्यते-मन्त्रानुस्मरणरूपज्ञानमात्रादपि क्वचिद्विष्टफलं भवतीति, तस्मात् क्रियामहितस्यैव ज्ञानस्य कारणता कल्पनं प्रत्यक्षविरुद्धम्, इति चेत्, अत्रोच्यते-मन्त्रज्ञानमात्रेण तत्फलं न सम्भवति, मन्त्रज्ञानस्याऽक्रियत्वात्, इह यत् क्रियारहितम्, तत् खलु कार्यस्य जनकं न भवति, यथा-औषधज्ञानम्, औषधं हि आसेवनं विना व्याधिनाशकं न भवति । यत्तु कस्यचित् कार्यस्य जनकं, तत् क्रियारहितं न भवति, यथा कुम्भकारः, न चैतत् प्रत्य-

ऐसा कहना है कि मन्त्र से इष्टफल की प्राप्ति में मन्त्र का ज्ञानमात्र कारण नहीं है किन्तु मंत्र आदि की सविधि जपनादि क्रिया भी कारण है तभी स्वाभिलषित फल प्राप्ति होती देखी जाती है यदि इस पर यों कहा जावे कि “ मन्त्रानुस्मरण रूप ज्ञानमात्र से भी कही २ इष्टफल प्राप्ति होती देखी जाती है फिर आप ऐसी प्रत्यक्षविरुद्ध बात क्यों कहते हो कि क्रिया सहित ही ज्ञान कारण होता है ” सो इस पर हमारा ऐसा कहना है कि मन्त्र के ज्ञानमात्र से उस मन्त्र का फल प्राप्त नहीं हो सकता है क्यों कि वह मन्त्रज्ञान तो क्रिया शून्य होता है जो ज्ञान क्रिया शून्य होता है वह अपने कार्य का जनक नहीं होता है जैसे औषधके ज्ञानमात्रसे व्याधिका शमन नहीं होता है व्याधिका शमन तो उसके सेवन से होता है इसलिये यही मानना चाहिये कि जो किसी

थाय छे जेवुं अनुमान अमे करीजे छीजे ” तो तेनी सामे अमारी जेवी दलील छे के मंत्र द्वारा धृष्टिणी प्राप्तिमां मंत्रनु ज्ञान मात्र न कारणभूत होतुं नथी, परन्तु मंत्रादिना विधिपूर्वक जप करवा रूप किया पणु कारणभूत होय छे, ते प्रकारनी किया विना धृष्टित इणनी प्राप्ति थती नथी.

जे आ कथननी सामे जेवी दलील करवामां आवे के “ मंत्राना स्मरण रूप ज्ञानमात्रथी पणु केछ केछ वार धृष्टिणी प्राप्ति थती जेवामां आवे छे, छता पणु आप आवी प्रत्यक्ष विद्दनी वात केम करे छे के कियासहित ज्ञान न मोक्षप्राप्तिमा कारणभूत अने छे ?

तो आ भावतनुं समाधान आ रीते थछे शके-मंत्रना ज्ञानमात्रथी न ते मंत्रनु इल प्राप्त थछे शकतुं नथी, कारण के मंत्रज्ञान तो कियाशून्य होय छे जे ज्ञान कियाविहीन होय छे ते जेताना कार्यानु जनक होतुं नथी जेम औषधना ज्ञानमात्रथी रोग हर थतो नथी, परन्तु तेनु सेवन करवाथी न रोग हर थाय छे, जेम मात्र ज्ञान द्वारा न मोक्षप्राप्त थतो नथी पणु सयम रूप कियानी पणु तेमां आवश्यकता रहे छे, तेथी जे वात मानवी न पडशे के जे

सविच्छिन्नम्, तथा लोके दर्शनात् । एव ज्ञानमात्रेण साक्षात् फल जायमानं न दृश्यते ।

ननु यत्र तु क्वचित् परिजपनादिक्रिया नोपलभ्यते किन्तु मंत्रानुस्मरणमात्राज्जायमान फलमुपलभ्यते तत्र यदि ज्ञानमात्रस्य कारणता नाङ्गीक्रियते तर्हि तत् फल कस्मात् कारणादुत्पद्यते ? इति चेत्—

अप्रोच्यते—तत्समयनिषिद्धदेवताविशेषेभ्य इति तेषां देवताविशेषाणां सिद्धक्रियत्वेन क्रियासाध्यं तत् फल ननु मन्त्रज्ञानमात्रसाध्यमिति ।

कार्य का जनक होता है यह क्रिया रहित नहीं होता है जैसे कुम्हार इस प्रकार का यद् कथन प्रत्यक्ष से विच्छिन्न नहीं होता है क्यों कि लोक में ऐसा ही देखा जाता है अतः यही मानना चाहिय कि केवल ज्ञानमात्र से क्रिया शून्यज्ञान से—सत् फल उत्पन्न होता हुआ नहीं देखा जाता है यदि यद् पर ऐसा पूछा जाये कि जहाँ पर परिजपनादि क्रिया तो नहीं देखी जाती है किन्तु मंत्रानुस्मरणमात्र से जायमानफल देखा जाता है तो ऐसी स्थिति में ज्ञानमात्र में उस फल के प्रति कारणता न मानी जाये तो फिर वह फल किस कारण से उत्पन्न हुआ माना जायेगा ? तो इसका समाधान ऐसा है कि यह फल उस समय से मन्त्र से निषिद्ध देवता विशेष का माना जावेगा देवता विशेष सक्रिय होते हैं अतः क्रिया साध्य यह फल है मन्त्र ज्ञानमात्र साध्य यह फल नहीं है ।

वस्तु (ज्ञान) काय कार्यनी जनक टय छे ते क्रियारहित जावी नथी। नेमके पुनकार, तेने पडादि पात्र जनाववानुं ज्ञान डोवुं लेधजे, त्पारे न ते पडादि पात्र जनावी शके छे आ प्रकाशनुं आ कथन प्रत्यक्ष अनुभवनी विच्छिन्न नहुं नथी। कारण के लोकाभां ज्येनुं न लेवाभां आवे छे तेषी न जे बाव माननी पये के ज्ञानमात्रधी-क्रियाशून्य ज्ञानधी-साक्षात् हल उत्पन्न यनुं लेवाभां आवनुं नथी। कथय ज्येवी इतीत कथनाभां आवे के मंत्रानुस्मरणमा परिजपनादि क्रिया तो लेवाभां आवनी नथी परतु मंत्रानुस्मरण मात्रधी जनिन हल तो लेवाभां आवे छे तो ज्येवी स्थितिभां ज्ञानभांगने ते इगनी प्रसिर्भां कारणभूत न मानवाभां आवे, तो ते इग कथा कारणे टा न ययेनुं माननुं। तो तेनुं समाधान आ प्रभावे समञ्जसुं-ज्येवी परिस्थितिभां ले इत भी छे ते मन्त्रकारा निषिद्ध देवता विशेषे कारणे व्ययमान जगनुं ले ने देवता सक्रिय टोय छे ते कारणे ज्येनुं माननुं ज्येवी के क्रियासाध्य ते हल छे भाव मन्त्रज्ञान साध्य त हल नथी।

નતુ સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રતપાંસિ મોક્ષમાર્ગ ઇતિ સિદ્ધાન્તઃ, અત્રતુ જ્ઞાનક્રિયાભ્યાં મોક્ષઇત્યુચ્યતે, તર્હિ કથંન વિરુદ્ધયતે, ન ચ દ્વિસ્થાનકાનુરોધાદેવં નિર્દેશ ઇહ કૃત ઇતિ વાન્યમ્, 'વિજ્ઞાણ ચેવ ચરણેણ ચેવ' ઇતિ નિર્દેશસ્યાવધારણપરત્વાત્, ઇતિ ચેત્, અત્રોચ્યતે—ઇહ વિદ્યાગ્રહણેન દર્શનમપિ ગ્રાહ્યમ્, સમ્યગ્દર્શનસ્ય જ્ઞાનભેદત્વાત્ । યથાડવ્વોગાત્મિકામતિ યદાડનાકારા સામાન્યજ્ઞાનરૂપા તદાડવગ્રહઃ, ઈદ્દા' ડર્યુચ્યતે । ઇતદ્દુભયં દર્શનમિત્યુચ્યતે । યદા તુ સાડવ્વોધાત્મિકામતિઃ સાકારા તદા—'અગયો, ધારણા' ડર્યુચ્યતે, ઇતદ્દુભયં જ્ઞાનમિત્યુચ્યતે ।

શંકા—“સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રતપાંસિ મોક્ષમાર્ગઃ” એસા સિદ્ધાન્ત હૈ ફિર યહાં “જ્ઞાનક્રિયાભ્યાં મોક્ષઃ” એસા જો કથન ક્રિયા ગયા હૈ વહ વિરુદ્ધ કૈસે નહીં પડતા હૈ? અવશ્ય હી પડતા હૈ । યદિ કહા જાવે કિ દ્વિસ્થાન કે અનુરોધ સે એસા કહા ગયા હૈ સો યહ ભો સમદ્ધ મેં નહીં આતા હૈ કયોં કિ—“વિજ્ઞાણ ચેવ ચરણેણ ચેવ” યહાં યહ નિર્દેશ અવધારણ પરક હૈ

૩૦—યહાં વિદ્યાપદ કે ગ્રહણ સે દર્શન કા ભી ગ્રહણ હો ગયા હૈ કયોં કિ સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાન કા ભેદ હૈ જૈસે—અવવોધાત્મક મતિ જબ અનાકારરૂપ—સામાન્યજ્ઞાનરૂપ હોતી હૈ તવ વહ અવગ્રહ ઈદ્દા હસ પ્રકાર સે કહી જાતી હૈ હન દોનોં કો દર્શન કહા ગયા હૈ ઓર જવ વહ અવવોધાત્મક મતિ સાકાર હોતી હૈ તવ વહ અવાય ધારણા એસી કહી જાતી હૈ યે દોનોં જ્ઞાન કહે ગયે હૈં ઇવં જવ નિશ્ચયાત્મકમતિ હોતી હૈ

શંકા—“સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રતપાંસિ મોક્ષમાર્ગ” આ સિદ્ધાન્ત અનુસાર તો સમ્યગ્દર્શનને પણ મોક્ષપ્રાપ્તિમા કારણભૂત કહ્યું છે. છતાં અહીં આપ કહેા છે કે “જ્ઞાનક્રિયાભ્યાં મોક્ષ” જ્ઞાન અને ક્રિયાથી મોક્ષ પ્રાપ્તિ થાય છે, આ સિદ્ધાન્ત કથનથી વિરુદ્ધ પડતું નથી? જો એમ કહેવામાં આવે કે એ સ્થાનના અનુરોધથી એવું કહેવામાં આવ્યું છે, તો એ પણ ગળે ઉતરતું નથી, કારણ કે “વિજ્ઞાણ ચેવ ચરણેણ ચેવ” આ નિર્દેશ અહીં અવધારણપરક છે.

ઉત્તર—અહીં વિદ્યાપદ દ્વારા દર્શન પણ ગ્રહણ થઈ ગયું છે, કારણ કે સમ્યગ્દર્શન જ્ઞાનના ભેદરૂપ છે. 'અવવોધાત્મક મતિ ન્યારે અનાકારરૂપ સામાન્ય જ્ઞાનરૂપ હોય છે, ત્યારે તેને અવગ્રહ અને ઇહા રૂપે ઓળખવામાં આવે છે, તે બંનેને દર્શન જ કહેવાય છે અને ન્યારે તે અવવોધાત્મક મતિ ન્યારે સાકાર થાય છે, ત્યારે તેને અવાય, ધારણા કહેવાય છે એ બંનેને પણ જ્ઞાનરૂપ કહેા છે. અને ન્યારે નિશ્ચયાત્મક મતિ થાય છે, ત્યારે અવાય એ

સચ્ચિદ્મ, તથા લોકે દર્શનાત્ । એવ જ્ઞાનમાત્રેણ સાધ્યાત્ ફલ જાયમાન ન રચયતે ।

નત્તુ યત્ર તુ કાશિત્ પરિજપનાદિક્રિયા નોપલભ્યતે કિન્તુ મત્રાનુસ્મરણ માત્રાજ્ઞાયમાન ફલમુપલભ્યતે તત્ર યદિ જ્ઞાનમાત્રસ્ય કારયતા નાજ્ઞીક્રિયતે તર્હિ તત્ ફલ કમ્માત્ કારણાદુત્પયતે ? इति चेत्—

અપ્રોચ્યતે—તત્સમયનિષદ્દેવઠાત્રિશેપેભ્ય इति તેર્ણ ઘેરતાત્રિશેપાર્ણાં ચિ સક્રિયત્વેન ક્રિયાસાધ્યં તત્ ફલ નત્તુ મન્ત્રજ્ઞાનમાત્રસાધ્યમિતિ ।

કાર્ય કા જનક હોતા હૈ ઘહ ક્રિયા રહિત નહીં હોતા હૈ જૈસે કુંમકાર હસ પ્રકાર કા ઘહ કપન પ્રત્યક્ષ સે ચિરુદ્ધ નહીં હોતા હૈ કયોં કિ હોષ મેં ંમા હી દેસ્લા જાતા હૈ અત ઘહી માનના આહિય કિ કેવલ જ્ઞાનમાત્ર સે ક્રિયા શુન્યજ્ઞાન સે—નત્ ફલ ઉત્પન્ન હોતા હુઆ નહીં દેસ્લા જાતા હૈ યદિ ઘદા પર ંમા પૂજા જાયે કિ જહા પર પરિજપનાવિ ક્રિયા તો નહીં ઘેસ્લી જાતી હૈ કિન્તુ મત્રાનુસ્મરણમાત્ર સે જાયમાનફલ ઘેસ્લા જાગા હૈ તો ંસી સ્થિતિ મેં જ્ઞાનમાત્ર મેં ંસ ફલ કે પ્રતિ કારણતા ન માની જાયે તો કિર ઘદ ફલ કિસ કારણ સે ઉત્પન્ન હુઆ માના જાયેગા ! તો હસકા સમાધાન ંમા હૈ કિ ઘહ ફલ ંસ સમય સે મંત્ર સે નિષદ્દ ઘેવતા વિશેષ કા માના જાયેગા ઘેવતા વિશેષ સક્રિય હોતે હૈ અતઃ ક્રિયા સાધ્ય ઘહ ફલ હૈ મન્ત્ર જ્ઞાનમાત્ર સાધ્ય ઘદ ફલ નહીં હૈ ।

વસ્તુ (જ્ઞાન) કોઈ કશની જનક હેમ છે, તે કિવારકિત હોતી નથી. જેમકે કુલકાર, તેને ઘડાકિ પાત્ર બનાવવાનું જ્ઞાન હોવું જોઈએ, ત્યારે જ તે ઘડાકિ પાત્ર બનાવી શકે છે આ પ્રકારનું આ કથન પ્રત્યક્ષ અનુભવની વિરૂદ્ધ જરૂં નથી, કારણ કે હોકમાં એવું જ જોવામાં આવે છે તેથી જ એ વાત માનવી પુત્રે કે જ્ઞાનમાત્રથી—ક્રિયાશુન્ય જ્ઞાનથી—સાધ્ય ત્ ફલ ઉત્પન્ન થવું જોવામાં આવતું નથી. કશાય એવી કશીત કશવામાં આવે કે મત્રાનુસ્મરણમાં પરિજપ નાકિ ક્રિયા તો જોવામાં આવતી નથી પરન્તુ મત્રાનુસ્મરણ માત્રથી જનિત ફલ તો જોવામાં આવે છે તો એવી સ્થિતિમાં જ્ઞાનમાત્રને તે કશની પ્રસિમાં કારણભૂત ન માનવામાં આવે, તો તે કશ કયા કારણે ઉત્પ ન થયેવું માનવું ? તો તેનુ સમાધાન આ પ્રમાણે સમજવું—એવી પરિસ્થિતિમાં જે ફલ મળે છે તે મત્રદાશ નિષદ્દ ઘેવતા વિશેષને કારણે જાયમાન ગણવું જો ં. ઘેવતા સક્રિય હોય છે તે કારણે એવું માનવું જોઈએ કે ક્રિયાસાધ્ય તે ફલ છે, માત્ર મત્રજ્ઞાન સાધ્ય તે ફલ નથી.

छाया-द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलप्रज्ञप्तं धर्मं लभते श्रवणतायै । तद् यथा-आरम्भश्चैव, परिग्रहश्चैव । द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलं बोधिं बुध्यते । तद् यथा-आरम्भश्चैव परिग्रहश्चैव । द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलं मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजति । तद् यथा-आरम्भश्चैव परिग्रहश्चैव । एवं नो केवलं ब्रह्मचर्यवासमावसति । नो केवलेन संयमेन संयमयति । नो केवलेन संवरेण संवृणोति । नो केवलमामिनिबोधिकज्ञानमुत्पादयति । एव श्रुतज्ञानम्, अवधिज्ञानम्, मनः पर्यवज्ञानम् केवलज्ञानम् ॥ सू० ८ ॥

टीका—‘दो ठाणाइ अपरियाणित्ता’ इत्यादि—

द्वे स्थाने=द्वे वस्तुनी, अपरिज्ञाय = ज्ञपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरि-  
ज्ञया चाप्रत्याख्याय आत्मा नो=नैव, केवलप्रज्ञप्त-जिनोक्तं धर्म-श्रुतचारित्रलक्षणं  
धर्म, श्रवणतायै-श्रोतुम्, नो=नैव लभते । ये द्वे स्थाने अपरिज्ञाय जिनोक्तधर्मस्य  
श्रवणं दुर्लभं, ते के उभेऽत्याशङ्क्याह-तं जहा-‘आरंभे चैव, परिग्रहे चैव’ इति ।  
आरम्भश्चैव परिग्रहश्चैव । तत्र-आरम्भ-कृष्यादिना पृथिव्यादिपङ्कायोपमर्द-

आत्मा ज्ञान और चारित्र को किस कारण से प्राप्त नहीं कर पाता है ? इस विषयको स्पष्ट करने के अभिप्रायसे सूत्रकार कहते हैं—

“दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलि पन्नत्तं” इत्यादि । ८।

टीकार्थ-दो स्थानोंको दो वस्तुओं को ज्ञपरिज्ञासे जाने बिना और प्रत्याख्यान परिज्ञासे त्यागो बिना आत्मा केवल प्रज्ञप्त जिनोक्त धर्म को श्रुतचारित्र रूप धर्म को सुनने के लिये प्राप्त नहीं करता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति को जिनोक्त धर्म का श्रवण दुर्लभ होता है वे ही दो स्थान-  
“आरंभे चैव परिग्रहे चैव” इस पाठ द्वारा प्रकट किये गये हैं खेती आदि क्रिया द्वारा पङ्कायके जीवोंका उपमर्दन करनेरूप जो व्यापार है,

क्या शरत्तुने लधने आत्मा, ज्ञान अने चारित्रने प्राप्त करी शकतो नथी, अे वातनु हुवे सूत्रकार निरूपणु करे छे—

“दो ठाणाइ अपरियाणित्ता आया णो केवलिपन्नत्तं” इत्यादि ॥८॥

ये स्थानोने : ( ये वस्तुओने ) ज्ञपरिज्ञाथी ज्ञप्या विना अने प्रत्या-  
ख्यान परिज्ञाथी त्याग कर्याविना आत्मा केवलप्रज्ञप्त जिनोक्त धर्मनु-श्रुतचारित्र  
रूप धर्मनु श्रवणु करी शकतो नथी अेटले के अेवी व्यक्तितने आटे जिनोक्त  
धर्मनु श्रवणु दुर्लभ अनी ज्ञथ छे अे ये स्थान नीयेना सूत्रपाठ द्वारा प्रकट  
करवाभां आव्या छे-“आरंभे चैव परिग्रहे चैव” (१) आरंभ अने (२)  
परिग्रह. जेती आदि क्रिया द्वारा छकायना छेवानु उपमर्दन करवाइप जे

एव यदा निश्चयात्मिका मतिस्त्वज्ञाऽवापो द्विविधा भवति, रुचि, अवगममति । तत्र यो रुचिरूपोऽज्ञः स सम्यग्दर्शनम् यस्तु अवगमरूपोऽज्ञः साऽवाय एवेति न विरोधः, तथा च— अवायरूपे ज्ञाने सम्यग्दर्शनस्य समावेश इति भाव । 'चेव' इत्यवधारण तु ज्ञानधारिण्यतिरिक्तेण नाप उपायो मोक्षस्यति दर्शनार्थमिति ॥५०७॥

मात्मा, ज्ञान धारिण च कृतो न लभते इत्याशङ्क्याह—

मूलम्—दो ठाणाइ अपरियाणित्ता आया णो केवलपन्नत्त  
धम्म लभेज्ज सवणयाए । त जहा आरभे चेव परिग्गहे चेव । दो  
ठाणाइ अपरियाणित्ता आया णो केवल घोधिं वुज्जेज्जा, त  
जहा आरभे चेव परिग्गहे चेव । दो ठाणाइ अपरियाणित्ता  
आया नो केवल मुढे भवित्ता अगाराओ अणगारिय पव्वइज्जा,  
त जहा आरभे चेव परिग्गहे चेव । एव णो केवल वभचेर  
वासमावसेज्जा । णो केवलेण सजमेण सजमेज्जा नो केवलेण  
सवरेण सवरेज्जा । नो केवलमाभिणिघोहियणाण उप्पाहेज्जा ।  
एव सुयणाणं, ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं ॥सू०८॥

तत्र अवाय दो प्रकार का होता है एक रुचि रूप और दूसरा अकाम (सामान्यज्ञान) रूप इनमें जो रुचिरूप अज्ञ है वह सम्यग्दर्शन है और जो अवगमरूप अज्ञ है वह अवाय है इस तरह से यहाँ कोई विरोध नहीं है तथा च अवायरूप ज्ञान में सम्यग्दर्शन का समावेश है ऐसा भाव है "चेव" पद अवधारण में आया है इससे यह कहा गया है कि ज्ञान और धारिण इन दोनों के मेल के अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय मोक्ष का नहीं है ॥ सू०७॥

प्रकारनु याव छे (१) रुचिरूप ज्ञाने (२) अकाम (सामान्य ज्ञान) रूप-  
तेभा जे रुचिरूप अज्ञ छे ते सम्यग्दर्शन छे ज्ञाने जे अवगमरूप अज्ञ छे  
ते अवाय छे ज्ञाने रीते जहाँ केँ विरोध सभवतो नथी. जणी अवायरूप  
ज्ञानभां सम्यग्दर्शनने समावेश यथं ज्ञान छे 'चेव' शब्द अवधारणु ज्ञाने  
व्यवहारो छे तेना दाश जे जताववार्थ ज्ञानु छे ते ज्ञान ज्ञाने धारिणता  
अर्थात् ज्ञान ज्ञानेना भेग सिवायने ज्ञाने केँ पद्य उपाय नथी ते जेना दाश  
मोक्ष प्राप्ति करी यथाय ॥ सू ७ ॥

छाया-द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलप्रज्ञप्तं धर्मं लभते श्रवणतायै । तद् यथा-आरम्भश्चैव, परिग्रहश्चैव । द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलां बोधिं बुध्यते । तद् यथा-आरम्भश्चैव परिग्रहश्चैव । द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा नो केवलां मुण्डो भूत्वा अगाराद् अनगारितां प्रव्रजति । तद् यथा-आरम्भश्चैव परिग्रहश्चैव । एवं नो केवलं ब्रह्मचर्यवासमावसति । नो केवलेन संयमेन संयमयति । नो केवलेन संवरेण संवृणोति । नो केवलमाभिनिबोधिरुद्धानमुत्पादयति । एवं श्रुतज्ञानम्, अवधिज्ञानम्, मनः पर्यवज्ञानम् केवलज्ञानम् ॥ सू० ८ ॥

टीका—‘ दो ठाणाइं अपरियाणित्ता ’ इत्यादि—

द्वे स्थाने=द्वे वस्तुनी, अपरिज्ञाय = ज्ञपरिज्ञया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरि-  
ज्ञया चाप्रत्याख्याय आत्मा नो=नैव, केवलप्रज्ञप्त-जिनोक्त धर्म-श्रुतचारित्रलक्षणं  
धर्म, श्रवणतायै-श्रोतुम्, नो=नैव लभते । ये द्वे स्थाने अपरिज्ञाय जिनोक्तधर्मस्य  
श्रवणं दुर्लभं, ते के उभेऽत्याशङ्क्याह-तं जहा-‘आर भे चैव, परिग्रहे चैव’ इति ।  
आरम्भश्चैव परिग्रहश्चैव । तत्र-आरम्भ-कृष्यादिना पृथिव्यादिपङ्कायोपमर्द-

आत्मा ज्ञान और चारित्र को किस कारण से प्राप्त नहीं कर पाता है ? इस विषयको स्पष्ट करने के अभिप्रायसे सूत्रकार कहते हैं—

“दो ठाणाइं अपरियाणित्ता आया णो केवलि पन्नत्तं” इत्यादि । ८।

टीकार्थ-दो स्थानोंको दो वस्तुओं को ज्ञपरिज्ञासे जाने बिना और प्रत्याख्यान परिज्ञासे त्यागे बिना आत्मा केवल प्रज्ञप्त जिनोक्त धर्म को श्रुतचारित्र रूप धर्म को सुनने के लिये प्राप्त नहीं करता है अर्थात् ऐसे व्यक्ति को जिनोक्त धर्म का श्रवण दुर्लभ होता है वे ही दो स्थान-  
“आरभे चैव परिग्रहे चैव” इस पाठ द्वारा प्रकट किये गये हैं खेती आदि क्रिया द्वारा पङ्कायके जीवोंका उपमर्दन करनेरूप जो व्यापार है,

क्या शरबुने लधने आत्मा, ज्ञान अने चारित्रने प्राप्त करी शकतो नथी, अे वातनु डवे सूत्रकार निःपणु करे छे—

“ दो ठाणाइ अपरियाणित्ता आया णो केवलिपन्नत्तं ” इत्यादि ॥८॥

ये स्थानेने ( ये वस्तुओंने ) ज्ञपरिज्ञाथी ज्ञाया विना अने प्रत्या-  
ख्यान परिज्ञाथी त्याग कर्थाविना आत्मा केवलिप्रज्ञप्त जिनोक्त धर्मनु-श्रुतचारित्र  
इय धर्मनु श्रवणु करी शकतो नथी अेटले के अेवी व्यक्तितने माटे जिनोक्त  
धर्मनु श्रवणु दुर्लभ अनी जय छे अे अे स्थान नीचेना सूत्रपाठ द्वारा प्रकट  
करवाभां आव्या छे-“ आरभे चैव परिग्रहे चैव ” (१) आरभ अने (२)  
परिग्रह. अेती आदि क्रिया द्वारा छकायना अेवातु उपमर्दन करवाइय अे



नस्यम्, तथा-परिग्रह-परिग्रहते, इति परिग्रहः घनधान्यादिरूपः । स चैवम्-  
 पनम् १, धान्यम् २, क्षत्रम् ३, वास्तु ४, रूपम् ५, सुवर्णम् ६, कुप्यम् ७,  
 द्विपदः ८, चतुष्पदश्च ९, इति नवविध । यावद् आरम्भं परिग्रहं चानर्थमूलं न  
 जानाति नापि प्रत्याख्याति तावत् केवलप्ररूपितं धर्मं भोतुमपि न शक्नोतीति भावः ।

द्वे स्थाने अपरिग्राय आत्मा केवलोऽधुदां बाधि-दर्शने सम्पत्त्वमित्यर्था,  
 नो-नैव पुष्यत-अनुभवति । ते द्वे स्थाने के इत्याशङ्क्याह-‘तत्रा’

चसका नाम आरम्भ है तथा जो सब ओर से ग्रहण किया जाता है  
 वह परिग्रह है ऐसा यह परिग्रह घनधान्यरूप कहा गया है ।

जैसे—घन १ धृतगुणादि, धान्य २, क्षेत्र ३, वास्तु ४, रूप ५,  
 सुवर्ण ६, कुप्य ७, द्विपद ८ और चतुष्पद ९ यह नौ प्रकार का बाध  
 परिग्रह है जब तक आत्मा आरम्भ और परिग्रह को भर्ष फा मूल नहीं  
 जानता है और जब तक चसका प्रत्याख्यान नहीं करता है तब तक  
 वह केषलि प्रहस धर्म को सुनने के योग्य नहीं हो सकता है

इसी तरहसे आत्मा जब तक जपरिज्ञासे इन दोनों स्थानोंको नहीं  
 जान लेता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे इनका परित्याग नहीं कर देता  
 है तब तक वह शुद्ध बोधिका सम्पत्त्वका अनुभव नहीं कर सकता है ।

इसी तरह से इन आरम्भ परिग्रहरूप दो स्थानों को आत्मा ज  
 परिज्ञा से जपतक नहीं जान लेता है और प्रत्याख्यान परिज्ञा से जब

प्रवृत्ति भाव छे तेने आरंभ कहे छे आरे तरहधी ने इाध वस्तु भये तेने  
 अदृश्य करीने तेने। अत्र अदृश्यानी प्रवृत्तिने परित्रक कहे छे अत्र परित्रक  
 धनधान्यादिना अत्र अदृश्य होय छे परित्रक नव प्रकारने कहे छे—(१) घन,  
 (२) धी, ज्येण, अनाथ आदि धा ध (३) क्षेत्र, (४) वास्तु, (५) आंधी, (६)  
 सुवर्ण, (७) कुप्य (चाणु) (८) द्विपद अने (९) चतुष्पद अत्र नव प्रकारने  
 जाहापरित्रके छे अर्था सुधी आत्मा आरंभ अने परिग्रहने अनर्था मूल  
 रूप मानये नथी, अने अर्था सुधी ते केवलि प्रहस धर्मतुं अवलु करवाने  
 योग्य जनते नथी, त्यां सुधी ते केवलि प्रहस धर्मतुं अवलु इत्याने ये जव जनते नथी  
 अत्र हीते आत्मा अर्था सुधी ज परिज्ञाधी अत्र जने स्थानेने अर्था  
 लेते नथी अने प्रत्याख्यान परिज्ञाधी तेमने त्यात्र करतो नथी त्यां सुधी ते  
 शुद्ध बोधिने (सम्पत्त्वने) अनुभव करी शकते नथी।

ज्ये प्रभावे ते आरंभ अने परित्रकरूप जे स्थानेने आत्मा ज परि  
 ज्ञाधी अर्था सुधी अर्था लेते नथी अने प्रत्याख्यान परिज्ञाधी अर्था सुधी

इत्यादि । आरम्भश्चैव, परिग्रहश्चैव । व्याख्यापूर्ववत् । आरम्भ-परिग्रहावपरिज्ञया-परित्यज्य च कोऽपि सम्यक्त्वानुभवं कर्तुं न शक्नोतीति भावः ।

द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा मुण्डः, द्रव्यतो-मुण्डः शिरोलोचेन, भावतस्तु मुण्डः-कषायाद्यपनयनेन भूत्वा, अगाराद्=गृहात्, निष्क्रम्य, केवलं=परिपूर्णा, विशुद्धां वा, अनगारितां=प्रव्रज्यां, नो=नैव प्रव्रजति=नैव प्राप्नोति ।

एवम्=अनेन प्रकारेण, यथा पूर्ववाक्ये-‘दो ठाणाइ अपरिणाइत्ता आया’ इति पाठस्तथा इत समारम्भोत्तरवाक्ये योजयित्वा पठनीयम् । तथा चायमर्थः-द्वे स्थाने-आरम्भ-परिग्रहरूपे, अपरिज्ञाय आत्मा केवलं विशुद्धं परिपूर्णं नव-वाटसहितं ब्रह्मचर्यवासं=ब्रह्मचर्येण-अब्रह्मविरमणेन, वासः=निवासः-ब्रह्मचर्यवासस्तम्, नो=नैव आवसति=आचरति पालयितुं न समर्थो भवतीत्यर्थः ।

तक उसका परित्याग नहीं कर देता है तब तक वह आत्मा द्रव्य और भावरूप से मुण्डित होकर आगारावस्था से अनगारावस्था को पूर्णरूप से या विशुद्धरूप से नहीं प्राप्त कर पाता है । शिर के केशों का लुञ्चन करना इसका नाम द्रव्य से मुण्डित होना है, और कषाय आदि का परित्याग करना इसका नाम भाव से मुण्डित होना होता है केवल शब्द का अर्थ परिपूर्ण अथवा विशुद्ध है, अनगारिता शब्द का अर्थ प्रव्रज्या मुनिदीक्षा है और “नो प्रव्रजति” क्रियापद का अर्थ नहीं प्राप्त करता है ऐसा है

इसी प्रकार से “णो केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा” आत्मा जब तक आरम्भ परिग्रहरूप इन दो स्थानों को ज्ञ परिज्ञा से नहीं जान लेता है और प्रत्याख्यान परिज्ञा से उनका परित्याग नहीं कर देता है

तेभनो परित्याग करी देतो नथी, त्यां सुधी ते आत्मा द्रव्य अने लावइये सुडित थधने आगारावस्थाने त्याग करीने अणुगारावस्थाने पूर्णइये अथवा विशुद्धइये प्राप्त करी शकतो नथी मस्तकना केशानुं लुञ्चन करवुं तेनुं नाम द्रव्यनी अपेक्षाये सुडित थवुं समज्जु अने कषाय आदिने परित्याग करवेो अेटले भावनी अपेक्षाये सुडित थवुं केवल शण्ट परिपूर्ण अथवा विशुद्धना अर्थभां अही वपराये छे प्रव्रज्या लधने मुनि पर्यायने धारण करवी तेनुं नाम अन-गारिता छे. “नो प्रव्रजति” आ सूत्राशनेो अर्थ “प्रव्रज्या प्राप्त करतो नथी,” अवेो थाय छे

अेव प्रमाणे “णो केवलं बंभचेरवासमावसेज्जा” त्यां सुधी आत्मा आरंल अने परिग्रहइये अने स्थानेने ज परिज्ञाथी लणुतो नथी अने

तथा-द्वे स्थाने-आरम्भ-परिग्रहरूपे अपरिज्ञाय, आत्मा केवलेन=विशुद्धेन परिपूर्णैः सयमेन-पृथिव्यादिरक्षणलक्षणैः नो सयमपति आत्मानमिति ।

तथा-द्वे स्थाने-आरम्भ परिग्रहरूपे वस्तुनी अपरिज्ञाय-अप्रत्याख्यानं च आत्मा केवलेन=विशुद्धेन, सवरेण=आत्मनिरोधरूपेण, नो-नैव सवृष्णाति आस्रवद्वाराणि, इति भावः ।

तथा द्वे स्थाने-आरम्भपरिग्रहरूपे वस्तुनी अपरिज्ञाय-अप्रत्याख्यानं च आत्मा केवलेन-परिपूर्णं सत्रे-स्रविषयग्राहकम्, अभिनिवोधिकज्ञानम्=अभि-अर्थाभिमुखं, अत्रिपरिष्कारत्वात् निवत, सन्नपमिक्षत्वात्, पोषः-वदनम्, अभिनिवोपः । स

तप तक यह नौवाङ्कसहित अग्रज्यविरमणव्रत को पालन करने के लिये समर्थ नहीं होता है

इसी प्रकार से-“ नो केवलेण संजमेण सजमेज्जा, नो केवलेण सवरेण सवरेज्जा ” आत्मा जब तक ज्ञ परिज्ञा से इन आरम्भ परिग्रहरूप दो स्थानों को नहीं जान लेता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा संजम तक इनका परित्याग नहीं कर देता है तब तक यह परिपूर्ण सयम से पृथिव्यादि संरक्षण रूप सतरह प्रकार के सयम से अपने आप को सयमित नहीं कर पाता है इसी प्रकार से यह आत्मा ज्ञ परिज्ञा सं और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से इन दोनों स्थानोंको जाने बिना और इनका त्याग किये बिना आस्रव द्वारा निरोधरूप विशुद्ध सयरको प्राप्त नहीं कर सकता है अर्थात् ऐसा आत्मा आस्रवद्वाराको नहीं रोक सकता है ।

अप्रत्याख्यान परिज्ञाधी तेभनेः त्यागं करोति नथी, त्या सुधी ते नव वाडं सखितं अग्रज्यविरमणव्रतनुं (अग्रज्यव्रतनुं) पालनं करवाने समर्थं यथं शक्यते नथी

अथ प्रभाषे नो केवलेण संजमेणं संजमेज्जा नो केवलेण संवरणं सवरेज्जा ” अथ सुधी आत्मा ज्ञ परिज्ञाधी आ आरभ्य अने परिग्रहरूपे दो स्थानोनें ज्ञायते नथी अने अप्रत्याख्यान परिज्ञाधी अर्थां सुधी तेभनेः परि त्यागं करोति नथी, त्या सुधी ते परिपूर्णं (विशुद्धं) सयमधी येताना आत्माने संबन्धित करी शक्यते नथी, पृथ्वीद्वय आदिनां संरक्षणरूपं १७ प्रकारोः सयमं कस्यो छे आरभ्य अने परिग्रहना त्याग्रपूवकं च आ सयमनी अप्रापना यथं शक्ये छे अथ प्रभाषे अर्थां सुधी आत्मा ज्ञ परिज्ञाधी आरभ्य अने परिग्रहना स्वइपनें ज्ञायते नथी अने अप्रत्याख्यान द्वारा तेभनेः परित्यागं करोति नथी, अर्थां सुधी ते आस्रवद्वारा निरोधरूपं विशुद्धं सवरने प्राप्त करी शक्यते नथी, अतले हे अथो आत्मा आस्रवद्वारेण रोकं शक्यते नथी.

आभिनिवोधिकं, तच्च तज्ज्ञानं चेत्याभिनिवोधिकज्ञानम् इन्द्रियपञ्चरूपमनोनिमित्तको बोधस्तत्, नो=नैव उत्पादयति ।

एवम्—अनेन प्रकारेण, “ नो केवलं उप्पाडेज्जा ” इति पाठो योजनीय इति भावः । तथा चायमर्थः—हे स्थाने अपरिज्ञाय, आत्मा केवल=परिपूर्ण विशुद्धं वा

“ नो केवलमाभिनिवोहियणाणं उप्पाडेज्जा ” इसी प्रकार से आत्मा ज परिज्ञ द्वारा और प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा इन आरम्भ परिग्रह रूप दोनों स्थानों को विना जाने और विना त्यागे परिपूर्ण ऐसे स्वविषयग्राहक आभिनिवोधिक ज्ञान को उत्पन्न नहीं कर पाता है यहां केवल शब्द का अर्थ “ परिपूर्ण ” है “ अभि ” उपसर्ग इन्द्रियपञ्चक और मनोनिमित्तक बोध में संग्रह विपर्यय ज्ञान के अभाव को प्रकट करने के लिये दिया गया है अर्थात् पांच इन्द्रियों और मन से जो प्रतिनियत संबद्ध वर्तमान वस्तु का बोध होता है वह आभिनिवोध मतिज्ञान है यह आभिनिवोध ज्ञान यदि संग्रह और विपर्यय से चिहीन है तभी वह केवल परिपूर्ण शुद्ध कहा गया है वह अभिनिवोध ही आभिनिवोधिक है “ एवं सुयनाणं ओहिनाणं, मणपज्जवनाणं, केवलनाणं ” इसी तरह से इसी प्रकार से आत्मा पूर्वोक्तरूप से अपने आप को जिये विना जपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से आरम्भ परिग्रह रूप दो स्थानों को जाने त्यागे विना परिपूर्ण अथवा विशुद्ध श्रुत

“ नो केवलमाभिनिवोहियणाणं उप्पाडेज्जा ” ऐत्र प्रकारे आत्मा न्या सुधी ज परिज्ञा द्वारा आरल अने परिग्रहउप अने स्थानाने लक्षुते नथी अने प्रत्याख्यान द्वारा तेमने परित्याग करतो नथी, त्यां सुधी ते परिपूर्णं अने स्वविषयक ग्राहक आभिनिवोधिक जानने उत्पन्न करी शकतो नथी अर्थात् ‘ देवल ’ शब्दने अर्थ ‘ परिपूर्ण ’ छे “ अभि ” उपसर्ग पात्र इन्द्रियो अने मनोनिमित्तक बोधमा सशय विपर्यय ज्ञानने अभाव प्रकट करवा भाटे वपगथे छे अष्टवे के पात्र इन्द्रियो अने मनदारा जे प्रतिनियत संबद्ध वर्तमान वस्तुने बोध थाय छे, अंतुं नाम ज आभिनिवोध मतिज्ञान छे ते आभिनिवोध ज्ञान जे सशय अने विपर्ययथी रक्षित होय तो ज तेने देवल ( परिपूर्ण—विशुद्ध ) आभिनिवोधिक मतिज्ञान कहेवाय छे ते आभिनिवोध अ आभिनिवोधिक रूप छे. “ एवं सुयनाण ओहिनाण, मणपज्जवनाणं, केवलनाण ” ऐत्र प्रमाणे आत्मा न्या सुधी आरल अने परिग्रहउप जे स्थानाने ज परिज्ञाथी लक्षुते नथी अने प्रत्याख्यान परिज्ञा द्वारा न्यां सुधी तेमने परित्याग करतो नथी, त्यां सुधी ते विशुद्ध श्रुतज्ञानने ( श्रुतशास्त्रानुसारी

तथा-द्वे स्थाने-आरम्भ-परिग्रहरूप अपरिग्रहाय, आत्मा क्वछेन=विशुद्धेन परिपूर्णत संयमेन-पृथिव्यादिरक्षणलक्षणेन नो सयमयति आत्मानमिति ।

तथा-द्वे स्थाने-आरम्भ परिग्रहरूपे वस्तुनी अपरिग्रहाय-अप्रत्याख्याय च आत्मा क्वछेन=विशुद्धेन, सवरेण=आत्मनिरोधरूपेण, नो-नैव सवृणोति आत्म-द्वाराणि, इति भावः ।

तथा द्वे स्थाने-आरम्भपरिग्रहरूपे वस्तुनी अपरिग्रहाय-अप्रत्याख्याय च आत्मा क्वछेन-परिपूर्णं सवे-सविययप्राहकम्, आमिनिबोधिक्कानम्=अभि-अर्थाभिपुम्नां, अविपर्ययवत्त्वात् निवत, सश्रयमित्त्वत्वात्, पोषः-वेदनम्, अभिनिबोष । स

तब तक वह नौधाइसहित अन्नभ्रमिखिरमणव्रत को पालन करने के लिये ममर्थ नहीं होता है

इसी प्रकार से-“ जो केवल्येण सजमेण संजमेज्जा, नो केवल्येण सवरेण सवरेज्जा ” आत्मा जब तक ज्ञारिज्ञा से इन आरम्भ परिग्रहरूप दो स्थानों को नहीं जान लेता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से जब तक इनका परित्याग नहीं कर देता है तब तक वह परिपूर्ण सयम से पृथिव्यादि सुरक्षण रूप सतरह प्रकार के सयम से अपने आप को सयमित नहीं कर पाता है इसी प्रकार से वह आत्मा ज्ञ परिज्ञा से और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से इन दोनों स्थानोंको जाने बिना और इनका त्याग किये बिना आत्मव द्वारा निरोधरूप विशुद्ध सवरेको प्राप्त नहीं कर सकता है अर्थात् ऐसा आत्मा आत्मवद्वारेको नहीं रोक सकता है ।

प्रत्याख्यान परिज्ञायां तेमने त्वाज करतो नथी, त्यां सुधी ते नव वाठ सक्ति अग्रहविशेष मत्तनु (अग्रहयव मत्तनु) पालन करवाने समय बध शकतो नथी.

जे प्रभावे ' जो केवल्येण सजमेण संजमेज्जा नो केवल्येण सवरेण सवरेज्जा ' त्या सुधी आत्मा ज्ञ परिज्ञाधी आ आरव अने परिग्रहरूप वे स्थानेने वल्लुतो नथी अने प्रत्याख्यान परिज्ञाधी त्या सुधी तेमने परित्याज करतो नथी, त्या सुधी ते परिपूर्ण (विशुद्ध) सयमधी पिताना आत्माने सयमित करी शकतो नथी, पृथ्वीकाय आदिना सुरक्षल्लुत्तुप १७ प्रकारने सयम कळी छे आरव अने परिग्रहना त्यागपूर्वक आ सयमनी आशयना बध शके छे जे प्रभावे त्यां सुधी आत्मा ज्ञ परिज्ञाधी आरव अने परिग्रहना सवरेने वल्लुतो नथी अने प्रत्याख्यान द्वारा तेमने परित्याज करतो नथी, त्या सुधी ते आत्मवद्वारे निरोधरूप विशुद्ध सवरेने प्राप्त करी शकतो नथी, जेव्हा के जेवे आत्मा आत्मवद्वारेने रोक शकतो नथी.

‘केवलनाणं’ इति । द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा केवलं परिपूर्णं, विशुद्धं वा केवलज्ञानं=केवलं-मत्यादिनिरपेक्षत्वादसहाय, यद्वा-केवलं-आवरणमलाभावाद् विशुद्धम्, यद्वा-केवलं सकलं संपूर्णम्, यद्वा-केवलम्-सजातीयद्वितीयरहितत्वा-

यहां “नो केवल उप्पाडेज्जा” ऐसा पाठ भी योजित कर लेना चाहिये इसका ऐसा वाच्यार्थ होता है कि आत्मा जबतक ज्ञपरिज्ञा से आरम्भ परिग्रह रूप दो स्थानों को नहीं जानकर प्रत्याग्व्यान परिज्ञा से उनका परिस्थाग नहीं कर देता है, तबतक वह परिपूर्ण अथवा विशुद्ध केवलज्ञान को-विना मर्यादा के रूपी और अरूपी द्रव्यों को हस्तामलकवत् साक्षात् जानने वाले ज्ञान को नहीं उत्पन्न कर सकता है “केवलनाणं” में जो ज्ञान का विशेषण यह केवल पद रखा है उससे यह प्रकट किया गया है कि वह ज्ञान ऐसा होना है कि जिसमें मति आदि ज्ञानों की निरपेक्षता होने के कारण सहायता की चाहना नहीं रहती है । अथवा इस केवलज्ञान का निरोधक जो सर्वघाति प्रकृतिरूप केवलज्ञानावरण है उसका इसमें सर्वथा क्षय रहता है इसीलिये इसे विशुद्ध कहा गया है अथवा अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान जिस प्रकार द्रव्यक्षेत्रादि की मर्यादा लेकर रूपी पदार्थ को जानते हैं उस प्रकार से यह मर्यादा लेकर पदार्थों को नहीं जानता है किन्तु मर्यादा रहित होकर ही यह

ते पूर्णरूपे अथवा विशुद्धरूपे मनःपर्यवज्ञानने (मननी पर्यायेने साक्षात् लक्षणारा ज्ञानने) उत्पन्न करी शकते नथी

अर्थात् “नो केवल उप्पाडेज्जा” आ पाठ पणु येओवेओ जेओओ. तेना द्वारा ओवेओ वाच्यार्थ थाय छे के ल्यां सुधी आत्मा ज्ञ परिज्ञाथी आरंभ परिग्रहइरूप जे स्थानेने लक्ष्मीने प्रत्याग्व्यान परिज्ञाथी तेमने परिस्थाग करतो नथी, त्यां सुधी ते परिपूर्ण अथवा विशुद्ध केवलज्ञानने उत्पन्न करी शकते नथी कौं पणु ज्ञाननी मर्यादा विना रूथी अने अरूथी द्रव्येने हस्तामलकवत् (हाथमां रडेला आमगानी जेम) साक्षात् लक्षणारा ज्ञानने केवलज्ञान कडे छे. “केवलनाणं” आ पदमां जे केवल विशेषण छे तेना द्वारा जे प्रकट करवामां आओ छे के आ ज्ञान ओवुं डोय छे के तेमां भतिज्ञान आदि ज्ञानेनी अपेक्षा रडेती नथी-ओटले के ते ज्ञानेथी सहायतानी आवश्यकता रडेती नथी केवलज्ञानतु निरोधक सर्वघाति प्रकृतिरूप जे केवल ज्ञानावरण कर्म छे, तेने तेमां सर्वथा क्षय थयेला रडे छे, तेथी तेने विशुद्ध कछु छे. अवधिज्ञान अने मनःपर्यवज्ञान तेा द्रव्य, क्षेत्र, काण अने भावनी मर्यादामां रडेने रूथी पदार्थेने लक्ष्मी शकें छे, परन्तु केवलज्ञानमा आवी कौं मर्यादा

શ્રુતજ્ઞાનં=શ્રૂયતે, इति श्रुतम् शब्द एव । स च भावश्रुत प्रतिकारणमिति सत्र ज्ञान त्वोपचारेण स ज्ञानरूपः । श्रुत च तज्ज्ञानं च श्रुतज्ञानम्-श्रुतज्ञानानुसारिज्ञानं नोत्पादयतीति ।

‘ओहिनाय’ इति द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा केवल परिपूर्णं विशुद्ध वा अवधिज्ञानम्-इन्द्रियमनोनिरपेक्षम् आत्मनो रूपिद्रव्यसाक्षात्करण नोत्पादयतीति ।

‘मणपञ्चमवनाय’ इति । द्वे स्थाने अपरिज्ञाय आत्मा केवल=परिपूर्ण, विशुद्ध वा मन पर्यवજ્ઞાન-મનસ પયવા -પર્યાયાસ્તેવાં જ્ઞાન નોત્પાદયતીતિ ।

જ્ઞાન કો શ્રુતશાસ્ત્રાનુસારી જ્ઞાન કો ઉત્પન્ન નહીં કર સકતા હૈ શ્રુત શબ્દ કા અર્થ “શ્રૂયતે इति श्रुतम्” શબ્દ હૈ યહ શબ્દ ભાવશ્રુત કે પ્રતિ કારણ હોતા હૈ જ્ઞાનલિયે શબ્દ મેં જ્ઞાન કા ઉપચાર કર દિયા ગયા હૈ ઓર ઇસીમેં ઠસે જ્ઞાનરૂપ કહો હૈ ઇસી પ્રકાર સે આત્મા પરિગ્રહરૂપ દો સ્થાનોં કા જ્ઞ પરિજ્ઞા સે જાનકર જયતક પ્રત્યાહ્યાન પરિજ્ઞા સે ઇનકા પરિત્યાગ નહીં કર દેતા હૈ તય તક વહ પૂર્ણ વિશુદ્ધ અવધિજ્ઞાન કો ઇન્દ્રિયમનો નિરપેક્ષ હોકર રૂપિ દ્રવ્યમાત્ર કો દ્રવ્યક્ષેત્ર કાલ ઓર ભાવ કી મર્યાદા હેકર સાક્ષાત્ જાનને ઘાલે જ્ઞાન કો ઉત્પન્ન નહીં કર સકતા હૈ । ઇસી પ્રકાર સે આત્મા આરમ્ભ પરિગ્રહરૂપ દો સ્થાનોં કા જ્ઞ પરિજ્ઞા સે જાનકર જયતક પ્રત્યાહ્યાન પરિજ્ઞા ધારા પરિત્યાગ નહીં કર દેતા હૈ તય તક વહ પૂર્ણરૂપ સે યા વિશુદ્ધરૂપ સે મન પર્યવજ્ઞાન કો-મન કી પર્યાયોં કો સાક્ષાત્ જાનનેઘાલે જ્ઞાન કો ઉત્પન્ન નહીં કર સકતા હૈ

જાનને ) ઉત્પન્ન કરી શકતો નથી શ્રૂયતે इति श्रुतम् ' આ શ્રુતપત્તિ અતુ સાથે ' જે સબજાણ છે તે શ્રુત છે " જ્યેટહૈ કે શબ્દને શ્રુત કહે છે તે શબ્દ બાવશ્રુતમાં કારણરૂપ અને છે તેથી શબ્દમાં જ્ઞાનનો ઉપચાર કરાયો છે, અને તેથી જ તેને જ્ઞાનરૂપ કહેવામાં આવેલ છે

જ્યે- પ્રમાણે જ્યાં મુખી આત્મા આરભ અને પરિગ્રહરૂપ જે સ્થાનોને તે પરિનાથી બાલુતો નથી અને પ્રત્યાહ્યાન દ્વારા તેમનો પરિત્યાગ કરતો નથી ત્યાં મુખી તે પૂર્ણ વિશુદ્ધ અવધિજ્ઞાનને ઉત્પન્ન કરી શકતો નથી. ઇન્દ્રિયો અને મનની અધિક્ષા રાખ્યા વિના ક્વિ દ્રવ્યમાત્રને દ્રવ્ય, સેત્ર, કાળ અને બાવ ઠી મર્યાદાની અપેક્ષાએ સાક્ષાત્ બાલુનાર જ્ઞાનને અવધિજ્ઞાન કહે છે આરભ અને પરિગ્રહના સ્વરૂપને બાલુને તેમના પરિત્યાગ પૂર્વક જ આત્મા આ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરી શકે છે

જે જ પ્રમાણે જ્યાં મુખી આત્મા તે પરિજ્ઞાથી આરભ અને પરિગ્રહને બાલુતો નથી અને પ્રત્યાહ્યાન દ્વારા તે જ્ઞાનને ત્યાગ કરતો નથી, ત્યાં મુખી

‘કેવલનાણ’ ઇતિ । દ્વે સ્થાને અપરિજ્ઞાય આત્મા કેવલં પરિપૂર્ણ, વિશુદ્ધં વા કેવલજ્ઞાનં=કેવલં-મત્યાદિનિરપેક્ષત્વાદસદ્દાયં, યદ્વા-કેવલં-આવરણમલાભાવાદ્ વિશુદ્ધમ્, યદ્વા-કેવલં સકલં સંપૂર્ણમ્, યદ્વા-કેવલમ્-સજાતીયદ્વિતીયરહિતત્વા-

યહાં “નો કેવલ ઉપ્પાહેજ્ઞા” એસા પાઠ મી યોજિત કર લેના ચાહિયે હસકા એસા વાચ્યાર્થ હોના હૈ કિ આત્મા જવતક જ્ઞપરિજ્ઞા સે આરમ્ભ પરિગ્રહ રૂપ દો સ્થાનો કો નહીં જાનકર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞા સે ડનકા પરિત્યાગ નહીં કર દેતા હૈ, તવતક વહ પરિપૂર્ણ અથવા વિશુદ્ધ કેવલ-જ્ઞાન કો-વિના મર્યાદા કે રૂપી ઓર અરૂપી દ્રવ્યો કો હસ્તામલકવત્ સાક્ષાત્ જાનને વાલે જ્ઞાન કો નહીં ઉત્પન્ન કર સકતા હૈ “કેવલનાણ” મેં જો જ્ઞાન કા વિશેષણ યહ કેવલ પદ રખા હૈ ડસસે યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ કિ વહ જ્ઞાન એસા હોના હૈ કિ જિસમેં મતિ આદિ જ્ઞાનો કી નિરપેક્ષતા હોને કે કારણ સહાયતા કી ચાહના નહીં રહતી હૈ । અથવા હસ કેવલજ્ઞાન કા નિરોધક જો સર્વઘાતિ પ્રકૃતિરૂપ કેવલજ્ઞાનાવરણ હૈ ડસકા હસમેં સર્વથા ક્ષય રહતા હૈ હસીલિયે હસે વિશુદ્ધ કહા ગયા હૈ અથવા અવધિજ્ઞાન ઓર મનઃપર્યવજ્ઞાન જિસ પ્રકાર દ્રવ્યક્ષેત્રાદિ કી મર્યાદા લેકર રૂપી પદાર્થ કો જાનતે હૈં ડસ પ્રકાર સે યહ મર્યાદા લેકર પદાર્થો કો નહીં જાનતા હૈ કિન્તુ મર્યાદા રહિત હોકર હી યહ

તે પૂર્ણરૂપે અથવા વિશુદ્ધરૂપે મનઃપર્યવજ્ઞાનને (મનની પર્યાયોને સાક્ષાત્ બ્રહ્મનારા જ્ઞાનને) ઉત્પન્ન કરી શકતો નથી

અહીં “નો કેવલ ઉપ્પાહેજ્ઞા” આ પાઠ પણ યોજવો જોઈએ. તેના દ્વારા એવો વાચ્યાર્થ થાય છે કે જ્યાં સુધી આત્મા જ્ઞપરિજ્ઞાથી આરંભ પરિગ્રહરૂપ એ સ્થાનોને બ્રહ્મીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી તેમનો પરિત્યાગ કરતો નથી, ત્યાં સુધી તે પરિપૂર્ણ અથવા વિશુદ્ધ કેવલજ્ઞાનને ઉત્પન્ન કરી શકતો નથી. કોઈ પણ બતની મર્યાદા વિના રૂપી અને અરૂપી દ્રવ્યોને હસ્તામલકવત્ (હાથમાં રહેલા આમળાની જેમ) સાક્ષાત્ બ્રહ્મનારા જ્ઞાનને કેવલજ્ઞાન કહે છે. “કેવલનાણ” આ પદમાં જે કેવલ વિશેષણ છે તેના દ્વારા એ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે કે આ જ્ઞાન એકું હોય છે કે તેમાં મતિજ્ઞાન આદિ જ્ઞાનોની અપેક્ષા રહેતી નથી—એટલે કે તે જ્ઞાનોથી સહાયતાની આવશ્યકતા રહેતી નથી કેવલજ્ઞાનનું નિરોધક સર્વઘાતિ પ્રકૃતિરૂપ જે કેવલ જ્ઞાનાવરણ કર્મ છે, તેનો તેમાં સર્વથા ક્ષય થયેલો રહે છે, તેથી તેને વિશુદ્ધ કહ્યું છે. અવધિજ્ઞાન અને મન પર્યવજ્ઞાન તો દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની મર્યાદામાં રહીને રૂપી પદાર્થોને બ્રહ્મી શકે છે, પરન્તુ કેવલજ્ઞાનમાં આવી કોઈ મર્યાદા



असाधारणम्, अनन्तम्-पदा-केवल-ज्ञेयानन्तत्वादनन्तम्, तच्च तज्ज्ञानं च  
केवलज्ञानं नोत्पादयतीति ।

इह 'केवलम्' इति विशेषणेन, केवलज्ञानस्य स्वरूपमात्रं प्रदर्शितम् । सू० ८ ॥

कथं पुनः केवलप्रज्ञसधर्मश्रवणादिलामो भवेदित्याशङ्क्याह—

मूलम्—दो ठाणाह परियाणिता आया केवलप्रज्ञस  
धम्म लभेच्च सवणयाप, त जहा आरभे चेष, परिग्गहे चेष ।  
एव जाव केवलनाणमुप्पाहेच्चा ॥ सू० ९ ॥

इह स्थाने परिज्ञाय आत्मा केवलप्रज्ञस धर्मं समते श्रवणतायै । तद् यथा-  
आरम्भश्चैव परिग्रहश्चैव । एवं यावत् केवलज्ञानमुत्पादयति ॥ सू० ९ ॥

टीका—'दो ठाणाहं परियाणिता' इत्यादि ।

इह स्थाने—वस्तुनी, परिज्ञाय=अपरिज्ञयाऽनर्थमूलमिति विदित्वा, प्रत्यास्थान-

रूपी अरूपी समस्त त्रिकालवर्ती पदार्थों को और उनकी पर्यायों को  
युगपत् जानता है इसीलिये इसे सबलप्रत्यक्ष कहा गया है अथवा केवल-  
ज्ञान जैसा और कोई दूसरा ज्ञान नहीं है, अतः यह असाधारण ज्ञान है  
अनन्तज्ञानरूप है अथवा-ज्ञेय अनन्त है इसलिये यह अनन्त है इस प्रकार  
से यहाँ केवल विशेषणसे केवलज्ञानका स्वरूपमात्रं विखलाया गया है।

जीव केवलप्रज्ञस धर्म का श्रवणादिरूप लाभ कैसे हो सकता है  
इसके लिये सूत्रकार कहते हैं—

“दो ठाणाह परियाणिता आया” इत्यादि ॥ ९ ॥

टीकार्थ—आत्मा दो स्थानोंको जानकर केवलप्रज्ञस धर्मको श्रवणादि

बोली नहीं. ते तो अपरिचित ( भ्रष्टा विहीन ) रूपी, अरूपी समस्त  
त्रिकालवर्ती पदार्थोने अने तेमनी पर्यायोने जेक साथे बोली शके छे, तेथी  
तेने सबलप्रत्यक्ष कहेवार्था आब्यु छे अथवा केवलज्ञान जेवु जीवु केअ  
ज्ञान नहीं, तेथी ते असाधारण ज्ञान छे अने अनन्त ज्ञानरूप छे अथवा  
ज्ञेय ( पदार्थो ) अनन्त छे तेथी ते ज्ञान पद्य अनन्त छे आ रीते अर्था  
केवल विशेषणसे केवलज्ञाननु स्वरूपमात्रं अताववार्था आब्यु छे ॥ सू० ८ ॥

एव केवलप्रज्ञस धर्मना श्रवणादि रूप लाभ केथी रीते प्राप्त करी  
शके छे ते सूत्रकार हवे प्रकट करे छे—

दो ठाणाह परियाणिता आया इत्यादि ॥ ९ ॥

आत्मा जे स्थानोने बोलीने केवलप्रज्ञस धर्मने श्रवणादि रूप प्राप्त

परिज्ञया प्रत्याख्याय, आत्मा केवलिपन्नं धर्मं श्रवणतायै-श्रवणार्थं, लभते । ते द्वे स्थाने प्रदर्शयति-‘ तं जहा-इत्यादि । तद् यथा-आरम्भश्चैव, परिग्रहश्चैव । अयं भावः-आरम्भश्च परिग्रहश्चेत्पुमे स्थाने परित्यज्य जिनोक्तो धर्मः श्रोतुं सुलभो भवतीति । ‘ एवं जाव ’ इत्यादि । एवं यावत् केवलज्ञानमुत्पादयति । इह यावच्छब्देन-पूर्वसूत्रात् पाठोऽनुसन्धेयः ॥ सू० ९ ॥

धर्मादिप्राप्तौ पुनर्द्वयं कारणान्तरमाह—

मूलम्-दोहिं ठाणेहिं आया केवलिपन्नत्तं धम्मं लभेज्ज सव-  
णयाए । तं जहा-सोच्चा चैव, अभिसमेच्च चैव, जाव केवल-  
नाणं उप्पाडेज्जा ॥ सू० १० ॥

छाया—द्वाभ्यां स्थानाभ्यां आत्मा केवलिपन्नं धर्मं लभते श्रवणतायै । तं जहा-श्रुत्वा चैव, यावत् केवलज्ञानमुत्पादयति ॥ सू० १० ॥

रूपसे प्राप्तकर लेता है अर्थात् दो स्थानोंको जाननेवाला आत्मा ही केवलि प्रज्ञप्त धर्म को सुनने के योग्य बन सकता है वे दो स्थान हैं आरम्भ और परिग्रह इसी तरह से वह यावत् केवलज्ञान को उत्पन्न कर सकता है तात्पर्य इस कथन का ऐसा है कि आत्मा जपरिज्ञा से आरम्भ एवं परिग्रह को अनर्थ का मूल जानकर और प्रत्याख्यान परिज्ञा से जब उनका त्याग कर देता है तभी उसे जिनोक्त धर्म सुनने के लिये सुलभ होता है इसी प्रकार से ऐसा ही आत्मा यावत् केवलज्ञान को सुलभ शान्ति उत्पन्न कर लेता है यहां यावत्पद से पूर्व सूत्र का समस्त पाठ गृहीत हुआ है ॥ सू०९ ॥

करी वे छे. अेटवे के आरल अने परिग्रहइप जे स्थानेने ज परिज्ञाथी णाणीने प्रत्याख्यान द्वारा तेमने परित्याग करनार आत्मा ज केवलि प्रज्ञप्त धर्मने श्रवण करवाने पात्र णने छे. जेज प्रमाणे ते केवणज्ञान पर्यन्तना पूर्व सूत्रोक्त पदार्थेने प्राप्त करी शके छे अेटवे के ज्यारे आत्मा ज परिज्ञाथी आरल अने परिग्रहने अनर्थना भूण इप णाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी तेमने परित्याग करी हे छे, त्यारे ज ते जिनोक्त धर्मनु श्रवणताथी श्रवण करी शके छे, अने जेवो ज आत्मा पूर्व सूत्रोक्त अणुगरिता, संयम आदि केवणज्ञान पर्यन्तना लालेने प्राप्त करी शके छे अही “ जाव ” ( यावत् ) पदार्थी पूर्वसूत्रने समस्त पठ अणु करयो जेधजे. ॥ सू ९ ॥

टीका—'दोहिं ठाणेहिं' इत्यादि ।

भ्रुवा—केवलप्रज्ञस्य धर्मस्योपादेयतामाकर्ष्य भूमिसमेत्य—तां हृदिसपर्यां ।  
अथ भावः—धर्मोपादेयतायाः भ्रवण, इति धारण चेति द्वे स्थाने धर्मभ्रवणस्य  
कारणमिति ।

उक्तं च—“सद्धर्मभ्रवणादेव, नरो विगतकर्मपः ।

ज्ञातवस्वो महासत्त्व", पर सधेगमागतः ॥ १ ॥

धर्मोपादेयतां ज्ञात्वा, समाठेषुओम भावतः ।

इदं स्वशक्तिमासोष्य, प्रहृष्ये सप्रवर्त्तते ॥ २ ॥ ”

धर्मादि प्राप्ति में कारणान्तर द्वय का कथन—

“दोहिं ठाणेहिं आया केवलप्रज्ञस धम्म लमेउज्ज सवणयाप ”  
इत्यादि ॥ १० ॥

टीकार्थ—आत्मा दो स्थानोंके द्वारा केवलप्रज्ञस धर्मको पा लेता है, ये दो  
स्थानरूप कारण है एक भ्रवण और दूसरा हृदय में उसका अवधारण  
इसका तात्पर्य ऐसा है कि आत्मा केवल प्रज्ञस धर्म उपादेय है “ऐसा  
जय सुनता है तो इस भ्रवणमात्रसे वह केवलप्रज्ञस धर्मको ग्रहण नहीं  
कर लेता है, अतः इसके लिये आवश्यकता है उसे हृदयमें अवधारण  
करने की इसीलिये यहाँ केवल प्रज्ञस धर्म को प्राप्त करने के लिये इन दो  
कारणोंका निर्देश किया गया है उक्तं च—“सद्धर्मभ्रवणादेव ” इत्यादि  
जिनोक्त सत्त्वे धर्म सुननेसे (धर्म का भ्रवण करने से ) मनुष्य  
कस्मप ( पाप ) बिहीन हो जाता है क्योंकि वह उसके द्वारा हैय

धर्मादिनी प्राप्तिना निमित्तद्वय अन्य के स्थानोतुं निरूपण—

‘ दो हिं ठाणेहिं आया केवलप्रज्ञस धम्म लमेउज्ज सवणयाप ” इत्यादि १०

आत्मा के स्थानो द्वारा केवल प्रज्ञस धर्मने प्राप्त करे छे ते के स्थान  
रूप कारण नीचे प्रभावे छे—(१) भ्रवण अने (२) तेने हृदयमां अवधारण  
करीने. आ कथनतुं तात्पर्य नीचे प्रभावे छे—

‘ केवल प्रज्ञस धर्म उपादेय छे ’, जेनुं कथन न्याये आत्मा संबन्धे

छे, त्पारे जेदला कथनना भ्रवण मात्रधी छे ते केवलप्रज्ञस धर्मने प्रकृत करी  
लेता नधी, तेने भाटे तो आवस्थक वस्तु तो जे छे के तेने हृदयमां अवधारण  
करवे। जेअजे. तेधी छे सूत्राये केवलप्रज्ञस धर्मने प्राप्त करवा भाटे अर्था  
आ के कश्चोने निर्देश करी छे. कथुं पणु छे के—‘सद्धर्मभ्रवणादेव’ इत्यादि

जिनोक्त धर्मतुं भ्रवण कस्वाधी मनुष्य कस्मप ( पाप रूप भवितव्य ) धी  
बिहीन अनी अथ छे, कश्चुं के तेना द्वारा ते छेय अने उपादेयता तत्त्वज्ञानधी

‘जाव’ इति इह यावच्छब्देन—‘दोहिं ठाणेहिं आया केवलं वोहिं बुज्जेज्जा’ इत्यादि । ‘जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा’ इति पर्यन्तं बोध्यम् ॥ सू० १० ॥

केवलज्ञानं च कालविशेषे भवतीति तमाह—

मूलम्—दो समाओ पन्नत्ताओ । तं जहा-ओत्तप्पिणी समा चैव, उत्तप्पिणी समा चैव ॥ सू० ११ ॥

छाया—द्वे समे प्रज्ञप्ते । तद् यथा—अवत्सर्पिणी समा चैव, उत्सर्पिणी समा चैव ॥ सू० ११ ॥

टीका—‘दो समाओ’ इति ।

समा—कालविशेषः । अन्यत् सुगमम् ॥ सू० ११ ॥

और उपादेय के तत्त्वज्ञान से संपन्न बन जाता है जब आत्मा में हेयोपादेय का तात्त्विक ज्ञान जागृत हो जाता है तब आत्मा में एक प्रकार का ऐसा आत्मिक बल प्रकट होता है कि जिससे इसे परम संवेग उत्पन्न होता है “संसारत् भीतिसंवेगः” संवेग उत्पन्न होने से फिर यह धर्म को जीवन में उतारने की ऐसी दृढ इच्छा वाला बन जाता है कि जिससे वह अपनी शक्ति के अनुसार धर्म को ग्रहण ही कर लेता है यहां यावत्शब्द से “दोहिं ठाणेहिं आया केवलां वोहिं बुज्जेज्जा” इस पाठ से लेकर “जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा” इस पाठ तक का ग्रहण हुआ है ॥ सू० १० ॥

केवलज्ञान कालविशेष में होता है इसलिये अब उसी कालविशेष को सूत्रकार कहते हैं—“दो समाओ पन्नत्ताओ” इत्यादि ॥११॥

समा नाम कालविशेष का है और यह कालविशेष उत्सर्पिणी

युक्त भनी लय छे न्यारे आत्माना डेयोपादेयतु तात्त्विक ज्ञान जागृत थर्ध लय छे त्यारे आत्माना अंदर ओक जाततु आत्मभण प्रकट थाय छे अने तेना द्वारा तेना आत्माना परम संवेग उत्पन्न थाय छे “संसारत् भीति संवेग” संवेग उत्पन्न थवाथी ते धर्मने जीवनमां उतारवाने दृढ निश्चयी भने छे तेथी ते पोतानी शक्ति अनुसार धर्मने ग्रहण करी ले छे अर्द्धी “जाव (यावत्)” पदथी “दोहिं ठाणेहिं आया केवला वोहिं बुज्जेज्जा” आ पाठथी शर्इ करीने “जाव केवलनाणं उप्पाडेज्जा” आ सूत्रपाठ पर्यन्तने पाठ ग्रहण करवानां आये छे ॥ सू० १० ॥

डेवणज्ञान काणविशेषमां न थाय छे, तेथी डवे सूत्रकार ते काणविशेषनी अर्इपण्ठा करे छे—“दो समाओ पण्णत्ताओ” इत्यादि ॥ ११ ॥

काणविशेषतु नाम “समा” (समय) छे, ते काणविशेषता ये वेद छे.

टीका—‘दोहिं ठाणेहिं’ इत्यादि ।

श्रुत्या—केवलिप्रज्ञप्तस्य धर्मस्योपादेयतामारुर्ण्य अमिसमेत्य—तां हृदिसर्पां ।  
अय भावः—धर्मोपादेयतायाः भवण, हृदि धारण चेति द्वे स्थाने धर्मभवस्य  
कारणमिति ।

उक्त च—“सद्दर्मभ्रवणादेव, नरो विगतकल्मषः ।

ज्ञातवस्वो महासत्त्वः, पर सवेगमागतः ॥ १ ॥

धर्मोपादेयता ज्ञात्वा, समातेऽजोत्र भावतः ।

दृढं स्वशक्तिमालोच्य, ग्रहणे सप्रवर्षते ॥ २ ॥”

धर्मादि प्राप्ति में कारणान्तर द्वय का कथन—

“दोहिं ठाणेहिं आया केवलिप्रज्ञप्त धम्म लमेउच्च सवणयाप”  
इत्यादि ॥ १० ॥

टीकार्थ—आत्मा दो स्थानोंके द्वारा केवलिप्रज्ञप्त धर्मको पा लेता है, ये दो  
स्थानरूप कारण है एक भ्रवण और दूसरा हृदय में उत्सफा अवधारण  
इसका तात्पर्य ऐसा है कि आत्मा केवलि प्रज्ञप्त धर्म उपादेय है “पेसा  
जय सुनता है तो इस भ्रवणमात्रसे वह केवलिप्रज्ञप्त धर्मको ग्रहण नहीं  
कर लेता है, अतः इसके लिये आवश्यकता है उसे हृदयमें अवधारण  
करने की इसीलिये यहां केवलि प्रज्ञप्त धर्म को प्राप्त करने के लिये इन दो  
कारणोंका निर्देश किया गया है उक्त च—“सद्दर्मभ्रवणादेव” इत्यादि

जिनोक्त सन्धे धर्म सुननेसे (धर्म का श्रवण करने से) मनुष्य  
कल्मष (पाप) विहीन हो जाता है क्योंकि वह उसके द्वारा है

धर्मादिनी प्राप्तिना निमित्तद्वय अन्व वे स्थानानुं निरूपण—

“दो हिं ठाणेहिं आया केवलिप्रज्ञप्त धम्म लमेउच्च सवणयाप” इत्यादि १०

आत्मा वे स्थाने द्वारा केवलि प्रज्ञप्त धर्मने प्राप्त करे छे ते वे स्थान  
द्वय अत्र च नीचे प्रभावे छे—(१) भ्रवण अने (२) तेने हृदयमें अवधारण  
करीने. आ अथतनुं तात्पर्य नीचे प्रभावे छे—

“केवलि प्रज्ञप्त धर्म उपादेय छे”, जेवुं अथन अन्वारे आत्मा सांभवे  
छे, त्वारे जेठवा अथतना अत्र च मात्रणी छे ते केवलिप्रज्ञप्त धर्मने अद्वय करी  
लेता नथी, तेने आटे तो आवश्यक वस्तु तो जे छे के तेने हृदयमें अवधारण  
करवे जेठजे तेथी छे सूत्रादे केवलिप्रज्ञप्त धर्मने प्राप्त करवा आटे जेठो  
आ वे अत्रवेने निर्देश करी छे. अमुं पद्य छे के—‘सद्दर्मभ्रवणादेव’ इत्यादि

जिनोक्त धर्मनु अत्र च अत्र च अत्र च मनुष्य कल्मष (पाप रूप अज्ञितता) नी  
विहीन जनी अत्र छे, अत्र च के तेना द्वारा ते अत्र अने उपादेयता अवज्ञाननी

तयोर्मध्ये योऽसौ यक्षावेशेन भवति, स सुखवेदनतरक एव-अतिमुखेन मोहजन्यो-  
न्मादापेक्षया अक्लेशेन वेदनम्-अनुभवनं यस्यासौ सुखवेदनतरः स एव सुखवेद-  
नतरकः । तथा-अतिशयेन मुखेन विमोचनं-त्रियोजनं, यस्याऽसौ सुखविमोचन-  
तरः । स एव सुखविमोचनतरकः विद्यामन्त्रतंत्रादिमात्रसाध्यत्वात् इत्येवं द्विविधो  
भवति । तत्र खलु यः उन्मादो मोहनीयस्य कर्मण उदयेन जायते, स खलु दुःख-  
वेदनतरो भवति, ऐकान्तिकातिशयितभ्रमस्वभावात्तयाऽत्यन्तविपरीतप्रवृत्तिनिमित्त-  
त्वेनाऽनन्तभवभ्रमणकारणत्वात्, तथाऽऽभ्यन्तरकारणोत्पन्नत्वेन मन्त्राद्यसाध्यत्वात्

हो जाता है और उससे चित्त में जो असावधानी आ जाती है, वही  
यक्षावेशजन्य उन्माद है तथा दर्शनमोहनीयादि कर्म के उदय से जो  
उन्माद विपरीत परिणाम होता है वह दर्शनमोहनीय कर्म जन्य उन्माद  
है इनमें जो उन्माद यक्षावेश से जन्य होता है वह “ सुह वेयणतराए  
चेव ” सुखवेदनतरक ही हाता है अर्थात् मोहजन्य उन्माद की अपेक्षा  
वह यक्षावेशजन्य उन्माद अक्लेशसे है अनुभव जिनका ऐसा होता है  
तथा-सुखविमोचनतरक विद्यामन्त्रादि से साध्य होने के कारण अच्छी  
तरह से छुड़ाने के योग्य होता है अर्थात् यक्षावेश जन्य जो उन्माद  
होता है वह विद्यामन्त्र आदि के प्रभाव से छूट जाता है परन्तु जो  
मोहजन्य उन्माद होता है वह यक्षावेशजन्य उन्माद की अपेक्षा दुःख-  
वेदनतरक होता है क्यों कि दर्शनमोहनीय जन्य उन्माद आत्मा में  
विपरीत परिणतिरूप होता है इससे आत्मा अनात्माभूत पदार्थों में लु-

चित्तमां ने असावधानी आनी लय छे, तेने यक्षावेशजन्य उन्माद कडे छे परन्तु  
दर्शनमोहनीय कर्मना उदयथी चित्तमां विपरीत परिणाम रूप ने उन्माद  
पेदा थाय छे तेने दर्शनमोहनीय कर्मजन्य उन्माद कडे छे आ भन्ने उन्मा-  
दोमां ने पडेला प्रकारनो यक्षावेशजन्य उन्माद छे ते “ सुहवेयणतराएचेव ”  
सुखवेदन तरक न होय छे. अटवे के मोहजन्य उन्माद करता यक्षावेशजन्य  
उन्मादनो अनुभव वधारे अक्लेशजनक होय छे वणी यक्षावेशजन्य उन्माद  
सुखविमोचन तरक होय छे, सरणताथी हर करी शकय अवेो होय छे कारण  
के यक्षावेश जन्य ने उन्माद होय छे ते विद्या, मन्त्र आदि द्वारा सरणताथी  
हर करी शकय अवेो होय छे, परन्तु ने मोहजन्य उन्माद छे ते यक्षावेश  
जन्य उन्माद करता दुःखवेदनतरक-वधारे दुःखपूर्वक वेदन करवा योग्य होय  
छे, कारण के दर्शनमोहनीय जन्य उन्माद आत्मामा विपरीत परिणतिरूप  
होय छे. तेथी आत्मा अनात्मभूत पदार्थोमा दोलाधने छि-अनिष्टनी कल्पना-

કેવલજ્ઞાનમુન્માદસ્યે સત્યેષ મવતિ, અતઃ સામાન્યેન ઠમાદ્ પ્રરૂપયિતુમાહ-  
મુષ્મ્-દુઘિદ્દે ઉમ્માણ પન્નત્તે । સ જહા જક્ષ્વાવેસેણ ચેવ,  
મોહ્ણિજ્ઞસ્સ ચેવ કમ્મસ્સ ઉદ્દણ । તત્થ ણ જે સે જક્ષ્વા  
વેસેણ, સે સુહવેયણતરાણ ચેવ, સુહવિમોયણતરાણ ચેવ ।  
તત્થ ણ જે સે મોહ્ણિજ્ઞસ્સ કમ્મસ્સ ઉદ્દણ સે ણ દુહવેયણ  
તરાણ ચેવ, દુહવિમોયણતરાણ ચેવ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

છાયા—દ્વિવિષ ઠમાદઃ પ્રજ્ઞતઃ । તથા—યજ્ઞાવેશ્ચેન ચેવ, મોહનીયસ્ય ચેવ  
કર્મણ ઉદ્યેન તપ્ સ્વહુ યોડ્ઠો યજ્ઞાવેશ્ચન, સ સ્વહુ મુલવદનતરકરવેષ, મુલ  
વિમોષનતરકરવેષ । તપ્ સ્વહુ યોડ્ઠો મોહનીયસ્ય કર્મણ ઉદ્યેન, સ સ્વહુ દુલ  
વેદનતરકરવેષ, દુઃખવિમોષનતરકરવેષ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

ટોકા—‘ દુઘિદ્દે ઉમ્માણ ’ इत्यादि—

ઠન્માદઃ—ચિત્તવિષ્ણેષ, સ દ્વિવિષઃ પ્રજ્ઞતઃ । તપ્ યજ્ઞા—યજ્ઞાવેશ્ચેન—યજ્ઞો  
વેષસ્તસ્પાડ્ઠવશ્ચ—મનુષ્યાદિશરીરેડ્ઠિષ્ઠાન ઠેન, ય ઠન્માદઃ, સ ઇત્યેકઃ । તમા-  
મોહનીયસ્ય—દશનમોહનીયાદ કર્મણ ઉદ્યેન, ય ઠન્માદઃ, સોડ્ઠ્ય ઇતિ । તપ્—

ઔર અવસર્પિણી કે મેદ સે વો પ્રકાર કા હૈ પાકી કા હસ ચિપય કા  
કપન પહિલે કિયા જા પુકા હૈ ॥ સૂ૦૧૧ ॥

કેવલજ્ઞાન ઠન્માદ્ કે ક્ષય હોને પરહી હોતા હૈ અતઃ અવ સૂત્રકાર  
સામાન્યરૂપ સે ઠન્માદ્ કી પ્રરૂપણા કરતે હૈ—

“ દુઘિદ્દે ઉમ્માણ પન્નત્તે ” इत्यादि ॥ ૧૨ ॥

ચિત્તવિક્ષેપ કા નામ ઠન્માદ્ હૈ યહ ઠન્માદ્ વો પ્રકાર કા કહા  
ગયા હૈ વક યજ્ઞાવેશસે જુઝા ઠન્માદ્ ઔર વૃત્તરા વદ્દાનમોહનીય કર્મ  
કે ઉદ્ય સે જુઝા ઠન્માદ્, મનુષ્યાદિ શરીર મેં જો વેવ કા અધિષ્ઠાન

(૧) ઉત્તરપિંડીકાળ અને (૨) અવસર્પિણીકાળ. આ વિષયનું વિશેષ કથન  
પહેલાં કરવામાં આવી ગયું છે ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

ઠન્માદને ક્ષય થવાથી જ કેવલજ્ઞાન ઉત્પત્ત થાય છે તેથી સૂત્રકાર હવે  
સામાન્યરૂપે ઠન્માદની પ્રરૂપણા કરે છે ‘ દુઘિદ્દે ઉમ્માણ પન્નત્તે ’ इत्यादि ॥ ૧૨ ॥

ચિત્તવિક્ષેપને ઠ માદ કહે છે તે ઠ માદના બે પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) યજ્ઞાવેશ  
દ્વારા ઉત્પત્ત થયેલો ઠ માદ અને (૨) દશન મોહનીય કર્મના ઉત્પત્તિ ઉત્પત્ત થયેલો  
ઠન્માદ. મનુષ્યાદિના શરીરમાં કોઈ કેવાદિનો પ્રવેશ થાય છે અને તેને બીધે તેના

उन्मादे सति प्राणी प्राणातिपातादिरूपे दण्डे प्रवर्तते, दण्डभाजनं वा भवतीतिदण्डं निरूपयति—

मूलम्-दो दंडा पन्नत्ता । तं जहा-अट्टादंडे चेव, अणट्टादंडे चेव । नेरइयाणं दो दंडा पन्नत्ता, तं जहा-अट्टादंडे य, अणट्टादंडे य । एवं चउवीसादंडओ, जाव विमाणियाणं ॥ सू० १३ ॥

छाया-द्वौ दण्डौ प्रज्ञप्तौ । तद् यथा-अर्थदण्डश्चैव, अनर्थदण्डश्चैव । नैरयिकाणां द्वौ दण्डौ प्रज्ञप्तौ, तं जहा-अर्थदण्डश्च अनर्थदण्डश्च । एवं चतुर्विंशतिदण्डकः, यावद् वैमानिकानाम् ॥ सू० १३ ॥

टीका 'दो दंडा पन्नत्ता' इत्यादि—

द्वौ दण्डौ प्रज्ञप्तौ-प्ररूपितौ भगवता । दण्डः प्राणातिपातादिः, स द्विविध इत्यर्थः । दण्डशब्दार्थः आवश्यकसूत्रस्य मत्कृतायां मुनितोषिणी टीकाया-

संसार दुःखरूप ही है इसलिये भी यह दुःखवेदनतर है तथा यह उन्माद जीव के साथ भव २ में जाता है अतः एक भविक यक्षजन्य उन्माद की अपेक्षा यह दुःख वेदनतरक है और यक्षजनित उन्माद इस की अपेक्षा सुखवेदनतरक है ॥सू० १२॥

उन्माद के होने पर प्राणी प्राणातिपातादिरूप दण्ड में प्रवृत्ति करता है अथवा दण्डका पात्र होता है-इसी विषय की अब सूत्रकार प्ररूपणा करते हैं-"दो दंडा पन्नत्ता" इत्यादि ॥१३॥

दण्ड शब्द से यहां प्राणातिपात आदिकों का ग्रहण हुआ है यह दण्ड दो प्रकार का है दण्डशब्द का अर्थ आवश्यक सूत्र पर जो मेरी की हुई मुनितोषिणी टीका है, उसमें विवेचित हुआ है अतः वहां से

બને છે સસાર તો દુઃખરૂપ જ છે, તેથી પણ તેને દુઃખવેદનતરક કહ્યો છે આ ઉન્માદને સમય જીવની સાથે ભવ ભવમાં રહે છે તેથી એક ભવિક યક્ષજન્ય ઉન્માદ કરતા મોહનીયજન્ય ઉન્માદને દુઃખવેદનતરક કહ્યો છે યક્ષજન્ય ઉન્માદ મોહનીયજન્ય ઉન્માદ કરતા સુખવેદનતરક હોય છે ॥સૂ० ૧૨॥

ઉન્માદયુક્ત અવસ્થામાં જ જીવ પ્રાણાતિપાત આદિ રૂપ દંડમાં પ્રવૃત્ત થાય છે અથવા દંડને પાત્ર બને છે. તેથી સૂત્રકાર હવે દંડની પ્રરૂપણા કરે છે.

“દો દંડા પન્નત્તા” ઇત્યાદિ ॥ ૧૩ ॥

દંડ શબ્દ દ્વારા અહીં પ્રાણાતિપાત આદિને ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. આ દંડના બે પ્રકાર છે દંડ શબ્દનો અર્થ, મારા દ્વારા આવશ્યક સૂત્રની



કર્મણ્યોપશમાદિભિરેવનિચાર્યત્વાત્ । સંસારસ્ય ચ દુઃસ્વલેદનસ્વભાવત્વાત્ । મોહમો  
ન્માદાદન્યો યશ્ચજનિતોન્માદઃ સુખલેદનતર એવ એકમવિક્ત્વાદિતિ ॥ ૬૦ १૨

માતા હુઆ ઇષ્ટાનિષ્ટ કી કલ્પના સે આપ કો સુખી દુઃખી માનને લગતા  
હે જો પદાર્થ અપને નહીં હૈં ઇન્હેં અપના માનતા હૈં ઓર જો અપને હૈં ઁને  
અપને નહીં માનતા હૈં રાગાવિરુ જો પ્રકટ મેં દુઃખોં દેનેલાહે હૈં ઁનકી  
હી સેવા કરતા હુઆ અપને કો સુખી માનતા હૈં શુભ ઓર અશુભ  
કર્મ કે ફળ મેં રતિ ઓર અરતિ કરતા હુઆ અપને નિજકે પદ કો  
મૂલ જાતા હૈં ઇસ તરહ સે ઇસ જીવ કી ઘર્શન મોહનીયકર્મ કે ઉદય  
સે વિપરીત પરિણતિ યન જાતી હૈં તાત્પર્ય યહી હૈં કિ યહ ઇસકે સમ્ભાવ  
સે સમ્યગ્દષ્ટિ નહીં યન પાતા હૈં ઇસ કારણ ઇસ પ્રકાર કી પ્રવૃત્તિ ઇસ  
કે ઠિયે અનન્ત ભવબ્રમણ કા કારણ યનતી હૈં ક્યોં કિ જલતક ઇસ  
પ્રકાર કી વિપરીત પરિણતિ રુપ ઘર્શનમોહનીય જન્ય ઉન્માદ કા ઉદય  
જીવ કો રહતા હૈં તલતક યહ જીવ ચારોં ગતિયોં મેં જન્મમરણ કે  
દુઃખો કો ઉઠાતા રહતા હૈં—યહી ઇસ ઉન્માદ મેં દુઃસ્વલેદનતરકતા હૈં  
તથા યહ ઉન્માદ ઘર્શનમોહનીય કર્મકે ક્ષય ક્ષયોપશમાવિસે હી હટાયા  
જા સકતા હૈં વિદ્યામન્ત્રાદિ કે પ્રભાવ સે નહીં ઇસલિયે ઁી યહ દુઃસ્વ  
લેદનતરક હૈં તથા—યહ ઉન્માદ સંસાર કા હી કારણ હોતા હૈં ઓર

જોખી યેતાને સુખીદુઃખી માનવા હાત્રે છે જે પદાર્થો યેતાના નથી તેમને  
તે યેતાના માને છે અને જે પદાર્થો યેતાના છે તેમને તે પારકા માને છે  
દુઃખના કારણરૂપ શમાદિકૈની સેવા કરવામાં જ તે સુખ માને છે જોવો  
માણસ શુભ અને અશુભ કર્મના ફળમાં રતિ અને અરતિ કરતો યહો યેતાના  
નિજના પદને ભૂલી બાજ છે. આ રીતે ઘર્શનમોહનીય કર્મના ઉદયથી તે સુખ  
વિપરીત પરિણતિવાળો બની આવે છે કહેવનું તાત્પર્ય એ છે કે આ પ્રકારના  
ઉપદેશોથી સુખ સમ્યગ્દષ્ટિ બની શકતો નથી તે કારણે તેની આ પ્રકારની  
પ્રવૃત્તિ તેને માટે અનન્ત ભવબ્રમણનું કારણ બને છે કારણ કે જ્યાં સુખી  
તે સુખમાં ઘર્શનમોહનીય જન્ય આ પ્રકારની વિપરીત પરિણતિને સમ્ભાવ  
રહે છે ત્યાં સુખી તે આરે ગતિઓમાં જ મમરણ રૂઃ દુઃખોને સદન કરતો  
રહે છે જોજ આ ઉન્માદમાં દુઃખલેદન તરકત્યા છે આ ઉ માહને ઘર્શનમોહ  
નીયના શબ્દ અને શયોપશમાદિ શાશ જ દૂર કરી શકાય છે વિદ્યામ ત્રાદિના  
પ્રભાવથી આ પ્રકારનો ઉ માદ દૂર કરી શકતો નથી, તેથી પણ તેને દુઃખ  
લેદનતરક કહેવામાં આવેલ છે તથા આ ઉ માદ સંસારની વૃદ્ધિના કારણરૂપ

भवति । स एव तेषामर्थदण्डः, अन्यथात्नर्थदण्डः । अथवा-भवान्तरीयो योऽर्थ-  
दण्डादिपरिणामस्तदपेक्षया दण्डद्वयं पृथिव्यादीनां बोध्यम् ॥ सू० १३ ॥

स चायं दण्डः सम्यग्दर्शनादित्रयवतां न भवतीत्यतस्तत्त्रितयनिरूपणं कर्तुमि-  
च्छन् पूर्वं सामान्येन दर्शनस्वरूपं निरूपयति—

मूलम्—दुविहे दंसणे पन्नत्ते । तं जहा,सम्मदंसणे चेव,  
मिच्छादंसणे चेव । सम्मदंसणे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा-णिसग्ग-  
सम्मदंसणे चेव, अभिगमसम्मदंसणे चेव । णिसग्गसम्मदंसणे  
दुविहे पन्नत्ते । तं जहा-पडिवाई चेव, अपडिवाई चेव । अभि-  
गमसम्मदंसणे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा पडिवाई चेव, अपडि-  
वाई चेव । मिच्छादंसणे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा-अभिग्गहिय-  
मिच्छादंसणे चेव, अणभिग्गहियमिच्छादंसणे चेव । अभिग्ग-  
हियमिच्छादंसणे दुविहे पन्नत्ते तं जहा-सपज्जवसिए चेव, अप-  
ज्जवसिए चेव । एवसणभिग्गहियमिच्छादंसणेऽवि ॥ सू० १४ ॥

छाया—द्विविधं दर्शनं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—सम्यग्दर्शनं चैव, मिथ्यादर्शनं  
चैव । सम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—निसर्गसम्यग्दर्शनं चैव, अभिग-  
मसम्यग्दर्शनं चैव । निसर्गसम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तं जहा—प्रतिपातिचैव,  
अप्रतिपाति चैव । अभिगमसम्यग्दर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—प्रतिपाति चैव,  
अप्रतिपाति चैव । मिथ्यादर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—अभिग्रहिकमिथ्याद-  
र्शनं चैव, अनभिग्रहिकमिथ्यादर्शनं चैव । अभिग्रहिकमिथ्यादर्शनं द्विविधं प्रज्ञप्तम् ।  
तद् यथा—सपर्यवसितं चैव, अपर्यवसितं चैव । एवमनभिग्रहिकमिथ्यादर्शनमपि ॥ १४ ॥

पर जीवों का उपघात होता है तद्रूप अर्थ दण्ड होता है इससे अतिरिक्त  
वहाँ अनर्थ दण्ड होता है अथवा भवान्तरीय जो अर्थदण्डादिरूप उनका  
परिणाम है उस अपेक्षा से दण्डद्वय पृथिव्यादिकों के होते हैं ऐसा  
जान लेना चाहिये ॥ सू० १३ ॥

अर्हणु इरवामा एवोनेो ने उपघात थाय छे, ते उपघात इप अर्थ इउनेो  
सद्वलाव डोय छे तदुपरांत तेओमां अनर्थ इउनेो पणु सद्वलाव डोय छे.  
अथवा भवान्तरीय ने अर्थ इंडादि इप तेभनुं परिणाम छे, ते इष्टिओ ओम  
समज्जु नेष्टओ के पृथ्वीकाय आदिमा पणु णन्ने प्रक्षरना इउनेो सद्वलाव  
डोय छे. ॥ सू० १३ ॥

મયલોકનીય । કેન પ્રકારેણ ઢૌ દણ્ઠૌ પ્રરૂપિતૌ ? ત પ્રદર્શયતિ-‘ સં જ્ઞા ’  
 ઇત્યાદિ । અર્થદણ્ઠ=અર્થાંય ઇન્દ્રિયાદિપ્રયોજનાય દણ્ઠ, યસ્તુ નિષ્પયોજનો દણ્ઠઃ,  
 સ અનર્થદણ્ઠ ઇતિ । ઉક્તરૂપમેવ દણ્ઠં સર્વજીવેષુ ચતુર્વિંશતિદણ્ઠકેન નિરૂપયતિ-  
 ‘ નૈરજ્યાણ ’ ઇત્યાદિ । નૈરયિકાણામર્થદણ્ઠોઽનર્થદણ્ઠમેતિ ઢૌ દણ્ઠૌ મઠતઃ ।  
 એવ=નૈરયિકવત્ અર્થદણ્ઠાનર્થદણ્ઠામિલાપેન ચતુર્વિંશતિદણ્ઠકો; ઘોદ્વ્ય । ઉપૈતા-  
 ઘાન્ વિશેષઃ-નૈરયિકાણામર્થદણ્ઠઃ સ્વસરીરરક્ષાર્થમન્યસ્યોપહનનમ્, અનર્થદણ્ઠસ્ય  
 પ્રદેપકરણાદેષ મઠતિ । પૃથિવ્યાદીનાં તુ અનામોગેનાપ્યાહારકગ્રહણે જીવોપચાતો

इसे जान लेना चाहिये दण्ड के ये दो प्रकार इस तरह से हैं-“ अष्टा  
 द्धे शेष अण्डाद्धे शेष ” एक अर्थ दण्ड और दूसरा अनर्थ दण्ड  
 इनमें इन्द्रियादि प्रयोजन के निमित्त जो दण्ड है वह अर्थ दण्ड है ।  
 तथा निष्प्रयोजन जो दण्ड है वह अनर्थ दण्ड है इसी दण्ड का सर्व  
 जीवों में चतुर्विंशतिदण्ड द्वारा अथ सूत्रकार प्ररूपण करते हैं “ नैर  
 ज्याण ” इत्यादि-

नैरयिक जीवों में दो दण्ड होते हैं एक अर्थदण्ड और दूसरा अन  
 र्थदण्ड नैरयिक की तरह ही अर्थदण्ड और अनर्थ के अभिहाप से  
 चतुर्विंशतिदण्डक जानना चाहिये विशेषता इसमें केवल ऐसी ही है कि  
 नैरयिकों में जो अर्थदण्ड है वह अपने शरीर की रक्षा के लिये अन्य  
 नारकियों का उपहननरूप है तथा अनर्थदण्ड, अर्थ के प्रदेप करने रूप  
 है तथा पृथिव्यादिक जीवों में अनामोग से भी जो आहारग्रहण करने

ને મુનિતાવિધી ટીકા લખવામાં આવી છે, તેમાં આપ્તો છે તેથી વિશાસ  
 પાઠકોએ ત્યાંથી તે વાંચી લેવો. ઇતના પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે-

“ અષ્ટા દ્ધે શેષ અણ્ડાદ્ધે શેષ ” (૧) અર્થ દદ અને (૨) અનર્થ  
 દદ. ઇન્દ્રિયાદિ પ્રયોજનને નિમિત્તે જે પ્રાણાતિપાતાદિ રૂપ દદ થાય છે, તેને  
 અર્થ દદ કહે છે પણ નિ પ્રયોજનપુષ્ટા જે દદ હોય છે તેને અનર્થ દદ  
 કહે છે હવે આ દદનુ સમસ્ત એવોમાં ૨૪ દદોને દ્વારા સૂત્રકાર નિરૂપણ  
 કરે છે- નૈરજ્યાણ ’ ઇત્યાદિ નારકોમાં જે દદ હોય છે (૧) અર્થ દદ અને  
 (૨) અનર્થ દદ. એજ અભિલાપ કમથી ધાવીસે ઇટકોના એવોમાં-વૈમાનિકે  
 ષમન્તના એવોમાં અથ દદ અને અનર્થ ઇટના સદ્ભાવનું કમન યનું એઇએ.  
 અર્થ દદ અને અનર્થ ઇટની અપેક્ષાએ નારકોમાં આ પ્રમાણે વિશેષતા છે.  
 નારકોમાં પોતાના શરીરની રક્ષાને માટે અથ દદ થતો હોય છે અને તે અનર્થ  
 નારકોના ઉપહનન રૂપ હોય છે અને ત્યાં અર્થ પ્રદેપ કરવા રૂપ અનર્થ  
 દદનો સદ્ભાવ હોય છે પુષ્ટીકાય આદિ એવોમાં અનામોગ રૂપ આહાર

ભવતિ । સ એવ તેષામર્થદણ્ડઃ, અન્યથાત્વનર્થદણ્ડઃ । અથવા-ભવાન્તરીયો યોર્થ-  
દણ્ડાદિપરિણામસ્તદપેક્ષયા દણ્ડદ્વયં પૃથિવ્યાદીનાં વોધ્યમ્ ॥ સૂં ૧૩ ॥

સ ચાયં દણ્ડ. સમ્યગ્દર્શનાદિત્રયવ્રતાં ન ભવતીત્યતસ્તત્ત્રિતયનિરૂપણં કર્તુમિ-  
ચ્છન્ પૂર્વં સામાન્યેન દર્શનસ્વરૂપં નિરૂપયતિ—

મૂલમ્—દુવિહે દંસણે પન્નત્તે । તં જહા, સમ્મદંસણે ચેવ,  
મિચ્છાદંસણે ચેવ । સમ્મદંસણે દુવિહે પન્નત્તે । તં જહા-ણિસગ્ગ-  
સમ્મદંસણે ચેવ, અભિગમસમ્મદંસણે ચેવ । ણિસગ્ગસમ્મદંસણે  
દુવિહે પન્નત્તે । તં જહા-પાડિવાઈ ચેવ, અપાડિવાઈ ચેવ । અભિ-  
ગમસમ્મદંસણે દુવિહે પન્નત્તે । તં જહા પાડિવાઈ ચેવ, અપાડિ-  
વાઈ ચેવ । મિચ્છાદંસણે દુવિહે પન્નત્તે । તં જહા-અભિગ્ગહિય-  
મિચ્છાદંસણે ચેવ, અણભિગ્ગહિયમિચ્છાદંસણે ચેવ । અભિગ્ગ-  
હિયમિચ્છાદંસણે દુવિહે પન્નત્તે તં જહા-સપજ્જવસિણ ચેવ, અપ-  
જ્જવસિણ ચેવ । એવમણાભિગ્ગહિયમિચ્છાદંસણેઽવિ ॥ સૂં ૧૪ ॥

છાયા—દ્વિવિધં દર્શનં પ્રજ્ઞપ્તમ્ । તદ્ યથા—સમ્યગ્દર્શનં ચૈવ, મિથ્યાદર્શનં  
ચૈવ । સમ્યગ્દર્શનં દ્વિવિધં પ્રજ્ઞપ્તમ્ । તદ્ યથા—નિસર્ગસમ્યગ્દર્શનં ચૈવ, અભિગ-  
મસમ્યગ્દર્શનં ચૈવ । નિસર્ગસમ્યગ્દર્શનં દ્વિવિધં પ્રજ્ઞપ્તમ્ । તં જહા—પ્રતિપાતિચૈવ,  
અપ્રતિપાતિ ચૈવ । અભિગમસમ્યગ્દર્શનં દ્વિવિધં પ્રજ્ઞપ્તમ્ । તદ્ યથા—પ્રતિપાતિ ચૈવ,  
અપ્રતિપાતિ ચૈવ । મિથ્યાદર્શનં દ્વિવિધં પ્રજ્ઞપ્તમ્ । તદ્ યથા—અભિગ્રહિકમિથ્યાદ-  
ર્શનં ચૈવ, અનભિગ્રહિકમિથ્યાદર્શનં ચૈવ । અભિગ્રહિકમિથ્યાદર્શનં દ્વિવિધં પ્રજ્ઞપ્તમ્ ।  
તદ્ યથા—સપર્યવસિતં ચૈવ, અપર્યવસિતં ચૈવ । એવમનભિગ્રહિકમિથ્યાદર્શનમપિ ॥ ૧૪ ॥

પર જીવોં કા ઉપઘાત હોતા હૈ તદ્રૂપ અર્થ દણ્ડ હોતા હૈ હસસે અતિરિક્ત  
વહાં અનર્થ દણ્ડ હોતા હૈ અથવા ભવાન્તરીય જો અર્થદણ્ડાદિરૂપ ઉનકા  
પરિણામ હૈ ડસ અપેક્ષા સે દણ્ડદ્વય પૃથિવ્યાદિકોં કૈ હોતૈ હૈં ંસા  
જાન લેના ચાહિયૈ ॥ સૂં ૧૩ ॥

અહલુ કરવામા ભવેનો જે ઉપઘાત થાય છે, તે ઉપઘાત રૂપ અર્થ દડનો  
સદ્ભાવ હોય છે તદુપરાંત તેઓમા અનર્થ દડનો પણ સદ્ભાવ હોય છે.  
અથવા ભવાન્તરીય જે અર્થ દડાદિ રૂપ તેમતું પરિણામ છે, તે દષ્ટિએ એમ  
સમજવુ જોઈએ કે પૃથ્વીકાય આદિમાં પણ બંને પ્રકારના દડનો સદ્ભાવ  
હોય છે ॥ સૂં ૧૩ ॥

टीका—‘दुषिहे दसणे पणत्ते’ इत्यादि—

दर्शन-अद्वानम्, अभिरुषिरिस्पर्यः । तद् द्विविधम्—सम्पद्दर्शनम्, मिथ्या-दर्शनं चेति । तत्र—सर्वज्ञोपदिष्टपारमार्थिकजीवादिपदार्थानां अद्वानं सम्पद्दर्शनम्, तद्विपरीतं मिथ्यादर्शनम् । सम्पद्दर्शनं द्विविधम्—निसर्गसम्पद्दर्शनम्, अभिगमसम्पद्दर्शनं च । तत्र—निसर्ग, स्वभाष, अनुपदेश, इत्येकार्याः । निसर्गेषु—स्वभावेन गुर्वाद्युपदेशमन्तरेण कर्मोपशमादिभ्यो जीवस्य यद्दर्शनं समुत्पद्यते तद्

यह षण्ड सम्पद्दर्शनादिप्रय वाळे जीवों को नहीं होता है इसी अभिप्राय से उन तीनों का निरूपण करने की इच्छावाळे सूत्रकार पहिले सामान्य रूप से दर्शन के स्वरूप का निरूपण करते हैं—

“दुषिहे दसणे पणत्ते” इत्यादि ॥ १४ ॥

दर्शन-अद्वानं अभिरुषि-वो प्रकार का कहा गया है जैसे सम्पद्दर्शन और मिथ्यादर्शन इनमें सर्वज्ञ उपदिष्ट जीवादिक पदार्थों का जो अद्वान है यह सम्पद्दर्शन है इस सम्पद्दर्शन से जो विपरीत दर्शन है यह मिथ्यादर्शन है इनमें भी जो सम्पद्दर्शन है यह निसर्गसम्पद्दर्शन और अभिगम सम्पद्दर्शन के भेद से दो प्रकार का है जो सम्पद्दर्शन जीव को गुर्वादिक के उपदेश के बिना उत्पन्न होता है वह सम्पद्दर्शन निसर्ग है निसर्गशब्द का अर्थ स्वभाष है इस स्वभाष से हुए सम्पद्दर्शन में उपदेश आदि परनिमित्त की अपेक्षा नहीं रहती है इसमें दर्शननोदनीय कर्म का क्षयोपशमादि रूप परिणाम स्वतः होता है

सम्पद्दर्शनादि त्रयुना सहजापवाणा एवे आ इदमी रक्षितं डेषे उ तेभी नवे सूत्रकार ते त्रयुनुं निरूपणं करे उ चडेवां तेभ्यो सामान्य रूपे इय ननु निरूपणं करे उ—‘दुषिहे दसणे पणत्ते’ इत्यादि ॥ १४ ॥

जिनोऽह्य इयनमां अद्वा अथवा अभिरुषिनुं नाम इयन उ तेना वे प्रकार उ—(१) सम्पद्दर्शनं अने (२) मिथ्यादर्शनं. सर्वज्ञ द्वारा उपदिष्ट एवा दिष्ट पदार्थोंमां अद्वा राजवी तेनुं नाम सम्पद्दर्शन उ आ सम्पद्दर्शनं कर्ता विपरीत वे इयन उ तेने मिथ्यादर्शनं कडे उ सम्पद्दर्शनना वे वेद उ (१) निसर्ग सम्पद्दर्शन, (२) अभिगम सम्पद्दर्शन वे सम्पद्दर्शनं एवमां शुरु आदिना उपदेश विना उत्पन्न थाय उ ते सम्पद्दर्शनने निसर्ग सम्पद्दर्शन कडे उ निसर्ग जेग्वे स्वभाष आनी रीने उत्पन्न यवेता सम्पद्दर्शनमां उपदेश आदि परनिमित्तोनी आरभ्यकता रडेती नथी तेमां दर्शन शोचनीय अमता क्षयोपशमादि रूप परिणाम स्वतः थाय उ, तेभी च

નિસર્ગસમ્યગ્દર્શનમ્ । યથા શ્રાવકપુત્રપૌત્રાણાં કુલપરમ્પરાગતં યદ્ દર્શનમ્ । યથા  
 વા સ્વયંભૂરમણસમુદ્રસ્થિતાનાં શ્રાવકશ્રાવિકાદિ સંસ્થાનવ્રતાં મત્સ્યાનાં ત્રિલોક-  
 નેન તદાવરણીયક્ષયોપશમતો જીવસ્ય યદ્ દર્શન જાયતે તત્ નિસર્ગસમ્યગ્દર્શનમ્ ।  
 અભિગમઃ—ઉપદેશઃ, તજ્જનિતં સમ્યગ્દર્શનમ્, અભિગમસમ્યગ્દર્શનમ્, इदं गुर्वाद्युप-  
 देशे सति जायते । तत्र निसर्गसम्यगदर्शनं द्विविधम्—प्रतिपाति, अप्रतिपाति च ।  
 तत्र यत् दर्शनमोहनीयोदयात् प्रतिपतति, तत् प्रतिभतनशीलं प्रतिपाति, औपशमिकं  
 क्षायोपशमिकं चेत्यर्थः । अप्रतिपाति—सायिकम् । तथा—अभिगमसम्यगदर्शनं द्विवि-

हसीलिये इसका नाम निसर्ग सम्यग्दर्शन हुआ है श्रावक के पुत्रों और  
 पौत्रादिकों में जो कुलपरम्परागत दर्शन होता है वह निसर्ग सम्यग्दर्शन  
 है तथा स्वयंभूरमणसमुद्र में स्थित जो श्रावक श्राविका आदि के  
 आकार वाले मत्स्य हैं उन मत्स्यों के विलोकन से जो जीव को तदा-  
 वरणीय कर्म का दर्शनमोहनीय कर्म का क्षयोपशम होता है और इस  
 क्षयोपशम से जो उसका दर्शन होता है, वह निसर्ग सम्यग्दर्शन है  
 अभिगम नाम उपदेशका है इस उपदेशसे जो जीवको दर्शन प्राप्त होता  
 है वह अभिगम सम्यग्दर्शन है यह सम्यग्दर्शन गुर्वादिक का उपदेश  
 प्राप्त होने पर ही होता है निसर्गसम्यग्दर्शन भी दो प्रकार का होता है  
 -एक प्रतिपाति और दूसरा अप्रतिपाति इनमें दर्शक मोहनीय कर्म के  
 उदय से जो सम्यग्दर्शन होकरके छूट जाता है वह सम्यग्दर्शन प्रति-  
 पाति है औपशमिक सम्यग्दर्शन और क्षयोपशमिक सम्यग्दर्शन दो

તેનુ નામ નિસર્ગ સમ્યગ્દર્શન પડ્યુ છે શ્રાવકોના પુત્ર પુત્રીઓમાં જે કુલ-  
 પરમ્પરાગત દર્શન હોય છે, તે નિસર્ગ સમ્યગ્દર્શન જ છે તથા સ્વયંભૂરમણ  
 સમુદ્રમાં રહેલાં જે શ્રાવક શ્રાવિકાદિના આકારવાળા મત્સ્યો છે, તે મત્સ્યોને  
 દેખવાથી જે જીવોના દર્શન મોહનીય કર્મનેા ક્ષયોપશમ થાય છે, અને તે  
 ક્ષયોપશમને કારણે તેને જે દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે, તે દર્શન પણ નિસર્ગ  
 સમ્યગ્દર્શન જ છે. અભિગમ એટલે ઉપદેશ. તે ઉપદેશ દ્વારા જીવને જે  
 દર્શનની પ્રાપ્તિ થાય છે, તે દર્શનને અભિગમ સમ્યગ્દર્શન કહે છે. આ પ્રકા-  
 રનુ સમ્યગ્દર્શન શુરુ આદિના ઉપદેશથી જ પ્રાપ્ત થાય છે નિસર્ગ સમ્યગ્દ-  
 ર્શનના પણ બે ભેદ પડે છે—(૧) પ્રતિપાતિ અને (૨) અપ્રતિપાતિ.

દર્શન મોહનીય કર્મના ઉદયથી જે સમ્યગ્દર્શન છૂટી જાય છે ( નષ્ટ  
 થઈ જાય છે ) એવાં સમ્યગ્દર્શનને પ્રતિપાતિ સમ્યગ્દર્શન કહે છે. ઔપશમિક  
 સમ્યગ્દર્શન અને ક્ષાયોપશમિક સમ્યગ્દર્શન, આ બે સમ્યગ્દર્શનો પ્રતિપાતિ



ग्रहः—कदाग्रहः, स यत्रास्ति तदभिग्रहिकं, तद्विपरीतम्—अनभिग्रहिकम् इति ।  
अभिग्रहिकमिथ्यादर्शनं द्विविधम्—सपर्यवसितम्—पर्यवसानसहितम्, सम्यक्त्वप्राप्तौ  
मिथ्यादर्शनस्य नाशात् सान्तमित्यर्थः, अपर्यवसितम्—पर्यवसानरहितम् अभव्यस्य  
सम्यक्त्वाप्राप्तौ पर्यवसानासंभवात् अन्तरहितमित्यर्थः । एवमनभिग्रहिकमिथ्या-  
दर्शनेऽपि सपर्यवसितापर्यवसितभेदेन द्विविध्यम् । तत्रापि भव्यापेक्षया सपर्यवसि-  
तम्, अभव्यापेक्षया अपर्यवसितमिति ॥ सू० १४ ॥

उक्तं दर्शनम् । अधुना ज्ञानं वर्णयति—

मूलम्--दुविहे नाणे पन्नत्ते । तं जहा-पच्चक्खे चेव परो-  
क्खे चेव । पच्चक्खे नाणे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा-केवलनाणे  
चेव, नोकेवलनाणे चेव ।

है इससे भिन्न अनभिग्रहिक मिथ्यादर्शन होता है अभिग्रहिक मिथ्या-  
दर्शन भी दो प्रकार का होता है—एक सपर्यवसित और दूसरा अपर्य-  
वसित जो मिथ्यादर्शन सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर नष्ट हो जाता है  
वह सपर्यवसित मिथ्यादर्शन है अभव्य जीवको जो मिथ्यादर्शन होता  
है वह अपर्यवसित मिथ्यादर्शन है क्यों कि अभव्य जीवको सम्यक्त्व  
की प्राप्ति होती नहीं है, इसलिये उसका मिथ्यादर्शन पर्यवसानसे रहित  
होता है इसी प्रकार से अनभिग्रहिक मिथ्यादर्शन भी सपर्यवसित और  
अपर्यवसित के भेद से दो प्रकार का होता है भव्य की अपेक्षा अनभि-  
ग्रहिक मिथ्यात्व सपर्यवसित होता है और अभव्य की अपेक्षा वही  
अपर्यवसित होता है ॥ सू० १४ ॥

डोय छे, तेनाथी भिन्न अणुं जे मिथ्यादर्शन छे तेने अनलिग्रहिक  
मिथ्यादर्शन कडे छे अलिग्रहिक मिथ्यादर्शनना पणु नीचे प्रमाणे जे लेह पडे  
छे—(१) सपर्यवसित अने (२) अपर्यवसित, जे मिथ्यादर्शन सम्यक्त्वनी  
प्राप्ति यतां नष्ट थई जय छे, ते मिथ्यादर्शनने सपर्यवसित मिथ्यादर्शन कडे  
छे. अलव्य एवने जे मिथ्यादर्शन प्राप्त थाय छे ते अपर्यवसित (अनन्त)  
डोय छे, कारणु के अलव्य एवने सम्यक्त्वनी प्राप्ति न थती नथी, तेथी तेनुं  
मिथ्यादर्शन पर्यवसान (अन्त) थी रहित डोय छे अणु प्रमाणे अनालि-  
ग्रहिक मिथ्यादर्शनना पणु जे लेह छे—(१) सपर्यवसित अने (२) अपर्य-  
वसित लव्य एवानी अपेक्षाजे अनलिग्रहिक मिथ्यात्व सपर्यवसित (अन्त  
युक्त) डोय छे पणु अलव्य एवोनु अनलिग्रहिक मिथ्यात्व अपर्यवसित  
(अन्त रहित) डोय छे. ॥ सू० १४ ॥



केवलनाणे दुविहे पन्नत्ते । त जहा भवत्थकेवलनाणे चेष, सिद्धकेवलनाणे चेष । भवत्थकेवलनाणे दुविहे पन्नत्ते । त जहा सजोगिभवत्थकेवलनाणे चेष, अजोगिभवत्थकेवलनाणे चेष । सजोगिभवत्थकेवलनाणे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा पढमसमय सजोगिभवत्थकेवलनाणे चेष, अपढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेष । अहवा चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेष, अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेष । एष अजोगिभवत्थकेवलनाणेऽपि । सिद्धकेवलनाणे दुविहे पन्नत्ते । त जहा अर्णंतरसिद्धकेवलनाणे चेष, परंपरसिद्धकेवलनाणे चेष । अर्णंतरसिद्धकेवलनाणे दुविहे पन्नत्ते । त जहा एक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेष, अणेक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेष । परंपरसिद्धकेवलनाणे दुविहे पन्नत्ते । त जहा एकपरंपरसिद्धकेवलनाणे चेष, अणेकपरंपरसिद्धकेवलनाणे चेष ।

नो केवलनाणे दुविहे पन्नत्ते । त जहा ओहिनाणे चेष, मणपज्जयनाणे चेष । ओहिनाणे दुविहे पन्नत्ते । त जहा भवपच्चइए चेष, खओवसमिए चेष । दोण्ह भवपच्चइए पन्नत्ते, त जहा-देवाण चेष, नेरइयाणं चेष । दाण्ह खओवसमिए पन्नत्ते । त जहा मणुस्साणं चेष, पच्चिदियतिरिक्खजो गियाण चेष । मणपज्जयनाणे दुविहे पन्नत्ते । त जहा उज्जु मई चेष, धिउलमई चेष ।

परोक्षेनाणे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा-आभिणिवोहियनाणे  
 चेव, सुयनाणे चेव । आभिणिवोहियनाणे दुविहे पन्नत्ते । तं  
 जहा सुयनिस्सिए चेव, असुयनिस्सिए चेव । सुयनिस्सिए दुविहे  
 पन्नत्ते तं जहा-अत्थेग्गहे चेव वंजणोग्गहे चेव । असुयनि-  
 स्सिएऽवि एमेवे । सुयनाणे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा-अंगपविट्ठे  
 चेव, अंगवाहिरे चेव । अंगवाहिरे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा-आव-  
 स्सिए चेव, आवस्सयवइरित्ते चेव । आवस्सयवइरित्ते दुविहे  
 पन्नत्ते । तं जहा काणिए चेव, उक्कालिय चेव ॥ सू० १५ ॥

छाया—द्विविधं ज्ञानं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-प्रत्यक्षं चेव, परोक्षं चेव । प्रत्यक्षं  
 ज्ञानं द्विविधम् । तद् यथा-केवलज्ञानं चेव, नो केवलज्ञानं चेव ।

केवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-भवस्थकेवलज्ञानं चेव, सिद्धकेवलज्ञानं  
 चेव । भवस्थकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-सयोगिभवस्थकेवलज्ञानं चेव,

दर्शन के विषय का कथन समाप्त हुआ अब ज्ञान का वर्णन सूत्र  
 कार करते हैं—“दुविहे नाणे पणत्ते” इत्यादि ॥ १५ ॥

टोकार्थ—ज्ञान दो प्रकारका कहा गया है जैसे एक प्रत्यक्षज्ञान और दूसरा  
 परोक्षज्ञान इनमें प्रत्यक्षज्ञान दो प्रकारका होता है, एक केवलज्ञान सकल-  
 प्रत्यक्षज्ञान और दूसरा नो केवलज्ञान विकल(देश) प्रत्यक्षज्ञान केवलज्ञान  
 भी दो प्रकार का कहा गया है एक भवस्थकेवली का केवलज्ञान और  
 दूसरा सिद्ध का केवलज्ञान । भवस्थ केवलीका केवलज्ञान भी दो प्रकार  
 का है, एक सयोगी भवस्थकेवली का केवलज्ञान, और दूसरा अयोगी

दर्शननी अक्षुपण्णुा पूरी करीने हुवे सूत्रकार ज्ञाननी अक्षुपण्णुा करे छे—

“दुविहे नाणे पणत्ते” इत्यादि ॥ १५ ॥

ज्ञानना नीचे प्रमाणे जे प्रकार कहा छे—(१) प्रत्यक्षज्ञान (२) परोक्षज्ञान.  
 तेमांनो प्रत्यक्ष ज्ञानना जे प्रकार छे—(१) केवलज्ञान सकल प्रत्यक्षज्ञान अने  
 (२) नो केवलज्ञान विकल प्रत्यक्षज्ञान. केवलज्ञान पण्णु जे प्रकारतुं कहुं छे—  
 (१) भवस्थ केवलीनु केवलज्ञान अने (२) सिद्धनु केवलज्ञान भवस्थ केवलीनु  
 केवलज्ञान पण्णु जे प्रकारतुं होय छे (१) सयोगी भवस्थ केवलीनु केवलज्ञान

अयोगिमवस्थकेवलज्ञान चैव । सयोगिभनस्थकेवलज्ञान द्विविधं प्रकृतम् । तद् यथा—प्रथमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञान चैव, अप्रथमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञानं चैव । अथवा—अप्रथमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञान चैव, अचरमसमयसयोगिमवस्थकेवलज्ञान चैव । एवम् अयोगिमवस्थकेवलज्ञानमपि । सिद्धकेवलज्ञान द्विविधं प्रकृतम् । तद् यथा—अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान चैव, परंपरसिद्धकेवलज्ञानं चैव । अनन्तरसिद्धकेवलज्ञान द्विविधं प्रकृतम् । तद् यथा—एकान्तरसिद्धकेवलज्ञान चैव, अनेकान्तरसिद्धकेवलज्ञान चैव । परंपरसिद्धकेवलज्ञान द्विविधं प्रकृतम् । तद् यथा—एकपरंपरसिद्धकेवलज्ञान चैव, अनेकपरंपरसिद्धकेवलज्ञान चैव ।

भवस्थकेवली का केवलज्ञान, इनमें सयोगी भवस्थकेवली का केवलज्ञान भी दो प्रकार का कहा गया है - १ प्रथमसमय के सयोगी भवस्थ का केवलज्ञान और २ अप्रथम समयवर्ती सयोगी भवस्थ का केवलज्ञान अथवा अचरमसमय के सयोगी भवस्थ का केवलज्ञान और अचरमसमय के सयोगी भवस्थ का केवलज्ञान इसी प्रकार से अयोगी भवस्थ केवली का जो केवलज्ञान है वह भी दो प्रकार का होता है, सिद्ध जीव का जो केवलज्ञान है वह भी दो प्रकार का है जैसे अनन्तरसिद्ध का केवलज्ञान और परंपरसिद्ध का केवलज्ञान अनन्तरसिद्ध का केवलज्ञान भी दो प्रकार का है—एकसमयान्तरसिद्ध का केवलज्ञान और अनेकसमयान्तरसिद्ध का केवलज्ञान परंपरसिद्ध का केवलज्ञान भी दो प्रकार का है एक परंपरसिद्ध का केवलज्ञान और अनेक परंपरसिद्ध का केवलज्ञान ।

अने (२) अयोगी भवस्थ केवली केवलज्ञान तेषांता सयोगी भवस्थ केवली केवलज्ञान पञ्च वे प्रकारानुं द्वाय छे (१) प्रथम समयवर्ती सयोगी भवस्थ केवलज्ञान अने (२) अप्रथम समयवर्ती सयोगी भवस्थ केवलज्ञान अथवा (१) अचरमसमयवर्ती सयोगी भवस्थ केवलज्ञान ।

अथ प्रमाणे अयोगी भवस्थ केवली केवलज्ञान पञ्च वे प्रकारानुं छे सिद्ध जीव केवलज्ञान छे ते पञ्च वे प्रकारानुं द्वाय छे—(१) अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान अने परंपर सिद्ध केवलज्ञान । अनन्तर सिद्ध केवलज्ञान पञ्च वे प्रकारानुं छे—(१) एकान्तर सिद्ध केवलज्ञान अने (२) अनेकान्तर सिद्ध केवलज्ञान । परंपर सिद्ध केवलज्ञान पञ्च वे प्रकारानुं छे—(१) एक परंपर सिद्ध केवलज्ञान अने (२) अनेक परंपर सिद्ध केवलज्ञान ।

नोकेवलज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—अवधिज्ञानं चैव, मनः पर्यवज्ञानं चैव । अवधिज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—भवप्रत्ययिकं चैव, क्षायोपशमिकं

इस पूर्वोक्त कथन का सारांश ऐसा है कि इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना जो केवल आत्मा मात्र की सहायता से निर्मल ज्ञान होता है वह प्रत्यक्षज्ञान है, ऐसा वह प्रत्यक्षज्ञान सकल प्रत्यक्ष और देशप्रत्यक्ष के भेद से दो प्रकार का कहा गया है प्रत्यक्ष में यह सकलता और विकलता का जो कथन है वह केवल विषय की अपेक्षा से ही कहा गया है त्रयोदश गुणस्थानवर्ती सयोगी केवली जीवन्मुक्त जीव का जो केवलज्ञान है, वह सयोगी भवस्थ केवलीका केवलज्ञान है और जो चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव का केवलज्ञान है वह अयोगी भवस्थ का केवलज्ञान है केवलज्ञान प्राप्त कर के भी जो अभी तक परमोदारिक शरीर में वर्तमान हैं वे भवस्थकेवली हैं ऐसे भवस्थकेवली १३ वें और १४ वें गुणस्थानवर्ती जीव ही होते हैं, योग जिनको वर्तमान होता है वे सयोगी भवस्थकेवली और योग जिनको नहीं है वे अयोगी भवस्थकेवली हैं इन्हीं दो के केवलज्ञान को लेकर पूर्वोक्तरूप से यह विचार किया गया है “नोकेवलनाणे दुविहे पणत्ते” नो केवलज्ञान से यहां देशप्रत्यक्ष लिया गया है वह विकलप्रत्यक्ष रूप नोकेवलज्ञान दो प्रकार

आ समस्त पूर्वोक्त कथननो लावार्थ नीचे प्रमाणे छे—इन्द्रियो अने मननी सहायता बिना, मात्र आत्मानी सहायताथी जे निर्मल ज्ञान प्राप्त थाय छे तेने प्रत्यक्ष ज्ञान कहे छे. ते ज्ञानने सकल प्रत्यक्ष अने विकल प्रत्यक्षना लेदथी जे प्रकारतुं कहुं छे प्रत्यक्षमा आ सकलता अने विकलतानु जे कथन थयुं छे ते केवण विषयनी अपेक्षाजे न थयु छे तेरमां शुष्पस्थानवर्ती सयोगी केवली ज्वनन्मुक्त ज्वतुं जे केवणज्ञान छे तेने सयोगी लवस्थ केवणीतु केवणज्ञान कहे छे अने चौदहमा शुष्पस्थानवर्ती ज्वतुं जे केवणज्ञान छे तेने अयोगी लवस्थतु केवणज्ञान कहे छे केवणज्ञान प्राप्त कर्था भाद पणु जे ज्व परमोदारिक शरीरमा विद्यमान रहे छे, जेवा ज्वने लवस्थ केवली कहे छे. १३ मा अने १४ मा शुष्पस्थानवर्ती ज्वेवा न जेवा लवस्थ केवली डोर्छ शके छे जेमना योग भोजुद डाय छे जेवां केवलीने सयोगी लवस्थ केवली कहे छे अने जेमना योग भोजुद नथी जेवां केवलीने अयोगी लवस्थ केवली कहे छे जे अनेना केवणज्ञाननी अपेक्षाजे पूर्वोक्त इधे आ विचार करवामां आये छे. “नो केवलनाणे दुविहे पणत्ते” “नो केवणज्ञान” जेट्ठे अर्डी

वैष । द्वयो र्भ्रमप्रत्ययिकं प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-देवानां वैष नैरपिकाणां वैष । इपो सायोपशमिक प्रज्ञप्तम्, तद् यथा-मनुष्याणां वैष, पञ्चेन्द्रियतिर्यक्योनिकानां वैष । मनःपर्यवज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम्, तद्यथा-ऋजुमतिवैष, विपुलमतिवैष ।

परोक्षज्ञान द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-आमिनिषोधिकज्ञान वैष, श्रुतज्ञानं वैष । आमिनिषोधिकज्ञान द्विविध प्रज्ञप्तम् । तद् यथा-श्रुतनिमित्त वैष, अश्रुतनिमित्त

का कहा गया है एक अवधिज्ञान और दूसरा मन पर्ययज्ञान अवधि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो ज्ञान जीव को प्राप्त होता है वह अवधिज्ञान है और मन पर्ययज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह मनःपर्यवज्ञान है, अवधिज्ञान भी दो प्रकार का है एक भ्रमप्रत्ययिक अवधिज्ञान और दूसरा क्षायोपशमिक अवधि ज्ञान वैष और नारक जीवोंको भ्रमप्रत्ययिक अवधिज्ञान होता है, तात्पर्य इस का ऐसा है कि वैषपर्याय और नारकपर्याय में उत्पन्न होने पर अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जायमान ज्ञान अवधिज्ञान है तथा मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यकों के जो तपस्यादि के प्रभाव से जायमान अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अवधिज्ञान उत्पन्न होता है वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान है मनःपर्यवज्ञान दो प्रकार का होता है एक ऋजुमति और दूसरा विपुलमति

विषय प्रत्यक्ष अनु प्रतिपादन करवाभां ज्ञान्यु छे ते विषय प्रत्यक्ष रूप ने देवल ज्ञान के प्रकारनु कहे छे-(१) अवधिज्ञान जने (२) मनःपर्यवज्ञान अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमधी के ज्ञान उपमां उत्पन्न बाय छे, ते ज्ञानने अवधिज्ञान कहे छे जने मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमधी के ज्ञान उत्पन्न बाय छे ते ज्ञानने मनःपर्यवज्ञान कहे छे अवधिज्ञानना पक्ष के प्रकार कहे छे-(१) भ्रमप्रत्ययिक अवधिज्ञान जने (२) क्षयोपशमिक अवधिज्ञान इव जने नारक उपोने भ्रमप्रत्ययिक अवधिज्ञान बाय छे आ कहेननुं तात्पर्य जे छे के इवपर्याय जने नारक पर्यायमां उत्पन्न बायां अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमधी उत्पन्न वतुं के ज्ञान ते भ्रमप्रत्ययिक अवधिज्ञान छे, जने मनुष्यो जने पञ्चेन्द्रिय तिर्यकोमां तपस्या आदिना प्रभावधी अवधि ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशम वषाधी के अवधिज्ञान उत्पन्न बाय छे तेने क्षयोपशमिक अवधिज्ञान कहे छे मनःपर्यवज्ञान पक्ष के प्रकारनु कहे छे (१)ऋजुमति जने (२) विपुलमति,

चैव । श्रुतनिश्चितं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद्यथा—अर्थावग्रहश्चैव, व्यञ्जनावग्रहश्चैव ।  
अश्रुतनिश्चितमप्येवमेव । श्रुतज्ञानं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—अङ्गप्रविष्टं चैव,  
अङ्गबाह्यं चैव । अङ्गबाह्यं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—आवश्यकं चैव, आवश्यक-  
व्यतिरिक्तं चैव । आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधं प्रज्ञप्तम् । तद् यथा—कालिकं चैव  
उत्कालिकं चैव ॥ सू० १५ ॥

टीका—‘दुविहे नाणे पद्मत्ते’ इत्यादि—

सूत्रमेतत् सुगमम् । संस्कृतछायातोऽवगन्तव्यम् । नन्दीसूत्रस्य ज्ञानचन्द्रिका-  
टीकायां ज्ञानं सविस्तरं वर्णितमस्माभिरिति तत्र जिज्ञासुभिर्दृष्टव्यम् ॥ सू० १५ ॥

परोक्षज्ञान दो प्रकार का कहा गया है—एक आभिनिबोधिक और  
दूसरा श्रुतज्ञान आभिनिबोधिकज्ञान भी श्रुतनिश्चित और अश्रुतनिश्चित  
के भेद से दो प्रकार का है श्रुतनिश्चित आभिनिबोधिक ज्ञान भी दो  
प्रकार का है एक अर्थावग्रहरूप और दूसरा व्यञ्जनावग्रहरूप अश्रुतनि-  
श्चित आभिनिबोधिकज्ञान भी अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह के भेद  
से दो प्रकार का है श्रुतज्ञान भी दो प्रकार का है एक अङ्गप्रविष्ट और  
दूसरा अङ्गबाह्य अङ्गबाह्य भी आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त के  
भेद से दो प्रकार का है, इनमें आवश्यकव्यतिरिक्त भी दो प्रकार का  
है एक कालिक और दूसरा उत्कालिक नन्दी सूत्र की ज्ञानचन्द्रिका नाम  
की टीका में ज्ञान का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है अतः वहीं से  
यह सब विषय अच्छी तरहसे जाना जा सकता है ॥ सू० १५ ॥

परोक्षज्ञान पञ्च भेद प्रकारतु कहु छे—(१) आभिनिबोधिक अने (२)  
श्रुतज्ञान. आभिनिबोधिक ज्ञानना पञ्च नीचे प्रमाणे भेद छे—(१) श्रुतनिश्चित  
अने (२) अश्रुतनिश्चित. श्रुतनिश्चित आभिनिबोधिक ज्ञान पञ्च भेद प्रकारतु  
कहु छे—(१) अर्थावग्रह इप अने (२) व्यञ्जनावग्रह इप. अश्रुतनिश्चित  
आभिनिबोधिक ज्ञानना पञ्च नीचे प्रमाणे भेद प्रकार छे—(१) अर्थावग्रहइप  
अने (२) व्यञ्जनावग्रहइप.

श्रुतज्ञानना पञ्च भेद प्रकार कहु छे—(१) अङ्गप्रविष्ट अने (२) अङ्गबाह्य  
अङ्गबाह्य श्रुतज्ञानना पञ्च भेद छे—(१) आवश्यक अने आवश्यक व्यतिरिक्त.  
आवश्यकव्यतिरिक्त अङ्गबाह्य श्रुतज्ञानना पञ्च नीचे प्रमाणे भेद कहु छे.  
(१) कालिक अने उत्कालिक.

नन्दीसूत्रनी ज्ञानचन्द्रिका नामनी टीकामा ज्ञानतु विस्तारपूर्वक वरुणन  
करवाभां आंयु छे. तो जिज्ञासुओओ आ विषयनी वधु भाडिती त्याथी  
भेजवी लेवी. ॥ सू० १५ ॥

वैष । द्वयोर्भवप्रत्ययिकं प्रवृत्तम्, तद्यथा-देवानां वैष नैरयिकानां वैष । द्वयोः क्षायोपशमिकं प्रवृत्तम्, तद् यथा-मनुष्याणां वैष, पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां वैष । मनःपर्यवधानं द्विविधं प्रवृत्तम्, तद्यथा-ऋजुमतिश्च, विपुलमतिश्च ।

परोक्षज्ञानं द्विविधं प्रवृत्तम् । तद् यथा-आमिनिबोधिकज्ञानं वैष, सुवृत्तानं वैष । आमिनिबोधिकज्ञानं द्विविधं प्रवृत्तम् । तद् यथा-ध्रुवनिश्चितं वैष, अध्रुवनिश्चितं

का कहा गया है एक अवधिज्ञान और दूसरा मन पर्यवधान अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो ज्ञान जीव को प्राप्त होता है वह अवधिज्ञान है और मनःपर्यवधानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह मनःपर्यवधान है, अवधिज्ञान भी दो प्रकार का है एक भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान और दूसरा क्षायोपशमिक अवधिज्ञान वैष और नारक जीवोंको भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान होता है, तात्पर्य इस का ऐसा है कि देवपर्याय और नारकपर्याय में उत्पन्न होने पर अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से जायमान ज्ञान अवधिज्ञान है तथा मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्यो के जो तत्त्वादि के प्रभाव से जायमान अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अवधिज्ञान उत्पन्न होता है वह क्षायोपशमिक अवधिज्ञान है मनःपर्यवधान दो प्रकार का होता है एक ऋजुमति और दूसरा विपुलमति

विशेष प्रत्यक्षानु प्रतिपादन करवाया जायुं छ ते विरुद्ध प्रत्यक्ष रूपेण देवज्ञान के प्रकारानुं कथ्यं छ-(१) अवधिज्ञान जने (२) मनःपर्यवधान अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमि के ज्ञान उत्पन्न बाब छ, ते ज्ञानने अवधिज्ञान कडे छ जने मनःपर्यवधानावरणीय कर्मना क्षयोपशमि के ज्ञान उत्पन्न बाब छ, ते ज्ञानने मनःपर्यवधान कडे छ अवधिज्ञानना पक्ष के प्रकार कथा छ-(१) भवप्रत्ययिक अवधिज्ञान जने (२) क्षयोपशमिक अवधिज्ञान देव जने नारक जेवने अवप्रत्ययिक अवधिज्ञान बाब छ आ इयननु तात्पर्य के छ छे देवपर्याय जने नारक पर्यायमें उत्पन्न बाब, अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमि उत्पन्न श्नुं के ज्ञान ते अवप्रत्ययिक अवधिज्ञान छ, जने मनुष्यो जने पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्यो तपस्वा आदिना प्रभावमि अवधिज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशम बाबमि के अवधिज्ञान उत्पन्न बाब छ तेने क्षयोपशमिक अवधिज्ञान कडे छ मनःपर्यवधान पक्ष के प्रकारानुं कथ्यं छ (१)ऋजुमति जने (२) विपुलमति,

चरिमसमयउवसंतकसायवीयरगसंजमे चैव, अचरिमसमय उव-  
संतकसायवीयरगसंजमे चैव । खीणकसायवीयरगसंजमे दुविहे  
पन्नत्ते तं जहा-छउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव, केवलि-  
खीणकसायवीयरगसंजमे चैव । छउमत्थखीणकसायवीयरगसं-  
जमे दुविहे पन्नत्ते-तं जहा-सयंबुद्धछउमत्थ-खीणकसायवीयरग-  
संजमे चैव, बुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव ।  
सयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा-  
पढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव, अप-  
ढमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव । अहवा-  
चरिमसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव, अचरि-  
मसमयसयंबुद्धछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव । बुद्धबोहि-  
यछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे दुविहेपन्नत्ते, तं जहा-पढम-  
समयबुद्धबोहिय छउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव, अपढम-  
समयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव । अहवा-  
चरिमसमयबुद्धबोहियछउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव,  
अचरिमसमयबुद्धबोहिय छउमत्थखीणकसायवीयरगसंजमे चैव ।  
केवलि खीणकसायवीयरगसंजमे दुविहेपन्नत्ते, तं जहा-सजोगि  
केवलिखीणकसायवीयरगसंजमे चैव, अजोगि केवलिखीणकसाय-  
वीयरगसंजमे चैव । सजोगी केवलिखीणकसाय वीयरग-  
संजमे दुविहे पन्नत्ते, तं जहा — पढमसमयसजोगिकेवलि-  
खीणकसायवीयरगसंजमे चैव, अपढमसमयसजोगिकेवलिखी-  
णकसायवीयरग संजमे चैव । अहवा - चरिमसमयसजोगिकेव-



ज्ञान षर्गितम् । अथ चारिण्य षर्गपति—

मूलम्—दुविहे धम्मे पन्नत्ते । तं जहा सुयधम्मे चेव,  
 चरित्तधम्मे चेव । सुयधम्मे दुविहे पन्नत्ते । त जहा-सुत्तसुयधम्मे  
 चेव, अत्थसुयधम्मे चेव । चरित्तधम्मे दुविहे पन्नत्ते त जहा-  
 अणारचरित्तधम्मे चेव, अणारचरित्तधम्मे चेव । दुविहे सजम  
 पन्नत्ते, त जहा सरागसजमे चेव, वीयरगसजमे चेव । सराग  
 सजमे दुविहे पन्नत्ते । त जहा सुद्धमसपरायसरागसजमे चेव,  
 वादरसपरायसरागसजमे चेव । सुद्धमसपरायसरागसजमे दुविहे  
 पन्नत्ते त जहा पढमसमयसुद्धमसपरायसरागसजमे चेव, अपढ  
 मसमयसुद्धमसपरायसरागसजमे चेव । अहवा चरमसमयसुद्धमस  
 परायसरागसजमे चेव, अचरमसमयसुद्धमसपरायसरागसजमे  
 चेव । अहवा-सुद्धमसपरायसरागसजमे दुविहे पन्नत्ते । तं जहा  
 सफिलेसमाणप चेव, विसुज्झमाणप चेव । वादरसपरायसराग  
 सजमे दुविहे पन्नत्ते । त जहा-पढमसमयवादरसपरायसरागस  
 जमे चेव, अपढमसमयवादरसपरायसरागसजमे चेव । अहवा-  
 चरिमसमयवादरसपरायसरागसजमे चेव, अचरिमसमयवादर  
 सपरायसरागसजमे चेव । अहवा-धायरसपरायसरागसजमे दुविहे  
 पन्नत्ते । त जहा-पडिघाई चेव, अपडिघाई चेव । वीयरगसजमे  
 दुविहे पन्नत्ते । त जहा उयसत-कसाय-वीयरगसजमे चेव,  
 खीणकसायवीयरगसजमे चेव । उयसंत-कसायवीयरगसजमे  
 दुविहे पन्नत्ते, त जहा-पढमसमयउवसतकसायवीयरगसजमे  
 चेव, अपढमसमयउवसतकसायवीयरगसजमे चेव । अहवा

कपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद् यथा—स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकपायवीतराग-  
संयमश्चैव, बुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव । स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीण-  
कपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद् यथा—प्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीण-  
कपायवीतरागसंयमश्चैव, अप्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव ।  
अथवा—चरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अचरमसमयस्वयं-  
बुद्धछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव । बुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतराग-  
संयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद् यथा—प्रथमसमयबुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतराग-  
संयमश्चैव, अप्रथमसमयबुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अथवा—  
चरमसमयबुद्धवोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अचरमसमयबुद्धवोधित-  
छद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव । केवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमो द्विविधः—  
प्रज्ञप्तस्तद् यथा—सयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अयोगिकेवलिक्षीण-  
कपायवीतरागसंयमश्चैव, सयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञ-  
प्तस्तद् यथा—प्रथमसमयसयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अप्रथमसमय-  
सयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव । अथवा—चरमसमयसयोगिकेवलिक्षीण-  
कपायवीतरागसंयमश्चैव, अचरमसमयसयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव,  
अयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद् यथा—प्रथमसमयायोगि-  
केवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अप्रथमसमयायोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरा-  
गसंयमश्चैव । अथवा—चरमसमयायोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अच-  
रमसमयायोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव ॥ सू० १६ ॥

टीका—‘दुविहे धम्मे’ इत्यादि ।

धर्मः—धरति=रक्षति दुर्गतां पतनात् प्राणिनः, शुभे स्थाने च स्थापयति यः  
स तथोक्तः ।

ज्ञान का वर्णन हो चुका—अब चारित्र का वर्णन होता है—

“दुविहे धम्मे पणत्ते” इत्यादि ॥१६॥

दुर्गति में पतन होने से जीव की जो रक्षा करता है और शुभ-  
स्थानमें उसे पहुँचा देता है उसका नाम धर्म है उक्तं च—

ज्ञानं निष्पणु करीने हवे सूत्रकार चारित्रं निष्पणु करे छे—

“दुविहे धम्मे पणत्ते” इत्यादि ॥ १६ ॥

वे अपने दुर्गतिमें पड़ते थे अने शुभ स्थानों में तेने पहुँचा-  
याते छे, तेनुं नाम धर्म छे. “संसार दुःखतः” इत्यादि.

लिखीणकसायवीरारायसजमे चैव अचरिमसमयसजोगिकेवलि  
 खीणकसायवीरारायसजमे चैव । अजोगिकेवलिखीणकसायवीर  
 रागसजमे दुषिहे पन्नत्ते, त जहा - पढमसमयअजोगिकेवलि  
 खीणकसाय वीरारायसजमे चैव, अपढमसमयअजोगिकेवलि  
 खीणकसायवीरारायसजमे चैव, अह्वा-चरिमसमय अजोगिके  
 वलिखीणकसायवीरारागसजमे चैव, अचरिमसमय अजोगिकेव  
 लिखीणकसायवीरारागसजमे चैव ॥ सू०१६ ॥

छाया-द्विविधो धर्म मङ्गल तद् यथा-श्रुतधर्मश्चैव, चारिषधमश्चैव । श्रुतधर्मो  
 द्विविधः मङ्गलः, तद् यथा-सूत्रश्रुतधर्मश्चैव, अर्थश्रुतधर्मश्चैव ।

चारिषधर्मो द्विविधः, तद् यथा-अगारचारिषधर्मश्चैव, अनगारचारिषधर्मश्चैव ।  
 द्विविधः सयम मङ्गलः, तद् यथा-सरागसयमश्चैव, शीतरागसयमश्चैव । सयम  
 संयमो द्विविधः प्रहस्तस्तद् यथा-मूर्धमसपरायसरागसयमश्चैव, बादरसपरायसराग  
 संयमश्चैव । मूर्धमसपरायसरागसयमो द्विविधः मङ्गलस्तद् यथा-मयमसमयमूर्धम  
 सपरायसरागसंयमश्चैव, अमयमसमयमूर्धमसपरायसरागसयमश्चैव । अथवा-चरमस  
 मयमूर्धमसपरायसरागसयमश्चैव अचरमसमयमूर्धमसपरायसरागसयमश्चैव । मूर्धमसप  
 रायसरागसंयमो द्विविधः मङ्गलस्तद् यथा-सक्तिरूपमानश्चैव, चिगुप्पमानश्चैव । बाद  
 रसपरायसरागसयमो द्विविधः - मङ्गलस्तद् यथा - प्रथमसमयबादरसपरायसरागसं  
 यमश्चैव, अथयमसमयबादरसपरायसरागसंयमश्चैव । अथवा-चरमसमयबादरसपराय  
 सरागसंयमश्चैव, अचरमसमयबादरसपरायसरागसंयमश्चैव । अथवा-बादरसपरायसरा  
 गसयमो द्विविधः मङ्गलस्तद् यथा-प्रतिपाती चैव, अप्रतिपाती चैव । शीतराग  
 सयमो द्विविधः मङ्गलस्तद् यथा-उपज्ञानरूपायशीतरागसयमश्चैव धीनरूपायरी  
 तरागसयमश्चैव । उपज्ञानरूपायशीतरागसयमो द्विविधः मङ्गलस्तद् यथा-मयम  
 सयमोपज्ञानरूपायरीतरागसयमश्चैव, अमयमसमयमोपज्ञानरूपायरीतरागसयम  
 चैव । अथवा-चरमसमयमोपज्ञानरूपायरीतरागसयमश्चैव अचरमसमयमोपज्ञानरूपा  
 यरीतरागसयमश्चैव । धीनरूपायशीतरागसंयमो द्विविधः मङ्गलस्तद् यथा उपस्थ  
 शीनरूपायरीतरागसयमश्चैव क्लेषकिंभीणरूपायरीतरागसयमश्चैव । उपस्थधीन

कपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद् यथा—स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकपायवीतराग-  
संयमश्चैव, बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव । स्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीण-  
कपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद् यथा—प्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीण-  
कपायवीतरागसंयमश्चैव, अप्रथमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव ।  
अथवा—चरमसमयस्वयंबुद्धछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अचरमसमयस्वयं-  
बुद्धछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव । बुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतराग-  
संयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद् यथा—प्रथमसमयबुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतराग-  
संयमश्चैव, अप्रथमसमयबुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अथवा—  
चरमसमयबुद्धबोधितछद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अचरमसमयबुद्धबोधित-  
छद्मस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव । केवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमो द्विविधः—  
प्रज्ञप्तस्तद् यथा—सयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अयोगिकेवलिक्षीण-  
कपायवीतरागसंयमश्चैव सयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञ-  
प्तस्तद् यथा—प्रथमसमयसयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अप्रथमसमय-  
सयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव । अथवा—चरमसमयसयोगिकेवलिक्षीण-  
कपायवीतरागसंयमश्चैव, अचरमसमयसयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव,  
अयोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद् यथा—प्रथमसमयायोगि-  
केवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अप्रथमसमयायोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरा-  
गसंयमश्चैव । अथवा—चरमसमयायोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव, अच-  
रमसमयायोगिकेवलिक्षीणकपायवीतरागसंयमश्चैव ॥ सू० १६ ॥

टीका—‘दुविहे धम्मे’ इत्यादि ।

धर्मः—धरति=रक्षति दुर्गतीं पतनात् प्राणिनः, शुभे स्थाने च स्थापयति यः

स तथोक्तः ।

ज्ञान का वर्णन हो चुका—अब चारित्र का वर्णन होता है—

“दुविहे धम्मे पणत्ते” इत्यादि ॥१६॥

दुर्गति में पतन होने से जीव की जो रक्षा करता है और शुभ-  
स्थानमें उसे पहुँचा देता है उसका नाम धर्म है उक्तं च—

ज्ञानतुं निष्पद्यु करीने डवे सूत्रकार चारित्रतु निष्पद्यु करे छे—

“दुविहे धम्मे पणत्ते” इत्यादि ॥ १६ ॥

जे लवने दुर्गतिमां पडतो अथावे छे अने शुभ स्थानमां तेने पडो-  
आडे छे, तेतुं नाम धर्म छे. “संसार दुःखतः” इत्यादि.

ઉક્ત વ—“ દુર્ગતિપ્રસૂતાન્ જન્તૂન્, યસ્માદ્ધારયતે પુનઃ ।

ધતે વૈવ શુભે સ્યાને, તસ્માદ્ધર્મૈ ઇતિ સ્મૃત ॥ ૧ ॥ ”

અસૌ દ્વિવિધઃ પ્રજ્ઞા, તથા—શ્રુતધર્મઐવ, ચારિત્રધર્મઐવ । તપ-શ્રુત=દ્વાદશાક્રમ્  
-સદવધર્મ શ્રુતધર્મઃ । તથા-ચારિત્ર=મૂલોષરગુણાત્મકમ્, સદેવધર્મઃ ચારિત્રધર્મઃ ।  
' સુપખમે દુષિહે ' ઇત્યાદિ । શ્રુતધર્મા દ્વિવિધઃ-શ્રુતશ્રુતધર્મઃ, અર્થશ્રુતધર્મઐવેતિ ।  
તપ-શ્રુત્યતે=અધ્યન્તે, ધાતુનામનેકાર્વત્વાત્ સૂચ્યતે ષાડ્યાં બનેન-અસ્મિન્  
વેતિ સૂત્રમ્, મૂલાગમઃ । તદ્વૃપઃ શ્રુતધર્મઃ સૂત્રશ્રુતધર્મ । અર્પતે=અભિગમ્યતે, યદ્વા-  
અર્પતે=વાચ્યતે મોક્ષામિલાપિભિર્ધૃતઃ સઃ અર્પઃ=વ્યાસ્વાનમ્, તદ્વૃપઃ શ્રુતધર્મ

“ સસાર કુામ્વતઃ સસ્વાન્ યો ધરત્યુત્તમૈ સુલે ” તથા ‘ દુર્ગતિ  
પ્રસૂતાન્ જન્તૂન્ ” ઇત્યાદિ ।

યહ ધર્મ ઘો પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ, ઇક શ્રુત-ધર્મ ઓર  
દસરા ચારિત્ર ધર્મ દ્વાદશાક્રમ્ શ્રુતધર્મ હૈ તથા મૂલગુણ ઓર ઠસર  
ગુણરૂપ ચારિત્રધર્મ હૈ “ સુપખમે દુષિહે ” શ્રુતધર્મ ઓર અશ્રુતધર્મકે  
મેદસે શ્રુતધર્મ ઓર ઘો ઘો પ્રકારકા હૈ ધાતુઓ કે બનેક અર્થ હોતે હૈ ઇસ  
કારણ યહા-“ સૂચ્યતે-સૂચ્યન્તે વા બનેકે અર્થાઃ બનેન અસ્મિન્ વા  
સૂત્રમ્ ” ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર ઝિમકે ઘારા અથવા ઝિસમે અર્પ  
ગૂ ઘે ગયે હૈ યા સૂચિત કિયે ગયે હૈ યહ સૂત્ર હૈ ઈસા ઘહ સૂત્ર મૂલા  
ગમ હૈ ઇસ રૂપ ઝો શ્રુતધર્મ હૈ ઘહી શ્રુતધર્મ હૈ “ અર્પતે-અભિગમ્યતે  
યદ્વા અર્પતે-વાચ્યતે મોક્ષામિલાપિભિઃ યઃ સાઃ અર્પ ઇવાસ્વાનમ્ ”  
ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર મોક્ષામિલાપી વ્યક્તિયો કે ઘારા ઝો પ્રાપ્ત  
કિયા ઝાતા હૈ યા પ્રાર્થિત કિયા ઝાતા હૈ ઘહ અર્પ હૈ ઈસા ઘહ અર્પ

આ ધર્મ ઝે પ્રકારનો કહો છે—(૧) શ્રુતધર્મ અને ચારિત્રધર્મ એ  
દ્વાદશાક્રમ (બારબજ) રૂપ છે તથા મૂલગુણ અને ઉત્તરગુણરૂપ ચારિત્રધર્મ છે

“ સુપખમે દુષિહે ” શ્રુતધર્મના અને અશ્રુતધર્મના લેક્ષી શ્રુતધર્મ પણ  
ઝે પ્રકારનો કહો છે ધાતુઓના બનેક અર્થ યાપ છે, તે કારણે અહીં  
“ સૂચ્યતે-સૂચ્યન્તે વા બનેકે અર્થાઃ બનેન અસ્મિન્ વા સૂત્રમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ  
અનુસાર “ ઝેના દ્વારા અથવા ઝેના અથ વૃથવામાં આબ્ધા છે અથવા સૂચિત  
કરાયા છે, તેનું નામ જ સૂત્ર છે, ઝેવું તે સૂત્ર મૂલાગમ છે મૂલાગમ રૂપ ઝે  
શ્રુતધર્મ છે ઝેજ શ્રુતધર્મ રૂપ છે અર્પતે-અભિગમ્યતે યદ્વા અર્પતે-વાચ્યતે  
મોક્ષામિલાપિભિઃ યઃ સાઃ અર્પઃ વ્યાસ્વાનમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર ઝે મોક્ષા  
મિલાપી અહિતલ્લો દ્વારા પ્રાપ્ત કરાય છે અથવા પ્રાર્થિત કરાય છે, તેનું નામ

अर्थश्रुतधर्मः । सूत्रार्थं योर्विस्तरव्याख्याउत्तराध्ययनसूत्रस्य प्रथमाध्ययने त्रयोर्वि-  
तिगाथायां मत्कृतप्रियदर्शिनीटीकायामत्रलोकनीया। 'चारित्रधर्मे दुविहे' इत्यादि ।  
चारित्रधर्मो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा अगारचारित्रधर्मः, अनगार चारित्रधर्म-  
श्चेति । तत्र-अगारं=गृहं, तद् योगाद् अगाराः=गृहस्थाः तेषां यश्चारित्रधर्मः=  
सम्यक्तत्वमूलगुणव्रतादिपालनरूपः सोऽगारचारित्रधर्मः । न विद्यते अगारं = गृहं येषां  
ते-अनगाराः=संयताः, तेषां यश्चारित्रधर्मः=महाव्रतादिपालनरूपः सोऽनगार-  
चारित्रधर्मः । चारित्रधर्मश्च संयम इति संयममाह-'दुविहे संजमे' इत्यादि ।  
संयमो द्विविधः—सरागसंयमः, वीतरागसंयमश्चेति । तत्र यो रागेण = माया-

व्याख्यान है इस रूप जो श्रुतधर्म है वह अर्थ श्रुतधर्म है सूत्र और  
अर्थ की विस्तृत व्याख्या उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन में २३  
वों गाथा की प्रियदर्शिनी टीका में की गई है सो वहीं से इसे देख  
लेनी चाहिये "चारित्रधर्मे दुविहे पणत्ते" चारित्रधर्म दो प्रकार  
का कहा गया है एक अगारका चारित्रधर्म और दूसरा अनगार का  
चारित्र धर्म अगार नाम गृह का है इस गृह योग से यहां  
अगार शब्द से गृहस्थ जन गृहीत हुए हैं इन गृहस्थजनों का जो सम्य-  
क्त्व सहित मूलगुण अणुव्रत आदि का पालन रूप धर्म है, वह अगार  
चारित्र धर्म है तथा जिनको गृह का प्रतिबन्ध नहीं होता है वे अनगार  
हैं ऐसे अनगार संयत होते हैं इन संयतजनोंका जो महाव्रतादि पालन  
रूप चारित्र धर्म है वह अनगार चारित्रधर्म है चारित्रधर्मका नाम ही  
संयम है अतः यह संयम "दुविहे संजमे" इत्यादि कथन के अनुसार

अर्थ छे, अवे। ते अर्थ व्याख्यान छे. आ व्याख्यान रूप ले श्रुतधर्म छे  
ते अर्थश्रुतधर्म छे सूत्र अने अर्थनी व्याख्या उत्तराध्ययन सूत्रना पडेला  
अध्ययननी २३ वी गाथानी प्रियदर्शिनी टीकासा विस्तारपूर्वक आपवाभां  
आवेल छे, तो जिज्ञासुओअे ते वाची देवी

"चारित्रधर्मे दुविहे पणत्ते" चारित्रधर्म के प्रकारनो कथ्यो छे-(१)  
अगारनो चारित्रधर्म अने (२) अणुगारनो चारित्रधर्म अगार अट्टे गृह.  
अर्डी अगार शब्दथी गृहस्थजनने अर्द्धु करवा लेछ्ये. ते गृहस्थोअे सम्य-  
क्त्व सहित मूलगुण अणुव्रत आदिने पाणवा अधनथी रक्षित होय छे तेमने  
अणुगार कहे छे. अेवां अणुगारो संयत होय छे, ते संयत अणुगारोना ले  
महाव्रतादि पालनरूप धर्म छे तेने अणुगार चारित्रधर्म कहे छे चारित्रधर्मनुं  
नाम ले संयम छे. "दुविहे संजमे" इत्यादि कथन अनुसार ते संयम अे

તક વ—“ દુર્ગતિપ્રસૂતાન્ જન્તૂન્, યસ્માદ્દારપતે પુનઃ ।

ધત્તે ચૈવ શુભે સ્યાને, તસ્માદ્દર્મ ઇતિ સ્મૃત ॥ ૧ ॥ ”

અસૌ દ્વિવિધઃ પ્રજ્ઞતઃ, તપયા-શ્રુતધર્મઙ્ચૈવ, ચારિત્રધર્મઙ્ચૈવ । તપ-શ્રુત=દ્વાદશાક્રમ્-  
-તદેવ ધર્મ શ્રુતધર્મઃ । તપા-ચારિત્રાં=મૂલોચરગુણાત્મકમ્, તદેવ ધર્મઃ ચારિત્રધર્મઃ ।  
' સુપધમ્મે કુષિદે ' इत्यादि । શ્રુતધર્મો દ્વિવિધઃ-શ્રુતશ્રુતધર્મઃ, અર્થશ્રુતધર્મઃચેતિ ।  
તપ-સૂચ્યતે=પ્રત્યન્તે, ધાતુનામનેકાર્થત્વાત્ સૂચ્યતે વાઙ્મયો બનેન-અસ્મિન્  
ચેતિ સૂત્રમ્, મૂલાગમઃ । તદ્ભૂવ શ્રુતધર્મઃ સૂત્રશ્રુતધર્મઃ । અર્ચતે=અભિગમ્યતે, યદ્વા-  
અર્ચ્યતે=વાચ્યતે મોક્ષામિલાપિભિર્યઃ સ' અર્ચઃ=વ્યાસ્યાનમ્, તદ્ભૂવઃ શ્રુતધર્મઃ

“ સંસાર દુઃસ્વતઃ સત્ત્વાન્ યો ધરત્યુસર્મે સુલે ” તથા ‘ દુર્ગતિ  
પ્રસૂતાન્ જન્તૂન્ ” इत्यादि ।

યહ ધર્મ દો પ્રકાર કા કદા ગયા હૈ, યક શ્રુત-ધર્મ ઓર  
દુસરા ચારિત્ર ધર્મ દ્વાદશાક્રમ્ શ્રુતધર્મ હૈ તથા મૂલગુણ ઓર ઘસ્ટ  
ગુણરૂપ ચારિત્રધર્મ હૈ “ સુપધમ્મે કુષિદે ” શ્રુતધર્મ ઓર અશ્રુતધર્મકે  
મેદસે શ્રુતધર્મ ઓર ઘાતુઓ કે અનેક અર્ચ હોતે હૈ ઇસ  
કારણ યહાં-“ સૂચ્યતે-સૂચ્યન્તે વા અનેકે અર્ચાઃ અનેન અસ્મિન્ વા  
સૂત્રમ્ ” ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર જિમકે દ્વારા અથવા જિસમે અર્ચ  
ગૂચે ગયે હૈ યા સૂચિત કિયે ગયે હૈ યહ સૂત્ર હૈ યેસા યહ સૂત્ર મૂલા  
ગમ હૈ ઇસ રૂપ જો શ્રુતધર્મ હૈ ઘહી શ્રુતધર્મ હૈ “ અર્ચતે-અભિગમ્યતે  
ઘદ્વા અર્ચ્યતે-વાચ્યતે મોક્ષામિલાપિમિ યઃ સ' અર્ચઃ વ્યાસ્યાનમ્ ”  
ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર મોક્ષામિલાપી વ્યક્તિઓ કે દ્વારા જો પ્રાપ્ત  
કિયા જાતા હૈ યા પ્રાર્થિત કિયા જાતા હૈ યહ અર્ચ હૈ યેસા યહ અર્ચ

આ ધર્મ બે પ્રકારનો કહ્યો છે—(૧) શ્રુતધર્મ અને ચારિત્રધર્મ અત  
દ્વાદશાક્રમ (બાર અક્રમ) રૂપ છે, તથા મૂલગુણ અને ઉચ્ચરગુણરૂપ ચારિત્રધર્મ છે

“ સુપધમ્મે કુષિદે ” શ્રુતધર્મના અને અશ્રુતધર્મના બેકદથી શ્રુતધર્મ પણ  
બે પ્રકારનો કહ્યો છે ધાતુઓના અનેક અર્ચ યામ છે તે કારણે બહો  
“ સૂચ્યન્તે-સૂચ્યન્તે વા અનેકે અર્ચાઃ અનેન અસ્મિન્ વા સૂત્રમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ  
અનુસાર “ જેના દ્વારા અથવા જેના અર્ચ યુગધર્મ આભ્યા છે અથવા સૂચિત  
કરાયા છે, તેનું નામ જ સૂત્ર છે, એવું તે સૂત્ર મૂલાગમ છે મૂલાગમ રૂપ બે  
શ્રુતધર્મ છે એજ શ્રુતધર્મ રૂપ છે ‘ અર્ચ્યતે-અભિગમ્યતે ઘદ્વા અર્ચ્યતે-વાચ્યતે  
મોક્ષામિલાપિમિ ય ઃ સ' અર્ચઃ વ્યાસ્યાનમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર જે મોક્ષા  
મિલાપી વ્યક્તિઓ દ્વારા પ્રાપ્ત કરાય છે અથવા પ્રાર્થિત કરાય છે, તેનું નામ

અર્થશ્રુતધર્મઃ । સૂત્રાર્થ યોર્વિસ્તરવ્યાખ્યાઉત્તરાધ્યયનસૂત્રસ્ય પ્રથમાધ્યયને ત્રયોર્વિ-  
તિગાથાયાં મત્કૃતપ્રિયદર્શિનીટીકાયામવલોકનીયા । ‘ચારિત્તધર્મ્મે દુવિહે’ ઇત્યાદિ ।  
ચારિત્રધર્મો દ્વિવિધ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તથા અગારચારિત્રધર્મઃ, અનગાર ચારિત્રધર્મ-  
શ્ચેતિ । તત્ર-અગારં=ગૃહં, તદ્ યોગાદ્ અગારાઃ=ગૃહસ્થાઃ તેષાં યથાચારિત્રધર્મઃ=  
સમ્યક્તવમૂલાણુવ્રતાદિપાલનરૂપઃ સોઽગારચારિત્રધર્મઃ । ન ત્રિવિધતે અગારં = ગૃહં યેષાં  
તે-અનગારાઃ=સંયતાઃ, તેષાં યથાચારિત્રધર્મઃ=મહાવ્રતાદિપાલનરૂપઃ સોઽનગાર-  
ચારિત્રધર્મઃ । ચારિત્રધર્મશ્ચ સંયમ ઇતિ સંયમમાહ-‘દુવિહે સંજમે’ ઇત્યાદિ ।  
સંયમો દ્વિવિધઃ—સરાગસંયમઃ, વીતરાગસંયમશ્ચેતિ । તત્ર યો રાગેણ = માયા-

વ્યાખ્યાન હૈ इस रूप जो श्रुतधर्म है वह अर्थ श्रुतधर्म है सूत्र और  
अर्थ की विस्तृत व्याख्या उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन में २३  
वों गाथा की प्रियदर्शिनी टीका में की गई है सो वहीं से इसे देख  
लेनी चाहिये “ चारिच्छधर्मे दुविहे पण्णत्ते ” चारिच्छधर्म दो प्रकार  
का कहा गया है एक अगारका चारिच्छधर्म और दूसरा अनगार का  
चारिच्छ धर्म अगार नाम गृह का है इस गृह योग से यहां  
अगार शब्द से गृहस्थ जन गृहीत हुए हैं इन गृहस्थजनों का जो सम्य-  
क्त्व सहित मूलगुण अणुव्रत आदि का पालन रूप धर्म है, वह अगार  
चारिच्छ धर्म है तथा जिनको गृह का प्रतिबन्ध नहीं होता है वे अनगार  
हैं ऐसे अनगार संयत होते हैं इन संयतजनोंका जो महाव्रतादि पालन  
रूप चारिच्छ धर्म है वह अनगार चारिच्छधर्म है चारिच्छधर्मका नाम ही  
संयम है अतः यह संयम “ दुविहे संजमे ” इत्यादि कथन के अनुसार

અર્થ છે, એવો તે અર્થ વ્યાખ્યાન છે. આ વ્યાખ્યાન રૂપ જે શ્રુતધર્મ છે  
તે અર્થશ્રુતધર્મ છે સૂત્ર અને અર્થની વ્યાખ્યા ઉત્તરાધ્યયન સૂત્રના પહેલા  
અધ્યયનની ૨૩ મી ગાથાની પ્રિયદર્શિની ટીકામાં વિસ્તારપૂર્વક આપવામાં  
આવેલ છે, તે જિજ્ઞાસુઓએ તે વાચી લેવી

“ ચારિત્તધર્મ્મે દુવિહે પણ્ણત્તે ” ચારિત્રધર્મ બે પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧)  
અગારનો ચારિત્રધર્મ અને (૨) અણુગારનો ચારિત્રધર્મ. અગાર એટલે ગૃહ.  
અહીં અગાર શબ્દથી ગૃહસ્થજનને અહણુ કરવા નેહ્યે. તે ગૃહસ્થોએ સમ્ય  
ક્ત્વ સહિત મૂલગુણ અણુવ્રત આદિને પાળવા બધનથી રહિત હોય છે તેમને  
અણુગાર કહે છે એવાં અણુગારો સંયત હોય છે, તે સંયત અણુગારોનો જે  
મહાવ્રતાદિ પાલનરૂપ ધર્મ છે તેને અણુગાર ચારિત્રધર્મ કહે છે. ચારિત્રધર્મનું  
નામ જ સંયમ છે. “ દુવિહે સંજમે ” ઇત્યાદિ કથન અનુસાર તે સંયમ બે



વિરૂપેણ સહ વર્ષતે સ સરાગઃ, સ ચામૌ સયમઞ્ચ સરાગસ્ય ઘા સયમઃ સરાગસયમઃ= સક્રુપાયધારિત્રમિત્યર્થ । ધીતઃ=વિગતો નટ્ટો રાગો યસ્માત્ સ ધીતરાગઃ, સ ઘાસી સંયમઞ્ચ ધીતરાગસયમઃ-ક્રુપાયર્જિત્તચારિત્રમિત્યર્થ । 'દુષિદે' ત્યાદિ-સરાગ-સયમો દ્વિવિધઃ-સૂક્ષ્મસંપરાયસરાગસયમઃ, ઘાદ્રસંપરાયસરાગસયમઃશ્વેતિ । તન્ન-સંપરાયેતિ=સંસારતિ સંસાર યેન સ સમ્પરાય ક્રોધાદિલક્ષણઃ ક્રુપાયઃ, સ સૂક્ષ્મા-સ્વલ્પઃ સોમક્રુપાયરુપો યસ્ય સપશ્ચમકસ્ય સપક્રુસ્ય ચેતિ સૂક્ષ્મસંપરાયઃ=સયતઃ, સ ઘાસી સરાગસંયમઃશ્વેતિ તસ્ય ઘા સરાગસંયમઃ સૂક્ષ્મસંપરાયસરાગસંયમઃ ।

દો પ્રકારકા કહા ગયા હૈ એક સરાગસંયમ ઓર દૂસરા ધીતરાગ સંયમ इनमें जो सयम भायादिरूप रागके साथ पाळित होता है वह सराग सयम है अथवा सराग का जो संयम है वह सराग संयम है इसका दूसरा नाम कृपायसहित चारित्र है जिससे राग विनष्ट हो जाता है वह धीतराग है इस धीतरागरूप सयमका नाम धीतराग संयम है वह कृपायर्जित चारित्ररूप होता है "दुषिद" इत्यादि ।

સરાગસયમ દો પ્રકારકા કહા ગયા હૈ-એક સૂક્ષ્મસંપરાય સરાગસયમ દૂસરા ઘાદ્રસંપરાય સરાગસંયમ ળીચ જિસકે ધારા સંસાર મેં મદકતા ફિરતા હૈ ડસકા નામ સંપરાય હૈ, એસા ઘહ સંપરાય ક્રોધાદિ કૃપાય રૂપ હોતા હૈ જિસ ક્ષપક કે યા સપશ્ચમક કે યહ લોમ કૃપાયરૂપ સંપરાય સ્વલ્પ હોતા હૈ એસા ઘહ સ્વલ્પ લોમ કૃપાય સૂક્ષ્મ સંપરાય હૈ યહ સ્વલ્પ સોમકૃપાય રૂપ સૂક્ષ્મ સંપરાય હી સરાગ સંયમ હૈ અથવા

પ્રકારને કહ્યો છે- (૧) સરાગ સંયમ અને (૨) ધીતરાગસંયમ ને સમજતું ભાયાદિરૂપ રાગસંહિત પાલન થાય છે, તે સંયમને સરાગસંયમ કહે છે અથવા સરાગ સંયમ ને સંયમ કહે તેને સરાગ સંયમ કહે છે તેને કૃપાય સંહિત ચારિત્ર પણ કહે છે ને સંયમથી રાગ નાશ પામી અથા હોય છે તે સંયમને ધીતરાગ કહે છે તે ધીતરાગરૂપ સયમને ધીતરાગ સંયમ કહે છે, તે કૃપાયસંહિત ચારિત્રરૂપ હોય છે

"દુષિદે" ઈત્યાદિ. સરાગ સંયમના પણ નીચે પ્રમાણે બે પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) સૂક્ષ્મ સંપરાય સરાગ સંયમ અને (૨) ઘાદ્ર સંપરાય સરાગ સંયમ. એવે નેના દ્વારા સંસારમાં ભરકોટો પડે છે, તે સંપરાય કહેવાય છે તે સંપરાય ક્રોધાદિ કૃપાયરૂપ હોય છે ને સંપરાયમાં કે સપશ્ચમકમાં આ લોમકૃપાયરૂપ સંપરાય સ્વલ્પ ( યજ્ઞાં બ્રોહા પ્રમાણમાં ) હોય છે, તે ક્ષપક અથવા સપશ્ચમકના તે સ્વલ્પ લોમકૃપાયને સૂક્ષ્મ-સંપરાય કહે છે આ સ્વલ્પ લોમકૃપાયરૂપ સૂક્ષ્મ સંપરાય ને સરાગ સંયમ બુલાય છે અથવા સૂક્ષ્મ સંપરાયવાળા

वादराः=स्थूलाः संपरायाः कषायाः यस्य यस्मिन् वा संयमे स वादरसंपरायसराग-  
संयमः । ' सुहुमे ' त्यादि-सूत्रद्वयम् । सूक्ष्मसंपरायसरागसंयमः द्विविधः प्रज्ञप्तः,  
तद्यथा-प्रथमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयमः, अप्रथमसमयसूक्ष्मसंपरायसरागसंयम-  
श्चेति । तत्र प्रथमः=एकएव समयो यस्योत्पत्तौ स प्रथमसमयः, स चासौ सूक्ष्म-  
संपरायसरागसंयमश्चेति तस्य वा तथोक्तः तथा - अप्रथमः द्वयादिरूपः समयो  
यस्य स तथोक्तः, स चासौ सूक्ष्मसंपरायसरागसंयमश्चेति तथा । प्रकार-  
न्तरेणाह—' अहवे ' त्यादि - अथवा - चरम. - अन्तिमः समयः चारित्र-  
प्राप्त्यपेक्षया यस्य स तथा, स चासौ तस्य वा सूक्ष्मसंपरायसरागसंयमश्चेति

सूक्ष्म संपरायवाले संयत का १० वें गुणस्थानवर्ती जीव का जो सराग-  
संयम है वह सूक्ष्मसंपराय सरागसंयम है जिस संयमी जीवको या  
जिस संयम में स्थूलरूप कषायें रहती हैं वह वादरसंपराय है इस वादर  
संपरायवाले जीव का जो रागसहित संयम है वह वादरसंपरायसंयम  
है अथवा इस वादरसंपराय के होने पर जो राग सहित संयम होता  
है वह वादरसंपरायसंयम है, सूक्ष्म संपराय सराग संयम भी दो प्रकार  
का होता है एक प्रथम समय सूक्ष्मसंपराय सरागसंयम और दूसरा-  
अप्रथम समय सूक्ष्मसंपराय सरागसंयम जिस सूक्ष्मसंपराय सराग संयम  
की उत्पत्ति में एक ही समय होता है वह प्रथम समय सूक्ष्मसंपराय  
सराग संयम है तथा जिस सूक्ष्मसंपरायसंयम की उत्पत्ति में द्वयादि  
समय का काल लगता है वह अप्रथम समय सूक्ष्मसंपराय सरागसंयम  
है अथवा इस तरह से भी इनके दो भेद हैं—एक चरमसमय सूक्ष्मसंप-

संयतनो-दसमां शुषुस्थानवर्तीं भवने न सराग संयम छे तेने सूक्ष्म  
संपराय सराग संयम कडे छे. न सयमयुक्त भवमां अथवा न संयममां  
स्थूलरूप कषायेनो सहलाय रडे छे, ते भादर संपराय रूप छे. ते भादर संप-  
राययुक्त भवने न रागसहित संयम छे तेने भादर संपराय संयम कडे छे.

सूक्ष्म संपराय सराग संयम पणु जे प्रकारनो होय छे-(१) प्रथम  
समय सूक्ष्म संपराय सराग संयम अने (२) अप्रथम समय सूक्ष्म संपराय  
सराग संयम. न सूक्ष्म संपराय सराग संयमनी उत्पत्तिमां जेक न समय  
थाय छे, तेने प्रथम समय सूक्ष्म संपराय सराग संयम कडे छे. न सूक्ष्म  
संपरायनी उत्पत्तिमां जे आदि समयनो काण लागे छे, तेने अप्रथम समय  
सूक्ष्म संपराय सराग संयम कडे छे अथवा आ रीते पणु तेना जे लेक छे  
(१) चरम समय सूक्ष्म संपराय सराग संयम अने (२) अचरम समय सूक्ष्म  
संपराय सराग संयम आरित्रप्राप्तिनी अपेक्षाजे जेने समय अन्तिम होय

તયા । ન ચરમઃ મચરમ , શૈલેશ્યવસ્માતઃ પૂર્વમાગવર્તી સમયઃ ચારિષ્રાપાપ્સ્યપેક્ષયા  
 યસ્ય સ તથા, સ ધાતૌ તસ્ય વા સૂક્ષ્મસપરાયસરાગસયમશ્વેતિ તથોક્તા । પુન  
 મકારાતરેણાહ—'મદ્વ' ત્યાદિ । અથવા—અપચકારેજ સૂક્ષ્મસપરાયસરાગસંયમો  
 દ્વિવિધઃ પ્રમુત્ત , તથયા—સહ્નિશ્યમાન વિશુષ્યમાનશ્વેતિ । તપ્ર—સહ્નિશ્યમાનસૂક્ષ્મ  
 સપરાયસંયમ વપક્ષમભેષ્યા પ્રતિપત્તાઃ, વિશુષ્યમાનસૂક્ષ્મસપરાયસરાગસયમ વપક્ષ-  
 મભેષીં વા સમારોહતો જીવસ્ય મવતિ । 'વાદરે' ત્યાદિસૂત્રદ્વયમ્—વાદરસંપરાયસરાગ  
 સંયમો દ્વિવિધ પ્રથમસમયવાદરસપરાયસરાગસયમઃ, અપ્રથમસમયવાદરસપરાયસરા-  
 ગસયમઃ । અપ્ર પ્રથમાર્ષયમસમયતા સંયમપ્રતિપત્તિકાલાપેક્ષયા ધોષ્યા । અથવા—ચર

રાય સરાગ સયમ ઓર દુનરા અચરમસમય સૂક્ષ્મસંપરાય સરાગ સયમ  
 ચારિષ્ર પ્રાપ્તિ કી અપેક્ષા સે જિસકા સમય અન્તિમ હોતા હૈ ઈસા જો  
 સૂક્ષ્મસપરાય સરાગ સયમ હૈ વહ અચરમ સમય સૂક્ષ્મસંપરાય સ રાગસ  
 યમ હૈ તથા શૈલેશી અવસ્થા સે પૂર્વમાગવર્તી સમય ચારિષ્ર પ્રાપ્તિ કી  
 અપેક્ષા સે જિસકા હોતા હૈ વહ અચરમ સમય સૂક્ષ્મ સપરાય સરાગ  
 સયમ હૈ અથવા સૂક્ષ્મ સપરાય સરાગ સયમ ઈસ તરહ કે બી દો મેદોં  
 સે દો પ્રકાર કા કહા ગયા હૈ—એક સ્ખલિશ્ય માન દુસરા વિશુષ્યમાન  
 ઈનવેં સ્ખલિશ્યમાન સૂક્ષ્મસપરાય સરાગ સંયમ વપક્ષમદ્યેણિ સે ગિરતે  
 દુષ્ જીવ કે હોતા હૈ ઓર વિશુદ્ધમાન સૂક્ષ્મસંપરાય સરાગ સયમ  
 વપક્ષમ મેણી પર આરોહણ કરતે દુષ્ જીવ કે હોતા હૈ વાદર સંપરાય  
 સરાગસંયમ દો પ્રકાર કા હૈ, પ્રથમસમય વાદરસંપરાયસરાગસયમ  
 ઓર અપ્રથમસમયવાદરસંપરાયસરાગસયમ વહાં સયમ પ્રતિપત્તિ  
 કાલ કી અપેક્ષાસે પ્રથમ અપ્રથમ સમયતા જાનની ચાહિય ।

ઉ બેવે બે સૂક્ષ્મ સપરાય સરાગ સયમ ઉ તેને અચરમ સમય સૂક્ષ્મ સંપ  
 રાય સરાગ સયમ કહે છે તથા શૈલેશી અવસ્થા કરતાં પૂર્વમાગવર્તી બેનો  
 ચારિષ્ર પ્રાપ્તિની અપેક્ષાએ સમય હોય છે તેને અચરમ સમય સૂક્ષ્મ સંપ  
 રાય સરાગ સયમ કહે છે અથવા સૂક્ષ્મ સપરાય સરાગ સયમના નીચે  
 પ્રમાણે બે શેઠ કહ્યા છે—(૧) સહ્નિશ્યમાન અને (૨) વિશુષ્યમાન.

ઉપશમ મલિની પતન પામતા છવર્મા સહ્નિશ્યમાન સૂક્ષ્મ સંપરાય  
 સરાગસયમ હોય છે, અને ઉપશમ મેલિપર આરોહણ કરતા છવર્મા વિશુ-  
 ષ્યમાન સૂક્ષ્મ સપરાય સરાગ સયમનો સહ્નિશ્ય હોય છે

વાદર સંપરાય સરાગ સયમના પણ બે પ્રકાર છે—(૧) પ્રથમ સમય  
 વાદર સંપરાય સરાગ સયમ અને (૨) અપ્રથમ સમય વાદર સંપરાય સરાગ  
 સયમ. અહીં સયમ પ્રતિપત્તિ કાળની અપેક્ષાએ પ્રથમ સમયતા અને અપ્ર  
 થમ સમયતા સમજવી.

माचरमसमयमाश्रित्य सूत्र वाच्यम् । अत्र-चरमाचरमसमयता तु यदनन्तरं सूक्ष्म-संपरायता असंयतत्वं वा भविष्यति, तदपेक्षया वाच्या । शेषव्याख्या पूर्ववदेव । अथ प्रकारान्तरेणाप्याह-‘ अहवे ’ त्यादि-अथवा-अन्यप्रकारेण वादरसंपराय-सरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-प्रतिपाती चेति अप्रतिपाती चेति । अयं समयमउपगमरुस्यान्यस्य वा प्रतिपाति भवती । अप्रतिपाती तु क्षपकस्येति बोध्यम् ।

उक्तः सरागसंयमः । संप्रति वीतरागसंयममाह-‘ वीयरामे ’ इत्यादि । वीतरागसंयमो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-उपशान्तकषायवीतरागसंयमः क्षीणकषाय-वीतरागसंयमश्चेति । उपशान्ताः उपशमिता विद्यमाना एव संक्रमणोद्धर्तनाऽपव-र्तनादिकरणोदयायोग्यत्वेन व्यवस्थापिताः प्रदेशतोऽप्यवैद्यमाना वा कषायाः

अथवा—चरम समय वादरसंपरायसरागसंयम और अचरम समय वादरसंपरायसरागसंयम इस प्रकार से भी इनके दो भेद है यहां चरम समयता और अचरम समयता जिसके अनन्तर सूक्ष्म संपरायता अथवा असंयतता होगी उसकी अपेक्षा से कह लेनी चाहिये अवशिष्ट व्याख्या पूर्ववत् ही है अथवा इस प्रकारसे भी वादरसंपराय-सराग संयम दो प्रकार का है—एक प्रतिपाती और दूसरी अप्रतिपाती उपशमक के अथवा अन्य के यह संयम प्रतिपाती होता है तथा क्षपक के अप्रतिपाती होता है—

। “ वीयराम संजमे ” इत्यादि-वीतरागसंयम दो प्रकार का होता है एक उपशान्तकषायवीतरागसंयम दूसरा क्षीणकषायवीतरागसंयम जो जीव विद्यमान कषायों को माया लोभ कषायों को उपशान्त कर

अथवा आ प्रकारे षणु तेना जे लेद कइया छे—(१) चरम समय भादर संपराय सराग संयम अने (२) अचरम भादर संपराय सराग संयम. अर्ही चरम समयता अने अचरम समयतातु कथन जेना अनन्तर ( त्यारभाद ) सूक्ष्म संपरायता अथवा असंयतता थये, तेनी अपेक्षाये कडेपु लेछये. भाङ्गीनी व्याख्या आगण भुज्ज समञ्जी अथवा भादर संपराय सराग संयमना नीचे प्रमाणे षणु जे लेद छे—(१) प्रतिपाति अने (२) अप्रतिपाति. उपशमकने अथवा अन्यने आ संयम प्रतिपाति डाय छे तथा क्षपकने अप्रतिपाति डाय छे.

“ वीयरामसंजमे ” इत्यादि. वीतराग संयमना नीचे प्रमाणे जे प्रकार छे—(१) उपशान्त कषाय वीतराग संयम अने (२) क्षीण कषाय वीतराग संयम. जे एव विद्यमान कषायोने-माया दोल कषायोने उपशान्त करी नांजे छे,

तथा । न चरम भवरम , दौर्लभ्यवस्थात पूर्वभागवर्ती समय। चारित्र्यापात्यपेक्षया यस्य स तथा, स चासीं तस्य या सूक्ष्मसंपरायसरागसयमश्चेति तयोक्ता । पुन प्रकारादरेणाह—'अद्वय' र्यादि । अथवा—अथपकारेण सूक्ष्मसंपरायसरागसंयमो द्विविध' प्रकृत , तद्यथा—सकृद्यमान विद्युत्पमानश्चेति । तत्र—सकृद्यमानसूक्ष्म संपरायसयम उपपन्नमधेय्या प्रतिपत्त , विद्युत्पमानसूक्ष्मसंपरायसरागसयम उपपन्नमधेयीं वा समारोहो जीवस्य भवति । 'वादरे' त्यादिगुश्रद्धयम्—वादरसंपरायसराग संयमो द्विविध प्रथमसमयपादासंपरायसरागसयम, अप्रथमसमयपादसंपरायसरागसयमः। अत्र प्रथमापयमसमयता संयमप्रतिपत्तिकालापक्षया बोध्या। मयना—न

राय सराग सयम और दूसरा अचरमसमय सूक्ष्मसंपराय सराग सयम चारित्र्य प्राप्ति की अपेक्षा से जिसका समय अन्तिम होता है ऐसा जो सूक्ष्मसंपराय सराग सयम है वह चरम समय सूक्ष्मसंपराय सरागसयम है तथा दौर्लभ्यी अवस्था से पूर्वभागवर्ती समय चारित्र्य प्राप्ति की अपेक्षा से जिसका होता है वह अचरम समय सूक्ष्म संपराय सराग सयम है अथवा सूक्ष्म संपराय सराग संयम इस तरह के भी दो भेदों से दो प्रकार का कहा गया है—एक संकलित्य मान दूसरा विद्युत्पमान इनमें सकलित्यमान सूक्ष्मसंपराय सराग सयम उपपन्नमधेयि से गिरते हुए जीव के होता है और विद्युत्पमान सूक्ष्मसंपराय सराग सयम उपपन्न मधेयी पर आरोहण करते हुए जीव के होता है वादर संपराय सरागसयम दो प्रकार का है, प्रथमसमय पादरसंपरायसरागसयम और अप्रथमसमयपादरसंपरायसरागसयम यहाँ सयम प्रतिपत्ति काल की अपेक्षासे प्रथम अप्रथम समयता जाननी चाहिये।

उ ज्येवो जे सूक्ष्म संपराय सराग सयम उ तेने अशम समय सूक्ष्म संपराय सराग सयम कहे उ तथा दौर्लभ्यी अवस्था कर्ता पूर्वभागवर्ती जेने चारित्र्य प्राप्ति की अपेक्षासे समय केष उ तेने अचरम समय सूक्ष्म संपराय सराग सयम कहे उ अथवा सूक्ष्म संपराय सराग सयमना नीचे प्रभावे जे कहे कथा उ—(१) सकलित्यमान जने (२) विद्युत्पमान।

उपशम भक्तिधी पतन पायता एवमां सकलित्यमान सूक्ष्म संपराय सरागसयम केष उ, जने उपशम भक्तिपर चारित्र्य कर्ता एवमां विद्युत्पमान सूक्ष्म संपराय सराग सयमने उपपन्न केष उ

वादर संपराय सराग सयमना पक्ष जे प्रकार उ—(१) प्रथम समय वादर संपराय सराग सयम जने (२) अप्रथम समय वादर संपराय सराग सयम जहाँ सयम प्रतिपत्ति काल की अपेक्षासे प्रथम समयता जने अप्रथम समयता समबन्धी।

छादयति ज्ञानादिगुणान् आत्मनः स्वरूपं वेति छद्म, यद्वा छाद्यते केवलज्ञान केवलदर्शनं चात्मनोऽनेनेति छद्म, तत्र तिष्ठतीति छद्मस्थः, स चासौ क्षीणकषायवीतरागसंयमश्च, तथा छद्मस्थस्य वा क्षीणकषायवीतरागसंयम इति । तथा-केवलं=अनन्तज्ञानदर्शनमस्यास्तीति केवली, स चासौ क्षीणकषायवीतरागसंयमश्चेति । यद्वा-केवलिनः क्षीणकषायवीतरागसंयम इति तथा । 'छउमत्ये'-त्यादि-छद्म-

क्षीणकषाय वीतराग संयम के भेद से भी दो प्रकार का है आत्मा के ज्ञानादि गुणों को अथवा स्वरूप को जो ढक देता है उस का नाम छद्म है अथवा - आत्मा के केवलज्ञान और केवलदर्शन जिस के द्वारा आच्छादित हो जाते हैं वह छद्म है, इस छद्म अवस्था में जो वर्तमान रहता है उसका नाम छद्मस्थ है इस छद्मस्थक्षीणकषाय वीतरागी का जो संयम है वह छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग संयम है तथा केवलज्ञानविशिष्ट क्षीण कषायवाले वीतरागी आत्मा का जो संयम है वह केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम है अनन्तदर्शन और अनन्तज्ञान का नाम केवल है यह केवल जिसके होता है उसका नाम केवली है यह केवली नियमतः क्षीणकषाय वाला होता है क्यों कि केवली अवस्था १३ वे गुणस्थान में ही होती है और कषाय का सद्भाव १० वे गुण तक रहता है इसलिये १३वे गुणस्थानवाला आत्मा क्षीण कषायवाला केवली कहा गया है इस केवली का जो संयम होता है वही

वे लेह छे-( १ ) छद्मस्थ क्षीणकषायवीतराग संयम अने (२) केवली क्षीणकषाय वीतराग संयम. आत्माना ज्ञानादि गुणाने अथवा स्वरूपने वे ढांकी दे छे तेनुं नाम छद्म छे अथवा केवलज्ञान अने केवलदर्शन नेना द्वारा आच्छादित थई नय छे, ते छद्म छे. आ छद्म अवस्थांमां रडेला एवने छद्मस्थ कडे छे. आ छद्मस्थने-छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतरागने-ने संयम छे तेने छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग संयम कडे छे केवलज्ञान संयम क्षीणकषायवाला वीतरागी आत्माने ने संयम छे तेने केवली क्षीण कषाय वीतराग संयम कडे छे अनंत दर्शन अने अनंत ज्ञाननुं नाम केवल छे. आ केवलज्ञान नेने थाय छे ते एवने केवली कडे छे ते केवली नियमथी न क्षीणकषायवाला डाय छे, कारण के केवली अवस्था १३ मां गुणस्थाने पहुँचिबेला एव न प्राप्त करे छे, अने कषायने सद्भाव १० मां गुणस्थान पर्यन्त न रडे छे तेथी १३ मा गुणस्थानवती आत्माने क्षीण कषायवाला कबो छे. ते केवलीने ने संयम डाय छे तेने न केवली क्षीण कषाय वीतराग संयम कडे छे. "छउमत्ये" इत्यादि-

मायालोमरूपा येन स उपशान्तकृपायः, स चासौ तस्य वा वीतरागसंयमश्चेति  
 तथा, एकादशगुणस्थानवर्तीत्यर्थः । क्षीणाः—अमात्रमापन्ना कृपाया यस्य स क्षीण  
 कृपायः, स चासौ वीतरागसंयमश्च तथा क्षीणकृपायस्य वा वीतरागसंयम इति,  
 तथा, द्वादशगुणस्थानवर्तीत्यर्थः । 'उपसत्ते' त्यादि—उपशान्तकृपायवीतराग  
 संयमः प्रथमप्रथमसमयमाभित्य द्विविधः । 'अहवे'—त्यादि—अथवा—परमापर  
 मसमयमाभित्य उपशान्तकृपायवीतरागसंयमस्य द्वैविध्यं बोध्यम् । अन्यत् पूर्ववत् ।  
 'स्त्रीणकृपाये'—त्यादि—क्षीणकृपायवीतरागसंयमो द्विविधः मद्गुण' तद्यथा—  
 छद्मस्यक्षीणकृपायवीतरागसंयमः, केवलस्यक्षीणकृपायवीतरागसंयमश्चेति । तत्र—

देता है अर्थात् संक्रमण वर्द्धर्तना अपवर्तना भादि करणों द्वारा उन्हें  
 उदय में आने के अयोग्य बना देता है अथवा प्रवेश से भी उन्हें अवेष  
 कर देता है ऐसा वह जीव उपशान्त कृपाय कहा गया है, सो इस जीव  
 का जो संयम है वह उपशान्त कृपाय वीतराग संयम है तात्पर्य यही है  
 कि ग्यारह वें गुणस्थान में जो संयम होता है वही उपशान्त कृपाय  
 वीतराग संयम है तथा जिस जीव को कृपाय माया लोम रूप कृपाय-  
 अभाव को प्राप्त हो चुकी है ऐसा वह जीव क्षीणकृपाय है इस क्षीण  
 कृपाय का जो संयम है वह क्षीणकृपाय वीतरागसंयम है यह संयम १२  
 वें गुणस्थान में होता है उपशान्त कृपाय वीतराग संयम प्रथम और  
 अप्रथम समय की अपेक्षा से दो तरह का होता है अथवा अरम समय  
 और अअरम समय की अपेक्षा से भी वह दो प्रकार का है । क्षीणकृ  
 पाय वीतराग संयम छद्मस्य क्षीणकृपाय वीतराग संयम और केवलसि

जेटडे के संयम, उदयना, अपवर्तना भादि कारणों द्वारा तेमने उदयमा  
 न आवी शके जेवां जनावी रे छे अथवा प्रवेशनी अपेक्षाजे पवु तेमने  
 अवेष करी नाजे छे, जेवां ते अपने उपशान्त कृपाय कडे छे तेही ते अपने  
 संयमने उपशान्त कृपाय वीतराग संयम कडे छे आ इवनने आभावं जे  
 छे के ११ भां शुषस्थानभां जे संयम होय छे, ते संयमने व उपशान्त कृपाय  
 वीतराग संयम कडे छे जे अपने कृपाय—माया लोमरूप कृपाय क्षीण कृपाय  
 तथा होय छे—तह कृपाय तथा होय छे जेवां अपने क्षीण कृपाय वीतराग  
 संयमवाजे छे कडे छे आ संयमनी प्राप्ति १२ भां शुषस्थानवर्ती अपने  
 भाय छे उपशान्त कृपाय वीतराग संयम प्रथम जने अप्रथम संयमनी अपे  
 क्षाजे जे प्रकारने होय छे अथवा अरम संयम जने अअरम संयमनी  
 अपेक्षाजे पवु ते जे प्रकारने होय छे क्षीण कृपाय वीतराग संयमना पवु

छादयतिज्ञानादिगुणान् आत्मनः स्वरूपं वेति छद्म, यद्वा छाद्यते केवलज्ञानं केवल-  
दर्शनं चात्मनोऽनेनेति छद्म, तत्र तिष्ठतीति छद्मस्थः, स चासौ क्षीणरूपायवीतरा-  
गसंयमश्च, तथा छद्मस्थस्य वा क्षीणरूपायवीतरागसंयम इति । तथा-केवलं=  
अनन्तज्ञानदर्शनमस्यास्तीतिकेवली, स चासौ क्षीणरूपायवीतरागसंयमश्चेति ।  
यद्वा-केवलिनः क्षीणरूपायवीतरागसंयम इति तथा । 'छउमत्ये'-त्यादि-छद्म-

क्षीणकषाय वीतराग संयम के भेद से भी दो प्रकार का है आत्मा के  
ज्ञानादि गुणों को अथवा स्वरूप को जो ढक देता है उस का नाम छद्म  
है अथवा - आत्मा के केवलज्ञान और केवलदर्शन जिस के द्वारा  
आच्छादित हो जाते हैं वह छद्म है, इस छद्म अवस्था में जो  
वर्तमान रहता है उसका नाम छद्मस्थ है इस छद्मस्थक्षीणकषाय  
वीतरागी का जो संयम है वह छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग संयम है  
तथा केवल ज्ञानविशिष्ट क्षीण कषायवाले वीतरागी आत्मा का जो संयम  
है वह केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम है अनन्तदर्शन और अन-  
न्तज्ञान का नाम केवल है यह केवल जिसके होता है उसका नाम केवली  
है यह केवली नियमतः क्षीणकषाय वाला होता है क्यों कि केवली  
अवस्था १३ वे गुणस्थान में ही होती है और कषाय का सद्भाव १०  
वें गुण तक रहता है इसलिये १३वे गुणस्थानवाला आत्मा क्षीण कषा-  
यवाला केवली कहा गया है इस केवली का जो संयम होता है वही

जे लेह छे-( १ ) छद्मस्थ क्षीणकषायवीतराग संयम अने (२) केवली क्षीण  
कषाय वीतराग संयम आत्माना ज्ञानादि गुणाने अथवा स्वरूपने जे ढांकी  
दे छे तेनुं नाम छद्म छे अथवा केवणज्ञान अने केवणदर्शन जेना द्वारा  
आच्छादित थछे ज्ञय छे, ते छद्म छे. आ छद्म अवस्थाभां रडेला एवने  
छद्मस्थ कडे छे. आ छद्मस्थने-छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतरागने-जे संयम छे  
तेने छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग संयम कडे छे केवणज्ञान संपन्न क्षीण  
कषायवाणा वीतरागी आत्मानो जे संयम छे तेने केवली क्षीण कषाय वीतराग  
संयम कडे छे. अनंत दर्शन अने अनंत ज्ञाननुं नाम केवण छे. आ केवण-  
ज्ञान जेने थाय छे ते एवने केवली कडे छे ते केवली नियमथी जे क्षीण  
कषायवाणा होय छे, कारण के केवली अवस्था १३ भां गुणस्थाने पडोचिवो  
एव जे प्राप्त करे छे, अने कषायने सदृसाव १० भां गुणस्थान पर्यन्त जे  
रडे छे. तेथी १३ भा गुणस्थानवतीं आत्माने क्षीण कषायवाणा कस्यो छे. ते  
केवलीने जे संयम होय छे तेने जे केवली क्षीण कषाय वीतराग संयम कडे  
छे " छउमत्ये " धत्यादि—



मायालोककथा यत्र स उपशान्तकपायः, स चासौ तस्य वा वीतरागसंयमश्चेति  
 तया, एकादशगुणस्थानवर्तीत्यर्थः । क्षीणाः—अभावमापन्ना कपाया यस्य स क्षीण  
 कपायः, स चासौ वीतरागसंयमश्च तथा क्षीणकपायस्य वा वीतरागसंयम इति,  
 तथा, द्वादशगुणस्थानवर्तीत्यर्थः । 'उपसंवे' स्यादि—उपशान्तकपायवीतराग-  
 संयमः प्रथमाप्रथमसमयमाभित्य द्विविधः । 'अहवे'—स्यादि—अथवा—चरमाक्षर  
 मसमयमाभित्य उपशान्तकपायवीतरागसंयमस्य द्विविध्य बोध्यम् । अन्यत् पूर्ववत् ।  
 'क्षीणकपाये'—स्यादि—क्षीणकपायवीतरागसंयमो द्विविधः प्रकृता तथ्या-  
 ल्पस्थक्षीणकपायवीतरागसंयमः, केष्विक्क्षीणकपायवीतरागसंयमश्चेति । तत्र-

देता है अर्थात् संक्रमण चक्रसंज्ञा अपवर्तना आवि करणों द्वारा उन्हें  
 उद्य में आने के अयोग्य बना देता है अथवा प्रदेश से भी उन्हें अवेद्य  
 कर देता है ऐसा वह जीव उपशान्त कपाय कहा गया है, सो इस जीव  
 का जो संयम है वह उपशान्त कपाय वीतराग संयम है तात्पर्य यही है  
 कि ग्यारह वें गुणस्थान में जो संयम होता है वही उपशान्त कपाय  
 वीतराग संयम है तथा जिस जीव को कपाय माया लोभ रूप कपाय-  
 अभाव को प्राप्त हो चुकी है ऐसा वह जीव क्षीणकपाय है इस क्षीण  
 कपाय का जो संयम है वह क्षीणकपाय वीतरागसंयम है यह संयम १२  
 वें गुणस्थान में होता है उपशान्त कपाय वीतराग संयम प्रथम और  
 अप्रथम समय की अपेक्षा से दो तरह का होता है अथवा चरम समय  
 और अचरम समय की अपेक्षा से भी वह दो प्रकार का है । क्षीणक  
 पाय वीतराग संयम छद्मस्थ क्षीणकपाय वीतराग संयम और केष्वि

जेटहे हे संक्रमण, उदरना, अपवर्तना आवि करणों द्वारा तेमने उदरमां  
 न आवी शके जेवां जनावी हे छे अथवा प्रदेशनी अपेक्षाजे पञ्च तेमने  
 अवेद्य करी नाजे छे, जेवां ते लपने उपशान्त कपाय कहे छे तेथी ते लपना  
 संयमने उपशान्त कपाय वीतराग संयम कहे छे आ अथवने आभाव जे  
 छे हे ११ मां गुणस्थानमां जे संयम होय छे ते संयमने च उपशान्त कपाय  
 वीतराग संयम कहे छे जे लपना कपाय-भावा वीतराग कपाय क्षीण कपाय  
 अथा होय छे—नष्ट कपाय अथा होय छे, जेवा लपने क्षीण कपाय वीतराग  
 संयमवाजे लप कहे छे आ संयमनी प्राप्ति १२ मां गुणस्थानवर्ती लपने  
 थाय छे उपशान्त कपाय वीतराग संयम प्रथम जने अप्रथम संयमनी अपे  
 क्षाजे जे प्रकारने होय छे अथवा चरम संयम जने अचरम संयमनी अपे  
 क्षाजे पञ्च ते जे प्रकारने होय छे क्षीण कपाय वीतराग संयमना पञ्च

छादयतिज्ञानादिगुणान् आत्मनः स्वरूपं वेति छद्म, यद्वा छाद्यते केवलज्ञान केवल-  
दर्शनं चात्मनोऽनेनेति छद्म, तत्र तिष्ठतीति छद्मस्थः, स चासौ क्षीणकषायवीतरा-  
गसंयमश्च, तथा छद्मस्थस्य वा क्षीणकषायवीतरागसंयम इति । तथा-केवलं=  
अनन्तज्ञानदर्शनमस्यास्तीतिकेवली, स चासौ क्षीणकषायवीतरागसंयमश्चेति ।  
यद्वा-केवलिनः क्षीणकषायवीतरागसंयम इति तथा । 'छउमत्ये'-त्यादि-छद्म-

क्षीणकषाय वीतराग संयम के भेद से भी दो प्रकार का है आत्मा के  
ज्ञानादि गुणों को अथवा स्वरूप को जो ढक देता है उस का नाम छद्म  
है अथवा - आत्मा के केवलज्ञान और केवलदर्शन जिस के द्वारा  
आच्छादित हो जाते हैं वह छद्म है, इस छद्म अवस्था में जो  
वर्तमान रहता है उसका नाम छद्मस्थ है इस छद्मस्थक्षीणकषाय  
वीतरागी का जो संयम है वह छद्मस्थक्षीणकषाय वीतराग संयम है  
तथा केवल ज्ञानविशिष्ट क्षीण कषायवाले वीतरागी आत्मा का जो संयम  
है वह केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम है अनन्तदर्शन और अन-  
न्तज्ञान का नाम केवल है यह केवल जिसके होता है उसका नाम केवली  
है यह केवली नियमतः क्षीणकषाय वाला होता है क्यों कि केवली  
अवस्था १३ वे गुणस्थान में ही होती है और कषाय का सद्भाव १०  
वे गुण तक रहता है इसलिये १३वे गुणस्थानवाला आत्मा क्षीण कषा-  
यवाला केवली कहा गया है इस केवली का जो संयम होता है वही

ये लेख छे-(१) छद्मस्थ क्षीणकषायवीतराग संयम अने (२) केवली क्षीण  
कषाय वीतराग संयम. आत्माना ज्ञानादि गुणोने अथवा स्वरूपने जे ढांकी  
दे छे तेनु नाम छद्म छे अथवा केवणज्ञान अने केवणदर्शन जेना द्वारा  
आच्छादित थई जाय छे, ते छद्म छे. आ छद्म अवस्थाभां रडेला एवने  
छद्मस्थ कडे छे. आ छद्मस्थना-छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतरागना-जे संयम छे  
तेने छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग संयम कडे छे केवणज्ञान संपन्न क्षीण  
कषायवाणा वीतरागी आत्मानो जे संयम छे तेने केवली क्षीण कषाय वीतराग  
संयम कडे छे अनंत दर्शन अने अनंत ज्ञाननुं नाम केवण छे. आ केवण-  
ज्ञान जेने थाय छे ते एवने केवली कडे छे ते केवली नियमथी जे क्षीण  
कषायवाणा डोय छे, कारण के केवली अवस्था १३ भां गुणस्थाने पडोयिदो  
एव जे प्राप्त करे छे, अने कषायना सद्भाव १० भां गुणस्थान पर्यन्त जे  
रडे छे तेथी १३ भां गुणस्थानवर्ती आत्माने क्षीण कषायवाणा कद्यो छे. ते  
केवलीना जे संयम डोय छे तेने जे केवली क्षीण कषाय वीतराग संयम कडे  
छे. "छउमत्ये" इत्यादि—

मापालोमरूपा येन स उपशान्तरूपायः, स चासौ तस्य वा वीतरागसंयमश्चेति तथा, एकादशगुणस्थानवर्तीत्यर्थः । क्षीणाः=अमावमापन्ना कृपाया यस्य स क्षीण कृपायः, स चासौ वीतरागसंयमश्च तथा क्षीणकृपायस्य वा वीतरागसंयम इति, तथा, द्वादशगुणस्थानवर्तीत्यर्थः । 'उत्सवते' स्यादि-उपशान्तरूपायवीतरागसंयमः प्रथमप्रथमसमयमाधिस्य द्विविधः । 'अश्वे'-स्यादि-प्रथवा-परमावरमसमयमाधिस्य उपशान्तरूपायवीतरागसंयमस्य द्वैविध्य बोध्यम् । अन्यत् पूर्ववत् । 'क्षीणकृपाये'-त्याति-क्षीणकृपायवीतरागसंयमो द्विविधः मद्रुप्तः तद्यथा-छप्रस्यक्षीणकृपायवीतरागसंयमः, केवलिक्षीणकृपायवीतरागसंयमश्चेति । तत्र-

देता है अर्थात् संक्रमण अग्रर्तना अपवर्तना आदि करणों द्वारा उन्हें उदय में आने के अयोग्य बना देता है अथवा प्रदेश से भी उन्हें अवेध कर देता है ऐसा वह जीव उपशान्त कृपाय कहा गया है, सो इस जीव का जो संयम है वह उपशान्त कृपाय वीतराग संयम है तार्पर्य यही है कि ग्यारह वें गुणस्थान में जो संयम होता है वही उपशान्त कृपाय वीतराग संयम है तथा जिस जीव को कृपाय माया लोम रूप कृपाय-अभाव को प्राप्त हो चुकी है ऐसा वह जीव क्षीणकृपाय है इस क्षीण कृपाय का जो संयम है वह क्षीणकृपाय वीतरागसंयम है यह संयम १२ वें गुणस्थान में होता है उपशान्त कृपाय वीतराग संयम प्रथम और अप्रथम समय की अपेक्षा से दो तरह का होता है अथवा परम समय और अपरम समय की अपेक्षा से भी वह दो प्रकार का है । क्षीणकृपाय वीतराग संयम छप्रस्थ क्षीणकृपाय वीतराग संयम और केवलि

जेटवे के संक्रमण, उदयना, अपवर्तना आदि कारणों द्वारा तेमने उदयमान न आनी शके जेवां बनायी है उ अथवा प्रदेशनी अपेक्षाके पण तेमने अवेध करी नाये उ जेवां ते अपने उपशान्त कृपाय कहे उ तेही ते अपना संयमने उपशान्त कृपाय वीतराग संयम कहे उ आ अयनने आवाग जे उ के ११ भां गुणस्थानभांने संयम दोष उ ते संयमने उ उपशान्त कृपाय वीतराग संयम कहे उ के अपना कृपाय-भावा वीतराग कृपाय क्षीण संयम तथा दोष उ-नष्ट संयम तथा दोष उ जेवां अपने क्षीण कृपाय वीतराग संयमवाले उत्र कहे उ आ संयमनी प्राप्ति १२ भां गुणस्थानवर्ती अपने याव उ उपशान्त कृपाय वीतराग संयम प्रथम अने अप्रथम समयनी अपेक्षा से दो प्रकारने दोष उ अथवा परम समय अने अपरम समयनी अपेक्षाके पण ते जे प्राप्तिने दोष उ क्षीण कृपाय वीतराग संयमवा पण

वीतरागसंयमोऽपि प्रथमाप्रथमसमयमाश्रित्य सूत्रं पठनीयम् । 'अहवे' त्यादि-  
अथवा-प्रकारान्तरेणाप्ययं चरमसमयाचरमसमयमाश्रित्य सूत्रं वाच्यम् । उक्तश्ल-  
घ्नस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमः, संप्रति केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमः प्रोच्यते-  
'केवलि' इत्यादि-केवलक्षीणकषायवीतरागसंयमो द्विविधः-सयोगिकेवलिक्षीण-  
कषायवीतरागसंयमः, अयोगिकेवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चेति । तत्र सह  
योगेन व्यापारेण वर्त्तन्त इति सयोगाः=मनोवाक्कायाः, ते विद्यन्ते यस्येति सयोगी  
स चासौ, तस्य वा केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चेति तथोक्तः । न सन्ति  
योगा यस्येति अयोगी, स चासौ तस्य वा केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चेति  
तथोक्तः । 'सजोगी'-त्यादि-सयोगिकेवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमः प्रथमसम-

संयम भी प्रथम अप्रथम समय की अपेक्षा लेकर अथवा चरम  
समय अचरम समय की अपेक्षा लेकर के दो प्रकार का कहा  
गया है इसी तरहसे बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग संयम भी  
प्रथम :अप्रथम समय की अपेक्षा लेकर अथवा चरमसमय अचरम  
समयकी अपेक्षा लेकर दो प्रकार का कहा गया है--

केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम भी दो प्रकारका कहा गया  
है-इनमें जो १३ वे गुणस्थानवर्ती आत्मा का संयम है वह सयोगि  
केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम है सयोगी इसे इसलिये कहा गया  
है कि यहां योगों का सद्भाव रहता है तथा १४ वे गुणस्थानवर्ती  
आत्मा का जो संयम है वह अयोगी केवलि क्षीणकषायवीतराग संयम  
है अयोगी इसे इसलिये कहा है कि यहां मन, वचन, कायरूप योग

बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतरागना पञ्च प्रथम समय अने अप्रथम  
समयनी अपेक्षाये जे लेट कछा छे अथवा चरम समय अने अचरम सम-  
यनी अपेक्षाये पञ्च जे लेट कछा छे

केवली क्षीण कषाय वीतराग संयमना पञ्च जे प्रकार कछा छे-तेमां जे  
१३ मां गुणस्थानवर्ती आत्मानो संयम छे तेने सयोगि केवलि क्षीण कषाय  
वीतराग संयम कडे छे तेने सयोगी कडेवानु कारणु जे छे के त्यां योगोना  
सद्भाव रडे छे परन्तु १४ मा गुणस्थानवर्ती आत्मानो जे संयम छे तेने  
अयोगी केवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम कडे छे, तेने अयोगी कडे-  
वानु कारणु जे छे के त्यां मन, वचन अने कायरूप योगोना अभाव  
रडे छे, सयोगी केवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम प्रथम समय अने अप्र-

स्वप्तीणकपायवीतरागसयમો द्वित्रिषः प्रज्ञस्तद्यथा-स्वययुद्धछद्यस्वप्तीणकपाय  
 वीतरागसयम', युद्धयोषितछद्यस्वप्तीणकपायवीतरागसयमश्चेति । तत्र स्वयम्=  
 व्यात्मनैश्च युद्ध=तश्च ज्ञातवान्-इति स्वय युद्धः-स चासी, तस्य वा छद्यस्वप्तीण  
 कपायवीतरागसयमश्चेति, तयोक्त । युद्धेन=भाषार्पादिनायोषितः=योष प्राप्त  
 युद्धयोषित, स चासी, तस्य वा छद्यस्वप्तीण कपायवीतरागसयमश्चेति तयोक्ता ।  
 'स्वययुद्धे' स्यादि-स्वययुद्धछद्यस्वप्तीणकपायवीतरागसयम प्रथमाप्रथमसमय  
 माभित्य बोध्य । 'अश्वे' इत्यादि-मयवा=प्रकारान्तरेण चरमसमयाचरमसमय  
 माभित्य च सूत्रं वाच्यम् । 'युद्ध योषित' इत्यादि-युद्धयोषितछद्यस्वप्तीणकपाय-

केवली क्षीणकपाय वीतराग सयम है " छउमरये " इत्यादि - छद्यस्य  
 क्षीणकपाय वीतराग सयम-छद्यस्य क्षीणकपायवाले वीतराग का संयम  
 भी दो प्रकार का होता है, एक स्वययुद्ध छद्यस्य क्षीणकपाय वीतराग  
 संयम और दूसरा युद्धयोषित छद्यस्य क्षीण कपाय सयम इनमें जो  
 अपने आप ही तत्त्वों को जान कर १२ वे गुणस्थानवाला वीतराग बना  
 है ऐसे जीव का जो सयम है वह स्वय युद्ध छद्यस्य क्षीणकपाय वीत  
 राग सयम है तथा जो भाषार्य आदि के द्वारा योष को प्राप्त करके १२  
 वे गुणस्थानवाला वीतराग बना है उसका जो संयम है वह युद्धयोषित  
 छद्यस्य क्षीणकपाय वीतराग सयम है " स्वययुद्ध " इत्यादि । स्वययुद्ध  
 छद्यस्य क्षीणकपाय वीतराग सयम प्रथम अप्रथम समय की अपेक्षा  
 लेकर अथवा चरम समय अचरम समयकी अपेक्षा लेकर के दो प्रकार  
 का कहा गया है इसी तरह से युद्धयोषित छद्यस्य क्षीणकपाय वीतराग

छद्यस्य क्षीण कपाय वीतराग सयम-छद्यस्य क्षीण कपायवाला वीतरागने  
 सयम-पक्ष ने प्रकटने का हकीकत है-(१) स्वययुद्ध छद्यस्य क्षीण कपाय वीतराग  
 सयम અને (२) युद्ध योषित छद्यस्य क्षीण कपाय वीतराग सयम.

पीतानी जते च तदनेने ज्ञप्तीने १२ भां शुद्धस्थानवर्ती वीतराग जनेता  
 एवने के सयम છે તેને स्वययुद्ध छद्यस्य क्षीण कपाय वीतराग सयम कहे  
 છે તથા જ્ઞાતવાઈ આદિના ઉપદેશ દ્વારા જોષ પ્રાપ્ત કરીને જે છુદ્ધ ૧૨ માં  
 શુદ્ધસ્થાનવર્તી વીતરાગ જન્યો છે, તેનો જે સયમ છે તેને યુદ્ધયોષિત છદ્યસ્ય  
 ક્ષીણ કપાય વીતરાગ સયમ કહે છે

'સ્વયયુદ્ધ' ઇત્યાદિ, સ્વયયુદ્ધ છદ્યસ્ય ક્ષીણ કપાય વીતરાગ સયમના  
 પ્રથમ અને અપ્રથમ સમયની અપેક્ષાએ ને સેદ કહ્યા છે અથવા ચરમ સયમ  
 અને અચરમ સમયની અપેક્ષાએ પણ તેના ને સેદ કહ્યા છે જેવ પ્રમાણે

वीतरागसंयमोऽपि प्रथमाप्रथमसमयमाश्रित्य सूत्रं पठनीयम् । 'अहवे' त्यादि-  
 अथवा-प्रकारान्तरेणाप्ययं चरमसमयाचरमसमयमाश्रित्य सूत्रं वाच्यम् । उक्तञ्छ-  
 ब्दस्थक्षीणकषायवीतरागसंयमः, संप्रति केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमः प्रोच्यते-  
 'केवलि' इत्यादि-केवलक्षीणकषायवीतरागसंयमो द्विविधः-सयोगिकेवलिक्षीण-  
 कषायवीतरागसंयमः, अयोगिकेवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चेति । तत्र सह  
 योगेन व्यापारेण वर्तन्त इति सयोगाः=मनोवाकायाः, ते विद्यन्ते यस्येति सयोगी  
 स चासौ, तस्य वा केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चेति तथोक्तः । न सन्ति  
 योगा यरयेति अयोगी, स चासौ तस्य वा केवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमश्चेति  
 तथोक्तः । 'सजोगी'-त्यादि-सयोगिकेवलिक्षीणकषायवीतरागसंयमः प्रथमसम-

संयम भी प्रथम अप्रथम समय की अपेक्षा लेकर अथवा चरम  
 समय अचरम समय की अपेक्षा लेकर के दो प्रकार का कहा  
 गया है इसी तरहसे बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीणकषाय वीतराग संयम भी  
 प्रथम अप्रथम समय की अपेक्षा लेकर अथवा चरमसमय अचरम  
 समयकी अपेक्षा लेकर दो प्रकार का कहा गया है--

केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम भी दो प्रकारका कहा गया  
 है-इनमें जो १३ वे गुणस्थानवर्ती आत्मा का संयम है वह सयोगि  
 केवलि क्षीणकषाय वीतराग संयम है सयोगी इसे इसलिये कहा गया  
 है कि यहां योगों का सद्भाव रहता है तथा १४ वे गुणस्थानवर्ती  
 आत्मा का जो संयम है वह अयोगी केवलि क्षीणकषायवीतराग संयम  
 है अयोगी इसे इसलिये कहा है कि यहां मन, वचन, कायरूप योग

बुद्धबोधित छद्मस्थ क्षीण कषाय वीतरागना पक्षु प्रथम समय अने अप्रथम  
 समयनी अपेक्षाये जे लेट कह्या छे अथवा चरम समय अने अचरम स-  
 मयनी अपेक्षाये पक्षु जे लेट कह्या छे.

डेवली क्षीण कषाय वीतराग संयमना पक्षु जे प्रकार कह्या छे-तेमां जे  
 १३ मा गुणस्थानवर्ती आत्मानो संयम छे तेने सयोगि डेवलि क्षीण कषाय  
 वीतराग संयम कडे छे तेने सयोगी कडेवातुं कारणु जे छे डे त्यां योगानो  
 सद्भाव रडे छे परन्तु १४ मा गुणस्थानवर्ती आत्मानो जे संयम छे तेने  
 अयोगी डेवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम कडे छे. तेने अयोगी कडे-  
 वातुं कारणु जे छे डे त्यां मन, वचन अने कायरूप योगानो अभाव  
 रडे छे. सयोगी डेवलि क्षीण कषाय वीतराग संयम प्रथम समय अने अप्र-

यामयमसमयमाभित्य, सूत्र बोध्यम् । 'अहमे' त्पादि-अयवा-प्रकारान्तरेण चर  
मसमयाचरमसमयमाभित्यापि सूत्रं वाच्यम् । 'अयोगी'-स्यादि-एवम्-अयोगि  
केषलिक्ष्णीणरूपाय वीतरागसमयोऽपि मयमाप्रयमसमयमाभित्य, अयवेति प्रकारा-  
न्तरेण चरमाचरमसमयमाभित्य च सूत्रद्वय बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

संयमो वर्णित । स च भीषाजीवविषय इति पृथिव्यादिजीवस्वरूप्य वर्णयति-

मूलम्—दुविहा पुढविकाइया पन्नत्ता, त जहा - सुहुमा  
चेव, धायराचेव १ । एव जाव दुविहा वणस्सइकाइया पन्नत्ता, त  
जहा-सुहुमाचेव धायराचेव ५ । दुविहा पुढविकाइया पन्नत्ता,  
त जहा-पज्जत्तगा चेव अपज्जत्तगा चेव ६ । एव जाव वण  
स्सइकाइया १० । दुविहा पुढविकाइया पन्नत्ता, त जहा-  
परिणया चेव अपरिणया चेव ११ । एव जाव वणस्सइकाइया  
१५ । दुविहा दव्वा पणत्ता, त जहा-परिणया चेव, अप  
रिणया चेव १६ । दुविहा पुढविकाइया पणत्ता, त जहा-  
गइसमावन्नगा चेव, अगइसमावन्नगा चेव १७ । एव जाव  
वणस्सइकाइया २१ । दुविहा दव्वा पणत्ता, त जहा-  
गइसमावन्नगा चेव, अगइसमावन्नगा चेव २२ । दुविहा

नहीं रहता है सयोगि केषलि क्षीणरूपाय वीतराग संयम प्रथम समय  
और अप्रथम समय की प्रतिपत्ति की अपेक्षा लेकर तथा चरम समय  
और अचरम समयकी अपेक्षा ले कर दो प्रकार का कहा है इसी प्रकार  
से अयोगि केषलि क्षीणरूपाय वीतराग संयम भी प्रथम समय और  
अप्रथम समयकी प्रतिपत्ति की अपेक्षा लेकर के तथा चरम समय और  
अचरम समय की अपेक्षा ले करके दो प्रकारका कहा, गया है । सू० १६ ॥

यम सभयनी प्रतिपत्तिनी अपेक्षाके तथा चरम सभय अने अचरम सभयनी  
प्रतिपत्तिनी अपेक्षाके वे प्रकारने कहे छे जे प्रभावे अयोगी केषलि  
क्षीण रूपाय वीतराग संयम पक्ष प्रथम सभय अने अप्रथम सभयनी प्रति  
पत्तिनी अपेक्षाके तथा चरम सभय अने अचरम सभयनी अपेक्षाके  
वे प्रकारने कहे छे ॥ सू० १६ ॥

पुढविक्राइया पणत्ता, तं जहा—अणंतरोगाढा चेव, परंपरो-  
गाढा चेव २३, जाव दढ्वा २८ ॥ सू० १७ ॥

छाया—द्विविधाः पृथिवीकायिकाः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सूक्ष्माश्चैव वादराश्चैव १ ।  
एवं यावद् द्विविधाः वनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्माश्चैव वादराश्चैव ५ ।  
द्विविधाः पृथिवीकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव, अपर्याप्तकाश्चैव ६ ।  
एवं यावद् वनस्पतिकायिकाः १० । द्विविधाः पृथिवीकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—  
परिणताश्चैव, अपरिणताश्चैव ११ । एवं यावद् वनस्पतिकायिकाः १५ । द्विवि-  
धानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—परिणतानि चैव अपरिणतानि चैव १६ । द्विविधाः  
पृथिवीकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—गतिसमापन्नकाश्चैव, अगतिसमापन्नकाश्चैव १७ ।  
एवं यावद् वनस्पतिकायिकाः २१ । द्विविधानि द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—  
गतिसमापन्नकानि चैव, अगतिसमापन्नकानि चैव २२ । द्विविधाः पृथिवीकायिकाः  
प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अनन्तरावगाढाश्चैव, परम्परावगाढाश्चैव २३ । यावद्  
द्रव्याणि २८ ॥ सू० १७ ॥

टीका—‘दुविहा पुढविक्राइया’ इत्यादि ।

पृथिव्येव कायः=शरीरं येषां ते पृथिवीकायिकाः, ते द्विविधाः=द्विप्रकाराः  
प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—सूक्ष्मनामकर्मोदयात् सूक्ष्माः सर्वलोकव्यापिनः । वादरनामकर्मो-  
दयाद् वादराः, ये लोकैरुदेशे पृथिवीपर्वतादिष्वेव वर्तन्ते १ । एवं=पृथिवीकाय  
सूत्रवत् शेषाणि अप्तेजोत्रायुसूत्राणि वाच्यानि यावत् वनस्पतिकायसूत्रम्—वनस्प-

संघम का वर्णन करके अब सूत्रकार पृथिव्यादि जीव स्वरूप का  
वर्णन करते हैं क्यों कि जीव और अजीव के विषय में ही संघम होता है  
“दुविहा पुढवी काइया पणत्ता” इत्यादि ॥ १७ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकायिक जीव दो प्रकारके कहे गये हैं एक तैजस्कायिक  
सूक्ष्मपृथिवीकायिक और दूसरे वादर पृथिवीकायिक इसी प्रकार से अप्-  
कायिक वायुकायिक और वनस्पतिकायिक भी सूक्ष्म और वादर के भेद

संघमनुं वलुंन पूइं थयुं, डवे सूत्रकार पृथीकाय आदि लुवोना स्वइ-  
पनुं वलुंन करे छे, कारलु के लुव अने अलुवना विषयमा न संघम थाय छे.

“दुविहा पुढवीकाइया पणत्ता” इत्यादि ॥ १७ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकायिक लुव जे प्रकारना कइयां छे—(१) तैजस्कायिक सूक्ष्म पृथ्वी-  
कायिक अने (२) वादर पृथ्वीकायिक अने प्रमाणु अप्पुकायिक, वायुकायिक अने  
वनस्पतिकायिक लुवो पणु सूक्ष्म अने वादरना लेदथी जण्जे प्रकारनां कइया



तिकायिका द्विविधाः प्रकृताः—सूक्ष्मा वादराश्चेति ५ । 'दुषिहा' इत्यादि—पर्याप्तकापर्याप्तकमाभित्य पृथिवीकायिकादि वनस्पतिकायपर्यन्त सूत्रपञ्चक व्याख्येयम् । तत्र पर्याप्तिनामकर्मोदयात् पर्याप्तकाः, तद्विपरीता अपर्याप्तका । पर्याप्ति = आहारादिपुद्गलप्रवृत्तपरिणामनहतुरात्मन शक्तिविशेष । सा-आहार शरीरेन्द्रियाऽऽनमाप्नोमापामन -पर्याप्तिमदात् पञ्चविधा । पृथिव्यादिवनस्पतिपर्यन्तानां पञ्चानामपि स्यावराणां मापामनोवर्जिताश्चतस्र पर्याप्तयो भवन्ति ।

से दो दो प्रकार के कहे गये हैं पृथिवी ही जिन जीवों का शरीर होता है ये पृथिवी कायिक जीव हैं इन पृथिवीकायिक जीवों में जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय होता है वे सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव हैं ये सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव सर्वलोक में व्यापक हैं वादर नाम कर्म के उदय वशावर्ती जो जीव हैं वे वादर पृथिवीकायिक जीव हैं ये लोक के एकदेश पृथिवी पर्यंत आदिकों में ही रहते हैं ? इसी तरह से अणुकायिक—अणु ही जिनका शरीर होता है ऐसे जीव भी तेज ही जिनका शरीर होता है ऐसे तेजस्कायिक जीव भी वायु ही जिनका शरीर होता है ऐसे वायु कायिक जीव भी और वनस्पति ही जिनका शरीर होता है ऐसे वनस्पतिकायिक जीव भी होते हैं इसलिये इनके भी सूत्र इसी प्रकार से कह लेना चाहिये यही वाक्य "वनस्पतिकायिका द्विविधाः प्रकृताः सूक्ष्मा वादराश्च" इस सूत्रांश द्वारा प्रकट की गई है इस प्रकार से इन एकै द्वित्रय जीवों में द्विविधता प्रकट करके अब अन्य प्रकार से भी इनमें

ॐ पृथ्वी च जे लोकोत्त शरीर होय छे ते लोकोत्त पृथ्वीकायिक कहे छे ते पृथ्वीकायिकोमां जेमने सूक्ष्म नामकर्मना उदय होय छे ते लोकोत्त सूक्ष्म पृथ्वी कायिक होय छे ते सूक्ष्म पृथ्वीकायिक लोकोत्त सब लोकमां व्यापक छे जे पृथ्वीकायिकोमां वादर नामकर्मना उदय होय छे ते पृथ्वीकायिकोने वादर पृथ्वीकायिक लोकोत्त कहे छे तेको लोकना जेक देश—पृथ्वी, पर्यंत आदिकोमां रहे छे ।

अणु ( पाणी ) च जेमनु शरीर छे, जेवां लोकोत्त अणुकायिक कहे छे ते अणु च जेमनु शरीर छे, जेवा लोकोत्त तेजस्कायिक कहे छे वायु च जेमनु शरीर छे, जेवा लोकोत्त वायुकायिक कहे छे जने वनस्पति च जेमनु शरीर छे जेवां लोकोत्त वनस्पतिकायिक कहे छे पृथ्वीकायिकनी जेम अणुकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक जने वनस्पतिकायिक लोकोमां पञ्च सूक्ष्म जने वादरना वेदधी द्विविधता अणुनी, जेवा वात सूत्रद्वारे वनस्पतिकायिका द्विविधा प्रकृता सूक्ष्मा वादराश्च" आ सूत्रांश द्वारा प्रकट करी छे

विकलेन्द्रियाणामसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां च मनोवर्जिता पञ्च पर्याप्तयो भवन्ति ।  
सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां च पट्टपि पर्याप्तयो जायन्ते ।

उक्तं च—“ आहार १ सरीरिं २ दियपज्जत्ती ३ आणापाण ४ भास ५ मणे ६ ।

चत्तारि पंचछप्पिय, एग्गिदिय-विगल-सन्धीणं ॥ १ ॥ इति । ”

छाया—आहार १ शरीरे २ न्द्रियपर्याप्तिः ३ आनप्राण ३ भाषा ५ मनांसि ६ ।

चतस्रः पञ्च पडपि च, एक्केन्द्रिय-विकल-सञ्ज्ञिनाम् ॥ इति ।

सर्वा अपि पर्याप्तयः अन्तर्मुहूर्त्तेन निर्वर्त्यन्ते, तत्राहारपर्याप्तिकाल एक एव

द्विविधता प्रकट करने के निमित्त सूत्रकार कहते हैं—पृथिवीकायिक से लेकर वनस्पति कायिक तक के जीव पर्याप्त और अपर्याप्तक के भेद से भी दो दो प्रकार के कहे गये हैं—जिन जीवों को पर्याप्त नामकर्म का उदय होता है वे पर्याप्तक और जिनको पर्याप्त नामकर्म का उदय नहीं होता है वे अपर्याप्तक हैं आहारादि पुद्गलों को ग्रहण करने की और उन्हें परिणमाने की हेतुभूत जो आत्मा की शक्ति होती है उसका नाम पर्याप्त है यह पर्याप्त आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनप्राण, भाषा और मन इनके भेद से ६ प्रकार की है पृथिवी कायिक से लेकर वनस्पतिकायिक तक के पांच स्थावर जीवों के ४ पर्याप्तियां होती हैं भाषा पर्याप्त और मनः पर्याप्त के बिना पांच पर्याप्तियां होती हैं संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के ६ पर्याप्तियां होती हैं—उक्तं च—“ आहार सरीरिंदिय ” इत्यादि ।

इवे सूत्रकार पृथ्वीकायिकथी लधने वनस्पतिकायिक पर्यन्तना लुवोमां भीलु रीते पणु द्विविधतानुं कथन करे छे—

पृथ्वीकायिकथी लधने वनस्पतिकायिक पर्यन्तना लुवो पर्याप्तिक अने अपर्याप्तिकना लेदथी पणु अण्णे प्रकारनां कइयां छे जे लुवोमां पर्याप्त नाम कर्मना उदय होय छे तेमने पर्याप्तिक अने जेमने पर्याप्त नामकर्मना उदय होतो नथी तेमने अपर्याप्तिक कइ छे आहारादि पुद्गलाने ग्रहण करवानी अने तेमने परिणुभाववाना हेतुभूत आत्मानि जे शक्ति होय छे, तेनु नाम पर्याप्ति छे ते पर्याप्ति आहार, शरीर, इन्द्रिय, आनप्राण, भाषा अने मनना लेदथी छ प्रकारनी होय छे पृथ्वीकायिकथी लधने वनस्पतिकायिक पर्यन्तना पांच स्थावर लुवोमां आर पर्याप्तियेना सहभाव होय छे भाषा पर्याप्ति अने मन पर्याप्तियेना ते लुवयां अभाव होय छे सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय लुवोमा ६ पर्याप्तिये होय छे कहु पणु छे के—“ आहार सरीरिंदिय ” इत्यादि.

विकायिका द्विविधा प्रज्ञप्ताः—सूक्ष्मा पादराशयेति ७ । 'दुर्विहा' इत्यादि—पर्याप्तप्राप्याप्तकमाधित्य पृथिवीकायिकादि घनस्वतिकायपर्यन्त सूक्ष्मपञ्चक व्याप्त्ये यम् । तत्र पर्याप्तिनामकर्मोदयात् पर्याप्तकाः, तद्विपरीता अपयाप्तकाः । पर्याप्ति = आहारादिपुद्गलप्रवृत्तपरिणमनइतुरात्मन शक्तिविशेषः । सा—आहारशरीरेन्द्रियाऽऽज्ञाणमापामन—पयाप्तिमहात् पञ्चविधा । पृथिव्यादिघनस्वतियपर्यन्ताना पञ्चानामपि स्याचरार्या मापामनोवर्णिताश्चतस्रः पर्याप्तयो भवन्ति ।

से दो दो प्रकार के कहे गये हैं पृथिवी ही जिन जीवों का शरीर होता है वे पृथिवी कायिक जीव हैं इन पृथिवीकायिक जीवों में जिनके सूक्ष्म नामकर्म का उदय होता है, वे सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव हैं ये सूक्ष्म पृथिवीकायिक जीव सर्वलोक में व्यापक हैं पादर नाम कर्म के उदय वशवर्ती जो जीव हैं वे पादर पृथिवीकायिक जीव हैं ये लोक के एकदेश पृथिवी पर्यंत आदिकों में ही रहते हैं ! इसी तरह से अप्कायिक—अप ही जिनका शरीर होता है ऐसे जीव भी तेज ही जिनका शरीर होता है ऐसे तेजस्कायिक जीव भी वायु ही जिनका शरीर होता है ऐसे वायु कायिक जीव भी और घनस्वति ही जिनका शरीर होता है ऐसे घनस्वतिकायिक जीव भी होते हैं इसलिये इनके भी सूत्र इसी प्रकार से कह लेना चाहिये यही पाठ "घनस्वतिकायिका द्विविधाः प्रज्ञप्ता सूक्ष्मा पादराश्व" इस सूत्रांश द्वारा प्रकट की गई है इस प्रकार से इन एकैन्द्रिय जीवों में द्विविधता प्रकट करके अथ अन्य प्रकार से भी इनमें

ॐ पृथ्वी च ते लोकाः शरीरं दोष उ ते लोकोने पृथ्वीकायिक इडे उ ते पृथ्वीकायिकेभामां जेभने सूक्ष्म नामकर्मने उदय दोष उ ते लोको सूक्ष्म पृथ्वी कायिक दोष उ ते सूक्ष्म पृथ्वीकायिक लोको अर्धं लोकमां व्यापिता उ ते पृथ्वीकायिकेभामां लोकर नामकर्मने उदय दोष उ, ते पृथ्वीकायिकेने लोकर पृथ्वीकायिक लोको इडे उ ते लोको लोकना लोक देश—पृथ्वी, पर्यंत आदिकेभामां इडे उ ।

अप ( वायु ) च ते लोकाः शरीरं उ, लोकां लोकोने अप्कायिक इडे उ ते लोको लोकोने अप्कायिक इडे उ, लोकां लोकोने वायुकायिक इडे उ वायु च ते लोकाः शरीरं उ, लोकां लोकोने वायुकायिक इडे उ अने घनस्वति च ते लोकाः शरीरं उ लोकां लोकोने घनस्वतिकायिक इडे उ पृथ्वीकायिकेनी जेभ अप्कायिक तेजस्कायिक, वायुकायिक अने घनस्वतिकायिक लोकोभामां पञ्च सूक्ष्म अने लोकरना लोको द्विविधता लोकोने लोको वात सूत्रद्वारे घनस्वतिकायिका द्विविधा प्रज्ञप्ता सूक्ष्मा पादराश्व आ सूत्रांश द्वारा प्रकट करी उ ।

अपरिणतानि चेति । तत्र परिणतानि-अवस्थान्तरप्राप्तानि-अचिन्तीभूतानीत्यर्थः । अपरिणतानि=पूर्वावस्थासंपन्नान्येव सचित्तानीत्यर्थः । १६ । 'दुविहापुढ्वीकाइया' इत्यारभ्य 'दुविहा दव्वा' इति पर्यन्ता पट् सूत्री । तत्र — पृथिव्यादयो वनस्पतिपर्यन्ताः पञ्चस्थावराः गतिसमापन्नकाः अगतिसमापन्नकाश्चेति द्विविधाः प्रज्ञप्ताः तत्र-गतिसमापन्नकास्ते भवन्ति ये पृथिव्यादितत्तदायुष्कोदयात् पृथिव्यादितत्तद्व्यपदेशभाजो विग्रहगत्या स्वोत्पत्तिस्थानं गच्छन्ति । ये स्थितिमन्तस्ते चागतिसमापन्नकाः २१ । षष्ठे द्रव्यसूत्रे गतिर्गमनमात्रेण । शेषं तथैवेति २२ । 'दुविहा' इत्यारभ्य द्रव्यसूत्रं यावत् पट् सूत्री । द्विविधाः पृथिवीका-

जीव और पुद्गलरूप हैं । ये जीव और पुद्गलरूप द्रव्य परिणत और अपरिणत के भेद से दो प्रकार के हैं । जो द्रव्य अवस्थान्तर को प्राप्त है वह परिणत द्रव्य है और जो पूर्वावस्था संपन्न ही बना रहना है वह अपरिणत द्रव्य है । तात्पर्य यह है कि जो द्रव्य सचित्त है वह अपरिणत और जो अचित्त है वह परिणत द्रव्य है "दुविहा पुढ्वीकाइया" यहां से लेकर "दुविहा दव्वा" तक पट् सूत्री है इसमें पृथिवीकायिक आदि वनस्पति पर्यन्त तक के पांच स्थावर जीव गति समापन्नक वे जीव होते हैं जो पृथिव्यादि तत्तत् आयु के उदय से पृथिवी आदि तत्तत् नाम युक्त हुए विग्रहगति से अपने उत्पत्ति स्थान को प्राप्त होते हैं और जो स्थिति वाले हैं वे अगति समापन्नक हैं । छठे द्रव्य सूत्र में गति शब्द से गमन मात्र ही गृहीत हुआ है बाकी का और सब कथन वैसा ही है २२ "दुविहा" से प्रारम्भ कर द्रव्य सूत्र तक षट् सूत्री है पृथिवी

ते एव अने पुद्गलरूप द्रव्य परिणत अने अपरिणतना बोधथी जे प्रकारनुं छे । जे द्रव्य अवस्थान्तर (अन्य अवस्था) पाभेलु छे ते द्रव्यने परिणत द्रव्य कहे छे, अने जे द्रव्य पूर्वावस्था युक्त न रहे छे ते अपरिणत द्रव्य कहेवाय छे । आ कथननुं तात्पर्य अे छे के जे द्रव्य सचित्त छे ते अपरिणत अने जे अचित्त छे ते परिणत द्रव्य छे । "दुविहा पुढ्वीकाइया" अर्द्धथी लधने "दुविहा दव्वा" पर्यन्तना छ सूत्रेमां अे वातनुं प्रतिपादन करवामां आबुं छे के पृथ्वीकायिकथी लधने वनस्पतिकायिक पर्यन्तना पांच स्थावर एवो गति समापन्नक छे गति समापन्नक ते एवो डाय छे के जेओ पृथ्वीकाय आदि ते ते आयुना उदयथी पृथ्वीकाय आदि ते ते नामयुक्त थधने विग्रहगति द्वारा पोताना उत्पत्ति स्थानने प्राप्त करे छे, अने जे स्थितिवाणां छे तेओ अगति समापन्नक गणाय छे छ द्रव्य सूत्रेमां गति शब्द द्वारा गमन मात्र न गृहीत थयुं छे, पाकीनुं मधु कथन ओनुं न छे ।

સમય: ૧૦ । 'દુવિહા પુલ્કી' ઇત્યાદ્ય 'દુવિહા વૃક્ષા' ઇતિ પર્યન્તં પદ્મ સુત્રી । તત્ર પૃથિવ્યાદય: પચ્ચસ્થાવરા પરિણતા અપરિણતા, ઇતિ દ્વિવિધા સન્તિ । તત્ર પરિણતા = સ્વપરોમપકાપચ્ચસ્રૈ: પરિણામાન્તરમાપાદિતા: મધિચીમૂતા ઇત્યર્થ । અપરિણતા: = તદ્વિપરીતા સચિત્ત ઇત્યર્થ: । પરિણતાપરિણતયોર્વિશેષ વ્યામ્યા દશઐકાલિકસુત્રે ચતુર્થાપ્યયનમ્ મસ્કૃતાધારમણિમન્જૂયાવાં ટીકાયાં વિલોકનીયા ૧૫ । 'દુવિહા વૃક્ષા' ઇત્યાદિ પદ્મ સુત્રમ્ । તત્ર દ્રશ્યિત્તિ = નાનાવિષયર્થાયાન માન્વુશ્ચીતિ દ્રશ્યાપિ બીષપુલ્કલ્મષણાનિ । તાનિ દ્વિવિધાનિ મવન્તિ - પરિણતાનિ,

इन छहों पर्याप्तियों की रचना का काल एक अन्तर्मुहूर्त का है इनमें आहारपर्याप्ति का काल एक ही समय का है "दुविहा पुलकी" यहाँ से लेकर "दुविहा वृक्षा" तक पदसूत्री है ये पृथिवी आदिक पांच स्थावर परिणत और अपरिणत के भेद से भी दो प्रकार के हैं स्वकाय, परकाय और उभयकाय रूप शस्त्रों के द्वारा ये पाँचों पृथिवीकायिक जीव जय परिणामान्तर को प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् अचिन्त हैं वे परिणत कहे गये हैं और जो ऐसे नहीं हैं वे अपरिणत सचिन्त हैं परिणत और अपरिणत की विशेष व्याख्या दशैकालिक सूत्र के ऊपर जो आचार चिन्तामणि मंजूया नाम की टीका है उस में देख लेना चाहिये यह विषय यहाँ चतुर्थ अप्ययन में वर्णित हुआ है "दुविहा वृक्षा" इत्यादि - अनेक प्रकार की उन २ पर्याप्तियों को जो प्राप्त करते हैं वे द्रव्य हैं ऐसे वे द्रव्य

આ છઠ્ઠે પર્યાપ્તિયોના રચનાકાળ એક અન્તર્મુહૂર્તના કાલ છે તેમાંની આહાર પર્યાપ્તિનો કાળ એક જ સમયનો છે "દુવિહા પુલકી" અર્થથી શરૂ કરીને "દુવિહા વૃક્ષા" પર્યન્તની પદસૂત્રી છે તે પૃથ્વીકાય આદિ પાંચ પ્રકારના સ્થાવર જીવોના પરિણત અને અપરિણતના ભેદથી પણ બે પ્રકાર પડે છે સ્વકાય પરકાય અને ઉભયકાય રૂપ શસ્ત્રો દ્વારા તે પાંચે પૃથ્વીકાયિક જીવ વ્યવેરે પરિણામાન્તરને (અન્ય પરિણામને) પ્રાપ્ત કરી શક્યા હોય છે, એટલે કે વ્યવેરે તેઓ અચિન્ત હોય છે ત્યારે તેમને પરિણત કહે છે એ જીવો આ પ્રકારના નથી, તેમને અપરિણત - સચિન્ત કહે છે પરિણત અને અપરિણતની વિશેષ વ્યાખ્યા દશઐકાલિક સૂત્રની ઉપર જે આચાર ચિન્તામણી મંજૂયા નામની ટીકા મારા દ્વારા લખવામાં આવી છે તેમાંથી વાંચી લેવી ત્યાં વિ.શા અધ્યયનમાં આ વિષયનું વલ્લન કરવામાં આવ્યું છે

"દુવિહા વૃક્ષા" ઇત્યાદિ. અનેક પ્રકારની તે તે પર્યાપ્તિને જે પ્રાપ્ત કરતાં રહે છે, તે દ્રવ્ય છે એવાં તે દ્રવ્યો દ્રવ્યસ્વ અને પુલ્કલરૂપ હોય છે

अपरिणतानि चेति । तत्र परिणतानि-अवस्थान्तरप्राप्तानि-अचिन्तीभूतानीत्यर्थः । अपरिणतानि-पूर्वावस्थासंपन्नान्येव सचित्तानीत्यर्थः । १६ । 'दुविहापुढवीकाइया' इत्यारभ्य 'दुविहा दव्वा' इति पर्यन्ता षट् सूत्री । तत्र — पृथिव्यादयो वनस्पतिपर्यन्ताः पञ्चस्थावराः गतिसमापन्नकाः अगतिसमापन्नकाश्चेति द्विविधाः प्रज्ञप्ताः तत्र-गतिसमापन्नकास्ते भवन्ति ये पृथिव्यादितत्तदायुष्कोदयात् पृथिव्यादितत्तद्द्वयपदेशभाजो विग्रहगत्या स्वोत्पत्तिस्थानं गच्छन्ति । ये स्थितिमन्तस्ते चागतिसमापन्नकाः २१ । षष्ठे द्रव्यसूत्रे गतिर्गमनमात्रमेव । शेषं तथैवेति २२ । 'दुविहा' इत्यारभ्य द्रव्यसूत्रं यावत् षट्सूत्री । द्विविधाः पृथिवीका-

जीव और पुद्गलरूप हैं। ये जीव और पुद्गलरूप द्रव्य परिणत और अपरिणत के भेद से दो प्रकार के हैं। जो द्रव्य अवस्थान्तर को प्राप्त है वह परिणत द्रव्य है और जो पूर्वावस्था संपन्न ही बना रहना है वह अपरिणत द्रव्य है। तात्पर्य यह है कि जो द्रव्य सचित्त है वह अपरिणत और जो अचित्त है वह परिणत द्रव्य है "दुविहा पुढवीकाइया" यहां से लेकर "दुविहा दव्वा" तक षट् सूत्री है इसमें पृथिवीकायिक आदि वनस्पति पर्यन्त तक के पांच स्थावर जीव गति समापन्नक वे जीव होते हैं जो पृथिव्यादि तत्तत् आयु के उदय से पृथिवी आदि तत्तत् नाम युक्त हुए विग्रहगति से अपने उत्पत्ति स्थान को प्राप्त होते हैं और जो स्थिति वाले हैं वे अगति समापन्नक हैं। छठे द्रव्य सूत्र में गति शब्द से गमन मात्र ही गृहीत हुआ है चाकी का और सब कथन वैसा ही है २२ "दुविहा" से प्रारम्भ कर द्रव्य सूत्र तक षट् सूत्री है पृथिवी

ते एव अने पुद्गलरूप द्रव्य परिणत अने अपरिणतना लेहथी जे प्रकारनु छे, जे द्रव्य अवस्थान्तर (अन्य अवस्था) पाभेलु छे ते द्रव्यने परिणत द्रव्य कहे छे, अने जे द्रव्य पूर्वावस्था युक्त न रहे छे ते अपरिणत द्रव्य कहेवाय छे आ कथननु तात्पर्य जे छे के जे द्रव्य सचित्त छे ते अपरिणत अने जे अचित्त छे ते परिणत द्रव्य छे "दुविहा पुढवीकाइया" अर्धीथी लधने "दुविहा दव्वा" पर्यन्तना छ सूत्रेमां जे वातनुं प्रतिपादन करवामां आनुं छे के पृथ्वीकायिकथी लधने वनस्पतिकायिक पर्यन्तना पांच स्थावर एवो गति समापन्नक छे गति समापन्नक ते एवो डाय छे के जेओ पृथ्वीकाय आदि ते ते आयुना उदयथी पृथ्वीकाय आदि ते ते नामयुक्त थधने विग्रहगति द्वारा पोताना उत्पत्ति स्थानने प्राप्त करै छे, अने जे स्थितिवाणां छे तेओ अगति समापन्नक गणाय छे छ द्रव्य सूत्रेमां गति शब्द द्वारा गमन मात्र न गृहीत थयुं छे, भाकीनु मधु कथन जेवुं न छे.

यिकाः प्रकृताः तद्यथा—अनन्तरावगाढाः, परम्परावगाढाश्च । तत्र अनन्तरं—समत्पेक्ष  
समये क्वचिदाकाशदेशे अवगाढाः=माधिता अनन्तरावगाढा, परम्परया=इत्यादि  
समयेषु येऽवगाढास्ते परम्परावगाढाः । अथवा—विश्रित क्षेत्रं द्रव्यं वाऽपेक्ष्य  
अनन्तरम्=अव्यवधानेन अवगाढा अनन्तरावगाढाः, तदितरं तु परम्परावगाढा  
इति २३ । एषं यावत् यावच्छब्देन अष्कायिका २४ तजस्कायिकाः २५,  
वायुकायिका २६ वनस्पतिकायिका २७—द्रव्याणि वा विद्येयानीति २८ ॥ सू० १७ ॥

उक्तं द्रव्यस्वरूपम्, समति तदधिकारादेव द्रव्यविशेषयोः काष्ठाकाशयो  
प्ररूपणामाह—

मूलम्—दुविहे काले पण्णत्ते त जहा ओसप्पिणी-  
काले चेव, उसप्पिणीकाले चेव । दुविहे आगासे पण्णत्ते त  
जहा—लोगागासे चेव अलोगागासे चेव ॥ सू० १८ ॥

कायिक जीव इस तरह से भी दो प्रकार के कहे गये हैं—इनमें एक  
अनन्तरावगाढ और दूसरे परम्परावगाढ हैं, जो अभी ही क्वचित् आकाश  
प्रदेश में अवगाढ आश्रित हुए हैं वे अनन्तरावगाढ पृथिवीकायिक जीव  
हैं तथा द्रव्यादि समय हो गये हैं जिनको वे परम्परावगाढ पृथिवी  
कायिक जीव हैं । अथवा विश्रित क्षेत्र की या द्रव्य की अपेक्षा करके  
जो बिना किसी व्यवधान के अवगाढ हैं वे अनन्तरावगाढ हैं इससे  
भिन्न परम्परावगाढ हैं इसी तरह से यावत् रूपों को जानना चाहिये,  
यहां यावत्पद से अष्कायिक तैजस्कायिक वायुकायिक और वनस्पति  
कायिकों का ग्रहण हुआ है ॥ सू० १७ ॥

“दुविहा” भी शब्द करीने द्रव्य सूत्र पश्चात् पद सूत्र से तेषां  
पृथ्वीकायिक लोकेने आ रीते पण्णत्ते प्रकाशना कथा से—(१) अनन्तरावगाढ  
अने (२) परम्परावगाढ, जेज्जे उभयुं च कर्षक आकाश प्रदेशमां अवगाढ  
वधने आश्रय लक्ष रडेवां से, तेमने अनन्तरावगाढ पृथ्वीकायिक लोके कहे  
से तथा जेज्जे वे आदि समयोभां अवगाढ तथा से तेमने परम्परावगाढ  
पृथ्वीकायिक लोके कहे से अथवा अमुक क्षेत्र अथवा द्रव्यी अपेक्षासे जे  
कर्षक पण्णत्तना व्यवधान विना अवगाढ से जेवां पृथ्वीकायिकोने अनन्त-  
रावगाढ कहे से अने तेमनाधी भित्त पृथ्वीकायिकोने परम्परावगाढ कहे से  
जेव प्रभासे अपृथ्वीकायिक तैजस्कायिक वायुकायिक अने वनस्पतिकायिक पश्चात्तना  
लक्षण ये विसे पण्णत्तं ॥ सू० १७ ॥

છાયા-દ્વિવિધઃ કાલ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તદ્વથા-અવસર્પિણીકાલશ્ચૈવ, ઉત્સર્પિણીકાલ-  
શ્ચૈવ દ્વિવિધ આકાશઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, તદ્વથા-લોકાકાશશ્ચૈવ અલોકાકાશશ્ચૈવ ॥મૂ૦ ૧૮॥

ટીકા—‘ દુવિહે કાલે ઇત્યાદિ ।

કલ્યતે=પરિચ્છિદ્યતે જ્ઞાયતે વસ્ત્વનેનેતિ કાલઃ, કલનં વા કાલાનાં સમયાદિ  
રૂપાણાં સમૂહો વા કાલઃ-વર્તનાદિરૂપઃ ‘વટ્ટુણા લવચ્ચણો કાલો’ ઇતિ વચનાત્ । સ  
ચાવસર્પિણ્યુત્સર્પિણીભેદેન દ્વિવિધઃ । જગતિ મહાવિદેહાદિભોગભૂમિષુ સદાઽવસ્થિત-  
લક્ષણસ્તૃતીયોઽપિ કાલો વર્તતે તથાઽપ્યત્ર દ્વિસ્થાનકાનુરોધાદ્ દ્વિવિધ એવ કાલઃ

દ્રવ્ય કા સ્વરૂપ કહા જા ચુકા હૈ અવ દ્રવ્યાધિકાર કો લેકર કે હી  
દ્રવ્યવિશેષરૂપ કાલ ઓર આકાશ કી પ્રરૂપણા સૂત્રકાર કરતે હૈ—

“ દુવિહે કાલે પળ્લત્તે ” ઇત્યાદિ ।

વસ્તુ જિસકે દ્વારા નવીન પુરાની હોતી હુઈ જાની જાની હૈ ડસ કા  
નામ કાલ હૈ અથવા કલન કા નામ કાલ હૈ યા સમયાદિરૂપ કલાઓ  
કા નામ કાલ હૈ યહ કાલ વર્તનાદિરૂપ હોતા હૈ તાત્પર્ય ઇસકા એસા  
હૈ કિ કાલ નિશ્ચય ઓર વ્યવહાર કી અપેક્ષા સે ડો પ્રકાર કા હૈ  
વર્તનાદિરૂપ કાલ નિશ્ચયકાલ ઓર ઘડી ઘંટા આદિ રૂપ કાલ  
વ્યવહાર કાલ હૈ । ઉક્તં ચ—“ દ્વવ પરિવટ્ટરૂવો ” ઇત્યાદિ ।

યહ કાલ ઉત્સર્પિણી ઓર અવસર્પિણીકે ભેદસે ડો પ્રકારકા કહા ગયા  
હૈ મહાવિદેહ ક્ષેત્રમેં સદા ચતુર્થકાલ અવસ્થિત રહતા હૈ તથા ભોગભૂમિયો  
મેં-અકર્મભૂમિમે તૃતીય આદિ કાલ અવસ્થિત રહતા હૈ ઇસ તરહ સે  
ડો કાલોં કે અતિરિક્ત એક સદા અવસ્થિતરૂપ કાલ ભી હોતા હૈ ફિર

દ્રવ્યના સ્વરૂપતુ કથન સમાપ્ત થયું, હવે સૂત્રકાર અહીં દ્રવ્ય વિશેષ  
રૂપ કાળની અને આકાશની પ્રરૂપણા કરે છે—

“ દુવિહે કાલે પળ્લત્તે ” ઇત્યાદિ ॥ ૧૮ ॥

વસ્તુ જેના દ્વારા નવીનુની થતી લાગે છે, તેનું નામ કાળ છે. અથવા  
કલનનુ (જાણુવુ) નામ કાળ છે અથવા સમયાદિ રૂપ કલાઓનું નામ કાળ છે.  
તેકાળ વર્તનાદિ રૂપ હોય છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે કાળ નિશ્ચય અને  
વ્યવહારની અપેક્ષાએ બે પ્રકારનો છે વર્તનાદિ રૂપ કાળને નિશ્ચયકાળ, અને  
ઘંટાદિ રૂપ કાળને વ્યવહાર કાળ કહે છે. કહ્યું પણ છે કે—

“ દ્વવ પરિવટ્ટરૂવો ” ઇત્યાદિ. આ કાળ ઉત્સર્પિણી અને અવસર્પિણીના  
લેહથી બે પ્રકારનો કહ્યો છે મહાવિદેહ ક્ષેત્રમાં સદા ચતુર્થ કાળ જ અવસ્થિત  
(વિદ્યમાન) રહે છે, તથા ભોગભૂમિઓમાં તૃતીયાદિ કાળ અવસ્થિત રહે છે.



यिकाः प्रकृताः तद्यथा—अनन्तरावगाढाः, परम्परावगाढाश्च । तत्र अनन्तर—समस्येषु  
समये ऋषिदाकाशदेशे अथगाढाः=माथिता अनन्तरावगाढा, परम्परया=द्रव्यादि  
समयेषु येऽवगाढास्ते परम्परावगाढाः । अथवा—विश्रित क्षेत्रं द्रव्यं वाऽपेक्ष्य  
अनन्तरम्=अव्यवधानेन अथगाढा अनन्तरावगाढाः, तदितरे तु परम्परावगाढा  
इति २३ । एवं यावत् यावच्छब्देन अष्कायिका २४ तेजस्कायिकाः २५,  
वायुकायिका २६ वनस्पतिकायिकाः २७—द्रव्याणि वा विज्ञेयानीति २८ ॥ सू० १७ ॥

उक्त द्रव्यस्वरूपम्, समति तदधिकारादेर द्रव्यविशेषयोः काकाकाशयोः  
प्ररूपणामाह—

मूलम्—दुविहे काले पण्णत्ते स जहा-ओसप्पिणी-  
काले चेव, उसप्पिणीकाले चेष । दुविहे आगासे पण्णत्ते स  
जहा-लोगागासे चेष अलोगागासे चेष ॥ सू० १८ ॥

कायिक जीव इम तरह से भी दो प्रकार के कहे गये हैं—इनमें एक  
अनन्तरावगाढ और दूसरे परम्परावगाढ हैं, जो अभी ही कथित आकाश  
प्रदेश में अथगाढ आश्रित हुए हैं वे अनन्तरावगाढ पृथिवीकायिक जीव  
हैं तथा द्रव्यादि समय हो गये हैं जिनको वे परम्परावगाढ पृथिवी  
कायिक जीव हैं । अथवा विश्रित क्षेत्र की या द्रव्य की अपेक्षा करके  
जो बिना किसी व्यवधान के अथगाढ हैं वे अनन्तरावगाढ हैं इससे  
भिन्न परम्परावगाढ हैं इसी तरह से यावत् प्ररूपों को जानना चाहिये  
यहां यावत्पद से अष्कायिक तेजस्कायिक वायुकायिक और वनस्पति  
कायिकों का ग्रहण हुआ है ॥ सू० १७ ॥

“दुविहा” भी शब्द करीने द्रव्य सूत्र पण्णत्त पद सूत्र से तेषां  
पृथ्वीकायिक लोकोने आ रीते पण्णत्ते प्रकाशना कथा से—(१) अनन्तरावगाढ  
अने (२) परम्परावगाढ लोको लक्षणं कथं आकाश प्रदेशमां अवगाढ  
समने आश्रय तर्क रहेतां से, तेमने अनन्तरावगाढ पृथ्वीकायिक लोको कहे  
से तथा लोको ने अदि समयोभां अवगाढ यथां से, तेमने परम्परावगाढ  
पृथ्वीकायिक लोको कहे से अथवा अनुक्त क्षेत्र अथवा द्रव्यकी अपेक्षासे लो  
कोर्क पण्णत्तना व्यवधान विना अवगाढ से लोकां पृथ्वीकायिकोने अनन्त  
रावगाढ कहे से अने तेमनाथी जित पृथ्वीकायिकोने परम्परावगाढ कहे से  
लोको प्रभासे अपृथ्वीकायिक तेजस्कायिक वायुकायिक अने वनस्पतिकायिक पण्णत्तना  
लक्षण यो विरे पण्णत्त समञ्जसु ॥ सू० १७ ॥

छाया-द्विविधः काल प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अवसर्पिणीकालश्चैव, उत्सर्पिणीकाल-  
श्चैव द्विविध आकाशः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-लोकाकाशश्चैव अलोकाकाशश्चैव ॥मू० १८॥  
टीका—'दुविहे काले इत्यादि ।

कल्यते=परिच्छिद्यते ज्ञायते वस्त्वनेनेति कालः, कलनं वा कालानां समयादि  
रूपाणां समूहो वा कालः-वर्तनादिरूपः 'वृष्टणा लवखणो कालो' इति वचनात् । स  
चावसर्पिण्युत्सर्पिणीभेदेन द्विविध । जगति महाविदेहादिभोगभूमिषु सदाऽवस्थित-  
लक्षणस्तृतीयोऽपि कालो वर्तते तथाऽप्यत्र द्विस्थानकानुरोधाद् द्विविध एव कालः

द्रव्य का स्वरूप कहा जा चुका है अब द्रव्याधिकार को लेकर के ही  
द्रव्यविशेषरूप काल और आकाश की प्ररूपणा सूत्रकार करते हैं-

“दुविहे काले पणत्ते” इत्यादि ।

वस्तु जिसके द्वारा नवीन पुगानी होती हुई जानी जाती है उस का  
नाम काल है अथवा कलन का नाम काल है या समयादिरूप कलाओं  
का नाम काल है यह काल वर्तनादिरूप होता है तात्पर्य इसका ऐसा  
है कि काल निश्चय और व्यवहार की अपेक्षा से दो प्रकार का है  
वर्तनादिरूप काल निश्चयकाल और घडी घंटा आदि रूप काल  
व्यवहार काल है । उक्तं च—“द्व्व परिवदृख्वो” इत्यादि ।

यह काल उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीके भेदसे दो प्रकारका कहा गया  
है महाविदेह क्षेत्रमें सदा चतुर्थकाल अवस्थित रहता है तथा भोगभूमियों  
में-अकर्मभूमिमे तृतीय आदि काल अवस्थित रहता है इस तरह से  
दो कालों के अतिरिक्त एक सदा अवस्थितरूप काल भी होता है फिर

द्रव्यना स्वरूपं कथन समाप्तं यद्यु, इवे सूत्रकार अर्थात् द्रव्य विशेष  
रूप काणनी अने आकाशनी प्ररूपणा करे छे—

“दुविहे काले पणत्ते” इत्यादि ॥ १८ ॥

वस्तु जेना द्वारा नवीनपुनी थती लागे छे, तेनु नाम काण छे. अथवा  
कलननु (कालुषु) नाम काण छे अथवा समयादि रूप कलाओनु नाम काण छे.  
तेकाण वर्तनादि रूप होय छे आ कथनने लावार्थं छे छे के काण निश्चय अने  
व्यवहारनी अपेक्षाओ जे प्रकारने छे वर्तनादि रूप काणने निश्चयकाण, अने  
घंटादि रूप काणने व्यवहार काण कडे छे कहु पणु छे के—

“द्व्व परिवदृख्वो” इत्यादि आ काण उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणीना  
वेदथी जे प्रकारने कही छे. महाविदेह क्षेत्रमां सदा चतुर्थं काण न अवस्थित  
(विद्यमान) रहै छे, तथा भोगभूमिओमां तृतीयादि काण अवस्थित रहै छे.

મોક્ષઃ । ‘ દુષિદ્દે આગાસે ’ इत्यादि-आकाशन्ते-दीप्यन्ते स्य स्वधर्मोपिता जीषा  
 ह्य पदार्था यत्र तद् आकाशम् । यद्वा-भासमन्तात् काशन्ते-दीप्यन्ते सर्वा  
 ष्यपि द्रव्याणि व्यवस्थिततया यत्रेति-आकाशम् । अथवा-आ-मर्यादयान्तस्त  
 योगेऽपि स्वकीयस्वकीयरूपेऽवस्थानतः सर्वथा तत्स्वरूपत्वाप्राप्तिलक्षणया काशन्ते-  
 स्वभावलाभेनावस्थितिकारणेन च दीप्यन्ते पदार्थसार्वा यत्र तद् आकाशम् । अत्र  
 गाहदानाद्वा आकाशम् ‘ नहं आगाह लक्षण ’ इति वचनात्, लोकाशोकव्याप्य

મી યહાં દિસ્થાન કે અનુરોધ સે દો પ્રકાર કા હી કાલ કહા ગયા હૈ ।

“ દુષિદ્દે આગાસે ” इत्यादि ।

અપને ૨ ગુણપર્વાયરૂપ ધર્મ સે યુક્ત જીવાદિક પદાર્થ જહાં પ્રકાશિત  
 હોતે રહતે હૈં વહ આકાશ હૈ અથવા-સમસ્ત દ્રવ્ય વ્યવસ્થિતરૂપસે જહાં  
 પર વિષમ્બાન રહતે હૈં એક દ્રવ્ય જહાં દુસરે દ્રવ્યરૂપ નહીં હોતા હૈં હસકા  
 નામ આકાશ હૈ અથવા-જહાં અપને ૨ સ્વરૂપ મેં પ્રત્યેક પદાર્થ રહતા  
 હૈ એક દુસરે કે સાથ સંયોગ હોને પર મી જો એક દુસરે કે સ્વરૂપ મેં  
 નહીં વદલતા હૈ-એસે સ્થાન કા નામ આકાશ હૈ અથવા-જો સમસ્ત  
 જીવાદિક દ્રવ્યોં કો રહને કે લિપે સ્થાન દેતા હૈ વહ આકાશ હૈ ।

उक्त च—“ अवगासदाण जोगं ” इत्यादि ।

“ નહં આગાહ લક્ષણ ” यह आकाश वह द्रव्य है जो लोक और  
 अलोकमें व्याप्त होकर है तथा जिसके अनन्तप्रवेश हैं और जो अमूर्त है यह  
 लोकाकाश और अलोकाकाश के भेद से दो प्रकार का है आकाश के

આ રીતે બે કાળો સિવાય એક સદા અવસ્થિતરૂપ કાળ પણ હોય છે, છતાં પણ અહીં  
 બે સ્થાનના અનુરોધની અપેક્ષાએ કાળના બે પ્રકાર ને કહેવામાં આવ્યા છે

“ દુષિદ્દે આગાસે ” इत्यादि. પોતપોતાના સુષુપ્તમાં રૂપ ધમથી મુક્ત  
 અવાદિક પદાર્થો અ્યાં પ્રકાશિત રહે છે તે સ્થાનનું નામ આકાશ છે અથવા  
 સમસ્ત દ્રવ્ય અવસ્થિત રૂપે અ્યાં મોજુદ રહે છે, એક દ્રવ્ય અ્યાં અન્ય  
 દ્ર વોરૂપ હોતું નથી તે સ્થાનને આકાશ કહે છે અથવા અ્યાં પ્રત્યેક પદાર્થ  
 પોતપોતાના સ્વરૂપે રહે છે એક બીજાની સાથે સંયોગ થવા છતાં પણ બે  
 એક બીજાના સ્વરૂપમાં બદલાતા નથી, એવા સ્થાનનું નામ આકાશ છે અથવા  
 બે સમસ્ત અવેને રહેવાને માટે સ્થાન હે છે તેને આકાશ કહે છે. કહું પણ  
 છે કે-‘ અવગાસદાણ જોગ ” इत्यादि.

“ નહં આગાહ લક્ષણ ” આ આકાશ એવું દ્રવ્ય છે કે જે લોક અને અલોકમાં  
 વ્યાપ્ત છે તેના અનન્ત પ્રવેશ છે અને તે અમૂર્ત છે તેના બે ભેદ છે-(૧)

नन्तप्रदेशात्मकोऽमूर्त्तद्रव्यविशेष इत्यर्थः । तद् द्विविधम्—लोकाकाशम्, अलोकाकाशं चेति । तत्र लोकाकाशम् = धर्माधर्मकालपुद्गलजन्तूनामाधारभूतम् । तद्विपरीतम्—अलोकाकाशमिति ॥ सू० १८ ॥

लोकालोकभेदेनाकाशद्वैविध्यं प्रोक्तम् । लोकस्तु शरीरशरीरिणां सर्वथाऽऽधारभूत इति नारकादिशरीरिदण्डकेन तच्छरीरप्ररूपणामाह—

मूलम्—णैरइयाणं दो सरीरगा पणत्ता, तं जहा--अवभं-तरगे चैव बाहिरगे चैव । अवभंतरए कम्मए, बाहिरए वेउव्विए । एवं देवाणं भाणियव्वं । पुढविक्खाइयाणं दो सरीरगा पणत्ता, तं जहा--अवभंतरगे चैव बाहिरगे चैव । अवभंतरगे कम्मए बाहिरगे ओरालियगे, जाव वणस्सइकाइयाणं । वेइंदियाणं दो सरीरा पणत्ता, तं जहा--अवभंतरए चैव, बाहिरए चैव । अवभं-तरगे कम्मए, अट्टिमंससोणियवद्धे बाहिरए ओरालिए जाव चउरिंदियाणं । पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं दो सरीरगा पणत्ता, तं जहा--अवभंतरगे चैव बाहिरगे चैव, अवभंतरगे कम्मए, अट्टिमंससोणियण्हारुछिरावद्धे बाहिरए ओरालिए । मणुस्सा-णवि एवं चैव । विग्गहगइसमावन्नगाणं नेरइयाणं दो सरीरगा पणत्ता, तं जहा—तेयए चैव कम्मए चैव, निरंतरं जाव वेमाणियाणं । नेरइयाणं दोहिं ठाणेहिं सरीरूपत्ती सिया, तं जहा--रागेण चैव दोसेण चैव जाव वेमाणियाणं । नेरइयाणं दुट्टाणनिव्वत्तिए सरीरगे पणत्ते तं जहा--रागनिव्वत्तिए चैव,

जितने भाग में धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव रहते हैं—इन द्रव्यों का जो आधारभूत है—वह लोकाकाश है और इस लोकाकाश से भिन्न जो आकाश है वह अलोकाकाश है ॥सू० १८॥

लोकाकाश अने (२) अलोकाकाश. आकाशना जेटला लागमां धर्म, अधर्म, काण, पुद्गल अने एव रडे छे—जेटलु आकाश आ द्रव्योतुं आश्रयस्थान छे, जेटला आकाशने लोकाकाश कडे छे. लोकाकाशथी लिन्न एवुं जे आकाश छे तेने अलोकाकाश कडे छे. ॥ सू० १८ ॥

दोसनिवृत्तिश्चैव, जाव वेमाणियाणं । दो काया पण्णत्ता त  
जहा-तसकाए चैव थावरकाए चैव । तसकाए तुविहे पण्णत्ते त  
जहा भवसिद्धिश्चैव अभवसिद्धिश्चैव । एव थावरकाए वि ॥१९॥

छाया-नैरयिकाणां द्वे शरीरे प्रहृष्टे, तद्यथा आम्पन्तरकं चैव बाह्यकं चैव । आम्प  
तरककर्मकम्, बाह्यक वैकिपम् । एवं देशानामपि मणित्थप्यम् । पृथिवीकायिकानां  
द्वे शरीरे प्रहृष्टे, तद्यथा-आम्पन्तरकं चैव बाह्यकं चैव । आम्पन्तरकं कर्मक, बाह्य  
मौदारिकम्, यावत् धनस्पतिकायिकानाम् । द्रीन्द्रियाणां द्वे शरीरे प्रहृष्टे, तद्यथा-  
आम्पन्तरकं चैव बाह्यकं चैव । आम्पन्तरकं कर्मकम्, अस्विसांसशोणित्वदं  
बाह्यकमौदारिकम्, यावद् घ्नुरिन्द्रियाणाम् । पञ्चेन्द्रियतिर्यग्गोणिकानां द्वे शरीरे  
प्रहृष्टे, तद्यथा-आम्पन्तरकं चैव बाह्यकं चैव । आम्पन्तरकं कर्मकम्, अस्विसांस  
शोणित्वस्नायुञ्जिरावद् बाह्यकमौदारिकम् । मनुष्याणामप्येवमेव । विग्रहगतिसमाप  
कानां नैरयिकाणां द्वे शरीरे प्रहृष्टे, तद्यथा-तैजस्कं चैव कर्मकं चैव, निरन्तरं  
यावद् वैमानिकानाम् । नैरयिकाणां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां शरीरोत्पत्तिः स्यात्,  
तद्यथा-रागेण चैव द्वेषेण चैव यावद् वैमानिकानाम् । नैरयिकाणां द्विस्थाननिर्द  
ष्टिकं शरीरकं मत्त, तद्यथा-रामनिर्दष्टिकं चैव, द्वेषनिवृत्तं चैव । यावद् वैमा  
निकानाम् । द्वौ कायौ प्रहृष्टौ तद्यथा प्रसक्तायश्चैव स्थावरकायश्चैव, प्रसक्ताय  
द्विविधः प्रहृष्टः तद्यथा — भवसिद्धिरश्चैव, अभवसिद्धिरश्चैव । एव स्थावर  
कायोऽपि ॥ सू० १९ ॥

टीका—‘नैरहयाग’ इत्यादि ।

नैरयिकाणां द्वे शरीरे भवतः-आम्पन्तरं बाह्यं च । शीर्यते-प्रतिष्ठय विवरय

शोक और अशोक के मेद से आकाश में द्विविधता का कथन  
करके अथ सूत्रकार शरीर और शरीर घालों का आचारमूल दोष शोक  
है इम प्रसङ्ग को लेकर नारकादि शरीरिदण्डक द्वारा उनके शरीरों की  
प्रकृषणा करते हैं-“नैरहयाणं दो शरीरगा पण्णत्ता” इत्यादि ॥१८॥

टीकाय-नैरयिक जीवोंके दो शरीर होते हैं एक आम्पन्तर शरीर और

दोः अने अशोकना श्रेष्ठी आकाशमां द्विविधतानुं कथन करीने हवे  
शरीर अने शरीरवागाना आधारमूल के शेरश्रीक छे, तेनुं हवे सूत्रकार नार  
कादि शरीर इडके द्वारा निरपणु करे छे

“नैरहयाण दो शरीरगा पण्णत्ता” इत्यादि ॥ १८ ॥

टीकाय-नारक श्रेष्ठीनां वे शरीर दोः छे (१) आम्पन्तर शरीर अने

तीतिशरीरं शटनपतनादिधर्मवत्त्वात् । आभ्यन्तरे=अन्तराले भवम् आभ्यन्तरम् । आभ्यन्तरत्वं चारयात्मप्रदेशैः सह क्षीरनीरन्यायेन लोलीभूतत्वात्, भवान्तरगमनेऽपि च जीवस्यानुगतिप्राधान्येनापवरकाद्यन्तः प्रविष्टपुरुषत्रच्छन्नस्थाऽप्रत्यक्षत्वान्चेति । तथा-वह्निर्भत्रं वाह्यम् । वाह्यत्वं चास्य जीवप्रदेशैः सह कस्यापि केषुचिदवयवेषु व्याप्त्यभावात्, भवान्तरानुगामितया छन्नस्थम्यापि प्रायः प्रत्यक्षत्वान्चेति । तत्राभ्यन्तरं कर्मरुम् कर्मणशरीरनामकर्मोदयनिर्वर्त्यं कर्मवर्गणास्वरूपं, संसारिजीवानां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकत्वमं, सकलकर्मणामङ्कुरभूमिरूपम्, अशे-

दूसरा वाह्य शरीर “ शीर्यते प्रतिक्षणं इति शरीरम् ” इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रतिक्षण जिसका विनाश होता रहता है उसका नाम शरीर है यह शरीर शटनादि धर्मवाला है अन्तराल में भी जो शरीर जीव के साथ रहता है उसका नाम आभ्यन्तर शरीर है ऐसा वह आभ्यन्तर शरीर तैजस कर्मणरूप होता है तैजस कर्मण शरीर को आभ्यान्तर शरीर कहने का यह प्रयोजन है कि ये दोनों शरीर आत्म प्रदेशों के साथ क्षीरनीर की तरह लोलीभूत ( मिले हुए ) बने हुए रहते हैं तथा जीव जब भवान्तर में गमन करता है तब भी ये उसके साथ जाते हैं जब तक जीव को मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है तब तक ये उस का साथ नहीं छोड़ते हैं तथा अपवरक ( छोटा घर ) आदि के भीतर प्रविष्ट हुए पुरुष की तरह ये छन्नस्थजनोंको अप्रत्यक्ष रहते हैं वाह्य जो शरीर है वह जीव प्रदेशों के साथ कितनेक अवयवों में व्याप्त होकर नहीं रहता है तथा भवान्तर में जीव के साथ नहीं जाता है और छन्नस्थ जनोंको वह प्रत्यक्ष दिखलाह पड़ता है ।

आह्यशरीर. “शीर्यते प्रतिक्षणं इति शरीरम्” आ व्युत्पत्ति अनुसार जेना प्रति क्षण विनाश थतो रडे छे ते शरीर कडेवाय छे. ते शरीर शटनादि ( सडुं, गणतुं वजेरे ) धर्मोथी युक्त छे अन्तरालमां पणु जे शरीर लवनी साथे रडे छे ते शरीरतु नाम आभ्यन्तर शरीर छे जेवुं ते आभ्यन्तर शरीर तैजस अने कार्मणरूप छे तैजस अने कार्मण शरीरने आभ्यन्तर शरीर कडे- वातुं जे कारण छे ते अने शरीर आत्मप्रदेशोनी साथे क्षीरनीरनी जेम आतप्रेत थधने रडे छे तथा लव ज्यारे अन्य लवमां गमन करे छे, त्यारे पणु तेजो तेनी साथे जाय छे. ज्यां सुधी लवने मुक्ति भजती नथी त्यां सुधी आ शरीर तेना साथ छोडतां नथी, तथा अपवरक (नातुं घर) आदिनी अदर प्रविष्ट थयेता पुरुषनी जेम तेजो छन्नस्थजनेने देखाता नथी जे आह्य शरीर छे ते लवप्रदेशोनी साथे केटलांक अवयवोमां व्याप्त थधने रडेनुं नथी, तथा अन्य लवमां लवनी साथे जतुं नथी अने छन्नस्थ लवोने ते प्रत्यक्ष देखाय छे.

दोसनिवृत्तिश्च चेश, जाव वेमाणियाणं । दो काया पण्णत्ता त  
जहा-तसकाए चेश थावरकाए चेश । तसकाए दुविहे पण्णत्ते त  
जहा भवसिद्धिश्च चेश अभवसिद्धिश्च चेश । एव थावरकाए वि ॥१९॥

छाया-नैरयिकाणां द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा आम्बन्तरकं चैव बाह्यकं चैव । आम्ब  
तरकं कर्मकम्, बाह्यकं वैक्रियम् । एवं देवानामपि मणितम्बम् । पृथिवीकायिकाणां  
द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा-आम्बन्तरकं चैव बाह्यकं चैव । आम्बन्तरकं कर्मकं, बाह्य  
मौदारिकम्, यावत् वनस्पतिकायिकानाम् । द्वान्द्वियाणाम् द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा-  
आम्बन्तरकं चैव बाह्यकं चैव । आम्बन्तरकं कर्मकम्, अस्विमांसश्लोणितपद  
बाह्यकमौदारिकम्, यावद् चतुरिन्द्रियाणाम् । पञ्चेन्द्रियवर्षिण्युणिकानां द्वे शरीरे  
प्रज्ञप्ते, तद्यथा-आम्बन्तरकं चैव बाह्यकं चैव । आम्बन्तरकं कर्मकम्, अस्विमांस  
श्लोणितस्नायुशिरावद् बाह्यकमौदारिकम् । मनुष्यागामप्येवमेव । विघ्नहृगदिसमाप  
लकानां नैरयिकाणां द्वे शरीरे प्रज्ञप्ते, तद्यथा-तैनस्कं चैव कर्मकं चैव, निरन्तरं  
यावद् वैमानिकानाम् । नैरयिकाणां द्वाभ्यां स्यानाभ्यां शरीरोत्पत्तिं स्यात्,  
तद्यथा-रागेण चैव द्वेषेण चैव यावद् वैमानिकानाम् । नैरयिकाणां द्विस्थाननिर्द्वि  
त्तिकं शरीरकं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-रागनिर्द्वितिकं चैव, द्वेषनिवृत्तं चैव । यावद् वैमा  
निकानाम् । द्वौ कार्यौ प्रज्ञप्तौ तद्यथा प्रसफापश्चैव स्थावरकापश्चैव, प्रसफाया  
द्विविधं प्रज्ञप्तं तद्यथा — मत्रसिद्धिश्चैव, अभवसिद्धिश्चैव । एवं स्वारर  
कापोऽपि ॥ सू० १९ ॥

टीका—' नैरइयाग ' इत्यादि ।

नैरयिकाणां द्वे शरीरे भवतः-आम्बन्तरं बाह्यं च । क्षीर्यते-प्रतिक्षणं चिनश्य

लोक और अलोक के भेद से आकाश में द्विविधता का फलन  
करके अथ सूत्रकार शरीर और शरीर वालों का आधारभूत क्षेत्र लोक  
है इस प्रसङ्ग को लेकर नारकादि शरीरिदण्डक द्वारा उनके शरीरों की  
प्ररूपणा करते हैं—“ नैरइयाणं दो शरीरगा पण्णत्ता ” इत्यादि ॥१८॥

टीकाप-नैरयिक जीवोंके दो शरीर होते हैं एक आम्बन्तर शरीर और

दोऽऽने अवेकना सेवधी आकाशमां द्विविधत्वात् कथं शरीने द्वे  
शरीरे अने शरीरवागाना आधारभूत न्ने शेत्रदोऽऽ उ तेजुं द्वे सूत्रकार नार  
कादि शरीर दण्डके द्वारा निरूपण करे छे

“ नैरइयाणं दो शरीरगा पण्णत्ता ” इत्यादि ॥ १८ ॥

टीकाप-नारक सुवेलां न शरीर दोऽऽ उ (१) आम्बन्तर शरीर अने

तीतिगरीं शटनपतनादिधर्मवत्त्वात् । आभ्यन्तरे=अन्तराले भवम् आभ्यन्तरम् । आभ्यन्तरत्वं चास्यात्मप्रदेशैः सह क्षीरनीरन्यावेन लोलीभूतत्वात्, भवान्तरगमनेऽपि च जीवस्यानुगतिभावान्येनापत्तरकाद्यन्तः प्रविष्टपुरुषवन्नस्थोऽप्रत्यक्षत्वाच्चेति । तथा-वर्हिर्भवं वाह्यम् । वाह्यत्वं चास्य जीवप्रदेशैः सह कस्यापि केषुचिदवयवेषु व्याप्त्यभावात्, भवान्तराननुगामितया छन्नस्थस्यापि प्रायः प्रत्यक्षत्वाच्चेति । तत्राभ्यन्तरं कर्मकम् कर्मणशरीरनामकर्मोदयंनिर्वच्यं कर्मवर्गणास्वरूपं, संसारिजीवानां गत्यन्तरसंक्रमणे साधकतमं, सकलकर्मणामङ्कुरभूमिरूपम्, अशे-

दूसरा वाह्य शरीर “ शीर्यते प्रतिक्षणं इति शरीरम् ” इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रतिक्षण जिसका विनाश होता रहता है उसका नाम शरीर है यह शरीर शटनादि धर्मवाला है अन्तराल में भी जो शरीर जीव के साथ रहता है उसका नाम आभ्यन्तर शरीर है ऐसा वह आभ्यन्तर शरीर तैजस कर्मणरूप होता है तैजस कर्मण शरीर को आभ्यान्तर शरीर कहने का यह प्रयोजन है कि ये दोनों शरीर आत्म प्रदेशों के साथ क्षीरनीर की तरह लोलीभूत (मिळे हुए) बने हुए रहते हैं तथा जीव जब भवान्तर में गमन करता है तब भी ये उसके साथ जाते हैं जब तक जीव को मुक्ति की प्राप्ति नहीं होनी है तब तक ये उस का साथ नहीं छोड़ते हैं तथा अपवरक (छोटा घर) आदि के भीतर प्रविष्ट हुए पुरुष की तरह ये छन्नस्थजनोंको अप्रत्यक्ष रहते हैं वाह्य जो शरीर है वह जीव प्रदेशों के साथ कितनेक अवयवों में व्याप्त होकर नहीं रहता है तथा भवान्तर में जीव के साथ नहीं जाता है और छन्नस्थ जनोंको वह प्रत्यक्ष दिखलाइ पड़ता है ।

आह्यशरीर. “शीर्यते प्रतिक्षणं इति शरीरम्” आ व्युत्पत्ति अनुसार जेना प्रति क्षण विनाश थतो रडे छे ते शरीर कडेवाय छे. ते शरीर शटनादि (सउतुं, गणतुं वगेरे) धर्मोथी युक्त छे अन्तरालमां पण जे शरीर एवनी साथे रडे छे ते शरीरतु नाम आभ्यन्तर शरीर छे. जेतुं ते आभ्यन्तर शरीर तैजस अने कर्मणरूप छाय छे तैजस अने कर्मण शरीरने आभ्यन्तर शरीर कडेवानु जे कारण छे के ते अन्ने शरीर आत्मप्रदेशोनी साथे क्षीरनीरनी जेम आतप्रात थधने रडे छे तथा एव न्यारे अन्य लवमां गमन करे छे, त्यारे पण तेजो तेनी साथे नय छे. न्यां सुधी एवने मुक्ति भणती नथी त्यां सुधी आ शरीरे तेना साथ छेउतां नथी, तथा अपवरक (नानुं घर) आदिनी अदर प्रविष्ट थयेवा पुरुषनी जेम तेजो छन्नस्थजनेने देभाता नथी जे आह्य शरीर छे ते एवप्रदेशोनी साथे केटलांक अवयवोमां व्याप्त थधने रडेतुं नथी, तथा अन्य लवमां एवनी साथे जतुं नथी अने छन्नस्थ एवने ते प्रत्यक्ष देभाय छे.



पकर्माधारभूत चेति । ननु तैजसमपि शरीरमाभ्यन्तरमस्तीति तत्कथं भोक्तम् ? इति चेदाह—कर्मकण्डहणे तैजसमपि गृहीतमेव तयोः मदैव सद्धारित्वात् । तथा वाह्यं च वैक्रियकम् । एवम्—मवनरत्यादि वैमानिकान्तानां देवानामपि भणितव्यम् । 'पृथ्वी' स्यादि—पृथिवीकायिकादारभ्य वनस्पतिपर्यन्तानां पक्षस्थापरा

र्शका—यहां सूत्र में आभ्यन्तर शरीरकर्मण शरीर ही गृहीत हुआ फिर अपने तैजस शरीरको आभ्यन्तरशरीररूप से कैसे ग्रहण किया है ?

उ०—तैजस और कर्मण शरीर का सम्बन्ध प्रत्येक संसारी जीव के साथ अनादिकाल से चला आ रहा है अतः ये सदा से ही सद्धारि हैं । इसलिये यहाँ कर्मण के ग्रहण होनेसे तैजस का भी ग्रहण हो गया है यह आभ्यन्तररूप कर्मण शरीर नाम कर्म के उदय से जीव को प्राप्त होता है अतः यह कर्म वर्गणा रूप है अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का जो समूह है वही कर्मण शरीर है यह शरीर संसारी जीवों का जप एक गति से दूसरी गति में गमन होना है अतः सावकमम होता है

तथा—सकलकर्मों को उत्पन्न होने के लिये यह भूमिरूप है और अक्षेपकर्मों का यह आधारभूत है नैरयिक जीवों के बाह्यशरीर वैक्रिय शरीर है इसी तरह का कपन भवनपति से लेकर वैमानिक तक के जीवों में नी कर लेना चाहिये "पृथ्वीकाह्वयार्ण" इत्यादि—पृथिवीकायिक से लेकर वनस्पति कायिक तक के जीवों के—पांच स्थावर

श. ३१—अर्द्धं सूत्रमां कामणु शरीरने च आभ्यन्तर शरीर इपि प्रदक्षु करवामां आभ्यु छे छतां आये तैजस शरीरने आभ्यन्तर शरीर इपि केम प्रदक्षु क्मुं छे ?

उत्तर—तैजस अने कामणु शरीरने स लभे प्रत्येक संसारी लुचनी साथे अनादि कालधी बाध्यो आवे छे, ते कारणे तेजो कायमना प्रदक्षारी छे ते कारणे अर्द्धं कामणुनी साथे तैजस शरीरने पक्षु प्रदक्षु करवामां आभ्यु छे आभ्यन्तर इपि कामणु शरीर नाम कामना उदयधी लुचने तेनी प्राप्ति थाय छे तेधी कामवगणा इपि छे ज्येते के ज्ञानावरणीय आदि कर्मने ने समूह छे, जेन कामणु शरीर छे आ शरीर अपारे संसारी लुचोतुं जेक अतिमाधी नील अतिमां जगन थाय छे त्तारे तेमां सावकतम होय छे तथा—सकल कर्मोना उत्पत्त यवामां ते भूमिइपि रक्षे छे अने अक्षेप कर्मोना आधाररूप होय छे नैरयिक लुचोतुं बाह्य शरीर वैक्रिय शरीर होय छे आ प्रक्षरतुं अथन भवनपतिधी लुचने वैमानिक पक्षन्तना लुचोमां पक्षु प्रदक्षु करवुं जेपंजे "पृथ्वीकाह्वयार्ण" इत्यादि—

णाम् आभ्यन्तरबाह्यभेदेन शरीरद्वयं भवति । तदेवाह - आभ्यन्तरं कार्मकम्, बाह्यं चौदारिकं शरीरं भवति, औदारिकं नाम-मौदारिकशरीरनामकर्मोदयादुदार-पुद्गलनिर्वृत्तम् । एकेन्द्रियाणामौदारिकशरीरं केवलमभ्यादिविरहितं भवति । वायूनां वैक्रियशरीरमपि भवति किन्त्वत्र न विवक्षितं प्रायिकत्वात् । 'वेडंदिमाणं' इत्यादि-द्वीन्द्रियाणां तदेव शरीरद्वयं भवति आभ्यन्तरं-कार्मकम्, बाह्यमौदारिकं चेति । एवमौदारिकशरीरम्-अस्थिमांसशोणितवद्धम् । एव त्रिन्द्रिय चतुरिन्द्रियाणामपि बोध्यम् । 'पंचिदिये' त्यादि-पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां शरीरद्वयम् आभ्य-

जीवों के-आभ्यन्तर और बाह्यशरीर के भेद से दो शरीर होते हैं आभ्यन्तर शरीर तो तैजसकार्मण होते हैं तथा बाह्यशरीर औदारिक-शरीर होता है । यह औदारिक शरीर औदारिकशरीरनामकर्म के उदय से होता है इस शरीर को उत्पन्न करने वाले जो औदारिक पुद्गल हैं वे स्थूलाकार से परिणत होते हैं । एकेन्द्रिय जीवों का यह औदारिक शरीर केवल अस्थि आदि से रहित होता है वायुकायिक जीवों के वैक्रिय शरीर भी होता है फिर भी वह यहां प्रायिक होने से विवक्षित नहीं हुआ है "वेडंदिमाणं" इत्यादि-दो इन्द्रिय जीवों के भी शरीरद्वय होते हैं-एक आभ्यन्तर शरीर और दूसरा बाह्यशरीर आभ्यन्तर शरीरसे कार्म-णशरीर होता है और बाह्य शरीर में औदारिक शरीर होता है यहां जो औदारिक शरीर होता है वह अस्थि मांस और शोणित से बद्ध-युक्त होता है इसी तरह से तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों के भी

पृथ्वीकायथी लघने वनस्पतिकाय पर्यन्तना लवोने-पांच स्थावर लवोने आभ्यन्तर अने बाह्यशरीरना लेदथी जे शरीरे डोय छे आभ्यन्तर शरीर तो तैजस अने कार्मण्य शरीर रुप डोय छे अने बाह्यशरीर औदारिक शरीर रुप डोय छे, आ औदारिक शरीर औदारिक शरीरनामकर्मना उदयथी प्राप्त थाय छे, आ शरीरने उत्पन्न करनारा जे औदारिक पुद्गलो डोय छे, तेओ स्थूलाकारे परिणत थाय छे, एकेन्द्रिय लवोतुं आ औदारिक शरीर केवण अस्थि आदिथी रहित डोय छे, वायुकायिक लवोने वैक्रिय शरीर पणु डोय छे, छतां पणु ते त्यां प्रायिक (क्यारेक) डोय छे, तेथी अर्द्धी तेना उल्लेख थयो नथी.

"वेडंदिमाणं" इत्यादि-द्वीन्द्रिय लवोने पणु जे शरीर डोय छे-(१) आभ्यन्तर अने (२) बाह्य आभ्यन्तर शरीर कार्मण्य शरीर रुप अने बाह्य शरीर औदारिक शरीर रुप डोय छे अर्द्धी जे औदारिक शरीर डोय छे ते अस्थि, मांस अने शोणितथी मद्ध (युक्त) डोय छे, ओज प्रमाणे तेइन्द्रिय

वर्कमापारभूत चेति । ननु तैजसमपि शरीरमाभ्यन्तरमस्तीति वक्तव्यं नोक्तम् ? इति चेदाह—कर्मकग्रहणे तैजसमपि गृहीतमेव तयो सदैव सहचारित्वात् । तथा चाह च वैक्रियकम् । एवम्—वनस्पत्यादि वैमानिकान्तानां देवानामपि भणितव्यम् । 'पृथ्वी' स्यादि—पृथिवीकायिकादारभ्य वनस्पतिपर्यन्तानां पदस्थापरा

र्शिका—यहां सूत्र में आभ्यन्तर शरीरकर्मण शरीर ही गृहीत हुआ फिर अपने तैजस शरीरको आभ्यन्तरशरीररूप से कैसे ग्रहण किया है ?

उ०—तैजस और कर्मण शरीर का सम्बन्ध प्रत्येक संसारी जीव के साथ अनादिकाल से बला आरहा है अतः ये सदा से ही सहचारी हैं । इसलिए यहाँ कर्मण के ग्रहण होनेसे तैजस का भी ग्रहण हो गया है यह आभ्यन्तररूप कर्मण शरीर नाम कर्म के उदय से जीव को प्राप्त होता है अतः यह कर्म वर्गणा रूप है अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का जो समूह है वही कर्मण शरीर है यह शरीर संसारी जीवों का जब एक गति से दूसरी गति में गमन होना है तबमें साधकतम होता है

तथा—सकलकर्मों को उत्पन्न होने के लिये यह भूमिरूप है और अशेषकर्मों का यह आधारभूत है नैरयिक जीवों के बाह्यशरीर वैक्रिय शरीर है इसी तरह का कथन भवनपति से लेकर वैमानिक तक के जीवों में की कर लेना चाहिये, "पृथ्वीकाहयाण" इत्यादि—पृथिवीकायिक से लेकर वनस्पति कायिक तक के जीवों के—पाष स्यावर

श. ३१—अर्द्धा सूत्रमां कामणु शरीरने च आभ्यन्तर शरीर इपे अदृश्य करवामां आभ्यु छे छत्तां आपे तैजस शरीरने आभ्यन्तर शरीर इपे केम अदृश्य कमुं छे ?

उत्तर—तैजस अने कामणु शरीरने स अर्थ प्रत्येक संसारी लुवनी साथे अनादि कालधी आभ्ये आवे छे, ते काल्हे तेजो काममना अद्वन्द्वारी छे ते काल्हे अर्द्धा कामणुनी साथे तैजस शरीरने पणु अदृश्य करवामां आभ्यु छे आभ्यन्तर इपे कामणु शरीर नाम कामना उदयधी लुवने तेनी प्राप्ति घाष छे तेथी काममज्जा इपे छे अर्द्धे के ज्ञानावरणीय आदि कर्मने ले समूह छे जेव कामणु शरीर छे आ शरीर अपारे संसारी लुवोनु जेव गतिमाधी नील गतिमां गमन घाष छे, त्तारे तेमां साधकतम होय छे तथा—सकल कर्मोना उत्पन्न यवामां ते भूमिरूप रह्ये छे अने अशेष कर्मोना आधाररूप होय छे नैरयिक लुवोनु बाह्य शरीर वैक्रिय शरीर होय छे आ प्रकृत भवन भवनपतिधी अर्द्धने वैमानिक परन्तन्त लुवोमां पणु अदृश्य करवुं जेधज्जे. "पृथ्वीकाहयाण" इत्यादि—

અસુરકુમારેભ્ય આરમ્ય યાત્રદ્ વૈમાનિકાનાં તૈજસં કાર્મકં ચેતિ શરીરદ્વયં ભવતિ ।  
 'નેરહ્યાણં' ઇત્યાદિ-નેરયિકાણાં દ્વાર્ષ્યાં સ્થાનાભ્યાં શરીરોત્પત્તિર્ભવતિ-રાગેણ  
 દ્વેષેણ ચેતિ । એવં યાત્રદ્ વૈમાનિકાનામ્ । 'નેરહ્યાણં' ઇત્યાદિ-નેરયિકાણાં  
 દ્વિસ્થાનનિર્વર્તિતં શરીરં ભવતિ-રાગનિર્વર્તિતં દ્વેપનિર્વર્તિતં ચેતિ । એવં યાત્રદ્ વૈમા-  
 નિકાનામ્ । 'દો કાયા' ઇત્યાદિ-દ્વૌ કાયૌ પ્રજ્ઞપ્તૌ-ત્રસકાયઃ સ્થાવરકાયશ્ચેતિ ।  
 તત્ર ત્રમનામકર્મોદયાત્ ત્રસ્યન્તીતિ ત્રસાઃ, તેપાં કાયઃ=રાશિસૂત્રસકાયઃ । સ્થાવર-  
 નામકર્મોદયાત્ તિષ્ઠન્તીત્યેવં શીલાઃ સ્થાવરાઃ, તેપાં કાયઃ=સમૂહઃ સ્થાવર-  
 કાયઃ । 'તસકાણ' ઇત્યાદિ-ત્રસકાયો દ્વિવિધઃ-ભવસિદ્ધિકઃ અભવસિદ્ધિક-  
 શ્ચેતિ । એવં સ્થાવરકાયોડપિ ॥ સૂં ૧૯ ॥

और दूसरा कार्मणशरीर इसी तरह से विग्रहगति समापन्नक भवनपति  
 से लेकर वैमानिक तक के जीवों को भी ये दो ही-तैजस और कार्मण  
 शरीर ही होते हैं "नेरह्याणं दोहिं ठाणेहिं" इत्यादि-नैरयिक जीवों  
 के शरीर की उत्पत्ति दो स्थानों द्वारा होती है एक राग के द्वारा और  
 दूसरे द्वेष के द्वारा इसी तरह से शरीरोत्पत्ति के विषय का कथन वैमा-  
 निक तक के जीवों का भी कर लेना चाहिये काय दो प्रकार कहा गया  
 है एक त्रसकाय और दूसरा स्थावरकाय त्रसनामकर्म के उदय से जो  
 अपनी इच्छा से चलते फिरते हैं डरते हैं भागते हैं वे सब त्रसजीव हैं  
 इनकी जो राशि है वह त्रसकाय है स्थावर नामकर्म के उदय से जो एक  
 स्थान से दूसरे स्थान पर आ जा नहीं सकते हैं एक ही जगह स्थिर  
 रहते हैं वे स्थावर हैं इन स्थावरों का जो समूह है वह स्थावरकाय है

કાર્મણુ એજ પ્રમાણુ વિગ્રહગતિ સમાપન્નક ભવનપતિથી લઇને વૈમાનિક પર્ય-  
 ન્તના ઇવોમા પણુ એ એ શરીરનો જ (તૈજસ અને કાર્મણુ શરીરનો જ)  
 સદ્ભાવ હોય છે.

"નેરહ્યાણ દોહિં ઠાણેહિં" ઇત્યાદિ-નારક ઇવોના શરીરની ઉત્પત્તિ  
 એ સ્થાનો (કારણો) દ્વારા થાય છે-(૧) રાગદ્વારા અને (૨) દ્વેષદ્વારા. શરીરો-  
 ત્પત્તિને અનુલક્ષીને વૈમાનિક પર્યન્તના ઇવો વિષે પણુ આ પ્રકારનુ કથન  
 થયું જોઈએ. કાયના એ પ્રકાર છે-(૧) ત્રસકાય અને (૨) સ્થાવરકાય. ત્રસ  
 નામકર્મના ઉદયથી એ પોતાની ઈચ્છાથી ડરે કરે છે, ડરે છે અને ભાગે છે,  
 તે ઇવોને ત્રસ ઇવો કહે છે. એવાં ઇવોની રાશિ (સમૂહ) ને ત્રસકાય  
 કહે છે. સ્થાવર નામકર્મના ઉદયથી એ ઇવો એક જગ્યાએથી બીજી જગ્યા  
 નહીં શકતા નથી, પણુ એક જ જગ્યાએ સ્થિર રહે છે, એવાં ઇવોને સ્થાવર

ન્ટર કાર્મકમ્ , યાદ્ય વૌદારિકમ્ । યત્-અસ્થિમાંસજ્ઞોણિઠસ્નાયુચ્ચિરાશ્ચ મવતિ ।  
 તત્ર સ્નાયુ -અસ્થિવપની નાહી । યિતા તુ સામાન્યા । ઇષં મનુષ્યાણામપિ ।  
 ' ચિગ્ગહૃગ્' ' ઇત્યાદિ-ચિગ્ગહૃગ્, ઉત્તમચાનાગતિ' -ચિગ્ગહૃગતિઃ, તત્સમાપન્નાતી  
 નૈરયિકાણા શરીરદ્વયં મવતિ-તૈમસ કાર્મક ચેતિ । ઇષં નિરન્ટરમ્-અમ્યવરિઠમ્ ।

આમ્યન્ટર ઓર યાદ્ય યે દો શરીર હોતે હું આમ્યન્ટર મેં કાર્મણ શરીર  
 હોતા હૈ ઓર યાદ્ય મેં ઔદારિક શરીર હોતા હૈ યહા પર મી ઔદારિક  
 શરીર અસ્થિ માસ ઓર ઘોણિત સે યદ્વ હોતા હૈ " પંચિદિય " ઇત્યાદિ  
 -જો પચ્ચેત્રિય તિર્યચ્ચ હૈ ઠનકે મી આમ્યન્ટર ઓર યાદ્ય શરીર હોતે  
 હું આમ્યન્ટર મેં કાર્મણ શરીર ઓર યાદ્ય મેં ઔદારિક શરીર હોતા હૈ  
 યહાં પર મી ઔદારિક શરીર અસ્થિ, માસ, ઘોણિત, સ્નાયુ ઓર  
 શિરાઓં સે યદ્વ હોતા હૈ અસ્થિયોં કો યાગને યાલી જો માહી હૈ યદ્  
 સ્નાયુ કહ્લાતી હૈ તથા સામાન્ય જો પીલી ૨ નસેં હોતી હૈ યે શિરા  
 કહ્લાતી હૈ " મણુસ્સા વિ ઇવ ચેવ " મનુષ્ય કે મી ઇસી તરહ સે દો  
 શરીર હોતે હૈ " ચિગ્ગહૃ " ચિગ્ગહૃગતિ મોઢે સદિત જો પરમ્ય કે લિયે  
 જીવ કી ગતિ હોતી હૈ ડસકા નામ ચિગ્ગહૃગતિ હૈ અથવા નયીન શરીર  
 ધારણ કરને કે લિયે જો ગતિ હોતી હૈ યદ્ ચિગ્ગહૃગતિ હૈ-ઇસ ચિગ્ગહૃ  
 ગતિ સમાપણક નૈરયિકોં કે દો હી શરીર હોતે હૈ ઇક તૈજસ શરીર

અને મનુરિન્દ્રિય એવામાં પણ આમ્યન્ટર અને બાહ્ય શરીરનો સરભાગ હોય  
 છે ત્યાં આમ્યન્ટર શરીર કામણુ શરીર રૂપ અને બાહ્ય શરીર ઔદારિક  
 શરીરરૂપ હોય છે તેમજ ઔદારિક શરીર પણ અસ્થિ, માંસ અને શોણિતથી બદ  
 (સુષ્ટા) હોય છે પંચિદિય ઇત્યાદિ-પચ્ચેત્રિય તિર્યચ્ચિને પણ આમ્યન્ટર અને  
 બાહ્યશરીર હોય છે આમ્યન્ટર શરીર કામણુશરીરરૂપ અને બાહ્ય શરીર ઔદા  
 રિક શરીર રૂપ હોય છે અહીં પણ ઔદારિક શરીર અસ્થિ, માંસ, શોણિત,  
 સ્નાયુઓ અને શિરાઓથી બદ્દ હોય છે અસ્થિઓને બાંધનારી ને નાહી  
 હોય છે તેને સ્નાયુ કહે છે તથા સામાન્ય ને પીળી પીળી નસો હોય છે  
 તેને શિરાઓ કહે છે " મણુસ્સા વિ ઇવ ચેવ " મનુષ્યોમાં પણ એજ પ્રકારના  
 બે શરીરો હોય છે

' ચિગ્ગહૃ ' ઇત્યાદિ-પરભવમાં પ્રમન કરતી વખતે એવની ને મોહ  
 સહિતની (વળકે સુષ્ટા) અતિ ઘાથ છે તેને વિગ્ગહૃગતિ કહે છે અથવા નયીન  
 શરીર ધારણ કરવાને માટે ને અતિ ઘાથ છે તેને વિગ્ગહૃગતિ કહે છે આ  
 વિગ્ગહૃગતિ સમાપણક નૈરયિકોને એજ શરીર હોય છે-(૧) તૈજસ અને (૨)

असुरकुमारेभ्य आरभ्य यावद् वैमानिकानां तैजसं कार्मकं चेति शरीरद्वयं भवति ।  
 'नेरइयाणं' इत्यादि-नैरयिकाणां द्वाभ्यां स्थानाभ्यां शरीरोत्पत्तिर्भवति-रागेण  
 द्वेषेण चेति । एवं यावद् वैमानिकानाम् । 'नेरइयाणं' इत्यादि-नैरयिकाणां  
 द्विस्थाननिर्वर्तितं शरीरं भवति-रागनिर्वर्तितं द्वेषनिर्वर्तितं चेति । एवं यावद् वैमा-  
 निकानाम् । 'दो काया' इत्यादि-द्वौ कायौ प्रज्ञप्तौ-त्रसकायः स्थावरकायश्चेति ।  
 तत्र त्रसनामकर्मोदयात् त्रस्यन्तीति त्रसाः, तेषां कायः=राशिस्रसकायः । स्थावर-  
 नामकर्मोदयात् तिष्ठन्तीत्येवं शीलाः स्थावराः, तेषां कायः=समूहः स्थावर-  
 कायः । 'तसकाए' इत्यादि-त्रसकायो द्विविधः-भवसिद्धिकः अभवसिद्धिक-  
 श्चेति । एवं स्थावरकायोऽपि ॥ सू० १९ ॥

और दूसरा कार्मणशरीर इसी तरह से विग्रहगति समापन्नक भवनपति  
 से लेकर वैमानिक तक के जीवों को भी ये दो ही-तैजस और कार्मण  
 शरीर ही होते हैं "नेरइयाणं दोहिं ठाणेहिं" इत्यादि-नैरयिक जीवों  
 के शरीर की उत्पत्ति दो स्थानों द्वारा होती है एक राग के द्वारा और  
 दूसरे द्वेष के द्वारा इसी तरह से शरीरोत्पत्ति के विषय का कथन वैमा-  
 निक तक के जीवों का भी कर लेना चाहिये काय दो प्रकार कहा गया  
 है एक त्रसकाय और दूसरा स्थावरकाय त्रसनामकर्म के उदय से जो  
 अपनी इच्छा से चलते फिरते हैं डरते हैं भागते हैं वे सब त्रसजीव हैं  
 इनकी जो राशि है वह त्रसकाय है स्थावर नामकर्म के उदय से जो एक  
 स्थान से दूसरे स्थान पर आ जा नहीं सकते हैं एक ही जगह स्थिर  
 रहते हैं वे स्थावर हैं इन स्थावरों का जो समूह है वह स्थावरकाय है

कार्मण्यु. अत्र प्रमाणे विग्रहगति समापन्नक भवनपतिथी लघने वैमानिक पर्य-  
 न्तना एवेमां पण्यु अ ए शरीरने न (तैजस अने कार्मण्यु शरीरने न)  
 सङ्भाव डाय छे.

"नेरइयाण दोहिं ठाणेहिं" इत्यादि-नारक एवेना शरीरनी उत्पत्ति  
 ए स्थाने (कारण्यु) द्वारा थाय छे-(१) रागद्वारा अने (२) द्वेषद्वारा. शरीरो-  
 त्पत्तिने अनुलक्षिने वैमानिक पर्यन्तना एवे विषे पण्यु आ प्रकारनु कथन  
 थवुं नोष्ठये. कायना ए प्रकार छे-(१) त्रसकाय अने (२) स्थावरकाय त्रस  
 नामकर्मना उदयथी ए चोतानी ध्विगथी डरे डरे छे, डरे छे अने भागे छे,  
 ते एवेने त्रस एवे कडे छे. एवा एवेनी राशि (समूह) ने त्रसकाय  
 कडे छे. स्थावर नामकर्मना उदयथी ए एवे अक न्य्याअथी भील न्य्या  
 नर्ध शकता नथी, पण्यु अक न न्य्याअे स्थिर रहे छे, एवां एवेने स्थावर

उक्ता मध्यशरीरिण, अथ मध्यविशेषाणां यद् यथा कर्तुंमुचितं तथा मोच्यते-  
 मूलम्—दो दिसाओ अभिगिज्ज कप्पइ णिगंधाणं वा  
 णिगंधीणं वा पढ्वावित्तए, त जहा पाईणं चेष उदीणं चेष ।  
 एव मुढावित्तए, सिक्खावित्तए, उवढ्वावित्तए, संभुजित्तए, सुव  
 सित्तए, सज्झायमुद्दिसित्तए सज्झाय समुद्दिसित्तए, सज्झायम  
 णुजाणित्तए, आलोइत्तए, पाडिकमित्तए, निंदित्तए, गराहित्तए,  
 विउट्टित्तए, विसोहित्तए, अकरणयाए अब्भुट्टित्तए, अहारिह  
 पायच्छित्त तत्रोकम्म पडिक्खित्तए । दो दिसाओ अभिगिज्ज  
 कप्पइ णिगंधाणं वा णिगंधीणं वा अपच्छिममारणंतियसंले  
 हणासुसणासुसियाण भत्तपाणपडियाइक्खियाण पाओवगयाण  
 काल अणवकखमाण्णाणं विहरित्तए, त जहा—पाईणं चेष  
 उदीणं चेष ॥ सू० २० ॥

॥ विद्याणस्त पढमो उद्देसओ समत्तो ॥ २१ ॥

छाया—द्वे दिक्षे अभिगृह्य कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा प्रमाजपितुं-  
 तपया—प्राचीनां चैव, उदीचीनां चैव, । एष गृह्यपितु शिष्ययितुम्, उपस्थापयितुं,  
 संमोक्षयितुं, स वासयितुं, स्वाध्यायपट्टेरेणुं स्वाध्याय सट्टेरेणुं, स्वाध्यायमनुष्ठातुम्,  
 आलोचयितुं, प्रविक्रमिह निन्दितुं गदितुं, विवर्षयितुं ( विप्रोदयितुं, विदुष्यितुं  
 वा ) विप्रोषयितुं, मकरणतयाऽभ्युत्थातुं, यथाई प्रायश्चित्तं तपः कर्मप्रतिपद्युम् ।  
 द्वे दिक्षे अभिगृह्य कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा अथभिममारणान्तिकसले  
 तनाओयणांज्जितानां भक्तपानमरयासयातानां शदयोयगतानां कालमनवक्खोसठां  
 विहसुं, तपया—प्राचीनां चैव उदीचीनां चैव ॥ सू० २० ॥

॥ द्विस्थानस्य प्रथम उद्देशकः समाप्तः ॥

इनमें अमकाय दो प्रकार का कहा गया है—एक भवसिद्धिक और दूसरा  
 भवसिद्धिक स्थावरकाय को भी इसी तरह से जानना चाहिये ॥ १० ॥

उपेक्षा समुहने स्थावरकाय के छे छे प्रसङ्गाना के प्रकार कथा छे—(१) अथ  
 सिद्धिक अने (२) अथसिद्धिक स्थावरकायना पञ्च ज्येवां के छेद समकथा. सू. १६

टीका—' दो दिसाओ ' इत्यादि—

द्वे दिशे अभिगृह्य=अद्भीकृत्य तदभिमुखी भूयेत्यर्थः, निर्ग्रन्थानां निर्ग्रन्थीनां वा द्रव्यभावपरिग्रहरहितानां कल्पते प्रव्राजयितुं-सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणादिदानेन प्रव्रज्यां सावद्य-विरतिरूपां दातुं, ग्रहीतुं वा । के ते द्वे दिशे ? इत्याह-तद्यथा-प्राचीनां-प्राचीं पूर्वादिशमित्यर्थः, तथा उदीचीनाम्-उदीचीम् उत्तरां दिशमित्यर्थः । एवम्-अमुना प्रकारेण मुण्डयितुम्, मुण्डनं द्रव्यभावभेदेन द्विविधम्, तत्र-द्रव्यतः केशाद्यपनयनेन, भावतः ऋषायापनयनेन । शिक्षयितुं=ग्रहणशिक्षापेक्षया सूत्रार्थो ग्राहयितुम्, आसेवनशिक्षापेक्षया प्रतिलेखनादिक्रियामासेवयितुं=

भव्य जीवों का कथन करके अब भव्यविशेषों को जो कर्तव्य उचित है उसका सूत्रकार कथन करते हैं—

“ दो दिसाओ अभिगिज्ज ” इत्यादि ॥ २० ॥

टीकार्थ—दो दिशाओंकी तरफ मुँह करके द्रव्यपरिग्रह और भावपरिग्रहसे रहित निर्ग्रन्थों को तथा निर्ग्रन्थिनियों को सदोरक मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि चिह्नवाली सावद्यविरतिरूप प्रव्रज्या लेना अथवा देना योग्य है वे दो दिशाएँ हैं—एक पूर्वदिशा और दूसरी उदीची दिशा इसी प्रकार इन्हीं दो दिशाओं की ओर मुँह करके द्रव्यभावरूप से मुण्डित होना योग्य है केशादिकों का लुञ्चन करना यह द्रव्यमुण्डन है और कषायों का अपनयन (दूर) करना यह भावमुण्डन है इसी प्रकार पूर्व और उत्तरदिशाकी ओर मुँह करके शिष्यजनों को ग्रहण शिक्षा की अपेक्षा सूत्र और अर्थ को सिखलाना योग्य है तथा आसेवनशिक्षा की अपेक्षा प्रतिलेखनादि

लव्यण्येन कथन करीने डवे सूत्रकार लव्यविशेषाना उचित कर्तव्यनी प्रपञ्चा करे छे—“ दो दिसाओ अभिगिज्ज ” इत्यादि ॥ २० ॥

टीकार्थ—जे दिशाओंनी तरफ मुभ करीने, द्रव्यपरिग्रह अने लावपरिग्रहधी रहित जेवा निर्ग्रन्थे (साधुज्ये) अने निर्ग्रन्थिनियोंजे (साध्वीज्येज्ये) सदोरक मुण्डपत्ती, रजोहरण आदि चिह्नवाणी सावद्य विरति रूप प्रव्रज्या लेवी अथवा देवी ते योग्य छे. ते जे दिशाज्ये आ प्रमाणे छे—(१) प्राची (पूर्व) अने (२) उदीची (उत्तर). जेज जे दिशा तरफ मुभ करीने द्रव्यभाव रूपे मुण्डित यवुं योग्य छे. केशादिहोना लुञ्चनने द्रव्यमुण्डन कह्ये छे. अने कषायोने दूर करवा तेनुं नाम लावमुण्डन छे. जेज प्रमाणे पूर्व अने उत्तर दिशा तरफ मुभ करीने शिष्योने अडधुशिक्षानी अपेक्षाजे सूत्र अने अर्थ शिष्यववा जे पञ्च योग्य छे, अने आसेवनशिक्षानी अपेक्षाजे प्रतिलेखनादि क्रियाज्ये करवी,



उक्ता मध्यञ्जरीणि , अप मध्यविशेषाणां यद् यथा कर्तुंशुचित्त तथा मोक्षपते-  
 मूलम्-दो दिसामो अभिगिज्ज कप्पइ णिग्गंधाणं वा  
 णिग्गंधीणं वा पव्वावित्तए, त जहा पाईणं चेव उदीणं चेव ।  
 एव सुढावित्तए, सिक्खावित्तए, उवढावित्तए, सभुजित्तए, सव  
 सित्तए, सज्झायमुद्दिसित्तए सज्झाय समुद्दिसित्तए, सज्झायम  
 णुर्जाणित्तए, आलोइत्तए, पाटिकमित्तए, निंदित्तए, गरहित्तए,  
 विउट्टित्तए, विसोड्डित्तए, अकरणयाए अम्भुट्टित्तए, अहारिह  
 पायच्छित्त तन्नोकम्म पडिधज्जित्तए । दो दिसामो अभिगिज्ज  
 कप्पइ णिग्गंधाणं वा णिग्गंधीणं वा अपच्छिममारणांतियसले  
 हणाद्धसणाद्धसियाण भत्तपाणपडियाइक्खियाण पाओत्रगयाण  
 काल अणवकखमाण्णाणं विहरित्तए, त जहा-पाईणं चेव  
 उदीणं चेव ॥ सू० २० ॥

॥ विट्ठाणस्स पडमो उद्देसओ समत्तो ॥ २१ ॥

छाया-द्वे दिशे अभिष्टम् कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा मवाप्रयित्तु-  
 तथया-माधीनां चैव, उदीचीनां चैव, । एवं मुण्डपित्तु शिपयित्तुम्, उपस्यापफिट्तु  
 संमोमयित्तु, सवासपित्तु, स्वाध्यापमुरेष्टु स्वाध्यायं समुपेष्टु, स्वाध्यायमनुज्ञातुम्,  
 आलोचयित्तु, प्रतिक्रमित्तु निन्दित्तुं गर्हित्तुं, विवर्षयित्तु ( विप्रोटयित्तुं, विड्डयित्तु  
 वा ) विप्रोषयित्तुं, अकरणतयाऽम्भुत्वात्, यथार्थं प्रायश्चित्तं तप कर्ममतिपपुम् ।  
 द्वे दिशे अभिष्टम् कल्पते निर्ग्रन्थानां वा निर्ग्रन्थीनां वा अपभिममारणान्दिकसले-  
 स्सनाओपणाज्जित्तानां भक्कपानप्ररयाकपातानां पादपोपगतानां काळमनवकांसत्तां  
 विहत्तुं, तथया-माधीनां चैव उदीचीनां चैव ॥ सू० २० ॥

॥ द्विस्यानस्य प्रथम उद्देशकः समाप्तः ॥

इनमें असकाय दो प्रकार का कहा गया है-एक भवसिद्धिक और दूसरा  
 अभवसिद्धिक स्थावरकाय को भी इसी तरह से जानना चाहिये ॥ १९ ॥

श्यानाहसूत्रे अध्याय ३४ के ३ प्रश्नानां मे प्रश्न ३४ के (१) अथ  
 सिद्धिकान्ते (२) अभवसिद्धिके स्थावरकायना पद्य जेवा ७ मे के ६ समकथा ५, १६



पाठयितुमित्यर्थः । उपस्थापयितु=महाव्रतादिषु समारोपयितुम् । समोच्चयितु=समोगिमुनिमण्डलीषु निवेशयितुम् । स वासयितु=संस्तारकमण्डलपासुपवेशयितुम् । तथा-स्वाध्याय-सु=सुष्ठु आ=मर्यादया अधीयते इति स्वाध्याय=आचाराद्वादि रागमः तम् उद्देश्यम्=उपदेश्यु पाठयितुमित्यर्थः । स्वाध्यायं समुद्देश्यु-‘पूर्वपठितं स्थिरपरिचितं कुरु’ इत्यादिरूपेण कथयितुम् । स्वाध्यायम् अनुष्ठातु-‘स्वयमवधारय, अन्यमप्यन्वापय’ इत्यादि कथयितुम् । आम्बोचयितुं-गुरुसमीपे स्वाविचारप्रकाशयितुम् । प्रतिक्रमिषु-पापाभिवर्धयितु-शुभयोगादशुभयोगे संक्रमणे सति पुनः शुभयोगे समागन्तुमित्यर्थः । निन्दितु-स्वसमसमप्रतिचारान् जुगुप्सितुम् । गर्हितु=गुरुसमक्ष तानेषु जुगुप्सितुम् । विवर्धयितुम्-अतिचारान् विच्छेदयितुम् । विशोषयितुम्-प्रतिचारमभिनमात्मानं निर्मलीकर्षुम् । अकरणतयाऽभ्युत्थ्यातु-‘पुनरेवं न करिष्यामि’ इत्यकरणमाधित्याभ्युपगन्तुम् । यथाई=यथायोग्यं

क्रियाओं का करना महाव्रतदिकों में आत्मा को समारोपित करना समोगिमुनिमण्डली में अपने आपको प्रविष्ट कराना आचाराद्वादि भागमों का उपदेश करना पढाना “पढ़िले पढे हुए को अच्छी तरह से समझ लो” इत्यादि रूप से कहना “इसका स्वयं निश्चय करलो दूसरों को इसे पढाओ इत्यादि रूप से कहना गुरु के समीप अपने अतिचारों को प्रकाशित करना, पाप से अपने को हटाना अर्थात् शुभयोग से अशुभयोग में संक्रमण होने पर पुनः शुभयोग में आना, अपने समय ही अपने अतिचारों की निन्दा करना उनसे ग्लानि करना, गुरु के समक्ष उनकी निन्दा करना उनसे ग्लानि करना, अतिचारों का विच्छेद काना अतिचारों से मलिन हुई आत्मा को निर्मल करमा अथ पुनः मैं ऐसा नहीं करूँगा इस तरह अकरण रूप से स्वीकार करना तथा यथायोग्य

महाव्रतादिङ्गमां आत्माने समावेशितं कर्त्वे, स योगि मुनिमण्डलीमां ध्यातानां प्रवेशं कर्त्वावे, अध्यायान् आदि आश्रयानां उपदेशं कर्त्वे, पढावतु-“पढेवां शीघ्रैवा तत्त्वाने सारी शीते समस्तु वा” इत्यादि रूपे कहेतुं “आ ध्यातानां जते च निश्चयं कर्त्तुं वा नीचने आ कथ्यावे” इत्यादि रूपे कहेतुं, शुरुनी पास ध्यातानां अतिचाराने प्रकटं कर्त्वा पापभी ध्यातानां आत्माने इर शजवे अट्टे इ शुभ योगार्थां अशुभ योगार्थं स कथय याव त्पारे कर्त्तुं शुभ योगार्थं आशीं कर्त्तुं, ध्यातानीं समक्षं च ध्यातानां अतिचारानीं निंदां कर्त्तुं, तेने शरद्वे मनमां ज्ञानि वरी, शुरुनी समक्षं ते अतिचारानीं निंदां कर्त्तुं, तेने भाटे ज्ञानि कर्त्तुं अतिचाराने विच्छेदं कर्त्वे, अतिचारानीं मलिनं यथैवा आत्माने निमज्जं कर्त्वे, उवे कर्त्तुं नदीं कर्त्तुं, आ प्रकाशना

પ્રાયશ્ચિત્ત=પાપવિશુદ્ધિરૂપં તપઃ કર્મ=અનશનાદિકં પ્રતિપત્તું=સ્વીકૃત્તુમ્ । ‘દો-  
 દિસાઓ’ ઇત્યાદિ-દ્વે દિશે અભિગૃહ્ય કલ્પતે નિર્ગ્રન્થાનાં વા નિર્ગ્રન્થીનાં વા । કીટ-  
 શાનામ્ ? ઇત્યાહ-‘અપચ્છિમે’ ત્યાદિ-અપશ્ચિમમારણાન્તિકસંલેખનાજોષણાજોષિ-  
 તાનામ્, તત્ર ન વિદ્યતે પશ્ચિમા અસ્યા ઇત્યપશ્ચિમા=અન્તિમા, સા ચાસૌ-મારણા-  
 ન્તિકી=મરણકાલભાવિની સંલેખના-સંલિખ્યતે=કૃશીક્રિયતે શરીરકપાયાદિ યયા  
 સા તથોક્તા તપોવિશેષલક્ષણા ચેતિ અપશ્ચિમમારણાન્તિકસંલેખના, તમ્યા  
 જોષણા=સેવના, તયા જોષિતાનાં=સેવિતાનાં યુક્તાનામિત્યર્થઃ । યદ્વા-જોષિતાનાં=  
 ક્ષપિતાનાં ક્ષપિતદેહાનામિત્યર્થઃ । પુનઃ-ભક્તપાનપ્રત્યાખ્યાતાનામ્-ભક્તપાને  
 પ્રત્યાખ્યાતે ચૈસ્તે તથા, ક્લાન્તસ્ય પરનિપાત આર્પત્વાત્, ભક્તપાનપ્રત્યાખ્યાનવ-  
 ત્તામિત્યર્થઃ । પાદપોષગતાનાં=પાદપોષગમનમરણમાશ્રિતાનાં-સ્વીકૃતમર્વથાપરિસ્પ-

પ્રાયશ્ચિત્ત-પાપ કી વિશુદ્ધિરૂપ અનશનાદિ તપકર્મ ગ્રહણ કરના-યે સ્વ  
 કાર્ય બી હન્હોં દો દિશાઓં કી ઓર સુંહ કરકે કરના શ્રમણ નિર્ગ્ર-  
 ન્થિયોં કો કલ્પિત કહા ગયા હૈ

“દો દિસાઓ” ઇત્યાદિ-શરીર ઓર કપાય આદિ જિસ સે કૃશ  
 ક્રિયે જાતે હૈં વસકા નામ સંલેખના હૈ યહ સંલેખના મરણકાલ કે  
 સમય મેં હી ધારણ કી જાતી હૈ ઇસીલિયે ઇસે અપશ્ચિમ કહા હૈ યહ  
 તપવિશેષરૂપ હોતી હૈ, ઇસ સંલેખના સે જો મુનિજન યુક્ત હૈ અથવા-  
 હન્હોંને ઇસ સંલેખના કો ધારણ કરને દ્વારા અપને શરીર કો ક્ષપિત  
 ક્રિયા હૈ ભક્તપાન કા જિન્હોંને પ્રત્યાખ્યાન કર દિયા હૈ પાદપોષગમન  
 સંથારા કો જિસ સંથારા મેં પતિત પાદપવૃક્ષ કી તરહ શરીર કી સેવા  
 સંભાલ હિલના ડુલના આદિરૂપ ક્રિયા સર્વથા વર્જિત હો જાતી હૈ એસે

અતિચારો નહી કરવાને દૃઢનિશ્ચયી થવું, તથા તેને માટે યોગ્ય પ્રાયશ્ચિત્તને  
 પાપની વિશુદ્ધિરૂપ અનશનાદિને-ગ્રહણ કરવા, આ બધાં કાર્યો પણ તે જ  
 દિશા તરફ મુખ કરીને કરવાનું સાધુઓને કહેવું છે.

“દો દિસાઓ” ઇત્યાદિ-શરીર અને કપાયાદિ જેના દ્વારા કૃશ કરાય  
 છે તે ક્રિયાને સંલેખના ( સંથારો ) કહે છે તે સંથારો મરણકાળ નજીક હોય  
 ત્યારે જ ધારણ કરવામાં આવે છે, તે કારણે તેને ‘અપશ્ચિમ’ કહે છે. તે  
 સંથારો તપવિશેષ રૂપ હોય છે આ સંથારાથી જે મુનિ યુક્ત હોય અથવા  
 જેણે આ સંથારો ધારણ કરીને પોતાના શરીરને ક્ષપિત કર્યું છે, ભક્તપાનના  
 જેણે પ્રત્યાખ્યાન કર્યા છે, પદપોષગમન સંથારાને જેમણે ગ્રહણ કરેલો છે  
 ( જે સંથારામાં પતિત પાદપ-વૃક્ષની જેમ શરીરની સેવા-સંભાળ, હલનચલન  
 આદિ રૂપ ક્રિયા બિલકુલ બંધ કરી દેવામાં આવે છે એવા સંથારાને પાદપો-

पाठयितुमिर्यर्थः । उपस्थापयितुं=महाव्रतारिषु समारोपयितुम् । समोपयितुं=समोगिमुनिमण्डलीषु निवसयितुम् । स वासयितुं=स स्तारकमण्डर्यासुपवेशयितुम् । तथा-स्वाध्याय-सु=मुष्टु आ=मर्यादया अर्थायते इति स्वाध्याय.=आधाराद्वादि रागम तम् उद्देश्यम्=उपदेश्यु पाठयितुमिर्यर्थः । स्वाध्याय समुद्देश्यं-‘ पूर्वपठितं स्तिरपगिचितं कुरु ’ इत्यादिरूपण कथयितुम् । स्वाध्यायम् अनुश्रावु-‘ स्वयमवधारय, अन्यमप्यध्यापय ’ इत्यादि कथयितुम् । आश्लेषयितुं=गुरुसमीपे स्वातिथार मरुसयितुम् । प्रतिक्रमिषु-पापाशिवर्षयितु-शुभयोगादशुभयोगे सक्रमणे सति पुनः शुभयोगे समागन्तुमित्यर्थः । निन्दितु-स्वसमसमतिथारान् जुगुप्सितुम् । गर्हितु=गुरुसमस तानेव जुगुप्सितुम् । विवर्षयितुम्-अतिचारान् विच्छेदयितुम् । विज्ञोषयितुम्-प्रतिषारमस्त्रिमास्मानं निर्मलीकृतुम् । अकरणतयाऽभ्युत्थानु-‘ पुनरेव न करिष्यामि ’ इत्यकरणमाधित्वाभ्युपगन्तुम् । यथाई=यथाचार्य

मियाओं का करना महाव्रतारिकों में आत्मा को समारोपित करना समोगिमुनिमण्डली में अपने आपको प्रविष्ट कराना आधाराद्वादि आगनों का उपदेश करना पढ़ाना “ पहिले पढे हुए को अच्छी तरह से समझ लो ” इत्यादि रूप से कहना “ इसका स्वयं निश्चय करलो दूसरों को इसे पढाओ इत्यादि रूप से कहना गुरु के समीप अपने अतिचारों को प्रकाशित करना, पाप से अपने को छटाना अर्थात् शुभयोग से अशुभयोग में सक्रमण होने पर पुनः शुभयोग में आना, अपने समस ही अपने अतिचारों की निन्दा करना उनसे ग्लानि करना, गुरु के समस उनकी निन्दा करना उनसे ग्लानि करना, अतिचारों का विच्छेद करना अतिचारों से मलिन हुई आत्मा को निर्मल करना आप पुनः में ऐसा नहीं करूंगा इस तरह अकरण रूप से स्वीकार करना तथा यथायोग्य

महाव्रतारिकों में आत्माने समारोपित करवे, समोगि मुनिमण्डली में आत्माने प्रवेश करवावे, आध्यात्म आदि आत्मधर्मों का उपदेश देवे, पढ़ावतुं-‘ पढेता शीजेता तन्नेने सारी शीते सम ७ वे। ’ इत्यादि रूप से कहेतुं ‘ आ ज्ञानने एने न निश्चय करी वे। जीनने आ ज्ञावे। ’ इत्यादि रूप से कहेतुं, गुरु की धर्म पढ़ाना अनिच्छासे प्रशंसा करवा, पापधर्म पढ़ाना आत्माने इस शब्ध से कहेतुं के शुभ योगधर्मों अशुभ योगधर्मों सक्रमण पाप त्याग करीके शुभ योगधर्मों आधी जतुं पढ़ाना समस न पढ़ाना अनिच्छासे नीटा करी, तने भावे मनधा ग्लानि करी, गुरु की समस ते अनिच्छासे नीटा करी, तने भावे शान्ति करी अनिच्छासे विच्छेद करवे। अतिचारों की प्रतिन कथना आत्माने निमत्र करवे, तने करीके तं कहेतुं नहीं है, आ प्रशान्त

પ્રાયશ્ચિત્ત=પાપવિશુદ્ધિરૂપ તપઃ કર્મ=અનજનાદિકં પ્રતિપત્તું=સ્ત્રીકૃત્તુમ્ । ‘દો દિસાઓ’ ઇત્યાદિ-દ્વે દિશે અભિગૃહ્ય કલ્પતે નિર્ગ્રન્થાનાં વા નિર્ગ્રન્થીનાં વા । કોઈ-જ્ઞાનામ્ ’ ઇત્યાદિ-‘ અપશ્ચિમે ’ ત્યાદિ-અપશ્ચિમમારણાન્તિકસંલેખનાજોપણાજોપિ-તાનામ્, તત્ર ન વિદ્યતે પશ્ચિમા અસ્યા ઇત્યપશ્ચિમા=અન્તિમા, સા ચાસૌ-મારણા-ન્તિકી=મરણકાલભાવિની સંલેખના-સંલિખ્યતે=કૃશીક્રિયતે શરીરકપાયાદિ યયા સા તથોક્તા તપોવિશેષલક્ષણા ચેતિ અપશ્ચિમમારણાન્તિકમંલેખના, તમ્યા જોપણા=સેવના, તયા જોપિતાનાં=સેવિતાનાં યુક્તાનામિત્યર્થઃ । યદ્વા-જોપિતાનાં=ક્ષપિતાનાં ક્ષપિતદેહાનામિત્યર્થઃ । પુનઃ-ભક્તપાનપ્રત્યાખ્યાતાનામ્-ભક્તપાને પ્રત્યાખ્યાતે ચૈસ્તે તથા, ક્લાન્તસ્ય પરનિપાત આર્પત્વાત્, ભક્તપાનપ્રત્યાખ્યાનવ-તામિત્યર્થઃ । પાદપોષગતાનાં=પાદપોષગમનમરણમાશ્રિતાનાં-સ્ત્રીકૃતમર્થયાપરિસ્પ-

પ્રાયશ્ચિત્ત-પાપની વિશુદ્ધિરૂપ અનજનાદિ તપકર્મ ગ્રહણ કરના-યે સ્વ કાર્યે સ્ત્રી ઇન્દ્રિયો કો કલ્પિત કહા ગયા હૈ

“દો દિસાઓ” ઇત્યાદિ-શરીર ઓર કપાય આદિ જિસ સે કૃશ ક્રિયે જાતે હૈં ઉસકા નામ સંલેખના હૈં યહ સંલેખના મરણકાલ કે સમય મેં હી ધારણ કી જાતી હૈં હસીલિયે ઇસે અપશ્ચિમ કહા હૈં યહ તપવિશેષરૂપ હોતી હૈં, ઇસ સંલેખના સે જો મુનિજન યુક્ત હૈં અથવા-ઇન્દ્રિયે ઇસ સંલેખના કો ધારણ કરને દ્વારા અપને શરીર કો ક્ષપિત ક્રિયા હૈં ભક્તપાન કા જિન્દ્રિયે પ્રત્યાખ્યાન કર દિયા હૈં પાદપોષગમન સંધારા કો જિસ સંધારા મેં પતિત પાદપવૃક્ષ કી તરહ શરીર કી સેવા સંભાલ હિલના ડુલના આદિરૂપ ક્રિયા સર્વથા વર્જિત હો જાતી હૈં એસે

અતિચારો નહી કરવાને દૃઢનિશ્ચયી થવું, તથા તેને માટે યોગ્ય પ્રાયશ્ચિત્તને પાપની વિશુદ્ધિરૂપ અનજનાદિને-અકલ્પ કરવા, આ બધાં કાર્યો પણ તે બે દિશા તરફ મુખ કરીને કરવાનું સાધુઓને કહેવે છે.

“દો દિસાઓ” ઇત્યાદિ-શરીર અને કપાયાદિ જેના દ્વારા કૃશ કરાય છે તે ક્રિયાને સંલેખના ( સંધારો ) કહે છે તે સંધારો મરણકાળ નજીક હોય ત્યારે જ ધારણ કરવામાં આવે છે, તે કારણે તેને ‘અપશ્ચિમ’ કહે છે. તે સંધારો તપવિશેષ રૂપ હોય છે આ સંધારાથી જે મુનિ યુક્ત હોય અથવા જેણે આ સંધારો ધારણ કરીને પોતાના શરીરને ક્ષપિત કર્યું છે, ભક્તપાનના જેણે પ્રત્યાખ્યાન કર્યા છે, પાદપોષગમન સંધારાને જેમણે અકલ્પ કરેલો છે ( જે સંધારામાં પતિત પાદપ-વૃક્ષની જેમ શરીરની સેવા-સંભાળ, ડુલનચલન આદિ રૂપ ક્રિયા બિલકુલ બંધ કરી દેવામાં આવે છે એવા સંધારાને પાદપો-



## अथ द्वितीयस्थानस्य द्वितीयोद्देशकः ॥

अनन्तरोद्देशके द्वित्वविशिष्टा जीवाजीवधर्माः प्रोक्ताः, द्वितीयोद्देशके तु द्वित्वविशिष्टा एव जीवधर्माः प्रोच्यन्ते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्योद्देशकस्येद-  
मादिसूत्रम्-प्रथमोद्देशकान्तिमसूत्रेणास्यायमभिसम्बन्धः-प्रथमोद्देशकान्त्यसूत्रे पाद-  
पोपगमनमभिहित, तेन च केषाञ्चिद् देवत्व भवतीति देवविशेषप्रतिपादनेन तेषां  
कर्मबन्धं तद्वेदनं च प्रतिपादयन्नाह—

मूलम्-जे देवा उड्ढोववन्नगा कप्पोववन्नगा विमाणोवव-  
न्नगा चारोववन्नगा चारट्टिइया गइरइया गइसमावन्नगा,  
तेसिणं देवाणं सया समियं जे पावे कम्ममे कज्जहू तत्थगयावि  
एगइया वेयणं वेयेति, अन्नत्थगयावि एगइया वेयणं वेयेति ।

### द्वितीयस्थानका द्वितीय उद्देशक

अनन्तर उद्देशकमें द्वित्वविशिष्ट जीव धर्मों और अजीव धर्मों के विषय में कथन किया गया है, अब इस द्वितीय उद्देशकमें केवल द्वित्व विशिष्ट ही जीव धर्मों का कथन किया जाता है, इसी सम्बन्ध को लेकर इस द्वितीय उद्देशक को प्रारंभ किया गया है प्रथम उद्देशक के अन्तिम सूत्रमें पादपोपगमन संथारोंका कथन आया है सो इस संथारे को धारण करके सरने वाले कितनेक मुनिजनों कोदेवत्वपद प्राप्त होता है अतः देव विशेषों का प्रतिपादन और उनके कर्मबन्ध एवं उनके वेदन का प्रतिपादन यहाँ सर्वप्रथम किया जाता है

“जे देवा उड्ढोववन्नगा कप्पोववन्नगा” इत्यादि ॥२१॥

### द्वितीयस्थानने। द्वितीय उद्देशक

पडैला उद्देशकमां द्विविधता युक्त लुवधर्मो अने अलुवधर्मोनुं कथन करवामां आव्युं छे आ भील उद्देशकमां मात्र द्विविधता युक्त न लुवधर्मोनुं कथन करवामां आवे छे आ सभंधने अनुलक्षिने आ भील उद्देशकने प्रारंभ करवामां आव्ये छे—

पडैला उद्देशकना अतिम सूत्रमा पादपोपगमन संथाराने उल्लेख थये छे. ते संथाराने धारण करीने काणधर्म पामनार डेटलाक मुनिज्जोने देवत्वनी प्राप्ति थाय छे. आ सभंधने अनुलक्षिने अर्ही देवविशेषोनु प्रतिपादन करवामां आवे छे अने तेमना कर्मबन्ध अने तेमना वेदननु अर्ही सर्व प्रथम प्रतिपादन करवामा आवे छे—“जे देवा उड्ढोववन्नगा कप्पोववन्नगा” इत्यादि



न्यर्जितमरणविशेषाभामित्यर्थः । पुन-फासं=मृत्युम् अनपकादस्तताम्=अनमिल-  
पता मरणेऽनुत्सुकानामित्यर्थः, विहर्षु=स्यात् 'कल्पवे' इति पूर्वैण सम्बन्धः ।  
तदेव दिग्द्वयमाह-'वजहे' स्यादि, वषया-भाषीनां वा उद्गीचीनां चेति ॥ सू० २० ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-भगदवच्छम-प्रसिद्धपाचक-यशदक्षमापाकल्लि  
लभितकलापालापक-प्रविशुद्धगणपचनेकग्रन्थनिर्मापक-वादिमा-  
नमर्दक श्रीशाहूछमपति कोन्दापुरराममदक 'जैनशास्त्राचार्यपद  
भूषित-कोन्दापुररामगुरु भास्त्रग्रन्थधारि जैनाचार्य-जैनधर्म-  
दिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालप्रतिविरचितार्था  
स्थानाङ्गसूत्रस्य सुभास्यायां व्याख्यायाम्  
द्वितीयस्थानस्य प्रथमोद्देशक समाप्तः ॥ २-१ ॥

मरणविशेष को जिन्होंने धारण किया है और जो मृत्यु के अनमिलायी  
बने हुए हैं ऐसे मुनिजनों को दिशाओं की-पूर्व और उत्तर दिशा की  
ओर झुंझ करके रहना उचित है, अर्थात् इन सपारों को धारण किये हुए  
मुनिजनों को इन दो दिशाओं में ही झुंझ करके बैठना उचित है ॥ २० ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलालप्रतिविरचित  
स्थानाङ्ग सूत्र की सुभानामक टीकार्थ का दूसरे स्थानक का  
प्रथम उद्देशक समाप्त ॥ २-१ ॥

अजमन सथाशे ठडे छे ), अने के मृत्युना अनमिलायी बनेछ छे, जेवा  
मुनिजने के दिशाओ तरह-पूर्व अथवा उत्तर दिशा तरह अथ शानि भेयहु  
भेयजे. ठडेवानुं तादर्थं जे छे छे सथाशे धारण करनाइ मुनिजनेजे पूर्व  
अथवा उत्तर दिशा तरह अथ शानिने भेयहु भेयजे ॥ सू० २० ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य श्री घासीलाल मुनिविरचित  
स्थानाङ्गसूत्रगी सुभा नामनी टीकायना जीव्य स्थानकने  
पडेले उद्देशक समाप्त ॥ २-१ ॥

## अथ द्वितीयस्थानस्य द्वितीयोद्देशकः ॥

अनन्तरोद्देशके द्वित्वविशिष्टा जीवाजीवधर्माः प्रोक्ताः, द्वितीयोद्देशके तु द्वित्वविशिष्टा एव जीवधर्माः प्रोच्यन्ते, इत्यनेन सम्बन्धेनायातस्यास्योद्देशकस्येदमादि सूत्रम्—प्रथमोद्देशकान्तिमसूत्रेणास्यायमभिसम्बन्धः—प्रथमोद्देशकान्त्यसूत्रे पादपोपगमनमभिहितं, तेन च केषाञ्चिद् देवत्वं भवतीति देवविशेषप्रतिपादनेन तेषां कर्मबन्धं तद्वेदनं च प्रतिपादयन्नाह—

मूलम्—जे देवा उड्डोववन्नगा कप्पोववन्नगा विमाणोववन्नगा चारोववन्नगा चारद्विड्या गड्ढरड्या गड्समावन्नगा, तेषिणं देवाणं सया समियं जे पावे कम्मे कज्जह तत्थगयावि एगड्या वेयणं वेयेति, अन्नत्थगयावि एगड्या वेयणं वेयेति ।

### द्वितीयस्थानका द्वितीय उद्देशक

अनन्तर उद्देशकमें द्वित्वविशिष्ट जीव धर्मों और अजीव धर्मों के विषय में कथन किया गया है अब इस द्वितीय उद्देशकमें केवल द्वित्व विशिष्ट ही जीव धर्मों का कथन किया जाता है, इसी सम्बन्ध को लेकर इस द्वितीय उद्देशक को प्रारंभ किया गया है प्रथम उद्देशक के अन्तिम सूत्रमें पादपोपगमन संथारोंका कथन आया है सो इस संथारे को धारण करके जरने वाले कितनेक मुनिजनों को देवत्वपद प्राप्त होता है अतः देव विशेषों का प्रतिपादन और उनके कर्मबन्ध एवं उनके वेदन का प्रतिपादन यहाँ सर्वप्रथम किया जाता है

“जे देवा उड्डोववन्नगा कप्पोववन्नगा” इत्यादि ॥२१॥

### द्वितीयस्थाननेा द्वितीय उद्देशक

पडेलो उद्देशकमां द्विविधता युक्त लवधर्मो अने अलवधर्मोनुं कथन करवामां आव्यु छे आ णीण उद्देशकमां मात्र द्विविधता युक्त अ लवधर्मोनुं कथन करवामां आवे छे आ सअंधने अनुलक्षिने आ णीण उद्देशकनेा प्रारंभ करवामा आव्ये छे—

पडेलो उद्देशकनेा अतिम सूत्रमा पादपोपगमन संथारानेा उल्लेख थये छे ते संथाराने धारण करीने काणधर्म पाभनार केटलाक मुनिजनाने देवत्वनी प्राप्ति थाय छे आ सअंधने अनुलक्षिने अडो देवविशेषोनु प्रतिपादन करवामा आवे छे अने तेमना कर्मअंध अने तेमना वेदननु अडो सर्व प्रथम प्रतिपादन करवामा आवे छे—“जे देवा उड्डोववन्नगा कप्पोववन्नगा” इत्यादि

गेरइयाणं सयासमिय जे पावे कम्मे कज्जइ तत्थगयावि एग  
इया वेयणं वेयेति, अन्नत्थगयावि एगइया वेयणं वेयेति एव  
एगिंदियाणं जाव पविंदियतिरिक्खजोगियाणं । मणुस्साणं  
सया समिय जे पावे कम्मे कज्जइ, इहगयावि एगइया वेयणं  
वेयेति, अन्नत्थगयावि एगइया वेयणं वेयेति । मणुस्सवज्जा  
सेसा एक्कमा ॥ सू० २१ ॥

छाया—ये देवा ऊर्ध्वोपपन्नकाः, कल्पोपपन्नकाः, विमानोपपन्नकाः चारोपपन्नकाः,  
चारस्थितिकाः, गतिरतिकाः, गतिसमापन्नकाः, तथा लघु देवानां सदा समितं  
यत् पापं कर्म क्रियते तत्र—गता अपि एके वेदनां वेदयन्ति, अन्यत्रगता अपि एके  
वेदनां वेदयन्ति, नैरयिकाणां सदा समितं यत् पापं कर्म क्रियते तत्र गता अपि एके  
वेदनां वेदयन्ति, अन्यत्र गता—अपि एके वेदनां वेदयन्ति । एतमेकेन्द्रियाणां  
यावत् पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानाम् । मनुष्याणां सदा समितं यत् पापं कर्म क्रियते  
इहगता अपि एके वेदनां वेदयन्ति, अन्यत्रगता अपि एके वेदनां वेदयन्ति ।  
मनुष्यवर्जाः शेषा एक्कमाः ॥ सू० २१ ॥

टीका—' जे देवा ' इत्यादि—

ये बहुमाना अनसनादिना देवत्वमापन्ना देवाः, ऊर्ध्वोपपन्नकाः—ऊर्ध्वलो  
कोत्पन्ना द्विविधाः—कल्पोपपन्नकाः, विमानोपपन्नका इवेति । तत्र—कल्पोपपन्नकाः—  
सौधर्मादिद्वादशदेवलोकोत्पन्ना । विमानोपपन्नकाः—त्रैवेयकानुचरसप्तविमानो-  
त्पन्नाः कल्पपातीता इत्यर्थः । तथा—अये—चारोपपन्नकाः—ज्योतिष्कण्डोत्पन्नाः

टीकार्य—उर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए देव दो प्रकार के होते हैं एक कल्पोपपन्न  
और दूसरे कल्पानीत इन्हीं का दूसरा नाम कल्पोपपन्नक और विमानो  
पपन्नक भी है सौधर्म आदि १२ देवलोकों में जो उत्पन्न होते हैं वे  
कल्पोपपन्नक देव हैं और जो त्रैवेयक, अनुचर विमानों में उत्पन्न

टीकार्य—उर्ध्वलोकां उत्पन्न यदा देवानां वि प्रभार छे—(१) ऊर्ध्वोपपन्नक अने  
(२) कल्पपातीत तेमना पीअ नाम आ प्रभावे छे—(१) ऊर्ध्वोपपन्नक अने  
(२) विमानोत्पन्नक सौधर्म आदि आर देवलोकां उत्पन्न यनाश देवाने  
ऊर्ध्वोपपन्नक देवा कहे छे नव त्रैवेयक अने पांच अनुचर विमानोत्पन्न  
यनाश देवाने विमानोत्पन्नक अथवा कल्पपातीत देवा कहे छे

ज्योतिष्का इत्यर्थः, तेऽपि द्विधा-चारस्थितिकाः, गतिरतिकाश्चेति। तत्र-चारस्थि-  
तिकाः-चारे=ज्योतिश्चक्रक्षेत्रे स्थितिः=अवस्थानं येषां ते तथोक्ताः स्थिरा-समय-  
क्षेत्रवहिवर्तिन इत्यर्थः। गतिरतिकाः-गतौ-गमने रति र्येषां ते तथोक्ताः समय-  
क्षेत्रवर्तिन इत्यर्थः। गतिसमापन्नकाः-गतिमन्तः भवनपतिवानव्यन्तरा इत्यर्थः, तेषां

हाते हैं वे विमानोपपन्नक देव हैं, ज्योतिष्क देव भी दो प्रकारके होते हैं एक चारस्थितिक और दूसरे गतिरतिक ज्योतिष्कचक्रक्षेत्र में जिनकी स्थिति होती है वे चारस्थितिक हैं अर्थात् समय क्षेत्र वहिर्वर्ती देव चारस्थितिक ज्योतिष्कदेव हैं और जो ११२१ हजार योजन सुमेरु की चोटीको छोड़कर इस ढाईद्वीप की नित्य प्रदक्षिणा करने रूप गति क्रिया में रत रहते हैं वे गतिरतिक ज्योतिष्कदेव हैं अनशन आदि तपस्या के प्रभाव से जो देवत्व पद को प्राप्त हो चुके हैं ऐसे देव उर्ध्वोपपन्नक होते हैं ये उर्ध्वोपपन्नकदेव कल्पोपपन्नक और विमानोपपन्नक इस प्रकार से दो प्रकार के होते हैं चारोपपन्नकदेव ज्योतिश्चक्रक्षेत्र में उत्पन्न होकर वहीं पर स्थिति करने वाले ज्योतिष्कदेव हैं ये गमनशील नहीं होते हैं किन्तु अपने अपने स्थानपर ही स्थिर होकर रहते हैं। ऐसे ये चार-स्थितिक देव ढाई द्वीप से बाहर के क्षेत्रों में ही रहते हैं। ढाई द्वीप के भीतर जो ज्योतिष्क देव रहते हैं वे गतिरतिक ज्योतिष्क देव हैं। तथा भवनपति एवं वानव्यन्तरदेव गति समापन्नक पद से गृहीत हुए

ज्योतिष्क देवो पञ्च ये प्रकारना डोय छे-(१) चारस्थितिक अने (२) गतिरतिक ज्योतिष्कययक क्षेत्रमा जेमनी स्थिति डोय छे, ते देवोने चारस्थितिक देवो कडे छे, जेटले के समय क्षेत्र अडिर्वर्ती (समय क्षेत्रनी अडार रहेला) देवोने चारस्थितिक ज्योतिष्क देवो कडे छे अने जे ज्योतिष्क देवो ११२१ हजार योजनप्रमाण सुमेरुनी चोटीने (शिभरने) छोडीने आ अदी द्वीपनी नित्य प्रदक्षिणा करवाइप गति क्रियामा प्रवृत्त रहे छे, तेमने गतिरतिक ज्योतिष्क देवो कडे छे अनशन आदि तपस्याना प्रभावथी जे जेवो देवत्वने प्राप्त करी चुक्या छे, जेवा देवो उर्ध्वोपपन्नक डोय छे ते उर्ध्वोपपन्नक देवो उर्ध्वोपपन्नक अने विमानोपपन्नकना लेखथी जे प्रकारना डोय छे. चारोपपन्नक देवो ज्योतिश्चक्र क्षेत्रमा उत्पन्न थधने त्या जे स्थिति करनारा ज्योतिष्क देवो इप डोय छे तेओ गमनशील होता नथी, परन्तु पोतपोताना स्थानमा जे स्थिर थधने रहेला डोय छे जेवा ते चारस्थितिक देवो अदी द्वीपनी अडारनां क्षेत्रामा जे रहे छे अदी द्वीपनी अडार जे ज्योतिष्क देवो रहे छे, तेओ गतिरतिक ज्योतिष्क जे डोय छे.

देवानां सदा=नित्य ममित्त-सन्तत निरन्तरमित्यर्थः यत् पाप कर्म-ज्ञानावरणादि सततव्ययकृत्वान्जीवानाम्, क्रियते=व्ययते कर्मकर्तृव्ययगोऽय, मपति संपद्यत इत्यर्थः । ते पूर्वोक्ता देवास्तस्य=स्वकृतकर्मणोऽराधाकालातिक्रमे सति 'तत्त्व गयानि' चि-अत्र 'अपि' अत्र एवकारार्थे तत्र सप्रगता एव-तत्र दयमवे गता अपि-वच्यमाना एव कृत्वातीतानां क्षेत्रा-तरादिगमनासमवादिह-'तत्र-अन्यत्र' इति अन्वयार्थां भव एव विवक्षितोऽस्ति नत्वन्यक्षेत्रादीणि । एके=केचन देवा वेदानाम्=उदयं विपाक वेदयन्ति=अनुभवन्ति । तथा-अयप्रगता अपि-देवमवात् न्यत्र गताः-उत्पन्ना एव वेदानामनुभवन्ति । 'केचित्तु-उभयप्रापि, केचिद् विपाकोदयापेक्षया नोभयप्रापि' इति विकल्पद्वयमत्रसूत्रे द्वित्वाधिकारान्नाङ्गीकृत

हैं । इस तरह कल्पोपपन्न देवों को विमानोपपन्न देवों को आरोपपन्नक देवों में के मेदरूप धार स्थितिक देवों को गतिरतिक देवों को और गतिरसमापन्नक रूप भवनपति एवं अन्तरदेवों को जो निरन्तर सदा ज्ञानावरणीयादि पापकर्म यचना रहता है यह उनके द्वारा पांचा गया पापकर्म अपने अयाधाकाल के बाद ही वेदित- अनुभवित होता है इन में जो कल्पातीत देव हैं वे अपने स्थान को छोड़कर अन्यक्षेत्रादि में जाते नहीं हैं इसलिये ये उसी भव में वर्तमान रह कर ही 'उस पापकर्म को उदय में भोगते हैं तथा कितनेक देव देवभव से अन्यत्र भव में उत्पन्न होकर ही उस यद्वकर्म के उदय को भोगते हैं कितनेक देव देवभवमें और अन्य भवमें भी कर्मोदयको भोगते हैं तथा कितनेक देव विपाकोदय की अपेक्षा उभयत्र भी उदय को नहीं भोगते हैं" ऐसे

तथा भवनपति अने वान अन्तर देवाने अतिसमापन्नक एव द्वारा अक्षय्य कृतवामा आन्या से आ रीते कल्पोपपन्नक देवो विमानोपपन्नक देवो आरोप- पन्नक देवाना वेदय्य आरस्थितिक देवो, अतिरतिक देवो अने अतिसमापन्नक रूप भवनपति तथा वानअन्तर देवो ने निरन्तर ज्ञानावरणीयादि पापकर्मों में व्यथता रहे से ते तेमना द्वारा व्यथवामा आवेक्षां पापकर्मों पीताना अन्ना आशाण आवे वेदित (अनुभवित) याव से तेमाना ने केशवीत देवो से तेजो पीताना स्थानने छोड़िने अन्य क्षेत्रादिभ्य अर्थां नथी तेथी तेजो जेव भवमां वतमान स्थीने ए ते पापकर्मना उदयने सोत्रये से तथा केशवीत देवो देवभवमांभी अन्य भवमां उत्पन्न भवने ए ते जव कर्मना उदयने सोत्रये से केशवीत देवो देवभवमां अने अन्यभवमां पद्य कर्मोदयने सोत्रये से तथा केशवीत देवो विपाकोदयनी अपेक्षाये उभयत्र (आ भवमां अने अन्य भवमां) पद्य उदयने सोत्रयता नथी जेवां ने आ नि विजयो से तेमने आ सुत्रमां

मिति । इदं सूत्रोक्तमेव विकल्पद्वयं सर्वजीवेषु चतुर्विंशतिदण्डकेन प्ररूपयति—  
 'नेरइयाणं' इत्यादि—सुगमम् । एवम्=अमुना प्रकारेण एकेन्द्रियाणां यावत्  
 पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां विषयेऽपि बोध्यम् । 'मनुस्साणं' इत्यादि—मनुष्याणां  
 सदा समितं यत् पापं कर्म क्रियते=वध्यते ते मनुष्या 'इहगयावि' इह मनुष्यभवे  
 गता अपि=वर्त्तमाना एव एके=केचन वेदना वेदयन्ति, एके केचिद् अन्यत्र=  
 भवान्तरे गताः=वर्त्तमाना एव वेदनां वेदयन्ति । देवभवादारभ्य यावत् पञ्चेन्द्रि-

जो ये दो विकल्प हैं वे इस सूत्रमें द्वित्वाधिकार होने से अङ्गीकृत नहीं  
 हैं । अथ सूत्रकार इस सूत्रोक्त ही विकल्पद्वय को समस्त जीवों में  
 चतुर्विंशतिदण्डक द्वारा प्ररूपित करते हैं—

“नेरइयाणं” इत्यादि—इसी प्रकार नैरथिक जीवों के द्वारा बद्ध  
 पापकर्म अपने अशाश्वत्काल के बाद ही वेदित होता है सो वह बद्ध  
 पापकर्म उनमें से कितनेक नारकियों द्वारा उसीभव में रहकर ही  
 वेदित होता है तथा कितनेक नारकियों द्वारा अन्यत्र भव में ही जाकर  
 वेदित होता है इसी तरह से अपने द्वारा बद्ध पापकर्म को भोगनेरूप  
 कार्य एकेन्द्रिय जीवों से लेकर यावत् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवों तक के  
 भी जानना चाहिये मनुष्यों को निरन्तर जो सदा ज्ञानावरणादि रूप पाप  
 कर्म का बन्ध होता रहता है सो उनमें से कितनेक मनुष्य उस बद्ध  
 पापकर्म को मनुष्य भव में ही रहकर भोगते हैं तथा कितनेक मनुष्य  
 अन्य भवान्तर में ही जाकर भोगते हैं देवभव से लेकर यावत् पञ्चे-

अक्षु करवामां आन्धा नथी कारुषु के अर्ही तो द्विविधता युक्त अधिकारतुं न  
 प्रतिपादन आली रह्युं छे डवे सूत्रकार आ सूत्रोक्त मे विकल्पोनु २४ ६३३  
 दाग समस्त लुवोमां प्रतिपादन करे छे “नेरइयाण” इत्यादि—

अन्य प्रमाणे नारको अद्ध पापकर्मो तेना अभाधाकाण आद न वेदित  
 थाय छे. तेथी ते अद्ध पापकर्म केटलाक नारको ते लवमां रह्हीने न वेदन करे  
 छे अने केटलाक नारको अन्य लवमां नधने तेनु वेदन करे छे. अकेन्द्रियोथी  
 पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्यन्तना लुवो पणु पोताना द्वारा अद्ध पापकर्मोने भोग-  
 ववातुं कार्य नारकोनी नेम न करे छे, अटले के केटलाक ते लवमां तेनुं वेदन  
 करे छे अने केटलाक अन्य लवमां तेनुं वेदन करे छे.

मनुष्यो द्वारा पणु निरन्तर ज्ञानावरणीय आदि कर्मोनि अंध यतो रडे  
 छे. तेमाथी केटलाक मनुष्यो ते पापकर्मोने मनुष्य लवमां रह्हीने न भोगवे छे  
 अने केटलाक मनुष्यो अन्य लवमां गया आद तेमनुं वेदन करे छे. देवलवथी

देवाना सदा=नित्य समित-सन्तत निरन्तरमित्यर्थः यत् पाप कर्म-ज्ञानावरणादि सततवन्धकस्वाब्जिषानाम्, क्रियते=ब्रह्मते कर्मकर्तृपयोगोऽय, मयति संप्रत्य इत्यर्थः । ते पूर्वोक्ता देवास्तस्य=स्वकृतकर्मणोऽपाधाकालातिक्रमे सति 'तत्त्व गयानि' चि-अत्र 'अपि' उम्द एवकारार्थे तत्र तत्रगता एव-तत्र दशमवे गता अपि-ब्रह्ममाना एव कल्पातीतानां क्षेत्रान्तरादिगमनासमवादिह-'तत्र-अन्यत्र' इति अन्वयाभ्यां मय एव विवक्षितोऽस्ति नत्वम्यक्षेत्रादीति । एके=केचन देवा वेदनाम्=उदयं त्रिपाक वेदयन्ति=अनुभवन्ति । तथा-अन्यत्रगता अपि-देवमवाद् अन्यत्र गताः-उत्पन्ना एव वेदनामनुभवन्ति । 'केचित्तु-उभयत्रापि, केचित् त्रिपाकोदयापेक्षया नोभयत्रापि' इति विकल्पद्वयमत्रसूत्रे द्विरवाधिकारान्नास्तीकृत हैं । इस तरह कल्पोपपन्न देवों को विमानोपपन्न देवों को आरोपपन्न देवों में के वेदरूप चार स्थितिक देवों को गतिरतिक देवों को और गतिसमापन्नक रूप भवनपति एवं व्यन्तरदेवों को जो निरन्तर सदा ज्ञानावरणीयादि पापकर्म घडता रहता है वह उनके द्वारा पाँधा गया पापकर्म अपने अपाधाकाल के बाद ही वेदित- अनुभवित होता है इन में जो कल्पातीत देव हैं वे अपने स्थान को छोड़कर अन्यक्षेत्रादि में जाते नहीं हैं इसलिये ये उसी भव में वर्तमान रह कर ही उस पापकर्म को उदय में भोगते हैं तथा कितनेक देव देवभव से अन्यत्र भव में उत्पन्न होकर ही उस पदकर्म के उदय को भोगते हैं कितनेक देव देवभवमें और अन्य भवमें भी कर्मोदयको भोगते हैं तथा कितनेक देव विपाकोदय की अपेक्षा उभयत्र भी उदय को नहीं भोगते हैं" ऐसे

तथा भवनपति अने वान व्यन्तर देवाने अतिसमापन्नक पद द्वारा अक्षय करवामां आभ्यां से आ शीते कर्षापन्नक देवो, विमानोपपन्नक देवो आपाप पन्नक देवोना वेदरूप आस्थितिक देवो, अतिरतिक देवो, अने अतिसमापन्नक रूप भवनपति तथा वानव्यन्तर देवो ने निरन्तर ज्ञानावरणीयादि पापकर्मों काँधता रहे से तेमना द्वारा काँधवामा आवेला पापकर्मों पीताना अण्य भाषाण वाव ए वेदित ( अनुभवित ) बाव से तेमाना ने कल्पातीत देवो से तेज्य पीताना स्थानने छोडीने अन्य क्षेत्रादिमां जतां नथी तेथी तेज्य अण्य भवमा वर्तमान रहिने ए ते पापकर्मना उदयने बोत्रवे से तथा कटलाक देवो देवभवमाथी अन्य भवमा उत्पन्न यधने ए ते पद कर्मना उदयने बोत्रवे से कटलाक देवो देवभवमा अने अन्यभवमां पदु कर्मोदयने बोत्रवे से तथा कटलाक देवो विपाकोदयनी अपेक्षाने उभयत्र ( आ भवमां अने अन्य भवमां ) पदु उदयने बोत्रवता नथी, जेवां ने आ मे विदरपी से तेमने आ सुवर्ध

मिति । इदं सूत्रोक्तमेव विकल्पद्वय सर्वजीवेषु चतुर्विंशतिदण्डकेन प्ररूपयति-  
 'नेरइयाणं' इत्यादि-सुगमम् । एवम्=अमुना प्रकारेण एकेन्द्रियाणां यावत्  
 पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां त्रिपयेऽपि बोध्यम् । 'मनुस्साणं' इत्यादि—मनुष्याणां  
 सदा समितं यत् पापं कर्म क्रियते=वध्यते ते मनुष्या 'इहगयावि' इह मनुष्यभवे  
 गता अपि=वर्तमाना एव एके=केचन वेदनां वेदयन्ति, एके केचिद् अन्यत्र=  
 भवान्तरे गताः-वर्तमाना एव वेदनां वेदयन्ति । देवमत्रादारभ्य यावत् पञ्चेन्द्रि-

जो ये दो विकल्प हैं वे इस सूत्रमें द्वित्वाधिकार होने से अङ्गीकृत नहीं  
 हैं । अथ सूत्रकार इस सूत्रोक्त ही विकल्पद्वय को समस्त जीवों में  
 चतुर्विंशतिदण्डक द्वारा प्ररूपित करते हैं—

“नेरइयाणं” इत्यादि—इसी प्रकार नैरथिक जीवों के द्वारा बद्ध  
 पापकर्म अपने अशाश्वकाल के बाद ही वेदित होता है सो वह बद्ध  
 पापकर्म उनमें से कितनेक नारकियों द्वारा उसीभव में रहकर ही  
 वेदित होता है तथा कितनेक नारकियों द्वारा अन्यत्र भव में ही जाकर  
 वेदित होता है इसी तरह से अपने द्वारा बद्ध पापकर्म को भोगनेरूप  
 कार्य एकेन्द्रिय जीवों से लेकर यावत् पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च जीवों तक के  
 भी जानना चाहिये मनुष्यों को निरन्तर जो सदा ज्ञानावरणादि रूप पाप  
 कर्म का बन्ध होता रहता है सो उनमें से कितनेक मनुष्य उस बद्ध  
 पापकर्म को मनुष्य भव में ही रहकर भोगते हैं तथा कितनेक मनुष्य  
 अन्य भवान्तर में ही जाकर भोगते हैं देवभव से लेकर यावत् पञ्चे-

अक्षु करवामा आब्या नथी डारणु के अर्ही तो द्विविधता युक्त अधिकारतुं न  
 प्रतिपादन थाली रहु छे डवे सूत्रकार आ सूत्रोक्त जे विकल्पोतुं २४ ढंडक  
 द्वारा समस्त लवोमा प्रतिपादन करे छे “नेरइयाणं” इत्यादि—

अथ प्रमाणे नारको अद्ध पापकर्मो तेना अभाधाकाण आद न वेदित  
 थाय छे, तेथी ते अद्ध पापकर्म केटलाक नारको ते लवमां रहीने न वेदन करे  
 छे अने केटलाक नारको अन्य लवमां न्धने तेनु वेदन करे छे, एकेन्द्रियोथी  
 पञ्चेन्द्रिय तिर्यंय पर्यन्तना लवो पणु पोताना द्वारा अद्ध पापकर्मोने लोण-  
 ववानुं कार्यं नारकोनी लोम न करे छे, अटले के केटलाक ते लवमां तेनुं वेदन  
 करे छे अने केटलाक अन्य लवमा तेनुं वेदन करे छे,

मनुष्यो द्वारा पणु निरन्तर ज्ञानावरणीय आदि कर्मोना बंध थतो रडे  
 छे, तेमाथी केटलाक मनुष्यो ते पापकर्मने-मनुष्य लवमा रहीने न भोगवे छे  
 अने केटलाक मनुष्यो अन्य लवमा गया आद तेमनुं वेदन करे छे, देवलवथी



પરિચ્છયોનિકાનાં વિષયે “ તત્થગયાવિ, અન્નત્થગયાવિ ” इत्यमिलापो वाच्यः, मनुष्यदण्डके तु “ इहगयावि अन्नतत्थगयावि ” इत्यमिलापो वाच्यः, मनुष्यम वस्य स्वीकारेण प्रत्यसासन्नवाचिन इदं शब्दस्य विषयत्वात्, अथ एवाह—‘ मणु स्सबज्जा सेसा एकगमा ’ इति, मनुष्यवर्जिताः श्रेयाः—अन्य प्रयोविंशतिदण्डकाः एकगमा ऽसदृशाभापकाः सन्ति, मनुष्यालापके ‘इहगयावि’ इत्युक्तत्वात् ॥ सू० २१ ॥

पूर्वे चतुर्विंशतिदण्डके ‘सप्रगता वेदनां वेदयन्ति’ इति प्रोक्तमतो नार कादीनां गतिमागतिं च निरूपयन्नाह—

‘ मूष्म—नेरइया तुगइया तुआगइया पणत्ता त जहा नेरइय नेरइयसु उववज्जमाणे मणुस्सेहिंसो वा पच्चिदियतिरिक्खजोणि प्पहिंसो वा उववज्जेज्जा । से चेष णं से नेरइय णेरइयत्त विप्प

ન્નિય તિર્યચ્ચયોનિયો કે વિષય મેં “ તત્થગયા વિ અન્નત્થ ગયા વિ, ” એસા અમિલાપ કહના યાહિયે ઓર મનુષ્ય દણ્ડક મેં “ ઇહ ગયા વિ અન્નત્થગયા વિ ” એસા અમિલાપ કહના યાહિયે મનુષ્યાલાપક મેં જો “ ઇહ ” પદ કા પ્રયોગ કિયા ગયા હે ડસકા કારણ એસા હે કિ મનુ ષ્યમથ પ્રત્યક્ષ ઓર આસન્ન હે પ્રત્યક્ષ ઓર આસન્ન અર્થ કે વિષય મેં હી ઇદં શબ્દ કા પ્રયોગ હોના હે, કયોં કિ પ્રત્યક્ષ ઓર આસન્ન અર્થ કા વાચક હી ઇદં શબ્દ હોના હે ઇતીલિયે “ મણુસ્સબજ્જા સેસા એકગમા ” એસા કહા હે કિ મનુષ્ય વર્જિત શોષ ૨૬ દણ્ડક સદૃશ આલાપવાલે હે ઓર મનુષ્યાલાપક “ ઇહ ગયા વિ ” ઇસ આલાપક યાલા હે ॥ સૂ ૨૧ ॥

અહીં ‘વિન્નિય તિર્યચ્ચ’ યોનિકા પદવંતના સબધમાં “ તત્થગયા વિ અન્નત્થ ગયા વિ ” આ અમિલાપનું કથન થતું બોધાયે. અને મનુષ્ય દંડમાં ‘ઇહ ગયા વિ અન્નત્થગયા વિ’ આ આલાપકનું કથન થતું બોધાયે. મનુષ્ય વિષયક આલાપકમાં જે ‘ઇહ’ પદનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે તેનું કારણ એ છે કે મનુષ્ય એવ પ્રત્યક્ષ અને આસન્ન છે પ્રત્યક્ષ અને આસન્ન (સમીપ)અર્થના વિષયમાથ ઈદં (આ) પદનો પ્રયોગ થાય છે કારણ કે ઈદં શબ્દ પ્રત્યક્ષ અને આસન્ન અર્થનો વાચક છે તેથી જ મણુસ્સબજ્જા સેસા એકગમા એવું કહેવામાં આ વું છે કે મનુ ષ સિવાયના ૨૭ દંડક એક સરખા આલાપવાળાં છે અને મનુષ્ય દંડક ‘ઇહ ગયા વિ’ આ અર્થમાં વેદન કરે છે’ આ પ્રકારના આલાપવાળું છે ॥ સૂ० ૨૧ ॥

जहमाणो मणुस्सत्ताए वा पंञ्चिदियतिरिक्खजोणियत्ताए वा गच्छेज्जा । एवं असुरकुमारावि, णवरं-से चेव णं से असुरकु-  
मारे असुरकुमारत्तं विप्पजहमाणे मणुस्सत्ताए वा तिरिक्ख-  
जोणियत्ताए वा गच्छिज्जा । एवं सब्बदेवा । पुढविक्काइया  
दुगइया दुआगइया पणत्ता तं जहा-पुढविक्काइए पुढविक्काइ-  
एसु उववज्जमाणे पुढविक्काइएहिंतो वा णोपुढविक्काइएहिंतो  
वा उववज्जेज्जा । से चेव णं से पुढविक्काइए पुढविक्काइयत्तं  
विप्पजहमाणे पुढविक्काइयत्ताए वा णोपुढविक्काइयत्ताए वा  
गच्छेज्जा एवं जाव मणुस्सा ॥ सू० २२ ॥

छाया—नैरयिका द्विगतिका द्रयागतिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—नैरयिको नैरयि-  
केषु उपपद्यमानो मनुष्येभ्यो वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकेभ्यो वा उपपद्यते । स एव  
खलु नैरयिको नैरयिकत्वं विप्रजहत् मनुष्यतया वा पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकतया वा  
गच्छति । एवमसुरकुमारा अपि, नवरं स एव खलु असौ असुरकुमारः असुरकुमारत्वं  
विप्रजहत् मनुष्यतया वा तिर्यग्योनिकतया वा गच्छति । एवं सर्वदेवाः । पृथिवी-  
कायिका द्विगतिका द्रयागतिकाः प्रज्ञप्तास्तथा—पृथिवीकायिकः पृथिवीकायिकेषु  
उपपद्यमानः पृथिवीकायिकेभ्यो वा उपपद्यते । स एव खलु असौ पृथिवीकायिकः  
पृथिवीकायिकत्वं विप्रजहत् पृथिवीकायिकतया वा नोपृथिवीकायिकतया  
वा गच्छति । एवं यावत् मनुष्याः ॥ सू० २२ ॥

टीका—‘नेरइया दुगइया’ इत्यादि—

नैरयिकाः—नरकजीवाः द्विगतिकाः—द्वयोः मनुष्यतिर्यगतिलक्षणयोर्गत्योर-  
धिकरणभूतयोर्गतिर्गमनं येषां ते तथा । द्विगतिकाः—द्वाभ्यामेताभ्यामेवाधिभूता-

पहिले २४ दण्डक में “तत्रगता वेदनां वेदयन्ति” ऐसा कहा गया  
है सो सूत्रकार अब नारक आदिकों की गति और आगति का निरूपण  
करते हैं—“नेरइया दुगइया दुआगइया पणत्ता” इत्यादि ॥ २२ ॥

पहिला २४ दंडकेभा “तत्रगता वेदनां वेदयन्ति” ओषु कथन करवाभा  
आव्यु छे तेथी सूत्रकार डवे नारकादिकेनी गति अने आगतितु निरूपण करे छे,  
“नेरइया दुगइया दुआगइया पणत्ता” इत्यादि ॥ २२ ॥

યતિર્યગ્યોનિકાનો વિષયે “ તત્પગવાયિ, અન્નત્પગવાયિ ” ઇત્યમિલાપો વાચ્યઃ, મનુષ્યવૃણ્ઠકે સુ “ ઇહગવાયિ અન્નત્પગવાયિ ” ઇત્યમિલાપો વાચ્યઃ, મનુષ્યમ વસ્ય સ્ત્રીકારેણ મત્પક્ષાસન્નવાયિન ઇવ શબ્દસ્ય વિષયત્વાત્, અત ઇવાહ—‘ મણુ સ્તવજ્ઞા સેસા ઇકગમા ’ ઇતિ, મનુષ્યવર્જિતાઃ શ્રેયાઃ—અન્યે અયોવિચિતિવૃણ્ઠકાઃ ઇકગમાઃ—સદશાસ્ત્રાપકાઃ સન્તિ, મનુષ્યાલાપકે ‘ ઇહગવાયિ ’ ઇત્યુક્તત્વાત્ ॥૬૦૨ ॥

પૂર્વે ધર્તુવિંશતિવૃણ્ઠકે ‘ સમગતા વેદનાં વેદયન્તિ ’ ઇતિ પ્રોક્તમતો નાર કાવીનાં ગતિમાગર્તિ ષ નિરૂપયન્નાહ—

મૂલમ્—નેરહ્યા તુગહ્યા તુઆગહ્યા પળ્ણત્તા ત જહા નેરહ્ય નેરહ્યસુ ઉવવજ્ઞમાળે મળુસ્સેહિંતો વા પંધિંદિયતિરિશ્વજોળિ પર્હિંતો વા ઉવવજ્ઞેજ્ઞા । સે વેષ ણં સે નેરહ્ય ણેરહ્યત્ત વિષ્ય

ન્દ્રિય તિર્યગ્યોનિયોં કે વિષય મેં “ તત્પગવા યિ અન્નત્પ ગવા યિ ” પેસા અમિલાપ કહના વાહિયે ઓર મનુષ્ય વૃણ્ઠક મેં “ ઇહ ગવા યિ અન્નત્પગવા યિ ” પેસા અમિલાપ કહના વાહિયે મનુષ્યાલાપક મેં જો “ ઇહ ” પદ્ કા પ્રયોગ કિયા ગયા હૈ ઇસકા કારણ પેસા હૈ કિ મનુ વ્યમવ પ્રત્યક્ષ ઓર આસન્ન હૈ પ્રત્યક્ષ ઓર આસન્ન અર્થ કે વિષય મેં હી ઇવં વાચ્ય કા પ્રયોગ હોના હૈ, ક્યોં કિ પ્રત્યક્ષ ઓર આસન્ન અર્થ કા વાચક હી ઇવં વાચ્ય હોના હૈ ઇસીલિયે “ મળુસ્તવજ્ઞા સેસા ઇકગમા ” પેસા કહા હૈ કિ મનુષ્ય વર્જિત શ્રેય ૨૩ વૃણ્ઠક સદશા આલાપવાલે હિં ઓર મનુષ્યાલાપક “ ઇહ ગવા યિ ” ઇસ આલાપક વાલા હૈ ॥ સુ ૨૧ ॥

હાલિ ષત્તિન્દ્રિય તિર્યગ્ય યોનિજો પદ્-વત્તા સવપ્રમાં તત્પગવા યિ અન્નત્પ ગવા યિ ’ આ અમિલાપત્તુ ઠયન યત્તુ જોઇએ. અને મનુષ્ય ૬૬૩માં “ ઇહ ગવા યિ અન્નત્પગવા યિ ” આ આલાપત્તુ ઠયન યત્તુ જોઇએ મનુષ્ય વિષયક આલાપકમાં જે ‘ ઇહ ’ પદનો પ્રયોગ કરવામાં આ યો છે તેનું કારણ એ છે કે મનુષ્ય ભવ પ્રત્યક્ષ અને આસન્ન છે પ્રત્યક્ષ અને આસન્ન (સમીપ)અર્થના વિષયમાં જ ઉકે (આ) પદનો પ્રયોગ થાય છે, કારણ કે ઉકે શબ્દ પ્રત્યક્ષ અને આસન્ન અર્થના વાચક છે તેથી જ “ મળુસ્તવજ્ઞા સેસા ઇકગમા ’ એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે મનુષ્ય સિવાયના ૨૩ ૬૬૩ એક સરખા આલાપવાળાં છે અને મનુષ્ય ૬૬૩ ‘ ઇહ ગવા યિ ’ આ ભવમાં વેદન કરે છે ” આ પ્રકારના આલાપવાળું છે ॥ સુ ૨૧ ॥

वा=अथवा तिर्यग्योनिकृतया गच्छति । अमुरकुमारा न केवलं पञ्चेन्द्रियेषु तिर्य-  
ग्योनिकेवैवोत्पद्यन्ते पृथिव्यवृवनस्पतिष्वपि तेषामुत्पत्तिसद्भावात् । एवं सर्व  
देवा अपि-एवम्=अमुरकुमारवत् द्वादशापि देवदण्डकपदानि वान्यानि । अयं  
भावः-असुरादिदशदेवनिकाय-व्यन्तर-ज्योतिष्कप्रथमद्वितीयस्वर्गेषु देवानामागति  
र्द्वाभ्यां मनुष्यतिर्यग्भ्याम् । व्यन्तरे तु-असञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतितोऽप्यागति  
र्भवति । गतिरस्तु तेषां संज्ञिमनुष्यसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यक् पृथिव्यवृवनस्पतिषु भवति ।  
तृतीयदेवलोकादारभ्याष्टमदेवलोकपर्यन्तदेवानामागतिर्द्वाभ्यां संज्ञिमनुष्यतिर्य-  
ग्भ्याम्, गतिरपि तेषां द्वयोरेव सञ्ज्ञिमनुष्यतिरश्चो भवति । नवमदेवलोकादार-

वनस्पतिकायिक इन एकेन्द्रिय जीवों में भी उत्पन्न हो जाते हैं, असुरकु-  
मार के इस कथन की तरह से ही १२ देवलोक का भी कथन कर  
लेना चाहिये तात्पर्य इसका ऐसा है-असुरकुमार आदि दश भवनपति  
देव निकाय में व्यन्तर देवनिकाय में, ज्योतिष्क देवनिकाय में और  
प्रथम द्वितीय स्वर्गों में देवों की आगति मनुष्यगति और तिर्यश्चगति  
से होती है व्यन्तर देवों में असंज्ञि पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च गति से भी जीव  
आता है तथा इनकी व्यन्तरदेवों की गति संज्ञी मनुष्य संज्ञी पञ्चेन्द्रिय  
तिर्यश्च, पृथिवीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में होती है, तृतीय  
देवलोक से लेकर अष्टमदेवलोक तक के देवों की आगति संज्ञी मनुष्य  
और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च इन दो जगहों से होती है इनकी गति

योमां उत्पन्न थाय छे अर्ही अटली न विशेषता समञ्जी के असुरकुमार  
पृथ्वीकाय, अप्काय अने वनस्पतिकायरूप त्रय अकेन्द्रिय लोमां पणु उत्पन्न  
थाय छे असुरकुमारना नेपु न कथन १२ देवदण्डक पहोना विषयमा पणु  
समञ्जु आ कथनना लावार्थ नीचे प्रभाणु छे-असुरकुमार आदि दश भवन-  
पति देवनिकायमां, व्यन्तर देवनिकायमा न्योतिष्क देवनिकायमां, अने पडेला  
तथा भीज देवलोकमा देवोनी आगति (अन्य गतिमाथी आगमन) मनुष्य  
गति अने तिर्यश्च गतिमाथी थाय छे व्यन्तर देवोमा असञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय  
तिर्यश्च गतिमाथी पणु लोमा आवे छे तथा व्यन्तर देवो पोतातु देवसंभंधी  
आयुष्य पूरु करीने सञ्ज्ञी मनुष्य, सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्च, पृथ्वीनीकाय,  
अप्काय अने वनस्पतिकायिकोमा उत्पन्न थाय छे त्रीजधी ल नि आठमां देव-  
लोक पर्यन्तना देवो देवभव संभंधी आयुष्य पूरु करीने सञ्ज्ञी मनुष्य अने  
सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चोमा न उत्पन्न थाय छे, अने अणे गतिना लोमा न

મ્યામ્ આગતિ = પ્રાગમન યેવાં ને ઘયા, મદ્મમાઃ, ઘયા-નૈરયિકઃ = નારકગ્રીષઃ  
 નૈરયિકપુ = નરકમથમનુપાપ્તેષુ જીવેષુ ઉપપદ્યમાનાઃ = સમુત્પદ્યમાન્ મનુષ્યમ્યઃ,  
 વા = મયવા પશ્ચેન્દ્રિયતિર્યગ્પોનિકેભ્ય આગત્ય ઉપપદ્યતે । નનુ મનુષ્યતિર્યગ્મતી  
 વિષમાનો જીવ કષ 'નૈરયિકઃ' इत्युच्यते? इति चेदाह-उदितनारकायुष्क  
 ત્વાત્ સ નૈરયિકત્વેન વ્યપદિશ્યતે इति न कश्चिदोप । 'से खेन ग' इत्यादि-स  
 एवासी नरकग्रीवो नैरयिकत्वं विषमवत्=परित्यजन् मनुष्यतया वा=अथवा पश्चे  
 न्द्रियतिर्यग्योनिकृतया गच्छति । एवम्=अमुना कारणेन असुरकुमारा अपि बोध्याः,  
 नवर-विशेषस्त्रयम्-स एवासी अमुकुमारः असुरकुमारत्व विषमवत् मनुष्यतया

ટીકાર્થ-નારક ગ્રીષ દ્વિગતિક હોતે હે અર્થાત્ છે નારક પર્વાય કો જબ  
 ઊંડતે હે તય ઘર્હાં સે ચે યા તો મનુષ્યગતિ મેં જાતે હે યા પશ્ચેન્દ્રિય  
 તિર્યગ્ ગતિ મેં જાતે હેં હસી તરહ નારક ગ્રીષ જપ મરકોં મેં જન્મ  
 ધારણ કરતે હેં તો યા તો ચે મનુષ્યગતિ સે આતે હેં યા પશ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્  
 ગતિ સે આતે હેં

શંકા-મનુષ્ય એ તિર્યગ્ગતિ મેં વિષમાન જીવ "નૈરયિક" હસ  
 શાબ્દ ઘારા કેસે કહા ગયા હે ?

ઉત્તર-મનુષ્યગતિ સે યા તિર્યગ્ગતિ સે જીવ જપ નરકગતિ મેં  
 જાને સગતા હે તય ડસકો નરકાયુ કા ઉદય હો જાતા હે હસલિયે ડસ  
 આયુ ક ઉદય હો જાને સે ઘદ નારક કહા ગયા હે હસી તરહ કા કપન  
 અસુરકુમારોં મેં શી જાનના ઘાહિયે અર્થાત્ અસુરકુમાર મરકર યા તો  
 પશ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્ મેં ઉત્પન્ન હોતે હેં યા મનુષ્યોં મેં ઉત્પન્ન હોતે હેં ઘર્હાં  
 હતની વિશેષતા હે કિ અસુરકુમાર પૃથિવીકાયિક અપ્સ્વાયિક ઘોર

ટીકાર્થ-નારક એવો દ્વિગતિય ડોય છે એટલે કે જ્યારે તેજો નારક પર્વાયને  
 ઊંડે છે ત્યારે ઠાં તે મનુષ્યગતિમા બલ્ય છે અને ઠાં તે પશ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્  
 ગતિમા બલ્ય છે એજ પ્રમાણે નારક ગતિમા આવતો એવ ઠાં તે મનુષ્ય  
 ગતિમાથી અને ઠાં તે પશ્ચેન્દ્રિય ગતિમાથી આવતો નરકોમાં જન્મ ધારણ કરે છે

શંકા-મનુષ્ય અને તિર્યગ્ ગતિમાં શહેવા એવને માટે 'નારક ગતિને  
 એવ' આવો શબ્દપ્રયોગ શા માટે કરવામાં આવ્યો છે ?

ઉત્તર-મનુષ્ય ગતિમાંથી અથવા તિર્યગ્ ગતિમાંથી એવ જ્યારે નરક  
 ગતિમા જવા લાગે છે, ત્યારે તેને નરકામુનેા ઉલ્લેખ મધ્ય બલ્ય છે, તે અમુનેા  
 ઉલ્લેખ ઘઈ જવાથી તેને નારક કહેવાય છે

નારકોં નેતુ જ ક્ષેત્ર અસુરકુમારોંમાં પણ સમજાવું એરલે કે અસુર  
 કુમાર મરીને ઠાં તે પશ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્માં ઉત્પન્ન થાય છે અને ઠાં તે મનુ

वा=अथवा तिर्यग्योनिकतया गच्छति । असुरकुमारा न केवलं पञ्चेन्द्रियेषु तिर्यग्योनिकेभ्योत्वद्यन्ते पृथिव्यवृवनस्पतिष्वपि तेषामुत्पत्तिसद्भावात् । एवं सर्व देवा अपि-एवम्=असुरकुमारवत् द्वादशापि देवदण्डकपदानि वाच्यानि । अयं भावः-असुरादिदशदेवनिकाय-व्यन्तर-ज्योतिष्कप्रथमद्वितीयस्वर्गेषु देवानामागतिर्द्वाभ्यां मनुष्यतिर्यग्भ्याम् । व्यन्तरे तु-असञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यग्गतितोऽप्यागतिर्भवति । गतिस्तु तेषां संज्ञिमनुष्यसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियतिर्यक् पृथिव्यवृवनस्पतिषु भवति । तृतीयदेवलोकादारभ्याष्टमदेवलोकपर्यन्तदेवानामागतिर्द्वाभ्यां संज्ञिमनुष्यतिर्यग्भ्याम्, गतिरपि तेषां द्वयोरेव सञ्ज्ञिमनुष्यतिरश्चो भवति । नवमदेवलोकादार-

वनस्पतिकायिक इन एकेन्द्रिय जीवों में भी उत्पन्न हो जाते हैं, असुरकुमार के इस कथन की तरह से ही १२ देवलोक का भी कथन कर लेना चाहिये तात्पर्य इसका ऐसा है-असुरकुमार आदि दश भवनपति देव निकाय में व्यन्तर देवनिकाय में, ज्योतिष्क देवनिकाय में और प्रथम द्वितीय स्वर्गों में देवों की आगति मनुष्यगति और तिर्यक्गति से होती है व्यन्तर देवों में असंज्ञि पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् गति से भी जीव आता है तथा इनकी व्यन्तरदेवों की गति संज्ञी मनुष्य संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यक्, पृथिवीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में होती है, तृतीय देवलोक से लेकर अष्टमदेवलोक तक के देवों की आगति संज्ञी मनुष्य और संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् इन दो जगहों से होती है इनकी गति

योमां उत्पन्न थाय छे अर्ही अटली न विशेषता समञ्ची के असुरकुमार पृथ्वीकाय, अप्काय अने वनस्पतिकायइप त्रण अकेन्द्रिय लुवोमा पणु उत्पन्न थाय छे असुरकुमारना नेपु न कथन १२ देवदण्डक पहोना विषयमा पणु समञ्चु . आ कथनना लावार्थ नीचे प्रभाणु छे-असुरकुमार आदि दश भवनपति देवनिकायमां, व्यन्तर देवनिकायमां, ज्योतिष्क देवनिकायमां, अने पडेला तथा भील देवदोकां देवोनी आगति (अन्य गतिमाथी आगमन) मनुष्य गति अने तिर्यक् गतिमांथी थाय छे व्यन्तर देवोमा असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् गतिमाथी पणु लुवो आवे छे तथा व्यन्तर देवो पोतातु देवसअधी आयुष्य पूर करीने सज्ञी मनुष्य, सज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यक्, पृथ्वीनीकाय, अप्काय अने वनस्पतिकायिकोमा उत्पन्न थाय छे त्रीजपी ल नि आठमा देवदोका पर्यन्तना देवो देवभव सअधी आयुष्य पूर करीने सज्ञी मनुष्य अने सज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यक् योमा न उत्पन्न थाय छे, अने अये गतिना लुवो न

म्पानुचरविमानपर्यन्तदेवेषु गतिरागतिर्ब्रह्मैव संदिमनुष्यविषयापिज्ञेया । ' पुढ  
 बिकाइया ' इत्यादि—पृथिवीकायिका द्विगतिका त्रयागतिकाः प्रकृष्टास्तथा-  
 पृथिवीकायिक पृथिवीकायिकेषु उपपद्यमानः पृथिवीकायिकेभ्यो वा=अथवा नो  
 पृथिवीकायिकेभ्य आगत्योपपद्यते । नो पृथिवीकायिकेभ्य =पृथिवीकायिकवर्जि  
 ताकायादिसर्वेषां, तेभ्यो वा नारकवर्जेषु भागत्य समुत्पद्यते । स एव सख  
 मसौ पृथिवीकायिकः पृथिवीकायत्वं विप्रमहत् पृथिवीकायतया वा=अथवा नो  
 पृथिवीकायतया=देवनारकपञ्चाकायादितया गच्छतीति । एषम्=प्रभुना प्रकारेण

ची इन्ही दो में होती है नवमदेवलोक से लेकर अनुत्तर विमान तक  
 के देवों में गति और आगति एक सही मनुष्यविषयक ही है " पुढबि  
 काइया " इत्यादि—पृथिवीकायिक जीव द्विगतिक और त्रयागतिक होते  
 हैं अर्थात् पृथिवीकायिकों में उपपद्यमान जीव पृथिवीकायिकों से अथवा  
 नो पृथिवीकायिकों में से आकर के उत्पन्न होता है नो पृथिवीकायिक से  
 यहां पृथिवीकायिकों को छोड़कर याकी के अप्कायिकों का प्रहण किया  
 गया है नारकों को छोड़कर नारकों से आकर जीव पृथिवीकायिक रूप  
 से उत्पन्न नहीं होता है तथा पृथिवीकायिक को छोड़कर यह जीव पृथि  
 वीकायिक रूप से या नोपृथिवीकायिक रूप से उत्पन्न होता है " नो  
 पृथिवीकायिकरूप से उत्पन्न होता है " ऐसे इस कथन में देव और  
 नारकों को छोड़ दिया गया है इसलिये अप्कायिकरूप से उत्पन्न होता है  
 ऐसा समझना चाहिये इसी प्रकार से यावत् मनुष्य भी पृथिवीकायिक

पातानी गति सअभी आमुष्य पुढ करीने ते देवतौडोभां उत्पन्न थय छे  
 नवभां देवतौडोधी छपने अनुत्तर विमान पर्यन्तना देवो तांधी थ्यनीने सही  
 मनुष्यनी गतिभां ए अथ छे अने सही मनुष्यो ए भरिने जे देवतौडोभां  
 अथ छे ' पुढबिकाइया ' इत्यादि—

पृथ्वीकायिको द्विगतिक अने त्रयागतिक दोष छे जेह्ने छे पृथ्वीकायिकेभां  
 उत्पन्न भतां लवे। पृथ्वीकायिकेभांधी अथवा नोपृथ्वीकायिकेभांधी आनीने  
 उत्पन्न थय छे ' नोपृथ्वीकायिक ' यह द्वारा अर्धी पृथ्वीकायिको सिवावना  
 आनीना अप्कायिकेने अद्वय करपाभां आ०वा छे नारकेभांधी आनीने—नरक  
 गतिने छे। अने लवे। पृथ्वीकायिक रूपे उत्पन्न भतां नथी, तथा पृथ्वीकायिके

યાવત્ મનુષ્યાઃ=પૃથિવીકાયિકવત્ ' દ્વિગતિકાઃ ' ઇત્યાદ્યભિલાપૈરેવાપ્કાયાદયો  
મનુષ્યપર્યન્તાઃ પૃથિવીકાયિકશબ્દસ્થાનેડપ્કાયાદિશબ્દવ્યપદેશં કુર્વદ્ધિરમિધાતન્યા  
ઈતિ । વ્યન્તરાદીનાં તુ પૂર્વમતિદેશઃ કૃત एवेति ॥ સૂ ૦ ૨૨ ॥

જીવાધિકારાદેવ મવ્યાદિષોડશવિશેષણૈર્દષ્ટકપ્રરૂપણામાહ—

મૂલમ્—દુવિહા ણેરઙ્યા પળ્ણત્તા તં જહા-ભવસિદ્ધિયા ચેવ  
અભવસિદ્ધિયા ચેવ, જાવ વેમાણિયા ૧ । દુવિહા ણેરઙ્યા પળ્ણત્તા  
તં જહા-અળંતરોવવન્નગા ચેવ પરંપરોવવન્નગા ચેવ જાવ વેમા-  
ણિયા ૨ । દુવિહા ણેરઙ્યા પળ્ણત્તા તં જહા-ગતિસમાવન્નગા  
ચેવ અગતિસમાવન્નગા ચેવ । જાવ વેમાણિયા ૩ । દુવિહા  
ણેરઙ્યા પન્નત્તા તં જહા-પઢમસમયોવવન્નગા ચેવ અપઢમસ-  
મયોવવન્નગા ચેવ, જાવ વેમાણિયા ૪ । દુવિહા ણેરઙ્યા પળ્ણત્તા  
તં જહા-આહારગા ચેવ અણાહારગા ચેવ જાવ વેમાણિયા ૫ ।  
દુવિહા ણેરઙ્યા પળ્ણત્તા તં જહા-ઉસ્સાસગા ચેવ ણો ઉસ્સાસગા

કી તરહ દ્વિગતિક ઔર દ્વયાગતિક જાનના ચાહિયે અર્થાત્ અપૂકાય સે  
લેકર મનુષ્ય તક કે દો ઘતિ સે આના જાના આદિ સમ્બન્ધી અભિલાપ  
પૃથિવીકાયિક શબ્દ કે સ્થાન મેં અપ્કાયાદિ શબ્દોં કો જોઢકર કહ લેના  
ચાહિયે વ્યન્તરાદિ કે વિષય કા કથન પહિલે હી કહ દિયા ગયા હૈં ॥ સૂ ૦ ૨૨ ॥

છોડીને છવ પૃથ્વીકાય રૂપે અથવા નોપૃથ્વીકાય રૂપે ઉત્પન્ન થાય છે “ નો  
પૃથ્વીકાયિકોમાં ઉત્પન્ન થાય છે, ” આ કથનમાં દેવ અને નારકોને બ્રહ્મ  
કરવામા આવેલ નથી—તેમને છોડી દેવામા આવેલ છે, તેથી અપૂકાયિક રૂપે  
ઉત્પન્ન થાય છે, એમ સમજવુ જોઈએ

એજ પ્રમાણે મનુષ્ય પર્યન્તના છવોને પણ દ્વિગતિક અને દ્વયાગતિક  
સમજવા જોઈએ એટલે કે અપૂકાયિકથી લઈને મનુષ્ય પર્યન્તના દ્વિગતિક  
આદિ સંબંધી અભિલાપમાં પૃથ્વીકાયિક શબ્દને બદલે અપૂકાયાદિ શબ્દોનો  
પ્રયોગ કરીને અભિલાપ કહેવા જોઈએ વ્યન્તરાદિ વિષેનું કથન તે પહેલાં  
આવી ગયું છે. ॥ સૂ ૦ ૨૨ ॥



श्वेव, जाव वेमाणिया ६ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा  
 सहदिया चेव अर्णिदिया श्वेव, जाव वेमाणिया ७ । दुविहा  
 णेरइया पण्णत्ता त जहा पज्जत्तगा एव, अपज्जत्तगा एव, जाव  
 वेमाणिया ८ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा-सन्नी श्वेव  
 असन्नी चेव, एव पच्चिदिया सब्बे विगळिंदियवज्जा जाव घाण  
 मत्तरा ९ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा भासगा श्वेव  
 अभासगा चेव, एवमेगिंदियवज्जा सब्बे जाव वेमाणिया १० ।  
 दुविहा नेरइया पण्णत्ता त जहा सम्महिट्टिया चेव मिच्छहि  
 ट्टिया चेव, एव प्पगिंदियवज्जा सब्बे जाव वेमाणिया ११ ।  
 दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा-परित्तससारिया चेव अणंत  
 ससारिया चेव, जाव वेमाणिया १२ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता  
 त जहा-सखेज्जकालसमयट्टिया चेव असखेज्जकालसमयट्टि-  
 इया चेव, एव पच्चिदिया प्पगिंदियविगळिंदियवज्जा जाव  
 घाणमत्तरा १३ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा-सुलभो  
 हिया श्वेव, दुल्लहोहिया चेव । जाव वेमाणिया १४ । दुविहा  
 णेरइया पण्णत्ता त जहा-कण्हपक्खिया श्वेव सुक्कपक्खिया श्वेव,  
 जाव वेमाणिया १५ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा-अरिमा  
 श्वेव अअरिमा चेव, जाव वेमाणिया १६ ॥ सू० २३ ॥

जाया—द्विविधा नैरयिकाः प्रश्नस्तास्तथा—मवसिद्धिकाश्चैव अमवसिद्धिकाश्चैव,  
 परम्परोपपन्नकश्चैव यावद् बेमानिकाः १ । द्विविधा नैरयिका प्रश्नस्तास्तथा अनन्त  
 रोपपन्नकाश्चैव यावद् बेमानिकाः २ । द्विविधा नैरयिका प्रश्नस्तास्तथा गतिसमापन्न-  
 काश्चैव अगतिसमापन्नकाश्चैव, यावद् बेमानिकाः ३ । द्विविधा नैरयिकाः प्रश्नस्तास्तथा

प्रथमसमयोपपन्नकाश्चैव, अप्रथमसमयोपपन्नकाश्चैव, यावद् वैमानिकाः ४ । द्विविधा  
 नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—आहारकाश्चैव अनाहारकाश्चैव, यावद् वैमानिकाः ५ ।  
 द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—उच्छ्वासकाश्चैव नोउच्छ्वासकाश्चैव, यावद्  
 वैमानिकाः ६ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सेन्द्रियाश्च अनिन्द्रियाश्चैव,  
 यावद् वैमानिकाः ७ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव अपर्याप्त-  
 काश्चैव, यावद् वैमानिकाः ८ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सञ्ज्ञिनश्चैव,  
 असञ्ज्ञिनश्चैव, एवं पंचेन्द्रियाः सर्वे विकलेन्द्रियवर्जा यावद् वानव्यन्तराः ९ ।  
 द्विविधा—नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—भाषकाश्चैव अभाषकाश्चैव, एवमेकेन्द्रियवर्जाः  
 सर्वे यावद् वैमानिकाः १० । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सम्यग्दृष्टिकाश्चैव  
 मिथ्यादृष्टिकाश्चैव, एवमेकेन्द्रियवर्जाः सर्वे यावद् वैमानिकाः ११ । द्विविधा  
 नैरयिका प्रज्ञप्तास्तद्यथा—परीतसांसारिकाश्चैव अनन्तसांसारिकाश्चैव, यावद् वैमा-  
 निकाः १२ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—संख्येयकालसमयस्थितिकाश्चैव  
 असंख्येयकालसमयस्थितिकाश्चैव, एवं पंचेन्द्रिया एकेन्द्रियविकलेन्द्रियवर्जा यावद्  
 वानव्यन्तराः १३ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सुलभवोधिकाश्चैव दुर्लभ-  
 वोधिकाश्चैव यावद् वैमानिकाः १४ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—कृष्ण-  
 पाक्षिकाश्चैव शुक्लपाक्षिकाश्चैव, यावद् वैमानिकाः १५ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञ-  
 प्तास्तद्यथा—चरमाश्चैव, अचरमाश्चैव, यावद् वैमानिकाः १६ ॥ सू० २३ ॥

टीका—‘दुविहा नेरइया’ इत्यादि—

भविकदण्डके द्विविधा नैरयिकाः भवन्ति—भवसिद्धिका अभवसिद्धिकाश्चेति । तत्र  
 भवसिद्धिकाः—भवेन भवाभ्यां भवैर्वा, भाविनी वा सिद्धिर्येषां ते तथा । तद्विपरीता

जीवाधिकार होने से ही अब सूत्रकार भव्यादि सोलह विशेषणों द्वारा  
 दण्डककी प्ररूपणा करते हैं—“दुविहा नेरइया पणत्ता” इत्यादि ॥२३॥

भविक दण्डक में नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं एक भवसिद्धिक  
 और दूसरे अभवसिद्धिक जिन्हें एकभव से या दो भवों से या अनेक  
 भवों से सिद्धि प्राप्त होती है वे भवसिद्धिक नैरयिक हैं और जो इनसे  
 विपरीत हैं अभव्य हैं—वे अभवसिद्धिक हैं । “यावद् वैमानिकाः” १

जीवाधिकार आली रह्यो छे, तेथी सूत्रकार उवे लव्यादि १६ विशेषणो  
 द्वारा दण्डकनी प्ररूपणा करे छे—“दुविहा नेरइया पणत्ता” इत्यादि ॥ २३ ॥  
 भविक दण्डका नारको जे प्रकारना कइया छे—(१) भवसिद्धिक अने (२)  
 अभवसिद्धिक जेभने ओक भव, जे भव के अनेक भवो करीने सिद्धि प्राप्त  
 याय छे, ओवा नारक उवेने भवसिद्धिक नारको कइ छे तेमनाथी विपरीत

चेव, जाव वेमाणिया ६ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा  
 सहंदिया चेव अण्णदिया चेव, जाव वेमाणिया ७ । दुविहा  
 णेरइया पण्णत्ता त जहा पच्चत्तगा एव, अपच्चत्तगा एव, जाव  
 वेमाणिया ८ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा-सन्नी चेव  
 असन्नी चेव, एव पच्चदिया सव्वे विगळिदियवज्जा जाव षाण  
 मतरा ९ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा मासगा चेव  
 अमासगा चेव, एवमेगिदियवज्जा सव्वे जाव वेमाणिया १० ।  
 दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा सम्मद्विट्ठिया चेव मिच्छद्वि  
 ट्ठिया चेव, एव एगिदियवज्जा सव्वे जाव वेमाणिया ११ ।  
 दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा-परिसससारिया चेव अणंत  
 ससारिया चेव, जाव वेमाणिया १२ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता  
 त जहा सखेज्जकालसमयद्विइया चेव असखेज्जकालसमयद्वि  
 इया चेव, एव पच्चदिया एगिदियविगळिदियवज्जा जाव  
 षाणमतरा १३ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा-सुलभबो  
 हिया चेव, दुलहबोहिया चेव । जाव वेमाणिया १४ । दुविहा  
 णेरइया पण्णत्ता त जहा-कण्हपक्खिया चेव सुक्कपक्खिया चेव,  
 जाव वेमाणिया १५ । दुविहा णेरइया पण्णत्ता त जहा-अरिमा  
 चेव अअरिमा चेव, जाव वेमाणिया १६ ॥ सू० २३ ॥

उपाया—द्विविधा नैरयिकाः प्रपञ्चास्तयया-भरसिद्धिकाश्चैव अमरसिद्धिकाश्चैव,  
 परम्परोपपन्नकश्चैव यावद् वेमानिकाः १ । द्विविधा नैरयिकाः प्रपञ्चास्तयया-अनन्त  
 रोपपन्नकाश्चैव यावद् वेमानिकाः २ । द्विविधा नैरयिका प्रपञ्चास्तयया-गतिमपापन्न  
 काश्चैव भगतिमपापन्नकाश्चैव, यावद् वेमानिका ३ । द्विविधा नैरयिका प्रपञ्चास्तयया

प्रथमसमयोपपन्नकाश्चैव, अप्रथमसमयोपपन्नकाश्चैव, यावद् वैमानिकाः ४ । द्विविधा  
 नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—आहारकाश्चैव अनाहारकाश्चैव, यावद् वैमानिकाः ५ ।  
 द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—उच्छ्वासकाश्चैव नोउच्छ्वासकाश्चैव, यावद्  
 वैमानिकाः ६ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सेन्द्रियाश्च अनिन्द्रियाश्चैव,  
 यावद् वैमानिकाः ७ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—पर्याप्तकाश्चैव अपर्याप्त-  
 काश्चैव, यावद् वैमानिकाः ८ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सञ्ज्ञिनश्चैव,  
 असञ्ज्ञिनश्चैव, एवं पंचेन्द्रियाः सर्वे विकलेन्द्रियवर्जा यावद् वानव्यन्तराः ९ ।  
 द्विविधा—नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—भाषकाश्चैव अभाषकाश्चैव, एवमेकेन्द्रियवर्जाः  
 सर्वे यावद् वैमानिकाः १० । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सम्यग्दृष्टिकाश्चैव  
 मिथ्यादृष्टिकाश्चैव, एवमेकेन्द्रियवर्जाः सर्वे यावद् वैमानिकाः ११ । द्विविधा  
 नैरयिका प्रज्ञप्तास्तद्यथा—परीतसांसारिकाश्चैव अनन्तसांसारिकाश्चैव, यावद् वैमा-  
 निकाः १२ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—संख्येयकालसमयस्थितिकाश्चैव  
 असंख्येयकालसमयस्थितिकाश्चैव, एवं पंचेन्द्रिया एकेन्द्रियविकलेन्द्रियवर्जा यावद्  
 वानव्यन्तराः १३ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सुलभबोधिकाश्चैव दुर्लभ-  
 बोधिकाश्चैव यावद् वैमानिकाः १४ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—कृष्ण-  
 पाक्षिकाश्चैव शुक्लपाक्षिकाश्चैव, यावद् वैमानिकाः १५ । द्विविधा नैरयिकाः प्रज्ञ-  
 प्तास्तद्यथा—चरमाश्चैव, अचरमाश्चैव, यावद् वैमानिकाः १६ ॥ सू० २३ ॥

टीका—‘दुविहा णेरइया’ इत्यादि—

भविकदण्डके द्विविधा नैरयिकाः भवन्ति—भवसिद्धिका अभवसिद्धिकाश्चेति । तत्र  
 भवसिद्धिकाः—भवेन भवाभ्यां भवै वा, भाविनी वा सिद्धिर्येषां ते तथा । तद्विपरीता

जीवाधिकार होने से ही अब सूत्रकार भव्यादि सोलह विशेषणों द्वारा  
 दण्डककी प्ररूपणा करते हैं—“दुविहा नेरइया पणत्ता” इत्यादि ॥२३॥

भविक दण्डक में नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं एक भवसिद्धिक  
 और दूसरे अभवसिद्धिक जिन्हें एकभव से या दो भवों से या अनेक  
 भवों से सिद्धि प्राप्त होती है वे भवसिद्धिक नैरयिक हैं और जो इनसे  
 विपरीत हैं अभव्य हैं—वे अभवसिद्धिक हैं । “यावद् वैमानिकाः” १

लुवाधिकार वाली रहो छे, तेथी सूत्रकार हवे लव्यादि १६ विशेषणो  
 द्वारा दण्डकनी प्ररूपणा करे छे—“दुविहा नेरइया पणत्ता” इत्यादि ॥ २३ ॥  
 भविक दण्डकमे नैरयिक दो प्रकारना कहे छे—(१) भवसिद्धिक अने (२)  
 अभवसिद्धिक जेभने अेक भव, जे भव के अनेक लवो करीने सिद्धि प्राप्त  
 थाय छे, अेवा नारक लवोने भवसिद्धिक नारको कहे छे. तेभनाथी विपरीत

अमवसिद्धिका अमव्या इत्यर्थ, यावद् वैमानिका । इतिपदं पर्याप्तपर्याप्तकनैरपि  
 फरुपाष्टमव्यवर्त्यन्तं वाच्यम् । अनन्तरदण्डके-अनन्तरोपपन्नका-न विद्यत अनन्तरं-  
 समादि व्ययधान उपपात्ते यथा वे स्या एकस्मादनन्तरमुत्पन्ना यद्वा विविक्षि  
 त्वदेशापेक्षया येऽनन्तरतपोत्पन्नास्ते-मात्रा इत्यर्थ, परम्परोपपन्नाः परम्परोप  
 पन्ना २ । गतिदण्डके गतिसमापन्नाः-नरक गच्छन्त, इतरं तु नारकत्वमाप्ताः नरके

इसी तरह का कथन यावत् वैमानिक देवों तक कर लेना चाहिये ?  
 “यावद् वैमानिकाः” यह पद पर्याप्त अपर्याप्तक नैरयिक रूप ८ वें सूत्र  
 तक कहना चाहिये-अनन्तरदण्डक में नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं  
 -एक अनन्तरोपपन्नक नैरयिक और दूसरे परम्परोपपन्नक नैरयिक  
 जिनकी उत्पत्ति में समादिका व्ययधान नहीं होता है-वे अनन्तर  
 उपपन्नक हैं एक नारक की उत्पत्ति के अनन्तर जिनकी उत्पत्ति हो  
 जाती है वे अनन्तर उपपन्नक है । अथवा-विवक्षितदेश की अपेक्षा से  
 जो अनन्तररूप से उत्पन्न हुए हैं वे अनन्तर उपपन्नक हैं । जो परम्प  
 रा रूप से उत्पन्न होते हैं वे परम्परोपपन्नक नैरयिक हैं । इसी तरह का  
 कथन यावत् वैमानिक तक जानना चाहिये २ गति दण्डक में गतिस  
 मापन्नक और अगतिसमापन्नक के भेद से नारक दो प्रकार के हैं जो  
 जीव नारकगति में जाने वाले हैं वे नारकगति समापन्नक और जो नारक

के नारके छे-अलभ्य के नारके छे-तेमने अलवसिद्धिक छे छे “यावद्  
 वैमानिकाः” आ प्रकारनु कथन वैमानिक देवो पवन्तना छेवे विवे मनु जेधजे  
 ‘यावद् वैमानिका’ आ पदनु कथन पर्याप्त अपर्याप्तक नैरयिकरूप ८ भां  
 सूत्र सुधी मनु जेधजे अनन्तर दण्डकमां नारके के प्रकारना कथा छे-(१)  
 अनन्तरुपपन्नक नारके जने (२) परम्परोपपन्नक नारके जेमनी उत्पत्तिमां  
 समादिनु व्ययधान (आतिश) पठनु नधी, जेवां नारकेने अनन्तर उपपन्नक  
 नारके छे छे जेक नारकी उत्पत्तिना अनन्तर (उत्पत्ति अइ) जेमनी  
 उत्पत्ति मर्ध जय छे जेवां नारकेने अनन्तर उपपन्नक छे छे अथवा विव  
 क्षित (अमुक) देशनी अपेक्षाजे के अनन्तर रूपे उत्पन्न कथां छे ते नार  
 केने अनन्तरुपपन्नक छे छे के नारके परम्परा रूपे उत्पन्न कथां छे तेमने  
 परम्परोपपन्नक नारके छे छे आ प्रकारना जेहेनुं कथन वैमानिको पवन्तना  
 छेवे विवे मनु समज्यु ॥ २ ॥

अतिदण्डकमां अति समापन्नक जने अति समापन्नकना जेहवीं नारकेना  
 नु प्रकार कथां छे के छेवे नरकजतिमां जनाय जेय छे ते छेवेने नरकजति

वर्तमाना इत्यर्थः३ । समयदण्डके-प्रथमसमयोपपन्नकाः-प्रथमः समय उपपन्नानां  
 येषां ते तयोक्ताः, तद्विना अप्रथमसमयोपपन्नकाः४। आहारकदण्डके-आहारकाः=  
 आहारपर्याप्तिसम्पन्नाः, तद्विना अनाहारकाः-विग्रहगतौ त्रसनाडीमपेक्ष्य एकं द्वौ वा  
 समयौ, नाडी बहिर्गत त्रसापेक्षया तु त्रीन् समयानिति भावः५। उच्छ्वासदण्डके=

अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं-नारक में वर्तमान हैं-वे अगति समापन्नक  
 हैं ३ इसी तरह का कथन यावत् वैमानिक देवों तक जानना चाहिये  
 समयदण्डक में-प्रथमसमयोपपन्नक और अप्रथमसमयोपपन्नक के भेद  
 से नारक दो प्रकार के हैं जिन उपपन्ननारकों का प्रथम समय होता है  
 वे प्रथम समय उपपन्नक नारक हैं तथा इनसे भिन्न जो नारक हैं वे  
 अप्रथम समय उपपन्नक नारक हैं इसी तरह का कथन यावत् वैमानिक  
 देवों तक जानना चाहिये ४, आहारकदण्डक में-आहारक और अना-  
 हारक के भेद से नैरयिक दो प्रकार के हैं-आहारपर्याप्ति से जो सम्पन्न  
 हैं वे आहारक और जो इनसे भिन्न हैं वे अनाहारक हैं इसी तरह से  
 आहारक और अनाहारकके भेदोंका कथन वैमानिक देवों तक कर लेना  
 चाहिये ५ विग्रहगति में त्रसनाडी की अपेक्षा लेकर एक समय तक दो  
 समय तक और तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है तथा त्रस

समापन्नक नारको कडे छे जे एवो नारक अवस्थाने प्राप्त करी युक्त्या छे,  
 नरकोभा विद्यमान छे-तेमने अगति समापन्नक कडे छे आ प्रकारनु कथन  
 वैमानिक पर्यन्तना एवो विषे पणु समज्जु ॥ ३ ॥

समय दण्डका प्रथम समयोपपन्नक अने अप्रथम समयोपपन्नकना लेदथी  
 जे प्रकारना नारको कहे छे जे उपपन्न ( उत्पन्न थयेला ) नारकोने प्रथम  
 समय होय छे, ते नारकोने प्रथम समय उपपन्नक नारको कडे छे ते नार-  
 कोथी लिन्न एवो जे नारको होय छे तेमने अप्रथम उपपन्नक नारको कडे  
 छे जेन प्रकारनु कथन वैमानिक देवो पर्यन्तना एवो विषे पणु समज्जु' ॥४॥

आहारक दण्डकां आहारक अने अनाहारकना लेदथी नारकोना जे प्रकार  
 कहे छे. आहार पर्याप्तिथी युक्त जे नारको होय छे तेमने आहारक नारको  
 कडे छे अने तेमनाथी लिन्न जे नारको छे तेमने अनाहारक नारको कडे छे  
 जेन प्रमाणे आहारक अने अनाहारकना लेदोनुं कथन वैमानिक देवो पर्यन्तना  
 एवो विषे पणु समज्जुः. विग्रह गतिमां ( मोडावाणी, वणांठवाणी गतिमां )  
 त्रसनाडीनी अपेक्षाजे एक समय सुधी, जे समय सुधी अने त्रणु समय सुधी  
 एव आहारक रहे छे तथा त्रसनाडीमाथी बहिर्गतत्रसनी अपेक्षाजे त्रणु  
 समय सुधी अनाहारक रहे छे ॥ ५ ॥

अमवसिद्धिका अमव्या इत्यर्थ, यावद् वैमानिका । इतिपदं पर्याप्तपर्याप्तकनैरयि  
 कस्याष्टमसूत्रपर्यन्तं प्राच्यम् । अनन्तरदण्डके-अनन्तरोपपन्नका-न विद्यत अनन्तरं-  
 समपादि व्यवधान उपपाठे येषां तेषां एकास्मान्तरमुत्पन्ना यद्वा विविचि-  
 त्वापेक्षया येऽनन्तरतयोत्पन्नास्ते-भाषा इत्यर्थ, परम्परोपपन्नाः परम्परोप-  
 पन्ना २। गतिदण्डके गतिसमापन्नका-नरक गच्छन्त, इतरे तु नारकत्वमाप्ताः नरके

इसी तरह का कथन यावत् वैमानिक देवों तक कर लेना चाहिये ?  
 “यावद् वैमानिकाः” यह पद पर्याप्त अपर्याप्तक नैरयिक रूप ८ में सूत्र  
 तक कहना चाहिये-अनन्तरदण्डक में नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं  
 -एक अनन्तरोपपन्नक नैरयिक और दूसरे परम्परोपपन्नक नैरयिक  
 जिनकी उत्पत्ति में समयादिका व्यवधान नहीं होता है-वे अनन्तर  
 उपपन्नक हैं एक नारक की उत्पत्ति के अनन्तर जिनकी उत्पत्ति हो  
 जाती है ये अनन्तर उपपन्नक हैं । अथवा-विचक्षितवेषा की अपेक्षा से  
 जो अनन्तररूप से उत्पन्न हुए हैं वे अनन्तर उपपन्नक हैं । जो परम्प-  
 रा रूप से उत्पन्न होते हैं वे परम्परोपपन्नक नैरयिक हैं । इसी तरह का  
 कथन यावत् वैमानिक तक जानना चाहिये २ गति दण्डक में गतिस-  
 मापन्नक और अगतिसमापन्नक के भेद से नारक दो प्रकार के हैं जो  
 जीव नारकगति में जाने वाले हैं वे नारकगति समापन्नक और जो नारक

के नारके थे-अमव्य के नारके थे-तेमने अमवसिद्धिक कहे थे “यावद्  
 वैमानिकाः” आ प्रकारतु कथन वैमानिक देवों पर्यन्तना लोको विषे यत्तु जेधजे  
 ‘यावद् वैमानिकाः’ आ पठतु कथन पर्याप्त अपर्याप्तक नैरयिकरूप ८ में  
 सूत्र सुधी यत्तु जेधजे अनन्तर दण्डका नारके में प्रकारता कथा छे-(१)  
 अनन्तरोपपन्नक नारके अने (२) परम्परोपपन्नक नारके जेमनी उत्पत्तिमा  
 समयादितु व्यवधान (जातिरा) पठतु नथी, जेषां नारकेने अनन्तर उपपन्नक  
 नारके कहे छे जेके नारकी उत्पत्तिना अनन्तर (उत्पत्ति लड) जेमनी  
 उत्पत्ति यथं जप छे जेषां नारकेने अनन्तर उपपन्नक कहे छे अथवा विच-  
 क्षित (असुख) देशनी अपेक्षाके जे अनन्तर इपे उत्पन्न यथा छे ते नार-  
 केने अनन्तरोपपन्नक कहे छे जे नारके परम्परा इपे उत्पन्न यथा छे तेमने  
 परम्परोपपन्नक नारके कहे छे आ प्रकारता सेदोतु कथन वैमानिक पर्यन्तना  
 लोको विषे यत्तु अमव्य ॥ २ ॥

अतिदण्डका अति समापन्नक अने अति समापन्नका सेदधी नारकेना  
 में प्रकार कथा छे जे लोको नरकअतिमा अनारक कथ छे ते लोकोने नरकगति

सञ्ज्ञिनः=मनःपर्याप्तिपन्ना, तद्धिन्ना असञ्ज्ञिनः। 'एवं पंचिन्द्रिया' इत्यादि-एवम्  
 =अमुना प्रकारेण यथा नारका सञ्ज्ञयसञ्ज्ञिभेदेन द्विविधाः प्रोक्तास्तथा विकलेन्द्रिय-  
 वर्जाः-विकलानि=अपरिपूर्णानि संख्यामाश्रित्य इन्द्रियाणि येषां ते विकलेन्द्रियाः-  
 पृथिव्यादयः पञ्चस्थावराः, द्वित्रि चतुरिन्द्रियाश्च, तान् वर्जयित्वा येऽन्ये चतुर्विं-  
 शतिदण्डके पञ्चेन्द्रियाः अमुरादयस्ते सर्वेऽपि सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनश्च भवन्ति क्रिय-  
 दवधि ? इत्याह- 'जात्र वाणमंतरा' इति-यावद् वानव्यन्तरपर्यन्ता इति।  
 नारकादयो वानव्यन्तरावसाना असञ्ज्ञिनो न भवन्ति किन्तु-असञ्ज्ञिभ्य आगत्य  
 नारकादितयोत्पद्यन्ते तदपेक्षया तेषामसञ्ज्ञित्वं विज्ञेयम्। असञ्ज्ञिनश्च मृत्वा

दो प्रकार के कहे गये हैं-एक संज्ञी और दूसरे असंज्ञी इनमें मनः  
 पर्याप्ति से जो सम्पन्न हैं वे संज्ञी और जो मनः पर्याप्ति से युक्त नहीं  
 हैं वे असंज्ञी हैं इसी तरह से इन दो भेदों का कथन यावत् वैमानिक-  
 देवों तक में कर लेना चाहिये " एवं पंचिन्द्रिया " इत्यादि

जिस प्रकार सज्ञी और असंज्ञी के भेद से नारक दो प्रकार के कहे  
 गये हैं उसी प्रकार से विकलेन्द्रियों को-संख्या की अपेक्षा तेह-  
 न्द्रिय और चतुरिन्द्रियों को छोड़कर जो चतुर्विंशति दण्डक में और  
 असुर आदि हैं वे सब भी संज्ञी और असंज्ञी होते हैं-सज्ञी असंज्ञी  
 होने का यह कथन वानव्यन्तरदेवों तक जानना चाहिये यद्यपि नारक  
 से लेकर वानव्यन्तर तक सब जीव असंज्ञी नहीं होते हैं किन्तु असं-  
 ज्ञियों से आकर वे नारकादि रूप से उत्पन्न होते हैं इस अपेक्षा इनमें

संज्ञी दंडकमां नारकोना जे प्रकार कह्या छे-(१) संज्ञी अने (२) असंज्ञी.  
 जे नारको मन पर्याप्तिथी युक्त होय छे तेमने संज्ञी नारको कहे छे. जे  
 नारको मन पर्याप्तिथी युक्त होयता नथी तेमने असंज्ञी नारको कहे छे आ  
 प्रमाणे जे आ जे लेहोनु कथन वैमानिक देवो पर्यन्तना जेवो विषे पणु  
 समजवुं. " एवं पंचिन्द्रिया " इत्यादि

जेम संज्ञी अने असंज्ञीना लेहथी नारको जे प्रकारना कह्या छे, तेम  
 विकलेन्द्रियोने छोडीने ( द्वीन्द्रियो, तेधन्द्रियो अने चतुरिन्द्रियोने छोडीने )  
 २४ दंडकना जे असुरकुमार आदि भाडीना जेवो छे, तेमना पणु संज्ञी अने  
 असंज्ञीना लेहथी जे प्रकार पडे छे संज्ञी, असंज्ञी रूप होवानुं आ कथन  
 वानव्यन्तर देवो पर्यन्तना अथा जेवो विषे पणु समजवुं जेधजे जे डे  
 नारकथी लभने वानव्यन्तर पर्यन्तना समस्त जेवो असंज्ञी होतां नथी, परन्तु  
 असंज्ञीजोभाथी आवीने तेजो नारकादि रूपे उत्पन्न थय छे, ते अपेक्षाजे



उच्छ्वासका - उच्छ्वासपर्याप्तिपक्षा, तदितरे त नोउच्छ्वासकाः ६। इन्द्रिय  
दण्डके सेन्द्रिया = इन्द्रियपर्याप्तिमन्त, इतरे इन्द्रियपर्याप्तिविकलाः ७। पर्याप्तद  
ण्डके - पर्याप्तिहाः पर्याप्तनामकर्मोद्यात्, तद्धिना अपर्याप्तकाः ८। सद्भिदण्डके-

नाडी से परिर्गत घस की अपेक्षा लेकर तीन समय तक जीव अना  
हारक रहता है उच्छ्वासदण्डकमें नारक दो प्रकार के कहे गये हैं-एक  
उच्छ्वासक और दूसरे नो उच्छ्वासक जो नारक उच्छ्वासपर्याप्ति से  
युक्त हैं वे उच्छ्वासक और जो इनसे भिन्न हैं वे नो उच्छ्वासक है इसी  
प्रकार से इन भेदों का कथन यावत् वैमानिक देवों तक में करना चाहिये  
६ इन्द्रियदण्डक में-नारक दो प्रकार के कहे गये हैं-एक सेन्द्रिय और  
दूसरे अनिन्द्रिय जिनकी इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण हो चुकी वे सेन्द्रिय हैं  
और जो इन्द्रिय पर्याप्ति से विकल हैं वे अनिन्द्रिय हैं ७ इसी तरह से  
इन भेदों का कथन यावत् वैमानिक देवों तक में कर लेना चाहिये पर्या  
प्तदण्डक में नैरयिक दो प्रकार के कहे गये हैं-एक पर्याप्तक और दूसरे  
अपर्याप्तक जिनको पर्याप्तनामकर्मका उद्य है वे पर्याप्तक हैं और इनसे  
भिन्न जो हैं वे अपर्याप्तक हैं ८ इसी तरह से इन दो भेदों का कथन  
यावत् वैमानिक देवों तक में कर लेना चाहिये सद्भिदण्डक में-नारक

उच्छ्वासक इच्छमा नारक के प्रकारना कथा छे-(१) उच्छ्वासक जने  
(२) नोउच्छ्वासक के उच्छ्वास पर्याप्तिधी युक्त छे तेमने उच्छ्वासक कहे  
छे जने तेमनाडी बिल के नारके छे तेमने नोउच्छ्वासक कहे छे जना  
प्रकारना सेहोनुं कथन वैमानिक देवो पर्यन्तना लवे। विषे पक्ष यमक्यु ६  
छन्द्रिय इच्छमा नारक के प्रकारना कथा छे (१) सेन्द्रिय जने (२)  
अनिन्द्रिय के नारकेनी छन्द्रिय पर्याप्ति धर्ष युक्ती छे ते नारकेने  
सेन्द्रिय नारके कहे छे परन्तु के नारके छन्द्रिय पर्याप्तिधी विकल (रहित)  
छे तेमने अनिन्द्रिय कहे छे जना प्रकारना सेहोनुं कथन वैमानिक देवो पर्यन्तना  
लवे। विषे पक्ष यवु लेश्वरि ॥ ७ ॥

पर्याप्तक इच्छमा नारकेना के पकार कथा छे-(१) पर्याप्तक जने (२)  
अपर्याप्तक के नारकेना पर्याप्त नाम कर्मना कथन छे ते नारकेने पर्याप्तक  
नारके कहे छे जने तेमनाडी गुया के नारके छे तेमने अपर्याप्तक नारके  
कहे छे जेव प्रमाद्ये जना के सेहोनुं कथन वैमानिक देवो पर्यन्तना लवे।  
विषे पक्ष यवु लेश्वरि ॥ ८ ॥

सञ्ज्ञिनः=मनःपर्याप्तिसम्पन्नाः, तद्भिन्ना असञ्ज्ञिनः । 'एवं पंचिदिया' इत्यादि-एवम्  
 =अमुना प्रकारेण यथा नारका सञ्ज्ञिसञ्ज्ञिभेदेन द्विविधाः प्रोक्तास्तथा विकलेन्द्रिय-  
 वर्जाः-विकलानि=अपरिपूर्णानि संख्यामाश्रित्य इन्द्रियाणि येषां ते विकलेन्द्रियाः-  
 पृथिव्यादयः पञ्चस्थावराः, द्वित्रि चतुरिन्द्रियाश्च, तान वर्जयित्वा येऽन्ये चतुर्विं-  
 शतिदण्डके पञ्चेन्द्रियाः असुरादयस्ते सर्वेऽपि सञ्ज्ञिनोऽसञ्ज्ञिनश्च भवन्ति किय-  
 दवधि ? इत्याह-'जाव वाणमंतरा' इति-यावद् वानव्यन्तरपर्यन्ता इति ।  
 नारकादयो वानव्यन्तरावसाना असञ्ज्ञिनो न भवन्ति किन्तु-असञ्ज्ञिभ्य आगत्य  
 नारकादितयोत्पद्यन्ते तदपेक्षया तेषामसञ्ज्ञित्वं विज्ञेयम् । असञ्ज्ञिनश्च मृत्वा

दो प्रकार के कहे गये हैं-एक संज्ञी और दूसरे असंज्ञी इनमें मनः  
 पर्याप्ति से जो सम्पन्न हैं वे संज्ञी और जो मनः पर्याप्ति से युक्त नहीं  
 हैं वे असंज्ञी हैं इसी तरह से इन दो भेदों का कथन यावत् वैमानिक-  
 देवों तक में कर लेना चाहिये " एवं पंचिदिया " इत्यादि

जिस प्रकार सञ्ज्ञी और असंज्ञी के भेद से नारक दो प्रकार के कहे  
 गये हैं उसी प्रकार से विकलेन्द्रियों को-संख्या की अपेक्षा तेह-  
 न्द्रिय और चतुरिन्द्रियों को छोड़कर जो चतुर्विंशति दण्डक में और  
 असुर आदि हैं वे सब भी संज्ञी और असंज्ञी होते हैं-सञ्ज्ञी असंज्ञी  
 होने का यह कथन वानव्यन्तरदेवों तक जानना चाहिये यद्यपि नारक  
 से लेकर वानव्यन्तर तक सब जीव असंज्ञी नहीं होते हैं किन्तु असं-  
 ज्ञियों से आकर वे नारकादि रूप से उत्पन्न होते हैं इस अपेक्षा इनमें

संज्ञी दंडकमा नारकोना ये प्रकार कथा छे-(१) सञ्ज्ञी अने (२) असंज्ञी.  
 ये नारको मन पर्याप्तिथी युक्त होय छे तेमने संज्ञी नारको कहे छे ये  
 नारको मन पर्याप्तिथी युक्त होता नथी तेमने असञ्ज्ञी नारको कहे छे आ  
 प्रमाणे न आ ये लेहोतु कथन वैमानिक देवो पर्यन्तना एवो विषे पणु  
 समजवु " एवं पंचिदिया " इत्यादि

जेम सञ्ज्ञी अने असंज्ञीना लेहथी नारको ये प्रकारना कथा छे, तेमं  
 विकलेन्द्रियोने छे डीने ( द्वीन्द्रियो, तेधन्द्रियो अने चतुरिन्द्रियोने छोडीने )  
 २४ दंडकना ये असुरकुमार आदि भाडीना एवो छे, तेमना पणु सञ्ज्ञी अने  
 असंज्ञीना लेहथी ये प्रकार पडे छे संज्ञी, असञ्ज्ञी इपे होवानुं आ कथन  
 वानव्यन्तर देवो पर्यन्तना एवो एवो विषे पणु समजवु लेधजे जे के  
 नारकथी लधने वानव्यन्तर पर्यन्तना समस्त एवो असञ्ज्ञी होता नथी, परन्तु  
 असंज्ञीआभाथी आनीने तेजो नारकादि इपे उत्पन्न थय छे, ते अपेक्षाजे

નારકાદિયુ ષ્યન્તરાષ્ટાનેષ્વેષોત્પન્નતે ન તુ ન્યોતિષ્કવૈમાનિકેષુ મતઃ 'જ્ઞાણમંતરા' ઇતિ મોક્તમ્ ૧ । માપકદ્રવ્યકે-માપકાઃ=માપાપર્ણાસિમન્તાઃ, તદ્વિપરીતા અમાપકાઃ અપર્ણાસાવસ્થાયામિતિ માવ । એવમ્=અમુના પ્રકારેણ એકેન્દ્રિયવર્ગા-એકેન્દ્રિયાન્ વિહાય સર્વે યાવદ્ વૈમાનિકા-વૈમાનિકરૂપ્યન્તા યોષ્યા ૧૦ । દષ્ટિદ્રવ્યકે સમ્યગ્દષ્ટિકા મિથ્યાદષ્ટિકાદિવેતિ । એવમેકેન્દ્રિયવર્ગાઃ સર્વે

અસંજ્ઞિતા કહી ગઈ જાનના જાહિયે અસજ્ઞી જીવ મરકર નારક સે હેકર ન્યન્તરાન્ત તક કે જીવોં મેં હી ઉત્પન્ન હોતે હીં । જ્યોતિષ્ક વૈમાનિક વેષોં મેં વે ઉત્પન્ન નહીં હોતે હીં । ઇસીલિયે "જ્ઞાણ મંતરા" એસા પાઠ કહા ગયા હે 'માપાદ્રવ્યક મેં નૈરપિક દો પ્રકાર કે હોતે હીં એક માપક ઓર વૃસરે અમાપક 'માપાપર્ણાસિચાલે' માપક ઓર ઇનસે વિપરીત અમાપક હીં અર્થાત્ અપર્ણાસાવસ્થાચાલે હીં વે અમાપક હીં "એવમેકેન્દ્રિય વર્ગાઃ સર્વે યાવદ્ વૈમાનિકા ૧૦" ઇસી તરહ કા કપન ઇન દોનોં કા એકેન્દ્રિય જીવોં કો છોડકર વૈમાનિકવેષોં તક કર લેના જાહિયે દષ્ટિ દ્રવ્યક મેં નૈરપિક દો પ્રકાર કે હોતે હીં એક સમ્યગ્દષ્ટિક ઓર વૃસરે મિથ્યાદષ્ટિક એકેન્દ્રિય જીવોં કો છોડકર યાવત્ વૈમાનિક વેષોં તક મવ મેં સમ્યગ્દષ્ટિત્વ કા ઓર મિથ્યાદષ્ટિત્વ કા કપન કર લેના જાહિયે યહાં એકેન્દ્રિયોં કો છોડા ગયા હે ડસકા કારણ સનમેં સમ્યગ્દ

તે જીવોમાં અસજ્ઞિતા કહેવામાં આવી છે, એમ સમજવું અસજ્ઞી જીવો મરીને નારકથી લઇને અન્તર પર્ણાન્તના જીવોમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે જ્યોતિષ્ક અને વૈમાનિક જીવોમાં તેઓ ઉત્પન્ન થતાં નથી તેથી "જ્ઞાણ મંતરા" "શાન્ત્યન્તરે પર્ણાન્તના જીવો" એવો પૂર્વોક્ત સૂત્રપાઠ આપવામાં આ ચો છે & છે જાણ દ્રવ્યકમાં નારકોના બે પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) માપક અને (૨) અમાપક જાણા 'પર્ણાસિવાજ્ઞાને' માપક કહે છે અને જાણા પર્ણાસિ વિનાના નારકોને અમાપક કહે છે એટલે કે અપર્ણાસાવસ્થાવાળા નારકો અમાપક કહે છે 'એવમેકેન્દ્રિયવર્ગાઃ સર્વે યાવદ્ વૈમાનિકાઃ" આ પ્રકારના બે સેટોનું કવન એકેન્દ્રિયો સિવાયના જાહીના વૈમાનિકો પર્ણાન્તના સમસ્ત જીવો વિષે પણ સમજવું જોઈએ ॥ ૧૦ ॥

દષ્ટિ દ્રવ્યકમાં નારકો બે પ્રકારના કહ્યાં છે-(૧) સમ્યગ્દષ્ટિક અને (૨) મિથ્યાદષ્ટિક આ પ્રકારના બે સેટોનું કવન એકેન્દ્રિયો સિવાયના જાહીના સમસ્ત વૈમાનિકો પર્ણાન્તના જીવો વિષે શ્રદ્ધા કરવું એકેન્દ્રિયોમાં સમ્યગ્દષ્ટિ

યાવદ્ વૈમાનિકાઃ, એકેન્દ્રિયાણાં સમ્યક્ત્વં નાસ્તિ । દ્વીન્દ્રિયાદીનાં તુ સાસ્વાદન-સમ્યક્ત્વં ભવેદપીતિ—' ઈર્ગિદિયવજ્જા ' ઇત્યુક્તમ્ ૧૧ । સંસારિદણ્ડકે-પરીતસંમા-રિકાઃ-પરીતઃ=પરિમિતઃ સંસારો યેષાં તે તથોક્તાઃ સંક્ષિપ્તમત્ત્વા ઇત્યર્થઃ । અનન્ત-સાંસારિકાઃ-અનન્તઃ=અન્તરહિતઃ અમઘ્યાપેક્ષયા સંસારો યેષાં તે તથા, યાવદ્ વૈમાનિકાઃ ૧૨ । સ્થિતિદણ્ડકે-સંખ્યેયકાલસમયસ્થિતિકાઃ-કાલઃ-મૃત્યુરપિસ્વાત્, સમયઃ-આચારોઽપિ સ્યાદિત્યત્ કાલશ્વાસૌ સમયશ્ચેતિ કાલસમયઃ, સંખ્યેયઃ વર્ષપ્રમાણતઃ કાલસમયો યસ્યાં સા સંખ્યેયકાલસમયા, સા સ્થિતિઃ=અવસ્થાન યેષાં તે તથોક્તાઃ દશસઢસ્રવર્ષાદિસ્થિતિમન્ત ઇત્યર્થઃ, તદ્વિઘ્નાસ્તુ-અસંખ્યેયકાલ-

ષ્ટિત્વ કા અભાવ હૈ તથા જો દ્વીન્દ્રિયાટિક જીવ હૈં ડનમૈં સાસ્વાદન સમ્યક્ત્વ હો મી સકતા હૈ હસીલિચે હસ પ્રકરણ મૈં “ ઈર્ગિદિય વજ્જા ” ંસા કહા ગયા હૈ સંસારદણ્ડક મૈં નૈરયિક દો પ્રકાર કૈ કહે ગયે હૈં- ંક પરીતસાંસારિક ંર ઢસરે અનન્તસાંસારિક જિનકા સંસાર પરિ-મિત રહ ગયા હૈં વે પરીતસાંસારિક હૈં, અર્થાત્ સંક્ષિપ્ત રૂપવાલે નૈરયિક પરીતસાંસારિક હૈં અમઘ્યાપેક્ષા સે જિનકા સંસાર અન્તરહિત હૈ વે અનન્તસાંસારિક નૈરયિક હૈં, હસી તરહ કા કથન યાવત્ વૈમાનિક જીવોં તક મૈં જાનના ચાહિચે ૧૨ સ્થિતિદણ્ડક મૈં નૈરયિક દો પ્રકાર કૈ કહે ગયે હૈં-ંક સંખ્યાતકાલ સમય સ્થિતિક ઢસરે અસંખ્યાતકાલ સમય સ્થિતિક કાલ નામ મૃત્યુ કા મી હૈ ંર સમય નામ આચાર કા મી હૈ અતઃ ંસા કાલ સમય યહાં વિવશ્ચિન નહૈં હુંઆ હૈ કિન્તુ કાલરૂપ

ત્વનો અલાવ હોય છે તેથી તેમને અહીં ઘડણ કરવાનો નિષેધ કયો છે. તથા જે દ્વીન્દ્રિયટિક જીવો છે, તેમનામાં સાસ્વાદન સમ્યક્ત્વ' પણ હોઈ શકે છે તેથી અહીં “ ઈર્ગિદિય વજ્જા ” “ એકેન્દ્રિયો સિવાયના ” જીવોમાં જ આ ભેદો ઘડણ કરવાનું સૂચન થયું છે ॥ ૧૧ ॥

સ સારી ઢડકમા નારકોના જે પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) પરીત સાસારિક અને (૨) અનન્ત સાંસારિક જેમને સસાર પરિમિત રહી ગયો છે એવાં નારકોને પરીત સાસારિક કહે છે અને અભવ્યત્વની અપેક્ષાએ જે નારકોને સંસાર અન્તરહિત છે, એવા નારકોને અનન્ત સાસારિક કહે છે આ પ્રકારના ભેદોનું કથન વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવો વિષે ઘડણ કરવું જોઈએ. ॥ ૧૨ ॥

સ્થિતિ ઢડકમા નારકો જે પ્રકારના કહ્યાં છે-(૧) સંખ્યાતકાલ સમય સ્થિતિક (૨) અસંખ્યાતકાલ સમય સ્થિતિક “ કાળ ” શબ્દ મૃત્યુના અર્થમાં પણ વપરાય છે ‘ સમય ’ શબ્દ આચારના અર્થમાં પણ વપરાય છે. પરન્તુ અહીં એવા કાળસમયની વાત કરી નથી, પરન્તુ કાળરૂપ સમય દ્વારા વર્ષ

સમયસ્થિતિકાઃ પરલોપનાસરુપેયમાગાદિસ્થિતિમન્ત્ત ઇત્યર્થ । एष नारकस्तु  
एकेन्द्रियविकलेन्द्रियवर्जा पञ्चेन्द्रिया=असुरादयो विभ्रया यावद् वानव्यन्तराः ।  
एते संख्यातासख्यातकालमयस्थितिरूपोमयस्त्रमावा भवन्ति, उयोतिष्क वैमा  
निकास्तु न तथा, तेषा नियमाद्-असख्यातकालसमयस्थितिकत्वात् १३ । षोधि-  
दण्डके-सुलभबोधिकाः-सुलभा = सुमाता षोधि=मिनपर्मप्राप्तिर्येषां ते तथा,  
उमिन्ना दुर्लभबोधिका, यावद् वैमानिनाः १४ । पाक्षिकदण्डके-सुलो विदुद

સમય સે ઘર્ષપ્રમાણ ફી અપેક્ષા છેકર જિસ સ્થિતિ મેં અવસ્થાન મેં  
સંસ્થાન કાલ કા સમય હૈ ડેસી સ્થિતિ જિનકી હૈ ય નારક સંસ્થાત  
કાલ સમયસ્થિતિક હૈ અર્થાત્ વ્ધા હજારવર્ષ આદિ ફી સ્થિતિબાલે  
નારક સંસ્થાતકાલ સમય સ્થિતિક કહે ગયે હૈ ઓર જિનકી સ્થિતિ  
પરલોપમ અસંસ્થેય 'માગાદિ રૂપ હૈ યે અસંસ્થાતકાલસમયસ્થિતિક  
નારક હૈ । એકેન્દ્રિય ઇષ વિકલેન્દ્રિયોં કો ઊઠકર પઠષેન્દ્રિય અસુરાવિકોં  
મેં યાવત્ વાનવ્યન્તરોં મેં 'મી ઇસી પ્રકાર કા કથન જાનના ઘાદિયે કપોં  
કિ યે સંસ્થાત ઓર અસંસ્થાત કાલ ફી ડોનોં પ્રકાર ફી સ્થિતિબાલે  
હોતે હૈ । તથા યોતિષ્ક ઓર વૈમાનિકદેવ સંસ્થાતકાલ ફી સ્થિતિબાલે  
નહીં હોતે હૈ યે તો નિયમ સે અસંસ્થાત કાલ ફી ફી સ્થિતિબાલે હોતે  
હૈ ૧૩ । ષોધિદણ્ડકમેં-નૈરયિકજીવ સુલભબોધિક ઓર દુર્લભબોધિક ડોનોં  
પ્રકાર કે હોતે હૈ ૧૪ । જિન્હોં જિનપર્મ પ્રાપ્તિરૂપ ષોધિ સુલભ હૈ યે સુલ-  
ભબોધિક હૈ ઓર જો જનસે મિશ્ર હૈ યે દુર્લભ બોધિક હૈ । સુલભબોધિક

પ્રમાણની અપેક્ષાને જે સ્થિતિમાં-અવસ્થાનમાં સંખ્યાતકાળનો સમય અતીત  
જાય છે એવી સ્થિતિવાળા નારકોને સંખ્યાતકાળ સમય સ્થિતિક કહે છે  
એટલે કે ૬૪ હજાર વર્ષ આદિની સ્થિતિવાળાં નારકોને સંખ્યાતકાળ સ્થિતિક  
કહેવામાં આવ્યાં છે, અને જેમની સ્થિતિ પરલોપમ અસંસ્થેય આગાદિ રૂપ  
છે તેમને અસંખ્યાતકાળ સમય સ્થિતિક નારકો કહ્યાં છે એકેન્દ્રિયો અને  
વિકલેન્દ્રિયો સિવાયના અસુરકુમારોથી લઈને વાનવ્યન્તર વર્ષન્તાના સુલોમાં  
આ બે લોકોનું કથન થવું જોઈએ, કારણ કે તેઓ સંખ્યાત અને અસંખ્યાત  
બંને પ્રકારની સ્થિતિવાળા હોય છે એયોતિષ્ક અને વૈમાનિક દેવો સંખ્યાત  
કાળની સ્થિતિવાળા હોવા નહીં, તેઓ તો નિભમથી જ અસંખ્યાત કાળની  
સ્થિતિવાળા હોય છે ॥ ૧૩ ॥

ષોધિ ૬૪૩માં નારકોના બે પ્રકાર કહ્યા છે-(૧) સુલભ બોધિક અને  
(૨) દુલભ બોધિક જેમને નિનપર્મ પ્રાપ્તિરૂપ બોધિ સુલભ છે તે નારકોને  
સુલભ બોધિક કહે છે, જેમને તે દુલભ છે તેમને દુલભ બોધિક કહે છે આ

त्वात् पक्षः=अभ्युगमो येषां ते तथा, यद्वा-शुक्लानाम्=अस्तिकत्वेन विशुद्धानां पक्षो=वर्गः शुक्लपक्ष'. तत्र भवाः शुक्लपाक्षिकाः-अर्धपुद्गलपरावर्त्ताभ्यन्तरीभूत-संसारा इत्यर्थः । तद्विपरीताः कृष्णपाक्षिकाः, यावद् वैमानिकाः १५ । चरम-दण्डके-चरमाः-येषां नारकादिभवश्चरमस्ते तथा, ते पुनर्नारकादि भवे नोत्प-त्स्यन्ते सिद्धिगमनात् । तदितरे त्वचरमा इति १६ । एवमेते षोडश दण्डकाः ॥ सू० २३ ॥

और दुर्लभबोधिक का यह कथन यावत् वैमानिकदेवों तक में भी इसी प्रकार से जानना चाहिये पाक्षिकदण्डक में नैरयिक जीव शुक्लपाक्षिक और कृष्णपाक्षिक के भेद से दो प्रकार के होते हैं विशुद्ध होने से शुक्ल जिनका पक्ष अभ्युगम मान्यता है वे शुक्लपाक्षिक हैं अथवा-आस्तिक होने से विशुद्धों का जो पक्ष वर्ग है इस वर्ग में जो हों वे शुक्लपाक्षिक हैं इन शुक्लपाक्षिक जीवों का संसार अर्धपुद्गल परावर्तन के भीतर वाला हो जाता है इनसे भिन्न जो होते हैं वे कृष्णपाक्षिक नारक हैं इसी प्रकार के शुक्लपाक्षिक और कृष्णपाक्षिक यावत् वैमानिक तक होते हैं १५ चरमदण्डक में-चरम और अचरम के भेद से नैरयिक दो प्रकार के होते हैं नारकादि रूप भव जिन का चरम होता है-फिर से नारकादि भव में जो उत्पन्न नहीं होते हैं वे चरमनैरयिक हैं ये चर-मनैरयिक नारकपर्याय को छोड़कर मनुष्यपर्याय लेकर सिद्धि में गमन करने वाले होने के कारण पुनः नारकादि भव को ग्रहण नहीं करते हैं ।

अन्ने बोहोतनुं कथन वैमानिक देवो पर्यान्तना लोपोमा पणु अडधु करवु लेधये १४ पाक्षिक दडकमा नारको ये प्रकारना कथा छे-(१) शुक्लपाक्षिक अने (२) कृष्णपाक्षिक. विशुद्ध होवाथी शुक्ल जेमनो पक्ष (अभ्युगम, मान्यता) छे, तेमने शुक्लपाक्षिक कडे छे. अथवा आस्तिक होवाथी जेओ विशुद्धोना समूहमा गणी शकय जेवा छे तेमने शुक्ल पाक्षिक कडे छे. तेमनो संसार वधारिमा वधारे अर्धपुद्गल परावर्तन काण प्रभाषु होय छे तेमनाथी खिन्न जे नारको छे तेमने कृष्णपाक्षिक कडे छे आ अन्ने बोहोवाणा लोपो वैमानिक देवो पर्यान्तना लोपोमा होय छे ॥ १५ ॥

अरम दडकमा नारको ये प्रकारना कथा छे-(१) अरम नारक अने (२) अचरम नारक. नारकादि रूप भव जेमनो अरम (अन्तिम) होय छे, जे लोपो द्वितीया नारकादि भवमा उत्पन्न थवाना नथी, ते लोपोने अरम नारक कडे छे. जेम अरम नारको नरक गतिमाथी मनुष्य गतिमा जधने सिद्धि प्राप्त

समयस्थितिकाः परपोषमासख्येपमागादिस्थितिमन्त इत्यर्थ । एव नारकस्तु  
एकेन्द्रियषिकलेन्द्रियषर्वा पञ्चेन्द्रियाः=मसुरादयो विद्येया यावद् वानव्यन्तराः ।  
एते संख्यातासख्यातकालमयस्थितिरूपमयस्वभावा भवन्ति, ज्योतिष्क वैमा  
निकास्तु न तथा, तेषां नियमाद्-मसख्यातकालमयस्थितिकत्वाद् १२ । बोधि  
दण्डके-सुलभबोधिकाः-सुलभा = सुपाप्ता बोधिः=मिनधर्मप्राप्तिर्येषां ते तथा,  
तस्मिन्ना दुर्लभबोधिका, यावद् वैमानिका १४ । पाञ्चिकदण्डके-शुक्रो विशुद्ध

समय से वर्षप्रमाण की अपेक्षा लेकर जिस स्थिति में अवस्थान में  
संख्यात काल का समय है ऐसी स्थिति जिनकी है वे नारक संख्यात  
काल समयस्थितिक हैं अर्थात् दश हजारवर्ष आदि की स्थितिवाले  
नारक संख्यातकाल समय स्थितिक कहे गये हैं और जिनकी स्थिति  
परपोषम असंख्येय भागादि रूप है वे असंख्यातकालसमयस्थितिक  
भारक हैं । एकेन्द्रिय एव बिकलेन्द्रियों को छोड़कर पञ्चेन्द्रिय असुरादिकों  
में यावत् वानव्यन्तरो में भी इसी प्रकार का कथन जानना चाहिये क्योंकि  
कि ये संख्यात और असंख्यात काल की दोनों प्रकार की स्थितिवाले  
होते हैं । तथा ज्योतिष्क और वैमानिकदेव संख्यातकाल की स्थितिवाले  
नहीं होते हैं वे तो नियम से असंख्यात काल की ही स्थितिवाले होते  
हैं १३ । बोधिदण्डके-नैरयिकजीव सुलभबोधिक और दुर्लभबोधिक दोनों  
प्रकार के होते हैं १४ । जिन्हें जिनधर्म प्राप्तिरूप बोधि सुलभ है वे सुल-  
भबोधिक हैं और जो इनसे भिन्न हैं वे दुर्लभ बोधिक हैं । सुलभबोधिक

प्रमाणनी अपेक्षाने के स्थितिमा-अवस्थानमां सख्यातकालने। समय व्यतीत  
भवते ज्येनी स्थितिवाण नारकेने से पञ्चावकाज समय स्थितिक कहे से  
ज्येदे के इय काल वर्ष आदिनी स्थितिवाण नारकेने सख्यातकाल स्थितिक  
कहेवामां आत्मां से अने ज्येनी स्थिति परथेपम असंख्येय भागादि इय  
से तेमने असंख्यातकाल समय स्थितिक नारके कथा से ज्येन्द्रिये अने  
विद्येन्द्रिये सिवामना असुरकुमारोधी लघुनि वानव्यन्तर पर्यन्तना लघोमां  
या से वेदानुं इयन यवु ज्येदे, कारवु के तेज्ये सख्यात अने असंख्यात  
जे जने प्रकारनी स्थितिवाण देय से ज्योतिष्क अने वैमानिक देवे सख्यात  
कालनी स्थितिवाण देया तथा, तेज्ये तो निबन्धी अ असंख्यात कालनी  
स्थितिवाण देय से ॥ १३ ॥

बोधि दण्डमां नारकेना जे प्रकार कथा से-(१) सुलभ बोधिक अने  
(२) दुर्लभ बोधिक ज्येने जिनधर्म प्राप्तिरूप बोधि सुलभ से ते नारकेने  
सुलभ बोधिक कहे से, ज्येने ते दुर्लभ से तेमने दुर्लभ बोधिक कहे से आ

एवं पभासइ, विकुव्वइ, परियारेइ, भासं भासइ, आहारेइ,  
परिणामइ, वेदेइ, निज्जरेइ ९ । दोहिं ठाणेहिं देवे सदाइं  
सुणेइ, सव्वेण वि देवे सदाइं सुणेइ जाव निज्जरेइ १४। मरुया  
देवा दुविहा पणत्ता तंजहा—एगसरीरा चैव विसरीरा चैव, एवं  
किन्नरा, किंपुरिसा, गंधव्वा, णागकुमारा, सुवन्नकुमारा,  
अग्गिकुमारा, वाउकुमारा, ८ । देवा दुविहा पणत्ता तंजहा—  
एगसरीरा चैव विसरीरा चैव ॥सू० २४ ॥

वीयट्ठाणस्स वीओ उद्देसओ समत्तो ॥ २-२ ॥

छाया—द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—  
समवहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, असमवहतेन चैव  
आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति । यथावधिः समवहतासमवहतेन चैव  
आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति । १ । एवं तिर्यग्लोकम् २ ऊर्ध्वलोकम् ३  
केवलकल्पलोकम् ४ । द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्माऽधोलोकं जानाति पश्यति,  
तद्यथा—विकुर्वितेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, अविकुर्वि-  
तेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति । यथावधिः विकुर्विताविकु-  
र्वितेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति । १ । एवं तिर्यग्लोकम् २  
ऊर्ध्वलोकम् ३, केवलकल्प लोकम् ४। द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्मा शब्दान् शृणोति,  
तद्यथा—देशेनापि आत्मा शब्दान् शृणोति, सर्वेणापि आत्मा शब्दान् शृणोति १,  
एवं रूपाणि पश्यति २, गन्धान्—आजिघ्रति ३, रसान् आस्वादयति ४, स्पर्शान्  
प्रतिसंवेदयति ५ । द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्माऽवभासते, तद्यथा—देशेनापि आत्मा  
अवभासते सर्वेणापि आत्मा अवभासते १, एवं प्रभासते २, विकुर्वति ३, परि-  
चारयति ४, भाषां भाषते ५, आहारयति ६, परिणमयति ७, वेदयति ८, निर्ज-  
रयति ९ । द्वाभ्यां स्थानाभ्यां देवः शब्दान् शृणोति — देशेनापि देवः शब्दान्  
शृणोति सर्वेणापि देवः शब्दान् शृणोति यावत् निर्जरयति १४ । मरुतो देवा  
द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—एकशरीरा द्विश्चैवशरीराश्चैव । १ । एवं किन्नराः २, किं  
पुरुषाः ३, गन्धर्वाः ४, नागकुमाराः ५, सुवर्णकुमाराः ६, अग्निकुमारा ७, वायुकुमारा  
८ । देवाद्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—एकशरीराश्चैव द्विशरीराश्चैव ॥ सू० २४ ॥

॥ द्वितीयस्थानस्य द्वितीय उद्देशकः समाप्तः ॥ २-२ ॥





एवं पभासइ, विक्रुव्वइ, परियारेइ, भासं भासइ, आहारेइ, परिणामइ, वेदेइ, निज्जरेइ ९ । दोहिं ठाणेहिं देवे सद्दाइं सुणेइ, सव्वेण वि देवे सद्दाइं सुणेइ जाव निज्जरेइ १४। मरुया देवा दुविहा पणत्ता तंजहा—एगसरीरा चेव विसरीरा चेव, एवं किन्नरा, किंपुरिसा, गंधव्वा, णागकुमारा, सुवन्नकुमारा, अग्गिकुमारा, वाउकुमारा, ८ । देवा दुविहा पणत्ता तंजहा—एगसरीरा चेव विसरीरा चेव ॥सू० २४ ॥

वीयट्ठाणस्स वीओ उद्देसओ समत्तो ॥ २-२ ॥

छाया—द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—समवहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, असमवहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति । यथावधिः समवहतासमवहतेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति । १। एवं तिर्यग्लोकम् २ ऊर्ध्वलोकम् ३ केवलकल्पलोकम् ४ । द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्माऽधोलोकं जानाति पश्यति, तद्यथा—विकुर्वितेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति, अविकुर्वितेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति । यथावधिः विकुर्विताविकुर्वितेन चैव आत्मना आत्मा अधोलोकं जानाति पश्यति । १ । एवं तिर्यग्लोकम् २ ऊर्ध्वलोकम् ३, केवलकल्प लोकम् ४। द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्मा शब्दान् शृणोति, तद्यथा—देशेनापि आत्मा शब्दान् शृणोति, सर्वेणापि आत्मा शब्दान् शृणोति १, एवं रूपाणि पश्यति २, गन्धान्—आजिघ्रति ३, रसान् आस्वादयति ४, स्पर्शान् प्रतिसंवेदयति ५ । द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्माऽवभासते, तद्यथा—देशेनापि आत्मा अवभासते सर्वेणापि आत्मा अवभासते १, एवं प्रभासते २, विकुर्वति ३, परिचारयति ४, भाषां भाषते ५, आहारयति ६, परिणमयति ७, वेदयति ८, निर्जस्यति ९ । द्वाभ्यां स्थानाभ्यां देवः शब्दान् शृणोति — देशेनापि देवः शब्दान् शृणोति सर्वेणापि देवः शब्दान् शृणोति यावत् निर्जरयति १४ । मरुतो देवा द्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—एकशरीरा द्विश्वैवशरीराश्च । १ । एवं किन्नराः २, किंपुरुषाः ३, गन्धर्वाः ४, नागकुमाराः ५, सुवर्णकुमाराः ६, अग्निकुमारा ७, वायुकुमारा ८ । देवाद्विविधाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—एकशरीराश्चैव द्विशरीराश्चैव ॥ सू० २४ ॥

॥ द्वितीयस्थानस्य द्वितीय उद्देशकः समाप्तः ॥ २-२ ॥

ટીકા-‘ દોહિં ઠાણેહિં ’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રપતુષ્ટ્યમ્ દ્વામ્યા સ્થાનામ્યાં પ્રકારામ્યામાત્મગતામ્યામ્ આત્મા=અવધિ  
ધારી જીવઃ અધોલોકં જ્ઞાનાત્તિ-અવધિજ્ઞાનેન, પશ્યતિ-અવધિવશનેન તથયા-  
સમવહતેન=કૃતવૈક્રિયસમુદ્ઘાતેન આરમ્ભના, આત્મા=જીવઃ અધોલોક જ્ઞાનાત્તિ  
પશ્યતિ, અસમવહતેન=વૈક્રિયસમુદ્ઘાતરહિતેન આત્મના આત્મા અધોલોક જ્ઞાનાત્તિ  
પશ્યતીત્યાહ-‘ આહોહી ’-સ્યાદિ-‘ આહોહી ’ યયાવધિઃ-યયા=યત્પ્રકારોઽવધિ  
ર્યસ્ય સ તયા, યદ્વા-‘ અપોઽવધિ ’ ઇતિચ્ચાયા, તથ અવઃ=પરમાવધેરધોવર્તી-અવ-

વૈમાનિક ચરમ ઓર અચરમ હોતે હૈ પેસા કહા ગયા હૈ યે  
વૈમાનિક અવધિજ્ઞાન સે અધોલોક ધ્યાદિ કો જાનતે હૈ ઓર દેસ્તે  
હૈ સો વેદ ( જાન ને ) મેં જીવ કે વો પ્રકાર હોતે હૈ યહી અવ પ્રકૃત  
ક્રિયા જાતા હૈ-“ દોહિં ઠાણેહિં આયા અહોલોગ જાણહ પાસહ ”

“ દોહિં ઠાણેહિં ) ઇત્યાદિ ચાર સૂત્ર હૈ આત્મગત વો પ્રકારોં સે  
આત્મા અવધિજ્ઞાનધારી જીવ અપને કો અવધિજ્ઞાન ધારા જાનતા  
હૈ ઓર અવધિવશન ધારા ડસે દેસ્તતા હૈ યહ અવધિજ્ઞાની જીવ સમવ  
હત ઓર અસમવહતકે મેદ સે વો પ્રકાર કા હોતા હૈ વૈક્રિયસમુદ્ઘાત  
જય યહ કરતા હૈ તય યહ સમવહન ઓર વૈક્રિયસમુદ્ઘાત સે રહિત  
અસમવહત કહલ્પતા હૈ વોનોં દી અવસ્થાઓં મેં વર્તમાન યહ અવધિ  
ધારી આત્મા અધોલોક કો જાનતા ઓર દેસ્તતા હૈ અવધિજ્ઞાન અનેક  
પ્રકાર કા હોતા હૈ અત “ આહોહી ” ઇત્યાદિ સૂત્રપાઠ ધારાં સૂત્રકાર

પહેલાં એવો ઉદ્દેશ એવો છે કે વૈમાનિકો અરમ પશુ હોય છે અને  
અચરમ પશુ હોય છે તે વૈમાનિકો પોતાના અવધિજ્ઞાનથી અધોલોક આરિને  
બાણે છે અને રેખે છે આ વેદ ( બ્રહ્મવા ) ની અપેક્ષાએ છુવના બે પ્રકાર  
હોય છે સૂત્રકાર હવે એજ વાતને પ્રકટ કરે છે—

‘ દોહિં ઠાણેહિં આયા અહોલોગ જાણહ પાસહ

“ દોહિં ઠાણેહિં ’ ઇત્યાદિ ચાર સૂત્ર છે આત્મગત બે પ્રકારે આત્મા  
( અવધિજ્ઞાનધારી છુવ ) પોતાના અવધિજ્ઞાન ધારા અધોલોકને બાણે છે અને  
અવધિવશન ધારા તેને રેખે છે તે અવધિજ્ઞાની છુવ બે પ્રકારના હોય છે  
(૧) સમવહન અને અસમવહત. અધારે તે વૈક્રિય સમુદ્ઘાત કરે છે ત્યારે તેને  
સમવહન કહે છે, અને અધારે તે વૈક્રિય સમુદ્ઘાતથી રહિત હોય છે ત્યારે  
તેને અસમવહત કહે છે આ બન્ને પ્રકારની અવસ્થાવાળા અવધિજ્ઞાની આત્મા  
અધોલોકને બાણે છે અને રેખે છે

धिर्यस्य स तथा। नियतक्षेत्रविषयावधिज्ञानीत्यर्थः। स समवहताममवहतेन=कदाचित् समवहतेन कदाचिद् असमवहतेनेत्यर्थः, आत्मना जीवोऽधो लोकं जानाति पश्यति। एवम्=अधोलोकवत् स तिर्यग्लोकम् ऊर्ध्वलोकम्, तथा-केवलकल्पं-समय भाषया परिपूर्णं-चतुर्दशरज्ज्वात्मकं लोकरूपि च जानाति पश्यति ४। वैक्रियसमुद्घातानन्तरं वैक्रियशरीरं भवतीति वैक्रियशरीरमाश्रित्याधोलोकादिज्ञाने प्रकारद्वयमाह- 'दोहिं ठाणेहिं' इत्यादि-सूत्रचतुष्टयं कण्ठ्यम्, नवरम्-विकृष्टितेन=कृतवैक्रियशरीरेण आत्मनेत्यर्थः, अत्रिकृष्टितेन-तद्भिन्नेन अकृतवैक्रियशरीरेणेत्यर्थः। उक्तं

यह प्रकट कर रहे हैं कि-जैसे अवधिज्ञानधारी जीव का अवधिज्ञान जिस प्रकार का होता है अथवा परमावधि से अधोवर्ती अवधिज्ञान जिसको होता है ऐसा वह जब नियतक्षेत्र और नियतविषय को अवधिज्ञान द्वारा जानता है और देखता है इस प्रकार नियतक्षेत्र विषयावधिज्ञानी आत्मा कदाचित् समवहत होकर और कदाचित् असमवहत होकर अधोलोक को जानता है, और देखता है इसी तरह से वह तिर्यग्लोक को और केवलकल्प सम्पूर्ण लोक को भी कि जो १४ राजू का है जानता है और देखता है ४ वैक्रियसमुद्घात के अनन्तर ही वैक्रियशरीर होता है इसलिये अब सूत्रकार वैक्रियशरीर को लेकर अधोलोकादिके ज्ञान में दो प्रकारका कथन करते हैं "दोहिं ठाणेहिं" इत्यादि ४ चार सूत्र हैं-इन सब का अर्थ स्पष्ट है परन्तु जो विशेषता है आत्मा जब कृत वैक्रियशरीर से युक्त होता है तब और जब आत्मा

अवधिज्ञान अनेक प्रकारतुं डोय छे डवे सूत्रकार "आहोही" इत्यादि सूत्रे द्वारा अे प्रकट करे छे के-अवधिज्ञानधारी एवतुं अवधिज्ञान के प्रका-रतुं डोय छे अथवा परमावधिथी अधोवर्ती (उतरती क्वाटितु) अवधिज्ञान केतुं डोय छे अेवे। एव नियतक्षेत्र अने नियत विषयने अवधिज्ञान द्वारा न्णु छे अने हेजे छे आ प्रकारने। नियतक्षेत्र अने नियत-विषयावधिज्ञानी आत्मा क्यारेक समवहत थधने अने क्यारेक समवहत थया विना अधोलोकेने न्णु छे अने हेजे छे अेन प्रभाणे ते तिर्यग्लोकेने, ऊर्ध्वग्लोकेने अने १४ राजूप्रभाणु केवलकल्प (संपूर्ण) लोकेने पणु न्णु छे अने हेजे छे सू ४

वैक्रिय समुद्घातनी पछी न वैक्रिय शरीर थाय छे. तेथी सूत्रकारे डवे वैक्रिय शरीरनी अपेक्षाअे अधोलोकादिना ज्ञानमां द्विविधतानुं कथन करे छे-

"दोहिं ठाणेहिं" आ विषयने अनुलक्षीने पणु चार सूत्र आपवामां आन्या छे ते भधाने। अर्थ स्पष्ट छे, परन्तु के विशेषता छे ते नीचे प्रभाणे छे-आत्मा न्यारे कृत क्रिय शरीरथी युक्त नथी छेतो। त्यारे पणु चोताना

नोहन्द्रियप्रत्यक्षमभिविज्ञानम्, सांप्रतमिन्द्रियप्रत्यक्षज्ञानमाह- 'दोहिं ठाणेहिं' इत्यादि पञ्चसूत्री-द्राभ्यां स्यानाभ्यामात्मा शब्दान् शृणोति । तदेव स्यान्द्रयमाह वेशेनापि-सर्वेणापि चेति । तत्र वेशेन-एकभोषेण-द्वितीयस्वोपघातात् शब्दान् शृणोति, तथा-सर्वेण-भोषद्वयेन चेति । यद्वा-वेशेन-भोषेत्रियमाश्रेण, तथा सर्वेण-समिन्नभोषोत्पन्न्यपेक्षया सर्वैरपीन्द्रियैः शब्दान् शृणोति ? । एव चसुरिन्द्रियादिष्वपि विज्ञेयम् । नवरं जिह्वादेशस्य पभाघातादि रागणोपघातावेशेनास्वा

पूरा वेन्नियशरीर से युक्त नहीं होता है तब भी वह अपने अथविज्ञान से अलोक आदि को जानता है और देखता है इस तरह नोहन्द्रियप्रत्यक्ष रूप जो अथविज्ञान है उसके विषय में यह कहा है अब इन्द्रियजन्य जो प्रत्यक्षज्ञान है उसके विषय में सूत्रकार कहते हैं- "दोहिं ठाणेहिं" इत्यादि-यह पञ्चसूत्री है दो स्थानों द्वारा आत्मा शब्दादिको सुनता है वे दो स्थान इस प्रकार से हैं-एक देशरूप स्थान और दूसरा सूर्यरूप स्थान एक कान के उपघात होने से शब्द को एक कान से सुनना यह देशरूप स्थान है तथा भोषद्वय से सुनना यह सर्वदेशरूप स्थान है अथवा भोषेत्रिय मात्र के द्वारा जो आत्मा शब्दों को सुनता है यह एक देशरूप स्थान है तथा समिन्नभोषोत्पलब्धि की अपेक्षा से सब ही इन्द्रियों से शब्दादिकों को जो सुनता है यह सूर्यदेशरूप स्थान है इसी तरह का कथन श्क्षु आदि इन्द्रियों के विषय में भी जानना चाहिये तथा जय पक्षाघात से जिह्वा का एक देश आपातित हो जाता

अवधिज्ञानधी अपिदोह आदिने लब्धे ते जने देजे छे आ शीते धन्त्रिय प्रत्यक्षरूप ने अवधिज्ञान छे तेना विषयभां आ कथन करवाभां आबु छे हवे सूत्रकार धन्त्रियजन्य ने प्रत्यक्षज्ञान छे तेने विषे नीजे प्रभ ल्पे कहे छे-

"दोहिं ठाणेहिं" इत्यादि पाच सूत्रे आही आपवाभां आभां छे वे स्थानो द्वारा आत्मा शब्दादिदोने सांभजे छे ते जे स्थान नीधे प्रभावे छे

(१) देशरूप (अशरूप) स्थान-जने (२) सूर्यरूप स्थान शब्द जोड हाने अवधाय जने जोड ज हाने सजग्याय तेने देशरूप स्थानधी अवलु यथेर्तु जखाय छे जने ज्ञानधी अवलु करवुं तेनु नाम सपदेशरूप स्थानधी अवलु गधाय छे अथवा मात्र भोषेत्रिय द्वारा ज आत्मा ने शब्दोने सांभजे छे तेने जोड देशरूप स्थान कहे छे तथा सजित भोषोत्पलब्धिनी अपेक्षाजे लधी ज धन्त्रियोधी आत्मा शब्दादिदोनु ने अवलु करे छे तेनु नाम सूर्य देशरूप स्थान छे आ प्रकारनु कथन जखु आदि धन्त्रियोना विषयभां पलु समजवुं तथा ल्यादे लभने जोड जात्र पक्षाघातधी नजमी यथं लय छे,

दयतीति ५ । शब्दश्रवणादयो जीवपरिणामा उक्ताः, संप्रति तत्प्रस्तावात्तत्परिणामान्तराण्याह—' दोहिं ठाणेहिं ' इत्यादि—द्वाभ्यां स्थानाभ्याम् आत्मा=जीवः अवभासते=द्योतते, देशेन सर्वेण चेति । तत्र देशेन खद्योतवत्, सर्वेण प्रदीपवत् । यद्वा—अवभासते=जानाति देगतोऽवध्यादिना, सर्वतः केवलज्ञानेन १ । एवं—प्रभासते=प्रकर्षेण ज्योतते २ । विकरोति—देगतो हस्तादिवैक्रियकरणेन, सर्वतः सर्वदेहस्य

है—तत्र वह अपने एकदेश से ही इस का आस्वाद लेती है—सर्वदेश से नहीं शब्दश्रवण आदि जीव के परिणाम हैं—सो इनके विषय में तो कह दिया गया है—अब इसी सम्बन्ध को लेकर सूत्रकार उनके परिणामान्तरों का कथन करते हैं—“ दोहिं ठाणेहिं ” इत्यादि—दो स्थानों द्वारा आत्मा एक देश से और सर्वदेश से चमकता है प्रकाशित होता है वह खद्योत की तरह एक देश से और दीपक की तरह सर्वदेश से प्रकाशित होता है अथवा—“ अवभासते ” क्रियापद का अर्थ “ जानता है ” ऐसा भी होता है—सो इस पक्ष में वह अवधि आदि ज्ञान द्वारा जो जानता है उसका वह जानना देश से जानना है तथा केवलज्ञान द्वारा जो जानता है वह जानना उसका सर्वदेश से जानना है इसी तरह से आत्मा दो तरह से प्रकर्षरूप से ज्योतित होता है २ इसी तरह आत्मा देश और सर्वरूप से विक्रिया करता है हस्तादिकों की विक्रिया करना यह देश से विक्रिया करना है और समस्तदेह की विक्रिया

त्यारे ते लुलना एक भागथी ( पक्षघात रहित भागथी ) न रसास्वाद ले छे. त्यारे लुभ पोताना सर्व भागोथी रसास्वाद करी शकती नथी

शब्दश्रवण आदि लुवनां परिष्णामो छे, तेमना विषे तो कही देवाभां आण्यु छे. डवे सूत्रकार आ स भधने न अनुलक्षीने तेमना परिष्णामान्तराने प्रकट करे छे—“ दोहिं ठाणेहिं ” इत्यादि. जे स्थानो द्वारा आत्मा एक देशथी ( अशत ) अथवा सर्वदेशथी ( स पूर्णत ) यमके छे—प्रकाशित थाय छे ते पतगियानी जेम एक देशथी अथवा दीपकनी जेम सर्व देशथी प्रकाशित थाय छे अथवा—“ अवभासते ” क्रियापदने “ लखे छे ” जेवो पक्ष अर्थ थाय छे आ प्रकारने अर्थ श्रद्धु करवामां आवे तो अर्डी नीचे प्रभाषे अर्थ समजवो—आत्मा अवधिज्ञान आदि द्वारा जे लखे छे ते देशत लखे छे, परतु केवलज्ञान द्वारा जे लखे छे ते सर्व देशथी ( स पूर्ण रूपे ) लखे छे. जे प्रभाषे आत्मा जे रीते प्रकर्षरूपे ज्योतित ( प्रकाशित ) थाय छे जे प्रभाषे आत्मा देशरूपे अने सर्वरूपे विक्रिया करे छे. इस्त आदिनी विक्रिया

वैकल्पिकरणेन ३ । परिचारयति-मैथुनं सेवते देहेन मनोयोगादीनामन्यतमन,  
 सर्वेण-योगप्रयेजेति ४ । मायां मापयते-देहेन जिह्वाप्रादिना, सर्वेण-समस्तैस्त्वा  
 र्थादिस्थानैः ५ । आहारयति-देहेन मुखमाश्रेष्य, सर्वेण-ओज आहारापेक्षया ६ ।  
 परिणमयति-परिणाम मापयति आहारमेव त्वत्परसमागेन, सत्र देहेन मत्काश्रय

करना यह सर्वदेशसे विक्रिया करना है इसी प्रकार जीव-"परिचा  
 रयति" एक देश से और सर्वदेश से मैथुन सेवन करता है—  
 मनोयोगादि तीन में से किसी एक के द्वारा मैथुन सेवन करना  
 यह एकदेश से मैथुन सेवन करना है और तीनों योगों द्वारा  
 मैथुन सेवन करना यह सर्वदेश से मैथुन सेवन करना है ४ इसी  
 तरह आत्मा जीव एकदेश से और सर्वदेश से माया षोडश  
 है जिह्वाप्रादि द्वारा माया षोडश यह एक देश से माया का षोडश  
 है, और समस्त तात्वादि स्थानों द्वारा माया षोडश यह सर्वदेश से  
 माया का षोडश है ५ इसी तरह जीव देशरूप से और सर्वरूप से  
 आहारग्रहण करता है मुखमात्र से आहारग्रहण करना इसका नाम देश  
 से आहारग्रहण करना है और ओज आहार की अपेक्षा से सर्वशरीर  
 से आहारग्रहण करना यह सर्वदेश से आहारग्रहण करना है इसी  
 तरह से जीव गृहीत आहार को त्वत्परस भाग रूप में एक देश से और

४२वीं तैत्तिरीय नाम देशता विद्विषा उ अने समस्त शरीरनी विद्विषा ४२वीं  
 तैत्तिरीय नाम सर्वदेशत्व. विद्विषा उ "परिचारयति" आ विषायाद दारा  
 जे प्रकट करवायां आश्रयुं उ उ आत्मा जेक देशधी अथा सर्वदेशधी मैथु  
 ननुं सेवन करे उ मनोयोग आदि त्रय योत्रमाधी कर्षण जेक दारा मैथु  
 ननुं सेवन करतुं तैत्तिरीय नाम जेक देशधी मैथुन सेवन उ अने त्रये योत्रा  
 दारा मैथुननुं सेवन करतुं तैत्तिरीय नाम सर्व देशधी मैथुन सेवन उ (४) जेक  
 प्रमाणे आत्मा ( ७२ ) जेक देशधी अने सर्व देशधी अथा बोद्धे उ जेक  
 देशधी माया षोडशी जेकरी विद्विषाज आदि जेक स्थानधी माया षोडशी,  
 सर्व देशधी माया षोडशी जेकरी ताजना आदि समस्त स्थानो दारा माया  
 षोडशी. (५) जेक रीते ७२ देशरूपे अने सर्वरूपे आदार प्रदत्त करे उ  
 मात्र ७५ दाराज आदार प्रदत्त करवे तैत्तिरीय नाम देशरूपे आदार प्रदत्त करी  
 कडेवाय उ जेक आदारनी अपेक्षाजे आत्मा समस्त शरीर दारा जे  
 आदार प्रदत्त करे उ तेने सर्वरूपे आदार प्रदत्त करी कडेवाय उ ( ६ )  
 जेक प्रमाणे ७५ पीताना दारा प्रदत्त करयेवा आदारने अजरस भाग रूपे

દેશસ્ય પ્લીહાદિના રુદ્ધત્વાત્, અન્યથા સર્વેનેતિ ૭ । વેદયતિ-અનુભવતિ દેશેન= હસ્તાદ્યવયવવિશેષેણ, સર્વેણ-સર્વાવયવૈઃ પરિણમિતાન્ આહારપુદ્ગલાન્ ઇષ્ટાનિષ્ટ- પરિણામતઃ ૮ । નિર્જરયતિ-ત્યજતિ-આહારિતાન્ પરિણમિતાન્ વેદિતાન્ આહાર- પુદ્ગલાન્ દેશેન-અપાનાદિના, સર્વેણ-સર્વશરીરેણૈવ પ્રસ્વેદવદિતિ ૯ । (૧૪) અથ વૈતાનિ શબ્દાદિ સ્પર્શપર્યન્તાનિ પશ્ચ, તથા ' અવભાસતે ' ઇત્યારમ્બ્ય નિર્જરયતિ,

સર્વદેશ સે પરિણમાતા હૈ ભક્તાશય જવ પ્લીહા લીવર રોગ આદિ સે રુદ્ધ હોતા હૈ તવ ગૃહીત આહારકો જીવ એકદેશ સે ચલરસભાગરૂપ મેં પરિણમાતા હૈ ઓર જવ એસા નહીં હોના હૈ તવ વહ ગૃહીત આહાર કો સર્વદેશ સે ચલરસભાગરૂપ મેં પરિણમાતા હૈ ૭ હસી તરહ જીવ પરિ- ણમિત આહાર પુદ્ગલોં કો ઇષ્ટાનિષ્ટ પરિણામ કે રૂપ મેં એકદેશ સે ઓર સર્વદેશ સે અનુભવ કરતા હૈ હસ્તાદિ અવયવવિશેષ દ્વારા અનુભવ કરના એકદેશ સે અનુભવ કરના હૈ ઓર સર્વાવયવોં દ્વારા જો અનુભવ કરના હૈ વહ સર્વદેશ સે અનુભવ કરના હૈ હસી તરહ જીવ આહારિત પરિણમિત, વેદિત આહારપુદ્ગલોં કો અપાન આદિરૂપ એકદેશ દ્વારા ઓર પ્રસ્વેદાદિ કી તરહ સર્વશરીર દ્વારા છોડના હૈ અથવા શબ્દ સે લેકર સ્પર્શાન્ત તક કે સૂત્ર તથા " અવભાસતે " સે લેકર નિર્જરયતિ તક કે ૯ સૂત્ર યે સઘ ૧૪ સૂત્ર વિવક્ષિત વસ્તુ કી અપેક્ષા

( લોહીમાં ભગે એવા તરવો ) એક દેશથી પણ પરિણુમાવે છે અને સર્વ દેશથી પણ પરિણુમાવે છે બ્યારે પાચનક્રિયા કરનારા બંધર, કાળબુ', આંતરડા આદિ અંગોમાના કોઈ પણ અંગો કોઈ રોગને કારણે કામ કરી શકતાં નથી, ત્યારે ગૃહીત આહારને જીવ એક દેશથી ખલરસભાગ રૂપે પરિણુમાવે છે, પણ બ્યારે એવું બનતું નથી ત્યારે જીવ ગૃહીત આહારને સર્વ દેશોથી ખલરસ ભાગરૂપે પરિણુમાવે છે ( ૭ ) એજ પ્રમાણે પરિણુમિત આહાર પુદ્ગલોને જીવ ઇષ્ટાનિષ્ટ પરિણુમિત રૂપે એક દેશથી પણ અનુભવે છે અને સર્વ દેશોથી પણ અનુભવે છે હાથ આદિ અવયવ વિશેષ દ્વારા અનુભવ કરવો તેનું નામ " એક દેશથી અનુભવ કરવો ", અને અર્ધાં અવયવો દ્વારા જે અનુભવ કરાય છે તેનું નામ " સર્વ દેશથી અનુભવ કરવો " ગણાય છે. (૮) એજ પ્રમાણે જીવ આહારિત, પરિણુમિત, અને વેદિત આહાર પુદ્ગલોને અપાન આદિરૂપ એક દેશથી અથવા પ્રસ્વેદ આદિ રૂપે સર્વ શરીર દ્વારા છોડે છે (૯).

અથવા શબ્દથી લઈને સ્પર્શાન્ત સુધીના પાંચ સૂત્ર તથા " અવભાસતે " થી લઈને નિર્જરયતિ " સુધીના નવ સૂત્ર મળીને ૧૪ સૂત્ર બને છે. આ ૧૪ સૂત્રો



इत्यन्तानि नत्र एवमतयो सम्मलेन चतुर्धापि स्यापि विवक्षितविषयवस्त्वपेक्षया  
 विज्ञेयानि । अपमत्र विवेक देशेनापि-दशतोऽपि शृणोति-बहुषु शब्देषु कश्चित्  
 शब्दान् शृणोति, सर्वेषामपि-सर्वतोऽपि सामस्त्येन सर्वान् शब्दान् शृणोतीति ? ।  
 एव रूपादिष्वपि भावनायम् १२ ।

उक्त सामान्यतः भ्रमणादिषु, विशेषविषयायां देवानां भाषायाद्यानाभित्य  
 प्राह-‘ दोहिं ठाणेदि ’ इत्यादि-चतुर्दशसूत्री द्वाभ्यां स्थानाभ्यां देव शब्दान्  
 शृणोति-देशेनापि सर्वेषामपि, विवक्षितशब्दादिष्विषयवस्त्वपेक्षया देशतः सर्वतो

से जानना चाहिये इसका अभिप्राय ऐसा है-अनेक शब्दों में से यह  
 जीव जो कि कितनेक शब्दों को सुनता है वह उसका सुनना देश से  
 सुनना है और जब समस्त शब्दों को सुनता है सो वह सुनना उसका  
 सर्वदेश से सुनना है इसी तरह का कथन रूपादिकों के विषय में भी  
 कर लेना चाहिये १४

सामान्यरूप से यह अधणादिक का कथन किया है अब सूत्रकार  
 विशेषविषयता को आश्रित करके देवों की प्रधानता से इनका कथन  
 करते हैं-“ दोहिं ठाणेहिं ” इत्यादि-चतुर्दश सूत्री है-दो स्थानों को  
 लेकर देव शब्दों को सुनता है ये दो स्थान एकदेश और सर्वदेशरूप हैं  
 देव एकदेशरूप से भी शब्दों को सुनता है और सर्वदेशरूप से भी  
 शब्दों को सुनता है अर्थात् विवक्षित शब्दादि विषयरूप वस्तु की

विवक्षित (अभुक्त) वस्तुनी अपेक्षासे समज्या लेखजे. आ कथनतु तात्पर्य  
 लेखुं छे के-अनेक शब्दोंमें भी आ एव के कटकाक शब्दोंने संलग्ने छे, ते  
 (तेमने संलग्गवानी) कियाने देशरूप अवलु कहे छे, जने आरे ते समस्त  
 शब्दोंने संलग्ने छे त्यारे तेना द्वारा तेमनु के अवलु बाध छे तेने सर्वदेशभी  
 यथेहुं अवलु कहेवाच छे जेज प्रकृतं कथन इत्यादिना विषयभां पञ्च  
 समलु लेखुं ॥ १४ ॥

सामान्य रूपे आ अवलुकिनु कथन अर्थां करवाभा ज्ञानु छे हरे  
 सूत्रकार देवानी प्रधानतानी अपेक्षासे तेमनु विशेष कथन करे छे-

‘ दोहिं ठाणेदि ’ इत्यादि १४ सूत्रे अर्थां व्यापारभां व्याख्यां छे-  
 जे स्थाने द्वारा देव शब्दोंने अवलु करे छे-(१) जेक देशभी जने (२) सर्वदेशभी  
 लेखे के जेक देशरूपे पञ्च देव शब्दोंने संलग्ने छे जने सर्वदेशरूपे पञ्च  
 शब्दोंने संलग्ने छे आ कथनतु तात्पर्य ले छे के-...शब्दादि विषयरूप वस्तुनी  
 अपेक्षासे ते देव देशनी अपेक्षासे शब्दोंने अवलु करे छे जने समस्त

वा शृणोति यावत् निर्जरयति । व्याख्या सुगमा १४ । पूर्वोक्ता भावाः शरीरे सत्येव संभवन्ताति देवानां प्रधानत्वात्तेनामेव व्यक्तित शरीरपरूपणामाह ' मरुया ' इत्याद्यष्टसूत्री । मरुतो देवाः द्विविधाः—एक शरीरा द्वि शरीराश्चेति । तत्र मरुतो देवा लोकान्तिकदेवविशेषाः सन्ति, ते चैकशरीरिणः—विग्रहगतौ कार्मण-शरीरत्वात् । उपपातानन्तर वैक्रियशरीरसद्भावाद् द्विशरीरिणो भवन्ति । यद्वा—भवधारणीयापेक्षयैकशरीरिणः, उत्तरवैक्रियापेक्षया तु द्विशरीरिणः १ । एवं किन्न-रादयः सप्तापि देवाः बोध्याः, । तत्र किन्नरा किं पुरुषाः रन्धर्वाश्चैते त्रयो व्य-न्तराः, शेषाः नागकुमाराः, सुार्गकुमाराः, अग्निकुमाराः, वायुकुमाराश्चेति चत्वारो

अपेक्षा वह देव देश से और सर्व समस्त शब्दों को सुनने की अपेक्षा सर्वदेश से शब्दों को सुनता है इसी तरह का कथन यावत् " निर्जर-यति " तक देव के सम्बन्ध को लेकर जान लेना चाहिये इन १४ सूत्रों की व्याख्या सुगम है ये सब सुनने आदिरूप भाव शरीर के होने पर ही हो सकते हैं अतः व्यक्तिरूप से कौन से देव कितने शरीरवाले होते हैं यह बात अब सूत्रकार प्रकट करते हैं—मरुत-देव-दो प्रकार के होते हैं एक एकशरीरवाले और दूसरे दो शरीरवाले मरुदेव लोकान्तिक देवविशेष हैं ये एक शरीरधारी होते हैं अर्थात् विग्रहगति में एक ही कार्मण शरीर रहता है इस अपेक्षा ये एकशरीरवाले होते हैं तथा उप-पात के बाद वैक्रियशरीर का सद्भाव हो जाने से ये दो शरीरवाले होते हैं । अथवा भवधारणीय शरीर की अपेक्षा ये एक शरीरवाले होते हैं और उत्तर वैक्रिय शरीर की अपेक्षा ये दो शरीरवाले होते हैं । इसी

शब्दोने श्रवणु करवानी अपेक्ष ओ ते देव सर्वदेशथी शब्दोनुं श्रवणु करे छे ओन प्रकारनुं कथन ' निर्जरयति " पर्यन्तना पहोने अनुलक्षीने, देवोना विष-यमां अर्धी समलु लेवुं आ १४ सूत्रोनी व्याख्या सरण छे

श्रवणु आदि इय भावोनु अस्तित्व विना शरीर सलवी शक्तुं नथी. आ भावोनु अस्तित्व शरीरयुक्त लोवोमा न सलवी शके छे तेथी सूत्रकार हुवे ओ वात प्रकट करे छे के कया कया देवो केटला शरीरवाणा डोय छे—

मरुतदेव ओ प्रकारना डोय छे—(१) ओक शरीरवाणा अने (२) ओ शरीरवाणा. मरुतदेव लोकान्तिक देवविशेष छे तेओ ओक शरीरधारी पणु डोय छे, ओटले के विग्रहगतिमां ओक धर्मणु शरीरने न सद्भाव रहे छे ते कारणु विग्रहगति हरमियान तेओ ओक न शरीरवाणा डोय छे पणु उप-पात आह वैक्रिय शरीरने पणु सद्भाव रहे छे, तेथी उपपात आह तेमनामा ओ शरीरने सद्भाव रहे छे. अथवा भवधारणीय शरीरनी अपेक्षाओ तेओ ओक शरीरवाणा डोय छे अने उत्तर वैक्रिय शरीरनी अपेक्षाओ ओ शरीरवाणा

મવનપતય C । પરિગણિતમેદગ્રહણ મેદા-ત્રોપવક્ષણ, ન તુ વ્યરચ્છેદ્યર્થમ્, સર્વ  
જીવાનાં વિગ્રહગતાવેકશરીરસ્વાત્ અન્યદા-અન્યનો-દ્વિ શરીરસ્વાદિતિ । સામા-  
ન્યત માદ- ' દેવા દુષિષા ' ઇત્યાદિ । ધ્યાસ્યા સુગમા ॥ સૂ० ૨૪ ॥

ઈતિશ્રીવિશ્વવિસ્થાત-મગદવલ્લભ-મસિદ્ધવાચક-પદ્મદક્ષમાપાકલિત  
સલિતકલાપાલાપક-પ્રવિશુદ્ધગણપદ્યનૈકપ્રન્યનિર્માપક-વાદિમા-  
નમર્દક શ્રીશાહુલમપતિ કોન્દાપુરરામમદય જૈનશાસ્ત્રાચાર્ય'પદ  
ભૂપિત કોલ્હાપુરરામગુરુ શાસ્ત્રમજ્જવારિ જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મ-  
દિવાકર-પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલમ્ભતિવિરચિતાયાં  
સ્થાનાશ્રમસ્ય સુપાસ્થાયાં ધ્યાસ્યાયામ્  
દ્વિતીયસ્થાનસ્ય દ્વિતીયોદેશક સમાપ્તઃ ॥૨-૨॥

તરહ સે કિષ્તર આદિ સાત દેવોંકે સમ્બન્ધમેં શ્રી જાનના આહિયે હનમેં  
કિષ્તર, કિમ્પુરુષ ઓર મ-ધર્ષ યે ત્રીન ષ્યન્તરદેવ હેં નાગકુમાર, સુવર્ણ  
કુમાર અગ્નિકુમાર ઓર ઘાયુકુમાર યે ચાર મવનપતિ દેવ હેં । હન પરિ  
ગણિત મેદોંકા જો ઘહાં ગ્રહણ હુઆ હેં ઘહ અન્ય મેદોંકો ગ્રહણ કરનેકે  
લિયે હી હુઆ હેં ઠનકે વ્યવચ્છેદકે લિયે નહીં હુઆ હેં જિતમે શ્રી જીવ  
હોતે હેં ઠન સપકો વિગ્રહગતિ મેં એક હી શરીર હોતા હેં ઓર ઠપપાતકે  
સમય ઠનકે ઘો શરીર હોતે હેં । 'દેવા દ્વિવિષાઃ પ્રજ્ઞતાઃ' એસા જો કહા  
ગયા હેં કિ દેવ ઘો પ્રકાર કે હોતે હેં એક એકશરીરવાલે ઓર ઘસરે ઘો  
શરીરવાલે સો ઘહ કયન સામાન્યરુપ સે કહા ગયા હેં ॥ સૂ०૨૪ ॥  
શ્રી જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મદિવાકર-પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલમ્ભતિવિરચિત સ્થાનાશ્ર  
મસૂત્રકી સુપાનામક ટીકાર્થકા ઘસરેસ્થાનકકા દ્વિતીય ઉદેશક સમાપ્તઃ ॥૨ ॥

હોય છે આ પ્રકારનું જૈન કિન્નર આદિ સાત પ્રકારના દેવો વિશે પણ સમજવું  
તેમના કિન્નર, કિપુરુષ અને અંધવ આ ત્રણ બંધનર દેવો છે અને બાહીના  
નાગકુમાર સુવર્ણકુમાર અગ્નિકુમાર અને વાસુકુમાર, એ ચાર ભવનપતિ દેવો  
છે જ્યાં જણાવવામાં આવેલા એ લોકોને જાહેર કરાયા છે, તે અન્ય લોકોને  
જાહેર કરવા માટે જ જણાવ્યા છે, તેમના પવચ્છેદ કરવાને માટે જ્યાં તેમને  
જણાવવામાં આવેલા નથી. નેટલા લોકો હોય છે તે બધાંને વિજઞ્ઞગતિમાં એક  
જ શરીર હોય છે અને ઠપપાતને સમયે તેમને બે શરીર હોય છે " દેવા  
દ્વિવિષા પ્રજ્ઞતા " દેવ બે પ્રકારના હોય છે (૧) એક શરીરવાળા અને (૨)  
શરીરવાળા " આ પ્રકારનું જે કયન જ્યાં કરવામાં આવ્યું છે તે સામાન્યરૂપે  
કરવામાં આ મુ છે એમ સમજવું લેઈએ સુ ૨૪

શ્રી જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મદિવાકર-પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલ મુનિવિરચિત સ્થાનાશ્રમસૂત્રકી  
સુપા નામની ટીકાધના બીજા સ્થાનકનો બીજો ઉદેશક સમાપ્ત. ॥ ૨-૨ ॥

## अथ तृतीयोद्देशकः प्रारभ्यते—

उक्तो द्वितीयोद्देशकः, सम्प्रति तृतीयः प्रारभ्यते, अस्य द्वितीयेन सहायमभिसम्बन्धः—अनन्तरोद्देशके जीवपदार्थोऽनेकविधः प्रोक्तः, अत्र तु तदुपग्राहकपुद्गल जीवधर्मक्षेत्रद्रव्यलक्षणपदार्थप्ररूपणा प्रोच्यते, इत्येवं सम्बन्धेनायातस्यास्येदमादिमं सूत्राष्टकम्, तत्राऽन्तिमसूत्रेणास्यायं सम्बन्धः—इह द्वितीयोद्देशकस्यान्त्यसूत्रे देवानां शरीरप्ररूपणाकृता, शरीरवांश्च शब्दादिग्राहको भवतीत्यत्र शब्दस्तावन्निरूप्यते—

### दूसरे स्थानकका तीसरा उद्देशा

द्वितीय उद्देशक का कथन किया जा चुका है अब तृतीय उद्देशक का कथन प्रारम्भ होता है इसका द्वितीय उद्देशक के साथ सम्बन्ध ऐसा है कि अनन्तर द्वितीय उद्देशक में जीव पदार्थ अनेक प्रकार का कहा गया है सो अब इस तृतीय उद्देशक में तदुपग्राहक पुद्गल धर्म जीवधर्म क्षेत्र और द्रव्य इन पदार्थों की प्ररूपणा की जाती है इस उद्देशक का जो आदिम सूत्राष्टक है उसका द्वितीय उद्देशक के अन्तिम सूत्र के साथ ऐसा सम्बन्ध है कि वहां देवों के शरीर की प्ररूपणा की गई है सो यहां अब ऐसा प्रकट करना है कि जो शरीरवाला होता है वही शब्दादिकों का ग्राहक होता है इसी कारण यहां शब्दों का सर्व प्रथम प्ररूपण सूत्रकार कर रहे हैं—“दुविहे सहे पन्नत्ते” इत्यादि ॥ सू० २५ ॥

### धीन स्थानकनो त्रीने उद्देशक—

धीने उद्देशक पूरे थये। डवे त्रीने उद्देशकनो प्रारंभ थाय छे आ उद्देशकनो धीन उद्देशक साथे आ-प्रकारनो संभध छे—

धीन उद्देशकमां एव पदार्थं अनेक प्रकारना कथां छे। डवे आ त्रीन उद्देशकमां तदुपग्राहक पुद्गल धर्म, एवधर्म, क्षेत्र अने द्रव्य, आ पदार्थानि प्ररूपणा करवामां आवी छे। आ उद्देशानि शर्यातमां जे सूत्राष्टक छे तेनो धीन उद्देशाना अन्तिम सूत्रनी साथे आ प्रकारनो संभध छे—पडेला उद्देशकना छेला सूत्रमां देवाना शरीरनी रूपणा करवामा आवी छे। जेअशरीरवाणा डोय छे, तेअज शब्दादिकेने अडणु करनारा डोय छे। आ संभधने अनुदक्षीने सूत्रकारे अही सौथी पडेला शब्दानि प्ररूपणा करी छे।

“दुविहे से पन्नत्ते” इत्यादि ॥ सू. २५ ॥

मूल्—दुविहे सहे पण्णत्ते त जहा भासासहे श्वेव णो  
 भासासहे चेव । १ । भासासहे दुविहे पण्णत्ते त जहा अक्खर  
 सव्वञ्जे चेत्र नोअक्खरसव्वद्धे चेव । २ । णोभासासहे दुविहे  
 पण्णत्ते, त जहा आउञ्जसहे चेत्र, णोआउञ्जसहे चेव । ३ ।  
 आउञ्जसहे दुविहे पण्णत्ते, त जहा सत्ते चेव वितत्ते चेव । ४ ।  
 सत्ते दुविहे पण्णत्ते, त जहा घणे चेत्र छूसिरे चेव । एव वितत्ते  
 वि । ६ । णोआउञ्जसहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-मूसणसहे  
 चेत्र नोमूसणसहे चेत्र । ७ । णोमूसणसहे दुविहे पण्णत्ते, तं  
 जहा तालसहे चेव, लत्तिमासहे श्वेव । ८ । दोहिं ठाणेहिं सव्वदु  
 प्पाप सिया, त जहा साहन्नताण चेत्र पुग्गलार्णं सव्वदुप्पाप  
 सिया । भिउजसाण चेव पोग्गलार्णं सव्वदुप्पाप सिया ॥सू०२५ ॥

छाया—द्विविधः शब्दः प्रकृतस्त्वयया-मापाशब्दश्चैव नोमापाशब्दश्चैव ।  
 मापाशब्दो द्विविधः प्रकृतस्त्वयया - भक्षरसवदश्चैव नोभक्षरसवदश्चैव । नो  
 मापाशब्दो द्विविधः प्रकृतस्त्वयया-आतोषशब्दश्चैव नोआतोषशब्दश्चैव । आतो-  
 षशब्दो द्विविधः प्रकृतस्त्वयया-ततश्चैव पित्तश्चैव । ततो द्विविधः प्रकृतस्त्वयया  
 पनश्चैव भुपिरश्चैव । एव वित्तसोऽपि । नोआतोषशब्दो द्विविधः प्रकृतस्त्वयया-  
 भूपमशब्दश्चैव नोभूपमशब्दश्चैव । नोभूपणशब्दो द्विविधः प्रकृतस्त्वयया-ताल-  
 शब्दश्चैव लत्तिकाशब्दश्चैव । द्वाभ्यां स्यानाभ्यां शब्दोत्पाद् स्यात्, तयया-  
 सहन्यमानानां चैव पुत्रलानां शब्दोत्पाद् स्यात्, मिद्यमानानां चैव पुत्रलानां शब्दो  
 त्पाद् स्यात् ॥ सू० २५ ॥

टीका—‘दुविहे सहे’ इत्यादि सूत्रादृक् सुगमम् । मवरम्-मापाशब्दः  
 भाषापर्याप्तिनामकर्मोदयापादितो जीवशब्दः, तदन्यन्तु नोमापाशब्दः ।

टीकार्थ-शब्द दो प्रकारका कहा गया है-एक भाषाशब्द और दूसरा नो  
 भाषाशब्द भाषाशब्द भी दो प्रकारका कहा गया है एकभक्षर सम्पद दूसरा

भाषाशब्दोऽपि द्विविधः—अक्षरसम्बद्धः=वर्णव्यक्तियुक्तः, इतरो नोअक्षरसम्बद्धः २।  
आतोद्यं=दुन्दुभ्यादि, तस्य यः शब्दः स आतोद्यशब्दः, अन्यो वंशस्फोटादिजन्यः  
शब्दो नोआतोद्यशब्दः ३। ततः—मीणादिजनितः शब्दः, विततः=पटहादिजनितः

नोअक्षरसम्बद्ध इनमें जो नो भाषाशब्द है वह भी दो प्रकारका कहा गया है—एक आतोद्यशब्द और दूसरा नोआतोद्यशब्द आतोद्यशब्द भी दो प्रकार का कहा गया है—एक तत और दूसरा वितत तत भी घन और शुषिर के भेद से दो प्रकार का कहा गया है इसी प्रकार से वितत भी दो प्रकार का कहा गया है नोआतोद्य शब्द भी दो प्रकार का कहा गया है एक भ्रूषण का शब्द और दूसरा नोभ्रूषण का शब्द, नोभ्रूषणशब्द भी दो प्रकार का कहा गया है एक तालशब्द और दूसरा लतिका शब्द दो स्थानोंसे शब्दोत्पाद होता है एक तो जब पुद्गलसंहन्यमान (टकराना) होते हैं तब शब्दोत्पाद होता है और दूसरे जबवे मिथ्यमान (भेदन) होते हैं तब शब्दोत्पाद होता है, पुद्गलके अलु और रत्नधभेदों की अद्यान्तर जातियाँ २३ हैं इनमें एक भाषा वर्गणा भी है ये भाषा वर्गणाएँ लोकमें सर्वत्र व्याप्त हैं जिस वस्तु से ध्वनि निकलती है उस वस्तुमें कंपन होनेके कारण इन भाषा पुद्गलवर्गणाओंमें भी कंपन होता है, जिससे तरंगोत्पन्न होती हैं ये तरंगो ही उत्तरोत्तर पुद्गलवर्गणाओंमें कंपन पैदा

अने (२) नोअक्षर सम्बद्ध वर्णो नो भाषा शब्दना पणु आ ये प्रकार कक्षा छे—(१) आतोद्य शब्द अने (२) नोआतोद्य शब्दः आतोद्य शब्दना पणु ये प्रकार कक्षा छे—(१) तत अने (२) वितत ततना पणु ये लेह छे—(१) घन अने (२) शुषिर. ओज प्रभाणु विततना पणु ये लेह कक्षा छे नोआतोद्य शब्दना पणु ये प्रकार कक्षा छे—(१) भ्रूषणु शब्द अने (२) नो भ्रूषणु शब्द. नो भ्रूषणु शब्दना पणु ये लेह कक्षा छे—(१) ताल शब्द अने (२) लतिका शब्द.

ये स्थानो द्वारा शब्दोत्पाद थाय छे (१) न्यारे पुद्गल संहन्यमान अथवा लु थाय छे त्यारे शब्दोत्पाद थाय छे, अने (२) न्यारे तेओ मिथ्यमान थाय छे (लेहाय छे) त्यारे शब्दोत्पाद थाय छे. पुद्गलना अणु अने रत्नध लेहानी अद्यान्तर नतियो २३ छे, तेमानी ओक भाषावर्गणा पणु छे ते भाषावर्गणाओ लोकां सर्वत्र व्याप्त थयेली छे. ये वस्तुमाथी ध्वनि नीकणे छे ते वस्तुमां कंपन थवाने लीधे ते भाषा पुद्गल वर्गणाओमां पणु कंपन थाय छे तेने लीधे तरंगो (अवाजनां मोलनां) उत्पन्न थाय छे ते तरंगो न उत्तरोत्तर पुद्गल वर्गणाओमां कंपन पैदा करे छे, अने तेने लीधे ओक

કરતી છે જિસ સે શબ્દ એક સ્થાન સે વદ્મૂત્ત હોકર બી વૃસરે સ્થાન પર સુનાઈ પઢતા હૈ, ધિજ્ઞાન ઘાલે બી શબ્દકા ઘહન બી હસી પ્રકાર કી પ્રક્રિયા દ્વારા માનતે હૈં યદ્યપિ નૈવાયિક્ક ઓર ઘૈશેષિક શબ્દ કો આકાશ કા ગુણ માનતે હૈં કિન્તુ જૈન સિદ્ધાન્તમૈં હસે પુત્રલઢ્રવ્ય કો વ્યજ્ઞનપર્યાય માના હૈં ઓર યુક્તિ સે ઘિચાર કરને પર બી યહી સિદ્ધ હોતા હૈં હસ શબ્દ કૈં ભાપાત્મક ઓર અભાપાત્મક ઘેસે દો મેદ્ હૈં ભાપા પર્યાસિ નામકર્મ કૈં ઉદય સે ઉત્પાદિત (ઉત્પન્ન કિયે હુય) જો જીઘ કૈં દ્વારા શબ્દ કિયા જાતા હૈં ઘહ ભાપા શબ્દ હૈં ઓર હસસે ભિન્ન નોભાપા શબ્દ હૈં ૧ ભાપા શબ્દ બી અક્ષર સમ્પદ્ધ ઓર નોઅક્ષરસમ્પદ્ધ કૈં મેદ્ સે દો પ્રકાર કા હૈં હન્દૈં બી સાક્ષર ઓર અનક્ષર રૂપ સે કહા ગયા હૈં જો ઘિઘિઘ પ્રકાર કી ભાપાઈ ઘોલઘાલ મૈં ધાતી હૈં જિનમૈં શાસ્ત્ર લિલ્લે જાતે હૈં ઘે અક્ષર સમ્પદ્ધ સાક્ષર શબ્દ હૈં યહી ઘાત " ઘર્ણવ્યક્તિયુક્તઃ " પદ સે પ્રકટ કી ગઈ હૈં હસ સે ભિન્ન જો શબ્દ હૈં ઘહ નોઅક્ષર સમ્પદ્ધ શબ્દ હૈં ઘહ ઘીત્રિયાદિ પ્રાણિયૈં કી ઘ્યનિ રૂપ હોતા હૈં કુન્દુભિ આદિ કા જો શબ્દ હૈં ઘહ આતોષ ( પાજે કા ) શબ્દ હૈં તયા વશ ( ઘશ આદિ

સ્થાનમા ઉત્પન્ન ઘયેઘો શબ્દ બીજ સ્થાનપર પણ સાંભળી શકાય છે શબ્દ ( અનાજ ) જે આ પ્રકારે પ્રચરણ ઘવાની ઘાત ઘેજાનિકો પણ સ્વીકારે છે એ કે નૈવાયિક અને વૈશેષિક મતઘાદીઓ શબ્દને આકાશનો શબ્દ માને છે, પરંતુ જૈન સિદ્ધાન્તમાં તે તેને પુત્રલઢ્રવ્યની વ્યજ્ઞન-પર્યાય રૂપ માનવામાં આવેલ છે, અને યુક્તિપૂર્વક ઘિચાર કરતાં એજ ઘાત સિદ્ધ ઘાય છે

આ શબ્દના ભાપાત્મક અને અભાપાત્મક એવાં બે ભેદ છે ભાપાપર્યાસિ નામકર્મના ઉદયથી ઉત્પાદિત ( ઉત્પન્ન કરાયેલ ) જે શબ્દજનના દ્વારા કરવામાં આવે છે તેને ભાપાશબ્દ કહે છે તેનાથી ભિન્ન જે શબ્દ છે તેને નો ભાપાશબ્દ કહે છે (૧) ભાપાશબ્દ પણ અક્ષર સમ્પદ્ધ અને નોઅક્ષર સમ્પદ્ધના સેઘથી બે પ્રકારનો કહ્યો છે તેમને પણ સાદાર અને અનદારરૂપ બે ભેદ સુક્ત કહેવામાં આવેલ છે જે ઘિઘિઘ પ્રકારની ભાપાઓ બોલઘાલમાં આવે છે, જે ભાષ્યઓમા શાસ્ત્રો લખાય છે તેમને ' અક્ષર સમ્પદ્ધ સાદાર શબ્દ ' ના પ્રકારમાં ગણવી શકાય છે એજ ઘાત " ઘર્ણવ્યક્તિયુક્તઃ " આ ૧૬ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે તેનાથી ભિન્ન જે શબ્દ છે તેને નોઅક્ષર સમ્પદ્ધ શબ્દ કહે છે તે ઘીત્રિયા વગેરે પ્રાણીઓના ઘ્યનિરૂપ ઘોષ છે કુન્દુભિ ( નગાશ ) આદિના અવાજને આતેઘ ( ઘર્ણિત્રોનો ) શબ્દ કહે છે, તયા

४। ततशब्दो घनः शुषिरश्चेति द्विविधः। तत्र घनः—कांस्यतालादिजनितः, शुषिरः—वंशादिजनितः ५। एवं विततोऽपि घनशुषिरभेदेन द्विविधः।

उक्तञ्च—“ तत वीणादिकं ज्ञेयं, विततं पटहादिकम्।

घनं तु कांस्यतालादि, वंशादि शुषिरं मतम् ॥१॥ ” इति ६।

भूषणशब्दः—नूपुरादिजनितः, तद्धिन्नो नोभूषणशब्दः ७। तालशब्दः= हस्ततालादिजनितः, लत्तिकाशब्दः—पार्ष्णिप्रहारजनितः ८। अनयाऽष्टमूत्र्या

के परस्पर टकराने से जो शब्द होता है ) है वह नोआतोद्य शब्द है वीणा आदि से जो शब्द उत्पन्न होना है वह तत शब्द है तथा पटह ( ढोल ) आदि से जो शब्द उत्पन्न होता है वह वितत शब्द है ४ घन और शुषिर के भेद से तत शब्द दो प्रकार का है—कांस्य ताल आदि से जनित जो शब्द है वह घनशब्द है वंश शंख आदि से जनित जो शब्द है वह शुषिर शब्द है इसी तरह से वितत शब्द भी घन और शुषिर के भेद से दो प्रकार का है उक्तं च—“ ततं वीणादिकं ” इत्यादि।

नूपुर आदि से जनित शब्द भूषण शब्द है तथा इससेभिन्न जो शब्द है वह नोभूषण शब्द है हाथों की ताली बजाने आदि से जो शब्द होता है वह तालशब्द है तथा एंडी आदि के प्रहार से जो शब्द होता है वह लत्तिका शब्द है इस अष्ट सूत्रों द्वारा शब्दों के भेद कहे गये हैं अब शब्दोत्पत्ति के विषय में सूत्रकार कहते हैं—शब्द दो कारणों से उत्पन्न होता है एक तो संघातरूप

वांस आदि परस्पर अथवावाथी ने अवाञ्च थाय छे तेने नोआतोद्य शब्द कडे छे. वीणा आदिमांथी ने अवाञ्च नीकणे छे तेने ततशब्द कडे छे, तथा ढोल आदिमाथी ने अवाञ्च नीकणे छे तेने विततशब्द कडे छे (४) घन अने शुषिरना लेकथी ततशब्द छे प्रकारना कह्या छे—करताल, मंजिरा आदिथी जनित ने अवाञ्च छे तेने घनशब्द कडे छे अने वांसणी, शंभ आदिथी जनित शब्दने शुषिर शब्द कडे छे. वितत शब्द पणु घन अने शुषिरना लेकथी छे प्रकारना छे. कहु पणु छे के—“ ततं वीणादिकं ” इत्यादि

नूपुर ( अंजर ) आदि द्वारा जनित शब्दने भूषण शब्द कडे छे अने तेना करतां भिन्न अत्रा शब्दने नोभूषण शब्द कडे छे. हाथोथी ताणी पाडवा आदि वडे ने शब्द थाय छे तेने ताल शब्द कडे छे. पगनी ओडी वगेरेना प्रहारथी ने शब्द थाय छे तेने लत्तिका शब्द कडे छे आ अष्टसूत्री द्वारा सूत्रकारे शब्दना लेकेतु निःपणु कथुं छे. हवे सूत्रकार शब्दोत्पत्तिनां कारणोतु निःपणु करे छे—शब्द छे रीते उत्पन्न थाय छे—संघातरूप अवरधाने



शब्दमेवाः प्रोक्ता, साम्प्रतं शब्दोत्पत्तिमाह—‘दोर्हि ठाणेर्हि’ इत्यादि—द्वाम्यां स्थानाम्यां=कारणाम्यां शब्दोत्पाद्=शब्दोत्पत्ति रयात्, तथाहि—‘साहस्रताण’ इत्यादौ पञ्चम्यर्थे पठ्ठी तेन सहन्यमानेभ्यः=सवात् समापद्यमानेभ्यः पुद्गलेभ्यः शब्दोत्पाद् स्यात्। यथा—भ्रमपथनादि संयोगे गर्जनशब्दीत्यधिः तथा—मिथमा नेभ्यः=त्रिषोऽप्यमानेभ्यः पुद्गलेभ्यश्च शब्दोत्पाद् स्यात् यथा वृक्ष पत्रादीना मिति ॥ सू० २५ ॥

पुद्गलानां सप्तावमेदयोः कारणप्ररूपमामाह—

मूष्म—दोर्हि ठाणेर्हि पोग्गला साहस्रतांति तं जहा-सइ वा पोग्गला साहस्रति, परेण वा पोग्गला साहस्रति १। दोर्हि ठाणेर्हि पोग्गला भिज्जति त जहा सइ वा पोग्गला भिज्जति परेण वा पोग्गला भिज्जति २। दोर्हि ठाणेर्हि पोग्गला परि सइति, त जहा-सइ वा पोग्गला परिसइति परेण वा पोग्गला परिसाइज्जति ३। एव परिवइति ४, विद्धसति ५।

दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, त जहा भिन्ना चैव अभिन्ना चैव १। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता त जहा भिउरधम्मा चैव नोभिउरधम्मा चैव २। दुविहा पोग्गला पण्णत्ता, त जहा

अवस्था को प्राप्त होते हुए पुद्गलों से शब्दोत्पाद् होता है जैसे भ्रम (मेघ का शब्द) और पथन आदि के शब्द होने पर गर्जन रूप शब्द की उत्पत्ति होती है दूमरे जय पुद्गल स्वरूप विद्युत्क होते हैं तब उनसे शब्दोत्पाद् होता है जैसे वृक्ष पत्र आदिकों का शब्द होता है अर्थात् जय वस्तु अलग २ हो जाता है तब उनका जो शब्द होता है वह विद्युत्क शब्द है ॥ सू० २५ ॥

प्राप्त करता पुद्गल द्वारा शब्दोत्पाद् थाय है जैसे के पुद्गलानी अरस-पर सभां सवत् (सुथेत्त) वराधी जेवु जने छे जेभके भेवनी गलना जने पथन आदिने शब्द (सुसवात्) वराधी गलनरूप शब्दानी उत्पत्ति थाय छे (२) ज्यारे पुद्गल शब्द विद्युत्क (अवत्त) थाय छे, त्पारे तेमना द्वारा शब्दानी उत्पत्ति थाय छे जेभके वृक्ष, पत्र आदिने शब्द सवत्ताय छे कहेवानुं तात्पथ जे छे के ज्यारे वस्तु अवत्त थाय छे त्पारे पत्र शब्दानी उत्पत्ति थाय छे ॥ सू. २५ ॥

परमाणुपोग्गला चैव नोपरमाणुपोग्गला चैव ३ । द्विविहा  
पोग्गला पणत्ता, तं जहा-सुहुमा चैव वायरा चैव ४ । द्विविहा  
पोग्गला पणत्ता तं जहा-वद्धपासपुट्टा चैव नोवद्धपासपुट्टा  
चैव ५ । द्विविहा पोग्गला पणत्ता, तं जहा-परियाइय चैव  
अपरियाइयच्चेव ६ । द्विविहा पोग्गला पणत्ता, तं जहा-  
अत्ता चैव अणत्ता चैव ७ । द्विविहा पोग्गला पणत्ता तं जहा-  
इट्टा चैव अणिट्टा चैव ८ । एवं कंता ९, पिया १०, मणुन्ना ११,  
मणामा १२ ॥ सू० २६ ॥

छाया—द्राभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते, तद्यथा-स्वयं वा पुद्गलाः  
संहन्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते १ । द्राभ्यां स्थानाभ्यां पुद्गला भिद्यन्ते  
तद्यथा-स्वयं वा पुद्गला भिद्यन्ते परेण वा पुद्गला भिद्यन्ते २ । द्राभ्यां स्थानाभ्यां  
पुद्गलाः परिशटन्ति, तद्यथा-स्वयं वा पुद्गलाः परिशटन्ति, परेण वा पुद्गलाः  
परिशाटघ्नन्ते ३ । एवं परिपतन्ति ४ विध्वंसन्ते ५ ।

द्विविधाः पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-भिन्नाश्चैव अभिन्नाश्चैव १ । द्विविधाः  
पुद्गलाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा-भिदुरधर्माणश्चैव नो भिदुरधर्माणश्चैव २ । द्विविधाः पुद्गलाः  
प्रज्ञप्तास्तद्यथा-परमाणुपुद्गलाश्चैव नो परमाणुपुद्गलाश्चैव ३ । द्विविधाः पुद्गलाः  
प्रज्ञप्तास्तद्यथा-सूक्ष्माश्चैव वादराश्चैव ४ । द्विविधाः पुद्गलाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा-वद्ध-  
पार्श्वस्पृष्टाश्चैव नो वद्धपार्श्वस्पृष्टाश्चैव ५ । द्विविधाः पुद्गलाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा-पर्यात्ता-  
श्चैव अपर्यात्ताश्चैव ६ । द्विविधाः पुद्गलाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा-आत्ताश्चैव अनात्ताश्चैव  
७ । द्विविधाः पुद्गलाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा-इष्टाश्चैव, अनिष्टाश्चैव ८ । एवं कान्ताः ९,  
पियाः १०, मनोज्ञाः ११, मन आमाः १२ ॥ सू० २६ ॥

पुद्गलों के संघात और भेद के कारण की प्ररूपणा—

‘दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णति’ इत्यादि ।

टीकार्थ—यह पंचसूत्री है—इसका अर्थ सुगम है, स्वभावसे ही जो  
पुद्गल परस्पर में मिल जाते हैं—जैसे वे अभ्रादिकों (मेघों) में मिल

पुद्गलानां संघात (सथेण) नी तथा विघटनना कारणेनी प्ररूपणा—

“दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णति” इत्यादि—

टीकार्थ—आ पंचसूत्री छे, तेनो अर्थ सरण छे. अभ्रादिकोभां (मेघोभां)

पुद्गलो ने रीते जोक भील साथे मणी नय छे—पिंडरूप वनी नय छे, ते

टीका—‘ दाहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि-पञ्चदूरी सुगमा । नवाम्-विशेषस्त्वयम् स्वयं वा=स्वभावेनैव अन्नादिष्विष पुद्गला सहन्यन्ते=तावत्पठे, विष्ठीमघन्ती स्वर्थे, कर्मकर्तृप्रयोगोऽयम् । वा=भयघा परेण-अन्येन पुद्गला सहन्यन्ते ? । स्वयं परेण वा विघटन्ते विघटन्ते २ । स्वयं वा पुद्गलाः परिशटन्ति, भ्रवसीदन्ति कुत्सितावस्थां प्राप्नुवन्ति-कुप्वादिनाङ्ख्यादिषु, परेण वा पुद्गलाः परिशटन्ते मद्यद्रव्यादिषु ३ । परिपतन्ति पर्वतादेरिषु ४ । विघ्नंसन्ते=विनश्यन्ति घनपटलवत् ५ ।

जाते हैं सचद्वित हो जाते हैं-पिण्डीभाव को प्राप्त हो जाते हैं यह उनके मिलने में प्रथम कारण है । तथा-पर के द्वारा कृम उपाय से जो पुद्गल आपस में मिल जाते हैं यह उनके मिलने में दूसरा कारण है इसी तरह जो पुद्गल अपने आप विघटित (अलग) हो जाते हैं यह उनके विघटित होने का प्रथम कारण है तथा जब वे दूसरे कारणों से विघटित (अलग) कर दिये जाते हैं तो यह उनके विघटित होने का दूसरा कारण है । २ । इसी तरह से उनके परिशटित (सहन) होने के भी दो कारण हैं-एक कारण यह है जिस कारण से वे स्वयं ही कुष्ठ (कोठ) रोगादि से अंगुली की तरह परिशटित हो जाते हैं-कुत्सितावस्था को प्राप्त हो जाते हैं । अर्थात् सब जाते हैं, दूसरा कारण यह है कि जिसके द्वारा मद्यादि द्रव्य की तरह (परिशटित) सहाये जाते हैं । इसी प्रकार से पुद्गलों के परिपतन (पड़ने) में भी दो कारण हैं-एक कारण यह है कि जिससे वे पर्वतादि की तरह अपने आप पतित (पड़ना)

रीतेन स्वाभाविक सघात (सञ्चोभीकरण) कठे उ आ शिवाय पुद्गलाना सघातं नीलु कारण आ प्रमाद्ये उ-परना द्वारा हृत् उपाय द्वारा पञ्च पुद्गल जेह नीलु साथे मणी लय छे ॥ १ ॥

पुद्गलाना विघटनानां (गुहा यथाभी) पञ्च जेवांज के कारणे रहैलां छे (१) पुद्गलौ पीतानी आते जे विघटित (अलग) सधं लय छे (२) अथवा तेजो नीलु कारणेयी पञ्च विघटन पाये छे ॥ २ ॥

जेज प्रमाद्ये तेमना परिशटनानां (सठवानां) पञ्च के कारणे काम रहै छे-(१) नेम कोठादि रोग द्वारा आंजणी आदि जेजो सधे लय छे तेम स्वाभाविक रीते जे पुद्गलानां परिशटन साथ छे (२) मद्यादि र पनी नेम जेज उपाये द्वारा पञ्च परिशटन साथ छे ॥ ३ ॥

जेज प्रमाद्ये पुद्गलानां परिपतन (पड़वानी दिवा) पञ्च के कारणे साथ छे (१) पर्वतादिनी नेम आधोआप परिपतन साथ छे (२) जेजना द्वारा पञ्च तेमनां परिपतन साथ छे ॥ ४ ॥

पुनः पुद्गलानेव निरूपयति- 'द्विधा पोगला' इत्यादि—

द्वादशसूत्री कण्ठ्या, नरसू-मिन्नाः = विघटिताः उशिन्नाः = संघातमा-  
पन्नाः १। स्वयमेव भिद्यते इति भिदुरं = भिदुरत्वमित्यर्थः तदेव धर्मः =  
स्वभावो येषां ते भिदुरधर्माणः - प्रतिक्षणविनश्वरशीला इत्यर्थः, अन्तर्भूतमा-  
वप्रत्ययोऽयम् । तद्धिन्ना नो भिदुरधर्माणः २। परमाणुपुद्गलाः-परमाश्च ते

हो जाते हैं और दूसरा कारण वह है कि जिसके द्वारा वे परिपन्नित  
किये जाते हैं इसी तरह से पुद्गलों के विनाश होने में भी दो कारण  
होते हैं-एक कारण वह है कि जिस कारण से वे घनपटल (मेघ) की  
तरह स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं और दूसरा कारण वह है कि जिससे  
वे विनष्ट (नाश) कर दिये जाते हैं जैसे पुराना घर आदि ५।

यह द्वादश सूत्री है-इसमें भी पुद्गल दो प्रकार के ही प्रकट किये  
गये हैं-एक विघटित और दूसरे संघातप्राप्त जो पुद्गल भिन्न २ रूप में  
विघटित हैं वे भिन्न विघटित (अलग २) पुद्गल हैं तथा जो पुद्गल संघात  
(एक दूसरे के साथ मिल जाना) को प्राप्त हैं वे अभिन्न-संघात प्राप्त  
पुद्गल हैं १ इस प्रकार से भी पुद्गल दो प्रकार के हैं-एक भिदुरधर्मी और  
दूसरे नोभिदुरधर्मी जिनका स्वभाव अपने आप ही प्रतिक्षण विनश्वर  
(नाश) होने का है वे भिदुरधर्मी पुद्गल हैं और जिनका स्वभाव ऐसा  
नहीं है-भिदुरधर्मीके जो विपरीत हैं वे नोभिदुरधर्मी परमाणु पुद्गल हैं  
२ इसी प्रकार से पुद्गल दो प्रकार के हैं-एक परमाणु रूप पुद्गल और

अन्य प्रमाणे पुद्गलाना विनाशमां पणु ये कारणो काम करे छे-(१)  
मेघानी जेम तेजो स्वत विनष्ट थर्ष नथ छे (२) अथवा पुराणो धरनी  
जेम अन्य उपायो द्वारा पणु तेना विनाश कराय छे ॥ ५ ॥

उवे जे द्वादश सूत्री (चार सूत्रो) कही छे तेना अर्थ समञ्जववामां  
आवे छे-तेमां पणु पुद्गलाना जे प्रकार गताव्या छे-(१) विघटित अने (२)  
संघातप्राप्त. जे पुद्गलो जुडे जुडे इथे विघटित छे, तेजो भिन्न विघटित  
(अलग अलग) पुद्गल गणुय छे, तथा जे पुद्गलो संघातप्राप्त (जेक भीन  
साथे संयोग पासेकां) छे, तेमने अभिन्न संघातप्राप्त पुद्गलो कडे छे ॥१॥

पुद्गलाना आ प्रमाणे जे प्रकार छे-(१) भिदुर धर्मा अने (२) नो  
भिदुर धर्मा चोतानी नते जे प्रतिक्षण नष्ट यवाना स्वभाववाणां पुद्गलाने  
भिदुर धर्मा पुद्गलो कडे छे तेना करतां विपरीत स्वभाववाणा पुद्गलाने नो  
भिदुर धर्मा परमाणु पुद्गल कडे छे. ॥ २ ॥

અણવશ પરમાણુનઃ=નિર્વિભાગદ્રવ્યરૂપાઃ, તે વષ્ટે પુદ્ગલાશ્ર તે તથા=સ્કન્ધવત્તમા-  
 ષમનાપન્નાઃ ક્લેશલાઃ પરમાણવ પથેત્યય । તદ્મિન્ના નો પરમાણુપુદ્ગલાઃ=સ્કન્ધ  
 મૂતા ઇત્યર્થઃ ૩ । સૂક્ષ્માઃ=સૂક્ષ્મપરિણામાઃ ધીતોષ્વસ્તિગ્ધરૂક્ષલક્ષણવતુ સ્પર્શવ  
 ન્તમ્, एते च मापादयःसन्ति, वादराः=વાદરપરિણામા અટસ્પર્શવન્તમ્પ્રોદારિકા  
 યયઃ ૪ । ષટ્પાર્શ્વસ્પૃષ્ટાઃ=પાર્શ્વન=વેદત્વના સ્પૃષ્ટાઃ=રજોવત્ પાર્શ્વસ્પૃષ્ટાઃ, તતો

વસરા નો પરમાણુરૂપ પુદ્ગલ જો પુદ્ગલ નિર્વિભાગ દ્રવ્યરૂપ હોતે હેં વે  
 પરમાણુ રૂપ પુદ્ગલ હેં ઓર જો इनसे મિશ્ર પુદ્ગલ હેં વે સ્કન્ધરૂપ પુદ્ગલ  
 નો પરમાણુરૂપ હેં ઇસી પ્રકાર સે સૂક્ષ્મ ઓર વાદર કે મેદ સે પુદ્ગલ વો  
 પ્રકાર કે હોતે હેં જો પુદ્ગલ સૂક્ષ્મપરિણામ સે પરિણત હો રહે હેં વે સૂક્ષ્મ  
 પુદ્ગલ હેં-इनमें शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष इन चार स्पर्शों में से  
 કોઈ સે વો અધિરોપી સ્પર્શ રહતે હેં અથવા મિશ્ર ૨ વેશોં કી અપેક્ષા  
 સે उनमें ये चार स्पर्श रहते हैं ऐसे पुद्गल भाषाविरूप होते हैं जो वादर  
 પરિણામ સે પરિણત હેં વે વાદરપુદ્ગલ હેં इन वादरपुद्गलों में आठों प्रकार  
 કે સ્પર્શ રહતે હેં એસે વે વાદર પરિણત પુદ્ગલ ઔદારિક આદિ રૂપ હેં  
 ઇસી પ્રકાર સે પુદ્ગલ ષટ્પાર્શ્વ સ્પૃષ્ટ ઓર નો ષટ્પાર્શ્વસ્પૃષ્ટકે મેવસે વો  
 પ્રકાર કે મી હોતે હેં-षट्पार्श्वस्पर्शपुद्गल वे हैं जो वेद की त्वचा (चमड़ी)  
 કે સાય રજ કી તરફ પહિલે સ્પૃષ્ટ હોતે હેં પાદ મેં ષટ્ ગાઠતરરૂપ મેં

પુદ્ગલના આ પ્રમાણે બે પ્રકાર પણ પડે છે-(૧) પરમાણુ ૩૫ પુદ્ગલ  
 અને (૨) નો પરમાણુ ૩૫ પુદ્ગલ જે પુદ્ગલો નિર્વિભાગ દ્રવ્યરૂપ હોય છે  
 તેમને પરમાણુ ૩૫ પુદ્ગલ કહે છે પણ તેના કરતાં બિન્ન જે સ્કન્ધરૂપ પુદ્ગલો  
 છે, તેમને નો પરમાણુરૂપ કહે છે

જેવ પ્રમાણે સૂક્ષ્મ અને બાહરના લેહથી પણ પુદ્ગલ બે પ્રકારના હોય  
 છે સૂક્ષ્મ પરિણામથી પરિણત જે પુદ્ગલો છે તેમને સૂક્ષ્મ પુદ્ગલ કહે છે  
 તે પ્રકારનાં પુદ્ગલોમાં શીત, ઉષ્ણ, સ્નિગ્ધ અને રૂક્ષ આ ચાર સ્પર્શોમાંથી  
 કોઈ પણ બે અવિરોધી સ્પર્શોના સહભાવ હોય છે અથવા બિન્ન બિન્ન રહેો.  
 (અથો) ની અપેક્ષાએ તેમનામાં તે ચારે સ્પર્શોના સહભાવ રહે છે જોવાં  
 પુદ્ગલો ભાષાદિ ૩૫ હોય છે બાહર પરિણામથી પરિણત પુદ્ગલોને બાહર પુદ્ગલો  
 કહે છે તે બાહર પુદ્ગલોમાં આઠે પ્રકારના સ્પર્શોના સહભાવ રહે છે જોવાં  
 તે બાહર પરિણત પુદ્ગલો ઔદારિક આદિ ૩૫ હોય છે

જેવ પ્રમાણે બદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટ અને નો બદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટના લેહથી પણ  
 પુદ્ગલ બે પ્રકારના હોય છે જે પુદ્ગલો શરીરની ત્વચાની સાથે રજની જેમ

વદ્ધાઃ—ગાઢતરં શ્લિષ્ટાઃ તનો તોયવત્ પાર્શ્વસ્પૃષ્ટાશ્ચ તે વદ્ધાશ્ચ=પ્રદેશૈરાત્મસાત્કૃતાઃ  
રાજદન્તાદિવદ્ વદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટાઃ ।

ઉક્તશ્ચ—“ પુદ્ગરેણુ વ તણુમ્મિ, વદ્ધમપ્પી કયં પરસેદિં ” ઇતિ ।

છાયા—સ્પૃષ્ટં રેણુવત્તનો, વદ્ધમાત્મીકૃતં પ્રદેશૈઃ ” ઇતિ ॥ ઘ્રાણરસનસ્પર્શ-  
નેન્દ્રિયગ્રહણગોચરાદિત્યર્થઃ । એતે પુદ્ગલા યદા ઘ્રાણરસનસ્પર્શનેન્દ્રિયૈઃ સઠ સ્પૃષ્ટા  
વદ્ધાશ્ચ ભવન્તિ તદા—ગન્યઃ—સુરભ્યાદિત્વેન આગ્રાયતે, રસઃ—મધુરાદિત્વેનાસ્વાદ્યતે  
સ્પર્શઃ—કર્કશાદિત્વેન સ્પૃશ્યતે નાન્યથા । નો વદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટાઃ પુદ્ગલા દ્વિ પ્રકારા

પ્રદેશોં કે સાથ શ્લિષ્ટ હો જાતે યે હેં કહ્યા ખી હૈ—‘પુદ્ગં રેણુ વ’ ઇત્યાદિ  
રેણુ ( રજ ) કી તરહ શરીર મેં જો પુદ્ગલ પહિલે સ્પૃષ્ટ હોતે હેં ઓર વાદ  
મેં ચિપક જાતે હેં વે વદ્ધ પાર્શ્વ સ્પૃષ્ટ પુદ્ગલ હેં । અર્થાત્ પાર્શ્વ સ્પૃષ્ટ હોકર  
જો વદ્ધ હોતે હેં એસે પુદ્ગલ વદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટ હેં યે પુદ્ગલ ઘ્રાણ, રસના ઓર  
સ્પર્શન ઇન્દ્રિયોં દ્વારા અપને ૨ વિષયરૂપ સે ગૃહીત હોતે હેં યે પુદ્ગલ જવ  
ઘ્રાણ ઇન્દ્રિય કે સાથ સ્પૃષ્ટ હોકર વદ્ધ હોતે હેં તવ उनका सुगन्ध आदि  
गंध उसके द्वारा छंगने में आता है और जब ये पुद્गल रसना इन्द्रिय के  
साथ स्पर्श होकर वद्व होते है तब उनका मधुर ( मीठा ) रस आदि  
उसके द्वारा गृहीत होना है—आस्वादित होता है । तथा जब ये पुद्गल  
स्पर्शन इन्द्रिय के साथ स्पर्श होकर वद्व होते है—तब उनका कर्कश-  
( कठोर ) आदि स्पर्श उसके द्वारा छूआ जाता है ।

પહેલાં સ્પૃષ્ટ રહે છે અને ત્યારબાદ ગાઢતર રૂપે પ્રદેશોની સાથે શ્લિષ્ટ થઇ  
જાય છે તે પુદ્ગલોને બદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટ પુદ્ગલો કહે છે. કહ્યુપણુ છે કે—

“ પુદ્ગં રેણુવ ” ઇત્યાદિ રેણુ ( રજ ) ની જેમ જે પુદ્ગલો પહેલાં શરી-  
રની સાથે સ્પૃષ્ટ થાય છે અને પછી શરીરની સાથે ચોટી જાય છે, એવા  
પુદ્ગલોને બદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટ કહે છે. એટલે કે પાર્શ્વસ્પૃષ્ટ ( પહેલાં સ્પૃષ્ટ ) થઇને  
પછીથી બદ્ધ થનારાં પુદ્ગલોને બદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટ પુદ્ગલો કહે છે તે પુદ્ગલોને  
ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસનેન્દ્રિય અને સ્પર્શેન્દ્રિય દ્વારા પોતપોતાના વિષય રૂપે ગ્રહણ  
કરવામાં આવે છે. તે પુદ્ગલો જ્યારે ઘ્રાણેન્દ્રિયની સાથે સ્પૃષ્ટ થઇને બદ્ધ થાય  
છે ત્યારે તેમની સુગન્ધ આદિ ગંધ તેના દ્વારા સૂંઘવામાં આવે છે. જ્યારે તે  
પુદ્ગલો રસના ઇન્દ્રિય સાથે સ્પૃષ્ટ થઇને બદ્ધ થાય છે ત્યારે તેના દ્વારા તેમના  
મધુર આદિ રસ ( સ્વાદ ) નો આસ્વાદ કરાય છે જ્યારે તે પુદ્ગલો સ્પર્શે-  
ન્દ્રિયની સાથે સ્પૃષ્ટ થઇને બદ્ધ થાય છે, ત્યારે તેના દ્વારા તેમનો કર્કશ આદિ  
સ્પર્શ અનુભવી શકાય છે.

भवन्ति, यत्र केचित् श्रोत्रेन्द्रियग्रहणगोचरा भवन्ति केचित्तु चक्षुर्मात्र विषया इति । तत्र ये- यद्वा नैव किन्तु पार्श्वस्पर्शा, इति पदरूपैरुपदमतिषेवेन श्रोत्रेन्द्रियमात्रग्रहणगोचरा भवन्ति । अन्ये तु-नो यद्वाः, नो पार्श्वस्पर्शाः, इत्युभयपदनिषेवेन श्रोत्राद्यविषयाश्चक्षुर्विषयाश्च पुद्गला भवन्तीति ।

यद्वा ऐसी शका एी सफती हैं कि रूपादि गुण तो अमूर्त हैं फिर इन्द्रियों द्वारा इनका ग्रहण कैसे एी सकता है ? तो इनका समाधान ऐसा है कि गुण गुणी-द्रव्य से भिन्न नहीं हैं-अतः अय का ग्रहण होने पर उससे स्पर्शित् अभिन्न हुए गुणों का भी ग्रहण हो जाता है जैसे घ्राण इन्द्रिय से गन्ध का सयोग न होकर सुगन्ध या दुगन्ध वाले परमाणुओं का ही सयोग होता है-किन्तु घ्राण इन्द्रिय में गन्ध को अभिन्वय करने की योग्यता होने से इनका विषय गन्ध कहा गया है ।

इसी प्रकार से अय इन्द्रियों के विषय में भी जानना चाहिये नो यद्वापार्श्वस्पर्श पुद्गल दो प्रकार के होते हैं-इनमें कितनेक श्रोत्रेन्द्रिय के विषय होते हैं और कितनेक चक्षु इन्द्रिय के विषय होते हैं तथा जो पुद्गल यद्वा नहीं है, किन्तु पार्श्वस्पर्श है वे केवल श्रोत्रेन्द्रिय के ही विषय होते हैं तथा जो पुद्गल न यद्वा है और न स्पर्श है वे पुद्गल सिर्फ एक चक्षु इन्द्रिय के ही विषय होते हैं पर्यो कि चक्षु इन्द्रिय अप्राप्यकारी

शका-इयादि गुण तो अमूर्त थे तो इन्द्रियों द्वारा तेमने कवी शीते धरंजु करी शक्य थे ?

समाधान-जुलु सुधी-द्रव्यधी भिन्न नथो, तेधी अथनु प्रकृषु धाव आवे तेनाधी कर्क असि न ज्येतां शुद्धेनुं पञ्च प्रकृषु यर्क नय थे नेगके प्राज्ञेन्द्रियधी गधनेो सयोग न यवा छन्द पञ्च सुषध जने दुर्धधवाणा परभावुजोनेो न सयोग धाय थे परन्तु प्राज्ञेन्द्रियधी धने अलिभ्यस्त कश्वाधी योग्यता डोव थी तेना विषय तरीके गधने गानवाभा आवे थे

ज्ये प्रमाज्ञे अय इन्द्रियेना विषयधी पञ्च सभरनुं नो लदपार्श्वस्पर्श पुद्गल ने प्रकाशना डेव थे तेमाधी कटकाः मात्रेन्द्रियनेो विषय जने थे तेना दाश अनुभवधी शकाः थे जने कटकाः यक्षु इन्द्रियनेो विषय जने थे तथा ने पुद्गली लद नथो डोतां पञ्च मात्र पार्श्वस्पर्श न डोव थे, ते मात्र श्रोत्रेन्द्रियनेो न विषय जने थे तथा ने पुद्गल लद पञ्च डोतां नथी जने स्पर्श पञ्च डोतां नथी तेना मात्र यक्षु इन्द्रियनेो न विषय जने थे शरुड के यक्षु इन्द्रियनेो अप्राप्यकारी मानवाभा आवी थे कक्षु पञ्च थे के-“ पुद्ग

ઉક્તञ્ચ —“ પુટ્ટં સુણેઙ્ઠ સદં, રૂપં પુણ પાસઈ અપુટ્ટં તુ ।

ગંથં રસં ચ ફાણં ચ, વદ્ધપુટ્ટં વિયાગરે ॥ ”

છાયા—સ્પૃષ્ટં શ્રુતોતિ શબ્દં, રૂપ પુનઃ પદ્યતિ અમ્પૃષ્ટં તુ ।

ગંથં રસં ચ સ્પર્શં ચ, વદ્ધં સ્પૃષ્ટઞ્ઠ વ્યાગૃતીયાત્ ॥ ઇતિ ।

ઉક્તેયમિન્દ્રિયાણ્યપેક્ષ્ય પુદ્ગલાનાં વદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટતા, એવં જીવપ્રદેશાપેક્ષ્યા પરમ્પરાપેક્ષ્યા ચ વોધ્યેતિ ૫ । ‘ પરિયાહ્ય ’ ત્તિ-પર્યાત્તાઃ=સામસ્ત્યેન ગૃહીતાઃ કર્મપુદ્ગલવત્, તદ્મિન્ના અપર્યાત્તાઃ । યદ્વા-‘ પર્યાયાતીતાઃ ’ ઇતિ-છાયા તત્ર

માની ગઈ છે । કહ્યા ઓ છે—“ પુટ્ટં સુણેઙ્ઠ સદં ઇત્યાદિ ।

કર્ણ ઇન્દ્રિય સ્પૃષ્ટ હુણ શબ્દ કો ગ્રહણ કરની છે ચક્ષુ ઇન્દ્રિય અસ્પૃષ્ટ હુણ રૂપ કો ગ્રહણ કરતી છે ઓર ઘ્રાણ, રસના ઓર સ્પર્શન એ તોન ઇન્દ્રિયાં વદ્ધસ્પૃષ્ટ હુણ પુદ્ગલ કો ગ્રહણ કરતી છે । ઇસ પ્રકાર ઇન્દ્રિયોં કી અપેક્ષા લેતર યહ પુદ્ગલોંકી વદ્ધપાર્શ્વ સ્પૃષ્ટતા કહી છે જીવપ્રદેશાપેક્ષાસે ઓર પરમ્પરાપેક્ષાસે ઓ ઇસી તરહ યહ વદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટતા જાનના ચાહિયે ।

ઇસ પ્રકાર સે ઓ પુદ્ગલ દો પ્રકાર કે કહે ગયે છે એક પર્યાત્તપુદ્ગલ ઓર ઘૂસરે અપર્યાત્ત પુદ્ગલ, કર્મપુદ્ગલ કી તરહ જો પુદ્ગલ સામસ્ત્યેન ( સવ ઓર સે ) ગૃહીત હોતે છે એ પર્યાત્તપુદ્ગલ છે ઓર ઇનસે ભિન્ન જો પુદ્ગલ છે એ અપર્યાત્તપુદ્ગલ છે અથવા “ પરિયાહચ્ચેવ અપરિયાહચ્ચેવ ” કી સંસ્કૃત છાયા “ પર્યાયાતીતાઃ ” ઓર “ અપર્યાયાતીતાઃ ” એસી ઓ

સુણેઙ્ઠ સદં ” ઇત્યાદિ—

કર્ણેન્દ્રિય સ્પૃષ્ટ થયેલા શબ્દને જ ગ્રહણ કરે છે, ચક્ષુ ઇન્દ્રિય અસ્પૃષ્ટ થયેલા રૂપને ગ્રહણ કરે છે, અને ઘ્રાણેન્દ્રિય, રસનાઇન્દ્રિય અને સ્પર્શેન્દ્રિય બદ્ધ અને સ્પૃષ્ટ થયેલાં પુદ્ગલોને જ ગ્રહણ કરે છે. આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયોની અપેક્ષાએ પુદ્ગલોની બદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટતાનુ અહીં પ્રતિપદન કરવામાં આવ્યું છે. જીવપ્રદેશાપેક્ષાએ તથા પરમ્પરાપેક્ષાએ પણ એજ પ્રમાણે તે બદ્ધપાર્શ્વસ્પૃષ્ટતા સમજવી જોઇશે.

પુદ્ગલના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકાર પડે છે—(૧) પર્યાત્ત પુદ્ગલ અને (૨) અપર્યાત્ત પુદ્ગલ કર્મપુદ્ગલોની જેમ જે પુદ્ગલો બધી તરફથી ગૃહીત થાય છે, તે પુદ્ગલોને પર્યાત્ત પુદ્ગલો કહે છે અને તેમના કરતાં ભિન્ન પુદ્ગલોને અપર્યાત્ત પુદ્ગલો કહે છે. અથવા “ પરિયાહચ્ચેવ અપરિયાહચ્ચેવ ” ની સંસ્કૃત છાયા “ પર્યાયાતીતા. ” અને “ અપર્યાયાતીતા. ” પણ થઈ શકે છે. જે પુદ્ગલો



भवन्ति, एष फथित् श्रोत्रेन्द्रियग्रहणगोचरा भवन्ति केचित्तु चक्षुर्मात्र विषया इति । तत्र ये— यद्वा नैव किन्तु पार्श्वस्पर्श, इति पदरूपैरुपदगतिपदेन श्रोत्रेन्द्रियमात्रग्रहणगोचरा भवन्ति । अये तु—नो यद्वाः, नो पार्श्वस्पर्शाः, इत्युभयपदनिपेदेन श्रोत्राद्यविषयाद्यष्टविषयाश्च पुद्गला भवन्तीति ।

यदा ऐसी दाका हो सकती है कि रूपादि गुण तो अमूर्त हैं फिर इन्द्रियों द्वारा इनका ग्रहण कैसे हो सकता है ? तो इसका समाधान ऐसा है कि गुण गुणी-द्रव्य से भिन्न नहीं हैं—अतः अर्थ का ग्रहण होने पर वससे फथित् अभिन्न हुए गुणों का भी ग्रहण हो जाता है जैसे घ्राण इन्द्रिय से गन्ध का संयोग न होकर सुगन्ध या सुर्गन्ध वाले परमाणुओं का ही संयोग होता है—किन्तु घ्राण इन्द्रिय में गन्ध को अभिव्यक्त करने की योग्यता होने से इतना विषय गन्ध कहा गया है।

इसी प्रकार से अन्य इन्द्रियों के विषय में भी जानना चाहिये नो पदपाम्बस्पर्श पुद्गल दो प्रकार के होते हैं—इनमें कितनेक श्रोत्रेन्द्रिय के विषय होते हैं और कितनेक चक्षु इन्द्रिय के विषय होते हैं तथा जो पुद्गल पद नहीं है, किन्तु पार्श्वस्पर्श है वे केवल श्रोत्रेन्द्रिय के ही विषय होते हैं तथा जो पुद्गल न पद है और न स्पर्श है वे पुद्गल सिर्फ एक चक्षु इन्द्रिय के ही विषय होते हैं क्योंकि चक्षु इन्द्रिय अप्राप्यकारी

शब्दा—रूपादि शुद्ध तो अभूत थे तो इन्द्रियों द्वारा तेमने कौसी रीते ग्रहण करी शक्य थे ?

समाधान—शुद्ध शुद्धी-द्रव्यधी भिन्न नहीं तेषी अर्थनुं ग्रहण धारण करे तेनाधी कथि अभिन्न करी शक्येनुं पक्ष अक्षय यथं ज्ञायंते तेभके श्रोत्रेन्द्रियधी गन्धनेः संयोग न यथा छत्वां पक्ष सुप्रथं जने दुर्धवाणां परमाक्षुभेनां च संयोग बाधं छत्वां पक्ष सुप्रथं जने दुर्धवाणां करवाणी योभ्यतां डोवधी तेना विषय तरीके गंधने मानवामा ज्ञाने छ

ज्जे प्रमाक्षे ज्ञयं इन्द्रियेना विषयभां पक्ष समञ्जसुं नो पदपार्श्वस्पर्श पुद्गल के प्रकारना के य छे तेमांथी डेटलाक श्रोत्रेन्द्रियने विषय जने छे तेना दाया अनुजची शक्य छे जने डेटलाक चक्षु इन्द्रियने विषय जने छे तथा के पुद्गलै पद नहीं डोवां पक्ष मात्र पार्श्वस्पर्श च डोय छे, ते मात्र श्रोत्रेन्द्रियने च विषय जने छे तथा के पुद्गल पद पक्ष डोवां नहीं जने स्पर्श पक्ष डोवां नहीं तेज्जे मात्र चक्षु इन्द्रियने च विषय जने छे, अस्तु के चक्षु इन्द्रियने अप्राप्यकारी मानवामा ज्ञानी छे अक्षु पक्ष छे के—'पुद्गल

प्रीत्युत्पादका इन्द्रियाह्लादका इत्यर्थः । १० । मनोज्ञाः—मनसा ज्ञायन्ते शोभनत्वेन ॥  
 हितकारित्वेन च ये ते तथा । ११ । मन आमाः=मनः प्रियाः । यद्वा—मनोऽमाः  
 मनसा अम्यन्ते=गम्यन्ते वल्लभत्वेनानुस्मर्यन्ते ये ते तथा । विपक्षे 'तद्भिन्नाः'  
 इति व्याख्येयम् ११ ॥ सू० १६ ॥

पुद्गलधिकारादेव तद्धर्मान् शब्दादीन् आत्तादिविशेषणविशिष्टान् निरूपयन्नाह  
 मूलम्—दुविहा सहा पणत्ता तं जहा-अत्ता चैव अणत्ता चैव ॥  
 एवं इट्टा जाव मणामा ६ । दुविहा रूवा पणत्ता तं जहा-अत्ता  
 चैव अणत्ता चैव, जाव मणामा १२ । एवं गंधा १७, रसा २४,  
 फासा, एवमिक्किक्के छ छ आलावगा भाणियव्वा ३२ ॥ सू० २७ ॥

छाया—द्विविधाः शब्दाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—आत्ताश्चैव अनात्ताश्चैव १ । एवम्  
 इष्टा यावत् मन आमाः ६ । द्विविधाः रूपाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—आत्ताश्चैव अनात्ता-  
 श्चैव, यावत् मन आमाः १२ । एवं गंधाः १८, रसाः २४, स्पर्शाः, एवमेकैके  
 पइ पइ आलापका भणितव्याः ३२ ॥ सू० २७ ॥

संपन्न होते हैं वे कमनीय पुद्गल हैं और इनसे जो भिन्न पुद्गल है वे  
 अकमनीय पुद्गल हैं जो पुद्गल इन्द्रियों के आह्लादक होते हैं वे पुद्गल  
 प्रिय पुद्गल हैं और जो इनसे भिन्न पुद्गल हैं वे अप्रियपुद्गल हैं मन के  
 द्वारा जो पुद्गल शोभनरूप से और हितकारीरूप से जाने जाते हैं वे  
 मनोज्ञ पुद्गल हैं और जो इनसे भिन्न पुद्गल है वे अमनोज्ञ पुद्गल हैं जिन  
 पुद्गलों को मन वल्लभ ( प्रिय ) रूप से बारं बार याद करता है वे पुद्गल  
 मनोऽम हैं अथवा मन को जो पुद्गल प्रिय होते हैं वे पुद्गल मन आम  
 हैं इनसे भिन्न पुद्गल मनः अनाम हैं ॥ सू० २६ ॥

तेमने कमनीय पुद्गलो कडे छे अने तेमनाथी सिन्न पुद्गलोने अकमनीय  
 पुद्गलो कडे छे. जे पुद्गलो इन्द्रियोने माटे आह्लादजनक होय छे ते पुद्गलोने  
 प्रिय पुद्गलो कडे छे अने तेमना करतां सिन्न पुद्गलोने अप्रिय पुद्गलो कडे  
 छे. जे पुद्गलो मनने शोभिता अने हितकारी लागे छे, ते पुद्गलोने मनोज्ञ  
 पुद्गलो कडे छे अने तेमना करतां सिन्न पुद्गलोने अमनोज्ञ पुद्गलो कडे छे  
 जे पुद्गलोने मन वल्लभ ( प्रिय ) पुद्गलोइये वारंवार याद करे छे, ते पुद्गलोने  
 मनोम अथवा मनआम पुद्गलो कडे छे. जेवां पुद्गलो मनने प्रिय लागे छे.  
 तेमनाथी सिन्न पुद्गलोने अमनोम ( मनः अनाम ) पुद्गलो कडे छे. सू. २६

વિવક્ષિત પર્યાયમતીલાઃ પર્યાયાલીલા, इतरे तद्भिन्नाः ६। आषाः=गृहीताः  
 जीवेन धरीरादितया परिग्रहमात्रतया वा स्वीकृता, उद्विस्तरऽनाशाः ७। इष्टाः-  
 इष्ट्यते प्रयोजनवशाद् अर्थक्रियार्थिर्मिर्मनोरथपुरस्कृतादिति तयात्ता, तद्भिन्ना  
 अनिष्टाः ८। एष कान्ताः=कमनीयाः विशिष्टवर्णादिसम्बन्धा १९। मियाः=

હો સકતી હૈ હસમેં જો વિવક્ષિત પર્યાય સે અતીમ-રહિત પુત્રલ હૈ વે  
 પર્યાયાલીલ પુત્રલ હૈ ઓર હનસે મિશ્ર જો પુત્રલ હૈ વે “અપર્યાયાલીલ”  
 પુત્રલ હૈ । ૬ ।

આસ ઓર અનાસ કે મેદ સે બી પુત્રલ દો પ્રકાર કે હૈ- હન મેં  
 જો પુત્રલ જીવ કે દ્વારા શરીર આદિ રૂપ સે ગૃહીત કિયે ગયે હૈ વે  
 આસ પુત્રલ હૈ અથવા જો પરિગ્રહમાત્ર રૂપ સે ગૃહીત કિયે ગયે હૈ વે  
 આસ પુત્રલ હૈ હનસે મિન્ન અનાસ પુત્રલ હૈ ઇષ્ટ ઓર અનિષ્ટરૂપસે બી  
 પુત્રલ દો પ્રકાર કે હૈ, અર્થક્રિયાર્થિયો દ્વારા મનોરથપૂરક હોને સે જો  
 પ્રયોજનવશા અભિલપિત હોતે હૈ વે પુત્રલ ઇષ્ટ પુત્રલ હૈ ઓર હનસે મિશ્ર  
 જો પુત્રલ હૈ વે અનિષ્ટ પુત્રલ હૈ । ૮ ।

હસી પ્રકાર કાન્ત, મિય, મનોહા ઓર મન આમ પુત્રલ મી અપને  
 ૨ વિપક્ષ સહિત સમજના ચાહિયે અર્થાત્ કાન્ત ઓર અકાન્ત કે મેદ  
 સે બી પુત્રલ દો પ્રકાર કે હોતે હૈ હનમેં જો પુત્રલ વિશિષ્ટ વર્ણાવિકોં

વિવક્ષિત પર્યાયી અલીલ (રહિત) હોય છે તેમને ‘પર્યાયાલીલ પુત્રલો’  
 કહે છે અને તેમનાથી ભિન્ન જોવાં જે પુત્રલો હોય છે, તેમને “અપર્યાયાલીલ  
 પુત્રલો” કહે છે ॥ ૬ ॥

આત્મ અને અનાત્મના લેહથી પણ પુત્રલોના બે પ્રકાર પડે છે જે  
 પુત્રલોને ભવ દ્વારા શરીર આદિ રૂપે પ્રલબ્ધ કરવામાં આવેલાં હોય છે, તે  
 પુત્રલોને આત્મપુત્રલો કહે છે અથવા જે પુત્રલોને પરિગ્રહમાત્ર રૂપે સ્વીકૃત  
 કરાયેલ છે, તેમને આત્મપુત્રલો કહે છે, તેમનાથી ભિન્ન પુત્રલોને અનાત્મ  
 પુત્રલો કહે છે ॥ ૭ ॥

ઈષ્ટ અને અનિષ્ટના લેહથી પણ પુત્રલોના બે પ્રકાર કહ્યા છે. અર્થ  
 ક્રિયાઓના માર્ગે જે પુત્રલો મનોરથપૂર્ણ કરનાર અને અભિલપિત હોય છે  
 તે પુત્રલોને ઈષ્ટ પુત્રલો કહે છે, તેના કરતાં ભિન્ન પુત્રલોને અનિષ્ટ પુત્રલો  
 કહે છે ॥ ૮ ॥

જે પ્રમાણે કાન્ત, મિય, મનોહા અને મન આમ પુત્રલો પણ પાત  
 પાતાના વિવક્ષથી સુક્ત હોય છે જેમકે કાન્ત અને અકાન્તના લેહથી પણ  
 પુત્રલોના બે પ્રકાર પડે છે જે પુત્રલો વિશિષ્ટ વર્ણાવિકોથી સુક્ત હોય છે,

चरित्तायारे दुविहे पणत्ते तं जहा—तवायारे चेव वीरियायारे  
 चेव ४ । दो पडिमाओ पणत्ताओ तं जहा—समाहिपडिमा चेव  
 उवहाणपडिमा चेव ५ । दो पडिमाओ पणत्ताओ तं जहा—  
 विवेगपडिमा चेव विउसग्गपडिमा चेव ६ । दो पडिमाओ  
 पणत्ताओ, तं जहा—भद्दा चेव सुभद्दा चेव ७ । दो पडिमाओ  
 पणत्ताओ तं जहा—महाभद्दा चेव सब्बओ भद्दा चेव ८ । दो  
 पडिमाओ पणत्ताओ तं जहा—खुड्डा चेव मोयपडिमा महल्लिया  
 चेव सोयपडिमा ९ । दो पडिमाओ पणत्ताओ तं जहा—ज्व-  
 मज्झा चेव चंदपडिमा वड्ढमज्झा चेव चंद पडिमा १० । दुविहे  
 सामाइए पणत्ते, तं जहा — अगारसमाइए चेव अणगार  
 सामाइए चेव ॥ सू० २८ ॥

छाया—द्विविध आचारः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—ज्ञानाचारश्चैव नोज्ञानाचारश्चैव १ ।  
 नोज्ञानाचारो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—दर्शनाचारश्चैव नोदर्शनाचारश्चैव २ । नोदर्शना-  
 चारो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा चारित्राचारश्चैव नोचारित्राचारश्चैव ३ । नोचारित्राचारो  
 द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—तप आचारश्चैव वीर्याचारश्चैव ४ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा  
 —समाधिप्रतिमा चैव उपधानप्रतिमा चैव ५ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा—विवेकप्रतिमा  
 चैव व्युत्सर्गप्रतिमा चैव ६ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा भद्रा चैव सुभद्रा  
 चैव ७ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा—महाभद्रा चैव सर्वतोभद्रा चैव ८ । द्वे प्रतिमे  
 प्रज्ञप्ते तद्यथा—क्षुद्रा चैव मोकप्रतिमा महती चैव मोकप्रतिमा ९ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते  
 तद्यथा—यदमध्या चैव चन्द्रप्रतिमा वज्रमध्या चैव चन्द्रप्रतिमा १० । द्विविधः  
 सामायिकः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—आगारसामायिकश्चैव अणगार सामायिकश्चैव ॥ सू० २८

टीका—‘दुविहे आयारे’ इत्यादि सूत्रचतुष्टयं कण्ठचम्, नवरम्—आचर्य-  
 तेगुणविवृद्धय इति—आचारः शास्त्रविहितो व्यवहार इत्यर्थः ज्ञानं=श्रुतज्ञानं, तद्वि-

पुद्गलों के धर्म कहे जा चुके हैं अब धर्माधिकार को लेकर ही सूत्र-  
 कार जीवधर्मों का कथन करते हैं—‘दुविहे आयारे पणत्ते इत्यादि ।

पुद्गलाना धर्मानुं निरूपणु भूइ थयु हवे धर्माधिकारनी अपेक्षाओ सूत्रकार  
 एवधर्मोनु कथन करे छे “दुविहे आयारे पणत्ते” इत्यादि—

टीका—‘दुविहा सदा’ इत्यादि।

अस्य व्याख्या-अन्यत्रितपूर्वसूत्र गता ॥ सू० २७ ॥

उक्ता पुत्रलाभमाः, सम्पत्ति घर्माधिकाराज्जीवधमानाः—

शूलम्—दुविहे आयारे पण्णत्ते, त जहा नाणायारे चेव नोनाणायारे चेव १। नोनाणायारे दुविहे पण्णत्ते त जहा दमणायारे चेव नोदसणायारे चेव २। नोदसणायारे दुविहे पण्णत्ते, त जहा चरिचायारे चेव नोचरिचायारे चेव ३। नो

पुत्रलाभिकार होने से ही भय सूत्रकार उनके धर्मरूप शब्दादिकों का आस्तादि विधोपपन्न सङ्घित वर्णन करते हैं—

‘दुविहा सदा पण्णत्ता’ इत्यादि।

तीकार्थ—शब्द दो प्रकार के कहे गये हैं एक आस्ताशब्द और दूसरे अनात्ताशब्द इसी प्रकार से ये इष्ट से छेकर यावत् मन आम तक दो दो प्रकार के होते हैं एता जानना चाहिये।

इसी प्रकार से रूप आस्त और अनास्त के भेद से दो प्रकार के होते हैं इनके शेष प्रकार जो इष्ट से लगाकर मन आम तक हैं उनका भी कथन करना चाहिये इसी प्रकार से गंध, रस और स्पर्शों का भी कथन करना चाहिये अर्थात् एक एक में आस्तादिक ६-६ भाग्यक कहना चाहिये इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है ॥सू०२७॥

पुत्रलाभानुं वस्तुषु आसीत्तुं तेषु द्वे सूत्रके तेभ्यो धर्मद्वयं शब्दादिकानुं आस्तादि विधोपपन्नं सङ्घितं वर्णनं करेते—

दुविहा सदा पण्णत्ता’ इत्यादि

टीका—शब्द दो प्रकार के कहे गये हैं—(१) आस्त शब्द करने (२) अनास्त शब्द करने प्रमाणे एतद्विधोपपन्नं सङ्घितं मन आम, मनः अनाम पर्यन्तना तेन लोके प्रकाशे पञ्च उपर मुञ्जन्तु समञ्जसा

लोके प्रमाणे इयता पञ्च आस्त, अनास्तधी लोके मन आम, मनः अनाम पर्यन्तना लोके प्रकाशेनु कथनं पञ्च समञ्जं वेत्तुं लोके प्रमाणे जघे, एतद्विधोपपन्नं सङ्घितं मन आम, मनः अनाम पर्यन्तना विषयार्थं आस्तादिक ६-६ भाग्यक इत्येव लोके आ सूत्रनी व्याख्या एतद्विधोपपन्नं सङ्घितं वर्णनं करेते ॥ सू. २७ ॥

चरित्तायारे दुविहे पण्णत्ते तं जहा-तवायारे चैव वीरियायारे  
 चैव ४ । दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तं जहा-समाहिपडिमा चैव  
 उवहाणपडिमा चैव ५ । दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तं जहा-  
 विवेगपडिमा चैव विउसग्गपडिमा चैव ६ । दो पडिमाओ  
 पण्णत्ताओ, तं जहा-भद्दा चैव सुभद्दा चैव ७ । दो पडिमाओ  
 पण्णत्ताओ तं जहा-महाभद्दा चैव सव्वओ भद्दा चैव ८ । दो  
 पडिमाओ पण्णत्ताओ तं जहा-खुड्डा चैव मोयपडिमा महल्लिया  
 चैव सोयपडिमा ९ । दो पडिमाओ पण्णत्ताओ तं जहा-जव-  
 मज्झा चैव चंद्रपडिमा वडरमज्झा चैव चंद्र पडिमा १० । दुविहे  
 सामाइए पण्णत्ते, तं जहा - अगारसमाइए चैव अणगार  
 सामाइए चैव ॥ सू० २८ ॥

छाया—द्विविध आचारः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-ज्ञानाचारश्चैव नोज्ञानाचारश्चैव १ ।  
 नोज्ञानाचारो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-दर्शनाचारश्चैव नोदर्शनाचारश्चैव २ । नोदर्शना-  
 चारो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-चारित्राचारश्चैव नोचारित्राचारश्चैव ३ । नोचारित्राचारो  
 द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा-तप आचारश्चैव वीर्याचारश्चैव ४ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा  
 -समाधिप्रतिमा चैव उपशानप्रतिमा चैव ५ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा-विवेकप्रतिमा  
 चैव व्युत्सर्गप्रतिमा चैव ६ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा भद्रा चैव सुभद्रा  
 चैव ७ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा-महाभद्रा चैव सर्वतोभद्रा चैव ८ । द्वे प्रतिमे  
 प्रज्ञप्ते तद्यथा-क्षुद्रा चैव मोक्षप्रतिमा महती चैव मोक्षप्रतिमा ९ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते  
 तद्यथा-चन्द्रमध्या चैव चन्द्रप्रतिमा वज्रमध्या चैव चन्द्रप्रतिमा १० । द्विविधः  
 सामायिकः श्रृप्तस्तद्यथा-आगारसामायिकश्चैव अणगार सामायिकश्चैव ॥ सू० २८

टीका—‘दुविहे आयारे’ इत्यादि सूत्रचतुष्टयं कण्ठ्यम्, नवरम्-आचर्य-  
 तेगुणविवृद्धय इति-आचारः शास्त्रविहितो व्यवहार इत्यर्थः ज्ञानं=श्रुतज्ञानं, तद्वि-

पुद्गलों के धर्म कहे जा चुके हैं’ अथ धर्माधिकार को लेकर ही सूत्र-  
 कार जीवधर्मों का कथन करते हैं—‘दुविहे आयारे पण्णत्ते इत्यादि ।

पुद्गलाना धर्मानु निरूपणं पू३ यथु ङवे धर्माधिकारनी अपेक्षाञ्जे सूत्रकार  
 एवधर्मोतु कथन करे छे “दुविहे आयारे पण्णत्ते” इत्यादि—

टीका—'दुविहा सदा' इत्यादि।

अस्य व्याख्या-अन्यत्रहितपूर्वसूत्र गता ॥ सू० २७ ॥

उक्ताः पुत्रलपमाः, सम्मति घर्माधिकाराज्जीवघर्मानाः—

मूलम्—दुविहे आयारे पण्णत्ते, त जहा नाणायारे चैव नोनाणायारे चैव १। नोनाणायारे दुविहे पण्णत्ते त जहा दसणायारे चैव नोदसणायारे चैव २। नोदसणायारे दुविहे पण्णत्ते, त जहा चरिचायारे चैव नोचरिचायारे चैव ३। नो

पुत्रलाधिकार होने से ही अथ सूत्रकार उनके घर्मरूप शब्दादिकों का आस्तादि विशेषण सहित वर्णन करते हैं—

'दुविहा सदा पण्णत्ता' इत्यादि।

टीकार्थ—शब्द दो प्रकार के कहे गये हैं एक आस्तशब्द और दूसरे अनास्तशब्द इसी प्रकार से ये इष्ट से छेकर यावत् मन आम तक दो दो प्रकार के होते हैं एसा जानना चाहिये।

इसी प्रकार से रूप आस्त और अनास्त के मेष से दो प्रकार के होते हैं इनके दोष प्रकार जो इष्ट से लगाकर मन आम तक हैं उनका भी कथन करना चाहिये इसी प्रकार से गघ, रम और स्पर्शों का भी कथन करना चाहिये अर्थात् एक एक में आस्तादिक ६-६ भागपरक कहना चाहिये इस सूत्र की व्याख्या स्पष्ट है ॥सू० २७॥

पुत्रलपानुं ब्रह्म व व्याप्ती रक्षुं छे तेथी द्वे सूत्रर तेमना घर्माहप शब्दादिकानुं आस्तादि विशेषणो सक्रिय वर्णन करे छे—

'दुविहा सदा पण्णत्ता' इत्यादि

टीका—शब्द दो प्रकारना कहे छे—(१) आस्त शब्द करने (२) अनास्त शब्द करने प्रभावे दृष्ट, अनिष्टधी लडने मन आम, मना अनाम परान्तना तेना लोत्रे प्रकारे पण्ण उपर सुखलल समलल।

लोत्र प्रभावे रूपना पण्ण आस्त अनास्तधी लडने मन आम, मना अनाम परान्तना लोत्रे प्रकारेनु कथन पण्ण समलल लेवुं लोत्र प्रभावे अथ, रस अने रपयोना बोडानुं कथन पण्ण समललुं लोत्रे के प्रयोडाना विषयार्थ आस्तादिक ६-६ आतापक कहेवा लोत्रे आ सुत्रनी व्याख्या रपथ लोत्रधी पण्ण विवेचन कसुं नथी ॥ सू. २७ ॥

चरित्तायारे दुविहे पणत्ते तं जहा—तवायारे चेव वीरियायारे  
 चेव ४ । दो पडिमाओ पणत्ताओ तं जहा—समाहिपडिमा चेव  
 उवहाणपडिमा चेव ५ । दो पडिमाओ पणत्ताओ तं जहा—  
 विवेगपडिमा चेव विउसग्गपडिमा चेव ६ । दो पडिमाओ  
 पणत्ताओ, तं जहा—भदा चेव सुभदा चेव ७ । दो पडिमाओ  
 पणत्ताओ तं जहा—महाभदा चेव सव्वओ भदा चेव ८ । दो  
 पडिमाओ पणत्ताओ तं जहा—खुड्डा चेव मोयपडिमा महल्लिया  
 चेव सांयपडिमा ९ । दो पडिमाओ पणत्ताओ तं जहा—जव-  
 मज्झा चेव चंदपडिमा वड्ढमज्झा चेव चंद पडिमा १० । दुविहे  
 सामाइए पणत्ते, तं जहा—अगारसमाइए चेव अणगार  
 सामाइए चेव ॥ सू० २८ ॥

छाया—द्विविध आचारः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—ज्ञानाचारश्चैव नोज्ञानाचारश्चैव १ ।  
 नोज्ञानाचारो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—दर्शनाचारश्चैव नोदर्शनाचारश्चैव २ । नोदर्शना-  
 चारो द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा चारित्राचारश्चैव नोचारित्राचारश्चैव ३ । नोचारित्राचारो  
 द्विविधः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—तप आचारश्चैव वीर्याचारश्चैव ४ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा  
 —समाधिप्रतिमा चैव उपधानप्रतिमा चैव ५ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा—विवेकप्रतिमा  
 चैव व्युत्सर्गप्रतिमा चैव ६ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा भद्रा चैव सुभद्रा  
 चैव ७ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते तद्यथा—महाभद्रा चैव सर्वतोभद्रा चैव ८ । द्वे प्रतिमे  
 प्रज्ञप्ते तद्यथा—शुद्रा चैव सौक्यप्रतिमा महती चैव सौक्यप्रतिमा ९ । द्वे प्रतिमे प्रज्ञप्ते  
 तद्यथा—यत्नमध्या चैव चन्द्रप्रतिमा वज्रमध्या चैव चन्द्रप्रतिमा १० । द्विविधः  
 सामायिकः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—आगारसामायिकश्चैव अणगार सामायिकश्चैव ॥ सू० २८

टीका—‘दुविहे आयारे’ इत्यादि सूत्रचतुष्टयं कण्ठ्यम्, नवरम्—आचर्य-  
 तेगुणविवृद्धय इति—आचारः शास्त्रविहितो व्यवहार इत्यर्थः ज्ञानं=श्रुतज्ञानं, तद्वि-

पुद्गलों के धर्म कहे जा चुके हैं अथ धर्माधिकार को लेकर ही सूत्र-  
 कार जीवधर्मों का कथन करते हैं—‘दुविहे आयारे पणत्ते इत्यादि ।

पुरस्काना धर्मं तु निरूप्य पूरं यथु ह्ये धर्माधिकारनी अपेक्षाञ्चै सूत्रकार  
 लवधर्मोतु कथन करे छे “दुविहे आयारे पणत्ते” इत्यादि—



पय आचारो ज्ञानाचारः, स काष्ठादिरष्टपा,

उक्तञ्च—“काष्ठे १ विण्ण २ बहुमाषे ३ उन्नहाणे ४ चेष तद् अनिन्द्यपणे ५  
बंजण ६ मत्थ ७ तदुमए ८, अट्टविधो नाजमायारो १॥” इति ।

छाया—कालो विनयो बहुमानः, उपभान चैव तयाऽनिन्द्वनम् ।

व्यञ्जनम् (सुप्रम्) अर्थस्तदुमयम्, अट्टविधो ज्ञानाचारः ॥ इति ।

टीकार्थ—आचार दो प्रकार का कहा गया है एक ज्ञानाचार और दूसरा नो ज्ञानाचार, इनमें नो ज्ञानाचार दो प्रकार का है—एक दर्शनाचार और दूसरा नोदर्शनाचार, नो दर्शनाचार के भी दो भेद हैं—एक चारित्र्याचार और दूसरा नो चारित्र्याचार, नो चारित्र्याचार भी दो भेद वाला कहा गया है—एक तप आचार और दूसरा वीर्याचार, प्रतिमा दो प्रकार की कही गई है—एक समाधि प्रतिमा और दूसरी उपभानप्रतिमा इस प्रकार से भी प्रतिमा के दो भेद कहे गये हैं—एक विवेक प्रतिमा और दूसरी व्युत्सर्गप्रतिमा भद्रा और सुभद्रा के भेद से भी प्रतिमा के दो भेद होते हैं, तथा महाभद्रा और सर्वतोभद्रा इस प्रकार से भी प्रतिमाके दो भेद हैं, क्षुद्रा भोकप्रतिमा और महती भोक प्रतिमाके भेदसे भी प्रतिमा दो प्रकार की है यथमध्या चन्द्रप्रतिमा और यथमध्या चन्द्रप्रतिमा इस तरहसे भी प्रतिमा दो प्रकारकी है सामायिक भी दो प्रकारका कहा गया है—एक प्रगार सामायिक और दूसरा अनगार सामायिक ।

टीकार्थ—आचार के प्रकारना कथा छे—(१) ज्ञानाचार, (२) नोज्ञानाचार नोदर्शनाचारना नीचे प्रभाजे के प्रकार छे—(१) दर्शनाचार अने (२) नोदर्शनाचार. नोदर्शनाचारना पञ्च नीचे प्रभाजे के लेख छे—(१) चारित्र्याचार अने (२) नोचारित्र्याचार. नोचारित्र्याचारना पञ्च के लेख कथा छे—(१) तप आचार अने (२) वीर्याचार प्रतिमा (साधुना अकिञ्चिदप नियमने प्रतिमा कहे छे.) के प्रकारनी कही छे—(१) समाधि प्रतिमा अने उपभान प्रतिमा प्रतिमाना आ प्रभाजे के लेख पञ्च कथा छे (१) विवेक प्रतिमा अने (२) व्युत्सर्ग प्रतिमा. भद्रा अने सुभद्राना लेखीपञ्च प्रतिमा के प्रकारनी कही छे तथा महाभद्रा अने सर्वतोभद्रा नामनापञ्च प्रतिमाना के लेख कथा छे तेना क्षुद्राभोक प्रतिमा अने महतीभोक प्रतिमा, आ के लेख पञ्च कथा छे आ सिंघाच प्रतिमाना नीचे प्रभाजे के लेख पञ्च कथा छे—(१) यथमध्याचन्द्र प्रतिमा अने (२) यथमध्याचन्द्र प्रतिमा सामायिकना पञ्च के प्रकार कथा छे—(१) प्रगार सामायिक अने अनगार सामायिक कही जाए सूत्र सरण छे शुद्धोनी बुद्धि भाटे के आचरणभां आवे छे तेने आचार कहे

नो ज्ञानाचारः—तद्विज्ञो दर्शनाद्याचार इति १ । दर्शनं=सम्यक्तवं, तदाचारो दर्शनाचारः स निश्शङ्कितादिरष्टविध एव,

उक्तञ्च—“ निस्संक्रिय १ निष्कंखिय २, निव्वितिगिच्छा ३ अमूढदिट्ठीय ४ उव्वूह ५ थिरीकरणे ६, वच्छल्ल ७ प्रभावणे ८ अट्ट ” ॥१॥ इति ।

छाया—निश्शङ्कितो १ निष्काङ्क्षितो २ निर्विचिकित्सा ३ अमूढ दृष्टिश्च ४ । उपवृत्ता ५ (वृद्धिकरणं प्रशंसाच) स्थिरीकरणं ६, वात्सल्यं ७ प्रभावना ८ अट्ट । इति

इसमें चार सूत्र सुगम है जो गुणों की वृद्धि के लिये आचरित किया जाता है उसका नाम आचार है अर्थात् शास्त्रविहित जो मार्ग है—व्यवहार है वह आचार है, अनज्ञान का नाम ज्ञान है इस श्रुतज्ञानविषयक जो आचार है वह ज्ञानाचार है यह ज्ञानाचार काल आदि के भेद से आठ प्रकार का है।—कहा भी है—‘ काले विणए ’ इत्यादि ।

कालाचार, विनयाचार, बहुमानाचार, उपधानाचार, अनिहवाचार, व्यञ्जचार, अर्थाचार और तदुभयाचार ज्ञानाचार से भिन्न जो आचार है वह नोज्ञानाचार है यह नोज्ञानाचार दर्शनाचार और नोदर्शनाचार के भेद से दो प्रकार का कहा गया है । दर्शन शब्द का अर्थ सम्यक्त्व है सम्यक्त्व विषयक जो आचार है वह दर्शनाचार है यह दर्शनाचार निःशङ्कित आदि के भेद से आठ प्रकार का है ।

कहा भी है—‘ निस्संक्रिय निष्कंखिय ’ इत्यादि ।

छे. अट्टे के शास्त्रविहित के मार्ग ( व्यवहार ) छे, तेनुं नाम आचार छे. श्रुतज्ञानं नाम ज्ञान छे. ते श्रुतज्ञान विषयक के आचार छे ते आचारने ज्ञानाचार कहे छे. ते ज्ञानाचार काल आदिना लेदथी आठ प्रकारना छे. कलुं पणु छे के—

“ काले विणए ” इत्यादि—ते प्रकरे नीचे प्रमाणे छे—(१) कालाचार, (२) विनयाचार, (३) बहुमानाचार, (४) उपधानाचार, (५) अनिहवाचार, (६) व्यञ्जनाचार, (७) अर्थाचार अने (८) तदुभयाचार.

ज्ञानाचारथी भिन्न के आचार छे तेने नोज्ञानाचार कहे छे. ते नोज्ञानाचारना के लेद कल्ला छे—(१) दर्शनाचार अने (२) नोदर्शनाचार. दर्शन अट्टे सम्यक्त्व. सम्यक्त्व विषयक के आचार छे, ते आचारने दर्शनाचार कहे छे. ते दर्शनाचार निश्कित आदिना लेदथी आठ प्रकारना छे. कलुं पणु छे के—

“ निस्संक्रिय निष्कंखिय ” इत्यादि—ते आठ लेदो नीचे प्रमाणे छे—

પય આચારો જ્ઞાનાચારઃ, સ કાલાવિરણા,

ઉક્તચ્ચ—“કાલે ૧ ત્રિપ ૨ વહુમાણે ૩ ઉત્તરાણે ૪ ચેત તદ્ અનિદ્ધવણે ૫  
વનણ ૬ મરય ૭ તદુમ ૮, અદ્ધવિદો નાણમાયારો ૧૥” ઇતિ ।

જાયા—કાલો વિનયો વહુમાણા, ઉપધાન વૈર ત્યાગાનિદ્ધવનમ્ ।

વ્યજ્જનમ્ (સુવમ્) મર્યસ્તદુમયમ્, અદ્ધવિષો જ્ઞાનાચારઃ ॥ ઇતિ ।

ટીકાર્થ—આચાર દો પ્રકાર કા કહા ગયા છે એક જ્ઞાનાચાર ઓર  
દૂસરા નો જ્ઞાનાચાર, इनमें नो ज्ञानाचार दो प्रकार का है—एक दर्शना  
चार और दूसरा नोदर्शनाचार, नो दर्शनाचार के भी दो भेद है—एक  
चारित्र्याचार और दूसरा नो चारित्र्याचार, नो चारित्र्याचार भी दो भेद  
याला कहा गया है—एक तप आचार और दूसरा वीर्याचार, प्रतिमा दो  
प्रकार की कही गई है—एक समाधि प्रतिमा और दूसरी उपधानप्रतिमा  
इस प्रकार से भी प्रतिमा के दो भेद कहे गये हैं—एक विवेक प्रतिमा  
और दूसरी व्युत्सर्गप्रतिमा भद्रा और सुभद्रा के भेद से भी प्रतिमा के  
दो भेद होते हैं, तथा महामत्रा और सर्वतोभद्रा इस प्रकार से भी  
प्रतिमाके दो भेद हैं, क्षुद्रा भोकप्रतिमा और महती भोक प्रतिमाके भेदसे  
भी प्रतिमा दो प्रकार की है यथमध्या चन्द्रप्रतिमा और यज्ञमध्या चन्द्रप्र  
तिमा इस तरहसे भी प्रतिमा दो प्रकारकी है सामायिक भी दो प्रकारका  
कहा गया है—एक अगार सामायिक और दूसरा अनगार सामायिक ।

ટીકાવ—આચાર બે પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) જ્ઞાનાચાર, (૨) નોજ્ઞાના  
ચાર. નોજ્ઞાનાચારના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકાર છે—(૧) દર્શનાચાર અને (૨)  
નોદર્શનાચાર. નોદર્શનાચારના પણ નીચે પ્રમાણે બે ભેદ છે—(૧) ચારિત્ર્યા  
ચાર અને (૨) નોચારિત્ર્યાચાર. નોચારિત્ર્યાચારના પણ બે ભેદ કહ્યા છે—  
(૧) તપ આચાર અને (૨) વીર્યાચાર. પ્રતિમા (સાધુના અભિવ્યક્તરૂપ નિશ્ચયને  
પ્રતિમા કહે છે.) બે પ્રકારની કહી છે—(૧) સમાધિ પ્રતિમા અને ઉપધાન  
પ્રતિમા. પ્રતિમાના આ પ્રમાણે બે ભેદ પણ કહ્યા છે (૧) વિવેક પ્રતિમા  
અને (૨) વ્યુત્સર્ગ પ્રતિમા ભદ્રા અને સુભદ્રાના ભેદથીપણ પ્રતિમા બે પ્રકાર  
ની કહી છે તથા મહાભદ્રા અને સર્વતોભદ્રા નામનાપણ પ્રતિમાના બે ભેદ  
કહ્યા છે. તેના ક્ષુદ્રાભોક પ્રતિમા અને મહતીભોક પ્રતિમા, આ બે ભેદ પણ  
કહ્યા છે આ સિવાય પ્રતિમાના નીચે પ્રમાણે બેભેદ પણ કહ્યા છે—(૧) વપ  
મધ્યાચન્દ્ર પ્રતિમા અને (૨) વજ્રમધ્યાચન્દ્ર પ્રતિમા. સામાયિકના પણ બે  
પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અગાર સામાયિક અને અનગાર સામાયિક કહીં યાર  
સૂત્ર સરણ છે સુલોની વૃદ્ધિ માટે જે આચારવાર્તા આવે છે તેને આચાર કહે

नो ज्ञानाचारः-तद्विज्ञो दर्शनाद्याचार इति १ । दर्शनं=सम्यक्तवं, तदाचारो दर्शनाचारः स निश्शङ्कितादिरष्टविध एव,

उक्तञ्च—“ निस्संक्रिय १ निष्कंखिय २, निर्व्वितिगिच्छा ३ अमूढदिद्वीष्टया उपवृह ५ थिरीकरणे ६, वच्छल्ल उपभावणे ८ अट्ट ” ॥१॥ इति ।

छाया—निश्शङ्कितो १ निष्काङ्क्षितो २ निर्व्विचिकित्सा ३ऽमूढ दृष्टिश्च ४ । उपवृहं ५ (वृद्धिकरणं प्रशंसाच) स्थिरीकरणं ६, वात्सल्यं ७ प्रभावना ८ अट्ट । इति

इसमें चार सूत्र सुगम हैं जो गुणों की वृद्धि के लिये आचरित किया जाता है उसका नाम आचार है अर्थात् शास्त्रविहित जो मार्ग है—व्यवहार है वह आचार है, श्रुतज्ञान का नाम ज्ञान है इस श्रुतज्ञानविषयक जो आचार है वह ज्ञानाचार है यह ज्ञानाचार काल आदि के भेद से आठ प्रकार का है।—कहा भी है—‘ काले विणए ’ इत्यादि ।

कालाचार, विनयाचार, बहुमानाचार, उपधानाचार, अनिहवाचार, व्यञ्जचार, अर्थाचार और तदुभयाचार ज्ञानाचार से भिन्न जो आचार है वह नोज्ञानाचार है यह नोज्ञानाचार दर्शनाचार और नोदर्शनाचार के भेद से दो प्रकार का कहा गया है । दर्शन शब्द का अर्थ सम्यक्त्व है सम्यक्त्व विषयक जो आचार है वह दर्शनाचार है यह दर्शनाचार निःशङ्कित आदि के भेद से आठ प्रकार का है ।

कहा भी है—‘ निस्संक्रिय निष्कंखिय ’ इत्यादि ।

छे. अट्टे के शास्त्रविहित के मार्ग ( व्यवहार ) छे, तेतुं नाम आचार छे श्रुतज्ञानतुं नाम ज्ञान छे. ते श्रुतज्ञान विषयक के आचार छे ते आचारने ज्ञानाचार कडे छे. ते ज्ञानाचार काण आदिना लेदथी आठ प्रकारना छे. कल्लुं पणु छे के—

“ काले विणए ” इत्यादि—ते प्रकारे नीचे प्रमाणे छे—(१) कालाचार, (२) विनयाचार, (३) बहुमानाचार, (४) उपधानाचार, (५) अनिहवाचार, (६) व्यञ्जनाचार, (७) अर्थाचार अने (८) तदुभयाचार.

ज्ञानाचारथी भिन्न के आचार छे तेने नोज्ञानाचार कडे छे. ते नोज्ञानाचारना के लेद कइया छे—(१) दर्शनाचार अने (२) नोदर्शनाचार. दर्शन अट्टे सम्यक्त्व. सम्यक्त्व विषयक के आचार छे, ते आचारने दर्शनाचार कडे छे ते दर्शनाचार निःशङ्कित आदिना लेदथी आठ प्रकारना छे. कल्लुं पणु छे के—

“ निस्संक्रिय निष्कंखिय ” इत्यादि—ते आठ लेदो नीचे प्रमाणे छे—

નો દર્શનાચાર = ચારિત્રાચાર - સમિતિપદ્મગુણિપ્રયરૂપોઽપ્ય, ઉત્કચ્ચ -

“ પાણિહાણજોગજુલો પર્વદિ સમિર્દિદિ ઠીદિ ગુલીદિ ।

પસચરિષાચારો, અટ્ટવિદો હોદ નાયબ્ધો ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

છાયા - પ્રણિપાનયોગયુક્ત ( પ્રશસ્તમનોવાકાપસંપન્નઃ ) પચ્ચમિઃ

સમિતિમિસ્તિસ્યમિર્ચમિમિઃ । એવ ચારિત્રાચાર ,

અપ્ટવિધો મચતિ જ્ઞાત્ય ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

નો ચારિત્રાચાર - તપ આચારાદિ ૨ । તપ આચારો દ્વાદસવિધઃ,

આહ વ - “ ચારસચિદ્મિ મિ તવે, સન્મતર ઘાદિરે કુસલ્લદિદો

અગિલાહ મ્બાજીવી, નાયબ્ધો સો તવાચારો ॥ ” ઇતિ ।

નિઃશક્તિ, નિઃકાક્ષિત, નિર્વિચિકિત્સા, અમૃતદષ્ટિ, ઉપવૃંહા,  
સ્થિરીકરણ, વાતસન્યપ્ત્ય ઓર પ્રમાણના

નો દર્શનાચાર સે ચારિત્રાદિ કા પ્રદૂણ સુખા હૈ ચારિત્રાચાર પાંચ  
સમિતિ, ત્રીનગુણિ, રૂપ હોના હૈ અતઃ યહ આઠ પ્રકાર કા હૈ ।

કહા મો હૈ - ‘ પાણિહાણજોગજુલો ’ ઇત્યાદિ ।

પ્રશસ્ત મન, ઘષ્ટન ઓર કાય સે સપ્ત રહના ઇત્યાદિ નામ ચારિત્ર  
હૈ હમ ચારિત્ર કા આચરણ પાંચ સમિતિયાં સે ઓર ત્રીન ગુણિયોં સે  
યુક્ત હુપ સયમી જીવ ક હોતા હૈ નો ચારિત્ર સે તપ આચાર આદિ  
ગૃહીત હુપ હૈ - યહ તપ આચાર પારહ પ્રકાર કો હોતા હૈ - ૬ પાદ્ય તપરૂપ  
ઓર ૬ આશ્વન્તર તપરૂપ ।

કહા મો હૈ - ‘ ચારસચિદ્મિ મિ તવે ’ ઇત્યાદિ ।

જિનોપદિષ્ટ પારહ પ્રકાર કે તપ મેં પાદ્ય આશ્વન્તર તપ મેં - જો

(૧) નિશક્તિ (૨) નિકાક્ષિત (૩) નિર્વિચિકિત્સા, (૪) અમૃત દષ્ટિ (૫)  
ઉપવૃંહ, (૬) સ્થિરીકરણ, વાતસન્ય અને (૮) પ્રમાણના

નો દર્શનાચાર દ્વારા ચારિત્રાદિને પ્રદૂણ કરાયા છે ચારિત્રાચાર પચ્ચ  
સમિતિ અને ત્રણ ગુણિયુ કોષ્ઠ છે તેથી તેના અઠ પ્રકાર ઠહ્યા છે  
ઠહું પચ્ચ છે કે -

‘ પાણિહાણ જોગજુલો ’ ઇત્યાદિ - પ્રશસ્ત મન વચ્ચન અને કાયથી સંપત  
રહેવું તેનું નામ ચારિત્ર છે પાંચ સમિતિઓ અને ત્રણ ગુણિઓથી યુક્ત  
સવમી હૈવ દ્વારા આ ચારિત્રનું આચરણ ( પાલન ) કરાય છે

‘ નો ચારિત્ર ’ યહ દ્વારા તપ આચાર અદિ ગૃહીત યથેચ્છ છે તે તપ  
આચાર ૧૨ પ્રકારના છે તેમાંથી ૬ પાદ્ય તપરૂપ અને ૬ આશ્વન્તર તપરૂપ  
છે ઠહું પચ્ચ છે કે -

ચારસચિદ્મિ મિ તવે ઇત્યાદિ જિનોપદિષ્ટ પાર પ્રકારના ( પાદ્ય  
અને આશ્વન્તર ) તપમાં આ ઠહું આદિની આચારાથી ( અભિલાષાથી )

છાયા—દ્વાદશવિધેઽપિ તપસિ, સામ્યન્તર વાહ્યે કુશલદૃષ્ટે,  
(જિનોપદિદટે) । અગ્લાની અનાજીવી (ફહલોકાઘાશસાવર્જિતઃ)  
જ્ઞાતવ્યઃ સ તપ આચારઃ ॥ ૩૧ ॥

વીર્યાચારસ્તુ—જ્ઞાનાદૌ સ્વશક્તેરગોપનં નાતિક્રમણં ચેતિ, તદાહ—  
“ અણિગૂહિય વલવીરિઓ પરક્રમઙ્જો જહુત્તમાઉત્તો ।

જુંઙ્ગ ય જહાયામં, નાયવ્યો વિરિયાયારો ” ॥૩૧॥ ૩૧ ॥

છાયા—અનિગૂહિત વલવીર્યઃ, પરાક્રમતે યો યથોક્તમાયુક્તઃ ।

યુનક્તિ ચ યથાસ્થામં, જ્ઞાતવ્યો વીર્યાચારઃ ॥૩૧॥ ૩૧ ॥

વીર્યાચારમેવ વિશેષતયાઽભિવાતું પદ્મસૂત્રીમાહ—

‘ દો પડિમાઓ ’ ઇત્યાદિ । પ્રતિમા—પ્રતિપત્તિઃ વિશિષ્ટનિયમસ્વીકરણમિ-  
ત્યર્થઃ । સમાધાનં સમાધિઃ શ્રુતચારિત્રરૂપઃ, તસ્ય પ્રતિમા । ઉપધાનમ્—ઉગ્રતપઃ,  
તત્પ્રતિમા—ઉપધાનપતિમા દ્વાદશમિશ્રુપતિમા એકાદશોપાસકપ્રતિમાશ્ચેત્યેવં

ફહ લોક આદિ કી આશંસા સે વર્જિત હોના હૈ વહી તપ આચાર હૈ  
જ્ઞાનાદિક્ર કે આચરણ કરને મેં અપની શક્તિ કો છુપાના નહીં ફસકા  
નામ વીર્યાચાર હૈ । કહા મી હૈ—‘ અણિગૂહિયવલવીરિઓ ’ ઇત્યાદિ ।

ફસ વીર્યાચાર કો હી વિશેષ રૂપ સે કહને કે લિધે સૂત્રકાર ને ફસ  
પદ્મસૂત્રી કા કથન ક્રિયા હૈ—‘ દો પડિમાઓ ’ ઇત્યાદિ—વિશિષ્ટ નિયમ  
રૂપ અભિગ્રહ કો સ્વીકાર કરના ફસકા નામ પ્રતિમા હૈ—સમાધાન કા  
નામ સમાધિ હૈ યહ સમાધિ શ્રુતચારિત્ર રૂપ હોતી હૈ ફસ સમાધિ કો  
સ્વીકાર કરના યહ સમાધિ પ્રતિમા હૈ ઉગ્રતપ કા નામ ઉપધાન હૈ ફસે  
આચરિત કરના ફસકા નામ ઉપધાનપ્રતિમા હૈ યહ ઉપધાનપ્રતિમા દ્વાદશ

રહિત હોવું તેનું નામ જ તપ ચાર છે જ્ઞાનાદિકનું આચરણ કરવામાં પોતાની  
શક્તિને છુપાવવી નહીં અને શક્તિ પ્રમાણે કામ કરવું તેનું નામ વીર્યાચાર  
છે કહ્યું પણ છે કે—

“ અણિગૂહિય વલવીરિઓ ” ઇત્યાદિ આ વીર્યાચારનું જ ખાસ નિરૂપણ  
કરવાને માટે સૂત્રકારે આ પદ્મસૂત્રીનું ( છ સૂત્રોના સમૂહનું ) અહીં કથન કર્યું  
છે—“ દો પડિમાઓ ” ઇત્યાદિ.

વિશિષ્ટ નિયમરૂપ અભિગ્રહનો સ્વીકાર કરવો તેનું નામ પ્રતિમા છે.  
સમાધાનનું નામ સમાધિ છે તે સમાધિ શ્રુતચારિત્રરૂપ હોય છે. આ સમા-  
ધિને અંગીકાર કરવી તેનું નામ સમાધિ પ્રતિમા છે. ઉગ્ર તપને ઉપધાન કહે  
છે. ઉગ્ર તપ આચરવું તેનું નામ ઉપધાન પ્રતિમા છે તે ઉપધાન પ્રતિમા  
૧૨ મિશ્રુપ્રતિમારૂપ અને શ્રાવકની ૧૧ પ્રતિમારૂપ હોય છે.

નો દર્શનાચારઃ=ચારિત્રાચાર—સમિતિપંચકુણ્ડિપ્રયરુપોઽપ્તવા, ઉક્તચ્ચ—  
 “પાણિહાણજોગજુષ્ઠો પંચદિં સમિદ્દિં સીદિં શુશીદિં ।  
 પ્સચરિચાચારો, અટ્ટુવિદ્દો હોદ નાયન્વો ॥ ૧ ॥” ઈતિ ।  
 છાયા—પ્રણિષાનયોગયુક્ત ( પ્રશસ્તમનોવાક્યાપસંપન્ન ) પંચમિઃ  
 સમિતિમિસ્તિસ્ટમિર્ગુમિમિઃ । એવ ચારિત્રાચારઃ,  
 અપ્તવિષ્ઠો મષ્ટિ જ્ઞાતચ્ચઃ ॥૧॥ ઈતિ ।  
 નો ચારિત્રાચાર—તપ આચારાદિ ૧ । તપ આચારો દ્વાદશવિધ ,  
 આદ્ય ચ—“ વારસવિદ્મિ ધિ તવે, સન્મતર વાદિરે કુસલવિદ્દો  
 અગિલાદ્ અગાજીવી, નાયન્વો સો તચાચારો ॥” ઈતિ ।

નિઃશંકિત, નિઃકાંક્ષિત, નિર્નિચ્છિક્ષિત્સા, અમૂઢદષ્ટિ, ઉપવૃંહા,  
 સ્થિરીકરણ, વાતસલ્ય ઓર પ્રમાણના

નો દર્શનાચાર સે ચારિત્રાદિ કા પ્રદ્શન દુખા હૈ ચારિત્રાચાર પાંચ  
 સમિતિ, ત્રીનગુણિ, રૂપ હોના હૈ અતઃ યહ આઠ પ્રકાર કા હૈ ।

કહા મી હૈ—‘ પાણિહાણજોગજુષ્ઠો ’ ઈત્યાદિ ।

પ્રશસ્ત મન, વચન ઓર કાય સે સપલ્ન રહના ઈસકા નામ ચારિત્ર  
 હૈ ઈમ ચારિત્ર કા આચરણ પાંચ સમિતિયાં સે ઓર ત્રીન ગુણિયાં સે  
 યુક્ત હુપ સયમી જીવ કે હાતા હૈ નો ચારિત્ર સે તપ આચાર આદિ  
 ગૃહીત હુપ હૈ—યહ તપ આચાર વારહ પ્રકાર કો હોતા હૈ—૬ વાલ તપરૂપ  
 ઓર ૬ આશ્વન્તર તપરૂપ ।

કહા મી હૈ—‘ વારસવિદ્મિ ધિ તવે ’ ઈત્યાદિ ।

જિનોપદિષ્ટ વારહ પ્રકાર કે તપ મેં વાલ આશ્વન્તર તપ મેં—જો

(૧) નિઃશંકિત (૨) નિઃકાંક્ષિત (૩) નિર્નિચ્છિક્ષિત્સા (૪) અમૂઢ દષ્ટિ, (૫)  
 ઉપવૃંહ, (૬) સ્થિરીકરણ, વાતસલ્ય અને (૮) પ્રમાણના

નો દર્શનાચાર દ્વારા ચારિત્રાદિને અઠલુ કરાયા છે ચારિત્રાચાર એવ  
 સમિતિ અને ત્રણ ગુણિયુ કોષ છે તેથી તેના અઠ પ્રકાર કહ્યા છે  
 કહ્યું પણ છે કે—

“ પાણિહાણ જોગજુષ્ઠો ” ઈત્યાદિ—પ્રશસ્ત મન વચન અને કાયથી અપત  
 રહેતું તેનું નામ ચારિત્ર છે પાંચ સમિતિઓ અને ત્રણ ગુણિઓથી યુક્ત  
 સયમી એવ દ્વારા આ ચારિત્રનું આચરણ ( પલન ) કરાય છે

‘ નોચારિત્ર ’ યહ દ્વારા તપ આચાર અદિ મૂઢીત મયેલ છે તે તપ  
 આચાર ૧૨ પ્રકારના છે તેમાંથી ૬ વાલ તપરૂપ અને ૬ આશ્વન્તર તપરૂપ  
 છે કહ્યું પણ છે કે—

‘ વારસવિદ્મિ ધિ તવે ’ ઈત્યાદિ. જિનોપદિષ્ટ વાર પ્રકારના ( વાલ  
 અને આશ્વન્તર ) તપમાં આ લોક આદિની આચારથી ( અભિલાષથી )

૬વસેયા ૬ । ‘ જવમજ્ઞા ’ ઇત્યાદિ-યવસ્યેવ મધ્યં યસ્યા સા યવમધ્યા, યા યવવત્ કવલૈરાઘન્ટયોર્હીના મધ્યે ચ સ્થૂલા, કલાવૃદ્ધિહાનિભ્યાં ચન્દ્ર ઇવ યા પ્રતિમા । સા ચન્દ્રપ્રતિમા । ઇયં ચૈકમાસેન પૂર્ણા ભવતિ, તથાદિ-૯ત્પ્રતિમાન-તિપન્નઃ શુક્લપ્રતિપન્નઃ એકં કવલમભ્યવહૃત્ય તતઃ પ્રતિદિનમેકૈકવલવૃદ્ધ્યા પૌર્ણમાસ્યાં પશ્ચદશકવલાન્ ભુંક્તે, પુનશ્ચ કૃષ્ણપ્રતિપદિ પશ્ચદશૈવ કવલાન્ ભુક્ત્વા પ્રતિદિનમેકૈકહાન્યા યાવદમાવાસ્યાયામેકમેવ કવલં યસ્યાં ભુક્તે સા યવમધ્યા

કી હોતી હૈ ૪ इनके विषय का कथन अन्यत्रसे जानना चाहिये ५ “ जव-मज्ज्ञा ” इत्यादि-जिस प्रतिमा में मध्य यव के मध्य जैसा होता है वह यवमध्यप्रतिमा है तात्पर्य इसका ऐसा है कि यह प्रतिमा यव की तरह आदि अन्त में ग्रासों से हीन होती है और मध्य में स्थूल होती है इस प्रतिमा का दूसरा नाम चन्द्रप्रतिमा भी है चन्द्रमा की तरह यह प्रातमा होती है यह प्रतिमा एक महीने में पूर्ण होती है इस प्रतिमा को धारण करने वाला जीव शुक्लपक्ष की प्रतिपदा में एक ग्रास आहार का लेता है और फिर वह द्वितीयादि दिनों में पूर्णमासी तक एक २ ग्रास की वृद्धि करता जाता है और पूनम के दिन १५ ग्रास तक आहार लेता है फिर कृष्णपक्ष में वह पुनः १५ ग्रासप्रमाण आहार लेता है और फिर अमावस्यातक एक एक ग्रास की हानि करता हुआ आहार लेता रहता है इस तरह अमावास्या को वह एक ग्रास ही आहारमें लेता है इस प्रकार करने से इस प्रतिमा का नाम यवमध्या या चन्द्रप्रतिमा हुआ

“ જવમજ્ઞા ” ઇત્યાદિ જે પ્રતિમામાં યવના મધ્યભાગ જેવો મધ્ય હોય છે, તે પ્રતિમાને યવમધ્ય પ્રતિમા કહે છે. આ કથનનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે-જેમ યવનો મધ્યભાગ સ્થૂલ અને અન્તભાગ પાતળો હોય છે તેમ આ પ્રતિમાના આરભમાં અને અન્તે ગ્રાસો (કોળીયા) નું પ્રમાણ ન્યૂન હોય છે અને મધ્યકાળે સ્થૂલ પ્રમાણ હોય છે આ પ્રતિમાનું ખીલું નામ ચન્દ્રપ્રતિમા પણ છે જેમ ચન્દ્રમાની કળામાં વૃદ્ધિ હોતી થાય છે તેમ આ પ્રતિમામાં પણ ગ્રાસોના પ્રમાણમાં વધઘટ થાય છે આ પ્રતિમા એક માસમાં પૂર્ણ થાય છે આ પ્રતિમા ધારણ કરનાર જીવ શુક્લ પક્ષની એકમે એક ગ્રાસનો આહાર લે છે, ત્યારબાદ દરરોજ એક એક ગ્રાસની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં પૂનમને દિવસે ૧૫ ગ્રાસનો આહાર કરે છે ત્યારબાદ કૃષ્ણપક્ષની એકમે પણ તે ૧૫ ગ્રાસ પ્રમાણ આહાર લે છે. ત્યારબાદ દરરોજ એક એક ગ્રાસ ઘટાડતાં ઘટાડતા અમાવાસ્યાને દિવસે તે એક ગ્રાસનો જ આહાર કરે છે આ પ્રકારની આ પ્રતિમા હોવાથી તેનું નામ યવમધ્યમા અથવા ચન્દ્રપ્રતિમા પડ્યું છે.



रूपेति १ । विवेकप्रतिमा-विवेचनं विवेकः-स्यागः, स च आन्तराणां कषायादीनां  
 बाह्यानां गणशरीरमक्तानादीनामनुचितानां, उत्पत्तिपत्तिस्तथा । व्युत्सर्गप्रतिमा  
 कायोत्सर्गं करणमेवेति २ । भद्रापूर्वादिदिग्बहुष्टये प्रत्येकं महारात्रवृष्टयकाया-  
 स्सर्गकरणरूपा महारात्रप्रत्ययपरिमितेति । सुमद्रा-साऽप्येवंविधैः सम्प्राभ्यते १ ।  
 महामद्राऽप्येवंरूपैश्च, नवसम् - महारात्रकायोत्सर्गरूपा महारात्रवृष्टयप्रमाणा ।  
 सर्वतोमद्रा तु दशसु पूर्वादिदिग्बहु प्रत्येकमहारात्रकायोत्सर्गरूपा महारात्र दशक  
 प्रमाणेति ४ । मोकप्रतिमाक्षुद्रिका महती चेति द्विविधा । अनयोर्ग्याग्याऽन्यतो

भिन्नु प्रतिमा और आवक की ११ प्रतिमा रूप है विवेक प्रतिमा-स्याग  
 का नाम विवेक है इस विवेकमें आन्तर कषायोंका और अनुचित गण  
 का शरीर का और मक्तपान आदि का स्याग किया जाता है-इस विवेक  
 की जो प्रतिपत्ति होनी है उस का नाम विवेक प्रतिमा है १, कायोत्सर्ग  
 करने का नाम व्युत्सर्ग प्रतिमा है २, पूर्वादि चार दिशाओं में प्रत्येक  
 में दो दिन और दो दिनतक चारमहर तक कायोत्सर्ग करना यह भद्रा  
 प्रतिमा है सुमद्राप्रतिमा भी ऐसी ही प्रणीत होती है ३ महामद्राप्रतिमा  
 भी ऐसी ही है परन्तु इनमें चार दिन चार रात तक कायोत्सर्ग किया  
 जाता है सर्वतो भद्र जो प्रतिमा है उसमें दश दिशाओं में से प्रत्येक  
 दिशा में एक २ दिन रात का कायोत्सर्ग कारण किया जाता है इस  
 प्रकार इस प्रतिमा में दशदिन और दश रात तक कायोत्सर्ग कारण  
 करना होता है क्षुद्रिका और महती के भेद से मोकप्रतिमा दो प्रकार

विवेक प्रतिमा-स्यागं नाम विवेकं च ते विवेकमा आन्तर कषायेना

अनुचित जलुने, शरीरने, अने मक्तपान आदिने त्याग करवाया जावे  
 च आ प्रशानना विवेक (त्याग) की भुज्रा के प्रतिमा च तेने 'विवेक  
 प्रतिमा कहे च ॥ १ ॥ कायोत्सर्गं करवाते तु नाम व्युत्सर्ग प्रतिमा  
 च ॥ २ ॥ पूर्वादि चार दिशाओंमांनी प्रत्येक दिशांमे द्विसप्त भुभी चार  
 महारात्र पर्यन्त कायोत्सर्गं करवाते तु नाम महारात्र प्रतिमा च सुमद्रा प्रतिमा  
 पञ्च ज्येष्ठी च ॥ ३ ॥ महामद्रा प्रतिमा पञ्च ज्येष्ठी च च, परन्तु तेमां  
 चार दिन अने चार रात भुभी कायोत्सर्ग करवाते सप्ततोमद्रा नामनी के  
 प्रतिमा च तेमां दश दिशाओंमांनी प्रत्येक दिशांमे ज्येष्ठी द्विसप्त दिनशतने  
 कायोत्सर्गं कारण करवायां जावे च आ शीते च प्रतिमांनी आशयनामां  
 दश दिन अने दश रात भुभी कायोत्सर्गं कारण करवाते पठे च ॥ ४ ॥  
 क्षुद्रिका अने महतीना भेदधी मोकप्रतिमा च प्रशाननी कही च. तेभना विवेकं

‘दुविहे सामाइए’ इत्यादि । समः—समत्वं रागद्वेषरहितत्वेन सर्वेषु जीवेषु स्वात्मसाख्यवत्त्वम्, सम शब्दस्यात्र भावप्रधाननिर्दिष्टत्वात्, तस्य आयः—प्राप्ति समायः प्रवर्धमानशरदचन्द्रकलावत् प्रतिक्षणविलक्षणज्ञानादिलाभः, स प्रयोजन-मस्येति सामायिकम् । यद्वा—समानां ज्ञानादीनाम् आयः—लाभः समायः, स एव सामायिकम् तद् द्विविधम्—आगारसामायिकम्, अनगारसामायिकं चेति । तत्र—आगारसामायिकम् गृहस्थानाम्, अनगारसामायिकं च सर्वविरतिमतां मुनीनां भवतीति ॥ सू० २८ ॥

सूत्रकार सामायिक सूत्र का कथन करते हैं—‘दुविहे सामाइए’ इत्यादि—रागद्वेष की रहितता से जो समस्त जीवों के ऊपर अपने आत्मा के जैसी समता होती है उसका नाम सम है इस सम की जो आय—प्राप्ति—लाभ है उसका नाम समाय है यह समाय प्रवर्धमान शरद चन्द्रकला की तरह प्रतिक्षण विलक्षण ज्ञानादिक जो लाभ है उस लाभरूप होना है यह लाभ जिसका प्रयोजन है वह सामायिक है अथवा—ज्ञानादि रूप सम का लाभ समाय है और यह समाय ही सामायिक है वह दो प्रकार का है एक अगार सामायिक और दूसरा अनगार सामायिक अनगार सामायिक गृहस्थों के होता है और अनगार सामायिक सर्व विरति मुनिजनों के होता है ॥ सू० २८ ॥

सामायिकवाणा एवे। वडे न प्रतिभाञ्जे। धारणु करी शकय छे, तेथी छेवे सूत्रकार सामायिक सूत्रनुं कथन करे छे—

“दुविहे सामाइए” इत्यादि। रागद्वेषथी रहित थधने समस्त एवे। प्रत्ये पोताना आत्माना जेपी समताने जे भाव राभवामां आवे छे तेनुं नाम ‘सम’ छे। ते समनी जे आय (प्राप्ति, लाभ) छे, तेनुं नाम समाय छे। ते समाय प्रवर्धमान शरद चन्द्रनी कज्ञानी जेम प्रतिक्षणु विलक्षणु ज्ञाना-दिक जे लाभ छे ते लाभरूप डोय छे। ते लाभ जेनुं प्रयोजन छे, ज्येनी वस्तुने सामायिक कडे छे। अथवा ज्ञानादि रूप समना लाभनुं नाम न समाय छे, अने ते समाय न सामायिक छे तेना जे प्रकार छे—(१) अगार सामायिक अने (२) अनगार सामायिक अगार सामायिक गृहस्थे। द्वारा कराय छे अने अनगार सामायिक सर्वविरति द्वारा थाय छे, ॥ सू० २८ ॥

ચન્દ્રપ્રતિમેતિ । તથા ષષ્ઠસ્યેવ મધ્ય યસ્યા સા ષષ્ઠમઘ્યા, ષષ્ઠત્ત્વ ક્ષત્રેરાયન્તર્યો સ્યુક્તા મધ્યે ચ તન્વી કઠાઠાનિટ્ટદિમ્યાં ચન્દ્ર ઇવ પ્રતિમા સા ચન્દ્રપ્રતિમા । ઇય મપિ શ્વેકેન માસેન પૂર્ણા મન્વતિ, તથાદિ-તત્ર કૃષ્ણમતિપદિ પચ્ચદશકરલાન્ સુક્ષ્મા તતઃ પ્રતિદિનમેકૈકૃદાન્યા યાવદ્મારામ્યાપામેઠ કવલ મુદ્ધવતે, પુનઃ શુક્રમતિપદ્યપ્યેકમેઽ કવલં મુદ્ધવા તતઃ પ્રતિદિનમેકૈકૃદપ્યા યચાસ્મિમાયાં પચ્ચદશક કવલાન્ મુદ્ધવતે સા ષષ્ઠમઘ્યા ચન્દ્રપ્રતિમતિષ્ઠ ।

પ્રતિમામ સમાપિકવતામેઽ મન્વીતિ સમાપિકમૂપમાદ—

હૈ ચન્દ્રમા એક પક્ષ મેં અપની ફલાઓં સે વહતા હૈ ઓર કૃષ્ણપક્ષ મેં ક્રમશઃ વહ ઘટતા જાતા હૈ ઇસી પ્રકાર ઇસ પ્રતિમા મેં ઓર શુક્રલપક્ષ મેં એક ૨ ગ્રાસ કી અધિકતા હોતી જાતી હૈ ઓર ફિર ક્રમશઃ આહાર કી ઘટતી હોતી જાતી હૈ તથા ષષ્ઠ કે મધ્ય કે જેસા મધ્ય પ્રતિમા મેં રહતા હૈ વહ ષષ્ઠમઘ્યા પ્રતિમા હૈ વહ પ્રતિમા ઓર એક માસ કે કાલ-ઘાલી હૈ ઇસમેં કૃષ્ણપક્ષ કી પ્રતિપદા મેં ઇસ પ્રતિમા કા ચારી ૧૫ ગ્રાસ પ્રમાણ આહાર ગ્રહણ કરતા હૈ ફિર વહ પ્રતિદિન એક એક ગ્રાસ કી હામિ સે અમાવાસ્યા કે દિન કેવલ એક ગ્રાસ પ્રમાણ આહાર લેતા હૈ યાદ મેં શુક્રલપક્ષ કી એકમ તિથિ મેં ઓર વહ એક ગ્રાસ પ્રમાણ હી આહાર લેતા હૈ ઇસકે યાદ વહ પ્રતિદિન એક એક ગ્રાસ કી વૃદ્ધિ સે પૂર્ણિમા કે દિન ૧૫ ગ્રાસપ્રમાણ આહાર લેતા હૈ ઇસ પ્રકાર વહ ષષ્ઠમઘ્યા ચન્દ્રપ્રતિમા હૈ યે પ્રતિમાઈ સામાયિક ઘાલે જીવોં કે હી હોતી હૈ અત મન્વ

ચન્દ્રમાની કલાઓ શુક્રલપક્ષમાં વધતી જાય છે અને કૃષ્ણપક્ષમાં ક્રમશઃ ઘટતી જાય છે જેવું પ્રમાણે આ પ્રતિમાની આરાધના કરનારના આહારના શુક્રલ પક્ષમાં એક એક ગ્રાસની વૃદ્ધિ થતી જાય છે અને કૃષ્ણપક્ષમાં ક્રમશઃ એક એક ગ્રાસની ન્યૂનતા થતી રહે છે

જે પ્રતિમામાં વજનના મહત્ત્વાત જેવો મહત્ત્વાળ રહે છે, તે પ્રતિમાને વજનમધ્યા પ્રતિમા કહે છે તે પ્રતિમાની આરાધના પણ એક માસ પશન કરવામાં આવે છે આ પ્રતિમા ધારણ કરનાર હવ કૃષ્ણપક્ષની એકમને દિવસે ૧૫ ગ્રાસ પ્રમાણ આહાર ગ્રહણ કરે છે ત્યારબાદ ૩૨રાજ ક્રમશઃ તે એક એક ગ્રાસ ઘોષ્ટા કરતો જાય છે, આ રીતે અમાવાસ્યાએ તે માત્ર એક ગ્રાસ પ્રમાણ આહાર ગ્રહણ કરે છે ત્યારબાદ તે શુક્રલ પક્ષની એકમે પણ એક ગ્રાસ પ્રમાણ આહાર જ લે છે ત્યારબાદ તે પ્રતિદિન એક એક ગ્રાસની વૃદ્ધિ કરતાં કરતાં પૂર્ણિમાને દિવસે ૧૫ ગ્રાસ પ્રમાણ આહાર લે છે વજનમધ્યા

‘दुविहे सामाहए’ इत्यादि । समः—समत्वं रागद्वेषरहितत्वेन सर्वेषु जीवेषु स्वात्मसारव्यवस्त्रम्, सम शब्दस्यात्र भावप्रधाननिर्दिष्टत्वात्, तस्य आयः—प्राप्तिः समायः प्रवर्धमानशरदचन्द्रकलावत् प्रतिक्षणविलक्षणज्ञानादित्यमः, स प्रयोजनमस्येति सामायिकम् । यद्वा—समानां ज्ञानादीनाम् आयः—लाभः समायः, स एव सामायिकम् तद् द्विविधम्—आगारसामायिकम्, अनगारसामायिकं चेति । तत्र—आगारसामायिकम् गृहस्थानाम्, अनगारसामायिकं च सर्वविरतिमतां मुनीनां भवतीति ॥ सू० २८ ॥

सूत्रकार सामायिक सूत्र का कथन करते हैं—‘दुविहे सामाहए’ इत्यादि—रागद्वेष की रहितता से जो समस्त जीवों के ऊपर अपने आत्मा के जैसी समता होती है उसका नाम सम है इस सम की जो आय—प्राप्ति—लाभ है उसका नाम समाय है यह समाय प्रवर्धमान शरद चन्द्रकला की तरह प्रतिक्षण विलक्षण ज्ञानादिक जो लाभ है उस लाभरूप होता है यह लाभ जिसका प्रयोजन है वह सामायिक है अथवा—ज्ञानादि रूप सम का लाभ समाय है और यह समाय ही सामायिक है वह दो प्रकार का है एक अगार सामायिक और दूसरा अनगार सामायिक अनगार सामायिक गृहस्थों के होता है और अनगार सामायिक सर्व विरति मुनिजनों के होता है ॥ सू० २८ ॥

सामायिकवाणा एवो वडे न प्रतिभाञ्चो धारणु करी शक्य छे, तेथी डवे सूत्रकार सामायिक सूत्रनुं कथन करे छे—

“दुविहे सामाहए” इत्यादि. रागद्वेषथी रहित थधने समस्त एवो प्रत्ये चोताना आत्माना जेथी समतानो जे भाव राधनामां आवे छे तेनु नाम ‘सम’ छे. ते समनी जे आय (प्राप्ति, लाभ) छे, तेनु नाम समाय छे. ते समाय प्रवर्धमान शरद चन्द्रनी कज्ञानी जेम प्रतिक्षण विलक्षण ज्ञानादिक जे लाभ छे ते लाभरूप डोय छे. ते लाभ जेतु प्रयोजन छे, जेथी वस्तुने सामायिक डडे छे. अथवा ज्ञानादि रूप समता लाभनु नाम न समाय छे, अने ते समाय न सामायिक छे. तेना जे प्रकार छे—(१) अगार सामायिक अने (२) अनगार सामायिक अगार सामायिक गृहस्थो द्वारा कराय छे अने अनगार सामायिक सर्वविरति द्वारा थाय छे. ॥ सू० २८ ॥

जीनपमोधिकार एव तदमोन्तराणि मरूपयन्माह—

मूम्म—दोण्ह उववाय पण्णत्ते त जहा—वेवाण च्चैव नेरइयाण च्चैव १ । दोण्ह उठवहणा पण्णत्ता त जहा—नेरइयाण च्चैव भवणवासीण च्चैव २ । दोण्ह च्चवण्णे पण्णत्ते त जहा—जोइसियाण च्चैव वेमाणियाण च्चैव ३ । दोण्ह गध्मवक्कती पण्णत्ता तं जहा—मणुस्साण च्चैव पच्चिदियतिरिक्खजोणियाण च्चैव ४ । दोण्ह गध्मत्थाण आहारे पण्णत्ते त जहा—मणुस्साण च्चैव पच्चिदियतिरिक्खजोणियाण च्चैव ५ । दोण्ह गध्मत्थाण बुद्धी पण्णत्ता त जहा मणुस्साण च्चैव पच्चिदियतिरिक्खजोणियाण च्चैव ६ । एव निब्बुद्धी ७, विगुठवणा ८, गइपरियाय ९, समुग्घाए १०, कालसंजोगे ११, आयाई १२, मरणे १३ । दोण्ह छाविपब्बा पण्णत्ता तं जहा—मणुस्साण च्चैव पच्चिदियतिरिक्खजोणियाण च्चैव १४ । दो सुक्कसोणिय समथा पण्णत्ता त जहा—मणुस्सा च्चैव पच्चिदियतिरिक्खजोणिया च्चैव १५ । दुविहा ठिई पण्णत्ता त जहा—कायट्ठिई च्चैव भवट्ठिई च्चैव १६ । दोण्ह कायट्ठिई पण्णत्ता त जहा—मणुस्साण च्चैव पच्चिदियतिरिक्खजोणियाण च्चैव १७ । दोण्ह मवट्ठिई पण्णत्ता त जहा—वेवाण च्चैव नेरइयाण च्चैव १८ । दुविहे आउए पण्णत्ते त जहा अद्धाउए च्चैव भवाउए च्चैव १९ । दोण्ह अद्धाउए पण्णत्ते त जहा—मणुस्साण च्चैव पच्चिदियतिरिक्खजोणियाण च्चैव २० । दोण्ह भवाउए पण्णत्ते त जहा वेवाण च्चैव नेरइयाण च्चैव २१ । दुविहे कम्मे पण्णत्ते त जहा—पयसकम्मे च्चैव अणुभावकम्मे च्चैव २२ । दो

अहाउयं पालेति तं जहा--देवा चैव नैरइया चैव २३ । दोण्हं  
आउय संवद्वए पणत्ते तं जहा--मणुस्साण चैव पंचिदिथ तिरि-  
क्खजोणियाण चैव २४ ॥ सू० २९ ॥

छाया—द्वयोरुपपातः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—देवानां चैव नैरयिकाणां चैव १ । द्वयो-  
रुद्धत्तना प्रज्ञप्तास्तद्यथा—नैरयिकाणां चैव भवनवासिनां चैव २ । द्वयोश्च्यवनं प्रज्ञप्तं  
तद्यथा—ज्योतिष्काणां च वैमानिकानां चैव ३ । द्वयोर्गर्भव्युत्क्रान्तिः प्रज्ञप्ता तद्यथा  
मनुष्याणां चैव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां चैव ४ । द्वयोर्गर्भस्थयोराहारः प्रज्ञप्त-  
स्तद्यथा—मनुष्याणां चैव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां चैव ५ । द्वयोर्गर्भस्थयोर्द्विद्विः  
प्रज्ञप्ता तद्यथा—मनुष्याणां चैव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां चैव ६ । एवं निद्विद्विः ७  
विकुर्वणाऽ, गतिपर्यायः ९, समुद्रातः १०, कालसंयोगः ११, आयातिः १२, मरणम्  
१३ । द्वयोश्छविपर्वाणि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—मनुष्याणां चैव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां  
चैव १४ । द्वौ शुक्रशोणितलभ्रौ प्रज्ञप्तौ तद्यथा—मनुष्याश्चैव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिका-  
श्चैव १५ । द्विविधा स्थितिः प्रज्ञप्ता तद्यथा—कायस्थितिश्चैव भ्रूस्थितिश्चैव १६ । द्वयोः  
कायस्थितिः प्रज्ञप्ता तद्यथा—मनुष्याणां चैव पञ्चेन्द्रिय तिर्यग्योनिकानां चैव १७ ।  
द्वयोर्भ्रूस्थितिः प्रज्ञप्ता तद्यथा—देवानां चैव नैरयिकाणां चैव १८ । द्विविधमायुष्कं  
प्रज्ञप्तं तद्यथा—अद्वायुष्कं चैव भ्रूयायुष्कं चैव १९ । द्वयोरद्वायुष्कं प्रज्ञप्तं तद्यथा—  
मनुष्याणां चैव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां चैव २० । द्वयोर्भ्रूयायुः प्रज्ञप्तं तद्यथा  
देवनां चैव नैरयिकाणां चैव २१ । द्विविधं कर्म प्रज्ञप्तं तद्यथा—प्रदे कर्म चैव अनु  
भावकर्म चैव २२ । द्वौ यथायुष्कं पालयतस्तद्यथा—देवाश्चैव नैरयिकाश्चैव २३ । द्वयोरायु-  
ष्कसंबन्धः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—मनुष्याणां चैव पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां चैव २४ ॥ सू० २९ ॥

टीका—‘ दोण्हं उववाए ’ इत्यादि चतुर्विंशतिसूत्री सुगमा । नवरम्-उपपत्त-  
नम् उपपातः—गर्भसंमूर्च्छनं विलक्षणो जन्मविशेषः—देवनारकाणां जन्मेत्यर्थः १ ।

अब सूत्रकार जीवधर्माधिकार में जीव के अन्य धर्मों की प्ररूपणा  
करते हैं—‘ दोण्हं उववाए पणत्ते ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—दो का उपपात कहा गया है—एक देवों का उपपात और  
दूसरा नैरयिकों का उपपात, उद्धत्तना दो की कही गई है—नैरयिकों की

एवधर्माधिकार आली रह्यो छे, तेथी सूत्रकार छवे एवना अन्य धर्मांनी  
अप्रपण्णु करे छे—“ दोण्हं उववाए पणत्ते ” इत्यादि—

टीकार्थ—उपपात भेनो कही छे—(१) देवोने उपपात अने (२) नार-  
केने उपपात, उद्धत्तना भेनी कही छे—(१) नारकेनी उद्धत्तना अने (२)

उद्धर्षनम्-उद्धर्षना उद्धर्षनायाभिर्गमनं मरणमित्यर्थः । एषा नैरपिक्राणां भवनवासिनामेव व्यपदिश्यते । व्यन्तरास्तु भवनवासिष्वन्तर्भूताः २ । च्युतिश्च्यवनं मरणमित्यर्थः, ज्योतिष्कैर्मैमानिकानां मरणं व्यवनशब्देन व्यपदिश्यते ३ । गर्भव्युत्क्रान्ति-गर्भे-गर्भाश्रये व्युत्क्रान्तिः-उत्पत्तिः, तथा । इयं मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मानिकानां च भवति ४ । आहारम् आहारः, स च द्वयानां गर्भस्थानां भवति, तथाहि-मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिर्यग्मानिकानां च ९ । र्धनं वृद्धिः शरीरोपचय इत्यर्थः । इयमपि गर्भस्थमनुष्याणां गर्भस्थपञ्चेन्द्रियतिर्यां च भवति ६ । एवम्-अनेनैव प्रकारेण गर्भस्थानां मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिर्यां च निर्हृदिर्हानिवातविष्टान्तिः निष्कन्दोऽभामावराषक - यथा निर्धनेत्यादिषु ७ विकुर्याणा, इयं वैक्रियलक्षिमतां मनुष्य-पञ्चेन्द्रियतिर्यां भवति ८, गति

षट्संज्ञा और भवनवासियों की उद्धर्षना, च्यवन दो का कहा गया है-ज्योतिष्कों का च्यवन और मैमानिकों का च्यवन दो की गर्भव्युत्क्रान्ति कही गई है-मनुष्यों की और पञ्चेन्द्रिय तिर्यगों की गर्भस्थ दो जीवों के आहार कहा गया है-मनुष्यों के और पञ्चेन्द्रियनिर्धनों के गर्भस्थ दो जीवों के वृद्धि कही गई है-मनुष्यों के और पञ्चेन्द्रियतिर्यगों के ९, इसी तरह से निर्हृदि भी कही गई जाननी चाहिये, इसी तरह से विकुर्याणा, गतिपर्याय, समुद्रघात, कालसयोग, आयाति और मरण के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये दो जीवों के छवियर्ष कहे गये हैं-मनुष्यों के और पञ्चेन्द्रियतिर्यगों के १४ दो जीव शुरु शोणित से उत्तर छुट कहे गये हैं-मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यग १५ दो प्रकार की स्थिति कही गई है कायस्थिति और भवस्थिति दो जीवों के कायस्थिति कही गई है-मनुष्यों

भवनवासी होनेकी उद्धर्षना च्यवन दो कहें हैं-(१) ज्योतिष्कों च्यवन  
 અને मैमानिकों च्यवन गर्भव्युत्क्रान्ति होने कही है-(१) मनुष्यों અને  
 (२) पञ्चेन्द्रिय तिर्यगोंને जन्म लभनेवालों के प्रकारना होनेने आहार  
 कही है (१) मनुष्योंने અને (२) पञ्चेन्द्रिय तिर्यगोंने जन्म लभने के प्रकारना  
 होनेकी वृद्धि कही है-(१) मनुष्योंने અને (२) पञ्चेन्द्रिय तिर्यगोंने जन्म  
 प्रमाणां निर्हृदिर्हानं कथन पञ्च समस्त जन्म प्रमाणां निर्हृदिर्हानं गतिपर्याय,  
 समुद्रघात कालसयोग आयाति અને मरण दिने पञ्च समस्त जन्म लभने  
 होने तथा અને सप्तम पदने आयात शब्दार्थ होने है (१) मनुष्योंने  
 અને (२) पञ्चेन्द्रिय तिर्यगोंने होनेने शुरु शोणित से उत्पन्न भवेत्ता  
 कही है-(१) मनुष्य અને (२) पञ्चेन्द्रिय तिर्यगोंने प्रकारनी स्थिति कही  
 है-(१) कायस्थिति અને (२) भवस्थिति से होनेकी कायस्थिति कही है,

पर्यायः—चलनं, गृत्वा वा गत्यन्तरगमनरूपः, यच्च वैक्रियलब्धिधरो गर्भान्निर्गत्य प्रदेशतो वहिः संग्रामयति स वा गतिपर्यायः ९, यथास्वभावस्थितानामात्मप्रदेशानां वेदनादिभिः सप्तभिः कारणैः समन्ताद् उद्घातनं—स्वभावादन्यभावेन परिणमन समुद्घातः १०, कालसंयोगः—कालकृतावस्थानुभवः ११, आयातिः—गर्भान्निर्गमः १२, मरणं—प्राणत्यागः गर्भस्थानां मनुष्यतिरश्चामिति सर्वत्र योज्यम् १३। 'दोहं छविपत्रा' इत्यादि, छविः—त्वचा, तद्युक्तानि पर्वाणि—सन्धिबन्धनानि छविपर्वाणि। इमानि गर्भस्थमनुष्यपञ्चेन्द्रियतिरश्चां भवन्ति १४। शुक्रशोणिताभ्यां संभवः—उत्पत्तिर्येषां ते शुक्रशोणितसभवाः, ते के ? इत्याह—मनुष्याः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चश्च १५। 'दुत्रिहा ठिई' इत्यादि—स्थितिः—अवस्थानम्, सा द्विविधा—कायस्थितिः भवस्थितिश्चेति १६। तत्र कायस्थितिः—सप्ताष्टभवग्रहणरूपा। सा च मनुष्यपञ्चेन्द्रियतिरश्चां भवति। एषा पृथिव्यादीनामपि भवति किन्त्वत्र द्विस्थानानुरोधाद् द्वयोरेव ग्रहणम् १७। भवे भवरूपा वा स्थितिर्भवस्थितिः—भवकाल इत्यर्थः। सा च देवानां नैरयिकाणां च भवति, तेषां पुनर्देवादित्वेनानुत्पत्तेः १८। अद्वा—कालः, तत्प्रधानम् आयुः—पञ्चममायुष्कर्म—अद्वायुः, तदेव—अद्वायुष्कम्—कालान्तरानुगम्यायुरित्यर्थः। भवप्रधानमायुर्भवायुः, तदेव भवायुष्कं, यद् भवात्यये नियमादपगच्छत्येव न कालान्तरमनुयाति १९। अद्वायुष्कं मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिरश्चा च भवति, कस्यचित् तद् भवनाशेऽपि नापगच्छति, उत्कृष्टतः सप्ताष्टभवकालं यावदनुगच्छति २०। भवायुष्कं देवानां च भवति, यद् भवात्यये नियमादपगच्छत्येव, न कालान्तरमनुयाति। अयं भावः—देवा देवभवाच्च्युत्वा न पुनर्देवत्वेनोत्पद्यन्ते, एवं नारका नारका दुदृष्ट्य न पुनर्नारकत्वेन सपुत्पद्यन्त इति २१।

के और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के १७ दो जीवों के भवस्थिति कही गई है—देवों के और नैरयिकों के आयुष्क दो प्रकार का कहा गया है—एक अद्वा आयुष्क और दूसरा भवायुष्क दो के अद्वायुष्क कहा गया है—एक मनुष्यों के और दूसरे पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के २० दो जीवों के भवायुष्क कहा गया है—एक देवों के और दूसरे नैरयिकों के २१ कर्म दो प्रकार

(१) मनुष्येऽनी अने (२) पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोनी. जे लोकोनी अवस्थिति कही छे—(१) देवोनी अने (२) नारकोनी आयुष्क जे प्रकारना कथा छे—(१) अद्वायुष्क अने (२) भवायुष्क. जे लोकोना अद्वायुष्क कथा छे. (१) मनुष्येऽनु' अने (१) पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोनुं जे लोकोनुं भवायुष्क कथुं छे—(१) देवोनु अने



કા કહા ગયા છે એક પ્રવેશકર્મ ઓર દુસરા અનુભાવ કમ ઠો ઝીલ  
 યયાયુક્ક કા પાલન કરતે છે- એક દેવ ઓર દુમરે નૈરયિક ઠો ઝીલોં કે  
 આયુક્ક સવતંક કહા ગયા છે-મનુષ્યોં કે ઓર પંચેન્દ્રિયતિર્યક્ષોં કે ૨૪,  
 "લોળ્હ ઠવલાપ" આલિ પહ ચતુર્વિ શાતિસૂઘી છે-હસકા અર્થ સુગમ  
 છે ગર્મજમ ઓર સમૂચ્છનજન્મ સે ઝો જમ મિલ્લ હોતા-લિલક્ષણ પ્રકાર  
 કા હોતા છે વહ ઠપપાત જમ છે પહ જન્મ લેય ઓર નૈરયિકોં કે હોતા  
 છે ઘયોં કિ ઠત્પત્તિ સ્થાન મેં સ્થિત લૈકિયિક પુદ્ગલોં કો શરીરરુપ સે  
 પરિણમાતે ઠુપ લે ઠત્પલ્લ હોતે છે ઠત્પત્તિસ્થાન મેં સ્થિત લૈકિયિક પુદ્ગલોં  
 કો શરીરરુપ સે પરિણમાતે ઠુપ ઠત્પલ્લ હોના હસી કા નામ ઠપપાત જન્મ  
 છે ઠસ ઠસ કાય સે ઝીલ કા નિર્ગમન હોના-મરણ હોના હસી કા નામ  
 ઠલ્લસના છે હસ ઠલ્લસના કા ઠ્યપલ્લેશ નૈરયિક ઠ્ય મયનલાસિયોં કે  
 હી હોના છે ઠ્યન્ટરલ્લેશોં કે મી ઠલ્લસના કા પ્રયોગ હોતા છે પરન્ટુ યહાં  
 ઝો ઠન્હે સ્થાતપ્રરુપ સે નહીં લિસ્યાયા ગયા છે ઠસકા કારણ મલનલા  
 સિયોં મેં ઠનકા અન્ટર્મૂલ હોના છે ઠપલન નામ મી મરણ કા હી છે  
 પરન્ટુ ઠ્યોતિલ્લક ઓર લૈમાનિક ઝીલોં મેં મરણ કે સ્થાન પર ઠ્યલન  
 શાન્દ કા હી પ્રયોગ હોતા છે મરણ શાન્દ કા નહીં છે ગર્મ મેં ઠત્પત્તિ

(૧) નારકોનું કમ જે પ્રકારના કલા છે પ્રવેશકમ અને (૨) અનુભાવ કમ  
 જે ઠલેા લલામુકનું પાલન કરે છે (૧) દેવ અને (૨) નારકો જે ઠલેાના  
 આમુકને સવતંક કલા છે-(૧) મનુષ્યોના અને (૨) પંચેન્દ્રિય તિલ ઠાના ૨૪

"લોળ્હ ઠવલાપ" આલિ ૨૪ સૂત્રો આપનામાં આ લા છે તેમને  
 અર્થ શરણ છે અર્જનજમ અને સમૂચ્છન જનમથી લે જનમ મિનન હોલ  
 છે-નિલક્ષણ પ્રકારનો હોલ છે તે જ મનુ નામ " ઠપપાત જમ " છે દેવ  
 અને નારકોમાં ઠપપાત જમ લાલ છે કારણ કે ઠત્પત્તિસ્થાનમાં રહેલાં  
 લૈકિયિક પુદ્ગલોને શરીરરૂપે પરિલ્લભાવીને તેલ્લો ઠત્પલ્લ લાલ છે. ઠત્પત્તિ  
 સ્થાનમાં લૈકિયિક પુદ્ગલોને શરીરરૂપે પરિલ્લભાવીને ઠત્પલ્લ લલુ તેનું નામ જ  
 ઠપપાત જમ છે ૧ પોતપોતાની કાલમાંથી ( અલિમાંથી ) ઠલવનું નિજ મન મનું  
 ( મરણ લલુ ) તેનું નામ ઠલ્લસના કહે છે આ ઠલ્લસના પલ્લેા પ્રયોગ નારકો  
 લલનલાલ્લોમાં જ લાલ છે અન્ટરલ્લેામાં પણ ઠલ્લસના પલ્લેા પ્રયોગ લાલ  
 છે, પરન્ટુ આલિ તેમને સવતંકરૂપે પ્રકટ ન કરવનું કારણ લે છે કે લલન  
 લાલ્લોમાં તેમને લભાલેશ લઈ લાલ છે ૨ પ્પલ પલ્લેા પ્રયોગ પણ મરણના  
 અર્થમાં જ લાલ છે લ્લેોતિલ્લકો અને લૈમાનિકો લાલે મરણ પલ્લેા પ્રયોગ  
 લલેો નથી, પણ લલન પલ્લેા જ પ્રયોગ લાલ છે ॥ ૪ ॥

હોના હસકા નામ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિ હૈ યહ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિરુપ ગર્ભ મેં ઉત્પત્તિ દો જીવોં કી હી હોતી હૈ ઇક પંચેન્દ્રિયતિર્યશ્ચ જીવોં કી ઓર દૂસરી મનુષ્યોં કી ક્યોં કિ જન્મ કે તીન પ્રકારોં મેં સે જો ગર્ભજન્મ હૈ વહ પંચેન્દ્રિયતિર્યશ્ચોં કે ઓર મનુષ્યોંકો હી કહા ગયા હૈ અન્યકો નહીં ૪, તીનશરીર ઓર ૬ પર્યાસિયોં કે યોગ્ય પુદ્ગલ પરમાણુઓં કા ગ્રહણ કરના હસકા નામ આહાર હૈ યહ આહાર ગર્ભસ્થ મનુષ્યોંકો ઓર પંચેન્દ્રિયતિર્યશ્ચોં કો હી હોતા હૈ ૫ શરીરોપચય કા નામ વૃદ્ધિ હૈ યહ વૃદ્ધિ ઓ ગર્ભસ્થ મનુષ્યોં ઓર ગર્ભસ્થ પંચેન્દ્રિય તિર્યશ્ચોંકો હી હોતી હૈ ૬ હસી પ્રકાર સે ગર્ભસ્થ મનુષ્યોં કે ઓર ગર્ભસ્થતિર્યશ્ચોં કે નિવૃદ્ધિ-વાન-પિત્ત આદિદ્વારા હાનિ હોતી હૈ યહાં નિઃશબ્દ “નિર્લજ્જ મનુષ્ય” ઇત્યાદિ કી તરહ અભાવ વાચક હૈ ૭ વિકુર્વણા ઓ-વૈક્રિયલલ્લિધસંપન્ન મનુષ્ય ઓર પંચેન્દ્રિય તિર્યશ્ચોં કો હોતી હૈ, ચલના અથવા મરકર ગત્યન્તર મેં ગમન કરના હસકા નામ ગતિ પર્યાય હૈ અથવા-લલ્લિધર જીવ ગર્ભ સે નિકલકર પ્રદેશ કી અપેક્ષા જો વાહર સંગ્રામ કરતા હૈ વહ ગતિપર્યાય હૈ ૯ યથા સ્વભાવસ્થિત આત્મપ્રદેશોં કા વેદના આદિ સાત કારણોં કો લેકર અપને ભાવ સે અન્ય ભાવરુપ મેં પરિણમન કરના હસકા નામ

ગર્ભમાં ઉત્પત્તિ થવી તેનું નામ ગર્ભવ્યુત્ક્રાન્તિ છે. મનુષ્ય અને પંચેન્દ્રિય તિર્યચોની ઉત્પત્તિ જ ગર્ભમાં થાય છે. જન્મના ત્રણ પ્રકારોમાંથી જે ગર્ભજન્મ નામનો પ્રકાર છે, તે પ્રકારે તે મનુષ્યો અને પંચેન્દ્રિય તિર્યચોનો જ જન્મ થાય છે-અન્ય જીવોમાં તે પ્રકારે જન્મ થતો નથી ॥ ૪ ॥

ત્રણ શરીર અને છ પર્યાસિઓને યોગ્ય પુદ્ગલ પરમાણુઓને ગ્રહણ કરવા તેનું નામ આહાર છે. તે આહાર ગર્ભસ્થ મનુષ્યો અને પંચેન્દ્રિય તિર્યચોમાં સંભવી શકે છે. ॥ ૫ ॥ શરીરોપચયનું નામ વૃદ્ધિ છે. ગર્ભસ્થ મનુષ્યો અને પંચેન્દ્રિય તિર્યચોમાં જ તે વૃદ્ધિ થવી હોય છે ૬ એજ પ્રમાણે ગર્ભસ્થ મનુષ્યોની અને ગર્ભસ્થ તિર્યચોની જ વાત, પિત્ત આદિ દ્વારા નિવૃદ્ધિ (હાનિ) થાય છે “ નિ ” ઉપસર્ગ “ નિર્લજ્જ પુરુષ ” ઇત્યાદિની જેમ અભાવ વાચક છે ૭ વૈક્રિય લલ્લિધસંપન્ન મનુષ્ય અને પંચેન્દ્રિય તિર્યચોમાં જ વિકુર્વણા સંભવી શકે છે ૮ ચાલવું અથવા મરીને અન્ય ગતિમાં જવું તેનું નામ ગતિપર્યાય છે અથવા લલ્લિધર જીવ ગર્ભમાંથી નીકળીને પ્રદેશની અપેક્ષાએ જે બહાર સંગ્રામ કરે છે, તે ગતિપર્યાય છે. ॥ ૯ ॥ યથા સ્વભાવસ્થિત આત્મપ્રદેશોનું વેદના આદિ સાત કારણોને લઈને ચેતાના ભાવમાંથી અન્ય ભાવરૂપે પરિણમન

કા કહા ગયા છે એક પ્રદેશકર્મ ઓર ઢુસરા અનુભાવ ક્રમ ઢો ઝીવ ઘયાયુક્ક કા પાલન કરતે છે- એક ઢેવ ઓર ઢુસરે નૈરયિક ઢો ઝીવોં કે આયુક્ક સવર્તક કહા ગયા છે-મનુષ્યોં કે ઓર પંચેન્દ્રિયતિર્યકોં કે ૨૪, " ઢોળું ઢવઘાપ ' આદિ યહ અતુર્વિશતિસૂત્રી છે-ઇસકા અર્થ સુગમ છે ગર્ભજન્મ ઓર સમૂચ્છનજન્મ સે ઝો જન્મ મિલ્લ હોતા-વિલક્ષણ પ્રકાર કા હોતા છે ઘહ ઉપપાત જન્મ છે ઘહ અન્મ ઢેવ ઓર નૈરયિકોં કે હોતા છે ક્યોં કિ ઉત્પત્તિ સ્થાન મેં સ્થિત વૈક્રિયિક પુત્રલોં કો ઢારીરરૂપ સે પરિણમાતે છુપ ઘે ઉત્પન્ન હોતે છે ઉત્પત્તિસ્થાન મેં સ્થિત વૈક્રિયિક પુત્રલોં કો ઢારીરરૂપ સે પરિણમાતે છુપ ઉત્પન્ન હોના ઇસી કા નામ ઉપપાત જન્મ છે ઇસ ઢસ કામ સે ઝીવ કા નિર્ગમન હોના-મરણ હોના ઇસી કા નામ ઉદ્ઘર્સના છે ઇસ ઉદ્ઘર્સના કા વ્યપઢેશ નૈરયિક ઇય મ્યનઘાસિયોં કે હી હોના છે વ્યન્તરઢેવોં કે મી ઉદ્ઘર્સના કા પ્રયોગ હોતા છે પરંતુ ઘર્હા ઝો ઢન્હે સ્વતત્રરૂપ સે નહીં ઢિલ્લાયા ગયા છે ઇસકા કારણ મ્યનઘાસિયોં મેં ઢનકા અન્તર્મૂત હોના છે ક્યઘન નામ મી મરણ કા હી છે પરંતુ ઝ્યોતિષ્ક ઓર વૈમાનિક ઝીવોં મેં મરણ કે સ્થાન પર ક્યઘન શબ્દ કા હી પ્રયોગ હોતા છે મરણ શબ્દ કા નહીં ઇ ગર્ભ મેં ઉત્પત્તિ

(૨) નારકોંનું કર્મ ઓ પ્રકારના ક્રહા છે પ્રદેશકર્મ અને (૨) અનુભાવ કર્મ ઓ છવો ઘયાયુક્કનું પાલન કરે છે-(૧) ઢેવ અને (૨) નારકો. ઓ છવોના આયુક્કને સવર્તક કહા છે-(૧) મનુષ્યોના અને (૨) પંચેન્દ્રિય તિર્યકોના ૨૪

" ઢોળું ઢવઘાપ " આદિ ૨૪ સૂત્રો અહીં આપનામાં આઠવા છે તેમને અર્થ ડરણ છે જલજ મ અને સમૂચ્છન જન્મથી જે જ મ મિન્ન ઢોલ છે-વિલક્ષણ પ્રકારના ઢોલ છે તે જન્મનું નામ ઉપપાત જન્મ ' છે ઢેવ અને નારકોમાં ઉપપાત જન્મ ઘાય છે, કારણ કે ઉત્પત્તિસ્થાનમાં રહેતાં વૈક્રિયિક પુત્રલોને ઢારીરરૂપે પરિણમાવીને તેમ્ને ઉત્પન્ન ઘાય છે ઉત્પત્તિ સ્થાનમાં વૈક્રિયિક પુત્રલોને ઢારીરરૂપે પરિણમાવીને ઉત્પન્ન ઘનું તેનું નામ જ ઉપપાત જન્મ છે ૧ પાતપોતાની કામમાંથી ( ગતિમાંથી ) છવનું નિર્ગમન ઘનું ( મરણ ઘનું ) તેનું નામ ઉદ્ઘર્સના કહે છે આ ઉદ્ઘર્સના ઘડનો પ્રયોગ નારકો ભવનઘાસીઓમાં જ ઘાય છે વ્યન્તરોમા પણ ઉદ્ઘર્સના ઘડનો પ્રયોગ ઘાય છે, પરંતુ અહીં તેમને સ્વતત્રરૂપે પ્રકટ ન કરવનું કારણ છે છે કે ભવન ઘાસીઓમાં તેમને સમાવેશ ઘઈ જાય છે. ૨ વ્યવ ઘડનો પ્રયોગ પણ મરણના અર્થમાં જ ઘાય છે વ્યોતિષ્કો અને વૈમાનિકો ઘાયે મરણ ઘડને પ્રયોગ ઘતો નથી, પણ વ્યવન ઘડનો જ પ્રયોગ ઘાય છે ॥ ૩ ॥

स्थिति का नाम भवकाल भी है यह भवस्थितिरूप भवकाल देव और नैरयिक जीवों को होता है क्यों कि देवादिपर्याय छोड़ने के अनन्तर पुनः देवादिपर्याय की प्राप्ति नहीं होती है १८, आयु दो प्रकारका होता है अद्ध्यु और भवायु १९ अद्ध्यु नाम काल का है इस कालप्रधान जो पांचवां आयुष्कर्म है वह अद्ध्युष्क है यह अद्ध्युष्क जीव के साथ कालान्तरानुगामी होता है अतः कालान्तरानुगामी आयु का नाम ही अद्ध्युष्क है भवप्रधान आयु का नाम भवायु है और इस भवायु का नाम ही भवायुष्क है भवायुष्क भव के नाश हो जाने पर नियम से छूट जाता है—जीव के साथ परलोक में नहीं जाता है २०, अद्ध्युष्क मनुष्यों और पंचेन्द्रियतिर्यश्चों को होता है यह किसी २ जीव का तद्भवनाश हो जाने पर भी नष्ट नहीं होना है उत्कृष्ट रूप से यह सात भाग भवकाल तक जीव के साथ चला जाता है भवायुष्क देव और नारकियों को होता है यह नियम से उक्त भव के नाश हो जाने पर छूट जाता है, कालान्तर में उन जीवों के साथ नहीं जाता है क्यों कि देवभव से च्यव कर देव पुनः देव नहीं होता है और नारक नारकभव से मर कर पुनः नारक नहीं होता है

स्थिति छे तेने भवस्थिति कडे छे, तेने भवकाल पणु कडे छे आ भवस्थिति इय भवकालने सदृभाव देवे अने नारकेमां डोय छे, कारणु के देव डि पर्याय छेअथा आठ इरीथी देवादि पर्यायनी प्राप्ति थती नथी ॥ १८ ॥ आयु जे प्रकारनुं थाय छे, अद्ध्यु अने भवायु ॥ १९ ॥ अद्ध्यु अने भवकाल ते कालप्रधान जे पांचमु आयुष्कर्म छे तेने अद्ध्युष्क कडे छे ते अद्ध्युष्क लवनी साथे कालान्तरानुगामी डोय छे, तेथी कालान्तरानुगामी आयुनु नाम न अद्ध्युष्क छे २० भवप्रधान आयुनु नाम भवायु छे अने ते भवायुने न भवायुष्क कडे छे. लवने नाश थता भवायुष्क नियमथी न छूटी नय छे—लवनी साथे परलोकमां नर्तु नथी ॥ २१ ॥ अद्ध्युष्कने सदृभाव मनुष्ये अने पंचेन्द्रिय तिर्य चोमा डोय छे केअथेअथे लवने ते लव नाश पामवा छतां तेने नाश थते नथी वधारेमां वधारे सात आठ लव सुधी ते अद्ध्युष्कने लवनी साथे संभध यालु रडे छे. भवायुष्कने सदृभाव देवे अने नारकेमां न डोय छे ते लवने नाश थता तेने ( भवायुष्कने ) पणु अवश्य नाश थछ नय छे कालान्तरे ते आयुष्क ते लवनी साथे नर्तु नथी, कारणु के देवलवथी चवेदे देव इरीथी देवगतिमां नते।

समुद्घात है १० कालहृत अवस्थाका अनुमथन करना इसका नाम काल-संपोग है ११, गर्भसे पाण्डुर निकलना इसका नाम निर्गम है १२ प्राणों का त्याग करना इसका नाम मरण है ये सब अवस्थाएँ गर्भस्थ मनुष्यों और गर्भस्थतिर्यञ्चोंकी ही होती हैं इसलिये "गर्भस्थानां मनुष्यतिरञ्चां" ऐसा पद सबत्र योजित करना चाहिये १३ "दोण्ड छविपट्वा" इत्यादि। छवि नाम त्वचा चमडी का है और पर्य नाम सधि पञ्चनों का है ये सधि पर्य गर्भस्थ और पंचेन्द्रियतिर्यञ्चों के होते हैं १४, शुक्र और शोणित इन दोनों से जिनकी उत्पत्ति होती है वे शुक्र शोणितसंभव जीव हैं ऐसे वे जीव मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च हैं १५ अवस्थानका नाम स्थिति है यह स्थिति कायस्थिति और भवस्थिति के भेद से दो प्रकार की होती है सात आठ भव ग्रहणरूप कायस्थिति है यह कायस्थिति मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के होती है यद्यपि पृथिवी आदिकों को भी यह होती है परन्तु यहाँ द्विस्थानों के अनुरोध से इन दो का ही ग्रहण हुआ है १७ भव में या भवरूप जो स्थिति है वह भवस्थिति है भव

कश्चु तेनुं नाम समुद्घात छे ॥ १० ॥ कालहृत अवस्थानो अनुभव इरवो तेनुं नाम कालसंपोग छे ॥ ११ ॥ गर्भस्थानी लकार नीकश्चु तेनुं नाम निर्गम छे प्राणानो त्याग इरवो तेनुं नाम मरण छे आ जधी अवस्थानानो अनुभव अवस्थ अनुभ्यो जने अवस्थ तिर्यञ्चानो च याव छे तेषी च "गर्भस्थानां मनुष्यतिरञ्चां" आ पडने (गर्भस्थ अनुभ्योना जने नियञ्चानो) सर्वत्र प्रयोग इरवानु कश्चु छे ॥ १३ ॥

"दोण्डं छवि पट्वा" "छवि ज्येउसे त्वया जने 'पर्य'" ज्येउसे सधिपञ्चनो ते त्वया जने सधिपचनो सङ्भाव अवस्थ अनुभ्योमां जने पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चानां च दोष छे ॥ १४ ॥ शुक्र जने शोणितेषी जेभनी उत्पत्ति याव छे ज्येवां ज्येवोने शुक्रशोणित संभव ज्येवां इडे छे अनुभ्यो जने पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोनी आ प्रारना ज्येवोमां ज्येवतरी याव छे ॥ १५ ॥

स्थिति ज्येउसे अवस्थान. ते स्थितिना कायस्थिति जने भवस्थिति नामना जे दोह पडे छे १६ सात आठ भवग्रहणरूप कायस्थिति छे ते कायस्थिति अनुभ्यो जने पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चानां च संभवी शके छे जो के पृथ्वीकाव आदिमा पञ्च ते संभवी शके छे, पञ्च ज्येवां जे स्थानाना अनुभ्येभनी ज्येवसात्रे उपपुञ्ज जने च भद्रज्ये इरवानां ज्येवेड छे ॥ १७ ॥ भवमां ज्येवया भवश्च जे

સ્થિતિ ત્તા નામ ભવકાલ મી હૈ યહ ભવસ્થિતિરૂપ ભવકાલ દેવ ઔર વૈરધિકા જીવોં કો હોતા હૈ ક્યોં કિ દેવાદિપર્યાય છોડ્ઝને કે અનન્તર પુનઃ દેવાદિપર્યાય કી પ્રાપ્તિ નહીં હોતી હૈ ૧૮, આયુ દો પ્રકારકા હોતા હૈ અદ્ધાયુ ઔર ભવાયુ ૧૯ અદ્ધા નામ કાલ કા હૈ હસ કાલપ્રધાન જો પાંચવાં આયુષ્કર્મ હૈ વહ અદ્ધાયુષ્ક હૈ યહ અદ્ધાયુષ્ક જીવ કે સાથ કાલાન્તરાનુગામી હોતા હૈ અતઃ કાલાન્તરાનુગામી આયુ કા નામ હી અદ્ધાયુષ્ક હૈ ભવપ્રધાન આયુ કા નામ ભવાયુ હૈ ઔર હસ ભવાયુ કા નામ હી ભવાયુષ્ક હૈ ભવાયુષ્ક ભવ કે નાશ હો જાને પર નિયમ સે છૂટ જાતા હૈ-જીવ કે સાથ પરલોક મેં નહીં જાના હૈ ૨૦, અદ્ધાયુષ્ક મનુષ્યોં ઔર પંચેન્દ્રિયતિર્યચ્ચોં કો હોતા હૈ યહ કિસી ૨ જીવ કા તદ્ભવનાશ હો જાને પર મી નષ્ટ નહીં હોતા હૈ ઉત્કૃષ્ટ રૂપ સે યહ સાત આઠ ભવકાલ તક જીવ કે સાથ ચલા જાતા હૈ ભવાયુષ્ક દેવ ઔર નારકિયોં કો હોતા હૈ યહ નિયમ સે ઉત્ત ભવ કે નાશ હો જાને પર છૂટ જાતા હૈ, કાલાન્તર મેં ઝન જીવોં કે સાથ નહીં જાતા હૈ ક્યોં કિ દેવભવ સે યવ કર દેવ પુનઃ દેવ નહીં હોતા હૈ ઔર નારક નારકભવ સે મર કર પુનઃ નારક નહીં હોતા હૈ

સ્થિતિ છે તેને ભવસ્થિતિ કહે છે, તેને ભવકાળ પણ કહે છે આ ભવસ્થિતિ રૂપ ભવકાળનો સદ્ભાવ દેવો અને નારકોમાં હોય છે, કારણ કે દેવ કિ પર્યાય છોડ્યા બાદ ક્ષીથી દેવાદિ પર્યાયની પ્રાપ્તિ થતી નથી ॥ ૧૮ ॥ આયુ બે પ્રકારનું થાય છે, અદ્ધાયુ અને ભવાયુ ॥ ૧૯ ॥ અદ્ધા એટલે કાળ તે કાળપ્રધાન જે પાંચમું આયુષ્કર્મ છે તેને અદ્ધાયુષ્ક કહે છે તે અદ્ધાયુષ્ક જીવની સાથે કાલાન્તરાનુગામી હોય છે, તેથી કાલાન્તરાનુગામી આયુનું નામ જ અદ્ધાયુષ્ક છે ૨૦ ભવપ્રધાન આયુનું નામ ભવાયુ છે અને તે ભવાયુને જ ભવાયુષ્ક કહે છે ભવનો નાશ થતા ભવાયુષ્ક નિયમથી જ છૂટી જાય છે-જીવની સાથે પરલોકમાં જતું નથી ॥ ૨૧ ॥ અદ્ધાયુષ્કનો સદ્ભાવ મનુષ્યો અને પંચેન્દ્રિય તિર્યચોમાં હોય છે કોઈકોઈ જીવનો તે ભવ નાશ પામવા છતાં તેનો નાશ થતો નથી વધારેમાં વધારે સાત આઠ ભવ સુધી તે અદ્ધાયુષ્કનો જીવની સાથે સંબંધ ચાલુ રહે છે. ભવાયુષ્કનો સદ્ભાવ દેવો અને નારકોમાં જ હોય છે તે ભવનો નાશ થતા તેનો (ભવાયુષ્કનો) પણ અવશ્ય નાશ થઈ જાય છે કાલાન્તરે તે આયુષ્ક તે જીવની સાથે જતું નથી, કારણ કે દેવભવથી ચલેલો દેવ ક્ષીથી દેવગતિમાં જતો

'बुद्धिहे कम्मे' इत्यादि-द्वित्रिंशं कर्म-प्रदेशकर्म, अनुभाव कर्म चेति । तत्र प्रदेशमाप्रवया वेद्यते चत्, तस्य प्रदेशा एव-पुद्गला एव वेद्यन्ते न यथापदो रस इति । अनुभाषतो वेद्यते तत्र, यस्यानुभावो यथापदरसो घणन इति २० । 'दो' इत्यादि-यथा पदमायुर्यथायुष्मत्, यात्परिमित पदं सायत्परिगितमायुरित्यर्थः, एतदायुर्दशा नारकात् पाठयन्ति-अनुभवन्ति, तेषां नियमाधिरूपमायुष्कत्वात् । अपं विवेकः असकपातवर्षायुष्कास्तिर्यञ्चो मनुष्याथ, तथा उत्तमपुरुषाभ्रमशरीराथ, एते नियमान्निर्गमक्रमायुष्मन्तो भान्ति, अन्ये सम्पातवर्षायुष्कास्तिर्यञ्चो मनुष्याथ, अनुत्तमपुरुषा अचरमशरीराथ सोपत्रमायुष्का इरुष्ममायुष्काश्चेत्युभयस्वभावा भवन्ति, उक्तञ्च -

"बुद्धिहे कम्मे" इत्यादि । प्रदेश कर्म और अनुभव कर्म के भेद से कर्म दो प्रकार का कहा गया है-जिमकर्म के केवल प्रदेशरूप पुद्गल ही घेदने में आते हैं यथापदरस घेदने में नहीं आता है यह प्रदेश कर्म है तथा जिस कर्म का अनुभावरूप ले यदन होना है वह अनुभाव कर्म है २२, इस अनुभाव कर्म का यथा पदरस घेदने में आता है यथा पदा युष्ककर्म जितने काल का आयु पांषा है उतने काल के आयु का भोगना यह पात देय और नारकियों में ही होता है क्योंकि कि ये अनपवर्त्यायुष्क होते हैं । असकपातवर्ष की आयु वाले भोगभूमि क तिर्षञ्च और मनुष्य एव उत्तमपुरुष और अचरमशरीरी जीव के सय नियम से निरुपक्रम आयुवाले होते हैं और सकपातवर्ष की आयु वाले तिर्षञ्च, मनुष्य,

नधी अने नारक अतिभाषी उदत्तना ( भयलु ) पार्श्विने के धपलु नारक इरी नारकअतिभा अतो नधी.

"बुद्धिहे कम्मे" इत्यादि. प्रदेशकर्म अने अनुभावकर्मना लेखी कर्मना ये प्रकार कथा छे जे कर्मना प्रदेशरूप पुद्गलनु ज मात्र वेदन कस्वामा आवे छे-यथापद रसनु वेदन कस्वामा आवतु नधी ते कर्मनि प्रदेशकर्म कहै छे. जे कर्मनु अनुभाव रूपे वेदन बाध छे ते कर्मने अनुभावकर्म कहै छे. ॥ २२ ॥ आ अनुभाव कर्मना यथापद रस वेदनामा आवे छे यथापदायुष्ककर्म कोरहै कोरहा कणनु आयु बाधु कोष कोरहा कणना आयुने कोषवर्ष जे वात देवे अने नारकांमा सक्ती यहै छे कारण के तेजो अनपवर्त्यायुष्क कोष छे असकपात वर्षना आयुवाणा कोषभूमिना मनुष्य तिर्षञ्च अने उत्तम पुरुष तथा अचरम शरीरी लोके निवसन्ती ज निरुपक्रम आयुवाणा कोष छे परन्तु सकपात वर्षना आयुवाणा तिर्षञ्च मनुष्य, अनुत्तम पुरुष अने अचरम

“ देवा नेरइया त्रि य, असंखवासाउया य तिरिमणुया ।

उत्तमपुरिसा य तथा, चरमशरीरा य निरुवक्कमा ॥ १ ॥

सेसा संसारत्था, मइया सोवक्कमा व इयरे वा ।

सोवक्कम निरुवक्कम, - भेओ भणिओ समासेण ” ॥ २ ॥ इति ।

छाया-देवा नैरयिका अपि च, असंख्यवर्षायुष्काश्च त्रिर्यङ् मनुष्याः ।

उत्तमपुरुषाश्च तथा, चरमशरीराश्च निरुपक्रमाः ॥ १ ॥

शेषाः संसारस्थाः, भाज्याः सोपक्रमा वा इतरे वा ।

सोपक्रमनिरुपक्रम, - भेदो भणितः समासेन ॥ २ ॥ ” इति २३ ।

अनुत्तम पुरुष और अचरम शरीरी ये सोपक्रम एवं निरुपक्रम दोनों प्रकार की आयुवाले होते हैं ।

कहा भी है-“ देवा नेरइया वि ” इत्यादि । “ सेसा संसारत्था ” इत्यादि ।

अधिकतर प्राणियों का विष, श्वासोच्छ्वास का अवरोध, हवाई जहाज से पतन, और राग आदि के निमित्त से अकाल में मरण देखकर यह प्रश्न होता है कि क्या अकालमरण होता है? यदि अकाल मरण होता है ऐसा मान लिया जाय तो दूसरा यह भी प्रश्न होता है कि जितने भी संसारी जीव हैं उन सब का अकालमरण होता है या सब का न होकर कुछ का ही होना है? इन्हीं दो प्रश्नों का उत्तर हमें यहां इस अभववर्त्यायुष्क निरुपक्रमायुष्क की विचार धारा से प्राप्त होता है कर्म शास्त्र के अनुसार बुज्जमान आयु का उत्कर्षण नहीं हो सकना क्यों कि उत्कर्षण बन्धकाल में ही होता है उदाहरणार्थ-किसी

शरीरी एवो सोपक्रम अने निरुपक्रम, ओ भन्ने प्रकारना आयुवाणा डेय छे.

कथु पणु छे डे-“ देवा नेरइया त्रि ” इत्यादि । “ सेसा संसारत्था ” इत्यादि-

धव्वां एवोनुं विष, श्वासोच्छ्वासना अवरोध, विमानी अकस्मात् अने

राग आदि कारणाधी अकाणे मरणु थाय छे आ अकाण मरणु लेधने एवे।

प्रश्न उइलवे छे डे शु अकाल मरणु संभवी शके छे अइ ? ले अकाव मरणु

थवानी वात स्त्रीकारवामा आवे, तो पीन्ने प्रश्न ओ उइलवे छे डे शु समस्त

स सारी एवोना अकाव मरणु थाय छे, डे डेई डेई स सारी एवना अकाव

मरणु थाय छे ? आ भन्ने प्रश्नोना उत्तर आपणुने आ असववर्त्यायुष्क अने

निरुपक्रमायुष्कनी विचारधाराभांघी भणी आवे छे. कर्मशास्त्र अनुसार बुल्य-

मान आयुनु उत्कर्षणु यथ शकतु नथी, कारणु डे उत्कर्षणु भन्धकाणमा अ



'દુષિહે ક્રમે' ઇત્યાદિ-દ્વિવિધં પરમ-પદ્મકર્મ, અનુમાય પરમં ચેતિ । તપ પ્રદ વામાપ્રતયા ષેચતે તત્, તસ્ય પ્રદેશા ઘય-પુહલા એવ ષેઘાઠે ન યથાવદો રસ ઇતિ । અનુમાવતો ષેચતે તત્, યસ્યાનુમાયો યથાવદ્વરમો ઘયત્ ઇતિ ૨૭ । 'દો' ઇત્યાદિ-યથા પ્રદમાયુષયાયુષ્કમ્, યાત્ત્વરિમિત યદ્ ઠાપ્ત્યરિમિતમાયુરિત્યર્થઃ, પત્તવાયુર્દશા નારકામ પાત્ત્યન્તિ-પ્રતુમ્બન્તિ, મેષાં નિયમાશ્નિરુપક્રમાયુષ્પત્વાત્ । અય કિલેકઃ અસરુપાત્તવાયુષ્કાસ્તિર્યજ્ઞો મનુષ્યાઃ, તથા ઉત્તમપુરુષાશ્નિરમશ્ચરી રાઘ, પ્ષે નિયમાશ્નિરુપક્રમાયુષ્પન્તો મરન્તિ, અન્વે સમ્પાત્તર્પાપુષ્કાસ્તિર્યજ્ઞો મનુષ્યાઃ અનુષ્મપુરુષા અચરમશ્ચરી । ય સોપદ્રમાયુષ્વા નિરુપક્રમાયુષ્કાષ્ણેત્ય મયસ્વભાવા મ્બન્તિ, ઉક્તઃ —

“દુષિહે ક્રમે” ઇત્યાદિ । પ્રદેશ કર્મ ઓર અનુમત્ત કર્મ કે મેદ સે કર્મ દો પ્રકાર કા કદા ગયા હૈ-જિસકર્મ કે કૈયલ પ્રદેશરુપ પુહલ હૈ ષેદને મેં આતે હૈ યથાવદ્વરમ ષેદને મેં નાપો આતા હૈ યહ પ્રદેશ કર્મ હૈ તથા જિસ કર્મ કા અનુમાવરુપ સે ષદન હોતા હૈ ષદ્ અનુમાય કર્મ હૈ ૨૨, ઇસ અનુમાય કર્મ કા યથા વદ્વરમ ષેદને મેં આતા હૈ યથા વદ્વા યુષ્કકર્મ જિતને કાલ કા આયુ ષાંષા હૈ ઉત્તને કાલ કે આયુ કા મોગના યહ પાત્ત ઘેઘ ઓર નારકિષો મેં હી હોતા હૈ કયોં કિ ષે જનપવત્સ્યાયુષ્ક હોતે હૈ । અસંકપાત્તર્પ ષી આયુ ષાલે મોગમૂમિ ષ તિર્યજ્ઞ ઓર મનુષ્ય ઘય ઉત્તમપુરુષ ઓર અચરમશ્ચરીરી જીવ કે સય નિયમ સે નિરુપક્રમ આયુષાલે હોતે હૈ ઓર સરુપાત્તર્પ ષી આયુ ષાલે તિર્યજ્ઞ, મનુષ્ય,

નશી અને નારક ગતિમાંથી ઉદ્ધતના (મરણ) પામને કે ઇપણ નારક કરી નરકપ્રતિમાં જતો નથી.

“દુષિહે ક્રમે ઇત્યાદિ પ્રદેશકર્મ અને અનુમાયકર્મના લેદથી કર્મના બે પ્રકાર કયા છે જે કર્મના પ્રદેશરુપ પુહલત્ત જ માત્ર વેદન કરવામાં આવે છે-યથાવદ્ વદ્વરમ વેદન કરવામાં આવતું નથી, તે કર્મને પ્રદેશકર્મ કહે છે. જે કર્મનું અનુમાવ રૂપે વેદન થાય છે તે કર્મને અનુમાવકર્મ કહે છે ॥ ૨૨ ॥ આ અનુમાવ કર્મનો યથાવદ્ રસ વેદવામાં આવે છે. યથાવદ્વાયુષ્કર્મ જેટલે જેટલા કાળનું અયુષ્ય બાકિ હોય જેટલા કાળના અયુષ્યને લેખવતું જે વાદ દેવો અને નારકોમાં સલાવી શકે છે કારણ કે તેઓ અનપવત્સ્યાયુષ્ક હોય છે. અસંકષાત્ત વર્ષના આયુષાળ્ય લેખમૂર્તિના મનુષ્ય તિર્યજ્ઞ અને ઉત્તમ પુરુષ તથા અચરમ શરીરી છવો નિશમશી જ નિરુપક્રમ આયુષાળ્ય હોય છે પરન્તુ સંકષાત્ત વર્ષના આયુષાળ્ય તિથ જ, મનુષ્ય, અનુષ્મ પુરુષ અને અચરમ

‘દોષ્ઠં’ ઇત્યાદિ—સંવર્તનં સવર્તનં, સ એવ સંવર્તકઃ—ઉપક્રમઃ ઇત્યર્થઃ, આયુષ્કસ્ય સંવર્તકઃ—આયુષ્કસવર્તક. સોપક્રમાયુરિત્યર્થઃ, સ ચ મનુષ્યાણાં પञ્ચેન્દ્રિયતિરસ્વાં ચ ભવતિ, સોપક્રમાયુષ્કત્વાત્તેષામ્ ૨૪ ॥ સૂ. ૨૧ ॥

તિઘાત કે અનુહૂલ સાનગ્રી મિલતી હૈ તો ડસ પર્યાય મેં આયુ કર્મ કા સ્થિતિઘાત કર સકતા હૈ । સ્થિતિ ઘાત હોને સે આયુ કમ હો જાતી હૈ ।

અપકર્ષણ કે ઇસ નિયમ કે અનુસાર સઘ જીવોં કી સુજ્યમાન આયુ કમ હો સકતી હૈ યહ સામાન્ય નિયમ હૈ—ઇસ નિયમ કે અનુસાર દેવાદિકોં કી ઓ સુજ્યમાન આયુ કમ હોની ડાહિયે—પરન્તુ ઇસ નિયમ મેં જો અપવાદ હૈ વહ યહાં કહા ગયા હૈ કિ ઉપવાદ જન્મ સે પૈદા હોને ડાલે દેવ ઓર નારકી, ભોગભૂમિયા જીવ, ઉત્તમપુરુષ ઓર ચરમશરીરી ઇન જીવોં કી સુજ્યમાન આયુ કમ નહીં હોતી હૈ જિતને કાલ કી આયુ કા વન્ધ ઇન્હોં ને ક્રિયા હૈ ડતની હી પૂરી આયુ કા ઘે ભોગ કરતે હૈ અર્થાત્ ઇનકી સુજ્યમાન આયુકા સ્થિતિઘાત નહીં હોના હૈ ૨૩ ઇસી સે યહ નિષ્કર્ષ નિકલ આતા હૈ કિ ઇનકે સિવાય ઓર સઘ જીવોં કી આયુ કમ હો સકતી હૈ યહી વાત ઇસ સૂત્ર પાઠ ડ્વારા કહતે હુઅ સૂત્રકાર કહતે હૈ “દોષ્ઠં” ઇત્યાદિ । ઉપક્રમ કા નામ સંવર્ત હૈ આયુષ્ક

ને તેને સ્થિતિઘાતને અનુક્રમ સામગ્રી મળી જાય છે, તે તે પર્યાયમાં અયુ કર્મને સ્થિતિઘાત તે કરી શકે છે, સ્થિતિઘાત થવાથી આયુ ઘટી જાય છે

અપકર્ષણના આ નિયમ અનુસાર બધાં જીવોતું જીવ્યમાન આયુ ન્યૂન થઈ શકે છે, આ સામાન્ય નિયમ છે આ નિયમોનુસાર તે દેવાદિકોતું જીવ્યમાન આયુ પણ ન્યૂન થવું જોઈએ. પરન્તુ તે નિયમમાં જે અપવાદ છે તેતું અહીં નીચે પ્રમાણે કથન કરવામાં આવ્યું છે—ઉપવાદ જન્મથી પેદા થનારા દેવ અને નારકી, ભોગભૂમિના જીવો, ઉત્તમ પુરુષો અને ચરમ-શરીરી જીવોતું જીવ્યમાન આયુ ઓછું થઈ શકતું નથી જેટલા કાળના આયુનો બંધ તેમણે કર્યો હોય છે એટલા પૂરેપૂરા અયુને તેઓ ભોગવે છે, એટલે કે તેમના જીવ્યમાન આયુનો સ્થિતિઘાત થતો નથી ૨૩ આ કથનપરથી આપણે એવા નિશ્ચયપર આવી શકીએ છીએ કે તેમના સિવાયના બધા જીવોના આયુમાં ઘટાડો થઈ શકે છે. એજ વાત સૂત્રકારે “દોષ્ઠં” ઇત્યાદિ સૂત્રો ડ્વારા પ્રકટ કરી છે. ઉપક્રમતું નામ સવર્ત છે. આયુષ્કનો જે ઉપક્રમ છે તે આયુષ્ક

मनुष्य व तिर्यञ्च ने प्रथमत्रिभाग में नरकायु का एक लाख वर्ष प्रमाण स्थिति वष किया अब यदि वह दूसरे त्रिभाग में नरकायु का दस लाख वर्षप्रमाण स्थितिबंध करता है तो उस समय वह प्रथमत्रिभाग में पांभी हुई स्थिति का उत्कर्षण कर सकता है—उत्कर्षण का यह मानाय नियम सब कर्मों पर लागू होता है।

मुज्यमान आयु का वष उसी पर्याय में होता नहीं, भतः उसका उत्कर्षण नहीं होता यह व्यवस्था तो निरपवाद बन जाती है किन्तु अपकर्षण के लिये वषकार का ऐसा कोई प्रतिबंध नहीं है वह कुछ अपवादों को छोड़कर कमी भी हो सकता है जिस पर्याय में आयु का वष किया है उस पर्याय में भी हो सकता है और जिस पर्याय में उसे भोग रहे हैं उस पर्याय में भी हो सकता है उदाहरणार्थ—किसी मनुष्य ने तिर्यं आयु का पूर्वकोटिप्रमाण स्थितिबंध किया। अब यदि उसे स्थितिघात के अनुकूल सामग्री जिस पर्याय में आयु का वष किया है उसी पर्याय में ही मिल जाती है तो उसी पर्याय में वह आयुर्कर्म का स्थितिघात कर सकता है और यदि जिस पर्याय में आयु को भोग रहा है उसमें स्थि-

माय छे धारे के ठाई मनुष्य अथवा तिर्यं प्रथम त्रिभागमें नरकायुमें एक लाख वर्षप्रमाण बंध कर्षे करे ले ते जीअ त्रिभाग इतिमान इस लाख वर्षप्रमाण नरकायुने स्थितिबंध करे तो ते समये ते प्रथम त्रिभागमें जाये पी स्थितिनु उत्कर्षण करी शके छे उत्कर्षणने आ धामा व निरम तथा कर्मोने बाध पठे छे

मुज्यमान आयुने अप लेअ पर्यायमें बने नथी, तेथी तेनु उत्कर्षण यतु नथी आ व्यवस्था तो निरपवाद (अपवाद वित्त निरमथी अ) लगी बत छे परन्तु अपकर्षणने भाटे अपकाजने लेयो कर्ष प्रतिबंध नथी ते केपलाअ अपवादोने पाठ करता जमे त्वाइ वष शके छे ले पर्यायमा आयुने अप कर्षे छे ते पर्यायमा पक्ष बध शके छे अने ले पर्यायमा तेने योगनी रखा केपले ते पर्यायमा पक्ष बध शके छे आपदा तरीके कर्ष मनुष्ये तिर्यं आयुने पूव कोटि प्रमाण स्थितिबंध कर्षे करे ले तेने स्थितिघातने भाटे अनुकूल सामग्री (ले पर्यायमा आयुने अप कर्षे केअ लेअ पर्यायमा) मणी लय तो लेअ पर्यायमा ते आयुर्कर्मने स्थितिघात करी शके छे, अने ले पर्यायमा आयुने ते योगनी रखा छे ते पर्यायमा अ

‘दोषं’ इत्यादि—संवर्तनं संवर्तः, स एव संवर्तकः—उपक्रमः इत्यर्थः, आयुष्कस्य संवर्तकः—आयुष्कसंवर्तकः सोपक्रमायुरित्यर्थः, स च मनुष्याणां पञ्चेन्द्रियतिश्वां च भवति, सोपक्रमायुष्कत्वात्तेषाम् २४ ॥ सू० २९ ॥

तिघात के अनुकूल सामग्री मिलती है तो उस पर्याय में आयु कर्म का स्थितिघात कर सकता है। स्थिति घात होने से आयु कम हो जाती है।

अपकर्षण के इस नियम के अनुसार सब जीवों की सुज्यमान आयु कम हो सकती है यह सामान्य नियम है—इस नियम के अनुसार देवादिकों की भी सुज्यमान आयु कम होनी चाहिये—परन्तु इस नियम में जो अपवाद है वह यहाँ कहा गया है कि उपपाहू जन्म से पैदा होने वाले देव और नारकी, भोगभूमिया जीव, उत्तमपुरुष और चरमशरीरी इन जीवों की सुज्यमान आयु कम नहीं होती है जितने काल की आयु का बन्ध इन्होंने किया है उतनी ही पूरी आयु का ये भोग करते हैं अर्थात् इनकी सुज्यमान आयुका स्थितिघात नहीं होता है २३ इसी से यह निष्कर्ष निकल आता है कि इनके सिवाय और सब जीवों की आयु कम हो सकती है यही बात इस सूत्र पाठ द्वारा कहते हुए सूत्रकार कहते हैं “दोषं” इत्यादि। उपक्रम का नाम संवर्त है आयुष्क

जे तेने स्थितिघातने अनुकूल सामग्री भणी नथ छे, ते ते पर्यायमां आयु कर्मना स्थितिघात ते करी शके छे, स्थितिघात थवाथी आयु घटी नथ छे

अपकर्षणना आ नियम अनुसार भधां एवेतुं बुज्यमान आयु न्यून थथ शके छे, आ सामान्य नियम छे आ नियमानुसार ते देवादिकेतुं बुज्यमान आयु पण न्यून थवु न्नेधये. परन्तु ते नियममां जे अपवाद छे तेतुं अर्ही नीचे प्रमाणे कथन करवामां आयु छे—उपपाद जन्मथी पैदा थनारा देव अने नारकी, भोगभूमिना एवे, उत्तम पुरुषे अने चरम—शरीरी एवेतुं बुज्यमान आयु ओछु थथ शकतुं नथी जेटला कागना आयुने भंध तेमले कथी डोय छे जेटला पूरेपूरा आयुने तेओ लोगवे छे, जेटले के तेमना बुज्यमान आयुने स्थितिघात थनो नथी २३ आ कथनपरथी आपले जेवा निश्चयपर आवी शक्ये छीजे के तेमना सिवायना भधा एवेना आयुमां घटाओ थथ शके छे. जेव वात सूत्रकारे “दोषं” इत्यादि सूत्रे द्वारा प्रकट करी छे. उपक्रमतुं नाम संवर्त छे. आयुष्कने जे उपक्रम छे ते आयुष्क

पर्यायाधिकारादेव नियतक्षेत्राभितत्त्वेन क्षेत्रापदेश्यान् पुद्गलपर्यायान् प्रतिपादयितुः क्षेत्रमस्तरणमाह—

मूर्ध्—जब्रुहीवे दीवं मदरस्त पञ्चयस्त उत्तरदाहिणेण दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्न नाइवट्ठति आयामविक्खमुच्चतोव्वेहसठाणपरिणाहेण त जहा भरहे च्चेव एरवण च्चेव । एव एण्ण अभिलावेण हनण च्चेव, हेरन्नवण च्चेव, हरिवासे च्चेव रम्मयवासे च्चेव । जब्रुहीवे दीवे मदरस्त पञ्चयस्त पुरत्थिमपच्चत्थिमेण दो खित्ता पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेस० जाव—त जहा—पुव्वविदेहे च्चेव अव रविदेहे च्चेव । जव्वमदरस्त पञ्चयस्त उत्तरदाहिणेण दो कुराओ पण्णत्ताओ बहुसमतुल्लाओ जाव तं जहा—देवकुरा च्चेव उत्तर कुरा च्चेव तत्थ ण दो महइमहालया महादुमा पण्णत्ता बहुस मतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्न णाइवट्ठति आयामविक्ख मुच्चतोव्वेहसठाणपरिणाहेण, त जहा—कूडसामली च्चेव जव्व च्चेव सुदसणा । तत्थ ण दो देवा महिद्विया जाव महासोक्खा पलिओवमट्ठिया परिवसत्ति, त जहा—गरुले च्चेव वेणुदेवे अणा ढिय च्चेव जब्रुहीवाहिवई ॥ सू० ३० ॥

का जो उपक्रम है वह आयुक्त संघर्षक है—यह सोपक्रमायुक्त आयुक्त संघर्षक मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यक्तोको होता है क्योंकि कि ये सोपक्रम आयुवाले भी होते हैं । २४ ॥ सू० २९ ॥

पर्यायाधिकार को लेकर ही अथ सूत्रकार नियतक्षेत्राभित होने के कारण क्षेत्र अपदेश्य पुद्गल पर्यायों को प्रतिपादन करने की इच्छा से

अवर्तकं छे ते सोपक्रमायुक्त आयुक्त संघर्षकं मनुष्यं जने पंचेन्द्रिय तिर्यक्  
क्षेत्रां ढोअं योके छे अरुणं के तेजो सोपक्रम आयुवाणं पञ्च ढोअ  
छे ॥ २४ ॥ ॥ सू० २९ ॥

पर्यायाधिकार आधी रखे छे, उवे सूत्रकार—नियत क्षेत्राभित ढोवाने  
कारणे—क्षेत्रापदेश्य पुद्गल पर्यायान् प्रतिपादन करवाना केतुधी सूत्र

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते बहु-  
समतुल्ये अविशेषे अनानात्वे अन्योन्यं नातिवर्त्तेते [आयामविष्कम्भोच्चत्वोद्वेध  
संस्थानपरिणाहेन, तद्यथा—भरतं चैव ऐरवतं चैव । एत्रमेतेनाभिलापेन हैमवत चैव  
हैरण्यवत चैव, हरिवर्षं चैव, रम्यकवर्षं चैव । जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य  
पूर्वपश्चिमेन द्वे क्षेत्रे प्रज्ञप्ते बहुसमतुल्ये अविशेषे यावत् तद्यथा—पूर्वविदेहश्चैव अपर-  
विदेहश्चैव । जम्बू मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन द्वौ कुरु प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ  
यावत् तद्यथा—देवकुरवश्चैव उत्तरकुरवश्चैव । तत्र खलु द्वौ महातिमदालयौ महाद्रुमौ  
प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं नातिवर्त्तेते आयामविष्कम्भोच्च-  
त्वोद्वेधसंस्थानपरिणाहेन, तद्यथा—कूटशालमलिश्चैव जम्बूश्चैव सुदर्शना । तत्र खलु  
द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् महासौख्यौ पलयोपमस्थितिकौ परिवसतः, तद्यथा—  
गरुडश्चैव वेणुदेवः अनादृतश्चैव जम्बूद्वीपाधिपतिः ॥ सू० ३० ॥

टीका—‘ जंबुद्वीपे ’ इत्यादि ।

मध्यजम्बूद्वीपे मेरुपर्वतरय उत्तरदक्षिणेन उत्तरदिशि दक्षिणदिशिचेत्यर्थः, द्वे  
वर्षे क्षेत्रे प्रज्ञप्ते । कीदृशे ? इत्याह—बहुसमतुल्ये—अत्यन्तसदृशे, अविशेषे—वैल-  
क्षण्यरहिते नगनगरनद्यादिकृतविशेषरहिते इत्यर्थः, अनानात्वे—नानात्वरहिते—अव-  
सर्पिण्यादिकृतायुरादिभावेदवर्जिते इत्यर्थः । ते द्वे अन्योन्यं—परस्परं नातिवर्त्तेते

क्षेत्रप्रकरण कहते हैं—‘ जंबुद्वीपे दीपे मंदरस्य पर्वतस्य ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—मध्यजंबूद्वीप में मेरुपर्वत की उत्तर और दक्षिणदिशा में  
क्रमशः दो क्षेत्र कहे गये हैं ये दोनों परस्पर में रचना में तुल्य हैं, विल-  
क्षणता रहित हैं—नग, नगर, और नदी आदिकों की जैसी रचना प्रमाण  
आकार आदि भरतक्षेत्र में है वैसी ही इन सब की रचना ऐरवत क्षेत्र  
में है ये दोनों नानात्व से रहित हैं—अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कालकृत जो  
आयु आदि की वृद्धि ह्रास रूप परिवर्तन है वह भी इन दोनों क्षेत्रों में

प्रकरणं निरूप्युं करे छे—“ जंबुद्वीपे दीपे मंदरस्य पर्वतस्य ” इत्यादि

टीकार्थ—मध्य जंबूद्वीपमा मेरु पर्वतनी उत्तर अने दक्षिण दिशां  
क्रमशः ये क्षेत्र ( भरत क्षेत्र अने औरवत क्षेत्र ) आवेला छे, ते अनेनी  
रचना अेकसरणी छे. अेकणीजनी रचनामा केध विलक्षणता नथी भरतक्षेत्रमां  
पर्वत, नगर, नदी वगेरेनी जेवी रचना, प्रमाण, आकार आदि छे, जेवी ज  
अे सौनी रचना वगेरे औरवत क्षेत्रमां पषु छे, ते अनेमां केध तक्षवत नथी.  
अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कालकृत आयु आदिनी वृद्धि अने ह्रासरूप परिवर्तन

पर्यायाधिकारादेव नियतक्षेत्राभितत्वेन क्षेत्रव्यपदेश्यान् पुद्गलपर्यायान् प्रतिपादयिषुः क्षेत्रमन्तरणमाह—

सूत्रम्—जबुदीवे दीवे मदरस्त पव्वयस्त उत्तरदाहिणेण दो वासा पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्न नाइवट्ठति आयामविक्खमुच्चतोव्वहेसटाणपरिणाहेण तं जहा भरहे चेव परवए चेव । एष एएण अमिलाषेण हनए चेव, हेरन्नवए चेव, हरिवासे चेव रम्मयवासे चेव । जबुदीवे दीवे मदरस्त पव्वयस्त पुरस्थिमपच्चत्थिमेण दो खित्ता पण्णत्ता बहुसमतुल्ला अविसेस० जाव—त जहा—पुव्वविदेहे चेव अवरविदेहे चेव । जबुमदरस्त पव्वयस्त उत्तरदाहिणेण दो कुराओ पण्णत्ताओ बहुसमतुल्लाओ जाव तं जहा—दवकुरा चेव उत्तर कुरा चेव तत्थ ण दो महइमहालया महाबुमा पण्णत्ता बहुस मतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्न णाइवट्ठति आयामविक्ख मुच्चतोव्वहेसटाणपरिणाहेण, त जहा—कूडसामली चेव जबु चेव सुदसणा । तत्थ ण दो देश महिइया जाव महासोफ्फा पलिओव्वमट्ठिइया परिवसति, त जहा—गरुले चेव वेणुदेवे अणा दिए चेव जबुदीवाहिवई ॥ सू० ३० ॥

का जो वपक्रम है यह आयुक्त संघर्षरु है—यह सोपक्रमायुक्त आयुक्त संघर्षरु मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यगोको होता है क्योंकि ये सोपक्रम आयुषाले भी होते हैं । २४ ॥ सू० २९ ॥

पर्यायाधिकार को लेकर ही भय सूत्रकार नियतक्षेत्राभित होने के कारण क्षेत्र व्यपदेश्य पुद्गल पर्यायों को प्रतिपादन करने की इच्छा से

सर्वतः ए ते सोपक्रमायुक्त आयुक्त सर्वतः मनुष्य जने पञ्चेन्द्रिय तिर्य  
धामां डोअं शके ए, वरुण के तेजोः सोपक्रम आयुषाला पवु डोअ  
ए ॥ २४ ॥ ॥ सू० २९ ॥

पर्यायाधिकार का ही शब्द है, वने सूत्रकार-नियत क्षेत्राभित डोअने  
कारण - क्षेत्रव्यपदेश्य पुद्गल पर्यायों प्रतिपादन करने की इच्छा से

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते बहु-  
समतुल्ये अविशेषे अनानात्वे अन्योन्यं नातिवर्त्तेते । आयामविष्कम्भोच्चत्वोद्धेध  
संस्थानपरिणाहेन, तद्यथा—भरतं चैव ऐरवतं चैव । एवमेतेनाभिलापेन हैमवतं चैव  
हैरण्यवतं चैव, हरिश्चर्यं चैव, रम्यकवर्षं चैव । जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य  
पूर्वपश्चिमेन द्वे क्षेत्रे प्रज्ञप्ते बहुसमतुल्ये अविशेषे यावत् तद्यथा—पूर्वविदेहश्चैव अपर-  
विदेहश्चैव । जम्बू मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन द्वौ कुरु प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ  
यावत् तद्यथा—देवकुरवश्चैव उत्तरकुरवश्चैव । तत्र खलु द्वौ महातिमहालयौ महाद्रुमौ  
प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं नातिवर्त्तेते आयामविष्कम्भोच्च-  
त्वोद्धेधसंस्थानपरिणाहेन, तद्यथा—कूटशालमलिश्चैव जम्बूश्चैव सुदर्शनां । तत्र खलु  
द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् महासौरुयौ पलयोपमस्थिनिकौ परिवसतः, तद्यथा—  
गरुडश्चैव वेणुदेवः अनादृतश्चैव जम्बूद्वीपाधिपतिः ॥ सू० ३० ॥

टीका—‘ जंबुद्वीपे ’ इत्यादि ।

मध्यजम्बूद्वीपे मेरुपर्वतरय उत्तरदक्षिणेन उत्तरदिशि दक्षिणदिशिचेत्यर्थः, द्वे  
वर्षे क्षेत्रे प्रज्ञप्ते । कीदृशे ? इत्याह—बहुसमतुल्ये—अत्यन्तमदृशे, अविशेषे—वैल-  
क्षण्यरहिते नगनगरनद्यादिकृतविशेषरहिते इत्यर्थः, अनानात्वे—नानात्वरहिते—अव-  
सर्पिण्यादिकृतायुरादिभारभेदवर्जिते इत्यर्थः । ते द्वे अन्योन्यं—परस्परं नातिवर्त्तेते

क्षेत्रप्रकरण कहते हैं—‘ जंबुद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—मध्यजंबूद्वीप में मेरुपर्वत की उत्तर और दक्षिणदिशा में  
क्रमशः दो क्षेत्र कहे गये हैं ये दोनों परस्पर में रचना में तुल्य हैं, विल-  
क्षणता रहित हैं—नग, नगर, और नदी आदिकों की जैसी रचना प्रमाण  
आकार आदि भरतक्षेत्र में है वैसी ही इन सब की रचना ऐरवत क्षेत्र  
में है ये दोनों नानात्व से रहित हैं—अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कालकृत जो  
आयु आदि की वृद्धि ह्रास रूप परिवर्तन है वह भी इन दोनों क्षेत्रों में

प्रकरणतुं निष्पद्यते करे छे—“ जंबुद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य ” इत्यादि

टीकार्थ—मध्य जंबूद्वीपमा मेरु पर्वतनी उत्तर अने दक्षिण दिशां  
क्रमशः ये क्षेत्र ( भरत क्षेत्र अने औरवत क्षेत्र ) आवेला छे, ते अन्नेनी  
रचना अेकसरणी छे. अेकभीअनी रचनांमां डोअ विलक्षणता नथी भरतक्षेत्रमां  
पर्वत, नगर, नदी वगेरेनी अेवी रचना, प्रमाण, आकार आदि छे, अेवी अ  
अे सौनी रचना वगेरे औरवत क्षेत्रमां पद्य छे, ते अन्नेमां डोअ तक्षवत नथी.  
अवसर्पिणी उत्सर्पिणी कालकृत आयु आदिनी वृद्धि अने ह्रासइय परिपवर्तन



इतरेतरं नातिक्रामत इत्यर्थः । कैरित्याह-आयामेन-दैर्घ्येण विष्कम्भेण-पृथक्त्वेन, उच्चत्वेन-ऊर्ध्वत्वेन, उद्वेने-गाम्भीर्येण, संस्थानेन - भारोपित्तन्नाधनुराकाररूपेण, परिणाहेन-परिधिमेति । अत्रैतेषां द्वैर्द्वैकवशावः । तथा-नाम्ना ते षण् यथा-मरुतं-मातृश्रमम्, ऐश्वर्यं च-पेरवतक्षेत्रम् । एवमनेन अभिलाषेण-उच्चारणेन-हंसवत् हेरप्यवत् च क्षेत्रम्, तथा इरियर्षि रम्यकवर्षि च क्षेत्रे विद्येयम् । वैशङ्करुपु कूटश्चात्मकिर्नामाह्वसः, उच्यतेरुपु च जम्बूनामाह्वसः, अस्यापरनाम सुदर्शनेति । तत्र-तस्मिन् इक्ष्मे द्वौ देवौ परिवसतः । सौ देवौ कीदृशौ ? इत्याह-महाद्विकौ यावत् महासौख्यौ । अत्र-यावच्छब्देन 'महाद्युतिकौ महानुभागौ महा

આપસ મેં એકસા હૈં ડસમેં કોઈ મેડ નહીં હૈં । ઇમ્પાઈ મેં ઓર પોઈઈ મેં ઘાનોં ક્ષેત્ર પરાપર હૈં । હીનાધિક નહીં હૈં । હમી પ્રકાર સે ઠુપાઈ મેં, ગાંભીર્ય મેં, સસ્થાન મેં-મારોપિત્તન્ના ધનુષાકાર જૈસી આકૃતિ મેં ઓર પરિધિ મેં મીં યે દોનોં ક્ષેત્ર પરસ્પર મેં સમાન હૈં । "મારહે ચેવ પેરવવ ચેવ" હસ પાઠ સે હ-હીં ઘોનોં પરસ્પર મેં સમાનતા વાલે ક્ષેત્રોં કે નામ પ્રકટ કિયે ગયે હૈં । "એવં એવળ અભિલાષેણ હેમવવ ચેવ હેરન્નવવ ચેવ" હ્યાદિ હસી પ્રકાર કે હસ કથન સે હેમવન ઓર હેરવવવતક્ષેત્ર, હરે વર્ષ ઓર રમ્યકવર્ષ ક્ષેત્ર કે સમ્બંધ મેં મીં કથન સમજના વાહિયે વેદ્યકુરુ મેં કૂટ શાસ્ત્રી નામકા વૃક્ષ હૈં ઓગ ઉત્તરકુરુમે જમ્બૂ નામકા વૃક્ષ હૈં હમકા વૃસરા નામ સુદર્શના મીં હૈં હન વૃક્ષોં પર ઘોં વેવ રહતે હૈં યે વેવ મહા ક્ષદ્ધિ વાલે ઓર મહાનુસવાલે હૈં યદા યાવત્ શબ્દ સે "મહાદ્યુતિકૌ, મહાનુભાગૌ મહાવલૌ, મહાવશસૌ" હન વર્ણોં કા મહળ

પણ તે બન્ને ક્ષેત્રોમાં સમાન છે બન્ને ક્ષેત્રોની લક્ષણ અને પડોળાઈ પણ સરખી છે-તેમાં કોઈ ભેદ નથી. એજ પ્રમાણે ઉત્તરમાં. ગાંભીર્યમાં સસ્થાનમાં (મારોપિત્તન્ના ધનુષાકાર આકૃતિમાં) અને પરિધિમાં પણ તે બન્ને ક્ષેત્રો સમાન છે. 'મારહે ચેવ પરવવ ચેવ' આ સૂત્રપાઠ દ્વારા સૂત્ર ઓર પરસ્પરમાં સમાનતાવાળા તે બન્ને ક્ષેત્રોનાં નામ "અસ્તમેત્ર અને ઐશ્વર્યવત ક્ષેત્ર પ્રકટ થયાં છે. પરં પણ જ અભિલાષર્ષે હેમવવ ચેવ હેરન્નવવ ચેવ" ઇત્યાદિ—

આ પ્રકારના કથન દ્વારા હેમવત અને હેરવવવત ક્ષેત્રમાં પણ સમાનતા સમજવી. દરિયા અને રમ્યકવવ ક્ષેત્રમાં પણ સમાનતા સમજવી. રેવકુરુમાં 'કૂ' શાસ્ત્રી નામનું વૃક્ષ છે અને ઉત્તરકુરુમાં જમ્બૂ નામનું વૃક્ષ છે તેનું બીજું નામ શુદ્ધના પણ છે તે વૃક્ષોં લે રેવ રહે છે તે બન્ને રેવો મહા ક્ષદ્ધિવાળા, મહા વૃતિવાળા મહાનુભાગવાળા, મહા બળવાળા, મહા

बलौ महायशसौ ' इति संग्राह्यम् । तत्र महर्द्धिको-प्रभूतविमानादिसम्पत्तिशालिनौ  
महाद्युतिकौ प्रकृष्टशरीराभरणादि कान्तियुक्तौ, महानुभागौ-वैक्रियकरणाद्यचि-  
न्त्यशक्तिमन्तौ, महाबलौ-विशिष्टशरीरसामर्थ्यवन्तौ, महायशसौ-विस्तीर्णश्लाघा-  
संपन्नौ, महामौख्यौ-प्रभूतशातवेदनीयजनितानन्दभाजौ, इति । तयोर्नामाह—  
गरुडः सुपर्णकुमारजातीयो वेणुदेवः-वेणुदेवनामा देवः कूटशाल्मलिवृक्षनिवासी ।  
तथा अनादृतः-अनादृतनामादेवः जम्बूसुदर्शनावृक्षनिवासी जम्बूद्वीपाधिपतिः ।  
शेषपदव्याख्या सुगमा ॥ सू० ३० ॥

हुआ है महर्द्धिक पद से यह प्रकट किया गया है कि ये दोनों देव  
प्रभूत विमानादि रूप सम्पत्तिशाली है महाद्युतिक पद से यह प्रकट  
किया गया है कि ये दोनों देव प्रकृष्ट शरीराभरणादि की कान्ति से युक्त  
है महानुभाग शब्द से यह प्रकट किया गया है कि ये दोनों देव वैक्रिय  
करने आदि की अचिन्त्य शक्ति वाले हैं महाबल शब्द से यह कहा  
गया है कि ये दोनों देव विशिष्ट शरीर सामर्थ्य वाले हैं और महायश  
शब्दसे यह प्रकट किया गया है कि ये दोनों देव विस्तीर्ण श्लाघा प्रशंसा  
से संपन्न हैं तथा महामौख्य शब्दसे यह प्रकट किया गया है कि दोनों देव  
प्रभूत शातावेदनीय जन्य आनन्दसे युक्त हैं इनके नाम हैं गरुडवेणुदेव  
और अनादृतदेव गरुडवेणुदेव सुपर्णकुमार जातिका देव है और यह कूट  
शाल्मलि वृक्ष पर रहता है तथा अनादृत देव जम्बूसुदर्शना वृक्ष पर  
रहता है और जम्बूद्वीपका अधिपति है शेषपदोंकीव्याख्या सुगम है ॥ ३० ॥

यश संपन्नाने मडा सुपर्णपन्न छे. महर्द्धिक ( मडा ऋद्धिवाणा ) पदना  
प्रयोग द्वारा ये वात प्रकट करवामां आवी छे के ते अन्ने देवे विमानादि रूप  
विपुल संपत्तिवाणा छे मडाद्युतिक पदना प्रयोग द्वारा ये वात प्रकट करवामां  
आवी छे के ते अन्ने देव अधिक शरीराभरण आदिनी कान्तिथी युक्त छे  
महानुभाग शब्द द्वारा ये वात प्रकट करवामां आवी छे के ते अन्ने देवे  
विकुर्षणा आदि करवानी अचिन्त्य शक्तिवाणा छे मडाबल शब्द द्वारा ये  
वात प्रकट करवामां आवी छे के ते अन्ने देवे विशिष्ट शरीर सामर्थ्यवाणा  
छे. महायश शब्द द्वारा ये वात प्रकट करवामां आवी छे के ते ये विस्तीर्ण  
श्लाघा ( प्रशंसा ) थी संपन्न छे तथा महामौख्य शब्द द्वारा ये वात प्रकट  
करवामां आवी छे के ते अन्ने देवे शातावेदनीय जन्य प्रभूत आनन्दथी युक्त  
छे तेमना नाम नीचे प्रमाणे छे-गरुड वेणुदेव अने अनादृत देव, गरुड  
वेणुदेव सुपर्णकुमार जातिना देव छे अने ते आ इट शाल्मलि वृक्षपर रहे  
छे तथा अनादृत देव जम्बूसुदर्शना वृक्षपर रहे छे अने जम्बूद्वीपना अधि-  
पति छे, आदीना पदानी व्याख्या सरण छे ॥ सू. ३० ॥

मूलम्—जबू मदरस्त पव्वयस्सय उत्तरदाहिणेण दो वास  
हरपव्वया पण्णत्ता, वहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता अन्नमन्न  
नाइवट्ठति आयामविक्खमुच्चतोव्वेह सठाणपरिणाहेण, त जहा  
चुल्लहिमवते चेव सिहरी चेव । एव महाहिमवते चेव रुपी  
चेव । एव णिसडे चेव णीलवते चेव । जबू मदरस्त पव्वयस्स  
उत्तरदाहिणेण हेमधपरणवपसु वासेसु दो वट्ठवेयद्वपव्वया  
पण्णत्ता वहुसमतुल्ला अविसेसमणाणत्ता जाव त जहा—सहा  
वाई चेव वियहावाई चेव । तत्थ ण दो देवा महिच्चिया जाव  
पलिओषमट्ठिइया परिवसति त जहा—साई चेव पभासे चेव ।  
जबूमदरस्त पव्वयस्स उत्तरदाहिणेण हरिवासरम्मपसु वासेसु  
दो वट्ठवेयद्वपव्वया पण्णत्ता वहुसम० जाव त जहा—गधावाई चेव  
मालवतपरियाए चेव । तत्थ ण दो देवा महिच्चिया जाव पलिओष  
मट्ठिइया परिवसति, त जहा—अरुणे चेव पउमे चेव । जबू मदरस्त  
पव्वयस्स दाहिणेण वेवकुराप पुवावरे पासे एत्थ ण आसक्खधग  
सरिसा अद्धचदसठाणसठिया दोषक्खारपव्वया पण्णत्ता वहुसम  
जाव त जहा—सोमणसे चेव विज्जुप्पभये चेवा जबूमदरस्त पव्वय  
स्स उत्तरेण उत्तरकुराप पुव्वावरे पासे एत्थ ण आसक्खधगसरिसा  
अद्धचदसठाणसठिया दो वक्खरपव्वया पण्णत्ता वहुसमतुल्ला  
जाव त जहा—गंधमायणे चेव मालवते चेव । जबूमदरस्त पव्व  
यस्स उत्तरदाहिणेण दो दीयवेयद्वपव्वया पण्णत्ता वहुसमतुल्ला  
जाव त जहा—भारहे चेव दीहवेयद्वे चेव । एरवण चेव दीह

वेयडूचेव । भारहेणं दीहवेयडू दो गुहाओ पणत्ताओ बहुसमतु-  
 ह्हाओ अविसेसमणाणत्ताओ अन्नमन्नं णाड्वटंति आयामवि-  
 वखंभुच्चत्तोवेहसंठाणपरिणाहेणं तं जहा—तिमिसगुहा चेव खंड-  
 गप्पवायगुहा चेव । तत्थ णं दो देवा महिड्डिया जाव पलिओ-  
 वमट्टिइया परिवसंति, तं जहा—कयमालए चेव नट्टमालए चेव ।  
 एरावएणं दोहवेयडू दो गुहाओ पणत्ताओ जाव तं जहा—  
 कयमालए चेव नट्टमालए चेव । जंबूमंदरस्स पव्वयस्स दाहि-  
 णेणं चुल्लहिमवंतवासहरपव्वए दो कूडा पणत्ता बहुसमतुह्हा  
 जाव विवखंभुच्चत्तोवेहसंठाणपरिणाहेणं, तं जहा—चुल्लहिमवंत-  
 कूडे चेव, वेसमणकूडे चेव । जंबूमंदरस्स दाहिणेणं महाहिम-  
 वंते वासहरपव्वए दो कूडा पणत्ता बहुसम० जाव तं जहा-  
 महाहिमवंतकूडे चेव वेरुलियकूडे चेव । एवं निसडे वासहर-  
 पव्वए दो कूडा पणत्ता बहुसम० जाव तं जहा--निसडकूडे  
 चेव रुयगप्पमे चेव । जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं नीलवंते  
 वासहरपव्वए दो कूडा पणत्ता बहुसम० जाव तं जहा--नील-  
 वंतकूडे चेव उवदंसणकूडे चेव । एवं रुप्पिमि वासहरपव्वए दो  
 कूडा पणत्ता बहुसम० जाव तं जहा--रुप्पिकूडे चेव मणिकंचण  
 कूडे चेव । एवं सिहरंमि वासहरपव्वए दो कूडा पणत्ता बहु-  
 सम० जाव तं जहा--सिहरिकूडे चेव तिगिळकूडे चेव ॥सू०३१॥

छाया—जम्बूमंदरस्य पर्वतस्य च उत्तरदिशिणेन द्वौ वर्षधरपर्वतौ प्रज्ञप्तौ बहु-  
 समतुल्यौ अविशेषौ अनानात्तौ अन्योन्यं नातिवर्त्तेते आयामविष्कम्भोच्चत्तोद्वेध-  
 संस्थानपरिणाहेन, तद्यथा—चुल्लहिमवान् चैव शिखरी चैव । एवं महाहिमवान्

चैव रुक्मी चैव । एवं निपचञ्चैव । अम्वूमन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन ईश्वरी  
रुण्यवतपोर्वप यो ईश्वरी वृत्तवैताडपर्वतौ महती बहुसमतुल्यो अविशयो अनानास्तौ  
यावत् तद्यथा-शुद्धापाठी चैव विकृतापाठी चैव । तत्र खलु इति द्वौ महर्दिकौ

‘ जंघु मन्दरस्त पञ्चदस्त ’ इत्यादि ।

छापार्थ—मध्य जंघुलीप में जो मन्दर-सुमेरु नाम का पर्वत है उसकी  
उत्तर दिशा की ओर और दक्षिण दिशा की ओर क्रमशः दो पर्वत  
पर्वत कहे गये हैं । ये दोनों पर्वत परस्परमस्तुल्य हैं । विलक्षणतासे रहित  
हैं । नानात्वसे भेदसे रहित हैं । लपाई और चौडाईमें, उचना और लंबेप  
(गोहराई)से संस्थान एव परिणाह (विशालता)-परिधिसे ये दोनों परस्पर में  
एक दूसरेसे भिन्न नहीं हैं । इन दोनों पर्वतोंका नाम है-सुल्लहिमवान् और  
शिखरी इनमें दक्षिणदिशाकी ओर सुल्लहिमवान् पर्वत है और उत्तरदिशा  
की ओर शिखरी पर्वत है इसी प्रकार से दक्षिणदिशा की ओर महा  
हिमवान् पर्वत और उत्तरदिशा की ओर रुक्मी पर्वत है इसी प्रकार से  
निपच और नील हैं । इसी प्रकार से मध्य जंघुलीप के सुमेरु पर्वत की  
उत्तरदक्षिण दिशा की ओर ईश्वरी और रुण्यवत क्षेत्रों के दो वृत्त  
वैताडप पर्वत कहे गये हैं । ये दोनों वृत्तवैताडपपर्वत भी परस्परमस्तुल्य,  
अविशेष और भेदरहित हैं यावत् आघात विष्कम्भ की अपेक्षा, उंचाई

“ नभूररस पञ्चदस्त ” इत्यादि—

टीका—मध्य जंघुलीपमां के मन्दर (सुमेरु) नामको पर्वत के  
तेनी उत्तर दिशा तरफ रुक्मी के पर्वत पर्वतो आवेलां के तेने पर्वतो  
खुलां सप्तदश के तेने विलक्षणता भी रहित के तेमनी वन्दे कोषपु  
प्रकारको तक्षावत नहीं लभाई, पडोगाई उभाई, उद्वेध, अस्थान जने परि  
धिनी अपेक्षाने ते जन्नेमां कोष निन्नता नहीं तेमनी नाम म्य प्रभावे  
के—(१) सुल्लहिमवान् जने शिखरी सुल्लहिमवान् पर्वत मन्दर पर्वतनी  
दक्षिणमां के जने शिखरी पर्वत मन्दर पर्वतनी उत्तरे के जेव प्रभावे  
दक्षिण दिशा तरफ महा हिमवान् पर्वत जने उत्तर दिशा तरफ रुक्मी पर्वत  
के जेव प्रभावे निपच जने नील पर्वत पञ्च आवेलां के जेव प्रभावे  
मध्य जंघुलीपना सुमेरु पर्वतनी उत्तर दक्षिण दिशामां संभवत जने रुण्यवत  
क्षेत्राना के वृत्तवैताडप (वृत्त केटके जेज आकार) पर्वतो पञ्च आवेलांके  
ते जन्ने वृत्तवैताडप पर्वतो पञ्च बहु समस्तुल्य अविशेष (विशेषता रहित)  
जने भेदरहित के तेमनी लभाई, पडोगाई, उद्वेध, (उंचाई) अस्थान

यावत् पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तद्यथा—स्वाती चैव प्रभासश्चैव । जम्बूमन्द-  
रस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन हरिवर्षरम्यकर्षयोर्द्वौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ प्रज्ञप्तौ  
बहुसम० यावत् तद्यथा—गन्धापाती चैव माल्यवत्पर्यायश्चैव । तत्र खलु द्वौ देवौ  
महर्द्धिकौ यावत् पल्योपमस्थितिकौ परिवसतः, तद्यथा—अरुणश्चैव पद्मश्चैव ।  
जम्बूमन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन देवकुरुणां पूर्वापरस्मिन् पार्श्वे, अत्र खलु अश्व-  
स्कन्धकसदृशौ अर्द्धचन्द्र संस्थानसंस्थितौ द्वौ वक्षस्कारपर्वतौ प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ

की अपेक्षा, उद्धेध की अपेक्षा, संस्थान और परिणाह की अपेक्षा ये  
दोनों परस्पर में एक दूसरे से बढ कर नहीं हैं अन्न नहीं हैं । किन्तु  
एक जैसे ही है । इनका नाम शब्दापाती और विकटापाती है । इनमें दो  
देव रहते हैं । ये दोनों देव महती ऋद्धि वाले यावत् पल्योपम की स्थि-  
तिवाले हैं । इन देवों के नाम स्वाती और प्रभास हैं । इसी प्रकार मध्य  
जंबूद्वीप के सुमेरु पर्वत की उत्तर और दक्षिणदिशा में क्रमशः वर्तमान  
हरिवर्ष एवं रम्यकर्ष में दो वृत्तवैताढ्य पर्वत हे ये भी बहुसम आदि  
विशेषणों वाले हैं । इनके नाम हैं गन्धापाती और माल्यवत्पर्याय इनमें  
भी दो देव रहते हैं ये भी परस्पर में महर्द्धिक आदि विशेषणों वाले हैं  
इनकी भी स्थिति एक पल्योपम की है इनके नाम अरुण और पद्म हैं ।  
जंबूद्वीप के सुमेरु पर्वत की दक्षिणदिशा में देवकुरु के पूर्व और पश्चिम  
पार्श्व भाग में अश्वस्कन्ध के जैसे अर्द्धचन्द्राकार दो वक्षस्कार पर्वत कहे  
गये हैं ये दोनों पर्वत बहुसमतुल्य आदि विशेषणों वाले हैं इनके नाम

अने परिधिनी अपेक्षाये तेमनी वर्ये डे.छ ले.ढ नथी, ते आभतोमा ते अन्ने  
समानञ्छे तेमना नाम शब्दापाती अने विकटापाती छे, तेमा जे देव रडे  
छे. ते अन्ने देवे महाऋद्धि आदिथी युक्त छे अने पल्योपमनी स्थितिवाणा  
छे. ते देवाना नाम अनुकमे स्वाती अने प्रभास छे

अञ्च प्रभाषे मध्य जंबूद्वीपना सुमेरु पर्वतनी उत्तर अने दक्षिण  
दिशां आवेला हरिवर्ष अने रम्यकर्षमा पणु जे वृत्तवैताढ्य पर्वतो छे  
तेयो पणु बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणवाणा छे. तेमना नाम गन्धापाती  
अने माल्यवत्पर्याय छे तेमा जे देव रडे छे ते अन्ने देवे पणु महर्द्धिक  
आदि पूर्वोक्त विशेषणवाणा छे तेमनी स्थिति पणु अेक पल्योपमनी छे  
तेमना नाम आ प्रभाषे छे—(१) अरुण अने (२) पद्म

जंबूद्वीपना सुमेरु पर्वतनी दक्षिण दिशां देवकुरुना पूर्व अने पश्चिम  
पार्श्व भागमा अश्वस्कन्धना जेवा अर्द्धचन्द्राकार जे वक्षस्कार पर्वतो आवेलां

યાવત્ તથયા-સૌમનસસ્યૈવ વિદ્યુત્પમસ્યૈવ । ઝમ્પુમન્દ્રસ્ય પર્વતસ્ય ઉત્તરેણ ઉત્તર  
 કુસ્પર્ગા પૂર્વાપરસ્મિન્ પાર્શ્વે, અથ સ્વહ્રુઅશ્વસ્કન્ધકસદશ્ચી અર્દ્ધચન્દ્રસંસ્થાનસસ્યિતી  
 દ્વી વસસ્કારપર્વતી પ્રશ્નતી મહુસમતુલ્યૌ યાવત્-તથયા-ગન્ધમાદનસ્યૈવ માલ્પયાન  
 વૈવ । ઝમ્પુમન્દ્રસ્ય પર્વતસ્ય ઉત્તરદક્ષિણેન દ્વી દીર્ઘવૈતાહયપર્વતી પ્રશ્નતી મહુસ  
 મતુલ્યૌ યાવત્ તથયા-મારતસ્યૈવ દીર્ઘવૈતાહયઃ, પેરવતસ્યૈવ દીર્ઘવૈતાહયસ્યૈવ ।  
 મારતે સ્વહ્રુ દીર્ઘવૈતાહયે દે ગુદે પ્રશ્નતે મહુસમતુલ્યે અવિશેષે અનાનાત્સે અન્યોન્ય  
 નાતિવર્ષેત આયામવિષ્કમ્બોચ્ચત્રોદ્દેપસંસ્થાનપરિણાદેન, તથયા-તમિસ્રગુફા

સૌમનસ ઓર વિદ્યુત્પમ છે । જન્મ । મદર-સુમેરુકી ઉત્તરવિશામે ઉત્તર  
 કુરુ કે પૂર્વ ઓર પશ્ચિમ પાર્શ્વભાગ મેં અશ્વસ્કન્ધ કે જૈસે અર્દ્ધચન્દ્રાકાર  
 દો ઘસ્ટસ્કાર પર્વત છે, યે દોનોં પર્વત મહુસમ આવિ વિશેષનોં ઘાલે છે ।  
 હનકે નામ ગન્ધમાદન ઓર માલ્પયાન છે । હસી પ્રકાર સે જન્મ મન્દર-  
 સુમેરુ કી ઉત્તરદક્ષિણ વિશા કી ઓર દો દીર્ઘ વૈતાહય પર્વત કહે ગયે  
 છે યે દોનોં પર્વત મી મહુસમ આવિ વિશેષનોં ઘાલે છે । આવિ પદ સે  
 યહાં “ અવિશેષ, અનાનાત્સ, આયામ, વિષ્કમ્બ કી અપેક્ષા સમા  
 નતા, ઓર ઉચ્ચતા, સદ્ધેય, સંસ્થાન ઓર પરિણાહ કી અપેક્ષા મી  
 સમાનતા પ્રહ્ણ કી ગઈ છે હન દો દીર્ઘ વૈતાહયપર્વતોં કે નામ મરતદીર્ઘ  
 વૈતાહય ઓર પેરવતદીર્ઘવૈતાહય છે । મરતદીર્ઘવૈતાહય પર્વત મેં દો ગુફાઈ  
 છે જો મહુસમ આવિ વિશેષનોં ઘાલી છે હનકે નામ તમિસ્રાગુફા ઓર

૭ તેમનાં નામ સૌમનસ અને વિદ્યુત્પમ છે તે બન્ને પવતો પણ બહુ સમ  
 આદિ પૂર્વોક્ત વિશેષલોચી સપત્ત છે જન્મુદીપતા મુમેરુ પવતની ઉત્તર  
 વિશામાં ઉત્તર કુરુતા પૂવ અને પશ્ચિમ તરફના ભાગેમાં અશ્વસ્કન્ધના બેમાં  
 અશ્વચન્દ્રાકારના બે વક્ષસ્કાર પર્વતો આવેલાં છે, તેઓ પણ બહુસમ આદિ  
 પૂર્વોક્ત વિશેષલોચાગા છે તેમનાં નામ ગન્ધમાદન અને માલ્પયાન છે

જે પ્રમાણે જન્મુદીપતા મુમેરુની ઉત્તર-દક્ષિણ વિશા તરફ બે દીર્ઘ  
 વૈતાહય પર્વત ઠહ્યાં છે તે બન્ને પવતો પણ બહુ સમ આદિ વિશેષલોચાગા  
 છે આદિ પદથી અહીં એ પ્રકર કરવામાં આનુ છે કે તેઓમાં જેક બીજા  
 કરતાં કોઇ વિશેષના અથવા વિવિધતા નથી. જગાઈ, પહોગાઈ ઉચાઈ ઉદ્ધેપ,  
 સસ્થાન અને પરિધિની અપેક્ષાએ પણ તે બન્નેમાં સમાનતા રહેલી છે  
 તેમનાં નામ નીચે પ્રમાણે છે-(૧) મરત દીર્ઘ વૈતાહય અને (૨) પેરવત દીર્ઘ  
 વૈતાહય. મરત દીર્ઘ વૈતાહયમાં બે શુદ્ધાઓ છે તે બન્ને શુદ્ધાઓ બહુસમ  
 આદિ વિશેષલોચાગી છે તેમનાં નામ આ પ્રમાણે છે-તમિસ્રા શુદ્ધા અને

खण्डकप्रपातागुहा चैव । तत्र खलु द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत् पल्योपमस्थितिकौ  
 रवसतः, तद्यथा-कृतमाल्यकश्चैव नृत्यमाल्यकश्चैव । ऐरवते खलु दीर्घवैताढ्ये  
 गुहे प्रज्ञप्ते यावत्-तद्यथा-कृतमाल्यकश्चैव नृत्यमाल्यकश्चैव । जम्बूमंदरस्य  
 तस्य दक्षिणेन चुल्लहिमवति वर्षधरपर्वते द्वौ कूटौ प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ यावत्  
 ष्कम्भोच्चत्वो द्वेषसंस्थानपरिणाहेन, तद्यथा चुल्लहिमवत्कूटश्चैव वैश्रवणकूटश्चैव ।  
 जम्बूमंदरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन महाहिमवति वर्षधरपर्वते द्वौ कूटौ प्रज्ञप्तौ बहु-  
 सम० यावत्-तद्यथा-महाहिमवत्कूटश्चैव वैदूर्यकूटश्चैव । एव निषधे वर्षधरपर्वते  
 कूटौ प्रज्ञप्तौ बहुसम० यावत्-तद्यथा-निषधकूटश्चैव रुचकप्रभश्च । जम्बू

खण्डकप्रपातगुफा है । इन में दो महाऋद्धि आदि विशेषणों वाले देव  
 होते हैं । इनकी स्थिति भी एक पल्योपम की है इन देवों के नाम कृत-  
 माल्यक और नृत्यमाल्यक हैं । जम्बू मंदर-सुमेरु की दक्षिण दिशामें जो  
 चुल्लहिमवान् पर्वत है उस पर दो कूट कहे गये हैं ये दोनों कूट भी  
 बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाले हैं विष्कम्भ, उच्चता आदि में ये  
 दोनों कूट समान हैं । इनके नाम चुल्लहिमवत्कूट और वैश्रवणकूट  
 है । जम्बू मंदर की दक्षिणदिशा में जो महाहिमवान् पर्वत है उस पर  
 भी दो कूट कहे गये हैं इन पर्वतों को जो वर्षधर कहा गया है उसका  
 कारण यह है कि ये क्षेत्रों का विभाग करते हैं महाहिमवान् पर्वत के  
 दोनों कूट भी बहुसम आदि विशेषणों वाले हैं इन कूटों के नाम महा-  
 हिमवत्कूट और वैदूर्यकूट है इसी प्रकार निषध पर्वत पर भी दो कूट

खण्डकप्रपात गुहा, ते गुहाभ्यां महर्द्धिक आदि विशेषणोवाणा ये देव रडे  
 छे. तेमनी स्थिति पण्य अेक पल्योपमनी छे. तेमना नाम कृतमाल्यक  
 अने नृत्यमाल्यक छे.

जम्बूद्वीपना मंदर (सुमेरु) नी दक्षिण दिशामां ये चुल्लहिमवान्  
 पर्वत छे, तेना उपर ये कूट आवेलां छे ते अन्ने कूट पण्य बहुसम आदि  
 विशेषणोथी युक्त छे. ढांभां, पडोणां, उंचां आदिमां पण्य तेओ सरभां  
 छे. तेमना नाम आ प्रमाणे छे-(१) चुल्लहिमवत्कूट अने (२) वैश्रवणकूट.

जम्बूद्वीपना मंदर पर्वतनी दक्षिण दिशामां ये महाहिमवान् पर्वत छे,  
 तेनी उपर पण्य ये कूट कहे छे. ते पर्वताने वर्षधर कडेवातुं कारण्य अे छे  
 के तेओ क्षेत्रानी मर्यादा करे छे महाहिमवान् पर्वतना अन्ने कूट पण्य बहु  
 सम आदि विशेषणोवाणा छे ते अन्ने कूटानां नाम महाहिमवत्कूट अने वैदूर्यकूट छे.  
 अेज प्रमाणे निषध पर्वतपर पण्य ये कूट छे ते अन्ने कूटौ पण्य बहुसम  
 आदि विशेषणोथी अण्य के तेमना नाम निषधकूट अने रुचकप्रभकूट छे.



यावत् तपया-सौमनसश्चैव विद्युत्प्रमदश्चैव । अम्भूमन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरेण उत्तर  
 कुरुणा पूर्वापरस्मिन् पार्श्वे, अत्र खल्वश्वस्तकचकसदृशी अर्द्धचन्द्रसंस्थानसस्पितौ  
 द्वौ वक्षस्कारपर्वतौ मङ्गलौ बहुसमतुल्यौ यावत्-तपया-गन्धमादनश्चैव मात्ययान  
 चैव । अम्भूमन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन द्वौ दीर्घवैताडयपर्वतौ मङ्गलौ बहुस  
 मतुल्यौ यावत् तपया-भारतश्चैव दीर्घवैताडयः, ऐरवतश्चैव दीर्घवैताडयश्चैव ।  
 भारते खल्वदीर्घवैताडये द्वे गुहे मङ्गल्ये बहुसमतुल्ये अभिशोपे अनानात्वे अन्योन्यं  
 नातिवर्षते मायामक्किम्मोच्चत्वोद्देशसंस्थानपरिणादेन, तपया-तमिस्रगुहा

सौमनस और विद्युत्प्रमद हैं । अथ । मन्दर-सुमेरुकी उत्तरदिशामें उत्तर  
 कुरु के पूर्व और पश्चिम पार्श्वभाग में अश्वस्तकच के जैसे अर्द्धचन्द्राकार  
 दो वक्षस्कार पर्वत हैं, ये दोनों पर्वत बहुसम आदि विशेषणों वाले हैं ।  
 इनके नाम गन्धमादन और मात्ययान हैं । इसी प्रकार से जन्म मन्दर-  
 सुमेरु की उत्तरदक्षिण दिशा की ओर दो दीर्घ वैताडय पर्वत कहे गये  
 हैं ये दोनों पर्वत भी बहुसम आदि विशेषणों वाले हैं । आदि पद से  
 यहां “ अभिशोप, अनानात्व, ओषाम, विष्कंग की अपेक्षा समा  
 नता, और उच्चता, उद्भय, संस्थान और परिणाह की अपेक्षा भी  
 समानता ग्रहण की गई है इन दो दीर्घ वैताडयपर्वतों के नाम भरतदीर्घ  
 वैताडय और ऐरवतदीर्घवैताडय हैं । भरतदीर्घवैताडय पर्वत में दो गुफाएँ  
 हैं जो बहुसम आदि विशेषणों वाली हैं इनके नाम तमिस्रागुफा और

ॐ तेमना नाम सौमनस अने विद्युत्प्रमद ॐ ते ज ने पवतो पञ्च जहु सभ  
 आदि पूर्वोक्त विशेषणोशी स पत्त ॐ अजुदीपना सुमेरु पर्वतनी उत्तर  
 दिशामें उत्तर कुरुना पूव अने पश्चिम तरङ्गना भाषोभां अश्वस्तकचना केवां  
 अर्धचन्द्राकारना मे वक्षस्कार पर्वतो आबेलां ॐ तेज्य पञ्च जहुसम आदि  
 पूर्वोक्त विशेषणोवाणा ॐ तेमनां नाम अश्वमादन अने मात्ययान ॐ

अथ प्रभाष्ये अजुदीपना सुमेरुनी उत्तर-दक्षिण दिशा तरङ्ग मे दीर्घ  
 वैताडय पर्वत कर्णां ॐ ते जने पवतो पञ्च जहु सभ आदि विशेषणोवाणां  
 ॐ आदि पदोशी अर्द्धो अने प्रकट करवाभां आभ्यु ॐ ॐ तेज्योभां अथ वीज  
 करतां जेथ विशेषना अथवा विविधता नथी लयाध, पक्षोण्यध, उच्चध, उद्भय,  
 संस्थान अने परिधिनी अपेक्षाअने पञ्च ते जनेभां समानता रहेली ॐ  
 तेमनां नाम नीचे प्रभाष्ये ॐ-(१) भरत दीर्घ वैताडय अने (२) ऐरवत दीर्घ  
 वैताडय. भरत दीर्घ वैताडयभां मे अहाओ ॐ ते जने अहाओ जहुसम  
 आदि विशेषणोवाणी ॐ तेमनां नाम अथ प्रभाष्ये ॐ-तमिस्रा अक्ष अने

तथा, तौ । कीदृशी ? इत्याह— ' बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्ये  
 नातिवर्त्तते, आयामविष्कम्भोच्चत्वोद्वेधसंस्थानपरिणाहेन ' इति पदानां व्याख्या-  
 ऽनुपदं त्रिशत्तमसूत्रे कृता ततोऽवसेया । तावाह—क्षुद्रहिमवान्—लघुहिमवान्  
 भरतानन्तरम्, तथा शिखरी यत्परमैरवतक्षेत्रं वर्त्तते सः । इमौ द्वावपि पूर्वापरतौ  
 लवणसमुद्रस्पृष्टौ योजन शतोच्छ्रायौ पञ्चविंशतियोजनावगाढौ आयतचतुरस्रसंस्थान  
 संस्थितौ स्तः । अनयोर्विशेषवर्णनमन्यतोऽवसेयम् । एवं यथा ' जंबू दीवे दीवे '

के बीच क्षुद्रहिमवान् पर्वत है इसी प्रकार हैमवत क्षेत्र और हरिवर्ष  
 क्षेत्र के बीच में सीमा पर महाहिमवान् पर्वत है हरिवाम और महा-  
 विदेहक्षेत्र के बीच में निषधपर्वत है विदेह और रम्यक क्षेत्र के बीच में  
 नीलवान् पर्वत है रम्यक और हैरण्यवतक्षेत्रके बीचमें रुक्मी पर्वत है  
 हैरण्यवत और ऐरवतक्षेत्र के बीच में शिखरी पर्वत है इस तरह से ये  
 पर्वत दो दो क्षेत्रों का विभाग करते हैं । सुमेरु पर्वत की दक्षिणदिशा  
 में भरत, हैमवत और हरिवर्ष क्षेत्र हैं और उत्तरदिशा में रम्यक  
 हैरण्यवत और ऐरवत क्षेत्र है विदेहक्षेत्र में देवकुरु दक्षिणदिशा में  
 और उत्तरकुरु उत्तरदिशा में है कालचक्र का परिवर्तन भरतक्षेत्र और  
 ऐरवत क्षेत्र इन दो क्षेत्रों में ही होता है शेषक्षेत्रों में नहीं इन शेष  
 क्षेत्रों में निवास करने वाले जीवों के उपभोग आयु शरीर का परिमाण  
 आदि सदा एक से रहते हैं हैमवत क्षेत्र में जीवों की आयु एक पत्य  
 प्रमाण होती है—यहां निरन्तर उत्सर्पिणी का चौथा या अवसर्पिणी का

पाडे छे. जेभके दक्षिण दिशाभां आवेला भरतक्षेत्र अने हैमवत क्षेत्रनी वन्चे  
 क्षुद्र हिमवान् पर्वत छे. जेअ प्रभाषे हैमवत अने हरिवर्ष क्षेत्रनी वन्चे,  
 सीमापर महाहिमवान् पर्वत छे. हरिवास अने महाविदेह क्षेत्रनी वन्चे  
 निषध पर्वत छे, विदेह अने रम्यक क्षेत्रनी वन्चे नीलवान् पर्वत छे, रम्यक  
 अने हैरण्यवत क्षेत्रनी वन्चे रुक्मि पर्वत छे अने हैरण्यवत अने ऐरवत  
 क्षेत्रनी वन्चे शिखरी पर्वत छे. आ रीते आ पर्वतो अप्पे क्षेत्रोनी भयोहा करे छे.  
 सुमेरु पर्वतनी दक्षिण दिशाभां भरत, हैमवत अने हरिवर्ष क्षेत्रो छे,  
 अने उत्तर दिशाभां रम्यक, हैरण्यवत अने ऐरवत क्षेत्रो छे. विदेह क्षेत्रभां  
 देवकुरु दक्षिण दिशाभां अने उत्तर कुरु उत्तर दिशाभां छे. कालचक्रतुं परिवर्तन  
 मात्र भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्रोभां न थाय छे, आकीना क्षेत्रोभां थतुं नहीं.  
 ते आकीनां क्षेत्रोभां निवास करनारा एवोना उपभोग, आयु, शरीरतुं प्रभाष  
 आदि सदा ओकसरपुं न रहे छे. हैमवत क्षेत्रभां एवोतुं आयुष्य ओक पत्य  
 य ५२

મન્દરસ્ય વર્ષતસ્ય ઉચ્ચેન નીલ્યતિ વર્ષધરપર્વતે દ્વૌ કૂટૌ પ્રક્ષ્પ્તૌ વહુસમ૦ યાવત્  
 તથયા-નીલચ્ચક્રકૂટકૌચૈવ, ઉપદર્શનકૂટકૌચૈવ । एष रुक्मिणिदर्पधरपर्वते द्वौ कूटौ  
 પ્રક્ષ્પ્તૌ વહુસમ૦ યાવત્-તથયા-રુક્મિકૂટકૌચૈવ મણિકચ્ચનકૂટકૌચૈવ । एष शिख  
 રિણિ વર્ષધરપર્વતે દ્વૌ કૂટૌ પ્રક્ષ્પ્તૌ વહુસમ૦ યાવત્-તથયા-શિખરિકૂટકૌચૈવ  
 તિગિચ્ચકૂટકૌચૈવ ॥ ૬૦ ૩૧ ॥

ટીકા—'અવૂદીવે' इत्यादि । सुगमम् । नवरम्-वर्षे-उभयपार्श्वस्थिते क्षेत्रे  
 ધરતો-વ્યવસ્થાપયતइति वर्षवरी क्षेत्र द्वयसीमाकारिणी, तां चतौ पवतौ चेति

કહે ગયે હેં યે દોનો કૂટ મી વહુસમ આદિ પૂર્વોક્ત વિશેષણો ઘાલે હેં ।  
 इन कूटों के नाम निपघकूट और रुक्मकप्रम कूट है । ऊष् मन्त्र पवत  
 કો સ્તરવિદ્યા મેં જો નીલ વર્ષધર પર્વત હૈ-ઉમમેં મી દો કૂટ હેં યે દો  
 કૂટ મી વહુસમ આદિ પૂર્વોક્ત વિશેષણો ઘાલે હેં इनमें एक का नाम  
 નીલચ્ચકૂટ ઓર દુમરે કા નામ ઉપદર્શનાકૂટ હૈ इसी प्रकार से रुक्मि  
 વર્ષધર પર્વત પર મી દો કૂટ હેં યે મી પૂર્વોક્ત વહુસમ આદિ વિશેષણો  
 ઘાલે હેં इनमें एक का नाम रुक्मिकूट और दुमरे का नाम मणिकचनकूट  
 હૈ इसी प्रकार से शिखरि वर्षधर पर्वत पर जो दो कूट पूर्वोक्त वहुसम  
 આદિ વિશેષણો સે યુક્ત કહે ગયે હેં उनके नाम शिखरिकूट और  
 તિગિચ્ચકૂટ હેં ।

ટીકાર્થ—इस क्षेत्र की व्याख्या सुगम है हिमवान् आदि पर्वतों को  
 જો વર્ષધર કહ્યા ગયા હૈ ઉસકા કારણ યહ હૈ કિ યે હિમવાન્ આદિ  
 પર્વત અપની દોનો ઓર સ્થિત દો ક્ષેત્રોં કો ધારણ કરતે હેં अर्थात्  
 ઇનकी सीमा बताते हैं जैसे दक्षिण दिशा में स्थित भरतक्षेत्र और क्षेत्र

જા પૂરીપના મહર પવતની ઉત્તર દિશામા ને નીલ વર્ષધર પર્વત ને,  
 તેમાં પણ નિલચ્ચકૂટ અને ઉપદર્શનાકૂટ નામના બે કૂટો છે તે બન્ને કૂટ પણ  
 વહુસમ આદિ વિશેષણોવાળા છે એજ પ્રમાણે રુક્મિ વર્ષધર પવતપર પણ  
 રુક્મિકૂટ અને મણિકચ્ચનકૂટ નામના બે કૂટો છે તે બને કૂટ પણ વહુસમ  
 આદિ વિશેષણોવાળા છે એજ પ્રમાણે શિખરી વર્ષધર પવતપર પણ શિખરી  
 કૂટ અને તિગિચ્ચકૂટ નામના બે કૂટ છે તેઓ પણ વહુસમ આદિ પૂર્વોક્ત  
 વિશેષણોથી યુક્ત છે

ટીકામ—આ સૂત્રની શરૂઆત સરળ છે હિમવાન્ આદિ પર્વતોને વર્ષધર  
 કહેવાનું કારણ એ છે કે હિમવાન્ આદિ પર્વત પોતાની બન્ને બાજુએ આવેલાં  
 ક્ષેત્રોં ॥ ગર્ભોં । દરે છે-એ ક્ષેત્રે કે તેમની સીમા બતાવે છે અને તેમને અવગ

तथा, तौ । कीदृशौ ? इत्याह—‘ बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं नातिवर्त्तते, आयामविष्कम्भोच्चत्वोद्वेधसंस्थानपरिणाहेन ’ इति पदानां व्याख्या-  
 ऽनुपदं त्रिंशत्तमसूत्रे कृता ततोऽवसेया । तावाह—क्षुद्रहिमवान्—लघुहिमवान्  
 भरतानन्तरम्, तथा शिखरी यत्परमैरवतक्षेत्रं वर्त्तते सः । इमौ द्वावपि पूर्वापरतौ  
 लक्षणसमुद्रस्पृष्टौ योजन शतोच्छ्रयाँ पञ्चविंशतियोजनावगाढौ आयतचतुरस्रसंस्थान  
 संस्थितौ स्तः । अनयोर्विशेषवर्णनमन्यतोऽवसेयम् । एवं यथा ‘ जंबू दीवे दीवे ’

के बीच क्षुद्रहिमवान् पर्वत है इसी प्रकार हैमवत-क्षेत्र और हरिवर्ष-  
 क्षेत्र के बीच में सीमा पर महाहिमवान् पर्वत है हरिवास और महा-  
 विदेहक्षेत्र के बीच में निषधपर्वत है विदेह और रम्यक क्षेत्र के बीच में  
 नीलवान् पर्वत है रम्यक और हैरण्यवतक्षेत्रके बीचमें रुक्मि पर्वत है  
 हैरण्यवत और ऐरवतक्षेत्र के बीच में शिखरी पर्वत है इस तरह से ये  
 पर्वत दो दो क्षेत्रों का विभाग करते हैं । सुमेरु पर्वत की दक्षिणदिशा  
 में भरत, हैमवत और हरिवर्ष क्षेत्र हैं और उत्तरदिशा में रम्यक  
 हैरण्यवत और ऐरवत क्षेत्र है विदेहक्षेत्र में देवकुरु दक्षिणदिशा में  
 और उत्तरकुरु उत्तरदिशा में है कालचक्र का परिवर्तन भरतक्षेत्र और  
 ऐरवत क्षेत्र इन दो क्षेत्रों में ही होता है शेषक्षेत्रों में नहीं इन शेष  
 क्षेत्रों में निवास करने वाले जीवों के उपभोग आयु शरीर का परिमाण  
 आदि सदा एक से रहते हैं हैमवत क्षेत्र में जीवों की आयु एक पत्य  
 प्रमाण होती है—यहां निरन्तर उत्सर्पिणी का चौथा या अवसर्पिणी का

पाडे छे. जेभके दक्षिण दिशाभां आवेला भरतक्षेत्र अने हैमवत क्षेत्रनी वर्ये  
 क्षुद्र हिमवान् पर्वत छे. जेज प्रमाणे हैमवत अने हरिवर्ष क्षेत्रनी वर्ये,  
 सीमापर महाहिमवान् पर्वत छे. हरिवास अने महाविदेह क्षेत्रनी वर्ये  
 निषध पर्वत छे, विदेह अने रम्यक क्षेत्रनी वर्ये नीलवान् पर्वत छे, रम्यक  
 अने हैरण्यवत क्षेत्रनी वर्ये रुक्मि पर्वत छे अने हैरण्यवत अने ऐरवत  
 क्षेत्रनी वर्ये शिखरी पर्वत छे आ रीते आ पर्वतो षण्णे क्षेत्रोनी भयोहा करे छे.

सुमेरु पर्वतनी दक्षिण दिशाभां भरत, हैमवत अने हरिवर्ष क्षेत्रो छे,  
 अने उत्तर दिशाभां रम्यक, हैरण्यवत अने ऐरवत क्षेत्रो छे. विदेह क्षेत्रभां  
 देवकुरु दक्षिण दिशाभां अने उत्तर कुरु उत्तर दिशाभां छे. कालचक्रनुं परिवर्तन  
 मात्र भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्रोभां न थाय छे, भाडीना क्षेत्रोभां थतुं नहीं.  
 ते भाडीना क्षेत्रोभां निवास करनारां लवोना उपभोग, आयु, शरीरनुं प्रमाण  
 आदि सदा एकसंख्युं न रहै छे. हैमवत क्षेत्रभां लवोनुं आयुध्य जेक पत्य

મન્દરસ્ય પર્વતસ્ય ઇષ્ટરેષા નીલવતિ વર્ષધર્મવર્તે ડ્રૌ કૂટૌ પ્રહ્લતૌ વહુસમ૦ યાવત્  
 તદયથા-નીલવસ્કૂટકૃત્તૈવ, ટપદર્શનકૂટકૃત્તૈવ । एष रुक्मिणिद्वर्षधरपर्वते द्वौ कूटौ  
 પ્રહ્લતૌ વહુસમ૦ યાવત્-તદયથા-રુક્મિકૂટકૃત્તૈવ મણિકપ્પનકૂટકૃત્તૈવ । एष शिखरि  
 रिणि धरधरपर्वते द्वौ कूटौ प्रह्लतौ वहुसम० यावत्-तद्यथा-शिखरि कूटकૃત્તૈવ  
 તિગિચ્છકૂટકૃત્તૈવ ॥ સૂ૦ ૩૧ ॥

ટીકા—‘જહ્વીવે’ ઇત્યાદિ । સુગમમ્ । નરમ્-વર્ષ-ઠમયપાથસ્થિતે ક્ષેત્રે  
 ધરતો-વ્યવસ્થાપયત્તિતિ વર્ષવરૌ ક્ષેત્ર દ્વયસીમાફારિણૌ, તૌ ધર્તૌ પર્વતૌ વેતિ

કહે ગયે હૈં યે ધોનો કૂટ મ્હો વહુસમ આદિ પૂર્વોક્ત વિશેષણો ઘાલે હૈં ।  
 इन कूटों के नाम निषधकूट और रुक्मकप्रम कूट है । जय मन्वर पर्वत  
 की उत्तरदिशा में जो नील वर्षधर पर्वत है-उसमें भी दो कूट हैं ये दो  
 कूट भी वहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाले हैं इनमें एक का नाम  
 नीलवस्कूट और दूसरे का नाम उपदर्शनाकूट है इसी प्रकार से रुक्मि-  
 षधर पर्वत पर भी दो कूट हैं ये भी पूर्वोक्त वहुसम आदि विशेषणों  
 वाले हैं इनमें एक का नाम रुक्मिकूट और दूसरे का नाम मणिकपनकूट  
 है इसी प्रकार से शिखरि धरधर पर्वत पर जो दो कूट पूर्वोक्त वहुसम  
 आदि विशेषणों से युक्त कहे गये हैं उनके नाम शिखरिकूट और  
 तिगिच्छकूट हैं ।

ટીકાર્થ—ઈસ સૂત્રની ઇવારુપા સુગમ હૈં હિમવાન આદિ પર્વતો કો  
 જો વર્ષધર કહ્યા ગયા હૈં ઇસકા કારણ યહ હૈં કિ યે હિમવાન આદિ  
 પર્વત અપની ધોનો ઓર સ્થિત ધો ક્ષેત્રો કો ધારણ કરતે હૈં અર્થાત્  
 ઇનકો સીમા ઘતાતે હૈં ઐસે દક્ષિણ દિશા મેં સ્થિત મરતક્ષેત્ર ઓર ક્ષેત્ર

જહ્વીવેના મહર પવતની ઉત્તર દિશામાં જે નીલ વર્ષધર પર્વત છે,  
 તેમાં પણ નિલવસ્કૂટ અને ઉપદર્શનાકૂટ નામના બે કૂટો છે તે બન્ને કૂટ પણ  
 વહુસમ આદિ વિશેષણોવાળાં છે એજ પ્રમાણે રુક્મિ ધરધર પવતપર પણ  
 રુક્મિકૂટ અને મણિકપનકૂટ નામના બે કૂટો છે તે બન્ને કૂટ પણ વહુસમ  
 આદિ વિશેષણોવાળાં છે એજ પ્રમાણે શિખરી વર્ષધર પવતપર પણ શિખરી  
 કૂટ અને તિગિચ્છકૂટ નામના બે કૂટો છે તેઓ પણ વહુસમ આદિ પૂર્વોક્ત  
 વિશેષણોથી યુક્ત છે

ટીકા—આ સૂત્રની વ્યાખ્યા સરળ છે હિમવાન આદિ પર્વતોને વર્ષધર  
 કહેવાનું કારણ એ છે કે હિમવાન આદિ પર્વત પોતાની બન્ને બાજુએ આવેલાં  
 ક્ષેત્રો ઇ અર્થાત્ કરે છે-એટલે કે તેમની સીમા બતાવે છે અને તેમને બહુ

ઇત્યાદિ, સૂત્રાભિલાપેન હિમવચ્છિલ્લરિણૌ પ્રોક્તૌ તથા મહાહિમવદ્ રુક્મિપર્વતાવપિ વિજ્ઞેયૌ । તત્ર મહાહિમવાનિતિ લઘુહિમવદપેક્ષયા । ‘ ઉત્તરદાહિણેણ ’ ઇતિ પાઠ-  
સ્ય યથાસંખ્યન્યાયમનાથિત્ય યથાસત્તિન્યાયાદક્ષિણતો મહાહિમવાન્, રુક્મીચોત્ત-

મેં ચિલકુલ સમાન હૈં ઇનમેં કિસી ખી પ્રકાર કી ઇક દુસરે સે વિશેષતા નહીં હૈ અનાનાત્વ હૈ કિસી ખી પ્રકાર કા ઇનમે ભેદ નહીં હૈ આગામ, વિષ્કંભ, ઉચ્ચત્વ, ઉદ્વેધ, સંસ્થાન ઓર પરિણાહ ઇન દોનોં કા વરાઘર વરાઘર હૈ । લઘુહિમવાન્ ભરતક્ષેત્રકી સીમા જહાં સમાપ્ત હોતી હૈ વહાં પર હૈ ઓર શિખરી પર્વત હૈરણ્યવત કી સીમા જહાં સમાપ્ત હોતી હૈ વહાં પર હૈ હસકે વાદ ઈરવત ક્ષેત્ર હૈ યે દોનોં પર્વત પૂર્વ સે પશ્ચિમ તક લમ્બે હૈં અર્થાત્ પૂર્વપશ્ચિમ ઓર લવણ સમુદ્ર તક ફાલે હુણ હૈં યે દોનોં ઇક સૌ યોજન કે ઝૂંચે હૈં ઓર ૨૫ પચ્ચીસ યોજન નીચે જમીન મેં અવ-ગાહ યુક્ત હૈ તથા ઇનકા સંસ્થાન આયતચતુરસ્ર હૈ ઇનકા વિશેષ વર્ણન અન્ય શાસ્ત્રોં સે જાનના ચાહિયે । ઇસ તરહ “ જંબુદીવે દીવે ” ઇત્યાદિ સૂત્રાભિલાપ કે દ્વારા ક્ષુલ્લહિમવાન્ ઓર શિખરી પર્વત કે સમ્બન્ધ મેં જૈસે યહ કહા ગયા હૈ, ઇસી પ્રકાર કા કથન મહાહિમવાન્ ઓર રુક્મી પર્વત કે વિષય મેં ખી કરના ચાહિયે, યે દોનોં પર્વત ખી ક્રમશઃ દક્ષિણ

અને હૈરણ્યવત ક્ષેત્રની ન્યાં સીમા સમાપ્ત થાય છે, ત્યાં આવેલો છે. તે બંને પર્વતો પરસ્પરમાં બિલકુલ સમાન છે તે બંનેમાં કોઈપણ પ્રકારની વિશેષતા નથી. તેમની વચ્ચે અનાનાત્વ ( વિવિધતા અથવા અસમાનતાનો અભાવ ) છે, તેમની વચ્ચે બિલકુલ તફાવત નથી. તે બંને લંબાઈ, પહોળાઈ, ઉંચાઈ, ઉદ્વેધ, સંસ્થાન ( આકાર ) અને પરિધિની અપેક્ષાએ એકસરખાં છે.

લઘુહિમવાન્ ન્યાં ભરતક્ષેત્રની સીમા સમાપ્ત થાય છે, ત્યાં આવેલો છે. અને હૈરણ્યવતની સીમા ન્યાં સમાપ્ત થાય છે ત્યાં શિખરી પર્વત આવેલો છે. ત્યારબાદ ઈરવત ક્ષેત્ર છે. તે બંને પર્વતો પૂર્વપશ્ચિમ તરફ લવણ સમુદ્ર સુધી ફેલાયેલા છે તે બંને એકસો યોજન ઉંચા છે અને ૨૫ યોજન નીચે જમીનમાં અવગાહ્યુક્ત છે. તેમના સંસ્થાનની અપેક્ષાએ—આકારની દૃષ્ટિએ તેઓ આયતચતુરસ્ર સ્થાનવાળા છે, તેમનું વિશેષ વર્ણન ત્રિશાસુ પાઠકોએ અન્ય શાસ્ત્રોમાંથી વાચી લેવું આ રીતે “ જંબુદીવે દીવે ” ઇત્યાદિ સૂત્રો દ્વારા જેવું કથન ક્ષુલ્લ ( ક્ષુદ્ર ) હિમવાન્ અને શિખરી પર્વતના વિષયમાં કરવામાં આવ્યું છે, એવું જ કથન મહાહિમવાન્ અને રુક્મિ પર્વતના વિષયમાં પણ શ્રદ્ધ કરવું જોઈએ. સુમેરુ પર્વતની દક્ષિણ દિશા તરફ મહાહિમવાન્ પર્વત

तीसरा काल बना रहता है हरिषर्ष क्षेत्र में प्राणियों की आयु दो पल्प प्रमाण होती है यहां निरन्तर उत्सर्पिणी का पांचघां या अबसर्पिणी का दूसरा काल प्रवर्तता है विदेह क्षेत्र में सदा अबसर्पिणी का चतुर्यकाल ही रहता है यहां के प्राणियों की स्थिति १ कोटिपूर्व की होती है देवकुरु क्षेत्र के प्राणियों की स्थिति तीन पल्पप्रमाण होती है यहां निरन्तर उत्सर्पिणी का छठा और अबसर्पिणी का पहिला काल होता है हैमवत, हरिषर्ष और देवकुरु में काल का जो यह क्रम प्रकट किया गया है वही क्रम उत्तरदिशा के उत्तरकुरु रम्यक और हैरण्यवत इन तीन क्षेत्रों में जानना चाहिये उत्तरकुरु में देवकुरु के समान, रम्यक में हरिषर्ष के समान और हैरण्यवत में हैमवत के समान काल की प्रवृत्ति है भरत क्षेत्र और पेरवत क्षेत्र की सीमा पर जो दो पर्वत हैं उनके नाम हैं सुद्रहिमवान् और शिखरी। इनमें सुद्र हिमवान् सुमेरु की दक्षिणदिशा तरफ है। तथा शिखरी पर्वत सुमेरु की उत्तर दिशा तरफ है सुद्रहिमवान् पर्वत भरतक्षेत्र की समाप्ति जहां होती है उस सीमापर है और शिखरी पर्वत पेरवत क्षेत्र का जहां से प्रारंभ होता है और हैरण्यवत क्षेत्र की जहां सीमा समाप्त होती है वहां पर है ये दोनों पर्वत परस्पर

प्रमाण्ये ङोय छे त्यां निरन्तर उत्सर्पिणीना चोथो अथवा अबसर्पिणीना त्रीन्ने ङाण च प्रवर्तते ङोय छे हरिषर्ष क्षेत्रमां प्राणीजोनुं आमुष्ण जे पल्पप्रमाण्ये ङोय छे त्यां निरन्तर उत्सर्पिणीना पांचघो अथवा अबसर्पिणीना वीन्ने ङाण प्रवर्तते ङोय छे विदेह क्षेत्रमां सदा अबसर्पिणीना चोथो ङाण च प्रवर्तते ङोय छे अने त्यांना प्राणीजोनी स्थिति ज्येक कोटिपूर्वनी ङोय छे देवकुरु क्षेत्रमां प्राणीजोनी स्थिति त्रय पल्पप्रमाण्ये ङोय छे. त्यां निरन्तर उत्सर्पिणीना छठो अथवा अबसर्पिणीना पहिलो ङाण प्रवर्तते ङोय छे. हैमवत, हरिषर्ष अने देवकुरुमां ङाणने जे आ क्रम प्रकट कएवामां आ थो छे, ज्येक क्रम उत्तर दिशाना उत्तरकुरु, रम्यक अने हैरण्यवत, आ त्रय क्षेत्रमां पल्प समज्यो. उत्तरकुरुमां देवकुरुना समान, रम्यकमां हरिषर्ष समान, अने हैरण्यवतमां हैमवत समान ङाणनी प्रवृत्ति समज्यी. भरतक्षेत्र अने पेरवत क्षेत्रनी सीमापर जे जे पवते छे तेमनां नाम सुद्रहिमवान् अने शिखरी छे तेमांथी सुद्रहिमवान् सुमेरुनी दक्षिण दिशा तरफ छे अने शिखरी पर्वत सुमेरुनी उत्तर दिशा तरफ छे भरतक्षेत्रनी जहां समाप्ति जाय छे ते सीमापर सुद्रहिमवान् पर्वत छे अने शिखरी पर्वत पेरवत क्षेत्रने ज्योथी प्रारंभ जाय छे

‘જંબૂ’ इत्यादि सुगमं, नवरं—द्वौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ, वृत्तौ पल्याकारखाद् वैताढ्यौ—वैताढ्यनामकौ पर्वतौ । तौ च सर्वतः सहस्रयोजनपरिमितौ रजतमयौ स्तः । तत्र यथासत्तिन्यायाश्रयणादक्षिणतो हैमवते शब्दापाती, उत्तरत ऐरण्यवते विकटापातीति । ‘तत्थ णं’ इति तत्र—तयोर्द्वैत्तवैताढ्यपर्वतयोः क्रमेण स्वातिः प्रभासश्चेति द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ वसतः, तत्र उद्भवनस-  
ज्जावादिति । ‘जंबू’ इत्यादि, हरिवर्षे गन्धापाती, रम्यकवर्षे माल्यवत्पर्यायः पर्वतः । तयोः पूर्वोक्तरूपौ अरुणाभिधः पद्माभिधश्चेति द्वौ देवौ क्रमेणैव वसत इति । ‘जंबू’ इत्यादि, जम्बूद्वीपे मन्दरपर्वतस्य दक्षिणतो देवकुरुषु पूर्वापरयोः पार्श्वयोः पूर्वपार्श्वे अपरपार्श्वे चेत्यर्थः कथम्भूतयोः पूर्वापरपार्श्वयोः ? इत्याह—

रजतमय हैं । दक्षिणदिशा तरफ जो हैमवत क्षेत्र है उसमें शब्दापानी वृत्तवैताढ्यपर्वत है और उत्तरदिशा तरफ जो ऐरण्यवतक्षेत्र है उसमें विकटापाती वृत्तवैताढ्य है इन वैताढ्यों में क्रमशः स्वाति और प्रभास ये दो महर्द्धिक आदि विशेषणों वाले देव रहते हैं । इनकी स्थिति एक पल्योपम की है ये वहां इसलिये रहते हैं कि इनके वहां भवन बने हुए हैं । हरिवर्ष क्षेत्र में गन्धापानी और रम्यकवर्ष में माल्यवत्पर्याय नामके वैताढ्यपर्वत हैं । इनमें पूर्वोक्त रूप संपन्न दो देव जिन के नाम अरुणा भिध और पद्माभिध हैं क्रमशः रहते हैं । इसी प्रकार से जम्बूद्वीप में स्थित जो मन्दरपर्वत है उसकी दक्षिणदिशा में जो विदेहक्षेत्रस्थ देव-कुरु हैं उनके पूर्वपार्श्व में और अपरपार्श्व में क्रमशः सौमनस और

દરેકની પરિધિ આયામ વિષ્કંભ (લંબાઈ, પહોળાઈ) કરતા બમણી છે. વૃત્તવૈતાઢ્ય પર્વતો પલ્યાકાર છે. વૃત્તવૈતાઢ્ય પર્વતો સર્વત્ર એક હંબર યોજનના છે અને રજતમય છે દક્ષિણ દિશા તરફ જે હૈમવત ક્ષેત્ર છે તેમાં શબ્દાપાતી નામનો વૃત્તવૈતાઢ્ય પર્વત છે અને ઉત્તર દિશા તરફ જે ઐરણ્યવત ક્ષેત્ર છે તેમાં વિકટાપાતિ નામનો વૃત્તવૈતાઢ્ય પર્વત છે તે વૃત્તવૈતાઢ્યોમાં અનુક્રમે સ્વાતિ અને પ્રભાસ નામના મહર્દ્ધિક આદિ વિશેષ-ણોવાળા બે દેવ વસે છે, તેમની સ્થિતિ એક પલ્યોપમની છે. તેઓ ત્યાં શા કારણે રહે છે ? ત્યાં તેમનાં ભવનો બનેલાં હોવાથી તેઓ ત્યાં રહે છે હરિ-વર્ષ ક્ષેત્રમાં ગંધાપાતી, અને રમ્યક વર્ષમાં માલ્યવત્પર્યાય નામના વૃત્તવૈતાઢ્યો ક્રમશઃ આવેલા છે. તે બન્નેમાં પૂર્વોક્ત વિશેષણોવાળા બે દેવ રહે છે, જેમનાં નામ અનુક્રમે અરુણ અને પદ્મ છે.

એજ પ્રમાણે જંબૂદ્વીપમાં આવેલા મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં જે વિદેહ ક્ષેત્રસ્થ દેવકુરુ છે તેની પૂર્વ તરફ અને પશ્ચિમ તરફ અનુક્રમે સૌમનસ



रत इति । एष सर्वत्र वाच्यम् । एवमेव निषपनीलवन्ती विज्ञेयी, नवरमेषामाया-  
मविष्कम्मादयोऽन्यतोवसेया । चतुरस्रपरिपिस्तु आयामविष्कम्माद्विगुण इति ।

और उत्तर की ओर हैं—अर्थात् सुमेरु पर्वत की दक्षिण दिशा तरफ  
महाहिमवान् पर्वत हैं और उत्तरदिशा तरफ रुक्मी पर्वत है । इसी प्रकार  
का कपन नियम और नीलवन्त पर्वतों के विषय में भी करना चाहिये  
इनके आयाम विस्तार आदि का कपन अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों से जानना  
चाहिये तात्पर्य इसका " तद्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षपर विदेहान्ताः "   
इस सिद्धान्त सूत्र के अनुसार ऐसा है कि विदेह क्षेत्रपर्यन्त पर्वत और  
क्षेत्र भरतक्षेत्र से दूने दूने विस्तार वाले हैं जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र का  
विस्तार ५२६ योजन ६ कला का है इससे दूना विस्तार हिमवान् पर्वत  
का है हिमवान् पर्वत के विस्तार से दूना विस्तार हैमवत क्षेत्र का है  
हैमवत क्षेत्र के विस्तार से दूना विस्तार महाहिमवान् पर्वत का है इस  
तरह यह दूना २ विस्तार क्रम विदेह क्षेत्रतक है इसके बाद के उत्तर  
दिशा के क्षेत्रों का और पर्वतों का विस्तार दक्षिण के क्षेत्र और पर्वतों  
के जैसा ही है इस तरह ऐरवत क्षेत्र का विस्तार ५२६ योजन ६ कला  
का हो जाता है जो भरत क्षेत्र के परावर ही बैठता है ।

चतुरस्रपरिपि तो आयामविष्कम्मा से दूनी है दृसवैताड्यपर्वत  
पस्याकार हैं । ये दृसवैताड्यपर्वत सर्वतः एक हजार योजन के हैं और

उत्तरे उत्तर दिशा तरफ रुक्मिण पर्वत के आ प्रकारतु कवन नियम जने  
नीलवन्त पर्वताना विषयभां पक्ष समल देवु तेमनी लनाउ, पक्षेणार्ध  
आदिजुं पक्षुंन अन्य शास्त्रेभांभी जाली देवु

" तद्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षपरविदेहान्ताः " आ सूत्रं तादृशं जे उ  
के विदेहक्षेत्र पर्यन्तभां पर्वत जने क्षेत्र भरतक्षेत्र कर्ता जमल्लं जमल्लं  
विस्तारवाणं उ जम्बूद्वीपना भरतक्षेत्रने विस्तार पर १ योजन जने ६ कला  
भ्रमल्ल उ तेनाभी जमल्लो विस्तार हिमवान् पर्वतने उ हिमवान् पर्वत  
कर्ता हैमवत क्षेत्रने विस्तार जमल्लो उ हैमवत क्षेत्र कर्ता महाहिमवान्  
पर्वतने विस्तार जमल्लो उ आ शीवे जमल्लं जमल्लाने विस्तारकम विदेह  
क्षेत्र समल देवे। मन्तर परतनी उत्तर दिशाभां आवेता क्षेत्रने जने  
पर्वतने विस्तार इक्षिण दिशाना क्षेत्रे जने परतने विस्तार केटवे। ज  
उ जेभके हैमवत क्षेत्रने विस्तार भरतक्षेत्रना विस्तार केटवे। ज ( पर १  
योजन ६ कलाने ) उ।

‘जंबू’ इत्यादि सुगमं, नवरं-द्वौ वृत्तवैताढ्यपर्वतौ, वृत्तौ पल्याकारत्वाद् वैताढ्यौ -वैताढ्यनामकौ पर्वतौ । तौ च सर्वतः सहस्रयोजनपरिमितौ रजतमयो स्तः । तत्र यथासत्तिन्यायाश्रयणादक्षिणतो हैमवते शब्दापाती, उत्तरत ऐरण्यवते विकटापातीति । ‘तत्थ णं’ इति तत्र-तयोर्वृत्तवैताढ्यपर्वतयोः क्रमेण स्वातिः प्रभासश्चेति द्वौ देवौ महर्द्धिकौ यावत्पल्योपमस्थितिकौ वसतः, तत्र तद्भवनस-ज्जावादिति । ‘जंबू’ इत्यादि, हरिवर्षे गन्धापाती, रम्यकवर्षे माल्यवत्पर्यायः पर्वतः । तयोः पूर्वोक्तरूपौ अरुणाभिधः पद्माभिधश्चेति द्वौ देवौ क्रमेणैव वसत इति । ‘जंबू’ इत्यादि, जम्बूद्वीपे मन्दरपर्वतस्य दक्षिणतो देवकुरुषु पूर्वापरयोः पार्श्वयोः पूर्वपार्श्वे अपरपार्श्वे चेत्यर्थः कथम्भूतयोः पूर्वापरपार्श्वयोः ? इत्याह-

रजतमय हैं । दक्षिणदिशा तरफ जो हैमवत क्षेत्र है उसमें शब्दापाती वृत्तवैताढ्यपर्वत है और उत्तरदिशा तरफ जो ऐरण्यवतक्षेत्र है उसमें विकटापाती वृत्तवैताढ्य है इन वैताढ्यों में क्रमशः स्वाति और प्रभास ये दो महर्द्धिक आदि विशेषणों वाले देव रहते हैं । इनकी स्थिति एक पल्योपम की है ये वहां इसलिये रहते हैं कि इनके वहां भवन बने हुए हैं । हरिवर्ष क्षेत्र में गन्धापाती और रम्यकवर्ष में माल्यवत्पर्याय नामके वैताढ्यपर्वत हैं । इनमें पूर्वोक्त रूप संपन्न दो देव जिन के नाम अरुणा भिध और पद्माभिध हैं क्रमशः रहते हैं । इसी प्रकार से जम्बूद्वीप में स्थित जो मन्दरपर्वत है उसकी दक्षिणदिशा में जो विदेहक्षेत्रस्थ देव-कुरु हैं उनके पूर्वपार्श्व में और अपरपार्श्व में क्रमशः सौमनस और

दरेंकनी परिधि आयाम विष्कल ( लंभा, पडोणाड ) करता भमणी छे. वृत्तवैताढ्य पर्वतो पल्याकार छे. वृत्तवैताढ्य पर्वतो सर्वत्र ओक हुनर योजनना छे अने रजतमय छे दक्षिण दिशा तरङ्गे जे हैमवत क्षेत्र छे तेमा शब्दापाती नामनो वृत्तवैताढ्य पर्वत छे अने उत्तर दिशा तरङ्गे जे ऐरण्यवत क्षेत्र छे तेमा विकटापाति नामनो वृत्तवैताढ्य पर्वत छे ते वृत्तवैताढ्योमा अनुक्रमे स्वाति अने प्रभास नामना महर्द्धिक आदि विशेष-णोवाणा जे देव वसे छे, तेमनी स्थिति ओक पल्योपमनी छे. तेज्जो त्यां शा-कारणे रडे छे ? त्यां तेमनां लवनां अनेजां डोवाथी तेज्जो त्यां रडे छे हरि-वर्ष क्षेत्रमां गन्धापाती, अने रम्यक वर्षमां माल्यवत्पर्याय नामना वृत्तवैताढ्यो-क्रमशः आवेला छे ते अन्नेमां पूर्वोक्त विशेषणोवाणा जे देव रडे छे, जेमनां नाम अनुक्रमे अरुण अने पद्म छे.

जेज प्रभाणे जम्बूद्वीपमां आवेला मन्दर पर्वतनी दक्षिण दिशांमां जे विदेह क्षेत्रस्थ देवकुरु छे तेनी-पूर्व तरङ्गे अने पश्चिम तरङ्गे अनुक्रमे सौमनस

‘एत्य’ इति, अत्र—प्रज्ञापकेनोपदर्शयमानयोः अश्वस्कारसदृशौ आदौ निम्नौ पयस्साने चोन्नतौ, तयोर्निपपसमीपे चतुश्चत योननोच्छ्रितत्वात्, मेरुसमीपे तु पञ्चशत योजनोच्छ्रितत्वादिति, अर्धचन्द्रसस्थानसंस्थितौ अर्धचन्द्राकारौ अत्रा षष्ठ्यन्तेन विभागमात्र विवर्यते, न तु समप्रविभागतेति आभ्यां चार्द्धचन्द्राकारा देवकुरुव कृता । तौ द्वौ पूर्वोक्तविद्येपयविशिष्टौ परस्परसमानरूपौ क्रमेण सौमनस-विद्युत्प्रमनामानौ वक्षस्कारपर्वतौ । सप्त-वष्टसि-मस्ये गोप्य क्षेत्र द्वौ समूय कुरु इति वक्षस्कारौ, तौ च तौ पर्वतौ चेति तथा, ‘जपू’ इत्यादि । एतयोश्चोत्तरकुरुष्वपि द्वौ गणमादन-माल्यवन्नामानौ वक्षस्कारपर्वतौ स्तः । नवरं यथासत्तिन्यापमाधिन्यापरपार्श्वे गणमादना, पूर्वपार्श्वे माल्यवानिति । ‘जम्बू’

विद्युत्प्रम नामके दो वक्षस्कारपर्वत हैं ये वक्षस्कार आदिमें निम्न-नीचा हैं और अन्त में उन्नत-ऊँचा हैं अत इनका आकार अश्वस्कारके जैसा है निपप के पास ये चारसौ योजन ऊँचे हैं, और मेरु के पास पाँचसौ योजन ऊँचे हैं अर्द्धचन्द्र के जैसे ये सस्थान घाटे हैं यहाँ अर्ध शब्द से केवल विभागमात्र विवक्षित हुआ है समप्रविभागाता नहीं इन्हीं दो वक्षस्कारपर्वतों ने देवकुरुओं को अर्द्धचन्द्र के आकार जैसा कर दिया है ये वक्षस्कार परस्पर में सामानरूप घाटे हैं वक्षस्कार ऐसा नाम इनके होने का यह कारण है कि ये दोनों अपने मस्यगत क्षेत्र को गोप्य कर रखते हैं इसी प्रकार उत्तरकुरुओं में भी दो वक्षस्कारपर्वत गणमादन और माल्यवान् नाम के हैं अपरपार्श्व में गणमादन और पूर्वपार्श्व में माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत है । इसी तरह से जम्बूद्वीप में मन्दरपर्वत-

अने विद्युत्प्रम नामका दो वक्षस्कार पर्वत हैं ते वक्षस्कार पर्वत आदिमें निम्न नीचा हैं अने अन्त भागमें उन्नत हैं तेही तेमने आकार अश्वस्कारना जेवो लागे हैं निपपनी पासे तेजो ५०० योजन ऊँचा हैं अने मेरुनी पासे ५०० योजन ऊँचा हैं तेजो अर्धचन्द्रना जेवो सस्थान (आक्षर) बाजा हैं अर्द्ध अर्ध शब्दप्रकार विभाग कर दर्शाववामा आब्यो हैं-समप्र विभागाता दर्शाववामा आवेव नथी अत अन्ने वक्षस्कार पर्वतजो देवकुरुजोने अर्धचन्द्रना आकार जेवो करी दीधा हैं तेजो जेकसरथा स्वर्गपराणा हैं तेमने वक्षस्कार कडेवातुं कारण जे हैं तेजो पितानी मस्ये रडेला क्षेत्रने जेअभ (नखरे न पडे जेवुं) करी नाजे हैं जेअ प्रभावे उत्तर कुरुजोमां पलु जे वक्षस्कार परत हैं तेमनां नाम गणमादन अने माल्यवान् हैं पश्चिम तरफे जहमान अने पूर तरफे माल्यवान् वक्षस्कार पर्वत आवेला हैं जेअ

इत्यादि, जम्बूद्वीपे मन्दरपर्वतस्य उत्तरदक्षिणयोः-पूर्वोक्तन्यायाद्दक्षिणोत्तरयोः भर्तैरवतनमानौ द्वौ दीर्घवैताढ्यपर्वतौ स्तः । अत्र-वृत्तवैताढ्यव्यवच्छेदार्थं दीर्घग्रहणम् । इमौ च भर्तैरवतक्षेत्रयोर्मध्यभागे पूर्वापरतो लवणोदधिं स्पृष्टवन्तौ पञ्चविंशतियोजनोच्छ्रितौ तत्पादावगाढौ पञ्चाशद् योजनधिस्रुतौ आयतसंस्थितौ सर्वरजतमयावुभयतो वहिः काञ्चनमण्डनाङ्काविति । 'भारहेण' इत्यादि, भारते-भारताभिधे खलु दीर्घवैताढ्ये द्वे गुहे स्त-तमिस्रागुहा, खण्डप्रपातगुहाचेति । तत्र तस्याऽपरभागतस्तमिस्रा गुहा वर्त्तते, सा च गिरिविस्तारायामा द्वादशयोजनविस्ताराऽष्टयोजनोच्छ्रया, आयतचतुरस्रसंस्थाना विजयद्वारपरिमितद्वारा

सुमेरु की उत्तरदिशा में और दक्षिणदिशा में भरत और ऐरवत नामके दो दीर्घ वैताढ्यपर्वत हैं यहां दीर्घपद का ग्रहण वृत्तवैताढ्य पर्वतों के व्यवच्छेदके लिये किया गया है ये दोनों दीर्घ वैताढ्य पर्वत भरत और ऐरवत क्षेत्र के मध्यभाग में पूर्व से पश्चिम तक लवणसमुद्र को छूते हैं २५ योजन के ये ऊँचे हैं चौथाई भाग इनका जमीन नीचे अवगाढ है ५० योजन का इनका विस्तार है आयत-लम्बा-दण्ड के समान इनका संस्थान है सर्व प्रकारसे ये रजतमय हैं ये दोनों बाहरमें काञ्चनकेमण्डन के अङ्क-चिह्नवाले हैं अर्थात् बाह्यका भाग स्वर्णमय है भरतनामके दीर्घ वैताढ्यपर्वतपर दो गुफाएँ हैं एकका नाम है तमिस्रागुफा और दूसरी का नाम है खण्डप्रपातगुफा तमिस्रागुफा उसके पीछेके भागमें है यह गुफा गिरि के जितनी विस्तार और आयामवाली है १२ योजनका इसका विस्तार है और आठ योजन की यह ऊँची है इसका संस्थान आयतचतुरस्र है

प्रमाणे जम्बूद्वीपना मन्दर ( सुमेरु ) पर्वतनी उत्तरनां भरत अने दक्षिणुमां ऐरवत नामना दीर्घवैताढ्य पर्वतो आवेत्ता छे अर्हो वृत्तवैताढ्य पर्वताना व्यवच्छेदने भाटे दीर्घपदने प्रयोग करवाभां आये छे ते अन्ने दीर्घवैताढ्य पर्वतो भरत अने ऐरवत क्षेत्रनी मध्यमां पूर्वथी पश्चिम दिशाभां लवणु समुद्र सुधी इलायेत्ता छे. तेमनी उंचार्थ २५ योजननी छे तेमने १/४ लाग जमीननी नीचे अवगाढ छे. ५० योजनने तेमने विस्तार छे. आयत ( लांबा ) इंडना जेवु तेमनुं संस्थान ( आकार ) छे. तेज्जे संपूर्णतः रजतमय छे. ते अन्नेने अक्षरने दृषाव सोनाना मंडनना चिह्नवाणेो डोय छे अर्थात् अक्षरने लाग सुवर्णमय डोय जेवो लागे छे. भरत नामना दीर्घवैताढ्य पर्वतपर जे शुक्रज्जे छे, तेमनां नाम तमिस्रा शुक्र अने अंडप्रपात शुक्र छे, तमिस्रा शुक्र तेमना पाछला भागमा छे ते शुक्रने विस्तार अने आयाम ( लांबा ) गिरिना जेवी छे. १२ योजनने तेने विस्तार छे अने ते आठ योजन उंची छे. ते आयत-

‘पत्य’ इति, अत्र—प्रज्ञापकनोपदर्शमानयोः अश्वस्कन्धसदृशौ भादौ निम्नौ पपयसाने चोन्नतौ, तयोर्निपप्रसमीपे चतुःशत योजनोच्छ्रितत्वात्, मेरुसमीपे तु पञ्चशत योजनोच्छ्रितत्वादिति, अर्धचन्द्रसंस्थानसंस्थितौ अर्धचन्द्राकारौ अत्रा पञ्चशब्देन विभागमात्रं त्रिवक्ष्यते, न तु समप्रविभागतेति भाभ्यां चार्द्धचन्द्राकारा दक्षकुरव कृता । तौ द्वौ पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टौ परस्परसमानरूपौ क्रमेण सौमनस-विद्युत्प्रमनामानौ वक्षस्कारपर्वतौ । तत्र-वद्यसि-मन्वे गोप्य क्षेत्रे द्वौ समूय कुरुत इति वक्षस्कारौ, तौ च तौ पर्वतौ चेति तथा, ‘संपू’ इत्यादि । एतमेवोत्तरकुरुष्वपि द्वौ गन्धमादन-मास्यवक्षामानौ वक्षस्कारपर्वतौ स्तः । नवरं ययासचिन्त्यापमाभित्यापरपार्श्वे गन्धमादनः, पूर्वपार्श्वे मास्यवानिति । ‘बम्’

विद्युत्प्रभ नामके दो वक्षस्कारपर्वत हैं ये वक्षस्कार आदिमें निम्न-नीचा हैं और अन्त में उन्नत-ऊँचा हैं अतः इनका आकार अश्वस्कंधके जैसा है निपच के पास ये चारसौ योजन ऊँचे हैं, और मेरु के पास पाँचसौ योजन ऊँचे हैं अर्द्धचन्द्र के जैसे ये संस्थान बाँधे हैं यहाँ अर्ध शब्द से केवल विभागमात्र विवक्षित हुआ है समप्रविभागाता नहीं इन्हीं दो वक्षस्कारपर्वतों ने दक्षकुरुओं को अर्द्धचन्द्र के आकार जैसा कर दिया है ये वक्षस्कार परस्पर में सामानरूप बाँधे हैं वक्षस्कार ऐसा नाम इनके होने का यह कारण है कि ये दोनों अपने मध्यगत क्षेत्र को गोप्य कर रखते हैं इसी प्रकार उत्तरकुरुओं में भी दो वक्षस्कारपर्वत गन्धमादन और मास्यवान् नाम के हैं/अपरपार्श्व में गन्धमादन और पूर्वपार्श्व में मास्यवान् वक्षस्कार पर्वत है । इसी तरह से जम्बूद्वीप में मन्दरपर्वत-

अने विद्युत्प्रभ नामके दो वक्षस्कार पर्वतों के दो वक्षस्कार पर्वतों आदिमें नीचा है अने अन्त भागमें ऊँचा है तैसी तैमने आकार अश्वस्कंधके जैसा बाँधे है निपचनी पास तैमने ४० योजन ऊँचा है अने मेरुनी पास ५०० योजन ऊँचा है तैमने अर्धचन्द्रके जैसा संस्थान (आकार) बाँधे है अर्द्ध अर्ध शब्दभी मात्र विभाग के इशावचामां आये है-समप्र विभागता इशावचामां आवेक नहीं आ अने वक्षस्कार पर्वतोंके दक्षकुरुओंके अर्धचन्द्रके आकार जैसा करी दीयां है तैमने अक्षरणां स्वश्रवणां है तैमने वक्षस्कार कहेवानु शरष्व के है है तैमने शितानी वक्ष्य रहेला क्षेत्रने गोप्य (नकरे न पठे जेवुं) करी नाजे है जेव प्रभावे उत्तर कुरुओंमां पक्ष के वक्षस्कार पर्वत है तैमनां नाम गन्धमादन अने मास्यवान् है पश्चिम तर्क अदमान अने पूर्व तर्क मास्यवान् वक्षस्कार पर्वतों आवेला है जेव

उक्तञ्च—“ कत्थइ देसगहणं, कत्थइ धेपंपति निरवसेसाइ ।

उकमकमजुत्ताइं, कारणवसओ निउत्ताइं ॥१॥ ” इति ।

छाया—कुत्रापि देशग्रहणं, कुत्रापि गृह्णन्ति निरवशेषाणि ।

उत्क्रमक्रमयुक्तानि, कारणवशतो नियुक्तानि ॥ १ ॥

‘ जंबू ’ इत्यादि, महाहिमवति वर्षधरपर्वते महाहिमवत्कूटः, वैडूर्यकूटश्चेति द्वौ कूटौस्तः। अत्र सिद्धादि वैडूर्यपर्यन्तान्यष्टकूटानि सन्ति,, अत्र तेषु द्वितीयस्यान्यस्य च ग्रहणं द्विस्थानकानुरोधादिति। एवमग्रेऽपि सर्वत्र बोध्यम्। ‘ एवं ’ इत्यादि, एवं निषधपर्वते निषधकूटः, रुचक्रप्रभकूटश्चेति द्वौ कूटौ । ‘ जंबू ’ इत्यादि, जम्बूद्वीपस्थमन्दरस्योत्तरतो नीलवतिपर्वते नीलवत्कूटः । उपदर्शनकूटश्चेति द्वौ कूटौ । ‘ एवं ’ इत्यादि, एवं-पूर्वोक्तप्रकारेण रुक्मिपर्वते रुक्मिकूटः, मणिकाञ्चनकूटश्चेति द्वौ कूटौ । ‘ एव ’ इत्यादि, एवं शिखरिपर्वते शिखरिकूटः, तिगिच्छिकूटश्चेति द्वौ कूटौ स्तः इति ॥ सू० ३१ ॥

अतः यहां पर आदि और अन्त के ही दो कूटों का ग्रहण कर उनका कथन वक्ता ने किया है महाहिमवान् नामके वर्षधर पर्वत पर एक महाहिमवत्कूट और दूसरा वैडूर्यकूट ऐसे ये दो कूट हैं । यहां सिद्ध आदि कूटों से लेकर वैडूर्यकूट तक आठ कूट हैं परन्तु यहां द्विस्थानक के अनुरोध से सूत्रकार ने आदि और अन्त के दो कूटों का ही ग्रहण किया है इसी प्रकार का कथन आगे भी समझना चाहिये निषधपर्वत पर निषधकूट और रुचक्रप्रभकूट ये दो कूट हैं जम्बूद्वीप के मन्दर की उत्तरदिशा में नीलवान् पर्वत पर नीलवत्कूट और उपदर्शनकूट ऐसे ये दो कूट हैं रुक्मिपर्वतपर रुक्मिकूट और मणिकाञ्चन दो कूट हैं शिखरिपर्वत पर शिखरिकूट और तिगिच्छिकूट ये दो कूट हैं ॥ ३१ ॥

डोवाथी पडेला अने छेडला इटने ज अडणु करवामां आवेल छे, कारणु के ने वणुंन थाय छे ते वज्जतानी विवक्षाने आधीन डोय छे कहु पणु छे के—

“ कत्थइ वसगहण ” इत्यादि तेथी ज वज्जताये ( सूत्रकारे ) आदि अने अन्तना जे इटने अडणु करीने अडी तेमनु वणुंन कथुं छे मडाडिमवान् नामना वर्षधर पर्वतपर मडाडिमवत्कूट अने वैडूर्यकूट नामना जे इट छे अडी सिद्ध आदिथी लधने वैडूर्य पर्यन्तना आठ इट छे, परन्तु द्विस्थानकने अधिकार बालतो डोवाथी अडी पणु प्रथम अने छेडला इटनी ज वात कर वामां आवी छे आ प्रकारनु कथन आगण पणु अमणु लेवु निषध पर्वतपर निषधकूट अने रुचक्रप्रभकूट नामना जे इट छे ज जम्बूद्वीपना मन्दर पर्वतनी उत्तर दिशाभा नीलवान् पर्वतपर नीलवत्कूट अने उपदर्शनकूट नामना जे इट छे रुक्मि पर्वतपर शिखरिकूट अने तिगिच्छिकूट नामना जे इट छे सू ३१

વજ્રકપાટપિહિતા ષટ્પદમધ્ય દ્વિયોજનાન્તરામ્યાં ત્રિયોજનવિસ્તારાશ્યામ્નમ્નજલા  
 નિમગ્નજલામિપાનામ્યાં નદીમ્યાં યુક્તાઽસ્તિ । તસ્યૈવ પૂર્વમાગત એવમેવ પૂર્વોક્ત  
 ત્રિંશ્લેષણવિશિષ્ટા સ્વઘ્નપપાતગુહા વર્ષત ઇતિ । 'તસ્યજ' ઇત્યાદિ, તપ્ર-તયોર્ગૃહ્યો  
 દ્વૌ દેવૌ પરિચસત । તપ્ર તમિસ્રગુહાયાં કૃતમાલ્યકા, સ્વઘ્નપપાતગુહાયાં ચ નૃત્ય  
 માલ્યક ઇતિ । 'પરાવપ્' ઇત્યાદિ, પેરવતાણ્યે ધીર્ધવૈતાઢ્યપર્વતેઽપ્યેવમેવ  
 ગુહાવક્તવ્યતા દેવવક્તવ્યતા ચ શાશ્યેતિ । 'જંબૂ' ઇત્યાદિ, જમ્બૂદ્વીપે મન્દરપર્વ  
 તસ્ય દક્ષિણતઃ શુભ્રહિમવરતિર્વર્તે શુભ્રહિમવરકૂટ, વૈશ્રવણકૂટશ્ચેતિ દ્વૌ કૂટૌસ્તા ।  
 તપ્ર વહ્ય કૂટાઃ સન્તિ, તેપાં મધ્યે આઘન્તયોરેષ ગ્રહણ દ્વિસ્થાનકાનુરોપાત્,  
 વક્તુર્વિવસાધીનસ્વાઘ ।

इसका द्वार घिजघद्वार के जितनाप्रमाण घाला है इसमें वज्र के कपाट  
 छगे हुए हैं बीच में यह द्वियोजन के अन्तर से तीन योजन बिस्तार  
 घाली तमग्नजला और निमग्नजला नामकी दो नदियों से युक्त है ।  
 स्वघ्नप्रपातगुफा उसके पूर्वभाग में है इसका स्वघ्नप्रपातगुफा का वर्णन  
 भी तमिस्रागुफा के जैसा ही है इन दोनों गुफाओं में दो देव रहते हैं  
 तमिस्रागुफा में कृतमाल्यक और स्वघ्नप्रपातगुफा में नृतमाल्यक देव रहता  
 है पेरघ्न नामके दीर्घ वैताढ्य पर्वत के संघषमें भी इसी प्रकार से गुहा  
 की वक्त्ररूपता और देव की वक्त्ररूपता कहनी चाहिये इसी तरह जम्बूद्वीप  
 में मन्दरपर्वत की दक्षिणदिशा शुभ्रह्रिमघान् पर्वत पर शुभ्रह्रिमवल्कूट  
 और वैश्रवणकूट ये दो कूट हैं । यद्यपि वहां पर अनेक कूट हैं परन्तु  
 यहां पर आदि और अन्त के कूटों का ही ग्रहण हुआ है क्योंकि यहां  
 पर द्विस्थानकका प्रकरण चल रहा है । तथा वर्णन जो होता है वह वक्त्रा  
 की विद्यभाके अधीन होता है कहा भी है—“कूपह दसगगर्ण” इत्यादि ।

અતુરશ્ચ સસ્થાનવાણી છે તેના દ્વારતુ પ્રમાણ વિજ્રવદ્વારના જેટલું જ છે તેને  
 વજ્રના કપાટ કાપાડેલાં છે તેની વચ્ચે બે યોજનથી ત્રણ યોજનના વિસ્તારવાળી  
 ઉન્મગ્નજલા અને નિમગ્નજલા નામની નદીઓ વહે છે. તે દીર્ઘવૈતાઢ્યના પૂર્વ ભાગમાં  
 જઠપ્રપાત નામની ગુફા છે, તે ગુફાતુ વજ્રન તમિસ્રા ગુફાના વજ્રન પ્રમાણે  
 સમજતું તે બન્ને ગુફામાં બે દેવ રહે છે, તમિસ્રા ગુફામાં કૃતમાલ્યક અને  
 જઠપ્રપાત ગુફામાં નૃત્યમાલ્યક નામના દેવો રહે છે એશ્વત્ નામના દીર્ઘ  
 વૈતાઢ્ય પર્વતની ગુફાઓતુ વજ્રન અને દેવોતુ વજ્રન પણ ઉપરના વજ્રન  
 પ્રમાણે જ સમજતું એજ પ્રમાણે જ જૂઝીપની મન્દર પર્વતની દક્ષિણ દિશામાં  
 આવેલા શુભ્રહિમઘાન્ પર્વતપર હિમવલ્કૂટ અને વૈશ્રવણકૂટ નામના બે કૂટ છે.  
 બે કે ત્યાં અનેક કૂટ છે છતાં પણ અહીં દ્વિસ્થાનકનું પ્રકરણ ચાલતું

ઉક્તञ्च—“ કત્થઙ્ઠ દેસગ્ગહણં, કત્થઙ્ઠ ધેપ્પંતિ નિરવસેસાઙ્ઠ ।

ઉક્કમકમજુત્તાઙ્ઠં, કારણવસથો નિઉત્તાઙ્ઠં ॥૧॥ ” ઇતિ ।

છાયા—કુત્રાપિ દેસગ્ગહણં, કુત્રાપિ ગૃહ્ણન્તિ નિરવશેષાણિ ।

ઉક્કમકમયુક્તાનિ, કારણવશતો નિયુક્તાનિ ॥ ૧ ॥

‘ જંબૂ ’ ઇત્યાદિ, મહાહિમવતિ વર્ષધરપર્વતે મહાહિમવત્કૂટ, વૈદ્યૂર્યકૂટઞ્ચેતિ દ્વૌ કૂટૌસ્તઃ। અત્ર સિદ્ધાદિ વૈદ્યૂર્યપર્યન્નાન્યકૂટાનિ સન્તિ,, અત્ર તેષુ દ્વિતીયસ્યાન્ત્યસ્ય ચ ગ્રહણં દ્વિસ્થાનકાનુરોધાદિતિ। એવમગ્રેઽપિ સર્વત્ર વોધ્યમ્ । ‘ એવં ’ ઇત્યાદિ, એવં નિષધપર્વતે નિષધકૂટઃ, રુચકપ્રમ્હકૂટઞ્ચેતિ દ્વૌ કૂટૌ । ‘ જંબૂ ’ ઇત્યાદિ, જમ્બૂદ્વીપસ્થમન્દરસ્યોત્તરતો નીલવતિપર્વતે નીલવત્કૂટઃ । ઉપદર્શનકૂટઞ્ચેતિ દ્વૌ કૂટૌ । ‘ એવં ’ ઇત્યાદિ, એવં-પૂર્વોક્તપ્રકારેણ રુક્મિપર્વતે રુક્મિકૂટઃ, મણિકાશ્ચનકૂટઞ્ચેતિ દ્વૌ કૂટૌ । ‘ એવ ’ ઇત્યાદિ, એવં શિખરિપર્વતે શિખરિકૂટઃ, તિગિચ્છિકૂટઞ્ચેતિ દ્વૌ કૂટૌ સ્તઃ ઇતિ ॥ સૂ. ૩૧ ॥

અતઃ યહાં પર આદિ ઓર અન્ત કે હી દો કૂટૌં કા ગ્રહણ કર ઉનકા કથન વક્તા ને કિયા હૈ મહાહિમવાન્ નામકે વર્ષધર પર્વત પર એક મહાહિમવત્કૂટ ઓર દૂસરા વૈદ્યૂર્યકૂટ એસે યે દો કૂટ હૈં । યહાં સિદ્ધ આદિ કૂટૌં સે લેકર વૈદ્યૂર્યકૂટ તક આઠ કૂટ હૈં પરન્તુ યહાં દ્વિસ્થાનક કે અનુરોધ સે સૂત્રકાર ને આદિ ઓર અન્ત કે દો કૂટૌં કા હી ગ્રહણ કિયા હૈ ઇસી પ્રકાર કા કથન આગે ઓ સમજ્ઞના ચાહિયે નિષધપર્વત પર નિષધકૂટ ઓર રુચકપ્રમ્હકૂટ યે દો કૂટ હૈં જમ્બૂદ્વીપ કે મન્દર કી ઉત્તરદિશા ઁં નીલવાન્ પર્વત પર નીલવત્કૂટ ઓર ઉપદર્શનકૂટ એસે યે દો કૂટ હૈં રુક્મિપર્વતપર રુક્મિકૂટ ઓર મણિકાંચન દો કૂટ હૈં શિખરિપર્વત પર શિખરિકૂટ ઓર તિગિચ્છકૂટ યે દો કૂટ હૈં ॥ ૩૧ ॥

હોવાથી પહેલા અને છેલ્લા કૂટને જ ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે, કારણ કે જે વર્ણન થાય છે તે વક્તાની વિવક્ષાને આધીન હોય છે કહું પણ છે કે—

“ કત્થઙ્ઠ દેસગ્ગહણ ” ઇત્યાદિ તેથી જ વક્તાએ ( સૂત્રકારે ) આદિ અને અન્તના બે કૂટોને ગ્રહણ કરીને અહીં તેમનું વર્ણન કર્યું છે મહાહિમવાન નામના વર્ષધર પર્વતપર મહાહિમવત્કૂટ અને વૈદ્યૂર્યકૂટ નામના બે કૂટ છે અહીં સિદ્ધ આદિથી લઇને વૈદ્યૂર્ય પર્યન્તના આઠ કૂટ છે, પરન્તુ દ્વિસ્થાનકનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી અહીં પણ પ્રથમ અને છેલ્લા કૂટની જ વાત કરવામાં આવી છે આ પ્રકારનું કથન આગળ પણ સમજી લેવું નિષધ પર્વતપર નિષધકૂટ અને રુચકપ્રમ્હકૂટ નામના બે કૂટ છે જમ્બૂદ્વીપના મન્દર પર્વતની ઉત્તર દિશામાં નીલવાન્ પર્વતપર નીલવત્કૂટ અને ઉપદર્શનકૂટ નામના બે કૂટ છે. રુક્મિ પર્વતપર શિખરિકૂટ અને તિગિચ્છકૂટ નામના બે કૂટ છે સૂ. ૩૧



मूम-जवूमदरस्त पव्वयस्त उत्तरदाहिणेणं चुह्महिमवत

सिहरीसु वासहरपव्वपसु दो महइहा पणत्ता वहुसमतुल्ला  
 अविसेसमणात्ता अणमण्ण णाइवइति आयामविक्खभोच्च  
 त्तोवेहसठाणपरिणाहेणं, त जहा - पउमइहे चैव पुढरीयइहे  
 चैव । तत्थण दो देवयाओ महिइियाओ जाव पलिओवमट्टि  
 इयाओ परिवसति, त जहा-सिरी चैव लच्छी चैव । एव महा  
 महाहिमवतरुप्पीसु वासहरपव्वपसु दो महइहा पणत्ता, वहु  
 सम० जाव त जहा-महापउमइहे चैव महापोढरीयइहे चैव ।  
 देवयाओ हिरी चैव बुद्धी चैव । एव निसढनीलवतेसु वासहर  
 पव्वपसु तिगिछिइहे चैव केसरिइहे चैव । देवयाओ धिई चैव  
 फिच्ची चैव । जवूमदरस्त पव्वयस्त दाहिणेण महाहिमवताओ  
 वासहरपव्वयाओ महापउमइहाओ दो महाणईओ पव्वहति, त  
 जहा-रोहिया चैव हरिकता चैव । एव निसढाओ वासहरपव्व  
 याओ तिगिछिइहाओ दो महापईओ पव्वहति, त जहा हरिञ्चैव  
 सीओआ चैव । जवूमदरस्त पव्वयस्त उत्तरेण नीलवताओ वास  
 हरपव्वयाओ केसरिइहाओ दो महाणईओ पव्वहति, त जहा-  
 सीया चैव नारिकता चैव । एव रुप्पीओ वासहरपव्वयाओ महा  
 पोढरीयइहाओ दो महाणईओ पव्वहति, त जहा-णरकता चैव  
 रुप्पकूला चैव । जवूमदरस्त पव्वयस्त दाहिणेण भारहेवासे दो  
 पवायइहा पणत्ता वहुसम० जाव त जहा गगण्पवायइहे चैव  
 सिंधुप्पवायइहे चैव । एव हेमवपवासे दो पवायइहा पणत्ता,

बहुसम० जाव तं जहा--रोहियप्पवायदहे चेव रोहियंसप्पवायदहे  
 चेव । जंबूमंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं हरिवासे वासे दो पवाय-  
 दहा पणत्ता बहुसम० जाव तं जहा--हरिप्पवायदहे चेव हरि-  
 कंतप्पवायदहे चेव । जंबूमंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं महा-  
 विदेहवासे दो पवायदहा पणत्ता बहुसम० जाव तं जहा--  
 सीयप्पवायदहे चेव सीतोदप्पवायदहे चेव । जंबू मंदरस्स पव्वयस्स  
 उत्तरेणं रम्मए वासे दो पवायदहा पणत्ता बहुसम० जाव तं जहा  
 --णरकंतप्पवायदहे चेव णारीकंतप्पवायदहे चेव । एवं हेरणवए  
 वासे दो पवायदहा पणत्ता- बहुसम० जाव तं जहा--सुवन्नकूल-  
 प्पवायदहे चेव रूप्पकूलप्पवायदहे चेव । जंबू मंदरस्स पव्वयस्स  
 उत्तरेणं एरवएवासे दो पवायदहा पणत्ता बहुसम० जाव तं जहा  
 रत्तप्पवायदहे चेव रत्तवइप्पवायदहे चेव । जंबू मंदरस्स पव्वयस्स  
 दाहिणेणं भारहेवासे दो महाणईओ पणत्ताओ बहुसम० जाव तं  
 जहा—गंगा चेव सिंधू चेव । एवं जहा पवायदहा तथा णईओ  
 भाणियठ्ठाओ जाव एरवए वासे दो महाणईओ पणत्ताओ  
 बहुसमतुल्लाओ जाव तं जहा—रत्ता चेव रत्तवई चेव ॥सू०३२॥

छाया-जम्बू मन्दस्थ पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन चुल्ल (क्षुद्र) हिमवच्छिखरिणो-  
 र्बर्षधरपर्वतयो द्वौ महाह्रदौ प्रज्ञप्तौ बहुसमतुल्यौ अविशेषौ अनानात्वौ अन्योन्यं  
 नातिवर्त्तेते, आयामविष्कम्भोच्चत्वोद्वेधसंस्थानपरिणाहेन, तद्यथा - पद्महृदश्चैव

‘जंबू मंदरस्स पव्वयस्स’ इत्यादि ।

टीकार्थ-जम्बूद्वीपस्थ सुमेरुपर्वतकी उत्तरदिशास्ये और दक्षिण दिशामें  
 क्षुद्रहिमवान् पर्वत एवं शिखरी पर्वतके ऊपर दो महाह्रद द्रव्य कहे गये हैं

“ जंबूमंदरस्स पव्वयस्स ” इत्यादि—

टीकार्थ—जम्बूद्वीपमा आवेदा सुमेरु पर्वतनी उत्तर दिशामां अने दक्षिण  
 दिशामां आवेदा क्षुद्रहिमवान् अने शिखरी पर्वतपर जे मडा खट (सरोवर)

पौण्डरीकहृदयैव । सप्त स्वस्त्ये देवते महर्दिके यावत् पत्न्योपमस्थितिके परि  
 षसतः, सप्तया-वीर्यैव लक्ष्मीशैव । एव महाहिमवद्भुक्तिमणोर्धर्षपरपर्वतयो द्वौ  
 महाहृदौ मग्नौ, बहुसम० यावत्-सप्तया-महापद्महृदयैव महापौण्डरीकहृदयैव ।  
 देवते-ह्रीदयैव बुद्धिशैव । एव निपचनीलपर्वतवर्षपरपर्वतयोस्तिगिच्छिहृदयैव  
 केशरिहृदयैव । देवते-वृत्तिशैव कीर्तिशैव । जम्भूमदरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन  
 महाहिमवतो नर्षपरपर्वतात् महापद्महृदात् द्वे महानयो मयहतः, सप्तया-रोहिता

ये दोनो महाहृद परस्परमें पहिलेके कथनके अनुसार-बहुसमतुल्य आदि  
 विशेषणोंवाले हैं आयाम, विष्कम्भ, उच्चता, उद्वेग, (गहराई) सस्थान और  
 परिणाह विशालताकी अपेक्षा ये दोनो परापर हैं। इन दो महाहृदोंके नाम हैं  
 पद्महृद और पौण्डरीकहृद, इनमें महाशक्ति आदि विशेषणोंसे सप्तम दो  
 देवियां निवास करती हैं इनकी स्थिति एक पत्न्योपम की है ये देवियां  
 श्री और लक्ष्मी इस नामवाली हैं। इसी तरह महाहिमवान् पर्वत और  
 रुक्मी पर्वत इन दो पर्वतों पर दो महाहृद हैं ये भी परस्पर में बहुसम  
 आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाले हैं इन दो महाहृदों के नाम हैं महापद्म  
 और महापुण्डरीक इनमें दो देवियां रहती हैं इनके नाम हैं ह्री देवी  
 और बुद्धिदेवी इसी तरह से निपचपर्वत और नीलपर्वत इन दो पर्वतों  
 पर भी तिगिच्छहृद और केशरिहृद ये दो हृद हैं इनमें भी दो देवियां  
 रहती हैं इनके नाम हैं वृत्तिदेवी और कीर्तिदेवी।

जम्भूदीपस्य सुमेरुपर्वत की दक्षिण दिशा तरफ महाहिमवान् धर्ष  
 परपर्वत पर जो महापद्महृद है उससे दो महानदियां निकली हैं इनके

ॐ ते जन्ने हृद बहु समतुल्य आदि पूर्वोक्त विशेषणोंवाली ॐ-लक्ष्मी,  
 पद्मोत्था ॐ-श्री, उद्वेग सस्थान जने परिषिन्नी अपेक्षाके तेजो जगान  
 ॐ तेमनां नाम नीषे प्रभावे ॐ-(१) पद्म हृद जने (२) पुण्डरीक हृद तेमां  
 श्री जने लक्ष्मी नामनी के देवीजो निवास करे ॐ ते जन्ने देवीजो महर्दिके  
 आदि विशेषणोंकी मुक्ता ॐ जने तेमनी स्थिति जेके पत्न्योपमनी ॐ जेज  
 प्रभावे महाहिमवान् जने रुक्मि पर्वतोपर के महाहृद ॐ तेमनां नाम  
 महा पद्म जने महा पुण्डरीक ॐ ते जन्ने हृदो पद्म बहुसम आदि विशेष  
 णोंकी मुक्ता होवाकी जेकसरथा लाजे ॐ तेमां अनुक्रमे ह्री जने बुद्धि  
 नामनी के देवीजो निवास करे ॐ जेज प्रभावे निपच पर्वत जने नील  
 पर्वतपर तिगिच्छहृद जने केशरीहृद नामना के हृद ॐ तेमां वृत्तिदेवी जने  
 कीर्तिदेवी नामनी के देवीजो निवास करे ॐ

जम्भूदीपमां आवेत्वा सुमेरु पर्वतानी दक्षिण दिशा तरफ आवेत्वा महा

चैव हरिकान्ता चैव । एव निपथात् वर्षधरपर्वतात् तिगिच्छिहदात् द्वे महानद्यौ प्रवहतः, तद्यथा-हरित् चैव सीतोदा चैव । जम्बू मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरेण नीलवतो वर्षधरपर्वतात् केशरिहदात् द्वे महानद्यौ प्रवहतः, तद्यथा-सीता चैव नारीकान्ता चैव । एवं रुक्मिणो वर्षधरपर्वतात् महापुण्डरीकहदात् द्वे महानद्यौ प्रवहतः, तद्यथा-नरकान्ता चैव रूप्यकूला चैव । जम्बू मन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन भारते वर्षे द्वौ प्रपातहदौ प्रज्ञप्तौ, बहुसम० यावत् तद्यथा-गङ्गाप्रपातहदश्चैव, सिन्धुप्रपातहदश्चैव । एवं हैमवते वर्षे द्वौ प्रपातहदौ प्रज्ञप्तौ, बहुसम० यावत् तद्यथा-रोहितप्रपातहदश्चैव रोहितांशप्रपातहदश्चैव । जम्बूमन्दरस्य पर्वतस्य दक्षिणेन हरि वर्षे द्वौ प्रपातहदौ प्रज्ञप्तौ बहुसम० यावत् तद्यथा-हरिप्रपातहदश्चैव हरिका-

नाम हैं रोहिता और हरिकान्ता इसी प्रकार निपथ वर्षधर पर्वत पर जो तिगिच्छिहद है उससे दो महानदियां निकली हैं इनके नाम हैं हरित् और सीतोदा, इसी तरह जंबूद्वीपस्थ मंदरपर्वत की उत्तर की ओर जो नीलवन्त वर्षधर पर्वत है और उस पर जो केशरीद्रह है उससे दो महानदियां निकली हैं इनके नाम हैं सीता और नारीकान्ता इसी तरह रुक्मी वर्षधर पर्वत पर महापुण्डरीक जो हद है उससे नरकान्ता और रूप्यकूला ये दो महानदियां निकली हैं । इसी तरह जंबूद्वीपस्थ मन्दर पर्वत की दाहिनी ओर जो भरतवर्ष है उसमें दो प्रपात हद कहे गये हैं ये प्रपातहद बहुसम आदि विशेषगोंवाले हैं इनके नाम गंगाप्रपातहद-द्रह और सिन्धुप्रपातहद हैं। इसी तरहसे हैमवत क्षेत्रमें दो प्रपातहद हैं ये दोनों प्रपातहद भी बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाले हैं । इनके

द्विभवान् वर्षधर पर्वतपर जे मंडापद्म ङड द्रड-(सरोवर) छे, तेमाथी जे मंडा नदीओ नीकणे छे, तेमनां नाम रोहिता अने हरिकान्ता छे जेअ प्रमाणे निपथ वर्षधर पर्वतपर जे तिगिच्छिहद छे तेमाथी हरित् अने सीतोदा नामनी जे मंडानदीओ नीकणे छे. जेअ प्रमाणे जम्बूद्वीपना सुमेरु पर्वतनी उत्तर दिशांमां आवेला नीलवन्त वर्षधर पर्वतपर आवेला केशरी नामना ङडमांथी सीता अने नारीकान्ता नामनी जे मंडानदीओ नीकणे छे जेअ प्रमाणे रुक्मि नामना वर्षधर पर्वतपर आवेला महापुण्डरीक ङडमांथी नरकान्ता अने रूप्यकूला नामनी जे नदीओ नीकणे छे. जेअ प्रमाणे जम्बूद्वीपना मन्दर पर्वतनी जमणी भागुओ जे भरतवर्ष छे तेमां जे प्रपातहद आवेलां छे, ते जन्ने प्रपातहद बहुसम आदि विशेषणोवाणा छे, तेमना नाम गंगाप्रपातहद अने सिन्धुप्रपातहद छे जेअ प्रमाणे हैमवत क्षेत्रमां पञ्च जे प्रपातहद छे, तेओ पञ्च बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणोथी युक्त छे. तेमनां नाम आ प्रमाणे

न्तप्रपातद्वयैव । जम्बू मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन महाविदेहवर्षे द्वौ प्रपात  
 इदौ मङ्गलौ, बहुसम० यावत् तथया-सीताप्रपातद्वयैव सीतोदप्रपातद्वयैव ।  
 जम्बूमन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरेण रम्यके वर्षे द्वौ प्रपातइदौ मङ्गलौ, बहुसम० यावत्  
 तथया-नरकान्तप्रपातद्वयैव, नारीकान्तप्रपातद्वयैव । एव हेरण्यवते वर्षे द्वौ  
 प्रपातइदौ मङ्गलौ बहुसम० यावत् तथया-सुवर्णकुलप्रपातद्वयैव रूप्यकूलप्रपात  
 द्वयैव । जम्बूमन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरेण ऐरवते वर्षे द्वौ प्रपातइदौ मङ्गलौ  
 बहुसम० यावत् तथया-रक्तप्रपातद्वयैव रक्तवत्प्रपातद्वयैव । जम्बू मन्दरस्य  
 पर्वतस्य दक्षिणेन मास्ते वर्षे द्वे महानद्यौ मङ्गलौ, बहुसम० यावत् तथया-मङ्ग

नाम ये हैं हरिप्रपातइ और हरिकान्तप्रपातइ जम्बूद्वीपस्थ जो मन्दर  
 पर्वत है उसकी उत्तरदक्षिण तरफ जो महाविदेहक्षेत्र है उसमें दो प्रपा  
 तइ हैं ये दोनों प्रपातइ पूर्वोक्त बहुसम आदि विशेषणों वाले हैं इनके  
 नाम हैं सीताप्रपातइ और सीतोदप्रपात इ जम्बूमन्दरपर्वत की उत्तर  
 दिशा तरफ रम्यकवर्ष क्षेत्र में दो प्रपातइ हैं ये दोनों इ पूर्वोक्त  
 बहुसम आदि विशेषणों वाले हैं इनके नाम हैं नरकान्तप्रपातइ और  
 नारीकान्तप्रपातइ इसी तरह हेरण्यवतवर्ष में दो प्रपातइ हैं ये भी  
 पूर्वोक्त बहुसम आदि विशेषणों वाले हैं इनके नाम हैं-सुवर्णकुलप्रपा  
 तइ और रूप्यकूलप्रपात इ इसी प्रकार जम्बूद्वीपस्थ मन्दर पर्वत की  
 उत्तरदिशा तरफ जो ऐरवत क्षेत्र है उसमें भी दो प्रपातइ हैं ये दोनों  
 इ भी परस्पर में बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणों वाले हैं इनके नाम  
 हैं-रक्तप्रपातइ और रक्तवत्प्रपात इ इसी प्रकार जम्बू मन्दरपर्वत की

छे-(१) हरिप्रपातइ और (२) हरिकान्तप्रपातइ जम्बूद्वीपस्थ आवेता  
 मन्दर ( सुमेरु ) पर्वतनी उत्तर-दक्षिण दिशाओं के महाविदेह क्षेत्र में दोनों  
 के प्रपातइ हैं दोनों पञ्च बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणोंवाली युक्त हैं  
 दोनों नाम सीताप्रपातइ और सीतोदप्रपातइ हैं जम्बूद्वीपस्थ मन्दर  
 पर्वतनी उत्तर दिशा तरफ रम्यकवर्ष क्षेत्रमें पञ्च पूर्वोक्त बहुसम आदि  
 विशेषणोंवाली के प्रपातइ हैं दोनों नाम नरकान्तप्रपातइ और नारीकान्त  
 प्रपातइ हैं जो प्रभावे हेरण्यवत वर्षमें पञ्च पूर्वोक्त बहुसम आदि  
 विशेषणोंवाली के हैं हैं दोनों नाम सुवर्णकुलप्रपातइ और रूप्यकूलप्रपात  
 हैं जो प्रभावे जम्बूद्वीपना सुमेरु पर्वतनी उत्तर दिशा तरफ के ऐरवतक्षेत्र  
 में दोनों पञ्च पूर्वोक्त बहुसम आदि विशेषणोंवाली के प्रपातइ हैं दोनों  
 नाम रक्तप्रपातइ और रक्तवत्प्रपातइ हैं जो प्रभावे जम्बूद्वीपना मन्दर

चैव सिन्धुश्चैव । एव यथा प्रपातहृदास्तथा नद्यो भणितव्याः यावत् ऐरवते वर्षे  
द्वे महानद्यौ प्रज्ञप्ते बहुसमतुल्ये यावत् तद्यथा-रक्ता चैव रक्तवतीचैव ॥सू० ३२॥

‘ जम्बू मंदरस्स ’ इत्यादि

टीका-व्याख्या सुगमा । नवरम्-जम्बू । मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदिशि हिमवति वर्ष-  
धरपर्वते पद्महृदः, दक्षिणदिशि पौण्डरीकहृदः । तत्र पद्महृदे श्रीदेवी, पौण्डरीकहृदे च  
लक्ष्मीदेवी ते पल्योपमस्थितिके परिवसति । एते द्वे देव्यौ भवनपतिनिकायाभ्यन्तर  
भूते, पल्योपमस्थितिकत्वात्तेषाम् । इदमुक्तं भवति-वन्तरदेवीनामुत्कर्षतोऽप्यर्थ-

दक्षिणदिशा तरफ जो भरतक्षेत्र है उसमें दो महानदियां कही गई हैं  
इन दोनों महानदियों का विस्तार आदि सब एकसा कहा गया है इन  
दोनों नदियों के नाम हैं-गंगा और सिन्धु इसी तरह से आगे के क्षेत्रों  
में भी प्रपातहृद और नदियों का कथन करना चाहिये-यावत् ऐरवत  
क्षेत्र में दो महानदियां कही गई हैं ये दोनों महानदियां भी पूर्वोक्त  
बहुसम आदि विशेषणों वाली हैं इनके नाम हैं-रक्ता और रक्तवती ।

इस सूत्र की व्याख्या सुगम है जम्बूमन्दर पर्वत की उत्तर दिशा में  
स्थित हिमवान् वर्षधर पर्वत पर पद्महृद है दक्षिण दिशा में पौण्डरीक  
हृद है पद्महृद में श्री देवी निवास करती है पौण्डरीक हृद में लक्ष्मीदेवी  
निवास करती है । इन देवियों की स्थिति एक पल्योपम की है ये दोनों  
देवियां भवनपति निकाय के भीतर की हैं । क्योंकि इन की भी स्थिति  
एक पल्योपम की होती है । तात्पर्य इस कथन का ऐसा है कि व्यन्तर

पर्वतनी दक्षिण दिशा तरफ जे भरतक्षेत्र छे, तेमां महानदीयो आवेली छे,  
ते अन्ने महानदीयोना विस्तार वगेरे ओकसरभां छे, तेमनां नाम गंगा  
अने सिंधु छे. ओज प्रभाणु पछीनां क्षेत्रांमां पणु प्रपातहृद अने नदीओनुं  
कथन करवु लेछये. “ औरवत क्षेत्रमां पणु रक्ता अने रक्तवती नामनी जे  
महानदीओ छे, तेओ पणु विस्तार आदिनी अपेक्षाओ ओकसरणी छे, ” आ  
कथन पर्यन्तनुं समस्त कथन अर्द्धी अहणु करवु लेछये

आ सूत्रनी व्याख्या सरण छे, जम्बूद्वीपना मन्दर पर्वतनी उत्तर दिशांमां  
आवेला हिमवान् वर्षधर पर्वतपर उत्तरे पद्महृद छे अने दक्षिणमां पुंडरीकहृद  
छे पद्महृदमां श्रीदेवी निवास करे छे अने पुंडरीकहृदमां लक्ष्मीदेवी निवास  
करे छे ते देवीओनी स्थिति ओक पल्योपमनी कही छे. ते अन्ने भवनपति  
निकायनी देवीओ छे, कारणु के ते देवीनी स्थिति ओक पल्योपमनी होय छे.  
आ कथननुं तात्पर्य नीचे प्रभाणु छे—

पत्न्योपमपरिमितमेवायुर्भवति । मरुतपतिदेवीनां तूत्कर्षतः सार्धचतुष्पत्न्योप  
मास्यापुरिति । एतन्मन्त्रे सर्वत्र व्याख्येयम् । एव यथा-यन्मानः प्रपातद्वास्तथा  
-उचक्षाम्न्यो नथो विद्मगाः । यावत् परवते वर्षे रक्ता रक्तवती चेति द्वे नथौ ॥

देवियों की उत्कृष्टस्थिति आद्ये पत्न्योपम की ही होती है और भवनप  
तिदेवियों की उत्कर्ष से स्थिति साठे चार पत्न्योपम की होती है इसी  
प्रकार से आगे सर्वत्र व्याख्या करना चाहिये जिसनामवाले प्रपात हू  
है उसी नामवाली नदियां हैं । यावत् पेरवत क्षेत्र में रक्ता और रक्तवती  
ये दो नदियां हैं । इते सक्षेपतः इस प्रकार से समझना चाहिये-

जम्बूद्वीप में भरत, हेमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और  
पेरवत ये ७ क्षेत्र हैं । इनका विभाग करने वाले पूर्व से पश्चिमतक लम्बे  
चौड़े हिमवत, महाहिमवत, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी ये ६  
वर्षधर पर्वत हैं । इन ६ वर्षधर पर्वतों के ऊपर प्रत्येक में क्रमशः पद्म,  
महापद्म, तिगिच्छ, केशरी, पुण्डरीक और महापुण्डरीक नाम के ६  
महाद्रु हैं इनमें प्रत्येक में श्री, शी, वृत्ति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी ये ६  
देवियां क्रमशः निवास करती हैं । इन सब की स्थिति एक पत्न्योपम  
की है । इन महाद्रुओं से गगा, १ सिन्धु २, रोहित ३, रोहितासा ४,  
हरित् - हरिकान्ता ६, सीता ७, सीतोदा ८, नारी ९ नरकान्ता १०,

०१-१० देवीज्योती उत्कृष्ट स्थिति नर्था पत्न्योपमनी कही छे, परन्तु  
भवनपति देवीज्योती उत्कृष्ट स्थिति शा पत्न्योपमनी कही छे तेषी आ जने  
देवीज्योने भवनपति जिहायनी देवीज्यो कडेवाभा आवेस छे आ प्रभावे  
आजग सवत्र व्याख्या करवी जेधजे. प्रपातद्द्वेषां तेष प्रपातद्द्वेषा नामवाणी  
नदीज्यो छे " पेरवत क्षेत्रभा रक्ता जने रक्तवती नामनी निमदानदीज्यो  
छे आ भवनपमन्तनु समस्त भवन जर्दी प्रदक्षु इरतु जेधजे आ भवनने  
सक्षिप्त सारांश नीधि प्रभावे समञ्जो।-

जम्बूद्वीपभां ७क्षेत्र हैमवत हरि विदेह, रम्यक हैरण्यवत जने पेरवत  
नामनां ७ क्षेत्र छे तेमने सुता पञ्चस्य पूर्वथी पश्चिम तरङ्ग देवायेका  
सुरादिभवान् महादिभवान् निषध नील रुक्मि जने शिखरी नामना ६  
वर्षधर पर्वतो छे ते छे वर्षधर पर्वतोपर अनुक्रमे पद्म, महापद्म, तिगिच्छ  
केशरी पुण्डरीक जने महापुण्डरीक नामना ६ महाद्रु आवेकां छे तेभां  
अनुक्रमे श्री, वृत्ति, कीर्ति बुद्धि जने लक्ष्मी नामनी ६ देवीज्यो निवास  
कर छे तेमनी ज्येक पत्न्योपमनी स्थिति छे आ महाद्रुओभायी (१) जगा  
(२) सिन्धु (३) रोहित, (४) रोहितासा (५) हरित्, (६) हरिकान्ता, (७)

जम्बूद्वीपाधिकारात् क्षेत्रव्यपदेश्यपुद्गलधर्माधिकाराच्च जम्बूद्वीपसम्बन्धि  
भरतादि सम्बन्धिकाललक्षणपर्यायधर्माननेकान् प्ररूपयन्नाह—

मूलम्—जंबुद्वीवे दीवे भरहेरवएसु वासेसु तीयाए उस्सपिणीए  
सुसमदूसमाए समाए दोसागरोवसकोडाकोडीओ काले होत्था१।

सुवर्णकूला ११, रूप्यकूला १२, और रक्ता १३, रक्तोदा १४, नामकी  
ये १४ महानदियां निकली हैं, जो इन सात क्षेत्रोंमें बहती है भरतक्षेत्र  
में गंगा सिन्धु, हैमवतक्षेत्र से रोहित और रोहितांसा, हरि वर्ष में  
हरित् हरिकान्ता, विदेहक्षेत्र मे सीता और सीतोदा, रम्यकवर्षमे नारी  
और नरकान्ता, हैरण्यवत् वर्ष मे सुवर्णकूला और रूप्यकूला, तथा  
ऐरवत क्षेत्रमे रक्ता और रक्तवती-रक्तोदा ये २ दो नदियां बहती हैं।  
इनमें प्रथम नदी, द्वितीय नदी और चौथी नदी ये तीन नदियां पद्महृद  
से निकली हैं। तीसरी और छठी नदी रोहित हरिकान्ता-महापद्महृद  
से निकली हैं। पांचवी और आठवीं महानदियां हरित् सीतोदा-तिगिच्छ  
हृद से निकली हैं-सातवीं और दशवीं महानदिया सीता नरकान्ता-  
केशरी हृद से निकली हैं। ९ वीं और १२ वीं महानदियां-नारी और  
रूप्यकूला-माहपुण्डरीकहृद से निकली हैं-तथा ग्यारहवीं और चौदहवीं  
ये ३ महानदियां-सुवर्णकूला, रक्ता और रक्तोदा-पुण्डरीकहृद से  
निकली हैं ॥ सू० ३२ ॥

सीता, (८) सीतोदा, (६, नारी, (१०) नरकान्ता, (११) सुवर्णकूला, (१२)  
रूप्यकूला, (१३) रक्ता, अने (१४) रक्तोदा नामकी १४ महानदीओ नीकणे  
छे, जे नदीओ ते सात क्षेत्रांमां वडे छे. भरत क्षेत्रमां गंगा अने सिंधु  
हैमवत क्षेत्रमां रोहित अने रोहितांसा, हरिवर्षमां हरित् अने हरिकान्ता,  
विदेह क्षेत्रमा सीता अने सीतोदा, रम्यक वर्षमा नारी अने नरकान्ता, हैर-  
ण्यवत वर्षमां सुवर्णकूला अने रूप्यकूला, तथा ऐरवत क्षेत्रमा रक्ता अने  
रक्तवती ( रक्तोदा ), आ अज्ये महानदीओ वडे छे तेमाथी पडेली, भील  
अने सोथी नदी पद्महृदमांथी नीकणे छे, त्रील अने छठी नदी ( रोहित अने  
हरिकान्ता ) महापद्महृदमाथी नीकणे छे, पाचमी अने आठमी ( हरित् अने  
सीतोदा ) महानदीओ तिगिच्छहृदमाथी नीकणे छे, सातमी अने दशमी  
( नारी अने रूप्यकूला ) माहपुण्डरीक हृदमाथी नीकणे छे, तथा अगियारमी,  
तेरमी अने चौदमी ( सुवर्णकूला, रक्ता, रक्तोदा ) महानदीओ पुण्डरीक  
हृदमाथी नीकणे छे ॥ २ ॥



एष इमीसे ओसपिणीए जाव ह्वइ २ । एव आगमिस्तीए  
 उस्सपिणीए जाव भविस्सइ ३ । जवुहीवे दीवे भरहेरवपसु  
 वासेसु तीताए उस्सपिणीए सुसमाए समाए मणुया दो  
 गाउयाइ उइ उच्चत्तेण होत्था ४ । दान्नि य पलिओवमाइ पर  
 माउ पालइत्था ५ । एव इमीसे ओसपिणीए जाव पालइत्था ६ ।  
 एव आगमेस्साए उस्सपिणीए जाव पालिस्सति ७ । जवुहीवे  
 दीवे भरहेरवपसु वासेसु एगजुगे एगममए दो अरिहत्तवसा उप  
 ज्जिंसु वा उपज्जति वा, उप्पज्जिस्सति वा ८ । एव चक्कवट्ठिंसा  
 ९, दससरवसा १० । जवुहीवे दीवे भरहेरवपसु वासेसु एगजुगे  
 एगसमए दो अरिहत्ता उप्पज्जिंसु वा, उपज्जति वा, उप्पज्जि  
 स्सति वा ११ । एव चक्कवट्ठिणो १२ । एव थलदेवा (दससरवसा)  
 जाव उप्पज्जिंसु वा उपज्जति वा उप्पज्जिस्सति वा १३ । जवु  
 हीवे दीवे दोसु कुरासु मणुया सया सुसमसुत्तम उत्तमामिहिं  
 पञ्चणुब्भवमाणा विहरति, त जहा-देवकुराए चेव उत्तरकुराए  
 चेव १४ । जवुहीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया सुसमसुत्तम  
 इहिं पञ्चणुब्भवमाणा विहरति, त जहा-हरिवासे चेव रम्म  
 गवासे चेव १५ । जवुहीवे दीवे दोसु वासेसु मणुया सया  
 सुसमदूसम उत्तमामिहिं पञ्चणुब्भवमाणा विहरति, त जहा-  
 हेमवए चेव परणवए चेव १६ । जवुहीवे दीवे दोसु खित्तसु  
 मणुया सयादूसमसुत्तम उत्तमामिहिं पञ्चणुब्भवमाणा विहरति,  
 त जहा-पुव्वविदेहे चेव अवरविदेहे चेव १७ । जवुहीवे दीवे

दोसु वासेसु मणुया छविहंपि कालं पच्चणुवभवमाणा विहरंति,  
तं जहा-भरहेचेव एरवए चेव १८ ॥ सू० ३३ ॥

छाया-जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोर्वर्षयोरतीतायामुत्सर्पिण्यां सुषमदुष्पमायाः  
समाया द्वे सागरोपमकोटिकोट्यौ कालोऽभवत् १ । एवमस्यामवसर्पिण्यां यावत्  
भवति २ । एवम् आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्यां यावत् भविष्यति ३ । जम्बूद्वीपे द्वीपे  
भरतैरवतयोर्वर्षयोरतीतायामुत्सर्पिण्यां सुषमाया समाया मनुजा द्वे गव्यूती ऊर्ध्व-

जम्बूद्वीप के अधिकार को लेकर एवं क्षेत्रव्यपदेश्यपुद्गलधर्म के  
अधिकार को लेकर अब सूत्रकार जम्बूद्वीपसंबंधी भरतादिक्षेत्र के अनेक  
कालरूप पर्यायधर्मों की प्ररूपणा करते हैं-‘जम्बूद्वीपे दीपे’ इत्यादि ।

जम्बूद्वीप नामके द्वीप में स्थित जो भरतक्षेत्र और ऐरवतक्षेत्र हैं  
इनमें उत्सर्पिणीकाल और अवसर्पिणीकाल ये दो काल होते हैं । जिसमें  
जीवोंके उपभोग आयु और शरीर आदि उत्तरोत्तर उत्सर्पण शील (वर्णादि  
वर्धनशील) होतेहैं वह उत्सर्पिणीकाल है और जिसमें ये सब अवसर्पणशील  
होते हैं वह अवसर्पिणीकाल है-इनमेंसे प्रत्येक कालके ६६ भेद हैं-जो  
पीछे कहे जा चुके हैं । अतीत उत्सर्पिणी काल में सुषमदुष्पमा नाम  
का जो तीसराकाल है वह दो कोडाकोडी सागरोपम का था इसी तरह  
इस वर्तमान अवसर्पिणी में भी वह दो कोडाकोडी सागरोपम का है  
तथा आगामी काल में जो उत्सर्पिणी आवेगी उसमें भी वह इतने ही

जम्बूद्वीपना अधिकार आदी रह्यो छे अने क्षेत्रव्यपदेश्य पुद्गल धर्मना  
अधिकार आद्य छे ते संबंधने अनुलक्षिने हवे सूत्रकार जम्बूद्वीपमा आवेलां  
भरतादि क्षेत्रना अनेक काणइप पर्यायधर्मोनी प्ररूपणा करे छे—

“जम्बूद्वीपे दीपे” इत्यदि—

जम्बूद्वीप नामना द्वीपना भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्रमां उत्सर्पिणीकाण  
अने अवसर्पिणीकाण, आ जे काण डोय छे जे काणमां लुवेना उपभोग,  
आयु अने शरीर आदि उत्तरोत्तर उत्सर्पणशील (वृद्धि पाभतां) डोय छे  
ते काणने उत्सर्पिणीकाण कडे छे, जेमां ते अधां अवसर्पणशील डोय छे ते  
काणने अवसर्पिणीकाण कडे छे. ते प्रत्येक काणना ६-६ भेद छे, ते प्रत्येक  
भेदनुं वर्षुन आगण करवामां आण्यु छे अतीत उत्सर्पिणीकाणने जे सुषम  
दुष्पमा नामना त्रीने भेद छे ते जे कोडाकोडी-सागरोपम काणप्रमाणेना हते।  
जे प्रमाणे आ वर्तमान अवसर्पिणीमा पणु जे कोडाकोडी-सागरोपमना ज  
छे. तथा भविष्यमां जे उत्सर्पिणी आवेशे तेमां पणु ते अटला ज प्रमाणेना

सुश्रुतेन अमवन् ४। द्वे च पश्योपम परमायुंरपालयन् ५, एवमस्यामुत्सर्पिण्यां  
 यावत् पालयन्ति ६, एवमागमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्या यावत् पालयिष्यन्ति ७।  
 जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोर्षर्षपोरेकसमये एकयुगे द्वौ अर्हद्विंशौ उदयघेतां वा  
 उत्पद्येते वा उत्पत्स्येते वा ८, एव चक्रवर्तिषशौ ९, दशारषशौ १०। जम्बूद्वीपे  
 द्वीपे भरतैरवतयोरेकसमये एकयुगे द्वौ अर्हन्तौ उदयघेतां वा उत्पद्येते वा उत्प

प्रमाण का होगा जम्बूद्वीप नामके इस द्वीप में भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी के द्वितीय सुपमाकाल में उत्पन्न हुए मनुष्य के शरीर की ऊँचाई दो गव्युति की अर्थात् दो कोप की थी उनकी उत्कृष्ट आयु दो पश्योपम की थी—इसी तरहसे इस भवसर्पिणी के भी सुपमाकाल में ऐसा ही होता है—इसी तरह से आगामी कालमें जो उत्सर्पिणी आवेगी उसमें भी सुपमाकाल में ऐसा ही होगा—अर्थात् दो पश्य की आयु होगी, दो कोश का शरीर होगा—जम्बूद्वीप नामके द्वीप में भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक समय में एक युग में दो अर्ह दश उत्पन्न हुए उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होंगे ८, इसी प्रकार से चक्रवर्ती वश और दो दशारषशों के संबंध में भी जानना चाहिये।

इसी तरह से इस जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक युग में एक समयमें दो अर्हन्त उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और

४३०. जम्बूद्वीप नामना आ द्वीपमा आवेता भरतक्षेत्रम् अने ऐरवत क्षेत्रमा अतीत उत्सर्पिणीना पील सुपमाकालमा उत्पन्न भवेता मनुष्योनी उँचाई ले गव्युतिनी कोटले के २०० धनुषनी कती तेमनु उत्कृष्ट आयु ले पश्योपमनु कर्तु आ अवसर्पिणीना सुपमाकालमा पशु ज्येत्तु ४ अने ३ अने कबिभ्यर्मा पशु उत्सर्पिणीना सुपमाकालमा ज्येत्तु ४ जतये—कोटले के ले पश्योपमनु आयु अने ले कोशनु शरीर ४३०. जम्बूद्वीप नामना द्वीपना भरतक्षेत्रमा अने ऐरवत क्षेत्रमा ज्येत्तु समथर्मा ज्येत्तु सुत्रर्मा ले अर्हदश उत्पन्न भया कता, उत्पन्न थाय ३ अने उत्पन्न भये. ज्येत्तु प्रमावे ज्येत्तु चक्रवर्ती वश अने ले दशार वशीना (वाशुदेवो) विषयर्मा पशु समथर्त्तु

आ शीते आ जम्बूद्वीपना भरत अने ऐरवत क्षेत्रमा ज्येत्तु सुत्रर्मा ज्येत्तु समथर्मा ले अर्हन्त उत्पन्न भया कता, उत्पन्न थाय ३ अने कबिभ्यर्मा पशु उत्पन्न भये. ज्येत्तु प्रमावे ले चक्रवर्ती, ले ज्येत्तु अने ले

त्स्येते वा ११ । एव चक्रवर्तिनो १२, एव बलदेवो, ( दशरवशो ) यावत् उदप  
 घेतां वा, उत्पद्येते वा, उत्पत्स्येते वा १३ । जम्बूद्वीपे द्वीपे द्विकेषु कुरुषु मनुजाः  
 सदा सुषमसुषमामुत्तमामृद्धिं प्राप्ताः ( तां ) प्रत्यनुभवन्तो विरहन्ति तद्यथा-देवकु-  
 रषु चैव उत्तरकुरुषु चैव १४ । जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोर्वर्षयोर्मनुजाः सदा सुषमामुत्त-  
 मामृद्धिं प्रत्यनुभवन्तो विरहन्ति, तद्यथा-हरिवर्षं चैव रम्यकवर्षं चैव १५ । जम्बूद्वीपे  
 द्वीपे द्वयोर्वर्षयोर्मनुजाः सदा सुषमदुष्पमामुत्तमामृद्धिं प्रत्यनुभवन्तो विरहन्ति,

आगे भी उत्पन्न होंगे ११, इसी प्रकार दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और  
 दो वासुदेव ( दशरवश ) उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते हैं और आगे भी  
 उत्पन्न होंगे । इसी प्रकार से जम्बूद्वीप में कुरुक्षेत्रों में मनुष्य सदा  
 सुषमसुषमा काल में उत्तम ऋद्धि को प्राप्त करने वाले हुए हैं, होते  
 हैं, और आगे भी वे होंगे । वे कुरु-देवकुरु और उत्तरकुरु ऐसे ये दो  
 हैं । इसी तरह से जम्बूद्वीपस्थ दो क्षेत्रों में उत्तम ऋद्धि को प्राप्त किये  
 हैं, वर्तमान में वे प्राप्त कर रहे हैं और आगे भी वे प्राप्त करेंगे वे दो  
 क्षेत्र हरिवर्ष और रम्यकवर्ष ये हैं । जम्बूद्वीप नामके इस द्वीप में दो  
 क्षेत्रों में मनुष्यों ने सुषमदुष्पमा काल में उत्तम ऋद्धि का अनुभव  
 किया है-वर्तमान में वे वहाँ इसका अनुभव कर रहे हैं और आगे भी  
 वे इसका अनुभव करेंगे वे दो क्षेत्र हैं हैमवत और हैरण्यवत-  
 इसी प्रकार से जम्बूद्वीप नामके इस द्वीप में दो क्षेत्रों के मनुष्यों ने  
 सदा दुष्पमसुषमा काल में उत्तम ऋद्धि को प्राप्त किया है, अब भी वे

वासुदेव ( दशरवश ) भूतकालमा उत्पन्न तथा इता, वर्तमानमा उत्पन्न थाय  
 छे अने भविष्यमां पणु उत्पन्न थशे. ओज प्रभाणु ज्जुद्वीपना कुरुक्षेत्रोमा  
 मनुष्य सदा सुषमसुषमा कालमां उत्पन्न ऋद्धिने प्राप्त करनारा रक्षा इता,  
 रडे छे अने रडेशे. उत्तरकुरु अने देवकुरु नामना जे कुरु छे आ रीते  
 ज्जुद्वीपमां आवेदां जे क्षेत्रोमां मनुष्योअे सदा सुषमकालमां उत्तम ऋद्धि  
 प्राप्त करी इती, वर्तमानमां पणु प्राप्त करे छे अने भविष्यमां पणु  
 प्राप्त करशे, ओवा क्षेत्रो हरिवर्ष अने रम्यकवर्ष छे ज्जुद्वीप नामना  
 आ द्वीपना जे क्षेत्रोमां मनुष्योअे सदा सुषमादुष्पमा कालमां उत्तम ऋद्धिने  
 अनुभव कर्यो छे, वर्तमानमां पणु उत्तम ऋद्धिने अनुभव करे छे अने  
 भविष्यमां पणु उत्तम ऋद्धिने अनुभव करशे ते जे क्षेत्रो हैमवत अने  
 हैरण्यवत छे ओज प्रभाणु ज्जुद्वीपमां आवेदां जे क्षेत्रोना मनुष्योअे सदा  
 दुष्पमसुषमां कालमा उत्तम ऋद्धिने अनुभव कर्यो छे, वर्तमानमां पणु करे छे  
 अने भविष्यमां पणु करशे, ते जे क्षेत्रोनां नाम पूर्वविदेह अने पश्चिमविदेह छे.

तद्यथा-इमवते चैव ऐरण्यवते चैव १६ । जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोः क्षेत्रयोर्मनुनाः  
सदा दुष्यमसुपनासुषमामृद्धि मत्पनुमवन्तो विहरन्ति, तद्यथा-पूर्वविदेहे चैव,  
अपरविदेहे चैव १७ । अम्बूद्वीपे द्वीपे द्वयोर्वर्षयोर्मनुनाः पञ्चविधमपि कालं  
मत्पनुमवन्तो विहरन्ति, तद्यथा-भरतश्चैव, ऐरवतश्चैव १८ ॥ सू० ३१ ॥

वहा उसे प्राप्त कर रहे हैं, और भागे भी वे उसे प्राप्त करेंगे वे दो क्षेत्र  
हैं पूर्वमहाविदेह और पश्चिम महाविदेह ।

इसी तरह से इस जम्बूद्वीप नामके द्वीप में दो क्षेत्रों में मनुष्यों ने  
पह प्रकारके काल का अनुभव किया है-वे दो क्षेत्र हैं भरतक्षेत्र और  
ऐरवतक्षेत्र ।

यह अष्टादश सूत्र है-इसका भाव सुगम है-परमायु का तात्पर्य  
षट्कृष्ट आयु है-पाँच वर्ष का एक युग होता है-अर्हद्दशसे दो अर्हत्तों  
का एक साय होना लिखा गया है-ये दो एक साय एकसमय में  
भरतक्षेत्र में और ऐरवतक्षेत्र में होते हैं ।

तात्पर्य इस सूत्र का ऐसा है-यह पहिले प्रकट कर दिया गया है  
कि भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में काल का परिचलन होता रहता है  
शेष क्षेत्रों में नहीं भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में वर्तमान में पंचम काल  
प्रवर्त रहा है इसकी स्थिति २१ हजार वर्ष की है इसके बाद जो छठा  
आरा आयेगा इसकी भी स्थिति २१ हजार वर्ष की है इस तरह से जब  
यह अषट्पिण्णी काल समाप्त हो आयेगा तब षट्पिण्णी काल का प्रथम

क्षेत्र प्रभाज्ये आ षण्णुद्वीपमा आवेदां वे क्षेत्राना मनुष्येभ्यो छत्रे  
प्रधारणा कालेना अनुभव कर्ते छे ते क्षेत्रे नां नाम भरतक्षेत्रे अने ऐरवत क्षेत्रे छे  
आ प्रधारणा १८ सूत्रे आभ्यां छे, ते सूत्रेनां व्यापार स्रज छे  
'परमायु' अट्टे छे षट्कृष्ट आयु पञ्च वर्षेनां अत्र युग भाव छे 'अर्हद्दश'  
आ पहना प्रयोगे द्वाश अत्र साय वे अत्र तेनां अस्तित्वणी वात कही छे  
ते अनेन अस्तित्व अत्र साय अत्र सभवे भरतक्षेत्रे अने ऐरवत क्षेत्रमा  
दर्शये छे

आ सूत्रेन तापसं नीचे प्रभाज्ये छे-अ वात तो आजग प्रकट कर्त्तव्यां  
आपी बुद्धि छे के भरतक्षेत्रे अने ऐरवत क्षेत्रमा कालं परिचलनं यत्तु रक्षे  
छे आक्षिणां क्षेत्रेमां मनु नधी, भरतक्षेत्रे अने ऐरवत क्षेत्रमा अन्वारे अत्र  
षट्पिण्णीनां पांचमी काल (आशे) अत्रे छे ते आराने २१ हजार वर्षेनां  
समय कही छे त्वारणां वे छे आशे आवये तेनी स्थिति पञ्च २१ हजार

भेद जो अवसर्पिणी का ६ द्वा काल है प्रारंभ होगा इसकी भी स्थिति २१००० वर्ष की है इसकी समाप्ति के बाद उत्सर्पिणी का द्वितीय काल जो अवसर्पिणी का पांचवां काल है प्रारंभ होगा इसकी स्थिति भी २१००० हजार वर्ष प्रमाण है जब यह भी समाप्त हो जावेगा तब उत्सर्पिणी का तृतीय काल जो अवसर्पिणी का ४ चौथा काल है प्रारंभ होगा इसका प्रमाण ४२ हजार वर्ष कम एक कोडा कोडी सागरोपम का है जब यह काल भी समाप्त हो जावेगा तब उत्सर्पिणी का चतुर्थ काल जो अवसर्पिणी का तृतीयकाल है प्रारंभ होगा इसका प्रमाण दो कोडाकोडी सागरोपम का है इसमें मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई एक कोसकी होती है एक पल्यप्रमाण स्थिति होती है जब यह उत्सर्पिणी काल का चतुर्थ आरक समाप्त हो जावेगा तब उत्सर्पिणी का पांचवां आरा जो अवसर्पिणी का द्वितीयकाल है प्रारंभ होगा इसका प्रमाण तीन कोडा कोडी सागरोपम का है यहां के मनुष्यों के शरीर की ऊंचाई दो कोस की होती है आयु दो पल्योपम की होती है जब उत्सर्पिणी का यह पांचवां आरा समाप्त हो जाता है तब उत्सर्पिणी का ६ द्वा आरा

वर्षानी ७ कही छे. आ प्रकारने आ अवसर्पिणीकाण न्यारे पूरे थशे, त्यारे उत्सर्पिणीना पडेला लेदइय पडेले आरे शइ थशे ते पडेले आरे अवसर्पिणीना छ्हा आरा जेवे हशे अने तेनी स्थिति २१००० वर्षानी हशे, त्यारभाह उत्सर्पिणीने भीजे आरे शइ थशे. ते अवसर्पिणीना पांचमा आरा जेवे हशे अने तेनी स्थिति पणु २१००० वर्षानी हशे त्यारभाह उत्सर्पिणीने त्रीजे आरे शइ थशे, जे अवसर्पिणीना चोथा आराना जेवे हशे. ते आरे अेक कोडाकोडी सागरोपम करतां ४२००० वर्ष प्रमाण न्यून हशे, न्यारे ते काण पणु समाप्त थशे त्यारे उत्सर्पिणीने चोथे आरे शइ थशे, जे अवसर्पिणीना त्रीजे आरा जेवे हशे, तेनी स्थिति जे कोडाकोडी सागरोपमनी कही छे ते आरामां मनुष्येना शरीरनी उंचाई अेक गाड जेटदी प्रमाण डोय छे अने आयु अेक पल्योपमनु डोय छे न्यारे उत्सर्पिणीने चोथे आरे पूरे थशे त्यारे उत्सर्पिणीना पांचमां आराने प्रारंभ थशे, जे अवसर्पिणीना भीजे आरा जेवे हशे ते आरे त्रणु कोडाकोडी सागरोपमनी स्थितिवाणे छे, ते आरामां मनुष्येना शरीरनी उंचाई जे गाड जेटदी डोय छे अने आयुध्य जे पल्योपमनु डोय छे न्यारे उत्सर्पिणीने ते पांचमे आरे पूरे थशे, त्यारे उत्सर्पिणीने छ्हा आरे शइ थशे ते आरे अवसर्पिणीना छ्हा आरा जेवे हशे, ते आरे आर कोडाकोडी सागरोपमने कही

ત્રીકા—' જગુરીવે દીવે ' इत्याद्यष्टादशधृती सुगमा । नवस्-परमायुः-  
उक्त्यमायु अपालयन्- अनुमन्वितस्म । एकयुगे पञ्चवर्षात्मके एकसमये-  
तस्याप्यकरिम्न समये । अर्द्धां वष =पचाहः अर्धवृष, तौ द्वौ मयत् , तत्रैको  
मरत्, द्वितीयपेरवत् ॥ सू० ३३ ॥

જો અયમર્ષિણી કાલ કા પ્રથમ મેદ હૈ પ્રારંભ હોના હૈ ઇસકા પ્રમાણ  
ચાર કોઠાકોઠી સાગરોપમ કા હૈ ઇમમે મનુષ્યોં કૈ શરીર કી ઝબાઈ  
ત્રીન કોમ હોતી હૈ આયુ ત્રીન પમ્પોપમ કી હોતી હૈ મહાચિદેહક્ષેત્ર  
મે સદા અઘસર્ષિણી કા ચૌથા કાલ હી રહતા હૈ ઝિમકા નામ કુપ્પમ  
સુપમા હૈ ઇમ ચિદેહક્ષેત્રકે પૂર્વમહાચિદેહ ઓર અપરમહાચિદેહ પેસે દો  
મેદ હૈ । હૈમવત, હરિ, ઓર દેવકુરુ ચે જહૂશીપસ્થ મન્દરકી દક્ષિણવિશા  
તરફ કૈ ક્ષેત્ર હૈ । યહાં હૈમવત્ક્ષેત્ર મેં નિરન્તર વસ્તર્ષિણી કા ચૌથા ઓર  
અઘસર્ષિણી કા ત્રીસરા કાલ કુપ્પમસુપમા પ્રવર્તતા હૈ—હરિવર્ષક્ષેત્ર મે  
નિરન્તર વસ્તર્ષિણી કા પાંચપાં કાલ ઓર અઘસર્ષિણી કા વૂસરા કાલ  
સુપમાપ્રવર્તતા હૈ દેવકુરુ મેં નિરન્તર વસ્તર્ષિણી કા ઇક લા કાલ ઓર  
અઘસર્ષિણી કા છટ્ટા કાલ પ્રવર્તતા હૈ । હૈરણ્યવત, કી વ્યવસ્થા યિલકુલ  
હૈમવત ક્ષેત્ર કૈ તુલ્ય હૈ રમ્યક વર્ષ કી વ્યવસ્થા યિલકુલ હરિવર્ષ ક્ષેત્ર  
કૈ સુલ્પ હૈ ઓર ઉત્તરકુરુ કી વ્યવસ્થા દેવકુરુ કૈ ઝૈસી હૈ મરતક્ષેત્ર  
ઓર હૈરવત ક્ષેત્ર મેં હી તીર્થકર, ચક્રવર્તી, યલદેવ ઘાસુદેવ ચે સઘ

છે, તે આશાના મનુષ્યોના શરીરની ઉંચાઈ ત્રણ ગાઉ જેટલી હોય છે  
અને આયુ ત્રણ પમ્પોપમતુ હોય છે

મહાચિદેહ ધૈત્રમાં સદા અવસર્ષિણીના ચૌથા આશા જ પ્રવત્તો હોય  
છે તે આશાને દુપ્પમ સુપમાકાળ કહે છે તે વિદેહધૈત્રના પૂર્વવિદેહ અને  
પશ્ચિમ વિદેહ નામના બે ભાગ છે હૈમવત, હરિ અને દેવકુરુ, બે જ જહૂશીપના  
મન્દર પવતની દક્ષિણ વિશા તરફ આવેલાં છે છે આ હૈમવત ધૈત્રમાં સદા  
ઉત્સર્ષિણીના ચૌથા અને અવસર્ષિણીના ત્રીજા કાળ જ પ્રવર્તે છે, તે કાળને  
દુપ્પમ સુપમાકાળ કહે છે હરિવર્ષ ધૈત્રમાં સદા ઉત્સર્ષિણીના પાંચથા અને  
અવસર્ષિણીના બીજા કાળ—સુપમા પ્રવર્તે છે દેવકુરુમાં નિરતર ઉત્સર્ષિણીના  
પ્રથમકાળ અને અવસર્ષિણીના છઠ્ઠા કાળ પ્રવર્તે છે હૈરણ્યવતમાં હૈમવત  
ધૈત્રનો કાળ સદા પ્રવત્ત છે રમ્યક વર્ષમાં હરિવર્ષ ધૈત્રના જેવો કાળ, અને  
ઉત્તર દેવકુરુના જેવો કાળ સદા પ્રવર્તે છે મરતધૈત્ર અને હૈરવત ધૈત્રમાં જ  
તીર્થકર, ચક્રવર્તી બરદેવ અને વામુદેવ વગેરે ૬૩ શક્તિકાન્ધ પુરુષો ઉત્પત્ત

पूर्वं जम्बूद्वीपे काललक्षणद्रव्यपर्यायविशेषा उक्ताः, साम्प्रतं तत्रैव कालपदाथ-  
व्यञ्जकानां ज्योतिष्काणां द्विस्थानानुपातेन प्ररूपणामाह—

मूलम्—जम्बूद्वीपे दीवे दो चंदा पभासिंसु वा पभासंति वा  
पभासिस्संति वा, दोसूरिया तविंसु वा तवंति वा तविस्संति  
वा । दो कत्तियाओ, दो रोहणिओ, दो मिगसिराओ, दो  
अद्दाओ एवं भाणियठवं जाव दो भरणीओ ।

“ कत्ति ये रोहिणिं सगसिरं, अद्दां य पुणव्वसूं य पूंसो य ।  
तत्तो वि अस्सलेसां, म्हा य दो फग्गुणीओ य ॥ १ ॥  
हेत्थो चित्ता साई, विसाहा तह य होइ अणुराहा ।  
जेठ्ठा मूलो पुव्वा य असाढा उत्तरा चव ॥ २ ॥  
अंभिई सर्वण धणिट्ठां, सयभिसथां दो य होंति भद्दवैयां ।  
रेवई अस्सिणि भरणी, णेयव्वा आणुपुव्वाए ॥ ३ ॥ ”

एवं गाहाणुसारेणं णेयठवं ।

दो अग्गी, दो पयावई, दो सोमा, दो र्द्धा, दो अदिई,  
दो वर्हस्सई, दो सप्पा, दो पिर्यरी, दो भगां, दो अज्जमां, दो  
सवियां, दो तँट्ठा, दो वाऊं, दो इंदंगी, दो मिन्ता, दो इंदौ,

तिरसठ शलाका के पुरुष उत्पन्न होते हैं अवसर्पिणी के चतुर्थकाल  
दुष्पमसुपमा में और किसी काल में अन्य क्षेत्रों में नहीं हाते हैं तथा  
भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में भी अन्यकाल में नहीं होते हैं—विदेहक्षेत्र  
में निषेध नहीं है । इस सब विषय को हृदय में धारण करके यह सूत्र  
गम्य है ॥ सू० ३३ ॥

थाय छे तेओ त्या अवसर्पिणीना याथा काणमां ( दुष्पम सुपमां ) न  
उत्पन्न थाय छे, भीजं केअ पणु काणमां उत्पन्न थता नथी अने अन्य क्षेत्रांमां  
पणु उत्पन्न थता नथी भरत अने ऐरवत क्षेत्रमां पणु तेओ अन्य केअ  
पणु काणमां उत्पन्न थता नथी विदेह क्षेत्रमा निषेध नथी. आ समस्त विषयने  
हृदयमां उतारवामां आवे ते ॥ सू० ३३ ॥



दो निरई, दो आऊ, दो विस्सा दो घन्हा, दो विण्हुं, दो वसू, दो वरुणा, दो अया, दो विवद्धी, दो पुस्सा, दो अस्सा दो जर्मा । दो इगालगा, दो वियालगा, दो लोहियक्खां, दो सणिन्धरा, दो आहुणिया, दो पाहुणिया, दो कणा, दो कणगा, दो कण कणगा, दो कणगघिताणगा, दो कणगसत्ताणगा, दो सोमा, दो सहियां, दो आसासणा, दो कज्जोवेगा, दो कब्बडगा, दो अय करंगा, दो दुदुभंगा, दो सखो, दो सखवन्ना, दो सखवन्नाभा, दो कसां, दो कसवन्ना, दो कसवन्नाभा, दो रुप्पी, दो रुप्पा भासा, दो णीलां दो णीलाभासां, दो भासा, दो भासरासी, दो तिलां, दो तिलपुप्फवण्णा, दो दगां, दो दगपषवन्ना, दो कौकां, दो कक्कधी, दो इदगीवीं, दो धूमकेऊं, दो हरी, दो पिंगला, दो बुंधा, दो सुक्का, दो घहस्सिह, दो रीहू, दो अगिथी, दो माणवगां, दो कासा, दो कासा, दो धुरा, दो पमुहा, दो वियेडां, दो विसधी, दो नियेला, दो पहल्लो, दो जडि याइलगा, दो अरुणा, दो अगिगिंछा, दो कार्लगा, दो महाकां लगा, दो सोत्थियां, दो सोत्थियां, दो वद्धमाणगा, (दो+ पूसमाणगा ६१, दो अकुसा ६२) दो पलवीं, दो निच्चा लोगां, दो णिच्चुज्जोयां, दो सयर्पभा, दो ओभासां, दो सेयकरां, दो खेमकरा, दो आभकरा, दो पभकरां, दो अपराजियां, दो अरयां, दो असोभा, दो यिगयसोगां, दो विमलीं, दो

वितलां, दो वितर्था, दो विसालां, दो सालां, दो सुंवया,  
दो अणिर्येडी, दो एगजडी, दो दुजडी, दो करैकरिगा, दो  
रायगलां, दो पुर्फकेऊ, दो भावकेऊ ॥ सू० ३४ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वौ चन्द्रौ प्रभासेतां वा प्रभासेते वा प्रभासिष्येते  
वा, द्वौ सूर्यौ अतपतां वा, तपतो वा, तपिष्यंतो वा । द्वे कृत्तिके, द्वे रोहिण्यां, द्वे  
मृगशीर्षे, द्वे आर्द्रे, एवं भणितव्यं यावत् द्वे भरण्यां ।

“ कृत्तिका रोहिणी मृगशिरः, आर्द्रा च पुनर्वसुश्च पुष्यश्च ।

ततोऽपि अश्लेषा मघा च द्वे फाल्गुन्यौ च ॥ १ ॥

हस्तश्चित्रा स्वाती विशाखा तथा च भवति अनुराधा ।

ज्येष्ठा मूलं पूर्वा च आषाढा उत्तरा चैव ॥ २ ॥

अभिजित् श्रवणं धनिष्ठा शतभिषग् द्वे च भवतः भाद्रपदे ।

रेवती अश्विनी भरणी ज्ञातव्यानि ( नक्षत्राणि ) आनुपूर्व्या ॥३॥”

एव गथानुसारेण ज्ञातव्यम् ।

द्वौ अग्नी, द्वौ प्रजापती, द्वौ सोमौ, द्वौ रुद्रौ, द्वे अदिती, द्वौ बृहस्पती, द्वौ  
सर्पौ, द्वौ पितरौ, द्वौ भगौ, द्वौ अर्यमणौ, द्वौ सवितारौ, द्वौ त्वष्टारौ, द्वौ वायु, द्वौ  
इन्द्राग्नी, द्वौ मित्रौ, द्वौ इन्द्रौ, द्वौ निर्ऋती, द्विके आपः, द्वौ विश्वौ, द्वौ ब्रह्माणौ,  
द्वौ विष्णु, द्वौ वसु, द्वौ वरुणौ, द्वौ अजौ, द्वे विवृद्धी, द्वौ पूषणौ, द्वौ अश्विनौ, द्वौ  
यमौ । द्वौ अद्भारकौ, द्वौ विकालकौ, द्वौ लोहिताक्षौ, द्वौ शनैश्वरौ, द्वौ आधुनिकौ  
( आधूर्णिकौ ) द्वौ प्राधूर्णिकौ, द्वौ कणौ, द्वौ कनकौ, द्वौ कनकनकौ, द्वौ कनक-  
वितानकौ, द्वौ कनकसन्तानकौ, द्वौ सोमौ, द्वौ सहितौ, द्वौ आश्वासनौ, द्वौ कार्यो-  
पकौ, द्वौ कर्वटकौ, द्वौ अजकरकौ, द्वौ दुन्दुभकौ, द्वौ शङ्खौ, द्वौ शङ्खवर्णौ, द्वौ शङ्ख-  
वर्णामौ, द्वौ कांस्यौ, द्वौ कांस्यवर्णौ, द्वौ कांस्यवर्णामौ, द्वौ रुक्मिणौ, द्वौ रुक्मा-  
भासौ, द्वौ नीलौ, द्वौ नीलाभासौ, द्वौ भस्मनौ, द्वौ भस्मराशी, द्वौ तिलौ, द्वौ  
तिलपुष्पवर्णौ, द्वौ दकौ, द्वौ दकपञ्चवर्णौ, द्वौ काकौ, द्वौ कर्कन्धु, द्वौ इन्द्रग्रीवौ, द्वौ  
धुमकेतू, द्वौ हरितौ द्वौ पिङ्गलौ, द्वौ बुधौ, द्वौ शुक्रौ, द्वौ बृहस्पती, द्वौ राहू, द्वौ  
अगस्त्यौ, द्वौ माणवकौ, द्वौ कासौ, द्वौ स्पशौ, द्वौ धुरौ, द्वौ प्रसुरतौ, द्वौ विकटौ,  
द्वौ विसन्धी, द्वौ नियल्लौ, द्वौ पादिकौ, द्वौ जटिलादिलकौ, द्वौ अरुणौ, द्वौ अग्रिलौ,  
द्वौ कालकौ, द्वौ महाकालकौ, द्वौ स्वस्तिकौ, द्वौ सौवस्तिकौ द्वौ वर्धमानकौ, ( द्वौ  
पुष्यमानकौ ६१, द्वौ अङ्कुशौ ६२, ) द्वौ मलम्बौ, द्वौ नित्यालोकौ, द्वौ नित्योद्घोतौ,

“ द्वौ पुष्पमानकौ द्वौ अङ्कुशौ ’ इमे द्वे नामान्तररूपेणस्तः, अतो न गणनीये ।

द्वौ स्वयंप्रभौ, द्वौ भवमासौ द्वौ श्रेयस्करौ, द्वौ क्षेमकरौ, द्वौ आमङ्कृतौ, द्वौ प्रमङ्कृतौ,  
 द्वौ अपरामितौ, द्वौ अरजसौ, द्वौ भञ्जोक्तौ, द्वौ विगवशोक्तौ, द्वौ विमसौ, द्वौ पितृशौ  
 द्वौ विप्रस्तौ, द्वौ विशालौ द्वौ शालौ, द्वौ सुप्रतौ, द्वौ अनिबर्त्सिनौ, द्वौ एकत्रदिनौ,  
 द्वौ द्वित्रदिनौ, द्वौ करकरिकौ, द्वौ रात्र्यागसौ, द्वौ पुष्पकेतु, द्वौ भावकेतु ।। १०१४ ।।

टीका—‘जमुद्वीप दीये’ इत्यादि ‘दो भावकेतु’ इत्येतं सर्वं निगदसिद्धम् ।  
 नवरम्-मम्युद्वीपे द्वीपे द्वौ चन्द्रौ ‘पमासिंहु वा’ इति भाभासेतां प्रकाशेते स्म-  
 भूतकाले, एव प्रमासते-वर्धमानकाले, प्रमासिष्यतेऽनागतकालेऽपीति शिवाङ्-  
 शिपयमिदं सूत्रम् । अनेन चन्द्रयोः साश्चतस्रं सूचितम् । एवमत्रेऽपि सूर्य-नक्षत्र-  
 तेष्वेताऽष्टाशीतिग्रहाणां शिपयऽपि भावनीयम् । एवं द्वौ सूर्यौ ‘तर्बिंहु वा’ इति  
 अतपतां वा, एवं तपताः, तपस्यतो वा । अत्र चन्द्रयोः सौम्यदीप्तिक्त्वात् प्रमास

। पहिले जमुद्वीप में काल के द्वारा होने वाले ब्रह्मपर्यायों का कथन  
 किया गया है अब वहीं पर उस काल के व्युत्पन्न जो ज्योतिष्क हैं  
 उनकी द्विस्थान के अनुरोध से प्ररूपणा की जाती है—(जमुद्वीपे दीये)  
 इत्यादि ।

टीकार्थ—“जमुद्वीपे दीये” यहांसे लेकर “दो भावकेतु” इस अन्तिम  
 पाठ तक का सब कथन इस सूत्र में जैसा कहा गया है वैसा ही है और  
 यह सुस्पष्ट है विशेष-जमुद्वीप नामके इस द्वीप में दो चन्द्रमा हैं मूल  
 काल में इन दोनोंने यहा प्रकाश दिया है, वर्तमान में ये दोनों प्रकाश  
 दे रहे हैं और आगामीकाल में भी ये दोनों प्रकाश देंगे इस प्रकार से  
 यह सूत्र त्रिकाल शिपयक है इस कथन से जमुद्वीप में दो चन्द्रमा साम्बत

जमुद्वीपमां काणना द्वारा अनारा ब्रह्मपर्यायेणु कथन पढेखाना सूत्रमां  
 करवाभां आ पुं छे हवे ते काणना अज्ज के ज्योतिष्के छे तेभनी अर्द्धी  
 द्विस्थानना अनुरोधने लधने प्ररूपणा करवाभां आवे छे—

“अद्वीपे दीये” इत्यादि—

टीकाथ—आ सूत्रपाठधी लधने ‘दो भावकेतु’ पदन्तना अन्तिम सूत्रने  
 भावार्थ बवे। अ सूत्र छे विशेष कथन नीधे प्रभावे समज्जु—

जमुद्वीप नामना आ द्वीपमां के चन्द्रमा छे मूलकाणमां ते जन्ने अन्त्र  
 अर्द्धी प्रकाशता लता, वर्तमानमां पञ्च तेज्जे अर्द्धी प्रकाशे छे जने अविष्यमां  
 पञ्च प्रकाशते रह्ये। आ दीये त्रजे काणने अनुरोधने आ सूत्रनुं कथन  
 करायुं छे, आ कथन द्वारा जे वाच प्ररूप करवाभां आवी छे के जमुद्वीपमां

नमात्रमुक्तम् । आदित्ययोश्च खररश्मिकत्वात्तपनमुक्तम् । ' दोकत्तिण ' इत्यादि । जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वे कृत्तिके-कृतिकानक्षत्रे । कृतिकाया द्वित्वं नक्षत्रापेक्षया, न तु तारकापेक्षयेति सर्वत्र बोध्यम् । एवं कृत्तिकात् आरभ्य भरणीपर्यन्तान्यष्टाविंशति-नक्षत्राणि प्रत्येक द्विसंख्यकानि विज्ञेयानि । तथैतेषु कृत्तिकाद्यष्टाविंशतिनक्षत्र-युग्मानामग्निं त आरभ्य यमपर्यन्ताः क्रमेणाष्टाविंशतिद्वयताः ( युग्मानि ) सन्तीति सूत्रतोऽवसेयम् । तथा—अङ्गारकादारभ्य भावकेतुपर्यन्तान्यष्टाशीतिर्ग्रहयुग्मानि सन्ति, तान्यपि सूत्रतो बोध्यानि ॥ ३४ ॥ सू० ३४ ॥

हैं ऐसा कहा गया है इसी तरह से आगे भी सूर्य, नक्षत्र, इनके देवता और ८८ ग्रहों के संबंध में भी जानना चाहिये

इस जम्बूद्वीप में दो सूर्य हैं भूतकाल में ये यहाँ तपे हैं, अब भी ये यहाँ तपते हैं और आगामीकाल में भी ये यहाँ तपेंगे चन्द्र का प्रकाश शीतल होता है इसलिये इसका प्रभासन कहा है और सूर्य तीक्ष्ण किरणों वाला होता है इस कारण इसका तपन कहा है जम्बूद्वीप में दो कृत्तिका नक्षत्र होते हैं नक्षत्र की अपेक्षा से ही कृत्तिका में द्वित्व कहा गया है तारक की अपेक्षा से नहीं ऐसा ही सर्वत्र समझना चाहिये इस तरह कृत्तिका से लेकर भरणि तक २८ नक्षत्र हैं वे प्रत्येक दो दो हैं, तथा कृत्तिका आदि २८ नक्षत्र युग्मों के अग्नि से लेकर यम तक क्रमशः २८ देवतायुग्म हैं—यह बात सूत्रसे ही जाननी चाहिये तथा अङ्गारक से लेकर भावकेतुतक ८८ ग्रहयुग्म हैं ये भी सूत्रसे ही जाननी चाहिये ॥ ३४ ॥

अने अन्द्रमा शाश्वत छे, अे न प्रभासे सूर्य, नक्षत्र, तेमना देवता अने ८८ ग्रहोना सभधमा पणु समञ्जुं लेधये.

आ न'पूद्वीपमां अे सूर्य छे लूतकाणमां तेअे अहीं तपता छता, पत्मानमा पणु तपे छे अने लविष्यमा पणु तपसे अद्रने प्रकाश शीतल होय छे, तेथी तेनी साथे प्रभासन शण्डने प्रयोग करायो छे सूर्य तीक्ष्ण किरणोवाणो होय छे, तेनी साथे 'तपन' पदने प्रयोग करायो छे. न'पू-द्वीपमां अे कृत्तिका नक्षत्र होय छे नक्षत्रनी अपेक्षाअे न कृत्तिकांमां द्वित्व प्रकट करवामा आयु छे—तारानी अपेक्षाअे द्वित्व प्रकट करायु नथी, अेवुं न कथन सर्वत्र समल लेवुं आ रीते कृत्तिकाथी लधने लरषि पर्यन्तना २८ नक्षत्रो छे. ते प्रत्येकमां द्वित्व अडणु करवुं लेधये तथा कृत्तिका आदि २८ नक्षत्रयुग्मोना अग्निथी लधने यम पर्यन्तना क्रमश. २८ देवतायुग्मो छे, अे वात सूत्रने आधारे समल लेवी लेधये तथा अङ्गारक ( मंगल ) थी लधने लावकेतु पर्यन्तना ८८ ग्रहयुग्मो छे, तेमने विषे पणु सूत्रमाथी भाडिती भेणवी लेवी. ॥ सू. ३४ ॥

जम्बूद्वीपाधिकारादेवेदमपरं वेदिकादिस्वरूपमाह—

मूलम्—जम्बुद्वीवस्त णं दीवस्त वेङ्गया दो गाठयाइ उडु  
 उच्चत्तेणं पणत्ता । लवणे णं समुहे दो जोयणसयसहस्ताइ  
 चक्रालविक्रमेणं पणत्ते । लवणस्त णं समुहस्त वेङ्गया  
 दो गाठयाइ उडु उच्चत्तेणं पणत्ता । धायईसडदीवे पुर  
 रिथमङ्गेण मदरस्त पव्वयस्त उत्तरदाहिणेणं दो वासा  
 पणत्ता घट्टसमतुष्ठा जाव त जहा—भरहे चेव परवप चेव ।  
 पथ जहा जम्बुद्वीवे तथा पस्थवि भाणियव्व जाव दोसु  
 वासेसु मण्णया छविहपि काल पच्चगुब्भवमाणा विहरति  
 त जहा—भरहे चेव परवप' चेव, णवर कूडसामली चेव  
 धायइरुक्खे चेव, देवा गरुले चेव वेणुदेवे, सुदसणे चेव ।  
 धायईसडदीवपच्चरिथमङ्गेणं मदरस्त पव्वयस्त उत्तरदाहि  
 णेणं दो वासा पणत्ता घट्टसम० जाव त जहा—भरहे चेव  
 परवप चेव, जाव छविहपि काल पच्चणुभवमाणा विह  
 रति, त जहा — भरहे चेव परवप चेव, णवर कूडसामली  
 चेव महाधायईरुक्खे चेव, देवा गरुले चेव वेणुदेवे पिय  
 दसणे चेव । धायईसडे णं दोषे दो भरहाइ, दो परवयाइ,  
 दो हेमवयाइ, दो हेरन्नवयाइ, दो हरिवासाइं दो रम्मग  
 वासाइ, दो पुषविदेहाइ, दो अवरविदेहाइ, दो देवकुराओ,  
 दो देवकुरुमहद्दुमा, दो देवकुरुमहद्दुमवासी देवा । दो  
 उत्तरकुराओ, दो उत्तरकुरुमहद्दुमवासी देवा । दो सुच्छहि

मवंता दो महाहिमवंता, दो निसढा, दो नीलवंता, दो  
रुप्पी, दो सिहरी, दो सद्दावाई, दो सद्दावायवासी साती  
देवा, दो वियडावाई, दो वियडावाइवासी पभासा देवा,  
दो गंधावाई, दो गंधावाईवासी अरुणा देवा, दो मालवंत-  
परियागवासी पउमा देवा । दो मालवंता, दो चित्तकूडा,  
दो पम्हकूडा, दो नलिणकूडा, दो एगसेला, दो तिकूडा,  
दो वेसमणकूडा, दो अंजणा, दो मायंजणा, दो सोमणसा,  
दो विज्जुप्पभा, दो अंकावाइ, दो पम्हावाई, दो आसीविसा,  
दो सुहावहा, दो चंदपव्या, दो सूरपव्या, दो णागपव्या,  
दो देवपव्या, दो गंधमायणा, दो उसुगारपव्या, दो चुल्ल-  
हिमवंतकूडा, दो वेसमणकूडा, दो महाहिमवंतकूडा, दो  
वेरुलियकूडा, दो निसढकूडा, दो रुयगकूडा, दो नीलवंत-  
कूडा, दो उवदंसणकूडा, दो रुप्पिकूडा, दो मणिकंचनकूडा,  
दो सिहरिकूडा, दो तिगिच्छिकूडा, दो पउमद्दहा, दो पउ-  
मद्दहवासिणीओ सिरिदेवीओ, दो महापउमद्दहवासिणीओ  
हिरीदेवीओ । एवं जाव पुंडरीयद्दहा दो पुंडरीयद्दहवासिणीओ,  
लच्छीदेवीओ, दो गंगप्पवायद्दहा जाव दो रत्तवइप्पवायद्दहा, दो  
रोहियाओ जाव दो रुप्पकूलाओ, दो गाहावईओ, दो पंकव-  
ईओ, दो तत्तजलाओ, दो मत्तजलाओ, दो उम्मत्तजलाओ,  
दो खीरोयाओ, सीहसोयाओ, दो अंतोवाहिणीओ, दो उम्मि-  
मालिणीओ, दो फेणमालिणीओ, दो गंभरिमालिणीओ, दो  
कच्छा१, दो सुकच्छा२, दो मद्दकच्छा३, दो कच्छागावई४

अम्बुदोपाधिकारादेवेदमपरं वेदिकाविस्वरूपमाह—

मूलम्—जन्तुहीवस्त णं दीवस्त वेइया दो गाउयाइ उवु  
उच्चत्तेणं पण्णत्ता। लवणे णं समुहे दो जोयणसयसहस्ताइ  
चक्रवालविक्रमेण पण्णत्ते । लवणस्त णं समुहस्त वेइया  
दो गाउयाइ उवु उच्चत्तेणं पण्णत्ता । धायईसहदीवे पुर  
स्थिमद्धेण मदरस्त पव्वयस्त उत्तरदाहिणेणं दो वासा  
पण्णत्ता बहुसमतुल्ला जाव त जहा—भरहे चैव परवप चैव।  
एव जहा जन्तुहीवे तथा एत्थवि भाणियव्व जाव दोसु  
वासेसु मण्णया छव्विहपि काल पच्चणुभवमाणा विहरति  
त जहा—भरहे चैव परवप चैव, णवर कूहसामली चैव  
धायइरुक्खे चैव, देवा गरुले चैव वेणुदेवे, सुदसणे चैव ।  
धायईसहदीवपच्चस्थिमद्धेणं मदरस्त पव्वयस्त उत्तरदाहि  
णेणं दो वासा पण्णत्ता बहुसम० जाव त जहा—भरहे चैव  
परवप चैव, जाव छव्विहपि काल पच्चणुभवमाणा विह  
रति, त जहा — भरहे चैव परवप चैव, णवर कूहसामली  
चैव महाधायईरुक्खे चैव, देवा गरुले चैव वेणुदेवे पिय  
दसणे चैव । धायईसहे ण दोवे दो भरहाइ, दो परवयाइ,  
दो हेमवयाइ, दो हेरन्तवयाइ, दो हरिवासाई दो रम्मग  
वासाइ, दो पुष्यिदेहाइ, दो अवरविदेहाइ, दो देवकुराओ,  
दो देवकुरुमहद्दुमा, दो देवकुरुमहद्दुमवासी देवा । दो  
उत्तरकुराओ, दो उत्तरकुरुमहद्दुमवासी देवा । दो चुछहि

थायईसंडस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उडुं उच्च-  
त्तेणं पणत्ता । कालोदस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं  
उच्चत्तेणं पणत्ता । पुक्खरवरदीवडुपुरत्थिमद्धेणं मंदरस्स  
पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा पणत्ता, बहुसमतुल्ला जाव  
तं जहा-भरहे चैव एरवए चैव । तहेव जाव दो कुराओ  
पणत्ताओ तं जहा-देवकुरा चैव उत्तरकुरा चैव । तत्थ णं दो  
महईमहालया महद्दुसा पणत्ता तं जहा-कूडसामली चैव  
पउमरुक्खे चैव । देवा गरुले चैव वेणुदेवे, पउमे चैव, जाव  
छव्विहंपि कालं पच्चणुभवमाणा विहरंति । पुक्खरवरदीवडु-  
पच्चत्थिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा  
पणत्ता तं जहा-तहेव णाणत्तं कूडसामली चैव महापउमरु-  
क्खे चैव, देवागरुले चैव वेणुदेवे पुंडरीए चैव । पुक्खरवर  
दीवडुणं दीवे दो भरहाइं, दो एरवयाइं जाव दो मंदरा, दो  
मंदरचूलियाओ । पुक्खरवरस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं  
उडुं उच्चत्तेणं पणत्ता । सव्वेसिं पि णं दीवसमुद्दाणं वेइयाओ  
दो दो गाउयाइं उडुं उच्चत्तेणं पणत्ताओ ॥ सू० ३५ ॥

छाया—जम्बूद्वीपरय खलु द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन

जम्बूद्वीप के संबंध को लेकर ही अत्र सूत्रकार इसकी वेदिका आदि  
के स्वरूप के संबंध में कथन करते हैं—‘जंबुद्वीवस्स णं दीवस्स’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—जंबूद्वीप नाम के द्वीप की जो कि सबसे पहिला और सब द्वीप  
समुद्रों के बीच में है अर्थात् जिसके द्वारा कोई द्वीप या समुद्र वेष्टित

जम्बूद्वीपसु इथन यासतु डोवाथी सूत्रकार तेनी वेदिका आदिना स्वइपत्तुं  
निइपणु इरे छे—“जंबुद्वीवस्स ण दीवस्स” इत्यादि—

सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामनेा द्वीप डेने सौथी पडेवेा छे अने सधणा द्वीपसमु-  
द्रोनी वरथे छे—अएवे डे तेना द्वारा डेअ द्वीप अथवा समुद्र परिवेष्टित



दो आवत्ता५, दो मगलावत्ता६, दो पुक्खला७, दो पुक्खला  
 वइ८, दो वच्छा९, दा सुवच्छा१० दो महावच्छा११, दो वच्छ  
 गावइ१२, दो रम्मा१३, दो रम्मगा१४, दो रमणिञ्जा १५, दो  
 मगलावई१६, दो पम्हा१७, दो सुपम्हा१८, दो महापम्हा१९,  
 दो पम्हागावई२०, दो सखा२१, दो णलिणा२२, दो कुमुया२३,  
 दो सलिलावई२४, दो वप्पा२५, दो सुवप्पा२६, दो महावप्पा  
 २७, दो वप्पागावई२८, दो वग्गू२९, दो सुवग्गू३०, दो गंधिला  
 ३१, दो गंधिलावई३२, दो खेमाओ१, दो खेमपुरीओ२, दो  
 रट्टओ३, दो रिट्टपुरीओ४, दो खग्गीओ५, दो मजुसाओ६,  
 दो ओसहीओ, दो पुढरिगिणीओ, दो सुसीमाओ९, दो कुठ  
 लाओ१०, दो अपराजियाओ ११, दो पभकराओ१२, दा  
 अकावईओ १३, दो पम्हावईओ१४, दो सुभाओ १५, दो  
 रयणसघयाओ १६, दो आसपुराओ १७, दो सीहपुराओ१८  
 दो महापुराओ १९, दो विजयपुराओ २०, दो अपराजि  
 याओ२१, दो अवराओ२२, दो ओसायाओ२३, दो विगय  
 सोगाओ २४, दो विजयाओ २५, दो वेजयतीओ २६,  
 दो जघतीओ२७, दो अपराजियाओ२८, दो चक्कपुराओ२९  
 दो खग्गपुराओ३०, दो अवज्झाओ३१, दो अठज्जाओ ३२,  
 दो भइसालवणा, दो पंदणवणा, दो सोमणसवणा,  
 दो पट्टगवणा । दो पट्टकवलसिलाओ दो अत्तिपट्टकवल  
 सिलाओ, दो रत्तकवलमिलाओ, दो अइरत्तकवलासिलाओ,  
 दो मदरा, दो मदरचूलियाओ ।

धायईसंडस्त णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं उड्डं उच्च-  
त्तेणं पणत्ता । कालोदस्स णं समुद्दस्स वेइया दो गाउयाइं  
उच्चत्तेणं पणत्ता । पुक्खरवरदीवड्डपुरत्थिमद्धेणं मंदरस्स  
पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा पणत्ता, बहुसमतुल्ला जाव  
तं जहा-भरहै चैव एरवए चैव । तहेव जाव दो कुराओ  
पणत्ताओ तं जहा-देवकुरा चैव उत्तरकुरा चैव । तत्थ णं दो  
महईमहालया महदुद्दुमा पणत्ता तं जहा-कूडसामली चैव  
पउमरुक्खे चैव । देवा गरुले चैव वेणुदेवे, पउमे चैव, जाव  
छव्विहंपि कालं पच्चणुभवभाणा विहरंति । पुक्खरवरदीवड्ड-  
पच्चत्थिमद्धेणं मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं दो वासा  
पणत्ता तं जहा-तहेव णाणत्तं कूडसामली चैव महापउमरु-  
क्खे चैव, देवागरुले चैव वेणुदेवे पुंडरीए चैव । पुक्खरवर  
दीवड्डेणं दीवे दो भरहाइं, दो एरवयाइं जाव दो मंदरा, दो  
मंदरचूलियाओ । पुक्खरवरस्स णं दीवस्स वेइया दो गाउयाइं  
उड्डं उच्चत्तेणं पणत्ता । सव्वेसिं पि णं दीवसमुद्दाणं वेइयाओ  
दो दो गाउयाइं उड्डं उच्चत्तेणं पणत्ताओ ॥ सू० ३५ ॥

छाया—जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन

जम्बूद्वीप के संबंध को लेकर ही अब सूत्रकार इसकी वेदिका आदि  
के स्वरूप के संबंध में कथन करते हैं—‘जंबुद्वीवस्स णं दीवस्स’ इत्यादि ।  
सूत्रार्थ—जंबूद्वीप नाम के द्वीप की जो कि सधसे पहिला और सध द्वीप  
समुद्रों के बीच में है अर्थात् जिसके द्वारा कोई द्वीप या समुद्र वेष्टित

जंबूद्वीपसु कथन आगतु ङोवाथी सूत्रकार तेनी वेदिका आदिना स्वइपतुं  
निइपाणु इरे छे—“जंबुद्वीवस्स णं दीवस्स” इत्यादि—

सूत्रार्थ—जंबूद्वीप नामनेा द्वीप के जे सौथी पडेले छे अने सधणा द्वीपसमु-  
द्रोनी वर्ये छे—अथले के तेना द्वारा कौध द्वीप अथवा समुद्र परिवेष्टित

મહત્તા । લઘુગ લઘુ સમુદ્રો દ્વિયોજનસહસ્રાણિ ચક્રનાલવિષ્ક્રમેષ મહત્તા ।  
 લઘુગસ્ય સ્વલુ સમુદ્રમ્ય વેદિકા દ્વે ગમ્યુતી ક્ષર્ષ્વમુષ્વત્વન મહત્તા । ધાતકી સ્વલુ  
 દ્વીપે પૂર્વાર્ધેન મન્દરન્ય પર્વતમ્ય ઉત્તરદક્ષિણેન દ્વે વર્ષ મહત્તને યદુસમલુચ્ચે યાવત્  
 તથયા-મરતે વૈવ ઐરચત વૈવ । एवं यथा जम्बूद्वीप तथाऽपि मणितम्य यावत्  
 द्वयोर्वर्षयोर्मनुजाः पहविषमपि कालं प्रत्यनुमयन्तो विहरन्ति, तथया-मरते वૈવ

મહી કુઆ હૈ વેદિકા દો ગમ્યૂતિ (દો કોસ) પ્રમાણ કુંબી હૈ હસ  
 દ્વીપકો આરોં ઓર રો વેષ્ટિત કરને ઘાલા લઘુગ સમુદ્ર હૈ જમ્બૂદ્વીપ  
 કા વિષ્ક્રમ ઇક લામ્બ યોજન પ્રમાણ હૈ હસલિયે લઘુગ સમુદ્ર કા  
 વિષ્ક્રમ દો લામ્બ યોજન કા હૈ લઘુગ સમુદ્ર કી વેદિકા દો કોસપ્રમાણ  
 કુંબી હૈ ધાતકી લઘુગદ્વીપ કે દો વિભાગ હૈં ઇક પૂર્વાર્ધ ઓર વૈસરા પશ્ચિ-  
 માર્ધ હસ વિભાગ કો ઇપ્યાકાર નામ ઘાલે દો પર્વતો ને કિયા હૈ પૂર્વાર્ધ  
 મેં મન્દર પર્વત કી ઉત્તર દક્ષિણ દિશા મેં ભરત ઓર ઐરચત ક્ષેત્ર હૈં યે  
 દોનોં ક્ષેત્ર યદુસમ આદિ વિશેષણોં ઘાલે હૈં । હસ ધાતકીલઘુગદ્વીપ મેં હન  
 ભરતક્ષેત્ર ઓર ઐરચત ક્ષેત્ર કા ઘર્ણન જમ્બૂદ્વીપાન્તર્ગત ભરતક્ષેત્ર ઓર  
 ઐરચત કે હી સુલ્પ હૈં । અતઃ હસ તરફ કે કપન સે હન દોનોં ક્ષેત્રોં કે  
 મનુષ્ય છઠોં પ્રકાર કે આરે કાલ કા અનુમય કરતે હૈં । તાત્પર્ય ઈસા હૈ  
 કિ જમ્બૂદ્વીપ કી અપેક્ષા ધાતકીલઘુગ મેં મેરુ ઘર્ષ ઓર ઘર્ષપર તથા  
 નદી ઓર હદ આદિ કી સંખ્યા વૈની ૨ હૈ અર્થાત્ ઉમ્મમેં દો મેરુ, ચૌદહ

( વીંળાવેલ ) નથી તેની વેદિકા બે ગમ્યૂતિ ( કોસ ) પ્રમાણ કુંબી છે  
 આ દ્વીપ ચારે તરફ લઘુગસમુદ્રથી ઘેરાયેલો છે તેનો ( જમ્બૂદ્વીપનો ) વિષ્ક્રમ  
 ( વિસ્તાર ) એક લાખ યોજનપ્રમાણ છે તેથી લઘુગ સમુદ્રનો વિસ્તાર બે  
 લાખ યોજનનો છે લઘુગ સમુદ્રની વેદિકા બે ગમ્યૂતિ ( કોસ ) પ્રમાણ કુંબી  
 છે ધાતકીલઘુગ દ્વીપના બે વિભાગ છે—(૧) પૂર્વાર્ધ અને (૨) પશ્ચિમાર્ધ  
 ઇપ્યાકાર નામના બે પર્વતોએ આ વિભાગ ઠાર્યા છે પૂર્વાર્ધમાં મન્દર પર્વતની  
 ઉત્તર-દક્ષિણ દિશા તરફ ભરત અને ઐરચત ક્ષેત્ર છે તે બંને ક્ષેત્રો જદુસમ  
 આદિ વિશેષણોવાળાં છે ધાતકીલઘુગમાં આવેલાં ભરત અને ઐરચત ક્ષેત્રોનાં  
 વચ્ચે જમ્બૂદ્વીપમાં આવેલાં ભરત અને ઐરચત ક્ષેત્રોના બેવાં જ સમબંધાં  
 આ કથનને આધારે બે વાત શ્રદ્ધ ધરવી જોઈએ કે આ બંને ક્ષેત્રોના  
 મનુષ્યો છેએ પ્રકારના કાળનો ( આશાનો ) અનુભવ કરે છે જમ્બૂદ્વીપ કરતાં  
 ધાતકીલઘુગમાં મેરુ ક્ષેત્રો, વયધરો, નદીઓ અને હદ આદિની સંખ્યા જમ્બૂ  
 જમ્બૂ છે એટલે કે તેમાં બે મેરુ ૧૪ ક્ષેત્રો, ૧૨ વયધર ૫૪ વૈતો ૨૮

ऐरवते चैव । नवरं कूटशाल्मलिश्चैव धातकीवृक्षश्चैव । देवीं गरुडश्चैव वेणुदेवः,  
सुदर्शनश्चैव । धातकीखण्डद्वीपपश्चिमार्धे खलु मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन  
द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते, बहुसम० यावत् तद्यथा—भरतं चैव ऐरवतं चैव, यावत् पञ्चविधमपि  
कालं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—भरते चैव ऐरवते चैव । नवरं कूटशाल्मलिश्चैव  
धातकीवृक्ष महाश्चैव, देवीं गरुडश्चैव वेणुदेवः, प्रियदर्शनश्चैव । धातकीखण्डे खलु  
द्वीपे द्वे भरते, द्वे ऐरवते, द्वे हैमवते, द्वे हैरण्यवते द्वे हरिवर्षे, द्वे रम्यकवर्षे, द्वौ

वर्ष (क्षेत्र) और बाहर वर्षभर हैं, अट्टार्ईस नदी और चारह हद, पूर्वार्ध  
में एक मेरु, सातक्षेत्र, ६ वर्षभर आदि हैं और पश्चिमार्ध में भी ऐसे ही  
हैं इसीलिये यहां उनके दो मेरु, चउहवर्ष आदि रूप से कथन किया  
गया है इस द्वीप में पर्वत पहिले के आरे के समान है और क्षेत्र आरों के  
बीच में स्थित विवर के समान हैं । यहां कूटशाल्मलि और धातकीवृक्ष  
हैं । दो देव हैं—गरुडवेणुदेव और सुदर्शन ।

धातकी खण्ड के पश्चिमार्ध में मन्दर पर्वत की उत्तर और दक्षिण-  
दिशा में क्रमशः दो क्षेत्र हैं ये दोनों बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणों  
वाले हैं । इनका भी नाम भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र हैं । यहां के मनुष्य  
उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के ६ आरों का अनुभव करते रहते हैं ।  
यहां कूटशाल्मलि और महाधातकीवृक्ष हैं । देव गरुडवेणुदेव और प्रिय-  
दर्शन हैं धातकी खण्डद्वीप में दो भरत, दो ऐरवत, दो हैमवत, दो

नदीयो अने १२ खंड आदि आवेला छे, तेमनां नाम ज'ण्डूद्वीपना प्रकरणुमां  
भतांया अनुसार ज छे धातकी भउना पूर्वार्धमां अेक मेरु, ७ क्षेत्रा ६  
वर्षभर पर्वता, १४ नदीयो अने ६ खंड ( ४४ ) छे, अने पश्चिममां पणु मेरु  
आदिनी संख्या अेटवी ज छे, तेथी ज त्यां भे मेरु, १४ क्षेत्रा आदि होवानुं  
कथन करवामां आंयु छे—आ द्वीपमा पैडाना आराना समान पर्वता छे अने  
आरानी वर्ये आवेला विवरना ( आरा वर्येना आदी लाग ) समान क्षेत्रा  
छे, त्यां पणु कूटशाल्मलि अने धातकीवृक्ष छे, तेमां गरुडवेणुदेव अने  
सुदर्शनदेव निवास करे छे

धातकीभउना पश्चिमार्धमां मन्दर ( मेरु ) पर्वतनी उत्तर अने दक्षिण  
दिशा तरक् पणु अनुक्रमे भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्र नामनां भे क्षेत्रा  
आवेलां छे ते अने क्षेत्रा पणु बहुसम आदि विशेषणुवाणां छे । त्यांना  
मनुष्या पणु उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणी काणना छये आगना अनुभव  
करे छे त्यां कूट शाल्मलि अने महाधातकी वृक्ष छे तेमां गरुडवेणुदेव अने  
प्रियदर्शन देव रहे छे । धातकीभउ द्वीपमा भे भरतक्षेत्र, भे ऐरवत क्षेत्र, भे

मङ्गलाः । लवणः खलु समुद्रो द्वियोजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण मङ्गलः । लवणस्य खलु समुद्रस्य वेदिका द्वे गम्पुती ऊर्ध्वमुत्थत्वन मङ्गला । घातकी स्वर्णे द्वीपे पूर्वाध्वेन मन्दरम्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन द्वे वर्षे मङ्गले बहुसमस्तस्ये यावत् तद्यथा-भरतं चैव पेरयत चैव । एवं यथा जम्बूद्वीप तथाऽप्रापि मणितम्ब्य यावत् द्वयोर्बर्षयोर्मनुजाः पक्षिधमपि फाल प्रयनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा-भरते चैव

नहीं हुआ है वेदिका दो गम्पुति (दो कोस) प्रमाण ऊँची है इस द्वीपको चारों ओर से वेष्टित करने वाला लवण समुद्र है जम्बूद्वीप का विष्कम्भ एक लाव्य योजन प्रमाण है इसलिये लवण समुद्र का विष्कम्भ दो लाव्य योजन का है लवण समुद्र की वेदिका दो कोसप्रमाण ऊँची है घातकी स्वर्णद्वीप के दो विभाग हैं एक पूर्वाध्व और दूसरा पश्चिमाध्व इस विभाग को इष्याकार नाम वाले दो पर्वतों ने किया है पूर्वाध्व में मन्दर पर्वत की उत्तर दक्षिण दिशा में भरत और पेरयत क्षेत्र हैं ये दोनों क्षेत्र बहुसम आदि विशेषणों वाले हैं । इस घातकीस्वर्णद्वीप में इन भरतक्षेत्र और पेरयत क्षेत्र का पूर्ण जम्बूद्वीपान्तर्गत भरतक्षेत्र और पेरयत के ही तुल्य है । अतः इस तरह के फथन से इन दोनों क्षेत्रों के मनुष्य छहों प्रकार के आर वाल का अनुभव करते हैं । तात्पर्य ऐसा है कि जम्बूद्वीप की अपेक्षा घातकीस्वर्णद्वीप में मेरु वर्ष और वर्षर तथा नदी और इन्द्र आदि की संख्या दूनी २ है अर्थात् उममें दो मेरु, चौदह

(वीटण्यवेत) नदी तेनी वेदिका के जम्पुति (कोस) प्रमाण ऊँची है आ द्वीप चार तरफ लवणसमुद्रधी घेरायेदो है तेने (जम्बूद्वीपने) विष्कम्भ (विस्तार) दोह लाव्य योजनप्रमाण है तेधी लवण समुद्रने विस्तार के लाव्य योजनने है लवण समुद्रनी वेदिका के जम्पुति (कोस) प्रमाण ऊँची है घातकीस्वर्णद्वीपना के विभाग है-(१) पूर्वाध्व जने (२) पश्चिमाध्व इष्याकार नामना के पर्वतोके आ विभाग कर्ता है पूर्वाध्वमा मन्दर पर्वतनी उत्तर-दक्षिण दिशा तरफ भरत जने पेरयत क्षेत्र है ते बन्ने क्षेत्रो बहुसम आदि विशेषणोवाणां है घातकीस्वर्णद्वीपमा आवेता भरत जने पेरयत क्षेत्रोना केवा ज सम्बन्ध आ कथनने आधारे के वान शक्य करणी लेणके के आ बन्ने क्षेत्रोना मनुष्यो छके प्रकारना राजने (आशने) अनुभव करे है जम्बूद्वीप इस्तां घातकीस्वर्णद्वीपमा मेरु क्षेत्रो, १५ पर्वतो, नदीके जने १४ आदिनी संख्या जम्बूद्वीप जम्बूद्वीप है जेदो के तेमां के मेरु १४ क्षेत्रो, १२ पर्वतो ५५ नदी २८

ऐरवते चैव । नवरं कूटशाल्मलिश्चैव धातकीवृक्षश्चैव । देवीं गरुडश्चैव वेणुदेवः,  
सुदर्शनश्चैव । धातकीखण्डद्वीपपश्चिमार्धे खलु मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन  
द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते, बहुसम० यावत् तद्यथा—भरतं चैव ऐरवतं चैव, यावत् पञ्चविधमपि  
कालं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति, तद्यथा—भरते चैव ऐरवते चैव । नवरं कूटशाल्मलिश्चैव  
धातकीवृक्ष महाश्चैव, देवीं गरुडश्चैव वेणुदेवः, प्रियदर्शनश्चैव । धातकीखण्डे खलु  
द्वीपे द्वे भरते, द्वे ऐरवते, द्वे हैमवते, द्वे हैरण्यवते द्वे हरिवर्षे, द्वे रम्यकवर्षे, द्वौ

वर्ष (क्षेत्र) और बाहर वर्षधर हैं, अट्टार्ईस नदी और चारह हद, पूर्वार्ध  
में एक मेरु, सातक्षेत्र, ६ वर्षधर आदि हैं और पश्चिमार्ध में भी ऐसे ही  
हैं इसीलिये यहां उनके दो मेरु, चउह्ववर्ष आदि रूप से कथन किया  
गया है इस द्वीप में पर्वत पश्चिमे के आरे के समान हैं और क्षेत्र आरों के  
बीच में स्थित विवर के समान हैं । यहां कूटशाल्मलि और धातकीवृक्ष  
हैं । दो देव हैं—गरुडवेणुदेव और सुदर्शन ।

धातकी खण्ड के पश्चिमार्ध में मन्दर पर्वत की उत्तर और दक्षिण-  
दिशा में क्रमशः दो क्षेत्र हैं ये दोनों बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणों  
वाले हैं । इनका भी नाम भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र हैं । यहां के मनुष्य  
उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के ६ आरों का अनुभव करते रहते हैं ।  
यहां कूटशाल्मलि और महाधातकीवृक्ष हैं । देव गरुडवेणुदेव और प्रिय-  
दर्शन हैं धातकी खण्डद्वीप में दो भरत, दो ऐरवत, दो हैमवत, दो

नदीयो अने १२ ऽह आदि आवेला छे, तेमनां नाम ज'ण्द्वीपना प्रकरणुमां  
भताव्या अनुसार ज छे धातकी भ'उना पूर्वार्धमां अेक मेरु, ७ क्षेत्रा ६  
वर्षधर पर्वतो, १४ नदीयो अने ६ ऽह ( द्रह ) छे, अने पश्चिममां पणु मेरु  
आदिनी स'भ्या अेटली ज छे. तेथी ज त्यां मे मेरु, १४ क्षेत्रा आदि होवानुं  
कथन करवामां आव्यु छे—आ द्वीपमा पैडाना आराना समान पर्वतो छे अने  
आरानी वच्चे आवेला विवरना ( आरा वच्चेना भाटी लाग ) समान क्षेत्रा  
छे, त्या पणु कूटशाल्मलि अने धातकीवृक्ष छे, तेमां गरुडवेणुदेव अने  
सुदर्शनदेव निवास करे छे

धातकीभ'उना पश्चिमार्धमा मन्दर ( मेरु ) पर्वतनी उत्तर अने दक्षिण  
दिशा तरश् पणु अनुक्रमे भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्र नामनां मे क्षेत्रा  
आवेला छे ते गन्ने क्षेत्रा पणु बहुसम आदि विशेषणुवाणां छे. त्यांना  
मनुष्या पणु उत्सर्पिणी अने अवसर्पिणी काणना छये आराना अनुभव  
करे छे त्यां कूट शाल्मलि अने महाधातकी वृक्ष छे तेमां गरुडवेणुदेव अने  
प्रियदर्शन देव रहे छे. धातकीभ'उ द्वीपमा मे भरतक्षेत्र, मे ऐरवत क्षेत्र, मे

पूर्वविदेही, द्वी अपरविदेही, द्विके देवकुरु, द्वी देवकुरुमहाद्रुमौ, द्वी देवकुरुमहा  
 मुमपासिनौ देवी । द्विक उत्तरकुरुवः, द्वी उत्तरकुरुमहाद्रुमौ, द्वी उत्तरकुरुमहाद्रुम  
 पासिनौ देवी । द्वी छुल्लहिमवन्तौ, द्वी महाहिमवन्तौ, द्वी निपही, द्वी नीलवन्तौ,  
 द्वी रुक्मिणी द्वी शिखरिणी, द्वी शब्दापातिनी द्वी चन्द्रापातपासिनौ स्वामी  
 देवी । द्वी विकटापातिनी, द्वी विकटापातपासिनौ प्रमासौ देवी । द्वी गन्धापातिनी  
 द्वी गन्धापातिपासिनौ भस्मी देवी । द्वी मात्स्यवत्पर्यायी, द्वी मात्स्यवत्पर्यायपासिनौ  
 पद्मी देवी । द्वी मात्स्यवन्तौ, द्वी चित्रकूटौ, द्वी पद्मकूटौ, द्वी नलिनकूटौ, द्वी एकशैलौ, द्वी  
 भिकूटौ, द्वी वै भवणकूटौ द्वी अञ्जनी, द्वी मातञ्जनी, द्वी सौमनसौ, द्वी विद्युत्प्रभौ, द्वे  
 भङ्गावत्यौ, द्वे पद्मावत्यौ द्वी आशीषिणी, द्वी सुप्तावती, द्वी चन्द्रपर्वती, द्वी सूर्यपर्वती, द्वी  
 नागपर्वती, द्वी देवपर्वती द्वी गन्धमादनी, द्वी इष्टुकारपर्वती, द्वी छुल्लहिमवत्कूटौ, द्वी

हरिण्यवत, दो हरिषर्ष दो रम्यकषर्ष, दो पूर्वविदेह, दो अपरविदेह, दो  
 देवकुरु दो देवकुरुमहाद्रुम, दो देवकुरुमहाद्रुमवासीदेव, दो उत्तरकुरु,  
 दो उत्तरकुरुमहाद्रुम, दो उत्तरकुरुमहाद्रुमवासीदेव, दो छुल्लहिमवान्  
 दो महाहिमवान्, दो निपह, दो नीलवन्त, दो रुक्मी, दो शिखरी,  
 दो शब्दापाती, दो चन्द्रापातिनिवासीस्वातिदेव, दो विकटापाती, दो  
 विकटापातिवासी प्रमासदेव, दो गन्धापाती, दो गन्धापातीनिवासी अरु  
 णदेव, दो मात्स्यवत्पर्याय, दो मात्स्यवत्पर्यायवाम्नी पद्मदेव, दो मात्स्यवन्त  
 दो चित्रकूट, पद्मकूट, दो नलिनकूट, दो एकशैल, दो त्रिकूट, दो वैभ  
 वणकूट, दो अठजन, दो मातजन, दो सौमनस, दो विद्युत्प्रभ, दो भ  
 ङ्गावती, दो पद्मावती, दो आशीषिणी, दो सुप्तावती, दो चन्द्रपर्वत, दो  
 सूर्यपर्वत, दो नागपर्वत, दो देवपर्वत, दो गन्धमादन, दो इष्टुकारपर्वत,

द्वैभवत, जे द्वैरुण्यवत, जे हरिषर्ष, जे रम्यकषर्ष, जे पूर्व विदेह, जे अपरविदेह, जे  
 देवकुरु महाद्रुम, जे देवकुरु महाद्रुमवासी देव, जे उत्तर कुरुमहाद्रुम, जे उत्तर  
 कुरुमहाद्रुमवासी देव, जे निपह, जे नीलवन्त जे रुक्मी, जे शिखरी, जे शब्दापाती जे शब्दापातीनिवासी  
 स्वातिदेव, जे विकटापाती जे विकटापाती प्रमास देव, जे गन्धापाती, जे गन्धा  
 पातिनिवासी अरुणदेव, जे मात्स्यवत्पर्याय जे मात्स्यवत्पर्यायवासी पद्मदेव,  
 जे मात्स्यवन्त जे चित्रकूट, जे पद्मकूट, जे नलिनकूट, जे एकशैल, जे त्रिकूट,  
 जे वैभवकूट जे अठजन जे मातजन, जे सौमनस जे विद्युत्प्रभ, जे भ  
 ङ्गावती जे पद्मावती जे आशीषिणी जे सुप्तावती, जे चन्द्रपर्वत, जे सूर्यपर्वत,  
 जे नागपर्वत जे देवपर्वत, जे गन्धमादन, जे इष्टुकार पर्वत, जे छुल्लहिम

वैश्रवणकूटौ, द्वौ महाहिमवत्कूटौ, द्वौ वैडूर्यकूटौ, द्वौ निषधकूटौ, द्वौ रुचककूटौ द्वौ नीलवत्कूटौ, द्वौ उपदर्शनकूटौ, द्वौ रुक्मिकूटौ, द्वौ मणिकञ्चनकूटौ, द्वौ शिखरिकूटौ, द्वौ तिगिच्छिकूटौ, द्वौ पद्महृदौ, द्वे पद्महृदवासिन्यौ श्री देव्यौ, द्वौ महापद्महृदौ, द्वे महापद्महृदवासिन्यौ ही देव्यौ । एवं यावत् द्वौ पुण्डरीकहृदौ, द्वे पुण्डरीकहृदवासिन्यौ, लक्ष्मीदेव्यौ, द्वौ गङ्गाप्रपातहृदौ, यावत् द्वौ रक्तवत्प्रपातहृदौ । द्वे रोहिते यावत् द्वे रूप्यकूले, द्वे ग्राहावत्यौ, द्वे पङ्कवत्यौ, द्वे तप्तजले, द्वे मत्तजले, द्वे उन्मत्तजले, द्वे क्षीरोदे, द्वे सिंहस्रोतस्यौ, द्वे अन्तर्वाहिन्यौ द्वे ऊर्मिमालिन्यौ, द्वे फेनमालिन्यौ द्वे गम्भीरमालिन्यौ, द्वे कच्छे १, द्वे सुकच्छे २, द्वे महाकच्छे ३, द्वे कच्छकावत्यौ ४, द्वे आवर्त्ते ५, द्वे मंगलावर्त्ते ६, द्वे पुष्कले ७, द्वे पुष्कलावत्यौ ८, द्वे वत्से ९, द्वे सुवत्से १०, द्वे महावत्से ११, द्वे वत्सकावत्यौ १२, द्वे रम्ये १३, द्वे

दो क्षुल्लहिमवत्कूट, दो वैश्रवणकूट, दो महाहिमवत्कूट, दो वैडूर्यकूट, दो निषधकूट, दो रुचककूट, दो नीलवत्कूट, दो उपदर्शनकूट, दो रुक्मिकूट, दो मणि कंचनकूट, दो शिखरिकूट, दो तिगिच्छकूट, दो पद्महृद, दो पद्महृदवासिनी श्री देवियां, दो महापद्महृद, दो महापद्महृदवासिनी ही देवियां इसी तरह से यावत् दो पुण्डरीकहृद, दो पुण्डरीकहृदनिवासिनी लक्ष्मी देवियां, दो गंगाप्रपातहृद, यावत् दो रक्तवत्प्रपातहृद, दो रोहितनदियां, यावत् दो रूप्यकूला, नदियां, दो ग्राहावती, दो पङ्कवती, दो तप्तजला, दो मत्तजला, दो उन्मत्तजला, दो क्षीरोदा, दो सिंहस्रोतसी, दो अंतर्वाहिनी, दो उर्मिमालिनी, दो फेनमालिनी, दो गंभीरमालिनी, दो कच्छा, दो सुकच्छा, दो महाकच्छा, दो कच्छकावती, दो आवर्त्ता, दो मङ्गलावर्त्ता, दो पुष्कला, दो पुष्कलावती, दो वत्सा, दो सुवत्सा, दो महावत्सा, दो वत्सकावती, दो रम्य दो रम्यक दो रमणीय दो मंगलवती, दो पद्मा, दो सुपद्मा, दो महापद्मा, दो पद्मकावती, दो शंखा, दो नलिना,

वत्स, जे वैश्रवणकूट, जे महाहिमवत्कूट, जे वैडूर्यकूट, जे निषधकूट, जे रुचककूट, जे नीलवत्कूट, जे उपदर्शनकूट, जे रुक्मिकूट, जे मणिकञ्चनकूट, जे शिखरिकूट, जे तिगिच्छकूट, जे पद्महृद, जे पद्महृदवासिनी श्रीदेवीज्यो, जे महापद्महृद, जे महापद्महृदवासिनी हीदेवीज्यो, जे पुण्डरीकहृद, जे पुण्डरीकहृदनिवासिनी लक्ष्मीदेवीज्यो, जे गंगाप्रपातहृद, जे रक्तप्रपातहृद, जे रोहित नदीज्यो, यावत् जे रूप्यकूला नदीज्यो, जे ग्राहावती जे पद्मवती, जे तप्तजला, जे मत्तजला, जे उन्मत्तजला, जे क्षीरोदा, जे सिंहस्रोतसी, जे अंतर्वाहिनी जे उर्मिमालिनी, जे फेनमालिनी, जे गंभीरमालिनी, जे कच्छा, जे सुकच्छा, जे महाकच्छा, जे कच्छकावती, जे आवर्त्ता, जे मंगलावर्त्ता, जे पुष्कलावती, जे वत्सा जे सुवत्सा, जे महावत्सा, जे वत्सकावती जे रम्य, जे रम्यक, जे



रम्यके १४, दे रमणीये १५, दे मङ्गलावती १६, दे पद्मे १७, दे सुपद्मे १८, दे महापद्मे १९, दे पद्मकावती २०, दे शङ्खे २१, दे नलिने २२, दे कुमुदे २३, दे सखिलावती २४, दे वामे २५, दे सुवामे २६, दे महावामे २७, दे वनकावती २८, दे वल्लु २९, दे सुवल्लु ३०, दे गण्डिखे ३१, दे गण्डिलावती ३२, दे क्षेमे १, दे क्षेमपुरी २, दे रिष्टे ३, दे रिष्टपुरी ४, दे स्वहृषी ५, दे मंजूष ६, श्री औपधौ ७, दे पुण्डरीकिणी ८, दे सुसीमे ९, दे कुण्डले १०, दे अपराजिते ११, दे प्रमङ्करे १२, दे अङ्गावती १३, दे पद्मावती १४, दे शुभे १५, दे रत्नसखये १६, दे अश्वपुरे १७, दे सिंहपुरे १८, दे महापुरे १९, दे विजयपुरे २०, दे अपराजिते २१, दे अपर २२, दे अशोके २३, दे विगतशोके २४, दे विजये २५, दे वैमयन्ती २६, दे मयन्ती २७, दे अपराजिते २८, दे चक्रपुरे २९, दे स्वहृषी ३०, दे भवष्ये ३१, दे अयोष्ये ३२, दे मद्रशालवने, दे नन्दनवने, दे सौमनसवने, दे पण्डकवने, दे पाण्डुकम्पलशिले, दे अतिपाण्डुकम्पलशिले, दे रक्तकम्पलशिले, दे अतिरक्तकम्पलशिले,

दो कुमुदा, दो सखिलावती, दो वामा, दो सुवामा, दो महावामा, दो वप्रकावती, दो वल्लु दो सुवल्लु दो गण्डिला, दो गण्डिलावती, दो क्षेमा, दो क्षेमपुरी, दो रिष्टा, दो रिष्टापुरी, दो स्वहृषी, दो मंजूषा, दो औपधि, दो पुण्डरीकिणी, दो सुसीमा, दो कुण्डला, दो अपराजिता, दो प्रमङ्करा, दो अङ्गावती, दो पद्मावती, दो शुभा दो रत्नसखया दो अश्वपुरा, दो सिंहपुरा, दो महापुरा, दो विजयपुरा, दो अपराजिता, दो अपरा, दो अशोका, दो विगतशोका, दो विजया, दो वैजयन्ती, दो जयन्ती, दो अपराजिता दो चक्रपुरा, दो स्वहृषीपुरा, दो भवष्या, दो अयोष्या, दो मद्रशालवन, दो नन्दनवन दो सौमनसवन, दो पण्डकवन, दो पाण्डुकम्पलशिला, दो अतिपाण्डुकम्पलशिला, दो रक्तकम्पलशिला, दो अतिरक्तकम्पलशिला,

रमणीय दे मङ्गलावती, दे पद्मा, दे सुपद्मा, दे महापद्मा, दे पद्मावती, दे शङ्खा, दे नलिना दे कुमुदा, दे सखिलावती, दे वामा, दे सुवामा, दे महावामा, दे वप्रकावती दे वल्लु दे सुवल्लु दे गण्डिला, दे गण्डिलावती, दे क्षेमा दे क्षेमपुरी, दे रिष्टा, दे रिष्टपुरी, दे स्वहृषी दे मंजूषा, दे औपधि दे पुण्डरीकिणी, दे सुसीमा दे कुण्डला, दे अपराजिता, दे प्रमङ्करा, दे अङ्गावती, दे पद्मावती, दे शुभा, दे रत्नसखया, दे अश्वपुरा दे सिंहपुरा दे महापुरा, दे विजयपुरा दे अपराजिता दे अपरा दे अशोका, दे विगतशोका दे विजया, दे वैजयन्ती दे जयन्ती, दे अपराजिता, दे चक्रपुरा दे स्वहृषीपुरा दे भवष्या, दे अयोष्या दे मद्रशालवन दे नन्दनवन,

द्वे मन्दरे, द्वे मन्दरचूलिके । धातकीखण्डस्य खलु द्वीपस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता ।

कालोदस्य खलु समुद्रस्य वेदिका द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता । पुष्कर-  
वरद्वीपार्धपूर्वार्धे खलु मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणेन द्वे वर्षे प्रज्ञप्ते बहुसमनुल्ये  
यावत् तद्यथा भरतं चैव ऐरवतं चैव, तथैव यावत् द्विके कुरवः प्रज्ञप्तास्तद्यथा  
देवकुरवश्चैव उत्तरकुरवश्चैव । तत्र खलु द्वौ महाति महालयौ महाद्रुमौ प्रज्ञप्तौ तद्यथा  
कूटशालमल्लिश्चैव, पद्मवृक्षश्चैव । देवौ गरुडश्चैव वेणुदेवःपद्मश्चैव, यावत् पद्म-  
विधमपि कालं प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति । पुष्करवरद्वीपार्धपश्चिमार्धे खलु मन्दरस्य

दो मन्दर, दो मन्दरचूलिका इस प्रकार से ये सब दो दो हैं । धातकी  
खण्डद्वीप की वेदिका दो गव्यूतिप्रमाण ऊंची है ।

कालोद समुद्र की वेदिका दो गव्यूतिप्रमाण ऊंची है । पुष्करवरद्वी-  
पार्ध के पूर्वार्ध में मन्दर पर्वत की उत्तर दक्षिण दिशा में दो वर्ष कहे गये  
हैं । ये दोनों वर्ष बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणोंवाले हैं । ये दो क्षेत्र  
हैं भरत और ऐरवत इसी तरह से यहां यावत् दो कुरु कहे गये हैं दो  
देवकुरु और दो उत्तरकुरु दो बहुत बड़े महाद्रुम हैं—कूटशालमलि और  
पद्मवृक्ष गरुडवेणुदेव और पद्मदेव ये दो देव हैं यावत् यहां छहों प्रकार  
के काल का अनुभव होता है अर्थात् यहां जो भरतक्षेत्र और ऐरवत  
क्षेत्र हैं उनके निवासी छहों प्रकार के काल का अनुभव करते हैं । इसी  
तरह से पुष्करवरद्वीपार्ध के पश्चिमार्ध में भी मन्दरपर्वत की उत्तरदक्षि-

मे सौमनस्यवन, मे पंडकवन, मे पांडुकम्बलशिला, मे अतिपांडुकम्बलशिला,  
मे रक्तकम्बलशिला, मे अतिरक्त कम्बलशिला, मे मन्दर अने मे मन्दर चूलिका  
छे आ रीते अर्द्धी ते धाम भग्भेना डिजाणे छे धातकीखंड द्वीपनी वेदिका  
मे गव्यूति ( केश ) प्रमाणे जेयी छे

कालोद समुद्रनी वेदिका मे गव्यूतिप्रमाणे जेयी छे । पुष्करवर द्वीपार्धना  
पूर्वार्धमां मन्दर पर्वतनी उत्तर-दक्षिण दिशांमां मे वर्ष ( क्षेत्र ) आवेला छे  
ते अने बहुसम आदि पूर्वोक्त विशेषणोवाणां छे ते अने क्षेत्रानां नाम  
पणु भरत अने ऐरवत छे अने प्रमाणे ते पुष्करवर द्वीपार्धमां पणु मे  
कुरु पर्यन्तना पूर्वोक्त क्षेत्रो आवेला छे, अतएवे के त्यां मे देवकुरु अने मे  
उत्तरकुरु पर्यन्तना क्षेत्रो छे त्यां कूटशालमलि अने पद्मवृक्ष नामना मे मडा-  
द्रुम ( महावृक्ष ) छे ते मडाद्रुमोमा गरुड वेणुदेव अने पद्मदेव नामना मे  
देवो निवास करे छे त्यां मे भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्र आवेला छे, तेना  
मनुष्यो छेमे प्रकारना कानेना अनुभव करे छे अने प्रमाणे पुष्करवर द्वीपा  
र्धना पश्चिमार्धमां पणु मन्दर पर्वतनी उत्तर-दक्षिण दिशांमां मे वर्ष ( क्षेत्रो )

પર્વતમ્ય ઉત્તરદક્ષિણેન દ્વે વર્ષે પ્રજ્ઞત તપયા-તથૈર, નાનાત્વમ્ કૃત્શ્ચારમસિદ્ધૈવ  
મહાપદ્મપદ્મૈર વેદૌ ગરુડશૈવ, ઘેણુદેવઃ પુન્ઢરીકશૈવ । પુન્ઢરવરદ્વીપાદ્મ સહ  
દ્વીપ દ્વે મરતે દ્વે પેરવતે યાવત્ દ્વી મન્દરો, દ્વ ગન્દરચૂલિકં । પુન્ઢરવરસ્ય સહ  
દ્વીપસ્ય વેદિકા દ્વે ગચ્ચૂતી ઋષ્વમુષ્ટરવેન પ્રજ્ઞતા । સર્વેવામપિ સહ દ્વીપસમુદ્રાપ્ત્યાં  
વેદિકા । દ્વે દ્વે ગચ્ચૂતી ઋષ્વમુષ્ટરવેન પ્રજ્ઞતા ॥ મુ૦ ૩૫ ॥

ટીકા—‘ અષ્ટાધીવસ્ત ’ ઇત્યાદિ, સુગમમ્ ।

નવર-વેદિકા-પદ્મવરવેદિકા, સા ષ-વશ્વજ્ઞતધનુર્વિસ્તીર્ણાં જમ્બૂદ્વીપમગત્યા  
ષટ્પદ્મચ્ચવેદશમાગ પરિક્ષેપેણ ઝગતિ પરિમિથા, ડમપતો વનપદ્મપરિવૃથા ગપાસ  
પાદિકા મેં દો વર્ષ કહે ગય છે એ ની પદ્મમમ આદિ પૂર્વોક્ત વિશેષણો  
પાછે છે ઘટાં કૃત્શ્ચારમસિદ્ધિ ઓર મહાપદ્મપદ્મ હેં દેવ-ગરુડઘેણુદેવ ઓર  
પુન્ઢરીક હેં પુન્ઢરવરદ્વીપાર્ધ દ્વીપ મેં દો મરત હૈ, દો પેરવતક્ષેત્ર હૈ  
યાવત્ દો મન્દર હૈ, દો મન્દરચૂલિકાપેં હેં પુન્ઢરવર દ્વીપ કી વેદિકા ઘો  
ગચ્ચૂતિ પ્રમાણ ઝૂંચો હૈ । જિતને સ્ત્રી દ્વીપ ઓર સમુદ્ર હેં ઘન સઘ કી  
વેદિકા ઝૂંચાઈ મેં દો દો ગચ્ચૂતિપ્રમાણ હૈ ।

ત્રીકાર્થ—પદ્મ ૩૫ ઘાં સુઘ્ર ઘઘપિ સુગમ હૈ ફિર સ્ત્રી ઝો વિશેષતા  
હૈ ઘઘ ડમ પ્રકાર સે હૈ-વેદિકા સે વર્ણાં પદ્મવર વેદિકા ઘઘીત હૈઈ હૈ  
ઘઘ પપાવાવે દેવા પાંચમૌ ઘનુપવિસ્તીર્ણા-ઘૌઘાઈ ઘાલી હૈ જમ્બૂદ્વીપ કી  
જગતી કે ઘટ્પદ્મચ્ચવેદશમાગ મેં ઘઘ સ્થિત હૈ ઝતઃ પરિક્ષેપ કી અપેક્ષા

આવેલાં છે તે બન્ને ક્ષેત્રો પણ બહુસમ આદિ પૂર્વોક્ત વિશેષણોવર્ણાં છે  
લાં પણ કૃત્શ્ચારમસિદ્ધિ અને મહાપદ્મપદ્મ છે અને તેમાં નિવાસ કરનારા અરુઢ  
વેણુદેવ અને પુન્ઢરીક નામના દેવો છે તે ક્ષેત્રોનાં નામ પણ ભરત અને ઐરવત  
ક્ષેત્ર જ છે પુન્ઢરવર દ્વીપાધમાં આ રીતે જે ભરતક્ષેત્ર જે ઐરવત ક્ષેત્ર આદિ  
છે અહીં અદિ પર દ્વારા જે રકર કરવામાં આવ્યું છે કે લાં “ જે મન્દર  
છે અને જે મન્દરચૂલિકા ’ પણ-તનું ઉપકૃત બધું છે પુન્ઢરવર દ્વીપની  
વેદિકા જે ગચ્ચૂતિ (કેશ) પ્રમાણ ઊંચી છે જેટલાં દ્વીપો અને સમુદ્રો છે  
તે બધાની વેદિકાની ઊંચાઈ બન્ને ગચ્ચૂતિપ્રમાણ સમજવી.

ટીકાર્થ—આ ડ૦ મું સૂત્ર બે કે મુત્રમ છે, તેા પણ તેમાં જે વિશે  
ષતા છે તે આ પ્રમાણે છે-વેદિકા ઘઘના પ્રયોગ દ્વારા અહીં પદ્મવર વેદિકા  
જૂદીન કરવામાં આવેલ છે તે પદ્મવર વેદિકા ૫૦૦ ઘનુપના વિસ્તારવાળી  
( પદ્મોગાધવાળી ) છે

જમ્બૂદ્વીપની જમ્બૂતીના (કોટન) બહુમખ દેશક ગમાં તે આવેલી છે  
તેથી પરિક્ષેપ ( પરિધિ ) ની અપેક્ષાએ તે જમ્બૂતીપ્રમાણ છે તેથી બન્ને તરફ

हेमकिङ्किणी घण्टापरिमण्डिता देवानामासनशयनादिविविधक्रीडास्थानभूता  
 द्वि गव्यूतोच्छ्रिताऽस्मि । जम्बूद्वीपानन्तरं लवणसमुद्रस्य सद्भावात्तद्वक्तव्यतामाह  
 'लवणेणं' इत्यादि कण्ठचम् । चक्रवालविष्कम्भेण द्विलक्षयोजनपरिमितस्य  
 लवणसमुद्रस्य वेदिकाऽप्येवमेव । लवणसमुद्रवक्तव्यतानन्तरं धातकीखण्ड-  
 वक्तव्यतामाह--' धायइसंढे ' इत्यादि । वेदिकामूत्रपर्षवसानं सर्वसुगमम् ।  
 नवरसु-धातकीनां-वृक्षविशेषाणां खण्डो-वनसमूहो यस्मिन् स धातकीखण्डः, एत-  
 न्नामा द्विपः । धातकीखण्डपररुणमपि वलयाकृतिं धातकीखण्डमालिख्य हिम-  
 वदादि वर्षधरान् पर्वतान् जम्बूद्वीपानुसारेणैवोभयपार्श्वतः पूर्वापरविभागेन भरत  
 हेमवतादि वर्षाणि च व्यवस्थाप्य पूर्वारदिशोर्वक्ष्यविष्कम्भमध्ये मेरुं च कल्प-

यह जगती प्रमाण है इसके दोनों तरफ वनखण्ड है । गवाक्षों, हेम की  
 क्षुद्रघंटिकाओं एव घंटाओं से यह परिमण्डित है, देवों की आसनशयन  
 आदिरूप विविध प्रकार की क्रीडाओं का यह स्थानरूप है. दो कोश की  
 इसकी ऊंचाई है जम्बूद्वीप को घेरे हुए लवण समुद्र है अतः अब सूत्र-  
 कार इसके संबंध में वक्तव्यता का कथन करते हैं-चक्रवालविष्कम्भ की  
 अपेक्षा लवणसमुद्र जम्बूद्वीप के विस्तार से दूना है अर्थात् लवणसमुद्र  
 का विस्तार दो लाख योजन का है इसकी वेदिका भी जम्बूद्वीप की  
 वेदिका के जैसा ही विस्तारवाली है धातकी खण्ड में अनेक प्रकार के  
 धातकी नामके वृक्षविशेषों का समुदाय है अतः इसका नाम धातकी-  
 खण्ड है धातकी खण्ड नामका वह द्वीप है यह द्वीप भी वलयाकृति है  
 हिमवदादि वर्षधरपर्वतों को जम्बूद्वीप के अनुसार ही दोनों ओर पूर्व से

वनखंड ( वनभंड ) छे गवाक्षो, सुवर्णुनी नानी नानी घटडीओ, अने घंटोथी  
 ते परिमण्डित ( वीटणायेत्री ) छे. देवाना आसन, शयन आदिइप विविध  
 प्रकारनी क्रीडाओ माटे ते स्थानइप छे, तेनी ओआछि जे केशनी छे जू  
 द्वीपने वीटणायेदी लवणसमुद्र छे तेथी डवे सूत्रकार ते लवणसमुद्रनी वक्त-  
 व्यतानु कथन करे छे, चक्रवाल विष्कम्भनी अपेक्षाओ लवणसमुद्रने विस्तार  
 जू द्वीपना विस्तार करता भमखो छे, ओटले के लवणसमुद्रने विस्तार जे  
 लाभ योजनने छे तेनी वेदिका पणु जू द्वीपनी वेदिकाना ओटला जू विस्ता-  
 रवाणी छे धातकीभंडमा अनेक प्रकारना धातकी नामना वृक्षाने समुदाय छे,  
 तेथी तेनु नाम धातकीभंड पड्यु छे. धातकीभंड नामना ते द्वीपने आकार  
 वलयना जेवो छे, ते धातकीभंड द्वीपमा हिमवन् आदि वर्षधर पर्वतो  
 जू द्वीपनी जेम जू पूर्वथी पश्चिम तरफ आवेला छे. त्यां पणु भरत आदि

ચિત્રાઽથયોઽધ્યમ્ । અનેનૈવ ક્રમેણ પુષ્કરવરદ્વીપાર્દ્ધપ્રકરણમપીતિ । ઘાતકી  
 સ્વપ્લસા પૂર્વાપરાર્ધતાવ ભ્રમણસમુદ્રવેદિકાતો દક્ષિણત ઉત્તરતમ ઘાતકીસ્વપ્લ  
 વેદિકાં યાવદ્ગ્રસ્થામ્યામિપુષ્કારપવતામ્યાં ઘાતકીસ્વપ્લસ્ય વિમત્તસ્વાદ્ વિદ્યેષા ।  
 'एष जहा जयुरीधे तथा' इत्यादि । एवं घातकीस्वप्लસ્વપૂર્વાર્ધપશ્ચિમાર્ધ  
 પ્રકરણદ્વયમપિ પ્રત્યેકમેકોનસપ્તતિમુષ્ણ યાવત્ જન્મ્વદ્વીપપ્રકરણનદપ્પેતમ્યમ્ ।

પશ્ચિમ તક પ્રકટ ક્રિયા ગયા છે ભરત આદિ ક્ષેત્રોં કી રચના કી ગઈ છે  
 પૂર્વદિગા ઓર પશ્ચિમદિગા કી ઓર મેરુ કી રચના કી ગઈ છે તાત્પર્ય  
 ક્રમકા યહ છે કિ જન્મ્વદ્વીપ કી રચના કે અનુસાર હી ઘાતકી સ્વપ્લદ્વીપ  
 મેં દ્વિમથવાદિ પર્વતોં કી ઓર ભરત આદિ ક્ષેત્રોં કી રચના હુઈ છે યહાં  
 દો મેરુ હેં ઇસલિયે એક એક મેરુ મર્પષી સાત ૨ ક્ષેત્ર આદિ કી રચના  
 હોને સે યહાં કન મય કી પૂર્વાર્ધ ઓર અપરાર્ધ કો ઊકર દૂની રચના  
 પ્રકટ કી ગઈ છે ઘાતકી સ્વપ્લ દ્વીપ કે સમાન પુષ્કરાધ મેં બી મેરુ, વર્પ,  
 વર્પધર નદી આદિકોં કી સરખા દૂની છે ક્યોં કિ ઇસ દ્વીપ કે બી ઇપ્વા  
 કાર પવતોં કે નિમિત્ત પૂર્વાધ ઓર પશ્ચિમાર્ધ એસે દો વિભાગ કહે ગયે  
 હેં ઇસ તરહ ઢાઈ દ્વીપ મેં પાંચ મેરુ પેંતીસવર્પ, તીસ વર્પધર, સગ્રહ મહા-  
 ત્તવિયાં ઓર તીસ હ્રદ હેં ।

જન્મ્વદ્વીપ મેં વિવેદક્ષેત્ર કા વિસ્તાર ૩૩૬૮૪-૪/૧૦ યોજન છે ઓર  
 મર્ય મેં લમ્પાઈ એક યોજન છે ઠીક યીષ મેં મેરુ પર્વત છે ઇસકે પાસ  
 સે હો ગજવન્ત પર્વત નિકલકર નિપથ મેં જા મિલે હેં । ઇસી પ્રકાર સ્પાર

ક્ષેત્રોની રચના પ્રકટ કરવામાં આવી છે આ કથનનો ભાવાર્થ એ છે કે જૂ  
 દ્વીપની જેમ જ ઘાતકીપ્લ દ્વીપમાં પણ દ્વિમવન્ આદિ પર્વતોની, અને ભર  
 તાદિ ક્ષેત્રોની રચના સમજવી એકબે ત્યાં જે મેરુ છે, તેથી એક એક  
 મેરુ સબધી સાત સાત ક્ષેત્ર આદિની રચના દોષાથી ત્યાં સૌની પૂર્વાર્ધ અને  
 પશ્ચિમાર્ધની અપેક્ષાએ અમળી રચના પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે ઘાતકીપ્લ  
 દ્વીપની જેમ પુષ્કરાધમાં પણ મેરુ, ક્ષેત્રો વર્પધરો અને નદીઓ આદિની  
 સખ્યા અમળી બનાવવામાં આવી છે કારણ કે-આ દ્વીપમાં પણ ઇન્ધ્રકાર  
 પર્વતોને લીધે પૂર્વાધ અને પશ્ચિમાધ એવા બે વિભાગ થઈ ગયા છે. આ  
 રીતે બધી દ્વીપમાં પાંચ મેરુ ૩૫ ક્ષેત્રો, ત્રીસ વર્પધર પર્વતો, ૧૭ મહા  
 નદીઓ અને ૩૦ ઘંટ આવેલાં છે

જૂદ્વીપમાં આવેલા વિવેદ ક્ષેત્રોનો વિસ્તાર ૩૩૬૮૪-૪/૧૬ તેત્રીસ  
 હજાર છે. એ કોષાંશી હજાર ચાર કોષાંશીશાશ ચોળનનો છે અને મધ્યમાં  
 વબાઇ એક ચોળનની છે તેમાં વચ્ચે બરાબર મેરુ પર્વત છે  
 તેની પાસેથી બે અઘવન્ત પર્વત નીકળીને નિપથમાં જઈ મળ્યા છે એવ

મેં દો ગજદન્ત પર્વત નીલ મેં જા મિલે હેં । હસસે વિદેહક્ષેત્ર ચાર વિભાગો મેં વિભક્ત હો જાતા હૈ દક્ષિણદિશા મેં ગજદંતોં કે મધ્ય કા ક્ષેત્ર દેવકુરુ ઓર ઉત્તરદિશા મેં ગજદન્તોં કે મધ્ય કા ક્ષેત્ર ઉત્તરકુરુ કહોતે હેં । તથા પૂર્વદિશા કા સવ ક્ષેત્ર પૂર્વવિદેહ ઓર પશ્ચિમદિશા કા સવ ક્ષેત્ર પશ્ચિમવિદેહ કહા ગયા હૈ હસસે દેવકુરુ ઓર ઉત્તરકુરુ મેં ઉત્તમભોગભૂમિ હૈ પૂર્વવિદેહ ઓર પશ્ચિમવિદેહ મેં કર્મભૂમિ હૈ । ઇન દોનોં અન્તિમ ભાગોં કે સીતા ઓર સીતોદા નદિયોં કે કારણ દો દો ભાગ હો જાતે હેં હસ પ્રકાર કુલ ચાર ભાગ હોતે હેં જો ચારોં ભાગ નદી ઓર પર્વતોં કે કારણ આઠ-આઠ ભાગોં મેં વટે હુણ હૈ જિસસે જમ્બૂદ્વીપકે મહાવિજય ક્ષેત્ર મેં કુલ ( ૩૨ ) વત્તીસ વિજય હો જાતે હેં । ઇનમેં ભરત ઓર ઈરવન કે સમાન આર્યઋણ્ડ ઓર મ્લેચ્છઋણ્ડસ્થિત હેં, પદવીધર મહાપુરુષ, વ તિર્થકર આર્યઋણ્ડોં મેં હી ઉત્પન્ન હોતે હેં જમ્બૂદ્વીપ મેં કુલ ૩૪ ઓર ઢાઈ દ્વીપ મેં ઈરુ સૌ સત્તર આર્યઋણ્ડ હેં ઈક સાથ હોને વાલે કુલ તિર્થકરોં કી સલ્યા ઈકસૌ સત્તર કહી ગઈ હૈ વહ ઇન્હોં ક્ષેત્રોં કી અપેક્ષા સે કહી ગઈ હૈ વિદેહોં મેં જો હસ સમય સીમંધર આદિ વીસ તિર્થકર કહે જાતે હેં સો વે ઢાઈ દ્વીપ કે વીસ વિજય કી અપેક્ષા સે કહે

પ્રમાણે ઉત્તરમાં જો ગજદન્ત પર્વત નીલ પર્વતમાં જઈ મળ્યા છે, તેને લીધે વિદેહક્ષેત્ર ચાર વિભાગોમાં વહેચાઈ ગયું છે. દક્ષિણ દિશામાં ગજદન્તોની મધ્યનું ક્ષેત્ર દેવકુરુ નામે ઓળખાય છે અને ઉત્તર દિશામાં ગજદન્તોની મધ્યનું ક્ષેત્ર ઉત્તરકુરુ નામે ઓળખાય છે, તથા પૂર્વ દિશાનું આખું ક્ષેત્ર પશ્ચિમ વિદેહને નામે ઓળખાય છે. તેને લીધે દેવકુરુ અને ઉત્તરકુરુમાં ઉત્તમ ભોગભૂમિ છે અને પૂર્વવિદેહ અને પશ્ચિમ વિદેહમાં કર્મભૂમિ છે. આ બંને અન્તિમ ભાગોને સીતા અને સીતોદા નદીઓ બંને વિભાગોમાં વિભક્ત કરે છે, આ રીતે કુલ ચાર ભાગ પડે છે. તે ચારે ભાગો નદી અને પર્વતોને કારણે આઠ આઠ ભાગોમાં વિભક્ત થયેલા છે, તે કારણે જમ્બૂદ્વીપમાં કુલ ૩૨ મહાવિદેહ થઈ જાય છે. તેમાં ભરતખંડ અને ઈરવત ક્ષેત્રના જેવાં આર્યખંડ અને મ્લેચ્છખંડો આવેલા છે પદવીધર મહાપુરુષો અને તિર્થકરો આર્યખંડોમાં જ ઉત્પન્ન થાય છે જમ્બૂદ્વીપમાં કુલ ૩૪ અને અઢી દ્વીપમાં કુલ ૧૧૭ આર્યખંડ છે એક સાથે ઉત્પન્ન થનારા તિર્થકરોની જે ૧૧૭ ની સંખ્યા કહી છે તે આ ક્ષેત્રોની અપેક્ષાએ જ કહેવામાં આવેલ છે વિદેહોમાં જે આ સમયે સીમંધર આદિ ૨૦ તિર્થકરો કહેવામાં આવે છે તે અઢી

ध्यायपापि तथैव । कियद्दूरम् ? इत्याह—‘ जाय दोसु वाससु मणुया ’ इत्यादि, तदप्रे धातकीत्वण्डादौ चन्द्रादि ज्यातिषां बहुत्वात् साम्यम् । अप्तु द्विस्थानकत्वाद् द्विकस्यैव ग्रहणम् । श्रेय सुगमम् । विशेषमाह—‘ नवरं ’ इत्यादि । कूटशास्त्रमलि, धातकी वृक्षस्येति द्वौ वृक्षौ स्तः । तत्र—गरुड—सुपर्णजातीयो वेणुदेवः सुदर्शन-स्वेति द्वौ देवौ परिषसत । धायइसंज्ञदीपवचस्त्रियमद्रेण ’ इत्यादि, पश्चिमार्द्ध प्रकरण पूर्वाध्वत् विष्णुप यावत्—‘ छन्विइ पि कालं ’ इत्यादि । विशेषमाह—‘ नवरं ’ इत्यादि, नवर—विशेषस्त्वपम्—कूटशास्त्रमलि, महाधातकीवृक्ष, एतौ द्वौ वृक्षौ ।

गये जानना चाहिये—क्यों कि पूर्वोक्त विभागानुसार जम्बूद्वीप के चार ओर दार्दीप के बीस विजय होते हैं । धातकीत्वण्डादिक में चन्द्रादि ज्योतिष्कों की बहुतता होने से इनमें समानता नहीं है । यहाँ द्विस्थानक का प्रकरण है इसलिये दो ही का ही ग्रहण हुआ है । बाकी का पाठ सुगम है । यहा कूटशास्त्रमली और धातकीवृक्ष ये दो वृक्ष हैं । गरुडशब्द से सुपर्णजाति के वेणुदेव और सुदर्शन देव ये दो देव गृहीत हुए हैं ये दो देव यहाँ रहते हैं । पश्चिमार्द्ध का प्रकरण पूर्वाध्वत्प्रकरण की तरह से ही है ऐसा जानना चाहिये कूटशास्त्रमलि और महाधातकी वृक्ष ये दो वृक्ष यहाँ पर हैं सुपर्णजातीय वेणुदेव और प्रियदर्शनदेव ये दो देव यहाँ रहते हैं । धातकीत्वण्डमें दो भरत आदि का वर्णन सुगम है । यावत् यहाँ दो अपरविदेह हैं । देवकुरु में दो कूटशास्त्रमली वृक्ष हैं । दो इन वृक्षों पर रहनेवाले वेणुदेव हैं । उत्तरकुरुमें

द्वीपना २० भद्रादिरेडोनी अधिकाके ठेकेनामां आवे छे केम समजनु ठारवु छे पूर्वोक्त विभाग अनुसार वज्रद्वीपना चार अने अही द्वीपना बीस भद्रा विदेह थाय छे धातकी अष्टादिकेनां ज्योतिषिकेनी विपुतता डोवाधी तेमनी वच्ये समानता नहीं अही द्विस्थानकेना अधिकाए साधते डोवाधी अही अने व प्रकषु कशाया छे जाहीने पाठ सरण छे अही कूटशास्त्रमली अने धातकीवृक्ष नामना के वृक्ष छे अरुड शण्डना प्रयोग द्वारा सुपर्ण अतिना वेणुदेव अने सुदर्शनदेव, के के देव गृहीत थाय छे ते अने देना त्या निवास करे छे पश्चिमार्द्ध वज्रन पूर्वाध्वत् वज्रन अनुसार व समजनु त्या कूटशास्त्रमली अने महाधातकी वृक्ष नामना के वृक्षो छे । सुपर्ण अतिना वेणुदेव अने प्रियदर्शनदेव त्यां निवास करे छे धातकीजडमां आवतां के भरत आदिनुं वज्रन सुगम छे त्यां के अपरविदेह पश्चान्तना क्षेत्रो छे देव कुरुमां के कूटशास्त्रमली वृक्षो छे अने ते वृक्षोपर निवास करनाय के वेणुदेव

तत्र-सुपर्णजातीयौ वेणुदेव-प्रियदर्शनौ द्वौ देवौ परिवसतः । ' धायइ संडेणं ' इत्यादि, धातकी खण्डस्य भरतादि क्षेत्रयुगलवर्णन सुगमं यावत् द्वौ अपरविदेहौ इति । ' दो देवकुराभो ' इत्यादि, देवकुरुषु द्वौ ऋटशाल्मलिदृक्षौ, द्वौ तद्वासिनौ देवौ वेणुदेवौ उत्तरकुरुषु धातकी महा धातकी नामानौ द्वौ दृक्षौ तद्वासिनो सुदर्शन-प्रियदर्शनौ द्वौ देवौ । ' दो चुल्लहिमवंता ' इत्यादि, क्षुल्लहिमवन्तानी शिखरिष्यन्तानि पद्वर्षधरपर्वतयुगलानि । वृत्तवैताढ्य-पर्वतवनुष्टयपुगळप्रह्वणामाह--' दो सदावाइ ' इत्यादि । द्वौ गन्धापातिनौ वृत्तवैताढ्यपर्वतो, तन्निवासिनो स्वातिनामानौ द्वौ देवौ १, एवं विकटापातिनौ, तन्निवासिनौ, प्रभासाख्यो देवौ २, गन्धापातिनौ, तन्निवासिनौ अरुणाभिधानौ

धातकी और महाधातकी नाम के दो वृक्ष हैं । इन पर सुदर्शन और प्रियदर्शन दो देव रहते हैं । क्षुल्ल हिमवन्त से लेकर शिखरी वर्षधर तक वर्षधर पर्वतों के ६ युगल हैं अर्थात् दो क्षुल्लक हिमवन्त दो महा हिमवन आदि वर्षधर पर्वत दो दो हैं । अब सूत्रकार चार वृत्त वैताढ्य पर्वत के युगलों की प्ररूपणा करने के निमित्त कहते हैं--"दो सदावाइ" इत्यादि । यहां दो गन्धापाती वृत्तवैताढ्य पर्वत है । इन पर निवास करनेवाले स्वाति नामके दो देव हैं । विकटापाती नाम के भी दो वृत्त वैताढ्य पर्वत है । इन पर निवास करनेवाले प्रभास नामके दो देव हैं । गन्धापति नामके भी दो वृत्त वैताढ्य पर्वत है इन पर निवास करनेवाले अरुण नामके दो देव हैं । माल्यवत्पर्याय नामके भी दो वृत्तवैताढ्य पर्वत हैं-इन पर निवास करने वाले पद्मनाभ नामके दो देव हैं । इस तरह से ये चारवृत्तवैताढ्ययुगलों के नाम हैं । "दो मालवंता" दो माल्य-

छे. उत्तरकुरुमां धातकी अने महाधातकी नामना जे वृक्षो छे, ते वृक्षोपर सुदर्शन अने प्रियदर्शन नामना जे देवो रहै छे. क्षुल्ल डिभवन्थी लधने शिखरी वर्षधर पर्वत पर्यन्तना वर्षधर पर्वतोना ६ युगल छे. ओटवे के जे क्षुल्ल डिभवन्, जे महाडिभवन्. आदि वर्षधर पर्वतो जण्ये छे.

इवे सूत्रकार चार वृत्तवैताढ्य पर्वतना युगलोनी प्ररूपण्यु "दो सदावाइ" ध्यादि सूत्रो द्वारा करे छे अर्थां जे शल्पापाती वृत्तवैताढ्य पर्वतो छे. ते पर्वतोपर स्वाती नामना जे देवो निवास करे छे. विकटापाती नामना पण्यु जे वृत्तवैताढ्य पर्वतो छे, ते पर्वतपर प्रभास नामना जे देव रहै छे. गन्धापाति नामना पण्यु जे वृत्तवैताढ्य पर्वतो छे, ते पर्वतोपर निवास कर- नारा अरुण नामना जे देवो छे. माल्यवत्पर्याय नामना पण्यु जे वृत्तवैताढ्य





मातृजनो ४ चेति । ततः सोमनसौ देवकुरुपूर्वदिग्दर्शनौ गजदन्तकौ-गजदन्ताकारौ पर्वतौ । ततो गजदन्तकावेव देवकुरुपश्चिमभागवर्त्तिनौ विद्युत्प्रभौ । ततो भद्रशालवनतद्वेदिकाविजयेभ्यः परतस्तथैवाङ्कावत्यादीनां पर्वतानां चत्वारि युगलानि शीतोदादक्षिणकूलवर्त्तिनि सन्ति, तथाहि-अङ्कावतीद्विकम् १, पञ्चावतीद्विकम् २, आशीविपद्विकम् ३, सुखावहद्विकं ४ चेति । पुनरन्यानि पश्चिमवनमुखवेदिकान्त्यविजयाभ्यां पूर्वतः क्रमेण तथैव चन्द्रपर्वतादीनां चत्वारि युगलानि सन्ति, तथाहि—चन्द्रपर्वतौ १, सूरपर्वतौ २, नागपर्वतौ ३, देवपर्वतौ ४ चेति । ततो द्वौ गन्धमादनौ उत्तरकुरुपश्चिमभागवर्त्तिनौ गजदन्तकाविति । एते धातकीखण्डस्य पूर्वार्द्धे पश्चिमार्द्धे च भवन्तीति द्वौ द्वावुक्ताविति । इषुकारपर्वतौ तु

पर्वत देवकुरु की पूर्वदिशा में है और इजका आकार गजदन्तों के जैसा है । इसी तरह से देवकुरु की पश्चिमदिशा में विद्युत्प्रभ नामके दो गजदन्ताकार पर्वत हैं । बाद में भद्रशालवन, इसकी वेदिका और विजय इनसे आगे अङ्कावती आदि पर्वतों के चार युगल हैं ये चार युगल शीतोदानदी की दक्षिण दिशा के तट पर स्थित हैं । इन युगलों के नाम इस प्रकार से हैं—दो अङ्कावतीपर्वत, दो पञ्चावतीपर्वत, दो आशीविषपर्वत, और दो सुखावहपर्वत पश्चिमवनमुखवेदिका और अन्त्यविजय इनकी पूर्वदिशा में क्रम से चन्द्रपर्वत आदिकों के चार युगल हैं—वे युगल इस प्रकार के नामवाले हैं—दो चन्द्रपर्वत, दो सूरपर्वत, दो नागपर्वत और दो देवपर्वत इनके पश्चात् दो गन्धमादन नामके गजदन्ताकार पर्वत है ये दो गन्धमादन पर्वत उत्तरकुरु के पश्चिम भाग में है । ये दो दो धातकीखण्ड के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में कहे गये है । दो २ कहने

नम पर्वतो देवकुरुनी पूर्वदिशाभा छे, अने तेमनो आकार गजदन्ताना जेवे छे अने प्रभाणे देवकुरुनी पश्चिम दिशाभा विद्युत्प्रभ नामना जे गजदन्ताकार पर्वतो छे त्यारभाद भद्रशालवन, तेनी वेदिका अने विजय, त्याथी आगण जता अङ्कावती आदि पर्वताना चार युगल आवे छे ते चार पर्वतयुगलो शीतोदा नदीनी दक्षिण दिशाना तटपर आवेला छे, तेमना नाम नीचे प्रभाणे छे—जे अङ्कावती पर्वत, जे पञ्चावती पर्वत, जे आशीविष पर्वत अने जे सुखावह पर्वत, पश्चिमवन मुखवेदिका अने अन्त्य विजयनी पूर्व दिशाभा अनुक्रमे नीचे प्रभाणे चार पर्वताना युगल छे—जे चन्द्रपर्वत, जे सूरपर्वत, जे नागपर्वत अने जे देवपर्वत त्यारभाद गन्धमादन नामना जे गजदन्ताकार पर्वतो आवेला छे, ते अने गन्धमादन पर्वतो उत्तरकुरुना पश्चिम भागभा छे, धातकीखण्डना पूर्वार्धभा अने पश्चिमार्धभा जेवा अने गन्धमादन पर्वतो

देवी । 'दो मालवता' इत्यादि, मालववती-उत्तरकुक्षत पूर्वदिग्बर्तिनी गजदन्तक्री  
 गजदन्ताकारौ पर्वती स्त । ततो मद्रशालवनवद्वेदिका विजयेभ्यः परी धीतोत्तर  
 कूक्षवर्तिनी दक्षिणोत्तरायती चित्रकूटी घक्षस्कारपर्वती । ततो विजयेनान्तर-नद्या  
 विजयन घातरिती विजयानन्तर पद्मकूट , ततोऽन्तरनदी, ततोऽपुन पद्मकूटा,  
 ततो विजयः, एवम त्रिती द्वौ पद्मकूटी, तथैवान्यौ नलिनकूटी, पुनस्तथैवान्यौ  
 एक शैलाविति । पुनः पूर्ववनमुखवेदिका विजयाम्भ्यामर्षाद् शीतादक्षिणकूक्षपर्वतीनि  
 चत्वारि पर्वतयुगलानि सन्ति, तथाहि-त्रिकूटी १, वैभ्रवणकूटी २, अजनी ३,

दन्तपर्वत उत्तरकुक से पूर्वदिशा में है इनका दूसरा नाम गजदन्त पर्वत  
 भी है क्यों कि ये गजदन्त के जैसे भाकार वाले हैं । यहाँ से मद्रशा  
 लवन और उसकी वेदिका और विजय इनसे आगे उत्तर दक्षिण तक  
 चौड़े-लम्बे मीता के उत्तरफलपर्वती चित्रकूट नामके दो घक्षस्कार पर्वत  
 हैं । दो पद्मकूट हैं । ये पद्मकूट विजय और अन्तर नदी से अंतरित हैं ।  
 अर्थात् पहिले विजय है बाद में पद्मकूट है उसके बाद अन्तर नदी है  
 फिर पद्मकूट है, उसके बाद विजय है इस तरह से अन्तरित दो पद्म  
 कूट है इसी प्रकार से दो नलिनकूट हैं दो दूसरे एक शैल है । पूर्ववन  
 मुखवेदिका और विजय इनके साम्हने सीतानदी की दक्षिणदिशा के  
 तट पर चार पर्वत युगल हैं जैसे दो त्रिकूट, दो वैभ्रवणकूट, दो अजनी  
 कूट और दो मार्तजन इनके बाद दो सौमनस पर्वत हैं ये दो सौमनस

पर्वतो छे अने ते पवतोपर पद्मनाभ नामना छे देवो रह्ये छे आ प्रहारेना  
 ते आर वृत्तवैताडभेना मुत्रलौना नाम छे

“ दो मालवता ” उत्तरकुकुनी पूर्वदिशां मे मालवपन्त पवतो छे  
 तेमनुं जीशु नाम गजदन्त पर्वतो पद्य छे, शरव के तेमनो आहार दाधीना  
 दंत देवो छे त्वाधी आभण कर्ता मद्रशालवन अने तेनी वेदिका अने विजय  
 त्वाधी आभण कर्ता र्थिता नदीना उत्तर दिनाश तरह चित्रकूट नामना मे  
 पद्मकूट पर्वतो छे ते अने पर्वतो उत्तर दक्षिण तरह विस्तरेला छे मे  
 पद्मकूट छे ते अने पद्मकूट विजय अने अन्तर नदीषी अन्तरित छे ओठके  
 के पडेलां विजयपद्म आवे छे त्वाभ्यां पद्मकूट छे, त्वाभ्यां अन्तर नदी  
 छे अने त्वाभ्यां पद्मकूट छे, अने त्वाभ्यां विजय छे आ प्रहारे अन्तरित  
 मे पद्मकूट छे ओज प्रभावे मे नदीनह छे अने मे जीशु ओज शैल छे  
 पूर्ववन मुखवेदिका अने विजयनी धामि र्थिता नदीना दक्षिण दिनाश तरह  
 नीषे प्रभावे आर पवतयुगल छे-मे चित्रकूट मे वैभ्रवणकूट, मे अजनीकूट,  
 अने मे मार्तजन त्वाभ्यां मे सौमनस पवत आवेला छे ते अने सौम

तदेव्योऽप्येवं द्वादशेति । चतुर्दशानां गङ्गादिमहानदीनां पूर्वार्द्धपश्चिमार्द्धापे-  
 मया द्विगुणत्वात्प्रपातहदा अपि द्वौ द्वौ स्युरतएवाह—‘ दो गंगप्पवायद्दहा ’  
 इत्यारभ्य ‘ दो रत्तवड्पपवायद्दहा ’ इत्यन्तानि पूर्वोक्तद्वान्त्रिंशत्तमसूत्रोक्तानि  
 चतुर्दश प्रपातहदयुगलानि भवन्ति । ‘ दो रोहियाओ ’ इत्यादि, रोहिदादयो  
 रूप्यकूलापर्यन्ता अत्रस्थद्वान्त्रिंशत्तमसूत्रोक्ता अष्टौ नद्यो युगलत्वेन सन्ति, तथाहि-  
 रोहिता १, हरिकान्ता २, हरित् ३, शीतोदा ४, शीता ५, नारीकान्ता ६, नर-  
 कान्ता ७, रूप्यकूला ८ । ‘ दो गाहावईओ ’ इत्यादि, चित्रकूट-पद्मकूट-वक्षस्का-  
 रपर्वतयोरन्तरे नीलवद्वर्षधरपर्वतैकभागव्यवस्थिताद् ग्राहवतीकुण्डादक्षिणतोरण-

इन हदों में निवास करनेवाली देवियों की भी संख्या १२ हो जाती  
 है । इसी तरह से गंगा सिन्धु आदि महानदियों के पूर्वार्द्ध और पश्चि-  
 मार्ध की अपेक्षा द्विगुण होने से प्रपातहद भी दो दो हैं । इसीलिये “ दो  
 गंगप्पवायद्दहा ” से लेकर “ दो रत्तवड्पपवायद्दहा ” तक के ३२वें सूत्र  
 में १४ प्रपातहद युगल प्रकट किये गये हैं । “ दो रोहियाओ ” इत्यादि  
 रोहिता से रूप्यकूला तक नदियों के दो दो युगल हैं । “ दो गाहावईओ ”  
 इत्यादि दो ग्राहवती नदियां हैं । ये नदियां चित्रकूट और पद्मकूट नामके  
 दो वक्षस्कार पर्वतों के अन्तर में नीलवद्वर्षधर पर्वत के एकभाग में  
 व्यवस्थित ग्राहवतीकुण्ड से दक्षिणतोरण से विनिर्गत है इनकी परि-  
 वार नदियां २८-२८ हजार हैं । ये दोनों ग्राहवती नदियां सीतानदी  
 में जाकर मिली हैं । सुकच्छ और महाकच्छ नामक दो विजयों का इनसे

ते उहोमां निवास करनारी देवीओनी स भ्या पण १२ नी छे. ओज  
 प्रम.ओ गंगा, सिन्धु आदि नदीओनी स भ्या पण पूर्वार्द्धे अने पश्चिमाधेनी  
 अपेक्षाओ भमणी थती डोवाथी प्रपातउद पण अण्णे छे तेथी “ दो गंगप्पवाह  
 द्दहा ” थी लधने “ दो रत्तवड्पपवायद्दहा ” पर्यन्तना उर मां सूत्रमा १४  
 प्रपातउद युगलो प्रकट करवामां आव्या छे.

“ दो रोहियाओ ” इत्यादि. रोहिताथी लधने रूप्यकूला पर्यन्तना नदी-  
 ओना अण्णे युगल छे “ दो गाहावईओ ” इत्यादि. ये ग्राहवती नदीओ  
 छे ते नदीओ चित्रकूट अने पद्मकूट नामना ये वक्षस्कार पर्वतोनी वच्चे  
 नीलवत् वर्षधर पर्वतना ओक भागमां आवेला ग्राहवतीकुंडना दक्षिणु तोर-  
 णमांथी नीकणे छे, तेमनी परिवार नदीओ २८-२८ छे. ते भन्ने ग्राहवती  
 नदीओ सीता नदीने भणे छे. सुकच्छ अने महाकच्छ नामना ये विजयोनु

दक्षिणोत्तरयोर्दिशोपातशीलश्च विभागकारिणौ स्तः इति । 'दोपुच्छहिमवतकूटा' इ०

हिमवदादयः पद् वर्षपरपयथा सन्ति तेषु यौ द्वौ द्वौ कूटौ नम्बूद्वीपप्रकर षेऽऽभिहितौ तौ पर्यतानां द्विगुणत्वाद् एकैकशो द्वौ द्वौ स्यातामिति तिगिच्छकू टपर्यन्तानि द्वादशकूटयुगलानि भवन्ति । अथ इदानीं इदवाहिदेवीनां च षष्ठस्य तामाह—'दो पउमरहा इत्यादि,

पद्दशदारभ्य पुण्डरीकदपर्यन्ताः पद् इदा अपि द्विगुणिता द्वादशा भवन्ति, उक्त च—“पउमे १ य महापउमे २, तिगिच्छी ३ केसरी ४ व्हे चेर ।

हरप महापुंडरीप ५ पुडरीप ६ चेर य दहामो ॥ १ ॥”

छाया—पद्य १ महापद्य २, तिगिच्छी ३ केशरी ४ इहचैत्र ।

इदो महा पुण्डरीकः ५ पुण्डरीक ६ इवैव च इदा ॥ १ ॥

का तात्पर्य यह है कि जम्बूद्वीप की अपेक्षा यहां पर्वतों की सख्या द्विगुणित कही गई है । इपुकार जो दो पर्वत है वे दक्षिण और उत्तर दिशा में है और घातकीषण्ड दो विभागों में विभक्त है । (दो पुच्छहिमवतकूटा) इत्यादि हिमवत आदि जो ६ वर्षपर पर्वत है इनमें दो दो कूट जो कि जम्बूद्वीप के प्रकरण में कहे गये है वे पर्वतों के द्विगुण होने से एक २ वर्षपरपर्वत में दो दो है इस तरह तिगिच्छकूट तक १२ कूट युगल हो जाते हैं । “दो पउमरहा” इत्यादि पद्यइद से लेकर पुण्डरीक इद पर्यन्त छह इद भी दो दो होने से १२ हो जाते हैं । फहा भी है “पउमे य महापउमे” इत्यादि ।

कथा ३ अर्द्धी ल०ने अ भमाहन पर्वतो इत्येतु कारण्ये ३ ३ ल०द्वीप करता अर्द्धी पर्वतादिनी स०था अमली लनावनामा आवेत् ३ ने ने ध्यु कार पर्वतो ३ तेजो इक्षिद्व अने उत्तर दिशामां ३, अने तेभन्य कारा घातकीषण्डना ने विभागे यध लव ३

दोपुच्छहिमवतकूटा इत्यादि हिमवत आदि ने इवरीपर पर्वतो ३ तेभा ल०ने ५ आवेत् ३ ल०द्वीपना प्रकरणा तेभनां नाम अदा पवामां आभां ३ अर्द्धी पर्वतोनी अ०था अमली दोवाथी जेठ जेठ वर्षपर पर्वतमां ल०ने ५ ३ आ रीते तिगिच्छकूट पर्यन्तया १२ कूटयुगल यध लव ३

दो पउमरहा' इत्यादि पद्यइदथी लधने पुण्डरीक पर्यन्तया ३ कूटयुगलो दोवाथी इव लार म् अर्द्धी आवेत् ३ इमुं पव ३ ३- पउमेय महापउमे” इत्यादि

मन्दरौ-मेरुपर्वतौ द्वौ, द्वे च मन्दरचूलिके । चूलिका-शिखरविशेष इति ।  
 'घाड्यसंडस्स णं' इत्यादि, धातकीखण्डद्वीपस्य वेदिका जम्बूद्वीपवद् द्वे गव्यूती  
 ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता भगवतेति ।

धातकीखण्डानन्तरं कालोदः समुद्रोऽस्तीति तत्प्ररूपणामाह-'कालोदस्स-  
 णं' इत्यादि । कालोद समुद्रवेदिका सूत्रमिदं सुगमम् ।

कालोदसमुद्रानन्तरमव्यवहितत्वादेव पुष्करवरद्वीपवक्तव्यतामाह-'पुष्कर-  
 वर दीवड्डुपुरत्थिमेणं' इत्यादि ।

पुष्करवरद्वीपस्य पूर्वार्द्ध-पश्चिमार्द्ध-तदुभयरूपाणि त्रीण्यपि प्रकरणानि सुग-  
 मानि प्रसिद्धानि च । अर्थोऽपि सुगम एव । अस्य पूर्वार्द्धता च धातकीखण्डवदि-  
 पुष्कारपर्वताभ्यामवगन्तव्या । अस्य वेदिकाऽपि पूर्ववद् ऊर्ध्वोच्चत्वेन गव्यूतद्वय-

का नाम चूलिका है । " घाड्यसंडस्सणं " इत्यादि-धातकी खण्डद्वीपकी  
 वेदिका जम्बूद्वीप की वेदिका की तरह दो गव्यूतिप्रमाण की है ।  
 धातकी खण्ड के पीछे कालोदसमुद्र है इसलिये अब सूत्रकार इसकी  
 प्ररूपणा के विषय में कहते हैं-" कालोदस्स णं " इत्यादि । यह कालो-  
 दसमुद्र की वेदिका का सूत्र सुगम है-कालोदसमुद्र के अनन्तर अव्य-  
 वहित होने से ही पुष्करवरद्वीप की वक्तव्यता के विषय में सूत्रकार ने  
 " पुष्करवरदीवड्डुपुरत्थिमेणं " इत्यादि यह सूत्र कहा है-पुष्करवरद्वीप  
 के पूर्वार्ध, पश्चिमार्द्ध और तदुभयरूप तीनों ही प्रकरण सुगम और  
 प्रसिद्ध है । अर्थ भी सुगम ही है । पुष्करवरद्वीप की पूर्वार्द्धता और  
 परार्धता धातकी खण्ड की तरह दो इषुकारपर्वतों से ही हुई है ऐसा  
 जानना चाहिये-इसकी वेदिका भी ऊँचाई में पूर्वकी तरह ही दो गव्यूति

" घाड्यसंडस्सणं " इत्यादि-धातकीभंडनी वेदिका जम्बूद्वीपनी वेदिकानी  
 जेम जे गव्यूति ( कोश ) प्रमाणं ७'थी छे. धातकीभंड द्वीप पछी कालोद  
 समुद्र आवेदो छे, तेथी सूत्रकार उवे कालोद समुद्रनी प्रज्ञप्ता करे छे-

" कालोदस्स णं " इत्यादि-आ कालोद समुद्रनी वेदिकानु सूत्र सुगम छे.  
 कालोद समुद्रनी पछी तुरत ज आवतो डोवाथी ज पुष्करवर द्वीपनी वक्तव्य-  
 ताना विषयमां सूत्रकारे " पुष्करवरदीवड्डुपुरत्थिमेणं " इत्यादि सूत्र कहेल छे.  
 पुष्करवरद्वीपना पूर्वार्ध, पश्चिमार्द्ध अने तदुभय ( अन्ने ) इप त्रणेनु वणुन तो  
 सुगम अने प्रसिद्ध छे तेथी तेनु अही वधु वणुन कथुं नथी. पुष्करवर  
 द्वीपना पूर्वार्द्धता अने परार्धता ( पश्चिमार्धता ) धातकीभंडनी जेम जे  
 इषुकार पर्वतोथी ज थड छे जेम समजतुं तेनी वेदिका पणु धातकीभंडनी  
 वेदिकानी जेम जे गव्यूतिप्रमाणं छे, तथा तेमा भीणं पणु द्वीप अने

विनिर्गताऽप्राविशतिनदी सहस्रपरिवारा श्रीशामिगामिनी सुकच्छमहाकच्छविम  
योर्विभागकारिणी ग्राह्यती नदी वर्धते । एव यथायोग्य द्वयोर्द्वयोः वसस्कार  
पर्वतयोर्विजययोरन्तरे क्रमेण प्रदक्षिणया ग्राह्यतीत आरभ्य गम्भीरमालिनी  
पर्यन्तानि द्वादशप्यन्तरनदी युगलानि योग्यानि ।

‘दो कच्छा’ इत्यादि, मात्स्यब्रह्मजदन्तक-भद्रशालवनाम्पामारभ्य कच्छादीनि  
गन्धिलारतीपर्यन्तानि द्वात्रिंशद् विजयक्षेत्रयुगलानि (३२) प्रदक्षिणतोऽत्रगन्तव्या-  
नीति ‘दो खेमाओ’ इत्यादि । पूर्वोक्तेषु कच्छादिद्वात्रिंश द्विनयक्षेत्रयुगलेषु क्रमेण  
क्षेमादीनि अयोध्यापर्यन्तानि द्वात्रिंशदेव पुरीयुगलानि (३२) घोष्यानि । ‘दो  
महसालवणा’ इत्यादि, मेरुद्वये भद्रशालादीनि पण्डकान्तानि चत्वारि वनयुगलानि  
सन्ति । ‘दो पंडुकवलसिलाओ’ इत्यादि, पाण्डुकम्पलशिलात आरभ्यातिरिक्त  
कम्पलशिलापर्यन्ता युगलत्वेन चत्स्र शिलाः सन्ति । ‘दो मद्रा’ इत्यादि,

विभाग दृभा है । इसी तरह यथायोग्य दो दो यक्षस्कार पर्वत और  
विजयों के अन्तर में क्रमशः दक्षिणदिशा में ग्राह्यती नदी से लेकर  
गंभीरमालिनी तक १२ अन्तर नदी युगलों की योजना करनी चाहिये ।

“दो कच्छा” इत्यादि-मात्स्यब्रह्मजदन्तक और भद्रशालवन से  
लगाकर दक्षिणदिशा तरफ गन्धिलारती तक कच्छादिक ३२ विजय  
क्षेत्र युगल है । “दो खेमाओ” इत्यादि-इन ३२ कच्छादिक विजय  
क्षेत्रयुगलों में क्रम से अयोध्यापर्यन्त क्षेत्रादिक ३२ ही पुरी युगल है ।  
“दो महसालवणा” इत्यादि दो मेरुपर्वतों में पण्डकवनतक भद्रशाल  
आदि वन दो दो है । “दो पंडुकवलसिलाओ” इत्यादि-पाण्डुकम्पल  
शिला से लेकर अतिरिक्तकम्पलशिलातक चार शिलायुगल है । “दो  
मद्रा” इत्यादि मेरुपर्वत दो है और दो मेरुचुलिका हैं । द्वावर्षविशेष

तेभना द्वाश विभाजन ययु उ अत्र प्रभावे यथायोग्य अत्र वसस्कार परतो  
अने विजयोनी वक्षे कभशः दक्षिण दिशाभां ग्राह्यती नदीथी तथेने गम्भीर  
मालिनी पर्यन्तमां १२ अन्तरनदी युगलोनी योजना समल देवी

‘दो कच्छा’ इत्यादि, मात्स्यब्रह्मजदन्तक अने भद्रशालवनथी तथेने  
दक्षिण दिशा तरफ गन्धिलारती पर्यन्तमां कच्छादिक ३२ विजयक्षेत्र युगल उ  
“दो खेमाओ” इत्यादि, आ ३२ कच्छादिक विजयक्षेत्र युगलोभां कभशः  
अयोध्या पर्यन्तमां क्षेत्रा आदि ३२ पुरीयुगलो उ “दो महसालवणा”  
इत्यादि-ने मेरु परतोभां पण्डकवन पर्यन्तमां भद्रशाल आदि अत्रे वन उ  
“दो पंडुकवलसिलाओ” इत्यादि-पाण्डुकम्पल शिलाथी तथेने अतिरिक्त  
कम्पलशिला पर्यन्तमां चार शिलायुगलो उ “दो मद्रा” इत्यादि-ने मेरु  
पर्वत उ अने दो मेरुचुलिका उ शिषर विशेषने कृतिता कहे उ

मन्दरौ-मेरुपर्वतौ द्वौ, द्वे च मन्दरचूलिके । चूलिका-शिखरविशेष इति ।  
' धाव्यसंङ्खण्डं ' इत्यादि, धातकीखण्डद्वीपस्य वेदिका जम्बूद्वीपवद् द्वे गव्यूती ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता भगवतेति ।

धातकीखण्डानन्तरं कालोदः समुद्रोऽस्तीति तत्परूपणामाह-' कालोदस्स-  
णं ' इत्यादि । कालोदसमुद्रवेदिका सूत्रमिदं सुगमम् ।

कालोदसमुद्रानन्तरमव्यवहितत्वादेव पुष्करवरद्वीपवक्तव्यतामाह-' पुष्कर-  
वर दीवङ्गपुरत्थिमेणं ' इत्यादि ।

पुष्करवरद्वीपस्य पूर्वार्द्धं-पश्चिमाद्धं-तदुभयरूपाणि त्रीण्यपि प्रकरणानि सुग-  
मानि प्रसिद्धानि च । अर्थोऽपि सुगम एव । अस्य पूर्वार्द्धता च धातकीखण्डवेदि-  
पुकारपर्वताभ्यामवगन्तव्या । अस्य वेदिकाऽपि पूर्ववद् ऊर्ध्वोच्चत्वेन गव्यूतद्वय-

का नाम चूलिका है । " धाव्यसंङ्खण्डं " इत्यादि-धातकी खण्डद्वीपकी  
वेदिका जम्बूद्वीप की वेदिका की तरह दो गव्यूतिप्रमाण की है ।  
धातकी खण्ड के पीछे कालोदसमुद्र है इसलिये अब सूत्रकार इसकी  
परूपणा के विषय में कहते हैं-" कालोदस्स णं " इत्यादि । यह कालो-  
दसमुद्र की वेदिका का सूत्र सुगम है-कालोदसमुद्र के अनन्तर अव्य-  
वहित होने से ही पुष्करवरद्वीप की वक्तव्यता के विषय में सूत्रकार ने  
" पुष्करवरदीवङ्गपुरत्थिमेणं " इत्यादि यह सूत्र कहा है-पुष्करवरद्वीप  
के पूर्वार्ध, पश्चिमाद्ध और तदुभयरूप तीनों ही प्रकरण सुगम और  
प्रसिद्ध है । अर्थ भी सुगम ही है । पुष्करवरद्वीप की पूर्वार्द्धता और  
परार्द्धता धातकी खण्ड की तरह दो इषुकारपर्वतों से ही हुई है ऐसा  
जानना चाहिये-इसकी वेदिका भी ऊँचाई में पूर्वकी तरह ही दो गव्यूति

" धाव्यसंङ्खण्डं " इत्यादि-धातकीभूतनी वेदिका जम्बूद्वीपनी वेदिकानी  
जेम ये गव्यूति ( कोश ) प्रमाणं ज्ञेयं । धातकीभूत द्वीप पृथी कालोद  
समुद्र आवेत्ते, तेथी सूत्रकार उवे कालोद समुद्रनी प्रज्ञप्ता करे छे-

" कालोदस्स णं " इत्यादि-आ कालोद समुद्रनी वेदिकानुं सूत्र सुगम छे.  
कालोद समुद्रनी पृथी तुरत न आवते। होवाथी न पुष्करवर द्वीपनी वक्तव्य-  
ताना विषयमा सूत्रकारे " पुष्करवरदीवङ्गपुरत्थिमेणं " इत्यादि सूत्र कहेल छे.  
पुष्करवरद्वीपना पूर्वार्ध, पश्चिमाद्धं अने तदुभय ( अने ) इप त्रयेणु वषुंन तो  
सुगम अने प्रसिद्ध छे तेथी तेणु अर्धी वधु वषुंन कथुं नथी. पुष्करवर  
द्वीपना पूर्वार्द्धता अने परार्द्धता ( पश्चिमार्द्धता ) धातकीभूतनी जेम ये  
इषुकार पर्वताथी न थरु छे जेम समजनुं तेनी वेदिका पणु धातकीभूतनी  
वेदिकानी जेम ये गव्यूतिप्रमाणं छे, तथा तेमां भीमं पणु द्वीप अने



परिमितैव षोडश्या । इतरेषां द्वीपसमुदाणां वेदिका किं ममाणा ! इत्यत्राह—  
 'सर्वेसिपि' इत्यादि, सर्वेषामपि पूर्वकिमप्य इतरेषां समस्तानामपि द्वीपसमु-  
 दाना वेदिका ऊर्ध्वाधत्वेन गन्धूतद्वयपरिमिता एव प्रवृत्ताः—मग्नता कथिताः,  
 न न्यूना नाधिका इत्यर्थ ॥ सू० ३५ ॥

एते च द्वीपसमुदा इन्द्राणामुत्पातपर्यन्ताभ्या इतीन्द्रवक्तव्यतामाह—

मूळम्—दो असुरकुमारिंदा पणत्ता, त जहा—चमर चैव बली चैव । १।  
 दो णागकुमारिंदा पणत्ता, त जहा धरणे चैव मृयाणटे चैव । २।  
 दो सुवणकुमारिंदा पणत्ता, त जहा—वेणुदेवे चैव वेणुदाली  
 चैव । ३। दो विज्जुकुमारिंदा पणत्ता, त जहा—हरिचुचैव हरिस्त  
 हे चैव । ४। दो अग्गिकुमारिंदा पणत्ता, त जहा अग्गिसिहे  
 चैव अग्गिमाणवे चैव । ५। दो दीवकुमारिंदा पणत्ता, त जहा  
 पुन्ने चैव विसट्टे चैव । ६। दो उदहिकुमारिंदा पणत्ता, त  
 जहा—जलकते चैव जलपभे चैव । ७। दो दिसाकुमारिंदा  
 पणत्ता, त जहा—अमियगई चैव अमियवाहणे चैव । ८।  
 दो वायुकुमारिंदा पणत्ता, त जहा—बेलये चैव पभजणे चैव  
 । ९। दो थणियकुमारिंदा पणत्ता, त जहा घोसे चैव महाघोसे  
 चैव । १०। दो पिसाइदा पणत्ता, त जहा—काले चैव महाकाले  
 चैव । ११। दो भूइदा पणत्ता, त जहा मुरुवे चैव पहरुवे चैव  
 । १२। दो जर्क्खिदा पणत्ता, त जहा पुन्नभवे चैव माणिभहे चैव

प्रमाण ही । तथा इसमे और भी द्वीप एवं समुद्र ही उनकी वेदिका भी  
 दो गन्धूतिप्रमाण ही ऊंची है । कमती बड़ती नहीं है ॥ सू० ३५ ॥

समुद्री छे तेमनी वेदिका पण्णे छे गन्धूतिप्रमाण्णि छे नी छे—यून जपया  
 अधिका नथी ॥ सू ३५ ॥

। ३ । दो रक्खसिंदा पणत्ता, तं जहा भीमे चैव महाभीमे चैव । ४ । दो किन्नरिंदा पणत्ता, तं जहा-किन्नरे चैव किं पुरिसे चैव । ५ । दो पुरिसिंदा पणत्ता, तं जहा-सप्पुरिसे चैव महा-पुरिसे चैव । ६ । दो महोरगिंदा पणत्ता, तं जहा-अइकाए चैव महाकाए चैव । ७ । दो गंधर्विंदा पणत्ता, तं जहा-गीयरई चैव गीयजसे चैव । ८ । दो अणपङ्गिंदा पणत्ता, तं जहा-संनिहिण्ण चैव सामण्णे चैव । ९ । दो पणपङ्गिंदा पणत्ता, तं जहा-धाए चैव विधाए चैव । १० । दो इसिवाइंदा पणत्ता, तं जहा-इत्ती चैव इसिवालाए चैव । ११ । दो भूयवाइंदा पणत्ता, तं जहा-इसरे चैव सहिससरे चैव । १२ । दो कंदिइंदा पणत्ता, तं जहा-सुवच्छे चैव विसाले चैव । १३ । दो महाकंदि इंदा पणत्ता, तं जहा-हस्से चैव हस्सरई चैव । १४ । दो कुहंडिंदा पणत्ता, तं जहा-सेए चैव महासेसे चैव । १५ । दो पयंगिंदा पणत्ता, तं जहा-पतए चैव पतयवई चैव । १६ ।

जोइसियाणं देवाणं दो इंदा पन्नत्ता, तं जहा-चंदे चैव सूरे चैव, सोहम्मसीसाणेसु णं कप्पेसु दो इंदा पन्नत्ता, तं जहा-सक्के चैव इसाणे चैव । एवं सणंकुमारमाहिंदेसु णं कप्पेसु दो इंदा पन्नत्ता, तं जहा-सणंकुमारे चैव माहिंदे चैव । बंभलोग-लंतएसु णं कप्पेसु दो इंदा पन्नत्ता, तं जहा-बंभे चैव लंतए चैव । महासुक्कसहस्सारेसु णं कप्पेसु दो इंदा पन्नत्ता, तं जहा-महासुक्के चैव सहस्सारे चैव । आणयपाणयारणच्चुएसु णं कप्पेसु दो इंदा पन्नत्ता, तं जहा-पाणए चैव अच्चुए चैव ।

મહાસુક્રકસહસ્તારેસુ ણ કપેસુ વિમાણા દુષ્ણા પળ્ણતા, ત  
જહા-હાલિહા ચેવ સુક્કિલ્લા ચેવ । ગેવિજ્જગાણ દેવાર્ણ  
( ઓગાહણા ) દો રચણીયો ઉઠ્ઠુ ઉચ્ચત્તેણ પળ્ણતા ॥સૂ૦૩૬॥

॥ ધીયટ્ટાણે તદ્દઓ ઉદ્દેસો સમત્તો ॥ ૨-૩ ॥

છાયા—દ્રો અસુરકુમારેન્દ્રો મહ્મત્તો તથયા-ધમરશ્ચેવ ધલિશ્ચેવ ? । દ્રો નાગ  
કુમારેન્દ્રો મહ્મત્તો, તથયા-ધરણ્યશ્ચેવ મૂતાનન્દશ્ચેવ ૨ । દ્રો સુવર્ણકુમારેન્દ્રો મહ્મત્તો,  
તથયા-વેણુદેવશ્ચેવ વેણુદાલિશ્ચેવ ૩ । દ્રો વિષ્ણુકુમારેન્દ્રો મહ્મત્તો, તથયા-  
હરિશ્ચેવ હરિસહશ્ચેવ ૪ । દ્રો અગ્નિકુમારેન્દ્રો મહ્મત્તો, તથયા-અગ્નિશિશ્વશ્ચેવ,  
અગ્નિમાપ્તશ્ચેવ ૫ । દ્રો ધ્રીવકુમારેન્દ્રો મહ્મત્તો, તથયા-પુષ્પશ્ચેવ, વિશિષ્ટશ્ચેવ ૬ ।  
દ્રો ઇદધિકુમારેન્દ્રો મહ્મત્તો, તથયા-જલકાન્તશ્ચેવ, જલમમરશ્ચેવ ૭ । દ્રો વિષ્ણુ-

યે ધીપ ઓર સમુદ્ર ઇન્દ્રોં કે ઉત્પાતપથત કે આધ્યમમૂત હોતે હે  
અત અપ સૂત્રકાર હદ્ર સપધી વક્તવ્યતા યા કથન કરતે હે-

‘ દો અસુરકુમારિંદા પલ્ણા ’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રાર્થ-ધમર ઓર ધલિ યે દો ઇન્દ્ર અસુરકુમારોં કે કહે ગયે હે-ધરણ  
ઓર મૂતાનન્દ યે દો હદ્ર નાગકુમારોં કે કહે ગયે હે । વેણુદેવ ઓર  
વેણુદાલિ યે દો હદ્ર સુવર્ણકુમાર કે કહે ગયે હે । હરિ ઓર હરિસહ  
યે દો ઇન્દ્ર વિષ્ણુકુમાર કે કહે ગયે હે ॥ ૩ ॥ અગ્નિશિશ્વ ઓર અગ્નિ  
માણય યે દો ઇન્દ્ર અગ્નિકુમારકે કહે ગયે હે ૫ । પુષ્પ ઓર વિશિષ્ટ યે  
દો ઇન્દ્ર ધ્રીવકુમાર કે કહે ગયે હે ૬ । જલકાન્ત ઓર જલપ્રમ યે દો  
ઇન્દ્ર ઇદધિકુમાર કે કહે ગયે હે ૭ । અમિતગતિ ઓર અમિતપાદન યે

તે ધીપા અને સમુદ્રો ઇન્દ્રોના ઉત્પાત પથતના આધ્યમમૂત હોય છે,  
તેથી હવે સૂત્રાર તે ઇન્દ્રોની વક્તવ્યતાનું કથન કરે છે—

“ દો અસુરકુમારિંદા પળ્ણા ” ઇત્યાદિ—

સૂત્રાર્થ-અસુરકુમારોના બે ઇન્દ્રોનાં નામ ધમર અને ધલિ છે નાગકુમારોના  
બે ઇન્દ્રોનાં નામ ધરણ અને મૂતાનન્દ છે સુવર્ણકુમારોના બે ઇન્દ્રોનાં નામ  
વેણુદેવ અને વેણુદાલિ છે વિષ્ણુકુમારોના બે ઇન્દ્રોનાં નામ હરિ અને હરિસહ  
છે અગ્નિકુમારોના બે ઇન્દ્રોનાં નામ અગ્નિશિશ્વ અને અગ્નિમાણય છે ધ્રીવ  
કુમારોના બે ઇન્દ્રોનાં નામ પુષ્પ અને વિશિષ્ટ છે ઇદધિકુમારોનાં બે ઇન્દ્રોના  
નામ જલકાન્ત અને જલપ્રમ છે વિષ્ણુકુમારોનાં બે ઇન્દ્રોનાં નામ અમિતગતિ

मारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-अमितगतिश्चैव अमितवाहनश्चैव ८। द्वौ वायुकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-वेलम्बश्चैव प्रभञ्जनश्चैव ९। द्वौ स्तनितकुमारेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-घोषश्चैव महाघोषश्चैव १०। द्वौ पिशाचेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-कालश्चैव महाकालश्चैव १। द्वौ भूतेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-सुरूपश्चैव प्रतिरूपश्चैव २। द्वौ यक्षेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-पूर्णभद्रश्चैव माणिभद्रश्चैव ३। द्वौ राक्षसेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-भीमश्चैव महाभीमश्चैव ४। द्वौ किन्नरेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-किन्नरश्चैव किंपुरुपश्चैव ५। द्वौ किंपुरुपेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-सत्पुरुपश्चैव महापुरुपश्चैव ६। द्वौ महोरगेन्द्रौ प्रज्ञप्ता, तद्यथा-अतिकायश्चैव महाकायश्चैव ७। द्वौ गन्धर्वेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-गीतरतिश्चैव गीतयज्ञश्चैव ८। द्वौ अपज्ञप्तिकेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ तद्यथा-सन्निहितश्चैव सामान्यश्चैव १। द्वौ पञ्चप्रज्ञप्तिकेन्द्रौ प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-धाताचैव विधा-

दो इन्द्र दिक्कुमार के कहे गये हैं ८। वेलम्ब और प्रभञ्जन ये दो इन्द्र वायुकुमार के कहे गये हैं ९। घोष और महाघोष ये दो इन्द्र स्तनितकुमार के कहे गये हैं १०। काल और महाकाल ये दो इन्द्र पिशाच के कहे गये हैं १। सुरूप एवं प्रतिरूप ये दो इन्द्र भूतों के कहे गये हैं २। पूर्णभद्र और माणिभद्र ये दो इन्द्र यक्ष के कहे गये हैं ३। भीम और महाभीम ये दो इन्द्र राक्षसों के कहे गये हैं। किन्नर और किंपुरुष ये दो इन्द्र किन्नरों के कहे गये हैं ५। सत्पुरुष और महापुरुष ये दो इन्द्र किंपुरुषों के कहे गये हैं ६। अतिकाय और महाकाय ये दो इन्द्र महोरगों के कहे गये हैं ७। गीतरति और गीतयज्ञ ये दो इन्द्र गन्धर्वों के कहे गये हैं ८। सन्निहित और सामान्य ये दो इन्द्र अपज्ञप्तिक के कहे गये हैं १। धाता और विधाता ये दो इन्द्र पञ्चप्रज्ञप्तिक के कहे गये हैं २

अने अमितवाहन छे वायुकुमारेना भे इन्द्रेना नाम वेदम्भ अने प्रलज्जना छे. स्तनितकुमारेना भे इन्द्रेना नाम घोष अने महाघोष छे. ॥ १० ॥

पिशाचेना भे इन्द्रेना नाम काण अने महाकाण छे। लूतानां इन्द्रेनां नाम सुरूप अने प्रतिरूप छे। यक्षेना भे इन्द्रेनां नाम पूर्णभद्र अने मण्डिभद्र छे. राक्षसेना भे इन्द्रेना नाम भीम अने महाभीम छे। किन्नरेना भे इन्द्रेनां नाम किन्नर अने किंपुरुष छे. किंपुरुषेना भे इन्द्रेनां नाम सत्पुरुष अने महापुरुष छे। महोरगेना भे इन्द्रेनां नाम अतिकाय अने महाकाय छे। गन्धर्वेना भे इन्द्रेनां नाम गीतरति अने गीतयज्ञ छे ॥ ८ ॥

अपज्ञप्तिकेना भे इन्द्रेनां नाम सन्निहित अने सामान्य छे. पञ्चप्रज्ञप्तिकेना भे इन्द्रेना नाम धाता अने विधाता छे। ऋषिवाहना भे इन्द्रेना नाम ऋषि-

वाच्ये २ । द्वौ ऋषिवादीन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-ऋषिवाच्ये, ऋषिपालकश्चैव ३ ।  
 द्वौ भूतवादीन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-ईश्वरश्चैव, महेश्वरश्चैव ४ । द्वौ क्रन्दितेन्द्रौ मङ्गलौ  
 तद्यथा-सुवस्त्वश्चैव विशालश्चैव ५ । द्वौ महाक्रन्दितेन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-हास्यश्चैव  
 हास्यरतिश्चैव ६ । द्वौ कृष्माण्डेन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-श्वेतश्चैव, महाश्वेतश्चैव ७ ।  
 द्वौ पतङ्गेन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-पतङ्गश्चैव पतङ्गपतिश्चैव ८ ।

ज्योतिष्कामां देवानां द्वौ इन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-चन्द्रश्चैव सूरश्चैव । सौधर्म्ये  
 धानयोः स्वलु कल्पयो द्वौ इन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-सप्तश्चैव, ईशानश्चैव । एत  
 सनत्कुमारमाहेन्द्रयोः स्वलु कल्पयो द्वौ इन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा - सनत्कुमारश्चैव,  
 माहेन्द्रश्चैव । ब्रह्मलोकलान्तकयोः स्वलु कल्पयो द्वौ इन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-ब्रह्मा  
 श्वैव, लान्तकश्चैव । महाशुकसहस्रारयोः स्वलु कल्पयो द्वौ इन्द्रौ मङ्गलौ, तद्यथा-  
 महाशुकश्चैव, सहस्रारश्चैव । आनतमाणवारणाच्युतेषु स्वलु कल्पेषु द्वौ इन्द्रौ

ऋषि और ऋषिपालक ये दो इन्द्र ऋषिवादी के कहे गये हैं ३ ईश्वर  
 और महेश्वर ये दो इन्द्र भूतवादी के कहे गये हैं ४ सुवस्त्व और  
 विशाल ये दो इन्द्र क्रन्दित के कहे गये हैं ५ हास्य और हास्यरति ये  
 दो इन्द्र महाक्रन्दितों के कहे गये हैं ६ श्वेत और महाश्वेत ये दो इन्द्र  
 कृष्माण्ड के कहे गये हैं ७ पतंग और पतंगपति ये दो इन्द्र पतंग के  
 कहे गये हैं ज्योतिष्क देवों के दो इन्द्र इस प्रकार से कहे गये हैं-एक  
 चन्द्र और दूसरा सूर्य सौधर्म्य और ईशान इन दो कल्पों के दास्य और  
 ईशान ये दो इन्द्र कहे गये हैं । इसी तरह सनत्कुमार और माहेन्द्र  
 कल्प के सनत्कुमार और माहेन्द्र ये दो इन्द्र कहे गये हैं । ब्रह्मलोक  
 और लान्तक इन दो कल्पों के ब्रह्म और लान्तक ये दो इन्द्र कहे गये  
 हैं । महाशुक और सहस्रार इन दो कल्पों के महाशुक और सहस्रार

अने ऋषिपालक छे भूतवादीना जे इन्द्रोनां नाम ईश्वर अने महेश्वर छे इतिहता  
 जे इन्द्रोनां नाम सुवस्त्व अने विशाल छे महाक्रन्दितोनां नाम हास्य अने  
 हास्यरति कर्णा छे कृष्माण्डना जे इन्द्रोनां नाम श्वेत अने महाश्वेत कर्णा  
 छे ॥ ७ ॥ पतंग अने पतंगपति जे जे पतंगना इन्द्रो कर्णा छे ॥ ८ ॥

ज्योतिष्क देवोना जे इन्द्रोनां नाम नीचि प्रभावे छे-(१) चन्द्र अने  
 (२) सूर्य सौधर्म्य अने ईशान इन्द्रोनां नाम शक अने ईशान कर्णा छे  
 जेव प्रभावे सनत्कुमार अने माहेन्द्र कल्पना इन्द्रोनां नाम सनत्कुमार अने  
 माहेन्द्र कर्णा छे ब्रह्मलोक अने लान्तक कल्पना इन्द्रोनां नाम ब्रह्म अने लान्तक  
 छे महाशुक अने सहस्रार कल्पना इन्द्रोनां नाम महाशुक अने सहस्रार छे

प्रज्ञप्तौ, तद्यथा-प्राणतश्चैव अच्युतश्चैव । महाशुक्रसहस्रारयोः खलु कल्पयोर्विमानानि द्विवर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-हारिद्राणि चैव शुक्लानि चैव । ग्रैवेयकानां देवानां-( अवगाहना ) द्वे रत्नी ऊर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता ॥ सू० ३६ ॥

॥ द्वितीयस्थाने तृतीयोद्देशकः समाप्तः ॥ २-३ ॥

टीका—' दो असुरकुमारिदा ' इत्यादि ।

असुरकुमारादि स्तनितकुमारपर्यन्तानां दशानां भवनपतिनिकायानां मेरुमाश्रित्य दक्षिणोत्तरदिग्द्वयाश्रितत्वेन द्विविधत्वात् विशतिरिन्द्राः । तत्र चमरो दक्षिणदिग्वर्तिनाम् इन्द्रः, बली तूत्तरदिग्वर्तिनामित्येवं सर्वत्र विज्ञेयम् २० । एवं पिशा-

ये दो इन्द्र कहे गये हैं । आनत प्राणन आरण अच्युत इन कल्पों के प्राणत और अच्युत ये दो इन्द्र कहे गये हैं तथा महाशुक्र और सहस्रार कल्पों के विमान हारिद्रवर्ण ( पीला ) और शुक्लवर्ण वाले कहे गये हैं । ग्रैवेयक देवों के शरीर की अवगाहना द्वि रत्निप्रमाण है ।

असुरकुमार से लेकर स्तनितकुमार तक दश भवनपतिनिकायों के २० इन्द्र हैं मेरु की दक्षिण और उत्तरदिशा को लेकर भवनपतिनिकाय दो प्रकार के हो जाते हैं इनमें जो दक्षिणदिग्वर्ती भवनपतिनिकाय है उसका इन्द्र चमर है और जो उत्तरदिग्वर्तीनिकाय है उसका इन्द्र बली है, इस तरह से नागकुमार आदि के विषय में भी दक्षिण और उत्तर दिशा में रहने की अपेक्षा से क्रमशः धरण और भूतानन्द आदि इन्द्रों की व्यवस्था समझना चाहिये ।

आनत, प्राणत, आरण, अच्युत, आ कल्पोना जे धन्द्रोनां नाम प्राणत अने अच्युत कहा छे ॥ १० ॥ महाशुक्र अने सहस्रार कल्पोना विमानो हारिद्र ( पीला ) अने सद्दे वर्णवाणां कहां छे । ग्रैवेयकवासी देवोना शरीरनुं प्रमाषु जे रत्निप्रमाषु कहु छे ।

असुरकुमारथी लधने स्तनितकुमार सुधीना दश भवनपतिनिकायोना २० धन्द्रो छे मेरुनी दक्षिण अने उत्तर दिशानी अपेक्षाजे भवनपतिनिकायना जे प्रकार पडी जाय छे । दक्षिण दिशावर्ती जे भवनपति निकाय छे तेना धन्द्र चमर छे अने उत्तर दिशावर्ती जे भवनपति निकाय छे तेना धन्द्र बली छे । जेज प्रमाषु नागकुमार आदिना विषयमां पषु समजवुं । दक्षिण अने उत्तर दिशाभां रहैनारा नागकुमारोना धन्द्रोना नाम अनुकमे धरण अने भूतानन्द समजवा । जेज प्रमाषु आकीना सुपर्णकुमार आदिना उत्तर अने दक्षिणना धन्द्रो विषे पषु समजवुं ।

धार्तरिभ्य गवैर्षपर्यन्तानामष्टौनां व्यन्तरनिकायानां द्विगुणत्वात् पौडशेन्द्रा १६ ।  
 अथशक्तिक (अणपभिय) देवानारभ्य पतत्रदेवानानामप्यष्टानामेष व्यन्तरविशेषरूप  
 निकायानां द्विगुणत्वात् पौडशेन्द्रा इति १६ । ज्योतिष्कदेवानां चन्द्रसूर्याणामस-  
 ख्यातरवेऽपि जातिमात्रोपेक्षया द्वाबेव चन्द्रसूर्यास्याविन्द्री २ । सौषर्माद्यन्युत्प-  
 र्यन्तानां द्वादशानां कल्पानां दशसंख्यका इन्द्राः १० । इत्येष सर्वसंकलने षतुः  
 पष्टिरिन्द्रा मन्वीति । देवाधिकाराचन्निवासभूतविमानवक्तव्यतामाह—'महासुख०'  
 इत्यादि, संघे सुगमम् । नभर इन्द्रिद्राणि पीठानि, शुक्लानि-श्वेतानि । सौषर्मादि

इसी प्रकार पिशाच से लेकर गन्धर्वतक के आठ व्यन्तरनिकायों  
 के द्विगुण होने से इन्द्र १६ होते हैं । अथशक्तिक आदि देव व्यन्तर  
 विशेष हैं । ये भी आठ ही होते हैं । इन आठों के भी एक २ के दो २  
 इन्द्र होते हैं इस तरह इनके भी १६ इन्द्र होते हैं ।

यद्यपि ज्योतिष्क देवरूप चन्द्र और सूर्य असंख्यान हैं फिर भी जाति  
 मात्रकी अपेक्षासे ही एक चन्द्रको और एक सूर्यको इन्द्र कहा गया है—  
 धैसे तो जितने चन्द्र और सूर्य हैं । सौषर्म से लेकर अन्युत पर्यंत १२  
 कल्पोंके १० इन्द्र हैं । सब मिलकर इन इन्द्रों की संख्या ६४ है ।

५- देवों के अधिकार को लेकर-सूत्रकार अथ उनके निवासस्थानभूत  
 विमानों के विषय में कथन करते हैं—क्यों कि—देव विमानों में रहा  
 करते हैं ( महासुख० ) इत्यादि—यह सब सुगम है—द्वारिद्र पदसे पीला  
 वर्ण और शुक्लपद से श्वेतवर्ण गृहीत हुए हैं । सौषर्म, आदि विमानों

ये प्रभावे पिशाचनी लघने गवर्ष पर्यन्तना आठ व्यन्तर निगा  
 योर्मा पञ्च मन्वेकना से छन्दोने द्विगुण हुल १६ छन्दो थाय छे अथशक्तिक  
 आदि देव व्यन्तर विशेष ल छे ते आठ प्रकारना व्य तर विशेषेना पञ्च  
 लच्छे छन्दो डोय छे, तेभी तेमना हुल १६ छन्दो थाय छे

जे के ज्योतिष्क देवे ३५ चन्द्र जने सूर्य तो जल ज्वात छे छर्दा  
 पञ्च अतिमात्रनी अपेक्षाजे ल जेक चन्द्र जने जेक सूर्यने छन्द कडेवाभा  
 आवेल छे जाम तो नेटवा चन्द्र जने सूर्य छे ते सौ छन्द ३५ ल छे  
 सौषर्माथी लघने अन्युत पर्यन्तना आर कल्पेना १० छन्दो छे आ रीते  
 लथा मन्वीने २०+१६+१६+२+१ =६४ छन्दो थाय छे

देवोना अधिार याही रह्यो डोवाथी लवे सूत्रकार तेमना निवास  
 स्थानइय विमानोना विषयर्मा मरूपवा करे छे शरज के तेजो विमानोभा  
 रहे छे " महासुख० " इत्यादि आ सूत्रोना भाषाए सुभम छे, द्वारिद्रपदथी  
 थीजा लज् जने शुक्लपदथी श्वेतवर्ण मरुज् कराये छे सौषर्म आदि

વિમાનવર્ણવિષયઃ ક્રમશ્ચાયમ્-સૌધર્મશાનયોઃ પશ્ચવર્ણાનિ વિમાનાનિ । તતો દ્વયોઃ સનત્કુમારમાહેન્દ્રયોઃ કૃષ્ણવર્ણવર્જિતાનિ ચતુર્વર્ણાનિ । પુનર્દ્વયોર્બ્રહ્મલોકલાન્તકયોઃ કૃષ્ણનીલવર્ણે વિહાયાન્પત્રિવર્ણાનિ । તતઃ પુનર્દ્વયોર્મહાશુક્રસહસ્રારયોઃ પીતાનિ શુક્લાનિ ચ । તતોડનન્તરં શુક્લાન્યેવેતિ, ઉક્તચ્ચ—

“ સોહમ્મે પંચવત્ના, એકકગહાણી ઉવજા સહસ્સારો ।

દો દો તુલાકપ્પા, તેણ પરં પુંડરીયાઈ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—સૌધર્મે પશ્ચવર્ણાનિ, એકકદાનિસ્તુ યાવત્ સહસ્રારઃ ।

દ્વી દ્વી તુલ્યૌ કર્ણૌ, તેન પરં પુણ્ડરીકાણિ ॥૧॥ ઇતિ ।

દેવાધિકારાદેવ દ્વિસ્થાનક્રાન્પાતિર્ની તેપામત્રગાઢનામાહ—“ ગેવેજ્જગાળં” ઇત્યાદિ, ગ્રૈવેયકાનાં દેવાનામત્રગાહના ઝંઘર્વોન્ચત્વેન દ્વે રત્ની-રત્નિ દ્વયપરિમિતા પ્રજ્ઞા મગવતા ॥ સૂં ૩૬ ॥

॥ ઇતિ દ્વિસ્થાનકસ્ય તૃતીય ઉદ્દેશકઃ સમાપ્તઃ ॥ ૨-૩ ॥

કે વર્ણ હસ પ્રકાર સે હૈ સૌધર્મ ઓર ઈશાન મેં પાંચો વર્ણવાલે વિમાન હૈ । સનત્કુમાર ઓર માહેન્દ્ર ઇન દો કર્ણો મેં વૃષ્ણવર્ણવર્જિત ચારવર્ણિ વાલે વિમાન હૈ । બ્રહ્મલોક ઓર લાન્તક મેં કૃષ્ણ, નીલ વર્ણ વર્જિત તોન વર્ણવાલે વિમાન હૈ મહાશુક્ર ઓર સહસ્રાર દેવલોક મેં પીત ઓર શુક્લવર્ણવાલે વિમાન હૈ । ઇનકે વાદ શુક્લવર્ણકે હી વિમાન હૈ । કહાં મી હૈ—“ સોહમ્મે પંચવત્ના ” ઇત્યાદિ ।

યહાં દ્વિસ્થાનોં કા પ્રકરણ ચલ રહા હૈ ઇસલિયે ગ્રૈવેયક નિવાસી દેવોં કી હી યહાં શરીરાવગાહના કહી ગઈ હૈ—કિ—“ગેવેજ્જગાળં” ગ્રૈવેયક દેવોંકી શરીરાવગાહના ઝંઘર્વકી અપેક્ષા રત્નિપ્રમાણ હૈ ॥ સૂં ૨૬ ॥

દૂસરે સ્થાનકકા તીસરા ઉદ્દેશા સંપૂર્ણ ॥ ૨-૩ ॥

વિમાનોનાં વર્ણુ આ પ્રમાણુ છે—સૌધર્મ અને ઇશાનમાં પાચે વર્ણુવાળા વિમાનો છે. સનત્કુમાર અને માહેન્દ્ર કદ્દેપોમાં કૃષ્ણવર્ણુ સિવાયના ચારે વર્ણુનાં વિમાનો છે બ્રહ્મલોક અને લાન્તકમાં કૃષ્ણ અને નીલવર્ણુ સિવાયના ત્રણુ વર્ણુનાં વિમાનો છે મહાશુક્ર અને સહસ્રાર કદ્દેપમાં પીત અને શુક્લ વર્ણુનાં વિમાનો છે. ત્યારપછીના કદ્દેપોમાં શુક્લવર્ણુવાળાં જ વિમાનો છે. કહુ પહુ છે—

“ સોહમ્મે પંચવત્ના ” ઇત્યાદિ.

જે સ્થાનોનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી ગ્રૈવેયકનિવાસી દેવોની જ શરીરાવગાહના અહીં પ્રકટ કરવામાં આવી છે. “ ગેવેજ્જગાળં ” ગ્રૈવેયકનિવાસી દેવોના શરીરનું પ્રમાણુ—ઉંચાઈની અપેક્ષાએ જે રત્નિપ્રમાણુ કહ્યું છે. ॥ સૂં ૩૬ ॥ બીજા સ્થાનકનો ત્રીજો ઉદ્દેશક સંપૂર્ણ ॥ ૨-૩ ॥



### अथ चतुर्थोद्देशक प्रारभ्यते—

गतस्वृतीय उद्देशकः, साम्प्रतं चतुर्थः प्रारभ्यते, अस्य च जीवाजीवनिरूपणमपि तदस्य पूर्वेण सहाय्यमभिसम्बन्धः—पूर्वस्मिन्तुद्देशके पुद्गलधर्म जीवधर्माभ्यामिद्विधाः, यत्र तु 'सर्वजीवाजीवात्मक' मितिवाच्यम्, अनेन सम्बन्धेन प्राप्तस्यास्योद्देशकस्येमान्याधानि पञ्चविंशतिः सूत्राणि—'समयाइ वा' इत्यादि ।

एवमनन्तरसूत्रेण चायं सम्बन्धः—तृतीयोद्देशकस्यान्तिमसूत्रे जीवविशेषाणां चत्वरणसङ्गो धर्मो निरूपितः, अत्र तु धर्माधिकारादेव समयादिस्थितिरसङ्गो धर्मो जीवाजीवसम्बन्धी जीवाजीवतया धर्मपरिष्कारमेवेनोच्यते, तत्र यावन्तः काल-

### चौथा उद्देशका प्रारंभ

तृतीय उद्देश समाप्त हो चुका, अब चौथा उद्देशा प्रारंभ होता है इसमें जीव और अजीव का निरूपण हुआ है—तृतीय उद्देशो के साथ इस का सम्बन्ध इस प्रकार से है—तृतीय उद्देशो में पुद्गलधर्म और जीवधर्म कहे गये हैं यहाँ सब जीवात्मक है यह कहना है इसी सम्बन्ध से प्राप्त उस उद्देशक के ये "समयाइ वा" इत्यादि २५ सूत्र है ।

इन सूत्रोंका भी अनन्तर सूत्रके साथ ऐसा सम्बन्ध है कि तृतीय उद्देशक के अन्तिम सूत्र में जीव विशेषों का उद्धाररूप धर्म निरूपित हुआ है, परन्तु यहाँ धर्म के अधिकार को लेकर ही जीवाजीव सम्बन्धी समयादि स्थितिरूप जो धर्म और धर्मों के अनेक की अपेक्षा से जीवाजीवरूप से कहा जाने वाला है सो इनमें जितने भी काल के प्रमाण है

### चौथा उद्देशक प्रारंभ

तृतीय उद्देशक पूरा धर्मो, अब चौथा उद्देशकने प्रारंभ बाब में आ उद्देशकमें लव अने अलवतुं निरूपण यतुं है तृतीय उद्देशक साथे आ उद्देशकने सम्बन्ध आ प्रभाव है—तृतीय उद्देशकमें पुद्गलधर्म अने लवधर्मतुं कथन कियुं है अर्थात् जो उद्देशकतुं है के लवधर्म अने अलवधर्म है आ सम्बन्धने अनुवक्षीने "समयाइ वा" इत्यादि २५ सूत्रे अर्थात् आपधर्मा आन्यां है

आ सूत्रने आभवा सूत्र साथे आ प्रभावने सम्बन्ध है—तृतीय उद्देशकने उक्ता सूत्रमें लवविशेषोनी उद्धाररूप धर्मतुं निरूपण यतुं है परन्तु अर्थात् धर्मना अधिकारने अनुवक्षीने अलवालव सम्बन्धी समयादि स्थितिरूप के धर्म है तेने धर्म अने धर्मोनी अपेक्षाने लवालव रूपे प्रकट करवाना आपवानो है अतना नेटवां प्रभाव है अर्थात् प्रभावोभां

प्रमाणास्तेषां सर्वेषां पायाद्यः परमसूक्ष्मः समय इति तमधिकृत्य कालप्ररूपणामाह—  
'समयाइ वा' इत्यादि ।

मूलम्—समयाइ वा आवलियाइ वा जीवाइ य अजी-  
वाइ य पवुच्चइ १ । आणपाणूइ वा थोवाइ वा जीवाइ य  
अजीवाइ य पवुच्चइ २ । खणाइ वा लवाइ वा जीवाइ य  
अजीवाइ य पवुच्चइ ३ । एवं मुहुत्ताइ वा, अहोरत्ताइ वा४,  
पक्खाइ वा मासाइ वा ५, उद्धूति वा अयणाइ वा६, संव-  
च्छराइ वा जुगाइ वा७, वाससयाइ वा वाससहस्साइ वा८,  
वाससयसहस्साइ वा वासकोडीइ वा९, पुव्वंगाइ वा पुवाइ  
वा१०, तुडियंगाइ वा तुडियाइ वा ११, अडडंगाइ वा  
अडडाइ वा १२, अव्वंगाइ वा अववाइ वा१३, हूहू अंगाइ  
वा हूहूयाइ वा१४, उप्पलंगाइ वा उप्पलाइ वा१५, पउमंगाइ वा  
पउमाइ वा१६, णल्लिणंगाइ वा णल्लिणाइ वा १७, अच्छ-  
णिकुरंगाइ वा अच्छणित्तराइ वा१८, अउयंगाइ वा अउयाइ  
वा १९, णउयंगाइ वा णउयाइ वा २०, पउयंगाइ वा पउ-  
याइ वा२१, चूलियंगाइ वा चूलियाइ वा२२, सीसपहेलि-  
यंगाइ वा सीसपहेलियाइ वा २३, पल्लिओवमाइ वा साग-  
रोवमाइ वा २४, उस्सप्पिणीति वा ओसप्पिणीति वा  
जीवाइ य अजीवाइ य पवुच्चइ ॥ सू० ३७ ॥

छाया—समया इति वा आवलिका इति वा जीवा इति च अजीवा इति च  
प्रोच्यते १ । आनप्राणा इति वा स्तोका इति वा जीवा इति च अजीवा इति च  
प्रोच्यते २ । क्षणा इति वा लवा इति वा जीवा इति च अजीवा इति च प्रोच्यते  
३ । एवं मुहुत्ता इति वा अहोरात्र इति वा ४, पक्षा इति वा मासा इति वा ५,

### अथ चतुर्थोद्देशक प्रारभ्यते—

गतस्तृतीय उद्देशकः, साम्प्रतं चतुर्थः प्रारभ्यते, मस्य च जीवाजीवनिरूपणमतिषदस्य पूर्वेण सहाज्यममित्त्वन्मन्त्रः—पूर्वस्मिन्नुद्देशके पुत्रलक्षणा जीवधर्मा आभिहितः, यत्र तु 'सर्वजीवाजीवात्मक' मितिवाच्यम्, अनेन सम्बन्धेन प्राप्तस्यास्पोद्देशकस्येमान्यापानि पञ्चदशतिः सूत्राणि—'समयाइ वा' इत्यादि ।

एवमनंतरसूत्रेण चायं सम्बन्धः—तृतीयोद्देशकस्यान्तिमसूत्रे जीवविशेषाभ्यामुत्पत्त्यलक्षणो धर्मो निरूपितः, अत्र तु धर्माधिकारादेव समयादिस्वितिलक्षणो धर्मो जीवाजीवसम्बन्धी जीवाजीवतया धर्मधर्मिणोरभेदेनोच्यते, तत्र यावन्तः काल

### चौथा उद्देशका प्रारंभ

तृतीय उद्देश समाप्त हो चुका, अब चौथा उद्देशा प्रारंभ होता है इसमें जीव और अजीव का निरूपण हुआ है—तृतीय उद्देश के साथ इस का सर्पथ इस प्रकार से है—तृतीय उद्देश में पुत्रलघर्म और जीव धर्म कहे गये है यहाँ सब जीवात्मक है यह कहना है इसी संबंध से प्राप्त उस उद्देशक के ये "समयाइ वा" इत्यादि २५ सूत्र हैं ।

इन सूत्रोंका भी अनन्तर सूत्रके साथ ऐसा सम्बन्ध है कि तृतीय उद्देशक के अन्तिम सूत्र में जीव विशेषों का उत्पत्त्यरूप धर्म निरूपित हुआ है, परन्तु यहाँ धर्म के अधिकार को लेकर ही जीवाजीव सबधी समयादि स्वितिरूप जो धर्म और धर्मों के अभेद की अपेक्षा से जीवा जीवरूप से कहा जाने वाला है सो इनमें जितने भी काल के प्रमाण है

### चौथा उद्देशक प्रारंभ

त्रीण उद्देशक पूरा भयो, अब चौथा उद्देशकने प्रारंभ याव उ आ उद्देशकभां एव अने अलघनुं निरूपय वसुं उ त्रीण उद्देशक साथे आ उद्देशकने संबध आ प्रभावे उ—त्रीण उद्देशकभां पुत्रलघर्म अने लघधर्मतुं कथनं कसुं उ अर्द्धां जे कहेवानु उ के लधां इभ्यो एव अने अलघनुं उ आ संबधने अनुवक्षीने "समयाइ वा" इत्यादि २५ सूत्रे अर्द्धां आपवाभां आन्धं उ

आ सूत्रेने आजला सूत्र साथे आ प्रारंभने, संबध उ—त्रीण उद्देशकभां उक्त्वा सूत्रभां लघविशेषानी उक्त्वाऽइव धर्मनुं निरूपय वसुं उ परन्तु अर्द्धां धर्मना अधिकारने अनुवक्षीने ए लघालघ संबधी समयादि स्वितिरूप के धर्म उ तेने धर्म अने धर्मिणा अभेदनी अपेक्षाने लघालघ इपे प्रकट करवाभां आपवानो उ आजला उक्त्वा प्रभावे उ जे सो प्रभावेभां

पलक्षितः परमसूक्ष्मोऽभेद्यो निरवयवः कालविशेषः । यथा पटशाटिकापाटने पूर्वं प्रथमतन्तुच्छेदो भवति, तत्राप्येकतन्तावसंख्याताः पक्षसंघाता वर्तन्ते, एवं चैकस्मिन् समये यावन्तः संघाताच्छिद्यन्ते तैरनन्तैः संघातैः स्थूलतर एक एव संघातो विवक्ष्यते, एतादृशाश्च स्थूलतराः संघाता एकैकस्मिन् पक्षमण्यसंख्याता भवन्ति, तेषां क्रमेण छेदने असंख्यातसमयैरेवोपरितनपक्षमच्छेदो भवत्येकस्य पक्षमण्यच्छेदने यावान् कालो व्यत्येति तस्यासंख्याततमोऽंशः समय उच्यते। समयस्य विशेषव्याख्याजिज्ञासुभिरुपासकदशाङ्गसूत्रस्य प्रथमसूत्रे मत्कृतायामगारधर्मसञ्जीवनीटीकायां

शाटिका का पाटन, कमल के शतदलों (सौ दल) पत्र का छेदन और तार-यन्त्र शब्द संचारण आदि अनेक उदाहरण हैं—हम जब पटशाटिका को फाड़ते हैं तब हमें प्रतीत तो ऐसा ही होता है कि पटशाटिका बहुत ही शीघ्रता से फट गई है—परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि पटशाटिका जब फाड़ी जाती है तब उस समय उसका प्रथम तन्तु फटता है इस प्रथम तन्तु में भी असंख्यात पक्ष संघात होते हैं एक समय में जितने संघात छिदते हैं फटते हैं—उन अनन्त संघातों का स्थूलतर एक ही संघात विवक्षित होता है—ऐसे स्थूलतर संघात एक पक्ष में असंख्यात होते हैं इस क्रम से छेदन होने पर असंख्यातसमयों में ही उपरितन पक्ष का छेदन होता है—इस तरह एक पक्ष के छेदने में जितना काल लगता है उसका असंख्यातवां अंश ही समय कहा गया है इस समय की विशेष व्याख्या के इच्छुकों को उपासकदशाङ्ग की आगारसंजीवनी टीका के

शाटिकातु पाटन ( वस्त्रने शडवानी किया ), कमलना शतदलोतुं छेदन, अने तारयन्त्र शब्द संचारण आदि अनेक उदाहरण छे ब्यारे आपणु कोष वस्त्रने शडीये छीये, त्यारे आपणुने येतुं लागे छे के ते वस्त्र धणुं न ओछा समयमां शटी नय छे, परन्तु ते मान्यता अशापर नथी, कारण के ब्यारे ते पटशाटिकाने ( वस्त्रने ) शडवामां आवे छे, त्यारे ( ते समये ) तो तेना प्रथम तंतु शटे छे ते प्रथम तंतुमां पणु असंख्यात पक्ष ( अति भारीकमां भारीक ) सघात होय छे ओक समयमां नेटला संघात छेदाय छे—शटे छे ते अनन्त सघातोना स्थूलतर ओक न सघात विवक्षित होय छे. येवां स्थूलतर संघात ओक पक्षमां असंख्यात होय छे आ कमे छेदन यतां यतां असंख्यात समयेमा न उपरितन ( सौथी उपरना ) पक्षमनु छेदन थाय छे आ रीते ओक पक्षमना छेदनमां नेटला काण लागे छे तेना असंख्यातमां अंशरूप काणने समय कडे छे आ समयनी विशेष व्याख्या नणुवानी धरुवाणा पाठकोये उपासकदशांगना पडेला सूत्रनी अगारसंजीवनी टीका

श्रुतव इति वा अयनानीति वा ६, सवत्सरा इति वा युगा इति वा ७, वर्षशता  
नीति वा वर्षसहस्राणीति वा ८, वर्षशतसहस्राणीति वा वर्षकोटय इति वा ९,  
पूर्वाङ्गानीति वा पूर्वाणीति वा १०, श्रुटिताङ्गानीति वा श्रुटितानीति वा ११,  
अट्टाङ्गानीति वा अट्टानीति वा १२, अववाङ्गानीति वा अववानीति वा १३,  
हृहकाङ्गानीति वा हृहकानीति वा १४, उत्पलाङ्गानीति वा उत्पलानीति वा १५,  
पषाङ्गानीति वा पषानीति वा १६, नलिनाङ्गानीति वा नलिनानीति वा २७,  
अक्षनिकुराङ्गानीति वा अक्षनिकुराणीति वा १८, अयुताङ्गानीति वा अयुतानीति वा  
१९, नयुताङ्गानीति वा नयुतानीति वा २०, प्रयुताङ्गानीति वा प्रयुतानीति वा  
२१, शूलिकाङ्गानीति वा शूलिका इति वा २२, शीर्षमहल्लिकाङ्गानीति वा  
शीर्षमहल्लिका इति वा २३, पर्योपमानीति वा सागरोपमाणीति वा २४,  
उत्सर्पिण्य इति वा अवसर्पिण्य इति वा जीवा इति वा अजीवा इति वा प्रोच्यते ।

टीका— समयाइ वा ' इत्यादि—समया इति वा ।

'समयाः इत्यथ अतीतादिविषयता बहुत्वाद् बहुवचनम् । एष सर्वथ विज्ञेयम्  
समयः—पटशाटिकापाटनकमरुदलश्वत्थपतिभेद—तारय प्रश्नश्चरणाधनेकोदाहरणो

उन सय में सय से प्रथम परमसूक्ष्म समय है अतः इसी बात को  
लेकर सूत्रकार ने यह काल की प्ररूपणा की है—

'समयाइ वा भावलिप्याइ वा ' इत्यादि

टीकार्थ—समय अथवा भावलिपिका ये जीव और अजीवरूप कहे गये  
हैं इसकयन का तात्पर्य ऐसा है कि यहां जो "समयाः" ऐसा शब्दचन  
रखा गया है यह अतीतादि समयों में बहुत होने की विषयता से रखा  
गया है इसी तरह से अथत्र भी जानना चाहिये यह समय परम सूक्ष्म  
होना है इसका खण्ड नहीं हो सकता है यह निरवयवरूप होता है—  
तथा यह काल विशेषरूप होता है समय की सत्ता के अनुमापक पट

शोधी वपारे सूक्ष्म समय उ ते कश्चे सूत्रक १ ७२ वे समय आदि इय कान्ती  
नीचे प्रभावे प्ररूपणा करे उ— "समयाइ वा भावलिप्याइ वा" इत्यादि  
समय अथवा भावलिपिका, जे अन्नेने एव अने अणुवर्षे प्रकट करे  
वाभां आवेक उ आ कथननुं तात्पर्य नीचे प्रभावे उ—

अर्थात् जे "समयाः" 'समयो जेनु बहुवचन वापरवाभां आणु उ  
ते अ पीत (सूत्रक १) आदि समयोभां अणुता डोवानी अपेक्षाजे वपरांतुं  
उ जेनु प्रभावे अन्वय पयु समयनुं आ समय अतिशय सूक्ष्म डोय उ,  
तेना विलास यथ शक्ती नथी ते निरवयवरूप डोय उ तथा ते कान्तिरीय  
इय अणुवर्ष उ समयनी सत्ताना अनुमापक (भाषवाता साधनरूप) यद

पलक्षितः परमसूक्ष्मोऽभेद्यो निरवयवः कालविशेषः । यथा पटशाटिकापाटने पूर्वं प्रथमतस्तुच्छेदो भवति, तत्राप्येकतन्तावसंख्याताः पक्षमसंघाता वर्चन्ते, एव चैकस्मिन् समये यावन्तः संघाताच्छिद्यन्ते तैरनन्तैः संघातैः स्थूलतर एक एव संघातो विवक्ष्यते, एतादृशाश्च स्थूलतराः संघाता एकैकस्मिन् पक्षमण्यसंख्याता भवन्ति, तेषां क्रमेण छेदने असंख्यातसमयैरेवोपरितनपक्षमच्छेदो भवत्येकस्य पक्षमणच्छेदने यावान् कालो व्यत्येति तस्यासंख्याततमोऽंशः समय उच्यते। समयस्य विशेषव्याख्याजिज्ञासुभिरुपासकदशाङ्गसूत्रस्य प्रथमसूत्रे मत्कृतायामगारधर्मसंजीवनीटीकायां

शाटिका का पाटन, कमल के शतदलों (सो दल) पत्र का छेदन और तार-यन्त्र शब्द संचारण आदि अनेक उदाहरण हैं—हम जब पटशाटिका को फाड़ते हैं तब हमें प्रतीत तो ऐसा ही होता है कि पटशाटिका बहुत ही शीघ्रता से फट गई है—परन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि पटशाटिका जब फाड़ी जाती है तब उस समय उसका प्रथम तन्तु फटना है इस प्रथम तन्तु में भी असंख्यात पक्षम संघात होते हैं एक समय में जितने संघात छिदते हैं फटते हैं—उन अनन्त संघातों का स्थूलतर एक ही संघात विवक्षित होता है—ऐसे स्थूलतर संघात एक पक्षम में असंख्यात होते हैं इस क्रम से छेदन होने पर असंख्यातसमयों में ही उपरितन पक्षम का छेदन होता है—इस तरह एक पक्षम के छेदने में जितना काल लगता है उसका असंख्यातवां अंश ही समय कहा गया है इस समय की विशेष व्याख्या के इच्छुकों को उपासकदशाङ्ग की आगारसंजीवनी टीका के

शाटिकातु पाटन ( वस्त्रने काडवानी क्रिया ), कमलना शतदलोतु छेदन, अने तारयत्र शब्द संचारण आदि अनेक उदाहरण छे न्यारे आपणु डोर्ष वस्त्रने काडीये छीये, त्यारे आपणुने जेपुं लागे छे के ते वस्त्र धणां न ज्योछा समयमां काटी नय छे, परन्तु ते मान्यता भराभर नथी, कारण के न्यारे ते पटशाटिकाने ( वस्त्रने ) काडवामां आवे छे, त्यारे ( ते समये ) तो तेना प्रथम तंतु काटे छे. ते प्रथम तंतुमां पणु असंख्यात पक्षम ( अति भारीकमां भारीक ) संघात डोय छे जेक समयमा जेटला संघात छेदाय छे—काटे छे ते अनन्त संघातोने स्थूलतर जेक न संघात विवक्षित डोय छे जेवां स्थूलतर संघात जेक पक्षममा असंख्यात डोय छे. आ डमे छेदन यतां यता असंख्यात समयोमा न उपरितन ( सौथी उपरना ) पक्षमतुं छेदन थाय छे आ रीते जेक पक्षमना छेदनमां जेटलो काण लागे छे तेना असंख्यातमां अशङ्क काणने समय कडे छे आ समयनी विशेष व्याख्या नणुवानी ध्वष्टवाणा पाठकोजे उपासकदशाङ्गना पुडेला सूत्रनी आगारसंजीवनी टीका

વિલોકનીયમ્। તથા—મસંસ્પાતસમયસમુદાયપાત્મિકૈકાઽઽશક્તિઃ, સા ચ છુદ્ધકમ  
 વગ્રહણકાલસ્ય પદ્મચ્ચાન્નદુષ્ટરદ્વિગતતમમાગમૂના। સમયા ઇતિ ચા ભાવનિકા ઇતિ  
 યા વ કાલપદાર્થસ્થદિરોધેન જીવા ઇતિ ચ જીવપર્યાયસ્વાત્ પર્યાયપર્યાયિભોમ  
 કપચ્ચિદ્ મેદાત્, તથા મજીરાનાં પુત્રહાદીનાં પર્યાપત્વાત્ મજીરા ઇતિ  
 ચ મોખ્યતે। સમયાદયો જીરાદિઠ્પતિરેકમાત્રો ન મરન્તિ, તથાદિ—  
 સાદિ સપર્યવસાનાદિમેદમિદ્ધા યા જીરાજીવાદીનાં સ્થિતિસ્તદ્મેદાઃ સમયાદયા  
 સન્તિ। સા ચ સ્થિતિર્જીરાજીવયોર્ધર્માઃ, સ ધમધ ધર્મિણો નાત્યન્તં મેદવાત્,  
 અત્રો ધર્મધર્મિણોરમેદોપચારાત્ સમયા ભાવનિકાચ જીવાજીવત્વેન વ્યવદિવપતે।

પ્રથમ સૂત્ર કી ટીકા મેં અવલોકન કરના ચાહિયે। તથા અસંસ્પાત  
 સમયોં કી વક આલિકા હોતી હૈ—વહ આલિકા છુદ્ધકમવગ્રહણરૂપ  
 કાલ કી ૨૬૬ વે માગરૂપ પઢતી હૈ, સમય અથવા આલિકારૂપ જો  
 કાલવિશેષ હૈ સો इनके साथ जीवादिका कोई विरोध नहीं है—अतः  
 ये जीव के पर्यायरूप हैं और पर्याय और पर्यायी में कथंचित् अमेद  
 माय हुआ है इसलिये ये जीव और अजीव आदिरूप कहे गये हैं।  
 समयादिक जीवादिक से भिन्न नहीं हैं इस कथन का भाव ऐसा है कि  
 सादि सपर्यवसान आदि मेदवाली जो जीवाजीवादिकों की स्थिति है  
 सभी के मेद तो समयादिक हैं यह स्थितिजीव और अजीव की धर्म  
 रूप है यह धर्म अरने धर्मों से अत्यन्त मेद वाला नहीं होता है  
 इसलिये धर्म और धर्मों में अमेदोपचार से समय और आलिका ये  
 सब जीव और अजीवरूप से व्यवदेश को प्राप्त हो जाते हैं। यदि धर्म  
 का धर्मों से अत्यन्त मेद माना जायगा तो वह उससे सर्वथा विप्रकृत

વાંચી તેથી અસંસ્પાત સમયોની જેક અવલોકા થાય છે આ આલિકા છુદ્ધક  
 વગ્રહણરૂપ કાળના ૨૬૬ માં ભાગપ્રમાણ હોય છે સમય અથવા આલિકારૂપ  
 એ કાળવિશેષ છે તેમની સાથે અવલોકનો કોઈ વિરોધ નથી તેથી તેઓ  
 એવની પર્યાયરૂપ છે અને પર્યાય અને પર્યાયીમાં કઈક અશે અલેક માનવામાં  
 આવે છે, તેથી તેમને એ અને અલવ આદિરૂપે કહેવામાં આવ્યા છે  
 'સમયાદિક અવલોકિથી ભિન્ન નથી આ કથનનો ભાવ નીચે પ્રમાણે છે  
 સાદિ સપર્યવસાન (અન્ત યુક્ત) આદિ ભેદવાળી અવલોકોની જે  
 સ્થિતિ છે તેના જે ભેદ તેા સમયાદિક છે આ સ્થિતિએ અને અલવના  
 ધમ રૂપ છે આ ધમ પોતાના ધર્મો કરતાં અત્યંત ભેદવાળો હોતો નથી  
 તેથી ધમ અને ધર્મોમાં અભેદોપચારની અપેક્ષાએ સમય અને આલિકા  
 એ અને અલવ રૂપ વ્યવહારને પ્રાપ્ત થઈ જાય છે એ ધર્મનો ધર્મોથી  
 અત્યંત ભેદ માનવામાં આવે, તેા તેના કરતાં વિષકૃષ્ટ (ભિન્ન થઈ જવાને

अत्यन्तभेदे हि विप्रकृष्टधर्ममात्रोपपन्नौ प्रतिनियतधर्मविषयः संशयो न स्यात्, तदन्येभ्योऽपि तस्य भेदाविशेषात् । दृश्यते च यदा कश्चित् हरिततरुतरुणशाखा-प्रसरविवरान्तरतः किमपि शुक्लं पश्यति तदा 'किमियं पताका किं वा बलाका? । इत्येव' प्रतिनियतधर्मविषयः संशय इति । अभेदेऽपि सर्वथा संशयानुत्पत्तिरेव, गुणग्रहणत एव तस्यापि गृहीतत्वादिति । इह त्वभेदनयाश्रयणात्--' जीवाइ य ' इत्याद्युक्तम् । इह च समयावलिकालक्षणपदार्थद्वयस्य प्रत्येकं जीवाजीवात्मकतया

-भिन्न हो जाने के कारण उसकी उपलब्धि होने पर प्रतिनियत धर्मी-विषयक जो संदेह होता है वह नहीं हो सकेगा, क्योंकि वह जिस प्रकार से विवक्षित धर्मी से भिन्न है उसी प्रकार से वह अन्य अविवक्षित धर्मी से भी भिन्न है तो फिर वह प्रतिनियतधर्मीविषयक ही संदेह को क्यों उत्पन्न करेगा अन्य धर्मीविषयक संदेह को उसी काल में वह क्यों नहीं उत्पन्न करेगा अवश्य ही उत्पन्न करेगा प्रतिनियत वस्तु विषयक संदेह होता नहीं है ऐसा तो नहीं हम जब वृक्ष दूर से हरे वृक्ष की शाखाओं के मध्य में कोई सफेद वस्तु देखते हैं तो हमें ऐसा संदेह होता ही है -कि क्या यह पताका है या बलाका (बगलोंकी पंक्ति) है? यदि धर्मको धर्मी से सर्वथा अभिन्न ही माना जायगा-तभी प्रतिनियतवस्तु विषयक संदेह उत्पन्न नहीं हो सकेगा क्योंकि गुणके ग्रहणसे उससे अभिन्न उस वस्तु का ग्रहण हो ही जावेगा इसी कारण अभेदनय के आश्रयण से " जीवाइ य " इत्यादि पाठ कहा गया है । यहां ये समय आवलिकारूप पदार्थद्वय

कारणु तेनी उपलब्धि ( प्राप्ति ) यतां प्रतिनियत धर्मविषयक न सहेड थाय छे ते नही थछ शके, कारणु के न प्रकारे ते विवक्षित धर्मीथी सिन्न छे अन्य प्रकारे ते अविवक्षित धर्मीथी पणु सिन्न छे, तो पछी ते प्रतिनियत धर्म विषयक न सहेड केम उत्पन्न करशे ? अन्यधर्मविषयक सहेड अन्य कारणे ते केम नही उत्पन्न करे ? अवश्य उत्पन्न करशे न प्रतिनियत वस्तुविषयक सहेड उत्पन्न न थतो डोय जेवी वात तो बनती नथी आपणु न्यारे वीत्ता वृक्षनी शाखाओना मध्यभागमां केछ सहेड वस्तुने देणीजे छीजे त्यारे आपणुने जेवे सहेड थाय छे के ते पताका छे के बगलानी पंक्ति छे ? नो धर्मने धर्मीथी सर्वथा अभिन्न न मानवामा आवे तो पणु प्रतिनियत वस्तुविषयक सहेड उत्पन्न नही थछ शके, कारणु के गुणुना अदृश्यथी ते गुणुथी अभिन्न जेवी ते वस्तु अदृश्य थछ न थशे जे कारणु अलेह नयने आधारे " जीवाइ य " इत्यादि कहेवामां आव्यो छे, अही ते समय अने अवलिका



મળનાદ્ દિસ્થાનકાવતારો વિજ્ઞેય । પરમુત્તરમુમાળ્યપિ જ્ઞેયાનિ । વિજ્ઞેય તુ  
 વસ્વામાઃ-‘ આળાપાણુવિ યા ’ ઇત્યાદિના આનપ્રાણ-ઉચ્છ્વાસનિઃશ્વાસકાન્કા,  
 સ ય સ સ્વ્યાતાવલિકામપ્રાણઃ ।

ઉક્તશ્ચ—“ હૃદ્સ્સ અળવગલ્લસ્સ, નિરુપકિલ્લસ્સ જતુળો ।

પ્રગે કસાસનીસાસે પસ પાણુવિ યુચ્ચર્ઈ ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

છાયા—હૃદસ્થાનવગ્ધાનસ્ય, નિરુપકિલ્લસ્ય મન્તો ।

પ્રક ઉચ્છ્વાસનિઃશ્વાસઃ, પપ પ્રાણ ઇત્યુચ્યતે ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

પદ્મા—દ્વિપચ્ચાશદધિકવિષલ્યારિશ્ચલ્લત ( ૪૩૫૨ ) સસ્વકાવલિકાપરિ  
 મિત્ત પ્રક આનપ્રાણ ઇતિ વૃદ્ધાઃ ।

જીવ અજીવરૂપ હૈં ઇસ પ્રતાર કે કપન સે દિસ્થાનક મેં ડનકા અવ  
 તાર જુઆ હૈં ઈસા જાનના ચાહિયે ઇસી તરહ સે આગે કે સૂત્રોં કો બી  
 જાનના ચાહિયે ? “ અળપાણૂહ વા ઘોવાહ વા જીવાહ ય અજીવાહ ય ”  
 ઇત્યાદિ । શ્વાસોચ્છ્વાસ અપવા સ્તોક યે સય બી જીવરૂપ ઓર અજી  
 વરૂપ હૈં ઉચ્છ્વાસનિઃશ્વાસ કાલ કા નામ આનપ્રાણ હૈં । યહ ઉચ્છ્વાસ  
 નિઃશ્વાસ કાલ સંસ્વાત આલિકા પ્રમાણરૂપ હોતા હૈં । કહા બી હૈં-  
 “ હૃદ્સ્સ અળવગલ્લસ્સ ” ઇત્યાદિ ।

જો મનુષ્ય કુષ્ટ અર્થાત્ ઉત્સાહયુક્ત હો તથા અનવગ્ધાન ગ્લાનિર  
 હિત અર્થાત્ નીરોગી હો, તથા નિરુપકિલ્લ અર્થાત્ માનસિક ઓર  
 કૌતુમ્બિક કલેશ સે રહિત હો, ઈસે મનુષ્ય કે પ્રક ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસ  
 કો પ્રાણ કહતે હૈં ॥ ૧ ॥

અપવા—૪૩૫૨ આલિકાપ્રમાણ પ્રક આનપ્રાણ હોતા હૈં ઈસા

૩૫ બિ પકાશેનિ ઇવ અલવરૂપ પ્રકટ કરવામાં આવેલ છે આ પ્રકારના  
 કથનને લીધે દિસ્થાનમાં (બિ બાહ) તેમની અલુતરી કરવામાં આવી છે એમ  
 અમજીવ એવ પ્રમાણે પછીનાં સૂત્રો વિવે ચલુ સમજીવ ॥ ૧ ॥

“ આળપાણૂહ વા ઘોવાહ વા જીવાહ ય અજીવાહ ય ” ઇત્યાદિ—

શ્વાસોચ્છ્વાસ અને સ્તોક પણ અવરૂપ અને અલવરૂપ છે ઉચ્છ્વાસ  
 નિઃશ્વાસકાલ નામ આનપ્રાણ છે તે ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસકાલ અપવાત આવ  
 લિકાપ્રમાણ હોય છે કહીં પણ છે—“ હૃદ્સ્સ અળવગલ્લસ્સ ” ઇત્યાદિ—

એ મનુષ્ય ઉત્સાહયુક્ત હોય અનવગ્ધાન ( વ્યાનિરહિત અપવા નીરોગી )  
 હોય, તથા નિરુપકિલ્લ ( માનસિક અને કૌતુલિક કલેશથી રહિત ) હોય,  
 એમ અનવગ્ધાન એક ઉચ્છ્વાસ નિઃશ્વાસને પ્રાણ કહે છે ॥ ૧ ॥

उक्तञ्चैः—“ एगो आणापाणू, तेयालीसं सया उ वावन्ना ।

आवलियपमाणेणं, अणतनाणीहिं निद्धिटो ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—एक आनप्राणः त्रिचत्वारिंशच्छतानि द्विपञ्चाशत् ।

आवलिकाप्रमाणेन, अनन्तज्ञानिभिर्निर्दिष्टः ॥ १ ॥ इति ।

स्तोकः—सप्तानप्राणप्रमाणः । क्षणः-संख्यातानप्राणप्रमाणः-लवः-सप्तस्तोक-  
प्रमाणः । एवमिति, एव-यथा प्राक्तनसूत्रत्रये ‘ जीवा इति च अजीवा इति च  
प्रोच्यते इति पाठो भणितस्तथैवेतःप्रभृति सर्वेषूत्तरसूत्रेषु बोध्य इत्यर्थः । मुहूर्तः  
-सप्तसप्ततिलवप्रमाणः,

उक्तञ्च—“ सत्त पाणाणि से थोवे सत्त थोवाणि से लवे ।

लवाणं सत्तहत्तरिए, एस मुहुत्ते वियाहिए ॥ १ ॥

तिणिण सहस्सा सत्त सयाणि तेवत्तरिं चऊसासा ।

एस मुहुत्तो भणिओ, सव्वेहिं अणंतनाणीहिं ॥ १ ॥ ” (भ० १ श० १३ उ )

छाया-सप्त प्राणाः स स्तोकः, सप्तस्तोकाः स लवः ।

लवानां सप्तसप्ततिः, एष मुहूर्त्तो व्याख्यातः ॥ १ ॥

त्रीणि सहस्राणि सप्तशतानि त्रिसप्तति श्वासोच्छ्वासाः ।

एष मुहूर्त्तो भणितः, सर्वैरनन्तज्ञानिभिः ॥ २ ॥ इति ।

वृद्धजन कहते हैं कहा भी है—“ एगो आणापाणू तेयालीसं ” इत्यादि ।

सात आनप्राण प्रमाण एक स्तोक होता है । संख्यात आनप्राणप्रमाण  
एक क्षण होता है । सात स्तोक प्रमाण एक लव होता है ।

जिस प्रकार पहिले के इन तीन सूत्रों में “ जीवा इति च अजीवा  
इति च प्रोच्यते ” ऐसा पाठ कहा गया है उसी प्रकार से “ एवं मुहु-  
त्ताइ वा अहोरत्ताइ वा, पक्खाइ वा मासाइ वा ” इत्यादि २४ वें  
सूत्रतक “ जीवा इति च, अजीवा इति च प्रोच्यते ” इस पाठ का  
आयोजन करना चाहिये ७७ लवों का एक मुहूर्त्त है ।

अथवा ४४५२ आवलिकाप्रमाणेण एक आनप्राणु डोय छे, अणुं वृद्धजने

कडे छे कहुं पथु छे—“ एगो आणापाणू तेयालीसं ” इत्यादि

सात आनप्राणु प्रमाणु एक स्तोक डोय छे, संख्यात आनप्राणु प्रमाणु  
एक क्षणु डोय छे, अने सात स्तोकप्रमाणु एक लव डोय छे,

जे रीते आगला त्रयु सूत्रो साथे “ जीवा इति च, अजीवा इति च  
प्रोच्यते ” आ सूत्रपाठ आपवामां आब्ये छे, अणु प्रमाणु “ एवं मुहुत्ताइ वा  
अहोरत्ताइ वा, पक्खाइ वा मासाइ वा ” इत्यादि २४ भां सूत्र सुधी “ जीवा  
इति च, अजीवा इति च प्रोच्यते ” आ पाठनु आयोजन करवुं जेधये. ७७

मप्यनाद् द्विस्थानकावतारो विज्ञेयः । पयमुत्तरसूत्राण्यपि ज्ञेयानि । चिन्नेन तु  
 पश्यामः— अणपाणूति वा ' इत्यादिना आनमाण - उच्छ्वासनि श्वासकाणः,  
 स च सख्यातावलिकाममाणः ।

उक्तम्—“ इद्वस्स अणवगच्छस्स, निरुपक्खिद्वस्स नदुणो ।

एणे कत्तासनीसासे एस पाणुत्ति बुच्चई ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—इद्वस्सानवगच्छानस्य, निरुपक्खिद्वस्स्य नन्तो ।

एक उच्छ्वासनिःश्वासः, एष प्राण इत्युच्यते ॥ १ ॥ इति ।

यद्वा—द्विपञ्चाशदधिकत्रिचत्वारिंशच्छत ( ४३५२ ) संख्यकावलिकापरि  
 मित एक आनप्राण इति वृद्धाः ।

जीव अजीवरूप हैं इस प्रकार के कथन से द्विस्थानक में उनका अर्थ  
 तार हुआ है ऐसा जानना चाहिये इसी तरह से आगे के सूत्रों को भी  
 जानना चाहिये । “ अणपाणूइ वा योवाइ वा जीवाइ य अजीवाइ य ”  
 इत्यादि । श्वासोच्छ्वास अथवा स्तोक ये सप भी जीवरूप और अजी  
 वरूप हैं उच्छ्वासनिःश्वास काल का नाम आनप्राण है । यह उच्छ्वास  
 निः श्वास काल संख्यात आवलिका प्रमाणरूप होता है । कहा भी है—  
 “ इद्वस्स अणवगच्छस्स ” इत्यादि ।

जो मनुष्य कुछ अर्थात् उस्तादयुक्त हो तथा अमयग्लान ग्लानिर  
 हित अर्थात् नीरोगी हो, तथा निरुपक्खिद्व अर्थात् मानसिक और  
 कौतुम्बिक क्लेश से रहित हो, ऐसे मनुष्य के एक उच्छ्वास निःश्वास  
 को प्राण कहते हैं ॥ १ ॥

अथवा—४३५२ आवलिकाप्रमाण एक आनप्राण होता है ऐसा

इय वि पञ्चोत्तरे एव अणवइय प्रकट इत्थामां जावेत्त छे आ प्रकटनी  
 कथने वीपे द्विस्थानमां ( वि ज्येत्त ) तेमनी जलुतरी इत्थामां जावी छे ज्येत्त  
 समज्जुं ज्येत्त प्रभावे पथीनां सूत्रे विपे पज्जुं समज्जुं ॥ १ ॥

“ अणपाणूइ वा योवाइ वा जीवाइ य अजीवाइ य ” इत्यादि—

श्वासोच्छ्वास अने स्तोक पज्जुं एवइय अने अणवइय छे उच्छ्वास  
 निःश्वासकालं नाम आनप्राण छे ते उच्छ्वास निःश्वासकाल संख्यात आव  
 लिकाप्रमाण डोष छे इत्थं पज्जुं छे—“ इद्वस्स अणवगच्छस्स ” इत्यादि—

जे मनुष्य उस्तादियुक्त होय अनवग्लान ( ज्ञानिशुद्धित अथवा नीराजी )  
 होय, तथा निरुपक्खिद्व ( मानसिक अने कौतुम्बिक क्लेशशी रहित ) होय,  
 अथवा मनुष्यना ज्येत्त उच्छ्वास निःश्वासने प्राण इत्थे छे ॥ १ ॥

पूर्वपरिमाणम् । एव त्रुटितादियु पूर्वस्य पूर्वस्य संख्यानस्य चतुरशीतिलक्षगुणने-  
नोत्तरमुत्तरं संख्यानं भवति । एवं शीर्षप्रहेलिका पर्यन्तं द्विज्ञेयम् । तस्यां चतु-  
र्नवत्यधिकमङ्कस्थानशतं भवति । अत्र गाथा—

८४ लाख से गुणा करने पर एक त्रुटिताङ्ग का प्रमाण होता है, ८४ लाख  
त्रुटितांग का एक त्रुटित होता है, ८४ लाख त्रुटिनों का एक अटटाङ्ग  
होता है, ८४ लाख अटटांग का एक अटट होता है ८४ लाख अटट का  
एक अववांग होता है, ८४ लाख अववाङ्ग का एक अवव होता है चौरासी  
लाख अवव का एक हूहकांग होता है, चौरासीलाख हूहकांग का एक  
हूहक होता है, चौरासी लाख हूहक का एक उत्पलाङ्ग होता है, चौरासी  
लाख उत्पलांग का एक उत्पल होता है, चौरासी लाख उत्पल का एक  
पद्मांग होता है, चौरासी लाख पद्मांग का एक पद्म होता है, चौरासी  
लाख पद्म का एक नलिनांग होता है, चौरासी लाख नलिनांग का एक  
नलिन होता है, चौरासी लाख नलिन का एक अक्षिनिकुराङ्ग होता है,  
चौरासी लाख अक्षिनिकुरांग का एक अक्षिनिकुर होता है, चौरासी  
लाख अक्षिनिकुर का एक अयुतांग होता है, चौरासी लाख अयुतांग  
का एक अयुत होता है । चौरासी लाख अयुत का एक नयुतांग होता  
है, चौरासी लाख नयुतांग का एक नयुत होता है, चौरासी लाख नयुत  
का एक प्रयुतांग होता है, चौरासी लाख प्रयुतांग का एक प्रयुत होता

अटटा प्रमाणने ८४ लाख वडे शुष्वाथी अेक त्रुटितांग प्रमाणकाण थाय छे.  
८४ लाख त्रुटितांगनुं अेक त्रुटित थाय छे. ८४ लाख त्रुटितानुं अेक अटटांग  
थाय छे अने ८४ लाख अटटांगानुं अेक अटट थाय छे. ८४ लाख अटटाने  
अेक अववांग थाय छे अने ८४ लाख अववांगनु अेक अवव थाय छे. ८४  
लाख अववनुं अेक हूहकांग थाय छे अने ८४ लाख हूहकांगनु अेक हूहक  
थाय छे. ८४ लाख हूहकनु अेक उत्पलांग थाय छे अने ८४ लाख उत्पलांगनुं  
अेक उत्पल थाय छे ८४ लाख उत्पलनुं अेक पद्मांग थाय छे अने ८४ लाख  
पद्मांगानुं अेक पद्म थाय छे ८४ लाख पद्मनुं अेक नलिनांग थाय छे अने  
८४ लाख नलिनांगनुं अेक नलिन थाय छे ८४ लाख नलिननुं अक्षिनिकुरांग  
थाय छे अने ८४ लाख अक्षिनिकुरांगनुं अेक अक्षिनिकुर थाय छे. ८४ लाख  
अक्षिनिकुरनुं अेक अयुतांग थाय छे अने ८४ लाख अयुतांगनुं अेक अयुत  
थाय छे ८४ लाख अयुतनुं अेक नयुतांग थाय छे अने ८४ लाख नयुतांगनुं  
अेक नयुत थाय छे. ८४ लाख नयुतनुं अेक प्रयुतांग थाय छे अने ८४ लाख

अहोरात्रः—त्रिंशन्मुहूर्धममाणः । पक्ष पञ्चदशाहोरात्रममाण मास—पक्षद्वयम् । ऋतुः—मासद्वयममाणः वसन्तादिरूपः । अयनम्—ऋतुत्रयपरिमितम् । सप्तत्सरः—अयनद्वयममाणः । युगम्—पञ्चसवत्सराणि । वर्षश्चत्वारिंशत्प्रसिद्धानि । पूर्वाङ्गम्—चतुरशीतिलसवर्षममाणम् । पूर्वम्—पूर्वाङ्गमेव चतुरशीतिलसवर्षमितम् । पूर्वपरिमाणं यथा—

“ पुण्यस्त उ परिमाण, सपरिं खलु हौति कोटिलकत्वात् ।

उपन्न च सहस्रा, षोडश्या वास कोटीष ॥ १ ॥ इति ॥

छाया—पूर्वस्य तु परिमाणं, ससति खलु भवन्ति कोटिलक्षाः ।

पट्टपञ्चाशन्च सहस्राणि, षोडश्यानि वर्षाणां कोटयः ॥ १ ॥

अङ्कतोऽपि च—७०६६००००००००००० । ससतिः, उदुपरिपट्टपञ्चाशत्, उदुपरि च दशत्यस्यानि स्थापनीयानीति । घुटिवाङ्ग—चतुरशीति—उल्लस्यमित

कहा भी है—“ सप्त पाणाणि से घोबे ” इत्यादि ।

तीस मुहूर्त्तों का एक अहोरात्र होता है । १५ अहोरात्रों का एक पक्ष होता है दो पक्षों का एक मास होता है दो मास की एक वसन्तादि ऋतु होती है । तीन ऋतुओं का एक अयन होता है दो अयनों का एक सवत्सर होता है पांच सवत्सरों का एक युग होता है वर्षशत आदि प्रसिद्ध ही हैं । ८४ लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है, ८४ लाख पूर्वाङ्ग का एक पूर्व होता है । पूर्व का प्रमाण ऐसा ही कहा गया है—“ पुण्यस्त उ परिमाण ” इत्यादि । तात्पर्य इस गाथा का ऐसा है कि ८४ लाख को ८४ लाख से गुणा किया जाता है तब इसमें वर्षों की संख्या का प्रमाण ७०६६०० ०००००००० सत्सर लाख करोड़ छप्पन हजार करोड़ वर्ष जब होता है तब एक पूर्व होता है, पूर्व का जितना प्रमाण होता है उसे

व्येत्तुं श्लेः मुहूर्त्तं याव उ ऋतुं पञ्च उ—‘ सप्त पाणाणि से घोबे ’ इत्यादि ।

३० मुहूर्त्तानां श्लेः द्विसप्तशत ( अष्टोशत ) याव उ १५ अष्टोशतानां श्लेः पक्ष ( पञ्चवाशितुं ) याव उ वि पक्षानां श्लेः मास याव उ वि मासानी वसन्तादि श्लेः ऋतु याव उ त्रय ऋतुश्लेः अयन याव उ अने वि अयनानुं श्लेः सवत्सर ( ५५ ) याव उ पांच सवत्सरानां श्लेः युग याव उ ८४ लाख वर्षानुं श्लेः पूर्वाङ्ग याव उ अने ८४ लाख पूर्वानां श्लेः पूर्व याव उ पूर्वतु प्रमाण ‘ पुण्यस्त उ परिमाण ’ इत्यादि सूत्र द्वारा आ प्रकृतं ज्ञान्युते—८४ लाखने ८४ लाख बडे मुहूर्त्तां ने ७०५६००००००००००० श्लेः पूर्वतु वर्ष प्रमाण सित्तर लाख शैः, छप्पन हजार शैः उ ते शानने श्लेः पूर्व श्लेः उ श्लेः पूर्वतु श्लेः प्रमाण श्लेः उ

पूर्वपरिमाणम् । एवं त्रुटितादिषु पूर्वस्य पूर्वस्य संख्यानस्य चतुरशीतिलक्षणगुणे-  
नोत्तरगुत्तरं संख्यानं भवति । एवं शीर्षप्रहेलिका पर्यन्तं विज्ञेयम् । तस्यां चतु-  
र्नवत्यधिकमङ्कस्थानशतं भवति । अत्र गाथा—

८४ लाख से गुणा करने पर एक त्रुटिताङ्ग का प्रमाण होता है, ८४ लाख  
त्रुटितांग का एक त्रुटित होता है, ८४ लाख त्रुटिओं का एक अटटाङ्ग  
होता है, ८४ लाख अटटांग का एक अटट होता है ८४ लाख अटट का  
एक अववांग होता है, ८४ लाख अववाङ्ग का एक अवव होता है चौरासी  
लाख अवव का एक हूहूकांग होता है, चौरासीलाख हूहूकांग का एक  
हूहूक होता है, चौरासी लाख हूहूक का एक उत्पलाङ्ग होता है, चौरासी  
लाख उत्पलांग का एक उत्पल होता है, चौरासी लाख उत्पल का एक  
पद्मांग होता है, चौरासी लाख पद्मांग का एक पद्म होता है, चौरासी  
लाख पद्म का एक नलिनांग होता है, चौरासी लाख नलिनांग का एक  
नलिन होता है, चौरासी लाख नलिन का एक अक्षिनिकुराङ्ग होता है,  
चौरासी लाख अक्षिनिकुरांग का एक अक्षिनिकुर होता है, चौरासी  
लाख अक्षिनिकुर का एक अयुतांग होता है, चौरासी लाख अयुतांग  
का एक अयुत होता है । चौरासी लाख अयुत का एक नयुतांग होता  
है, चौरासी लाख नयुतांग का एक नयुत होता है, चौरासी लाख नयुत  
का एक प्रयुतांग होता है, चौरासी लाख प्रयुतांग का एक प्रयुत होता

अटटा प्रमाणने ८४ लाख वडे शुष्वाथी अेक त्रुटितांग प्रमाणकाण थाय छे,  
८४ लाख त्रुटितांगनुं अेक त्रुटित थाय छे. ८४ लाख त्रुटितोनुं अेक अटटांग  
थाय छे अने ८४ लाख अटटांगोनु अेक अटट थाय छे ८४ लाख अटटने  
अेक अववांग थाय छे अने ८४ लाख अववांगनुं अेक अवव थाय छे. ८४  
लाख अववनु अेक हूहूकांग थाय छे अने ८४ लाख हूहूकांगनुं अेक हूहूक  
थाय छे. ८४ लाख हूहूकनुं अेक उत्पलांग थाय छे अने ८४ लाख उत्पलांगनुं  
अेक उत्पल थाय छे ८४ लाख उत्पलनुं अेक पद्मांग थाय छे अने ८४ लाख  
पद्मांगोनु अेक पद्म थाय छे ८४ लाख पद्मनु अेक नलिनांग थाय छे अने  
८४ लाख नलिनांगनु अेक नलिन थाय छे ८४ लाख नलिननु अक्षिनिकुरांग  
थाय छे अने ८४ लाख अक्षिनिकुरांगनु अेक अक्षिनिकुर थाय छे ८४ लाख  
अक्षिनिकुरनु अेक अयुतांग थाय छे अने ८४ लाख अयुतांगनु अेक अयुत  
थाय छे ८४ लाख अयुतनु अेक नयुतांग थाय छे अने ८४ लाख नयुतांगनु  
अेक नयुत थाय छे, ८४ लाख नयुतनु अेक प्रयुतांग थाय छे अने ८४ लाख

“ इच्छिय ठाणेण गुण्ण, पणसुद्ध चउरसीसि गुणिय च ।

फाऊणं तनारे, पुब्बंगाईण सुग सत्वं ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—इच्छितस्यानेन गुण्यं, सूयपञ्चक चतुरसीसिगुणितं च ।

पूर्वाद्वादीनां संख्या त्रिवारान् कृत्वा जानीहि ॥ १ ॥ ” इति ।

शीर्षप्रहेलिकान्तः कालः सांख्यावहारिकः संख्यातः कालः मोक्ष्यते । अनेन च प्रथमपृथिवीगतनारकाणां भवनपतिष्पतराणां, भवतैरवतेषु सुपमदुष्पमायाः पश्चिमे भागे मनुष्यतिरथां चायुर्मोयत इति । किञ्च—शीर्षप्रहेलिकायाः परतोऽप्यस्ति संख्यातः कालः, सचानविश्यापिनां न व्यवहारविषय इति कृत्वोपम्ये

है, चौरासी लाख प्रयुत का एक श्लिकांग होता है, चौरासी लाख श्लिकांग की एक श्लिका होती है, चौरासी लाख श्लिकांग का एक शीर्षप्रहेलिकांग होता है, चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकांग की एक शीर्षप्रहेलिका होती है । यहाँ तक लौकिक गणित है पल्योपम आदि सब लोकोत्तर गणित हैं । शीर्षप्रहेलिका में १९४ वें अङ्कस्थान होते हैं । गाथा—“ इच्छिय ठाणेण गुण्ण ” इत्यादि । इच्छित स्थानसे चौरासीलाख को गुणित करो जितनी पार गुणाओगे उतनी पारही पूर्वाङ्क आदिकी संख्याको जानलो, अर्थात् पूर्वाङ्क आदिमें जिसकी संख्या जाननी चाहे उसको चौरासी लाखसे गुणाने पर अगलेकी संख्या आजावेगी, जैसे पूर्वाङ्क को चौरासी लाखसे गुणाने पर पूर्वकी संख्या आ जावेगी, पूर्वको चौरासी लाखसे गुणाने पर श्रुटितांगकी संख्या आवेगी, श्रुटितांगको चौरासी लाखसे गुणाने पर श्रुटितकी संख्या आजावेगी इत्यादि जान

प्रयुतांशुं जेक प्रयुत याय छे ८४ लाख प्रयुतनु जेक श्लिकांशु याय छे अने ८४ लाख श्लिकांशुनी जेक श्लिका याय छे ८४ लाख श्लिकानुं जेक शीर्षप्रहेलिकांशु याय छे अने ८४ लाख शीर्षप्रहेलिकांशुनी जेक शीर्षप्रहेलिका याय छे अर्थात् सुधीनुं लौकिक गणित छे पल्योपम आदि लोकोत्तर गणित ( जयवरी ) छे

शीर्षप्रहेलिका नामने के भाग छे ते १६४ अंशवाणी संख्या ( वनेनि दिशाके ) छे गाथा—“ इच्छिय ठाणेण गुण्ण ” इत्यादि इच्छित स्थानकी चौरासी लाखने सुषाकार करे केटीवार सुषुयो तेटीवार पूर्वांज आदिनी संख्या अष्टमावशे अर्थात् पूर्वांज आदिमां नेनी संख्या अष्टवानी इच्छिय ठाण तेने आर्थांसी लाखकी सुषुवाशी आगवानी संख्या आनी लये केभके पूर्वांशुने चौरासी लाखकी सुषुवाशी पूवनी संख्या आनी लये पूवने आर्थांसी लाखकी सुषुवाशी श्रुटितांशुनी संख्या आनी लये श्रुटितांशुने आर्थांसी लाखकी सुषुवाशी श्रुटितनी संख्या आनी लये इत्यादि समल देवु शीर्षप्रहेलिका पर्यन्तना

प्रक्षिप्तः, अतएव शीर्षप्रहेलिकायाः परतः पल्योपमाद्युपन्यासः । तत्र पल्येनोपमा यस्य तत् पल्योपमम्—असंख्यातवर्षकोटिकोटिप्रमाणम् सागरोपमा यस्य तत् सागरोपमम्—पल्योपमकोटिकोटि दशकमानमिति । दशसागरोपमकोटिकोटय उत्सर्पिणी । एवमवसर्पिणीति ॥ सू० ३७ ॥

कालविशेषवद् ग्रामादिवस्तुविशेषा अपि जीवाजीवा एवेति द्विस्थानकैः सप्तचत्वारिंशत्सूत्रैः प्राह—

लेना चाहिये ॥ शीर्षप्रहेलिका तक का काल सांव्यावहारिक काल संख्यातकाल कहा है इस संख्यातकाल से प्रथमपृथिवीगत नारकों की, भवनपतियोंकी, व्यन्तरो की, भरतक्षेत्र ऐरवत क्षेत्र में सुषम दुष्ममाके पश्चिमभाग में वर्तमान मनुष्य तिर्यञ्चोकी आयुका प्रमाण मापा जाता है ।

किञ्च—शीर्षप्रहेलिका से आगे भी संख्यातकाल है परन्तु वह अतिशय ज्ञान रहित जीवों के व्यवहार का विषय नहीं होना है, ऐसा समझ कर ही उसे उपमान में प्रक्षिप्त कर दिया है इसी बात को बताने के लिये शीर्षप्रहेलिका से आगे के काल को पल्योपम आदि रूप से प्रकट किया गया है । पल्य से जिसकी उपमा हो वह पल्योपम है यह पल्योपमरूप काल असंख्यात कोटि कोटि वर्ष प्रमाण का होता है । सागर से जिसकी उपमा हो वह सागरोपम है दश कोटिकोटि पल्योपम का एक सागरोपम होता है । १० कोडाकोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी और १० ही कोटाकोटी सागरोपम की एक अवसर्पिणी होती है अर्थात् बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक काल चक्र होता है ॥ सू० ३७ ॥

काणने सांव्यावहारिक काण-संख्यातकाण कह्यो छे ते संख्यातकाण द्वारा पडेवी पृथ्वीना नारकोना, भवनपतिओना, व्यन्तरोना, भरतक्षेत्र अने औरवत क्षेत्रमां सुषमदुष्ममाना पश्चिम भागमां वर्तमान ( विद्यमान ) मनुष्यो अने तिर्य-ओना आयुतु प्रमाण भापी शक्य छे.

वणी शीर्षप्रहेलिका पछी पद्यु संख्यातकाण छे, परन्तु ते अनतिशायी ( अतिशयज्ञान विना ) लोवना व्यवहारना विषयइय होता नथी, ओम समलने न तेने उपमा द्वारा भताववामां आओये छे ओ वातने भताववाने भाटे शीर्षप्रहेलिकाथी आगणना काणने पल्योपम आदिइये प्रकट करवामां आ वेव छे पत्यनी ( मोटेा जाडे ) साथे लेनी उपमा भापी शक्य छे तेवा काणने पल्योपम काण कडे छे ते पल्योपमइय काण असंख्यात कोटि कोटि वर्षप्रमाणवाणो होय छे. ले काणने सागरनी उपमा भापी शक्य छे, ओवा काणतु नाम सागरोपम काण छे दश कोटि कोटि पल्योपमने ओकसागरोपम काण थाय छे. १० कोडा कोडीसागरोपमनी ओक उत्सर्पिणी थाय छे अने ओटला न ( १० ) कोडाकोडी सागरोपमनी ओक अवसर्पिणी थाय छे. सू. ३७



“ इच्छिय ठाणेण गुण्ण, पणमुत्त चउरसीति गुणिय च ।

फाऊळं तण्णारे, पुच्चगाईण गुण सखं ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—इच्छितस्थानेन गुण्यं, शून्यपञ्चक चतुरशीसिगुणितं च ।

पूर्वाद्भादीनां सख्या भिवारान् कृत्वा जानीदि ॥ १ ॥ ” इति ।

शीर्षप्रहेलिकान्तः कालः सांयावहारिकः संख्यातः कालः प्रोच्यते ।

अनेन च प्रथमपृथिवीगतनारकाणां भवनपतिष्पउराणां, मरुत्सैरवतेषु सुप्रमदुप्यमायाः पश्चिमे भागे मनुष्यतिरथां चायुर्मीयत इति । किञ्च—शीर्षप्रहेलिकायाः परतोऽप्यस्ति संख्यातः कालः, सप्तानविंशत्यिनां न व्यषहारत्रिपय इति कृत्वोपम्ये

है, चौरासी लाख प्रयुक्त का एक शूलिकांग होना है, चौरासी लाख शूलिकांग की एक शूलिका होती है, चौरानी लाख शूलिकांग का एक शीर्षप्रहेलिकांग होता है, चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकांग की एक शीर्षप्रहेलिका होती है । यहाँ तक लौकिक गणित है परलोपम आदि सब लोकोत्तर गणित हैं । शीर्षप्रहेलिका में १०४ वें अङ्कस्थान होते हैं । गाथा—“ इच्छिय ठाणेण गुण्ण ” इत्यादि । इच्छित स्थानसे चौरासीलाख को गुणित करो जितनी पार गुणाओगे उतनी धारही पूर्वाद् भादिकी संख्याको जानलो, अर्थात् पूर्वाद् भादिमें जिसकी संख्या जाननी चाहे वसको चौरासी लाखसे गुणाने पर अगलेकी संख्या आजावेगी, जैसे पूर्वाद् को चौरासी लाखसे गुणाने पर पूर्वकी संख्या आ जावेगी, पूर्वका चौरासी लाखसे गुणाने पर श्रुतितांगकी संख्या आवेगी, श्रुतितांगको चौरासी लाखसे गुणाने पर श्रुतितांगकी संख्या आजावेगी इत्यादि जान

प्रभुतांजनुं ज्येष्ठ प्रयुक्त धाम ॐ ८४ लाख प्रभुतांजनुं ज्येष्ठ वृद्धिअंज धाम ॐ अने ८४ लाख वृद्धिअंजनी ज्येष्ठ वृद्धिका धाम ॐ ८४ लाख वृद्धिअंजनुं ज्येष्ठ शीर्षप्रहेलिकांज धाम ॐ अने ८४ लाख शीर्षप्रहेलिकांजनी ज्येष्ठ शीर्षप्रहेलिका धाम ॐ अर्थात् सुभीतुं वीरिं गञ्जित ॐ परलोपम आदि लोकोत्तर प्रयुक्त ( गद्यतरी ) ॐ

शीर्षप्रहेलिका नामने के ठाण ॐ ते १६४ लोकोत्तराणी संख्या ( वरोनि द्विभागे ) ॐ गाथा—“ इच्छिय ठाणेण गुण्ण ” इत्यादि इच्छित स्थानधी चौरासी लाखने सुखुवाधरे इशे नेटसीवार सुखुयो तेग्वीवार पूर्वाज आदिनी संख्या लज्जास आवये अर्थात् पूर्वाज आदिमां नेनी संख्या लज्जवानी धरुठा होय तेने आर्षासी लाखधी सुखुवाधी आत्रवानी संख्या आवी नये नेमके पूर्वाजने चौरासी लाखधी सुखुवाधी पूर्वनी संख्या आवी नये. पूर्वने आर्षासी लाखधी सुखुवाधी श्रुतितांगनी संख्या आवी नये श्रुतितांगने चौरासी लाखधी सुखुवाधी श्रुतितांगनी संख्या आवी नये इत्यादि धमल देवु शीर्षप्रहेलिका परान्तना

प्रक्षिप्तः, अतएव शीर्षप्रहेलिकायाः परतः पल्योपमाद्युपन्यासः । तत्र पल्येनोपमा यस्य तत् पल्योपमम्—असंख्यातवर्षकोटिकोटिप्रमाणम् सागरेणोपमा यस्य तत् सागरोपमम्—पल्योपमकोटिकोटि दशकमानमिति । दशसागरोपमकोटिकोटय उत्सर्पिणी । एवमवसर्पिणीति ॥ सू० ३७ ॥

कालविशेषवद् ग्रामादिवस्तुविशेषा अपि जीवाजीवा एवेति द्विस्थानकैः सप्तचत्वारिंशत्सूत्रैः प्राह—

लेना चाहिये ॥ शीर्षप्रहेलिका तक का काल सांख्यावहारिक काल संख्यातकाल कहा है इस संख्यातकाल से प्रथमपृथिवीगत नारकों की, भवनपतियोंकी, व्यन्तरोंकी, भरतक्षेत्र ऐरवत क्षेत्र में सुषम दुष्पमाके पश्चिमभाग में वर्तमान मनुष्य तिर्यश्चोंकी आयुका प्रमाण मापा जाता है ।

किञ्च—शीर्षप्रहेलिका से आगे भी संख्यातकाल है परन्तु वह अतिशय ज्ञान रहित जीवों के व्यवहार का विषय नहीं होना है, ऐसा समझ कर ही उसे उपमान में प्रक्षिप्त कर दिया है इसी बात को बताने के लिये शीर्षप्रहेलिका से आगे के काल को पल्योपम आदि रूप से प्रकट किया गया है । पल्य से जिसकी उपमा हो वह पल्योपम है यह पल्योपमरूप काल असंख्यात कोटि कोटि वर्ष प्रमाण का होता है । सागर से जिसकी उपमा हो वह सागरोपम है दश कोटिकोटि पल्योपम का एक सागरोपम होता है । १० कोडाकोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी और १० ही कोटाकोटी सागरोपम की एक अवसर्पिणी होती है अर्थात् बीस कोडाकोडी सागरोपम का एक काल चक्र होता है ॥ सू० ३७ ॥

काणने सांख्यावहारिक काण-संख्यातकाण कह्यो छे. ते संख्यातकाण द्वारा पडेही पृथ्वीना नारकोना, भवनपतिओना, व्यन्तरौना, भरतक्षेत्र अने औरवत क्षेत्रमां सुषमदुष्पमाना पश्चिम भागमां वर्तमान ( विद्यमान ) मनुष्यो अने तिर्यः. ओना आयुनुं प्रमाण भापी शक्य छे.

वणी शीर्षप्रहेलिका पछी पणु संख्यातकाण छे, परन्तु ते अनतिशायी ( अतिशयज्ञान विनाना ) लोवोना व्यवहारना विषयरूप होता नथी, ओम समलोने न तेने उपमा द्वारा अताववामां आय्यो छे. ओ वातने अताववाने भाटे शीर्षप्रहेलिकाथी आगणना काणने पल्योपम आदिइये प्रकट करवामां आवेस छे. पल्यनी ( मोटो आडो ) साथे नेनी उपमा भापी शक्य छे तेवा काणने पल्योपम काण कडे छे ते पल्योपमरूप काण असंख्यात कोटि कोटि वर्षप्रमाणवाणे होय छे ने काणने सागरीनी उपमा भापी शक्य छे, ओवा काणतु नाम सागरोपम काण छे दश कोटि कोटि पल्योपमनेना ओकसागरोपम काण थाय छे. १० कोडा कोडीसागरोपमनी ओक उत्सर्पिणी थाय छे अने ओटला न ( १० ) कोडाकोडी सागरोपमनी ओक अवसर्पिणी थाय छे. सू. ३७

मूलम्-गामाह वा णगराह वा १, निगमाह वारायहाणीह वा २, खेडाह वा कब्बडाह वा ३, मडवाह वा दोणमुहाह वा ४, पट्टणाह वा आगराह वा ५, आसमाह वा सवाहाह वा ६, सनिवेसाह वा घोसाह वा ७, आरामाह वा, उज्जाणाह वा ८, वणाह वा वणसडाह वा ९, वाषीति वा, पुक्खरणीति वा १०, सराह वा सरपतीति वा ११, अगडाह वा तलागाह वा १२, दहाह वा णदीति वा १३, पुब्बवीति वा उदहीति वा १४, वायस्वधाह वा उवासतराह वा १५, थलयाह वा, विग्गहाह वा १६, दीवाह वा, समुद्धाह वा १७, वेलाह वा, वेइयाह वा १८, दाराह वा, तोरणाह वा १९, णेरइयाह वा णेरइयावासाह वा जाव २० ४२ वैमानियाह वा वैमानियावासाह वा ४३, कप्पाह वा कप्पविमाणवासाह वा ४४, वासाह वा, वासहरपव्वयाह वा ४५, कूडाह वा कूडागाराह वा ४६, विजयाह वा रायहाणीति वा, जीवाह य अजीवाह य पव्वुच्चइ ४७ ।

छायाह वा आयवाह वा १, दोसिणाह वा अधगाराह वा २, ओमाणाह वा उम्माणाह वा ३, अइजाणगिहाह वा उज्जाणगिहाह वा ४, अवलिवाह वा सणिप्पवायाह वा जीवाह य अजीवाह य पव्वुच्चइ ५ । दो रासी पण्णत्ता त जहा-जीव रासी चैव अजीवरासी चैव ॥ सू० ३८ ॥

छाया-ग्रामा इति वा नगराणीति वा १, निगमानीति वा रामघान्य इति वा २, खेटनीति वा कर्मगनीति वा ३, मडम्भानीति वा द्रोणमुग्धानीति वा ४, पत्तनानीति वा आरुगा इति वा ५ भाभमा इति वा संपाहा इति वा ६, सनिवेशा इति वा घोपा इति वा ७, आरामा इति वा उज्जानानीति वा ८, वनानीति वा वल्लवण्डा इति वा ९, वाप्य इति वा पुक्करिण्य इति वा १०, सरासीति वा सरः पइक्तय इति वा ११, अरुगा इति वा सडागा इति वा १२, दहा इति वा नप इति वा १३ पृथिण्य इति वा उदधय इति वा १४, वातम्भवा इति वा अयका शान्तराणीति वा १५, थल्पानीति वा विग्रहा इति वा १६, दीपा इति वा समुद्धा इति वा १७, वेला इति वा वदिका इति वा १८, दाराणीति वा तोरणाणीति वा १९, नैरयिका इति वा नैरयिका वागा इति वा यावत् २०-४२ वैमानिका इति वा वैमानिकावागा इति वा ४३, कप्पा इति वा कप्पविमानावासा इति वा ४४, वासाणीति वा वासहरपव्वता इति वा ४५, कूडानीति वा कूडागाराणीति वा ४६, विजया इति वा रामघान्य इति वा जीवा इति वा अजीवा इति वा मोक्षयत् ४७ ।

छाया-इति वा आतपा इति वा १, ज्योत्स्ना इति वा अन्धकाराणीति वा २, अवमानानीति वा, उन्मानानीति वा ३, अतियानगृहाणीति वा उद्यानगृहाणीति वा ४, अवलिंवा इति वा शनैः प्रपाता इति वा जीवा इति च अजीवा इति च प्रोच्यते ५ । द्वौ राशी प्रज्ञप्तौ तद्यथा-जीवराशीश्चैव अजीवराशीश्चैव ॥ सू० ३८ ॥

टीका-‘गामाइवा’ इति । एषु सप्तचत्वारिंशत्सूत्रेषु प्रत्येक द्विके ‘जीवाइय अजीवाइय पवुच्चइ’ इत्यालापकः संयोजनीयः, तथाहि गामाइवा नगराइवा जीवाइय अजीवाइय पवुच्चइ, निगमाइवा रायहाणीइवा जीवाइय अजीवाइय पवुच्चइ ” एवं सर्वत्र विज्ञेयम् । ग्रामादीनां च जीवाजीवता प्रसिद्धैव तेषु तद्वयोर्नियमतः सद्भावात् । अन्यत् सुगमम् । नवरम्-ग्रामाः-करादिगम्याः, यद्वा-ग्रसन्ति गुणानितिग्रामाः,

कालविशेष की तरह ग्रामादिवस्तुविशेष भी जीव अजीव रूप ही है इस विषय को अथ सूत्रकार द्विकस्थानकवाले ४७ सूत्रों द्वारा प्रकट करते हैं-“ गामाइ वा नगराइ वा निगमाइ वा ” इत्यादि ।

टीकार्थ-इन ४७ सूत्रों में प्रत्येक दो दो सूत्रों में “ जीवाइ य अजीवाइ य पवुच्चइ ” ऐसा आलापक जोड़ना चाहिये जैसे-“ गामाइ वा नगराइ वा जीवाइ य अजीवाइ य पवुच्चइ, निगमाइ वा रायहाणीइ वा जीवाइ य अजीवाइ य पवुच्चइ ” इसी तरह से सर्वत्र जानना चाहिये ग्रामादिकों में जीवाजीवरूपता प्रसिद्ध ही है क्यों कि उनमें इन दोनों का नियम से सद्भाव रहता है । बाकी का और सब सुगम है । जिनमें टेक्स कर आदि लगता है वे ग्राम हैं अथवा गुणों का जहां ग्रसन होता है अर्थात् बोध रहित जहां की जनता होती है वे ग्राम हैं, जहां पर १८ अठारह

काणविशेषनी नेम आमादि वस्तुविशेष पशु एव अएव इप न डोय छे. आ विषयने सूत्रकार द्विस्थानकवाणां ४७ सूत्रे द्वारा प्रकट करे छे-

“ गामाइ वा नगराइ वा निगमाइ वा ” इत्यादि-

आ ४७ सूत्रे द्वारा प्ररूपित प्रत्येक षष्ठे सूत्रनी साथे “ जीवाइ य अजीवाइ य पवुच्चइ ” आ सूत्रपाठने योएवो नेधये नेभके-“ गामाइ वा नगराइ वा जीवाइ य अजीवाइ य पवुच्चइ, निगमाइ वा रायहाणीइ वा जीवाइ य अजीवाइ य पवुच्चइ ” आ प्रमाणे प्रत्येक षष्ठे सूत्रानी साथे आलापक सभए देवा नेधये. आमादिकेमां एवाएव इपता प्रसिद्ध न छे, कारण के तेमां ते भन्नेनेो नियमथी न सद्भाव रहे छे, आकीनेो सधणेो लाव सुगम छे.

न्यां कर आदि लागु पडे छे ओवा स्थणने आम कडे छे अथवा शुष्णेनु न्या ग्रसन थाय छे-अेटडे के आधारडित न्यांनी जनता डोय छे ओवा स्थणने आम कडे छे न्यां १८ प्रकारना कर लागता नथी ओवां

मूमम्-गामाइ वा णगराइ वा १, निगमाइ वा रायहाणीइ वा २, खेहाइ वा कव्यडाइ वा ३, मडवाइ वा दोणमुहाइ वा ४, पट्टणाइ वा आगराइ वा ५, आसमाइ वा सवाहाइ वा ६, सनिसेसाइ वा घोसाइ वा ७, आरामाइ वा, उज्जाणाइ वा ८, वणाइ वा वणसडाइ वा ९, वावीति वा, पुम्खरणीति वा १०, सराइ वा सरपतीति वा ११, अगडाइ वा तलागाइ वा १२, दहाइ वा णदीति वा १३, पुढवीति वा उदहीति वा १४, वायखघाइ वा उवासतराइ वा १५, बलयाइ वा, विग्गहाइ वा १६, दीवाइ वा, समुहाइ वा १७, वेलाइ वा, वेइयाइ वा १८, दाराइ वा, तोरणाइ वा १९, णेरइयाइ वा णेरइयावासाइ वा जात्र २०-४२ वेमाणियाइ वा वेमाणियावासाइ वा ४३, कप्पाइ वा कप्पविमाणवासाइ वा ४४, वासाइ वा, वासहरपव्वयाइ वा ४५, कूडाइ वा कूडागाराइ वा ४६, विजयाइ वा रायहाणीति वा, जीवाइ य अजीवाइ य पव्वुच्चइ ४७ ।

छायाइ वा आयवाइ वा १, दोसिणाइ वा अधगाराइ वा २, ओमाणाइ वा उम्माणाइ वा ३, अइजाणगिहाइ वा उज्जाणगिहाइ वा ४, अत्रलिवाइ वा सणिप्पवायाइ वा जीवाइ य अजीवाइ य पव्वुच्चइ ५ । दो रासी पण्णत्ता त जहा-जीव रासी चेत्र अजीवरासी चेत्र ॥ सू० ३८ ॥

छाया-ग्रामा इति वा नगराणीति वा १, निगमानीति वा रामधान्य इति वा २, खेतानीति वा पर्वटानीति वा ३, मडम्बानीति वा द्रोणमुम्बानीति वा ४, पट्टनानीति वा भाकरा इति वा ५ भात्रमा इति वा संवाहा इति वा ६, सनिसेसा इति वा घोषा इति वा ७, आरामा इति वा उषानानीति वा ८, वनानीति वा वनखण्डा इति वा ९, वाप्य इति वा पुष्करिण्य इति वा १०, सरासीति वा सरा पव्वुक्क्य इति वा ११, अगटा इति वा तलागा इति वा १२, दहा इति वा नय इति वा १३ पृथिव्य इति वा उदपय इति वा १४, वातस्कन्धा इति वा अक्का छान्तरामीति वा १५, बलयानीति वा विग्रहा इति वा १६, द्वीपा इति वा समुद्रा इति वा १७, वेला इति वा वेदिका इति वा १८, द्वाराणीति वा तोरणानीति वा १९, नैरयिका इति वा नैरयिका वासा इति वा यात्रम् २०-४२ वैमानिका इति वा वैमानिकावासा इति वा ४३, कल्पा इति वा कल्पविमानावासा इति वा ४४, वपणीति वा वर्षपरपर्वता इति वा ४५, कूटानीति वा कूटागाराणीति वा ४६, विजया इति वा राजधान्य इति वा जीवा इति वा अजीवा इति वा मोक्ष्यत ४७ ।

“ पत्तनं शकटैर्गम्यं, घोटकैर्नौभिरेव च ।

नौभिरेव तु यद्गम्यं पट्टनं तत्प्रचक्षते ॥ १ ॥ ” इति ।

आकराः-लोहादिधातूत्पत्तिभूमयः ५ । आश्रमाः-तापसावासाः, यत्र प्रथमे तापसा वसन्ति पश्चादन्येऽपि लोका आगत्य वसन्ति ते । संवाहाः-दुर्गभूमौ यत्र कृषीवलाः समभूमौ कृषिं कृत्वा रक्षार्थं धान्यानि यत्र सवहन्ति-नयन्तीत्यर्थः ६ । सन्निवेशाः-सार्थसेनादिनिवासाः, घोषाः-आभीर-पत्यः ७ । आरामाः-विविधवृक्षसंकुलानि कदलीगृहादिशोभितानि स्त्रीपुंसा क्रीडा स्थानानि, उद्यानानि उत्-उत्कृष्टानां विविधवेषभूपाऽलंकृतानां जनानां यानं-गमनं येषु तानि पुष्पफलोपेतवृक्षसमूहशोभितानि नगरप्रत्यासन्नवर्तिक्रीडास्थाना-

जहां जाया जाता है वह पट्टन है ऐसा इसका अर्थ होता है कहा भी है -“ पत्तनं शकटैर्गम्यं ” इत्यादि । लोहादि धातुओं को उत्पन्न करने वाली जो भूमि होती है वह आकर है तापस जनों का जो आवासस्थान होता है वह आश्रम है पहिले जहां तापस वसते हों और पीछे जहां आकर अन्य लोग भी वस गये हों ऐसा जो स्थान है वह आश्रम है । कृषीवल (किसान) जिस समभूमिपर खेती करके रक्षा के लिये धान्य ले आते हैं उस स्थान का नाम संवाह है । जहां सेना आदि रहती है उस स्थान का नाम सन्निवेश-छावनी है । जहां पर ग्वाला रहते हैं उसस्थान का नाम घोष है आराम नाम उस उद्यान का है कि जिसमें अनेक प्रकार के वृक्ष होते हैं और केला आदि के निकुञ्ज होते हैं तथा स्त्री पुरुषों का जो क्रीडा का स्थान होता है । “ उत् उत्कृष्टानां यानं गमनम् यत्र इति उद्यानम् ”

पट्टन कडे છે, ” એવો તેનો અર્થ થાય છે. કહ્યું પણ છે કે-“ પત્તન શકટૈર્ગમ્યં ” ઇત્યાદિ. લોહાદિ ધાતુઓને ઉત્પન્ન કરનારી જે ભૂમિ હોય છે તેને આકર કહે છે. તાપસોના ન્યા નિવાસસ્થાન હોય છે એવી જગ્યાને આશ્રમ કહે છે. અથવા પહેલાં ન્યાં તાપસો વસતા હોય અને ત્યારબાદ ન્યાં અન્ય લોકો પણ આવીને વસતા હોય એવા સ્થાનને આશ્રમ કહે છે. ખેડૂતો ખેતી કરીને જે સમભૂમિપર રક્ષાને નિમિત્તે ધાન્ય લઈ આવે છે, તે સ્થાનનું નામ સવાહ છે. ન્યાં સેના આદિ રહે છે, તે સ્થાનને સન્નિવેશ (છાવણી) કહે છે. ન્યાં ગોવાળિયાઓ રહે છે તે સ્થાનને ઘોષ કહે છે જે ઉદ્યાનમાં અનેક પ્રકારનાં વૃક્ષો હોય છે, કેળા આદિના નિકુજ હોય છે અને ન્યાં સ્ત્રીપુરુષો ફરવા જતાં હોય છે, જે તેમના ક્રીડાસ્થાન રૂપ હોય છે એવાં ઉદ્યાનને આરમ કહે છે-“ ઉત્ ઉત્કૃષ્ટાનાં યાનં ગમનં યત્ર ઇતિ ઉદ્યાનમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુ

નકરાણિ-નકરો યેષુ તાનિ-અષ્ટાદશકરરહિતાનિ જનનિવાસસ્થાનાનીત્યર્થઃ ૧ ।  
 નિગમા-વણિગ્જનનિવાસા , રાજધાન્ય' યમ રાજાનો વસન્તિ ૨ । સ્લેટાનિ-ધૂલિ  
 માકારપુક્તાનિ, કર્વટાનિ-કુનગરાણિ ૩, મહમ્બાનિ-યેષાં પરિતોઽર્ધ્યયોજનાત્  
 પરલોઽસ્થિતગ્રામાણિ, દ્રોણમુસ્વાનિ-જલસ્થમમાર્ગદ્વયગમ્યાનિ ૪, પટનાનિ-  
 સમસ્તવસ્તુ પ્રાપ્તિસ્થાનાનિ, યદ્વા-પત્તનં દ્વિવિધ-અલપત્તનં સ્થલપત્તન ઘ, યમ  
 જલમાર્ગેણ નાષાદિના ગમ્યતે સ્વનલપત્તનમ્, યમ સ્થલમાર્ગેણ શકટાદિના ગમ્યતે  
 સ્થલપત્તનમ્, તાનિ । યદ્વા પતન્તિ-મમાગચ્છન્તિ સર્વદિગ્મ્યો બના યેષુ  
 ઠાનિ । 'પટનાનિ વા ' ઇતિ છાયાત્તમ પટનમ્ પશ્ચીમિ' શકટૈર્યાં ગમ્યતે, ઉક્તશ્ચ-

અકાર કા કર નહીં લગતા હૈ એસે જો જનનિવાસ સ્થાન હૈં વે નકર-  
 નગર હૈં । જહાં વણિગ્જનોં કા નિવાસ રહતા હૈં વહ નિગમ હૈં । જહાં રાજા  
 રહતા હૈં વહ રાજધાની હૈં । ધૂલિ કે કોટ સે જો યુક્ત હોતે હૈં વે સ્લેટ હૈં ।  
 કુનગરોં કા નામ કર્વટ હૈં જિનકે આસપાસ આઘે યોજન સે આગે અઢાઈ  
 ૨ કોસ આગે વસતિ હોતી હૈં વે મહમ્મ્ય હૈં । જલમાર્ગ સે ઓર સ્થલ  
 માર્ગ સે જિનમેં આના જાના હોતા હૈં વે દ્રોણમુલ્હ હૈં । સમસ્ત વસ્તુઓં કી  
 પ્રાપ્તિ કે જો સ્થાન હોતે હૈં વે પત્તન હૈં અથવા પત્તન દો પ્રકાર કે હોતે  
 હૈં ઇક અલપત્તન ઓર દુસરા સ્થલપત્તન જહાં પર જલમાર્ગ સે નૌકા  
 આદિ ઢારા હોકર જાયા જાતા હૈં વહ જલપત્તન હૈં ઓર જહાં સ્થલમાર્ગ  
 સે ગાઢી આદિ ઢારા જાયા જાતા હૈં વહ સ્થલપત્તન હૈં । અથવા જહાં  
 પર સર્વદિશાઓં સે મનુષ્ય આતે હૈં વે પત્તન હૈં । અથવા " પટન " તેસી  
 જય ઇસ્કી સંસ્કૃત્તજ્ઞાપા હોતી હૈં તપ નૌકાઓં ઢારા યા ગાઢી ઢારા

જનનિવાસસ્થાનને નગર કહે છે ત્યાં વણિકો ( વ્યાપારીઓ ) રહેતા હોય  
 છે એવા સ્થાનને નિગમ કહે છે ત્યાં રાજા રહે છે તે નગરને રાજધાની  
 કહે છે પૂજા અથવા માટીના કોટથી યુક્ત એવા નગરને સ્લેટ કહે છે કુનગરને  
 કર્વટ કહે છે તેની આસપાસમાં ૦૫ યોજનથી ( ૨૫, ૨૫, કોટથી ) દૂર  
 વસતિ હોય છે એવા જનનિવાસ સ્થાનને મહમ્મ્ય કહે છે ત્યાં જળમાર્ગ  
 અને જમીનમાર્ગે અથવા ત્વર થાય છે એવા સ્થાનને દ્રોણમુખ કહે છે ત્યાં  
 બધી વસ્તુઓ મળી શકે છે એવું સ્થાન પત્તન કહેવાય છે અથવા પત્તનના  
 બે પ્રકાર છે-અલપત્તન અને સ્થલપત્તન ત્યાં જળમાર્ગે જ નૌકા આદિ ઢારા  
 વર્ષ શકાય છે એવા સ્થાનને અલપત્તન કહે છે અને જમીનમાર્ગે વર્ષ શકાય  
 એવા ગામને સ્થલપત્તન કહે છે અથવા-ત્યાં બધી વિશાલગામથી માલુમે  
 આવે છે તેને પત્તન કહે છે અથવા ત્યારે " પટન " એવી તેની સંસ્કૃત  
 ૧૧ થા શ વ છે ત્યારે " નૌકાઓ અથવા ગામી ટાકા ત્યાં જલાય તે તેને

“ પત્તનં શકટૈર્ગમ્યં, ઘોટકૈર્નોંભિરેવ ચ ।

નોંભિરેવ તુ યદ્ગમ્યં પટ્ટનં તત્પ્રચક્ષતે ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

આકરાઃ—લોહાદિધાતુત્પત્તિભૂમયઃ ૫ । આશ્રમાઃ—તાપસાવાસાઃ, યત્ર પ્રથમે તાપસા વસન્તિ પશ્ચાદન્યેऽપિ લોકા આગત્ય વસન્તિ તે । સંવાહાઃ—દુર્ગભૂમૌ યત્ર કૃષીવલાઃ સમભૂમૌ કૃષિં કૃત્વા રક્ષાર્થં ધાન્યાનિ યત્ર સવહન્તિ—નયન્તીત્યર્થઃ ૬ । સન્નિવેશાઃ—સાર્થસેનાદિનિવાસાઃ, ઘોષાઃ—આમીર-પલ્લયઃ ૭ । આરામાઃ—વિવિધવૃક્ષસંકુલાનિ કદલીગૃહાદિશોભિતાનિ સ્ત્રીપુંસા ક્રીડા સ્થાનાનિ, ઉદ્યાનાનિ ઉત્-ઉત્કૃષ્ટાનાં વિવિધવેપભૂપાડલંકૃતાનાં જનાનાં યાનં-ગમનં યેષુ તાનિ પુષ્પફલોપેતવૃક્ષસમૂહશોભિતાનિ નગરમત્યાસન્નવર્તિક્રીડાસ્થાના-

જહાં જાયા જાતા હૈ વહ પટ્ટન હૈ એસા ઇસકા અર્થ હોતા હૈ કહા સ્ત્રી હૈ —“ પત્તનં શકટૈર્ગમ્યં ” ઇત્યાદિ । લોહાદિ ધાતુઓં કો ઉત્પન્ન કરને વાલી જો ભૂમિ હોતી હૈ વહ આકર હૈ તાપસ જનોં કા જો આવાસસ્થાન હોતા હૈ વહ આશ્રમ હૈ પહિલે જહાં તાપસ વસતે હોં ઓર પીછે જહાં આકર અન્ય લોગ ભી વસ ગયે હો એસા જો સ્થાન હૈ વહ આશ્રમ હૈ । કૃષીવલ (કિસાન) જિસ સમભૂમિપર સ્વેતી કરકે રક્ષા કે લિવે ધાન્ય લે આતે હૈં ઉસ સ્થાન કા નામ સંવાહ હૈ । જહાં સેના આદિ રહતી હૈ ઉસ સ્થાન કા નામ સન્નિવેશ—છાવની હૈ । જહાં પર ગ્યાલા રહતે હૈં ઉસસ્થાન કા નામ ઘોષ હૈ આરામ નામ ઉસ ઉદ્યાન કા હૈ કિ જિસમેં અનેક પ્રકાર કે વૃક્ષ હોતે હૈં ઓર કેલા આદિ કે નિકુજ હોતે હૈં તથા સ્ત્રી પુરુષોં કા જો ક્રીડા કા સ્થાન હોતા હૈ । “ ઉત્ ઉત્કૃષ્ટાનાં યાનં ગમનમ્ યત્ર ઇતિ ઉદ્યાનમ્ ”

પટ્ટન કહે છે, ” એવો તેનો અર્થ થાય છે કહ્યું પણ છે કે—“ પત્તનં શકટૈર્ગમ્યં ” ઇત્યાદિ. લોહું આદિ ધાતુઓને ઉત્પન્ન કરનારી જે ભૂમિ હોય છે તેને આકર કહે છે. તાપસોના જ્યાં નિવાસસ્થાન હોય છે એવી જગ્યાને આશ્રમ કહે છે. અથવા પહેલાં જ્યાં તાપસો વસતા હોય અને ત્યારબાદ જ્યાં અન્ય લોકો પણ આવીને વસતા હોય એવા સ્થાનને આશ્રમ કહે છે. ખેડૂતો ખેતી કરીને જે સમભૂમિપર રક્ષાને નિમિત્તે ધાન્ય લઈ આવે છે, તે સ્થાનનું નામ સંવાહ છે. જ્યાં સેના આદિ રહે છે, તે સ્થાનને સન્નિવેશ (છાવણી) કહે છે. જ્યાં ગોવાળિયાઓ રહે છે તે સ્થાનને ઘોષ કહે છે જે ઉદ્યાનમાં અનેક પ્રકારનાં વૃક્ષો હોય છે, કેળા આદિના નિકુજ હોય છે અને જ્યાં સ્ત્રીપુરુષો ફરવા જતાં હોય છે, જે તેમના ક્રીડાસ્થાન રૂપ હોય છે એવાં ઉદ્યાનને આરામ કહે છે—“ ઉત્ ઉત્કૃષ્ટાનાં યાનં ગમનમ્ યત્ર ઇતિ ઉદ્યાનમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુ



नीत्यर्थः। वनानि—एकप्राचीयवृक्षसंकुलानि, वनमन्दाः—अनेकप्राचीयवृक्षसंकुलाः।  
 वायु—चतुरस्रानलाश्रयविशेषाः, पुष्करिण्य—सा एव वृक्षा १०। सरासि—विस्तृत  
 जलाश्रयविशेषाः, सराः पक्कयः—सा येव पंक्तिवृद्धानि ११। अन्टाः—कृपाः, तडागाः  
 लोकप्रसिद्धाः १२। इदाः नद्यश्च प्रसिद्धा एव १३। पृथिव्य—रत्नप्रमादयः  
 उदय—उदधोर्ध्वचिनोदधयः। घातस्कन्धाः—घनवाततनुवाता इतर वा अथवा  
 घान्तराशि—घातरस्कन्धानामधस्तादाकाशानि, जीवत्वं चैषां, सूक्ष्मपृथिवीकायि

इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें विविध प्रकार की वेधमूया से अलकृत  
 हुए मनुष्यों का गमन होता है वह खदान है। यह खदान पुष्पफलों से  
 युक्त वृक्षसमूहों से शोभित होता है और नगर के पास रहता है एक  
 जातीय वृक्षों से जो युक्त होता है वह घन है तथा अनेक जातीयवृक्षों  
 से जो युक्त होता है वह वनखण्ड है जो जलाशय चौकोर होता है वह  
 थापी है तथा जो जलाशय गोल होता है वह पुष्करिणी है जो जलाशय  
 विशेषरूप से विस्तृत होता है वह सर है ये सर ही जय पंक्तिवृद्ध  
 होते हैं तो वे सर पंक्ति के नाम से कहे जाते हैं। कृप का नाम अक्ट  
 है सामान्य तालाब का नाम तडाग है। इद और नदी ये प्रसिद्ध ही  
 हैं। रत्नप्रभा आदि पृथिवियाँ यहाँ पृथिवी शब्द से ग्रहीत हुए हैं। तथा  
 इनके नीचे जो घनोदधि आदि हैं वे उदधि शब्द से ग्रहीत हुए हैं।  
 घातस्कन्ध—घनवात और तनुवात अथवा सामान्यवायु से घातस्कन्ध  
 से ग्रहीत हुए हैं तथा घातस्कन्धों के नीचे जो आकाश है वह अथवा

आर केमं विविध प्रकारनी वेधमूयाथी विभूषित मनुषीनु जमन बाध ऐ, तेनु  
 नाम उद्यान ऐ ते उद्यान इणकूदोथी मुक्त वृक्षसमूहोथी मुशोभित होय ऐ  
 अने नगरनी पासो होय ऐ जेह अतना वृक्षोथी के मुक्त होय ऐ तेने वन  
 कडे ऐ अने अनेह अतना वृक्षोथी मुक्त स्थानने वनखण्ड कडे ऐ. अतुके  
 आकार जलाशयने थापी कडे ऐ अने जेणाकारना जलाशयने पुष्करिणी कडे  
 ऐ जहुव विस्तृत जलाशयने सर (सरोवर) कडे ऐ अने जेवाँ सरानी  
 दाशमाणने सर पंक्ति कडे ऐ अथट जेटवे रूप (रूपे) तडाम जेटवे  
 सामान्य तालाब. इद अने नदी ते अत्युताँ ऐ पृथ्वी परथी अर्द्धी  
 रत्नप्रभा आदि पृथ्वीमे (नरके) अकषु करणी ऐ अने तेमनी नीचे  
 आवेला घनोदधि आदिने उदधि पर दाश अकषु करणाना ऐ घातस्कन्ध जेटवे  
 घनवात अने तनुवात अथवा सामान्य वायु समजवा. घातरा धानी नीचे के  
 आकाश ऐ ते अथवासा तर परथी अकषु करणैत ऐ आ जयानि उपरप

कादि जीवव्यासत्वात्, अजीवत्वं च प्रसिद्धमेव १५। वलयानि-पृथिवीनां वेष्ट-  
नानि घनोदधिघनवाततनुवातरूपाणि, विग्रहाः-लोकनाडीचक्राणि, जीवत्वं  
चैषां सूक्ष्मपृथिव्यादि जीवव्यासत्वात् १६। द्वीपाः समुद्राश्च प्रतीताः १७।  
वेलाः-समुद्रजलवृद्धयः, वेदिकाः-जम्बूद्वीपजगत्यादि सम्बन्धिन्यः प्रसिद्धाः १८।  
द्वाराणि-विजयादीनि, तोरणानि - तेषामेवावयवविशेषाः १९। नैरयिकाः-  
नारकाः, अजीवत्वं चैषां कर्मपुद्गलाद्यपेक्षया, जीवत्वं च प्रतीतमेव, नैरयिकावासाः

शान्तर पद से गृहीत हुआ है इन सब को जो जीवरूप से कहा गया है  
उसका कारण ऐसा है कि ये सब सूक्ष्मपृथिवीकायिक आदि जीवों से  
व्याप्त होते हैं तथा इनमें अजीवता तो स्वभावतः ही है वलय शब्द से  
पृथिवियों के वेष्टनरूप घनोदधि, घनवात और तनुवात ये सब गृहीत  
हुए हैं। विग्रह शब्द से लोकनाडी चक्र गृहीत हुए हैं। इन सब में  
जीवता सूक्ष्मपृथिवीकायिक जीवों से व्याप्त होने के कारण कही गई है  
तथा अजीवता स्वभावतः कही गई है। द्वीप और समुद्र प्रसिद्ध ही हैं  
समुद्रजल की वृद्धि होती है वह वेला है, जम्बूद्वीप की जगति आदिरूप  
वेदिका होती है विजयादिक द्वार हैं, तथा इन द्वारों के जो अवयववि-  
शेष हैं वे तोरण हैं। ये सब पूर्वोक्तरूप से ही जीव और अजीवरूप  
हैं। नैरयिकों में जो जीवत्व कहा गया है वह जीवाधिष्ठित  
होने की अपेक्षा से कहा गया है तथा अजीवत्व जो कहा गया है  
वह कर्म पुद्गलों से युक्त होने के कारण से कहा गया है-इसी तरह से

कडेवानु कारणु नीचे प्रमाणे छे-ते यथां स्थाने। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि  
अवोथी व्याप्त होय छे। तथा तेमां अजवता तो स्वभावतः न होय छे,  
वलय पद द्वारा पृथ्वीमाना वेष्टनरूप घनोदधि, घनवात अने तनुवातने अहणु  
करवामां आवेल छे। विग्रहपदथी लोकनाडीचक्र गृहीत थयेल छे। ते यथां  
सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अवोथी व्याप्त होवाथी तेआमां अजवता प्रकट करवामां  
आवेल छे अने अजवता स्वभावतः प्रकट करवामां आवेल छे।

द्वीप अने समुद्रे जगतीता होवाथी अर्ही तेमनी व्याप्तया आपी नथी।  
समुद्रना पाणीनी ने वृद्धि थाय छे तेने वेला कडे छे। जम्बूद्वीपनी जगति  
आदि रूप वेदिका होय छे विजयादिक द्वारे छे अने ते द्वारेना अवयव  
विशेषरूप तोरणो होय छे। ये यथां पडेलीं यताव्या मुज्ज न अजव अने  
अजवरूप छे नारकांमा ने अजवत्व प्रकट करवामां आव्यु छे तेनुं कारणु तेमनी  
अजयुक्तता छे अने तेआ कर्मपुद्गलाथी युक्त होवाथी तेमनामां अजवत्व  
प्रकट करवामां आव्यु छे। अज प्रमाणे नैरयिकावासोमा पणु अजवत्व अने

નીત્યર્થઃ : ૮। પનાનિ-પક્ષ્ણાવીયવૃક્ષાસકુલાનિ, પનસઢાઃ-અનેકપ્રાવીયવૃક્ષસકુલાઃ ૧।  
 વાપ્ય-ચતુરસ્રાનલાશ્રયવિશેષાઃ, પુષ્કરિણ્ય-તા એવ વૃક્ષા ૧૦। સરાસિ-વિસ્તૃત  
 જલાશ્રયવિશેષાઃ, સરાઃ પંક્ત્ય-તા એવ પંક્તિપદ્ધાનિ ૧૧। અવટઃ-કૂપાઃ, તઢામાઃ  
 સ્ત્રોકમસિદ્ધાઃ ૧૨। ઠ્ઠઢાઃ નવમ્ પ્રસિદ્ધા એવ ૧૩। પૃથિવ્ય-રત્નપ્રમાદયઃ  
 ઉદયય-ઉદયોષર્ષિપનોદયય । વાતસ્કન્ધ-ઘનવાતતનુવાતા ઠ્ઠરે વા, અવકા  
 ધ્વાન્તરાણિ-વાતસ્કન્ધાનામપસ્તાદાકાશાનિ, ઝીવત્તં ચિવાં, સુક્ષ્મપૃથિવીકાયિ

इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसमें विविध प्रकार की वेपमूपा से अलकृत  
 हुए मनुष्यों का गमन होता है वह उद्यान है। यह उद्यान पुष्पफलों से  
 युक्त वृक्षसमूहों से शोभित होता है और नगर के पास रहता है एक  
 जातीय वृक्षों से जो युक्त होता है वह घन है तथा अनेक जातीयवृक्षों  
 से जो युक्त होता है वह घनखण्ड है जो जलाशय चौकोर होता है वह  
 घापी है तथा जो जलाशय गोल होता है वह पुष्करिणी है जो जलाशय  
 विशेषरूप से विस्तृत होता है वह सरः है ये सर ही जप पंक्तिपद  
 होते हैं तो वे सरः पंक्ति के नाम से कहे जाते हैं। कूप का नाम अवट  
 है सामान्य तालाब का नाम तडाग है। इद और नदी ये प्रसिद्ध ही  
 हैं। रत्नप्रमा आदि पृथिवियां यहां पृथिवी शब्द से गृहीत हुए हैं। तथा  
 इनके नीचे जो घनोद्भि आदि हैं वे उद्भि शब्द से गृहीत हुए हैं।  
 वातस्कन्ध-घनवात और तनुवात अथवा सामान्यवायु से वातस्कन्ध  
 से गृहीत हुए हैं तथा वातस्कन्धों के नीचे जो आकाश है वह अवका

સાર એમાં વિવિધ પ્રકારની વેપભૂવાથી વિભૂષિત મનુષ્યાનુ ગમન થાય છે, તેનું  
 નામ ઉદ્યાન છે તે ઉદ્યાન ક્ષણદૂલેથી મુક્ત વૃક્ષસમૂહોથી મુશોભિત હોય છે  
 અને નગરની પાસે હોય છે એક જાતના વૃક્ષોથી જે મુક્ત હોય છે તેને વન  
 કહે છે અને અનેક જાતના વૃક્ષોથી મુક્ત રવાનને વનખંડ કહે છે. વનુક્ષો  
 વૃક્ષો જળાશયને વાપી કહે છે અને જોળાકારના જળાશયને પુષ્કરિણી કહે  
 છે બહુ જ વિસ્તૃત જળાશયને સર (સરોવર) કહે છે અને એમાં સરાની  
 હારમાળાને સર પંક્તિ કહે છે અવટ એટલે કૂપ (કૂવો) તડાગ એટલે  
 સામાન્ય તળાવ ઠ્ઠ અને નદી તે બહુતા છે પૃથ્વી પદ્ધતી અહીં  
 રત્નપ્રમા આદિ પૃથ્વીઓ (નરકો) પ્રકલ્પ કરવાની છે અને તેમની નીચે  
 આવેલા ઘનોદ્ધિ આદિને ઉદ્ધિ પણ દ્વારા પ્રકલ્પ કરવાના છે વાતસ્કન્ધ એટલે  
 ઘનવાત અને તનુવાત અથવા સામાન્ય વાયુ સમજવા. વાતસ્કન્ધોની નીચે જે  
 આકાશ છે તે અવકાશાન્તર પદ્ધતી પ્રકલ્પ કરાયેલ છે આ બધાને છવ્ઠ્ય

कादि जीवव्याप्तत्वात्, अजीवत्वं च प्रसिद्धमेव १५। वलयानि-पृथिवीनां वेष्ट-  
नानि घनोदधिघनचाततनुवातरूपाणि, विग्रहाः-लोकनाडीचक्राणि, जीवत्वं  
चैषां सूक्ष्मपृथिव्यादि जीवव्याप्तत्वात् १६। द्वीपाः समुद्राश्च प्रतीताः १७।  
वेलाः-समुद्रजलवृद्धयः, वेदिकाः-जम्बूद्वीपजगत्यादि सखन्धिन्यः प्रसिद्धाः १८।  
द्वाराणि-विजयादीनि, तोरणानि - तेषामेवावयवविशेषाः १९। नैरयिकाः-  
नारका, अजीवत्व चैषां कर्मपुद्गलाद्यपेक्षया, जीवत्वं च प्रतीतमेव, नैरयिकावासाः

शान्तर पद से गृहीत हुआ है इन सब को जो जीवरूप से कहा गया है  
उसका कारण ऐसा है कि ये सब सूक्ष्मपृथिवीकायिक आदि जीवों से  
व्याप्त होते हैं तथा इनमें अजीवता तो स्वभावतः ही है वलय शब्द से  
पृथिवियों के वेष्टनरूप घनोदधि, घनचात और तनुवात ये सब गृहीत  
हुए हैं। विग्रह शब्द से लोकनाडी चक्र गृहीत हुए हैं। इन सब में  
जीवता सूक्ष्मपृथिवीकायिक जीवों से व्याप्त होने के कारण कही गई है  
तथा अजीवता स्वभावतः कही गई है। द्वीप और समुद्र प्रसिद्ध ही हैं  
समुद्रजल की वृद्धि होती है वह वेला है, जम्बूद्वीप की जगति आदिरूप  
वेदिका होती है विजयादिक द्वार हैं, तथा इन द्वारों के जो अवयववि-  
शेष हैं वे तोरण हैं। ये सब पूर्वोक्तरूप से ही जीव और अजीवरूप  
हैं। नैरयिकों में जो जीवत्व कहा गया है वह जीवाधिष्ठित  
होने की अपेक्षा से कहा गया है तथा अजीवत्व जो कहा गया है  
वह कर्म पुद्गलों से युक्त होने के कारण से कहा गया है-इसी तरह से

कडेवानु कारणु नीचे प्रमाणु छे-ते भधां स्थाने। सूक्ष्म पृथ्वीकायिक आदि  
लघोधी व्याप्त होय छे, तथा तेमां अलघता तो स्वभावतः न होय छे,  
वलय पद द्वारा पृथ्वीमाना वेष्टनरूप घनोदधि, घनचात अने तनुवातने अडणु  
करवामां आवेल छे, विग्रहपदधी लोकनाडीयक गृहीत थयेल छे, ते भधा  
सूक्ष्म पृथ्वीकायिक लघोधी व्याप्त होवाधी तेओमां लघता प्रकट करवामा  
आवेल छे अने अलघता स्वभावतः प्रकट करवामां आवेल छे,

द्वीप अने समुद्रे लक्षिता होवाधी अर्धी तेमनी व्याप्त्या आपी नथी,  
समुद्रना पाणीनी ने वृद्धि थाय छे तेने वेला कडे छे न'भूद्वीपनी जगति  
आदि रूप वेदिका होय छे विजयादिक द्वारे छे अने ते द्वारेना अवयव  
विशेषरूप तोरणो होय छे, ये भधा पडेलां भताओया सुखन न लघ अने  
अलघरूप छे नारकां ने लघत्व प्रकट करवामां आव्यु छे तेनुं कारणु तेमनी  
लघयुक्तता छे अने तेओ कर्मपुद्गलोधी युक्त होवाधी तेमनामा अलघत्व  
प्रकट करवामां आव्यु छे, अने प्रमाणु नैरयिकावासोमा पणु लघत्व अने

नारकोत्पत्तिभूमयः, तेषां च जीवत्व पृथिवीकायिकाद्यपसया अजीवत्व च प्रसिद्धमेव २० । इत्येष घटुर्भिश्चति दण्डकोऽमिधातव्यः यावत्-वैमानिकानासा इति वा ४३ । कल्पा-सौघर्मादि देवलाक्षा-कल्पविमानावासा-उदेकदेशा एव ४४ । वर्षाणि-भरतादि क्षेत्राणि, चपधरपर्यता-हिमवदादयः ४५ । कूटानि-हिमवत्कूटादोनि, कूटागाराणि तेष्वेष देवमवनानि ४६ । विजया-चक्रवर्तिविजेतव्यानि कच्छादीनि क्षेत्रखण्डानि, राजधान्य-तेषामिव क्षमादिकाः पुर्यः, 'जीवा इति च अजीवा इति च मोक्ष्यते' इति सर्वत्र सम्प्रथमिति ४७ ।

येऽपि पुत्रलघर्मास्तेऽपि तथैवेत्याह—“छाया इ वा” इत्यादि, सूत्रप्रथमक कण्ठ्यम् । नवरम्-छाया-उत्सादीनाम्, आतपाः सूर्यस्य १ । 'दोसिणा' नैरयिकायास भी जीव और अजीवरूप हैं ये नैरयिकायास नैरयिक जीवों की उत्पत्ति का स्थानरूप होते हैं-इनमें जीवत्व पृथिवीकायिक आदिरूप होने के कारण से कहा गया है और अजीवता स्वभावतः इनमें है ही-इस तरह से २४ दण्डक कहना चाहिये यावत् वैमानिक और वैमानिकायास सौघर्मादिकरूप कल्प, और कल्पविमानायास, भरतादिक्षेत्र, हिमवदादि चपधरपर्यत, हिमवत्कूट आदिकूट, उन्हीं में रहे हुए देवमवनारूप कूटागार, चक्रवर्तिविजेतव्य कच्छादिकक्षेत्रखण्डरूपविजय, तथा इनकी क्षेमादिक पुरीरूप राजधानियां ये सब भी जीव और अजीवरूप कहे गये हैं

अब सूत्रकार जो पुत्रलघर्म हैं वे भी जीव और अजीवरूप हैं ऐसा प्रतिपादन करने के निमित्त—“छाया इ वा” इत्यादि सूत्र कहते हैं—

अलवत्व समञ्जं ज्ञेयं । ते नरभावासे । नारक लवोना उत्पत्ति स्थानरूप होय ४, ते नरभावासेना लवत्तर प्रकट करवानुं करण्य ज्ञेये के तेजो पृथ्वी कायिक आदिह्य होय छे अने तेमनामं अलवत्व तो स्थानवत् । रहेतुं च छे आ प्रभावे १४ इडक कहेवा ज्ञेयं 'वैमानिक अने वैमनिक यास सौघर्म' आदि देवलाक्ष्य कल्प, कल्पविमानावासे, भरतादि क्षेत्रा, हिमवतादि चपधर पर्यता, हिमवत्कूट आदि कूटा, तेषां रहेता देवमवनारूप कूटागारा, चक्रवर्ति विजेतव्य कच्छादिक क्षेत्रखण्डरूप विजय तथा तेमनी क्षेमा आदि राजधानीयो, जे सोने पञ्च लव अने अलवह्य कर्मा छे

इसे सूत्रकार पुत्रलघर्मोने पञ्च लव अने अलवह्य प्रतिपादित करना निमित्त "छाया इ वा" इत्यादि सूत्रनुं कथन करे छे—

इति ज्योत्स्नाः—चन्द्रिकाः अन्धकाराः — प्रसिद्धाः २ । अवमानानि—क्षेत्रादीनां प्रमाणानि हस्तयष्ट्यादीनि, उन्मानानि तुलायाः कर्षगुञ्जा सेटिकादीनि ३ । अतियानगृहाणि—नगरादिप्रवेशे यानि गृहाणि उद्यानगृहाणि—तानि, उद्यानरूपाणि गृहाणि प्रतीतानि ४ । अर्बल्लिवाः जनैः प्रपाताश्च देशविशेषाः, एते सर्वे जीवा इति च जीवव्यासत्वात्, तदाधारत्वाद्वा, अजीवा इति च पुद्गलाद्यजीवस्वरूपत्वात् तदाधारत्वाद्वा प्रोच्यते—एव सूत्रपञ्चकेऽपि ' जीवाइ य अजीवाइ य ' इति प्रत्येक द्विके संयोजनीयमिति ।

अथ समयादिकं सकलवस्तु जीवाजीवरूपमेवास्ति तद्विन्नराश्यन्तराभावात्, अत एवाह—' दो रासी ' इत्यादि, —द्वौ राशी प्रज्ञप्तौ—तद्यथा—जीवराशिश्चैव अजीवराशिश्चैव, द्वयमन्तरेण तृतीयराश्यभावादिति ॥ सू० ३८ ॥

वृक्षादिकों की जो छाया है वह, सूर्य का जो आतप है वह, चन्द्रमा की जो चांदनीरूप ज्योत्स्ना है वह, तथा अन्धकार एवं क्षेत्रादिकों का प्रमाण, तोला माषा आदिरूप उन्मान, अतियानगृह—नगरादि के प्रवेश में जो गृह हैं वे, तथा उद्यानगृह—उद्यानरूपगृह, अर्बल्लिवा और जनैः प्रपात ये देशविशेष हैं, ये सब भी जीव और अजीवरूप हैं—जीवों के आधारभूत होने से या जीवों से व्याप्त होने से ये जीवरूप हैं और पुद्गलादि अजीवरूप होने से या अजीव के आधारभूत होने से अजीवरूप हैं ।

समयादिरूप समस्तवस्तु जीवाजीवरूप ही है क्यों कि जीवराशि और अजीव राशि से भिन्न और तीसरी राशि का अभाव है—इसी बात को प्रकट करने के लिये सूत्रकार ने—' दो रासी ' इत्यादि सूत्र कहा है ॥ सू० ३८ ॥

वृक्षादिनी के छाया डोय छे ते, सूर्यने तरडे, अन्द्रमाना प्रकाशरूप ज्योत्स्ना, तथा अन्धकार, क्षेत्रादिकेनां प्रमाण, तोला, माषा आदिरूप उन्मान ( वन्तना माष ), अतियानगृह ( नगरादिना प्रवेश स्थानमा के गृह डोय छे ते ), उद्यानगृह, अर्बल्लिवा अने जनैः प्रपात ( या के देशविशेष छे ), ये अथा एव अने अणुवर्ष छे तेमने एवर्ष कडेवानु कारण अे छे के तेअे एवोथी व्याप्त डोय छे अथवा एवोना अश्रयस्थानरूप डोय छे अने पुद्गलादि अणुवर्ष डोवाथी अथवा अणुवना आधारभूत डोवाथी तेमने अणुवर्ष कडेवामा आवेल छे

समयादिरूप समस्त वस्तु एव अने अणुवर्ष न छे, कारण के एव राशि अने अणुवराशिथी भिन्न अेवी डोय तीए राशिनु अस्तित्व न नथी अे वातने सूत्रकारे " दो रासी " इत्यादि सूत्रे द्वारा प्रकट करी छे. सू. ३८

जीवराशिष्व षट्सुक्तमेवाद् द्विविधाः, तत्र प्रथमं षट्शान्तिव्यनिरूपणाय प्राह-  
 मूलम्—दुविहे वधे पण्णत्ते त जहा-पेजवधे चैव दोसवधे  
 चैव । जीवाणं दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म घथति, त जहा-  
 रागेण चैव दोसेण चैव । जीवाण दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म  
 उदीरंति, त जहा अब्भोषगमियाए चैव वेयणाए उवक्क-  
 मियाए चैव वेयणाए १, एव वेदंति २ । एव निज्जरेति-  
 अब्भोषगमियाए चैव वेयणाए, उवक्कमियाए चैव  
 वेयणाए ३ ॥ सू० ३९ ॥

छाया—द्विविधो बन्धः प्रज्ञप्तस्तथा—प्रेमवधश्चैत्र द्वेषवधश्चैव । मीराः  
 खलु द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पापं कर्म घञ्जन्ति, तद्यथा—रागेण चैव द्वेषेण चैव ।  
 जीवा खलु द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पापं कर्म उदीरयन्ति, तद्यथा—आभ्युपगमिष्या  
 चैव वेदनया, औपकर्मिकया चैव वेदनया १ एव वेदयन्ति २ । एव निर्मरयन्ति  
 आभ्युपगमिष्या चैव वेदनया, औपकर्मिकया चैव वेदनया ३ ॥ सू० ३९ ॥

टीका—‘दुविहे वधे’ इत्यादि । षणो द्विविधाः—प्रेमवन्ध, द्वेषवधश्च,  
 तत्र प्रेम-रागो मायालोभकपायलक्षणः, द्वेषः—क्रोधमान-कपायलक्षणः, उक्तञ्च—  
 “ मायालोभकसाधो, इच्छेयं रागसन्नियं दद ।

कोदो माजो दोसो, इन्वेव समासनिद्धितो ॥ १ ॥ इति ।

पद और मुक्त के भेद से जीवराशि दो प्रकार की है—इनमें जो  
 पद हैं उनके षट्पदरूपण के लिये अथ सूत्रकार कहते हैं—

‘दुविहे वधे पण्णत्ते’ इत्यादि ।

वध दो प्रकार का कहा गया है एक प्रेम-(राग) वध और दूसरा  
 द्वेषवध इनमें माया और लोभकपायरूप जो होता है वह प्रेम (राग)  
 है, और क्रोध एव मानकपाय जो होता है वह द्वेष है । कहा भी है

બદ અને મુક્તના ભેદથી જીવરાશિ બે પ્રકારની છે તેમાંની બે બદ  
 રાશિ છે તેના બંધનરૂપ નિમિત્તે સૂત્રકાર ‘દુવિદ્ વધે પણ્ણત્તે’ ઇત્યાદિ  
 સૂત્રનું કથન કરે છે—

બંધ બે પ્રકારના કહ્યા છે—(૧) પ્રેમ (રાગ) બંધ અને (૨) દ્વેષવધ.  
 માયા અને લોભકપાયને પ્રેમ કહે છે, અને ક્રોધ અને માનકપાયને દ્વેષ કહે

छाया—मायालोभकषायः, इत्येतद् रागसन्निभं द्वन्द्वम् ।

क्रोधो मानो द्वेषः, इत्येवं समास निर्दिष्टः ॥ १ ॥

प्रेमणः—प्रेमलक्षणचित्तविकारकारकमोहनीयकर्मपुद्गलराशेः बन्धः—जीव-  
प्रदेशेषु योगप्रत्ययतः प्रकृतिरूपतया प्रदेशरूपतया च सम्बन्धनम्, तथा कषाय-  
प्रत्ययतः स्थित्यनुभागविशेषापादनं च प्रेमबन्धः । एव द्वेषमोहनीयस्य बन्धो  
द्वेषबन्ध इति, उक्तञ्च—“ जोगापयडिपएस ठिति अणुभागं कसायओ कुणइ ॥ इति

‘ मायालोहकसाओ ’ इत्यादि ।

इस प्रेमरूप मोहनीय कर्मपुद्गल का जो कि चित्त को विकृत करने  
वाला जो बन्ध होना वह प्रेमबन्ध है—मन वचन और कायरूप योगसे  
प्रकृति और प्रदेशबन्ध होता है और कषाय से स्थितिबन्ध और अनु-  
भागबन्ध होता है कर्म पुद्गल जब केवल योगनिमित्त से आत्मा में  
आते हैं—सम्बन्ध को प्राप्त होते हैं—तब वे वहाँ प्रकृति और प्रदेशरूपसे  
परिणमित होकर सम्बद्धित रहते हैं और जब वे कषाय के निमित्त से  
आत्मा में आते हैं—सम्बन्धित होते हैं—तब वे वहाँ स्थिति और अनु-  
भागरूप से परिणमित होकर वहाँ रहते हैं—तात्पर्य कहने का यही है  
कि कर्मपुद्गलों में आत्मा के साथ सम्बद्धित होने की मर्यादा जो  
है तथा मन्द, तीव्र, तीव्रतर, आदि रूप से रस देने की योग्यता इनमें  
आती है वह सब कषाय के निमित्त से ही आती है इस तरह प्रेम का  
बंध—प्रेम लक्षणचित्तविकार कारक मोहनीय कर्मपुद्गलराशीका जो बन्ध

छे. कछु पछु छे के—“ मायालोहकसाओ ” इत्यादि चित्तने विकृत करनारा  
आ प्रेमरूप मोहनीय पुद्गलोंने ने बंध थाय छे तेने प्रेमबंध कहे छे.  
मन, वचन अने कायरूप योग्यी प्रकृति अने प्रदेशबंध थाय छे अने कषा-  
यथी स्थितिबंध अने अनुभागबंध थाय छे कर्मपुद्गलो न्यारे योगने कारखे  
आत्मामा प्रवेश करे छे—आत्मानी साथे संबंध पाये छे, त्यारे तेओ त्यां  
प्रकृति अने प्रदेशरूपे परिणमित थधने संबद्धित रहे छे, अने न्यारे तेओ  
त्यां स्थिति अने अनुभागरूपे परिणुमन पाभीने त्यां रहे छे. आ कथनने  
भावार्थ ओ छे के—कर्मपुद्गलोमा आत्मानी साथे संबद्ध थवानी ने मर्यादा  
पडे छे तथा मंद, तीव्र, तीव्रतर आदिरूपे रस देवानी ने योग्यता तेमनामां  
आवे छे, ते सबणी योग्यता कषायने कारखे न आवे छे. ओ प्रमाणे प्रेम-  
लक्षण चित्तविकारकारक मोहनीय कर्म पुद्गलराशिने ने बंध छे तेने प्रेम-



जीवराशिष्व षट्सुक्तमेशाद् द्विविधः, तत्र प्रथम षड्भानां षष्पनिरूपणाय माह—  
 मूलम्—दुविहे वधे पण्णत्ते त जहा पेजघधे चेष दोसयधे  
 चेष । जीवाणं दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म घघति, त जहा--  
 रागेण चेष दोसेण चेष । जीवाण दोहिं ठाणेहिं पाव कम्म  
 उदीरेत्ति, त जहा अब्भोषगमियाए चेष वेयणाए उवक्क-  
 मियाए चेष वेयणाए १, एव वेदोत्ति २ । एव निज्जेरेत्ति-  
 अब्भोषगमियाए चेष वेयणाए, उवक्कमियाए चेष  
 वेयणाए ३ ॥ सू० ३९ ॥

छाया—द्विविधो बन्धः षडसुस्तपथा-प्रेमबन्धश्चैव द्वेषबन्धश्चैव । जीवाः  
 स्तुलु द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पाप कर्म षष्पन्ति, तद्यथा-रागेण चैव द्वेषेण चैव ।  
 जीवा स्तुलु द्वाभ्यां स्थानाभ्यां पाप कर्म उदीरयन्ति, तद्यथा-आभ्युपगमिक्या  
 चैव वेदनया, औपक्रमिक्या चैव वेदनया १ एव वेदयन्ति २ । एव निर्मूरयन्ति  
 आभ्युपगमिक्या चैव वेदनया, औपक्रमिक्या चैव वेदनया ३ ॥ सू० ३९ ॥

टीका—‘दुविहे वधे’ इत्यादि । बन्धो द्विविधः-प्रेमबन्ध, द्वेषबन्ध,  
 तत्र प्रेम-रागो मायालोभकपापलक्षणः, द्वेषः-क्रोधमान-कपापलक्षणः, उक्तञ्च—  
 “ मायालोभकसाधो, इष्येयं रागसन्धिय दंदं ।

कोहा मायो दोसो, इन्चेव समासनिद्धिदो ॥ १ ॥ इति ।

षट् और सुक्त के श्लोक से जीवराशि दो प्रकार की हैं—इनमें जो  
 षट् हैं उनके षष्पनिरूपण के लिये अब सूत्रकार कहते हैं—

‘दुविहे वधे पण्णत्ते’ इत्यादि ।

षष्प दो प्रकार का कहा गया है एक प्रेम- ( राग ) षष्प और दूसरा  
 द्वेषवत्त इनमें माया और लोभकपापस्वरूप जो होता है यह प्रेम ( राग )  
 है, और क्रोध एव मानकपाप जो होता है यह द्वेष है । कहा भी है

एवम् अने सुकत्ता चेतथी एवराशि धि प्रकारनी छे तेभानी के एव  
 राशि छे तेना ए षष्पनिरूपण निमित्ते सूत्रकार “ दुविहे वधे पण्णत्ते ” इत्यादि  
 सूत्रनु कथन करे छे—

अथ के प्रकारना कथा छे—(१) प्रेम ( राग ) अथ अने (२) द्वेषअथ  
 माया अने लोभकपापने प्रेम कहे छे, अने क्रोध अने मानकपापने द्वेष कहे

उक्तञ्च—“अल्पं वायरमउयं बहुं च रुक्खंच सुकिलं चैव ।

मंदं महव्ययं तिय, सायावहुलंच तं कम्मं ॥ १ ” इति ।

छाया—अल्पं वादरं मृदुकं बहु च रुक्खंच भुक्खंच चैव ।

मन्दं महाव्ययमिति च शाता बहुलं च तत्कर्म ॥ १ ॥

तत्र अल्पं स्थितिमपेक्ष्य, वादरं परिणाममाश्रित्य, मृदुकम् अनुभावापेक्षया, बहु-प्रदेशवहुत्वात्, रुक्खम्—बालुकावत्, मन्दं—लेपमपेक्ष्य, महाव्ययं—सर्वापगमेन । एतदेव दर्शयति—‘जीवाणं’ इत्यादि ।

वह शेषकर्मों के बंध से विलक्षण होने के कारण अबन्ध के जैसा ही कहा गया है जिस कर्मका यह बंध होता है वह कर्म अल्पस्थितिक आदि विशेषणों वाला होता है । कहा भी है—(अल्पं वायर मउयं) इत्यादि ।

यहां जो कर्म को अल्प कहा गया है वह स्थिति की अपेक्षा लेकर कहा गया है तथा वादर जो कहा गया है वह परिणाम की अपेक्षा लेकर कहा गया है मृदुक जो कहा गया है वह अनुभव की अपेक्षा लेकर कहा गया है बहु जो कहा गया है वह प्रदेश बहुता को लेकर कहा गया है रुक्ख जो कहा गया है वह निरस होने की अपेक्षा से बालुका की तरह हो जाने से कहा गया है मन्द जो कहा गया है वह लेप की अपेक्षा लेकर कहा गया है तथा महाव्यय जो कहा गया है वह सम्पूर्णरूप से व्यय हो जाने की अपेक्षा से कहा गया है यही बात सूत्रकार ने “जीवाणं” इत्यादि सूत्र द्वारा प्रदर्शित की

क्षु (लिन प्रकरेण) डोवाने तीधे तेने अण धना जेवे न डडेवामा आण्ये छे जे कर्मने आ षं ध डोय छे ते कर्म अल्पस्थितिक आदि विशेषणवाणुं डोय छे. कथु पथु छे के—“अल्पं वायरमउयं” इत्यादि. अर्धी कर्मने जे अल्प डडेवामा आण्युं छे ते स्थितिनी अपेक्षाजे डडेवामा आण्युं छे, अने तेने जे वादर डडेवामा आण्युं छे ते परिणामनी अपेक्षाजे डडेवामा आण्युं छे. तेने जे मृदुक डडेवामा आण्युं छे ते अनुभवनी अपेक्षाजे डडेवामा आण्युं छे, तेने जे बहु विशेषण लगाइथु छे ते प्रदेशभहुत्तानी अपेक्षाजे लगाइथुं छे, तेने जे रुक्ख डडेवामा आण्युं छे ते रेतीनी जेम नीरस थर्ष जवानी अपेक्षाजे डडेवामा आण्युं छे, तेने जे मन्द डडेवामा आण्युं छे ते लेपनी अपेक्षाजे डडेवामा आण्युं छे, तथा तेने जे महाव्यय डडेवामा आण्युं छे ते सम्पूर्णरूपे तेने व्यय थर्ष जवानी अपेक्षाजे डडेवामा आण्युं छे. अथ वात सूत्रकारे “जीवाणं” इत्यादि सूत्र द्वारा प्रकट करी छे.

छाया—योगेभ्यः प्रकृतिप्रवेशे स्थित्यनुमाग पपायस करोति ॥ प्रेमद्वेष  
संशयार्थां कर्मभ्यामुदयमाहात्म्यां जीवानामशुभकर्मबन्धोभवतीत्याह—'जीवाण'  
इत्यादि ।

अथवा पूर्वभ्रमन्यथा व्याख्याय सम्बन्धान्तरमस्य क्रियते—'दुर्बिहे वषे'  
इत्यादि । बन्धः सामान्येन द्विविधो भवति—प्रमतः द्वेषतश्चेति । सन्नानिद्वेषि  
सूक्ष्मसंपरायपर्यन्तगुणस्थानरतामपेक्षया विज्ञेयः । यातु—उपज्ञान्तमोह-  
क्षीणमोह—सयोगि—केवलिनां भवति स योग प्रत्यय एवाप्तः स बन्धत्वेन न विव-  
सितः । अत्रोऽपि स द्वेषकर्मबन्धविमलत्वाद् अलग्नसदृश एवेति, यस्य हि  
कर्मभोऽसौ बन्धः, तदस्यस्वित्कादिविशेषजमस्ति,

हे वह प्रेमपत्र है तथा द्वेषमोहनीय का जो बंध है वह द्वेषपत्र है । कहा  
भी है—“जोगा पयद्विपसं” इत्यादि ।

यह जीव उदयप्राप्त प्रेमद्वेषरूप कर्मों के द्वारा अशुभकर्मों का पत्र  
करता है । इसीलिये—“जीवाणं दोहिं ठाणेहिं” इत्यादि मंत्र ऐसा  
कहा गया है कि जीव दो स्थानों से पाप कर्मका पत्र किया करता है—  
एक राग से और दूसरे द्वेष से ।

अथवा—यहां पत्रशब्द से यह प्रकट किया गया है कि पत्र दो  
प्रकार का होता है—एक प्रेम से और दूसरे द्वेष से यह सामान्य पत्र  
अनिवृत्तिकरण से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानघाले जीवों की अपेक्षा  
से जानना चाहिये तथा—जो उपज्ञान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगि  
केवलियों के होता है वह योग प्रत्यय ही होता है इसलिये वह पत्ररूप  
से विवक्षित हुआ है यद्यपि योगप्रत्यय पत्र भी पत्ररूप ही है, परन्तु

अथ उच्यते अने देवभोदनीयने जे अथ उ तेने देवपत्र उच्यते उ अथु  
पत्र उ—“जोगा पयद्विपसं” इत्यादि आ एव उदयप्राप्त प्रेमद्वेषरूप कर्मों  
द्वारा अशुभ कर्मिणी अथ उच्यते उ तेथी जे अथु उ उ “जीवाणं दोहिं ठाणेहिं”  
इत्यादि—एव जे स्थानके द्वारा पापकर्मिणी अथ उच्यते उ—जेह राजकी  
अने जीव देवकी

अथवा अर्द्धी अथ उच्यते जे प्रह उच्यते आंयु उ उ अथ जे प्रहारेने  
दोषउ—(१) प्रेमने निमित्ते, (२) द्वेषने निमित्ते आ सामान्य अथ अनिवृत्तिकरणकी  
वधि सूक्ष्मसंपराय पधन्तना गुणस्थानवाणा एवेनी अपेक्षासे समन्वये  
अथजे तथा उपज्ञान्तमोह क्षीणमोह अने सयोगि केवलियोंमें तो ते  
योगप्रत्यय जे दोष उ तेथी तेने अर्द्धी अथउपे ज्ञानवाप्राप्ति आवेत् नथी  
जे हे योगप्रत्ययअथ पत्र अथउपे उ परन्तु ते शेषकर्मिणी अथकी विव

उक्तञ्च—“अल्पं वायरमउयं वहुं च रुक्षं च सुक्लिं चैव ।

मन्दं महव्ययं तिय, सायावहुलं च तं कम्मं ॥ १ ” इति ।

छाया—अल्पं वादरं मृदुकं बहु च रुक्षं च शुक्लं चैव ।

मन्दं महाव्ययमिति च शाता बहुलं च तत्कर्म ॥ १ ॥

तत्र अल्पं स्थितिमपेक्ष्य, वादरं परिणाममाश्रित्य, मृदुकम् अनुमात्रापेक्षया, बहु-प्रदेशवहुत्वात्, रुक्षम्-बालुकावत्, मन्दं-लेपमपेक्ष्य, महाव्ययं-सर्वापगमेन । एतदेव दर्शयति—‘जीवाणं’ इत्यादि ।

वह शेषकर्मों के बंध से विलक्षण होने के कारण अवन्ध के जैसा ही कहा गया है जिस कर्मका यह बंध होता है वह कर्म अल्पस्थितिक आदि विशेषणों वाला होता है । कहा भी है—(अल्पं वायर मउयं) इत्यादि ।

यहां जो कर्म को अल्प कहा गया है वह स्थिति की अपेक्षा लेकर कहा गया है तथा वादर जो कहा गया है वह परिणाम की अपेक्षा लेकर कहा गया है मृदुक जो कहा गया है वह अनुभव की अपेक्षा लेकर कहा गया है बहु जो कहा गया है वह प्रदेश बहुता को लेकर कहा गया है रुक्ष जो कहा गया है वह निरस होने की अपेक्षा से बालुका की तरह हो जाने से कहा गया है मन्द जो कहा गया है वह लेप की अपेक्षा लेकर कहा गया है तथा महाव्यय जो कहा गया है वह सम्पूर्णरूप से व्यय हो जाने की अपेक्षा से कहा गया है यही बात सूत्रकार ने “जीवाणं” इत्यादि सूत्र द्वारा प्रदर्शित की

क्षु ( बिन्न प्रकारने ) डोवाने दीधे तेने अणधना जेवे । कडेवामा आण्ये ।  
 छे. जे कर्मने आ अंध डोय छे ते कर्म अल्पस्थितिक आदि विशेषणवाणुं  
 डोय छे. कळुं पणु छे के—“अल्पं वायरमउयं” इत्यादि. अर्ही कर्मने जे  
 अल्प कडेवामा आण्युं छे ते स्थितिनी अपेक्षाजे कडेवामां आण्युं छे, अने  
 तेने जे वादर कडेवामां आण्युं छे ते परिणामनी अपेक्षाजे कडेवामा आण्युं  
 छे. तेने जे मृदुक कडेवामा आण्युं छे ते अनुभवनी अपेक्षाजे कडेवामा  
 आण्यु छे, तेने जे बहु विशेषण लगाड्यु छे ते प्रदेशबहुत्तानी अपेक्षाजे  
 लगाड्युं छे, तेने जे रुक्ष कडेवामा आण्युं छे ते रतीनी जेम नीरस थछ  
 जवानी अपेक्षाजे कडेवामा आण्यु छे, तेने जे मन्द कडेवामा आण्युं छे  
 ते लेपनी अपेक्षाजे कडेवामा आण्यु छे, तथा तेने जे महाव्यय कडेवामां  
 आण्युं छे ते संपूर्णरूपे तेने व्यय थछ जवानी अपेक्षाजे कडेवामा आण्युं  
 छे. अज वात सूत्रकारे “जीवाणं” इत्यादि सूत्र द्वारा प्रकट करी छे.

મીમા-પ્રાણિનઃ જમિતિ ચાકવાત્કુરે દ્વામ્યાં સ્થાનામ્યાં-કારણામ્યાં પાપમ્-અશુભમ્-અશુભમનવિવ-ષ્ટતરાદ્ અશુભ વષ્ણન્તિ સ્પષ્ટાષ્ટત્રસ્યાં કુર્ષન્તિ ન સ્વજુષ્ઠરહિત દ્વિસમયસ્થિતિક શુભ વષ્ણન્તિ તસ્ય કેવલયોગમત્યયસ્વાધિતિ । કેન કારણદ્વયેન ? इत्याह-‘ रागेण ’ इत्यादि, रागेण द्वेपेय च क्वापैरित्यर्थ । ननु ष-पहेत्वस्तु मिथ्यात्वाविरतिक्रपाययोगाः प्रोन्यन्ते तरुणमत्र केवल कपाया एयोक्ताः ? इति चेदुच्यते-कपायाणां पापकर्मबन्ध प्रति प्राधान्यरूपाप नार्थम् । प्राधान्यं च तेषां स्थित्यनुमागमकर्ष कारणत्वादिति । यद्वा तेषाम

है-इस तरह जीव दो स्थानों से अशुभमव का कारण होने से अशुभ कर्म का ष-प करते हैं-उन्हें स्पष्ट आदि अवस्थाघाला करते हैं-अनुष-प रहित उन्हें नहीं करते हैं अर्थात् द्विसमय की स्थितिवाले शुभ कर्म का षे ष-प नहीं करते हैं क्योंकि जो कर्म दो समय की स्थितिवाला होता है उस कर्म का ष-प केवल योगनिमित्तक ही होता है जीवों के अशुभ कर्मों के ष-प के कारण राग और द्वेष हैं । यही पात ( रागेण चेष दोसेण चेष ) इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है यहा ऐसी आशंका हो सकती है कि कर्मष-प के कारण तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाप और योग कहे गये हैं फिर यहां केवल कपायों को ही कर्मष-प का कारण क्यों कहा है तो इसका समाधान ऐसा है कि यहा जो कपायों को ही कर्मष-प का कारण कहा गया है वह कर्मष-प में इनकी प्रधानता प्रकट करने के लिये कहा गया है । क्योंकि कर्मष-प होने पर भी जो कर्मों

आ शीते एव वे स्थानोवडे अशुभभवना कारवृत्त अशुभभवना वध करे छे, तेमने ( कर्म पुत्रवेने ) स्पष्ट आदि अवस्थाघाला करे छे-तेमने अनुष-प इद्वि कर्ता नथी ज्ये-वे के वे समयनी स्थितिवाले शुभकर्मोने वध तेजो कर्ता नथी, कारवृ के वे समयनी स्थितिवाले के कर्म कोष छे, ते कर्मो वध केवण योगनिमित्तक च कोष छे एवोना अशुभकर्मोना वधनु कारवृ राज जने द्वेष च जलाम छे ज्ये वात सूत्रकारे ‘ रागेण चेष दोसेण चेष ’ आ सूत्रपाठ द्वारा प्रकट करी छे जहाँ केछने कदाच ज्येवी शक भाव के कर्मवधना कारवृ तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाप जने योग कर्ता छे, छतां जहाँ मात्र कपायोने च शा भाडे कर्मवधना कारवृत्त कहेवामा आन्वा छे ? आ शकानु नीचे प्रमाद्ये समाधान करी शक-अर्थात् कर्मो तेमनी प्रधानता प्रकट करवा निमित्तके च जहाँ तेमने ( कपायोने ) कर्मवधना कारवृ रूप जतावनामा आन्वा छे, कारवृ के कर्मवध भाव त्पारे कर्मोनी स्थिति

त्यन्तमनर्थकारित्वात् ।

आह च—“ को दुःखं प्राप्नुयाल्लोके, कस्य सौख्यैश्च विस्मयः ।

को वा न लभते मोक्षं, रागद्वेषं न चेद् भवेत् ॥१॥ इति ।

यद्वा—द्विस्थानकानुरोधाद् बन्धहेतुदेशग्राहकमेवेदं सूत्रमिति न दोषः ।

पूर्वोक्तस्थानद्वयेन बद्धस्य च पापकर्मणो यथोदीरणवेदन—निर्जरणानि प्राणिनः कुर्वन्ति तथा सूत्रत्रयेणाह—‘जीवाणं’ इत्यादि । द्वाभ्यां स्थानाभ्यां जीवा पापं कर्म

में स्थिति और अनुभाग की प्रकर्षता होती है उसके प्रति कारण कषायें होती हैं—अथवा ये कषायें अत्यन्त अनर्थकारी हैं इस बात को प्रकट करने के लिये यहां कषायों को कहा गया है ।

सो ही कहा है—“ को दुःखं प्राप्नुयाल्लोके ” इत्यादि

संसार में कौन दुःख पा सकता है, और सुखमिलने में कौन सा आश्चर्य है तथा कौन मोक्ष को नहीं पा सकता है जिसके अगर रागद्वेष रूप कषाय न हो ॥ १ ॥

अथवा द्विस्थान के अनुरोध से यह सूत्र बन्धहेतुओं में से एक देशबन्ध के हेतुओं का ग्राहक है । अतः इस प्रकार के कथन में कोई आपत्ति नहीं है अब सूत्रकार यह कहते हैं कि पूर्वोक्त दो स्थान से बद्धपापकर्म की जीव जिस तरह से उदीरणा करते हैं, उनका वेदन करते हैं, और उनकी निर्जरा करते हैं वे कहते हैं कि जीव दो स्थानों

अने अनुभागनी प्रकर्षताना कारणरूप तो कषायो न होय छे अथवा ते कषायो वृथा न अनर्थकारी छे अे वातने प्रकट करवा भाटे अर्द्धी कर्मभंधना कारणरूप कषायोने अताववामां आवेल छे. अे वात नीचेनी गाथा द्वारा व्यक्त थाय छे—“ को दुख प्राप्नुयाल्लोके ’ इत्यादि—

जे एवमां रागद्वेषेना अलाव होय छे ते एवने कोई दुःख लोगवहुं पडतुं नथी, अेवा एवने सुख प्राप्त थाय तो तेमां आश्चर्यं शुं छे ? अने अेवा एव मोक्ष पण प्राप्त करी शके छे. ॥ १ ॥

अथवा द्विस्थानना अनुरोधनी अपेक्षाअे आ सूत्र अधहेतुअेमांता अेक देशभंधना हेतुअे ( कारणे ) तुं आडक छे. तेथी आ प्रकारना कथनमां कोई दोष नथी.

इसे सूत्रकार अे प्रकट करे छे के पूर्वोक्त जे स्थानो द्वारा बद्ध पाप-कर्मनी एव केवी रीते उदीरणा करे छे, केवी रीते तेमनुं वेदन करे छे, अने केवी रीते तेमनी निर्जरा करे छे—एव जे स्थानोवडे पापकर्मनी उदीरणा करे

જીવા-પ્રાણિનાઃ પમિતિ ઘાસપાલકારં કામ્યાં સ્યાનામ્યાં-કારણામ્યાં  
 પાપમ્-અશુભમ્-મદ્યમમવનિવચનત્વાદ્ અશુભ પન્નન્તિ સ્ટાષવસ્યાં કુર્ષન્તિ ન  
 સ્વનુવન્ધરહિત દ્વિસમયમ્પિવર્તિકં છુમ પન્નન્તિ તસ્ય કેવલયોગમત્યપ્ત્નાદિતિ ।  
 કેન કારણદ્વયેન ? इत्याह-‘ रागेण ’ इत्यादि, रागेण द्वेषेण च कपायैरित्यर्थः ।  
 ननु वामदेवस्तु मिथ्यात्वविरतिकवाययोगा प्रोच्यन्ते तत्कथमत्र केवलं  
 कपाया एवाक्ताः ? इति चेदुच्यते-कपायाणां पापकर्मवचनं प्रति प्राधान्यरूपाय  
 नार्थम् । प्राधान्यं च तेषां स्थित्यनुभागभर्तृ कर्णत्वादिति । यद्वा तेषाम

है-इस तरह जीव दो स्थानों से अशुभमय का कारण होने से अशुभ  
 कर्म का बंध करते हैं-उन्हें स्पृष्ट आदि अवस्थावाला करते हैं-अनुबन्ध  
 रहित उन्हें नहीं करते हैं अर्थात् द्विसमय की स्थितिवाले शुभ कर्म का  
 बंध नहीं करते हैं क्योंकि जो कर्म दो समय की स्थितिवाला होता  
 है उस कर्म का बंध केवल योगनिमित्तक ही होता है जीवों के अशुभ  
 कर्मों के बंध के कारण राग और द्वेष हैं । यही बात ( रागेण चैव  
 दोसेण चैव ) इस सूत्रपाठ द्वारा प्रकट की गई है यहाँ ऐसी आशंका हो  
 सकती है कि कर्मबन्ध के कारण तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय  
 और योग कहे गये हैं फिर यहाँ केवल कपायों को ही कर्मबन्ध का कारण  
 क्यों कहा है तो इसका समाधान ऐसा है कि यहाँ जो कपायों को ही  
 कर्मबन्ध का कारण कहा गया है वह कर्मबन्ध में इनकी प्रधानता प्रकट  
 करने के लिये कहा गया है । क्योंकि कि कर्मबन्ध होने पर भी जो कर्मों

आ शीते एव वे स्थानोवटे अशुभभवता कारवृत्तं अशुभकर्मिनाः बन्ध  
 करे छे, तेभने ( कर्मपुत्रोने ) स्पृष्ट आदि अवस्थावाला करे छे-तेभने  
 अनुबन्ध रहित करता नहीं. ज्येष्ठे के वे समझनी स्थितिवाले शुभकर्मिना  
 बन्ध तेजो करता नहीं, कारवृ के वे समझनी स्थितिवाले के कर्म होता छे,  
 ते कर्मिना बन्ध द्वेषेण योत्रनिमित्तक च होता छे. एवोना अशुभकर्मिना बन्धनुं  
 कारवृ राज अने द्वेष च उत्पाद्य छे ज्येष्ठ वात सूत्रकारे ‘ रागेण चैव दोसेण  
 चैव ’ आ सूत्रपाठ द्वारा प्रकट करी छे. जहाँ कहने कहाय ज्येष्ठी यत्र वाच  
 के कर्मबन्धना कारवृ तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कपाय अने योत्र कहा  
 छे, छत्यां जहाँ मात्र कथापोने च या भाटे कर्मबन्धना कारवृत्तं कहेवामा  
 आन्वा छे । आ यकानु नीचे प्रभावे समाधान करी यथाच-उभयभवां तेभनी  
 प्रधानता प्रकट कस्या निमित्तके ज्येष्ठी तेभने ( कथापोने ) कर्मबन्धना कारवृ  
 बन्ध अवस्थावामा आन्वा छे, कारवृ के कर्मबन्ध वाच त्वारे कर्मिनी स्थिति

पूर्वोक्तप्रकारेण स्थानद्वयेनैव जीवाः पापं कर्म वेदयन्ति-उदीरितं सद् विपाक-  
तोऽनुभवन्ति । एवम् अनेनैव प्रकारेण च जीवाः पापं कर्म निर्जरयन्ति-आत्म-  
प्रदेशेभ्यः शटयन्ति-पृथक्कुर्वतीत्यर्थः ॥ सू० ३९ ॥

कर्मणां देशतः सर्वथा वा निर्जरणे जीवरय भवान्तरे सिद्धिगतौ वा गच्छतः  
शरीरान्निर्याणं भवतीति निर्याणवक्तव्यतां सूत्रपञ्चकेनाह—

मूलम्—दोहिं ठाणेहिं आया सरीरं फुसित्ताणं णिज्जाइ,  
तंजहा-देशेण वि आया सरीरं फुसित्ताणं णिज्जाइ, सव्वेणवि  
आया सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाइ १। एवं फुरित्ता णं २। एवं  
फुडित्ता णं ३। एवं संवट्टइत्ता णं ४। एवं निव्वट्टइत्ताणं ५ ॥ सू० ॥ ४०

छाया—द्व्याभ्यां स्थानाभ्यामात्मा शरीरं स्पृष्ट्वा खलु निर्याति, तद्यथा-  
देशेनापि-आत्मा शरीरं स्पृष्ट्वा खलु निर्याति, सर्वेणापि-आत्मा शरीरं स्पृष्ट्वा  
खलु निर्याति १। एवं स्फोरयित्वा खलु ० २। एवं स्फुटित्वा खलु ० ३। एवं संवर्त्य  
खलु ० ४। एवं निवर्त्य खलु ० ५ ॥ सू० ४० ॥

मिकी वेदना जन्य उदीरणा है इसी प्रकार से जीव इन्हीं दो स्थानों द्वारा  
पापकर्म का वेदन करते हैं-उदीरणा कर्म का विपाकनः फल से अनुभव  
करते हैं । इसी प्रकार से जीव पापकर्म की निर्जरा करते हैं-आत्मप्रदेशों  
से उन्हें पृथक् करते हैं ॥ सू ३९ ॥

जीव के कर्मों की जब देशतः अथवा सर्वतः निर्जरा होती है तब  
वह भवान्तर में या इसी भव में सिद्धिगति में प्राप्त हो जाता है  
सिद्धिगति में प्राप्त होने समय इसका गृहीत शरीर से निर्याण-निक-  
लना होता है इसी लिये अब सूत्रकार निर्याण संबंधी वक्तव्यता पांच

उपरोक्त ये स्थानों द्वारा ७ पापकर्मोंनु वेदन करे छे उदीरित कर्मना विपाक  
स्वप्न क्षणों अनुभव करे छे ७ प्रमाणे ७ व ते ये स्थानों द्वारा ७  
पापकर्मनी निर्जरा करे छे-आत्मप्रदेशोथी तेमने अलग करी नाणे छे सू ३९

७ वना कर्मोनी न्यारे देशतः ( अंशतः ) अथवा सर्वतः निर्जरा थाय  
छे, त्यारे लवान्तरमा अथवा ७ लवमा सिद्धिगतिने प्राप्त करे छे सिद्धि  
गतिने प्राप्त करती वपते तेनु गृहीत शरीरमाथी निर्याण-पडार निकलवानु  
थाय छे. तेथी सूत्रकार डवे पाय सूत्रों द्वारा निर्याण विषयक वक्तव्यता  
प्रकट करे छे-“ दोहिं ठाणेहिं आया सरीर ” छत्यादि—



ઉદીરણ-અમાતાશ્વર ઈવોદ્યાનલિકાયાં પ્રવેશયન્તિ । તદ્વેન સ્યાનદ્યય દર્શયતિ-  
 'મમોત્તમમિયા' રૂપાદિ, આમ્યુપગમિત્તવા-અમ્યુપગમેન-સ્વીકરણેન નિર્વૃષ્ટા,  
 અમ્યુપગમે મનાથા-આમ્યુપગમિકી સ્વેચ્છયા સ્વીકૃત્વેત્યર્થઃ, તથા પ્રમજ્જ્યા સ્વીકરણેન  
 પ્રમજ્જ્યમ્મિશ્ચયન કેશલુચ્છનાતાપનાદિરૂપયા વેદનયા-પીડયા । તથા-ઔપક્રમિકી  
 વયા-ઉપક્રમેણ કર્મોદીરણકરણેન નિર્વૃષ્ટા, કર્મોદીરણકારણે મયા વા-ઔપક્રમિકી  
 -સ્વપમુદય માતા ઉવરાતિસારાદિજ-યા, તથા વેદનયા । 'એવ' મિત્તિ એવમ્-

સે પાપકર્મકી ઉદીરણા કરતે હૈ કર્મ કે ઉદય મેં આને કો અઘસર તો  
 નહીં હૈ પરન્તુ વસે જયર્દસ્તી ઉદયાલિકા મેં છાના હસકાનામ ઉદીરણા  
 હૈ । ઉદીરણા કરને કે ઘે વો સ્યાન યે હૈ-એક આમ્યુપગમિકી વેદના  
 ધૌર દ્વસરી ઔપક્રમિકી વેદના, આમ્યુપગમિકીવેદના ઘહ હૈ જો સ્વેચ્છા  
 સે સ્વીકૃત્ત કી જાતી હૈ એસે પ્રમજ્જ્યા કા સ્વીકાર કરના, પ્રમજ્જ્ય કા  
 પાઠના, મૂમિ પર ઘાયન કરના, કેશોં કા લુચ્છન કરના ઔર આતાપના  
 આદિ છેના હન સપ કે કરને પર જીયોં વો વેદના કા અનુભવ તો હોતા  
 હૈ પર હસ વેદના કો શાન્તિમાથ સે સહન કરને સે કર્મોં કી ઉદીરણા  
 હોતી હૈ । મતાઃ હસ તરહ કી ક્રિયાઓં સે જન્ય વેદના સે જો કર્મોં કી  
 ઉદીરણા હોતી હૈ ઘહ આમ્યુપગમિકી વેદના જન્ય ઉદીરણા હૈ તથા કર્મોં  
 કો ઉદીરણા કરણ સે જો નિર્વૃષ્ટા હોતી હૈ અથવા કર્મોંદીરણકારણ કે  
 હાને પર જો હોતી હૈ ઘહ ઔપક્રમિકી વેદના હૈ એસે ઉવરાતિસારાદિ  
 જન્ય વેદના હસ વેદના સે જો કર્મોં કી ઉદીરણા હોતી હૈ ઘહ ઔપક્ર

ઉ કમને ઉદયમાં આવવાને અવશ્ય ન હોય તે પણ જનર્દસ્તીથી તેને  
 ઉદ્યાવત્તિકામાં લાવવું તેનું નામ ઉદીરણા છે ઉદીરણા કરવાના તે જે શ્યાનો  
 નીચે પ્રમાણે છે-(૧) આક્રુપત્રમિકી વેદના અને (૨) ઔપક્રમિકી વેદના  
 જે વેદનાને સ્વેચ્છાએ સ્વીકાર કરવામાં આવે છે તે વેદનાનું નામ આક્રુપ  
 મિકી વેદના છે જેમકે પ્રમજ્જ્યા અઝીકાર કરવી, પ્રમજ્જ્યનું પાઠન કરવું  
 મૂમિશર ઘયન કરવું હોય કરવો આતાપના લેવી વગેરે આ જ્ઞાનું સેવન  
 કરવાથી એવાને વેદનાને અનુભવ થાય છે પરન્તુ તે વેદનાને શાન્તિલાભપૂર્વક  
 સહન કરવાથી કર્મોંની ઉદીરણા થાય છે આ પ્રકારની ક્રિયાઓથી જન્ય વેદ  
 નાથી કર્મોંની જે ઉદીરણા થાય છે, તે આક્રુપત્રમિકી વેદનાજન્ય ઉદીરણા  
 કહેવાય છે કર્મોંની ઉદીરણાકરણ દ્વારા જે નિવૃત્તિ થાય છે અથવા કર્મોં  
 ડીરણાકરણ ઉત્તમવધથી જે વેદના અનુભવથી પડે છે તેને ઔપક્રમિકી વેદના  
 કહે છે જેમકે અવશિ જન્યવેદના, તે પ્રકારની વેદના પડે કર્મોંની જે ઉદી  
 રણા થાય છે તેને ઔપક્રમિકી વેદનાજન્ય ઉદીરણા કહે છે જેજ પ્રમાણે એવ

पूर्वोक्तप्रकारेण स्थानद्वयेनैव जीवाः पापं कर्म वेदयन्ति-उदीरितं सद् विपाक-  
तोऽनुभवन्ति । एवम् अनेनैव प्रकारेण च जीवाः पापं कर्म निर्जरयन्ति-आत्म-  
प्रदेशेभ्यः शटयन्ति-पृथक्कुर्वतीत्यर्थः ॥ सू० ३९ ॥

कर्मणां देशतः सर्वथा वा निर्जरणे जीवस्य भवान्तरे सिद्धिगतौ वा गच्छतः  
शरीरान्निर्याणं भवतीति निर्याणवक्तव्यतां सूत्रपञ्चकेनाह—

मूलम्—दोहिं ठाणेहिं आया सरीरं फुसित्ताणं णिज्जाइ,  
तंजहा—देशेण वि आया सरीरं फुसित्ताणं णिज्जाइ, सव्वेणवि  
आया सरीरं फुसित्ता णं णिज्जाइ १। एवं फुरित्ता णं २। एवं  
फुडित्ता णं ३। एवं संवट्टइत्ता णं ४। एवं निव्वट्टइत्ताणं ५ ॥ सू० ४० ॥

छाया—द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्मा शरीरं स्पृष्ट्वा खलु निर्याति, तद्यथा—  
देशेनापि-आत्मा शरीरं स्पृष्ट्वा खलु निर्याति, सर्वेणापि-आत्मा शरीरं स्पृष्ट्वा  
खलु निर्याति १। एवं स्फोरयित्वा खलु ० २। एवं स्फुटित्वा खलु ० ३। एवं संवर्त्य  
खलु ० ४। एवं निवर्त्य खलु ० ५ ॥ सू० ४० ॥

मिकी वेदना जन्य उदीरणा है इसी प्रकार से जीव इन्हीं दो स्थानों द्वारा  
पापकर्म का वेदन करते हैं—उदीरणा कर्म का विपाकनः फल से अनुभव  
करते हैं । इसी प्रकार से जीव पापकर्म की निर्जरा करते हैं—आत्मप्रदेशों  
से उन्हें पृथक् करते हैं ॥ सू ३९ ॥

जीव के कर्मों की जब देशतः अथवा सर्वतः निर्जरा होती है तब  
वह भवान्तर में या इसी भव में सिद्धिगति में प्राप्त हो जाता है  
सिद्धिगति में प्राप्त होने समय इसका गृहीत शरीर से निर्याण-निक-  
लना होता है इसी लिये अब सूत्रकार निर्याण संबंधी वक्तव्यता पांच

उपरोक्त दो स्थानों द्वारा ७ पापकर्मोंनु वेदन करे छे उदीरित कर्मना विपाक  
स्वप्न क्षणो अनुभव करे छे ७ प्रमाणे ७ व ते दो स्थानों द्वारा ७  
पापकर्मोंनी निर्जरा करे छे—आत्मप्रदेशोथी तेमने अलग करी नाजे छे सू ३६

७वना कर्मोंनी न्यारे देशत ( अशत ) अथवा सर्वतः निर्जरा थाय  
छे, त्यारे लवान्तरमां अथवा ७ लवमा सिद्धगतिने प्राप्त करे छे सिद्धि  
गतिने प्राप्त करती वभते तेनुं गृहीत शरीरमाथी निर्याण-महार निकलवानुं  
थाय छे, तेथी सूत्रकार डवे पांच सूत्रों द्वारा निर्याण विषयक वक्तव्यता  
प्रकट करे छे—“ दोहिं ठाणेहिं आया सरीर ” ध्याहि—

ટીકા—‘ દોહિં ’ इत्यादि ।

દ્રામ્યાં પ્રકારામ્યામાત્મા-ઝીવઃ શરીરં-દેહ સ્પૃષ્ટા નિર્યાતિ-મરણકાલે શરીરાન્નિસ્સરતિ, તદેવાહ-દેશેનાપિ સર્વેણાપિ ચ । તપ્ર દેશેન-કૃતિપયપદેશાના મિલ્લિકાગત્યા ષહિઃ ક્ષેપણેન જીવઃ શરીરતો નિસ્સરતિ । યથેલ્લિકા ક્ષીવશિષ્ટેપઃ સ્વસ્થાપ્રવાદૌ પૂર્વમપ્રે સંસ્થાપ્ય પશ્ચાદન્યપાદૌ તત્ ઉત્થાપ્યાન્યપ્ર ગચ્છતિ, તથોત્સાદસ્થાન ગચ્છન્ ઝીવઃ કૃતિપયાનાત્મપદેશાન્ શરીરાદ્ષહિઃ પ્રસિપ્ય નિસ્સરતીતિ માઘઃ । સર્વેણ સર્વાત્મના કન્દુકગત્યા સર્વપદેશાનાં યુગપત્ ષહિ નિસ્સારણેન, યથા કન્દુકઃ સર્વાત્મનોત્પતતિ તથોત્સાદસ્થાન ગચ્છન્ ક્ષીવોઽપિ સર્વાન્ સ્થાન

સૂત્રો દ્વારા પ્રકટ કરતે હૈ—‘ દોહિં ઠાળેહિં આયા સરીર ’ इत्यादि ।

દો પ્રકાર સે જીવ દેહ કા સ્પર્શ કરકે મરણકાલ મેં શરીર સે પાહર નિકલજાતા હૈ-વે દો પ્રકાર યે હૈ-एक एकदेश और दूसरा सर्व देश जीव जय देश से मरणकाल में शरीर से बाहर निकलता है तप वह कितने आत्मप्रदेशों को इलिका-(कृमि विशेष) गति से उन्हें बाहर निकलता है-जिस प्रकार इलिका अपने आगे के पगों को पहिले आगे जमालेती है और बाद में वह अन्य पगों को उठाकर चलती है, वसी प्रकार उत्पाद स्थान को जाने की तैयारी वाला जीव पहिले अपने थोड़े से आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर निकाल देता है और फिर वह समस्त आत्मप्रदेशों के साथ बाहर निकल जाता है और जब सर्वदेश से मरणकाल में आत्मप्रदेशोंको बाहर निकालता है-तप वह कन्दुकगति की तरह अपने प्रदेशों को युगपत् शरीर से बाहर निकाल देता है-अर्थात् कन्दुक जैसे सर्वात्मना उछलता है उसी तरह से उत्पाद

બે પ્રકારે એવે દેહને સ્પર્શ કરીને મરણકાલે શરીરમાંથી બહાર નીકળી જાય છે તે બે પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે- (૧) એક દેશ અને (૨) સર્વદેશ. એ પ્રકારે દેશદ્વારા શરીરમાંથી બહાર નીકળે છે, ત્યારે તે કેટલાક આત્મ પ્રદેશને ઇલિકા (કૃમિવિશેષ) ગતિથી બહાર કાઢે છે જેમ ઇલિકા (કૃમિ) પીતના આગળ પગોને પહેલાં જમીન સાથે દુબળાથી જમાવી લે છે અને ત્યારબાદ અથ પગોને ઉઠાવીને ચાલે છે એજ પ્રમાણે ઉત્પાદ સ્થાન તરફ જમાવી તૈયારીવાળો એવ પહેલાં પીતાના યે કા આત્મપ્રદેશોને શરીરની બહાર કાઢી લે છે અને ત્યારબાદ તે સમસ્ત આત્મપ્રદેશોની સાથે બહાર નીકળી જાય છે અને ત્યારે તે મરણકાલે સર્વદેશથી આત્મપ્રદેશોને બહાર કાઢે છે ત્યારે તે કન્દુકની (દડાની) ગતિની જેમ પીતના પ્રદેશોને એક સાથે શરીરમાંથી બહાર કાઢે છે એટલે કે જેમ કન્દુક સર્વાત્મના (આજે આજે) ઉછળે છે, એજ પ્રમાણે

प्रदेशान् समकालं निस्सारयतीति भावः यद्वा-देशेनाऽपि-देशतोऽपि, अपिशब्देन सर्वेणापीत्यर्थः. आत्मा शरीरं-शरीरैरुद्देशं पादादिकं स्पृष्ट्वाऽवयवान्तरेभ्यः प्रदेशसंहारान्निर्याति, सच संसारी जीव, सर्वेणाऽपि-सर्वतयाऽपि, अपि शब्देन देशेनापीत्यर्थः, सर्वमपि शरीरं स्पृष्ट्वा निर्याति, सच सिद्धजीवः । वक्ष्यतेच—

“ पापणिज्जाणा णिरएसु ‘उचवज्जंति’ इत्यादि यावत् “ सव्वंगणिज्जाणा सिद्धेसु ” इति । छाया-पादनिर्याणा निर्येप्रन्पद्यन्ते, “ सर्वाङ्ग निर्याणाः सिद्धेषु ” १।

स्थान को जाता हुआ जीव भी एक साथ ही आत्मप्रदेशों को शरीर से बाहर निकाल देता है ।

अथवा-देश से भी और सर्वरूप से भी आत्मा शरीर के एक देशरूप चरणादिकों का स्पर्श करके अवयवान्तरों ( अन्य अवयवों से ) से प्रदेशों का संहार करके शरीर से बाहर निकल जाता है-संहारशब्द का अर्थ यहां संकोच करना है ऐसा वह संसारी जीव है । सर्वरूप से भी समस्तशरीर को स्पर्श कर आत्मा उससे बाहर निकल जाता है ऐसा वह सिद्धजीव है । “ पापणिज्जाणा णिरएसु उचवज्जंति ” यावत् “ सव्वंगणिज्जाणा सिद्धेसु ” ऐसा स्वयं जाल्पकार आगे कहेंगे, जो जीव चरणनिर्याणवाले (पगकी तरफसे जीवको निकालनेवाले) होते हैं वे जीव नैरग्रिकों में उत्पन्न होते हैं और जो सर्वाङ्गनिर्याणवाले होते हैं वे सिद्धों में उत्पन्न होते हैं ।

उत्पादस्थाने जतो आत्मा पणु जेक साथे ज आत्मप्रदेशाने शरीरमाथी भंडार काढी दे छे

अथवा—देशतः पणु अने सर्वतः पणु आत्मा शरीरमाथी जेक देशरूप यरणादिकेने स्पर्श करीने अवयवान्तरे द्वारा ( अन्य अवयवों द्वारा ) प्रदेशाने भंडार करीने शरीरमाथी भंडार नीकणी जय छे. अर्द्धी भंडार करवे जेटले स डोअवुं अर्थ ग्रहण करवाने छे. जेवे ते सर्वरूपे स सारीजव छे समस्त शरीरने स्पर्श करीने आत्मा शरीरमाथी भंडार नीकणी जय छे अने देशरूपे पणु समस्त शरीरने स्पर्श करीने आत्मा शरीरमाथी भंडार नीकणी जय छे, जेवे ते सिद्धजव छे “ पापणिज्जाणा णिरएसु उचवज्जंति ” यावत् “ सव्वंगणिज्जाणा सिद्धेसु ” जेवु शास्त्रकार पोते ज आगण प्रतिपादन करशे जे जेवे यरणनिर्याणवाणा (पग तरफथी जवने भंडार काढवावाण) होय छे, तेजो नारकोमा उत्पन्न थाय छे अने जे जेवे सर्वाङ्गनिर्याणवाणा होय छे,

आत्मना शरीरे स्पृष्टे मति शरीरस्य स्फुरणं भवतीत्यत आह—'एष' मित्यादि, एवं—पूर्वप्रकारेणैवास्याप्यालापकं पठनीयः, तत्र देशेनापि क्रियञ्जित्वात्मप्रदेशैरिच्छिकागतिकाले, सर्वेणापि सर्वैरप्यात्मप्रदेशैः कन्दुकगतिकाले शरीरस्फोरयित्वा—सस्पन्दं कृत्वा निपाति । अथवा शरीरं देशेन—देशतः शरीरैकदेशमित्यर्थः पादादि निर्माणकाले स्फोरयित्वा, सर्वेण—सर्वतः सर्वं शरीरं सर्वाङ्गनिर्माणमाप्तस्य इत्यर्थः २। स्फोरणाच्च सात्मकत्वं स्फुटं भवतीत्याह—'एष'—मित्यादि, एवं—तथैव देशेन—आत्मैकदेशेन शरीरं स्फोटयित्वा सचेतनतया स्फुरणच्छिन्न इच्छिकागती स्फुटं कृत्वा, सर्वेण सर्वात्मना कन्दुकगती स्फुटं कृत्वति । यद्वा—शरीरं देशेन—देशतः सात्मकतया पादादिना निर्माणकाले स्फुटं कृत्वा, सर्वेण—सर्वतः—सर्वाङ्गनिर्माणकाले इति । अथवा—स्फोटयित्वा—चिच्छीर्णं कृत्वा, तत्र देशेन—अस्यापि विघातेन, सर्वेण—सर्वैश्चरणेन दीपवत् विपुलतावच्च ३। शरीर सात्मकतया स्फुटीकृत्वा कश्चित्तत्त्वसर्वधनमपि करोतीत्याह—'एष' मित्यादि, एवं—तथैव संवर्त्यं सक्रोच्य शरीरं देशेन—इच्छिकागती शरीरस्थितप्रदेशैः, सर्वेण—सर्वात्मना कन्दुकगती सर्वात्मप्रदेशानां शरीरस्थितत्वाभिर्यातीति । यद्वा—शरीरम्—उपचाराद् दृष्टं योगादृष्टपुरुषवत् शरीरिणमित्यर्थः तत्र देशेन देशतः सर्वधनं त्रियमाप्तस्य सत्तारिणीयस्य पादादिगतजीवप्रदेशसंहारात् सर्वेण—सर्वतस्तु निर्वापं गच्छत प्राणिनः । अथवा—शरीर देशेन—हस्ताद्येकदेशसक्रोचनेन सवर्त्यं सर्वेण—शरीरसक्रोचकपिपीलिकादि जीवविशेषवत् सर्वशरीरसक्रोचनेन सपत्येति ४ । आत्मनश्च सर्वधनं कृत्वा शरीरस्य निवर्धनं करोतीत्याह—'एष' मित्यादि, एष—पूर्वोक्तप्रकारेण

आत्मा द्वारा शरीर के स्पृष्ट होने पर शरीर का स्फुरण होता है इसी बात को अथ सूत्रकार कहते हैं—इस सम्पन्न में आलाप पूर्वोक्त रूप से ही कहना चाहिये—अर्थात् इमका गति की तरह कितनेक आत्मप्रदेशों को स्पन्दित करके जीव शरीर से बाहर निकलना है तथा कन्दुकगति की तरह युगपत् समस्त आत्मप्रदेशों को स्पन्दित करके यह शरीर से बाहर निकलना है इसी तरह से एकदेश और सबदेश की

तेजो सिद्धिर्मा उत्पन्न माय उ आत्मा द्वारा शरीरने स्पृष्ट कशायां शरीरनुं स्फुरण माय उ जेव वातने दवे सूत्रकार प्रकट करे उ—

आ विषयने अनुवक्षीने पूवीक शयन च प्रदण करुं नेप्रजे कोटते उ उच्छिका ( कृमि विद्येय ) अतिनी नेम उवाक आत्मप्रदेशोने स्पन्दित करीने एव शरीरभांशी लदार नीकणे उ तथा कन्दुक अतिनी नेम कोक साथे समस्त आत्मप्रदेशोने स्पन्दित करीने ते शरीरभांशी लदार नीकणे उ जेव प्रभाये

निवर्त्य-जीवप्रदेशेभ्यः शरीर पृथक्कृत्वेत्यर्थः, तत्र देशेनेलिकागतौ सर्वे । अथवा—  
देशेन शरीरं निवर्त्यात्मनः पादादिनिर्याणवान् । सर्वेण-सर्वाङ्गनिर्याणवानीति ।  
यद्वा—पञ्चविधशरीरसमुदायापेक्षया देशतः शरीरम् औदारिकादिकं निवर्त्य—  
परित्यज्य तैजसकामणे त्वादायैव, तथा सर्वेण-सर्वं शरीरसमुदायं निवर्त्य-परि-  
त्यज्य निर्याति-सिध्यतीत्यर्थः ५ ॥ सू० ४० ॥

पूर्वं यत् सर्वनिर्याणमुक्तं, तच्च परम्परया धर्मश्रवणलाभादिभिर्भवतीति  
तत्प्राप्तिप्रकारं प्रदर्शयति—

मूलम्—दोहिं ठाणेहिं आया केवलपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा  
सवणयाए तं जहा-खएण चेव, उवसमेण चेव, जाव केवलं  
मणपज्जवनाणं उप्पाडेज्जा, तं जहा-खएण चेव उवसमेण चेव ॥४१॥

छाया—द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्मा केवलप्रज्ञप्तं धर्मलभते श्रवणतया, तद्यथा  
क्षयेण चैव उपशमेन चैव, यावत् केवलं मनःपर्यवज्ञानमुत्पादयति, तद्यथा-क्षयेण  
चैव उपशमेन चैव ॥ सू० ४१ ॥

टीका—‘ दोहिं ’ इत्यादि । सुगमम् । नवरम्-उदर्यप्राप्तयोर्ज्ञानावरणीय-  
दर्शनावरणीययोः कर्मणोर्निर्जरणेन उपशमेन-अनुदितयोस्तयोर्विपाकाननुभवनेन  
अपेक्षा लेकर कथन स्फुरण के विषय में, स्फुटन के विषय में, संवर्तन  
के विषय में और निवर्तन के विषय में भी करना चाहिये-टीका में यह  
विषय स्पष्टरूप से प्रकट किया गया है ॥ सू ४० ॥

पहिले जो सर्वनिर्याण कहा गया है वह जीव को परम्परारूप से  
धर्मश्रवण के लाभ आदि से प्राप्त होता है अतः अब सूत्रकार उसकी  
प्राप्ति के प्रकार को प्रदर्शित करते हैं—

‘ दोहिं ठाणेहिं आया केवलपन्नत्तं धम्मं लभेज्जा ’ इत्यादि ।

दो स्थानों को लेकर आत्मा केवलप्रज्ञप्त धर्म को सुनने से प्राप्त

એક દેશ અને સર્વ દેશની અપેક્ષાએ સ્ફુરણના વિષયમાં, સ્ફુટનના વિષયમાં,  
સંવર્તનના વિષયમાં અને નિવર્તનના વિષયમાં પણ કથન સમજવું જોઈએ.  
ટીકામાં આ વિષય સ્પષ્ટરૂપે પ્રકટ કરવામાં આવ્યો છે ॥ સૂ ૪૦ ॥

આગળ જે સર્વનિર્યાણ પ્રકટ કરવામાં આવ્યું છે તે જીવને પરંપરારૂપે  
ધર્મશ્રવણના લાભ આદિથી પ્રાપ્ત થાય છે તેથી સૂત્રકાર હવે તેની પ્રાપ્તિના  
પ્રકારનું નિરૂપણ કરે છે—“ દોહિં ઠાણે હિં આયા કેવલિપણ્ણત્ત ધમ્મં લભેજ્જા ” ઇત્યાદિ.

ટીકાર્થ—જે સ્થાને દ્વારા (જે પ્રકારે) આત્મા કેવલિપ્રજ્ઞપ્ત ધર્મને શ્રવણ દ્વારા  
પ્રાપ્ત કરી શકે છે. તે જે સ્થાન નીચે પ્રમાણે છે—(૧) ક્ષયરૂપ અને (૨)

सयोपशमेनेत्युक्तं भवति । एष जाय ' इत्यादि, यावच्छब्देन—“ केवल बोधिं युज्जेज्जा सुं भविता भगाराओ भणगारियं पण्णपज्जा केवलं यमचेरमास मावसेज्जा, केवलेणं सजमेणं सनमिज्जा, केवलेणं सवरेणं संवरेज्जा, केवलेणं आमिणिबोहियनाणमुप्पाहेज्जा ” इति समाप्तम् ।

छाया—कवलं बोधिं बुध्यते, मुण्डो भूत्वा भगाराव् भनगारिवां प्रभवति, केवलं यमचेर्यवासमावसति, केवलेन सयमेन सयमपति, केवलेन संवरेण संवरेणयात्, केवलमामिनिबोधिकज्ञानमुत्पादयति ।

कर सकता है—वे दो स्थान हैं एक क्षयरूप और दूसरा उपशमरूप इसी प्रकार से वह यावत् केवलज्ञान को और मन पर्ययज्ञान को उत्पन्न कर सकता है उदयमास ज्ञानावरणीय और दशानावरणीय कर्मा की निर्जरा से इन्हीं की अनुदित अवस्था में इनके विपाक के अननुभव से एव इनके क्षयोपशम से जीव मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान को प्राप्त करता है तथा अस्तुदर्शन, अचस्तुदर्शन, अवधिदर्शन को प्राप्त करता है—यहां यावत् शास्त्र से “ केवल बोधिं युज्जेज्जा, सुं भविता, भगाराओ भणगारियं पण्णपज्जा, केवलं यमचेरमासमावसेज्जा, केवलेणं सजमेणं संजमिज्जा, केवलेणं सवरेणं संवरेज्जा, केवलं आमिणिबोहियनाणमुप्पाहेज्जा ” इस पाठ का अर्थ हुआ है । यहा बोधिशब्द से मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान चार ज्ञानों का ग्रहण हुआ है । केवलज्ञान का ग्रहण इसलिये

उपशमरूप अथ प्रभावे ( ते वे स्थानो दाता ) ते मनःपर्ययज्ञान अने उदयज्ञान पर्यन्तना ज्ञानाने प्राप्त करी शके उ उदयमास ज्ञानावरणीय अने उदयमास ज्ञानावरणीय कर्मान्नी निरुशधी तेमनी अनुदित अवस्थायां तेमना विपाकना अनुभवधी अने तेमना क्षयोपशमधी एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान अने मन पर्ययज्ञानने प्राप्त करे उ, तथा अस्तुदर्शन अचस्तुदर्शन, अने अवधिदर्शनने प्राप्त करे उ अर्थात् यावत् ( एवन्त ) पर्यन्त नीयना प्राप्तो सम्भवे थये उ अथ सम्भवु

“ केवल बोधिं युज्जेज्जा सुं भविता भगाराओ भणगारियं पण्णपज्जा, केवलं यमचेरमासमावसेज्जा केवलेणं सजमेणं संजमिज्जा केवलेणं संवरेणं संवरेज्जा केवलं आमिणिबोहियनाणमुत्पादयति ” अर्थात् बोधिं शब्द द्वारा मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, अने मन पर्ययज्ञान, आ चार ज्ञानने ग्रहण

एवम्—अनयैवरीत्या द्वाभ्यां स्थानाभ्यामात्मा केवलां बोधिं बुध्यते, इत्यारभ्य ' केवलं मनःपर्यवज्ञानमुत्पादयति ' इत्यन्तं सर्वं बोध्यम् । केवलज्ञान तु कर्मणां क्षयादेवोत्पद्यत इति तन्नात्र गृहीतम् । इह च यद्यपि बोध्यादयः सम्यक्त्वचारित्ररूपत्वात् केवलेन क्षयेण केवलेन उपशमेन च भवन्ति तथाऽप्येते क्षयोपशमेनापि भवन्ति । श्रवणादीनि मनः पर्यवपर्यन्तानि तु क्षयोपशमे नैव भवन्तीति सर्वसाधारणः क्षयोपशमः पदद्वयेनोक्त इति ॥ सू० ४१ ॥

बोधि-मतिश्रुतावधिज्ञानानि चोत्कर्षतः पट्टपष्टिसागरोपमस्थितिकानि भवन्ति, सागरोपमाणि च पल्योपमाश्रितानीति तद्द्वितयप्ररूपणामाह—

मूलम्—दुविहे अद्धोवमिए पन्नत्ते, तं जहा—पलिओवमेचेव सागरोवमेचेव । से किं तं पलिओवमे ?, पलिओवमे—“जं जोयण-वित्थिणं, पल्लं एगाहियप्परूढाणं । होज्जणिरंतरणिचियं, भरियं वालग्गकोडीणं ॥ १ ॥ वाससए वाससए, एक्केके अवहडम्मि जो कालो । सो कालो बोद्धवो, उवसा एगस्स पल्लस्स ॥ २ ॥ एएसिं पल्लाणं कोडाकोडी हवेज्ज दसगुणिया तं सागरोवमस्स उ, एगस्स भवे परीमाणं ॥ ३ ॥ सू० ४२ ॥

नहीं हुआ है कि वह ज्ञान ज्ञानावरण कर्म के सर्वथा क्षय से ही उत्पन्न होता है

यद्यपि बोधि आदिक सम्यक्त्वचारित्ररूप होने से केवल क्षय से और केवल उपशम से होते हैं—परन्तु ये क्षयोपशम से भी होते हैं क्यों कि श्रवणादिक से लेकर मनः पर्यव तक ज्ञानक्षयोपशम से ही होते हैं—इसी कारण सर्व साधारण क्षयोपशम इस पदद्वय से कहा गया है ॥ सू० ४१ ॥

करवामा आवेल छे, केवणज्ञानने अडुणु नडी करवानुं कारणु अे छे के ते ज्ञान तो ज्ञानावरणु कर्मना सर्वथा क्षयथी न् उत्पन्न थाय छे

जे के बोधि आदिक सम्यक्त्व चारित्ररूप डोवाथी केवण क्षय वडे अने केवण उपशम वडे न् प्राप्त थाय छे, परन्तु तेअो क्षयोपशम वडे पणु प्राप्त थाय छे, कारणु के श्रवणादिकथी लधने मनःपर्यव पर्यन्तना ज्ञान क्षयोपशमथी न् थाय छे अेअे कारणु आ पद द्वय ( जे पडो ) द्वारा सर्वसाधारणु क्षयोपशमनु न् कथन करवामा आअु छे, अेम समअुवुं ॥ सू० ४१ ॥



छाया—द्विविधमद्वौपमिक प्रकृत, तथा—पल्योपम 'व सागरोपम वै । अथ किं तत् पर्योपमम् ? पर्योपमम्—यद् योजनविस्तीर्णं पर्यमेकाहिकमस्त्वानाम् । मवेभिरन्तरनिधित, मृतं बालाग्रकोटीनाम् ॥ १ ॥ पर्युच्यते वर्षुच्यते एकैकस्मिन् अपहृते यः कालः । स कालो मोदक्यः, उपमा एकस्य पल्यस्य ॥ २ ॥ एतेषां पर्ययानां कोटाकोटी मवेहस्रगुणिता, तत् सागरोपमस्य तु एकस्य मवेत् परिमाणम् ॥ सू० ४२ ॥

टीका—' बुद्धिहे अद्वौषमिण् ' इत्यादि । उपमया निर्द्वेषम् औपमिकम्, अद्वा—कालः, तद्विषयमौपमिकम् अद्वौपमिकम्, यत्कालप्रमाणमुपमानं बिना सामान्यप्रमेन ग्रहीतुं न शक्यते तद् अद्वौपमिकमिति भावः । तच्च द्विविधम्—पर्योपमं सागरोपमं चेति । पर्ययः—छाटदेशप्रसिद्धो धान्याधारविशेषः, पर्ययत्पल्यः, तेनोपमा यस्य तत् पल्योपमम् । सागरोपमा यस्य तत् सागरोपमम्,

योधि और मति, श्रुत, अवधिज्ञान ये उत्कृष्ट से ४६ सागरोपम की स्थिति वाले होते हैं और सागरोपम पर्योपमका भावित होता है इस कारण सूत्रकार इन दोनों की प्ररूपणा करते हैं—

( बुद्धिहे अद्वौषमिण् पल्यसे ) इत्यादि ।

टीकार्थ—उपमासे जाना जाने वाला काल औपमिक काल होता है क्योंकि यह उपमा से निर्धुस्त होता है औपमिक काल सामान्य जन द्वारा बिना उपमान का जाना नहीं जा सकता है इसलिये इसे अद्वौपमिक कहा गया है यह अद्वौपमिक पर्योपम और सागरोपम के भेद से दो प्रकार का होता है छाटदेशप्रसिद्ध धान्याधार विशेष का नाम पल्य है इस पल्य से जिसकी उपमा हो वह पर्योपम काल है तथा सागर से जिसकी उपमा हो वह सागरोपमकाल है अर्थात् सागर के समान जो काल

छाधि अने मति श्रुत, अवधिज्ञान, ते उत्कृष्टनी अपेक्षाने १६ सागरोपमथी स्थितानां छाध छे अने सागरोपम काण पर्योपमने आधारे लक्ष्मी शक्य छे तेथी छेवे सूत्रकार ते अनेनी प्ररूपणा करे छे—

' बुद्धिहे अद्वौषमिण् पल्यसे ' इत्यादि—

टीकार्थ—अने जानने उपमा वटे लक्ष्मी शक्य छे ते जानने औपमिक काण छे छे छे, काय छे ते जानने प्रमाण उपमा वटे नीकणी शक्य छे तेथी तेने अद्वौषमिक ( अद्वा अने छे काण उपमा द्वारा लक्ष्मी शक्य तेना जानने अद्वौषमिक छे छे ) छे छे ते अद्वौषमिकना पर्योपम अने सागरोपम नामना से के छे छाट देशमा वपरात्ता अर्थां धान्याधार विशेषने पल्य

सागरवन्महापरिमाणमित्यर्थः । तत्र पल्योपम-लक्षणमभिधित्सुराह—‘ से किं तं ’ इत्यादि, अथ किं तत् पल्योपमं यद् अद्वौपमिकतया निर्दिष्टम् ? इति प्रश्नः, उत्तरमाह—‘ पलिश्रोवमे ’ इत्यादि । पल्योपमम्-पूर्वोक्तमद्वौपमिकं पल्योपमं वक्ष्य-माणलक्षणं भवतीति गाथा द्वयेनाह—‘ ज ’ इत्यादि, यद् योजनविस्तीर्णम्, विस्तीर्णशब्दस्योपलक्षणत्वाद् यद् आयामविष्कम्भगम्भीरत्वेन सर्वतो योजनप्रमाण पल्यसदृशत्वात् पल्य-धान्यस्थापनपात्रविशेष’, स एकाहिकप्ररूढाभिः, ‘सूत्रे तृती-यार्थपट्टी’—एकाह एव एकाहिकस्तेन शिरसि मुण्डिते सत्येकदिवसेन याः प्ररूढाः-वृद्धिं प्राप्तास्ताभिः, उपलक्षणतोऽनुयोगद्वारोक्तानुसारेण यावत्सप्ताहप्ररूढाभिः बालाग्रकोटीभिः—बालाग्राणां फोटयः—विभागास्ताभिः सपूर्वोक्तः पल्यो भृतः—

महापरिणामवाला होता है वह सागरोपमकाल है, हे भदन्त । वह पल्यो-पम काल क्या है ? अर्थात् पल्योपम काल का क्या स्वरूप है ? हे गौतम ! वह अद्वौपमिक पल्योपम काल इन दो गाथाओं द्वारा इस प्रकार के स्वरूप वाला है—वे दो गाथाएँ ये हैं—( जं जोजनवित्थिन्नं ) इत्यादि ।

इन गाथाओं द्वारा यह प्रकट किया गया है कि एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा ऐसा एक खड्डा खोदा जाय और उसमें एक दिन से लेकर सात दिन तक के भीतर २ के उगे हुए बालों के अग्रभाग भरे जावें अर्थात् जिस दिन शिर को मुण्डित करा लिया जावे उसके बाद एकदिन से लेकर सात दिनतक जमे हुए बालों के अग्र विभागों से वह खड्डा इस प्रकार से भरा जावे कि जिससे उन

कडे छे ते पल्यनी साथे जेनी उपमा आपी शक्य जेवा काणने पल्योपम काण कडे छे, तथा सागरनी साथे जेने सरभावी शक्य जेवा काणतु नाम सागरोपमकाण छे जेटले के सागरनी समान मडा परिमाणवाणा काणतु नाम सागरोपमकाण छे “ छे लगवन् । ते पल्योपमकाणतु स्वइय केवुं छे ? ”

गौतम स्वामीना आ प्रश्नना उत्तर आपता मडावीर प्रभु कडे छे के, छे गौतम ! ते अद्वौपमिक पल्योपम काणतु स्वइय नीचेनी जे गाथाज्येमां पताव्या प्रमाणे छे—“ ज जोजनवित्थिण ” इत्यादि. ते अन्ने गाथाज्येना भावार्थ नीचे प्रमाणे छे—

जेक योजन लामो, जेक योजन पडोणो अने जेक योजन जेडा जेक इवे जोडवामां आवे. तेमां जेकथी लधने सात दिवस सुधीमां जेगला वाणना अग्रभागोने लरवामां आवे. जेटले के माथु मुडाव्या पछी जेकथी लधने सात दिवस पर्यन्तमां जेगला वाणना अग्रभागोथी ते इपाने जेवे

છાયા—દ્વિવિધમદ્દોષમિત્ત પ્રજ્ઞપ્તં, તથા—પર્યોપમ <sup>૧૬</sup> સાગરોપમં ચૈવ ।  
 અથ કિં સત્ પર્યોપમમ્ ? પર્યોપમ્—યદ્ યોજનવિસ્તીણ પર્યમકારિકમરુઢાનામ્ ।  
 મહેશ્વરનિવરનિધિત, મૂર્ત બાહ્યાપ્રકોટીનામ્ ॥ ૧ ॥ ધર્મજ્ઞે નર્મજ્ઞે પૈકૈક  
 સ્મિન્ અપદ્ધતે યઃ કાઠ્ઠ । સ કાઠા મોઢધ્યાઃ, ટપમા એકસ્ય પર્યસ્ય ॥ ૨ ॥  
 એતેપાં પર્યવાનાં કોટાકોટી મહેશ્વરગુણિતા, સત્ સાગરોપમમ્ તુ એકસ્ય મહેત્  
 પરિમાણમ્ ॥ સૂ૦ ૪૨ ॥

ટીકા—‘ દુષિહે અદ્વોષમિષ્ ’ ઇત્યાદિ । ટપમયા નિર્ઘૃષ્ટમ્ ઔપમિકમ્,  
 અદ્વા—કાલ, સદ્દુષિષ્યમૌપમિકમ્ અદ્વોષમિકમ્, યત્કાલમમાણમુપમાન વિના  
 સામાન્યજનેન ગ્રહીતું ન શક્યત તદ્ અદ્વોષમિકમિતિ માત્ર । તત્ત્વ દ્વિવિધમ્—  
 પર્યોપમં સાગરોપમં ચેતિ । પર્ય—લાટદેશપ્રસિદ્ધો ઘાન્યાપારવિશેષ, પર્યપરપ  
 પર્યઃ, તેનોપમા યસ્ય સત્ પર્યોપમ્ । સાગરોપમા યસ્ય સત્ સાગરોપમમ્,

પોષિ ઓર મતિ, સુત, અવધિજ્ઞાન યે ઉત્કૃષ્ટ સે ૬૬ સાગરોપમ  
 કી સ્થિતિ થાલે હોતે હૈ ઓર સાગરોપમ પર્યોપમકા આમ્રિત હોતા હૈ  
 હસ કારણ સુઘકાર હન ઘોનોં કી પ્રસ્પણા કરતે હૈ—

( દુષિહે અદ્વોષમિષ્ પછસે ) ઇત્યાદિ ।

ટીકાર્થ—ઉપમાસે જાના જાને થાલા કાલ ઔપમિક કાલ હોતા હૈ ક્યોંકિ  
 યહ ઉપમા સે નિર્ઘૃષ્ટ હોતા હૈ ઔપમિક કાલ સામાન્ય જન દ્વારા વિના  
 ઉપમાન કા જાના નહીં જા સકતા હૈ હમલિયે હસે અદ્વોષમિક કહા  
 ગયા હૈ યહ અદ્વોષમિક પર્યોપમ ઓર સાગરોપમ કે મેદ સે ઘો પ્રકાર  
 કા હોતા હૈ લાટદેશપ્રસિદ્ધ ઘાન્યાપાર વિશેષ કા નામ પર્ય હૈ હસ પર્ય  
 સે જિસકી ઉપમા હો થહ પર્યોપમ કાલ હૈ તથા સાગર સે જિસકી  
 ઉપમા હો થહ સાગરોપમકાલ હૈ અર્થાત્ સાગર કે સમાન જો કાલ

ઘાધિ જને મતિ સુત, અવધિજ્ઞાન તે ઉત્કૃષ્ટની અપેક્ષાએ ૬૬  
 સાગરોપમથી સ્થિતિવાળાં હોય છે અને સાગરોપમ કાળ પર્યોપમને આધાર  
 બળી શકાય છે તેથી હવે સૂત્રકાર તે બંનેની પ્રપણા કરે છે—

દુષિહે અદ્વોષમિષ્ પછસે ” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—જે કાળને ઉપમા વડે બળી શકાય છે તે કાળને ઔપમિક કાળ  
 કહે છે, કારણ કે તે કાળનું પ્રમાણ ઉપમા વડે જ નીકળી શકે છે તેથી તેને  
 અદ્વોષમિક ( અદ્વા એટલે કાળ ઉપમા દ્વારા બળી શકાય તેવા કાળને  
 અદ્વોષમિક કહે છે ) કહે છે તે અદ્વોષમિકના પર્યોપમ અને સાગરોપમ  
 નામના બે ભેદ છે લાટ દેશમાં જપરાતા એવા ઘાન્યાપાર વિશેષને પર્ય

सागरवन्महापरिमाणमित्यर्थः । तत्र पल्योपम-लक्षणमभिधित्सुराह—‘ से किं तं ’ इत्यादि, अथ किं तत् पल्योपमं यद् अद्वौपमिकतया निर्दिष्टम् ? इति प्रश्नः, उत्तरमाह—‘ पलिओवमे ’ इत्यादि । पल्योपमम्-पूर्वोक्तमद्वौपमिकं पल्योपमं वक्ष्य-माणलक्षणं भवतीति गाथा द्वयेनाह—‘ जं ’ इत्यादि, यद् योजनविस्तीर्णम्, विस्तीर्णशब्दस्योपलक्षणत्वाद् यद् आयामविष्कम्भगम्भीरत्वेन सर्वतो योजनप्रमाणं पल्यसदृशत्वात् पल्य-धान्यस्थापनपात्रविशेषः, स एकाहिकप्ररूढाभिः, ‘सूत्रे तृती-यार्थेषुष्ठी’—एकाह एव एकाहिकस्तेन शिरसि मुण्डिते सत्येकदिवसेन याः प्ररूढाः-वृद्धिं प्राप्तास्ताभिः, उपलक्षणतोऽनुयोगद्वारोक्तानुसारेण यावत्सप्ताहप्ररूढाभिः बालाग्रकोटीभिः-बालाग्राणां कोटयः-विभागास्ताभिः सपूर्वोक्तः पल्यो भृतः-

महापरिणामबाला होता है वह सागरोपमकाल है, हे भदन्त ! वह पल्यो-पम काल क्या है ? अर्थात् पल्योपम काल का क्या स्वरूप है ? हे गौतम ! वह अद्वौपमिक पल्योपम काल इन दो गाथाओं द्वारा इस प्रकार के स्वरूप वाला है—वे दो गाथाएँ ये हैं—( जं जोयणवित्थिन्नं ) इत्यादि ।

इन गाथाओं द्वारा यह प्रकट किया गया है कि एक योजन लम्बा, एक योजन चौड़ा और एक योजन गहरा ऐसा एक खड्डा खोदा जाय और उसमें एक दिन से लेकर सात दिन तक के भीतर २ के उगे हुए बालों के अग्रभाग भरे जावें अर्थात् जिस दिन शिर को मुण्डित करा लिया जावे उसके बाद एकदिन से लेकर सात दिनतक जमे हुए बालों के अग्र विभागों से वह खड्डा इस प्रकार से भरा जावे कि जिससे उन

कडे छे ते पल्येनी साथे जेनी उपमा आपी शक्य जेवा काणने पल्योपम काण कडे छे, तथा सागरनी साथे जेने सरभावी शक्य जेवा काणनुं नाम सागरोपमकाण छे जेट्ठे के सागरनी समान मडा परिभाणुवाणा काणनुं नाम सागरोपमकाण छे “ छे लगवन् ! ते पल्योपमकाणनुं स्वरूप केवु छे ? ”

गौतम स्वामीना आ प्रश्नो उत्तर आपता मडावीर प्रलु कडे छे के, हे गौतम ! ते अद्वौपमिक पल्योपम काणनुं स्वरूप नीचेनी जे गाथाओमां भताव्या प्रभाणु छे—“ ज जोयणवित्थिण ” धत्यादि ते जन्ने गाथाओमो भावार्थ नीचे प्रभाणु छे—

जेक योजन लांबो, जेक योजन पडोणो जने जेठ योजन उँडा जेक द्वयो जोढवामां आवे. तेमा जेकथी लधने सात दिवस सुधीमां उगेला वाणना अग्रभागेने सरवामां आवे. जेट्ठे के माथु मुंडाव्या पछी जेकथी लधने सात दिवस पर्थन्तमां उगेला वाणना अग्रभागेथी ते द्ववाने जेवा

परिपूरित, कथयतः ? इत्याह—निरन्तर निश्चित, निरन्तर-प्रन्तररहित परस्पर  
 शिवाट पन यथास्यात्तया निश्चित-निश्चिततया निश्चयवत्कृतं पुञ्जयत्कृतमित्यर्थः  
 मयेत् स्यात् । तस्मात्पद्यात् 'वासतण' इत्यादि, पर्यगते, इति धीप्तायां प्रत्यङ्  
 पर्यगते, एकैकस्मिन् वाछे अपहृतं-निष्कामिते सत्रिय कालस्वस्य पर्यस्य रिक्ती  
 मवने जायते त कालः एकस्य पर्यस्य उपमा उपमेय बोद्धव्यः—चित्रेय । इदमुक्त  
 मवति—पूर्वोक्तः कालो व्यावहारिक पर्योपम कथ्यते । अथ सागरोपमप्रमाणमाह—  
 'एएसि' इत्यादि गाथा, एतेषां पर्यायानां-पर्योपमानां या कोटीकोटी दशगु  
 णिता-इत्यकोटीकोटय इत्यर्थः सा एकस्य व्यावहारिकसागरोपमस्य परिमाणं  
 भवतीति । एतद्वय मरुपणामात्रस्वरूपमेव ।

अथ विशेषमाह—पर्यायमम्—उदारादा क्षप्रभवेन शिविषम् । पुनरेतत्त्रय  
 मपि सूक्ष्मव्यावहारिकभेदात्प्रत्यङ् द्विविधम् । तत्र तावद् व्यावहारिकोद्धारपर्याय

पालाग्रों में छोड़ा सा भी अन्तर अयकाश न रहे । इस प्रकार से घे पालाग्र  
 खूप ठसाठस निश्चिदरूप में उस खड्डा में भर दिये जायें इस प्रकार से  
 जब कूट २ कर उन पालाग्रों से यह खड्डा खूप भर जावे तब मौ सौ  
 वर्ष के बाद उसमें से एक २ पालाग्र बाहर निकाला जावे—इस प्रकार  
 निकालते २ जब घे समस्त पालाग्र उस खड्डे में से बाहर निकाल दिये  
 जायें तो इनके निकालने में जितना काल ममास होता है वह काल एक  
 पर्य से उपमेय कहा गया है यह पूर्वोक्त काल व्यावहारिक पर्योपम  
 कहा गया है सागरोपम का प्रमाण इस प्रकार से है—पर्योपम कोटि  
 कोटि को १० से गुणा करने पर एक व्यावहारिक सागरोपम का प्रमाण  
 होता है अर्थात् १० कोटाकोटी पर्योपम का एक व्यावहारिक सागरो  
 पम काल होता है ।

बाबो बंधुके के नेथी करीने ते आबाओ वन्धे बिलकुल अतर न रहे.  
 कोटके के ते काने खूब हांसी हांसीने ते आबाओथी बरी देवे। बंधुके  
 त्पारआह हर सो सो वर्षे तेभाथी जेक जेक आबाओने जकार हाबवे। बंधुके  
 आ रीते तेभाथी १००-१० वर्षे जेक जेक आबाओने जकार हाबतां हाबतां  
 अमस्त आबाओने जकार हाबवामां नेटकां वर्षां व्यतीत यत्र जय छे तेठकां  
 वष प्रभाष्य हाणने जेक पर्योपम हाण कहे छे आ पूर्वोक्त हाणने व्यावहारिक  
 पर्योपम कहेवामां आवे छे सागरोपमनु प्रभाष्य आ प्रकारनु छे—पर्योपम  
 कोटि कोटिने १० वटे गुणवाथी जेक व्यावहारिक सागरोपमनु प्रभाष्य बाब  
 छे कोटके के १० कोटाकोटी पर्योपमने जेक व्यावहारिक सागरोपमकाण बाब छे





कृते सति भवति । एव सूक्ष्ममद्वासागरोपमं तेषां पल्यानां दशभिः कोटीकोटी-  
भिर्जायते । अनेन सूक्ष्माद्वापल्योपमसागरोपमेण नैरयिक-तिर्यग्योनिक-मनुष्य-  
देवानामायुर्मीयते २ ।

क्षेत्रपल्योपममप्येवमेव, नवरं प्रतिसमयं बालाग्रस्पृष्टैकैकाकाशप्रदेशनिस्सारणे  
कृते सति यावता कालेन पल्यो निर्लेपो निष्ठितो भवति स कालो व्यावहारिक  
क्षेत्रपल्योपमं कथयते । एवं व्यावहारिकसागरोपमं तेषां दशभिः कोटीकोटीभि-

से है असंख्यान खण्डीकृत एक एक बालाग्र को सौ सौ वर्ष जब व्यतीत  
हो जावे तब निकालना चाहिये इस तरह करते २ जब वह गर्त पूर्णरूप  
से उन बालाग्रों से रिक्त हो जाता है—तब इनके खाली करने में जितना  
काल समाप्त हुआ उतने काल का नाम सूक्ष्म अद्वापल्योपम है । सूक्ष्म  
अद्वापल्योपम की १० कोटीकोटि से सूक्ष्म अद्वासागरोपम निष्पन्न होता  
है अर्थात् १० कोटीकोटि सूक्ष्म अद्वा पल्योपम का एक सूक्ष्म अद्वासा-  
गरोपम होता है इस सूक्ष्म अद्वापल्योपमजन्य सूक्ष्म अद्वासागरोपम  
से नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देवों की आयु को प्रमित किया  
जाता है क्षेत्रपल्योपम भी इसी प्रकार से है परन्तु इसमें कथन की ऐसी  
विशेषता है कि बालाग्रसे स्पृष्ट एक एक आकाश प्रदेशको एक एक समय  
में वहांसे निकालो जितने समय में वह पल्य इस प्रकारसे करते २ उनसे  
खाली हो जाता है उतने काल का नाम व्यावहारिकक्षेत्रपल्योपम है इस

प्रकट करवाभां आवे छे—जेना अस भ्यात भंडो करवाभां आव्या होय जेवा  
पालाग्रो वडे उपयुक्त प्रमाणवाणा कृवाने भूभ ज हांसी हांसीने बरी देवाभां  
आवे. त्यारणाह से से वर्षे ते कृवाभांथी ओक ओक पालाग्रभंडोने भडार  
काठवासा आवे. आस करता करता जेटला समये ते कृवे ते पालाग्रभंडोथी  
भिलकुल रहिन ( भाली ) थछ नय छे, जेटला काणने ' सूक्ष्म अद्वा पल्यो-  
पम कडे छे ' सूक्ष्म अद्वा पल्योपमनी १० कोटि कोटि प्रमाणेना " सूक्ष्म  
अद्वासागरोपम " काण होय छे आ सूक्ष्म अद्वापल्योपम जन्य सूक्ष्म  
अद्वासागरोपम द्वारा नारको, तिर्यग्योनिको, मनुष्यो अने देवाना आयुष्यना  
मापनी गणुतरी करी शकय छे. क्षेत्रपल्योपम पणु जेअ प्रकारनुं छे, परन्तु  
तेना कथनभां नीचे प्रमाणे विशेषता छे—

पालाग्रथी स्पृष्ट ओक ओक आकाशप्रदेशने प्रति समय भडार काठतां  
काठतां जेटला समयभां ते कृवे तेमनाथी भाली थछ नय, जेटला काणनुं नाम  
' व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम ' छे. जेवा व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपमनी १०



निर्लेपो निष्ठिता मयति स काष्ठः सूक्ष्मसुद्धारपरयोपमं प्रोच्यते । तथैव च तेषां दशमिः फोटी कोटीमिः सूक्ष्मसुद्धारसागरोपमं भाषते । अनेन सूक्ष्मसुद्धारपरयोपमेण च द्वीपसमुद्राः परिसंख्यायन्त १ ।

व्यावहारिकाद्वापरयोपम-सागरोपमयोः स्वरूपं तु सूत्रे प्रोक्तमेव । सूक्ष्मसुद्धारपरयोपमं तु-असंख्येयखण्डीकृतस्यैकैकस्य घात्राग्रस्य वर्षं शते वर्षं शते निस्तारणे पमं होता है । तथा सूक्ष्म जो उद्धारपरयोपम है उसका प्रमाण ऐसा है कि जितने घालाग्रों से यह पूर्वोक्त प्रमाण घाला खड़ा भरा गया है उन घालाग्रों में से प्रत्येक घालाग्र के सूक्ष्मपनक जीव के शरीर की जितनी अवगाहना होती है उस अवगाहना से असंख्यात गुणों टुकड़ा करो ये सब टुकड़े अपनी बुद्धि से ही करिपत करक करना चाहिये तात्पर्य ऐसा है कि एक २ घालाग्र के असंख्यात २ टुकड़े अपनी बुद्धि से करो और फिर उस स्रष्टे को उनसे स्वयं ठाम २ कर निर्दिष्टरूप में भरदो और फिर एक समय में एक २ टुकड़े को उनसे पाहर निकालो इस तरह करते २ जितने काल में यह गर्त खाली हो जाता है उतने समय का नाम सूक्ष्म उद्धार परयोपम है इन सूक्ष्मसुद्धारपरयोपम की १० कोटि कोटि का एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम होता है इस सूक्ष्म उद्धार परयोपम से अन्य सागरोपम से द्वीप और समुद्रों की गिनती की जाती है ।

व्यावहारिक अद्वापरयोपम और सागरोपम का स्वरूप सूत्रकार ने सूत्र में ही प्रकट कर दिया है । सूक्ष्म अद्वापरयोपम का स्वरूप इस प्रकार

आवाहना केश्वा दुकष्य करवा ते नीम प्रभाञ्जे समल्लुं सूक्ष्मपनक एवमा शरीरनी नेली अवभाहना द्येव छे, ते अवभाहनाथी असंख्यातमनुं दुकष्य ते आवाहना करवा नेधञ्जे कोवा दुकष्यनी करवना पाठके पीतानी बुद्धिथी ए करवी नेधञ्जे, करव के अवभाहना आ प्रभाहनी वात एववी शकती नथी कडेवानुं तात्पर्यं छे छे के कोवा आवाहना असंख्यात दुकष्य करवनाथी ए करवानुं शक्य छे

दवे ते आवाहना ते दुकष्याञ्जे बडे ते ह्वाने हांसी हांसीने करी देवे। नेधञ्जे त्सारवाह प्रति समथ तेभाथी छेक छेक दुकष्यने लदार हादवा हादवां ते ह्वे। नेला समथभां ते आवाहना दुकष्याञ्जेथी रदित कर्षं लव छे, जितकुल आलीथर्षं लव छे, तेला हाजने सूक्ष्म उद्धार परयोपम " कडे छे ते सूक्ष्म उद्धार परयोपमनी १० कोटिकोटीनां छेक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम " हाज थाय छे ते सूक्ष्म उद्धार परयोपमथी एव सागरोपम द्वारा द्वीपः अने समुद्रीनी जगत्तरी थाय छे

व्यावहारिक अद्वापरयोपम अने सागरोपमनुं स्वरूपं ते। सूत्रकार आ सूत्रनी शक्यातभां ए जतावी दीपु छे दवे सूक्ष्म अद्वापरयोपमनुं स्वरूपं

कृते सति भवति । एवं सूक्ष्ममद्वासागरोपमं तेषां पल्यानां दशभिः कोटीकोटी-  
भिर्जायते । अनेन सूक्ष्माद्वापल्योपमसागरोपमेण नैरयिक-तिर्यग्योनिक-मनुष्य-  
देवानामायुर्मीयते २ ।

क्षेत्रपल्योपममप्येवमेव, तवरं प्रतिसमयं बालाग्रस्पृष्टैकैकाकाशप्रदेशनिस्सारणे  
कृते सति यावता कालेन पल्यो निर्लेपो निष्ठितो भवति स कालो व्यावहारिक  
क्षेत्रपल्योपमं कथ्यते । एव व्यावहारिकसागरोपमं तेषां दशभिः कोटीकोटीभि-

से है असंख्यान खण्डीकृत एक एक बालाग्र को सौ सौ वर्ष जब व्यतीत  
हो जावे तब निकालना चाहिये इस तरह करते २ जब वह गर्त पूर्णरूप  
से उन बालाग्रों से रिक्त हो जाता है—तब इनके खाली करने में जितना  
काल समाप्त हुआ उतने काल का नाम सूक्ष्म अद्वापल्योपम है । सूक्ष्म  
अद्वापल्योपम की १० कोटिकोटि से सूक्ष्म अद्वासागरोपम निष्पन्न होता  
है अर्थात् १० कोटाकोटि सूक्ष्म अद्वा पल्योपम का एक सूक्ष्म अद्वासा-  
गरोपम होता है इस सूक्ष्म अद्वापल्योपमजन्य सूक्ष्म अद्वासागरोपम  
से नैरयिक, तिर्यग्योनिक, मनुष्य और देवों की आयु को प्रमित किया  
जाता है क्षेत्रपल्योपम भी इसी प्रकार से है परन्तु इसमें कथन की ऐसी  
विशेषता है कि बालाग्रसे स्पृष्ट एक एक आकाश प्रदेशको एक एक समय  
में वहांसे निकालो जितने समय में वह पल्य इस प्रकारसे करते २ उनसे  
खाली हो जाता है उतने काल का नाम व्यावहारिकक्षेत्रपल्योपम है इस

प्रकट करवायां आवे छे—जेना असंख्यात अंठा करवायां आव्या डोय जेवा  
आलाग्रो वडे उपयुक्त प्रमाणवाणा कूवाने भूष ज हांसी हांसीने बरी देवायां  
आवे, त्यारणाद सो सो वर्षे ते कूवाभाधी जेक जेक आलाग्रअंठने अहार  
काठवायां आवे, आम करतां करतां जेटला समये ते कूवे ते आलाग्रअंठाथी  
मिलकुल रहिन (आली) थछ जय छे, जेटला काणने 'सूक्ष्म अद्वा पल्यो-  
पम कडे छे' सूक्ष्म अद्वा पल्योपमनी १० कोटि कोटि प्रमाणुने "सूक्ष्म  
अद्वासागरोपम" काण डोय छे, आ सूक्ष्म अद्वापल्योपम जन्य सूक्ष्म  
अद्वासागरोपम द्वारा नारको, तिर्यग्योनिको, मनुष्यो अने देवाना आयुष्यना  
मापनी गणतरी करी शक्य छे क्षेत्रपल्योपम पण जेअ प्रकारनु छे, परन्तु  
तेना कथनमा नीचे प्रमाणे विशेषता छे—

आलाग्रथी स्पृष्ट जेक जेक आकाशप्रदेशने प्रति समय अहार काठतां  
काठतां जेटला समयमां ते कूवे तेमनाथी आली थछ जय, जेटला काणनु नाम  
'व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपम' छे, जेवा व्यावहारिक क्षेत्र पल्योपमनी १०

जायते । एतद्भ्य प्ररूपणामात्रविषयमेव । यत्तु—असस्यातत्तुष्ठीकृतैर्वालाभैः स्पृष्टा  
अस्पृष्टा वाऽऽकाशप्रदेशाः प्रतिसमयमेकैकशो निस्सार्यन्ते, एव निस्सारिते  
सति यावताकाशेन परयो निर्लेपो निष्ठितो भवति स काशः सूक्ष्मक्षेत्रपरयो  
पममुच्यते । एव सूक्ष्मक्षेत्रसागरोपमं तेषां दशमि कोटीकोटीभिर्भवति ।  
अनेन सूक्ष्मक्षेत्रपरयोपम-सागरोपमेण दृष्टिवादे द्रव्याणि मीयन्त ॥

अत्र-उद्धारपरयोपम-क्षेत्रपरयोपमयोर्ग्रहणं न कृतम्, अनुपयोगित्वात्, सूत्रे  
'अद्वे'-ति विशेषणस्योक्तत्वाच्चेति ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्तेः परयोपमादिभिर्मेयां क्रोधादीनां फलभूतकर्मस्थितिर्निरूप्यते तत्स  
रूपनिरूपणं कुर्वन्माह—

मूलम्—दुषिहे कोहे पण्णत्ते त जहा—आयपइट्टिण् चैव परप  
इट्टिण् चैव एव नेरइयाण जात्र वेमाणियाण । एव जाव मिच्छादंस  
णसहे ॥ सू० ४३ ॥

छाया—द्विविधः क्रोधः प्रहस, तथा—आत्मप्रतिष्ठितश्चैव परप्रतिष्ठित  
श्चैव । एव नैरयिकाणां यावद् वेमाणिकानाम् । एवं यावत् मिथ्यादर्शनद्वयम्  
॥ सू० ४३ ॥

व्यापहारिकक्षेत्र परयोपम की १० कोटीकोटि से एक व्यापहारिक  
क्षेत्र सागरोपम बनता है इस सूक्ष्मक्षेत्रपरयोपमजन्य सागरोपम से  
दृष्टिवाद में द्रव्यों की गिनती की जाती है ३ । यहाँ सूत्र में उद्धारप  
रयोपम और क्षेत्रपरयोपमका जो ग्रहण नहीं किया गया है वह इनके यहाँ  
अनुपयोगी होने से नहीं किया गया है । तथा सूत्र में "अद्वे" ऐसा  
विशेषण कहा गया है ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्तपरयोपम आदिकों द्वारा जिन क्रोधादिकों की फलभूत कर्म  
स्थिति का निरूपण होता है अथ सूत्रकार उसके स्वरूप का निरूपण  
कौटुकिदि प्रमाणवाजे अथ 'व्यापहारिक क्षेत्र सागरोपम' काज दोष छे  
आ सूत्रम क्षेत्रपरयोपम जन्य सागरोपम द्वारा दृष्टिवादमां त्र येनी जयतरी  
करवायां आवे छे अर्दी सूत्रमा उद्धार परयोपम अने क्षेत्रपरयोपमने के  
प्रकृत्य करवाया नही तेजु कारण अथ छे छे अर्दी तेजो अनुपयोगी छे तथा  
सूत्रमां अद्वे ' आ पर विशेषणरूपे वपशानु छे ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्त परयोपम आदि द्वारा कोषादिकोनी इतभूत कर्मस्थितिनु निर  
पण्ण थाय छे तेधी अथ सूत्रकार ते कोषादिकोनी स्वरूपनु निरूपण करे छे—

टीका—‘दुविहे कोहे’ इत्यादि । क्रोधो द्विविधः—आत्मप्रतिष्ठितः परप्रतिष्ठितश्चेति । तत्रात्मप्रतिष्ठित स्वापराधाद् भिन्यादौ शिरःप्रभृतीनां स्वल्पनेन वस्तुविशेषविनाशेन वा स्वात्मनि प्रतिष्ठितः जनितः आत्मविषयो जात इत्यर्थः, सः तथोक्तः १। यद्वा—य आत्मना परस्मिन् प्राणिन्याक्रोशादिना प्रतिष्ठितः स तथोक्तः । परप्रतिष्ठितः—यः परेणाक्रोशादिना प्रतिष्ठितः—उदीरितः, स्वात्मना वा परस्मिन् प्रतिष्ठितः—जातः उत्पन्नः स तथोक्तः २। इति । इदमुक्तं भवति—स्वयमाचरितस्य ऐहिकमपायमवबुध्य यदा कश्चित्स्वात्मन्येव क्रोधं करोति तदा स क्रोध आत्मप्रतिष्ठितः कथ्यते, यदा तु परः कोऽप्याक्रोशादिना क्रोधमुदीरयति करते हैं—(दुविहे कोहे पणत्ते) इत्यादि ।

टीकार्थ—क्रोध दो प्रकारका कहा गया है एक आत्मप्रतिष्ठित और दूसरा परप्रतिष्ठित अपने ही अपराधसे भित्ति आदिमें शिर वगैरहके लग जाने से अथवा वस्तु के विनाश से जो क्रोध आत्मा में उत्पन्न हो जाता है वह स्वात्म प्रतिष्ठित क्रोध है अथवा जो क्रोध परप्राणी के ऊपर आक्रोश आदि के करने से अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है वह आत्मप्रतिष्ठित क्रोध है तथा आक्रोश आदि के करने से दूसरों के द्वारा आत्मा में उदीरित किया जाता है वह परप्रतिष्ठित क्रोध है अथवा अपने द्वारा पर में जो क्रोध उत्पन्न कराया जाता है वह परप्रतिष्ठित क्रोध है । तात्पर्य इस कथन का ऐसा है कि स्वय आचरित किये कार्य का ऐहिक अपायरूप फल समझ कर जो अपनी निजकी आत्मा पर ही क्रोध

“दुविहे कोहे पणत्ते” इत्यादि—

टीकार्थ—क्रोध दो प्रकारका कहा है—(१) आत्मप्रतिष्ठित अने (२) परप्रतिष्ठित पोताना अ अपराध ( दोष ) ने लीधे दीवाल आदि साथे शिर आदि अथ-डावाथी अथवा वस्तुना विनाशथी ने क्रोध आत्माभा उत्पन्न थाय छे, ते क्रोधनु नाम स्वात्मप्रतिष्ठित क्रोध छे अथवा पर प्राणीना उपर आक्रोश आदि करवाथी ने क्रोध पोताना आत्माभा प्रतिष्ठित थाय छे—उत्पन्न थाय छे, ते क्रोधनु नाम आत्मप्रतिष्ठित क्रोध छे ने क्रोध अन्यना आक्रोश आदिने कारणे अटवे के अन्यना द्वारा आत्माभा उदीरित कराय छे, ते क्रोधने परप्रतिष्ठित क्रोध कहे छे अथवा पोताना द्वारा अन्य लोकोभा ने क्रोध उत्पन्न करावाय छे, तेनु नाम परप्रतिष्ठित क्रोध छे

आ कथननु तात्पर्य अे छे के, पोते अ आचरेला कार्यनु ऐहिक अपाय यरूप इल समझने पोताना अ आत्मा पर ने क्रोध उद्भवये छे, ते क्रोधने आत्मप्रतिष्ठित क्रोध कहे छे अने न्यारे कोर्ष पीछे व्यक्ति तेना आक्रोश

तदा यस्तद्विषयः क्रोध उपजायते स परप्रतिष्ठितः क्रोध कथ्यते, इति । एवम्-  
अनेननाऽऽस्वापकेन यावत्-मिथ्यादर्शनशून्य मानमारम्य मिथ्यादर्शनशून्यपर्यन्तं  
विद्येयम् । तत्र ' बाव ' इति

यावच्छब्देन क्रोधानन्तर मानादीनामष्टादशानां पापस्थानानां ग्रहणं भवति ।  
एतेषां क्रोधादीनां सर्वेषामपि स्वविकल्पजनितपरविकल्पजनितत्वाभ्यां, स्वात्म-  
स्थितपरात्मस्थिताभ्यां वा स्वपरप्रतिष्ठितत्वमवधारणीयम् ॥ सू ४३ ॥

एवमेतानि सर्वाणि पापस्थानानि ' सिद्धे' ति मध्यमाजगायोक्तेषु सिद्धादि  
विपर्ययाऽसिद्धादिषु त्रयोदशस्वपि जीवेषु भवन्ति, पापस्थानानां सत्सारिण्येषु  
सद्भावादिति तद्भूमेदानाह—

मूलम्—दुविहा सत्सारसमावन्नगा जीवा पणत्ता, त जहा तहा  
चेव धावराचेवा दुविहा सब्वजीवा पणत्ता त जहा-सिद्धा चेव असि  
द्धा चेव । दुविहा सब्वजीवा पणत्ता त जहा-सहृदिया चेव अणि-  
दिया चेव । एवं एसा गाहा फासेयव्वा जाव ससरीरी चेव  
असरीरी चेव—“ सिद्धेसहृदियकाए३, जोगे४, वेए५, कसाय ६,  
लेसा७ य । णार्णुव ओगांहारे, भासेंग धेरिमे य ससेरीरी ॥सू०४४॥

उद्भावित होता है वह क्रोध आत्मप्रतिष्ठित कहलाता है । और जय कोई  
दूसरा व्यक्ति अपने आक्रोश आदि के द्वारा क्रोध करवाता है तब वह  
परप्रतिष्ठित कहलाता है । इसी आलापक से मिथ्यादर्शनशून्य, तक  
अर्थात् मान से लेकर मिथ्यादर्शनशून्यतक—ऐसा ही जानना चाहिये  
अर्थात् क्रोध से लेकर मानादिक अठारह पापस्थानों का ग्रहण होता है  
सो इन मय में स्वविकल्पजनित परविकल्पजनित इन दो में दो को लेकर  
अथवा स्वात्मस्थित और परात्मस्थित इन दो को लेकर स्व और पर में  
प्रतिष्ठितत्व जानना चाहिये ॥ सू०४३ ॥

आदि द्वाः आपणा आत्माभां द्विष पदा करावे ३ त्पारे ते द्विषने परप्रति  
ष्ठित इहे ३ मानधी लघने मिथ्यादर्शनशून्य पणन्तना पापस्थानांभां पण  
आ प्रभावे ४ समस्तुं जेटहे ६ स्वविकल्प जनित अने परविकल्प जनित  
जे जे बोरोनी अपेक्षाजे ते प्रत्येकना पण स्वात्मस्थित ( स्वात्मप्रतिष्ठित )  
अने परात्मस्थित ( परप्रतिष्ठित ) नामना जन्मे प्रभार समस्त देवा ॥सू ४३॥

छाया—द्विविधाः संसारसमापन्नका जीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—त्रसाश्चैव स्था-  
वराश्चैव । द्विविधाः सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सिद्धाश्चैव असिद्धाश्चैव । द्विविधाः  
सर्वजीवाः प्रज्ञप्तास्तद्यथा—सेन्द्रियाश्च अनिन्द्रियाश्चैव । एतेषां गाथा स्पर्शनीया  
यावत् सशरीरिणश्चैव अशरीरिणश्चैव—“ सिद्ध १, सेन्द्रिय २, कायम् ३, योगो ४,  
वेदः ५, कपायो ६, छेष्ट्या च ७ । ज्ञानो ८, पयोगा ९, हारम् १०, भाषकः ११,  
चरमश्च १२ सशरीरी १३ ॥ सू० ४४ ॥

टीका—‘द्विविधा संसार०’ इत्यादि ।

संसरणं—चतुर्गतिपरिभ्रमणं संसारः—नारकतिर्यग्नरामरभवानुभवलक्षणस्तं  
स—सम्यग् एकीभावेन आपन्नाः—प्राप्ताः संसारसमापन्नकाः, स्वार्थे क प्रत्ययः,  
संसारिण इत्यर्थः । ते द्विविधाः—त्रसा. स्थावराश्चेति जीवाः संसारिण एव सन्ति  
उतान्येऽपिवा ? इति चेत्—‘सन्त्येवे’—ति प्रदर्शनाय समतिपक्षां त्रयोदशमूत्री-

इस प्रकार ये सब पापस्थान आगे कहे जाने वाली (सिद्ध) इत्यादि  
गाथा में कहे हुए सिद्ध आदि से विपरीत असिद्ध आदि तेरह जीवों में  
ही पाते हैं इसलिये इनके भेद बतलाते हैं—(द्विविधा संसारसमापन्नका  
जावा पणत्ता) इत्यादि ।

चारों गतियों में परिभ्रमण करने का नाम संसार है यह संसार  
नारक, तिर्यक् नर और देवरभवों के अनुभव करने रूप है इस संसार  
को जो एकीभाव से प्राप्त कर चुके हैं वे संसार समापन्नक जीव हैं ।  
ऐसे ये संसारसमापन्नक जीव संसारी जीव कहे गये हैं ये संसारी जीव  
प्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार के होते हैं यही द्विविधत्व की  
वात—“द्विविधा सव्वजीवा” इस सूत्र पाठ द्वारा प्रकट की गई है तात्पर्य

आ अठारे पापस्थानकेनो सहलाव असिद्ध आदि १३ लुवाभां डोय  
छे “सिद्ध” इत्यादि के गाथा आगण कडेवाभां आववानी छे ते गाथाभां  
के सिद्ध आदि लुवा प्रकट कर्या छे, तेमना करतां विपरीत आ असिद्ध  
आदि लुवा छे सूत्रकार ते असिद्ध आदि १३ प्रकारो लुवे प्रकट करे छे—  
“द्विविधा संसारसमापन्नका जीवा पणत्ता” इत्यादि.

टीकार्थ—आर गतिओभा परिभ्रमण करवुं तेनु नाम संसार छे नारक, तिर्यक्,  
भनुष्य अने देवलवोना अनुभव करवा रूप ते संसार छे आ संसारने ओकी  
भावधी (संसारमां ह्य अने पाणीनी नेम ओकरुप) प्राप्त करी चुकेला के  
लुवा छे, तेमने संसार समापन्नक लुवा कडे छे ओवा संसारसमापन्नक  
लुवाने संसारी लुवा कहे छे ते संसारी लुवा प्रस अने स्थावरना  
बेधी के प्रकारना छे. आ द्विविधत्वनी वात के “द्विविधा सव्वजीवा”

जायते । एतद्द्वय मरूपणामात्रविषयमेव । यत्तु-असंख्यातरुण्डीकृतैर्बालामैः स्पृष्टा  
अस्पृष्टा वाऽऽकाशमवेष्टाः प्रतिसमयमेकैकञ्चो निस्तार्यन्ते, एव निस्तारिते  
सति यावत्काशेन परयो निर्लेपो निष्ठितो मश्चि स काशः सूक्ष्मक्षेत्रपरयो  
परममुच्यते । एव सूक्ष्मक्षेत्रसागरोपम तेषां दशमि कोटीकोटीभिर्मश्चि ।  
अनेन सूक्ष्मक्षेत्रपरयोपम-सागरोपमेण दृष्टिवादे द्रव्याणि मीयन्ते ३ ।

अत्र-उद्धारपरयोपम-क्षेत्रपरयोपमयोर्ग्रहणं न कृतम्, अनुपयोगित्वात्, सूत्रे  
'अद्दे'-ति विशेषणस्योक्तत्वाच्चेति ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्तै परयोपमादिमिथेषां श्लोकादीनां फलभूतकर्मस्थितिर्निरूप्यते तस्वरूप  
निरूपणं कुर्मः—

मूलम्—दुविहे कोहे पण्णत्ते त जहा—आयपइट्टिण्णं चैव परप  
इट्टिण्णं चैव एव नेरइयाण जाव वेमाणियाण । एव जाव मिच्छादंस  
णसहे ॥ सू० ४३ ॥

छाया—द्विविधः क्रोपः मद्गसः, तथा-आत्ममतिष्ठितश्चैव परमतिष्ठित  
श्चैव । एव नैरयिकाणां यावद् वेमानिकानाम् । एवं यावत् मिध्यादर्शनस्यम्  
॥ सू० ४३ ॥

व्यापहारिकक्षेत्र परयोपम की १० कोटीकोटि से एक व्यापहारिक  
क्षेत्र सागरोपम बनता है इस सूक्ष्मक्षेत्रपरयोपमजन्य सागरोपम से  
दृष्टिवाद में द्रव्यों की गिनती की जाती है ३ । यहाँ सूत्र में उद्धारप  
रयोपम और क्षेत्रपरयोपमका जो ग्रहण नहीं किया गया है वह हमके यहाँ  
अनुपयोगी होने से नहीं किया गया है । तथा सूत्र में "अद्दे" ऐसा  
विशेषण कहा गया है ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्तपरयोपम आदिकों द्वारा जिन श्लोकादिकों की फलभूत कर्म  
स्थिति का निरूपण होता है अथ सूत्रकार उसके स्वरूप का निरूपण  
कैटिकानि प्रभाषणानो ज्येष्ठ व्यापहारिक क्षेत्र सागरोपम' काज देव उ  
आ सूत्रम क्षेत्रपरयोपम अन्य सागरोपम द्वारा दृष्टिवादमां प्र योनी ज्येष्ठरी  
करनामां आवे उ अदी सूत्रगा उद्धार परयोपम अने क्षेत्रपरयोपमने के  
अदक्षु कशाया नभी तेनुं करवु के उ के अदी तेज्या अनुपयोगी उ तथा  
सूत्रमां "अद्दे आ पर विशेषणरूपे वपशु उ ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्त परयोपम आदि द्वारा श्लोकादिकोनी फलभूत कर्मस्थितितुं नि  
पजु थाप उ तेथी कवे सूत्रकार ते श्लोकादिकोना स्वरूपतुं निरूपण करे उ—

टीका—‘दुविहे कोहे’ इत्यादि । क्रोधो द्विविधः—आत्मप्रतिष्ठितः परप्रतिष्ठितश्चेति । तत्रात्मप्रतिष्ठितः स्वापराधाद् भित्त्यादौ शिरःप्रभृतीनां स्खलनेन वस्तुविशेषविनाशेन वा स्वात्मनि प्रतिष्ठितः जनितः आत्मविषयो जात इत्यर्थः, सः तथोक्तः १। यद्वा—य आत्मना परस्मिन् प्राणिन्याक्रोशादिना प्रतिष्ठितः स तथोक्तः । परप्रतिष्ठितः—यः परेणाक्रोशादिना प्रतिष्ठितः—उदीरितः, स्वात्मना वा परस्मिन् प्रतिष्ठितः—जातः उत्पन्नः स तथोक्तः २। इति । इदमुक्तं भवति—स्वयमाचरितस्य ऐहिकमपायमवबुध्य यदा कश्चित्स्वात्मन्येव क्रोधं करोति तदा स क्रोध आत्मप्रतिष्ठितः कथ्यते, यदा तु परः कोऽप्याक्रोशादिना क्रोधमुदीरयति करते हैं—(दुविहे कोहे पणत्ते) इत्यादि ।

टीकार्थ—क्रोध दो प्रकारका कहा गया है एक आत्मप्रतिष्ठित और दूसरा परप्रतिष्ठित अपने ही अपराधसे भित्ति आदिमें शिर वगैरहके लग जाने से अथवा वस्तु के विनाश से जो क्रोध आत्मा में उत्पन्न हो जाता है वह स्वात्म प्रतिष्ठित क्रोध है अथवा जो क्रोध परप्राणी के ऊपर आक्रोश आदि के करने से अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है वह आत्मप्रतिष्ठित क्रोध है तथा आक्रोश आदि के करने से दूसरों के द्वारा आत्मा में उदीरित किया जाता है वह परप्रतिष्ठित क्रोध है अथवा अपने द्वारा पर में जो क्रोध उत्पन्न कराया जाता है वह परप्रतिष्ठित क्रोध है । तात्पर्य इस कथन का ऐसा है कि स्वयं आचरित किये कार्य का ऐहिक अपायरूप फल समझ कर जो अपनी निजकी आत्मा पर ही क्रोध

“दुविहे कोहे पणत्ते” इत्यादि—

टीकार्थ—क्रोध दो प्रकारका कहा है—(१) आत्मप्रतिष्ठित अने (२) परप्रतिष्ठित पोताना वा अपराध (दोष) ने लीधे दीवाल आदि साथे शिर आदि अथ उपाधी अथवा वस्तुना विनाशधी ने क्रोध आत्मासा उत्पन्न थाय छे, ते क्रोधनु नाम स्वात्मप्रतिष्ठित क्रोध छे अथवा पर प्राणीना उपर आक्रोश आदि करवाधी ने क्रोध पोताना आत्मासां प्रतिष्ठित थाय छे—उत्पन्न थाय छे, ते क्रोधनु नाम आत्मप्रतिष्ठित क्रोध छे ने क्रोध अन्यना आक्रोश आदिने कारखे ओटले के अन्यना द्वारा आत्मासा उदीरित कराय छे, ते क्रोधने परप्रतिष्ठित क्रोध कहे छे अथवा पोताना द्वारा अन्य लुवोसा ने क्रोध उत्पन्न करावाय छे, तेनु नाम परप्रतिष्ठित क्रोध छे.

आ कथननु तात्पर्य अे छे के, पोते वा आचरेला कार्यनु ऐहिक अपाय रूप इल समझने पोताना वा आत्मा पर ने क्रोध उद्भववे छे, ते क्रोधने आत्मप्रतिष्ठित क्रोध कहे छे अने न्यारे क्रोध जील व्यक्त तेना आक्रोश



जायते । एतद्भय मरुपणामात्रविषयमेव । यत्तु—असस्यासत्कृतीकृतैर्वालाभैः स्पृष्टा भस्स्पृष्टा वाऽऽकाशमदेशाः प्रतिसमयमेकैकशो निस्सार्यन्ते, एव निस्सारिते सति यावत्काशेन परयो निर्लेपो निष्ठितो भवति स काशः सूक्ष्मक्षेत्रपरयो पममुच्यते । एव सूक्ष्मक्षेत्रसागरोपमं तेषां दशमि कोटीकोटीभिर्मनति । अनेन सूक्ष्मक्षेत्रपरयोपम—सागरोपमेव दृष्टिवादैर्द्रव्याणि मीयन्ते ॥

अत्र—उद्धारपरयोपम—क्षेत्रपरयोपमयोर्प्रहर्गं न कृतम्, अनुपयोगित्वात्, सूत्रे 'अद्दे'—ति विशेषणस्योक्तत्वाच्चेति ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्तै परयोपमादिमि र्येषां क्रोधादीनां फलमृतकर्मस्थितिर्निरूप्यते तत्स रूपनिरूपणं कुर्वन्माह—

मूलम्—दुविहे कोहे पणत्ते त जहा—आयपद्दृष्टि ए चैव परपद्दृष्टि ए चैव एव नेरइयाण जाश वेमाणियाण । एव जाव मिच्छादंसणसहे ॥ सू० ४३ ॥

श्या—द्विविधः क्रोधः मग्नसः, तृपया—आत्मप्रतिष्ठितइषैव परप्रतिष्ठित इषैव । एव नेरयिकाणां यावद् वैमानिकानाम् । एवं यावत् मिध्याईधनइस्यम् ॥ सू० ४३ ॥

व्यापहारिकक्षेत्र परस्योपम की १० कोटाकोटि से एक व्यापहारिक क्षेत्र सागरोपम बनता है इस सूक्ष्मक्षेत्रपरस्योपमजन्य सागरोपम से दृष्टिवाद में द्रव्यों की गिनती की जाती है ३ । यहाँ सूत्र में उद्धार परस्योपम और क्षेत्रपरस्योपमका जो ग्रहण नहीं किया गया है वह इसके यहाँ अनुपयोगी होने से नहीं किया गया है । तथा सूत्र में "अद्दा" ऐसा विशेषण कहा गया है ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्तपरस्योपम आदिकों द्वारा जिन क्रोधादिकों की फलमृत कर्म स्थिति का निरूपण होता है अथ सूत्रकार उसके स्वरूप का निरूपण

कहा है कि प्रमाणवाले अर्थात् 'व्यापहारिक क्षेत्र सागरोपम' का जो उदाहरण है आ सूत्रम क्षेत्रपरस्योपम जन्य सागरोपम द्वारा दृष्टिवादमां ३ योनी जयतरी इत्यादिमां आवेति अर्थात् सूत्रमा उद्धार परस्योपम अने क्षेत्रपरस्योपमने के अदृश्य इत्यादि नदी तेजु इत्यु अर्थात् अर्थात् तेजो अनुपयोगी है तथा सूत्रमां "अद्दा" आ पर विशेषणरूपे वपशयु है ॥ सू० ४२ ॥

पूर्वोक्त परस्योपम आदि द्वारा क्रोधादिकोनी इत्यमृत कर्मस्थितिनु निरूपणं यावति तेथी इवे सूत्रकार ते क्रोधादिकोना स्वल्पं नु निरूपणं करेति—

टीका—‘दुविहे कोहे’ इत्यादि । क्रोधो द्विविधः—आत्मप्रतिष्ठितः परप्रतिष्ठितश्चेति । तत्रात्मप्रतिष्ठितः स्वापरायाद् भिर्यादौ शिरःप्रभृतीनां स्वल्पनेन वस्तुविशेषविनाशेन वा स्वात्मनि प्रतिष्ठितः जनितः आत्मत्रिपयो जात इत्यर्थः, सः तथोक्तः १। यद्वा—य आत्मना परस्मिन् प्राणिन्याक्रोशादिना प्रतिष्ठितः स तथोक्तः । परप्रतिष्ठितः—यः परेणाक्रोशादिना प्रतिष्ठितः—उदीरितः, स्वात्मना वा परस्मिन् प्रतिष्ठितः—जात उत्पन्नः स तथोक्तः २। इति । इदमुक्तं भवति—स्वयमाचरितस्य ऐहिकमपायमवबुध्य यदा कश्चित्स्वात्मन्येव क्रोधं करोति तदा स क्रोध आत्मप्रतिष्ठितः कथ्यते, यदा तु परः क्रोऽप्याक्रोशादिना क्रोधमुदीरयति करते है—(दुविहे कोहे पणत्ते) इत्यादि ।

टीकार्थ—क्रोध दो प्रकारका कहा गया है एक आत्मप्रतिष्ठित और दूसरा परप्रतिष्ठित अपने ही अपराधसे भित्ति आदिमें शिर वगैरहके लग जाने से अथवा वस्तु के विनाश से जो क्रोध आत्मा में उत्पन्न हो जाता है वह स्वात्म प्रतिष्ठित क्रोध है अथवा जो क्रोध परप्राणी के ऊपर आक्रोश आदि के करने से अपनी आत्मा में प्रतिष्ठित हो जाता है वह आत्मप्रतिष्ठित क्रोध है तथा आक्रोश आदि के करने से दूसरों के द्वारा आत्मा में उदीरित किया जाता है वह परप्रतिष्ठित क्रोध है अथवा अपने द्वारा पर में जो क्रोध उत्पन्न कराया जाता है वह परप्रतिष्ठित क्रोध है । तात्पर्य इस कथन का ऐसा है कि स्वयं आचरित किये कार्य का ऐहिक अपायरूप फल समझ कर जो अपनी निजकी आत्मा पर ही क्रोध

“दुविहे कोहे पणत्ते” इत्यादि—

टीकार्थ—क्रोध दो प्रकारका कहा है—(१) आत्मप्रतिष्ठित अने (२) परप्रतिष्ठित पोताना न अपराध (दोष) ने लीधे हीवाल आदि साथे शिर आदि अथ डावाथी अथवा वस्तुना विनाशथी ने क्रोध आत्माभा उत्पन्न थाय छे, ते क्रोधनु नाम स्वात्मप्रतिष्ठित क्रोध छे अथवा पर प्राणीना उपर आक्रोश आदि करवाथी ने क्रोध पोताना आत्माभां प्रतिष्ठित थाय छे—उत्पन्न थाय छे, ते क्रोधनु नाम आत्मप्रतिष्ठित क्रोध छे ने क्रोध अन्यना आक्रोश आदिने कारणे अटके के अन्यना द्वारा आत्माभां उदीरित कराय छे, ते क्रोधने परप्रतिष्ठित क्रोध कहे छे अथवा पोताना द्वारा अन्य लोवाभा ने क्रोध उत्पन्न करावाय छे, तेनु नाम परप्रतिष्ठित क्रोध छे ।

आ कथननुं तात्पर्य अे छे के, पोते न आयरेला कार्यनुं अैहिक अपाय रूप इल समलने पोताना न आत्मा पर ने क्रोध उद्भवे छे, ते क्रोधने आत्मप्रतिष्ठित क्रोध कहे छे अने न्यारे कोर्ध जील व्यक्ति तेना आक्रोश



છાયા—દ્વિવિધાઃ સંસારસમાપન્નકા જીવાઃ પ્રજ્ઞપ્તાસ્તથથા—ત્રસાશ્ચૈવ સ્થા-  
વરાશ્ચૈવ । દ્વિવિધાઃ સર્વજીવાઃ પ્રજ્ઞપ્તાસ્તથથા—સિદ્ધાશ્ચૈવ અસિદ્ધાશ્ચૈવ । દ્વિવિધાઃ  
સર્વજીવાઃ પ્રજ્ઞપ્તાસ્તથથા—સેન્દ્રિયાશ્ચ અનિન્દ્રિયાશ્ચૈવ । एवमेवा गाथा स्पर्शनीया  
यावत् सशरीरिणश्चैव अशरीरिणश्चैव—“ સિદ્ધ ૧, સેન્દ્રિય ૨, કાયમ્ ૩, યોગો ૪,  
વેદઃ ૫, કપાયો ૬, છેશ્યા ચ ૭ । જ્ઞાનો ૮, પયોગા ૯, હારમ્ ૧૦, માપકઃ ૧૧,  
ચરમશ્ચ ૧૨ સશરીરી ૧૩ ॥ સૂ૦ ૪૪ ॥

ટીકા—‘ દુવિહા સંસાર૦ ’ ઇત્યાદિ ।

સંસરણં—ચતુર્ગતિપરિભ્રમણં સંસારઃ—નારકતિર્યગ્નરામરભવાનુભવલક્ષણસ્તં  
સં—સમ્યગ્ એકીભાવેન આપન્નાઃ—પ્રાપ્તાઃ સંસારસમાપન્નકાઃ, સ્વાર્થે ક પ્રત્યયઃ,  
સંસારિણ ઇત્યર્થઃ । તે દ્વિવિધાઃ—ત્રસા. સ્થાવરાશ્ચેતિ જીવાઃ સંસારિણ એવ સન્તિ  
ઉતાન્યેઽપિવા ? ઇતિચેત્—‘ સન્ત્યેવે ’—તિ પ્રદર્શનાય સમત્તિપક્ષાં ત્રયોદશશ્લોકી-

હસ પ્રકાર યે સ્વ પાપસ્થાન આગે કહે જાને વાલી ( સિદ્ધ ) ઇત્યાદિ  
ગાથા મેં કહે હુએ સિદ્ધ આદિ સે વિપરીત અસિદ્ધ આદિ તેરહ જીવોં મેં  
હી પાતે હૈં હસલિયે હનકે ભેદ ઘતલાતે હૈં—( દુવિહા સંસારસમાવન્નગા  
જાવા પળ્ણત્તા ) ઇત્યાદિ ।

ચારોં ગતિયોં મેં પરિભ્રમણ કરને કા નામ સંસાર હૈં યહ સંસાર  
નારક, તિર્યક્ નર ઓર દેવરભવોં કે અનુભવ કરને રૂપ હૈં હસ સંસાર  
કો જો એકીભાવ સે પ્રાપ્ત કર ચુકે હૈં વે સંસાર સમાપન્નક જીવ હૈં ।  
એસે યે સંસારસમાપન્નક જીવ સંસારી જીવ કહે ગયે હૈં યે સંસારી જીવ  
પ્રસ ઓર સ્થાવર કે ભેદ સે દો પ્રકાર કે હોતે હૈં યહી દ્વિવિધત્વ કી  
વાત—“ દુવિહા સ્વજીવા ” હસ સૂત્ર પાઠ દ્વારા પ્રકટ કી ગઈ હૈં તાત્પર્ય

આ અઠારે પાપસ્થાનકોના સદ્ભાવ અસિદ્ધ આદિ ૧૩ જીવોમા હોય  
છે “ સિદ્ધ ” ઇત્યાદિ જે ગાથા આગળ કહેવામાં આવવાની છે તે ગાથામાં  
જે સિદ્ધ આદિ જીવો પ્રકટ કર્યા છે, તેમના કરતાં વિપરીત આ અસિદ્ધ  
આદિ જીવો છે સૂત્રકાર તે અસિદ્ધ આદિ ૧૩ પ્રકારો હવે પ્રકટ કરે છે—

“ દુવિહા સંસારસમાવન્નગા જીવા પળ્ણત્તા ” ઇત્યાદિ.

ટીકાર્થ—ચાર ગતિઓમા પરિભ્રમણ કરવું તેતુ નામ સંસાર છે નારક, તિર્યચ,  
મનુષ્ય અને દેવલવોના અનુભવ કરવા રૂપ તે સંસાર છે આ સંસારને એકી  
ભાવથી ( સંસારમાં દુઃખ અને પાણીની જેમ એકરૂપ ) પ્રાપ્ત કરી ચુકેલા જે  
જીવો છે, તેમને સંસાર સમાપન્નક જીવો કહે છે. એવા સંસારસમાપન્નક  
જીવોને સંસારી જીવો કહ્યા છે તે સંસારી જીવો ત્રસ અને સ્થાવરના  
લેક્ષથી જે પ્રકારના છે. આ દ્વિવિધત્વની વાત જે “ દુવિહા સ્વજીવા ”

तदा यस्तद्विषयः क्रोध उपजायते स परप्रतिष्ठितः क्रोधः कथ्यते, इति । एवम्-  
अनेनवाऽऽलापकन यावत्-मिध्यादर्शनशस्य मानमारभ्य मिध्यादर्शनशस्यपर्यन्त  
विद्येयम् । तत्र ' जाव ' इति

यावच्छब्देन क्रोधानन्तर मानादीनामप्यादर्शानां पापस्यानानां प्रद्वेषं भवति ।  
एतेषां क्रोधादीनां सवेषे पामपि स्वविकल्पजनितपरविकल्पजनितत्वाभ्यां, स्वात्म-  
स्थितपरात्मस्थिताभ्यां वा स्वपरप्रतिष्ठितत्वमवधारणीयम् ॥ सू ४३ ॥

एवमेतानि सर्वाणि पापस्यानानि ' सिद्धे ' ति वक्ष्यमाणगायोरुक्तेषु सिद्धादि  
विपर्ययाऽसिद्धादिषु त्रयोदशस्वपि जीवेषु भवन्ति, पापस्यानानां स सारिण्येष  
सकृभावादिति तद्व्युत्पत्तिनाह—

मूलम्—दुविहा ससारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता, त जहा तहा  
चेव थावराचेव।दुविहा सब्वजीवा पण्णत्ता त जहा-सिद्धा चेव असि  
द्धा चेव । दुविहा सब्वजीवा पण्णत्ता त जहा-सइदिया चेव अणि  
दिया चेव । एव एसा गाहा फासेयव्वा जाव ससरीरी चेव  
असरीरी चेव—“ सिद्धेसइदियकाए३, जोगे४, वेए५, कसाय ६,  
लेसा७ य। णार्णुव ओगांहारे, भासेंग खेरिमे य ससेरीरी ॥सू०४४॥

उद्धावित होता है वह क्रोध आत्मप्रतिष्ठित कहलाता है । और जब कोई  
दूसरा व्यक्ति अपने आक्रोश आदि के द्वारा क्रोध करवाता है तब वह  
परप्रतिष्ठित कहलाता है । इसी आलापक से मिध्यादर्शनशस्य, तक  
अर्थात् मान से लेकर मिध्यादर्शनशस्यतक—ऐसा ही जानना चाहिये  
अर्थात् क्रोध से लेकर मानादिक अठारह पापस्यानों का ग्रहण होता है  
सो इन सब में स्वविकल्पजनित परविकल्पजनित इन दो भेदों को लेकर  
अपवा स्वात्मस्थित और परात्मस्थित इन दो को लेकर स्व और पर में  
प्रतिष्ठितत्व जानना चाहिये ॥ सू०४३ ॥

आदि द्वारा आपका आत्मा में क्रोध पैदा करावे छ, तबसे ते हीधने परप्रति-  
ष्ठित भवे छ मानसी लधने मिध्यादर्शनशस्य परन्तना पापस्यानानां पक्ष  
या प्रमाद्ये च समन्वु जेटते के स्वविकल्प जनित अने परविकल्प जनित  
अने छ सेदोनी अपेक्षाने ते प्रत्येकना पक्ष स्वात्मस्थित ( स्वात्मप्रतिष्ठित )  
अने परात्मस्थित ( परप्रतिष्ठित ) नामना लब्धे प्रमाए समल्ल सेना ॥सू ४३॥

पठितव्यानीभ्यर्थः । कियदवधि ? इत्याह—‘ जाव ’ इत्यादि—‘ सिद्ध ’ इत्यारभ्य  
 ‘ ससरीरीचेव असरीरीचेव ’ इत्यन्तम् । तामेवगाथामाह—‘ सिद्ध ’ इत्यादि । एषा  
 गाथा सप्रतिपक्षा वाच्या तथाहि—सिद्धाः—सिद्धजीवाः, असिद्धाः—सिद्धविपरीताः  
 १, सेन्द्रियाः—इन्द्रियसहिताः, अनिन्द्रियाः—इन्द्रियवर्जिताः २, एवं ‘ काए ’ त्ति  
 सकायाः—पृथिव्यादयस्तानाश्रित्य सर्वे जीवाः सप्रतिपक्षा वाच्याः । एवं सर्वाणि  
 व्याख्येयानि । वाचना चैवम्—“ सकायच्चेव २, अकायच्चेव, ३, सजोगच्चेव,  
 अजोगच्चेव ४, सवेयच्चेव अवेयच्चेव ५, इत्याद्यालापकाः सर्वत्र संयोज्याः ।  
 सकायाः—पृथिव्यादिषड्विधकाय—विशिष्टा संसारिणः, अकायास्तद्विन्नाः सिद्धाः  
 ३। सयोगाः—संसारिणः, अयोगाः—अयोगिनः सिद्धाश्च ४। सवेदाः—संसारिणः,

सशरीरी होते हैं । वह गाथा इस प्रकार से है—“ सिद्धसइन्द्रियकाए ”  
 इत्यादि । यहाँ यह गाथा सप्रतिपक्ष कहना चाहिये अर्थात्—इस गाथा  
 के अनुसार सिद्ध, सेन्द्रिय, आदि जीव यावत् सशरीरी तक अपने २  
 प्रतिपक्ष सहित कहना चाहिये—सिद्ध जीव, असिद्ध जीव, सेन्द्रिय  
 ( इन्द्रियसहित ) जीव, अनिन्द्रिय—इन्द्रियवर्जितजीव इस प्रकार सका-  
 यपृथिवीकाय आदि जीव इन सब को आश्रित करके समस्त जीव  
 सप्रतिपक्ष कहना चाहिये । जिस प्रकार सिद्ध असिद्ध १, सेन्द्रिय अनि-  
 न्द्रिय २ ये अपने २ प्रतिपक्ष सहित तेरह कहे गये हैं, इसी प्रकार से  
 पृथिवी आदि षड्विधकायविशिष्ट संसारी जीव, और तद्विन्न अकाय  
 जीव—सिद्ध जीव ३ सयोग संसारी जीव, और अयोग—चौदहवें गुण-  
 स्थानवर्ती जीव और सिद्ध जीव ४, सवेद—वेदसहित संसारी जीव

पतावनामां आवेद छे ते गाथा आ प्रमाणे छे—“ सिद्धसइन्द्रियकाए ”  
 इत्यादि. आ गाथा सप्रतिपक्ष ( प्रतिपक्ष सहित ) कडेवी नेधये ओटदे के  
 आ गाथाभां प्रकट करेता सिद्ध, सेन्द्रिय आदि सशरीरी पर्यन्तना एवो पोत  
 पोताना प्रतिपक्ष सहित कडेवा नेधये जेमके सिद्ध एव अने असिद्ध एव,  
 सेन्द्रिय एव अने अनिन्द्रिय एव, जेन् प्रमाणे सकाय पृथ्वीकाय आदि  
 एवोने आश्रित करीने समस्त एवोतुं तेमना प्रतिपक्ष सहित कथन थवुं  
 नेधये जेम सिद्ध—असिद्ध, अने (२) सेन्द्रिय—अनिन्द्रिय आ एवोने पोत-  
 पोताना प्रतिपक्ष सहित प्रकट करवाभां आन्धा छे, (३) जेन् प्रमाणे पृथ्वी  
 आदि षड्विधकाय विशिष्ट ( छकाय एवो ) संसारी एवो अने तेनाथी भिन्न  
 जेवां अकाय एवो—सिद्ध एवो, (४) सयोग संसारी एवो अने अयोग  
 १४ भां शुश्रूथानवर्ती एव अने सिद्ध एव, (५) सवेद ( वेद सहित )

માહ—‘ દુવિદ્યા સવ્યગ્રીયા ’ શ્વ્યાદિ । સર્વજ્ઞાવાઃ—સમસ્તપામિનઃ દ્વિવિધા પ્રજ્ઞાઃ ।  
 તદેવ પ્રકારદ્વયમાહ—મિદ્યા અસિદ્યામ્ । તન્ન સિદ્યન્તિ સ્મેતિ સિદ્યા કર્મપ્રપચ્ચ  
 નિર્મુક્તાઃ । અસિદ્યા—સદ્મિથાઃ ? । પુનરપિ સર્વનીવાનાં દ્વૈવિષ્યમાહ—‘ દુવિદ્યે ’—  
 ત્યાદિ સ્પષ્ટમ્ । નવરમ્—સેન્દ્રિયા અનિન્દ્રિયાએતિ । સત્ર સેન્દ્રિયાઃ—ઇન્દ્રિય સહિતાઃ  
 સસારિણ । અનિન્દ્રિયા—ઇન્દ્રિયરહિતા—અપર્યાસકાઃ, કેવલિનઃ, સિદ્યાશ્વેતિ  
 ૨ । પચમ્—અનેન પ્રકારેણ પચા—અનુપદ વચ્ચમાગા ગાયા—પસ્તુતસપતિવસમુત્તમ  
 યોદશી સપ્રાહકપચરૂપા સ્પર્શનીયા—અનુસરણીયા—પતદનુસારેણ ત્રયોદશાપિ સુમાણિ

હસ સૂત્ર જા પેસા હૈ કિ યહા પર કિસી ને પેસી આર્જાંકા કી કિ જીવ  
 સસારી હી હૈ યા ઓર મી જીવ હૈ ? તય ઉત્તર દિયા ગયા કિ અન્ય જીવ  
 મી હૈં હસી યાત કો વિસ્વાને કે લિયે હસ સપતિવક્ષ વ્રયોદશા ૧૬ સૂત્રો  
 કો સૂત્રકાર ને કહા હૈં હસકે યારા યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈં કિ સમસ્ત  
 પ્રાણી યો પ્રકાર કે કહે ગયે હૈં જૈસે યક સિદ્ધ ઓર દૂસરે અસિદ્ધ  
 હનમેં જો કર્મપ્રપચ્ચ સે રહિત હો જુકે હૈં યે સિદ્ધ હૈં ઓર જો કર્મપ્રપચ્ચ  
 સે રહિત નહીં હુય હૈં યે અમિદ્ધ જીવ હૈં હસી પ્રકાર સે સેન્દ્રિય ઓર  
 અનિન્દ્રિય કે મેદ્ સે મી સર્ચ જીવ યો પ્રકાર કે કહે ગયે હૈં હનમેં જો  
 ઇન્દ્રિયસહિત હૈં યે સેન્દ્રિય જીવ—સંસારી જીવ હૈં ઓર જો ઇન્દ્રિયો સે  
 રહિત હૈં પેસે યે અપર્યાસક, કેવલી ઓર સિદ્ધ ઇન્દ્રિયરહિત જીવ હૈં ૨  
 હસી પ્રકાર સે યહાં યહ ગાયા અનુસરણીય હૈં—કહાં તક કિ જીવ

આ સૂત્રપાઠ દ્વારા પ્રકટ કરવામાં આવી છે આ સૂત્રનું તાત્પર્ય એવું છે કે  
 ક્ષાય કેાધને એવી યજ્ઞ યામ કે શુભ લેવો સસારી જ હોય છે કે અસસારી  
 પણ હોય છે ખરાં ? તેના ઉત્તર એ છે કે સસારી સિવાયના લેવો પણ  
 છે ખરાં. એજ વાતનું પ્રતિપાદન કરતા માટે પ્રતિપક્ષ સહિતન્યા ૧૭ સૂત્રો  
 સૂત્રકારે કહ્યાં છે તેના દ્વારા એ પ્રકટ કરવામાં આનું છે કે સમસ્ત લેવો  
 બે પ્રકારના કહ્યા છે—એમકે સિદ્ધ અને અસિદ્ધ એ લેવો કર્મપ્રપચ્ચથી રહિત  
 યર્થ યુક્તયા છે તે લેવોને સિદ્ધ કહે છે અને એ લેવો કર્મપ્રપચ્ચથી રહિત  
 યજ્ઞ નથી તેમને અસિદ્ધ લેવો કહે છે ॥ ૧ ॥ એજ પ્રકારે સેન્દ્રિય અને  
 અનિન્દ્રિયના એકથી પણ લેવો બે પ્રકારના કહ્યા છે એ લેવો ઇન્દ્રિયોથી  
 યુક્ત છે તેમને સેન્દ્રિય લેવો કહે છે સસારી લેવોને સેન્દ્રિયોમા સમાવેશ  
 યાય છે એ લેવો ઇન્દ્રિયોથી રહિત છે તેમને અનિન્દ્રિય લેવો કહે છે  
 અપર્યાસક કેવલી અને સિદ્ધને અનિન્દ્રિય લેવોમાં સમાવેશ યાય છે ॥ ૨ ॥  
 એજ પ્રમાણે યશીરી અને અયશીરી લેવો પર્વન્તના પ્રકારે આ ગાયા દ્વારા

पठितव्यानीत्यर्थः । कियदवधि ? इत्याह—‘ जाव ’ इत्यादि—‘ सिद्ध ’ इत्यारभ्य  
 ‘ ससरीरीचेव असरीरीचेव ’ इत्यन्तम् । तामेवगाथासाह—‘ सिद्ध ’ इत्यादि । एषा  
 गाथा सप्रतिपक्षा वाच्या तथाहि—सिद्धाः—सिद्धजीवाः, असिद्धाः—सिद्धविपरीताः  
 १, सेन्द्रियाः—इन्द्रियसहिताः, अनिन्द्रियाः—इन्द्रियवर्जिताः २, एवं ‘ काए ’ त्ति  
 सकायाः—पृथिव्यादयरतानाश्रित्य सर्वे जीवाः सप्रतिपक्षा वाच्याः । एवं सर्वाणि  
 व्याख्येयानि । वाचना चैवम्—“ सकायच्चेव २, अकायच्चेव, ३, सजोगच्चेव,  
 अजोगच्चेव ४, सवेयच्चेव अवेयच्चेव ५, इत्याद्यालापकाः सर्वत्र संयोज्याः ।  
 सकायाः—पृथिव्यादिषड्विधकाय—विशिष्टा संसारिणः, अकायास्तद्भिन्नाः सिद्धाः  
 ३। सयोगाः—संसारिणः, अयोगाः—अयोगिनः सिद्धाश्च ४। सवेदाः—संसारिणः,

सशरीरी होते हैं । वह गाथा इस प्रकार से है—“ सिद्धसइन्द्रियकाए ”  
 इत्यादि । यहाँ यह गाथा सप्रतिपक्ष कहना चाहिये अर्थात्—इस गाथा  
 के अनुसार सिद्ध, सेन्द्रिय, आदि जीव यावत् सशरीरी तक अपने २  
 प्रतिपक्ष सहित कहना चाहिये—सिद्ध जीव, असिद्ध जीव, सेन्द्रिय  
 ( इन्द्रियसहित ) जीव, अनिन्द्रिय—इन्द्रियवर्जितजीव इस प्रकार सका-  
 यपृथिवीकाय आदि जीव इन सब को आश्रित करके समस्त जीव  
 सप्रतिपक्ष कहना चाहिये । जिस प्रकार सिद्ध असिद्ध १, सेन्द्रिय अनि-  
 न्द्रिय २ ये अपने २ प्रतिपक्ष सहित तेरह कहे गये हैं, इसी प्रकार से  
 पृथिवी आदि षड्विधकायविशिष्ट संसारी जीव, और तद्भिन्न अकाय  
 जीव—सिद्ध जीव ३ सयोग संसारी जीव, और अयोग—चौदहवें गुण-  
 स्थानवर्ती जीव और सिद्ध जीव ४, सवेद—वेदसहित संसारी जीव

अतापवामा आवेल छे ते गाथा आ प्रभाणु छे—“ सिद्ध सइन्द्रियकाए ”  
 इत्यादि. आ गाथा सप्रतिपक्ष ( प्रतिपक्ष सहित ) कडेवी जेधजे अटके छे  
 आ गाथांमां प्रकट करवा सिद्ध, सेन्द्रिय आदि सशरीरी पर्यन्तना जेवो पोत-  
 पोताना प्रतिपक्ष सहित कडेवा जेधजे जेमके सिद्ध जेव अने असिद्ध जेव,  
 सेन्द्रिय जेव अने अनिन्द्रिय जेव, जेज प्रभाणु सकाय पृथ्वीकाय आदि  
 जेवोने आश्रित करीने समस्त जेवोनु तेमना प्रतिपक्ष सहित कथन थवु  
 जेधजे. जेम सिद्ध—असिद्ध, अने (२) सेन्द्रिय—अनिन्द्रिय आ जेवोने पोत-  
 पोताना प्रतिपक्ष सहित प्रकट करवांमां आव्या छे, (३) जेज प्रभाणु पृथ्वी  
 आदि षड्विधकाय विशिष्ट ( छकाय जेवो ) संसारी जेवो अने तेनाथी भिन्न  
 जेवां अकाय जेवो—सिद्ध जेवो, (४) सयोग संसारी जेवो अने अयोग  
 १४ मां गुणस्थानवर्ती जेव अने सिद्ध जेव, (५) सवेद ( वेद सहित )



અવેદાઃ-મનિહૃષિનાદરસમ્પરાયવિશેષાદયઃ પદ્, સિદ્ધાશ્વ ૫। સકાપાયા-  
 સુક્ષ્મસમ્પયાન્તાઃ, અકપાયાઃ-ઉપશ્ચાન્તમોહાદયમરવારઃ, સિદ્ધાશ્વ ૬। સહેશ્વા-  
 સયોગિગુણસ્થાનપર્યન્તાઃ સસારિણઃ, અલેશ્યાઃ-અયોગિનઃ સિદ્ધાશ્વ ૭। જ્ઞાનિના-  
 સમ્યગ્દષ્ટિઃ, અજ્ઞાનિનઃ-મિથ્યાદષ્ટિઃ ૮। ઉપયોગિનઃ-સાકારોપયુક્તા, અનાકારો-  
 પયુક્તાશ્ચેતિ દ્વિવિધાઃ, સહ આકારેણ-વિશેષાંશ્રમણશ્ચક્તિરૂપેણ પર્યંતે ચ  
 ઉપયોગઃ સ સાકારોપયાગઃ જ્ઞાનોપયોગ इत्यર્થ, તેનોપયુક્તાઃ સાકારોપયુક્તાઃ,  
 અનાકારસ્તુ તદ્વિચ્છેદન-ઉપયોગ વર્ધનોપયોગ इत्यર્થઃ તેનયુક્તા અનાકારોપયુક્તાઃ।

ઔર અષ્ટ-વેદરહિત ૯-૧૦-૧૧-૧૨ ૧૩ ઔર ૧૪ વાં ગુણસ્થાનવર્તી  
 જીવ ઔર મિદ્ધ જીવ ૫, કપાયસહિત-સસારી જીવ-સુક્ષ્મસંપરાયતક  
 કે જીવ, ઔર અકપાય જીવ-ઉપશાન્તમોહાદિક ચાર જીવ ઔર સિદ્ધ  
 ૬, સહેશ્ય જીવ-સયોગિગુણસ્થાનતક કે જીવ સંસારી જીવ, ઔર  
 અહેશ્ય જીવ-અયોગિ જીવ ૫થ સિદ્ધ જીવ ૭, જ્ઞાની જીવ સમ્યગ્દષ્ટિ  
 જીવ ૫થ અજ્ઞાની જીવ મિથ્યાદષ્ટિ જીવ ૮, ઉપયોગ વો પ્રકારકા હોતા હૈ  
 પક સાકારોપયોગ ઔર દુસરા અનાકારોપયોગ સાકારોપયોગ સે જો જીવ  
 યુક્ત હોતા હૈ વહ સાકારોપયોગ યુક્ત જીવ હૈ ઔર અનાકારોપયોગ સે  
 જો જીવ યુક્ત હોતા હૈ વહ અનાકારોપયોગ યુક્ત જીવ હૈ જો ઉપયોગ  
 વિશેષોકો ગ્રહણ કરનેકી શક્તિરૂપ આકારસે યુક્ત હૈ વહ સાકારો-  
 પયોગ હૈ હુસકા દુસરા નામ જ્ઞાનોપયોગ હૈ । હુસ ઉપયોગસે  
 મિદ્ધ જો ઉપયોગ હૈ વહ અનાકારોપયોગ હૈ-હુસ અનાકારોપયોગ

સસારી ૭૩ અને અવેદ ( વેદ રહિત ) ૬, ૧૦, ૧૧, ૧૨, ૧૩ અને ૧૪  
 માં ગુણસ્થાનવર્તી ૭વે અને સિદ્ધ ૭વે, (૧) સકાપાથી સસારી ૭વે-સુક્ષ્મ  
 સાંપરાય પયન્તના ૭વે અને અકપાથી ૭વે-ઉપશાન્ત મોહાદિક ચાર અને  
 સિદ્ધી, (૭) સહેશ્ય ૭વે-અયોગિ ગુણસ્થાન પર્યન્તના ૭વે-સસારી ૭વે  
 અને અહેશ્ય ૭વે-અયોગિ ૭વે અને સિદ્ધ ૭વે, (૮) જ્ઞાની ૭વે-સમ્યગ્  
 દષ્ટિ ૭વે અને અજ્ઞાની ૭વે-મિથ્યાદષ્ટિ ૭વે, (૬) સાકારોપયોગ અને  
 અનાકારોપયોગયુક્ત ૭વે ( ઉપયોગ વે પ્રકારના હે-એક સાકારોપયોગ અને  
 બીજે અનાકારોપયોગ ) ને ૭૩ સાકારોપયોગથી યુક્ત હોય છે તેને સાકારોપયોગ  
 યુક્ત કહે છે અને અનાકાર ઉપયોગથી યુક્ત ૭૩ને અનાકારોપયોગયુક્ત કહે  
 છે ને ઉપયોગ વિશેષાંશને મહત્વ કરવાની શક્તિરૂપ આકારથી યુક્ત હોય છે  
 તેનું નામ સાકારોપયોગ છે તેનું બીજું નામ જ્ઞાનોપયોગ છે આ ઉપયોગથી  
 ભિન્ન ને ઉપયોગ છે તેનું નામ અનાકારોપયોગ અથવા અજ્ઞાનોપયોગ છે



एते च संसारिणः सिद्धाश्च मरणामरणधर्मधीलाः, अपञ्चस्तमश्चस्तमरमत  
श्वेते भवन्तीति प्रश्नस्तामश्चस्तमरणनिरूपणं कुर्वन् नवसूत्री माह—

सूत्रम्—दो मरणाह् समणेणं भगवया महावीरेणं सम  
णेणं णिग्गंधाणं णो णिच्च वञ्चियाह्, णो णिच्च कित्तियाह्, णो  
णिच्चं बुद्धयाह्, णो णिच्च पसत्तियाह्, णो णिच्च अञ्जणुञ्जा  
याह् भवन्ति, त जहा—बलायमरणे चैव वसह्मरणे चैव १ ।  
एव णियाणमरणे चैव तद्धभवमरणे चैव २, गिरिपढणे चैव तरु  
पढणे चैव ३, जलप्पवेसे चैव जलणप्पवेसे चैव ४, विसमक्खणे  
चैव सत्थोवाहणे चैव । दो मरणाह् जाव णो णिच्च अञ्जणु  
ञ्जायाह् भवति, कारणेण पुण अप्पडिक्कट्टाह्, त जहा—वेहाणसे  
चैव गिद्धपट्टे चैव ६ । दो मरणाह् समणेणं भगवया महावी  
रेण समणाण णिग्गंधाणं णिच्च वञ्चियाह् जाव अञ्जणुञ्जायाह्  
भवति, त जहा—पाओवगमणे चैव, भत्तपच्चक्खाणे चैव ७ ।  
पाओगमणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—णीहारिमे चैव अणीहा  
रिमे चैव नियम अपाडिक्कमे ८ । भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते तं  
जहा णीहारिमे चैव अणीहारिमे चैव नियम सपडिक्कमे ९ ॥ सू ४५ ॥

सशरीरी जीव—यथा समय पांच प्रकार के शरीरों से जिनके आत्मप्र  
वेश युक्त हो रहे हैं ऐसे जीव और अशरीरीजीव—शरीररहित सिद्ध  
जीव ११ ॥ सू० ४४ ॥

ये संसारी जीव और सिद्धजीव क्रमशः मरण धर्म आर अमरण  
धर्मधील होते हैं मरण प्रशास्त और अमरणप्रशास्त भेद से दो प्रकार का  
प्रशास्त शरीरधी अमरना आत्मप्रदेशो मुक्त भवति इत्यादि अनेक अनेक  
अशरीरी अथ—शरीर रहित सिद्ध अथ ॥ सू ४४ ॥

ये संसारी अथ अने सिद्ध अथ अनुक्रमे मरणधर्म अने अमरण  
धर्मधील होय अने मरणप्रशास्त अने अमरणप्रशास्त, अनेक अने अनेक

छाया—द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नो नित्यं वर्णिते, नो नित्यं कीर्तिते, नो नित्यं व्युदिते, नो नित्यं प्रशंसिते, नो नित्यं अभ्यनुज्ञाते भवतः, तद्यथा—वलन्मरणं चैव वशार्त्तमरणं चैव १। एवं निदानमरणं चैव तद्भवमरणं चैव २, गिरिपतनं चैव तरुपतनं चैव ३, जलपवेशश्चैव ष्वलनपवेशश्चैव ४, त्रिषभक्षणं चैव शस्त्रावपाटनं चैव ५। द्वे मरणे यावत् नो नित्यम् अभ्यनुज्ञाते भवतः, कारणेन पुनरप्रतिक्रुष्टे, तं जहा-वैहायसं चैव गृध्र-पृष्ठं चैव ६। द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नित्यं वर्णिते यावद् अभ्यनुज्ञाते भवतः, तद्यथा—पादपोपगमनं चैव भक्तप्रत्याख्यानं चैव ७। पादपोपगमनं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—निर्हारिमं चैव नियमाद् अप्रतिकर्म ८। भक्तप्रत्याख्यानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—निर्हारिमं चैव, अनिर्हारिमं चैव नियमात् सप्रतिकर्म ९ ॥ सू० ४५ ॥

टीका—‘ दो मरणाहं ’ इत्यादि—सुगमम् । नवरम्—द्वे मरणे नो—नैव वर्णिते—उपादेयतया न कथिते । नो कीर्तिते—उपादेयतया न निरूपिते । नो व्युदिते—व्यक्तवाचा न निगदिते । नो प्रशंसिते—न श्लाघिते नो अभ्यनुज्ञाते—‘कुरु’ इति रूपेण नानुमते । तदेवाह—वलन्मरणं वशार्त्तमरणं चेति । तत्र—वलनां—संयमान्निवर्त्तमानानां मरणं वलन्मरणम् एतद् भगवत्प्रपरिणामानां व्रतिनामेव भवति

होता है सो अब सूत्रकार इसी मरण का निरूपण इस नवसूत्री से करते हैं—( दो मरणाहं समणेणं भगवया महावीरेण ) इत्यादि ।

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीर ने दो मरण श्रमण निर्ग्रन्थों को उपादेय रूप से नहीं कहे हैं। उपादेय रूप से उन्हें निरूपित नहीं किया है व्यक्त वचन द्वारा उन्हें प्ररूपित नहीं किया है उनकी श्लाघा—प्रशंशा नहीं की है तुम इन्हें करो—अर्थात् इन मरणों से मरो इस प्रकार के इनकी अनुमोदना नहीं की है वे दो मरण ये हैं—एक वलन्मरण और दूसरा वशार्त्तमरण संयम से भ्रष्ट हुए जीवों का मरण होता है वह वलन्मरण है

सूत्रकार छे नीडेनां नव सूत्रे दारा ते भरल्लुत्तु निरूपल्लु करे छे—

“ दो मरणाहं समणेणं भगवया महावीरेण ” इत्यादि—

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीर ने प्रकारना भरल्लुत्तुने श्रमणु निग्रन्थे भाटे उपादेयरूप कथां नथी, ते भरल्लुत्तुने तेभल्लु उपादेय रूपे निरूपित कथां नथी, व्यक्त वचने दारा तेभने प्ररूपित कथां नथी, तेभनी प्रशंसा ( श्लाघा ) करी नथी, तेभनी अनुमोदना करी नथी ते छे भरल्लुत्तु नीचे प्रभाल्लु समज्जवा (१) वलन्मरण (२) वशार्त्तमरण. संयमथी भ्रष्ट थथेला लुत्तुनां ने भरल्लु

एते च सप्तारिण सिद्धाश्च मरणामरणधर्मशीलाः, अप्रशस्तपशस्तमरणव  
चैते मरन्तीति प्रशस्तामशस्तमरणनिरूपणं कुर्वन् नचसूत्री माह—

मूष्य—दो मरणाद् समणेणं भगवया महावीरेणं सम  
णेणं णिग्गंधाणं णो णिच्च वस्त्रियाइ, णो णिच्च कित्तियाइ, णो  
णिच्चं बुइयाइ, णो णिच्च पससियाइ, णो णिच्च अब्भणुत्ता  
याइ भवन्ति, त जहा—बलायमरणे चैव वसहमरणे चैव १ ।  
एव णियाणमरणे चैव तब्भवमरणे चैव २, गिरिपट्टणे चैव तरु  
पट्टणे चैव ३, जलप्पवेसे चैव जलणप्पवेसे चैव ४, विसभक्खणे  
चैव सरथोवाट्टणे चैव । दो मरणाइ जाव णो णिच्च अब्भणु  
त्तायाइ भवति, कारणेण पुण अप्पडिकुट्टाई, त जहा—वेहाणसे  
चैव गिद्धपट्टे चैव ६ । दो मरणाइ समणेणं भगवया महावी  
रेण समणाण निग्गंधाण णिच्च वस्त्रियाई जाव अब्भणुत्तायाई  
भवन्ति, त जहा—पाओत्रगमणे चैव, भत्तपच्छक्खाणे चैव ७ ।  
पाओगमणे दुविहे पण्णत्ते, त जहा—णीहारिमे चैव अणीहा  
रिमे चैव नियम अपडिक्कमे ८ । भत्तपच्छक्खाणे दुविहे पण्णत्ते तं  
जहा णीहारिमे चैव अणीहारिमे चैव णियम सपडिक्कमे ९ ॥ सू ४५ ॥

सशरीरी जीव—यथा सभय पांच प्रकार के शरीरों से जिनके आत्मप्र  
वेश युक्त हो रहे हैं ऐसे जीव और अशरीरीजीव—शरीररहित सिद्ध  
जीव ११ ॥ सू०४४ ॥

ये संसारी जीव और सिद्धजीव क्रमशः मरण धर्म और अमरण  
धर्मशील होते हैं मरण प्रशस्त और अप्रशस्त भेद से दो प्रकार का  
प्रकारना शरीरीकी नेमना आत्मभेदी। मुक्त धर्म रक्षा के लिये लोच, अने  
अशरीरी लव-शरीर रक्षित सिद्ध लव ॥ सू ४४ ॥

ते संसारी लव अने सिद्ध लव अनुक्रमे भक्ष्यधम अने अमरव  
धर्मशील दोष के भवन्त्या प्रशस्त अने अप्रशस्त, केवा ने वेद के

छाया—द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नो नित्यं वर्णिते, नो नित्यं कीर्तिते, नो नित्यं व्युदिते, नो नित्यं प्रशंसिते, नो नित्यं अभ्यनुज्ञाते भवतः, तद्यथा—वलन्मरणं चैव वशार्त्तमरणं चैव १। एवं निदानमरणं चैव तद्भवमरणं चैव २, गिरिपतनं चैव तरुपतनं चैव ३, जलपवेशश्चैव वलनपवेशश्चैव ४, विषभक्षणं चैव शस्त्रापटनं चैव ५। द्वे मरणे यावत् नो नित्यम् अभ्यनुज्ञाते भवतः, कारणेन पुनरप्रतिक्रुष्टे, तं जहा—वैहायसं चैव गृध्रपृष्ठं चैव ६। द्वे मरणे श्रमणेन भगवता महावीरेण श्रमणानां निर्ग्रन्थानां नित्यं वर्णिते यावद् अभ्यनुज्ञाते भवतः, तद्यथा—पादपोषगमनं चैव भक्तप्रत्याख्यानं चैव ७। पादपोषगमनं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—निर्हारिमं चैव नियमाद् अप्रतिकर्म ८। भक्तप्रत्याख्यानं द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—निर्हारिमं चैव, अनिर्हारिमं चैव नियमात् सप्रतिकर्म ९ ॥ सू० ४५ ॥

टीका—‘दो मरणाइं’ इत्यादि—सुगमम् । नवरम्—द्वे मरणे नो—नैव वर्णिते—उपादेयतया न कथिते । नो कीर्तिते—उपादेयतया न निरूपिते । नो व्युदिते—व्यक्तवाचा न निगदिते । नो प्रशंसिते—न श्लाघिते नो अभ्यनुज्ञाते—‘कुरु’ इति रूपेण नानुमते । तदेवाह—वलन्मरणं वशार्त्तमरणं चेति । तत्र—वलनां—संयमान्निवर्त्तमानानां मरणं वलन्मरणम् एतद् भयव्रतपरिणामानां व्रतिनामेव भवति

होता है सो अब सूत्रकार इसी मरण का निरूपण इस नवसूत्री से करते हैं—(दो मरणाइं समणेण भगवया महावीरेण) इत्यादि ।

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीर ने दो मरण श्रमण निर्ग्रन्थों को उपादेय रूप से नहीं कहे हैं। उपादेय रूप से उन्हें निरूपित नहीं किया है व्यक्त वचन द्वारा उन्हें प्ररूपित नहीं किया है उनकी श्लाघा—प्रशंसा नहीं की है तुम इन्हें करो—अर्थात् इन मरणों से मरो इस प्रकार के इनकी अनुमोदना नहीं की है वे दो मरण ये हैं—एक वलन्मरण और दूसरा वशार्त्तमरण संयम से भ्रष्ट हुए जीवों का मरण होता है वह वलन्मरण है

सूत्रकार छुवे नीचेनां नव सूत्रे द्वारा ते भरषुनु निरूपणु करे छे—

“दो मरणाइं समणेण भगवया महावीरेण” इत्यादि—

टीकार्थ—श्रमण भगवान् महावीर ने प्रकारना भरषुने श्रमणु निग्रन्थे भाटे उपादेयरूप कथां नथी, ते भरषुने तेमणु उपादेय रूपे निरूपित कथां नथी, व्यक्त वचनेन द्वारा तेमने प्ररूपित कथां नथी, तेमनी प्रशंसा (श्लाघा) करी नथी, तेमनी अनुमोदना करी नथी ते छे भरषु नीचे प्रभाणु समज्जवा (१) वलन्मरणु (२) वशार्त्तमरणु. सयमथी भ्रष्ट थयेला जिवानां ने भरषु

અન્યેષાં સયમયોગાનામેવાસમ્મવાત્ ૧। ષષ્ઠાત્તાનામ્—ઇન્દ્રિયવશ્ચવર્તિનાં યત્ સ્મિન્ઘ  
 દીપકલિકાલોકનાકુલિતશ્ચમાનામિષ મરણ તત્ ષષ્ઠાત્તમરણમ્, તત્કથ —

“ સમમજોગવિસમા, મરંતિ જે તં ષષ્ઠાય મરણ તુ ।

ઈન્દિય વિસયવસગયા, મરંતિ જે ત વસકું તુ ॥ ૧ ॥ ”

જાયા—સયમયોગવિષ્ણા ત્રિપત્તે ચે તત્ ષષ્ઠાત્તમરણ તુ ।

ઈન્દ્રિયવિષયવશગતા ત્રિપત્તે ચે તત્ ષષ્ઠાત્તમરણ ॥ ૧ ॥ ઈતિ ।

‘ એવ નિયામમરણે ’ ઈત્યાદિ—એવમિતિ પૂર્વોક્તાલાપકાનુસારેનોચરસૂત્રે અપિ  
 વિદ્યેયમિતિ સૂચનાર્થમ્ । નિશાનમ્—નિવાપતે—હ્યતે આનન્દરસોપેતમોક્ષફલા

યહ મરણ મગ્નવ્રતપરિણામવાલે વ્રતી ઝીર્ષો કો હી હોતા હૈ ક્યોં કિ  
 અન્ય ઝીર્ષો કે સયમયોગોં કી હી સમાવના નહીં હોતી હૈ ઈન્દ્રિયોં કે  
 ષષ્ઠાત્તીં હુપ ઝીર્ષોં કા જો સ્મિન્ઘદીપકલિકા ( સતૈલ જલતે ઘી  
 પકલિકા ) કે અલોકન સે આકુલિત હુપ શાલમોં કી તરહ મરણ  
 હોતા હૈ યહ ષષ્ઠાત્તમરણ હૈ ।

કહા મી હૈ—( સમમજોગવિસમા ) ઈત્યાદિ ।

સંજમયોગ સે ત્રિપણ્ણ ( ઘટ ) હુપ ઝીર્ષોં કા જો મરણ હોતા હૈ  
 યહ મરણ ષલપમરણ હૈ ઓર ઈન્દ્રિય કે વિષયોં સે આર્ત્ત વને હુપ ઝીર્ષોં  
 કા જો મરણ હોતા હૈ યહ ષષ્ઠાત્ત મરણ હૈ “ એવ નિયામમરણે ” ઈતી  
 પૂર્વોક્ત આલાપક કે અનુસારસૂત્રોં મેં મી જાનના ચાહિયે અર્થાત્ નિવાન  
 મરણ ઓર તદ્ભવમરણ મી શ્રમણ મગવાન્ મહાવીર ને નિર્ગમ્યોં કે લિયે  
 અચ્છા નહીં કહા હૈ જિસ પ્રકાર પરશુ ( કુટાર ) દ્વારા લતા કાટ ઘી  
 જાતી હૈ ઠસી પ્રકાર સે જિસ મરણ કે દ્વારા આનન્દરસોપેતમોક્ષફલ

યાય છે તે મરણને વશ મરણ કહે છે આ પ્રકારના મરણ અમરત પરિણામ  
 વાળા વ્રતી હોવાના જ યાય છે કારણ કે અન્ય હોવામાં તે સમયયોગની  
 સમાવના જ હોવી નથી સમયતા હોવાની તરફ આકર્ષાઈને મરણ પામતાં  
 પત ત્રિશાલોની જેમ ઇન્દ્રિયોને અપીન બનેલાં હોવાનાં જે મરણ યાય છે તે  
 મરણનું નામ ષષ્ઠાત્તમરણ છે કહ્યું પણ છે કે—‘ સમમજોગવિસમા ’ ઈત્યાદિ.

સમયયોગથી વિષય ( ઘટ ) ઘટેલા હોવાનું જે મરણ યાય છે તે  
 મરણને વશમરણ કહે છે, અને ઇન્દ્રિયોના વિષયોથી આત્ત બનેલા હોવાનું  
 જે મરણ યાય છે તે મરણને ષષ્ઠાત્તમરણ કહે છે ‘ એવ નિયામમરણ ’  
 આ પૂર્વોક્ત આલાપકના જેનું જ કથન હોવાનાં સૂત્રોમાં પણ શ્રદ્ધા કરતું  
 એકજે એવે કે નિશાન મરણ અને તદ્ભવ મરણ પણ અમલ નિર્ગમ્યોને  
 માટે અમવાન મહાવીરે આઈ કહ્યું નથી. જે રીતે કુહાડી વડે લતાને કાપી

ज्ञानाधाराधनालता येन परशुनेव देवेन्द्रादिगुणद्धिप्रार्थनाध्यवसायेन तत्तथोक्तम्—  
दिव्यमानुषऋद्धिसंदर्शनश्रवणाभ्यां तदभिलाषानुष्ठानमित्यर्थः, तत्पूर्वकं मरणं  
निदानमरणम् । यस्मिन् भवे जीवो वर्त्तते तद्भवयोग्यमेवायुष्कं वद्धा पुनर्त्रियमा-  
णस्य यन्मरणं तत् तद्भवमरणम् । एतद्धि संख्यातायुष्ककर्मभूमिजनरतिरश्वासेव  
भवति, तेषामेव तद्भवयुर्वन्धसद्भावात् पुनस्तत्रैवोत्सृष्टेः । तत्किं तेषां सर्वेषामेव  
भवति ? न, तेषां तद्भवोपादानुरूप एवायुष्कर्मोपचयो भवति, तेषामेव तद्भवमरणं  
जायते नान्येषामिति । उक्तञ्च—

वाली ऐसी ज्ञानादिरूप आराधनालता देवेन्द्रगुणद्धि की प्राप्ति की आकांक्षा  
से नष्ट कर दी जाती है वह निदानमरण है दिव्य अथवा मानुष-संबंधी  
ऋद्धि के दर्शन और श्रवण से आगामी भवमें इस की चाहना करना  
और इस चाहना पूर्वक ही मरण करना इसका नाम निदानमरण है जिस  
भव में जीव है तद्भव योग्य ही आयुष्क का बंध करके पुनः त्रियमाण  
जीव का जो मरण है वह तद्भवमरण है यह मरण संख्यातवर्ष की  
आयु वाले कर्मभूमिज मनुष्य-तिर्यञ्चों के ही होता है, युगलों के नहीं।  
क्योंकि उनके ही तद्भव की आयु के बन्ध का सद्भाव होता है। इससे  
वे वहीं पर उत्पन्न हो जाते हैं।

शंका—क्या यह तद्भवमरण उन सब के ही होता है ?

उत्तर—ऐसा नियम नहीं है जिन जीवों के तद्भवोपादानानुरूप ही  
आयुष्क कर्म का उपचय होता है उनके ही यह तद्भवमरण होता है

नाभवाभां आवे छे अण प्रभाण्णे णे मरुण्णु द्वारा आनन्द रसोपेन मोक्षइल-  
वाणी ज्ञानादिरूप आराधना लताने देवेन्द्र गुणवृद्धिनी प्राप्तिनी अलिखापाने  
कारण्णे नष्ट करी नाभवाभा आवे छे ते मरुण्णुने निदान मरुण्णु कडे छे अट्टे  
के दिव्य अथवा मानुष संबंधी ऋद्धिनां दर्शन थवाथी अथवा तेनी वात  
सांलजवाथी आगामी लवभा तेनी आडना करवी अने ते आडनापूर्वकं मरुं  
तेनुं नाम निदान मरुण्णु छे णे लवभां लव होय ते लवने योग्य ण आयुष्य-  
ने अंध करीने पुन त्रियमाण (मरता) लवनु णे मरुण्णु छे ते मरुण्णुने तद्भव  
मरुण्णु कडे छे. आ प्रकारनु मरुण्णु स भ्यात वर्षनां आयुष्यवाणा कर्म भूमि ण  
नरतिर्यञ्चाना ण थाय छे—युगलाना थतां नथी. कारण्णु के तद्भवना आयुना अन्धने।

सद्भाव ते लवोभा ण होय छे, तेथी तेओ त्यां ण करी उत्पन्न थछे णय छे

शंका—शुं ते अधानुं तद्भव मरुण्णु ण थाय छे ?

उत्तर—अवे नियम नथी णे लवो द्वारा तद्भव उपादानने अनुत्पन्न ण  
आयुष्ककर्मने उपचय थाय छे, तेओ ण ते तद्भव मरुण्णु भरे छे—अन्य



“ મોતુ અકમ્મભૂમિ ય નરતિરિણ સુરગણે ય નૈરણ્ય ।

સેસાણ ઓઞાણ તદ્ધવમરણ્ય તુ કેવિમિષિ ॥ ૧ ॥ ”

છાયા—મુક્તરા અકર્મ ભૂમિમ્ન નરતિરિગ્ઞઃ સુરગણાન્ ચ નૈરપિકાન્ ।

શ્વપાયાં જીવાનાં તદ્ધવમરણં તુ કેવાશ્ચિત્ ॥ ૧ ॥ ૨।

ગિરિપતન-તરુપતન ૩-ગન્ધપ્રવેશ-જ્વલનમવેશ ૪-વિષમધ્મમરણાનિ પ્રસિદ્ધાનિ । શસ્ત્રાવપાટનમ્ પ્લક્ષેગ-કરપખાદિના અવપાટન-સ્વશરીરસ્ય નિદારણ્ય પસ્મિન્ તથાચોર્થત મરણમ્ ૫। ‘ દો મરણાઃ ’ इत्यादि । वक्ष्यमाणे द्वे मरणे भवणेन भगवता महावीरण्य ‘ जात्र ’ इति ‘ नो नित्यवर्षिते ’ इत्याख्य यावत्

અ-પ જીવોં કે નહીં । વહા મી છે—( મોતુ અકમ્મભૂમિ ય ) इत्यादि ।

અકર્મભૂમિ કે નર તિર્યંચોં ફો, દેવગણોં વો, ઓર નૈરણ્યોં વો ઓફર કે શોપ જીવોં કે વહ તદ્ધવમરણ્ય હોતા છે શોપ જીવોં મેં મી સપ વો વહ મરણ્ય નહીં હોના છે કિન્તુ કિસી ૨ કે હી હોતા છે હસી તગ્હ સે પર્યં સે ગિરને પર જો મરણ્ય હો જાતા છે વહ ગિરિપતન મરણ્ય છે, વૃક્ષ સે ગિરને પર જો મરણ્ય હોતા છે વહ તરુપતન મરણ્ય છે જલ મેં ટૂપ જાને પર જો મરણ્ય હો જાતા છે વહ જલપ્રવેશમરણ્ય છે, અગ્નિ મેં પ્રવેશ કરને સે જો મરણ્ય હોતા છે વહ જ્વલનપ્રવેશમરણ્ય છે વિષમધ્મણ્ય કરને પર જો મરણ્ય હો જાતા છે વહ વિષમધ્મણ્યમરણ્ય છે તથા શસ્ત્ર-કરપત્ર-(કરખન) આદિ સે અપને શરીર વા જો વિદારણ્ય હો જાને પર મરણ્ય હો જાતા છે વહ શસ્ત્રાવપાટનમરણ્ય છે જન મરણોં સે મરના મી

એવોની બાબતમાં એવું બનતું નથી કહ્યું પણ છે કે-‘ મોતુ અકમ્મભૂમિ ય ’ ઈત્યાદિ

અકમ્મભૂમિના નર તિર્યંચો, દેવગણો અને નારકો સિવાયના એવો તદ્ધવ મરણ્યથી મરે છે તે એવોમાં પણ અર્થ એવો છે પ્રકારતા મરણ્યથી મરતાં નથી પરંતુ કોઈ કોઈ એવો જ એ મરણ્યથી મરે છે

ગિરિપતન મરણ્ય—પર્વતપરથી પડી જવાને કીધે જે મરણ્ય થાય છે, તેને ગિરિપતન મરણ્ય કહે છે વૃક્ષપરથી પડી જવાને કીધે જે મરણ્ય થાય છે તેને તરુપતન મરણ્ય કહે છે પાણીમાં ડૂબી જવાથી જે મરણ્ય થાય છે તેને જલપ્રવેશ મરણ્ય કહે છે અગ્નિમાં પ્રવેશ કરવાથી જે મરણ્ય થાય છે તેને જ્વલનપ્રવેશ મરણ્ય કહે છે જેર ખાવાથી જે મરણ્ય થાય છે, તેને વિષ ભક્ષણ મરણ્ય કહે છે ક્ષયત આદિ શસ્ત્રો વટે શરીરનું વિદારણ્ય થવાથી જે મરણ્ય થાય છે તેને શસ્ત્રાવપાટન મરણ્ય કહે છે ગિરિપતન મરણ્ય આદિ મરણ્યોથી મરતું તે અમણ્ય જનવાન મહાવીરે અમણ્ય નિભયે માટે પ્રશસ્ત કહ્યું

नो नित्यमभ्यनुज्ञाते-वक्ष्यमाणमरणद्वयेन गुनीनां मरणं निषिद्ध भगवत्तेत्यर्थः ।  
अत्रापवादमाह-‘ कारणेणपुग ’ इत्यादि, किन्तु-कारणेन कारणमाश्रित्य दर्शनमा-  
लिन्य शीलभङ्गादिकारणे समुपस्थिते सति तद्रक्षणार्थमित्यर्थः, उदायिनृपानुभू-  
ततथाविधाचार्यवत् ते द्वे अपि मरणे अपतिक्रुष्टे-अनिवारिते-ननिषिद्धे भगव-  
त्तेत्यर्थः । तदेवाह-वैहायसं-गृध्रपृष्ठं चेति । तत्र वृक्षशाखादायुव्वद्धत्वाद्  
विहायसि नभसि भवं वैहायसं गलपाशेन मरणमित्यर्थ । गृध्रपृष्ठं-गृघाः-मृत-  
कभक्षकपक्षिविशेषा , उपलक्षणं शकुनिका शिवादीनां, तैर्भक्ष्यं पृष्ठमुपलक्षणत्वाद्-  
दरादिकं वा त्रियमाणस्य यस्मिन् तत् तथोक्तम्, अस्मिन् हि-अलक्तक ( लाक्षा-  
रस ) पूणिकापुटपानेनापि शरीरं पृष्ठादौ गृघ्रादिभिरनिवारणादिना भक्ष्यते ।

मुनिजनों के लिये श्रमण भगवान् महावीर ने निषिद्ध किया है इसी प्रकार श्रमण भगवान् महावीर ने मुनिजनों के लिये इन दो मरणों से मरना भी निषिद्ध किया है. वे दो मरण ये हैं एक वैहायस और दूसरा गृध्रपृष्ठ परन्तु यदि दर्शनमालिन्य, शीलभङ्गादिरूप कारण की उपस्थिति होती है तो उनकी रक्षा के लिये उस समय ये दोनों मरण उदायि नृपानुभूततथाविध आचार्य की तरह मुनिजनों के लिये श्रमण भगवान् महावीर ने निषिद्ध भी नहीं किये हैं । गले में फांसी लगाकर मरना इसका नाम वैहायस मरण है । जो मरण वृक्षशाखा आदि में रस्सी आदि डालकर और उमका फंदा बनाकर उस फंदे को गले में डालने से त्रियमाण जीव मर जाता है वह वैहायस मरण है जिस मरण में त्रियमाण के शरीर को भक्षण करने वाले गृध्र, शकुनिका, शिवा आदि जीव खा जाते हैं वह गृध्रपृष्ठमरण है इस मरण में त्रियमाण के शरीर पर लाक्षारस की पूणिका का पुट दिया जाता है इससे वह पृष्ठादिभाग

नथी-आ भरवुथी भरवानो पथु निषेध कथो छे श्रमणु भगवान् महावीरे नीचेना जे प्रकारना भरवु पथु श्रमणु निषेधे भाटे अनुपादेय-निषिद्ध कथां छे (१) वैहायस भरवु (२) गृध्रपृष्ठ भरवु गणामा क्षंसे लगावीने भरवु तेनु नाम वैहायस भरवु छे जेभडे आउनी डाणी आदिमां डेरडुं भांधीने तेना गाणियामां गणु लटकावीने क्षंसे भांघने भरवु, ते प्रकारना भरवुने वैहायस भरवु कहे छे जे भरवुमां भरतां लुचना भक्षणुने भाटे गीध, समडी आदि लुवे अेकठां थाय छे ते भरवुने गृध्रपृष्ठ भरवु कहे छे. आ प्रकारना भरवुथी भरती व्यक्तितना शरीरपर लापना रसनी पूषुिकाने पट लगाउवामा आवे छे तेथी ते शरीरना पृष्ठादि भागे गीध आदि द्वारा भवार्ष नय छे आ प्रकारना भरवु द्वारा भरतो लुव आ प्रभाणु पथु करे छे-

यद्वा गृध्रस्पृष्टमिति श्लाघा, तत्र गृध्रैः स्पृष्ट-स्पर्शेन मरणमित्यर्थं यस्मिंस्तत्र  
 योक्तम्, महासत्त्वस्य सुसूयोः स्वशरीरस्य सङ्कल्पमृतकरिकरमादि कलेवरान्तः  
 मवेशेन गृध्रादिभिः पृष्ठादेमरणमित्यर्थं एतच्च कर्मनिर्जरां प्रति प्रधानस्थान्महा-  
 सत्त्वैरेवावर्ष्यते न कातरैरिति भावः ।

उक्तञ्च—“ गिद्धाहमकल्पण गिद्धपिष्ट उन्मथणाद् वेदास ।

एष दुर्भिक्षि मरणा, कारणमाए मणुष्याया ॥ १ ॥

श्लाघा—गृध्रादि मरण गृध्रस्पृष्टम्, उन्मथनादि वैहायसम् ।

एते द्वे अपि मरणे कारणमाते चतुष्टाते ॥ १ ॥ ” ६।

उक्तान्यप्रशस्तमरणानि, तदनन्तरं तानि प्रशस्तानि भव्यानां भवन्तीति  
 प्रशस्तमरणवक्तव्यतामाह—‘ दो मरणाइ ’ इत्यादि पूर्ववदालापकः पठनीयः ।

मैं गृध्रों द्वारा खा लिया जाता है इस मरण में म्रियमाण जीव ऐसा भी  
 करता है कि जब वह विशिष्ट शक्तिवाला जीव मरने की इच्छावाला  
 हो जाता है तब वह अपने शरीर को गृध्रादिकों द्वारा भक्ष्य मृत करि-  
 करम आदि के कलेवर के भीतर डाल देता है इससे गृध्रादि मांस  
 भक्षक जीव उसके पृष्ठ आदि का भक्षण करने लग जाते हैं । यह मरण  
 कर्म निर्जरा के प्रति प्रधान कारण होता है अतः महा शक्तिशाली जीव  
 ही इस मरण को भाव्यरित कर सकते हैं कायर पुरुष नहीं ।

कहा भी है—( गिद्धाहमकल्पण ) इत्यादि । ये सय अप्रशस्त मरण  
 कहे गये हैं इन मरणों के बाद अथ सूत्रकार प्रशस्तमरणों को कहते  
 हैं—ये प्रशस्त मरण भव्य जीवोंको होते हैं ( दो मरणाइ ) इत्यादि यहाँ पर

आरे ते विशिष्ट शक्तिसंपन्न एव भव्यानी इच्छावागे जने छ त्वारे  
 ते पीताना शरीरने भूत दाधी आदिना कलेवरमां नाभी दे छ जीव आदि  
 मांसभक्षक एवे आरे ते दाधी आदिना शरीरनु मांस जावा आवे छ  
 त्वारे ते मृत्युकलेवरमां रदेता ते शरीरना पीठ आदि आत्रेनु मांस पव  
 तेमन्य द्वारा पचाय छ आ प्रशस्त मरण कर्मनिर्जराना भुञ्ज्य काल्पे  
 देव छ महाशक्तिवाली पुरुषे आ प्रशस्त मरण भी भरी शके छ—आवे  
 ते आ मरण भव्यानी विमत करी शकता नथी

परन्तु अमुक संश्लेषमां आ जने भव्येना निषेध नथी—इश नमातिन्ध,  
 शीघ्रमज आदि रूप काले उचरियेन याय त्वारे तेमनी रक्षाने भाटे ते  
 जने प्रशस्त मरणेना निषेध नथी नेमके उद्यमिनुपानुभूत तथाविध  
 अ.थापनुं मरण कर्तुं पत्र छ दे—“ गिद्धाहमकल्पण ” छ.दि

आ सूत्रमां कथा अनुसार जीवादि द्वारा शरीरनु भक्षण काल्पेभी ने  
 मरण थाय छ तेने अप्रशस्त कलेवरमां आवेत छ  
 द्वे सूत्राए प्रशस्त मरणेनी प्रशस्त करे छ—‘ दो मरणाइ ’ इत्यादि—

તદેવાહ—પાદપોપગમનં ભક્તપ્રત્યાખ્યાન ચેતિ । તત્ર પાદપો—વૃક્ષસ્તમ્ ઉપગચ્છતિ—  
સાદૃશ્યેન પ્રાપ્નોતીતિ પાદપોપગમનમ્, इदमुक्तं भवति—यथैव पादपः क्वचित्  
कथञ्चिन्नિपतितः समत्वं विपमत्वं चात्रिभावयन्निश्चल एत्रास्ते तथाऽयमपि स्वीकृत-  
पादपोपगमनः संयतिः स्वस्य यद् अद्ग यथा समविपमदेशेषु समतया विपमतया  
वा प्रथमत एव पतितं न तत्तत्શ્રાલયતીતિ । છિન્નપતિતતરૂવદત્યન્ત નિશ્વેષ્ટતયા-  
સ્વસ્થાનં યસ્મિન્ મરણે ભવતિ તત્પાદપોપગમનમરણમુચ્યતઈતિ ભાવઃ । પ્રથમ-  
સંહનનધરાધીરા એવૈતન્મરણં પ્રતિપદ્યન્તે ।

પહિલે કી તરહ હી આલાપક કહના ચાહિષે પ્રશસ્તમરણોં મેં પાદપોપ-  
ગમન ઓર ભક્તપ્રત્યાખ્યાન યે દો મરણ હેં પાદપ નામ વૃક્ષ કા હૈ હસ  
વૃક્ષ કી તરહ અવસ્થાન જિસ મરણ મેં રહતા હૈ વહ પાદપોપગમન મરણ  
હૈ તાત્પર્ય હસકા એસા હૈ કિ જૈસે વૃક્ષ જહાં કહીં પર મી જિસ કિસી  
મી અવસ્થા મેં ગિર જાતા હૈ, વહ યહ નહીં દેખતા હૈ કિ યહ ભૂમિ  
સમ હૈ યા વિષમ હૈ ઓર ગિર કર વહ જૈસે નિશ્ચલ હી પડા રહતા હૈ  
હસી પ્રકાર સે જિસ સાધુ ને યહ પાદપોપગમન મરણ સ્વીકાર ક્રિયા હૈ  
ઉસ સાધુ કે અંગ જિસ કિમી મી સમ વિપમ પ્રદેશ મેં જૈસી મી અવ-  
સ્થા મેં પહિલે સે પડ ચુકે હોં વહ સાધુ ઉન્હેં ફિર વહાં સે હટાના નહીં  
હૈ અતઃ યહ મરણ છિન્નપતિતવૃક્ષ કી તરહ અત્યન્ત નિશ્ચેષ્ટ રૂપ સે  
અવસ્થાન વાલા હોતા હૈ હસ મરણ કો વે હી જીવ ધારણ કરતે હેં જો

લબ્ધ જીવોના મરણ જ પ્રશસ્ત હોય છે અહીં પડેલાની જેમ જ  
આલાપક કહેવો જોઈએ પાદપોપગમન મરણ અને ભક્તપ્રત્યાખ્યાન મરણને  
પ્રશસ્ત મરણ કહે છે પાદપ એટલે વૃક્ષ તે વૃક્ષના જેવું અવસ્થાન જે  
મરણમાં રહે છે, તે મરણને પાદપોપગમન મરણ કહે છે જેમ વૃક્ષ પડે છે  
ત્યારે એવો વિચાર કરતું નથી કે પોતે જે ભૂમિમાં પડવાનું છે તે ભૂમિ સમ  
છે કે વિષમ છે, અને પડ્યા પછી તે નિશ્ચલ જ પડ્યું રહે છે, એજ પ્રમાણે  
પાદપોપગમન મરણ સ્વીકારનાર સાધુના અંગો પણ જે કોઈ સમ વિષમ  
પ્રદેશમાં જે કોઈ પણ અવસ્થામાં પડેલેથી પડી ચુકેલા હોય છે, તે અવ-  
સ્થામાં જ પડ્યા રહેવા દેવામાં આવે છે તે અંગોને ત્યાથી ખસેડવામાં  
આવતાં નથી તે કારણે તે મરણ તૂટી પડેલા વૃક્ષની જેમ અત્યંત નિશ્ચેષ્ટ  
રૂપે અવસ્થાનવાળું હોય છે આ પ્રકારના મરણથી મરવાનું એ પુરુષો દ્વારા જ  
શક્ય અને છે કે જેઓ પ્રથમ વજ્રપલનારાય સહનનવાળા ગુણો ધીર હોય

यथा गृध्रस्पृष्टमिति श्याया, सत्र गृध्रैः स्पृष्ट-स्पर्शनं भक्षणमित्यर्थं यस्मिंस्तत्र  
 योक्तम्, महासत्रस्य मुच्यतेः स्वस्वरीस्य तद्गृह्यमृतमृत्कारिणादि कलेवरान्तः  
 मषेक्षनं गृध्रादिभिः पृष्ठादेगवप्रमित्यर्थं एतच्च कर्मनिर्जरां प्रति प्रधानत्वान्महा-  
 सत्त्वैरेवाकर्ष्यते न कातरैरिति भावः ।

उक्तञ्च—“ गिद्धाहमफलं गिद्धपिष्ट उन्मथणाद् वेदास ।

एष दुभिवि मरणा, कारणमात्रं अणुणाया ॥ १ ॥

श्याया—गृध्रादि भक्षणं गृध्रस्पृष्टम्, उद्वृत्तनादि वैहापसम् ।

एते ये अपि मरणे कारणमात्रे अनुज्ञाते ॥ १ ॥ ” ३।

उक्तान्यमशस्तमरणानि, उदन्तर तानि प्रशस्तानि मभ्यानां भवन्तीति  
 मशरसमरणवक्तव्यतामाह—‘ दो मरणाइं ’ इत्यादि, पूर्वकदालापकं पठनीयाः ।

में गृध्रों द्वारा खा लिया जाता है इस मरण में म्रियमाण जीव ऐसा भी  
 करता है कि जब वह विशिष्ट शक्तिवाला जीव मरने की इच्छावाला  
 हो जाता है तब वह अपने शरीर को गृध्रादिकों द्वारा मर्त्य मृत करि  
 करभ आदि के कलेवर के भीतर डाल देता है इससे गृध्रादि मांस  
 भक्षण जीव उसके पृष्ठ आदि का भक्षण करने लग जाते हैं । यह मरण  
 कर्म निर्जरा के प्रति प्रधान कारण होता है अतः महा शक्तिशाली जीव  
 ही इस मरण को आचरित करसकते हैं कायर पुरुष नहीं ।

कहा भी है—( गिद्धाहमफलं ) इत्यादि । ये सब अग्रशस्त मरण  
 कहे गये हैं इन मरणों के बाद अब सूत्रकार प्रशस्तमरणों को कहते  
 हैं—ये प्रशस्त मरण मर्त्य जीवोंको होते हैं (दो मरणाइं) इत्यादि यहाँ पर

आहे ते विशिष्ट शक्तिसंपन्न एव मर्यानी उन्मथवाणे वने छे त्वाहे  
 ते घाताना शरीरने भूत दाधी आदिना कलेवरमां नापी दे छे जीव आदि  
 मांसभक्षण एवे। त्वाहे ते दाधी आदिना शरीरनु मांस जावा आवे छे  
 त्वाहे ते भूतभक्षेवरमां शकेश ते शरीरना पीठ आदि भाजेनु मांस पक्ष  
 तेमना द्वारा जवाय छे आ प्रकारनु मर्त्य कर्मनिर्जराणा मुच्यं कारणरूप  
 कोय छे महाशक्तिशाली पुरुषे। आ प्रकारनु मर्त्यभी मरी शके छे—अथशे  
 तो आ मर्त्य मर्यानी विभक्त व करी शकता नथी

परन्तु अमुक संज्ञेयैर्मां आ वन्ने मर्येणो निवेध नथी—इश नमाहित्थ,  
 शीतकम आदि रूप कारये। उपस्थित धाम त्वाहे तेमनी रक्षाने भाटे ते  
 वन्ने प्रकारना मर्येणो निवेध नथी। नेमके उदाधिनृपानुभूत तथाविध  
 आ आयतुं मर्त्य कर्तुं पक्ष छे दे— गिद्धाहमफलं ” उजादि

आ सूत्रमां कदा अनुसार जीवादि द्वारा शरीरनु भक्षण करानवाधी ने  
 मर्त्य धाय छे तेने अग्रशस्त कलेवामां आवे छे  
 कवे सूत्रकार प्रशस्त मर्येणोनी प्रश्नः करे छे—“ दो मरणाइं ” इत्यादि—



चिन्तयति—“ धीरेण वि मरियञ्च, कापुरिसेणवि भवस्स मरियञ्च ।

उग्घा भवस्समरणे, परं तु धीरत्तणे मरि उ ॥ १ ॥ ”

श्याया—धीरेषापि मर्धन्यं, का पुरुषेणापि भवश्यं मर्धन्यम् ।

तस्माद्भवश्यमरणे परं स्वच्छ धीरस्ये मर्धुम् ॥ १ ॥ इति ।

भक्तस्य—त्रिभिषस्य चतुर्विधस्यवाऽऽहारस्यैव, उपलक्षणादुपधरपि ननु पादपोषगमनवन्धेष्टायाः प्रत्याख्यानं धर्मन यस्मिन् तद् भक्तप्रत्याख्यान—मरणादि मोननादि परित्याग इत्यर्थः ।

आह च—“ त्रिभिहं च असणपाणं चउज्विह जाय पाहिरा उभही ।

अग्गिमत्तर च उवहिं जाचज्जीवियं च वोसिरे ॥ १ ॥ ”

श्याया—त्रिभिषचासनपाणं चतुर्विधं यक्षबाह्य उपधिः ( त ) ।

आभ्यन्तरं चोपरि याचज्जीवित्तं च व्युत्प्रेजेत् ॥ इति ॥

अनयोः प्रत्येकस्य भेदद्वयं भवतीत्याह—‘ पाओषगमणे दुविदे ’ इत्यादि ।

पादपोषगमनं द्विविधं—निर्हारिम अनिहारिम चेति । तत्र निर्हारिमं—यस्मिन् भक्त-

प्रथम—वज्रभाषमनाराच सहनन के घारी धीर होते हैं वे ऐसा विचार करते हैं “ धीरेण वि मरियञ्च ” इत्यादि । जिस मरण में चतुर्विध आहार का या त्रिभिष आहार का और उपलक्षण से उपधिका भी प्रत्याख्यान होता है पादपोषगमन की समान चेष्टा का प्रत्याख्यान नहीं होता है वह भक्तप्रत्याख्यानमरण है मरणतक चतुर्विध आहार का परित्याग ही भक्तप्रत्याख्यान है

कहा भी है—( त्रिभिहं च असणपाणं ) इत्यादि । इनमें प्रत्येक मरण दो दो भेदों वाला कहा गया है यही बात “ पाओषगमणे ” इत्यादि

उ तेजो जेवो विचार करे उ के—धीरेण वि मरियञ्च’ इत्यादि ।

वे भक्तस्य चार प्रकारना आकारना व्यवसाय प्रकृति प्रकृतिना आकारना जने उपलक्षणनी अपेक्षाके उपधिने ( आयुना उपकरणे ) पक्ष त्याज करी देवनां आवे उ—पादपोषगमननी जेम भेष्टाने त्याज ( प्रत्याख्यान द्वारा त्याज ) कराते नही, ते भक्तने अक्षतप्रत्याख्यान भक्त करे उ भक्त पर्यन्त चतुर्विध आकारना परित्याजने व अक्षतप्रत्याख्यान करे उ कहुं पक्ष उ—‘ त्रिभिहं च असणपाणं इत्यादि ।

उपर करेवा जने प्रकृतिना भक्तना पक्ष जन्मि खेदा उ जे व बात “ पाओषगमणे ” इत्यादि अत्र द्वारा प्रकट करी उ पादपोषगमन भक्तना

तेरेकदेशे ग्रहणाच्छरीरस्य तत्प्रदेशान्निर्हरणं-निस्सारण क्रियते तत्, यस्मिंस्तु गिरिकन्दरादौ गत्वा ग्रहणेन तत्प्रदेशाच्छरीरस्य निर्हरणं-निस्सारणं न क्रियते तद् अनिर्हारिमं कथ्यते । एतत् द्विविधमपि पादपोषणमन ' णियमं ' ति विभक्तिव्यत्ययेन नियमात् न तु भजनया अप्रतिकर्म-शरीरप्रतिक्रियारहितं भवति । शरीरसेवा व्रजितमित्यर्थः ८ ।

आह च तन्स्वरूपम्—

“ णिचलणिप्पडिकम्मो, णिक्खवए जं जहि जहा अंगं ।

एयं पाओवगमं णीहारिं वा अणीहारिं ॥ १ ॥

पाओवगमं भणियं, समविसमो पायवोव्वजह पडिओ ।

णवरं परप्पओगा, कंप्पेज्ज जहा फलतरुव्व ॥ २ ॥

छाया—निश्चलनिष्प्रतिकर्मां निक्षिपति यद् यत्र यथा—अङ्गम् ।

एतत् पादोषणं, निर्हारिमं वा अनिर्हारिमम् ॥ १ ॥

पादोषणं भणितं, समविषमः पादप इव यथा पतितः ।

नवरं परप्रयोगात् कम्पते यथा फलतरुरिव ॥२॥ इति ।

एवमेव भक्तप्रत्याख्यानमपि निर्हारिमाऽनिर्हारिमभेदेन द्विविधं, व्याख्या

सूत्र द्वारा प्रकट की गई है—पादपोषणमन के दो भेद इस प्रकार से हैं—एक निर्हारिम और दूसरा अनिर्हारिम वसति के जिस एकदेश में पादपोषणमन संथारा धारण किया गया है उसी वस्तीसे संथारा पूर्ण होने पर जो शरीर का बाहर निकालना होता है वह निर्हारिम पादपोषणमन है और जिस गिरिकन्दरा में जाकर यह संथारा ग्रहण किया गया है वह अनिर्हारिम पादपोषणमन संथारा है यह दोनों प्रकार का पादपोषणमनसंथारा नियम से, भजना से नहीं सेवा सुश्रूषा से रहित होता है ऐसा ही इसका स्वरूप कहा गया है—(णिचलणि पडिकम्मो) इत्यादि ।

इसी तरह भक्तप्रत्याख्यान मरण भी निर्हारिम और अनिर्हारिम

नीचे प्रमाणों के प्रकार छे—(१) निर्हारिम अने (२) अनिर्हारिम वसतिना के एक देशमा पादपोषणमन संथारो धारण करवामा आये छे, ते प्रदेश माथी न भरण आह शरीरने भङ्गार काठवामा आवे छे, त्यारे ते संथाराने निर्हारिम पादपोषणमन संथारो कडे छे. गिरिकन्दरामा नधने पादपोषणमन संथारो ग्रहण करवामा आये छे, तोअेवा प्रकारना संथाराने अनिर्हारिम पादपोषणमन संथारो कडे छे आ अने प्रकारना संथारा नियमथी न ( विकल्पे नडी ) शरीर प्रतिक्रियाथी रहित छे अेवुं न तेनुं स्वल्प कछु छे—

“ णिचलणिप्पडिकम्मो ” इत्यादि

अेव प्रमाणे अकतप्रत्याख्यान भरणना पछु निर्हारिम अने अनिर्हारिम



પૂર્વેષ્વત્, નવરમ્—एतद् नियमात् समतिक्रमं—यथासमाधि शरीरप्रतिक्रियासहितं मपति, अस्मिन् समाधिमपश्य शरीरस्य प्रतिक्रिया कियते इति भावः ९ । इङ्गित-मरणत्विह द्विस्थानकानुरोषाभकथितम् । अस्मिन् — नियमाच्चतुर्विधाहारस्यागः, परपरिकर्मविषमैर्न च भवति । स्यन्धिले एकाकी छायात् उष्णमुष्णतश्च छायां सक्रामभिङ्गितभूमौ सचेष्टं सम्पग्न्यानपरायणः प्राणान् जहातीति ।

उक्तञ्च—“ इंगिय देसमि सयं, वउञ्चिहाहारचापनिष्कण्ठ ।

उठ्ठवणाइमुच, नञ्णेज उ इगिपीमरम ॥ १ ॥

छाया—इङ्गितदेशे स्वय चतुर्विधाहारस्याग निष्पन्नम् ।

उठ्ठર્चनादियुक्तं नान्येन त्विङ्गितमरणम् ॥ इति ॥ सू० ४५ ॥

के मेद् से दो प्रकार का है, निर्होरिम और अनिर्होरिम का व्याख्या पहिले जैसी ही है पादपोपगमन सधारा की अपेक्षा हम भक्तप्रत्यारूपान सधारे में विशेषता केबल इतनी सी ही है कि यह सधारा सप्रतिकर्म होता है अर्थात् समाधि के अनुसार यह शरीर की प्रतिक्रिया सहित होना है इसमें समाधि की अपेक्षा रखकर शरीर की प्रतिक्रिया की जाती है ९ । एक मरण इङ्गितमरण भी है पर द्विस्थानक के अनुरोध से उसका यहां कथन नहीं किया गया है इङ्गितमरण में नियम से चारों प्रकार के आहार का त्याग रहता है, और दूसरों के द्वारा परिकर्म करने का विषयन रहता है अर्थात् दूसरा वैपायच नहीं करता है यह स्यन्धिल में अकेला रहता है छाया से घूप में और घूप से छाया में आना जाता है इङ्गित भूमि में सचेष्ट रहता हुआ वह सम्पग्न्यान में लयलीन रहता है और इनी स्थिति में अपने प्राणों को छोड़ना है । फहा भी है—

( इंगिय देसमि सय ) इत्यादि ॥ सू० ४५ ॥

નામના બે લેહ કદા છે નિર્હોરિમ અને અનિર્હોરિમની વ્યાખ્યા ઉપર પ્રમાણે જ સુમળવી પાદપોપગમન સંધારા કરતાં ભક્તપત્ય ખ્યાન સંધારામાં જોડલી જ વિશેષતા છે કે આ સંધારે સપ્રતિભા' હોય છે, જોડે કે સમાધિ અનુસાર તે શરીરની પ્રતિક્રિયા (સેના મુદ્દન) સહિત હોય છે તેમાં સમાધિની અપેક્ષાએ શરીરની પ્રતિક્રિયા કરનામાં આવે છે ॥ ૬ ॥

ઈંગિતમરણ નામનું 'વીજુ' એક મરણ પછી પ્રયત્ન ગળાવ છે પણ જહીં બે સ્વનેનો અધિકાર ચાલતો હોવાથી, તેનો સમાવેશ કર્યો નથી. આ પ્રકારના મરણમાં પણ નિયમથી જ ચારે પ્રકારના આહારોનો પરિત્યાગ કરાય છે. આ પ્રકારનો સંધારો કરનાર આપુ જ વના દ્વારા થતી વેશવચનો પણ પરિત્યાગ કરે છે તે સ્વકિલમાં (ભદારની ભૂમિમાં) એકલો રહે છે છવજામાંથી તડ કામાં અને તડકામાંથી ડાવકામાં આવે જ આવે જાય છે ઈંગિત ભૂમિમાં સ્થિત

इदं च मरणादि स्वरूपं भगवता लोके प्ररूपितमिति प्रश्नोत्तररूपेण लोक-  
स्वरूपप्ररूपणामाह—

मूलम्—के अयं लोके ? जीवच्चेव अजीवच्चेव । के अणंता  
लोके ? जीवच्चेव अजीवच्चेव । के सासया लोके ? जीवच्चेव  
अजीवच्चेव ॥ सू० ४६ ॥

छाया—कोऽयं लोकः ? जीवाश्चैव अजीवाश्चैव । केऽन्तालोके ? जीवा-  
श्चैव अजीवाश्चैव । के शाश्वतालोके ? जीवाश्चैव अजीवाश्चैव ॥ सू० ४६ ॥

टीका—‘ के अयं इत्यादि । अयं लोकः कः इति प्रश्नः । अत्र ‘ इदम् ’  
शब्दो देशतः प्रत्यक्षस्य आसन्नरय च वाचकः । यत्र भगवताऽप्रशस्तप्रशस्तम र-  
मरणादि समस्तवस्तुस्तोमतत्त्वमभिहितं स इत्यर्थः । लोकः—लोक्यते केवलालोकेन  
यः स लोकः—पञ्चास्तिकायात्मक , सोऽय लोकः कः=कथंभूतः ? इति प्रष्टुरा-  
शयः । उत्तरसाह—जीवाश्च अजीवाश्चेति जीवाजीवस्वरूपो लोक—इत्यर्थः । लोक-

इस प्रकार के इन मरणों का स्वरूप भगवान् ने इस श्लोक में  
प्ररूपित किया है अतः अब सूत्रकार प्रश्नोत्तर के रूप से लोक के स्वरूप  
का कथन करते हैं—( के अयं लोके ? जीवच्चेव अजीवच्चेव ) इत्यादि ।

टीकार्थ—यह लोक क्या है ? ऐसा यह प्रश्न है अतः भगवान् ने जहाँ  
पर अप्रशस्त और प्रशस्त मरणादिरूप समस्तवस्तुओं का स्वरूप कथन  
किया है ऐसा वह लोक है ? इसके उत्तर में कहा गया है कि “ जीवाश्चैव  
अजीवाश्चैव ” यह लोक जीव और अजीवरूप है—अर्थात् पञ्चास्तिका-  
यरूप यह लोक है केवलरूप आलोक ( प्रकाश ) के द्वारा जो देखा जाता

रहेतो अवे ते संभ्यगू ध्यानमा दीन रडे छे अने अे त्यतिमां न चोतानां  
प्राणु छेउ छे कहु पणु छे के—“ इंगिय देसंमि सय ” इत्यादि ॥ सू. ४५ ॥  
भगवाने आ प्रकारना आ भरखोनुं स्वइप आ लोकमां प्रइपित कथुं  
छे, तेथी डवे सूत्रकार ‘प्रश्नोत्तर इपे लोकना स्वइपनुं’ निइपणु करे छे—

“ के अयं लोके ? जीवच्चेव अजीवच्चेव ” इत्यादि—

टीकार्थ—“आ लोक शु छे ? ” आ प्रकारने प्रश्न अर्ही पूछवामां आये छे.  
अेटवे के भगवाने आ अप्रशस्त अने प्रशस्त मरणादिइप समस्त वस्तुआना  
स्वइपनु कथन कथुं छे अवे ते लोक केवा स्वइपवाणे छे तेना उत्तर इपे  
अेवुं कडेवामां आये छे के—“ जीवाश्चैव अजीवाश्चैव ” आ लोक एव अने  
अएव इप छे अेटवे के पञ्चास्तिकाय इप आ लोक छे केवणजान इप  
आलोक ( प्रकाश ) द्वारा अने देभी शक्य छे, ते लोक कडेवाय छे अने अवे  
ते लोक एवाएवस्वइप छे.

પૂર્વવત્, નવરસુ—एतद् नियमात् सप्रतिकर्म—यथासमाधि शरीरप्रतिक्रियासहितं भवति, अस्मिन् समाधिप्रपेक्ष्य शरीरस्य प्रतिक्रिया क्षिपते इति भावः ९ । इक्षित-मरणस्वित् इति स्थानकानुरोभात्प्रकृतम् । अस्मिन् — नियमाच्चतुर्विधाहारत्यागाः, परपरिकर्षविवर्जनं च भवति । स्पन्दिले पकाशी छायात् उष्णमुष्णतम छायां संक्रामन्निक्षितभूमौ सचेष्ट सम्पग्न्यानपरायणः प्राणान् महातीति ।

उक्तञ्च—“ इगिय देसमि सयं, चउन्निहाहारचापनिष्कण्ण ।

उक्वचणाइज्जुच, नञ्जणेम उ इगिणीमरण ॥ १ ॥

छाया—इक्षितवेशे स्वय चतुर्विधाहारत्याग निष्पन्नम् ।

उद्धर्तनादिपुनरंतं नान्येन त्विक्षितमरणम् ॥ इति ॥ सू० ४५ ॥

કે મેદ સે દો પ્રકાર કા હૈ, નિહૌરિમ ઓર અનિહૌરિમ કો બ્યાસ્યા પહિલે જેસી હી હૈ પાદપોયગમન સધારા કી અપેક્ષા હસ અક્ષપ્રત્યાસ્યાન સધારે મેં વિશેષતા કેવલ હતનો સી હી હૈ કિ યહ સધારા સપ્રતિકર્મ હોતા હૈ અર્થાત્ સમાધિ કે અનુસાર યહ શરીર કી પ્રતિક્રિયા સહિત હોના હૈ હસમેં સમાધિ કી અપેક્ષા રસ્વકર શરીર કી પ્રતિક્રિયા કી જાતી હૈ ૯ । યક મરણ ઈક્ષિતમરણ ખી હૈ પર મિસ્થાનક કે અનુરોમ સે ઘસકા યહાં કષન નહીં ક્રિયા ગયા હૈ ઈક્ષિતમરણ મેં નિયમ સે ચારોં પ્રકાર કે આહાર કા ત્યાગ રહતા હૈ, ઓર વૃસરોં કે દ્વારા પરિકર્મ કરને કા ઘિવજૈન રહતા હૈ અર્થાત્ વૃસરા વૈયાઘચ નહીં કરતા હૈ યહ સ્પંદિલ મેં અકેલા રહતા હૈ છાયા સે ઘૂપ મેં ઓર ઘૂપ સે છાયા મેં આગા જાતા હૈ ઈક્ષિત ભૂમિ મેં સચેષ્ટ રહતા હૈ આ યહ સમ્યગ્ન્યાન મેં લક્ષ્મીન રહતા હૈ ઓર હસી સ્થિતિ મેં અપને પ્રાણોં કો ઓઢના હૈ । કહા મી હૈ—

( ઈગિય દેસમિ સયં ) ઈસ્યાદિ ॥ સૂ ૪૫ ॥

નામના બે લેહ કહ્યા છે. નિહૌરિમ અને અનિહૌરિમની વ્યાખ્યા ઉપર પ્રમાણે જ સમજવી. પાદપોયગમન સધારા કરતાં ભક્તમત્વ ખ્યાન સંચારમાં એટલી જ વિશેષતા છે કે આ સધારા સપ્રતિકર્મ હોય છે, એટલે કે સમાધિ અનુસાર તે શરીરની પ્રતિક્રિયા (એવા મુદ્દા) સહિત હોય છે તેમાં સમાધિની અપેક્ષાએ શરીરની પ્રતિક્રિયા કરવામાં આવે છે ॥ ૬ ॥

ઇતિવમશ્ચ નામનુ ળીગુ એક મરણ પછુ ડશસ્ત ગણાય છે પણ અહીં બે સ્થાનોનો અધિકાર આલેલો હોવાથી, તેનો સમાવેશ કર્યો નથી. આ પ્રકારના મરણમાં પણ નિયમથી જ વાર પ્રકારના આકારોનો પરિભાગ કરાય છે આ પ્રકારનો આચાર કરનાર આમુ અન્યના દ્વારા થતી વૈશાલ્યનો પણ પરિભાગ કરે છે તે સ્વ ક્ષિત્માં (અહારની ભૂમિમાં) એટલે રહે છે અંબકામાંથી તદ કામાં અને તદકામાંથી ડાયકમાં વર્તે જ આવે ભવ છે ઇતિત ભૂમિમાં સચિદ

इदं च मरणादि स्वरूपं भगवता लोके प्ररूपितमिति प्रश्नोत्तररूपेण लोक-  
स्वरूपप्ररूपणामाह—

सूत्रम्—के अयं लोके ? जीवच्चेव अजीवच्चेव । के अणंता  
लोके ? जीवच्चेव अजीवच्चेव । के सासया लोके ? जीवच्चेव  
अजीवच्चेव ॥ सू० ४६ ॥

छाया—कोऽयं लोकः ? जीवाश्चैव अजीवाश्चैव । केऽनन्तालोके ? जीवा-  
श्चैव अजीवाश्चैव । के शाश्वतालोके ? जीवाश्चैव अजीवाश्चैव ॥ सू० ४६ ॥

टीका—‘ के अयं इत्यादि । अयं लोकः कः इति प्रश्नः । अत्र ‘ इदम् ’  
शब्दो देशतः प्रत्यक्षस्य आसन्नस्य च वाचकः । यत्र भगवताऽप्रशस्तप्रशस्तमर-  
मरणादि समस्तवस्तुस्नोमतत्त्वमभिहितं स इत्यर्थः । लोकः—लोक्यते केवलालोकेन  
यः स लोकः—पञ्चास्तिकायात्मक , सोऽय लोकः कः=कथंभूतः ? इति प्रष्टुरा-  
शयः । उत्तरसाह—जीवाश्च अजीवाश्चेति जीवाजीवस्वरूपो लोक—इत्यर्थः । लोक-

इस प्रकार के इन मरणों का स्वरूप भगवान् ने इस श्लोक में  
प्ररूपित किया है अतः अब सूत्रकार प्रश्नोत्तर के रूप से लोक के स्वरूप  
का कथन करते हैं—(के अयं लोके ? जीवच्चेव अजीवच्चेव) इत्यादि ।

टीकार्थ—यह लोक क्या है ? ऐसा यह प्रश्न है अतः भगवान् ने जहाँ  
पर अप्रशस्त और प्रशस्त मरणादिरूप समस्तवस्तुओं का स्वरूप कथन  
किया है ऐसा वह लोक है ? इसके उत्तर में कहा गया है कि “ जीवाश्चैव  
अजीवाश्चैव ” यह लोक जीव और अजीवरूप है—अर्थात् पञ्चास्तिका-  
यरूप यह लोक है केवलरूप आलोक ( प्रकाश ) के द्वारा जो देखा जाता

रहेतो अवेो ते संभ्यग् ध्यानमा लीन रहे छे अने अे स्थितिमा ल पोतानां  
प्राण्य छोडे छे कथ्य पथ्य छे के—“ इमिय देसंमि सय ” इत्यादि ॥ सू. ४५ ॥

भगवाने आ प्रकारना आ मरणांतुं स्वरूप आ लोकमां प्ररूपित कथ्युं  
छे तेथी हुवे सूत्रकार ‘प्रश्नोत्तर इये लोकना स्वरूपतुं’ निरूपण्य करे छे—

“ के अयं लोके ? जीवच्चेव अजीवच्चेव ” इत्यादि—

टीकार्थ—“आ लोक शु छे ? ” आ प्रकारने प्रश्न अर्ही पूछवामां आयेो छे.  
अेटले के भगवाने आ अप्रशस्त अने प्रशस्त मरणादिरूप समस्त वस्तुआना  
स्वरूपतु कथन कथ्युं छे अवेो ते लोक केवा स्वरूपवाणे छे तेना उत्तर इये  
अेवुं कडेवामा आण्यु छे के—“ जीवाश्चैव अजीवाश्चैव ” आ लोक शुव अने  
अण्व इय छे अेटले के पञ्चास्तिकाय इय आ लोक छे केवणज्ञान इय  
आलोक ( प्रकाश ) द्वारा अेने देणी शक्य छे, ते लोक कडेवाय छे अने अवेो  
ते लोक शुवाण्वस्वरूप छे.

स्वरूपभूतानां च जीवाजीवानां स्वरूप प्रश्नपूर्वकं सूत्रद्वयेनाह—‘ के अर्थात् ’ इत्यादि, ‘ के सासया ’ इत्यादि च, लोक के पदार्था अनन्ताः सन्ति, उत्तरमाह—जीवा अजीवाश्चेति । अयं च के शाश्वताः सन्ति ? उत्तरयति—जीवाश्च अजीवाश्च द्रव्यार्थतयेति ॥ सू० ४६ ॥

य चैते लोके जीवा अनन्ता शाश्वताश्च सन्ति ते बोधि-मोहकृतमधर्मद्वय-योगाद् बुद्धा मूढाश्च भवतीति दर्शयितुं सूत्रचतुष्टयमाह—

सूम्म्—बुविहा बोही पण्णत्ता त जहा णाणबोही चेष दसण बोही चेष ? । बुविहा बुद्धा पण्णत्ता त जहा-णाणबुद्धा चेष दसणबुद्धा चेष २ । एव मोहे ३, मूढा ४ ॥ सू० ४७ ॥

छाया—द्विविधा बोधि प्रज्ञप्ता, तद्यथा—ज्ञानबोधिभैव दर्शनबोधिभैव १ । द्विविधा बुद्धा प्रज्ञप्तास्तद्यथा—ज्ञानबुद्धाभैव दर्शनबुद्धाभैव २ । एव मोहः १, मूढा ४ ॥ सू० ४७ ॥

हे यह लोक है और यह लोक जीवाजीवस्वरूप है लोक में कौन पदार्थ अनन्त हैं और कौन पदार्थ शाश्वत हैं ? इसके उत्तर में कहा गया है कि लोक में जीव और अजीव ये पदार्थ अनन्त हैं और ये ही पदार्थ शाश्वत हैं । इन पदार्थों में शाश्वतता का कथन द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से कहा गया जोनना चाहिये ॥ सू० ४६ ॥

लोक में जो ये जीव अनन्त और शाश्वत कहे गये हैं वे बोधि और मोह के योग से क्रमशः बुद्ध और मूढ होते हैं—सो इसी बात को दिखाने के लिये अयं सूत्रकार इस सूत्र चतुष्टयी का कथन कर रहे हैं— ( बुविहा बोही पण्णत्ता ) इत्यादि ।

‘ बोहिमां क्वा क्वा पदाथी अनत्तं उं अने क्वा क्वा पदाथी शाश्वतं उं । आ प्रश्नता उत्तर इये आ प्रभाये क्कुं उं—तोहिमा लुण अने अलुण, आ पदाथी अनत्तं उं अने अं पदाथी च शाश्वतं उं आ पदाथीमां उं शाश्वतत्ता जताववाभां आवी उं ते शाश्वतत्तानुं क्कमनं द्रव्यार्थिक नयनी अपेक्षाजे च इरवाभां आवुं उं अिभं समञ्जसुं ॥ सू० ४६ ॥

बोहिमां अनत्तं लये। इहेवा उं ते लयेने शाश्वतं क्कवेवाभां आवुं । उं ते लये। बोधि अने मोहना येअथी अनुक्कमे लद्धं अने मूढं होय उं अं च वातने सूत्रकारे नीयेनी सूत्रचतुष्टयी द्वारा प्रकट करी उं—

“बुविहा बोही पण्णत्ता इत्यादि—

टीका—‘दुविहा बोधी’ इत्यादि । बोधनं बोधिः—प्राप्तिः । सा द्विविधा-  
 ज्ञानबोधिः, दर्शनबोधिश्रेति । तत्र ज्ञानबोधिः ज्ञानावरणक्षयोपशमप्रभवा ज्ञान-  
 प्राप्तिः । दर्शनबोधिः—दर्शनमोहनीयक्षयोपशमादिसम्पन्ना श्रद्धानप्राप्तिरिति १ ।  
 बोधिमन्तोबुद्धाः, तेषु द्विविधाः—ज्ञानबुद्धा दर्शनबुद्धाश्चेति । एते च धर्मत  
 एव । भिन्ना न धर्मिक्या, ज्ञानदर्शनयोरन्योन्याधिनाभूतत्वादिति २ । एवं यथा  
 बोधिर्बुद्धाश्च—द्विविधाः प्रोक्तारतथा ‘मोहो मूढाश्च’ इत्यपि वाच्याः, आलापकश्चैवम्—  
 ‘दुविहे मोहे पणत्ते तं जहा—णाणमोहे चेव दंसणमोहे चेव । दुविहा  
 मूढा पणत्ता तं जहा—णाणमूढा चेव दंसणमूढा चेव इति ।

टीकार्थ—“बोधनं बोधिः” के अनुसार बोधि शब्दका अर्थ प्राप्ति है यह  
 बोधि दो प्रकार की कही गई है एक ज्ञानबोधि और दूसरी दर्शनबोधि  
 ज्ञानावरणकर्म के क्षयोपशम के प्रभाव से जो ज्ञान की प्राप्ति होती है  
 वह ज्ञानबोधि है दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयोपशम आदि से जो श्रद्धान  
 की प्राप्ति होती है वह दर्शनबोधि है बोधि वाले जो जीव हैं वे बुद्ध  
 हैं । ये बुद्ध भी दो प्रकार के होते हैं एक ज्ञानबुद्ध और दूसरे दर्शनबुद्ध  
 ये धर्म की अपेक्षा से ही भिन्न हैं धर्मरूप से भिन्न नहीं हैं । क्यों कि  
 ज्ञान और दर्शन ये परस्पर में अविनाभावि संबंध वाले हैं ।

जिस प्रकार बोधि और बुद्ध दो प्रकार के कहे गये हैं उसी प्रकार  
 से माह और मूढ ये भी दो प्रकार के कहे गये हैं । इस विषयक आलापक  
 इस प्रकारसे है—“दुविहे मोहे पणत्ते” मोह दो प्रकार का कहा गया है  
 (णाण मोहे चेव दंसणमोहे चेव) एक ज्ञानमोह और दूसरा दर्शनमोह

टीकार्थ—“बोधनं बोधि” आ व्युत्पत्ति अनुसार बोधि शब्दने अर्थ जैनधर्मनी  
 प्राप्ति छे ते बोधि जे प्रकारनी कही छे—(१) ज्ञानबोधि अने (२) दर्शनबोधि  
 ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमथी जे ज्ञाननी प्राप्ति थाय छे, तेनुं नाम  
 ज्ञानबोधि छे दर्शनमोहनीय कर्मना क्षयोपशम आदिथी जे श्रद्धानी प्राप्ति  
 थाय छे, तेने दर्शनबोधि कहे छे. बोधिवाणा जेवने बुद्ध कहे छे  
 ते बुद्धना पण जे प्रकार छे—(१) ज्ञानबुद्ध अने (२) दर्शनबुद्ध तेजो धर्मनी  
 अपेक्षाजे न भिन्न छे, धर्माज्ञे भिन्न नथी कारण्ते जे ज्ञान अने दर्शन पन्थे  
 अविनाभावी सम्बन्ध छेय छे

जेम बोधि अने बुद्ध जे प्रकारना कहे छे, जे न प्रमाणे मोह अने  
 मूढ पण्ठ जे प्रकारना कहे छे आ विषयनुं कथन नीचे प्रमाणे छे—

“दुविहे मोहे पणत्ते” मोह जे प्रकारना कहे छे—“णाणमोहेचेव  
 दंसणमोहेचेव” (१) ज्ञानमोह अने (२) दर्शनमोह. जे न प्रमाणे मूढ पण्ठ

छाया—द्विविधो मोहः महत्तत्त्वयथा—ज्ञानमोहश्चैव दर्शनमोहश्चैव । द्विविधा मूढाः महत्तत्त्वयथा - ज्ञानमूढाश्चैव दर्शनमूढाश्चैव, इति । व्याख्या सुगमा, नवरम्-ज्ञानं मादयति-आ-छादयतीति ज्ञानमाह - ज्ञानावरणोदयः । एष दर्शनमोहयतीति दर्शनमाहः-सम्यग्दर्शनमोहोदयः । तथा ज्ञानमूढा - उदितज्ञानावरणाः दर्शनमूढा मिथ्यादृष्टय इति ॥ सू० ४७ ॥

द्विविधोऽप्यय मोहो ज्ञानावरणादि कर्मनियन्धनमस्तीति सम्भवेन ज्ञानावरणादिकर्मणां द्विविध्यमष्टमि सूत्रेण—

मूलम्—जाणावरणिज्जे कम्मं दुविहे पणत्ते त जहा-वेसणाणावरणिज्जे चेत्त सव्वणाणावरणिज्जे चेत्त १ । दरिसणावरणिज्जे कम्मं एव वेत्त २ । वेयणिज्जे कम्मं दुविहे पणत्ते त जहा-सायावेयणिज्जे वेत्त असायावेयणिज्जे चेत्त ३ । मोहणिज्जे कम्मं दुविहे पणत्ते त जहा-दसणमोहणिज्जे चेत्त चत्तिमोहणिज्जे चेत्त ४ । आउए कम्मं दुविहे पणत्ते त जहा-

इसी प्रकार "दुविहा मूढा पणत्ता" मूढ दो प्रकारक कहे गपहैं—(जाण मूढा चैव वेसणमूढा चैव) एक ज्ञानमूढ और दूसरा दर्शनमूढ, ज्ञानावरणोदय ज्ञानमोह है क्यों कि—"ज्ञान मोहयति आच्छादयतीति" इस व्युत्पत्ति के अनुसार यह ज्ञान को आच्छादित करता है इसी प्रकार से—"दर्शन मोहयतीति दर्शनमोहः" दर्शनमोहनीय का उदय दर्शनमोह इस दर्शनमोह के उदय में सम्यग्दर्शन का जीव के उदय नहीं होता है जिनके ज्ञानावरण कर्म का उदय है वे ज्ञानमूढ हैं तथा जिनके मिथ्यादर्शन का उदय है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव दर्शनमूढ हैं । सू० ४७ ॥

वे प्रकारना इत्यां छे- षण्णमूढावेव इमणमूढावेव (१) ज्ञानमूढ ज्ञाने (२) दर्शनमूढ ज्ञानावरणोदय ज्ञानमोह इत्ये छे, अरुणु के "ज्ञान मोहयति आच्छादयतीति" आ उदयति अनुसार ते ज्ञानने आच्छादित करे छे जेव प्रभावे "ज्ञान मोहयतीति दर्शनमोहः" इत्यन्त मोहनीयने उदय इत्यन्त मोहइत्ये छे ते दर्शनमोहने उदय होय त्पारे अथवा सम्यग्-दर्शनने उदय होतो नथी. जेधना ज्ञानावरणीय कर्मने उदय होय छे जेवा अथवा ज्ञानमूढ होय छे ज्ञाने जेधना मिथ्यादर्शनने उदय होय छे जेवा मिथ्यादृष्टि अथवा दर्शनमूढ होय छे ॥ सू. ४७ ॥

अद्धाउए चैव भवाउए चैव । णामे कम्मे दुविहे पणत्ते तं  
जहा-सुभणामे चैव असुभणामे चैव दा गोत्ते कम्मे दुविहे  
पणत्ते तं जहा-उच्चागोत्ते चैव णीयागोत्ते चैव ७ । अंतराइए  
कम्मे दुविहे पणत्ते तं जहा-पडुप्पन्नविणासए चैव पिहिय  
आगामिपहं चैव ॥सू०४८॥

छाया—ज्ञानावरणीयं कर्म द्विविधं प्रज्ञप्तं तद्यथा - देशज्ञानावरणीयं चैव  
सर्वज्ञानावरणीयं चैव २ । दर्शनावरणीयं कर्म एवमेव २ । वेदनीयं कर्म द्विविधं  
प्रज्ञप्तं, तद्यथा-सातवेदनीयं चैव असातवेदनीयं चैव ३ । मोहनीयं कर्म द्विविधं  
प्रज्ञप्तं, तद्यथा-दर्शनमोहनीयं चैव चारित्रमोहनीयं चैव ४ । आयुष्कं कर्म द्विविधं  
प्रज्ञप्तं, तद्यथा-अद्धायुष्कं चैव भवायुष्कं चैव ५ । नामकं कर्म द्विविधं प्रज्ञप्तं,  
तद्यथा-शुभनाम चैव अशुभनाम चैव । गोत्रं कर्म द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-  
उच्चगोत्रं चैव नीचगोत्रं चैव ७ । आन्तरायिकं कर्म द्विविधं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-  
प्रत्युपन्नविनाशितं चैव पिहितगामिपथं चैव ॥ सू० ४८ ॥

टीका—' णाणावरणिज्जे ' इत्यादि ।

ज्ञानमावृणोति-समाच्छादयतीति ज्ञानावरणीयम् ।

आह च—“ सर उगगयससिनिम्मल, -यरस्स जीवस्स छायाणं जमिह ।

णाणावरणं कम्मं, पडोवमं होड एव तु ॥ २ ॥ ”

दोनों प्रकार का भी यह मोह ज्ञानावरणादि कर्मों का कारण होता  
है इस सम्बन्ध से ज्ञानावरणादि कर्मों की द्विविधता सूत्रकार इस  
अष्टसूत्र द्वारा प्रकट करते हैं—( णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पणत्ते  
इत्यादि ।

टीकार्थ—ज्ञानावरणीय कर्म दो प्रकारका कहा गया है यह ज्ञानावरणीय  
कर्म आत्मा के ज्ञानगुण को आच्छादित करता है इसलिये इसे पट  
की उपमा दी गई है । कहा भी है—( सर उगगय ससिनिम्मलयरस्स )

७पर कडेल अन्ने प्रकारने मोड ज्ञानावरणुदि कर्मानु कारणु होय छे ते  
कारणु सूत्रकार ज्ञानावरणुदि कर्मोनी द्विविधना नीचेना आठ सूत्रो द्वारा प्रकट करे छे.

“ णाणावरणिज्जे कम्मे दुविहे पणत्ते ” इत्यादि—

टीकार्थ—ज्ञानावरणीय कर्मना जे प्रकार कथा छे आ ज्ञानावरणीय कर्म आत्माना  
शुषुने आच्छादित करी नाये छे, तेथी तेने पटनी ( पर्दानी ) उपमा आपी  
छे. कहुं पणु छे के—“ सर उगगय ससि निम्मलयरस्स ” इत्यादि—



છાયા-શરદ્ગતવશિનિર્મલશરસ્ય જીવસ્યાઽઽચ્છાદન યદિદ્ ।

જ્ઞાનાવરણં કર્મ, પટાપમ મવત્યેવં તુ ॥ ઇતિ ॥

તત્કર્મ દ્વિવિધ મગ્નપ્તં મગરતા, તથા-વેશજ્ઞાનાવરણીયં સર્વજ્ઞાનાવરણીય  
 એવિ । તપ્ર વેશજ્ઞાનાવરણીય-દશ- જ્ઞાનસ્યૈકવેશમાભિનિષોષિકાદિકમાટ્ટનોતીતિ  
 તથયોક્તમ્ । સર્વજ્ઞાનાવરણીય-સવજ્ઞાન-કેવલજ્ઞાનમાટ્ટનોતીતિ તથયોક્તમ્ ।  
 કેવલાવરણ દિ-આદિત્યકલ્પસ્ય કેવલજ્ઞાનરૂપસ્ય જીવાસ્યાઽઽચ્છાદકતયા સાન્દ્ર  
 મેષહૃન્દકલ્પમિતિ તત્સર્વજ્ઞાનાવરણમ્, મત્પાણાવરણ તુ ઘનાતિચ્છાદિતાવિત્સ્યેપત્મ  
 માકલ્પસ્ય કેવલજ્ઞાનવેશસ્ય કટકુટપાદિકરૂપાવરણતુન્યમસ્તીતિ તદ્ વેશજ્ઞાના

હસ્યાદિ । અર્થાત્ પટ જિસ્ પ્રકાર સે વસ્તુ કો આચ્છાદિત કર વેતા હૈ ઠક  
 છેતા હૈ વસી પ્રકાર સે યહ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ બી શરતકાલ કે ચાત્રમા  
 જૈસે નિર્મલ જીવ કે જ્ઞાનગુણ કો આચ્છાદિત કર વેતા હૈ હસલિયે  
 જ્ઞાન કા આવારક ( ઠકનેવાલા ) હોને સે હમ કર્મ કો જ્ઞાનાવરણીય  
 કર્મ કહા ગયા હૈ યહ જ્ઞાનાવરણીય કર્મ વેશજ્ઞાનાવરણીય ઓર સર્વ  
 જ્ઞાનાવરણીય કે મેદ સે વો પ્રકાર હૈ જિસકે દ્વારા જ્ઞાન કે પક વેશમૂલ  
 આભિનિષોષિક આદિ જ્ઞાન આપૂત્ત કિયે જાલે હૈ યહ વેશજ્ઞાનાવરણીય  
 હૈ તથા જિસકે દ્વારા કેવલજ્ઞાન આપૂત્ત કિયા જાતા હૈ યહ સર્વજ્ઞાના  
 વરણીય હૈ કેવલાવરણ આદિત્યતુમ્ય કેવલજ્ઞાન સ્વ જીવ કા આચ્છાદક  
 હોને કે કારણ સાત્ર ( ઘન ) મેષવૃન્દ કે જૈસા હૈ હસલિયે યહ સર્વજ્ઞા-  
 નાવરણીય હૈ મતિ આદિ કા આવરણ ઘન સે આચ્છાદિત સ્ય ફી ર્ષવ

એટલે કે જેવી રીતે પટો વસ્તુને ઢાંકી દે છે એવ પ્રમાણે આ  
 જ્ઞાનાવરણીય કર્મ પણ શરદ્કમળના ચન્દ્રમા જેવાં નિમળ છવના જ્ઞાનગુણને  
 પણ ઢાંકી દે છે, આ રીતે જ્ઞાનતુ આવારક ( ઢાંકી દેનાર ) હોવાથી આ  
 કર્મને જ્ઞાનાવરણીય કર્મ કહે છે તે જ્ઞાનાવરણીય કર્મના બે ભેદ નીચે પ્રમાણે  
 છે-(૧) વેશ જ્ઞાનાવરણીય અને (૨) સર્વ જ્ઞાનાવરણીય. જેના દ્વારા જ્ઞાનના  
 એક વેશ રૂપ આભિનિષોષિક આદિ જ્ઞાનોને આવૃત ( આચ્છાદિત ) કરી  
 નાખવામાં આવે છે તે કર્મનું નામ વેશજ્ઞાનાવરણીય છે તથા જેના દ્વારા  
 કેવલજ્ઞાનને આવૃત કરવામાં આવે છે, તે કર્મનું નામ સર્વ જ્ઞાનાવરણીય છે.  
 સુમ સમાન કેવલજ્ઞાનતુ આવારક કેવલાવરણીય કર્મ સાન્દ્ર ( ઘન ) મેષવૃન્દના  
 જેવું છે તેથી તેને સર્વ જ્ઞાનાવરણ રૂપ કહેલ છે મતિજ્ઞાનાવરણ આદિ ઘન  
 ( વાતવેશી ) આચ્છાદિત સૂક્ષ્મી ઈત્પ્રભા જેવાં કેવલજ્ઞાન વેશના અદ્વાઈ,

वरणम् २ । तथा दर्शनं—सामान्यार्थ बोधरूपमावृणोतीति दर्शनावरणीयम्, ।

उक्तञ्च—“ दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।

त पडिहारसमाणं, दंसणावरणं भवे जीवे ॥ २ ॥ ”

छाया—दर्शनशीले जीवे दर्शनघातं करोति यत्कर्म ।

तत्प्रतीहारसमान दर्शनावरणं भवेज्जीवे ॥ इति ।

‘ एवं चेत् ’ इति—एतदपि एवमेव—देशदर्शनावरणीय—सर्वदर्शनावरणीयं चेति द्विविधम् । तत्र देशदर्शनावरणीयं—चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयम्, सर्वदर्शनावरणीयं—निद्रापञ्चकं केवलदर्शनावरणीयं कर्मापि द्विविधम्—सातवेदनीयम्

त्प्रभा के जैसे केवलज्ञानदेश का ऋतकुडयादिरूप ( चटाई और भीत ) आवरणतुल्य है इसलिये वह देशज्ञानावरण है तथा सामान्य अर्थ बोधरूप दर्शन का आवरणकर्ता दर्शनावरणीय कर्म है । कहा भी है— ( दंसणसीले जीवे ) इत्यादि ।

जिस प्रकार प्रतीहार—द्वारपाल राजा आदि के दर्शन नहीं करने देता है उसी प्रकार से यह दर्शनावरणीयकर्म भी आत्मा के दर्शनगुण को रोकता है उसका दर्शन नहीं करने देता है यह दर्शनावरणीय कर्म भी देशदर्शनावरणीय और सर्व दर्शनावरणीय के भेद से दो प्रकार का कहा गया है चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन को रोकने वाला जो दर्शनावरणीय कर्म है वह देशदर्शनावरणीय कर्म है अर्थात् चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और अवधिदर्शनावरणीय ये सब देशदर्शनावरणीय हैं निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला स्त्यानर्द्धि और केवलदर्शनावरणीय ये दर्शनावरणीय सर्वदर्शनावरणीय हैं,

द्विवाल आदि आवरणतुल्य है, तेथी ते देश ज्ञानावरणु इणं छे तथा सामान्य अर्थबोधइं दर्शननुं आवरणु कर्ता दर्शनावरणीय कर्मं छे. कहुं पणु छे— “ दंसणसीले जीवे ” इत्यादि—

जेवी रीते द्वारपाल राजा आदिना दर्शन करवा जनारने शक्ये छे, जेज्ज प्रमाणे आ दर्शनावरणीय कर्म पणु आत्माना दर्शनगुणने शक्ये छे—तेनां दर्शन करवा हेतुं नथी तेना पणु देश दर्शनावरणीय अने सर्व दर्शनावरणीय नामना जे लेह छे अक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अने अवधिदर्शनने शक्येनाइं जे दर्शनावरणीय कर्म छे, तेने देश दर्शनावरणीय कर्म कहे छे जेटले के अक्षु दर्शनावरणीय, अचक्षु दर्शनावरणीय, अने अवधि दर्शनावरणीय कर्मने देश दर्शनावरणीय कहे छे. निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि अने केवल दर्शनावरणीय, आ दर्शनावरणीयने सर्व दर्शनावरणीय कहे छे

छाया-शरद्वृक्षसञ्चिनिर्मलतरस्य जीवस्याऽऽच्छादनं यदिह ।

ज्ञानावरणं कर्म, पटोपमं भवत्येव तु ॥ इति ॥

तत्कर्म द्विविधं मद्गुप्तं भगवता, उघया-देशज्ञानावरणीयं सर्वज्ञानावरणीयं चेति । तत्र देशज्ञानावरणीय-देश-ज्ञानस्यैकदेशमामिनिबोधिकादिकमावृणोतीति उच्यते । सर्वज्ञानावरणीय-सर्वज्ञान-केवलज्ञानमावृणोतीति उच्यते । केवलावरणं हि-भादित्यवस्थस्य केवलज्ञानरूपस्य जीवात्स्याऽऽच्छादकतया सान्द्रमेघवृन्दकल्पमिति तत्सर्वज्ञानावरणम्, मस्यावावरणं तु पनातिच्छादित्वादिस्थेपरममाकल्पस्य केवलज्ञानदेशस्य कटकटपादिकपावरणतुल्यमस्तीति उच्यते ।

इत्यादि । अर्थात् पट जिस प्रकार से घस्तु को आच्छादित कर देता है वक छेता है वसी प्रकार से यह ज्ञानावरणीय कर्म भी शरत्काल के चद्रमा जैसे निर्मल जीव के ज्ञानगुण को आच्छादित कर देता है इसलिये ज्ञान का आवारक ( ढकनेवाला ) होने से इस कर्म को ज्ञानावरणीय कर्म कहा गया है यह ज्ञानावरणीय कर्म देशज्ञानावरणीय और सर्वज्ञानावरणीय के भेद से दो प्रकार है जिसके द्वारा ज्ञान के एक देशमूल आभिनिबोधिक आदि ज्ञान आवृत्त किये जाते हैं वह देशज्ञानावरणीय है तथा जिसके द्वारा केवलज्ञान आवृत्त किया जाता है वह सर्वज्ञानावरणीय है केवलावरण आदित्यतुल्य केवलज्ञान रूप जीव का आच्छादक होने के कारण साद्र ( घन ) मेघवृन्द के जैसा है इसलिये वह सर्वज्ञानावरणीय है मति आदि का आवरण घन से आच्छादित सूर्य की रीप

जेटले के जेवी रीते पटो वस्तुने ढकी दे छे जेव प्रभावे जा ज्ञानावरणीय कर्म पक्ष शरद्वृक्षमगना पन्द्रमा जेवा निमज लपना ज्ञानगुणने पक्ष ढकी दे छे जा रीते ज्ञानगुण आवारक ( ढकी देना ) छेपयो ज्य कर्मने ज्ञानावरणीय कर्म कहे छे ते ज्ञानावरणीय कर्मना के सेह नीचे प्रभावे छे-(१) देश ज्ञानावरणीय जने (२) सर्व ज्ञानावरणीय जेना द्वारा ज्ञानना जेक देश रूप आभिनिबोधिक आदि ज्ञानने आवृत्त ( आवृत्तित ) करी नाथवार्थ आवे छे ते कर्मनु नाम देशज्ञानावरणीय छे तथा जेना द्वारा केवलज्ञानने आवृत्त करवार्थ आवे छे ते कर्मनु नाम जेव ज्ञानावरणीय छे स्य समान केवलज्ञानगुण आवारक केवलावरणीय कर्म सान्द्र ( घन ) मेघवृन्दना जेवु छे, तेवी तेने सब ज्ञानावरण रूप कहे छे मतिज्ञानावरण आदि घन ( बाह्योधी ) आवृत्तित सूर्यनी धपत्रभा जेवा केवलज्ञान देशना जहाध,

वरणम् २ । तथा दर्शनं-सामान्यार्थ बोधरूपमावृणोतीति दर्शनावरणीयम् , ।

उक्तञ्च—“ दंसणसीले जीवे, दंसणघायं करेइ जं कम्मं ।

त पडिहारसमाणं, दंसणावरणं भवे जीवे ॥ २ ॥”

छाया—दर्शनशीले जीवे दर्शनघातं करोति यत्कर्म ।

तत्प्रतीहारसमान दर्शनावरणं भवेज्जीवे ॥ इति ।

‘ एवं चेव ’ इति—एतदपि एवमेव-देशदर्शनावरणीय-सर्वदर्शनावरणीयं चेति द्विविधम् । तत्र देशदर्शनावरणीयं-चक्षुरचक्षुरवधिदर्शनावरणीयम् , सर्वदर्शनावरणीयं—निद्रापञ्चकं केवलदर्शनावरणीयं कर्मापि द्विविधम्—सातवेदनीयम्

प्रभा के जैसे केवलज्ञानदेश का कटकुड्यादिरूप ( चटाई और भीत ) आवरणतुल्य है इसलिये वह देशज्ञानावरण है तथा सामान्य अर्थ बोधरूप दर्शन का आवरणकर्ता दर्शनावरणीय कर्म है । कहा भी है— ( दंसणसीले जीवे ) इत्यादि ।

जिस प्रकार प्रतीहार-द्वारपाल राजा आदि के दर्शन नहीं करने देता है उसी प्रकार से यह दर्शनावरणीयकर्म भी आत्मा के दर्शनगुण को रोकता है उसका दर्शन नहीं करने देता है यह दर्शनावरणीय कर्म भी देशदर्शनावरणीय और सर्व दर्शनावरणीय के भेद से दो प्रकार का कहा गया है चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन को रोकने वाला जो दर्शनावरणोप कर्म है वह देशदर्शनावरणीय कर्म है अर्थात् चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय और अवधिदर्शनावरणीय ये सब देशदर्शनावरणीय हैं निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला स्त्यानद्धि और केवलदर्शनावरणीय ये दर्शनावरणीय सर्वदर्शनावरणीय हैं,

द्विवाल आदि आवरणतुल्य है, तेथी ते देश ज्ञानावरणु इयं छे तथा सामान्य अर्थबोधइयं दर्शनतुं आवरणु कर्ता दर्शनावरणीय कर्म छे. कहुं पणु छे—

“ दंसणसीले जीवे ” इत्यादि—

जेवी रीते द्वारपाल राजा आदिना दर्शन करवा जनारने राके छे, जेज प्रभाणु आ दर्शनावरणीय कर्म पणु आत्माना दर्शनगुणुने राके छे—तेनां दर्शन करवा हेतुं नथी. तेना पणु देश दर्शनावरणीय अने सर्व दर्शनावरणीय नामना जे लेह छे अक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अने अवधिदर्शनने राकनाइं जे दर्शनावरणीय कर्म छे, तेने देश दर्शनावरणीय कर्म कहे छे. अटले के अक्षु दर्शनावरणीय, अचक्षु दर्शनावरणीय, अने अवधि दर्शनावरणीय कर्मानि देश दर्शनावरणीय कहे छे. निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला, स्त्यानद्धि अने केवल दर्शनावरणीय, आ दर्शनावरणीयने सर्व दर्शनावरणीय कहे छे

અસાતવેદનીયં ચેતિ । તત્ર વેપતે-અનુમૂપત્ત ઇતિ વેદનીયમ્, સાતં, મુત્તં, તદ્વપ તયા વેપતે યતત્ સાતવેદનીયમ્, અસાતરૂપતયા-દુઃસ્વરૂપતયા યત્ વેપતે તત્ અસાતવેદનીયમ્, ઇતદ્દર્શ્ય મધુષ્ઠિત્ત્વદ્વનિશ્ચિત્તધારાયા નિદ્ધયા લેહનવત્ ( આસ્વાદન વત્ ) મુત્તદુઃસ્વોત્પાદક વિશેયમ્ ૩ । ઉક્તશ્ચ—

“ મહુલિષ્ઠનિસિયકરચાલધારીશાય જારિસ લિદ્ધન ।

તારિસય વેપણિય મુત્તદુઃ ઉપ્પાયગ મુગ્ધ ॥ ૨ ॥ ”

ઠાયા—મધુલિષ્ઠનિશ્ચિત્તકરચાલધારાયા નિદ્ધયા યાદ્યં લેહનમ્ ।

તાદશ વેદનીયં, મુત્તદુઃસ્વોત્પાદક જાનીત ॥ ઇતિ ૩ ॥

મોહયતિ-સદ્સદ્વિવેકવિકલ કરોત્યાત્માનમિતિ મોહનીયમ્, ઇતત્ કમપુરુષ મધવત્ પરવશ વરોતિ, ઉક્તશ્ચ—

વેદનીય કર્મ મી વો પ્રકાર વા હોવા હૈ-એક સામાવેદનીય ઓર વૃસરા અસામાવેદનીય જો કર્મ સુસ્વરૂપ સે વેદિત ક્રિયા જાગા હૈ વહ સાતાવે વનીય કર્મ હૈ, ઓર જો દુઃસ્વરૂપ સે વેદિત ક્રિયા જાગા હૈ વહ અસા તાવેદનીય કર્મ હૈ જિમ પ્રકાર શહદ-મધુ સે લિસ છુઈ તવચાર કે વ્યાદનેસે જીવ કટ જાતી હૈ તો દુઃસ્વ હોતા હૈ ઓર મધુકે સ્વાદસે સુસ્વ હોતા હૈ ઇતી પ્રકાર વહ કર્મ જીવોંકો સુસ્વ ઓર દુઃસ્વકા વસ્પાદક હોતા હૈ ।  
કહા મી હૈ-( મહુલિષ્ઠનિસિયકરચાલ ) ઇત્યાદિ ।

આત્મા કો જો ત્વોટે ત્વરે કે જ્ઞાન સે વિકલ-રહિત કર વેતા હૈ વહ મોહનીયકર્મ હૈ વહ કર્મ મધ વી તરદ્ જીવ કો વેમાન કર વેતા હૈ અતઃ જીવ પરવશ હો જાતા હૈ મોહનીય કર્મ વો પ્રકાર વા હૈ એક વૃહીનમોહનીય ઓર વૃસરા ચારિત્રમોહનીય જનમેં વર્ણનમોહનીય કર્મ

વેદનીય કર્મના વધુ સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય નામના બે ભેદ હજી છે જે કર્મને મુખરૂપે વેદિત કરવામાં આવે છે તે કર્મને સાતાવેદનીય કહે છે અને જે કર્મને દુઃખરૂપે વેદિત કરવામાં આવે છે, તે કર્મને અસાતા વેદનીય કર્મ કહે છે જેમ મધથી વિષ થયેલી તલચારને ચારતાં ચારતાં જો એમ કપાઈ જાય તો દુઃખ વાય છે અને મધના સ્વાદથી મુખ વાય છે, એજ પ્રમાણે જા કર્મ વધુ એવોના મુખ અને દુઃખવત્ ઉત્પાદક હોય છે. હમુ વધુ છે કે-“ મહુલિષ્ઠ નિસિયકરવાહ ” ઇત્યાદિ—

આત્માને ખરા અને ઝોગના જ્ઞાનથી રહિત કરી દેનાર કર્મને મોહનીય કર્મ કહે છે જા કર્મ મરિશની જેમ એવને જ્ઞાન કરી નાજે છે, તેને વીધે એજ પરવશ થઈ વ્યથ છે મોહનીય કર્મના બે પ્રકાર છે-(૧) ઇચન

“ जटमञ्जपाणमूढो लोए पुरिमो परवशो होइ ।

तह सोहेणनि मूढो, जीवो उ परवशो होइ ॥ २ ॥ ” इति ।

छाया—यथा मद्यपानमूढो लोके पुरुषः परवशो भवति ॥

तथा मोहेनापि मूढो जीवन्तु परवशो भवति ॥ इति ।

तद् द्वित्रिंशं दर्शनमोहनीयं चाग्निमोहनीयं चेति । तत्र दर्शनमोहनीयं-मिथ्यात्ममिश्रमम्यवत्वभेदात्मकं, चारित्रं-सामायिकादि, तद् मोहयति तद्विषयं वैपरीत्यं जनयतीति चाग्निमोहनीयं - कृपाय १६ नोकृपाय ९ भेदेन पञ्चविंशतिविधम् ४ । एति-प्रतिममय गच्छतीति आयुः, यदा-एति-भागच्छति प्राप्नोति प्रतिबन्धकतां स्वकृतकर्माशप्तगतेनिष्क्रमितुमनसोऽपि जीवस्येति-आयुः तदेव-आयुः निगडरूपमेतन् यदाह—

मिथ्यात्व, सम्पद् मिथ्यात्व और सम्पद् प्रकृति के भेद से तीन प्रकार का है, सामायिक आदि चाग्नि को जो मोहित कर देता है-अर्थात् उनके विषय में विपरीत आभिनिवेश को उत्पन्न करना है वह चाग्निमोहनीय है यह चाग्नि मोहनीय कर्म १६ कृपाय और ९ नो कृपाय के भेद से २५ प्रकार का है अर्थात् दर्शनमोहनीय कर्म के तीन भेद मिलाने से अट्ठाईस भेद होते हैं। जिसका प्रति समय विनाश होता है अर्थात् जो प्रतिसमय व्यतीत होता रहता है वह आयु है अथवा-अपने कृतकर्मके उदयानुसार प्राप्त गतिसे निकलनेकी अभिलाषा वाले भी जीव को जो उस गति से निकलने देने में प्रतिबन्धक होता है वह आयुकर्म है यह कर्म वेही के जैसा होता है अर्थात् पांव में पड़ी हुई वेही जिस प्रकार से जीव को उसी स्थान पर रोक कर रखती है इसी

मोहनीय अने (२) चारित्र मोहनीय दर्शन मोहनीयना पणु नीचे प्रमाणे त्रयु लेह कथा छे-(१) मिथ्यात्व (२) मिश्र मोहनीय, अने (३) सम्पद् प्रकृति, साम यिक आदि चारित्रने जे मोहित करी नाणे छे अट्ठे के विषयमां विपरीत तेमना अभिनिवेशनी उत्पत्ति करे छे, ते प्रदाना कर्माने चारित्र मोहनीय कहे छे, ते चारित्र मोहनीय कर्म १६ कृपाय अने ९ नोकृपायना लेहथी २५ प्रकारनुं छे, दर्शन मोहनीय कर्माना त्रयु लेहाने तेमा उभेरगथी कुल २८ लेह थाय छे, तथा जेना प्रतिसमय विनाश थतो रहे छे, अट्ठे के जे प्रतिसमय व्यतीत थतुं रहे छे, ते आयु छे अथवा-पोताना कृतकर्माना उदयानुसार प्राप्त गतिमाथी नीकणवानी अलिखावावाणा जवने पणु जे गतिमाथी नीकणवा देवामां प्रति बन्धक (शिकनार) छे, ते कर्मनु नाम आयुकर्म छे, ते कर्म जेडी जेपुं होय छे पगमां रहेली जेडी जेम जवने ते स्थाने जे शिकी राणे छे, जेज



जीवमिति नाम, ।

उक्तञ्च—“ जह चित्तयरो निउणो, अणेगस्त्वाडं कुणड रूवाहं ।

सोहणमसोहणाहं, चोक्खमचोक्खेहि णणेहि ॥ १ ॥

तह नामं पि हु कम्म, अणेगस्त्वाड कुणड जीवस्स ।

सोहणमसोहणाडं, इट्ठाणिट्ठाडं लोयस्स ॥ २ ॥ ”

छाया—यथा चित्रकरो निपुणः अनेकरूपाणि करोति रूपाणि ।

शोभनाशोभनानि, चोक्षाचोक्षैर्वर्णैः ॥ १ ॥

तथा नामापि खलु कर्म, अनेकरूपाणि करोति जीवरय ।

शोभनाशोभनानि, इष्टानिष्टानि लोकस्य ॥ ३ ॥ इति ।

तद् द्विविधं—शुभनाम अशुभनाम चेति । शुभनाम—तीर्थकरादि, अशुभनाम—  
अनादेयत्वादिद् । गूर्यते—मंगच्छते उच्चार्यैः शब्दैर्यत्—तद्गोत्रं, तन्स्वरूपं यथा—

उस भव के व्यतीत हो जाने पर नियम से छूट ही जाता है । कालान्तर  
में साथ नहीं जाता है ५, ।

जो जीव को विचित्र पर्यायों से परिणमाता है वह नामकर्म है ।  
कहा भी है—“ जह चित्तयरो निउणो ” इत्यादि ।

जिस प्रकार चित्र बनाने वाला चितेरा अनेक प्रकार के खिलोने  
लाल पीले आदि रंगों वाले बना देता है उसी प्रकार से यह नाम कर्म  
भी जीव को अनेक आकारों को बना देता है लोकको चाहे वे सुन्दर लगें  
या नहीं लगें, इष्ट हो या इष्ट न हों यह कर्म इसका परवाह नहीं करता है ।

यह कर्म शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म के भेद से दो प्रकार  
का है । तीर्थकर प्रकृति आदि रूप शुभनामकर्म है, और अनादेय आदि-

तेना सहभावो ज्ञेयः, ते लव व्यतीतं यता ते नियमथी न छृती जय छे.  
कालान्तरमां साथे न्तु नथी. ॥ ५ ॥

“ जह चित्तयरो निउणो ” इत्यादि—

जैम चित्र बनानेवाले चित्रकार अनेक प्रकारका रसकडांओने लाल, पीला,  
आदि रंगोवाला बनाती दे छे, जैज प्रभावे या नामकर्म पणु जवने विविध  
आकारोवाला बनाती दे छे लोकने लडे ते सुंदर लागे के न लागे, छि  
लागे के न लागे, तेनी परवा ते करतु नथी.

ते कर्मना जे लडे छे—(१) शुभ नामकर्म अने (२) अशुभ नामकर्म.  
तीर्थकर प्रकृति आदि रूप शुभ नामकर्म छे अने अनादेय आदि रूप अशुभ



“દુઃસ્વ ન દેહ માઝ, નવિ ય સુહં વેદ ષ ઝમુવિ ગર્મ્મિ ।

દુઃસ્વમુદાણાન્નાર, ધરેદ વદદ્વિષ્ણી વીર્વં ॥ ૨ ॥”

છાયા—દુઃસ્વ ન દેદાતિ આયુ, નાપિ ચ સુસ્વં દેદાતિ ષતસુઃસ્વપિ ગતિયુ ।

દુઃસ્વમુલ્લાનામાષાર ધરતિ દેહસ્થિર્વં જીવમ્ ॥ ઇતિ ।

તદ્ આયુષ્કં કર્મ દ્વિવિધમ્—અદ્વાયુષ્ક મવાયુષ્ક ચેતિ । તપ્ર અદ્વાયુષ્ક—કાયસ્થિતિરુપ, તથ મનુષ્યાણાં પચ્ચેન્દ્રિયતિર્યગ્ચોનિષાનાં ચ મષતિ, ઘસ્યવિષદ્ મષનાશ્ચેઽપિ નાપગચ્છતિ । ઠકુદ્વિષ્ણ સપ્તાષ્ટમવકાલ યાવદનુગચ્છતીતિ । મવાયુષ્ક—મવસ્થિરુપ, તચ્ચ દવાનાં નૈરયિકાણાંવ મવતિ, યદ્ મવાત્પયે નિયમા ધવગ ચ્છત્યથ ન કાલાન્તરમનુયાતીતિ • । નમયતિ—ત્રિવિષ્ણવર્ણાયૈઃ પરિણમયતિ

પ્રકાર સે આયુષ્કં મી જીવ કો પ્રાપ્ત શરીર મેં હી અપની સમાપ્તિ તક રોક કર રલે રહતા હૈ કહા મી હૈ—(દુઃસ્વ ન દેહ માઝ) ઇત્યાદિ ।

આયુષ્કં જીવ કો ન દુઃસ્વ દેતા હૈ ઓર ન સુસ્વ દેતા હૈ કિન્તુ સુસ્વદુઃસ્વ કે આધાર મૂલ પ્રાપ્ત વ્હ મેં યહ જીવ કો રોક કર રમ્બતા હૈ યહ આયુષ્ક મો પ્રકાર કા હૈ ઇક અદ્વાયુષ્ક ઓર દૂસરા મવાયુષ્ક, અદ્વાયુષ્ક કાયસ્થિતિ સ્વપ હૈ યહ અદ્વાયુષ્ક મનુષ્ય ઓર પચ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્ચો કો હોના હૈ કિસી ૨ કે યહ ઝમ મવ કે નાશ હોને પર મી નહીં જાતા હૈ—નહીં છૂટતા હૈ । ઇસકા ઠકુદ્વિષ્ણ કાલ સાત આઠ મવગ્રહણ પ્રમાગ હૈ અર્થાન્ ફોઈ મી મનુષ્ય યા પચ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્ચો અપની મનુષ્ય જાતિ મેં યા પચ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્ચોગતિ મેં લગાતાર સાત આઠ મવ—જન્મ તક રહ સકતાહૈ ઓર ઝસકે પશ્ચાત્ મેં યહ ઝસ જાતિ કો છોડ દેતાહૈ । મવાયુષ્ક મવસ્થિતિરુપ હોતા હૈ યહ દેહ ઓર નૈરયિકો કો હોતા હૈ યહ

પ્રમાણે આયુષ્કમં પલ્લુ ઇતને પ્રાપ્ત શરીરમાં જ પોતાની સમાપ્તિ થાય ત્યાં સુધી શરીર શખે છે કશું પલ્લુ છે—“દુઃસ્વ ન દેહ માઝ”—ઇત્યાદિ

આયુષ્કમ ઇતને ક્ષાય કે મુખજ પતું નથી પરન્તુ મુખકુખન્ય આધારરૂપ પ્રાપ્તહેતુમા તે ઇતને શરીર શખે છે તે આયુષ્કમના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકાર છે—(૧) અદ્વાયુષ્ક અને (૨) મવાયુષ્ક અદ્વાયુષ્ક કાયસ્થિતિરુપ છે મનુષ્ય અને પચ્ચેન્દ્રિય તિર્યગ્ચોમાં અદ્વાયુષ્કને સદ્માત્ર કોવ છે કોઈ કોઈ ઇવેના વર્તમાનમવને નાશ થવા છતાં પલ્લુ તે જતું નથી—છૂટું નથી. તેને ઠકુદ્વિષ્ણ કાલ સાત—આઠ મવગ્રહણ પ્રમાણ છે એટલે કે કોઈ પલ્લુ મનુષ્ય અથવા પચ્ચેન્દ્રિયતિર્યગ્ચો પોતાની મનુષ્યવતિમાં અથવા પચ્ચેન્દ્રિયતિર્યગ્ચો વતિમાં લગાતાર સાત આઠ મવ (૪ મ) સુધી શરીર શખે છે અને ત્યારબાદ તે જીવ અતિને છોડી રે છે મવાયુષ્ક અવસ્થિતિરુપ કોવ છે તેને અને નાશકોમાં

जीवमिति नाम, ।

उक्तञ्च—“ जह चित्तयरो निउणो, अणेगरुवाइं कुणइ खुवाइं ।

सोहणमसोहणाइं, चोक्खमचोक्खेहिं वण्णेहिं ॥ १ ॥

तह नामं पि हु कम्मं, अणेगरुवाइं कुणइ जीवस्स ।

सोहणमसोहणाइं, इट्ठाणिट्ठाइं लोयस्स ॥ २ ॥ ”

छाया—यथा चित्रकरो निपुणः अनेकरूपाणि करोति रूपाणि ।

शोभनाशोभनानि, चोक्षाचोक्षैवणैः ॥ १ ॥

तथा नामापि खलु कर्म, अनेकरूपाणि करोति जीवस्य ।

शोभनाशोभनानि, इष्टानिष्टानि लोकस्य ॥ ३ ॥ इति ।

तद् द्विविधं—शुभनाम अशुभनाम चेति । शुभनाम—तीर्थकरादि, अशुभनाम—  
अनादेयत्वादिद । गूर्यते—संशब्धते उच्चावचैः शब्दैर्यत्—तद्गोत्रं, तत्स्वरूपं यथा—

उस भव के व्यतीत हो जाने पर नियम से छूट ही जाता है । कालान्तर  
में साथ नहीं जाता है ५, ।

जो जीव को विचित्र पर्यायों से परिणमाता है वह नामकर्म है ।  
कहा भी है—“ जह चित्तयरो निउणो ” इत्यादि ।

जिस प्रकार चित्र बनाने वाला चितेरा अनेक प्रकार के खिलोने  
लाल पीले आदि रंगों वाले बना देता है उसी प्रकार से यह नाम कर्म  
भी जीव को अनेक आकारों को बना देता है लोको को चाहे वे सुन्दर लगें  
या नहीं लगें, इष्ट हो या इष्ट न हों यह कर्म इसका परवाह नहीं करता है ।

यह कर्म शुभनामकर्म और अशुभनामकर्म के भेद से दो प्रकार  
का है । तीर्थकर प्रकृति आदि रूप शुभनामकर्म है, और अनादेय आदि-

तेना सदूलाव डोय छे, ते भव व्यतीत थता ते नियमथी न छूटी नय छे.  
कालान्तरमां साथे न्तु नथी. ॥ ५ ॥

“ जह चित्तयरो निउणो ” इत्यादि—

जेम चित्र बनानार चित्रकार अनेक प्रकारना रमकडांओने लाल, पीजां,  
आदि रंगोवाणां बनावी दे छे, जेन प्रमाणे आ नामकर्म पणु बनने विविध  
आकारोवाणो बनावी दे छे दोडोने भजे ते सुहर लागे के न लागे, धष्ट  
लागे के न लागे, तेनी परवा ते करतु नथी.

ते कर्मना भे भेद छे—(१) शुभ नामकर्म अने (२) अशुभ नामकर्म.  
तीर्थकर प्रकृति आदिइय शुभ नामकर्म छे अने अनादेय आदि इय अशुभ

“ जह कुमारो मडाई कुणइ पुज्जेपराई सोपरस ।

इयगोय कुणइ मिय, सोए पुज्जेपरावस्थ ॥ १ ॥

छाया—यथा कुम्भधारो माण्डानि करोति पूज्येतराणि लोकस्य । इति (पर्व)

गोत्र करोति जीवं, लोके पूज्येतरावस्थम् ॥ इति ।

उद् द्विविधम्—उच्चैर्गोत्र माननीयनिष्पन्नम्, नीचैर्गोत्रम्—अमाननीय निष्पन्नमिति ७।

उक्तञ्च—सत्ताणकमेणागय जीवाचरणस्त गोधमिति सञ्ज्ञा ।

उच्चं नीच चरण उच्चणीयं हवेगोच ॥

छाया—सन्तानक्रमेणागत जीवाचरणस्य गोधमिति संज्ञा ।

उच्चं नीच चरण, उच्च नीच भवेद् गोधम् ॥

रूप अष्टमनामकर्म है उच्च और नीच शब्दों द्वारा जो लोक में कहा जाता है वह गोत्र कर्म है—कहा भी है—(जह कुमारो मडाई इत्यादि।

गोत्रकर्म जीव को उच्चमीच कुलों में जन्म कराने में कारण होता है यह गोत्रकर्म दो प्रकार का है एक उच्चगोत्र और दूसरा नीचगोत्र, जिसके उदयसे जीवका उच्चकुलमें—लोकमाननीयकुल में जन्म होता है यह उच्चगोत्र है और जिसके उदय से लोकनिन्दित कुल में जन्म होता है यह नीचगोत्र है उच्चगोत्र पूज्यता का कारण होता है और नीचगोत्र अपूज्यता का कारण होता है। कहीं २ ऐसा भी कहा गया है

“सत्ताणकमेणागय” इत्यादि।

सत्तानक्रम से—गोत्रनामकर्म के उदय से प्राप्त वंशपरम्परा से—आगत जीवका जो आचरणविशेष है वह गोत्र है जहाँ उच्च आचरण

नामकर्म उ उच्च अने नीचना नामधी ने दोहेभां जोग्याय उ, ते गोत्रकर्म उ उच्च पय उ हे—“जह कुमारो मडाई” इत्यादि—

एवने उ उच्च अथवा नीच कुणभां न म इरावथामां गोत्रकर्म इरावथु अने उ ते गोत्रकर्मना न प्रकार उ—(१) उच्च गोत्र अने नीच गोत्र

ने कर्मना उदयधी एवने उ उच्च कुणभां, दोह माननीच कुणभां न म वाय उ, ते कर्मने उच्च गोत्र कर्म कहे उ ने कर्मना उदयधी दोहनिन्दित कुणभां एवने न म वाय उ, ते कर्मने नीच गोत्र कर्म कहे उ उच्च गोत्र पूज्यतां इरावथु अने उ अने नीच गोत्र अपूज्यतां इरावथु अने उ हेउ हेउ उ उच्चाने जेउ पय उ उ—“सत्ताण कमेणागय” इत्यादि—

सत्तानक्रमे (गोत्र नाम कर्मना उदयधी प्राप्त पद्यपरम्पराधी) आगत एवने उ आचरण विशेष उ तेने गोत्र कहे उ अना उच्च आचरण वाय उ ते उच्च गोत्र उ अने अना नीच आचरण वाय उ ते नीच गोत्र उ

अन्तः—दातृप्रतिग्राहकयोर्मध्ये विघ्नरूपेण आयातीति अन्तरायः, तत्र भवम्  
अन्तरायिकं, यथा राजा कस्मैचिदातुमुपदिशति तत्र भाण्डागारिकोऽन्तराले विघ्न-  
कारको भवति तद्वदिदं कर्म दानाद्यन्तरायजनकं भवति, ।

उक्तञ्च—“ जह राया दाणार्ई, ण कुणइ भंडारिए विकूलम्मि ।

एवं जेणं जीवो, कम्मं तं अंतरायंति ॥ १ ॥ ”

छाया—यथा राजा दानादि, न करोति भाण्डारिके विकूले ।

एवं येन जीवः कर्म तदन्तरायमिति ॥ १ ॥

तद् द्विविधं—प्रत्युत्पन्नविनाशितं पिडितागामिपथं चेति । तत्र प्रत्युत्पन्नं—  
वर्तमानलब्धमर्थजातं विनाशितम्—उपहतं येन तत्तथोक्तम् । तथा पिडितः—आच्छा-  
दितः आगामिनो—लब्धव्यस्यार्थजातस्य पन्था—मार्गो यस्येति तत्तथोक्तम्  
८ ॥ सू० ४८ ॥

होता है वह उच्च गोत्र है और जहां नीच आचरण है, वह नीचगोत्र है ।

दाता और प्रतिग्राहकके बीचमें जो विघ्नरूपसे आकर उपस्थित हो  
जाता है वह अन्तराय है इस अन्तरायमें जो कारणरूप होता है वह आन्त-  
रायिक है जैसे राजा किसी को दान देनेको कहता है, परन्तु भण्डारी  
अन्तराल में उसमें विघ्न डाल देता है उसी प्रकार से यह कर्म दानादिकों  
में अन्तराय का जनक होता है । कहा भी है—“जह राया दाणार्ई” इत्यादि ।

यह अन्तरायकर्म दो प्रकार का होता है, एक प्रत्युत्पन्न विनाशित  
और दूसरा पिडितागामिपथ जिसके द्वारा वर्तमान काल में लब्ध अर्थ-  
द्रव्य नष्ट कर दिया जाता है वह प्रथम प्रकार है तथा जिसके द्वारा  
आगामीकाल में प्राप्त होने योग्य अर्थ का रास्ता रोक दिया जाता है  
वह दूसरा प्रकार है ॥ सू०४८ ॥

दाता अने प्रतिग्राहकनी वच्ये विघ्न ( अन्तराय ) इये आवी पडनार  
कर्मणुं नाम आन्तरायिक कर्म छे. जेमके राजा कोषने दान देवानु कडे छे,  
पणु भंडारी तेमां वच्ये विघ्न भिणुं करे तो याचकने दान प्राप्तिमां अन्तराय  
भिलो थाय छे, जे ज प्रभाणु आ कर्म दानादिकमां अन्तरायजनक होवाथी  
तेने अन्तराय कर्म कडे छे कहुं पणु छे—“ जह राया दाणार्ई ” इत्यादि—  
ते अन्तराय कर्मना नीचे प्रभाणु जे प्रकार छे—(१) प्रत्युत्पन्न विनाशित  
अने (२) पिडितागामिपथ जेना द्वारा वर्तमानकालमा प्राप्त थनार अर्थ  
( द्रव्य ) ने नष्ट करी नाभवामा आवे छे जेवा अन्तराय कर्मणुं नाम प्रत्यु-  
त्पन्न विनाशित छे तथा जेना द्वारा भविष्यमां प्राप्त थनार अर्थ  
( द्रव्यदाभादि ) ने मार्ग अटकावी देवामा आवे छे, ते कर्मणुं नाम  
पिडितागामिपथ अन्तराय कर्म छे. ॥ सू. ४८ ॥

“ जह कुमारो भडाई कुणइ पुञ्जेयराइ सोयरस ।

इयगोयं कुणइ भिय, लोए पुञ्जेयरावत्तं ॥ १ ॥

छाया—यथा कुम्भकारो भाण्डानि करोति पूज्येतराणि लोकस्य । इति (एव)

गोत्र करोति जीवं, लोके पूज्येतरावस्यम् ॥ इति ।

तद् द्विविधम्—उच्चैर्गोत्र माननीयनिष्पन्नम्, नीचैर्गोत्रम्—अमाननीय निष्पन्नमिति ७।

उक्तञ्च—सत्ताणकमेणागय जीवापरणस्स गोचमिति सञ्जा ।

उच्च नीच चरण उच्च नीच हवेगोत्तं ॥

छाया—सन्तानक्रमेणागत जीवाचरणस्य गोत्रमिति संज्ञा ।

उच्च नीच चरण, उच्च नीच भवेद् गोत्रम् ॥

रूप अशुभनामकर्म है उच्च और नीच शब्दों द्वारा जो लोक में कहा जाता है वह गोत्र कर्म है—कहा भी है—(जह कुमारो भडाई इत्यादि।

गोत्रकर्म जीव को उच्चनीच कुलों में जन्म कराने में कारण होता है यह गोत्रकर्म दो प्रकार का है एक उच्चगोत्र और दूसरा नीचगोत्र, जिसके उदयसे जीवका उच्चकुलमें—लोकमाननीयकुल में जन्म होता है वह उच्चगोत्र है और जिसके उदय से लोकनिम्नित कुल में जन्म होता है यह नीचगोत्र है उच्चगोत्र पूज्यता का कारण होता है और नीचगोत्र अपूज्यता का कारण होता है। कहीं २ ऐसा भी कहा गया है

“सत्ताणकमेणागय” इत्यादि।

सन्तानक्रम से—गोत्रनामकर्म के उदय से प्राप्त वंशपरम्परा से—आगतजीवका जो आचरणविशेष है वह गोत्र है जहां उच्च आचरण

नामकर्म उ उच्च अने नीचना नामधी ने देहाभां जोगभाय उ, ते गोत्रकर्म उ उच्च पद्य उ उ—“जह कुमारो भडाई” इत्यादि—

अने उ उच्च अथवा नीच पुणभां जन्म इरावनाभां गोत्रकर्म इरावजुत अने उ ते गोत्रकर्मना से प्रहार उ—(१) उच्च गोत्र अने नीच गोत्र

ने इमना उदयधी अने उ उच्च पुणभां, वैध माननीय पुणभां जन्म वाय उ, ते इमने उच्च गोत्र कर्म इहे उ ने इमना उदयधी वैधनिम्नित पुणभां

अने उ उच्च वाय उ, ते इमने नीच गोत्र कर्म इहे उ उच्च गोत्र पूज्य तानुं इराव अने उ अने नीच गोत्र अपूज्यतानुं इराव अने उ इध वैध अथवा अने उ उच्च उ उ—“सत्ताण कमेणागय” इत्यादि—

सन्तानकर्म (गोत्र नाम कर्मना उदयधी प्राप्त वंशपरम्पराधी) आगत अने उ आचरण विशेष उ तेने गोत्र इहे उ अथा उच्च आचरण वाय उ ते उच्च गोत्र उ, अने अथा नीच आचरण वाय उ ते नीच गोत्र उ

अन्तः—दातृप्रतिग्राहकयोर्मध्ये विघ्नरूपेण आयातीति अन्तरायः, तत्र भवम्  
आन्तरायिकं, यथा राजा कस्मैचिदातुमुपदिशति तत्र भाण्डागारिकोऽन्तराले विघ्न-  
कारको भवति तद्वदिदं कर्म दानाद्यन्तरायजनक भवति, ।

उक्तञ्च—“ जह राया दाणार्ई, ण कुणइ भंडारिए विकूलम्मि ।

एवं जेणं जीवो, कम्मं तं अंतरायंति ॥ १ ॥ ”

छाया—यथा राजा दानादि, न करोति भाण्डारिके विकूले ।

एवं येन जीवः कर्म तदन्तरायमिति ॥ १ ॥

तद् द्विविधं—प्रत्युत्पन्नविनाशितं पिहितागामिपथं चेति । तत्र प्रत्युत्पन्नं—  
वर्तमानलब्धमर्थजातं विनाशितम्—उपहतं येन तत्तथोक्तम् । तथा पिहितः—आच्छा-  
दितः आगामिनो—लब्धव्यस्यार्थजातस्य पन्था—मार्गो यस्येति तत्तथोक्तम्

८ ॥ सू० ४८ ॥

होता है वह उच्च गोत्र है और जहां नीच आचरण है, वह नीचगोत्र है ।

दाता और प्रतिग्राहकके बीचमें जो विघ्नरूपसे आकर उपस्थित हो  
जाता है वह अन्तराय है इस अन्तरायमें जो कारणरूप होता है वह आन्त-  
रायिक है जैसे राजा किसी को दान देनेको कहता है, परन्तु भण्डारी  
अन्तराल में उसमें विघ्न डाल देता है उसी प्रकार से यह कर्म दानादिकों  
में अन्तराय का जनक होता है । कहा भी है—“जह राया दाणार्ई” इत्यादि ।

यह अन्तरायकर्म दो प्रकार का होता है, एक प्रत्युत्पन्न विनाशित  
और दूसरा पिहितागामिपथ जिसके द्वारा वर्तमान काल में लब्ध अर्थ-  
द्रव्य नष्ट कर दिया जाता है वह प्रथम प्रकार है तथा जिसके द्वारा  
आगामीकाल में प्राप्त होने योग्य अर्थ का रास्ता रोक दिया जाता है  
वह दूसरा प्रकार है ॥ सू०४८ ॥

दाता अने प्रतिग्राहकनी वच्ये विघ्न ( अन्तराय ) इये आवी पडतार  
कर्मणुं नाम आन्तरायिक कर्म छे. जेमके राज्ज डोधने दान देवानु कडे छे,  
पणु लंडारी तेमा वच्ये विघ्न ठिअु करे तो यायकने दान प्राप्तिमां अन्तराय  
ठिअो थाय छे, जे जे प्रभाणु आ कर्म दानादिकिमा अन्तरायजनक होवाथी  
तेने अन्तराय कर्म कडे छे. कहुं पणु छे—“ जह राया दाणार्ई ” इत्यादि—

ते अन्तराय कर्मना नीचे प्रभाणु जे प्रकार छे—(१) प्रत्युत्पन्न विनाशित  
अने (२) पिहितागामिपथ जेना द्वारा वर्तमानकालमां प्राप्त थनार अर्थ  
( द्रव्य ) ने नष्ट करी नाथवामा आवे छे जेवा अन्तराय कर्मणुं नाम प्रत्यु-  
त्पन्न विनाशित छे तथा जेना द्वारा लविण्यमां प्राप्त थनार अर्थ  
( द्रव्यलाभादि ) ने मार्ग अटकावी देवामा आवे छे, ते कर्मणुं नाम  
पिहितागामिपथ अन्तराय कर्म छे. ॥ सू. ४८ ॥

पूर्वोक्तमष्टविध कर्म मूर्च्छामन्यं भवतीति मूर्च्छास्वरूपमाह—

मूर्च्छम्—दुविहा मुच्छा पण्णत्ता, त जहा-पेज्जवत्तिया चेव दोसवत्तिया चेव । पेज्जवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—माया चेव लोभे चेव । दोसवत्तिया मुच्छा दुविहा पण्णत्ता त जहा-कोहे चेव माणे चेव ॥ सू० ४९ ॥

छाया—द्विविधा मूर्च्छा मद्गता, तद्यथा—प्रेमप्रत्यया चैव द्वेष प्रत्यया चैव १। प्रेमप्रत्यया मूर्च्छा द्विविधा मद्गता, तद्यथा—मायाचैव लोभश्चैव २। द्वेषप्रत्यया मूर्च्छा द्विविधा मद्गता—तद्यथा—क्रोधश्चैव मानश्चैव ३॥ सू० ४९ ॥

टीका—‘दुविहा मुच्छा’ इत्यादि । मूर्च्छा—मोहः सर्वसद्विवेकनाशः । सा द्विविधा—प्रेमप्रत्यया द्वेषप्रत्यया चेति । प्रेम—राग इत् प्रत्ययो हेतुर्पत्त्याः सा प्रेमप्रत्यया । एव द्वेषो हेतुर्थस्याः सा द्वेषप्रत्यया १ । प्रेमप्रत्यया मूर्च्छा द्विविधा—मायालोभश्च—मायारूपा लोभरूपा चेति २ । एवं द्वेषप्रत्यया मूर्च्छाऽपि द्विविधा—क्रोधः, मानश्च, क्रोधरूपा मानरूपा चेति ३ ॥ सू० ४९ ॥

पूर्वोक्त अष्टविध कर्म मूर्च्छाअप्य होता है मतः अप्य सूत्रकार मूर्च्छा का स्वरूप कहते हैं—( दुविहा मुच्छा पण्णत्ता ) इत्यादि ।

टीकार्थ—सर्वसद्विवेक के विनाश का नाम मूर्च्छा—मोह है यह मूर्च्छा दो प्रकार की बनी गई है एक प्रेमप्रत्यया और दूसरी द्वेषप्रत्यया राग—प्रेम जिस मूर्च्छा का कारण होता है यह प्रेमप्रत्यया मूर्च्छा है, तथा द्वेष जिस मूर्च्छा का कारण होता है यह द्वेष प्रत्यया मूर्च्छा है । इनमें प्रेम प्रत्यया (प्रेमनिमित्त) मूर्च्छा भी दो प्रकार की है एक मायारूप और दूसरी लोभरूप इसी तरह से द्वेष प्रत्यया (द्वेषनिमित्त) मूर्च्छा भी दो प्रकार की है एक क्रोधरूप और दूसरी मानरूप ॥ सू० ४९ ॥

पूर्वोक्त आठे प्रकारना काम मूर्च्छामन्यं कोष छे तेथी हवे सूत्रकार मूर्च्छाना स्वरूपतु निरूपण करे छे—‘दुविहा मुच्छा पण्णत्ता’ इत्यादि—  
टीकार्थ—साशं नरसाना विवेकनाः विनाश भवे। तेनु नाम मूर्च्छा छे तेनु पीणु नाम शिद्ध पणु छे मूर्च्छाना नील ममाजे वि प्रकार छे—(१) प्रेमप्रत्यया—प्रेमनिमित्त (२) द्वेषप्रत्यया। जे मूर्च्छा प्रेम (राग) ने कारणे उद्भववे छे, ते मूर्च्छानि प्रेमप्रत्यया कहे छे देवने कारणे उद्भववती मूर्च्छाने द्वेषप्रत्यया कहे छे प्रेम प्रत्यया मूर्च्छाना पणु वि प्रकार छे—(१) मायाइप जने (२) लोभइप। द्वेषप्रत्यया मूर्च्छाना पणु वि प्रकार छे—(१) क्रोधइप (२) मानइप ॥ सू० ४९ ॥

मूर्च्छागृहीतकर्मश्च क्षय आराधनया भवतीत्याऽऽराधनां सूत्रत्रयेणाह—

मूलम्—दुविहा आराहणा पणत्ता, तं जहा--धम्मियाराहणा चेव केवलिआराहणा चेव १ । धम्मियाराहणा दुविहा पणत्ता, तं जहा--सुयधम्माराहणा चेव चरित्तधम्माराहणा चेवरा केवलि आराहणा दुविहा पणत्ता, तं जहा--अंतकिरिया चे वा कप्पविमाणोव्वत्तिया चेव ३ ॥ सू० ५० ॥

छाया—द्विविधा आराधना प्रज्ञप्ता, तद्यथा—धार्मिकाराधना चैव केवलिकाराधना चैव २ । धार्मिकाराधना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—श्रुतधर्माराधना चैव, चारित्रधर्माराधना चैव २ । केवलिकाराधना द्विविधा प्रज्ञप्ता, तद्यथा—अन्तक्रिया चैव, कल्पविमानोपपत्तिका चैव ३ ॥ सू० ५० ॥

टीका—‘दुविहा आराहणा’ इत्यादि ।

आराधनमाराधना, सा ज्ञानादिवस्तुनोऽनुकूलवर्तित्वं निरतिचारज्ञानाद्यासेवनेत्यर्थः । सा द्विविधा—धार्मिकाराधना, केवलिकाराधना चेति । तत्र धर्मेण—

मूर्च्छा से गृहीत कर्म का क्षय आराधना से होता है इसलिये सूत्रकार तीन सूत्रों द्वारा आराधना का कथन करते हैं—

( दुविहा आराहणा पणत्ता ) इत्यादि ।

टीकार्थ—आराधन—शास्त्र की रीति से पालन करने का नाम आराधना है, यह आराधना ज्ञानादिरूप वस्तु के अनुकूल रहने रूप होती है, जीव ज्ञानादिरूप वस्तु का अनुकूल अपने को तभी रख सकता है कि जब ज्ञानादिकों में अतिचार न लगावे अतः निरतिचार रूप से ज्ञानादिकों का आसेवन करना यही आराधना है । यह आराधना दो प्रकार की है एक धार्मिकाराधना और दूसरी केवलिकाराधना, अतचारित्ररूप धर्म

मूर्च्छा द्वारा गृहीत कर्मों का क्षय आराधनायी थाय छे. तेथी हवे सूत्रकार त्रषु सूत्रो द्वारा आराधनातुं कथन करे छे.

“दुविहा आराहणा पणत्ता” इत्यादि—

टीकार्थ—आराधन—शास्त्रोक्त शास्त्रोक्त रीते पालन करवुं तेतुं नाम आराधना छे ते आराधना ज्ञानादिश्य वस्तुने अनुकूलण रखेवा इय छाय छे एव त्यारे ज्योताने ज्ञानादिक वस्तुने अनुकूल राणी शके छे के न्यारे तेने ज्ञानादिकोमां अतिचार ( दोष ) लागी जता नथी ते करखे निरतिचार इये ज्ञानादिकोतुं आसेवन करवु तेतुं नाम ज आराधना छे. ते आराधना छे प्रकारनी कही छे.



પૂર્વોક્તમપ્વિષ કર્મ મૂર્છાજન્ય ભવતીતિ મૂર્છાસ્વરૂપમાહ—

મૂલ્મ્—દુષિહા મુચ્છા પળ્ળતા, ત જહા-પેજ્જવત્તિયા ચેવ  
દોસવત્તિયા ચેવ । પેજ્જવત્તિયા મુચ્છા દુષિહા પળ્ળતા, ત જહા  
—માયા ચેવ લોમે ચેવ । દોસવત્તિયા મુચ્છા દુષિહા પળ્ળતા  
ત જહા-કોહે ચેવ માળે ચેવ ॥ સૂ૦ ૪૯ ॥

છાયા—દ્વિષિયા મૂર્છા મહ્મતા, તપયા-પ્રેમમત્પયા ચૈવ દ્વેપ મત્પયા ચેવ ૧। પ્રેમ  
ત્પયા મૂર્છા દ્વિષિયા મહ્મતા, તપયા-માયાચૈવ લોમશ્ચૈવ ૨। દ્વેપમત્પયા મૂર્છા  
દ્વિષિયા મહ્મતા-તપયા-ક્રોધશ્ચૈવ માનશ્ચૈવ ૩॥ સૂ૦ ૪૯ ॥

ટીકા—‘ દુષિહા મુચ્છા ’ इत्यादि । मूर्छा-मोह सदसद्विवेकनाशः । सा  
द्विषिषा-प्रेममत्पया द्वेषमत्पया चेति । प्रेम-राग सत् प्रत्ययो हेतुर्भस्याः सा  
प्रेममत्पया । एव द्वेषो हेतुर्यस्याः सा द्वेषमत्पया १ । प्रेममत्पया मूर्च्छा द्विषिषा  
-मायाश्लोभ-मायारूपा श्लोभरूपा चेति २ । एवं द्वेषमत्पया मूर्च्छाऽपि द्विषिषा  
-क्रोधा, मानस, क्रोधरूपा मानरूपा चेति ३ ॥ सू० ४९ ॥

પૂર્વોક્ત અષ્ટધિવ કર્મ મૂર્છાજન્ય હોતા હે અતઃ અપ સૂત્રકાર  
મૂર્છા કા સ્વરૂપ કહતે હે—( દુષિહા મુચ્છા પળ્ળતા ) इत्यादि ।

ટીકાર્થ—सदसद्विवेक के विनाश का नाम मूर्च्छा-मोह हे यह मूर्च्छा दो  
प्रकार की बही गई है एक प्रेमप्रत्यया और दूसरी द्वेषप्रत्यया राग-प्रम  
जिस मूर्च्छा का कारण होता है वह प्रेमप्रत्यया मूर्च्छा है, तथा द्वेष  
जिस मूर्च्छा का कारण होता है वह द्वेष प्रत्यया मूर्च्छा है । इनमें प्रेम  
प्रत्यया (प्रेमनिमित्त) मूर्च्छा भी दो प्रकार की है एक मायारूप और दूसरी  
श्लोभरूप इसी तरह से द्वेष प्रत्यया (द्वेषनिमित्त) मूर्च्छा भी दो प्रकार की  
है एक क्रोधरूप और दूसरी मानरूप ॥ सू० ४९ ॥

પૂર્વોક્ત આઠે પ્રકારના ક્રમ મૂર્છાજન્ય એક છે, તેથી દરે સ્વકાર  
મૂર્છાના સ્વરૂપનું નિરૂપણ કરે છે—‘ દુષિહા મુચ્છા પળ્ળતા ’ इत्यादि—  
ટીકા—સારા નરસાના વિવેકને વિનાશ થવો તેનું નામ મૂર્છા છે તેનું બીજું  
નામ મોહ પણ છે મૂર્છાના નીચે પ્રમાણે બે પ્રકાર છે—(૧) પ્રેમપ્રત્યયા-પ્રેમનિમિત્ત  
(૨) દ્વેષપ્રત્યયા જે મૂર્છા પ્રેમ (રાગ) ને કારણે ઉદ્ભવે છે, તે મૂર્છાને  
પ્રેમપ્રત્યયા કહે છે દ્વેષને કારણે ઉદ્ભવતી મૂર્છાને દ્વેષપ્રત્યયા કહે છે પ્રેમ  
પ્રત્યયા મૂર્છાના પણ બે પ્રકાર છે—(૧) માયાશ્લોભ અને (૨) શ્લોભપ. દ્વેષપ્રત્યયા  
મૂર્છાના પણ બે પ્રકાર છે—(૧) ક્રોધશ્લોભ (૨) માનશ્લોભ ॥ સૂ ૪૯ ॥

अथवा कल्पाः--सौधर्मादयः, विमानानि--तदुपरिवर्तिग्रैवेयकादीनि कल्पविमानानि, तेषु उपपत्तिः--उपपातो जन्म यस्याः सकाशात् सा कल्पविमानोपपत्तिका ज्ञाना-  
धाराधना । एषा च श्रुतकेवल्यादीनां भवतीति । एवं फला चेयमनन्तरं--फल-  
द्वारेणोक्ता, परम्परया त्वेषा भवान्तक्रियानुपातिन्येवेति । 'सुयधम्मे'-त्यादौ  
विषयभेदेनाराधनाभेदः प्रोक्तः, 'केवलि आराहणे'-त्यादौ तु फलभेदेनाराध-  
नाभेद इति ॥ सू० ५० ॥

. पूर्वं ज्ञानाधाराधना प्रोक्ता, तत्फलभूताश्च तीर्थकराः तैर्वा सा सम्यगारा-  
धिता, प्ररूपिता वेति तीर्थकरप्ररूपणां द्विस्थानकानुपातेन प्राह--

मूलम्--दो तित्थयरा नीलुप्पलसमा वन्नेणं पणत्ता तं जहा  
--मुणिसुव्वए चैव अरिट्ट नेमी चैव । दो तित्थयरा पियंगुसमा  
वन्नेणं पणत्ता, तं जहा--मल्ली चैव पासे चैव । दो तित्थयरा  
पउमगोरा वण्णेणं पणत्ता तं जहा--पउमप्पहे चैव वासुपुज्जे चैव ।  
दो तित्थगरा चंदगोरावन्नेणं पणत्ता तं जहा--चंदप्पभे चैव  
पुप्फदंते चैव ॥ सू० ५१ ॥

सौधर्मादिकों में चार इनके ऊपर ग्रैवेयक आदि विमान हैं उनमें जिससे  
जीव का जन्म होता है ऐसी वह आराधना कल्पविमानोपपत्तिका है ।  
यह आराधना श्रुतकेवली आदिकों को होती है यह आराधना अनन्तर  
फलद्वारा ऐसी फलवाली कही गई है परम्पराफल की अपेक्षा तो यह  
आराधना भवान्तक्रियानुपातिनी ही होती है, "सुयधम्मा" इत्यादि में  
विषय भेद से आराधनाकाभेद कहा है और "केवलि आराहणा" इत्यादि  
में फलभेद से आराधनाभेद कहा है ॥ सू० ५० ॥

आदि विमानोपां जेना द्वारा उपपत्ति जन्म थाय छे जेवी ते ज्ञानादि आरा-  
धनाने कल्पविमानोपपत्तिका आराधना कडे छे तकेवली आदि कौनी आरा-  
धना आ प्रकारनी छाय छे. आ आराधना अनन्तर इल द्वारा आ प्रकारना  
इलवाणी कही छे. परम्परा इलनी अपेक्षाये तो आ आराधना भवान्तक्रिया-  
नुपातिनी छाय छे. "सुयधम्मा" इत्यादिमां विषयभेदनी अपेक्षाये आरा-  
धनाभेद प्रकट कर्यां छे अने "केवली आराहणा" इत्यादिमां इलभेदनी अपे-  
क्षाये आराधनानाभेद कक्षा छे. ॥ सू. ५० ॥

श्रुतचारिभक्तज्ञेन परन्ति ये ते धार्मिकाः-साधवाः, तेषामियं धार्मिकी, सा वा साधारणना च धार्मिकाराधना । केवलिकानां श्रुतानधिमतःपर्ययकेवलज्ञानिनामय केवलिकी, सा सासाधारणना चेति केवलिकाराधना ३ । धार्मिकाराधना द्विविधा-श्रुतधर्मााराधना चारिप्रधर्मााराधना चेति । व्याख्या सुगमा २ । केवलिकाराधना द्विविधा-मन्तक्रिया, कल्पविमानोपपत्तिका चेति । तत्र-मन्तो-मवान्तस्वस्य क्रिया-मन्तक्रिया मबच्छेद इत्यर्थः, तदेतुमुक्ता या-जाराधना दौलेशीरूपा सा-मन्तक्रियेति, उपचारात् । एषा च सायिकज्ञाने केवलिनामेव मपति । तथा कल्पेपु-देवलोकेषु न तु ज्योतिष्कारे, विमानानि-देवावासविशेषाः,

के अनुसार जो चलते हैं वे धार्मिक हैं ऐसे धार्मिक साधुजन होते हैं एते साधुजनों की आराधना धार्मिकाराधना है । श्रुतज्ञानवालों की, भक्त-विज्ञानवालों की, मनापर्ययज्ञानवालों की और केवलज्ञान वालों की जो आराधना है वह केवलिकाराधना है धार्मिकाराधना दो प्रकार की है श्रुतधर्मााराधना और चारिप्रधर्मााराधना इनकी व्याख्या सुगम है केवलिकाराधना दो प्रकार की है मन्तक्रिया और कल्पविमानोपपत्तिका मबच्छेदक दौलेशीरूप जो आराधना होती है वह मन्तक्रिया केवलिकाराधना है मन्तक्रिया नाम मबच्छेद का है परन्तु इसका हेतुरूप आराधना को जो मन्तक्रिया कहा है वह उपचारसे कहा गया है ऐसा जानना चाहिये । यह सायिकज्ञान के होने पर केवलियों का ही होती है कल्पों में-देवलोकों में ज्योतिष्कार में नहीं, जो देवावासविशेष हैं उनमें अथवा

(१) धार्मिक आराधना अने (२) केवलि आराधना केज्जे श्रुतचारित्र इष धर्मानुसार आरे छे, तेज्जे धार्मिक कहेराय छे साधुज्जे जेना धार्मिक कहेय छे, ते साधुज्जेनी आराधनाने धार्मिकाराधना कहे छे श्रुतज्ञानवालाणी, भव विज्ञानवालाणी, मनापर्ययज्ञानवालाणी अने केवगज्ञानवालाणी आराधनाने केवलिआराधना कहे छे धार्मिकाराधना के प्रकारनी छे (१) श्रुतधर्मााराधना अने (२) चारित्रधर्मााराधना, ज्जा जन्ने परे। अरण छे केवलिआराधना के प्रकारनीछे— (१) मन्तक्रिया (२) कल्पविमानोपपत्तिका लवछेक दौलेशीरूप के आराधना कहेय छे, तेतु नाम मन्तक्रिया केवलिआराध । छे लवच्छेदनु (लवने। विनाश) नाम के मन्तक्रिया छे, परन्तु तेना हेतुरूप आराधनाने के मन्तक्रिया कहेय छे ते ज्योप, चारिक घीते कहेय छे जेम समग्रजुं सायिक ज्ञान वाय त्वादे केवलीज्जेभां ज तेना अइलाय रहे छे कल्पेभां-देवलोकेभां ( ज्योतिष्कारभां नहीं ) के देवा वास विशेष छे ते देवावासोभां अथवा सौधभीदि विमानोभां अने प्रदेवक

अथवा कल्पाः—सौधर्मादयः, विमानानि—तदुपरिवर्तिग्रैवेयकादीनि कल्पविमानानि, तेषु उपपत्तिः—उपपातो जन्म यस्याः सकाशात् सा कल्पविमानोपपत्तिका ज्ञानाधाराधना । एषा च श्रुतकेवल्यादीनां भवतीति । एवं फला चेयमनन्तरं—फलद्वारेणोक्ता, परम्परया त्वेषा भवान्तक्रियानुपातिन्येवेति । ‘सुयधम्मे’—त्यादौ विषयभेदेनाराधनाभेदः प्रोक्तः, ‘केवलि आराहणे’—त्यादौ तु फलभेदेनाराधनाभेद इति ॥ सू० ५० ॥

. पूर्वं ज्ञानाधाराधना प्रोक्ता, तत्फलभूताश्च तीर्थकराः तैर्वा सा सम्यगाराधिता, प्ररूपिता वेति तीर्थकरप्ररूपणां द्विस्थानकानुपातेन प्राह—

मूलम्—दो तित्थयरा नीलुप्पलसमा वन्नेणं पणत्ता तं जहा--मुणिसुव्वए चेव अरिद्ध नेमी चेव । दो तित्थयरा पियंगुसमा वन्नेणं पणत्ता, तं जहा--मल्ली चेव पासे चेव । दो तित्थयरा पउमगोरा वणणेणं पणत्ता तं जहा--पउमप्पहे चेव वासुपुज्जे चेव । दो तित्थयरा चंदगोरावन्नेणं पणत्ता तं जहा--चंदप्पभे चेव पुप्फदंते चेव ॥ सू० ५१ ॥

सौधर्मादिकों में चार इनके ऊपर ग्रैवेयक आदि विमान हैं उनमें जिससे जीव का जन्म होता है ऐसी वह आराधना कल्पविमानोपपत्तिका है । यह आराधना श्रुतकेवली आदिकों को होती है यह आराधना अनन्तर फलद्वारा ऐसी फलवाली कही गई है परम्पराफल की अपेक्षा तो यह आराधना भवान्तक्रियानुपातिनी ही होती है, “सुयधम्मा” इत्यादि में विषय भेद से आराधनाकाभेद कहा है और “केवलि आराहणा” इत्यादि में फलभेद से आराधनाभेद कहा है ॥ सू० ५० ॥

आदि विमानोंमें जेना द्वारा जन्मो जन्म थाय छे जेवी ते ज्ञानादि आराधनाने कल्पविमानोपपत्तिका आराधना कहे छे. तकेवली आदि केनी आराधना आ प्रकारनी डाय छे आ आराधना अनन्तर इल द्वारा आ प्रकारना इलवाणी कही छे परम्परा इलनी अपेक्षाजे तो आ आराधना भवान्तक्रियानुपातिनी डाय छे. “सुयधम्मा” इत्यादिमां विषयलेदनी अपेक्षाजे आराधनाभेद प्रकट कर्या छे अने “केवली आराहणा” इत्यादिमां इललेदनी अपेक्षाजे आराधनानाभेद कहा छे. ॥ सू. ५० ॥

શ્રુતચારિશ્રદ્ધાજ્ઞાને ચરન્તિ એ તે ધાર્મિકાઃ—સાધવઃ, તેષામિયં ધાર્મિકી, સા ષા સાધારાધના ષ ધાર્મિકારાધના । કેવલિકાનાં શ્રુતાશ્ચિમનઃપર્યયકેવલજ્ઞાનિ-નામયં કેવલિકી, સા ષાસાધારાધના ષેતિ કેવલિકારાધના ૩ । ધાર્મિકારા-ધના દ્વિવિધા—શ્રુતધર્મારાધના ષારિશ્રદ્ધામારાધના ષેતિ । વ્યાસ્યા સુગમા ૨ । કેવલિકારાધના દ્વિવિધા—અન્તક્રિયા, કલ્પવિમાનોપપત્તિકા ષેતિ । ટપ—અન્તો-મવાન્તસ્તસ્ય ક્રિયા—અન્તક્રિયા મવચ્છેદ્દ ઇત્યયઃ, તદેતુભૂતા યા—આરાધના શૈલેષ્ઠીરૂપા સા—અન્તક્રિયેતિ, ટપચારાત્ । ઇયા ચ સાયિકજ્ઞાને કેવલિનામેવ મથતિ । તયા કલ્પેષુ—દેવલોકેષુ ન તુ વ્યોતિશ્ચારે, ત્રિમાનાનિ—દેવાવાસવિશેષાઃ,

કે અનુસાર જો બલતે હૈં એ ધાર્મિક હૈં એસે ધાર્મિક સાધુજન હોતે હૈં ઇન સાધુજનોં કી આરાધના ધાર્મિકારાધના હૈ । શ્રુતજ્ઞાનવાલોં કી, અથ ધિજ્ઞાનવાલોં કી, મનઃપર્યયજ્ઞાનવાલોં કી ઓર કેવલજ્ઞાન વાલોં કી જો આરાધના હૈ ઘહ કેવલિકારાધના હૈ ધાર્મિકારાધના ઘો મકાર કી હૈ શ્રુતધર્મારાધના ઓર ષારિશ્રદ્ધામારાધના ઇનકી વ્યાસ્યા સુગમ હૈ કેવલિકારાધના ઘો મકાર કી હૈ અન્તક્રિયા ઓર કલ્પવિમાનોપપત્તિકા મવચ્છેદ્દક શૈલેષ્ઠીરૂપ જો આરાધના હોતી હૈ ઘહ અન્તક્રિયા-કેવલિકા રાધના હૈ અન્તક્રિયા નામ મવચ્છેદ્દ કા હૈ પરન્તુ ઇત્તકા હેતુરૂપ આરા ધના કો જો અન્તક્રિયા કહા હૈ ઘહ ટપચારસે કહા ગયા હૈ એસા જાન-ના ષાહિયે । ઘહ જ્ઞાત્યિકજ્ઞાન કે હોને પર કેવલિયોં કા હી હોતી હૈ કલ્પોં મેં—દેવલોકોં મેં વ્યોતિશ્ચાર મેં નહીં, જો દેવાવાસવિશેષ હૈ ઇનમેં અથવા

(૧) ધાર્મિક આરાધના અને (૨) કેવલિકા આરાધના. એઓ શ્રુતચારિત્ર ૩૫ ધર્માનુસાર લાલે છે, તેઓ ધાર્મિક કહેવાય છે સાધુઓ એવા ધાર્મિક કોલ છે, તે સાધુઓની આરાધનાને ધાર્મિકારાધના કહે છે શ્રુતજ્ઞાનવાળાની, અથ ધિજ્ઞાનવાળાની, મનઃપર્યયજ્ઞાનવાળાથી અને કેવલજ્ઞાનવાળાની આરાધનાને કેવલિકારાધના કહે છે ધાર્મિકારાધના બે પ્રકારની છે (૧) શ્રુતધર્મારાધના અને (૨) ષારિશ્રદ્ધામારાધના, આ બન્ને પરો સરળ છે કેવલિકારાધના બે પ્રકારની છે— (૧) અન્તક્રિયા (૨) કલ્પવિમાનોપપત્તિકા ભવઉદ્ધેશ્ચ શૈલેષ્ઠીરૂપ એ આરાધના કોલ છે તેનું નામ અન્તક્રિયા કેવલિકારાધ । છે ભવચ્છેદનું (ભવનો વિનાશ) નામ અન્તક્રિયા છે પરન્તુ તેના હેતુરૂપ આરાધનાને એ અન્તક્રિયા કહેલ છે તે જોય ષારિકી યીતે કહેલ છે એમ સમજવું સાયિક જ્ઞાન વ.વ ત્યારે કેવલીઓમાં જ તેનો સજ્ઞાન રહે છે કલ્પોર્થ—દેવલોકમાં (એવોતિશ્ચારમાં નહીં) એ દેવા વાસ વિશેષ છે તે દેવાવાસોર્થ અથવા શૌભભાદિ વિમાનોર્થ અને શ્રેયસ્ક

अथवा कल्पाः—सौधर्मादयः, विमानानि—तदुपरिवर्त्तिग्रैवेयकादीनि कल्पविमानानि, तेषु उपपत्तिः—उपपातो जन्म यस्याः सकाशात् सा कल्पविमानोपपत्तिका ज्ञाना-  
द्वाराधना । एषा च श्रुतकेवल्यादीनां भवतीति । एव फला चैयमनन्तरं—फल-  
द्वारेणोक्ता, परम्परया त्वेषा भवान्तक्रियानुपातिन्येवेति । ‘ सुयधम्मे ’—त्यादौ  
विषयभेदेनाराधनाभेदः प्रोक्तः, ‘ केवलि आराहणे ’—त्यादौ तु फलभेदेनाराध-  
नाभेद इति ॥ सू० ५० ॥

पूर्वं ज्ञानाद्वाराधना प्रोक्ता, तत्फलभूताश्च तीर्थकराः तैर्वा सा सम्यगारा-  
धिता, प्ररूपिता वेति तीर्थकरप्ररूपणं द्विस्थानज्ञानुपातेन प्राह—

मूलम्--दो तित्थयरा नील्लुप्लसमा वन्नेणं पणत्ता तं जहा  
--मुणिसुव्वए चैव अरिट्ट नेमी चैव । दो तित्थयरा पियंगुसमा  
वन्नेणं पणत्ता, तं जहा--मल्ली चैव पासे चैव । दो तित्थयरा  
पउमगोरा वण्णेणं पणत्ता तं जहा--पउमप्पहे चैव वासुपुज्जे चैव ।  
दो तित्थगरा चंदगोरावन्नेणं पणत्ता तं जहा--चंदप्पभे चैव  
पुप्फदंते चैव ॥ सू० ५१ ॥

सौधर्मादिकों में चार इनके ऊपर ग्रैवेयक आदि विमान हैं उनमें जिससे  
जीव का जन्म होता है ऐसी वह आराधना कल्पविमानोपपत्तिका है ।  
यह आराधना श्रुतकेवली आदिकों को होती है यह आराधना अनन्तर  
फलद्वारा ऐसी फलवाली कही गई है परम्पराफल की अपेक्षा तो यह  
आराधना भवान्तक्रियानुपातिनी ही होती है, “ सुयधम्मा ” इत्यादि में  
विषय भेद से आराधनाकाभेद कहा है और “ केवलि आराहणा ” इत्यादि  
में फलभेद से आराधनाभेद कहा है ॥ सू० ५० ॥

आदि विमानोभां जेना द्वारा एवने जन्म थाय छे जेवी ते ज्ञानादि आरा-  
धनाने कल्पविमानोपपत्तिका आराधना कडे छे तडेवली आदि केनी आरा-  
धना आ प्रकारनी होय छे. आ आराधना अनन्तर इल द्वारा आ प्रकारना  
इलवाणी कही छे. परम्परा इलनी अपेक्षाये तो आ आराधना भवान्तक्रिया-  
नुपातिनी होय छे. “ सुयधम्मा ” इत्यादिभां विषयभेदनी अपेक्षाये आरा-  
धनाभेद प्रकट कर्था छे अने “ केवली आराहणा ” इत्यादिभां इलभेदनी अपे-  
क्षाये आराधनानाभेद कक्षा छे. ॥ सू. ५० ॥

छाया-द्वी तीर्थकरौ नीलोत्पलसम वर्णेन प्रकृष्टौ, तद्यथा-मुनिसुव्रतश्चैव  
 अरिष्टनेमिश्चैव ३ । द्वौ तीर्थकरौ प्रियङ्गुममौ वर्णेन प्रकृष्टौ, तद्यथा-मङ्गिश्चैव  
 पार्श्वश्चैव २ । द्वौ तीर्थकरौ पद्मगौरी वर्णेन प्रकृष्टौ, तद्यथा-पद्मप्रमदश्चैव वासुपूज्य  
 चैव ३ । द्वौ तीर्थकरौ चन्द्रगौरी वर्णेन प्रकृष्टौ, तद्यथा-चन्द्रप्रमदश्चैव पुष्प  
 इन्तश्चैव ४ ॥ सू० ५१ ॥

टीका—'दो तित्थयरा' इत्यादि, दूधचतुष्टय सुगमम् । मधरम्-प्रियङ्गुममौ  
 प्रियङ्गुममौ, प्रियङ्गुः-फलिनीवरुस्तत्समौ वर्णेन नीलादित्थयः । 'पठमगौरा' इति

पूर्व में ज्ञानादि आराधना कही गई है इसके फलभूल तीर्थकर होते  
 हैं उन्हीं ने इसका अच्छी तरह से आराधना किया है और उन्हीं ने ही  
 इसकी प्ररूपणा की है, अतः अथ सूत्रकार विस्पानकानुपात को लेकर  
 तीर्थकरकी प्ररूपणा करते हैं—(दो तित्थयरा नीलुत्पलसमावलेण पण्णत्ता)  
 इत्यादि ।

टीकार्थ-मुनिसुव्रत और अरिष्टनेमि ये दो तीर्थकर नीलकमलके वर्ण जैसे  
 वर्णवाले कहे गये हैं मङ्गी और पार्श्वनाथ ये दो तीर्थकर प्रियङ्गु के वर्ण  
 जैसे वर्ण वाले कहे गये हैं पद्मप्रम और वासुपूज्य ये दो तीर्थकर पद्म  
 के वर्ण जैसे वर्ण वाले कहे गये हैं अर्थात् पद्म के समान गौर वर्ण वाले  
 कहे गये हैं चन्द्रप्रम और पुष्पवन्त ये दो तीर्थकर चन्द्रमा के जैसे गौर  
 वर्ण वाले कहे गये हैं । प्रियङ्गु नीलवर्ण वाला फलिनीवृक्ष होता है, अतः  
 मङ्गी और पार्श्वनाथ ये दो तीर्थकर भी नीलवर्ण के हैं रक्त कमल का

पठेहाना सूत्रमा ज्ञानादि आराधनादुनिदपक्षु कश्वाभा आन्धु छे तेना  
 इलभूत तीर्थकर डोम छे तेमखे च तेनु आरी रीते आराधन कहुं छे जने  
 तेमखे च तेनी प्ररूपणा करी छे तेथी डवे सूत्रकार दिस्थानकानुपातनी अपे  
 क्षान्ने तिर्थकरानी प्ररूपणा करे छे—

टीका—'दो तित्थयरा नीलुत्पलसमावलेण पण्णत्ता' इत्यादि—

मुनिसुव्रत जने अरिष्टनेमी नामना छे तीर्थकरौ नील-कमलना जेवा  
 वक्षुवाणा कत्ता मङ्गी जने पार्श्वनाथ नामना तीर्थकरौ प्रियङ्गुना जेवा वक्षु  
 वाणा कत्ता पद्मप्रम जने वासुपूज्य नामना तीर्थकरौ पद्मना जेवा और  
 वक्षुवाणा कत्ता चन्द्रप्रम जने पुष्पवन्त नामना छे तीर्थकरौ चन्द्रमाना जेवा  
 और वक्षुवाणा कत्ता प्रियङ्गु नामनु नीलवर्णना इवोवाणु वक्षु डोम छे मङ्गी  
 जने पार्श्वनाथ नामना तीर्थकरौने वक्षु नील डोवाणी तेमने प्रियङ्गुना

પદ્મગૌરી, તત્ર પદ્મ-રક્તકમલં, તદ્વદ્ ગૌરી રક્તાવિત્યર્થઃ । ‘ચંદ્રગૌરા’ ઇતિ  
ચન્દ્રગૌરી, તત્ર ચન્દ્રવત્ ગૌરી-શુક્લો શ્વેતવર્ણાવિત્યર્થઃ ।

ઉક્તञ्च—“ પડમામ વાસુપૂજ્જા, રક્તા મણિપુષ્પદંત સસિગૌરા ।

સુવ્યનેમીકાલા, પાસો મલ્લી વિયંગામા ॥ ૮ ॥ ”

છાયા-પદ્મપ્રભ-વાસુપૂજ્યૌ, રક્તૌ ચન્દ્રસુવિધી ગણિગૌરી ।

સુવ્રતનેમી કૃષ્ણૌ, પાર્શ્વમલ્લી પ્રિયહ્ગ્વામી ॥ ૭ ॥ ઇતિ । સૂ ૫૧ ॥

અનન્તરં તીર્થકરસ્વરૂપમુક્તમ્ । સર્વભાવાનાં તીર્થકરપરુપિત્વાત્ કતિપય  
ભાવાત્ દ્વિસ્થાનકેનાહ-

મૂલમ્-સચ્ચપ્પત્રાયપુઠ્ઠસ્સ ણં દુવ્વે વત્થુ પ્પણ્ણત્તે । પુઠ્ઠવામ-  
દ્ધવયા ણક્કલ્લત્તે દુતારે પ્પણ્ણત્તે । ઉત્તરમ્મદ્ધવયા ણક્કલ્લત્તે દુતારે  
પ્પણ્ણત્તે । એવં પુઠ્ઠવ્વમ્મગ્ગુણી, ઉત્તરા મ્મગ્ગુણી । અંતો ણં મ્મણ્ણસ્સ  
લ્લેત્તસ્સ દો સમુદ્ધા પ્પણ્ણત્તા, તં જહા-લલ્લવ્વણે ચ્ચેવ કાલોદ્ધે ચ્ચેવ ।  
દો ચ્ચક્કવ્વટ્ઠી અપરિચ્ચત્તકામમ્મોગા કાલસાસે કાલં કિચ્ચા અહે  
સત્તમાણ પુઠ્ઠવીણ અપ્પહ્હટ્ઠાણે ણરણ ણેરહ્હયત્તાણ ઉવવન્ના તં  
જહા-સુમ્મૂમે ચ્ચેવ વંમ્મદ્ધત્તે ચ્ચેવ ॥ સૂ ૫૨ ॥

છાયા—સત્યપ્રવાદપૂર્વસ્ય ચ્ચલુ દ્વે વસ્તુની પ્રજ્ઞપ્તે । પૂર્વાભાદ્રપદનક્ષત્રં દ્વિતાર  
મજ્ઞપ્તમ્ । ઉત્તરાભાદ્રપદનક્ષત્રં દ્વિતાર પ્રજ્ઞપ્તમ્ । એવં પૂર્વાફાલ્ગુની, ઉત્તરા ફાલ્ગુની ।  
અન્તઃ ચ્ચલુ મન્નુષ્ણ્યક્ષેત્રય દ્વો સમુદ્વૌ પ્રજ્ઞપ્તૌ, તત્રથા-લલ્લવ્વણૈચ્ચેવ કાલોદ્ધૈચ્ચેવ । દ્વૌ

નામ પદ્મ હૈ હ્સ પદ્મ કે સમાન ગૌર વર્ણ વાલે પદ્મપ્રભ ઔર વાસુપૂજ્ય  
હૈ ચન્દ્રપ્રભ ઔર પુષ્પદન્ન ચન્દ્ર કે જૈસે શ્વેત વર્ણ વાલે હૈ । કહા મી  
હૈ—“ પડનામવાસુપુજ્જા ” ઇત્યાદિ ॥ ૦૫૧ ॥

તીર્થકર કે રૂપકથન કે વાદ અવ સૂત્રકાર સર્વભાવ કે પ્રરૂપક  
તીર્થકર હોને કે કારણ અનર્થે સે કિતનેક ભાવોં કી દ્વિસ્થાનક કો

સમાન નીલવર્ણા કહ્યા છે રક્તકમળને પદ્મ કહે છે. તે પદ્મના સમાન ગૌરુ  
વર્ણવાળા પદ્મપ્રભ અને વાસુપૂજ્ય હતા ચન્દ્રપ્રભ અને પુષ્પદન્તનો વર્ણ ચન્દ્રની  
જેવો ગોરો (શ્વેત) હતા. કહ્યું પણ છે કે—“ પડનામ વાસુપુજ્જા ” ઇત્યાદિ સૂ. ૫૧

તીર્થકરોના વર્ણુ કથન કરીને હવે સૂત્રકાર કેટલાક ભાવોની દ્વિસ્થાન-  
કની અપેક્ષાએ પ્રરૂપકા કરે છે. સર્વભાવના પ્રરૂપક તીર્થકરો હોય છે, આ



ચક્રવર્તિનો અરિત્યક્તકામમોગી કાલમાસે કાલં કૃત્વા મધઃ સપ્તમ્યાં પૃથિવ્યામ્  
અપતિષ્ઠાને નરકે નૈરયિકૃતયા સપપજ્ઞૌ, તથયા—સુભૂમશ્ચૈવ યદ્વદત્તશ્ચૈવાહૃ૦૫૨॥

ટીકા—‘ સઙ્ગપ્પવાયપુમ્મસ્સ ણ ’ ઇત્યાદિ ।

સદ્મ્યો—જીવેમ્યો હિત સત્ય—સંયમ સત્યવચન યા, સ સમેદઃ સપતિ  
પક્ષ પ્ર—પ્રકર્યેણ ઉચ્ચતે—મમિધીયતે યત્ત તત્ સત્યપ્રવાદ તથ તત્ પૂર્વ ષ સકલ-  
શ્રુતાત્ પૂર્વ ક્રિયમાણત્વાદિતિ સત્યપ્રવાદપૂર્વમ્ । તથ ચતુર્વશ્ચ પૂર્વેષુ પઠ્યમસ્તિ ।  
તત્પરિમાણ ષ—एकापदकोटी पट् पदाधिका । उक्तञ्च—

छाया—“ एगा पयाणकोढी, छच्च पया सच्चवायमि । ”

एका पदानां कोढी पट् च पदानि सत्यवादे । इति ॥

अस्य पूर्वस्य द्वे वस्तुनी—अध्ययनादि वचद्विभागविशेषौ महत्त्वे—तीर्थकरैः  
कथिते । अथ द्विस्थानकेन नक्षत्रवक्तव्यतामाह—‘ पुष्यामहवया० नक्षत्रे ’

लेखक प्ररूपणा करते हैं—( सङ्गपपवायपुम्वस्स ) इत्यादि ।

ટીકાર્થ—જીવોં કા હિતકારક જો હોતા હૈ યહ સત્ય હૈ એસા સત્ય સંયમ  
યા સત્યવચન હોતાહૈ । હસ સત્ય કી જિસમેં પ્રરૂપણા અચ્છી તરહ સે  
કહી ગઈ હૈ યહ સત્યપ્રવાદ હૈ, યહ સત્યપ્રવાદ સંપૂર્ણ શ્રુત કી અપેક્ષા  
પહિલે ક્રિયમાણ હોને સે “ સત્યપ્રવાદ પૂર્વ ” હસ નામ સે કહા ગયા  
હૈ યહ શૌદહ પૂર્વોં મેં ૬ ઠા પૂર્વ હૈ હસકા પરિણામ ૬ પદ અધિક એક  
પદ કોટિ હૈ । કહા મી હૈ—“ एगा पयाण कोढी छच्च पया सच्च  
वायमि ” ॥

હસ પૂર્વ કી દો વસ્તુ હૈ અધ્યયન આદિ કી તરહ ડસકા દો વિભાગ  
વિદ્યેય હૈ એસા તીર્થકરોં ને કહા હૈ । નક્ષત્ર વક્તવ્યતા—પૂર્વામાત્રપદ

સબધને અનુલક્ષીને હવે કેટલાક ભાવોની પ્રરૂપણા કરવામાં આવે છે

ટીકાર્થ—“ સઙ્ગપ્પવાયપુમ્મસ્સ ” ઇત્યાદિ—

એવાનું દ્વિતીયાક એ હોય છે તેને સત્ય કહે છે એવું સત્ય સંયમ  
અથવા સત્ય વચન હોય છે આ સત્યની એમાં સારી રીતે પ્રરૂપણા કરવામાં  
આવી છે તેનું નામ સત્યપ્રવાદ છે આ સત્યપ્રવાદ સંપૂર્ણશ્રુતની અપેક્ષાને  
પહેલાં ક્રિયામાણ હોવાથી તેને ‘ સત્યપ્રવાદપૂર્વ ’ કહેવાય છે તે ૧૪ પૂર્વોમાં  
છઠ્ઠું પૂર્વ છે તેનું પરિમાણ એક કોટિ અને ૬ લાખ અધિક પદનું છે

છઠ્ઠું પદ છે—“ एगा पयाण कोढी छच्च पया सच्च वायमि ” ॥

આ સત્ય પ્રવાદપૂર્વના એક કરોડ અને છ લાખ પદ છે

આ પૂર્વની એ વસ્તુ છે—અધ્યયન આદિની એમ તેના એ વિભાગ વિદ્યેય  
છે, એવું તીર્થકરોંએ કહ્યું છે નક્ષત્ર વક્તવ્યતા—પૂર્વામાત્રપદ નક્ષત્ર મે તારા

इत्यादि, नक्षत्रविषयं सूत्रचतुष्टयं सुगमम् । द्विस्थानकेन समुद्रवक्तव्यतामाह—  
 'अंतो णं' इत्यादि, मनुष्यक्षेत्रस्य पञ्चवत्वारिंशल्लक्षयोजनप्रमाणस्य मनुष्योत्प-  
 र्यादि विशिष्टाकाशखण्डस्य अन्तः—मध्ये द्वौ समुद्रौ प्रज्ञप्तौ—लवणसमुद्रः—  
 कालोदधि समुद्रश्चेति । चक्रवर्ति वक्तव्यतां द्विस्थानकेनाह—'दोचक्रवर्ती' इत्यादि,  
 चक्रेण—चक्ररत्नेन वर्तितुं शीलं ययोस्तौ चक्रवर्तिनौ द्वौ अपरित्यक्तकामभोगी=  
 अपरित्यक्ता—न त्यक्ताः कामभोगाः, कामौ शब्दरूपे, भोगाः—गन्धरसस्पर्शाः,  
 यद्वा—काम्यन्त इति कामाः—मनोज्ञाः, भुज्यन्त इति भोगाः—शब्दादयः याभ्यां  
 तौ तथोक्तौ, कालमासे—मरणावसरे कालं कृत्वा—मृत्वा अधःसप्तम्यां पृथिव्यां  
 तमस्तमायामित्यर्थः अप्रतिष्ठाने पञ्चानां नरकावासानां मध्यमे नरकावासे नैर-

नक्षत्र दो तारों वाला कहा गया है उत्तराभाद्रपदनक्षत्र दो तारों वाला  
 कहा गया है इसी तरह पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी भी दो २  
 तारे वाले जानने चाहिये । ४५ लाख योजन प्रमाण वाले मनुष्य क्षेत्र  
 के—मनुष्योत्पत्ति आदिविशिष्ट आकाशखण्ड के मध्य में दो समुद्र कहे  
 गये हैं एक लवण समुद्र और दूसरा कालोदधि समुद्र ।

चक्रवर्तिवक्तव्यता—चक्र रत्न से वर्तन ( विजय प्राप्त ) करने का  
 जिनका स्वभाव होता है वे चक्रवर्ती हैं । दो चक्रवर्ती अपरित्यक्त काम-  
 भोग की अवस्था में मरकर अधः सप्तमी पृथिवी में कहे गये हैं, काम  
 शब्द से शब्द और रूप गृहीत हुए हैं और भोग शब्द से गन्धा-  
 दिक गृहीत हुए हैं सप्तमीपृथिवी में पांच नरकावास हैं । उन नारका  
 वासों के मध्य में जो अप्रतिष्ठान नामका नरकावास है उसमें ये दो  
 चक्रवर्ती कि जिनमें से एक का नाम सुभूम चक्रवर्ती था और जो

वाणुं कथ्ये, उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र पञ्चमे तारावाणुं कथ्ये, ऋण्य प्रमाणे  
 पूर्वा श्रद्धुनी अने उत्तरा श्रद्धुनी नक्षत्रे पञ्च णण्ये तारावाणां छे, ४५  
 लाख योजनना प्रमाणवाणा मनुष्यक्षेत्रना—मनुष्योत्पत्ति आदि विशिष्ट आकाश  
 खंडनी मध्यमां ये समुद्रो कथ्या छे—(१) लवण समुद्र अने (२) कालोदधि समुद्र.

चक्रवर्तिवक्तव्यता—चक्ररत्नशी वर्तन (विजय प्राप्त) करवाने के मने स्वभाव  
 होय छे, तेमने चक्रवर्ती कहे छे, ये चक्रवर्ती अपरित्यक्त (कामभोग न छोडवाणी)  
 कामभोगनी हालतमा मरीने नीचे सातमी नरकमां गयेला छे "काम" पदशी शण्ड  
 अने ३५ अडण्य करायेला छे, अने 'लोग' पदशी गन्ध गृहीत थयां छे, सातमी  
 नरकमां पांच नरकावासो छे, ते नरकावासोनी मध्यमां ये अप्रतिष्ठान नामनु  
 नरकावास छे तेमां ते णन्ने चक्रवर्ती

यिद्धतपोत्पन्नी, तद्यथा—सुभूमः—अष्टमधकवर्षीं ब्रह्मदत्तश्च द्वादश । तत्र च तयो  
 स्त्रपत्तिश्चत्सागरोपमाप्ति स्थितिरस्तीति ॥ सू० ५२ ॥

स्थितिं प्रसङ्गाद् भवनपत्त्यादीनां स्थितिं प्रतिपादयितुं पञ्चमृषीमाह—

मूलम् असुरिन्दवज्रियाण भवणवासीण देवाण देसूणाइ  
 दो पलिओधमाइ ठिई पणत्ता १। सोहम्मे कप्पे देवाण उक्को  
 सेण दो सागरोवमाइ ठिई पणत्ता २ । ईमाणे कप्पे देवाण  
 उक्कोसेणं साहरेगाइ दो सागरोवमाइ ठिई पणत्ता ३ । सर्णं  
 कुमारे कप्पे देवाणं जहन्नेणं दो सागरोवमाइ ठिई पणत्ता ४।  
 माहिंदे कप्पे देवाण जहन्नेण साहरेगाइ दो सागरोवमाइ  
 ठिई पणत्ता ॥ सू० ५३ ॥

छाया—असुरेन्द्रवर्जितानां भवनवासिनां देवानां देशोने द्वे पर्योपमे स्थितिः  
 प्रथमा १। सौपमेकल्पे देवानामुत्कर्षेण द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रथमा २। ईशाने  
 कल्पे देवानामुत्कर्षेण सातिरेके द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रथमा ३। सनत्कुमारे कल्पे  
 देवानां जघन्येन द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रथमा ४। माहेन्द्रे कल्पे देवानां जघन्येन  
 सातिरेके द्वे सागरोपमे स्थितिः प्रथमा ५ ॥ सू० ५३ ॥

धाठवां अकवतीं हुभा है तथा वूसरे का नाम ब्रह्मदत्तचक्रवर्ती था यह  
 १२ वां चक्रवर्ती हुभा है नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न हुए हैं वहाँ  
 इनकी ३३ सागरोपम की स्थिति है ॥ सू० ५२ ॥

स्थिति के प्रसङ्ग से अथ सूत्रकार भवनपति आदिकों की स्थिति  
 को प्रतिपादन करने के लिये इस पठ्यसूची का कथन करते हैं—

( असुरिन्द वज्रियाणं भवणवासीण देवाण ) इत्यादि ।

अत्र नाम सुभूम आदिमे चक्रवर्ती जने जीअनु नाम ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती कर्तुं  
 सुभूम आदिमे चक्रवर्ती वध जमे जने ब्रह्मदत्त जारमे चक्रवर्ती वध जमे,  
 ते जने सातमी नरकमां उपत्त यथा ते त्वां तेमनी स्थिति उक्क साअरो  
 पमनी क्खी ते ॥ सू० ५२ ॥

पठेता सूत्रमां स्थितिनां उक्केअ यमे ते आ स भवने अनुलक्षिने  
 सूत्रकारे न्दीयेनां पांअ सूत्रेमां भवनपति आदि देवेनी स्थितिनु प्रतिपादन  
 क्तुं ते—“ असुरिन्दवज्रियाणं भवणवासीणं देवाणं ” इत्यादि—

टीका—‘ असुरिंद० ’ इत्यादि । असुरेन्द्रौ-चमरवली, तद्वर्जितानां भवनवासिनां देवानां स्थितिरुत्कृष्टतो देशोने-किञ्चिन्व्यूने द्वे पत्योपमे किञ्चिन्व्यूनपत्योपम-द्वय परिमितेत्यर्थः प्रज्ञप्ता १ । ‘ सोहम्मे ’ इत्यादि सूत्रचतुष्टयं सुगमम् । नवरं-‘ साहरेगाहं ’ इति सातिरेके-साधिके किञ्चिदधिके इत्यर्थः ५ ॥ सू० ५३ ॥

देवस्थितिप्रस्तावाद द्विस्थानकावतारेण देववक्तव्यतां सप्तमूत्र्या प्राह—

मूलम्—दोसु कप्पेसु कप्पत्थियाओ पणत्ताओ तं जहा-सोहम्मे चैव ईसाणे चैव १ । दोसु कप्पेसु देवा तेउलेस्सा पणत्ता, तं जहा-सोहम्मे चैव ईसाणे चैव २ । दोसु कप्पेसु देवा कायपरियारगा पणत्ता, तं जहा-सोहम्मे चैव ईसाणे चैव ३ । दोसु कप्पेसु देवा फासपरियारगा पणत्ता तं जहा-सणं-कुमारे चैव माहिंदे चैव ४ । दोसु कप्पेसु देवा रूवपरियारगा पणत्ता तं जहा-वंभलोगे चैव लंतगे चैव ५ । दोसु कप्पेसु देवा सहपरियारगा पणत्ता, तं जहा महासुक्के चैव सहस्सारे चैव ६ । दो इंदा मणपरियारगा पणत्ता, तं जहा-पाणए चैव अच्चुए चैव ॥ सू० ५४ ॥

टीकार्थ—असुरेन्द्रों को चमर और बलि को छोड़कर भवनवासी देवों की स्थिति उत्कृष्ट रूप से कुछ कम दो पत्योपम की कही गई है । सौधर्म कल्प में देवों की उत्कृष्टस्थिति दो सागरोपम की कही गई है । ईशान कल्प में देवों की उत्कृष्टस्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की कही गई है । सनत्कुमार कल्प में देवों की जघन्य स्थिति दो सागरोपम की कही है । माहेन्द्रकल्प में देवों की जघन्यास्थिति कुछ अधिक दो सागरोपम की कही गई है ॥ ५३ ॥

टीकार्थ—असुरेन्द्रो ( चमर अने बलि ) सिवायना भवनवासी देवोनी उत्कृष्ट स्थिति मे पत्योपम करता थोडी न्यून कही छे. सौधर्म कल्पना देवोनी उत्कृष्ट मे सागरोपम करतां सडेज अधिक कही छे. ईशान कल्पमां देवोनी उत्कृष्ट स्थिति मे सागरोपमनी कही छे सनत्कुमार कल्पना देवोनी जघन्य स्थिति मे सागरोपमनी कही छे. माहेन्द्र कल्पना देवोनी जघन्य स्थिति मे सागरोपम करता थोडी अधिक कही छे. ॥ सू० ५३ ॥

‘छाया-द्रयोः कल्पयो कल्पस्त्रियः प्रहृप्ता, तद्यथा-सौषर्मे चैव ईशाने चैव १। द्रयोः कल्पयोर्वेद्याः तेजोलेख्याः प्रहृप्ता, तद्यथा-सौषर्मे चैव ईशाने चैव २। द्रयोः कल्पयोर्वेद्याः कायपरिचारकाः प्रहृप्ताः, तद्यथा-सौषर्मे चैव ईशाने चैव ३। द्रयोः कल्पयोर्वेद्याः स्पर्शपरिचारकाः प्रहृप्ताः, तद्यथा-सनत्कुमारे चैव ग्राहन्त्रे चैव ४। द्रयोः कल्पयोर्वेद्या रूपपरिचारकाः प्रहृप्ताः, तद्यथा-ग्रहलोके चैव खान्तके चैव ५। द्रयोः कल्पयोर्वेद्या शब्दपरिचारकाः प्रहृप्ताः, तद्यथा-महाशुक्रे चैव सबसारे चैव ६। द्वौ इन्द्रो मनापरिचारकौ प्रहृप्तौ, तद्यथा प्राणसे चैव अच्युतेचैव ७॥ सू० ५१॥

टीका—‘दोसु कल्पेसु’ इत्यादि । द्रयोः कल्पयो-देवलोकयोः प्रथमद्वितीयदेवलोकमभ्ये इत्यर्थः कल्पस्त्रियः देव्य प्रहृप्ता, नान्येषु देवलोकेष्विति भावः । तद्देवाह-सौषर्मे ईशाने च १। तेजोलेख्या सूत्र सुगमम् २। एतयोरेव सौषर्मेक्षानदेवलोकयोर्वेद्याः कायपरिचारकाः-कायेन-शरीरेण मनुष्यस्त्रीपुंसानामिव परिचारो-मैथुनोपसेवन येषां ते कायपरिचाराः त एव कायपरिचारकाः

देवस्थिति की वक्तव्यता को लेकर अथ सूत्रकार विस्थानकाबतार से देव संघर्षी वक्तव्यता का कथन ७ सूत्र द्वारा कहते हैं-

( दोसु कल्पेसु कल्पस्त्रियाओ पण्णसाओ ) इत्यादि ।

टीकार्थ-दो कल्पों में प्रथम द्वितीय देवलोकों में कल्पस्त्रियों का देवियों का सद्भाव कहा गया है अर्थात् सौषर्मे और ईशान इन दो कल्पों में ही देवियों की उत्पत्ति होती है अन्यकल्पों में नहीं । ऐसा तीर्थकारों ने कहा है दो कल्पों में-सौषर्मे और ईशान में तेजोलेख्यावाले देव कहे गये हैं इन्हीं दो कल्पों में काय से कायपरिचार कहा गया है-मनुष्य स्त्री की तरह शरीर से मैथुन सेवन करना कहा है दो कल्पों में-सन

देवस्थितिनी वक्तव्यतानु कथन द्वे सूत्रकार विस्थानकेणी अपेक्षाके देव संघर्षी वक्तव्यतानु सात सूत्रे द्वारा कथन करे छे-

टीकार्थ-‘ दोसु कल्पेसु कल्पस्त्रियाओ पण्णसाओ ’ इत्यादि-

ये द्वेषोर्मांश्च ( पक्षेष्वांश्च ) द्वेषस्त्रीज्योने ( देवीज्योने ) सद्भाव कथ्ये छे अत्रेते के सौषर्मांश्च जने ध्यान नामना मे द्वेषोर्मांश्च देवीज्योनी उत्पत्ति भाव छे जीम द्वेषोर्मां देवीज्योनी उत्पत्ति यती नथी जेनु तीर्थकारे कथ्ये छे ये द्वेषोर्मांश्च ( सौषर्मांश्च ) जने ध्यान द्वेषोर्मांश्च ) तेजोलेख्यावाला देवा देवा छे ते ये द्वेषोर्मांश्च कायद्वारा कायपरिचार ( मनुष्य जने स्त्रीनी जेम मैथुन सेवन ) भाव छे, जेनु कथ्ये छे अत्रेते के ते ये द्वेषोर्मांश्च देव-देवीनी साथे संयोग करीने पोटानी कथ्ये

ज्ञप्ताः ३। सनत्कुमारे माहेन्द्रे च स्पर्शपरिचारकाः—शरीरस्पर्शमात्रा देवोपशान्त-  
द्वोपतापाः ४। ब्रह्मलोके लान्तके च देवा रूपपरिचारकाः—रूपावलोकनमात्रत  
वोपशान्तवेदाः ५। महाशुक्ले सहस्रारे च देवाः शब्दपरिचारकाः—देवाङ्गनानां  
शब्दश्रवणमात्रेणैवोपशान्तवेदाः ६। प्राणतेऽच्युते च देवा मनः परिचारकाः—  
देवीनां मनसा स्मरणमात्रत एवोपशान्तवेदा भवन्ति ॥ सू० ५४ ॥

अनन्तरं परिचाराणाप्रोक्ता, सा च कर्मतो भवति, कर्मच जीवाः स्वहेतुभिः

शुद्धा और माहेन्द्र कल्पों में—स्पर्श से मैथुन सेवन करना कहा गया  
है देव देवीका स्पर्श करके अपनी कामाग्नि को शान्त कर लेता है और  
देवी देव का स्पर्श करके अपनी कामाग्नि को शान्त कर लेती है । दो  
कल्पों में ब्रह्मलोक और लान्तक कल्पों में रूप से कायपरिचार कहा  
गया है—अर्थात् देव देवी का रूप देखकर और देवी देव का रूप देख  
कर अपनी कामाग्नि को शान्त कर लेती है । दो कल्पों में—शब्द से  
काय परिचार कहा गया है वे दो कल्प ये हैं—महाशुक्ल और सहस्रार  
इन दो कल्पों में देव देवी के मनोहर शब्दों को सुनकर और देवी देव  
के मनोहर शब्दों को सुन कर अपनी कामवासना शान्त कर लेते हैं  
दो इन्द्र मनसे काय परिचार करनेवाले कहे गये हैं एक प्राणत इन्द्र  
और दूसरा अच्युत इन्द्र अर्थात् प्राणत और अच्युत में देव मन से  
परिचार करनेवाले कहे गये हैं । देव देवी का मनसे स्मरण करके और  
देवी देवका मनसे स्मरण करके उपशान्त वेदवाली होती है ॥सू. ५४॥

श्रिने शान्त करे छे. सनत्कुमार अने माहेन्द्र कल्पमा स्पर्शथी ज मैथुन  
सेवन कराय छे. त्यां देव देवीने स्पर्श करीने ज पोतानी कामाश्रिने शान्त करे  
छे, अने देवी-देवने स्पर्श करीने पोतानी कामाश्रिने शान्त करे छे ब्रह्मलोक  
अने लान्तक कल्पोमां रूप द्वारा कायपरिचार कछो छे—अटवे के त्यां देव-देवीतु'  
रूप जेधने तथा देवी-देवतु' रूप जेधने पोतानी कामाश्रिने शान्त करे छे.  
महाशुके अने सहस्रार आ छे कल्पोमां शब्द द्वारा ज कायपरिचार कछो छे.  
ते अने कल्पोमां देव-देवीना मनोहर शब्दोने सांलणीने पोतानी कामवासना  
शान्त करे छे प्राणत अने अच्युत कल्पना इन्द्रो अने अन्य देवो मनथी ज  
कायपरिचार करे छे. अटवे के त्यां देव मनथी ज देवीतु' स्मरण करीने अने  
देवी मनथी ज देवतु' स्मरण करीने कामवासना शान्त करीने उपशान्त  
वेदवाणी थर्ध जय छे. ॥ सू. ५४ ॥

ततो द्वितीयायां स्थितौ विनापदानम्, एष यावद् उत्कृष्टायां स्थितौ विशेषीनि  
 निषिञ्चति २। ३ पाचन-उस्यैव ज्ञानावरणीयादितया निषिक्तस्य पुनरपि कषाय  
 परिणति विनाशान्श्लेषणम् ३। ४ उदीरणम्-उदयमभाप्तस्य कर्मदलिकस्य वीर्य  
 निश्लेषेण समाकृष्योदगावलिभागां प्रवेशनम् ४। ५ वेदन-स्वभावन-उदीरणाकर  
 णेन उदयावलिकाप्रविष्टस्य कर्मजोऽनुभवनम् ५। ६ निर्जरण-कर्मजोऽकर्मज  
 भवन जीवप्रवेशेभ्यः कर्मणां परिशुद्धनमित्यर्थः ६। कर्मव पुद्गल-आत्मरूपमिति पुद्ग

स्थिति में विशेषादीन-चयहीन कर्मदलिका निषेक होता है, इसी तरह  
 से यावत् उत्कृष्ट स्थिति में विशेष हीन कर्मदलिकया निषेक होता है २  
 पाचन-ज्ञानावरणीयादिरूप से निषिक्त हुए उस कर्मपुद्गल को पुनः  
 कषायपरिणति से जो सश्लेषण होता है यह पाचन है ३ उदीरण उदय  
 को नहीं प्राप्त हुए कर्मदलिकका वीर्यविशेष से नीचकर उदगावलिमें  
 लाना इसका नाम उदीरणा है ४, वेदन-स्वभाव से और उदीरणाकरण  
 से उदगावलिका में प्रविष्ट हुए कर्मका अनुभव करना इसका नाम  
 वेदन है ५। निर्जरणकर्मका अकर्मरूप से होना-जीव प्रवेशों से कर्म  
 पुद्गलों का क्षरना नष्ट होना इसका नाम निर्जरण है। इस प्रकार से ये  
 कर्मपुद्गलोंकी अवस्थाएँ हैं। इन ६ हीं अवस्थाओं का यहाँ मूल, वर्तमान  
 और अविष्यत्काल की अपेक्षा से सूत्रकारने कथन किया है।

कर्म पुद्गलरत्मक है इमलिये सूत्रकार अव पुद्गलों का प्रवृत्त, क्षेत्र  
 काल और भावरी अपेक्षा से विरूपानकों का अवतार लेकर निरूपण

ॐ त्वावच्छेद नील स्थितिमां विशेषदीन-अवदीन इमदितिहेनो इम पुञ्चनिते  
 यव ॐ क्षेत्र प्रभात (यावत्) उदय उदय स्थितिमां विशेषदीन इमदिति  
 हेनो निरेः याव ॐ (२) न चन-ज्ञानावरणीयादिरूपे निषिक्त अवती  
 (उदयमवन चरिता) ते इमपुद्गलेन पुनः कषायपरिणतिशी ने अश्लेषण  
 याव ॐ तेने न चन उदये ॐ (३) उदीरण-उदय प्राप्त न कषा उदय क्षेत्र  
 इमदितिहेनो वीर्यविशेष वरे भेथीने उदगावलिभागां तावत् तेन नाम उदीरणा  
 ॐ (४) वेदन-उदयवशी अवतः उदीरणावयव वरा उदगावलिभागां अवेर्वा  
 इमत् वेदन-अनुभवन इतुं तेन नाम वेदन ॐ (५) निर्जरण-कर्मजुं आ-  
 प्रवृत्त मनी कर्तु-अवपरिदोभाषी इमपुद्गलेन मनी कर्तु (नष्ट क कर्तु)  
 तेन नाम निर्जरण ॐ (६) आ प्रवृत्त आ इमपुद्गलेनी क कषायवेः ॐ  
 आ उदये अवतते तेन तावत् मूल, वर्तमान अने अविष्यत् ॐ अदिक न  
 अदी इवत् ॐ ॐ इम पुद्गलाव देव ॐ तेनो वरे कषाय पुद्गलेः

लान् द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्द्विस्थानकावतारेण निरूपयन्नाह—‘दुपएसिया’ इत्यादि सूत्राणि त्रयोविंशतिः । सुगमानि चैतानि, नवरम् द्रव्यतो द्विप्रदेशिकाः स्कन्धा अनन्ताः प्रज्ञप्ता १। क्षेत्रतो द्विप्रदेशावगाढाः पुद्गला अनन्ताः २। एवम्—अने-नैवाभिलापेन—‘जाव’ इति यावच्छब्दात्—‘दुसमयद्विइया पुग्गला अणंता पणत्ता’ इत्यारभ्य ‘दुगुणलुक्खा पुग्गला अणंता पणत्ता’ इति पर्यन्तेन कालमाश्रित्य तथा—वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्शांश्चाश्रित्यैकविंशतिः सूत्राणि वाच्यानि । तथाहि—

“दुसमयद्विइया पोग्गला अणंता पणत्ता ३। एवं दुगुणकिण्हा जाव दुगुण-सुकिला ८। दुगुण सुब्भिगंधा दुगुण दुब्भिगंधा १०। दुगुणत्तित्ता जाव दुगुण-महुरा० १५। दुगुणकक्खडा जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पणत्ता २३” ।

करते हैं—“दुपएसिया” इत्यादि—द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं । द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं इसी तरह से यावत् द्विगुणलुक्खगुणवाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं तात्पर्य इन सूत्रोंका ऐसा है कि द्रव्य की अपेक्षा से द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं १, क्षेत्रकी अपेक्षा से द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं २ इसी प्रकार यावत् शब्दसे गृहीत द्विसमय स्थितिवाले पुद्गल इसी अभिलाप के अनुसार अनन्त कहे गये हैं—इस विषय में अभिलाप ऐसा है—  
“दुसमयद्विइया पोग्गला अणंता पणत्ता” इस अभिलाप से लगाकर “दुगुणलुक्खा पुग्गला अणंता पणत्ता” यहां तक काल को आश्रित करके तथा—वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्श इनको आश्रित करके ये २१ सूत्र और कहना चाहिये । इस प्रकार से द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को

द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी अपेक्षाओं के स्थानकेना आधारे कथन करे छे.

“दुपएसिया” इत्यादि—

द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनेक कक्षां छे द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल स्कन्ध अनन्त कक्षां छे. अने प्रमाणे द्विशुद्धि पर्यन्तना शुष्वाणां पुद्गलो कक्षां छे. आ कथनने भावार्थ नीचे प्रमाणे छे—(१) द्रव्यनी अपेक्षाओं द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कक्षां छे. (२) क्षेत्रनी अपेक्षाओं द्विप्रदेशावगाढ पुद्गलो अनन्त कक्षां छे (३) अने प्रमाणे ‘यावत्’ पदथी गृहीत के समयनी स्थितिवाणां पुद्गलो पण्ठे आ अभिलाप अनुसार अनन्त कक्षा छे आ विषय सभधी नीचे प्रमाणे अभिलाप छे—“दुसमयद्विइया पोग्गला अणता पणत्ता” के समयनी स्थिति-वाणा पुद्गलो अनन्त कक्षा छे ” आ अभिलापथी शर् करीने “दुगुणलुक्खा पोग्गला अणता पणत्ता” के गणी इक्षतावाणां पुद्गलो अनन्त कक्षा छे आ अभिलाप पर्यन्तना अभिलापो कालनी अपेक्षाओं प्रहण करवा लेछे तथा वर्ण, गन्ध, रस अने स्पर्शने अनुलक्षीने २१ जीव सूत्रो कहेवा लेछे.



कालत्रयेऽपि विद्याधरस्य कुरुन्तीति जीवपुद्गलस्योर्वकम्यतामाह—

मूलम्—जीवाणं दुष्टाण्यनिवृत्तिषु पोग्गले पावकम्मसाय  
चिर्णिसु वा चिर्णन्ति वा चिर्णिस्सति वा, तं जहा तसकाय  
णिवृत्तिषु चैव थावरकायणिवृत्तिषु चैव १ । एव उवचिर्णिसु  
वा उवचिर्णन्ति वा उवचिर्णिस्सति वा २ । वधिंसु वा वधिन्ति  
वा वधिस्सति वा ३ । उदीरिंसु वा उदीरेति वा उदीरिस्सति  
वा ४ । वेदेंसु वा वेदेति वा वेदिस्सति वा ५ । णिज्जरींसु वा  
णिज्जरीरिति वा णिज्जरिस्सति वा ६ । दुपप्पसिया खघा अणंता  
पण्णत्ता १ । दुपप्पसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता २ ।  
एव जाव दुयुणल्लक्खा पाग्गला अणंता पण्णत्ता २३ ॥ सू० ५५  
दुष्टाणस्स चउत्थो उद्देशो समत्तो ॥ ४ ॥

दुष्टाणं समत्त ॥ २ ॥

छाया-जीवाः स्वच्छ दिव्यानिर्बन्धितान् पुद्गलान् पापकर्मवशा मचिन्वन् वा, चिन्व  
न्ति वा, चेष्यन्ति वा सद्यमा-प्रसङ्गायनिर्बन्धितान् चैव स्वावरकायनिर्बन्धितान् चैव  
१। एवम् उपचिन्वन् वा उपचिन्वन्ति वा उपचेष्यन्ति वा २। अपचिन्वन् वा अपचिन्वन्ति वा  
मन्स्सपिति वा ३। उदैरयन् वा उदीरयन्ति वा उदीरयिष्यन्ति वा ४। अबेदयन्  
वा वेदयन्ति वा वेदयिष्यन्ति वा ५। निरजरयन् वा निजरयन्ति वा निजरयिष्य-  
न्ति वा ६। द्विमदेशिका स्कन्धा अनन्ताः प्रज्ञा । द्विमदेशायगाढा पुद्गला  
अनन्ताः प्रज्ञाः । एवं यावद् द्विगुरुता पुद्गला अनन्ताः प्रज्ञाः ॥ सू० ५५ ॥

॥ दिव्यानि कस्य चतुर्थे उद्देशः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ दिव्यानि समाप्तम् ॥ २ ॥

अभी जो परिभारणा कही गई है सो यह परिभारणा कर्मसे होती  
है कर्म को जीय अपने हेतुओं द्वारा कालत्रय में भी चित्तादि भवस्या  
पाला करते हैं अतः अय सद्यकार जीय और पुद्गल की घटकप्यता के

पदेताना सूत्रभां ने परिभारणान् निरूपयन् कर्वाभां आभ्युं ॐ ते परि  
भारणा कर्मणी धाय ॐ कर्मने लवे चित्ताना हेतुभ्ये द्वारा भागवतभां यय  
चित्तादि अवरथावा ॐ करे ॐ एवं सूत्रभां लवे अने पुद्गली बलाभ्यताना

टीका—‘जीवाणं’ इत्यादि, पट् मूत्राणि ।

जीवाः—केचित् प्राणिनः च द्विस्थाननिर्वर्तितान् द्वयोः स्थानयोस्त्रसस्या-  
वरूपयोः समाहारो—द्विस्थानम्, तस्मिन् निर्वर्तितः—मिथ्याध्वाचिरत्यादिभिः  
सामान्यत उपार्जिता वक्ष्यमाण चयनादि पङ्क्त्याख्येण सम्पादितास्तान् पुद्ग-  
लान् पापकर्मतया—पापकर्म—ज्ञानावरणीयादिनृणावस्तत्ता, तथा तथोक्त्या ‘चि-  
र्णिसु’ इति—अचिन्वन्—उपार्जितवन्तोऽतीतकाले, चिन्वन्ति—उपार्जयन्ति—वर्तमान-  
काले, चेष्यन्ति—उपार्जयिष्यन्ति भविष्यत्काले १ चयनं—कपायादिपरिणतस्य  
कर्मपुद्गलोपादानमात्रम् १। एवम् २ उपचयनं—चित्तस्यावाधाकालं विहाय ज्ञाना-  
वरणीयादितया निषेकः, सचेत्थम्—प्रथमस्थितौ बहुतरं कर्मदलिकं निषिञ्चति,

विषय में कथन करते हैं—‘जीवाणं दुष्टाण्यिच्छन्ति पोगले’ इत्यादि

जीवोंने—प्राणियों ने—प्रस स्थावररूप दो स्थानों में मिथ्या—  
अविरति आदि रूप कारणों से सम्पादित कर्मपुद्गलों को चयनादि पङ्-  
क्तरूप में सम्पादित किया है और सम्पादित किये गये उन कर्म-  
पुद्गलों को उन्होंने ज्ञानावरणीयादि रूप से अतीतकाल में परिणमाया  
है तथा वर्तमानकाल में वे उन्हें उपार्जित करके उस रूपमें परिणमाते  
रहते हैं, और आगामी कालमें भी वे उनका चयन—उपार्जन करके उस  
रूपमें उन्हें परिणमाते रहेंगे । कपायादिसे परिणत हुए जीव के जो  
कर्मपुद्गलों का उपादान ग्रहण होता है उसका नाम चयन है, गृहीत कर्म  
का अवाधाकाल को छोड़ कर जो ज्ञानावरणीयादि रूप से निषेक होता  
है वह उपचयन है, वह उपचयन इस प्रकार से होता है, प्रथम स्थिति  
में बहुतर कर्मदलिक का निषेक—उपचयन होता है इसके बाद द्वितीय

विषयतुं कथन करे छे—“जीवाण दुष्टाण्यिच्छन्ति पोगले” इत्यादि—

एवमेव (प्रणीयमाने) तस्य अने स्थावररूप ये स्थानोभां मिथ्या-  
अविरति आदि रूप करखोथी सम्पादित कर्मपुद्गलोने चयनादि रूप छ अवस्था  
इये सम्पादित कर्यां छे अने सम्पादित करवाभां आवेलां ते पुद्गलोने तेमणे  
ज्ञानावरणीय आदि इये भूतकाणभां परिणुभाव्यां छे, तथा वर्तमानभां पण्यु  
तेमो तेमने उपार्जित करीने ते इये परिणुभाव्या करे छे, अने अविष्यभां  
पण्यु तेमो तेमनुं चयन (उपाजन) करीने तेमने ते इये परिणुभावता  
रहेथे. कपायादि आवेथी युक्त थयेला एव द्वारा कर्मपुद्गलानुं जे उपादान  
(ग्रहण) थाय छे तेनुं नाम चयन छे अवाधाकाणने छोडीने गृहीत कर्मने जे  
ज्ञानावरणीय आदि इये निषेक थाय छे तेनुं नाम उपचयन छे ते उपचयन  
आ प्रकारे थाय छे—प्रथम स्थितिभां बहुतर कर्मदलिकोने निषेक (उपचयन) थाय

कालत्रयेऽपि विधाद्यवस्थं कुर्यातीति जीवपुद्गलयोर्वक्तव्यतामाह—

मूलम्—जीवाणं दुष्टाणिवृत्तिषु पोग्गले पावकम्मत्ताप  
चिणिंसु वा चिणांति वा चिणिस्सति वा, न जहा तसकाय  
णिवृत्तिषु चैव थावरकायणिवृत्तिषु चैव १ । एव उवचिणिंसु  
वा उवचिणांति वा उवचिणिस्सति वा २ । वधिंसु वा वधिंति  
वा वधिस्सति वा ३ । उदीरिंसु वा उदीरिंति वा उदीरिस्सति  
वा ४ । वेदेंसु वा वेदेंति वा वेदिस्सति वा ५ । णिज्जिंसु वा  
णिज्जिरिंति वा णिज्जिरिस्सति वा ६ । दुपपसिया खधा अणंता  
पण्णत्ता १ । दुपपसोगाढा पोग्गला अणंता पण्णत्ता २ ।  
एव जाव दुयुणल्लुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता २३ ॥ सू० ५५  
दुष्टाणस्स चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥ ४ ॥

दुष्टाणं समत्त ॥ २ ॥

छाया-भीषाः खलु द्विस्थाननिर्वर्तितान् पुद्गलान् पापकर्मतया अचिन्वन् वा, चिन्व  
न्ति वा, चेष्यन्ति वा, तद्यथा-मगकायनिर्वर्तितान् चैव स्यावरकायनिर्वर्तितान् चैव  
१। एवम् उपचिन्वन् वा उपचिन्वन्ति वा उपचेष्यन्ति वा २। अचन्वन् वा चन्वन्ति वा  
मन्स्वन्ति वा ३। उदीरयन् वा उदीरयन्ति वा उदीरयिष्यन्ति वा ४। अवेदयन्  
वा वेदयन्ति वा वेदयिष्यन्ति वा ५। निरञ्जयन् वा निरञ्जयन्ति वा निरञ्जरयिष्य  
न्ति वा ६। द्विमदेशिका स्कन्धा अनन्ताः मङ्गला । द्विमदेशात्रगाढा पुद्गला  
अनन्ताः मङ्गलाः । एवं यावद् द्विगुणरूपाः पुद्गला अनन्ताः मङ्गलाः ॥ सू० ५५ ॥

॥ द्विस्थानकस्य चतुर्थे उद्देशः समाप्तः ॥ ४ ॥

॥ द्विस्थान समाप्तम् ॥ २ ॥

अभी जो परिचारणा कही गई है सो यह परिचारणा कर्मसे होती  
है कम को जीय अपने हेतुओं द्वारा कालत्रय में भी चित्तादि अक्षरणा  
याला करते हैं अतः अम सूत्रकार जीय और पुद्गल की परकल्पता के

पदेताना सूत्रभा के परिचारणानुं निरूप्य करवाभां आ धुं छे ते परि  
चरणां अभधी पाय छे कर्मने लवे। पाताना देतुम्बि द्वारा मात्रवर्भां पय  
चित्तादि अक्षरणायां छे छे छे सूत्रकार लय अने पुद्गलनी वक्ष्यताना

टीका—‘जीवाणं’ इत्यादि, षट् सूत्राणि ।

जीवाः—केचित् प्राणिनः च द्विस्थाननिर्वर्तितान् द्वयोः स्थानयोस्त्रसंस्था-  
वरूपयोः समाहारो—द्विस्थानम्, तस्मिन् निर्वर्तितः—मिथ्यात्वाविरत्यादिभि-  
सामान्यत उपाजिता चक्ष्यमाण चयनादि षडवस्थारूपेण सम्पादितास्तान् पुद्ग-  
लान् पापकर्मतया—पापकर्म—ज्ञानावरणीयादिब्रह्मावस्तत्ता, तथा तथोक्तया ‘चि-  
णिषु’ इति—अचिन्वन्—उपाजितवन्तोऽतीतकाले, चिन्वन्ति—उपाजयन्ति—वर्तमान-  
काले, चेष्यन्ति—उपाजयिष्यन्ति भविष्यत्काले १ चयनं—कषायादिपरिणतस्य  
कर्मपुद्गलोपादानमात्रम् १। एवम् २ उपचयनं—चित्तस्यावाधाकालं विहाय ज्ञाना-  
वरणीयादितया निषेकः, सचेत्थम्—प्रथमस्थितौ बहुतरं कर्मदलिकं निषिञ्चति,

विषय में कथन करते हैं—‘जीवाणं दुष्टाण्यिच्छति पोग्गले’ इत्यादि

जीवोंने—प्राणियों ने—त्रस स्थावररूप दो स्थानों में मिथ्या—  
अविरति आदि रूप कारणों से सम्पादित कर्मपुद्गलों को चयनादि षड-  
वस्थारूप में सम्पादित किया है और सम्पादित किये गये उन कर्म-  
पुद्गलों को उन्होंने ज्ञानावरणीयादि रूप से अतीतकाल में परिणमाया  
है तथा वर्तमानकाल में वे उन्हें उपाजित करके उस रूपमें परिणमाते  
रहते हैं, और आगामी कालमें भी वे उनका चयन—उपाजन करके उस  
रूपमें उन्हें परिणमाते रहेगे । कषायादिसे परिणत हुए जीव के जो  
कर्मपुद्गलों का उपादान ग्रहण होता है उसका नाम चयन है, गृहीत कर्म  
का अवाधाकाल को छोड़ कर जो ज्ञानावरणीयादि रूप से निषेक होता  
है वह उपचयन है, वह उपचयन इस प्रकार से होता है, प्रथम स्थिति  
में बहुतर कर्मदलिक का निषेक—उपचयन होता है इसके बाद द्वितीय

विषयतुं कथन करे छे—“जीवाण दुष्टाण्यिच्छति पोग्गले” इत्यादि—

एवमेव (प्रणीयाने) त्रस अने स्थावररूप जे स्थानोमां मिथ्या-  
अविरति आदि रूप करवोथी सम्पादित कर्मपुद्गलोने चयनादि रूप छ अवस्था  
इये सम्पादित कर्मा छे अने सम्पादित करवामां आवेदां ते पुद्गलोने तेमणे  
ज्ञानावरणीय आदि रूपे भूतकाणमां परिणमाव्यां छे, तथा वर्तमानमां पण्य  
तेयो तेमने उपाजित करीने ते रूपे परिणमाव्या करे छे, अने भविष्यमां  
पण्य तेयो तेमनु चयन (उपाजन) करीने तेमने ते रूपे परिणमावता  
रहेसे. कषायादि बावोथी युक्त थयेवा एव द्वारा कर्मपुद्गलोनु जे उपादान  
(अदृश्य) थाय छे तेनु नाम चयन छे अवाधाकाणने छोडीने गृहीत कर्मने जे  
ज्ञानावरणीय आदि रूपे निषेक थाय छे तेनु नाम उपचयन छे ते उपचयन  
आ प्रकारे थाय छे—प्रथम स्थितिमां बहुतर कर्मदलिकोने निषेक (उपचयन) थाय

તવો દ્વિતીયાયાં સ્થિતૌ વિશેષીનમ્ , ૧૪ યાવદ્ ઉત્કૃષ્ટાયાં સ્થિતૌ વિશેષીનં  
 નિપિચ્છતિ ૨। ૩ બન્ધન-તસ્યૈવ જ્ઞાનાવરણીયાદિતયા નિપિક્તસ્ય પુનરપિ કયાય  
 પરિણતિ વિશેષાત્સ<sup>૧</sup>છેપણમ્ ૩। ૪ ઉદીરણમ્-ઉદયમમાપ્તસ્ય કર્મદલિકસ્ય શીર્ષ  
 વિશેષેણ સમાકૃમ્પોદયાવલિકાર્યા પ્રવેચનમ્ ૪। ૫ વેદન-સ્વભાવેન-ઉદીરણાકર  
 પેન ઉદયાવલિકાપનિષ્ટસ્ય કર્મખોડનુમવનમ્ ૬। ૬ નિર્જરણ-કર્મખોડકર્મતા  
 મવનં બીષપવેચ્છેમ્યઃ કર્મણાં પરિચ્છન્નમિત્યર્થઃ ૬। કર્મન પુલ્ગલાત્મકમિતિ પુલ્ગ  
 સ્થિતિ મેં વિશેષહીન-અપહીન કર્મદલિકા નિયેક હોતા હૈ, ઈસી તરહ  
 સે યાવત્ ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિ મેં વિશેષ હીન કર્મદલિકા નિયેક હોતા હૈ ૨  
 બન્ધન-જ્ઞાનાવરણીયાદિરુપ સે નિપિક્ત હુપ ઉસ કર્મપુલ્લકા કો પુનઃ  
 કયાયપરિણતિ સે જો સંશ્લેષણ હોતા હૈ યહ પાંચન હૈ ૩ ઉદીરણ ઉદય  
 કો નહોં પ્રાપ્ત હુપ કર્મદલિકા શીર્ષવિશેષ સે સ્ત્રીંચકર ઉદયાવલિકામેં  
 છાના ઈસકા નામ ઉદીરણા હૈ ૪, વેદન-સ્વભાવ સે ઔર ઉદીરણાકરણ  
 સે ઉદયાવલિકા મેં પ્રવિષ્ટ હુપ કર્મકા અનુભવ કરના ઈસકા નામ  
 વેદન હૈ ૫ । નિર્જરણકર્મકા અકર્મરુપ સે હોના-—જીવ પ્રવેશોં સે કર્મ  
 પુલ્લોં કા જરના નષ્ટ હોના ઈસકા નામ નિર્જરણ હૈ । ઈસ પ્રકાર સે વે  
 કર્મપુલ્લોંકી અવસ્થાએ હેં । ઈન ૬ હોં અવસ્થાઓં કા યહાં મૂત, વર્તમાન  
 ઔર અધિવ્યત્કાલ કી અપેક્ષા સે સૂત્રકારને કાચન કિયા હૈ ।

કર્મ પુલ્લાત્મક હૈ ઈસલિયે સૂત્રકાર અય પુલ્લોં કા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર,  
 કાલ ઔર ભાવકી અપેક્ષા સે ટિસ્થાનકોં કા અવતાર લેકર નિરૂપણ  
 છે આરબાદ બીજી સ્થિતિમાં વિશેષહીન-અપહીન કર્મદલિકાને કમ પુલ્લનિયેક  
 યાવ છે બ્લેજ પ્રમાણે (યાવત્) ઉત્કૃષ્ટ સ્થિતિમાં વિશેષહીન કર્મદલિકા  
 કાને નિયેક યાવ છે (૨) બન્ધન-જ્ઞાનાવરણીય આદિ રૂપે નિપિક્ત થયેલાં  
 (ઉપબન્ધન યામેલાં) તે કર્મપુલ્લોં પુનઃ કયાવપરિણતિથી ને અપેક્ષ  
 યાવ છે, તેને બન્ધન ઠહે છે (૩) ઉદીરણ-ઉદય પ્રાપ્ત ન થયા હોય બેવાં  
 કર્મદલિકાને શીર્ષવિશેષ વટે જે ચીને ઉદયાવલિકામાં લાવવા તેનું નામ ઉદીરણ  
 છે (૪) વેદન-સ્વભાવથી અથવા ઉદીરણાકરણ દ્વારા ઉદયાવલિકામાં આવેલાં  
 કર્મ વેદન-અનુભવન કરવું તેનું નામ વેદન છે (૫) નિર્જરણ-કર્મનું અક-  
 મરૂપ બની અનુ-અવપરેશોમાંથી કર્મપુલ્લોં વરી જવું (નષ્ટ થઈ જવું)  
 તેનું નામ નિર્જરણ છે (૬) આ પ્રમાણે આ કર્મપુલ્લોંની ૬ અવસ્થાએ છે.  
 આ છએ અવસ્થાએનું સૂત્રકારે મૂત, વર્તમાન અને અધિવ્યત્કાલની અપેક્ષાએ  
 અહીં કાચન કરું છે કર્મ પુલ્લરૂપ હોય છે તેથી હવે સૂત્રકાર પુલ્લોંનું

લાન્ દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવૈદ્વિસ્થાનકાવતારેણ નિરૂપયન્નાહ—‘ દુપ્પસિયા ’ इत्यादि सूत्राणि त्रयोविंशतिः । सुगमानि चैतानि, नवरम् द्रव्यतो द्विप्रदेशिकाः स्कन्धा अनन्ताः प्रज्ञप्ता १। क्षेत्रतो द्विप्रदेशावगाढाः पुद्गला अनन्ताः २। एवम्—अने-नैवामिलापेन—‘ जाव ’ इति यावच्छब्दात्—‘ दुसमयद्विइया पुग्गला अणंता पणत्ता इत्यारभ्य ‘ दुगुणलुक्खा पुग्गला अणंता पणत्ता ’ इति पर्यन्तेन कालमाश्रित्य तथा—वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्शांश्चाश्रित्यैकविंशतिः सूत्राणि वाच्यानि । तथाहि—

“ दुसमयद्विइया पोग्गला अणंता पणत्ता ३। एवं दुगुणकिण्हा जाव दुगुण-सुकिला ८। दुगुण सुब्भिगंधा दुगुण दुब्भिगंधा १०। दुगुणत्तिता जाव दुगुण-महुरा० १५। दुगुणकक्खडा जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पणत्ता २३” ।

करते हैं—“ दुपप्सिया ” इत्यादि—द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं । द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं इसी तरह से यावत् द्विगुणरूक्षगुणवाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं तात्पर्य इन सूत्रोंका ऐसा है कि द्रव्य की अपेक्षा से द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं १, क्षेत्रकी अपेक्षा से द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं २ इसी प्रकार यावत् शब्दसे गृहीत द्विसमय स्थितिवाले पुद्गल इसी अभिलाप के अनुसार अनन्त कहे गये हैं—इस विषय में अभिलाप ऐसा है— “ दुसमयद्विइया पोग्गला अणंता पणत्ता ” इस अभिलाप से लगाकर “ दुगुणलुक्खा पुग्गला अणंता पणत्ता ” यहां तक काल को आश्रित करके तथा—वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्श इनको आश्रित करके ये २१ सूत्र और कहना चाहिये । इस प्रकार से द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को

द्रव्य, क्षेत्र, काल અને ભાવની અપેક્ષાએ બે સ્થાનકોના આધારે કથન કરે છે. “ દુપ્પસિયા ” ઇત્યાદિ—  
 દ્વિપ્રદેશિક સ્કન્ધ અનેક કહ્યાં છે. દ્વિપ્રદેશાવગાઠ પુદ્ગલ સ્કન્ધ અનંત કહ્યાં છે. એજ પ્રમાણે દ્વિગુણરૂક્ષ પર્યન્તના ગુણવાળાં પુદ્ગલો કહ્યાં છે. આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) દ્રવ્યની અપેક્ષાએ દ્વિપ્રદેશિક સ્કન્ધ અનંત કહ્યાં છે. (૨) ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ દ્વિપ્રદેશાવગાઠ પુદ્ગલો અનંત કહ્યાં છે (૩) એજ પ્રમાણે ‘ યાવત્ ’ પદથી ગૃહીત બે સમયની સ્થિતિવાળાં પુદ્ગલો પશુ આ અભિલાપ અનુસાર અનંત કહ્યાં છે. આ વિષય સમગ્રી નીચે પ્રમાણે અભિલાપ છે—“ દુસમયદ્વિइया પોગ્ગલા અગતા પણત્તા ” બે સમયની સ્થિતિ-વાળાં પુદ્ગલો અનંત કહ્યાં છે ” આ અભિલાપથી શરૂ કરીને “ દુગુણલુક્ખા પોગ્ગલા અણતા પણત્તા ” બે ગણી રૂક્ષતાવાળાં પુદ્ગલો અનંત કહ્યાં છે આ અભિલાપ પર્યન્તના અભિલાપો કાળની અપેક્ષાએ પ્રહણુ—કરવા બોધએ તથા વર્ણ, ગન્ધ, રસ અને સ્પર્શને અનુલક્ષીને ૨૧ બી કહેવા બોધએ.

ततो द्वितीयायां स्थितौ विशेषीणम्, पञ्च यावद् उत्कृष्टायां स्थितौ विशेषीणं निपिञ्चति २। ३ षष्ठ्यन-तस्यैव ज्ञानावरणीयादितया निपिक्तस्य पुनरपि कषायपरिणति विशेषास्त-छेपणम् ३। ४ उदीरणम्-उदयप्रमाणस्य कर्मदलिकस्य धीर्य-विशेषेण समाकृष्योदयावलिकारायां प्रवेशनम् ४। ५ वेदन-स्वभावेन-उदीरणाकरणेन उदयावलिकामचिष्टस्य कर्मणोऽनुभवनम् ५। ६ निर्जरण-कर्मणोऽकर्मता भवनं जीवप्रवेशेभ्यः कर्मणां परिश्रुतनमित्यर्थः ६। ७ कर्मच पुद्गलत्रात्मकमिति पुद्गल

स्थिति में विशेषहीन-अधहीन कर्मदलिका नियेक होता है, इसी तरह से यावत् उत्कृष्ट स्थिति में विशेष हीन कर्मदलिकका नियेक होता है २ षष्ठ्यन-ज्ञानावरणीयादिरूप से निपिक्त हुए उस कर्मपुद्गल का पुनः कषायपरिणति से जो संछेपण होता है वह षष्ठ्यन है ३ उदीरण उदय को नहीं प्राप्त हुए कर्मदलिकका धीर्यविशेष से खींचकर उदयावलिकामें लाना इसका नाम उदीरण है ४, वेदन-स्वभाव से और उदीरणाकरण से उदयावलिका में प्रविष्ट हुए कर्मका अनुभव करना इसका नाम वेदन है ५ । निर्जरणकर्मका अकर्मरूप से होना—जीव प्रवेशों से कर्म पुद्गलों का झरना नष्ट होना इसका नाम निर्जरण है । इस प्रकार से ये कर्मपुद्गलोंकी अवस्थाएं हैं। इन ६ हों अवस्थाओं का यहाँ मूल, वर्तमान और भविष्यत्काल की अपेक्षा से सूत्रकारने कथन किया है ।

कर्म पुद्गलात्मक है इसलिये सूत्रकार अथ पुद्गलों का द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा से विस्थानकों का अवतार लेकर निरूपण

ॐ त्वाग्नाह वीथ स्थितिर्मा विशेषहीन-अधहीन कर्मदलिकानो कर्म पुद्गलनिवेश याव ॐ ज्ञेय प्रभावे (यावत्) छेदे उत्कृष्ट स्थितिर्मा विशेषहीन कर्मदलिकानो निवेश याव ॐ (२) षष्ठ्यन-ज्ञानावरणीय आदि रूपे निपिक्त कर्मता (कषययन प्रभावा) ते कर्मपुद्गलानु पुनः कषायपरिणतिथी ने संछेपण याव ॐ, तेने षष्ठ्यन छेदे ॐ (३) उदीरण-उदय प्राप्त न यथा दोष खिवा कर्मदलिकाने धीर्यविशेष पठे जे खीने उदयावलिकामां लाववा तेनुं नाम उदीरणा ॐ (४) वेदन-स्वभावशी अथवा उदीरणाकारण द्वारा उदयावलिकामां आवेकां कर्मतु वेदन-अनुभवन करतुं तेनुं नाम वेदन ॐ (५) निर्जरण-कर्मतुं अकर्मरूप जनी जतुं-लक्षप्रवेशोभांथी कर्मपुद्गलानु करी जतुं (नष्ट यत् जतुं) तेनुं नाम निर्जरण ॐ (६) आ प्रभावे आ कर्मपुद्गलानो ६ अवस्थाओ छे आ छजे अवस्थाओनु सूत्रकारे मूल, वर्तमान अने भविष्यत्कालनी अपेक्षाजे अर्थां कथन कतु ॐ कर्म पुद्गलरूप दोष ॐ तेथी दवे सूत्रकार पुद्गलानुं

लान् द्रव्यक्षेत्रकालभावैर्द्विस्थानकावतारेण निरूपयन्नाह—‘दुपएसिया’ इत्यादि सूत्राणि त्रयोविंशतिः । सुगमानि चैतानि, नवरम् द्रव्यतो द्विप्रदेशिकाः स्कन्धा अनन्ताः प्रज्ञप्ता १। क्षेत्रतो द्विप्रदेशावगाढाः पुद्गला अनन्ताः २। एवम्-अने-नैवाभिलापेन-‘जाव’ इति यावच्छब्दात्-‘दुसमयद्विइया पुग्गला अणंता पण्णत्ता इत्यारभ्य ‘दुगुणलुक्खा पुग्गला अणंता पण्णत्ता’ इति पर्यन्तेन कालमाश्रित्य तथा-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शांश्चाश्रित्यैकविंशतिः सूत्राणि वाच्यानि । तथाहि—

“दुसमयद्विइया पोग्गला अणंता पण्णत्ता ३। एवं दुगुणकिण्हा जाव दुगुण-सुक्किला ८। दुगुण सुब्धिगंधा दुगुण दुब्धिगंधा १०। दुगुणतित्ता जाव दुगुण-महुरा० १५। दुगुणकक्खडा जाव दुगुणलुक्खा पोग्गला अणंता पण्णत्ता २३”।

करते हैं—“दुपएसिया” इत्यादि—द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं । द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं इसी तरह से यावत् द्विगुणलुक्खगुणवाले पुद्गल अनन्त कहे गये हैं तात्पर्य इन सूत्रोंका ऐसा है कि द्रव्य की अपेक्षा से द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये हैं १, क्षेत्रकी अपेक्षा से द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये हैं २ इसी प्रकार यावत् शब्दसे गृहीत द्विसमय स्थितिवाले पुद्गल इसी अभिलाप के अनुसार अनन्त कहे गये हैं—इस विषय में अभिलाप ऐसा है— “दुसमयद्विइया पोग्गला अणंता पण्णत्ता” इस अभिलाप से लगाकर “दुगुणलुक्खा पुग्गला अणंता पण्णत्ता” यहाँ तक काल को आश्रित करके तथा-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श इनको आश्रित करके ये २१ सूत्र और कहना चाहिये । इस प्रकार से द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को

द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावनी अपेक्षाये जे स्थानकेना आधारे कथन करे छे.

“दुपएसिया” इत्यादि—

द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनेक कक्षां छे. द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल स्कन्ध अनन्त कक्षां छे. जे प्रमाणे द्विशुद्धि पर्यन्तना शुद्धिवाणां पुद्गलो कक्षां छे. आ कथनने भावार्थ नीचे प्रमाणे छे—(१) द्रव्यनी अपेक्षाये द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कक्षां छे. (२) क्षेत्रनी अपेक्षाये द्विप्रदेशावगाढ पुद्गलो अनन्त कक्षां छे (३) जे प्रमाणे ‘यावत्’ पदथी गृहीत जे समयनी स्थितिवाणां पुद्गलो पक्ष आ अभिलाप अनुसार अनन्त कक्षां छे आ विषय सम्बंधी नीचे प्रमाणे अभिलाप छे—“दुसमयद्विइया पोग्गला अणता पण्णत्ता” जे समयनी स्थिति-वाणां पुद्गलो अनन्त कक्षां छे ” आ अभिलापथी शब्द करीने “दुगुणलुक्खा पोग्गला अणता पण्णत्ता” जे गण्णी इक्षतावाणां पुद्गलो अनन्त कक्षां छे. आ अभिलाप पर्यन्तना अभिलापो कालनी अपेक्षाये प्रकृत्य करवा जेधये तथा पक्ष, गन्ध, रस अने स्पर्शने अनुलक्षिने २१ भिन्न सूत्रे कहेवा जेधये



ततो द्वितीयायां स्थितौ विशेषहीनम्, एवं यावद् उत्कृष्टायां स्थितौ विशेषहीनं निपिच्छति २। ३ वन्दनं—तस्यैव ज्ञानावरणीयादिवया निपिच्छस्य पुनरपि क्वाप परिणति विशेषात्संश्लेषणम् ३। ४ उदीरणम्—उदयप्रमाप्तस्य कर्मदलिकस्य वीर्यं विशेषेण समाकुम्भोदयावलिकारायां प्रवेशनम् ४। ५ वेदन—स्वभावेन—उदीरणाकरणेन उदयावलिकामविष्टस्य कर्मणोऽनुभवनम् ५। ६ निर्जरण—कर्मणोऽकर्मतामवनं जीवमद्वेष्यः कर्मणां परिश्रटनमित्यर्थः ६। कर्मव पुद्गलात्मकमिति पुत्र स्थिति में विशेषहीन—अवहीन कर्मदलिका नियेक होता है, इसी तरह से यावत् उत्कृष्ट स्थिति में विशेष हीन कर्मदलिकका नियेक होता है २ वन्दन—ज्ञानावरणीयादिरूप से निपिच्छ हुए उस कर्मपुद्गल का पुनः क्वापपरिणति से जो संश्लेषण होता है वह वन्दन है ३ उदीरण उदय को नहीं प्राप्त हुए कर्मदलिकका वीर्यविशेष से लीबकर उदयावलिकामें लाना इसका नाम उदीरणा है ४, वेदन—स्वभाव से और उदीरणाकरण से उदयावलिका में प्रविष्ट हुए कर्मका अनुभव करना इसका नाम वेदन है ५। निर्जरणकर्मका अकर्मरूप से होना—जीव प्रवेशों से कर्म पुद्गलों का क्षरना नष्ट होना इसका नाम निर्जरण है। इस प्रकार से वे कर्मपुद्गलोंकी अवस्थाएँ हैं। इन ६ हीं अवस्थाओं का यहाँ मूल, वर्तमान और भविष्यत्काल की अपेक्षा से सूत्रकारने कथन किया है।

कर्म पुद्गलात्मक है इसलिये सूत्रकार अथ पुद्गलों का रूप, क्षेत्र, काल और भावकी अपेक्षा से द्विस्थानकों का अवतार लेकर निरूपण

ॐ आरभ्याऽपील स्थितिमां विशेषहीन—अवहीन कर्मदलिकानो कर्म पुत्र नियेक भाव ॐ अथ प्रभावे (यावत्) उत्कृष्ट स्थितिमां विशेषहीन कर्मदलिकानो निपेक भाव ॐ (२) वन्दन—ज्ञानावरणीय आदि रूपे निपिच्छ भवेतां (उदयवदन पारितां) ते कर्मपुद्गलानुं पुनः क्वापपरिवृत्तिषी से संश्लेषण भाव ॐ तेने वन्दन कहे ॐ (३) उदीरण—उदय प्राप्त न यथा डोव जेवां कर्मदलिकाने वीर्यविशेष वडे जेपीने उदयावलिकामां लाववा तेनुं नाम उदीरणा ॐ (४) वेदन—स्वभावशी अववा उदीरणाकरण द्वारा उदयावलिकामां आवेतां कर्मतुं वेदन—अनुभवन करतुं तेनुं नाम वेदन ॐ (५) निर्जरण—कर्मतुं अकर्मरूप जनी कर्तुं—एवप्रवेशोर्मांशी कर्मपुद्गलानुं वरी कर्तुं (नष्ट यत् कर्तुं) तेनुं नाम निर्जरण ॐ (६) आ प्रभावे आ कर्मपुद्गलानि ६ अवस्थानो ॐ आ ज्ञाने अवस्थानोनु सूत्रकार मूल, वर्तमान अने भविष्यत्कालनी अपेक्षाने कर्तुं कथन क्यु ॐ कर्म पुद्गलरूप डोव ॐ तेथी कवे सूत्रकार पुद्गलानुं

ન દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવૈદ્વિસ્થાનકાવતારેણ નિરૂપયન્નાહ—‘દુપ્પસિયા’ ઇત્યાદિ  
 ગ્રાણિ ત્રયોવિંશતિઃ । મુગમાનિ ચૈતાનિ, નવરમ્ દ્રવ્યતો દ્વિપ્રદેશિકાઃ સ્કન્ધા  
 નન્તાઃ પ્રજ્ઞપ્તા ૧। ક્ષેત્રતો દ્વિપ્રદેશાવગાઠાઃ પુદ્ગલા અનન્તાઃ ૨। એવમ્-અને-  
 આભિલાપેન-‘જાવ’ ઇતિ યાવચ્છબ્દાત્-‘દુસમયદ્વિદ્વિયા પુગ્ગલા અણંતા પણ્ણત્તા  
 ત્યારમ્ય ‘દુગુણલુક્ષ્વા પુગ્ગલા અણંતા પણ્ણત્તા’ ઇતિ પર્યન્તેન કાલમાશ્રિત્ય  
 યા-વર્ણ-ગન્ધ-રસ-સ્પર્શાં શ્રાશ્રિત્યૈકવિંશતિઃ સૂત્રાણિ વાચ્યાનિ । તથાહિ—

“દુસમયદ્વિદ્વિયા પોગ્ગલા અણંતા પણ્ણત્તા ૩। એવં દુગુણકિણ્ઠા જાવ દુગુણ-  
 સુકિલા ૮। દુગુણ મુગ્ધિમગંધા દુગુણ દુગ્ધિમગંધા ૧૦। દુગુણતિત્તા જાવ દુગુણ-  
 મહુરા ૧૫। દુગુણકક્ષ્ણડા જાવ દુગુણલુક્ષ્વા પોગ્ગલા અણંતા પણ્ણત્તા ૨૩” ।

કરતે હૈં—“દુપ્પસિયા” ઇત્યાદિ—દ્વિપ્રદેશિક સ્કન્ધ અનન્ત કહે ગયે  
 હૈં । દ્વિપ્રદેશાવગાઠ પુદ્ગલ સ્કન્ધ અનન્ત કહે ગયે હૈં ઇસી તરહ સે યાવત્  
 દ્વિગુણલુક્ષ્ણગુણવાલે પુદ્ગલ અનન્ત કહે ગયે હૈં તાત્પર્ય ઇન સૂત્રોંકા એસા  
 હૈં કિ દ્રવ્ય કી અપેક્ષા સે દ્વિપ્રદેશિક સ્કન્ધ અનન્ત કહે ગયે હૈં ૧,  
 ક્ષેત્રકી અપેક્ષા સે દ્વિપ્રદેશાવગાઠ પુદ્ગલ અનન્ત કહે ગયે હૈં ૨ ઇસી  
 પ્રકાર યાવત્ શબ્દસે ગૃહીત દ્વિસમય સ્થિતિવાલે પુદ્ગલ ઇસી અભિલાપ  
 કે અનુસાર અનન્ત કહે ગયે હૈં—ઇસ વિષય મેં અભિલાપ એસા હૈં—  
 “દુસમયદ્વિદ્વિયા પોગ્ગલા અણંતા પણ્ણત્તા” ઇસ અભિલાપ સે લગાકર  
 “દુગુણલુક્ષ્વા પુગ્ગલા અણંતા પણ્ણત્તા” યહાં તક કાલ કો આશ્રિત  
 કરકે તથા-વર્ણ-ગન્ધ-રસ-સ્પર્શ ઇનકો આશ્રિત કરકે યે ૨૧ સૂત્ર  
 ઓર કહના ચાહિયે । ઇસ પ્રકાર સે દ્રવ્ય ક્ષેત્ર કાલ ઓર ભાવ કો

દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવની અપેક્ષાએ બે સ્થાનકોના આધારે કથન કરે છે.

“દુપ્પસિયા” ઇત્યાદિ—

દ્વિપ્રદેશિક સ્કન્ધ અનેક કહ્યાં છે દ્વિપ્રદેશાવગાઠ પુદ્ગલ સ્કન્ધ અનન્ત  
 કહ્યાં છે. એજ પ્રમાણે દ્વિગુણલુક્ષ્ણ પર્યન્તના ગુણવાળાં પુદ્ગલો કહ્યાં છે. આ  
 કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—(૧) દ્રવ્યની અપેક્ષાએ દ્વિપ્રદેશિક સ્કન્ધ  
 અનન્ત કહ્યાં છે. (૨) ક્ષેત્રની અપેક્ષાએ દ્વિપ્રદેશાવગાઠ પુદ્ગલો અનન્ત કહ્યાં  
 છે (૩) એજ પ્રમાણે ‘યાવત્’ પદથી ગૃહીત બે સમયની સ્થિતિવાળાં પુદ્ગલો  
 પણ આ અભિલાપ અનુસાર અનન્ત કહ્યાં છે આ વિષય સખંધી નીચે પ્રમાણે  
 અભિલાપ છે—“દુસમયદ્વિદ્વિયા પોગ્ગલા અણંતા પણ્ણત્તા” બે સમયની સ્થિતિ-  
 વાળાં પુદ્ગલો અનન્ત કહ્યા છે ” આ અભિલાપથી શરૂ કરીને “દુગુણલુક્ષ્વા  
 પોગ્ગલા અણંતા પણ્ણત્તા” બે ગણી રૂક્ષતાવાળાં પુદ્ગલો અનન્ત કહ્યા છે. આ  
 અભિલાપ પર્યન્તના અભિલાપો કાળની અપેક્ષાએ પ્રકૃષ્ટ કરવા બેઠએ તથા  
 વર્ણ, ગન્ધ, રસ અને સ્પર્શને અનુલક્ષીને ૨૧ બીજા સૂત્રે કહેવા બેઠએ.

छाया— द्वि समयस्थितिकाः पुद्गला अनन्ताः प्रकृताः ३। एव द्विगुणरूपा  
 यावत् द्विगुणधुक्त्राः ८। द्विगुणसुरभिगंधाः ९ द्विगुणमुरभिगन्धाः १०। द्विगु  
 णविक्रा यावत् द्विगुणमधुराः १५। द्विगुणकर्कशा यावत् द्विगुणरूपाः पुद्गला  
 अनन्ता प्रकृताः ॥ २३ ॥ इति ॥ सू० ५५ ॥

इति स्थानाद् एते द्वितीयस्थानस्य चतुर्थोद्देशकः समाप्तः ॥४॥

इतिधीविष्वविस्वात-ब्रह्मदुग्धम-मसिद्धवाचक-पञ्चदशमापाकस्थित  
 क्लिप्तकलापाकापन-प्रविशुद्गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमा  
 नमर्दक भीष्माहूतप्रपति कोल्हापुरराममदघ 'जैनशास्त्राचार्य'पद  
 भूषित-कोल्हापुररानगुरु पाकप्रकाचारि जेनाचार्य-जैनधर्म-  
 दिवाकर-पूज्यभी-पासीलाकप्रतिभिरचितायां  
 स्थानाद्ब्रह्मस्य द्युपाख्यायां व्याख्यायां  
 द्वितीयं स्थान सम्पूर्णम् ॥२-४॥

आश्रित वरफे कहे गये ये सय सूत्र २३ हो जाते हैं—इनमें “ ब्रह्म की  
 अपेक्षा से द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये है ” यह प्रथम सूत्र है ।  
 तथा “ क्षेत्रकी अपेक्षा से द्विप्रदेशावगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये है ”  
 ऐसा यह द्वितीय सूत्र है “ बुधमयद्विहया योगगला अर्णता पण्णता ३ ”  
 दो समय की स्थितिवाले पुद्गल अनन्त है—ऐसा यह सूत्र तीसरा है  
 इसी तरह से “ दुग्गुण किण्हा जाय दुग्गुण सुक्किहा ८ ” दुग्गुण कृष्ण से  
 ले कर यावत् द्विगुणशुक्ल तक ८ सूत्र हो जाते हैं । इसी तरह—“दुग्गुण  
 सुक्किगंधा दुग्गुण दुक्किगंधा १० ” द्विगुण सुरभिगंध से लेकर द्विगुण  
 सुरभिगंध तक के दो दो सूत्र और होते हैं इस प्रकार से ये दस सूत्र

आ प्रभरे ब्रह्म, क्षेत्र, हाण अने जावने आधारे उदेला सूत्रोनी कुल सम्भ  
 २३ याव उ पदेहुं सूत्र आ प्रभावे उ-३ वनी अपेक्षासे द्विप्रदेशिक स्कन्ध  
 अनन्त कथां उ वीजु सूत्र आ प्रभावे समन्वु-क्षेत्रनी अपेक्षासे ले प्रदे  
 शावगाढ पुद्गले अनन्त कथां उ-त्रीजु सूत्र आ प्रभावे उ-“ बुधमयद्विहया  
 योगगला अर्णता पण्णता ” से समयनी स्थितिवाणां पुद्गले अनन्त कथां उ  
 लेख प्रभावे “ दुग्गुणकिण्हा जाय दुग्गुणसुक्किहा ” से अर्ण कृष्णवर्णवाणां  
 पुद्गले अनन्त कथां उ लेख प्रभावे से अर्ण शुक्ल वर्णवाणां वज्रवाणां  
 पुद्गले पञ्च अनन्त कथां उ आ शीते वज्रनी अपेक्षासे अनन्त पांच सूत्रोने  
 त्रय सूत्रोभां उभेएवाधी आः सूत्र अने उ “ दुग्गुण सुक्किगंधा,  
 दुग्गुण दुक्किगंधा १० ” (६) से अर्ण सुरभीवाणां अनन्त पुद्गले कथां उ  
 (१०) से अर्ण दुग्धवाणां अनन्त पुद्गले कथां उ आ शीते १० सूत्रो सधां.

होते हैं "द्विगुण तित्ता जाव द्विगुण महुरा" ये पांच सूत्र रस सम्बन्धी होते हैं सो दस में पांच मिलानेसे पंद्रह सूत्र हो जाते हैं तथा "द्विगुण कक्खडा जाव द्विगुण लुक्खा पोग्गला अणता पणत्ता" इन ८ स्पर्शों के ८ सूत्रों को पंद्र में मिलाने से कुल चार वर्ण सम्बन्धी २३ सूत्र बन जाते हैं । इस तरह से ये २३ सूत्र द्विगुण रूप, रस, गंध और स्पर्श को आश्रित कर के कहे गये हैं ॥ सू० ५५ ॥

दूसरे स्थानकका चौथा उद्देशक समाप्त ॥ २-४ ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मद्विवाकर-पूज्यश्री घासीलाल व्रतिविरचित श्री स्थानाङ्ग सूत्रकी सुधानामक टीकार्थका दूसरा स्थानक समाप्त ॥ २ ॥

"द्विगुण तित्ता जाव द्विगुण महुरा" आ रीते रसनी अपेक्षाये पणु पाय्य सूत्र अने छे. आगला १० सूत्रोभां आ पाय्य सूत्रो उभेरवाथी १५ सूत्रो थाय छे. "द्विगुण कक्खडा जाव द्विगुण लुक्खा पोग्गला अणता पणत्ता" अेअ प्रभाण्णे कर्कशथी लक्षणे इक्ष पर्यन्तना आठ स्पर्शो विधेना पणु आठ सूत्र अने छे. आगला १५ सूत्रोभां आ आठ सूत्रो उभेरवाथी कुल २३ सूत्र अने छे. आ प्रकारना आ २३ सूत्रो द्विगुणु इय, रस, गंध अने स्पर्शने अनुसक्षीने उडेवाभां आव्यां छे ॥ सू. ५५ ॥

॥ भीम स्थानकनो चौथो उद्देशक समाप्त ॥ २-४ ॥

श्री जैनाचार्य-जैनधर्मद्विवाकर-पूज्य श्री घासीलाल मुनिविरचित स्थानांगसूत्रनी सुधा नामनी टीकार्थनुं भीमं स्थानक समाप्त. ॥ २ ॥

छाया— द्वि समयस्थितिकाः पुद्गला अनन्ताः मद्गप्ताः ३। एष द्विगुणकणा  
 यावत् द्विगुणधुमकाः ८। द्विगुणसुरमिगन्धाः ९ द्विगुणदुरमिगन्धाः १०। द्विगु  
 णविक्रा यावत् द्विगुणमधुराः १५। द्विगुणकूर्कशा यावत् द्विगुणरूताः पुद्गला  
 अनन्ताः मद्गप्ता ॥ २३ ॥ इति ॥ सू० ५५ ॥

इति स्वप्नाङ्ग पत्रे द्वितीयस्थानस्य चतुर्थोद्देशक समाप्तः ॥४॥

इतिभीविश्वविल्यास-प्रगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशमापाकञ्चि  
 छञ्चितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनेकप्रत्यनिर्मापक-वादिमा  
 नमर्दक धीशाहृष्टप्रपति कोल्हापुरराजमदक्ष 'जैनशास्त्राचार्य'पद  
 भूषित-कोल्हापुररानगुरु शास्त्रग्रन्थकारि-जैनाचार्य-जैनधर्म-  
 दिवाकर-पूज्यभी-पासीलास्रप्रतिभिरचितायां  
 स्वप्नाङ्गसूत्रस्य सुषाल्यायां व्याख्यायां  
 द्वितीयं स्थानं सम्पूर्णम् ॥२-४॥

आश्रित करके कहे गये ये सब सूत्र २३ हो जाते हैं—इनमें "द्रव्य की  
 अपेक्षा से द्विप्रदेशिक स्कन्ध अनन्त कहे गये है " यह प्रथम सूत्र है ।  
 तथा " क्षेत्रकी अपेक्षा से द्विप्रदेशाधगाढ पुद्गल अनन्त कहे गये है "  
 ऐसा यह द्वितीय सूत्र है " दुसमपद्धिहया पोग्गला अणता पण्णता ३ "  
 दो समय की स्थितियाले पुद्गल अनन्त है—ऐसा यह सूत्र तीसरा है  
 इसी तरह से " दुगुण किण्हा जाय दुगुण सुक्किहा ८ " दुगुण कृष्ण से  
 ले कर यावत् द्विगुणशुक्ल तक ८ सूत्र हो जाते हैं । इसी तरह—"दुगुण  
 सुन्निगघा दुगुण दुग्भिगंधा १० " द्विगुण सुरमिगंध से लेकर द्विगुण  
 दुरमिगंध तक के दो दो सूत्र और होते हैं इस प्रकार से ये दस सूत्र

आ प्रथमे द्रव्य, क्षेत्र, अण अने भावने आधारि कहेलां सूत्रांनी दुस सञ्च  
 २३ याव ८ पडेवुं सूत्र आ प्रभावे छे-द्रव्यनी अपेक्षाजे द्विप्रदेशिक स्कन्ध  
 अनन्त कर्हा छे बीजु सूत्र आ प्रभावे समजवुं-क्षेत्रनी अपेक्षाजे से प्रदे  
 शाधगाढ पुद्गलौ अनन्त कर्हा छे-त्रीजु सूत्र आ प्रभावे छे-" दुसमपद्धिहया  
 पोग्गला अणता पण्णता " जे समयनी स्थितियाजां पुद्गलौ अनन्त कर्हा छे  
 जेज प्रभावे " दुगुणकिण्हा जाय दुगुणसुक्किहा " जे अणुं कृष्णपूर्ववायां  
 पुद्गलौ अनन्त कर्हा छे जेज प्रभावे जे अणुं शुक्ल पर्यन्तया वर्णवायां  
 पुद्गलौ पण् अनन्त कर्हा छे आ रीते अणुंनी अपेक्षाजे अनन्तां पांच सूत्रांने  
 तसु सूत्राभां उभेशवाधी आठ सूत्र अने छे. " दुगुण सुन्निगघा,  
 दुगुण दुग्भिगंधा १० " (४) जे अणुं सुरभीवाजा अनन्त पुद्गलौ कर्हा छे  
 (१०) जे अणुं दुग्भिगंधा अनन्त पुद्गलौ कर्हा छे आ रीते १० सूत्रा यथा.

मूलम्—तओ इंदा पणत्ता, तं जहा-णाग्निदे ठवाग्निदे  
दर्विन्दे । तओ इंदा पणत्ता, तं जहा-णाग्निदे दंसग्निदे चरिन्दिदे ।  
तओ इंदा पणत्ता, तं जहा-देविन्दे असुरिन्दे मणुस्सिन्दे ॥सू.१॥

छाया—त्रय इन्द्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नामेन्द्रः स्थापनेन्द्रः द्रव्येन्द्रः । त्रय  
इन्द्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ज्ञानेन्द्रः दर्शनेन्द्रः चारित्र्येन्द्रः । त्रय इन्द्राः प्रज्ञप्ताः,  
तद्यथा—देवेन्द्रः असुरेन्द्रः मनुष्येन्द्रः ॥ सू० १ ॥

टीका—‘ तओ इंदा ’ इत्यादि सूत्रत्रयं सुगमम् ।

नवरम्—नामेन्द्रः सचेतनस्य यस्य कस्यचिद् गोपालदारकादेः अचेतनस्य  
वा वस्तुनः प्रासादादेः ‘ इन्द्रः ’ इत्ययथार्थं नाम क्रियते । स नामेन्द्रः नाम-  
मात्रेणेन्द्र इत्यर्थः १ । स्थापनेन्द्रः—यद् इन्द्राद्यभिप्रायेण स्थाप्यते काष्ठकर्मादौ  
सद्भावस्थापनया असद्भावस्थापनया वा ‘ इन्द्रः ’ इति स्थापना क्रियते २ ।

टीकार्थ—तीन इन्द्र कहे गये हैं जैसे नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र और द्रव्येन्द्र इस  
तरह से भी तीन इन्द्र कहे गये हैं—जैसे ज्ञानेन्द्र, दर्शनेन्द्र और चारि-  
त्रेन्द्र तथा देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मनुष्येन्द्र

सचेतन जिस किसी गोपालदारक आदिका अथवा अचेतन  
प्रासाद आदि वस्तुका जो इन्द्र ऐसा नाम किया जाता है वह नाम इन्द्र है  
नामइन्द्र में जिस इन्द्र का नाम रखा गया है उस इन्द्र के गुण आदि  
उसमें नहीं होते हैं केवल व्यवहार चलाने के लिये ही यह नाम निक्षेप  
क्रिया जाता है स्थापना दो प्रकार की है एक सद्भावस्थापना और दूसरी  
असद्भावस्थापना इन्द्र आदि के अभिप्राय के वशवर्ती हुए जीव के द्वारा  
जो काष्ठ पाषाण आदि में उसके आकार की अथवा विना आकार की

धन्द्र त्रयु कद्या छे, जेभके नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र अने द्रव्येन्द्र. आ रीते  
पषु त्रयु धन्द्र कद्या छे—ज्ञानेन्द्र, दर्शनेन्द्र अने चारित्र्येन्द्र तथा षीछ रीते  
पषु त्रयु धन्द्र कद्या छे—देवेन्द्र, असुरेन्द्र अने मनुष्येन्द्र

सचेतन जे कैठ गोपालदारक आदिनुं अथवा अचेतन प्रासाद (सुवन)  
आदि वस्तुनुं जे ‘ धन्द्र ’ जेवुं नाम आपाय छे, तेने ‘ नामेन्द्र ’ कहे छे.  
नामेन्द्रभां जे धन्द्रनुं नाम आपवाभां आयु होय छे ते धन्द्रना शुषु  
आदिने सदा सद्भाव न होतो नथी, परन्तु मात्र व्यवहार अवा-  
पवाने भाटे न ते नाम आपवाभां आयुं होय छे. स्थापना जे प्रकारनी कही  
छे—(१) सद्भाव स्थापना, (२) असद्भाव स्थापना. धन्द्र आदिनी मान्यताने  
अधीन थयेला एव द्वारा कष, पाषाणु आदिभां, तेना आकारनी के अनाकारनी

## अथ तृतीय स्थान प्रारभ्यते—

~ मर्त द्वितीयं स्थानं, सम्प्रति चतुरश्रेणात्मकं तृतीयं स्थानमारभ्यते, अस्य च पूर्वस्थानेनायममिसम्बन्धः - द्वितीयस्थाने द्विस्थानप्राप्ताः माषाः प्ररूपिताः, अस्मिन्स्तु क्रमप्राप्ताः त्रिस्थानकामाषाः प्ररूप्यन्ते । तत्र द्विस्थानकस्यान्तिमोऽधेशक गताऽन्तिमसूत्रेषु सहास्य तृतीयस्थानगतप्रथमोऽधेशकप्रथमसूत्रस्यायं सम्बन्धः— द्विस्थानके चतुर्योऽधेशकस्यान्तिमसूत्रे पुद्गलधर्मा उक्ताः, पुद्गलजीवयोः परस्पर सम्बन्धादत्र प्रथमसूत्रे जीवधर्मा उच्यन्ते—

## तृतीयस्थान-प्रथम उद्देशक

द्वितीय स्थान कहा जा चुका है, अब चार उद्देशात्मक तृतीय स्थान प्रारम्भ होता है इसका द्वितीयस्थान के साथ ऐसा सम्बन्ध है कि द्वितीयस्थान में द्विस्थानप्राप्त भावों की प्ररूपणा की गई है और इस तृतीयस्थान में क्रमप्राप्त तीन स्थानवाले भावों की प्ररूपणा होती है । द्विस्थान के अन्तिम उद्देशक में गत अन्तिमसूत्र के साथ इस तृतीय स्थान के प्रथम उद्देशक के प्रथमसूत्र का ऐसा सम्बन्ध है कि द्विस्थानक के चतुर्थ उद्देशक के अन्तिम सूत्र में पुद्गलधर्मों की प्ररूपणा की गई है सो पुद्गल और जीव का परस्पर में अनादि काल से सम्बन्ध बला आ रहा है अतः अब इस स्थानक के प्रथम सूत्र में जीव धर्मों का कथन व्यवहार कर रहे हैं—( तत्रो ईदा पण्यत्ता ) इत्यादि ।

## त्रीण स्थानानां-पडोला उद्देशक

द्वितीय स्थाननी प्ररूपणा पूरी भई अब तृतीय स्थाननी प्ररूपणाने प्रारम्भ वाच्य है चार उद्देशको द्वारा सूत्रकारे तृतीय स्थाननी प्ररूपणा करी है द्वितीय स्थानमां त्रिस्थानानां पडोला शक्य ज्येवा भावोनी प्ररूपणा करणामां आवी है अबे आ तृतीय स्थानमां क्रमप्राप्त त्रयु स्थानवागा भावोनी प्ररूपणा करणामां आवेशे द्वितीय स्थानना उक्ता उद्देशकना उक्ता सूत्र साथे तृतीय स्थानना पडोला उद्देशकना पडोला सूत्रने आ प्रभावे सम्बन्ध है— द्वितीय स्थानना उक्ता उद्देशकना उक्ता सूत्रमां पुद्गल धर्मोनी प्ररूपणा करणामां आवी है पुद्गल जने सूत्रने अनादि कालधी सम्बन्ध आवेशे आवे है आ सम्बन्धने अनुलक्षीने अबे सूत्रकार आ स्थानना पडोला सूत्रमां एव धर्मोनु कथन करे है—“ तत्रो ईदा पण्यत्ता ” इत्यादि—

योगचन्द्रिका टीकायामवलोकनीयम् । ' अनुपयोगो द्रव्यमप्रधानं चेति, तत्र द्रव्यं चासाविन्द्रश्चेति द्रव्येन्द्रः ३ ॥

उक्ता नामस्थापना द्रव्येन्द्राः, ताम्प्रतं त्रिस्थानकावतारेण भावेन्द्रमाह—  
' तओ इंदा ' इत्यादि, त्रय इन्द्राः प्रज्ञप्ताः—ज्ञानेन्द्रः, दर्शनेन्द्रः, चारित्रेन्द्र इति ।  
तत्र—इन्द्रनात्-दीपनात्—परमैश्वर्याद् इन्द्र, ज्ञानेन ज्ञानस्य ज्ञाने वा इन्द्रः—परमेश्वरः  
ज्ञानेन्द्रः—सातिशयश्रुताद्यन्यतरज्ञानवशात्प्ररूपितसकलवस्तुविस्तरः श्रुतावधिमनः  
पर्यवाद्यन्यतरज्ञानधरो मुनिः, केवली वा १। एवं दर्शनेन्द्रः—क्षायिकसम्यग्दर्शनी२।

इन्द्रपद को भोगेगा उसे इन्द्र कहना यह द्रव्येन्द्र निक्षेप है । नाम, स्थापना और द्रव्य इन निक्षेपों का सविस्तर वर्णन अनुयोगद्वार की अनुयोगचन्द्रिका टीका में देखना चाहिये “ जो जीव इन्द्र के आगम का ज्ञाता है और वर्तमान में उसमें उपयोग से शून्य है ऐसा वह जीव आगम की अपेक्षा द्रव्येन्द्र है इस तरह त्रिकस्थानक के अवतार से नाम, स्थापना और द्रव्य इन्द्र कहे अब त्रिस्थानक के अवतार से भाव इन्द्र का कथन सूत्रकार करते हैं—“ तओ इंदा ” तीन इन्द्र कहे गये हैं एक ज्ञानेन्द्र, दूसरा दर्शनेन्द्र और तीसरा चारित्रेन्द्र परमेश्वर्य का जो अनुभव करता है वह इन्द्र है ज्ञान से, अथवा ज्ञान का अथवा ज्ञान में जो इन्द्र-परमेश्वर है वह ज्ञानेन्द्र है सातिशय श्रुत आदि अन्यतर ज्ञान के वश से प्ररूपित किया है सकलवस्तु का विस्तारजिसने, ऐसा श्रुत अवधि, मनः पर्यव आदि अन्यतर ज्ञान को धारण करने वाला

जे एव अविध्यमा ईन्द्रपदने लोगववानो छे तेने ईन्द्र कडेवो ज्येष्ठ द्रव्येन्द्र निक्षेप छे. नाम, स्थापना अने द्रव्य, आ निक्षेपोतु सविस्तर वर्णन अनुयोगद्वारनी अनुयोग चन्द्रिका टीकां आपनामां आंयु छे. तो ज्ञानेशु पाठकौजे ते वर्णन त्यांथी वांथी लेवुं “ जे एव ईन्द्रना आगमना ज्ञाता छे अने वर्तमान समये तेमा उपयोगथी रडित छे, ज्येवो ते एव आगमनी अपेक्षाजे द्रव्येन्द्र छे आ रीते त्रिस्थानकौने आधारे नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र अने द्रव्येन्द्रतुं कथन अर्डी पूरं थाय छे

इवे सूत्रकार भावईन्द्रतु निरूपणु करे छे—“ तओ इंदा ” ईन्द्र त्रयु कथा छे—(१) ज्ञानेन्द्र, (२) दर्शनेन्द्र अने (३) चारित्रेन्द्र परमेश्वर्यना अनुभव करनारने ईन्द्र कडे छे. ज्ञानथी, ज्ञानना अथवा ज्ञानमा जे ईन्द्र (परमेश्वर) छे, तेने ज्ञानेन्द्र कडे छे सातिशय श्रुत आदि अन्यतर ज्ञानने आधारे जेसणु सकल वस्तुनी निरूपणु करी छे ज्येवा श्रुत, अवधि, मन पर्यव आदि अन्यतर ज्ञानने धारणु करनारा मुनि अथवा केवलीने ज्ञानेन्द्र कडे छे क्षायिक



द्रव्येन्द्रः-द्रव्य-गच्छतितास्तान् पर्यायानिधि द्रव्यम्-विषयितयोरसीतमविष्य-  
 य्भावयोः कारणम्, अनुभूतविषयितभावमनुमविष्यद्विषयितभाव वा पस्तिस्पर्शः।  
 द्रव्यलक्षण सामान्यत इत्यं पौष्यम्—

“ भूतस्य भाषिनो वा, भाषस्य हि कारणं तु यत्सोके ।

सत् द्रव्यं तत्त्वैः, सचेतनाचेतनं कथितम् ॥ १ ॥ ” इति ।

तत्र सचेतन-पुरुषादि, अचेतन काष्ठादि च मनसि । एवं द्रव्यरूप इन्द्रो  
 द्रव्येन्द्रः । नामस्थापनाद्रव्याणां सविस्तरवर्णनमनुयोगद्वारासुप्रस्य मत्कृतापामनु  
 यह इन्द्र है इस प्रकार की बुद्धि से स्थापना की प्रतिष्ठा की जाती है  
 यह स्थापनेन्द्र है जो उन २ पर्यायों को प्राप्त करता है वह द्रव्य है यह  
 द्रव्य अतीत और अविष्यत् भाव का कारण होता है जिससे विवक्षित  
 भाव का पहिले अनुभव कर लिया है अथवा विवक्षित भाव का आगे  
 यह अनुभव करेगा ऐसी वस्तु द्रव्य कही गई है सामान्य से द्रव्य  
 का लक्षण ऐसा कहा गया है—( मूलस्य भाषिनो वा ) इत्यादि ।

पुरुषादि सचेतन और काष्ठादि अचेतन होता है । इस तरह द्रव्य-  
 रूप जो इन्द्र है वह द्रव्येन्द्र कहा गया है इसका अभिप्राय ऐसा है कि  
 जिस प्रकार गद्दी पर से अलग किये गये व्यक्ति को लोकम्पबहार में  
 राजा कहा जाता है और अविष्यत्काल में जिसे राज्यपद की प्राप्ति  
 होती है ऐसे सुयराज को राजा कहा जाता है उसी प्रकार से जिस जीव  
 ने पूर्व में इन्द्रपद को भोग लिया है अथवा जो जीव अविष्यत्काल में

आ ईन्द्र उ ते प्रकारनी बुद्धिधी ने स्थापना ( प्रतिष्ठा ) कथय उ तेद  
 नाम स्थापनेन्द्र उ त्वे द्रव्येन्द्रेण अथ स्पष्ट कथय निमित्ते पठेतां द्रव्य  
 कोहे शु ते समजायामां आवे उ-बुद्धी बुद्धी पथयिने प्राप्त करनार वस्तुने  
 द्रव्य कहे उ ते द्रव्य अतीत ( मूलकालिन ) अने अविष्यत्कालिन आवतु  
 कारण् कोय उ नेहे अनुभूत भावनेो मूलकालिनां अनुभव करी लीपा उ  
 अथवा अनुभूत भावनेो अविष्यत्कालिनां अनुभव करवानो उ, जेवी वस्तुने द्रव्य  
 कहेवाय उ सामान्य रीते द्रव्यनु आ प्रकारत लक्षण कहुं उ—

‘ मूलस्य भाषिनो वा ’ इत्यादि—

पुरुष आदि सचेतन कोय उ अने काष्ठादि अचेतन कोय उ आ रीते  
 द्रव्यरूप के ईन्द्र उ तेने द्रव्येन्द्र कहे उ आ कथननेो अथवा न्नीमे प्रभावे  
 उ—जेम राजगारीवी अलग कथयेल व्यक्तिने पयु कोहे अवधारणं तो  
 राजा कहे उ अने अविष्यत्कालिनां राजा जननार सुवराजने पयु राजा कहे  
 उ, जे क प्रभावे ने लवे पठेतां ईन्द्रपदने कोत्रवी लीपु कोय उ, अथवा

योगचन्द्रिका टीकायामवलोकनीयम् । ' अनुपयोगो द्रव्यमंप्रधानं चेति, तत्र द्रव्यं चासाविन्द्रश्चेति द्रव्येन्द्रः ३ ॥

उक्ता नामस्थापना द्रव्येन्द्राः, साम्प्रतं त्रिस्थानकावतारेण भावेन्द्रमाह—  
 ' तओ इंदा ' इत्यादि, त्रय इन्द्राः प्रज्ञप्ताः—ज्ञानेन्द्रः, दर्शनेन्द्रः, चारित्रेन्द्र इति ।  
 तत्र—इन्द्रनात्—दीपनात्—परमेश्वर्याद् इन्द्रः, ज्ञानेन ज्ञानस्य ज्ञाने वा इन्द्रः—परमेश्वरः  
 ज्ञानेन्द्रः—सातिशयश्रुताद्यन्यतरज्ञानवशात्प्ररूपितसकलवस्तुविस्तरः श्रुतावधिमनः  
 पर्यवाद्यन्यतरज्ञानधरो मुनिः, केवली वा १। एवं दर्शनेन्द्रः—क्षायिकसम्यग्दर्शनी २।

इन्द्रपद को भोगेगा उसे इन्द्र कहना यह द्रव्येन्द्र निक्षेप है । नाम, स्थापना और द्रव्य इन्द्र निक्षेपों का सविस्तर वर्णन अनुयोगद्वार की अनुयोगचन्द्रिका टीका में देखना चाहिये “ जो जीव इन्द्र के आगम का ज्ञाता है और वर्तमान में उसमें उपयोग से शून्य है ऐसा वह जीव आगम की अपेक्षा द्रव्येन्द्र है इस तरह त्रिकस्थानक के अवतार से नाम, स्थापना और द्रव्य इन्द्र कहे अब त्रिस्थानक के अवतार से भाव इन्द्र का कथन सूत्रकार करते हैं—“ तओ इंदा ” तीन इन्द्र कहे गये हैं एक ज्ञानेन्द्र, दूसरा दर्शनेन्द्र और तीसरा चारित्रेन्द्र परमेश्वर्य का जो अनुभव करता है वह इन्द्र है ज्ञान से, अथवा ज्ञान का अथवा ज्ञान में जो इन्द्र-परमेश्वर है वह ज्ञानेन्द्र है सातिशय श्रुत आदि अन्यतर ज्ञान के वश से प्ररूपित किया है सकलवस्तु का विस्तारजिसने, ऐसा श्रुत अवधि, मनः पर्यव आदि अन्यतर ज्ञान को धारण करने वाला

ये एव अविध्यमा इन्द्रपदने लोकावधानो छे तेने इन्द्र कडेवो अेव द्रव्येन्द्र निक्षेप छे. नाम, स्थापना अने द्रव्य, आ निक्षेपोतु सविस्तर वर्णन अनुयोगद्वारनी अनुयोग चन्द्रिका टीकाया आपनामां आण्युं छे. तो जिज्ञासु पाठकोअे ते वर्णन त्याथी वांछी लेवुं “ ये एव इन्द्रना आगमना ज्ञाता छे अने वर्तमान समये तेमा उपयोगथी रक्षित छे, अेवो ते एव आगमनी अपेक्षाअे द्रव्येन्द्र छे आ रीते त्रिस्थानकोने आधारे नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र अने द्रव्येन्द्रतु कथन अर्द्धी पूरं थाय छे

इवे सूत्रकार भावइन्द्रतु निरूपणु करे छे—“ तओ इंदा ” इन्द्र त्रयु कहेवा छे—(१) ज्ञानेन्द्र, (२) दर्शनेन्द्र अने (३) चारित्रेन्द्र परमेश्वर्यने अनुभव करनारने इन्द्र कडे छे. ज्ञानथी, ज्ञानने अथवा ज्ञानमां ये इन्द्र (परमेश्वर) छे, तेने ज्ञानेन्द्र कडे छे सातिशय श्रुत आदि अन्यतर ज्ञानने आधारे जेभणु सकल वस्तुनी प्ररूपणु करी छे अेवा श्रुत, अवधि, मन पर्यव आदि अन्यतर ज्ञानने धारणु करनारा मुनि अथवा केवलीने ज्ञानेन्द्र कडे छे क्षायिक

દ્રવ્યેન્દ્રા-દ્રવતિ-ગણતિતાસ્તાન્ પર્યાયાનિતિ દ્રવ્યમ્-વિવક્ષિતયોરતીતમવિપ્ય  
 વૃમાવયોઃ કારણમ્, મનુષ્યવિવક્ષિતમાવમનુમવિપ્યદ્રિવસિતમાય વા વસ્તિત્વસ્વર્ભઃ  
 દ્રવ્યસક્ષણં સામાન્યસ્ય ઇત્યં ઘોષ્યમ્—

“ મૂલસ્ય માવિનો વા, માવસ્ય દ્વિ કારણં તુ યસ્લોકે ।

તત્ દ્રવ્ય સ્વરૂપે, સચેતનાચેતન કથિતમ્ ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

તત્ર સચેતન-પુરુષાદિ, અચેતનં કાષ્ઠાદિ ષ મવતિ । एवं દ્રવ્યરૂપ इन्द्रो  
 દ્રવ્યેન્દ્રા । નામસ્થાપનાદ્રવ્યાર્થા સવિસ્તરર્થર્ષનમનુયોગદ્વારસૂત્રસ્ય મત્કૃતાયામતુ

વહ इन्द्र है इस प्रकार की बुद्धि से स्थापना की प्रतिष्ठा की जाती है  
 वह स्थापनेन्द्र है जो उन २ पर्यायों को प्राप्त करता है वह द्रव्य है यह  
 द्रव्य अतीत और भविष्यत् भाव का कारण होता है जिससे विवक्षित  
 भाव का पहिले अनुभव कर लिया है अथवा विवक्षित भाव का आगे  
 वह अनुभव करेगा ऐसी वस्तु द्रव्य कही गई है सामान्य से द्रव्य  
 का लक्षण ऐसा कहा गया है- ( मूलस्य भाविनो वा ) इत्यादि ।

पुरुषादि सचेतन और काष्ठादि अचेतन होता है । इस तरह द्रव्य  
 रूप जो इन्द्र है वह द्रव्येन्द्र कहा गया है इसका अभिप्राय ऐसा है कि  
 जिस प्रकार गद्दी पर से अलग किये गये व्यक्ति को लोकम्बबहार, में  
 राजा कहा जाता है और भविष्यत्काल में जिसे राज्यपद की प्राप्ति  
 होती है ऐसे युधराज को राजा कहा जाता है वसी प्रकार से जिस जीव  
 ने पूर्व में इन्द्रपद को भोग लिया है अथवा जो जीव भविष्यत्काल में

આ ઇન્દ્ર છે તે પ્રકારની બુદ્ધિથી તે સ્થાપના ( પ્રતિષ્ઠા ) કરાવે છે, તેજ  
 નામ સ્થાપનેન્દ્ર છે એવે દ્રવ્યેન્દ્રને અથ સ્પષ્ટ કરવા નિમિત્તે પહેલાં દ્રવ્ય  
 એટલે શું તે સમજાવવામાં આવે છે-બુદ્ધિ બુદ્ધિ પદ્ધિને પ્રાપ્ત કરનાર વસ્તુને  
 દ્રવ્ય કહે છે તે દ્રવ્ય અતીત ( મૂલકાલિન ) અને ભવિષ્યકાલિન ભાવનુ  
 કારણ હોય છે એવું અમુક ભાવનેા મૂલકાળમાં અનુભવ કરી લીધા છે  
 અથવા અમુક ભાવનેા ભવિષ્યમાં અનુભવ કરવાનેા છે એવી વસ્તુને દ્રવ્ય  
 કહેવાય છે સામાન્ય રીતે દ્રવ્યનુ આ પ્રકારનુ લક્ષણ કહું છે—

‘ મૂલસ્ય માવિનો વા ’ ઈત્યાદિ—

પુરુષ આદિ સચેતન હોય છે અને કાષ્ઠાદિ અચેતન હોય છે આ રીતે  
 દ્રવ્યરૂપ ને ઇન્દ્ર છે તેને દ્રવ્યેન્દ્ર કહે છે આ કથનનેા ભાવાય નીચે પ્રમાણે  
 છે—એમ શાળગાદીથી અત્ર કશમેલ પછિને પવ્વ દેહો ભવકારમા તે  
 શાલ ન કહે છે અને ભવિષ્યમાં શાલ જનનાર યુવરાજને પવ્વ શાલ ન કહે  
 છે, એ જ પ્રમાણે ને એવે પહેલાં ઇન્દ્રપદને કોત્રવી લીધુ હોય છે, અથવા

त्रयाणामप्येषां देवेन्द्रादीनां वैक्रियकरणादिशक्तिसंपन्नत्वादिन्द्रत्वमिति सामान्यतो विकुर्वणा सूत्रत्रयमाह—

मूलम्-तिविहा विउव्वणा पणत्ता तं जहा-वाहिरए पो-  
ग्गले परियाइत्ता एगा विउव्वणा १, वाहिरए पोग्गले अपरिया  
इत्ता एगा विउव्वणा २, वाहिरए पोग्गले परियाइत्तावि अप  
रियाइत्तावि एगा विउव्वणा ३।१। तिविहा विउव्वणा पणत्ता,  
तं जहा-अवभंतरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विउव्वणा १,  
अवभंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विउव्वणा २, अवभंतरए  
पोग्गले परियाइत्तावि अपरियाइत्तावि एगा विउव्वणा ३ । २ ।  
तिविहा विउव्वणा पणत्ता तं जहा-वाहिरवभंतरए पोग्गले  
परियाइत्ता एगा विउव्वणा१, वाहिरवभंतराए पोग्गले अपरि  
याइत्ता एगा विउव्वणा२, वाहिरवभंतरए पोग्गले परियाइत्तावि  
अपरियाइत्तावि एगा विउव्वणा ३ ।३। सू० २ ॥

छाया-त्रिविधा विकुर्वणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-वाह्यान पुद्गलान् पर्यादाय एका  
विकुर्वणा १, वाह्यान पुद्गलान् अपर्यादाय एका विकुर्वणा २, वाह्यान पुद्गलान्  
पर्यादायापि अपर्यादायापि एका विकुर्वणा ३ । २ । त्रिविधा विकुर्वणा प्रज्ञप्ता,  
तद्यथा-आभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय एका विकुर्वणा १, आभ्यन्तरान् पुद्गलान्  
अपर्यादाय एका विकुर्वणा२, आभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि  
एका विकुर्वणा ३ ।२। त्रिविधा विकुर्वणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-वाह्यभ्यन्तरान् पुद्गलान्  
पर्यादाय एका विकुर्वणा१, वाह्यभ्यन्तरान् पुद्गलान् अपर्यादाय एका विकु-  
र्वणा२, वाह्यभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि एका विकुर्वणा ३।३॥

इन तीनों देवेन्द्रादिकों में वैक्रिय करने की शक्ति से संपन्नता रहती  
है इसलिये इनमें इन्द्रता है इसी बात को लेकर अब सूत्रकार सामान्य-  
रूप से विकुर्वणा संबंधी तीन सूत्रकहते हैं—( तिविहा विउव्वणा  
पणत्ता ) इत्यादि ।

उपर्युक्त त्रये प्रकारना धन्दो विकुर्वणा शक्तिवाणा छाय छे. तेथी न  
तेथोभां धन्दता छे अे न स भधनी अपेक्षाअे डवे सूत्रकार सामान्य रूपे  
विकुर्वणा स भधी त्रये सूत्रो कडे छे—“ तिविहा विउव्वणा पणत्ता ” इत्यादि.

ધારિત્રેન્દ્ર—યથાલ્પાત્તવારિષ્ઠઃ ૩ । एतेषां च भावेन्द्रता सकलभाषप्रधानक्षायिक  
कलध्वजेन विवक्षितक्षायोपशमिकलध्वजेन वा भावेन, यथा—गावतः परमार्थतः इन्द्र  
त्वात्-सकलसंसार्यमाप्त्वापूर्वगुणलक्ष्मीलक्षणपर्यैश्वर्ययुक्तत्वाद् भावेन्द्रता विज्ञेयेति ३ ।

ઉક્તમાખ્યાત્મિકૈશ્વર્યાપેક્ષયા ભાવેન્દ્રૌવિચ્ચમ્ । અથ વાલ્કેશ્વર્યાપેક્ષયા તદે  
વાદ—‘ તઓ રૂદા ’ ઇત્યાદિ, સ્પષ્ટ, નવર દેવો—વૈમાનિકા રુવેડ્યોતિષ્ક વૈમા  
નિકા ણા તેપામિન્દ્રા દેવેન્દ્રાઃ ૧ । અસુગ —મવનપતિવ્યન્તરા ણા, તેપામિન્દ્રા—  
અસુરેન્દ્રઃ ૨ મનુષ્યેન્દ્રઃ—લક્ષ્મણસ્પર્ષાદિરિતિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

મુનિ યા કેલ્લી જ્ઞાનેન્દ્ર હૈ ક્ષાયિક સમ્પગ્દ્ઝાનવાલા જીવ વ્ઝાનેન્દ્ર હૈ  
યથાલ્પાત્ત વારિષ્ઠશાલી જીવ વારિષ્ઠેન્દ્ર હૈ इनमें जो भावेन्द्रता है वह  
सकलभाषप्रधान क्षायिक भाव से अथवा विवक्षित क्षायोपशमिक भाव  
से अथवा परमार्थतः सकल संसारी जीवों द्वारा अप्राप्त अपूर्व गुणलक्ष्मी  
रूप ऐश्वर्य युक्त होने से है ऐसा जानना चाहिये ३ इस प्रकार यह  
भावेन्द्रता आख्यात्मिक ऐश्वर्य की अपेक्षा तीन प्रकार की कही गई है  
अथ वाल्क्य ऐश्वर्य की अपेक्षा से इन्द्रता सूत्रकार कहते हैं—“तओ रूदा”  
इत्यादि सूत्र की व्याख्या सुगम है देव पद से यहाँ उद्योतिष्कदेव और  
वैमानिक देव गृहीत हुए हैं इनका जो इन्द्र है वह देवेन्द्र है असुरशब्द  
से भवनपतिविशेष अथवा सुरप्रतिषेध से भवनपति और व्यन्तरदेव  
से गृहीत हुए हैं इनका जो इन्द्र है वह असुरेन्द्र है मनुष्येन्द्र से लक्ष-  
वर्ती आदि गृहीत हुए हैं ॥ सू० १ ॥

અમ્બુ શનવાળા ભવને ઈન્દ્રેન્દ્ર કહે છે યથાલ્પાત્ત વારિષ્ઠશાલી ભવને  
વારિષ્ઠેન્દ્ર કહે છે એમાં જે ભાવેન્દ્રતા કહી છે તે સકલ ભાષપ્રધાન ક્ષાયિક  
ભાવની અપેક્ષાએ અથવા વિવક્ષિત ક્ષાયોપશમિક ભાવની અપેક્ષાએ છે  
અથવા જે અપૂર્વ ગુણલક્ષ્મીરૂપ ઐશ્વર્યની પ્રાપ્તિ માટે ભાગના સંસારી ભવો  
કરી શકતા નથી તે ઐશ્વર્યની પ્રાપ્તિ તેમણે કરી હોય છે, તે દૃષ્ટિએ પણ  
તેમનામાં ભાવેન્દ્રતા સભવી શકે છે તે ભાવેન્દ્રતાના ઐશ્વર્યની અપેક્ષાએ  
ઉપયુક્ત ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે

હવે સૂત્રકાર બાદ્ય ઐશ્વર્યની અપેક્ષાએ ઈન્દ્રતાનુ કથન કરે છે—  
“ તઓ રૂદા ” ઇત્યાદિ સૂત્રની વ્યાખ્યા સરળ છે ‘ દેવ ’ પદથી અહીં  
ઉદ્યોતિષ્ક દેવ અને વૈમાનિક દેવ બુદ્ધિન યથા છે, તેમના ઈન્દ્રને રૂવેન્દ્ર કહે  
છે અસુર શબ્દ દ્વારા ભવનપતિ વિશેષ અથવા સુરપ્રતિષેધ દ્વારા ભવનપતિ  
અને વ્યન્તર દેવોને શ્રદ્ધા સ્વરૂપામાં આજ્ઞા છે, અને તેમના ઈન્દ્રને અસુરેન્દ્ર  
કહેવામાં આવે છે લક્ષ્મણસ્પર્ષાદિને મનુષ્યેન્દ્ર કહે છે ॥ સૂ ૧ ॥

त्रयाणामप्येषां देवेन्द्रादीनां वैक्रियकरणादिशक्तिसंपन्नत्वादिन्द्रत्वमिति सामान्यतो विकुर्वणा सूत्रत्रयमाह—

मूलम्-तिविहा विउव्वणा पणत्ता तं जहा-वाहिरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विउव्वणा १, वाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विउव्वणा २, वाहिरए पोग्गले परियाइत्तावि अपरियाइत्तावि एगा विउव्वणा ३।१। तिविहा विउव्वणा पणत्ता, तं जहा-अव्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विउव्वणा १, अव्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विउव्वणा २, अव्भंतरए पोग्गले परियाइत्तावि अपरियाइत्तावि एगा विउव्वणा ३।२। तिविहा विउव्वणा पणत्ता तं जहा-वाहिरव्भंतरए पोग्गले परियाइत्ता एगा विउव्वणा १, वाहिरव्भंतरए पोग्गले अपरियाइत्ता एगा विउव्वणा २, वाहिरव्भंतरए पोग्गले परियाइत्तावि अपरियाइत्तावि एगा विउव्वणा ३।३। सू० २ ॥

छाया-त्रिविधा विकुर्वणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-वाह्यान पुद्गलान् पर्यादाय एका विकुर्वणा १, वाह्यान पुद्गलान् अपर्यादाय एका विकुर्वणा २, वाह्यान पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि एका विकुर्वणा ३।२। त्रिविधा विकुर्वणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-आभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय एका विकुर्वणा १, आभ्यन्तरान् पुद्गलान् अपर्यादाय एका विकुर्वणा २, आभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि एका विकुर्वणा ३।२। त्रिविधा विकुर्वणा प्रज्ञप्ता, तद्यथा-वाह्यभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादाय एका विकुर्वणा १, वाह्यभ्यन्तरान् पुद्गलान् अपर्यादाय एका विकुर्वणा २, वाह्यभ्यन्तरान् पुद्गलान् पर्यादायापि अपर्यादायापि एका विकुर्वणा ३।३॥

इन तीनों देवेन्द्रादिकों में वैक्रिय करने की शक्ति से संपन्नता रहती है इसलिये इनमें इन्द्रता है इसी बात को लेकर अब सूत्रकार सामान्यरूप से विकुर्वणा संबंधी तीन सूत्रकहते हैं—( तिविहा विउव्वणा पणत्ता ) इत्यादि ।

उपर्युक्त त्रये प्रकारना धन्द्रे विकुर्वणा शक्तिवाणा डाय छे तेथी न तेओभां धन्द्रता छे अ न संधनी अपेक्षाये डवे सूत्रकार सामान्य रूपे विकुर्वणा संधी त्रय सत्रे कहे छे—“ तिविहा विउव्वणा पणत्ता ” इत्यादि.

ટીકા—'ત્રિવિદ્યા' इत्यादि सूत्रप्रय सुगमम् ।

નયર-વિકૃર્ષતે इति विकृषणा विविधरूपादि करणम् । सा त्रिविधा, तपारि-  
बाह्यान्-मन्वाणीय शरीरानवगाहक्षेत्रमदेशवर्तिनः पुद्गलान्-पर्यादाय-वैक्रिय  
समुद्घातेन गृहीत्वा एका-मथमा विकृषणा क्रियत १। पूर्वोक्तस्वरूपान् पुद्गलान्  
अपर्यादाय अगृहीत्वैव या विकृषणा मन्वाधारणीयरूपैर साऽन्या २। यत्पुनर्मन्वा  
णीयस्यैव किञ्चिद्विशेषमसिपादन सा पर्यादायाऽपि अपर्यादायापि क्रियते इति  
तृतीया विकृषणा व्यपदिश्यते ३। अथवा विकृषणा-विमूपाकरणम्, तत्र बाह्य  
वृगलान् आमरणादीन् पर्यादाय १, अपयादाय-बाह्यान् आमरणादीन् अगृहीत्वा

ટીકાર્થ-વિવિધ પ્રકાર કે રૂપાદિકોં કા કરના હસકા નામ વિકૃર્ષણા છે  
યહ વિકૃર્ષણા ત્રીન પ્રકાર કી કહી ગઈ છે એક વિકૃર્ષણા યહ છે જિસમે  
મન્વાધારણીયશરીર સે અનવગાહ ક્ષેત્રપ્રદેશ મેં મર્નો પુત્રલોં કો વૈક્રિય  
સમુદ્ઘાત ઢારા પ્રહણ કરકે ક્રિયા જાના છે તથા વૃસરી વિકૃર્ષણા યહ  
છે જો પૂર્વાક્ત સ્વરૂપવાલે પુત્રલોં કો બિના પ્રહણ કરકે હી કી જાતી છે  
એસી યહ વિકૃર્ષણા મન્વાધારણીયરૂપ હી હોતી છે ૨ ત્રીસરી વિકૃર્ષણા  
એસી છે કિ જો પૂર્વાક્ત સ્વરૂપવાલે પુત્રલોં કો પ્રહણ કરકે મી ઓર નહીં  
પ્રહણ કરકે બી કી જાતી છે ૩, હસ પ્રકાર કી યહ વિકૃર્ષણા મન્વાધાર  
ણીય શરીર મેં હી વિશેષ લક્ષણ કરતેવાલી હોતી છે અથવા વિકૃર્ષણા  
હસ પ્રકાર સે મી ત્રીન પ્રકાર કી હોતી છે-યહાં વિકૃર્ષણા શામ્બુ કા મર્થ  
શરીરકો વિમૂપાયુક્ત કરનાઠે।આમરણાદિ રૂપવાહ્ય પુત્રલોંકો પ્રહણ કરકે

વિવિધ પ્રકારના રૂપોનુ નિર્માણ કરવું તેનુ નામ વિકૃષણા છે. તે વિકૃ-  
ષણા ત્રણ પ્રકારની ઠઠી છે પહેલા પ્રકારની વિકૃષણા એ છે કે જે ભવ  
ધારણીય શરીર દ્વારા અનવગાહ ક્ષેત્રવર્તી પુદ્ગલોને વૈક્રિય સમુદ્ઘાત દ્વારા  
બદલુ કરીને કરંવામાં આવે છે તથા બીજા પ્રકારની વિકૃષણા એ છે કે જે  
પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા પુદ્ગલોને બદલુ કર્યા વિના જ કરવામાં આવે છે એવી તે  
વિકૃષણા મન્વાધારણીય રૂપ જ હોય છે ત્રીજા પ્રકારની વિકૃષણા એવી છે કે  
જે પૂર્વોક્ત સ્વરૂપવાળા પુદ્ગલોને બદલુ કરીને પણ યામ છે અને બદલુ કર્યા  
વિના પણ યામ છે આ પ્રકારની આ વિકૃષણા મન્વાધારણીય શરીરમાં જ  
વિશેષતા લક્ષણ કરનારી હોય છે

અથવા-વિકૃષણાના ત્રીયે પ્રકારે ત્રણ પ્રકાર પણ કહ્યા છે-જહીં  
વિકૃષણા એટલે શરીરને વિમૂષિત કરવું, આ પ્રકારને અથ સમજવો (૧)  
આમરણાદિ રૂપ બાહ્ય પુદ્ગલોને બદલુ કરીને શરીરને વિમૂષિત કરવું આ  
પહેલા પ્રકારની વિકૃષણા છે (૨) બાહ્ય આમરણાદિને બદલુ કર્યા વિના જ

केशनखसमारचनादिनैव विभूषा क्रियते साऽन्या २। तृतीया तुभ्यथेति । अथवा-  
अपर्यादाय बाह्यपुद्गलानिति कृकलाससर्पादीनां विकुर्वणा, तत्र कृकलासस्य रक्त-  
पीतादि वर्णपरिवर्तनरूपा, सर्पस्य फणादि करणलक्षणेति ३। द्वितीयसूत्रमप्येवमेव,  
नत्रं तत्र आभ्यन्तरपुद्गलान्-भवधारणीयेनौदारिकेणवा शरीरेण ये क्षेत्रप्रदेशा  
अवगाढास्तेष्वेव ये वर्तन्ते तान् पर्यादायेति व्याख्येयम् । विभूषापक्षे तु-आभ्य-  
न्तरपुद्गलान् निष्ठीवनादीन् पर्यादाय नेत्रादीनां मलाद्यपनयनेन विभूषाकरणम् ।

शरीरको विभूषित करना यह प्रथम प्रकार की विकुर्वणा है । तथा बाह्य  
आभरणादिकों को विना ग्रहण किये ही केश नख आदि कों की समा  
रचना द्वारा ही शरीर को विभूषित करना यह दूसरी विकुर्वणा है  
तृतीय प्रकार की विकुर्वणा दोनों प्रकार से होती है । अथवा-कृकलास  
-गिरधौला और सर्प आदिकों की जो विकुर्वणा होती है वह बाह्य  
पुद्गलों को विना ग्रहण किये ही होती है । कृकलास में रक्तपीत आदि  
वर्णों के परिवर्तनरूप यह विकुर्वणा होती है और सर्प में फणा आदि  
करनेरूप यह विकुर्वणा होती है द्वितीय सूत्रकी व्याख्या भी इसी प्रकार  
से है-विशेषता केवल ऐसी ही है भवधारणीय शरीर के द्वारा अथवा  
औदारिक शरीर के द्वारा जो क्षेत्रप्रदेश अवगाढ हैं उनमें ही जो अभ्य-  
न्तर पुद्गल मौजूद हैं उनको लेकर यह विक्रिया-विकुर्वणा होती है ।  
इस प्रकार से यहां द्वितीय सूत्र में व्याख्या करनी चाहिये विभूषा पक्ष  
में आभ्यन्तर पुद्गल जो निष्ठीवन आदिक हैं उनको तथा नेत्र आदिकों

केश, नख आदिनी सन्वट द्वारा न शरीरने विभूषित करवुं, आ भील प्रका-  
रनी विकुर्वणा छे (३) त्रील प्रकारनी विकुर्वणा उपरनी अन्ने रीतना सम-  
न्वयधो थाय छे अथवा-काचिडा, सर्प आदिनी ने विकुर्वणा थाय छे ते  
ते बाह्य पुद्गलाने अक्षु कर्था विना न थाय छे, काचिडाभां लाल, पीला आदि  
वर्णना परिवर्तन इय आ विकुर्वणा होय छे, अने सर्पभां इष्टा आदि  
इलाववा इय आ विकुर्वणा होय छे भील सूत्रनी व्याख्या पद्य आ प्रका-  
रनी न छे, विशेषता केवण अटली न छे छे-भवधारणीय शरीर-द्वारा अथवा  
औदारिक शरीर द्वारा ने क्षेत्रप्रदेश अवगाढ होय छे तेभां ने ने आभ्यन्तर  
पुद्गलाने मौजूद होय छे, तेभने अक्षु करीने आ विक्रिया ( विकुर्वणा ) थाय  
छे, आ प्रमांछे अर्डी भील सूत्रनी व्याख्या करवी लोछंछे विभूषा पक्षभां  
( शरीरने विभूषित करवा, इय विकुर्वणानी अपेक्षाछे ) आभ्यन्तर पुद्गल ने  
निष्ठीवन आदिक छे तेभने तथा नेत्र आदिकाना भेदने इर करीने शरीरने



अपयौदाय आभ्यन्तरानिति याद्यप्युद्गलान् पर्यादायेत्यर्थः । तृतीयपक्षे तु बाह्याभ्यन्तरपुद्गलयोगन विभूपाकरणं विद्येयमिति । तथाहि—उभयेषामुपादानाद् भवपारणीयनिष्पादनं, तदनन्तरं तस्यैव केशादिरचन च १, अनादानाच्चिरविकृति तस्यैव मुख्यादिविकारकरणम् २, उभयतस्तु बाह्याभ्यन्तराणामनमिमतानामादानतः, अमिमतानां घानादानतोऽनमिमतस्य भवपारणीयस्य वैक्रियस्य चेत्युभयशरीरस्य रचनामिति ३ ॥ सू० २ ॥

के मल को दूर करके शरीरको विभूपायुक्त करना होता है । आभ्यन्तर पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करना इसका नाम अपयौदान है और बाह्य पुद्गलों को ग्रहण करना इसका नाम पर्यादान है तथा तृतीय पक्षमें बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों के योग से विभूषित करना होता है ऐसा जानना चाहिये । बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों के उपादान से भवपारणीय शरीरका निष्पादन होना और तदनन्तर उसीके केशादिकों की रचना होना यह प्रथम प्रकारकी विकृष्ट्यणा है, चिरकाल से विकृष्टित शरीर के मुख्यादिकों का विकाररूप करना इसमें बाह्य और आभ्यन्तर पुद्गलों का अनादान होता है, यह द्वितीय प्रकार की विकृष्ट्यणा है । तृतीय प्रकारकी विकृष्ट्यणामें ऐसा होता है कि अनमिमत अनिच्छिता बाह्या आभ्यन्तर पुद्गलों का आदान होता है और अनमिमत (मान्य) उनका अनादान होता तथा अनमिमत (अमान्य) भवपारणीय शरीर की और वैक्रिय शरीरकी रचना होती है यह तृतीय प्रकारकी विकृष्ट्यणा है ॥ सू० २ ॥

विभूषित कर्वाभां आवे छे आभ्यन्तर पुद्गलाने अदृश्य न कर्वा तेनु नाम अपयौदान छे अने बाह्य पुद्गलाने अदृश्य कर्वा तेनु नाम पर्यादान छे तथा त्रीज प्रकारनी विकृष्ट्या बाह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलाना योज्यो शरीरने विभूषित कर्वाइय होय छे जेम समञ्जसुं बाह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलाना उपादानधी भवपारणीय शरीरनु निष्पादन (निर्माण) धनुं अने त्वाएत्राह तेना केशादिकानी रचना धवी, ते प्रथम प्रकारनी विकृष्ट्या छे चिरकालधी विकृष्टित शरीरना मुआदिकेभां विकार उत्पन्न कर्वाइय बाह्य अने आभ्यन्तर पुद्गलानु अनादान बाह्य छे आ त्रीज प्रकारनी विकृष्ट्या छे त्रीज प्रकारनी विकृष्ट्याभां जेनु अने छे के अनमिमत (अमान्य) बाह्य आभ्यन्तर पुद्गलानु आदान बाह्य छे अने अनमिमत (मान्य) बाह्य आभ्यन्तर पुद्गलानु अनादान बाह्य छे तथा अनमिमत (अमान्य) भवपारणीय शरीरनी अने वैक्रिय शरीरनी रचना बाह्य छे, आ त्रीज प्रकारनी विकृष्ट्या छे ॥ सू० २ ॥

उक्ता विकुर्वणा, सा च नारकाणामपि भवतीति त्रिस्थानकेन नारकान्  
निरूपयति—

मूलम्—तिविहानेरइया पणत्ता, तं जहा--कइसंचिया, अ-  
कइ संचिया, अवत्तव्वसंचिया । एवमेगिंदियवज्जा जाव वेसा-  
णिया ॥ सू० ३ ॥ .

छाया—त्रिविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कतिसंचिताः, अकतिसंचिताः,  
अवक्तव्यकसंचिताः । एवमेकेन्द्रियवर्जा यावद्वैमानिकाः ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ त्रिविहा ’ इत्यादि सुगमम् । नवरं—कति शब्दश्चान्यत्र प्रश्नवि-  
शिष्ट संख्यावाचकतया रूढोऽपीह संख्यामात्रे द्रष्टव्यः । तत्र नैरयिकाः—कतीति-  
संख्याता द्वयादि संख्यावन्तः ते च एकैकसमये ये उत्पन्नाः सन्तः संचिताश्च

ऊपर कही गई यह विकुर्वणा नारकों को भी होती है अतः अब  
सूत्रकार तीन स्थानों से नारकों की प्ररूपणा करते हैं —

‘ त्रिविहा नेरइया पणत्ता ’ इत्यादि ।

इस सूत्र का अर्थ सुगम है परन्तु जो इसमें विशेषता है वह इस  
प्रकार से है—यद्यपि कति शब्द दूसरी जगह प्रश्न विशिष्ट संख्या के  
कहने में रूढ है—परन्तु वह यहां संख्यामात्र में कहा गया है प्रश्नकर्ताने  
जो ऐसा पूछा है कि नैरयिक कितने कहे हैं तो उत्तर में ऐसा कहा  
गया है कि नैरयिक तीन प्रकार के कहे गये हैं इनमें एक हैं कतिसं-  
चित और दूसरे हैं अकति संचित तथा तीसरे हैं अवक्तव्यक संचित;  
कति संचित का तात्पर्य ऐसा है कि एक समय में उत्पन्न होकर जो

ऊपर जेवी वात करवामां आवी छे ते विकुर्वणा नारकेमा पणु थाय  
छे तेथी सूत्रकार तणु स्थानेनी अपेक्षाजे नारकेनी प्रइपणा करे छे—

“ त्रिविहा नेरइया पणत्ता ” इत्यादि—

आ सूत्रनेो अर्थ सरण छे, परन्तु तेमां आ प्रकारनी विशेषता छे—  
जे के ‘ कति ’ यह प्रश्नविशिष्ट सञ्चयाने प्रकट करवाने भाटे सामान्य रीते  
तो वपराय छे, परन्तु अहीं तेनेो प्रयोग सञ्चयानात्रने प्रकट करवा भाटे यथे छे.

प्रश्न—“ नारक केटला प्रकारना कइया छे ? ”

उत्तर—नारक तणु प्रकारना कइया छे, ते तणु प्रकारे नीचे प्रमाणे छे  
(१) कतिसंचित, (२) अकतिसंचित अने (३) अवक्तव्यक संचित.

અપર્ણાદાય આમ્યન્તરાનિતિ યાદ્યપુદ્ગલાન્ પર્યાદાયેસ્પર્ય । તૃતીયપક્ષે તુ ષાઘામ્યન્તરપુદ્ગલયોગેન વિમૂપાકરણ વિદ્યેયમિતિ । તથાદિ-ઠમયપામુપાદાનાદ્ મથ ધારણીપનિપ્પાદનં, તદનન્તરં તસ્યૈવ કેશાદિરધન ષ ૧, અનાદાનાચ્ચિરચિકુર્વિત્ તસ્યૈષ મુસ્તાદિવિકારકરણમ્ ૨, ઠમયતસ્તુ ષાઘામ્યન્તરાપ્પામનમિમતાનામાદા નતાઃ, અમિમતાનાં ષાનાદાનતોઽનમિમતસ્ય મથધારણીપસ્ય વૈક્રિયસ્ય ચેત્યુમપ ષરીરસ્ય રચનામિતિ ૩ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

કે મલ કો દૂર કરકે શરીરકો વિમૂપાયુક્ત કરના હોતા હૈ । આમ્યન્તર પુદ્ગલોકો ગ્રહણ નહીં કરના હસ્તકા નામ અપર્ણાદાન હૈ ઓર ષાઘ પુદ્ગલો કો ગ્રહણ કરના હસ્તકા નામ પર્યાદાન હૈ તથા તૃતીય પક્ષમે ષાઘ ઓર આમ્યન્તર પુદ્ગલો કો યોગ સે વિમૂપિત કરના હોતા હૈ એસા જામના ષાહિયે । ષાઘ ઓર આમ્યન્તર પુદ્ગલો કો ઉપાદાન સે મથધાર ણીય શરીરકા નિપ્પાદન હોના ઓર તદનન્તર ઇસીકે કેશાદિકો કી રચના હોના યહ પ્રથમ પ્રકારકી વિકુર્ષણા હૈ, ચિરકાલ સે ચિકુર્વિત શરીર કો મુસ્તાદિકો કા વિકારરૂપ કરના હસ્તમે ષાઘ ઓર આમ્યન્તર પુદ્ગલો કા અનાદાન હોતા હૈ, યદ્વિતીન્વ પ્રકાર કી વિકુર્ષણા હૈ । તૃતીય પ્રકારકી વિકુર્ષણામે એસા હોતા હૈ કિ અનમિમત અનિષ્ટિતા ષાઘા આમ્યન્તર પુદ્ગલો કા આદાન હોતા હૈ ઓર અમિમત (અમાન્ય) ઇનકા અનાદાન હોતા તથા અનમિમત (અમાન્ય) મથ ધારણીય શરીર કી ઓર વૈક્રિય શરીરકી રચના હોતી હૈ યહ તૃતીય પ્રકારકી વિકુર્ષણા હૈ ॥ સૂ ૨ ॥

વિમૂપિત કરવામાં આવે છે આમ્યન્તર પુદ્ગલોને શરૂ કરવા તેનું નામ અપર્ણાદાન છે અને ષાઘ પુદ્ગલોને શરૂ કરવા તેનું નામ પર્યાદાન છે તથા ત્રીજા પ્રકારની વિકુર્ષણા ષાઘ અને આમ્યન્તર પુદ્ગલોના યોગથી શરીરને વિમૂપિત કરવારૂપ હોય છે, એમ સમજવું ષાઘ અને આમ્યન્તર પુદ્ગલોના ઉપાદાનથી અવ ધારણીય શરીરનું નિપ્પાદન (નિર્માણ) થવું અને ત્યારબાદ તેના કેશાદિકોની રચના થવી તે પ્રથમ પ્રકારની વિકુર્ષણા છે ચિરકાળથી ચિકુર્વિત શરીરના મુખાદિકોમાં વિકાર ઉત્પન્ન કરવામાં ષાઘ અને આમ્યન્તર પુદ્ગલોનું અનાદાન ષાઘ છે આ ત્રીજા પ્રકારની વિકુર્ષણા છે ત્રીજા પ્રકારની વિકુર્ષણામાં એવું બને છે કે અનમિમત (અમાન્ય) ષાઘ આમ્યન્તર પુદ્ગલોનું આદાન ષાઘ છે અને અનમિમત (અમાન્ય) ષાઘ આમ્યન્તર પુદ્ગલોનું અનાદાન ષાઘ છે તથા અનમિમત (અમાન્ય) અવધારણીય શરીરની અને વૈક્રિય શરીરની રચના ષાઘ છે, આ ત્રીજા પ્રકારની વિકુર્ષણા છે ॥ સૂ ૨ ॥

उक्ता विकृर्वणा, सा च नारकाणामपि भवतीति त्रिस्थानकेन नारकान्  
निरूपयति—

मूलम्—तिविहानेरइया पणत्ता, तं जहा--कइसंचिया, अ-  
कइ संचिया, अवक्तव्यसंचिया । एवसेगिंदियवज्जा जाव वेसा-  
णिया ॥ सू० ३ ॥ .

छाया—त्रिविधा नैरयिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कतिसंचिताः, अकतिसंचिताः,  
अवक्तव्यकसंचिताः । एवमेकेन्द्रियवर्जा यावद्वैमानिका ॥ सू० ३ ॥

टीका—' तिविहा ' इत्यादि सुगमम् । नवरं—कति शब्दथान्यत्र प्रश्नवि-  
शिष्ट संख्यावाचकतया रूढोऽपीह संख्यामात्रे द्रष्टव्यः । तत्र नैरयिकाः—कतीति-  
संख्याता द्वयादि संख्यावन्तः ते च एकैकममये ये उत्पन्नाः सन्तः संचिताश्च

ऊपर कही गई यह विकृर्वणा नारकों को भी होती है अतः अब  
सूत्रकार तीन स्थानों से नारकों की प्ररूपणा करते हैं —

' तिविहा नेरइया पणत्ता ' इत्यादि ।

इस सूत्र का अर्थ सुगम है परन्तु जो इसमें विशेषता है वह इस  
प्रकार से है—यद्यपि कति शब्द दूसरी जगह प्रश्न विशिष्ट संख्या के  
कहने में रूढ है—परन्तु वह यहाँ संख्यामात्र में कहा गया है प्रश्नकर्ताने  
जो ऐसा पूछा है कि नैरयिक कितने कहे हैं तो उत्तर में ऐसा कहा  
गया है कि नैरयिक तीन प्रकार के कहे गये हैं इनमें एक हैं कतिसं-  
चित और दूसरे हैं अकति संचित तथा तीसरे हैं अवक्तव्यक संचित;  
कति संचित का तात्पर्य ऐसा है कि एक समय में उत्पन्न होकर जो

ऊपर जेवी वात करवामा आवी छे ते विकृर्वणा नारकोमा पणु थाय  
छे तेथी सूत्रकार तणु स्थानोनी अपेक्षाजे नारकोनी प्रइपणु करे छे—

“ तिविहा नेरइया पणत्ता ” इत्यादि—

आ सूत्रनेो अर्थ सरण छे, परन्तु तेमां आ प्रकारनी विशेषता छे—  
जे के ' कति ' पद प्रश्नविशिष्ट संख्याने प्रकट करवाने भाटे आमान्य रीते  
तो वपराय छे, परन्तु अही तेनेो प्रयोग संख्यामात्रने प्रकट करवा भाटे थये छे.

प्रश्न—“ नारक केटला प्रकारना कइया छे ? ”

उत्तर—नारक तणु प्रकारना कइया छे, ते तणु प्रकारे नीचे प्रभाणे छे  
(१) कतिसंचित, (२) अकतिसंचित अने (३) अवक्तव्यक संचित.

सस्रपातोत्पत्तिं साधर्म्याद् बुद्ध्या राशीकृतास्ते कृतिसञ्चिता १। तथा न कति  
 न सस्रपाता इत्यकृति-असस्रपाता अनन्ता वा, अत्र असस्रपात रूपोर्णो शृङ्खले  
 तत्र ये अकृति-असस्रपाता एकैकसमय उत्पन्नाः सतस्त्वयैव सञ्चितास्ते-अकृ  
 तिसञ्चिता २। तथा यः परिमाणविशेषो न कति नाप्यकृतीत्युभयमपि वक्तु  
 म्भवति सः अवक्तव्यकः तत् सञ्चिता अवक्तव्यक सञ्चिताः, समये समय एकत्वं  
 पोत्पन्ना इत्ययः । उत्पद्यते देवा नारकाश्चैकसमये षण्काद्व्योऽस्ययेपाग्ताः ।  
 उक्तव्य देवपरिमाणम्—

नैरयिक सञ्चित हो जाते हैं वे कृतिसञ्चित नैरयिक हैं, और जिनका  
 संघट्ट सस्रपातरादि से परे होता है वे अकृतिसञ्चित-नैरयिक हैं ऐसे  
 अकृति मन्त्रिन नैरयिक असस्रपात होते हैं । यहाँ अकृति-सञ्चित पद  
 असस्रपात और अनन्त का बोधक है परन्तु यहाँ यह असस्रपात का  
 ही बोधक है क्योंकि कि नारकी अधिक से अधिक असस्रपात ही होते हैं  
 अनन्त नहीं, अकृतिसञ्चित-असस्रपात नैरयिक वे हैं जो एक एक समय  
 में उत्पन्न होकर असस्रपातरूप में सञ्चित हो जाते हैं । तथा जो परिमा  
 णविशेष कति और अकृति इन दोनों रूप से नहीं कहा जा सके वह  
 अवक्तव्यक है इस प्रकार के अवक्तव्यक से जो सञ्चित होते हैं वे  
 अवक्तव्यकसञ्चित नैरयिक हैं । ये एक २ समय में एक २ रूप से होते  
 हैं । देव और नैरयिक एक समय में एक से छेकर असस्रपात तक  
 उत्पन्न होते हैं उक्त च देवपरिमाणम्—

ज्जेक समभर्मा उत्पन्न यधने ने नारठे। सञ्चित यधं अयं उ ते नारठेने  
 कृतिसञ्चित नारठे। कडे उ सञ्चयातधी अथिउ शशिभा ने नारठेने। सञ्चय  
 याव उ तेमने अकृतिसञ्चित नारठे। कडे उ जेवा अकृतिसञ्चित नारठे।  
 असञ्चयात डोव उ अकृतिसञ्चित पद असञ्चयात जने अनन्तनु बोधक  
 डोवा उता पदु अही तेने असञ्चयातनु बोधक च समभयु बोधजे, कश्च  
 डे नारठे उवे। अथिउभां अथिउ असञ्चयात च डोव उ-अनन्त डोवा नधी  
 अकृतिसञ्चित-असञ्चयात नारठे। ते उ डे ने ज्जेक ज्जेक समभये उत्पन्न यधने  
 असञ्चयात इये सञ्चय पाभवा रडे उ कति जने अकृतिना परिभाषु विशेष  
 द्वारा जेमने अकृति करी शकता नधी तेमने अकृतव्यक कडे उ आ प्रारना  
 अवक्तव्यक इये जेमने। सञ्चय याव उ ते नारठेने अवक्तव्यक सञ्चित  
 नारठे। कडे उ तेजे। ज्जेक ज्जेक समभये ज्जेक ज्जेक इये सञ्चित याव उ  
 देवा जने नारठे। ज्जेक समभर्मा ज्जेकधी यधने असञ्चयात सुधीनी सञ्चयार्मा  
 उत्पन्न याव उ देवानु परिभाषु आ प्रभावे कहु उ—

“ एगो व दोव तिन्नि व, संखमसंखा व एगसमएणं ।

उव्वज्जनेवइया, उव्वट्टंता वि एमेव ( देवा ) ॥ १ ॥ ”

छाया—एकौ वा द्वौ वा त्रयो वा संख्याता वैकसमयेन ।

उत्पद्यन्ते एतावन्तः, उद्वृत्तन्तेऽप्येवमेव ( देवाः ) ॥ इति ॥

एतदेव नारकपरिमाणं, यत् उक्तम्—“ संखा पुण सुरवरतुल्ला ” छाया—  
( नारकाणां ) संख्या पुनः सुरवरतुल्या, इति ।

चतुर्विंशति दण्डकोक्तानामसुरादीनां कतिसंचितादिकमतिदिशन्नाह—‘एवं’  
इत्यादि, एवं—नारकवच्छेषाश्चतुर्विंशतिदण्डकोक्ता एकेन्द्रिय-वर्जा वाच्याः, तेषु  
प्रतिसमयसंख्यातानामनन्तानां ना अकतिशब्दवाच्यानामेवोत्पत्तिमद्भावात्, न  
त्वेकः ‘ संख्याता वा ’ इति ॥ सू० ३ ॥

( एगो व दोव तिन्नि व ) इत्यादि । एक समय में एक, दो, तीन  
आदि प्रकार से संख्यात और असंख्यात नैरयिक उत्पन्न होते हैं और  
इतनेही करते हैं इसी तरहका कथन देवोंके विषय में भी जानना चाहिये  
यही नारकों का परिणाम है क्यों कि कहा है—“ संखा पुण सुर  
वर तुल्ला ” कि नारकों की संख्या देवों के तुल्य है

अब सूत्रकार चतुर्विंशतिदण्डक में उक्त असुरादिकों के कतिसं-  
चित आदि को अतिदेश से प्रकट करने के अभिप्राय से कहते हैं—  
“ एवं ” इत्यादि इसी तरह का कथन यावत् एकेन्द्रियवर्ज वैमानिक  
देवों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये । यहाँ जो एकेन्द्रिय जीवों को  
छोड़कर कथन किया गया है उसका कारण ऐसा है कि एकेन्द्रिय जीवों  
में प्रतिसमय अकतिशब्दवाच्य असंख्यात अथवा अनन्त एकेन्द्रिय

“ एगो व दोव तिन्नि व ” इत्यादि—

એક સમયમા એક, બે અને ત્રણથી લઈને સખ્યાત અને અસખ્યાત  
પર્યાન્તના નારકો ઉત્પન્ન થાય છે, અને એટલા જ મરે છે આ પ્રકારનું કથન  
દેવો વિષે પણ સમજવું “ સંખા પુણ સરવરતુલ્લા ” કહ્યું પણ છે કે નારકોની  
સખ્યા દેવોની સખ્યા બરાબર છે

હવે સૂત્રકાર ૨૪ ઠંડકોમા અસુરકુમારદિ જે અન્ય જીવોનો સમાવેશ  
થાય છે, તેમના કતિસચિત આદિ ભેદોનું નિરૂપણ કરે છે—“ એવ ” ઇત્યાદિ  
નારકોના જેવું જ કથન એકેન્દ્રિય સિવાયના બાકીના વૈમાનિક પર્યાન્તના જીવો  
વિષે પણ સમજવું અહીં એકેન્દ્રિય જીવોને નહીં ગણવાનું કારણ એ છે કે  
એકેન્દ્રિય જીવોમા પ્રતિ સમય અકતિશબ્દ વાચ્ય અસખ્યાત અથવા અનન્ત

उक्तौ वैमानिकानां देवानां कृत्स्नविद्यादिको धर्मः, साम्प्रतं देवाधिकारात्ते  
पामेव सामान्येन परिचारणाधर्मं निरूपयन्नाह—

मूलम्—तिविहा परियारणा पण्णत्ता, त जहा एगे देवे अन्ने  
देवे अण्णेसिं देवाण देवीओ य अभिजुजियर परियारेइ, अप्प  
णिज्जियाओ देवीओ अभिजुजियर<sup>१</sup> परियारेइ, अप्पाणमेव अ  
प्पणा विडवियर परियारेइ १ । एगे देवे णो अण्णे देवे णो  
अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुजियर परियारेइ, अप्पणिज्जि-  
याओ देवीओ अभिजुजियर परियारेइ, अप्पाणमेव अप्पणा  
विडवियर परियारेइ २ । एगे देवे णो अण्णे देवे णो अण्णेसिं  
देवाणं देवीओ अभिजुजियर परियारेइ, णो अप्पणिज्जियाओ  
देवीओ अभिजुजियर परियारेइ, अप्पाणमेव अप्पणा विडवियर  
परियारेइ ३ । तिविहे मेहुणे पण्णत्ते, त जहा-दिव्वे मणुस्सप  
तिरिक्खजोणिय १ । तओ मेहुण गच्छति, त जहा-देवा  
मणुस्सा तिरिक्खजोणियार । तओ मेहुण सेवति, त जहा-  
इत्थी पुरिसा णपुसगा ३ ॥ सू० ४ ॥

छाया-प्रविष्टा परिचारणा प्रवृत्ताः, तद्यथा-एको देव अन्यान् देवान् अन्येषां  
देवानां देवीम् अभियुज्यर परिचारयति, आत्मीया देवीरभियुज्यर परिचारयति,  
आत्मानमेव आत्मना विकृषित्वार परिचारयति १, इति, यथा एको देवो नो  
अन्यान् देवान् नो अन्येषां देवानां देवीरभियुज्यर परिचारयति, आत्मीया देवी  
रभियुज्यर परिचारयति, आत्मानमेव आत्मना विकृषित्वार परिचारयति २ ।  
एको देवो नो अन्यान् देवान् नो अन्येषां देवानां देवीरभियुज्यर परिचारयति

जीवों की ही उत्पत्ति होती रहती है, एक अथवा सख्यात एकेन्द्रियों  
की नहीं ॥ सू १ ॥

एकेन्द्रिय एवेनी उत्पत्ति यती इडे छे त्वां प्रति समय एके अथवा सख्यात  
एकेन्द्रियोंनी उत्पत्ति यती नथी. ते इरुत्ते उपयुक्त तयु वेद एकेन्द्रियोंभां  
सखयी यकता नथी ॥ सू ३ ॥

नो आत्मीया देवीरभियुज्यर परिचारयति, आत्मानमेव आत्मना विकुर्वित्वा  
परिचारयति ३ । त्रिविधं मैथुनं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-दिव्यं मानुष्कं तिर्यग्योनिकम् ।  
प्रयो मैथुनं गच्छन्ति, तद्यथा-देवा मनुष्याः तिर्यग्योनिकाः । त्रयो मैथुनं सेवन्ते,  
तद्यथा-द्वियः पुरुषा नपुंसकाः ॥ सू० ४ ॥

टीका-‘ त्रिविहा ’ इत्यादि, परिचारणासूत्रत्रयं मैथुनसूत्रत्रयं चेति सूत्रपट्टकं  
सुगमम् । नवरं-परिचारणं परिचारणा देव मैथुनसेवनरूपा । एकः-ऋद्ध्या  
दिसामर्थ्यसंपन्नो देवः न सर्वेऽपीति, किम् ? - ‘ अण्णे देवे ’ इति, अन्यान्  
देवान्-अल्पद्विकान्, तथाऽन्येषां देवानां सम्बन्धिनी देवीश्चाभियुज्याभियुज्य-  
अश्लिष्याश्लिष्य-वशीकृत्य वा परिचारयति-वेदनावाधोपशमाय परिभुङ्क्ते । इति  
प्रथमपरिचारणायाः प्रथमो भेदः (१-१) एवमात्मीया देवीरप्यभियुज्यर परि-

वैमानिकों का इस प्रकार से कतिसंचित आदि धर्म कहा अथ  
देवाधिकार से ही सूत्रकार उनके सामान्यरूप से परिचारणाधर्म का  
कथन करते हैं-( त्रिविहा परिचारणा पणत्ता ) इत्यादि ।

टीकार्थ-परिचारणा तीन प्रकारकी कही गईहै परिचरणका नाम परिचा-  
रणा है यह परिचारणा देवमैथुनसेवनरूप होती है, ऋद्ध्यादिरूप साम-  
र्थ्यसंपन्न कोई एक देव (सद्य देव नहीं) अल्पद्वि वाले अन्यदेवों को तथा  
अन्य देवों की देवियों को वश में करके या उनका आलिङ्गन करके  
अपने वेद की बाधा को उपशान्त करने के निमित्त उनके साथ परिभोग  
करता है । यह प्रथम परिचारणा का पहिला भेद है ( १-१ ) तथा इसी  
की देवियों को भी आलिङ्गन करके या उन्हें वश में करके वह देव

वैमानिकेना आ प्रकारना कतिसंचित आदि धर्मंतु कथन थयुं हुवे  
हेवाधिकारनी अपेक्षाये सूत्रकार तेमना परिचारणा धर्मंतु सामान्यरूपे कथन  
करे छे-“ त्रिविहा परिचारणा पणत्ता ” इत्यादि-

परिचारणा त्रय प्रकारनी कही छे. परिचारण ( मैथुन सेवन रूप ) तुं  
नाम परिचारणा छे. हेवे द्वारा जे मैथुन सेवन थाय छे, ते मैथुन सेवन रूप  
परिचारणाना त्रय प्रकारे नीये प्रभाणे छे-अधिक ऋद्धिसंपन्न ( सामर्थ्य रूप  
ऋद्धिसंपन्न ) केध केध देव ( अथा हेवेने आ वात लाशु पडती नथी ) अल्प  
ऋद्धिसंपन्न अन्य हेवेने तथा अन्य हेवेनी हेवीओने पोताने वश करी लधने  
तेमने आदिगन करीने पोतानी कामाग्निने उपशान्त करवाने भाटे तेमनी  
साथे परिभोग करे छे. आ पडेवी परिचारणाने पडेवे लेद छे. (२) पोतानी  
हेवीओने वश करी लधने तेमने आदिगन करे छे अने पोतानी कामाग्निने



उक्तौ वैमानिकानां देवानां कविसविष्ठादिको धर्मः, साम्प्रत देवाधिकारात्ते पामेष सामान्येन परिचारणाधर्मं निरूपयन्नाह—

मूलम्—तिविहा परियारणा पण्णत्ता, त जहा एगे देवे अन्ने देवे अण्णेसिं देवाण देवीओ य अभिजुजियर परियारेइ, अप्प णिज्जियाओ देवीओ अप्पिजुजियर<sup>१</sup> परियारेइ, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्वियर परियारेइ १ । एगे देवे णो अण्णे देवे णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुजियर परियारेइ, अप्पणिज्जियाओ देवीओ अप्पिजुजियर परियारेइ, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्वियर परियारेइ २ । एगे देवे णो अण्णे देवे णो अण्णेसिं देवाणं देवीओ अभिजुजियर परियारेइ, णो अप्पणिज्जियाओ देवीओ अभिजुजियर परियारेइ, अप्पाणमेव अप्पणा विउव्वियर परियारेइ ३ । तिविहे मेहुणे पण्णत्ते, तं जहा-दिव्वे मणुस्सए तिरिक्खजोणिए १ । तओ मेहुण गच्छति, तं जहा-देवा मणुस्सत्ता तिरिक्खजोणियार । तओ मेहुण सेवति, त जहा-इत्थी पुरिसा णपुसगा ३ ॥ सू० ४ ॥

छाया-विषिषा परिचारणा प्रवृत्ताः, तद्यथा-एको देव अन्यान् देवान् अन्येषां देवानां देवीश्च अभियुज्यर परिचारयति, आत्मीया देवीरभियुज्यर परिचारयति, आत्मानमेव आत्मना विद्वर्षित्वार परिचारयति १, इति, यथा एको देवो नो अन्यान् देवान् नो अन्येषां देवानां देवीरभियुज्यर परिचारयति आत्मीया देवीरभियुज्यर परिचारयति, आत्मानमेव आत्मना विद्वर्षित्वार परिचारयति २ । एको देवो नो अन्यान् देवान् नो अन्येषां देवानां देवीरभियुज्यर परिचारयति

जीवों की ही उत्पत्ति होती रहती है, एक अथवा सख्यात एकेन्द्रियों की नहीं ॥ सू ३ ॥

अकेन्द्रिय एवोऽनी उत्पत्ति यती इदे उ त्या प्रति सभय अके अथवा स अथात् अकेन्द्रियेऽनी उत्पत्ति यती नथी. ते शरदे उपयुक्त तप्य वेद अकेन्द्रियेऽभा सभवी यकत्ता नथी. ॥ सू ३ ॥

परिचारयतीति तृतीयेयं परिचाराणां, अनुत्कटकामत्वाद् अल्पद्विकदेव विशेषत्वा-  
च्चेति ३ । परिचारेणेत्येको मैथुनप्रकारः प्रोक्तः, साम्प्रत तदेव मैथुनं सामान्यतः  
प्ररूपयति—' तिविहे मेहुणे ' इत्यादि, प्रथमं मैथुनसूत्रं सुगमम् । नवरं मिथु-  
नस्य-स्त्रीपुसयुग्मस्य कर्ममैथुनं, तत्तु देवमनुष्यतिरश्चामेव भवतीत्यतस्तरय  
त्रैविध्यं, नारकाणां द्रव्यतस्तदसभवादिति चतुर्थं नारत्येवेति, मैथुनकर्मकारकास्त्रय  
एवेतितानाह—' तथो ' इत्यादि, त्रयो देवमनुष्यतिर्यश्च एव मैथुनं गच्छन्ति-  
प्राप्नुवन्ति-सेवन्त इत्यर्थः २ । तस्यैव मनुष्यविषये भेदानाह—' तथो ' इत्यादि,

देवरूप से या देवी रूप से विकृष्टित करके उल्लेखे साथ परिचाराणा  
करता है ऐसी यह परिचाराणा वही देव करता है जो अनुत्कटकामवा-  
सनावाला होता है तथा अल्पऋद्धि वाला होता है । परिचाराणा यह एक  
मैथुन सेवन करने का प्रकार सूत्रकार ने कहा है अब वे सामान्यरूप  
से इसी मैथुन की प्ररूपण—“ तिविहा मेहुणे पण्णत्ते ” इत्यादि सूत्र  
द्वारा करते हैं—इसमें प्रथम मैथुन सूत्र सुगम है विशेषता जो है वह  
ऐसी है—स्त्री और पुरुष का दोनों का आपस में एक दूसरे के साथ  
शारीरिक सम्बन्ध करने से जो क्रिया होती है वह मैथुन है यह मैथु-  
नक्रिया देव, मनुष्य और तिर्यश्चों में ही होती है इस कारण इसे  
त्रिविध कहा गया है नारक जीवों में यह मैथुन कर्म द्रव्य की अपेक्षा  
होता नहीं है इसलिये मैथुन में चतुर्थ प्रकारता नहीं है इस मैथुनरूप  
क्रिया के कर्त्ता ये तीन ही होते हैं देव, मनुष्यों और तिर्यश्च मनुष्य में  
भी स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन होते हैं स्त्रियों में पुरुषों की अभि-

परिचाराणा करे छे आ प्रकारनी परिचाराणा अे देव न करे छे के ने अनुत्कट  
कामवासनावाणे डोय छे अने अल्प ऋद्धिवाणे डोय छे.

परिचाराणाने मैथुन सेवनना अेक प्रकार इपे प्ररूपित करीने हवे सूत्रकार  
सामान्य इपे अे न मैथुननी “ तिविहे मेहुणे पण्णत्ते ” इत्यादि सूत्रे द्वारा  
प्ररूपणा करे छे. तेमातुं पडेहु मैथुन सूत्र सरण छे स्त्री अने पुरुषना  
अनेना अेक भील साथे शारीरिक सम्बन्ध करवाथी ने क्रिया थाय छे तेने  
मैथुन कडे छे. देव, मनुष्य अने तिर्यश्चोमां न मैथुन क्रिया संलवी शके छे.  
ते कारणे तेना त्रय प्रकार कहे छे. नारक लोकोमां आ मैथुन कर्म द्रव्यनी  
अपेक्षाअे थतुं नथी, ते कारणे मैथुनमा त्थार प्रकारे संलवी शकता नथी.  
आ मैथुन इपे क्रियाना कर्त्ता पशु त्रय प्रकारना लोको न डोय छे—(१) देव,  
(२) मनुष्य अने (३) तिर्यश्च. मनुष्योमां पशु स्त्री, पुरुष अने नपुंसक,

चारपति, इति द्वितीयो भेद (२) तथा—आत्मना आत्मानमेव दवीत्वेन देवत्वेन वा विकृष्टित्वा २ परिचारणायोग्य विधाः २ परिचारयतीति तृतीयो भेदः (१) एष प्रकारप्रयूप्याप्यकेयं परिचारणा, समर्पित्वात्कामैकपरिचारकत्वत्वादिषु प्रथमा परिचारणा ८ । अथ द्वितीयपरिचारणामाह—एको देव आमीपदेवीरभियुज्यन्, तथा आत्मानमेवाऽऽत्मना देवत्वेन देवीत्वेन वा विकृष्टित्वा २ परिचारयतीति द्वितीयेय परिचारणा, असमर्थत्वाद् उचितकामपरिचारकत्वाच्चेति २ । अथ तृतीय परिचारणामाह—एकी देव आत्मानमेवात्मना देवत्वेन देवीत्वेन वा विकृष्टित्वा २

उनके साथ अपने घेद की पाषा को जानत करने के निमित्त परिभोग करता है यह प्रथम परिचारणा का द्वितीय भेद है तथा—अपने आप को ही देवीरूप से या देव रूप से विकृष्टित करके और उसे परिचारणा के योग्य बना करके वह उसके साथ अपने घेद की उपजान्ति के निमित्त परिभोग करता है यह प्रथमपरिचारणा का तृतीय भेद है ३, इस प्रकार से यह एक ही परिचारणा तीन रूप घाली होती है परन्तु फिर भी यह परिचारणा की अपेक्षा से एक ही है। ऐसी इन परिचारणा को जो देव समर्थ और अधिक से अधिक कामुक होता है पढ़ी करता है यह प्रथम परिचारणा है ऐसी यह परिचारणा पहली है, द्वितीय परिचारणा इस प्रकार से है कोई एक देव अपनी देवी को आलिङ्गन करके या उसे घटा में करके उसके साथ अथवा अपने आपको ही देवरूप से या देवीरूप से विकृष्टित करके उसके साथ परिचारणा करता है । तृतीय परिचारणा इस प्रकार से है कोई एक देव अपने आपको ही

उपशान्त करवा भाटे तेमनी साथे परियोग करे छे आ प्रथम परिव्याख्याने श्रीने लेख छे (३) कोर्क कोर्कदेव पीते न देव अथवा देवीना उपनी विकृष्टित्वा करीने तेनी साथे परियोग सेवीने पीतानी कामाग्निने सतीये छे, आ प्रथम परिव्याख्याने श्रीने लेख छे आ प्रभावे आ जेक न परिव्याख्या प्रथम प्रकार बाणी छे परन्तु परिव्याख्या सामान्यनी अपेक्षाको तो जेक न प्रकारनी छे आ प्रकारनी विचारवा के देव समर्थ अने अधिकर्मा अधिक कामुक होय छे तेना द्वारा न कराय छे पछेही परिव्याख्याना स्वल्पनु कथन करीने उवे सूत्रार द्वितीय परिव्याख्यानु कथन करे छे—

कोर्क देव पीतानी देवीने आलिङ्गन करीने अथवा तेने वश करीने तेनी साथे परियोग करे छे अथवा पीताने न देव अथवा देवीरूपे विकृष्टित करीने तेनी साथे परिव्याख्या करे छे उवे सूत्रार श्रीन प्रकारथी परिव्याख्यानु कथन करे छे—कोर्क देव पीताने न देव अथवा देवीरूपे विकृष्टित करीने तेनी साथे

परिचारयतीति तृतीयेयं परिचाराणा, अनुत्कटकामत्वाद् अल्पद्विकदेव विशेषत्वा-  
च्चेति ३ । परिचारणेत्येको मैथुनप्रकारः प्रोक्तः, साम्प्रत तदेव मैथुनं सामान्यतः  
प्ररूपयति—' तिविहे मेहुणे ' इत्यादि, प्रथमं मैथुनसूत्रं सुगमम् । नवरं मिथु-  
नस्य-स्त्रीपुंसयुग्मस्य कर्ममैथुनं, तत्तु देवमनुष्यतिरश्चामेव भवतीत्यतस्तरय  
त्रैविध्यं, नारकाणां द्रव्यतस्तदसभवादिति चतुर्थं नास्त्येवेति, मैथुनकर्मकारकाद्यय  
एवेतितानाह—' तथो ' इत्यादि, त्रयो देवमनुष्यतिर्यञ्च एव मैथुनं गच्छन्ति-  
प्राप्नुवन्ति-सेवन्त इत्यर्थः २ । तस्यैव मनुष्यत्रिपये भेदानाह—' तथो ' इत्यादि,

देवरूप से या देवी रूप से विद्वुर्विन करके उल्लेखे साथ परिचाराणा  
करता है ऐसी यह परिचाराणा वही देव करता है जो अनुत्कटकामवा-  
सनावाला होता है तथा अल्पद्विक वाला होता है । परिचाराणा यह एक  
मैथुन सेवन करने का प्रकार सूत्रकार ने कहा है अब वे सामान्यरूप  
से इसी मैथुन की प्ररूपण—“ तिविहा मेहुणे पणत्ते ” इत्यादि सूत्र  
द्वारा करते हैं—इसमें प्रथम मैथुन सूत्र सुगम है विशेषता जो है वह  
ऐसी है—स्त्री और पुरुष का दोनों का आपस में एक दूसरे के साथ  
शारीरिक सम्बन्ध करने से जो क्रिया होती है वह मैथुन है यह मैथु-  
नक्रिया देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों में ही होती है इस कारण इसे  
त्रिविध कहा गया है नारक जीवों में यह मैथुन कर्म द्रव्य की अपेक्षा  
होता नहीं है इसलिये मैथुन में चतुर्थ प्रकारता नहीं है इस मैथुनरूप  
क्रिया के कर्ता ये तीन ही होते हैं देव, मनुष्यों और तिर्यञ्च मनुष्य में  
भी स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन होते हैं स्त्रियों में पुरुषों की अभि-

परिचाराणा करे छे आ प्रकारनी परिचाराणा अे देव न करे छे के ने अनुत्कट  
कामवासनावाणे डोय छे अने अल्प ऋद्विवाणे डोय छे.

परिचाराणाने मैथुन सेवना अेक प्रकार इपे प्ररूपित करीने डवे सूत्रकार  
सामान्य इपे अे न मैथुननी “ तिविहे मेहुणे पणत्ते ” इत्यादि सूत्रो द्वारा  
प्ररूपणा करे छे. तेमातुं पडेहुं मैथुन सूत्र सरण छे. स्त्री अने पुरुषना  
अनेना अेक णीण साथे शारीरिक संभध करवाथी ने क्रिया थाय छे तेने  
मैथुन कडे छे देव, मनुष्य अने तिर्यञ्चोमां न मैथुन क्रिया संभवनी शके छे.  
ते कारणे तेना त्रषु प्रकार कहे छे. नारक लोकोमां आ मैथुन कर्म द्रव्यनी  
अपेक्षाअे थतुं नथी, ते कारणे मैथुनमा चार प्रकारो संभवनी शकता नथी.  
आ मैथुन इपे क्रियाना कर्ता पशु त्रषु प्रकारना लोको न डोय छे—(१) देव,  
(२) मनुष्य अने (३) तिर्यञ्च. मनुष्योमां पशु स्त्री, पुरुष अने नपुंसक,

चारयति, इति द्वितीयो भेद (२) तथा-आत्मना आत्मानमत्र दवीत्यत्र देवत्वन  
 वा विकृतिना २ परिवारणावांग विधाप २ परिवारयतीति तृतीया भेद (३)  
 पत्र प्रकारप्रत्ययपर्ययेय परिवारणा, तमयात्-कर्मैरपरिवारकवशादिति मयमा  
 परिवारणा ८ । अथ द्वितीयपरिवारणाया-ए-या २ आमीयदवीरभियुज्य २,  
 तथा आत्मानमवाऽऽत्मना दक्षत्येन २ दवीत्यत्र वा विकृतिना २ परिवारयतीति द्विती  
 येय परिवारणा, असमर्थत्वाद् उक्तिशामपरिवारकत्वात्तीति २ । मय तृतीय  
 परिवारणामाह-ए-यो २ आत्मानमवात्तना देवत्वा देवीत्यत्र वा विकृतिना २

उनके साथ अपने घड़ की प्राया को प्राप्त करने के निमित्त परिभोग  
 करता है यह प्रथम परिवारणा का तृतीय भेद है तथा-अपने आप को  
 ही देवीरूप से या देव रूप से विकृतिरहित करने और उसे परिवारणा के  
 योग्य बना करके वह उसके साथ अपने घड़ को उपगान्ति के निमित्त  
 परिभोग करता है यह प्रथमपरिवारणा का तृतीय भेद है ३, इस  
 प्रकार से यह एक ही परिवारणा तीन रूप वाली होती है परन्तु फिर  
 भी यह परिवारणा की अपेक्षा से एक ही है। ऐसी ही परिवारणा को  
 जो देव समर्थ और अधिक से अधिक प्राप्त होता है वही करता है  
 यह प्रथम परिवारणा है ऐसी ही परिवारणा पहली है, द्वितीय परि  
 चारणा इस प्रकार से है कोई एक देव अपनी देवी को आदिजन करके  
 या उसे घड़ा में करके उसके साथ अथवा अपने आपको ही स्वरूप  
 से या देवीरूप से विकृतिरहित करने उसके साथ परिवारणा करता है।  
 तृतीय परिवारणा इस प्रकार से है कोई एक देव अपने आपको ही

उपशान्त करवा भाटे तेमनी साथे परिवारेण ४०० छे आ प्रथम परिवारणाको  
 भीजे खेद छे (३) कौर्ष कौर्षदेव पोते व देव अथवा देवीना हुपनी विकृतिरहित  
 करीने तेनी साथे परिवारेण सेवीने पोतानी कामाभिने सतोरे छे, आ प्रथम  
 परिवारणाको नीजे खेद छे आ प्रभाजे आ जेठ व परिवारणा प्रथम प्रकार  
 वाणी छे परन्तु परिवारणा साभा वनी अपेक्षाजे तो जेठ व प्रकारनी छे  
 आ प्रकारनी परिवारणा ने देव समर्थ अने अधिकमा अधिक कामुके होय  
 छे तेना द्वारा व कराय छे पछेही परिवारणाको स्वरूपतु कवन करीने कवे  
 सूत्रकार द्वितीय परिवारणातु कथन करे छे—

कौर्षके देव पोतानी देवीने आदिजन करीने अथवा तेने वय करीने तेनी  
 साथे परिवारेण करे, छे अथवा पोताने व देव अथवा देवीरूपे विकृतिरहित करीने  
 तेनी साथे परिवारणा करे छे कवे सूत्रकार नीज प्रकारची परिवारणातु कथन  
 करे छे-कौर्षके देव पोताने व देव अथवा देवीरूपे विकृतिरहित करीने तेनी साथे

परिचारयतीति तृतीयेयं परिचाराणा, अनुत्कटकामत्वाद् अल्पद्विकदेव विशेषत्वा-  
च्चेति ३ । परिचारणेत्येको मैथुनप्रकारः प्रोक्तः, साम्प्रतं तदेव मैथुनं यामान्यतः  
प्ररूपयति—‘ तिविहे मेहुणे ’ इत्यादि, प्रथमं मैथुनसूत्रं सुगमम् । नवर मिथु-  
नस्य-स्त्रीपुंसयुग्मस्य कर्ममैथुनं, तत्र देवमनुष्यतिरश्चामेव भवतीत्यतस्तरय  
त्रैविध्यं, नारकाणां द्रव्यतस्तदसभवादिति चतुर्थं नारत्येवेति, मैथुनकर्मकारकाद्यय  
एवेतितानाह—‘ तओ ’ इत्यादि, त्रयो देवमनुष्यतिर्यश्च एव मैथुनं गच्छन्ति-  
प्राप्नुवन्ति-सेवन्त इत्यर्थः २ । तस्यैव मनुष्यविषये भेदानाह—‘ तओ ’ इत्यादि,

देवरूप से या देवी रूप से विद्वर्जित करके उत्तक्रे साथ परिचाराणा  
करता है ऐसी यह परिचाराणा वही देव करता है जो अनुत्कटकामवा-  
सनावाला होता है तथा अल्पऋद्धि वाला होता है । परिचाराणा यह एक  
मैथुन सेवन करने का प्रकार सूत्रकार ने कहा है अब वे सामान्यरूप  
से इसी मैथुन की प्ररूपण—“ तिविहा मेहुणे पणत्ते ” इत्यादि सूत्र  
द्वारा करते हैं—इसमें प्रथम मैथुन सूत्र सुगम है विशेषता जो है वह  
ऐसी है—स्त्री और पुरुष का दोनों का आपस में एक दूसरे के साथ  
शारीरिक सम्बन्ध करने से जो क्रिया होती है वह मैथुन है यह मैथु-  
नक्रिया देव, मनुष्य और तिर्यश्चों में ही होती है इस कारण इसे  
त्रिविध कहा गया है नारक जीवों में यह मैथुन कर्म द्रव्य की अपेक्षा  
होता नहीं है इसलिये मैथुन में चतुर्थ प्रकारता नहीं है इस मैथुनरूप  
क्रिया के कर्ता ये तीन ही होते हैं देव, मनुष्यों और तिर्यश्च मनुष्य में  
भी स्त्री, पुरुष और नपुंसक ये तीन होते हैं स्त्रियों में पुरुषों की अभि-

परिचाराणा करे छे आ प्रकारनी परिचाराणा ओ देव न करे छे के के अनुत्कट  
कामवासनावाणे होय छे अने अल्प ऋद्धिवाणे होय छे.

परिचाराणाने मैथुन सेवनना ओक प्रकार इपे प्ररूपित करीने उवे सूत्रकार  
सामान्य इपे ओ न मैथुननी “ तिविहे मेहुणे पणत्ते ” धत्यादि सूत्रे द्वारा  
प्ररूपणा करे छे. तेमातु पडेहुं मैथुन सूत्र सरण छे. स्त्री अने पुरुषना  
अन्नेना ओक जीव साथे शारीरिक सम्बन्ध करवाथी के क्रिया थाय छे तेने  
मैथुन कहे छे. देव, मनुष्य अने तिर्यश्चोमा न मैथुन क्रिया संभवनी शके छे.  
ते कारणे तेना त्रय प्रकार कहे छे. नारक जेवोमां आ मैथुन कर्म द्रव्यनी  
अपेक्षाओ थतुं नथी, ते कारणे मैथुनमा चार प्रकारे संभवनी शकता नथी.  
आ मैथुन इपे क्रियाना कर्ता पण त्रय प्रकारना जेवो न होय छे—(१) देव,  
(२) मनुष्य अने (३) तिर्यश्च. मनुष्योमां पण स्त्री, पुरुष अने नपुंसक,

प्रयाः—स्त्रिय पुरुषा नपुसकाश्च मैथुन सेवते । स्त्रीषु पुस्त्रामिता पुरुषेषु स्त्रीका  
मिता, नपुसकेषु मोहानभ्यदीपनवशात् स्त्रीषु सयोर्द्वयोरपि कामितावर्षते ।  
स्त्र्यादिलक्षणमाह—

“ स्तनयोनिवतीस्त्रीस्याद् भ्रमधुमेहनवान् पुमान् ।

तमयोरन्तर यच्च, तदभावे नपुसकम् ॥ १ ॥ इत्यादि ॥ सू० ४ ॥

एत य योगवतो भवन्तीति योग परूपणमाह ।

मूषम्—तिविहे जोगे पण्णत्ते, त जहा मणजोगे, वयजोगे,  
कायजोगे । एव णेरहयाणां विगलिंदियवज्जाण जाव वेमाणियाण  
१ । तिविहे पओगे पण्णत्ते, त जहा-मणपओगे, वइपओगे,  
कायपओगे जहा जोगो विगलिंदियवज्जाण तहा पओगोवि २ ।  
तिविहे करणे पण्णत्ते त जहा-मणकरणे, वइकरणे, कायकरणे ।  
एव विगलिंदियवज्ज जाव वेमाणियाण ३ । तिविहे करणे पण्णत्ते  
त जहा आरभकरणे सरभकरणे सुमारभकरणे । निरतर जाव  
वेमाणियाण ॥ सू० ५ ॥

छाया रहती है और पुरुषों में स्त्रियों की अभिलाषा रहती है अर्थात्  
स्त्री पुरुष के साथ मैथुन सेवन करने की इच्छावाली होती है और पुरुष  
स्त्री के साथ मैथुन सेवन की इच्छा वाला होता है परंतु जो नपुसक  
होता है उसमें मोहामि की अधिक प्रवृत्ति रहती है इस कारण उसमें  
स्त्री के साथ और पुरुष के साथ दोनों के साथ मैथुन सेवन करने की  
अभिलाषा होती है । स्त्री भाषि का लक्षण इस प्रकार से है—“स्तन  
योनिवती स्त्री” इत्यादि ॥ सू० ४ ॥

आ नपुसक भवति बोध छे स्त्री पुरुषनी साथे मैथुन सेवनी उच्छासणी बोध  
छे जने पुरुष स्त्रीनी साथे मैथुन सेवनी उच्छासणी बोध छे परन्तु जे  
नपुसक भवति बोध छे तेमां मोहामि अधिक प्रभावमां प्रवृत्त रहे छे, ते  
कारणे ते स्त्रीनी साथे जने पुरुषनी साथे जनेनी साथे मैथुन सेवनी  
अभिलाषा सेवे छे स्त्री भाषिनां लक्षण आ प्रभावे छे—“स्तनयोनिवती स्त्री”  
इत्यादि । स्त्री स्तन जने योनिनी मुख्य बोध छे ॥ सू० ४ ॥

छाया-त्रिविधो योगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मनोयोगः, वाग्योगः, काययोगः । एवं नैरयिकाणां विकलेन्द्रियवर्जानां यावद् वैमानिकानाम् ६ । त्रिविधः प्रयोगः, प्रज्ञप्तः, तद्यथा-मनः प्रयोगः, वाक्प्रयोगः, कायप्रयोगः । यथा योगो विकलेन्द्रियवर्जानां तथा प्रयोगोऽपि २ । त्रिविधकरणं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-मनःकरणं, वाक्करणं कायकरणम् । एवं विकलेन्द्रियवर्जं यावद् वैमानिकानाम् । त्रिविधं करणं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-आरम्भकरणं, संरम्भकरणं, समारम्भकरणम् । निरन्तरं यावद् वैमानिकानाम् ४ सू० ५ ॥

टीका-“ त्रिविधे जोगे ’ इत्यादि ।

योजनं योगः-व्यापारः । इह वीर्यान्तरायक्षयक्षयोपशम-समुत्थलब्धिविशेष प्रत्ययमभिप्रायाऽनभिप्रायपूर्वमात्मनो वीर्यं योगः प्रोच्यते । उक्तञ्च

“ जोगो वीरियं थामो, उच्छाह परकमो तहा चेष्टा ।

सत्ती सामत्थं ति य, जोगस्स इवंति पज्जाया ॥ १ ॥

ये सब योगवाले होते हैं-इसलिये सूत्रकार अब योग की प्ररूपणा करते हैं-( त्रिविधे जोगे पणत्ते ) इत्यादि ।

टीकार्थ-“योजनं योगः” इस व्युत्पत्तिके अनुसार योग शब्द का अर्थ व्यापार है वीर्यान्तराय कर्म के क्षय और क्षयोपशम से समुत्थ जा लब्धिविशेष वह लब्धिविशेष है कारण जिसका ऐसा जो अभिप्राय एवं अनभिप्रायपूर्वक आत्मा का वीर्य है उसका नाम योग है तात्पर्य इस कथन का ऐसा है कि आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्द कम्पन व्यापार होता है वह योग कहा गया है आत्मप्रदेशों में यह कम्पन व्यापार वीर्यान्तर कर्म के क्षय से या क्षयोपशम से तथा पुद्गलों के आलम्बन से होता है । कहा भी है-“ जोगो वीरियं थामो इत्यादि । यह योग दो

उपर्युक्त ( उपर कक्षा प्रमाणे ) अधां लुवे। योगयुक्त होय छे, तेथी सूत्रकार हुवे योगनी प्ररूपणा करे छे-“ त्रिविधे जोगे पणत्ते ” इत्यादि-  
टीकार्थ-“ योजनं योगः ” आ व्युत्पत्ति अनुसार योग शब्दनेो अर्थ व्यापार ( प्रवृत्ति ) छे, वीर्यान्तराय कर्मना क्षय अने क्षयोपशमथी अन्य लब्धिविशेष नेतु कारण छे अतुं ने अभिप्राय अने अभिप्रायपूर्वक आत्मानुं वीर्यं छे, तेतु नाम योग छे, आ कथनतु तात्पर्य नीचे प्रमाणे छे-आत्मप्रदेशानुं ने परिस्पन्दन ( कम्पन व्यापार ) थाय छे, तेने योग कहे छे, आत्मप्रदेशाभां ते कम्पन व्यापार वीर्यान्तराय कर्मना क्षयथी अथवा क्षयोपशमथी तथा पुद्गलोना आलम्बनथी थाय छे कहु पण्णु छे के-“ जोगो वीरियं थामो ” इत्यादि.



છોયા-યોગો ધીર્યં સ્યામ ઠસાહઃ પરાક્રમસ્તયા ચેષ્ટા ।

શક્તિઃ સામર્થ્યમિતિ ચ, યોગસ્ય મયન્તિ પર્યાયાઃ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

સ ચ દ્વિષા-સકરણોઽકરણઃ, તપાલેદ્યસ્ય કેશલિનઃ કૃત્સ્નયોર્દ્વેય દૃશ્યયો ર્થયોઃ કેવલં જ્ઞાન દર્શન ધોપયુજ્ઞાનસ્ય યોઽસાત્રપરિસ્પન્દોઽપ્રતિધોવીર્યવિશેષઃ સોઽકરણ, મસ્ય નેહાધિકાર, સકરણસ્યૈવાધિકારાત્ યુજ્યતે સ્ત્રીષઃ કર્મમિર્યેન સ યોગ 'કર્મ્મ જોગનિમિત્તં ષડ્ઞહ' ઇતિ વક્ષનાત્ । યદ્વા-યુક્ત્વતે-પ્રયુક્ત્વત ય પર્યાય સ યોગઃ-વીર્યાન્તરાયક્ષયોપશ્ચમનનિતો જીવપરિણામવિશેષ ઇતિ ।

ઉક્તચ-“મળસા ઘયસા કાપળ ઘાપિ જીવસ્થ ધીરિયપરિણામો ।

જીવસ્સ મપ્યધિન્નો સ જોગસન્નો નિળમ્સામો ॥ ૧ ॥

તેષો જોગેણ જહા, રત્તઘાર્દ ઘઠસ્સ પરિણામો ।

જીવકરણપ્પયોપ, ધીરિયમવિ તદ્દપ્પપરિણામો ॥ ૨ ॥

છાયા-મનસા વક્ષસાકાપેન ષાઽપિયુક્તસ્ય ધીર્યપરિણામઃ ।

વીવસ્ય આત્મીયઃ સ યોગસંજ્ઞો ઘિનાલ્લાવાતઃ ॥ ૧ ॥

તેનોયોગેન યયા રક્તઘાદિઃ ઘટસ્ય પરિણામઃ ।

જીવકરણપયોગઃ, ધીર્યમપિ તથાઽઽત્મપરિણામઃ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

પ્રકાર કા હોના હૈ સકરણ ઓર અકરણ જનમે અકરણ યોગ જો અષ્ટે દ્ય કેવલી હૈ હે જબ કૃત્સ્ન જ્ઞેય ઓર દૃશ્ય જન દો પદાર્થો મેં કેવલજ્ઞાન ઓર કેવલ દર્શન કો ઉપયુક્ત કરતે હૈ હસ સમય ઘનકે જો અપરિ સ્પન્દાત્મક અપ્રતિઘ ધોષવિશેષ હોતા હૈ વહ અકરણયોગ હૈ, હસ અકરણ યોગ કા ઘર્હા અધિકાર નહીં હૈ કેવલ સકરણ યોગ કા હો અધિકાર હૈ હસસે જીવ જિસકે ઘ્વારા કર્મો સે યુક્ત હોતા હૈ વહ યોગ હૈ ઘર્યો કિ “કર્મ્મ જોગનિમિત્તં ષડ્ઞહ” વેસા વક્ષન હૈ અથવા “યુક્ત્વતે” ઇતિ યોગઃ’ હસકે અનુસાર ધીર્યાન્તરાય કર્મ કે ક્ષયોપશમ સે જનિત જો જીવકા પરિણામવિશેષ હૈ વહ યોગ હૈ । કહા મી હૈ-“મળસા ઘયસા

તે યોગના બે પ્રકાર છે-(૧) સકરણ અને (૨) અકરણ

અક્ષેર્ય કેવલી જ્યારે કૃત્સ્ન જ્ઞેય ( સ પૂર્વે અણવા યોગ ) પદાર્થ અને દુર્ય આ બે પદાર્થોમાં કેવલજ્ઞાન અને કેવલદૃશ્યને ઉપયુક્ત કરે છે તે સમયે તેમનામાં બે અપરિસ્પન્દાત્મક અપ્રતિઘ વીચ વિશેષ હોય છે, તેનું નામ અકરણ યોગ છે તે અકરણ યોગનો અધિકાર અહીં ઘાણ નથી, અહીં તે સકરણ યોગનો જ અધિકાર સાધી રહ્યો છે એવે જેના દ્વારા કમથી યુક્ત થાય છે, તેનું નામ જ યોગ છે કારણ કે- કર્મ્મ જોગ નિમિત્ત વક્ષા’ જેનું શાસ્ત્રનુ વચન છે અથવા યુક્ત્વે ઇતિ યોગ’ જ્વાપાર કરે તેનું નામ યોગ છે આ યુ ત્પતિ અનુસાર વીર્યાન્તરાય કમના ક્ષયોપશમથી જનિત બે અપન

સ ત્રિવિધઃ-મનોયોગઃ, વાગ્યયોગઃ, કાયયોગઃ । તત્ર મનસા સહકારિકારણ-  
 મૂતેન યુક્તસ્ય જીવસ્ય યોગઃ-વીર્યપર્યાયો દુર્બલસ્ય યષ્ટિકાવદુષ્ટમ્બકારકો  
 મનોયોગ ઇતિ । કુતઃ પુનરયં મનોયોગઃ ? યતસ્તેન જ્ઞેયં જીવાજીવાદિ તત્ત્વં  
 મન્યતે ચિન્ત્યતેતસ્તસ્ય મનોયોગત્વમિતિ । સ ચ ચતુર્વિધઃ-સત્યમનોયોગઃ ૧,  
 મૃપામનોયોગઃ ૨, સત્યમૃપામનોયોગઃ ૩, અસત્યામૃપામનોયોગ ૪ શ્ચેતિ । મનસો  
 વા યોગઃ-કરણકારણાનુમતિરૂપો વ્યાપારો મનોયોગઃ । એવં વાગ્યયોગોઽપિ । એવં  
 કાયયોગોઽપિ વિજ્ઞેયઃ, નવરં સ સપ્તવિધઃ-ઔદારિકૌ 'દારિકમિશ્ર ૨ વૈક્રિય

કાણ " ઇત્યાદિ । ઉસ યોગ કે ત્રીન નામ્ ઇસ પ્રકાર સે હૈ-મનોયોગ,  
 વચનયોગ ઓર કાયયોગ સહકારિકારણમૂત મનસે યુક્ત જો જીવકા  
 યોગ વીર્યપર્યાય હૈ વહ મનોયોગ હૈ યહ મનોયોગ દુર્બલકો યષ્ટિકા(લકડી)  
 કે અવલમ્બ કી તરહ જીવ કો ઉપષ્ટમ્બ (આધાર) કારક હોતા હૈ  
 ક્યોં કિ જીવ મન સે જ્ઞેયરૂપ જીવ ઓર અજીવાદિ તત્ત્વ કા ચિન્તન  
 કરતા હૈ ઇસ કારણ ઇસે મનોયોગ કહા ગયા હૈ યહ મનોયોગ સત્ય-  
 મનોયોગ, અસત્યમનોયોગ, ઉભયમનોયોગ ઓર વ્યવહાર મનોયોગ કે  
 ભેદ સે ચાર પ્રકાર કા હૈ અથવા મન કા જો કરણ કારણ ઓર અનુ-  
 મતિરૂપ જો વ્યાપાર હૈ વહ મનોયોગ હૈ, ઇસી તરહ કા કથન વાગ્યયોગ કે  
 સમ્બન્ધ મેં ભી કરના ચાહિયે । ઓર ઇસી તરહ કા કથન કાયયોગ કે  
 સમ્બન્ધ મેં કરના ચાહિયે, કાયયોગ સાત પ્રકાર કા હોતા હૈ । ઔદા-  
 રિક ૧, ઔદારિકમિશ્ર ૨, વૈક્રિય ૩, વૈક્રિયમિશ્ર ૪, આહારક ૫, આહાર-

પરિણામ વિશેષ છે તેતુ નામ યોગ છે કહ્યું પણ છે કે-“મળસાવચસા કાણ” ઇત્યાદિ

તે યોગના ત્રણ પ્રકાર આ પ્રમાણે છે-(૧) મનોયોગ, (૨) વચનયોગ  
 અને (૩) કાયયોગ સહકારિ કારણમૂત મનથી યુક્ત હવને જે યોગ (વીર્ય-  
 પર્યાય) છે, તેનું નામ મનોયોગ છે જેમ દુર્બળને લાકડી આધાર રૂપ અને  
 છે, તેમ તે મનોયોગ હવને આધારકારક અને છે, કારણ કે હવ મનથી  
 જ્ઞેયરૂપ હવ અને અહવાદિ તત્ત્વનું ચિન્તન કરે છે. તે કારણે જ તેને  
 મનોયોગ કહ્યો છે. તે મનોયોગના નીચે પ્રમાણે ચાર પ્રકાર કહ્યા છે-(૧)  
 સત્ય મનોયોગ, (૨) અસત્ય મનોયોગ, (૩) ઉભય મનોયોગ અને (૪)  
 વ્યવહાર મનોયોગ. અથવા મનના જે કારણ, કારણ અને અનુમતિ રૂપ  
 વ્યાપાર છે તેતુ નામ મનોયોગ છે. એજ પ્રકારનું કથન વચનયોગ અને કાય-  
 યોગના વિષયમા પણ સમજાવું જોઈએ. કાયયોગ સાત પ્રકારનો કહ્યો છે-(૧)  
 ઔદારિક, (૨) ઔદારિક મિશ્ર, (૩) વૈક્રિય, (૪) વૈક્રિય મિશ્ર, (૫) આહારક

मिथ्या ४ ऽऽहारका ५ ऽऽहारकमिश्र ६ कर्मणकाययोग ७ भेदादिति । तत्रौदा-  
रिकादय शुद्धा सुवोधाः, औदारिकमिश्रस्तु-औदारिक एवापरिपूर्णो मिथ  
उच्यते, यथा शुद्धमिश्रं दधि न शुद्धतया नापि दधितया व्यपदिश्यते, तथाभ्याम  
परिपूर्णत्वात् । एव औदारिकं कर्मणेन मिथ्य औदारिकतया नापि कर्मणतया  
व्यपदेश्युं शक्यते, अपरिपूर्णत्वादिति तस्यौदारिकमिश्रव्यपदेशः । एव वैक्रियाहा  
रकमिभावपीति । यद्वा-औदारिकाणां शुद्धास्तत्पर्याप्तकस्य, मिथास्तत्पर्याप्तक  
स्येति । तत्रोत्पत्ताऔदारिककायः कर्मणेन औदारिकशरीरिणश्च वैक्रियाहारक-  
करणकाष्ठे वैक्रियाहारकाम्यां मिथो भवतीत्येवमौदारिकमिथः । तथा-वैक्रियामिथो

कमिथ्य ६, और कर्मणं काययोग ७, जय तक औदारिक अपरिपूर्ण रहता  
है तय तक वह औदारिक मिश्र कहा गया है । जैसे शुद्धमिश्र दधि न शुद्ध  
रूप से ही कहा जाता है और न दधिरूपसे ही, इसी प्रकार औदारिक शरीर  
कर्मण से मिथ्य हो कर न औदारिकरूप से कहा जा सकता है और न  
कर्मणरूप से ही कहा जा सकता है, क्यों कि वह अपरिपूर्ण है इस  
लिये उसमें औदारिकमिश्रता कही गई है । इसी प्रकार से वैक्रिय और  
आहारक में भी मिथ्यता जाननी चाहिये । अथवा औदारिक आदि शुद्ध  
शरीर पर्याप्त जीवोंको होते हैं, और मिथ्य अपर्याप्तक जीवको होता है,  
उत्पत्ति में औदारिक शरीरवाले का औदारिककाय कर्मण से और  
वैक्रिय, आहारक करने के फलमें वैक्रिय और आहारक इनसे मिथ्य  
होता है । इस तरह से औदारिक में मिथ्यता जाननी चाहिये । वैक्रिय

(६) आहारक मिथ्य अने (७) कर्मण काययोग औदारिक आदि शुद्धता अथ संरक्षण  
के लिये सुभी औदारिक अपरिपूर्ण रहे थे, तब सुभीतेने औदारिक मिथ्य कहे  
थे अथी शीते ज्ञानमिश्रित-हर्षी ज्ञान रूपे पक्ष ज्ञानभातुं नथी अने हर्षी  
रूपे पक्ष ज्ञानभातुं नथी ज्ञान प्रभावे कामजनी साथे मिथ्य ज्ञेवा औदा-  
रिक शरीरने औदारिक पक्ष कही शकतुं नथी अने कामज पक्ष कही शकतुं  
नथी, कामज के ते अपरिपूर्णं थे तेषी तेने औदारिक मिथ्य कहेवाभां आवे  
थे ज्ञेव प्रभावे वैक्रिय अने आहारकां पक्ष मिथ्यता समज्यी.

अथवा-औदारिक आदि शुद्ध शरीरने अज्ञान पर्याप्त उत्पत्तिमा  
थे, अने औदारिक मिथ्य आदि शरीरने अज्ञान अपर्याप्तक उत्पत्तिमा  
थे उत्पत्तिमा ज्ञेव औदारिक शरीरवाजानुं औदारिक शरीर कामज साथे अने  
वैक्रिय शरीर आहारक करने ज्ञेव वैक्रिय अने आहारक शरीर साथे मिथ्य  
होता थे अथी शीते औदारिकमां मिथ्यता समज्यी देवादि पर्यायनी उत्पत्तिमा

देवाद्युत्पत्तौ कर्मणेन, कृतवैक्रियस्य चौदारिकप्रवेशाद्वायामौदारिकेण, आहार-  
मिश्रस्तु साधिताहारककायप्रयोजनः पुनरीदारिकप्रवेशे औदारिकेणेति । कर्म-  
णकाययोगस्तु विग्रहगतौ केवलि समुद्घातेवेति । सर्व एवायं योगः पञ्चदशवेति ।  
अत्रायं संग्रहः—“ सच्चं १ मोसं २ मीसं ३, असच्चमोसं ४ मणोवईचेव च  
काओ उराल १ विक्रिय २ आहारग ३ मीस ६ कम्मजो-  
गोत्ति ७ ॥ १ ॥

छाया—सत्<sup>य</sup> मृषा मिश्रम् असत्यामृषा मनोवाक् चैव ।

काय औदारिक वैक्रियाहारकमिश्राः कर्मणयोग इति ॥ ”

सामान्येन योगं निरूप्य विशेषतोनारकादि चतुर्विंशति दण्डकेषु तं प्ररूप-  
यन्नाह—‘ एवं ’ इत्यादि सुगमं, नवरमतिमसद्ग निवारणायान्नाह—‘ विगर्लिय

काय देवादि पर्याय की उत्पत्ति से कर्मण से मिश्रित होने पर वैक्रिय  
मिश्र होता है तथा जिसने विक्रिया की है ऐसा जीव औदारिक में  
प्रवेश करता है उस काल में वह वैक्रिय शरीर वैक्रियमिश्र होता है ।  
तथा आहारक शरीरवाला जीव जब आहारककाय का प्रयोजन साधित  
कर लेता है और फिर औदारिक शरीर में प्रवेश करता है तब वह  
औदारिक से मिश्र हो जाता है इस तरह आहारक में मिश्रता जाननी  
चाहिये, कर्मण काययोग विग्रह गतिमें अथवा केवलि समुद्घात में  
होता है यह सब योग १५ प्रकारका होता है इस विषय में संग्राहक  
श्लोक इस प्रकार से हैं—“ सच्चं मोसं मीसं ” इत्यादि । तात्पर्य इस  
श्लोक का ऐसा है कि मन के चार ४ प्रकार, वचन के ४ प्रकार और  
काय के ७ प्रकार सब मिल कर पंद्रह प्रकार का योग हो जाता है । इस

वैक्रियकाय कर्मणु साथे मिश्र होय छे तथा तेने वैक्रिय मिश्र कडे छे. तथा  
जेहे विक्रिया करी होय ओवे एव न्यारे औदारिकमां प्रवेश करे छे, त्यारे  
ते वैक्रिय शरीर वैक्रिय मिश्र होय छे. तथा आहारक शरीरवाणो एव न्यारे  
आहारककायनु प्रयोजन सिद्ध करी ले छे अने इरी औदारिक शरीरमां प्रवेश  
करे छे, त्यारे ते शरीर औदारिक साथे मिश्र होय छे, आ रीते आहारकमां  
मिश्रता समजवी. कर्मणु काययोग विग्रहगतिमा अथवा केवलि समुद्घातमां  
थाय छे. आ अघां योगना १५ प्रकार छे आ विषयने नीचेनी सग्रहगाथामा  
प्रकट करवामां आवेल छे—“ सच्चं मोसं मीसं ” इत्यादि.

आ गाथानो लावार्थ नीचे प्रभावे छे—मनोयोगना चार प्रकार, वचन  
योगना चार प्रकार अने काययोगना सात प्रकार भणीने योगना कुल १५

मिथ्या ४ आहारका ५ आहारकमिथ ६ कर्मणकाययोग ७ भेदादिति । तद्योदा-  
रिकादय शुद्धाः सुषोधाः, औदारिकमिथस्तु-औदारिक एवापरिपूर्णो मिथ  
उच्यते, यथा शुद्धमिथं दधि न शुद्धतया नापि दधितया व्यपदिश्यते, तथाभ्याम-  
परिपूर्णत्वात् । एव औदारिक कर्मणेन मिथ नौदारिकतया नापि कर्मणतया  
व्यपदेष्टुं शक्यते, अपरिपूर्णत्वादिति तस्यौदारिकमिथव्यपदेशः । एव वैक्रियाह-  
रकमिथावपीति । यथा-औदारिकायाः शुद्धास्त्वपर्याप्तकस्य, मिथ्यास्त्वपर्याप्तक  
स्येति । तत्रोत्पत्त्यायौदारिककार्यः कर्मणेन औदारिकशरीरिण्यथ वैक्रियाहारक  
करणकाले वैक्रियाहारकाम्ना मिथो भवतीत्येवमौदारिकमिथः । तथा-वैक्रियमिथो

कमिथ ६, और कर्मण काययोग ७, जय तक औदारिक अपरिपूर्ण रहता  
है तबतक वह औदारिक मिथ कहा गया है । जैसे शुद्धमिथ दधि न शुद्ध  
रूप से ही कहा जाता है और न दधिरूप से ही, इसी प्रकार औदारिक शरीर  
कर्मण से मिथ हो कर न औदारिकरूप से कहा जा सकता है और न  
कर्मणरूप से ही कहा जा सकता है, क्यों कि वह अपरिपूर्ण है इस  
लिये उसमें औदारिकमिथता फही गई है । इसी प्रकार से वैक्रिय और  
आहारक में भी मिथता जाननी चाहिये । अथवा औदारिक आदि शुद्ध  
शरीर पर्याप्त जीवोंको होते हैं, और मिथ अपर्याप्तक जीवको होता है,  
उत्पत्ति में औदारिक शरीरघाले का औदारिककाय कर्मण से और  
वैक्रिय, आहारक करने के फालमें वैक्रिय और आहारक इनसे मिथ  
होता है । इस तरह से औदारिक में मिथता जाननी चाहिये । वैक्रिय

(६) आहारक मिथ अने (७) कर्मण काययोग औदारिक आदि शुद्धता अर्थ सरण  
उ अर्थ सुधी औदारिक अपरिपूर्ण रहे, त्वा सुधीतेने औदारिक मिथ रहे  
उ अर्थ शीते गेणमिथिय-इही गेण इये पण गेणभातु नथी अने इही  
इये पण गेणभातु नथी अने प्रभाजे कामदुनी साथे मिथ अने औदा-  
रिक शरीरने औदारिक पण कही शकतु नथी अने कर्मण पण कही शकतु  
नथी, कर्मण के ते अपरिपूर्ण है, तेषीतेने औदारिक मिथ कहेवामा आवे  
उ अर्थ प्रभाजे वैक्रिय अने आहारका पण मिथता समजणी.

अथवा-औदारिक आदि शुद्ध शरीरने सहजाव पर्याप्त उत्पत्ति अर्थ देय  
उ अने औदारिक मिथ आदि शरीरने सहजाव अपर्याप्त उत्पत्ति अर्थ देय  
उ उत्पत्ति काले औदारिक शरीरवाजानु औदारिक शरीर कर्मण साथे अने  
वैक्रिय शरीर, आहारक कल्पाने काले वैक्रिय अने आहारक शरीर साथे मिथ  
देय उ अर्थ शीते औदारिकमा मिथता समजणी देवदि पर्याप्त उत्पत्तिमा

देवाद्युत्पत्तौ कार्मणेन, कृतवैक्रियस्य चौदारिकप्रवेशाद्वायामौदारिकेण, आहार-  
मिश्रस्तु साधिताहारककायप्रयोजनः पुनरौदारिकप्रवेशे औदारिकेणेति । कार्म-  
णकाययोगस्तु विग्रहगतीं केवलि समुद्धातेवेति । सर्व एवायं योगः पञ्चदशवेति ।  
अत्रायं संग्रहः—“ सच्चं १ मोसं २ मीसं ३, असच्चमोसं ४ मणोवईचेव च  
काओ उराल १ विक्रिय २ आहारग ३ मीस ६ कम्मजो-  
गोत्ति ७ ॥ १ ॥

छाया—सत्<sup>य</sup> मृषा मिश्रम् असत्यामृषा मनोवाक् चैव ।

काय औदारिक वैक्रियाहारकमिश्राः कार्मणयोग इति ॥ ”

सामान्येन योगं निरूप्य विशेषतोनारकादि चतुर्विंशति दण्डकेषु तं प्ररूप-  
यन्नाह—“ एवं ’ इत्यादि सुगमं, नवरमतिप्रसङ्ग निवारणायान्—“ विगलिदिय

काय देवादि पर्याय की उत्पत्ति में कार्मण-से मिश्रित होने पर वैक्रिय  
मिश्र होता है तथा जिसने विक्रिया की है ऐसा जीव औदारिक में  
प्रवेश करता है उस काल में वह वैक्रिय शरीर वैक्रियमिश्र होता है ।  
तथा आहारक शरीरवाला जीव जब आहारककाय का प्रयोजन साधित  
कर लेता है और फिर औदारिक शरीर में प्रवेश करता है तब वह  
औदारिक से मिश्र हो जाता है इस तरह आहारक में मिश्रता जाननी  
चाहिये, कार्मण काययोग विग्रह गतिमें अथवा केवलि समुद्धात में  
होता है यह सब योग १५ प्रकारका होता है इस विषय में संग्राहक  
श्लोक इस प्रकार से हैं—“ सच्च मोसं मीसं ” इत्यादि । तात्पर्य इस  
श्लोक का ऐसा है कि मन के चार ४ प्रकार, वचन के ४ प्रकार और  
काय के ७ प्रकार सब मिल कर पंद्रह प्रकार का योग हो जाता है । इस

वैक्रियकाय कार्मण साथे मिश्र होय छे तेथी तेने वैक्रिय मिश्र कडे छे. तथा  
जेथे विक्रिया करी होय ओवे एव न्यारे औदारिकमां प्रवेश करे छे, त्यारे  
ते वैक्रिय शरीर वैक्रिय मिश्र होय छे. तथा आहारक शरीरवाणे एव न्यारे  
आहारककायनुं प्रयोजन सिद्ध करी ले छे अने इरी औदारिक शरीरमां प्रवेश  
करे छे, त्यारे ते शरीर औदारिक साथे मिश्र होय छे, आ रीते आहारकमां  
मिश्रता समजवी. कार्मण काययोग विग्रहगतिमा अथवा केवलि समुद्धातमां  
थाय छे. आ अथां योगना १५ प्रकार छे आ विषयने नीचेनी संग्रहगाथामा  
प्रकट करवामां आवेल छे—“ सच्चं मोसं मीसं ” इत्यादि.

आ गाथानो भावार्थ नीचे प्रमाणे छे—मनोयोगना चार प्रकार, वचन  
योगना चार प्रकार अने काययोगना सात प्रकार भणीने योगना कुल १५

વજમાય' इति, विकलेन्द्रिय वर्जानाम्, अत्र विकलेन्द्रिय छन्देन-द्वित्रिचतुरिन्द्रिया प्राणाः, तत्रैकेन्द्रियाणापेकं काययोग एव भवति, द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां तु काययोगरूपी द्वौ योगौ तेषां मनसोऽसम्प्रायात् । मन प्रभृद्वियोग सम्भवेनेदम परमाह- ' त्रिविधे पञ्चोगे ' इत्यादि सुगमे, मनः प्रभृतीनां व्यापियमाणानां जीवेन हेतु फलभूतेन यत् प्रकर्षेण व्यापारण-प्रयोगेन स प्रयोग, मनसः प्रयोगो मनः प्रयोगः । एव वाक्प्रयोगः कायप्रयोगोऽपि । ' अहा ' यथा योगसूत्रे विकलेन्द्रि

प्रकार सामान्यतः योगकी प्ररूपणा करके अथ सूत्रकार विशेषरूप से नारकादि चतुर्विंशति दण्डकों में इसकी प्ररूपणा करने के निमित्त— " एवं " इत्यादि सूत्र कहते हैं । इसके द्वारा उन्होंने ने ऐसा कहा है कि यह त्रिविध योग विकलेन्द्रियों को छोड़ कर बाकी के समस्त नारक से लेकर वैमानिक तक के जीवों को होता है । यहाँ विकलेन्द्रिय पद से दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों का ग्रहण हुआ है । एकेन्द्रिय जीवके केवल एक काययोग ही होता है, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियों के काय और वचन ये दो योग होते हैं । क्योंकि इनमें मनोयोग नहीं होता है । अथ सूत्रकार मन आदि योग के सम्यन्ध को लेकर ऐसा कहते हैं कि— " त्रिविधे पञ्चोगे पण्यसे " प्रयोग तीस प्रकार का कहा गया है । जीव के द्वारा मना आदि योगों को ओ प्रकर्षरूप से व्यापारयुक्त किया जाता है, वह मन-प्रयोग भादि है । मन

प्रकार છે-આ રીતે સામાન્યની અપેક્ષાએ યોગની પ્રરૂપણા કરીને હવે સૂત્રકાર નારકાદિ ૨૪ દણ્ડનાં અવોને અનુલક્ષીને યોગની વિશેષ પ્રરૂપણા કરે છે, " एवं " ઇત્યાદિ.

આ સૂત્ર દ્વારા સૂત્રકારે એ વાત પ્રકટ કરી છે કે વિકલેન્દ્રિયો સિવાયના નારકથી લઈને વૈમાનિક પદાન્તના સમસ્ત અવોમાં આ ત્રિવિધ યોગોનો સહસાવ હોય છે એકેન્દ્રિય, દ્વિન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય અવોને વિષ્ટેન્દ્રિય કહે છે એકેન્દ્રિય અવોમાં માત્ર કાયયોગનો જ સહસાવ હોય છે દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિય અવોમાં કાયયોગ અને વચનયોગનો સહસાવ હોય છે, પણ મનોયોગનો સહસાવ હોતો નથી.

મનોયોગ આદિ યોગોની પ્રરૂપણા કરીને હવે સૂત્રકાર પ્રયોગોની પ્રરૂપણા કરે છે— " ત્રિવિધે પञ्ચોગે પण्यसे " પ્રયોગ ત્રણ પ્રકારના કહ્યા છે અવના દ્વારા મનઃ આદિ યોગોને પ્રકરૂપે વ્યાપારમુક્ત કરવાની એ ક્રિયા કાય છે તેને પ્રયોગ કહે છે તેના ત્રણ પ્રકાર નીચે પ્રમાણે છે—(૧) મનાયોગ,

यवर्जानां नैरयिकादि वैमानिकान्तानां योगः प्रोक्तस्तथा प्रयोगोऽपि भावनीयः । मनोवाक्कायसम्बन्धेनैवकरणसूत्रमाह—‘ त्रिविहे करणे ’ इत्यादि, क्रियते येन तत् करणं मननादि क्रियासु प्रवर्त्तमानस्यात्मन उपकरणभूतस्तथातथा परिणामयुक्तः पुद्गलसंघात इत्यर्थः, तत् त्रिविधम्—मनःकरणं, वाक्करणं, कायकरणंवेति । तत्र मन एवकरणं—मनःकरणम् । एवमितरे अपि वाच्ये । ‘ एव ’ इत्यादि, एवम्—पूर्वोक्तप्रकारेणैव योगप्रयोगसूत्रवदत्रापि नारकादारभ्य विकलेन्द्रियवर्जवैमानिकपर्यन्त-

को अधिक से अधिकरूप मे व्यापारयुक्त करना इसका नाम मनःप्रयोग है वचन को अधिक से अधिक रूपसे प्रयुक्त करना वचनप्रयोग है । कायको अधिक से अधिक रूप मे प्रयुक्त करना काययोग है । यह त्रिविध प्रयोग भी नैरयिक से लेकर वैमानिक तक के जीवों मे होता है । मनःप्रयोग और वचनप्रयोग एकेन्द्रिय जीव मे और मनःप्रयोग विकेन्द्रियों मे दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवोंमे नहीं होता है । अब सूत्रकार मनोवाक्काय के सम्बन्ध से ही करण सूत्र का कथन करते हैं—“ त्रिविहे करणे ” इत्यादि—मननादि क्रियाओं मे प्रवर्त्तमान आत्माको उपकरण भूत जो तथा तथा परिणामयुक्त पुद्गलसंघात है उसका नाम करण है । वह करण तीन प्रकार का है । मनःकरण, वचनकरण और कायकरण, मनरूप करण का नाम मनःकरण है, वचनरूप करण का नाम वाक्करण और कायरूप करण का नाम कायकरण है,

(२) वचनप्रयोग अने (३) कायप्रयोग. मनने अधिकभां अधिक रूपे व्यापारयुक्त करणुं तेनुं नाम मनःप्रयोग छे वचनने अधिकभां अधिक रूपे व्यापारयुक्त करणुं तेनुं नाम वचनप्रयोग छे अने कायने अधिकभां अधिकरूपे व्यपारयुक्त करणी तेनुं नाम कायप्रयोग छे आ त्रणे प्रयोगने सदृलाव पणु नारकाथी लधने वैमानिको पर्यन्तना एवोभां होय छे. एकेन्द्रिय एवोभां मनःप्रयोग अने वचन प्रयोगने सदृलाव होतो नथी, तेमज्झीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अने चतुरिन्द्रिय एवोभां मनःप्रयोगने सदृलाव होतो नथी.

इवे सूत्रकार मन, वचन अने कायरूप त्रणु करणुनुं निरूपणु करे छे—

“ त्रिविहे करणे ” इत्यादि—

मननादि क्रियाओंमे प्रवृत्त थयेला आत्माने उपकरणभूत एवा ते ते परिणामयुक्त पुद्गलने जे संघात थाय छे, तेनुं नाम करणु छे ते करणुना नीचे प्रमाणे त्रणु प्रकार छे—(१) मनकरणु, (२) वचन करणु ( वाक्करणु ) अने (३) कायकरणु मनरूप करणुनुं नाम मनकरणु छे, वचनरूप करणुनुं नाम वाक्करणु छे अने कायरूप करणुनुं नाम कायकरणु छे. योग अने प्रयोगनी



कर्मार्थं' इति, विकलेन्द्रिय वर्जनाम्, अत्र विकलेन्द्रिय शब्देन—द्वित्रिचतुरिन्द्रिया प्राणाः, तत्रैकेन्द्रियाणामेक काययोग एव मरुति, द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां तु कायधारूपौ द्वौ योगौ तेषां मनसोऽसद्भावात् । मनःप्रमृत्तियोग सम्पन्नेनेदमपरमाह—' त्रिविधे पञ्चोगे ' इत्यादि सुगमे, मनः प्रमृत्तीनां व्याप्तियमाणाणा जीवेन हेतु कर्तृभूतेन यत् प्ररूपेण व्यापारणं—प्रयोजनं तु प्रयोगः, मनसः प्रयोगो मनः प्रयोगः । एव साक्षप्रयोगः कायप्रयोगोऽपि । ' जहा ' यथा योगसूत्रे विकलेन्द्रि

प्रकार सामान्यतः योगकी प्ररूपणा करके अथ सूत्रकार विशेषरूप से नारकादि चतुर्विंशति दण्डकों में इसकी प्ररूपणा करने के निमित्त—  
" एव " इत्यादि सूत्र कहते हैं । इसके द्वारा उन्होंने ऐसा कहा है कि यह त्रिविध योग विकलेन्द्रियों को छोड़ कर बाकी के समस्त नारक से लेकर वैमानिक तक के जीवों को होता है । यहां विकलेन्द्रिय पद से दो इन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों का ग्रहण हुआ है । एकेन्द्रिय जीवके केवल एक काययोग ही होता है, दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियों के काय और वचन ये दो योग होते हैं । क्योंकि इनमें मनोयोग नहीं होता है । अब सूत्रकार मन आदि योग के सम्पन्न को लेकर ऐसा कहते हैं कि—" त्रिविधे पञ्चोगे पञ्चोत्ते " प्रयोग तीन प्रकार का कहा गया है । जीव के द्वारा मनः आदि योगों को जो प्रकर्षरूप से व्यापारयुक्त किया जाता है, वह मन-प्रयोग आदि है । मन

प्रकार छे—जा रीते आमान्यनी अपेक्षाये योजनी प्ररूपणा करीने छे सूत्रकार नारकादि २४ दण्डना लवोने अनुलक्षीने योजनी विशेष प्ररूपणा करे छे, " एव " इत्यादि ।

जा सूत्र द्वारा सूत्रकार ने वात प्रकट करी छे के विकलेन्द्रियो सिवा बना नारकादी लक्षने वैमानिक वर्धन्तना समस्त लवोभां जा त्रिविध योजोने सङ्ख्याव बोध छे एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जने चतुरिन्द्रिय लवोने विकलेन्द्रिय कडे छे एकेन्द्रिय लवोभां मात्र काययोजनो न सङ्ख्याव बोध छे । द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जने चतुरिन्द्रिय लवोभां काययोजनो जने वचनयोजनो सङ्ख्याव बोध छे पञ्च मनोयोजनो सङ्ख्याव बोधो नथी ।

मनोयोजन आदि योजोनी प्ररूपणा करीने छे सूत्रकार प्रयोजोनी प्ररूपणा करे छे—' त्रिविधे पञ्चोगे पञ्चोत्ते " प्रयोजन त्रय प्रकारना कथा छे लवना द्वारा मन आदि योजोने प्ररूपेण व्यापारयुक्त करवानी के क्रिया बोध छे तेने प्रयोजन कडे छे तेना त्रय प्रकार नीध प्रभाव छे—(१) मनोप्रयोजन,

યવર્જાનાં નૈરયિકાદિ વૈમાનિકાન્તાનાં યોગઃ પ્રોક્તસ્તથા પ્રયોગોઽપિ ભાવનીયઃ ।  
મનોવાક્કાયસમ્બન્ધેનૈવકરણમૂત્રમાહ—‘તિવિહે કરણે’ ઇત્યાદિ, ક્રિયતે યેન  
તત્ કરણં મનનાદિ ક્રિયાસુ પ્રવર્ત્તમાનસ્યાત્મન ઉપકરણભૂતસ્તથાતથા પરિણામયુક્તઃ  
પુદ્ગલસંઘાત ઇત્યર્થઃ, તત્ ત્રિવિધમ્—મનઃકરણં, વાકરણં, કાયકરણંવેતિ । તત્ર  
મન એવકરણં—મનઃકરણમ્ । એવમિતરે અપિ વાચ્યે । ‘એવં’ ઇત્યાદિ, એવમ્—પૂર્વો-  
ક્તપ્રકારેણૈવ યોગપ્રયોગમૂત્રવદત્રાપિ નારકાદારભ્ય વિકલેન્દ્રિયવર્જવૈમાનિકપર્યન્ત-

કો અધિક સે અધિકરૂપ મે વ્યાપારયુક્ત કરના હસકા નામ મનઃપ્રયોગ  
હૈ વચન કો અધિક સે અધિક રૂપમે પ્રયુક્ત કરના વચનપ્રયોગ હૈ ।  
કાયકો અધિક સે અધિક રૂપ મે પ્રયુક્ત કરના કાયયોગ હૈ । ગહ  
ત્રિવિધ પ્રયોગ મી નૈરયિક સે લેકર વૈમાનિક તક કે જીવોં મે હોતા  
હૈ । મનઃપ્રયોગ ઓર વચનપ્રયોગ એકેન્દ્રિય જીવ મે ઓર મનઃપ્રયોગ  
વિકેન્દ્રિયોં મે દો ઇન્દ્રિય, તેહન્દ્રિય ઓર ચૌહન્દ્રિય જીવોં મેં નહી હોતા  
હૈ । અવ સૂત્રકાર મનોવાક્કાય કે સમ્બન્ધ સે હી કરણ સૂત્ર કા કથન  
કરતે હૈ—“તિવિહે કરણે” ઇત્યાદિ—મનનાદિ ક્રિયાઓં મેં પ્રવર્ત્ત-  
માન આત્માકો ઉપકરણ ભૂત જો તથા તથા પરિણામયુક્ત પુદ્ગલસંઘાત હૈ  
ઉસકા નામ કરણ હૈ । વહ કરણ તોન પ્રકાર કા હૈ । મનઃકરણ, વચન-  
કરણ ઓર કાયકરણ, મનરૂપ કરણ કા નામ મનઃકરણ હૈ, વચનરૂપ  
કરણ કા નામ વાકરણ ઓર કાયરૂપ કરણ કા નામ કાયકરણ હૈ,

(૨) વચનપ્રયોગ અને (૩) કાયપ્રયોગ. મનને અધિકમાં અધિક રૂપે વ્યાપારયુક્ત  
કરવું તેતું નામ મનઃપ્રયોગ છે વચનને અધિકમાં અધિક રૂપે વ્યાપારયુક્ત  
કરવું તેતું નામ વચનપ્રયોગ છે અને કાયને અધિકમાં અધિકરૂપે વ્યાપાર-  
યુક્ત કરવી તેતું નામ કાયપ્રયોગ છે આ ત્રણે પ્રયોગને સહલાવ પણ નાર-  
કોથી લઈને વૈમાનિકો પર્યન્તના જીવોમાં હોય છે. એકેન્દ્રિય જીવોમાં મનઃ  
પ્રયોગ અને વચન પ્રયોગને સહલાવ હોતો નથી, તેમજ દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય  
અને ચતુરિન્દ્રિય જીવોમાં મનઃપ્રયોગને સહલાવ હોતો નથી.

હવે સૂત્રકાર મન, વચન અને કાયરૂપ ત્રણ કરણતું નિરૂપણ કરે છે—

“તિવિહે કરણે” ઇત્યાદિ—

મનનાદિ ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્ત થયેલા આત્માને ઉપકરણભૂત એવા તે તે  
પરિણામયુક્ત પુદ્ગલને જે સંઘાત થાય છે, તેતું નામ કરણ છે તે કરણના  
નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર છે—(૧) મનકરણ, (૨) વચન કરણ (વાકકરણ)  
અને (૩) કાયકરણ મનરૂપ કરણતું નામ મનકરણ છે, વચનરૂપ કરણતું નામ  
વાકકરણ છે અને કાયરૂપ કરણતું નામ કાયકરણ છે. યોગ અને પ્રયોગની

વાસ્પમિતિ માવ । અથવા-યોગપ્રયોગકરણશબ્દા एकार्यवाचका इति नार्यभेद, પ્રયાણામપ્યેપામેકાર્યતયાऽऽगमे' ઘટ્ટુશઃ પ્રઠતિર્દર્શનાત્ । અથ મકારાન્તરેણ કરણત્રૈવિધ્યમાહ— 'તિવિદે' ઇત્યાદિ, આરમ્ભણમારમ્ભઃ-પૃથિવ્યાદ્યુપમર્દન, તસ્ય કરણ, ઇ એ વા કરણમિત્યારમ્ભકરણમ્ । એવં સરમ્ભકરણ સમારમ્ભકરણ મપિ વાચ્યમ્ । સમ્ર-સરમ્ભકરણ પૃથિવ્યાદિ વિષયે મનસઃ સવલેશ્ચકરણં, સમાર મ્ભકરણ પૃથિવ્યાદીના સન્તાપકરણમિતિ ।

તત્તથવાનાર્થે—“ સંકલ્પો સરંભો પરિતાવકરો મથે સમારંભો ।

આરંભો ઉદ્વમ્ભો, સુદનયાણ તુ સવ્વસિ ॥ ૧ ॥

યોગપ્રયોગ સૂત્રોં કી તરહ યહાં પર મી નારક સે છેકર ઘેમાનિક તક કે જીર્ષો મે ઇન તીન કરણોં કા સમ્ભાવ કહના યાદિયે । ઇસ કપનમે એકેદ્રિય ઓર ઘિક્ષેદ્રિય જીર્ષોં કા પરિદ્ધાર કરના યાદિયે । ઘર્ષોં કિ ઘનમે ઘે તીન કરણ નહોં હોતે હેં । અથવા-યોગ પ્રયોગ ઓર કરણ શબ્દ ઘે સય એક હી અર્થ કે વાચક હૈ અતઃ ઇનમે અર્થભેદ કુષ્ટ મી નહોં હૈ । ઘે તીનોં એકાર્થક હૈ । અથ ગુપ્તકાર પ્રકારાન્તર સે પુનઃકરણ કી ત્રિવિધતા કા કપન કરતે હેં— 'તિવિદે' ઇત્યાદિ । આરમ્ભકરણ, સરમ્ભકરણ ઓર સમારમ્ભકરણ પૃથિવ્યાદિ જીર્ષોં કા ઘપમર્દન કરના યહ આરંભકરણ હૈ પૃથિવ્યાદિ જીર્ષોં કે ઘિષય મે મનકો સખ્ષેશિત કરના યહ સરમ્ભકરણ હૈ તથા પૃથિવ્યાદિક જીર્ષોં કો સન્તાપ પર્દુયાના યહ સમારમ્ભ કરણ હૈ । કહા મી હૈ—“ સકલ્પો સરમ્ભો ” યહ કરણ

એમ આ ત્રણે કરણોના નારકથી ઘળને વૈમાનિક પર્દનતા એવોમ્ સદ્ભાવ છે, એમ સમજવું એકેન્દ્રિય એવોમ્ માત્ર કાયકરણને જ સદ્ભાવ ડોષ છે અને દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય અને ચતુરિન્દ્રિયોમ્ વાકકરણ અને કાયકરણને સદ્ ભાવ ડોષ છે આ રીતે ત્રિવેન્દ્રિય એવોમ્ ત્રણે ત્રણ કરણોના સદ્ભાવ ડોષો નથી, પણ ઉપમુક્ત વચન અને કાય વેકરણોના જ સદ્ભાવ ડોષ છે

અથવા—યોગ, પ્રયોગ અને કરણમ્ કોઈ અર્થસિદ્ધ નથી, તે ત્રણે શબ્દ એકાધક જ છે હવે સૂતકાર અથ મકારે કરણની ત્રિવિધતા પ્રકટ કરે છે— “તિવિદે” ઇત્યાદિ. કરણના ત્રીણે પ્રભાણે પણ ત્રણ પ્રકાર પડે છે—(૧) આરભકરણ (૨) સરભકરણ અને (૩) સમારભકરણ પૃથ્વીકાય આદિ એવોનું ઉપમર્દન કરવું તેનું નામ આરભકરણ છે પૃથ્વીકાય આદિ એવોના વિષયમ્ મનને સહોતિત (હૈથયુક્ત) કરવું તેનું નામ સરભકરણ છે, તથા પૃથ્વી કાય આદિ એવોને સતાપ પડેવાયારવો, તેનું નામ સમારભકરણ છે કમુ પણ છે કે—“ સકલ્પા સરમ્ભો ” ઇત્યાદિ.

१—आगसे—प्रज्ञापनायां यथा—“ कडविद्वेण भंते पओगे पणत्ते ’ इत्यादि ।  
आवश्यके करणतयोक्तं तथाहि—‘ जुंजण करणं तिग्धिं ’ इत्यादि ।

छाया—संकल्पः संरम्भः परितापकरो भवेत् समारम्भः ।

आरम्भ उपद्रवतः शुद्धनयानां तु सर्वेषाम् ॥ १ ॥ इति ।

इदं करणत्रयं चतुर्विंशतिदण्डकेषु भवतीत्याह—‘ निरंतरं ’ इत्यादि । निर-  
न्तरं—अन्तररहितं नारकादारभ्य वैमानिकपर्यन्तानां सर्वेषामपि वाच्यमिति भावः ।  
नवरं—संरम्भकरणमसंज्ञिनां पूर्वभवसंस्कारानुवृत्तिमात्रतया विभावनीयमिति ॥ सू० ५ ॥

आरम्भादिकरणस्य क्रियान्तरस्य च फलमुपदर्शयन् सूत्रचतुष्टयमाह—

मूलम्—तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेति,  
तं जहा--पाणे अइवाइत्ता भवइ १, मुसंवइत्ता भवइ २, तहा-  
रूवं समणं वा साहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असणपाण-  
खाइमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं  
जीवा अप्पाउयत्ताए कम्मं पकरेति १ । तिहिं ठाणेहिं जीवा  
दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेति, तं जहा-णो पाणे अइवाइत्ता भवइ  
१, णो मुसंवइत्ता भवइ २, तहारूवं समणं वा साहणं वा फासुए-  
सणिज्जेणं असणपाणखाइमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवइ ३,  
इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा दीहाउयत्ताए कम्मं पकरेति २ ।

त्रय चौबीस दण्डकों से होता है । इसीलिये यहां—“ निरंतर ” ऐसा  
पाठ कहा गया है । नारक से लेकर वैमानिक तकके सब जीवों को यह  
करणत्रय होता है, यहां एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों का वर्जन नहीं  
कहा है । असंज्ञी जीवों का संरंभकरण पूर्वभव के संस्कार की अनु-  
वृत्ति मात्ररूप से समझना चाहिये ॥ सू० ५ ॥

આ કરણત્રયનો સદ્ભાવ ચોવીસે દંડકોમાં હોય છે, તે કારણે અહીં  
“ નિરંતર ” શબ્દનો પ્રયોગ કર્યો છે નારકોથી લઈને વૈમાનિકો પર્યંતના  
સમગ્ર જીવોમાં આ ત્રણે કરણોનો સદ્ભાવ હોય છે એકેન્દ્રિય અને વિકલે-  
ન્દ્રિય જીવોમાં પણ આ કરણત્રયનો સદ્ભાવ રહે છે, અસંજી જીવોમાં સરભ-  
કરણ પૂર્વભવના સંસ્કારની અનુવૃત્તિ માત્ર રૂપે સમજવું જોઈએ ॥ સૂ. ૫ ॥

तिहिं ठाणेहिं जीवा असुमदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति, त जहा पाण अइवाइत्ता भवइ १, मुस वइत्ता भवइ २, तहारूव समणं वा माहण वा हीलित्ता निंदित्ता खिसित्ता गरहित्ता अव माणित्ता अन्नयरे णं अमणुघ्णेणं अपीइकारणं असणपाणखा इमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेणहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुम दीहाउयत्ताए कम्म पकरेति । ३। तिहिं ठाणेहिं जीवा सुमदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति, त जहा-णो पाणे अइ वाइत्ता भवइ १, णो मुसवइत्ता भवइ २, तहारूव समणवा माहण वा षदित्ता नमसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाण मगलं देवय चेइय पज्जुवासित्ता मणुन्नेणपीइकारणं असणपाणखा इमसाइमेण पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेणहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति । ४ ॥ सू० ६ ॥

छाया—भिमि स्थानैर्नीवा अत्पायुत्कतया कर्ष्यं प्रकुर्वन्ति, उचयया प्रागान् अतिपातयित्ता भवति १, मृपायका भवति २, तथारूप भ्रमणं वा माहनं वा ममा

अय सूत्रकार आरम्भादि करणका और मियातर का फल दिखाने हुए सूत्रचतुष्टय ( चार सूत्रों ) का कथन करते हैं—

‘ तिहिं ठाणेहिं जीवा अत्पाउयत्ताए कम्मं पकरेति’ इत्यादि ।  
 सूत्रार्थ—इन तीन स्थानोंसे जीव अल्प आयुष्य आदि रूपसे कर्म का यत्न करता है । जैसे—एक यह जो प्राणों का विनाशकर्ता होता है १, दूसरा यह जो मृपायका होता है । तीसरा यह जो तथारूपयाले भ्रमण को

दोने सूत्रों आदि करणत्वे अने द्विधान्तरत्वे इव इतिवत् आर सूत्रोत्तु कथन करे ते-’ तिहिं ठाणेहिं जीवा अत्पाउयत्ताए कम्मं पकरेति’ इत्यादि सूत्रार्थ—प्राये इक्षीपेतां तेषु स्थानेषु आरवे। दाश। एतन्मथ आगम्य आदि इषे इमने। अथ करे ते-(१) प्राणैः। विनाश करणार्थी, (२) अल्प आयुष्य वादी अने (३) तथ इव ( भ्रमणत्वी एतेऽप्यु अदि धारण्यु इतिवत् ) अथ

सुकेन अनेपणीयेन अशनपानखाद्यभरणेन प्रतिलम्भयिता भवति ३, इत्येतै-  
स्त्रिभिः स्थानैर्जीवा अल्पायुष्कृतया कर्मप्रकुर्वन्ति ॥१॥ त्रिभिः स्थानैर्जीवा दीर्घा-  
युष्कृतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा-नोप्राणान् अतिपातयिता भवति १, नो मृषावक्ता  
भवति २, तथारूपं श्रमणं वा माहन वा प्रासुकैपणीयेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन  
प्रतिलम्भयिता भवति ३, इत्येतैस्त्रिभिः स्थानैर्जीवा दीर्घायुष्कृतया कर्मप्रकुर्वन्ति  
॥२॥ त्रिभिः स्थानैर्जीवा अशुभदीर्घायुष्कृतया कर्मप्रकुर्वन्ति, तद्यथा-प्राणान् अति-  
पातयिता भवति १, मृषावक्ता भवति २, तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा हीलिता,  
निन्दिता, खिसिता, गर्हिता, अदमानयिता अन्यतरेण अमनोज्ञेन अप्रीतिकारकेण

अथवा माहन को अप्रासुक एवं अनेपणीय अशन, पान, खाद्य और  
स्वाद्यरूप आहार से प्रतिलाभित करता है । इस तरह इन तीन स्थानों  
से जीव अल्प आयुष्करूप से कर्मका बन्ध करता है ।

इन तीन स्थानों से जीव दीर्घ आयुष्करूप से कर्मका बन्ध करता  
है । जैसे-जो प्राणों का विनाश करनेवाला नहीं होता है एक वह, तथा  
दूसरा वह जो मृषावादी नहीं होता है, तथा तीसरा वह जो तथारूप  
वाले श्रमण को अथवा माहन को प्रासुक एवं एपणीय अशन, पान,  
खाद्य और स्वाद्यरूप आहार से प्रतिलाभित करता है । इस तरह के  
इन तीन स्थानों से जीव दीर्घ आयुष्करूप से कर्म का बन्ध करता है २।  
इन तीन स्थानोंसे जीव अशुभदीर्घ आयुष्करूपसे कर्मका बन्ध करता है।  
जैसे-जो प्राणातिपात-प्राणों का विनाशक होता है एक वह, तथा दूसरा  
वह जो मृषावक्ता होना है २ तथा तीसरा वह जो तथारूपवाले श्रमण

अथवा माहनने अप्रासुक अने अनेपणीय अशन, पान, आद्य अने स्वाद्यरूप  
यत्तुर्विध आहार वडोवराववाथी. आ त्रणु स्थानो वडे एव अल्प आयुष्क  
इपे कर्मनो भध करे छे.

नीचेना त्रणु स्थानो (कारणो) द्वारा एव दीर्घ आयुष्क इपे कर्मनो  
भध करे छे-(१) प्राणोना विनाश नडी करवाथी, (२) मृषावादी नडीं भनवाथी,  
अने (३) तथाइप श्रमणु अने माहनने प्रासुक अने एपणीय अशन, पान,  
आद्य अने स्वाद्यरूप आहार वडोवराववाथी आ त्रणु स्थानोथी एव दीर्घा-  
युष्क इपे कर्मनो भध करे छे.

नीचेना त्रणु स्थानो द्वारा एव अशुभ दीर्घ आयुष्क इपे कर्मनो भध  
करे छे-(१) प्राणोना विनाश करवाथी, (२) मृषावादी (असत्य जालनार)  
थवाथी अने (३) तथाइपवाणा श्रमणु आ वा माहनुनी अर्त्तना करवाथी,  
या

तिर्हि ठाणेर्हि जीवा असुमदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति, तं जहा पाणं अइवाइत्ता भवइ १, मुस वइत्ता भवइ २, तहारूव समणं वा माहण वा हीलित्ता निंदित्ता खिसित्ता गरहित्ता अवा माणित्ता अम्लयरे णं अमणुत्तेणं अपीइकारएणं असणपाणत्ता इमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेएहिं तिर्हि ठाणेर्हि जीवा असुम दीहाउयत्ताए कम्म पकरेति । ३। तिर्हि ठाणेर्हि जीवा सुमदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति, त जहा-णो पाणे अइ वाइत्ता भवइ १, णो मुसवइत्ता भवइ २, तहारूव समणवा माहणं वा वदित्ता नममित्ता सकारित्ता सम्माणित्ता कल्लाण मगलं देवय चेइय पज्जुवासित्ता मणुत्तेणं पीइकारएण असणपाणत्ता इमसाइमेण पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेएहिं तिर्हि ठाणेर्हि जीवा सुहदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति । ४ ॥ सू० ६ ॥

छाया—'मिभि' स्थानेर्जीवा अस्यायुक्कसया कर्म मकुर्वन्ति, तद्यथा मामान् भविपातयिष्या मवति १, मृपावक्ता मवति २, तयारूपं भ्रमण वा माहन वा ममा

अथ सूत्रकार आरम्भादि करणका और क्रियान्तर का फल दिखाते हुए सूत्रस्तुष्टय ( चार सूत्रों ) का कथन करते हैं—

‘ तिर्हि ठाणेर्हि जीवा अप्पाउपत्ताए कम्मं पकरेति ’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—इन तीन स्थानोंसे जीव अल्प आयुष्य आदि रूपसे कर्म का वचन करता है । जैसे—एक यह जो प्राणों का विनाशकर्ता होता है १, दूसरा यह जो मृपावक्ता होता है । तीसरा यह जो तयारूपवाले भ्रमण को

दवे सूत्रार व्याख्यादि इत्यन्तु अने क्रियान्तरानु इति इत्यादि चार सूत्रानु कथन करे ऐ-‘ तिर्हि ठाणेर्हि जीवा अप्पाउपत्ताए कम्मं पकरेति ’ इत्यादि

सूत्रार्थ—तीने इत्यादिवां वचन स्थानो भाष्यो दास एव अथ आयुष्य आदि रूपे कर्मनो वचन करे ऐ-(१) प्राणोना विनाश करवाधी, (२) मृपावक्ता मोल वाधी अने (३) तय इव ( सुदपत्ती स्नेहस्य आदि धारण करवाधी ) भ्रमण

सुकेन अनेपणीयेन अशनपानखाद्यभ्रवाद्येन प्रतिलम्भयिता भवति ३, इत्येतैस्त्रिभिः स्थानैर्जीवा अल्पायुष्कतया कर्मप्रकुर्वन्ति ॥१॥ त्रिभिः स्थानैर्जीवा दीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा-नो प्राणान् अतिपातयित्वा भवति १, नो मृषावक्ता भवति २, तथारूपं श्रमणं वा माहन वा प्राङ्मुक्तेपणीयेन अशनपानखाद्यस्वाद्येन प्रतिलम्भयिता भवति ३, इत्येतैस्त्रिभिः स्थानैर्जीवा दीर्घायुष्कतया कर्मप्रकुर्वन्ति ॥२॥ त्रिभिः स्थानैर्जीवा अशुभदीर्घायुष्कतया कर्मप्रकुर्वन्ति, तद्यथा-प्राणान् अतिपातयिता भवति १, मृषावक्ता भवति २, तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा हीलिता, निन्दिता, खिसिता, गर्हिता, अदमानयिता अन्यत्तरेण अमनोज्ञेन अप्रीतिकारकेण

अथवा माहन को अप्रासुक एवं अनेपणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यरूप आहार से प्रतिलाभित करता है । इस तरह इन तीन स्थानों से जीव अल्प आयुष्करूप से कर्म का बन्ध करता है ।

इन तीन स्थानों से जीव दीर्घ आयुष्करूप से कर्म का बन्ध करता है । जैसे-जो प्राणों का विनाश करनेवाला नहीं होता है एक वह, तथा दूसरा वह जो मृषावादी नहीं होता है, तथा तीसरा वह जो तथारूप वाले श्रमण को अथवा माहन को प्रासुक एवं एपणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यरूप आहार से प्रतिलाभित करता है । इस तरह के इन तीन स्थानों से जीव दीर्घ आयुष्करूप से कर्म का बन्ध करता है । इन तीन स्थानों से जीव अशुभदीर्घ आयुष्करूप से कर्म का बन्ध करता है । जैसे-जो प्राणातिपात-प्राणों का विनाशक होता है एक वह, तथा दूसरा वह जो मृषावक्ता होता है २ तथा तीसरा वह जो तथारूपवाले श्रमण

अथवा माहनने अप्रासुक अने अनेपणीय अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्यरूप यतुर्विध आहार वडोवराववाथी आ त्रणु स्थानो वडे एव अल्प आयुष्क इपे कर्मनो भंध करे छे.

नीचेना त्रणु स्थानो (कारणो) द्वारा एव दीर्घ आयुष्क इपे कर्मनो भंध करे छे-(१) प्राणोना विनाश नडी करवाथी, (२) मृषावादी नडी अनवाथी, अने (३) तथाइय श्रमणु अने माहनने प्रासुक अने अनेपणीय अशन, पान, खाद्य अने स्वाद्यरूप आहार वडोवराववाथी. आ त्रणु स्थानोथी एव दीर्घायुष्क इपे कर्मनो भंध करे छे.

नीचेना त्रणु स्थानो द्वारा एव अशुभ दीर्घ आयुष्क इपे कर्मनो भंध करे छे-(१) प्राणोना विनाश करवाथी, (२) मृषावादी (असत्य बोलनार) यवाथी अने (३) तथाइयवाणा श्रमणु अथवा माहननी लत्तर्ना करवाथी,



तिर्हि ठाणेहि जीवा असुभदीहाउयत्ताए कम्म पकरोति, तं जहा पाण अइवाइत्ता भवइ १, मुस वइत्ता भवइ २, तहारूव समणं वा साहण वा हीलित्ता निंदित्ता खिसित्ता गरहित्ता अव माणित्ता अन्नयरे णं अमणुझेणं अपीइकारणं असणपाणखा इमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेएहिं तिर्हि ठाणेहिं जीवा असुभ दीहाउयत्ताए कम्म पकरोति । ३। तिर्हि ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्म पकरोति, त जहा-णो पाणे अइवाइत्ता भवइ १, णो मुसवइत्ता भवइ २, तहारूव समणवा साहण वा वदित्ता नमसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाण मगलं देवय चेइय पज्जुवासित्ता मणुन्नेणपीइकारणं असणपाणखा इमसाइमेण पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेएहिं तिर्हि ठाणेहिं जीवा सुभदीहाउयत्ताए कम्म पकरोति । ४ ॥ सू० ६ ॥

छाया—भिमिः स्थानैर्जीवा अत्यायुक्ततया कर्मं प्रकुर्वन्ति, तद्यथा प्राणान् मतिपातयिता भवति १, मृषापक्ता भवति २, तथा रूप भ्रमणं वा माहनं वा ममा

अथ सूत्रकार आरम्भादि करणका और क्रियान्तर का फल दिखाते हुए सूत्रचतुष्टय ( चार सूत्रों ) का कथन करते हैं—

‘ तिर्हि ठाणेहिं जीवा अप्याहयत्ताए कम्मं पकरोति ’ इत्यादि ।

सूत्रार्थ—इन तीन स्थानोंसे जीव अल्प आयुष्य आदि रूपसे कर्म का बंध करता है । जैसे—एक वह जो प्राणों का विनाशकर्ता होता है १, दूसरा वह जो मृषापक्ता होता है । तीसरा वह जो तथारूपवाले भ्रमण को

द्वे सूत्राश्च अप्याह्वये इत्येतु अने क्रियान्तरतु इह इशावेतां चार सूत्रात् कथन करे छे—“ तिर्हि ठाणेहिं जीवा अप्याहयत्ताए कम्मं पकरोति ” इत्यादि

सूत्रार्थ—तीनों इशावेतां तेषु स्थानो इत्येतु इति एव अथ अप्याह्वये इत्यादि इष्ये कथनो लभ करे छे—(१) प्राणानो विनाश करवाधी, (२) मृषापक्ता वेदाधी अने (३) तथ इय ( बुद्धपत्ती, रत्नेइत्यु आदि भाष्य करवाधी ) भ्रमण

सुकेन अनेषणीयेन अशनपानखाद्यभस्वाद्येन प्रतिलम्भयिता भवति ३, इत्येतैस्त्रिभिः स्थानैर्जीवा अल्पायुष्कृतया कर्मप्रकुर्वन्ति ॥१॥ त्रिभिः स्थानैर्जीवा दीर्घायुष्कृतया कर्म प्रकुर्वन्ति, तद्यथा—नो प्राणान् अतिपातयिता भवति १, नो मृषावक्ता भवति २, तथारूपं श्रमणं वा माहन वा प्रासुकैषणीयेन अशनपानखाद्यभस्वाद्येन प्रतिलम्भयिता भवति ३, इत्येतैस्त्रिभिः स्थानैर्जीवा दीर्घायुष्कृतया कर्मप्रकुर्वन्ति ॥२॥ त्रिभिः स्थानैर्जीवा अशुभदीर्घायुष्कृतया कर्मप्रकुर्वन्ति, तद्यथा—प्राणान् अतिपातयिता भवति १, मृषावक्ता भवति २, तथारूपं श्रमणं वा माहनं वा हीलिता, निन्दिता, खिंसिता, गर्हिता, अदमानयिता अन्यतरेण अमनोज्ञेन अप्रीतिकारकेण

अथवा माहन को अप्रासुक एवं अनेषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यरूप आहार से प्रतिलाभिन करता है । इस तरह इन तीन स्थानों से जीव अल्प आयुष्करूप से कर्मका बन्ध करता है ।

इन तीन स्थानों से जीव दीर्घ आयुष्करूप से कर्मका बन्ध करता है । जैसे—जो प्राणों का विनाश करनेवाला नहीं होता है एक वह, तथा दूसरा वह जो मृषावादी नहीं होता है, तथा तीसरा वह जो तथारूप वाले श्रमण को अथवा माहण को प्रासुक एवं एषणीय अशन, पान, खाद्य और स्वाद्यरूप आहार से प्रतिलाभित करता है । इस तरह के इन तीन स्थानों से जीव दीर्घ आयुष्करूप से कर्म का बन्ध करता है । इन तीन स्थानों से जीव अशुभदीर्घ आयुष्करूप से कर्मका बन्ध करता है । जैसे—जो प्राणातिपात-प्राणों का विनाशक होता है एक वह, तथा दूसरा वह जो मृषावक्ता होता है २ तथा तीसरा वह जो तथारूपवाले श्रमण

अथवा माहनने अप्रासुक अने अनेषणीय अशन, पान, आद्य अने स्वाद्यरूप यत्तुर्विध आहार वडोराववाथी आ त्रणु स्थानो वडे एव अल्प आयुष्क इपे कर्मनो भध करे छे.

नीचेना त्रणु स्थानो (कारणो) द्वारा एव दीर्घ आयुष्क इपे कर्मनो भध करे छे—(१) प्राणोना विनाश नडी करवाथी, (२) मृषावादी नडी अनवाथी, अने (३) तथाइय श्रमणु अने माहनने प्रासुक अने अेषणीय अशन, पान, आद्य अने स्वाद्यरूप आहार वडोराववाथी आ त्रणु स्थानोथी एव दीर्घायुष्क इपे कर्मनो भध करे छे.

नीचेना त्रणु स्थानो द्वारा एव अशुभ दीर्घ आयुष्क इपे कर्मनो भध करे छे—(१) प्राणोना विनाश करवाथी, (२) मृषावादी (असत्य जालनार) थवाथी अने (३) तथाइयवाणा श्रमणु अथवा माहणुनी अर्त्तना करवाथी,

तिहिं ठाणेहिं जीवा असुमदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति, त जहा पाणं अइवाइत्ता भवइ १, मुस वइत्ता भवइ २, तहारूव समणं वा माहण वा हीलित्ता निंदित्ता खिसित्ता गरहित्ता अव माणित्ता अन्नयरे णं अमणुत्तेणं अपीइकारणं असणपाणत्वा इमसाइमेणं पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा असुम दीहाउयत्ताए कम्म पकरेति । ३। तिहिं ठाणेहिं जीवा सुमदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति, त जहा-णो पाणे अइ वाइत्ता भवइ १, णो मुसवइत्ता भवइ २, तहारूव समणवा माहण वा षदित्ता नमसित्ता सक्कारित्ता सम्माणित्ता कल्लाण मगल देवय चेइय पज्जुवासित्ता मणुत्तेणं पीइकारणं असणपाणत्वा इमसाइमेण पडिलाभित्ता भवइ ३, इच्चेएहिं तिहिं ठाणेहिं जीवा सुहदीहाउयत्ताए कम्म पकरेति । ४ ॥ सू० ६ ॥

छाया—त्रिभिः स्थानेर्जीवा अत्यायुक्तया कर्म मकुर्वन्ति, तद्यथा प्राणात् अतिपाठयिता भवति १, मृपायक्ता भवति २, तपारूप भ्रमणं वा माहनं वा मया

अथ सूत्रधार आरम्भादि करणका और त्रियान्तर का फल दिखाते हुए सूत्रशतुष्टय ( चार सूत्रों ) का कथन करते हैं—

‘ तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पकरेति ’ इत्यादि ।  
 सूत्रार्थ—इन तीन स्थानोंसे जीव अल्प आयुष्य आदि रूपसे कर्म का पाप करता है । जैसे—एक यह जो प्राणों का विनाशकर्ता होता है १, दूसरा यह जो मृपायक्ता होता है । तीसरा यह जो तपारूपवाले भ्रमण को

द्वे सूत्राश्च आरम्भादि करणतु अने द्वियान्तरतु इति इत्यादि चार सूत्रात् कथन करे थे—“ तिहिं ठाणेहिं जीवा अप्पाउयत्ताए कम्म पकरेति ’ इत्यादि सूत्रार्थ—तीन स्थानोंसे जीव अल्प आयुष्य आदि रूपसे कर्म का पाप करता है । जैसे—(१) प्राणोंके विनाश करनेवाला, (२) मृपायक्ता, (३) तप ३५ ( अदपत्ती, अन्नेदत्तु आदि चारणु करनारा ) भ्रमण

टीका—' तिर्हि ठाणे हि ' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं सुगमम् ।

नवरम्-कर्म-आयुष्कादि प्रकुर्वन्ति-वध्नतीत्यर्थः । प्राणान्-प्राणिनः अति-  
पातयिता-विनाशयिता इत्यर्थः । प्रगता अपवः प्राणाः यस्मात्तत् प्रासुकम्-  
अचित्तं, तन्निषेधाद् अप्रासुक सचित्तमित्यर्थः, तेन एषणीयम्-उद्गमादिदोषर-  
हितं तन्निषेधाद् अनेषणीयम्-अकल्पमित्यर्थः, तेन नृत्सित्तमयिता-लाभयन्तं  
करोतीत्येवं शीलो भवति । हीलिता-जन्मकर्ममर्मोद्घाटनपूर्वकं निर्भर्त्सयिता,  
निन्दिता-कुत्सितशब्दपूर्वकं दोषोद्घाटनेनानादरकर्ता, खिमिता-हस्तमुखादिविकार

टीकार्थ-यहां कर्म शब्द से आयुष्कादि कर्मका ग्रहण हुआ है । जिस से  
प्राण प्रगत ( नष्ट ) हो जाते हैं । वह प्रासुकका ही दूसरा नाम अचित्त  
है । जो पदार्थ प्रासुक नहीं है, सचित्त है-वह अप्रासुक है । अप्रासुक  
होने से ही वह मुनिजनों के लिये एषणीय नहीं कहा गया है, एषणीय  
पदार्थ उद्गमादि दोषों से रहित होता है और जो उद्गमादि दोषों से  
सहित होता है वह अनेषणीय होता है अकल्पनीय होता है ऐसे अप्रासुक  
अनेषणीय आहार से जो तथारूपधारी मुनिजन को और माहण  
को लाभयुक्त करनेवाला स्वभाववाला होता है, वह प्राणी अल्पायुष्क  
रूप से कर्म का वध्न करता है, जन्म, कर्म, मर्म उद्घाटनपूर्वक जो  
निर्भर्त्सना करता है वह हीलना है, कुत्सित शब्द कहता हुआ जो  
दोषोद्घाटन से अनादर करता है वह निन्दना है, हस्त मुख आदिको  
विकृत बनाकर जो तिरस्कार करता है वह अबमन्ता है, शुरु आदि के

टीकार्थ-अर्ही ' कर्म ' पढना प्रयोग द्वारा आयुष्कादि कर्मने ग्रहण करवाना  
आवेक छे. जेमांथी प्राणु प्रगत ( नष्ट ) थय गया छे जेवी वस्तुने  
प्रासुक कडे छे. प्रासुकतु जे 'णीयु' नाम अचित्त छे जे पदार्थ प्रासुक नथी,  
सचित्त छे-ते पदार्थने अप्रासुक कडे छे जेवा अप्रासुक पदार्थो जे मुनि-  
जनेने भाटे अनेषणीय गणाय छे जे पदार्थ उद्गम आदि दोषोधी रहित छे  
छे, ते पदार्थने अनेषणीय कडे छे, परन्तु जे पदार्थ उद्गम आदि दोषोधी  
सहित छे, ते पदार्थने अनेषणीय ( अकल्प्य ) कडे छे. जेवा अप्रासुक  
अने अनेषणीय आहार तथारूपधारी श्रमणो अथवा माहणोने पडोराववाना  
स्वभाववाणो भाणुस अल्पायुष्क इये कर्मनेो अघ करे छे

जन्म, कर्म अने मर्मना उद्घाटन (जडोरात) पूर्वक जे निर्भर्त्सना (तिरस्कार)  
करवाना आवे छे तेनुं नाम हीलना छे. कुत्सित शब्दोनेो उच्चार करतां करतां  
दोषोने प्रकट करीने जे अनादर करवाना आवे छे तेनुं नाम निन्दा छे. हाथ,  
मुख आदिने विकृत करीने जे तिरस्कार करवाना आवे छे तेनुं नाम अव-

अन्नपानत्वाद्यस्वाद्येन प्रतिलम्भयिता भवति १, इत्येवैस्त्रिभिः स्थानैर्भीवा अद्भु  
मदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकुर्वन्ति ॥३॥ त्रिभिः स्थानैर्भीवा शुभदीर्घायुष्कतया  
कर्मप्रकुर्वन्ति, तथा-नो प्राणान् अतिपातयिता भवति १, नो मृपावक्त्रा भवति  
२, तयारूप भ्रमण वा माह्न वाषडिता नमस्विता सत्कर्ता समानयिता कल्याण  
मंगल दैवत चैत्य पर्युपासिता मनोद्देन प्रीतिकारकेण अन्नपानत्वाद्यस्वाद्येन  
प्रतिलम्भयिता भवति ३, इत्येवैस्त्रिभिः स्थानैर्भीवा शुभदीर्घायुष्कतया कर्म प्रकु  
र्वन्ति ॥ ४ ॥ सू० ६ ॥

माहणकी भस्म ना करता है, निन्दा करता है, अपमान करता है-  
तिरस्कार करता है। धिक्कार आदि शब्दपूर्वक उनका अनादर करता  
है और जो उनको किसी एक भ्रमण, अमीतिभारक ऐसे अज्ञान,  
पान, स्वाद्य एवं स्वाद्यरूप आहारसे प्रतिलामित करता है। इस प्रकारसे  
इन तीन स्थानों से जीव अशुभदीर्घ आयुष्करूप से कर्म का बंध  
करता है। इन तीन स्थानों से जीव शुभ दीर्घायुष्करूप से कर्म का  
बंध करता है। जैसे एक वह जो प्राणों का विनाशक नहीं होता है।  
वृमरा वह जो मृपावादी नहीं होता है २, तथा तीसरा वह जो तथा  
रूपवाले भ्रमण को तथा माहण को घन्दना करनेवाला होता है, उन्हें  
नमस्कार करनेवाला होता है, उनका मरकार करनेवाला होता है,  
उनका सन्मान करनेवाला होता है तथा उन्हें कल्याणरूप, मङ्गलरूप,  
द्वंद्वरूप एवं ज्ञानरूप मानकर उनकी सखिधि सेवा करनेवाला होता है,  
और वही मनोश्च-प्रीतिकारक अज्ञान आदिरूप चारों प्रकारके आहारसे  
प्रतिलामित करता है। ऐसा जीव शुभ दीर्घ आयुष्करूप से कर्म का  
बंध करता है।

निन्दा करवायी, अपमान करवायी, तिरस्कार करवायी धिक्कार आदि शब्द  
पूर्वक तेमने अनादर करवायी, अने तेमने भ्रमण अमीतिकारक अज्ञान,  
पान, आद्य अने स्वाद्यरूप आहार बढोराववायी. आ प्रकारना त्रय स्थानोत  
सेवन करीने एव अशुभ दीर्घ आयुष्क रूपे कर्मने लभ करे छे

नीये द्यवित्ता त्रय स्थानो द्वारा एव शुभ दीर्घायुष्क रूपे कर्मने लभ  
करे छे-(१) प्राणोना विनाश नहीं करवायी, (२) मृपावादी नहीं होवायी  
अने (३) तथा रूप भ्रमण अने माहणने बढोरा करीने, नमस्कार करीने,  
तेमने सत्कार करीने, तेमने स मान करीने तेमने कल्याणरूप, मङ्गलरूप,  
द्वंद्वरूप अने ज्ञानरूप आद्रीने तेमनी विधिबद्धित सेवा करवायी, अने तेमने  
भ्रमण प्रीतिकारक अज्ञान, पान आद्य अने स्वाद्यरूप आहार बढोराववायी  
कोवे एव शुभ दीर्घ आयुष्क रूपे कर्मने लभ करे छे

टीका—' तिर्हि ठाणे हिं ' इत्यादि सूत्रचतुष्टयं सुगमम् ।

नवरम्-कर्म-आयुष्कादि प्रकुर्वन्ति-बन्धनीत्यर्थः । प्राणान्-प्राणिनः अति-  
पातयिता-विनाशयिता इत्यर्थः । प्रगता असवः प्राणाः यस्मात्तत् प्रासुकम्-  
अचित्तं, तन्निषेधाद् अप्रासुकं सचित्तमित्यर्थः, तेन एषणीयम्-उद्गमादिदोषर-  
हितं तन्निषेधाद् अनेषणीयम्-अकल्पमित्यर्थः, तेन नदिलम्भयिता-लामवन्तं  
करोतीत्येवं शीलो भवति । हीलिता-जन्मकर्ममर्मोद्घाटनपूर्वकं निर्भर्त्सयिता,  
निन्दिता-कुत्सितशब्दपूर्वकं दोषोद्घाटनेनानादरकर्ता, खिमिता-हस्तमुखादिविकार

टीकार्थ-यहां कर्म शब्द से आयुष्कादि कर्मका ग्रहण हुआ है । जिस से  
प्राण प्रगत ( नष्ट ) हो जाते हैं । वह प्रासुकका ही दूसरा नाम अचित्त  
है । जो पदार्थ प्रासुक नहीं है, सचित्त है-वह अप्रासुक है । अप्रासुक  
होने से ही वह मुनिजनो के लिये एषणीय नहीं कहा गया है, एषणीय  
पदार्थ उद्गमादि दोषों से रहित होता है और जो उद्गमादि दोषों से  
सहित होता है वह अनेषणीय होता है अकल्पनीय होता है ऐसे अप्रासुक  
अनेषणीय आहार से जो तथारूपधारी मुनिजन को और माहण  
को लाभयुक्त करनेवाला स्वभाववाला होता है, वह प्राणी अल्पायुष्क  
रूप से कर्म का बन्ध करता है, जन्म, कर्म, मर्म उद्घाटनपूर्वक जो  
निर्भर्त्सना करता है वह हीलना है, कुत्सित शब्द कहता हुआ जो  
दोषोद्घाटन से अनादर करता है वह निन्दना है, हस्त मुख आदिको  
विकृत बनाकर जो तिरस्कार करता है वह अबमन्ता है, शुरु आदि के

टीकार्थ-अर्ही ' कर्म ' पढ़ना प्रयोग द्वारा आयुष्कादि कर्मने अङ्गु करवाभां  
आवेत छे जेभांथी प्राणु प्रगत ( नष्ट ) थछ गया डोय छे जेवी वस्तुने  
प्रासुक कडे छे. प्रासुकतु ज ' भीरु ' नाम अचित्त छे. जे पदार्थ प्रासुक नथी,  
सचित्त छे-ते पदार्थने अप्रासुक कडे छे जेवा अप्रासुक पदार्थो ज मुनि-  
जनोने माटे अनेषणीय गणाय छे जे पदार्थ उद्गम आदि दोषोथी रहित डोय  
छे, ते पदार्थने अेषणीय कडे छे, परन्तु जे पदार्थ उद्गम आदि दोषोथी  
सहित डोय छे, ते पदार्थने अनेषणीय ( अकल्प्य ) कडे छे जेवा अप्रासुक  
अने अनेषणीय आडार तथारूपधारी श्रमणो अथवा माडणोने वडोराववाणा  
स्वभाववाणो। माणुस अल्पायुष्क रुपे कर्मनो अध करे छे

जन्म, कर्म अने मर्मना उद्घाटन (जडोरात) पूर्वक जे निर्भर्त्सना (तिरस्कार)  
करवाभां आवे छे तेतुं नाम डीलना छे. कुत्सित शब्दोने उच्चार करतां करतां  
दोषोने प्रकट करीने जे अनादर करवाभा आवे छे तेतुं नाम निन्दा छे. हाथ,  
मुप आदिने विकृत करीने जे तिरस्कार करवाभा आवे छे तेतुं नाम अप-

પૂર્વકમનમ્તા, ગર્હિતા-ગુર્વારિસમક્ષ દોષાવિષ્કરણપૂર્વક તિરસ્કર્તા, અવમાનયિ-  
તા-ધિક્કારાદિ-ગૃહપૂર્વકમપમાન કર્તા । અવનોદ્ધેન-સ્વરૂપતોડ્ગોમનેન મોચતુમક-  
ષ્યેન કદ્ધાદિના, અપ્રીતિકારકેજ મરુચિજનકા પિરસન રસવર્મિત્તન મતિસ્મમક-  
જીવા(દાયકા)અશુમદીર્ઘાપુષ્કવયા પરમપુર્વન્તીતિ સમ્પ્રાય । વન્દિતા વાચાસ્તુતિ  
કર્તા, નમસ્થિતા કાવન નમ્ત્રીમૂત, સત્કર્ષાશ્રમ્પુત્યાનાદિનાડ્ડરકર્તા, સમાનયિ-  
તા-વલ્લમક્કાદિદાનેતમાનદાતા । કલ્યાગ-કરપો-મોષ્ય કર્મજનિતસકલોપાધિર  
દિવસ્યાત્, તમ્ આ-મનતાત્ નપતિ-પ્રાપયતિ, અવવા-કલ્યન જ્ઞાનર્ષન-ચારિત્ર-

સમક્ષ વૃસરોં કે ઘોપોં કો જો મકટ કરતા હૈ વહ તિરસ્કર્તા હૈ, ધિક્કાર  
આદિ શાબ્દોચ્ચારણપૂર્વક જો અપમાન કરતા હૈ વહ અવમાનયિતા હૈ,  
અવનોદ્ધ શબ્દ સે એસા આહાર યહાં સ્થિતિ કિયા ગયા હૈ જો અશોમન  
હો, પ્વાને ક યોગ્ય ન હો, એસે અરુચિજનક પિરસ આહાર સે જો વન્દે  
મતિલાભાવિત કરતા હૈ, એમા જીવ અશુમદીર્ઘ આયુષ્કરૂપ કર્મકા  
પચ કરતા હૈ । તયા વચન સે સ્તુતિ કરનેવાલા જીવ વન્દિતા કહા ગયા હૈ ।  
કાવ સે નમ્ત્રીમૂત હોનેવાલા જીવ નમસ્થિતા કહા ગયા હૈ અમ્પુત્યાન  
આદિ ક્રિયાઓ દ્વારા આદર કરનેવાલા જીવ સત્કર્તા કહા ગયા હૈ, વલ્લ  
ઔર મોજન આદિ દેને ઠારા માન દેનેવાલા જીવ સમ્માનયિતા કહા  
ગયા હૈ, “ કલ્ય મયતિ ઇતિ કલ્યાણમ્ ” ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર  
જો કર્મજનિત સકલ ઉપાધિરહિત હોને સે મોક્ષ કી ઓર જો અપને  
આપકો ઓર અમ્ય પ્રાણિયોં કો છે જાતા હૈ વહ કલ્યાણ હૈ ।

મન્તા (અપમાન કરનાર) છે સુઠ આદિની પ્રમક્ષ અન્યના દોષોને કે પ્રકટ કરવામાં  
આવે છે તેનું નામ તિરસ્કાર છે ધિક્કાર આદિ શાબ્દોચ્ચારણપૂર્વક કે અપમાન  
કરવામાં આવે છે તેનું નામ અવમાનયિતા છે અવનોદ્ધ આહાર એટલે  
અશોમન આહાર અથવા ખાવાને યોગ્ય ન હોય એવો આહાર અરુચિજનક  
આહાર એટલે વિરચ આહાર કે એવ સાધુજનોને આ પ્રકારનો અવનોદ્ધ  
અને અરુચિકર આહાર વહોવરાવે છે, તે એવ અશુભ દીર્ઘ આયુષ્ક રૂપ  
કર્મનો ભય કરે છે વચનથી સ્તુતિ કરનાર એવને વન્દનકર્તા કહે છે કાયાથી  
નમન કરનાર એવને નમસ્થિતા (નમન કરનારો) કહે છે અમ્પુત્યાન આદિ  
ક્રિયાઓ દ્વારા આદર કરનાર એવને સત્કર્તા (સત્કાર કરનારો) કહે છે  
વલ્લ અને મોજન આદિ દ્વારા માન દેનાર એવને સમ્માનયિતા (સ માન  
કરનારો) કહે છે કલ્યે નપતિ ઇતિ કલ્યાણમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર  
કે કર્મજનિત સકલ ઉપાધિથી શક્તિ દોષાથી પાતાને તથા અન્ય ભવ્યજીવોને  
મિલકની વચ્ચે ઠોરી ભય છે, તે કલ્યાણરૂપ છે

लक्षणेनाऽऽरोग्येण आणयति-जीयति संसारमोहशालानलज्वालावलीढान् मूढान् प्राणिनः प्रशमयतीति वा तं तथोक्तम्-मोक्षदायकमित्यर्थः, मङ्गल-मं-भवसम्बन्धि बन्धनं, तन्निबन्धनं दुःख वा गालयति-नाशयतीति तं तथोक्तम्, यद्वा-मङ्गल-ने-प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो वाऽनेनेति मङ्गः-धर्मः, तं लाति-वृद्धातीति वा, तं तथोक्तं भव-भयभङ्गकमित्यर्थः दैवत-देवतैव दैवतं धर्मदेवमित्यर्थः, चैत्यम्-चितिः-सम्यग्-ज्ञानं, तदेव चैत्यं-ज्ञानस्वरूपं सम्यग्ज्ञानवन्तमित्यर्थः पर्युपासिता-सविधिसेविता भवति । तथा-मनोज्ञेन प्रीतिकारकेणाशनादिना प्रतिलम्भका जीवाः शुभदीर्घा-युष्कतया कर्म प्रकुर्वन्तीति सम्बन्धः ॥ सू० ६ ॥

अथवा “ कल्येन आणयति ” इति कल्याणं इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो संसार के प्रति मोहशाली हुए जीवों को मोहरूप अग्नि की ज्वाला से अत्यन्त दग्ध हुए मूढ प्राणियों को शान्त करता है । उस ज्वालाकी वेदना से रहित करनेका मार्ग बताता है-अर्थात् मोक्षदायक उपदेश को जो उन्हें देता है-इस तरह से जो उन्हें सच्चे जीवन की ओर प्रेरित करता है-सच्चे जीवनसे जानेकी जो उन्हें शिक्षा देता है वह कल्याण है । मङ्गल में जो “ मं ” है वह इस बातका बोधक है कि जो भवका बन्ध करानेवाला कर्म है उसे अथवा वह कर्म जो दुःख का कारण है उस दुःख को जो नष्ट करता है वह मङ्गल है । अथवा-“ मङ्गयते प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो वा अनेन इति मङ्गः ” जिसके द्वारा स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त किया जाता है वह मङ्ग है ऐसा वह मङ्ग धर्मरूप है इस मङ्गरूप धर्म को जो ग्रहण करता है वह मङ्गल है अर्थात् भवके भय का जो

अथवा-“ कल्येन आणयति इति कल्याण ” आ व्युत्पत्ति अनुसार जो संसारना मोड़ना डूबेला लुबेला-मोड़पी अग्निनी ज्वालाथी अत्यन्त दग्ध थयेला मूढ लुबेले ते ज्वालाणी वेदनाथी रक्षित थवानो मार्ग बतावे छे, अट्टे के जे तेमने मोक्षदायक उपदेश हे छे अने आ रीते जे तेमने सायुं लवन लवानी प्रेरणा आपे छे-सायुं लवन लवानी जे तेमने शिक्षा आपे छे, ते साधुजनाने कल्याणरूप कडेवामां आवे छे. हवे मंगल शब्दनेो अर्थ समलववामा आवे छे-लवनेो पध करवनार कर्मने नाश करनारने अथवा ते कर्म जे दुःखनुं कारण छे ते दुःखनेो नाश करनारने मंगलरूप कडे छे “ मङ्गयते प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो वा अनेन इति मङ्गः ” जेना द्वारा स्वर्ग अथवा मोक्षनी प्राप्ति थाय छे तेने ‘ मङ्ग ’ कडे छे. अर्धुं ते मङ्ग धर्मरूप छे. आ मङ्गरूप धर्मने जे अलक्ष्य करे छे ते मंगल छे. अट्टे के लवना लवनेो जे लवक छे तेने मंगल कडे छे. धर्मदेवतुं



પૂર્વકમપમન્તા, ગર્હિતા-ઘુર્ણાદિસમક્ષ ટોપાધિષ્કરણપૂર્વક તિરસ્કર્તા, અવમાનયિ-  
તા-ધિક્ષારાદિ-ગ્રામપૂર્વકમપમાન કર્તા । અમનોજ્ઞેન-સ્વરૂપતાઽગ્નોમનેન મોક્ષતુમષ્ટ  
કથેન કન્ધાદિના, અપ્રીતિકારકેગ મરુચિજનકેા વિરસેન રસવર્જિતેન મલિભમ્મલા  
જીવા(શાયકા)અશુભદીર્ઘાપુષ્કવયા કર્મમકુર્વન્તીતિ સમ્પ્રથાઃ । વન્દિતા યાચાસ્તુતિ  
ક્રતા, નમસ્વિયા યાયન નમ્ત્રીમૂત , સત્કર્ષામ્પ્યુત્યાનાદિનાઽઽદ્રરુર્તા, સમાનયિ-  
તા-વસ્ત્રમક્તાદિદાનેન માનતાતા । કલ્યાગ-કલ્યો-મોષ્ય કર્મજનિવસકલોપાધિ  
સ્વિતરાત, વમ્ મા-સમ્તાત્ નયતિ-પ્રાપયતિ, પ્રથવા-કલ્યન જ્ઞાનરર્થન-ચારિત્ર-

સમક્ષ દુસરોં કે દોપોં કો જો પ્રકટ કરતા હૈ વહ તિરસ્કર્તા હૈ, ધિક્ષાર  
આદિ ગ્રામ્દોષારણપૂર્વક જો અપમાન કરતા હૈ વહ અવમાનયિતા હૈ,  
અમનોજ્ઞ શબ્દ સે એમા આદાર ઘટાં સ્થિત કિયા ગયા હૈ જો અશોમન  
હો, માને ક ગોમ્ય ન હો, એસે અરુચિજનક વિરસ આહાર સે જો ઘને  
મલિભામન્વિત કરતા હૈ, એમા જીય અશુભદીર્ઘ આયુષ્કરૂપ કર્મક  
પાપ કરતા હૈ । તયા ઘન સે સ્તુતિ કરનેલાલા જીય વન્દિતા કહા ગયા હૈ ।  
કાય સે નમ્ત્રીમૂત હોનેલાલા જીય નમસ્વિયા કહા ગયા હૈ અમ્પ્યુત્યાન  
આદિ નિધાઓં ઠરા આદર કરનેલાલા જીય સત્કર્તા કટા ગયા હૈ, વસ્ત્ર  
ઔર મોજન આદિ દેને ઠારા માન દેનેલાલા જીય સમ્માનયિતા કહા  
ગયા હૈ, “ કલ્ય નયતિ ઇતિ કલ્યાણમ્ ” ઇસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર  
જો કર્મજનિત નકલ ઉપાધિરહિત હોને સે મોક્ષ કો ઓર જો અપને  
આપકો ઓર મલ્ય પ્રાણિયોં કો છે જાતા હૈ વહ કલ્યાણ હૈ ।

મન્તા (અપમાન કરનાર)એ ઝુઠુ આદિની સમક્ષ અન્યના દોષોને લે મક્ષ કરવામાં  
આવે છે તેનું નામ તિરસ્કાર છે ધિક્ષાર આદિ શબ્દોવ્યારણાપૂર્વક જે અપમાન  
કરવામાં આવે છે તેનું નામ અવમાનયિતા છે અમનોજ્ઞ આદાર એટલે  
અશોમન આદાર અથવા આવને શોમ્ય ન હોય એવો આદાર અરુચિજનક  
આદાર એટલે વિરસ આદાર જે છવ સાધુજનોને આ પ્રકારનો અમનોજ્ઞ  
અને અરુચિકર આદાર વડોવસાયે છે તે છવ અશુભ દીર્ઘ આયુષ્ય રૂપ  
કર્મનો બંધ કરે છે વજનથી સ્તુતિ કરનાર છવને વનનકર્તા કહે છે કાચાથી  
નમન કરનાર છવને નમસ્વિયા ( નમન કરનારો ) કહે છે અમ્પ્યુત્યાન આદિ  
ધિક્ષારો દ્વારા આદર કરનાર છવને સત્કર્તા ( સત્કાર કરનારો ) કહ્યો છે.  
વસ્ત્ર અને મોજન આદિ દ્વારા માન દેનાર છવને સમાનયિતા ( સમાન  
કરનારો ) કહે છે ‘ કલ્ય નયતિ ઇતિ કલ્યાણમ્ ” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર  
જે કર્મજનિત સકલ ઉપાધિથી રહિત દોષથી પોતાને તથા અન્ય લભ્યછવોને  
શોષની તરફ ઠેરી બંધ છે, તે કલ્યાણરૂપ છે

लक्षणेनाऽऽरोग्येण आणयति-जीवयति संसारमोहशालानलज्वालावलीढान् मूढान् प्राणिनः प्रशमयतीति वा तं तथोक्तम्-मोक्षदायकमित्यर्थः, मङ्गल-मं-भवसम्बन्धि बन्धनं, तन्निबन्धनं दुःख वा गालयति-नाशयतीति तं तथोक्तम्, यद्वा-मङ्गल्ये-प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो वाऽनेनेति मङ्गः-धर्मः, तं लाति-गृह्णातीति वा, तं तथोक्तं भव-भयभङ्गरूपमित्यर्थः दैवत-देवतैव दैवतं धर्मदेवमित्यर्थः, चैत्यम्-चितिः-सम्यग्-ज्ञानं, तदेव चैत्यं-ज्ञानस्वरूपं सम्यग्ज्ञानवन्तमित्यर्थः पर्युपासिता-सविविसेविता भवति । तथा-मनोज्ञेन प्रीतिकारकेणाशनादिना प्रतिलम्भका जीवाः शुभदीर्घा-युष्कतया कर्म प्रकुर्वन्तीति सम्बन्धः ॥ सू० ६ ॥

अथवा “ कल्येन आणयति ” इति कल्याणं इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो संसार के प्रति मोहशाली हुए जीवों को मोहरूप अग्नि की ज्वाला से अत्यन्त दग्ध हुए सूढ प्राणियों को शान्त करता है । उस ज्वालाकी वेदना से रहित करनेका मार्ग बताता है-अर्थात् मोक्षदायक उपदेश को जो उन्हे देता है-इस तरह से जो उन्हे सच्चे जीवन की ओर प्रेरित करता है-सच्चे जीवनसे जानेकी जो उन्हे शिक्षा देता है वह कल्याण है । मङ्गल में जो “ मं ” है वह इस बातका बोधक है कि जो भवका बन्ध करानेवाला कर्म है उसे अथवा वह कर्म जो दुःख का कारण है उस दुःख को जो नष्ट करता है वह मङ्गल है । अथवा-“ मङ्गयते प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो वा अनेन इति मङ्गः ” जिसके द्वारा स्वर्ग अथवा मोक्ष प्राप्त किया जाता है वह मङ्ग है ऐसा वह मङ्ग धर्मरूप है इस मङ्गरूप धर्म को जो ग्रहण करता है वह मङ्गल है अर्थात् भवके भय का जो

अथवा-“ कल्येन आणयति इति कल्याण ” आ व्युत्पत्ति अनुसार

जे संसारना मोडमां दुःखेला ज्वेने-मोडरूपी अग्निनी ज्वालाथी अत्यन्त दग्ध थयेला मूढ ज्वेने ते ज्वालाणी वेदनाथी रहित थवनेा मार्ग अतावे छे, अेटके के जे तेमने मोक्षदायक उपदेश दे छे अने आ रीते जे तेमने सायुं ज्वन ज्ववानी प्रेरणा आपे छे-सायुं ज्वन ज्ववानी जे तेमने शिक्षा आपे छे, ते साधुजनाने कल्याणरूप कडेवामां आवे छे उवे भगण शब्दनेा अर्थ समलववामा आवे छे-लवनेा अथ करारनार कर्मने नाश करारने अथवा ते कर्म जे दुःखतुं कारण छे ते दुःखनेा नाश करारने भगणरूप कडे छे “ मङ्गयते प्राप्यते स्वर्गो मोक्षो वा अनेन इति मङ्ग ” जेना द्वारा स्वर्ग अथवा मोक्षनी प्राप्ति थाय छे तेने ‘ मङ्ग ’ कडे छे. जेवुं ते मङ्ग धर्मरूप छे. आ मङ्गरूप धर्मने जे अडखु करे छे ते भगल छे. अेटके के लवना लयनेा जे लज्ज छे तेने अंगल कडे छे, धर्मदेवतुं

પ્રાગાતિપાતાદિ નિષેષશ્ચ ગુણિતદ્વાવે મવતીવિ ગુણિતપ્રરૂપણાં તન્મન્મન્મા  
 ણ્ડપ્રરૂપણાં ષાઠ —

મૂલ્મ--તઓ ગુત્તીઓ પળ્ણત્તાઓ, ત જહા મળગુત્તી વહગુત્તી  
 કાયગુત્તી । સજયમળ્ણસ્સાળ તઓ ગુત્તીઓ પળ્ણત્તાઓ, ત જહા-  
 મળગુત્તી વહગુત્તી કાયગુત્તી । તઓ અગુત્તીઓ પળ્ણત્તાઓ ત જહા-  
 મળ અગુત્તી વહ અગુત્તી કાય અગુત્તી । ઇવ નેરહયાળ જાશ યાળિ  
 યકુમારાળ, પર્ષિદિયાતિરિક્લજોળિયાળ, અસજતમળ્ણસ્સાળ,  
 ષાળમતરાળ, જોહસિયાળ, વેમાળિયાળ ॥ તઓ દઢા પળ્ણત્તા,  
 ત જહા--મળદઢ વહદઢે કાયદઢે । નેરહયાળ તઓ દઢા પળ્ણત્તા,  
 ત જહા--મળદઢે વહદઢે કાયદઢે, વિગર્લિદિયશ્ચ જાશ વેમા  
 ણિયાળ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

છાયા-વિસ્રો ગુણય પ્રહ્ણતાઃ, તથયા-મનોગુણિઃ, વાગ્ગુણિઃ, કાયગુણિ । સંયતમ  
 મનુષ્યાણાં વિસ્રો ગુણય પ્રહ્ણતા, તથયા-મનોગુણિઃ, વાગ્ગુણિ કાયગુણિ । વિસ્રો  
 ડગુણયઃ પ્રહ્ણતા, તથયા-મનોડગુણિ વાગ્ગુણિઃ, કાયગુણિ । ઇવ નૈરયિકાણાં  
 યાશસ્તનિત કુમારાણાં પચ્ચેન્નિયવિર્યગ્પોનિકાનામ્, અસપતમનુષ્યાણાં, શાનમ્  
 ન્તરાણાં, ડપતિકાણાં, વૈમાનિકાનામ્ । પ્રયોદષ્ટાઃ પ્રહ્ણતા, તથયા-મનોદષ્ટાઃ,  
 વાગ્ગ્દષ્ટ, કાયદષ્ટઃ । નૈરયિકાણાં પ્રયો દષ્ટાઃ પ્રહ્ણતા, તથયા-મનોદષ્ટઃ,  
 વાગ્ગ્દષ્ટ, કાયદષ્ટ । ત્રિકલેન્નિયવર્ષ યાશ્વ વૈમાનિકાનામ્ । સૂ૦ ૭ ॥

અજક છે ઘહ મજ્જલ છે ધર્મદેશ કા નામ વૈષત છે, "વૈષ્ય" ઘહ પદ  
 "ચિત્તી સજ્ઞાને" ધાતુ સે યના છે ઇસકા અર્થ સમ્મક્ જ્ઞાન સે જો  
 યુક્ત હોતા છે ઘહ છે ॥ સૂ૦ ૬ ॥

પ્રાગાતિપાત આદિકા નિષેષ ગુણિકે સઝાશર્મે હોતા છે, ઇસ કારણ  
 અવ સૂત્રકાર ગુણિકી પ્રરૂપણા ઓર ડસકે સમ્પન્થ સે વળ્ણકી પ્રરૂપણા  
 કરતે છે--' તઓ ગુત્તીઓ પળ્ણત્તાઓ ' ઇત્પાદિ ।

નામ દેવત છે "વૈષ્ય" વૈષ્ય યઃ "ચિત્તી સજ્ઞાને" ધાતુમાંથી જન્મ છે  
 જે સમ્પક્ જ્ઞાનથી યુક્ત હોય છે તેને જ વૈષ્યરૂપ માનવામાં આવે છે ૯  
 ગુણિના સદ્ભાવમાંજ પ્રાગાતિપાત આદિના નિષેષ સભવી સકે છે  
 તે કારણે હવે સૂત્રકાર ગુણિકી પ્રરૂપણા કરે છે અને ત્યારનાજ તેનાથી વિષ  
 હીત જોવા હવેની પ્રરૂપણા કરે છે--" તઓ ગુત્તીઓ પળ્ણત્તાઓ " ઇત્યાદિ--

टीका—' तत्रो गुत्तीओ ' इत्यादि सुगम, नवरं-गोपन गुप्तिः आगन्तुक-पापकचवरनिरोधः, अशुभयोगनिरोधो वा मनोवाक्कायानां कुशलत्वेन प्रवर्तन-मकुशलत्वेन च निवर्तनमिति भावः । एतास्तिस्त्रोगुप्तयः केषां भवन्तीत्याह—

टीकार्थ-गुप्तियां तीन कही गई हैं । मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, और कायगुप्ति, संयत मनुष्यों के ये तीनों गुप्तियां होती हैं । अगुप्तियां भी तीन कही गई हैं । एक मनो अगुप्ति, दूसरी वचन अगुप्ति और तीसरी काय अगुप्ति, नैरयिक से लेकर यावत् स्तनित कुमार तक तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, असंयत मनुष्य, वानव्यन्तर, ज्योतिषिक और वैमानिक इन सब के ये तीन अगुप्तियां होती हैं ।

दण्ड तीन कहे गये हैं, एक मनोदण्ड, दूसरा वचोदण्ड और तीसरा कायदण्ड, नैरयिकों के तीन दण्ड कहे गये हैं । मनदण्ड, वचन दण्ड, और कायदण्ड, इसी तरह का कथन विकलेन्द्रियों को छोड़कर यावत् वैमानिकों तक जानना चाहिये । गोपन का नाम गुप्ति है अर्थात् आगन्तुक पापरूप कचवर-(कचरा) का निरोध करना इसका नाम गुप्ति है । या कुशल मन वचन और काय का प्रवर्तन करना और अकुशलता की ओर से उन्हें हटाना इसका नाम गुप्ति है । तात्पर्य इस कथन का ऐसा है कि मन, वचन काय की क्रिया तथा योग का सभी तरहसे निग्रह करना गुप्ति नहीं है, किन्तु प्रशस्त निग्रह ही गुप्ति है, प्रशस्त

टीकार्थ-गुप्तियो त्रय प्रकारनी कही छे-(१) मनोगुप्ति, वचनगुप्ति अने (३) कायगुप्ति. संयत मनुष्योंमां आ त्रये गुप्तियोना सद्भाव डोय छे अगुप्तिना पशु त्रय प्रकार छे-(१) मनः अगुप्ति (२) वचन अगुप्ति अने (३) काय अगुप्ति. नारकोथी लधने स्तनितकुमारो पर्यन्तना लुवोमां, पचेन्द्रिय तिर्य-चोमां असंयत मनुष्योमां, वानव्यन्तरोमां, ज्योतिषिक देवोमां अने वैमानिक देवोमां आ त्रय अगुप्तियोना सद्भाव डोय छे

दंडना पशु त्रय प्रकार कही छे-(१) मनोदंड, (२) वचोदंड (वाचदंड) अने (३) कायदंड नारकोमां आ त्रये दंडनो सद्भाव कही छे विकलेन्द्रियो सिवायना आकीना वैमानिक पर्यन्तना समस्त लुवोमां पशु त्रये दंडनो सद्भाव डोय छे गोपननु नाम गुप्ति छे अटवे डे आगन्तुक पापरूप कचरानो निरोध करवो तेनु नाम गुप्ति छे अथवा अशुभ योगनो निरोध करवो तेनु नाम गुप्ति छे अथवा कुशल मन, वचन, कायनु प्रवर्तन करवुं अने अकुशल-ताथी तेमने हर राभवा तेनु नाम गुप्ति छे आ कथननु तात्पर्य अे छे डे मन, वचन अने कायानी क्रिया तथा योगनो संपूर्णपणे निरोध (निग्रह) करवो तेनु नाम गुप्ति नहीं, पशु प्रशस्त निग्रहनु नाम अे गुप्ति छे.

‘ સજયમણુસ્તાણ ’ इत्यादि, एताश्चतुर्विंशतिदण्डके चिन्तयमानाः सप्तमनु  
 प्यागां सप्ततानां-विरतिमतां मनुष्याणां मवन्ति, नान्येषां, नापि नारकादीना  
 मिति । उक्ता गुणयः, अयतदभिरयपभूता अणुतीराइ—‘ तत्रोप्रगुचीयो ’ इत्यादि  
 सुगम, नवर विश्लेषत एतेषां चतुर्विंशति दण्डकऽविदेषमाइ—‘ एषं ’ इत्यादि,  
 एव-सामान्य सूत्रधारकादीनां सूत्रोक्तानां वैमानिकपर्यन्तानां तिल्लोऽणुष्यो  
 षाख्या इहेकेन्द्रियविकेन्द्रिया नोक्ताः, तेषां वाङ्मनसयोर्यथायोगमसम्भवात् ।  
 सप्तमनुष्या अपि न गृहीता एष्टिमरुषेपामिति । अणुष्यमथ स्वपरेषां दण्ड

નિમ્નદ્વારકા ધર્મ છે સોષ સમસ્રકર તથા અદ્વાપૂર્વક સ્વીકાર ત્રિયા ગયા  
 અર્પાત યુદ્ધિ ઔર અદ્વાપૂર્વક, મન, ઘચન ઔર કાપ કો ડન્માર્ગ સે  
 રોકના ઔર સન્માર્ગ મેં લગાના યે તીમ ગુણિયાં કિમકે હોતી હૈં ? ઘઠી  
 “ સજયમણુસ્તાણ ” इत्यादि सूत्रद्वारा समझाया गया है । जो सयमी  
 हें चिरति से युक्त हैं ऐसे मनुष्यों के ही ये तीन गुणियां होती हैं । अ  
 चिरतियालों के तथा नारकाविकों के नहीं होती हैं, इन गुणियों की  
 विषयमूल जो अगुणियां हैं वे भी तीन ही प्रकार की होती हैं, ये तीन  
 अगुणियां नारकसे लेकर वैमानिक तक के जीवों में होती हैं, क्योंकि  
 यहां चिरति होने का अभाव है इस कथन में एकेन्द्रिय और विकले  
 त्रियों को ग्रहण नहीं किया गया है क्योंकि एकेन्द्रिय जीवों के मन  
 और घचन नहीं होते हैं तथा विकलेत्रियों के मन नहीं होता  
 है । जीव को दण्ड उसका अपराधी बनना पड़े इसका नाम दण्ड

प्रशस्त निश्चयेन नच आ प्रभावे छे-विचार समकाल अने यदा  
 पूर्वक मन, वचन अने ज्ञापने उन्मात्रे ( आगे भावे ) कता शास्त्रा अने  
 स भावे वाक्या तनु न मन् प्रशस्त निश्च छे सजयमणुसाणं एतादि  
 सूत्रमा जे प्रक इराभा आशु छे के जे त्रय गुणियोना सङ्गाव सगनी  
 ( विरतियुक्त ) मनुष्योमां क डोष छे अचिरतियुक्त मनुष्योमां तथा नारका  
 दिडोमा तेमने नदूभाव डोषो नधी आ गुणियोनी विषयमूल अगुणियो  
 पण त्रय प्रकारनी क डकी छे नारकोथी लधने वैमानिक परन्तया लवे.मां  
 आ त्रये अगुणियोना सङ्गाव डोष छे शरयु के ते लवेमां विरति सगनी  
 शकती नधी परन्तु आ कथन एकेन्द्रिय अने विकलेन्द्रिय लवेने लालु पदुं  
 नधी शरयु के एकेन्द्रिय लवेमां मन अने वचनने अभाव डोष छे तथा  
 विकलेन्द्रियोमा मनने अभाव डोष छे जेने शरयु लवने अपराधी बनवुं  
 पडे छे, तेना त्रय प्रकार उर पचाववाभा आभा छे एकेन्द्रिय अने वि

नानि भवन्तीति दण्डनिरूपयति—‘ तत्रो दंडा ’ इत्यादि सुगमं, नवरं मनसा स्वपरेषां दण्डनं मनोदण्डः । यद्वा—दण्डयतेऽनेनेति दण्डः, मन एव दण्डो मनो-दण्ड इति । एवमितरावपि । चतुर्विंशति दण्डकेषु नारकादारभ्य विकलेन्द्रियवर्जमिति एरुद्वित्रिचतुरिन्द्रियान् वर्जयित्वेत्यर्थः । वैमानिकपर्यन्तानां त्रयोदण्डावाच्याः । विकलेन्द्रियाणां हि दण्डत्रयं न संभवति, तेषां वाङ्मनसोर्यथायोगमभावादिति ॥ सू० ७ ॥

दण्डश्च गर्हणीयो भवतीति गर्हा, तत्सम्बन्धात् प्रत्याख्यानं च सूत्रचतुष्टयेनाह —

सूत्रम्—तिविहा गरिहा पणत्ता, तं जहा—मणसा वेगे गरिहइ, वयसा वेगे गरिहइ, कायसा वेगे गरिहइ, पावाणं कम्माणं अकरणयाए ॥१॥ अहवा गरिहा तिविहा पणत्ता, तं जहा—दीहं पेगे अद्धं गरिहइ, रहस्सं पेगे अद्धं गरिहइ, कायं पेगे पडिसाहरइ, पावाणं कम्माणं अकरणयाए । तिविहे पच्चक्खाणे पणत्ते, तं जहा मणसा वेगे पच्चक्खाइ, वयसा वेगे पच्चक्खाइ, कायसा वेगे पच्चक्खाइ ।१। एवं जहा गरहा तथा पच्चक्खाणे वि दो आलावगा भाणियव्वा सू० ८ ॥

है ये दण्ड भी तीन होते हैं । ये भी एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों को छोड़ कर नैरयिकसे वैमानिक तक के जीवों में तीन ही होते हैं । एकेन्द्रियमें एक और विकलेन्द्रियों में दो दण्ड होते हैं, तीन नहीं होते हैं, इसलिये यहाँ इनका परिहार किया गया है ॥ सू० ७ ॥

दण्ड गर्हणीय होता है सो इसी अभिप्राय से सूत्रकार अब गर्हा और इसके सम्बन्ध से प्रत्याख्यान का कथन सूत्र चतुष्टय से करता है—‘ तिविहा गरिहा पणत्ता इत्यादि ।

सेन्द्रिय सिवायना अधा एवेमा—नारकथी वैमानिक पर्यन्तना एवेमां त्रष्टे प्रकारना दंडने सद्भाव डेय छे एकेन्द्रियोमा मात्र कायदंडने। अने विकलेन्द्रियोमा वाग्दंड अने कायदंडने सद्भाव डेय छे, ते एवेमा त्रष्टे दंडने सद्भाव संभवी शकतो नथी, ते कारणे ते एवेने उपयुक्त कथन लाशु पडंतुं नथी सू. ७ दंड गर्हणीय डेय छे आ संघने अनुलक्षीने सूत्रकार हवे गडा अने प्रत्याख्याननी प्रपष्टा करवा निमित्ते नीचेना आर सूत्रो उडे छे—

‘संज्ञयमणुस्ताण’ इत्यादि, एतामनुर्विशतिदण्डके चिन्त्यमाना सयतमनु  
 प्यामां सयतानां-विरतिमतां मनुष्याणां भवन्ति, नायेषां, नानि नारकादीना  
 मिति । उक्ता गुणयः, अथतद्विषयपमूता अगुतीराह—‘तमोअणुचीओ’ इत्यादि  
 सुगम, नवर विशेषत एतेषां चतुर्विंशति दण्डकेऽतिदेशमाह—‘एवं’ इत्यादि,  
 एव-नामान्य सूत्रव्याख्यादीनां सूत्रोक्तानां वैमानिकपर्यन्तानां तिस्रोऽणुष्यो  
 वाच्या’ इहेकेन्द्रियविकलेन्द्रिया नोक्ता, तेषां बाह्मनसयोर्यथायोगमसम्भवात् ।  
 सयतमनुष्या अपि न गृहीता दृष्टिमन्त्राण्येवामिति । अणुप्तयस्य स्वपरेषां दण्ड

निघ्नका अर्थ है सोच समझकर तथा अज्ञापूर्वक स्वीकार दिया गया  
 अर्थात् बुद्धि और अज्ञापूर्वक, मन, बचन और काय को उन्मार्ग से  
 रोकना और स-मार्ग में लगाना ये तीन गुणियां किनके होती हैं ? यही  
 “संज्ञयमणुस्ताण” इत्यादि सूत्रद्वारा समझाया गया है । जो सयमी  
 हैं विरति से युक्त हैं ऐसे मनुष्यों के ही ये तीन गुणियां होती हैं । अ-  
 विरतियालों के तथा नारकादिकों के नहीं होती हैं, इन गुणियों की  
 विपक्षमूल जो अगुणियां हैं वे भी तीन ही प्रकार की होती हैं, ये तीन  
 अगुणियां नारकसे लेकर वैमानिक तक के जीवों में होती हैं, क्योंकि  
 यहाँ विरति होने का अभाव है इस कथन में एकेन्द्रिय और विकले  
 न्द्रियों को ग्रहण नहीं किया गया है क्योंकि एकेन्द्रिय जीवों के मन  
 और बचन नहीं होते हैं तथा विकलेन्द्रियों के मन नहीं होता  
 है । जीव को दण्ड उमका अराधी बनना पड़े इसका नाम दण्ड

प्रशस्त निश्चयेन अध आ प्रभावे उ-विचार समञ्जस्य जने अज्ञा  
 पूषु मन वचन जने कथने उ माजे’ आजे माजे ) अत्ता शक्या जने  
 स माजे वाच्य तनु न मज्ज प्रशस्त निश्चये संज्ञयमणुस्ताणं इत्यादि  
 सूत्रमा जे प्रक्य करामा आनु उ इ जे त्वं गुणियोना अज्ञाव सखी  
 ( विरतिभुजा ) मनु योमां ज बोध उ अविरतिभुजा मनुष्योमां तथा नारका  
 दिहोमां तेभने -इभाव केतो नधी आ गुणियोनी विपक्षमूल अगुणियो  
 पणु त्वं प्रकारणी ज इही उ नारकाधी लधने वैमानिक पर्यन्तना लवे.मां  
 आ त्वे अगुणियोना अज्ञाव डे व उ शरवु डे ते लवे.मां विरति सखी  
 शकती नधी परन्तु आ कथन ओकेन्द्रिय जने निश्चयेन्द्रिय लवे.ने वागु पधु  
 नधी शरवु डे ओकेन्द्रिय लवे.मा मन जने वचनना अभाव बोध उ तथा  
 निश्चयेन्द्रियोमा मननेः अभाव बोध उ जेने शरवु लवने अराधी बननु  
 पउ उ, तेना त्वं प्रकार उपर अत्तावामा आन्ध उ ओकेन्द्रिय जने वि

नानि भवन्तीति दण्डनिरूपयति—‘ तत्रो दंडा ’ इत्यादि सुगमं, नवरं मनसा स्वपरेपां दण्डनं मनोदण्डः । यद्वा-दण्डचतेऽनेनेति दण्डः, मन एव दण्डो मनो-दण्ड इति । एवमितरावपि । चतुर्विंशति दण्डकेषु नारकादारभ्य विकलेन्द्रियवर्जमिति एकद्वित्रिचतुरिन्द्रियान् वर्जयित्वेत्यर्थः । वैमानिकपर्यन्तानां त्रयोदण्डा-वाच्याः । विकलेन्द्रियाणां हि दण्डत्रयं न संभवति, तेषां वाङ्मनसोर्यथायोगमभावादिति ॥ सू० ७ ॥

दण्डश्च गर्हणीयो भवतीति गर्हा, तत्सम्बन्धात् प्रत्याख्यानं च सूत्रचतुष्ट-येनाह —

मूलम्—तिविहा गरिहा पणत्ता, तं जहा-मणसा वेगे गरिह इ, वयसा वेगे गरिहइ, कायसा वेगे गरिहइ, पावाणं कम्माणं अकरणयाए ॥१॥ अहवा गरिहा तिविहा पणत्ता, तं जहा-दीहं पेगे अद्धं गरिहइ, रहस्सं पेगे अद्धं गरिहइ, कायं पेगे पडिसाहरइ, पावाणं कम्माणं अकरणयाए । २। तिविहे पच्चक्खाणे पणत्ते, तं जहा मणसा वेगे पच्चक्खाइ, वयसा वेगे पच्चक्खाइ, कायसा वेगे पच्चक्खाइ । ३। एवं जहा गरहा तथा पच्चक्खाणे वि दो आलावगा भाणियव्वा सू० ८ ॥

है ये दण्ड भी तीन होते हैं । ये भी एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियों को छोड़ कर नैरयिकसे वैमानिक तक के जीवों में तीन ही होते हैं । एकेन्द्रियमें एक और विकलेन्द्रियों में दो दण्ड होते हैं, तीन नहीं होते हैं, इसलिये यहाँ इनका परिहार किया गया है ॥ सू०७ ॥

दण्ड गर्हणीय होता है सो इसी अभिप्राय से सूत्रकार अब गर्हा और इसके सम्बन्ध से प्रत्याख्यान का कथन सूत्र चतुष्टय से करता है — ‘ तिविहा गरिहा पणत्ता इत्यादि ।

सेन्द्रिय सिवायना अधा एवेमा-नारकथी वैमानिक पर्यन्तना एवेमां त्रणे प्रधारना दडनेो सइभाव डेय छे अकेन्द्रियोमा मात्र कायदडनेो अने विकलेन्द्रियोमां वागूदड अने कायदडनेो सइभाव डेय छे, ते एवेमा त्रणे दडनेो सइभाव संभवी शकतो नथी, ते कारणे ते एवेने उपर्युक्त कथन लाशु पडतुं नथी स. ७ दड गड्डीलीय डेय छे आ सअधने अनुलक्षीने सूत्रकार हवे गड्डी अने प्रत्याख्याननी प्रइपथा करवा निमित्ते नीचेना थार सूत्रो दडे छे—



જાપા—ત્રિવિધા ગર્હા મહત્તા, તથા—મનસા વૈકો ગર્હતે, ષષ્ઠા વૈકો ગર્હતે કાયેન વૈકો ગર્હતે, પાપાનાં કર્મણામકરણતયા ॥૧॥ અથવા ગર્હા ત્રિવિધા મહત્તા, તથા—દીર્ઘામપ્યેકોડ્ઢાં ગર્હત, દુમ્યામપ્યેકોડ્ઢાં ગર્હતે, કાયમપ્યક મતિસદરતિ પાપાનાં કર્મણામકરણતયા । ૨। ત્રિવિધં પ્રત્યાહવાર્ન મહત્ત્વ, તથા—મનસા વૈક પ્રત્યાહવાતિ ષષ્ઠા વૈક પ્રત્યાહવાતિ, કાયન વૈક પ્રત્યાહવાતિ । એવ યયા ગર્હા તથા પ્રત્યાહવાનેડપિ દ્વાવાન્નાપકૌ મમિતમ્પ્યૌ ॥ છ૦ ૮ ॥

ટીકા—‘ ત્રિવિદા ગરિહા ’ ઇત્યાદિ, ગર્હાસુત્રદ્વય સુગમમ્ ।

નવર—ગર્હતે—જુગુપ્સતે દષ્ટ સ્વકીય પરકીયમાત્માન ઘા । કયમિત્યાદિ—પાપાનાં કર્મણામકરણતયા હેતુમૂતયા ઠિસાદિવર્જનેનેત્યર્થ, કાયગર્હાં હિ પાપ કર્માડમદ્વૈવ મચતીતિ માષઃ ૧। અથવા—પ્રકારાન્તરણવિ ગર્હાં ત્રિવિધા મચતિ, તથાદિ—‘ દીર્ઘવેગે ’ ઇત્યાદિ, એકઃ—કથિત્ દીર્ઘામપ્યદ્વા—દીઘ કાલ યાવદ્ ગર્હતે । એવમેકઃ કથિદ્ ઇત્ત્વ કાલ યાવદ્ ગર્હતે । એકઃ કથિત્ કાયમપિ—

ટીકાર્થ—ગર્હાતીન પ્રકારકી કહી ગર્હૈ । જૈસે કોઈ એક મનસે ગર્હાં કરતા હૈ કોઈ એક વચન સે ગર્હાં કરતા હૈ । કોઈ એક કાય સે ગર્હાં કરતા હૈ, ગર્હાં કિનકી કરતા હૈ । ઇસકે લિયે કહા ગયા હૈ કિ—“પાવાર્ણ કમ્માર્ણ અકરણયાપ્ ” કૃત પાપકર્મોં કી અકરણ રૂપસે ગર્હાં કરતા હૈ અર્થાત્ જો પાપકર્મ મેરે દ્વારા પહિલે કિયે ગયે હૈં અથ મૈં ઉન પાપકર્મોંકો નહીં કર્સંગા । ઇસ પ્રકારકે ઉનકે પ્રતિ આત્મગ્લાનિ કરતા હુઆ મચિપ્ય મૈં ઉનકે ન કરને ફે લિયે અપને આપકો તૈયાર કરતા હૈ યહી ગર્હાં હૈ, કોઈ મન સે હુપ પાપકર્મોં પર ૧, કોઈ વચન સે હુપ પાપકર્મોં પર ૨,

ત્રિવિદા ગરિહા વળ્લવા ધલ્લાદિ—

ટીકાર્થ—ગર્હાં ત્રય પ્રકારની કહી છે—(૧) કોઈક એવ મનથી ગર્હાં કરે છે (૨) કોઈક એવ વચનથી ગર્હાં કરે છે અને (૩) કોઈક એવ કાયાથી ગર્હાં કરે છે તે એવ થેની ગર્હાં કરે છે ?

આ પ્રશ્નના ઉત્તર રૂપે એવું કહેવામાં આવ્યું છે કે—“ પાવાર્ણ કમ્માર્ણ અકરણયાપ્ ” તે એવ કૃત પાપકર્મની અકરણરૂપે ગર્હાં કરે છે એટલે કે પોતાના દ્વારા જે પાપકર્મોંનું સેવન થઈ ગયું છે, તે પાપકર્મોંનું ભવિષ્યમાં પોતે સેવન નહીં કરે એવો નિશ્ચય કરે છે અને થઈ ગયેલાં પાપકર્મોંનિ માટે તેનો આત્મા શ્વાની અનુભવે છે તથા ભવિષ્યમાં એવું ન કરવાને માટે પોતાને ટેવાર કરે છે આ પ્રમાણે કરવું તેનું નામ / ગર્હાં છે (૧) કોઈ મનથી થયેલા પાપકર્મોં પર વૃષ્ટા પ્રકટ કરે છે, (૨) કોઈ વચનથી થયેલાં પાપકર્મોં

स्वशरीरमपि पापानां कर्मगाम्करणतया पापान्निवर्तनार्थमित्यर्थः संहरति निरुणद्धि कायेन पापप्रवृत्तिं न करोतीति भावः । गर्हाऽतीते दण्डे भवति, । भविष्यति तु प्रत्याख्यानमिति प्रत्याख्यानं सूत्रद्वयेनाह- ' तिविहे ' इत्यादि सुगमं, नवरम्- ' एवं ' इत्यादि, एवं-पूर्वोक्तप्रकारेण यथा ' गरिहा ' इति गर्हायां तथा प्रत्या-

और कोई कायसे हुए पापकर्मों पर घृणा प्रकट करता है और आगे अब ऐसा नहीं करूंगा इस प्रकार से कहता है यही गर्हा है । " अहवा गरिहा तिविहा पणन्ता " अथवा गर्हा तीन प्रकारकी कही गई है जैसे कोई एक दीर्घकाल तक गर्हा करता है १, कोई एक थोड़े काल तक गर्हा करता है २, और कोई एक पापकर्म से अपने आपको हटाने के लिये शरीर से पापप्रवृत्ति नहीं करता है ।

प्रत्याख्यान तीन प्रकार का कहा गया है-कोई एक मनसे प्रत्याख्यान करता है, कोई एक वचन से प्रत्याख्यान करता है, कोई एक काय से प्रत्याख्यान करता है, इस तरह गर्हा के सम्बन्धमें जैसे दो आलापक कहे गये हैं वैसे ही वे दो आलापक प्रत्याख्यान के सम्बन्धमें भी कहना चाहिये ।

गर्हा नाम जुगुप्सा का है, अपने द्वारा कृत पाप के प्रति अथवा पर के द्वारा कृत पाप के प्रति या अपनी आत्मा के प्रति जो जुगुप्सा करता है यह सब गर्हा में आता है । पाप कर्मों को अब मैं नहीं करूंगा, इस

प्रत्ये घृणा प्रकट करे छे अने (३) कोछि कायार्थी थयेलां पापकर्मो प्रत्ये घृणा प्रकट करे छे, अने लविष्यमां जेनुं नडीं कर तेम कडे छे, तेनुं नाम न गर्हा छे. " अहवा गरिहा तिविहा पणन्ता " अथवा गर्हाना नीये प्रमाणे त्रषु प्रकार पणु कह्या छे-(१) कोछि एव दीर्घकाण सुधी गर्हा करे छे, (२) कोछि एव अल्पकाण सुधी गर्हा करे छे अने (३) कोछि एव पापकर्मथी पोतानी जतने हर राभवा भाटे शरीरथी पापप्रवृत्ति करते नथी.

प्रत्याख्यानना पणु त्रषु प्रकार कह्या छे-(१) कोछि एव मनथी प्रत्याख्यान करे छे, (२) कोछि एव वचनथी प्रत्याख्यान करे छे अने (३) कोछि एव कायार्थी प्रत्याख्यान करे छे. गर्हाना विषयमां जेवा जे आलापक कडेवामां आव्या छे, जेवां न जे आलापक प्रत्याख्यानना विषयमां पणु समजवा जेउजे.

गर्हा जेटवे जुगुप्सा ( घृणा ) पोताना द्वारा करायेलां पापकर्मो प्रत्ये अथवा अन्य द्वारा करायेला पापकर्मो प्रत्ये अथवा पोताना आत्मानी प्रत्ये जे जुगुप्साना दृष्टिथी जेवासां आवे छे तेनुं नाम न गर्हा छे. " पापकर्मो

ख्यानेऽपि-प्रत्याख्यानमूत्रेऽपि द्वावालापकौ-वाक्यरचनारूपो मणितन्वी-वाच्यो, विशेषस्त्वयम् ' गरिहृ ' इत्यस्य स्थाने ' पञ्चनन्दा इति वक्तव्यम् । प्रत्याख्याति पापाश्रितवर्षत इत्यर्थः ॥ सू० ८ ॥

पापकर्मप्रत्याख्यातारथ पतोपकारिणो भवन्तीति वृत्तदृष्ट्या चेतनं तेषां पुरुषार्थप्ररूपणाय नव सूत्रीमाह—

मूलम्—तत्रो रुक्खा पणत्ता, तजहा पत्तोवपुष्फोयपुफलो वपुः। एवामेष तत्रो पुरिसजाया पणत्ता, तजहा—पत्तोवगरुक्ख समाणा पुष्फावगरुक्खसमाणा फलोवगरुक्खसमाणा २ । तत्रो पुरिसजाया पणत्ता तजहा—नामपुरिसे ठवणपुरिसे दधपुरिसे ३ । तत्रो पुरिसजाया पणत्ता, तजहा—नाणपुरिसे दसणपुरिसे चरित्तपुरिस ४ । तत्रो पुरिसजाया पणत्ता, तजहा—येदपुरिसे

प्रकार के निश्चय से जो हिंसादिक का त्याग कर देता है वही कृतदण्ड के प्रति जुगुप्सा करना कहा है । पापकर्म में काय से प्रवृत्ति नहीं करना यह काय गर्हा है । इस तरह यह काय गर्हा पापकर्म में अप्रवृत्ति करने से ही होती है । इसी प्रकार से वचनगर्हा और मनोगर्हा के सम्बन्ध में भी कथन जानना चाहिये । गर्हा अतीतदण्ड-पाप में होती है और प्रत्याख्यान आगे होनेवाले दण्ड-पाप पर होता है । गर्हा के दो आलापकों के अनुसार प्रत्याख्यान के सम्बन्ध में भी दो आलापक कहना चाहिये ऐसा जो कहा गया है सो प्रत्याख्यान के आलापक में " पञ्च पन्नाइ " ऐसी क्रियापद का प्रयोग " गरिहृ " इस क्रियापद के स्थान में करना चाहिये, पाप से अपनी आत्मा को हटा लेना इस का नाम प्रत्याख्यान है ॥ सू० ८ ॥

कवे हुं नहीं कर्हं, ' आ प्रकारना निस्सकपूणं ने हिंसादिने त्वात्त करवाभां आवे छे तेनु नाम व इतद्वद मये जुजुप्सा करी कहेवाच छे पापकर्मोनु हायाभी जेवन न करहुं तेनु नाम हायगर्हा छे आ रीते पापकर्मोभां अप्रवृत्त कहेवाधी व हायगर्हा वाच छे जे व प्रभावे वचनगर्हा जने मनोगर्हा विरे पवु कथन सम्बन्धु अतीत दण्ड ( पापकर्म ) नी गर्हा हाय छे जने कवि भ्या यनास दण्ड ( पापकर्म ) ना प्रत्याख्यान यव छे गर्हाना जे आलापको जेवां व जे आलापको प्रत्याख्यान विरे पवु कहेवानुं जे आगत सूचन कर वाभां आणु छे ते सूचन अनुसार आलापको जनावती वपते ' गरिहृ ' आ क्रियापदने जसे पदक्याह " आ क्रियापदने अर्थ करवे जेधजे शिवाय आत्माने पापभी हर राजवे तेनु नाम प्रत्याख्यान छे ॥ सू० ८ ॥

चिंधपुरिसे अभिलावपुरिसे ५ । तिविहा पुरिसजाया पण्णत्ता,  
तं जहा--उत्तमपुरिसा मज्झिमपुरिसा जहन्नपुरिसा ६ । उत्तम-  
पुरिसा तिविहा पण्णत्ता, तं जहा--धम्मपुरिसा भोगपुरिसा  
कम्मपुरिसा । धम्मपुरिसा अरिहंता, भोगपुरिसा चक्कवट्ठी, कम्म-  
पुरिसा वासुदेवा ७ । मज्झिमपुरिसा तिविहा पण्णत्ता, त  
जहा-उग्गा भोगा रायच्चा ८ । जहन्नपुरिसा तिविहा पण्णत्ता,  
तं जहा--दासा भयगा भाइल्लगा ९ ॥ सू० ९ ॥

छाया—त्रयो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-पत्रोपगः, १ पुष्पोपगः २ फलोपगः,  
एवमेव त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-पत्रोपगवृक्षसमाना, २। पुष्पोपगवृक्ष-  
समानाः फलोपगवृक्षसमानाः, त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा नामपुरुषः  
स्थापनापुरुषः, द्रव्यपुरुषः, ३। त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-ज्ञानपुरुषः,  
दर्शनपुरुषः, चारित्रपुरुषः ४। त्रीणि पुरुषजातानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-वेदपुरुषः,  
चिह्नपुरुषः, अभिलापपुरुषः ५। त्रिविधानि पुरुषजातानि, प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-उत्तम  
पुरुषाः, मध्यमपुरुषाः, जघन्यपुरुषाः ६। उत्तमपुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-  
धर्मपुरुषाः, भोगपुरुषाः, कर्मपुरुषाः । धर्मपुरुषाः अर्हन्तः, भोगपुरुषाश्चक्रवर्त्तिनः,  
कर्मपुरुषा वासुदेवाः ७। म-यमपुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा उग्राः, भोगाः, राज-  
न्याः ८। जघन्यपुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा दासा, भृतकाः, भागिकाः ९। सू० ९ ।

टीका—‘तओरुक्खा ’ इत्यादि । त्रयो वृक्षाः प्रज्ञप्ताः, ते यथा-  
पत्रोपगः, पुष्पोपगः, फलोपगः । तत्र पत्राणि-उपगच्छति-प्राप्नोतीति पत्रोपगः-

पापकर्म का प्रत्याख्यान करनेवाले जीव परोपकारी होते हैं । इस  
यात की प्ररूपणा अब सूत्रकार वृक्ष के दृष्टान्तद्वारा नौ सूत्रों से करते  
हैं—“ तओ रुक्खा पण्णत्ता ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—वृक्ष तीन प्रकार के कहे गये हैं—एक पत्रोपग-पत्रबहुल, दूसरे  
पुष्पोपग-पुष्पबहुल और तीसरे फलोपग-फलबहुल, इसी तरह पुरुष

पापकर्मना प्रत्याख्यान करनेवाले एव परोपकारी होय छे. आ वातनी  
प्ररूपणा सूत्रकार वृक्षना दृष्टान्त द्वारा नव सूत्रोनी महत्थी करे छे—

“ तओ रुक्खा पण्णत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—वृक्षे त्रय प्रकारना कथां छे—(१) पत्रोपग (पाननी विपुलता स पत्र)  
(२) पुष्पोपग (पुष्पोनी वि  
फलोपग (इयोनी

ख्यानऽपि-प्रत्याख्यानमूषेऽपि द्वावालापकौ-वाक्यरचनारूपो मणितुष्टौ-बान्यौ, विशेषस्त्वयम् ' गरिहह ' इत्यस्य स्थाने ' पञ्चवन्वाः इति षक्तम्यम् । प्रत्याख्याति पापाभिवर्धत इत्यर्थः ॥ सू० ८ ॥

पापकर्मप्रत्याख्यातारम्भ परोपकारिणो मन्वन्तीति वृत्तदृष्ट्या चैन तर्वा पुरुषाणां परूपणाय नव सूत्रीमाह—

मूलम्—तत्रो रुक्खा पणत्ता, तजहा पत्तोवप, पुष्फोवप फलो वपः। एवामेव तत्रो पुरिसजाया पणत्ता, तजहा—पत्तोवगरुक्ख समाणा पुष्फावगरुक्खसमाणा फलोवगरुक्खसमाणा २ । तत्रो पुरिसजाया पणत्ता त जहा—नामपुरिसे ठवणपुरिसे दध्वपुरिसे ३ । तत्रो पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—नाणपुरिसे दसणपुरिसे चरित्तपुरिस ४ । तत्रो पुरिसजाया पणत्ता, त जहा—वेदपुरिसे

प्रकार के निश्चय से जो हिंसादिक का श्याग कर देता है वही कृतदण्ड के प्रति जुगुप्सा करना कहा है । पापकर्म में काय से प्रवृत्ति नहीं करना यह काय गहरी है । इस तरह यह काय गहरी पापकर्म में अप्रवृत्ति करने से ही होती है । इसी प्रकार से बचनगहरी और मनोगहरी के सम्बन्ध में भी कथन जानना चाहिये । गहरी अतीतदण्ड-पाप में होती है और प्रत्याख्यान आगे होनेवाले दण्ड-पाप पर होता है । गहरी के दो आलापकों के अनुसार प्रत्याख्यान के सम्बन्ध में भी दो आलापक कहना चाहिये ऐसा जो कहा गया है सो प्रत्याख्यान के आलापक में “ पञ्च वन्वाह ” ऐसी क्रियापद का प्रयोग “ गरिहह ” इस क्रियापद के स्थान में करना चाहिये, पाप से अपनी आत्मा को हटा लेना इस का नाम प्रत्याख्यान है ॥ सू० ८ ॥

“वे तु नहीं ठहै,” का प्रकाशना निश्चयपूर्वक से हिंसादिने त्वात्र करवाभां आवे से तेषु नाम च हतदद मत्ते जुगुप्सा करी कहेवाय से पापकर्मोनु कथाधी सेवन न करतु तेषु नाम कथजर्हा से आ शीते पापकर्मोभां अत्रवृत्त रहेवाधी च कथजर्हा वाय से जे च प्रभासे बचनजर्हा जने मनोजर्हा विषे पञ्च कथन समचर्त जतीत दद ( पापकर्म ) नी जर्हा कराय से जने भवि ध्यभां यतास दद ( पापकर्म ) ना प्रत्याख्यान म्भ से जर्हाता से आलापको केवां च से आलापको प्रत्याख्यान विषे पञ्च कहेवानु से आगत सूचन कर वाभां आन्तु से वे सूचन अनुसार आलापको जनावती बधते गरिहह ” का क्रियापदने पहले “ पञ्चवन्वाह ” का क्रियापदने प्रयोग करवे जेधजे. शीताना आत्माने पापधी हर राजवे तेषु नाम प्रत्याख्यान से ॥ सू० ८ ॥

पत्रवहुलः । एवं पुष्पोपगः-पुष्पवहुलः १ फलोपगः-फलवहुलः, । दार्ष्टान्तिक  
 योजनामाह—'एवमेव' इत्यादि, एवमेव अनेनैव पत्रोपगादिवृक्षदृष्टान्तेन त्रीणि  
 पुरुषजातानि पुरुषप्रकाराः पुरुषविशेषाः प्रज्ञप्तानि, तत्र-पत्र पुष्पफलवहुला वृक्षा  
 अर्थिषु सामान्यविशिष्ट-विशिष्टतरो-पकारकारिणो भवन्ति । तथाहि-पत्रवहुला-  
 वृक्षाश्छायादानेन, पुष्पवहुला-सुरभिगन्धदानेन, फलवहुलाः-फलप्रदानेनोपकु-  
 र्वन्त्यर्थिजनान् । एवं लोकोत्तरपुरुषा अपि शिष्यजनान् पत्रस्थानीयसूत्रदानेन,  
 पुष्पस्थानीयार्थदानेन, फलस्थानीयोभयदानेनोपकुर्वन्तीति । एवं यथायोगमन्य-  
 वस्तुदानादिनाऽपि लोकोत्तरपुरुषा उपकारकारिणो भवन्तीति २ । अथ पुरुषप्र-

इसी प्रकारसे जिनमें पुष्पों की बहुलता होती है वे पुष्पोपगवृक्ष हैं ।  
 और जिनमें फल अधिक होते हैं वे फलोपगवृक्ष हैं । ये दृष्टान्तरूप में  
 यहां प्रयुक्त किये गये हैं । अब दार्ष्टान्त को इन के साथ घटित करते हुए  
 सूत्रकार कहते हैं-कि इसी तरह से पुष्पप्रकार-पुरुषविशेष भी तीन  
 होते हैं-एक वे जो शिष्यजनों को पत्र स्थानीय सूत्रदान से उनका उप-  
 कार करते हैं । दूसरे वे जो पुष्पस्थानीय अर्थदानसे उनका उपकार करते हैं ।  
 तीसरे वे जो फलस्थानीय उभयदान से सूत्र और अर्थ दोनों के दानसे  
 उनका उपकार करते हैं । पत्र पुष्प और फल इनसे बहुल जो वृक्ष होते  
 हैं वे अर्थिजनों को सामान्य रूपसे विशिष्ट रूप से और विशिष्टतररूप  
 से उपकारी होते हैं । इसी तरह से लोकोत्तर पुरुष भी शिष्यजनों के  
 पूर्वोक्तरूप से उपकारी होते हैं । इस तरह से अन्य वस्तु प्रदानाद्वारा  
 भी लोकोत्तर पुरुष जनता के उपकारी होते हैं ऐसा जानना चाहिये २ ।

કહે છે અને અધિક ફળોથી સંપન્ન વૃક્ષને ફલોપગ વૃક્ષ કહે છે. હવે પુરુ  
 ષોના જે પત્રોપગ વૃક્ષ સમાન આદિ ત્રણ પ્રકારો ઉપર બતાવવામાં આવ્યા  
 છે, તેની સ્પષ્ટતા કરવામાં આવે છે-પોતાના શિષ્યોને પત્રસ્થાનીય સૂત્રદાન  
 દ્વારા જેઓ ઉપકૃત કરે છે એવા પુરુષોને પત્રોપગવૃક્ષ જેવા કહ્યા છે પોતાના  
 શિષ્યને પુષ્પસ્થાનીય અર્થદાન દ્વારા ઉપકૃત કરનારા પુરુષોને પુષ્પોપગ વૃક્ષ  
 સમાન કહ્યા છે ફલસ્થાનીય ઉભયદાનથી-સૂત્ર અને અર્થના દાનથી શિષ્યોને  
 ઉપકાર કરનાર પુરુષોને ફલોપગ વૃક્ષ સમાન કહ્યા છે.

જેમ પાન, ફૂલ અને ફળોથી સંપન્ન વૃક્ષો અર્થિજનોને સામાન્ય રૂપે,  
 વિશિષ્ટ રૂપે અને વિશિષ્ટતર રૂપે ઉપકારક હોય છે, એ જ પ્રમાણે અન્ય  
 વસ્તુના પ્રદાન આદિ દ્વારા લોકોત્તર પુરુષે પણ જનતાને માટે ઉપકારી થઈ  
 પડે છે, એમ સમજવું

प्रकार भी तीन कहे गये हैं—एक पश्रोपग वृक्षसमान, दूसरे पुष्पोपग वृक्षसमान, तीसरे फलोपग वृक्षसमान इस प्रकार से भी पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—जैसे नामपुरुष, स्थापना पुरुष और द्रव्यपुरुष ।

इस प्रकारसे भी पुष्प तीन प्रकार के कहे गये हैं—जैसे ज्ञानपुरुष, दक्षानपुरुष और चारित्र्यपुरुष ।

इस प्रकारसे भी तीन पुरुष कहे गये हैं—जैसे—वेदपुरुष, विद्वत्पुरुष और अभिलाषपुरुष ।

इस प्रकार से भी पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं, उत्समपुरुष, मध्यमपुरुष और जघन्यपुरुष, इनमें उत्समपुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—जैसे—धर्मपुरुष भोगपुरुष और कर्मपुरुष । अर्हन्त धर्मपुरुष हैं, चक्रवर्ती भोग पुरुष हैं । तथा घासुदेव कर्मपुरुष हैं, मध्यमपुरुष भी तीन प्रकारके हैं । जैसे—उग्रपुरुष, भोगपुरुष और राजपुरुष ।

जघन्यपुरुष भी तीन प्रकार के हैं—दास, भृत्य और भागिक, वृक्षों के तीन प्रकारों में जो वृक्षपत्रों को प्राप्त किये हुए होते हैं वे पश्रोपग वृक्ष हैं अथात् पत्र जिनमें अधिक होते हैं ऐसे वृक्षपश्रोपग वृक्ष हैं ।

विपुलतावाणां ) जे ४ प्रभाजे भावसना पक्ष तत्र प्रकार छे—(१) पश्रोपग वृक्ष समान भावसे, (२) पुष्पोपग वृक्ष समान भावसे जने (३) इलोपग वृक्ष समान भावसे पुरुषता नीचे प्रभाजे पक्ष तत्र प्रकार कइया छे—(१) नाम पुरुष (२) स्थापना पुरुष जने (३) द्रव्य पुरुष

पुरुषता नीचे प्रभाजे पक्ष तत्र प्रकार कइया छे—(१) ज्ञान पुरुष, (२) द्योतन पुरुष जने (३) चारित्र्य पुरुष

पुरुषता नीचे प्रभाजे तत्र प्रकार पक्ष कइया छे (१) वेद पुरुष, (२) विद्वत् पुरुष जने (३) अभिलाष पुरुष

भा प्रभाजे वीर्य तत्र प्रकार पक्ष कइया छे—(१) उत्तम पुरुष, (२) (२) मध्यम पुरुष जने (३) जघन्य पुरुष तेषां उत्तम पुरुषता पक्ष तत्र प्रकार छे—(१) धर्म पुरुष (२) भोग पुरुष जने (३) कर्म पुरुष जे त धर्म पुरुष छे चक्रवर्ती भोग पुरुष छे जने वासुदेव धर्म पुरुष छे मध्यम पुरुषता पक्ष तत्र प्रकार कइया छे—(१) उग्र पुरुष, (२) भोग पुरुष जने राजन्य पुरुष जघन्य पुरुषता पक्ष तत्र प्रकार कइया छे—(१) दास (२) भृत्य (३) भागिक

वृक्षीनां तत्र प्रकारकी स्पष्टता—जे १ । अधिक पत्रधी सुष्ठु होय छे, ते वृक्षने पश्रोपग वृक्ष कहे छे अधिक इलोधी सुष्ठु वृक्षने पुष्पोपग वृक्ष

पत्रबहुलः । एवं पुष्पोपगः—पुष्पबहुलः १ फलोपगः—फलबहुलः, । दार्ष्टान्तिक योजनामाह—‘ एवमेव’ इत्यादि, एवमेव अनेनैव पत्रोपगादिवृक्षदृष्टान्तेन त्रीणि पुरुषजातानि पुरुषप्रकाराः पुरुषविशेषाः प्रज्ञप्तानि, तत्र—पत्र पुष्पफलबहुला वृक्षा अर्थिषु सामान्यविशिष्ट—विशिष्टतरो—पकारकारिणो भवन्ति । तथाहि—पत्रबहुला-वृक्षाख्यायादानेन, पुष्पबहुलाः—सुरभिगन्धदानेन, फलबहुलाः—फलप्रदानेनोपकुर्वन्त्यर्थिजनान् । एवं लोकोत्तरपुरुषा अपि शिष्यजनान् पत्रस्थानीयसूत्रदानेन, पुष्पस्थानीयार्थदानेन, फलस्थानीयोभयदानेनोपकुर्वन्तीति । एवं यथायोगमन्य-वस्तुदानादिनाऽपि लोकोत्तरपुरुषा उपकारकारिणो भवन्तीति २ । अथ पुरुषप्र-

हमी प्रकारसे जिनमें पुष्पों की बहुलता होनी है वे पुष्पोपगवृक्ष हैं । और जिनमें फल अधिक होते हैं वे फलोपगवृक्ष हैं । ये दृष्टान्तरूप में यहां प्रयुक्त किये गये हैं । अब दार्ष्टान्त को इन के साथ घटित करतेहुए सूत्रकार कहते हैं—कि इसी तरह से पुष्पप्रकार—पुरुषविशेष भी तीन होते हैं—एक वे जो शिष्यजनों को पत्र स्थानीय सूत्रदान से उनका उप-कार करते हैं । दूसरे वे जो पुष्पस्थानीय अर्थदानसे उनका उपकार करते हैं । तीसरे वे जो फलस्थानीय उभयदान से सूत्र और अर्थ दोनों के दानसे उनका उपकार करते हैं । पत्र पुष्प और फल इनसे बहुत जो वृक्ष होते हैं वे अर्थिजनों को सामान्य रूपसे विशिष्ट रूप से और विशिष्टतररूप से उपकारी होते हैं । इसी तरह से लोकोत्तर पुरुष भी शिष्यजनों के पूर्वोक्तरूप से उपकारी होते हैं । इस तरह से अन्य वस्तु प्रदानादिकारा भी लोकोत्तर पुरुष जनता के उपकारी होते हैं ऐसा जानना चाहिये २ ।

કહે છે અને અધિક ફળોથી સંપન્ન વૃક્ષને ફલોપગ વૃક્ષ કહે છે. હવે પુરુ-  
ષોના જે પત્રોપગ વૃક્ષ સમાન આદિ ત્રણ પ્રકારો ઉપર ખતાવવામાં આવ્યા  
છે, તેની સ્પષ્ટતા કરવામાં આવે છે—પોતાના શિષ્યોને પત્રસ્થાનીય સૂત્રદાન  
દ્વારા જેઓ ઉપકૃત કરે છે એવા પુરુષોને પત્રોપગવૃક્ષ જેવા કહ્યા છે. પોતાના  
શિષ્યને પુષ્પસ્થાનીય અર્થદાન દ્વારા ઉપકૃત કરનારા પુરુષોને પુષ્પોપગ વૃક્ષ  
સમાન કહ્યા છે ફલસ્થાનીય ઉભયદાનથી—સૂત્ર અને અર્થના દાનથી શિષ્યોને  
ઉપકાર કરનાર ગુરુજનોને ફલોપગ વૃક્ષ સમાન કહ્યા છે.

જેમ પાન, ફૂલ અને ફળોથી સંપન્ન વૃક્ષો અર્થિજનોને સામાન્ય રૂપે,  
વિશિષ્ટ રૂપે અને વિશિષ્ટતર રૂપે ઉપકારક હોય છે, એ જ પ્રમાણે અન્ય  
વસ્તુના પ્રદાન આદિ દ્વારા લોકોત્તર પુરુષે પણ જનતાને માટે ઉપકારી થઈ  
પડે છે, એમ સમજવું.



प्रकार भी तीन कहे गये हैं—एक पश्रोपग वृक्षसमान, दूसर पुष्पोपग वृक्षसमान, तीसरे फलोपग वृक्षसमान इस प्रकार से भी पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—जैसे नामपुरुष, स्थापना पुरुष और द्रव्यपुरुष ।

इस प्रकारसे भी पुरुष तीन प्रकार के कह गये हैं—जैसे ज्ञानपुरुष, वर्दानपुरुष और चारित्र्यपुरुष ।

इस प्रकारसे भी तीन पुरुष कहे गये हैं—जैसे—वेदपुरुष, विद्वानपुरुष और अमिलापपुरुष ।

इस प्रकार से भी पुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं, उत्तमपुरुष, मध्यमपुरुष और जघन्यपुरुष, इनमें उत्तमपुरुष तीन प्रकार के कहे गये हैं—जैसे—धर्मपुरुष भोगपुरुष और कर्मपुरुष । अर्हन्त धर्मपुरुष हैं, चक्रवर्ती भोग पुरुष हैं । तथा वासुदेव कर्मपुरुष हैं, मध्यमपुरुष भी तीन प्रकारके हैं । जैसे—उन्नपुरुष, भोगपुरुष और राजपुरुष ।

जघन्यपुरुष भी तीन प्रकार के हैं—वास, भृत्य और भागिक, वृक्षों के तीन प्रकारों में जो वृक्षपत्रों को प्राप्त किये हुए होते हैं व पश्रोपग वृक्ष हैं अर्थात् पत्र जिनमें अधिक होते हैं ऐसे वृक्षपश्रोपग वृक्ष हैं ।

विपुलतावाणां ) के प्रभावे भावसना पक्ष त्रय प्रकार है—(१) पश्रोपग वृक्ष समान भावसे (२) पुष्पोपग वृक्ष समान भावसे अने (३) फलोपग वृक्ष समान भावसे पुरुषता नीचे प्रभावे पक्ष त्रय प्रकार है—(१) नाम पुरुष (२) स्थापना पुरुष अने (३) द्रव्य पुरुष

पुरुषता नीचे प्रभावे पक्ष त्रय प्रकार है—(१) ज्ञान पुरुष, (२) वर्दान पुरुष अने (३) चारित्र्य पुरुष

पुरुषता नीचे प्रभावे त्रय प्रकार पक्ष है—(१) वेद पुरुष, (२) विद्वान पुरुष अने (३) अमिलाप पुरुष

आ प्रभावे लीला त्रय प्रकार पक्ष है—(१) उत्तम पुरुष, (२) मध्यमपुरुष अने (३) जघन्य पुरुष तैर्मा उत्तम पुरुषता पक्ष त्रय प्रकार है—(१) धर्म पुरुष (२) भोग पुरुष अने (३) कर्म पुरुष अर्हन्त धर्म पुरुष है चक्रवर्ती भोग पुरुष है अने वासुदेव कर्म पुरुष है मध्यम पुरुषता पक्ष त्रय प्रकार है—(१) उन्न पुरुष, (२) भोग पुरुष अने राजपुरुष अथ व पुरुषता पक्ष त्रय प्रकार है—(१) वास (२) भूतक (३) भागिक

वृक्षानां त्रय प्रकारनी स्पष्टता—ये वृक्ष अधिक पत्रधी सुष्ठु होय है, ते वृक्षने पश्रोपग वृक्ष है अधिक हृद्यधी सुष्ठु वृक्षने पुष्पोपग वृक्ष

पत्रवहुलः । एवं पुष्पोपगः—पुष्पवहुलः १ फलोपगः—फलवहुलः, । दार्ष्टान्तिक योजनामाह—‘एवामेव’ इत्यादि, एवमेव अनेनैव पत्रोपगादिवृक्षदृष्टान्तेन त्रीणि पुरुषजातानि पुरुषप्रकाराः पुरुषविशेषाः प्रज्ञप्तानि, तत्र—पत्र पुष्पफलवहुला वृक्षा अर्थिषु सामान्यविशिष्ट—विशिष्टतरो—पकारकारिणो भवन्ति । तथाहि—पत्रवहुला-वृक्षाच्छायादानेन, पुष्पवहुला—सुरभिगन्धदानेन, फलवहुलाः—फलप्रदानेनोपकुर्वन्त्यर्थिजनान् । एवं लोकोत्तरपुरुषा अपि शिष्यजनान् पत्रस्थानीयसूत्रदानेन, पुष्पस्थानीयार्थदानेन, फलस्थानीयोभयदानेनोपकुर्वन्तीति । एवं यथायोगमन्यवस्तुदानादिनाऽपि लोकोत्तरपुरुषा उपकारकारिणो भवन्तीति २ । अथ पुरुषप्र-

इसी प्रकारसे जिनमें पुष्पों की बहुलता होती है वे पुष्पोपगवृक्ष हैं । और जिनमें फल अधिक होते हैं वे फलोपगवृक्ष हैं । ये दृष्टान्तरूप में यहां प्रयुक्त किये गये हैं । अब दार्ष्टान्त को इन के साथ घटित करते हुए सूत्रकार कहते हैं—कि इसी तरह से पुरुषप्रकार—पुरुषविशेष भी तीन होते हैं—एक वे जो शिष्यजनों को पत्र स्थानीय सूत्रदान से उनका उपकार करते हैं । दूसरे वे जो पुष्पस्थानीय अर्थदानसे उनका उपकार करते हैं । तीसरे वे जो फलस्थानीय उभयदान से सूत्र और अर्थ दोनों के दानसे उनका उपकार करते हैं । पत्र पुष्प और फल इनसे बहुल जो वृक्ष होते हैं वे अर्थिजनों को सामान्य रूपसे विशिष्ट रूप से और विशिष्टतररूप से उपकारी होते हैं । इसी तरह से लोकोत्तर पुरुष भी शिष्यजनों के पूर्वोक्त रूप से उपकारी होते हैं । इस तरह से अन्य वस्तु प्रदानादिवारा भी लोकोत्तर पुरुष जनता के उपकारी होते हैं ऐसा जानना चाहिये २ ।

કહે છે અને અધિક ફળોથી સંપન્ન વૃક્ષને ફલોપગ વૃક્ષ કહે છે. હવે પુરુષોના જે પત્રોપગ વૃક્ષ સમાન આદિ ત્રણ પ્રકારો ઉપર બતાવવામાં આવ્યા છે, તેની સ્પષ્ટતા કરવામાં આવે છે—પોતાના શિષ્યોને પત્રસ્થાનીય સૂત્રદાન દ્વારા જેઓ ઉપકૃત કરે છે એવા પુરુષોને પત્રોપગવૃક્ષ જેવાં કહ્યા છે. પોતાના શિષ્યને પુષ્પસ્થાનીય અર્થદાન દ્વારા ઉપકૃત કરનારા પુરુષોને પુષ્પોપગ વૃક્ષ સમાન કહ્યા છે ફલસ્થાનીય ઉભયદાનથી—સૂત્ર અને અર્થના દાનથી શિષ્યોને ઉપકાર કરનાર શુરુજનોને ફલોપગ વૃક્ષ સમાન કહ્યા છે.

જેમ પાન, ફૂલ અને ફળોથી સંપન્ન વૃક્ષો અર્થિજનોને સામાન્ય રૂપે, વિશિષ્ટ રૂપે અને વિશિષ્ટતર રૂપે ઉપકાર કરે છે, એ જ પ્રમાણે અન્ય વસ્તુના પ્રદાન આદિ દ્વારા લોકોત્તર પુરુષે પણ જનતાને માટે ઉપકારી થઈ પડે છે, એમ સમજવું

સ્તાવાદ્ પુરુષવત્કલ્પ્યતાં સસમૂહ્યા નિરુપયતિ—‘ સમો પુરિસનાયા ’ इत्यादि, છુગમમ્ । નવર પુરુષમરૂપણા ક્રિયયે—નામપુરુષઃ ‘ પુરુષ ’ इति नाममात्रम्, સ્થાપના પુરુષઃ—લેખ્યવિષાદિપુ પુરુષાકૃતિમાત્રમ્, પુરુષજ્ઞાનસપક્ષોઽનુપયુક્તો દ્રવ્યપુરુષ ‘ અણુવમોગો દચ્ચ ’ इति षषनात् । નામસ્થાપનાદીનાં વિશેષવિષરજ મનુયોગદ્વારસૂત્રસ્ય મત્કૃતાવામનુયોગચત્વિષ્ટીકાયાદયલોકનીદમ્ ૧ । પુનઃ પુરુષપ્રૈવિષ્યમાદ—તત્ર જ્ઞાનરૂપભાવપ્રધાનઃ પુરુષો જ્ઞાનપુરુષઃ, एष दर्शनपुरुषश्चा

अथ सूत्रकार पुनः ससमूही द्वारा इमी पुंश्व घशकल्पताका कथन करते हैं—नामपुरुष घे हे जो नाममात्र के पुरुष हैं अर्थात् किसी भी वस्तु का पुरुष ऐसा जो नाम लोक व्यवहार चलाने के लिये रख लिया जाता है वह नामपुरुष है इस नाम पुरुष में पुंश्व के जैसे कोई भी लक्षण नहीं होते हैं । लेख्य, चित्र आदिकों में जो पुरुषाकृति की स्थापना करली जाती है, वह स्थापनापुरुष है । पुरुषज्ञानसपक्ष एषा भी जीय अनुपयुक्त अव स्थायाला है, तो वह द्रव्यपुरुष है क्यों कि “ अणुवमोगो दच ” ऐसा सिद्धान्त घचन है, नामस्थापना आदिका विशेष विवरण अनुयोगद्वार सूत्रकी अनुयोग चट्टिका टीकामें मैंने लिखा है—अतः जिज्ञासुओं को यह टीका अवश्य देखनी चाहिये । इस प्रकार से भी पुरुष तीन होते हैं—ज्ञानपुरुष आदि यहाँ ज्ञानपुरुष में ज्ञानरूप भावप्रधान पुरुष लिया गया है । इसी प्रकारसे दर्शनरूप भावप्रधानपुरुष दर्शनपुरुष में और

दवे सूत्रकार सात सूत्रों द्वारा ओंज पुरुष वक्त पतानुं विशेष कथन करे छे—नामपुरुष ते छे के के नाममात्रनी अपेक्षाओ ए पुरुष छे ज्येठे के के छे पञ्च वस्तुनुं पुरुष ज्येठु के नाम हो। अन्वयद्वारा व्यस्यवाने माटे राष नामां आवे छे ते नामपुरुष छे आ नामपुरुषमां पुरुषतां जेवां के। छे लक्षणे। के।तां नवी देख्य चित्र आदिमां के पुरुषाकृतिनी स्थापना करवामां आवे छे, तेने स्थापना पुरुष कहे छे पुरुषज्ञान सपक्ष एष ज्ये अनुपयुक्त अवस्था वणे। होय छे तो तेने द्रव्यपुरुष कहे छे उरये।त्र वमरनयने द्र ष कहेवाव छे कायज के अणुवमोगो दच्य ’ आ प्रकारनुं सिद्धांत कथन छे नाम, स्थापना आदिनुं विशेष विवरण अनुये जद्वार सूत्रनी अनुये।त्रचट्टिका टीकामां मारा द्वारा लभवागां आवेस छे तो जिज्ञासु पाठके ने ते वांथवा काठ मय छे दवे ज्ञानपुरुष आदि त्रय प्रश रानुं स्पष्टीकरण करवामां आवे छे—ज्ञानरूप भावनी प्रधानतावाणा पुरुषने ज्ञानपुरुष कहे छे, इशानरूप भावनी प्रधानतावाणा पुरुषने इशान पुरुष कहे छे ज्ये च विररूप भावनी प्रधानता वाणा पुरुषने आदित्र पुरुष कहे छे

ત્રિપુરુષશ્ચાપિ વાચ્યઃ ૫ । પુનઃ પુરુષત્રૈવિધ્યમ્ , તત્ર-પુવેદાનુભવનપ્રધાનઃ પુરુષો વેદપુરુષઃ । સ ચ પુરુષવેદાનુભૂતિકાલે સ્ત્રી પુનપુસકેષુ ત્રિષ્વપિ ભવતિ, “ વેયપુરિસો તિલિંગો વિ પુરિસવેયાણુભૂઙ્કાલમ્મિ ” ઇતિ વચનાત્ , યથા-સ્ત્રીકામિતારૂપપુરુષવેદસંપન્નાનિ સ્ત્રી પુરુષનપુસકાનીતિ । ઇદમુક્તં ભવતિ-સ્ત્રીકામુક્તી સ્ત્રી, સ્ત્રીકામુકઃ પુરુષઃ, સ્ત્રીપુરુષકામુકં નપુંસકં ચેતિ । યદ્વા-સ્ત્રીનપુસકવેપધારી પુરુષો વેદપુરુષઃ વશ્યતે, અયં વેદેન પુરુષઃ વેપેણતુ સ્ત્રી, નપુસકં વાપિ ભવતિ ૧, ચિહ્નૈઃ-પુરુષચિહ્નૈશ્મશુરોમાદિભિરુપલક્ષિતઃ પુરુષચિહ્નપુરુષઃ, ચિહ્નમાત્રેણ પુરુષો ન તુ યથાર્થતયા, યથા-શ્મશુવશ્રુતિચિહ્નયુક્તં નપુંસકમિતિ । યદ્વા-ચિહ્નેન-વેપેણ પુરુષચિહ્ન

ચારિત્રરૂપ ભાવપ્રધાનપુરુષ ચારિત્રપુરુષમેં લિયા ગયા છે । વેદપુરુષમેં પુવેદાનુભવ પ્રધાનતાગલા પુરુષ ગૃહીત હુઆ છે । યહ પુવેદાનુભવપ્રધાન પુરુષ વેદાનુભૂતિ કાલમે સ્ત્રી, પુનપુસક તીનોં મેં ઓ હોતા છે । કહા ઓ છે—“ વેયપુરિસો તિલિંગો વિ પુરિસવેયાણુભૂઙ્કાલમ્મિ ” સ્ત્રી પુનપુસક સ્ત્રીકામિતારૂપપુરુષવેદસંપન્ન હોતે છે । તાત્પર્ય ઇસ કથનકા એસા છે કિ પુરુષ કી ચાહનાવાલી સ્ત્રી હોતી છે, સ્ત્રીકી ચાહનાવાલા પુરુષ હોતા છે । ઓર સ્ત્રીપુરુષ દોનોં કી ચાહનાવાલા નપુંસક હોના છે । અથવા સ્ત્રી નપુસક વેપધારી જો પુરુષ હોતા છે વહ વેદપુરુષ છે । એસા પુરુષ કેવલવેદ સે પુરુષ હોતા છે વેપસે તો વહ સ્ત્રી યા નપુંસક હોતા છે । શ્મશુ, રોમ દાઢી-મૂઝ આદિરૂપ જો પુરુષચિહ્ન છે ડન ચિહ્નોંસે ડપલક્ષિત જો પુરુષ છે વહ ચિહ્ન પુરુષ છે, યહ ચિહ્ન પુરુષચિહ્ન માત્રસે પુરુષ હોના છે યથાર્થ રૂપમેં પુરુષ નહીં હોતા ।

વેદપુરુષમા પુવેદાનુભવની પ્રધાનતાવાળા પુરુષ શ્રદ્ધા કરવામાં આવેલ છે તે પુવેદાનુભવપ્રધાન પુરુષ, પુરુષવેદાનુભૂતિકાળમા સ્ત્રી, પુ (પુરુષ) અને નપુંસક, એ ત્રણેમા પણ હોઈ શકે છે કહ્યું પણ ખરૂ છે કે—“ વેયપુરિસો તિલિંગો વિ પુરિસવેયાણુભૂઙ્કાલમ્મિ ” સ્ત્રીનપુંસક સ્ત્રીકામિતારૂપ પુરુષવેદ સંપન્ન હોય છે. આ કથનતુ તાત્પર્ય એ છે કે પુરુષની ચાહનાવાળી સ્ત્રી હોય છે, સ્ત્રીની ચાહનાવાળો પુરુષ હોય છે, અને સ્ત્રી અને પુરુષ, એ બન્નેની ચાહનાવાળો નપુંસક હોય છે

અથવા—સ્ત્રીનપુંસક વેપધારી જે પુરુષ હોય છે તેને વેદપુરુષ કહે છે, એવો પુરુષ કેવળ વેદની અપેક્ષાએ જ પુરુષ હોય છે, વેપની અપેક્ષાએ તો તે સ્ત્રી અથવા નપુંસક હોય છે શ્મશુ, રોમ (દાઢી-મૂઝ) આદિ રૂપ જે પુરુષચિહ્ન છે, તે ચિહ્નોથી ઉપલક્ષિત જે પુરુષ છે તેને ચિહ્નપુરુષ કહેવાય છે. તે ચિહ્નપુરુષ તે ચિહ્નોની અપેક્ષાએ જ પુરુષ લાગે છે, પણ યથાર્થ રૂપે તો પુરુષ હોતા

સ્વાભાવ પુરુષવત્કવ્યર્તા સસમૂહ્યા નિરૂપયતિ—‘તમો પુરિસજાપા’ इत्यादि, सुगमम् । नवर पुरुषपरूपणा क्रियते-नामपुरुषः ‘पुरुष’ इति नाममात्रम्, स्थापना पुरुषः-लेख्यचित्रादिषु पुरुषाकृतिमात्रम्, पुरुषज्ञानसपदाऽप्यनुपयुक्तो द्रव्यपुरुष ‘अणुवभोगो द्रव्य’ इति पचनात् । नामस्थापनादीनां विशेषविबरण मनुयोगद्वारसूत्रस्य मक्तवायामनुयोगचन्द्रिकाटीकायामधमोक्तनीयम् ३ । पुनः पुरुषत्रैविध्यमाह—तत्र ज्ञानरूपमाद्यप्रधानः पुरुषो ज्ञानपुरुषः, एव दर्शनपुरुषश्चा

अथ सूत्रकार पुनः ससमूही द्वारा इसी पुरुष वक्तव्यताका कथन करते हैं—नामपुरुष वे हैं जो नाममात्र के पुरुष हैं अर्थात् किसी भी वस्तु का पुरुष ऐसा जो नाम लोक व्यवहार चलाने के लिये रख लिया जाता है वह नामपुरुष है इस नाम पुरुष में पुरुष के जैसे कोई भी लक्षण नहीं होते हैं । लेख्य, चित्र आदिकों में जो पुरुषाकृति की स्थापना करली जाती है, वह स्थापनापुरुष है । पुरुषज्ञानसपदा हुआ भी जीव अनुपयुक्त भव स्थायाला है, तो वह द्रव्यपुरुष है क्योंकि ‘अणुवभोगो द्रव्य’ ऐसा सिद्धान्त पचन है, नामस्थापना आदिका विशेष विवरण अनुयोगद्वार सूत्रकी अनुयोग चन्द्रिका टीकामें मैंने लिखा है—अतः जिज्ञासुओं को यह टीका भवद्य देखनी चाहिये । इस प्रकार से भी पुरुष तीन होते हैं—ज्ञानपुरुष आदि यहाँ ज्ञानपुरुष में ज्ञानरूप भावप्रधान पुरुष लिया गया है । इसी प्रकारसे दर्शनरूप भावप्रधानपुरुष दर्शनपुरुष में और

હવે સૂત્રકાર સાત સૂત્રો દ્વારા એવ પુરુષ વક્તવ્યતાનું વિધેય કથન કરે છે—નામપુરુષ તે છે કે જે નામમાત્રની અપેક્ષાએ જ પુરુષ છે એટલે કે કેઈ પણ વસ્તુનું પુરુષ એવું જે નામ લેાકવ્યવહાર ચલાવવાને માટે રાખવામાં આવે છે તે નામપુરુષ છે આ નામપુરુષમાં પુરુષતા એવાં કેઈ લક્ષણો હોતાં નથી. લેખ્ય ચિત્ર આદિમાં જે પુરુષાકૃતિની સ્થાપના કરવામાં આવે છે તેને સ્થાપના પુરુષ કહે છે પુરુષજ્ઞાન સપદા એવ એ અનુપયુક્ત ભવસ્થાવ યોગ હોય છે તેા તેને દ્રવ્યપુરુષ કહે છે ઉચોત્ત વચ્ચરનાને દ્રવ્ય કહેવાય છે કારણ કે ‘અણુવભોગો દ્રવ્ય’ આ પ્રકારનું સિદ્ધાંત કથન છે નામ, સ્થાપના આદિનું વિશેષ વિવરણ અનુયે અદ્વાર સૂત્રની અનુયોગવ્યત્રિકા ટીકામાં મારા દ્વારા લખવામાં આવેલ છે તેા જિજ્ઞાસુ પાઠકે ને તે વાચવા ભલ મલ્લ છે હવે જ્ઞાનપુરુષ આદિ ત્રણ પ્રકારનું સ્પષ્ટીકરણ કરવામાં આવે છે— જ્ઞાનરૂપ ભાવની પ્રધાનતાવાળા પુરુષને જ્ઞાનપુરુષ કહે છે દર્શનરૂપ ભાવની પ્રધાનતાવાળા પુરુષને દર્શન પુરુષ કહે છે અને અલિપ્તરૂપ ભાવની પ્રધાનતાવાળા પુરુષને અલિપ્ત પુરુષ કહે છે

त्रिपुरूपश्चापि वाच्यः ४ । पुन. पुरुषत्रैविध्यम्, तत्र-पु वेदानुभवप्रधानः पुरुषो वेदपुरुषः । स च पुरुषवेदानुभूतिकाले स्त्री पुंनपुंसकेषु त्रिष्वपि भवति, “वेयपुरिसो तिलिंगो वि पुरिसवेयाणुभूइकालम्म” इति वचनात्, यथा—स्त्रीकामितारूपपुरुषवेदसंपन्नानि स्त्री पुरुषनपुसकानीति । इदमुक्तं भवति—स्त्रीकामुकी स्त्री, स्त्रीकामुकः पुरुषः, स्त्रीपुरुषकामुकं नपुसकं चेति । यद्वा-स्त्रीनपुसकवेषधारी पुरुषो वेदपुरुषः कथ्यते, अयं वेदेन पुरुषः वेषेणतु स्त्री, नपुसकं वापि भवति १, चिह्नैः-पुरुषचिह्नै इमश्रुरोमादिभिरूपलक्षितः पुरुषश्चिह्नपुरुषः, चिह्नमात्रेण पुरुषो न तु यथार्थतया, यथा-इमश्रुप्रभृतिचिह्नयुक्तं नपुंसकमिति । यद्वा-चिह्नन-वेषेण पुरुषचिह्न

चारित्ररूप भावप्रधानपुरुष चारित्रपुरुषमें लिया गया है । वेदपुरुषमें पुंवेदानुभव प्रधानतावाला पुरुष गृहीत हुआ है । यह पुंवेदानुभवप्रधान पुरुष वेदानुभूति कालमें स्त्री, पुनपुसक तीनों में भी होता है । कहा भी है—“वेयपुरिसो तिलिंगो वि पुरिसवेयाणुभूइकालम्म” स्त्री पुंनपुंसक स्त्रीकामितारूपपुरुषवेदसंपन्न होते हैं । तात्पर्य इस कथनका ऐसा है कि पुरुष की चाहनावाली स्त्री होती है, स्त्रीकी चाहनावाला पुरुष होता है । और स्त्रीपुरुष दोनों की चाहनावाला नपुंसक होता है । अथवा स्त्री नपुसक वेषधारी जो पुरुष होता है वह वेदपुरुष है । ऐसा पुरुष केवलवेद से पुरुष होता है वेषसे तो वह स्त्री या नपुंसक होता है । इमश्रु, रोम दाढी-मूछ आदिरूप जो पुरुषचिह्न है उन चिह्नोंसे उपलक्षित जो पुरुष है वह चिह्नपुरुष है, यह चिह्नपुरुष चिह्न मात्रसे पुरुष होता है यथार्थ रूपमें पुरुष नहीं होता ।

वेदपुरुषमा पु वेदानुभवनी प्रधानतावाणा पुरुष अर्हणु करवाभां आवेल छे ते पु वेदानुभवप्रधान पुरुष, पुरुषवेदानुभूतिकालमा स्त्री, पु (पुरुष) अने नपुंसक, अे त्रेषुमा पणु छोछ शके छे. कहु पणु अइ छे के—“वेयपुरिसो तिलिंगो वि पुरिसवेयाणुभूइकालम्म” स्त्रीनपुंसक स्त्रीकामितारूप पुरुषवेद संपन्न छेय छे. आ कथनतु तात्पर्यं अे छे के पुरुषनी आहनावाणी स्त्री छेय छे, स्त्रीनी आहनावाणे पुरुष छेय छे, अने स्त्री अने पुरुष, अे अनेनी आहनावाणे नपुसक छेय छे

अथवा—स्त्रीनपुसक वेषधारी ने पुरुष छेय छे तेने वेदपुरुष कडे छे, अेवा पुरुष केवण वेदनी अपेक्षाअे न पुरुष छेय छे, वेषनी अपेक्षाअे तो ते स्त्री अथवा नपुसक छेय छे इमश्रु, रोम (दाढी-मूछ) आदि इय ने पुरुषचिह्न छे, ते चिह्नोंसे उपलक्षित ने पुरुष छे तेने चिह्नपुरुष कडेवाय छे. ते चिह्नपुरुष ते चिह्नोंनी अपेक्षाअे न पुरुष लागे छे, पणु यथार्थ अे तो पुरुष छेतो

पुरुष पुरुषवेषधारी स्त्र्यादिरिति । पुरुषवेदो वा चिह्नपुरुष इति २ । अभिलष्य  
 वेऽनेनेति-अभिलाष-शब्द, स एव पुल्लिङ्गयाऽभिधानात् पुरुष-अभिलाष  
 पुरुषः, 'उदमाहोण पुरुष इत्यर्थे यथा घट' कृतोऽवति । उक्तञ्च-" अभिलाषो  
 पुल्लिङ्गामिहाणमेव घटोऽव० " इति ३, । पुनः पुरुषवैविष्यमाह-उत्तमपुरुषा  
 मध्यमपुरुषा जघन्यपुरुषाः ६ । एतेष्वपि-उत्तमपुरुषास्त्रिभिर्धा-धमपुरषाः, भोग  
 पुरुषाः, धर्मपुरुषाः । तत्र-धर्मः-क्षापिकचारिभ्रावि, तदर्जनपराः पुरुषाः धम  
 पुरुषा अर्हन्ति भोगाः मनोज्ञशब्दात्, तत्परायणा पुरुषा-भोगपुरुषा-

जैसा कि हमें आदि पुरुष चिह्नों से युक्त नपुंसक होता है । अथवा चिह्न  
 शब्द का अर्थ घेप है । हम घेप से जो पुंस्य है वह चिह्नपुरुष है । ऐसे  
 चिह्नपुंस्य पुरुषवेषधारी स्त्री आदि होते हैं अथवा पुंस्यवेदवाला चिह्न  
 पुंस्य है जो पुल्लिङ्ग शब्दवाला होता है वह अभिलाष पुरुष है अर्थात्  
 पुल्लिङ्ग शब्द द्वारा जिसका अभिधान-कथन होना है वह अभिलाषपुरुष  
 है जैसे "घट' कृत" आदि, कहा भी है-" अभिलाषो पुल्लिङ्गामिहा  
 णमेव घटोऽव० " इति ५ ।

इस प्रकार से भी पुरुषप्रकार तीन होते हैं-जैसे उत्तमपुंस्य आदि  
 इनमें भी उत्तमपुंस्य त्रिविध होते हैं जैसे धर्मपुंस्य आदि क्षापिकचारिष्य  
 आदि का नाम धर्म है इन धर्म के उपार्जन करने में तत्पर जो पुंस्य है व  
 धर्मपुंस्य है ऐसे धर्मपुंस्य अर्हन्त हैं मनोज्ञशब्दादिरूप भोग हैं इन भोगों की  
 प्रधानतावाले जो पुंस्य है वे भोगपुरुष हैं, ऐसे भोगपुरुष चक्रवर्ती

नगी, नेमके हमें आदि पुरुषवेदोना नपुंसक पुरुष कृत होय है अथवा  
 चिह्न शब्दने अर्थ घेप पुरुष माय है त वेदनी अपेक्षाके ने पुरुष होय  
 है तेने पुरुष चिह्नपुरुष अहे है अथवा चिह्नपुरुषमां पुरुषवेषधारी स्त्री आदिने  
 मय थी अर्थय है अथवा पुरुषवेदवाकाने चिह्नपुरुष अहे है ने पुल्लिङ्ग तरीये  
 मणी शब्दय अर्थय होय तेने अभिलाषपुरुष अहे है अहेते है पुल्लिङ्ग (नर  
 लनिना शब्द द्वारा नेत्र कथन माय है तेनु नाम अभिलाषपुरुष है नेम  
 है ' घट' कृत घटोऽवति इति ५ नु है है ' अभिलाषो पुल्लिङ्गामिहाणमेव  
 घटोऽव० " इत्यादि-पुरुषना नीने प्रमाणे तत्र प्रकार अहे ५ उत्तम पुरुष आदि.

उत्तम पुंस्यना तत्र प्रकार अहे ५-नेमके धमपुरुष आदि क्षापिक  
 चारिष्य आदिना नाम धर्म ५ ते धमपुंस्य नाम धर्म कथने तत्पर देन  
 अथवा पुरुषोने धमपुरुषे अहे ५ अथवा धमपुरुषे अर्थय है ५ मनोज्ञ शब्दादिरूप  
 भोग है तसे उनी प्रधानतावाले ने पुरुषो होय ५ तेने भोगपुरुषा अहे ५

चक्रवर्तिनः । कर्माणि—कण्टकोद्धाररूपाणि तत्परायणाः पुरुषाः कर्मपुरुषाः—वागु  
 देवा ७ । इति । मध्यमपुरुषा अपि—उग्रभोगराजन्यभेदात् त्रिविधाः । तत्र—उग्राः  
 भगवत ऋषभदेवस्वामिनो राज्यकाले ये आरक्षका आसन् ते । शोभाः कुलगुरुवः ।  
 राजन्याः—राजमित्राणि ८ । जघन्यपुरुषाणां त्रिविधमाह—‘ दासा ’ इत्यादि,  
 दासाः—दासीपुत्रादयः । श्रुतका—देतनेन कर्मकराः । ‘ भाडल्लग ’ त्ति भागिकाः  
 भागो विधत्ते कृष्यादौ येषां ते भागिनः, तएव भागिकाः शुद्धचातुर्थिकादि  
 भागवन्त इत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

उक्तं मनुष्यपुरुषाणां त्रैविध्यं साम्प्रतं सामान्यतस्तिरश्वां जलचरस्थलचर-  
 खरविशेषाणां त्रैविध्यं द्वादशदृष्ट्या, तिर्यगादिस्त्रीपुंनपुंसकानां च दशसंख्या, एवं  
 द्वाविंशतिमूत्र्यातदाह—

मूलम्—तिविहा सच्छा पणत्ता, तं जहा--अंडया पोयया  
 संमुच्छिया १ । अंडया सच्छा तिविहा पणत्ता, तं जहा--इत्थी  
 पुरिसा नपुंसगा २ । पोयया सच्छा तिविहा पणत्ता, तं जहा--  
 इत्थी पुरिसा नपुंसगा ३ । तिविहा पक्खी पणत्ता, तं जहा--

होते है । कण्टकोद्धाररूप कर्म में परायण जो पुरुष होते हैं वे कर्मपुरुष  
 है, ऐसे कर्मपुरुष वासुदेव होते हैं, मध्यमपुरुष के भेदों में जो उग्र  
 पुरुष कहे गये हैं वे भगवान् ऋषभदेवस्वामी के राज्यकालमें जो आर-  
 क्षक ( रक्षा करनेवाले ) थे वे हैं । कुलगुरु भोग पुरुष है, राजमित्र  
 पुरुष है । जघन्य पुरुषों की त्रिविधता में दासी पुत्रादिरूप दास, वेतन  
 से काम करनेवाले श्रुतक, और खेती किसानी आदि में जिनका भाग  
 होता है वे भागिक पुरुष है ॥ सू० ९ ॥

येवा लोगपुरुषो अकवर्तीओ डाय छे. कंटकोद्धार (शत्रुधी काटाने कडाडनार) इप  
 कर्मभां परायणु ने पुरुषो डाय छे तेमने कर्मपुरुषो कडे छे. येवां कर्मपुरुष  
 वासुदेव डाय छे. मध्यम पुरुषोने ओक लेह ने उग्रपुरुष कडेवामां आये  
 छे तेना दृष्टान्त इपे ऋषभदेव स्वामीना. राजकाणमां ने आरक्षको ( रक्षा  
 करनारा ) डता, तेमने गणुवी शकाय छे. कुलगुरुने लोगपुरुष, राजमित्रने  
 राजन्य पुरुष कडे छे. श्रुतक अने भागिक आ त्रणु प्रकारना जघन्य पुरुषो  
 डाय छे. दासीपुत्रने दास कडे छे, वेतन लधने काम करनारने श्रुतक कडे छे  
 अने भेती, वाडी आदिमा नेमने भाग डाय छे तेमने भागिकपुरुषो कडे छे ॥ सू. ६ ॥



પુરુષઃ પુરુષવેપધારી સ્વ્યાદિરિતિ । પુરુષવેદો યા ચિદ્વપુરુષ ઇતિ ૨ । અમિલપ્પ-  
 વેડમેનેતિ-અમિલાપ -શબ્દઃ, સ પવ પુલ્લિદ્વતયાડમિધાનાત્ પુરુષઃ-અમિલાપ  
 પુરુષઃ, સ્વન્દમાત્રેણ પુરુષ इत्यर्थे यथा घट फूटोवेति । उच्छब्द-“ અમિલાપો  
 પુલ્લિગામિદ્વામમેષ ઘટોષ૦ ” ઇતિ ૩, । પુન પુરુષત્રૈવિધ્યમાદ-ઉચ્ચમપુરુષા  
 મધ્યમપુરુષા ળઘ-યપુરુષાઃ ૬ । પત્તેલ્લવિ-ઉચ્ચમપુરુષાસ્ત્રિવિધા - ળમપુરુષાઃ, મોગ  
 પુરુષાઃ, ધર્મપુરુષાઃ । તપ-ધર્મઃ-ક્ષાયિક્ષારિપ્રાદિ , તદર્જનપરાઃ પુરુષાઃ ધર્મ  
 પુરુષાઃ અર્હન્તાઃ મોગા મનોહસન્દાદયાઃ, તત્પરાયણા પુરુષા-મોગપુરુષા-—

જેસા કિ હમઝુ આદિ પુરુષ ચિદ્વો સે યુક્ત નપુમલ્લ હોતા હૈ । અથવા પિહ  
 શબ્દ કા અર્થ વેપ હૈ । હમ વેપ સે જો પુરુષ હૈ યહ ચિદ્વપુરુષ હૈ । એસે  
 ચિદ્વપુરુષ પુરુષવેપધારી સ્ત્રી આદિ હોતે હૈ અથવા પુરુષવેદવાલા પિહ  
 પુરુષ હૈ ૨ જો પુલ્લિદ્વ શબ્દવાલા હોતા હૈ યહ અમિલાપ પુરુષ હૈ અર્થાત્  
 પુલ્લિદ્વ શબ્દ દ્વારા જિસકા અમિધાન-કથન હોતા હૈ યહ અમિલાપપુરુષ  
 હૈ જેસે “ ઘટઃ ફૂટ ” આદિ, કહા સી હૈ-“ અમિલાપો પુલ્લિગામિદ્વા  
 ળમેષ્ઠ ઘટોષ૦ ” ઇતિ ૫ ।

હસ પ્રકાર સે સી પુરુષપ્રકાર ત્રીન હોતે હૈ-જેસે ઉચ્ચમપુરુષ આદિ  
 હનમેં સી ળસમપુરુષ ત્રિવિધ હોતે હૈ જેસે ધર્મપુરુષ આદિ ક્ષાયિક્ષારિપ  
 આદિ કા નામ ધર્મ હૈ હન ધર્મ કે ઉપાર્જન કરને મેં તત્પર જો પુરુષ હૈ વે  
 ધર્મપુરુષ હૈ એસે ધર્મપુરુષ અર્હન્ત હૈ મનોહસન્દાદિસ્વ મોગ હૈ હન મોગાં કી  
 પ્રધાનતાપ્રાણે જો પુરુષ હૈ વે મોગપુરુષ હૈ, એસે મોગપુરુષ અલ્લવર્તી

નપુમલ્લ હોતા હૈ હમઝુ આદિ પુરુષચિદ્વોધી નપુમલ્લ પલ્લ મુક્તા હોય છે અથવા  
 ચિદ્વ શબ્દનો અર્થ વેપ પલ્લ ધાય છે તે વેપની અપેક્ષાએ જે પુરુષ હોય  
 છે તેને પલ્લ ચિદ્વપુરુષ કહે છે એવાં ચિત્પુરુષમાં પુરુષવેપધારી સ્ત્રી આદિને  
 જણાવી શકાય છે અથવા પુરુષવેદવાળાને ચિદ્વપુરુષ કહે છે જે પુલ્લિદ્વ તરીકે  
 જણી શકાય એવા હોય તેને અમિલાપપુરુષ કહે છે એટલે કે પુલ્લિદ્વ (નર  
 અતિના શબ્દ દ્વારા જેનું કથન થાય છે તેનું નામ અમિલાપપુરુષ છે જેમ  
 કે ઘટ ફૂટ ’ પ્રકારે ધર્મને કહ્યું પણ છે કે અમિલાપો પુલ્લિગામિદ્વાલમેષ  
 ઘટોષ ” ઇત્યાદિ-પુરુષના નીચે પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર પડે છે-ઉચ્ચમ પુરુષ આદિ.

ઉચ્ચમ પુરુષના ત્રણ પ્રકાર પડે છે-જેમકે ધમપુરુષ આદિ, ક્ષાયિક  
 આદિનું નામ ધર્મ છે તે ધર્મનું નામ ઉપાર્જન કરવાને તત્પર હોય  
 એવાપુરુષોને ધર્મપુરુષો કહે છે એવા ધમપુરુષો અલ્લ તો છે મનોહ શબ્દાદિદ્વ  
 ળાય છે તેઓએની પ્રધાનતાવાળા જે પુરુષો હોય છે તેમને મોગપુરુષો કહે છે

चक्रवर्तिनः । कर्मणि—कण्टकोद्धाररूपाणि तत्परायणाः पुरुषाः कर्मपुरुषाः—वासु  
देवा ७ । इति । मध्यमपुरुषा अपि—उग्रभोगराजन्यभेदात् त्रिविधाः । तत्र—उग्राः  
भगवत् ऋषभदेवस्वामिनो राज्यकाले ये आरक्षका आसन् ते । गोगाः कुलगुरवः ।  
राजन्याः—राजमित्राणि ८ । जघन्यपुत्राणां त्रिविध्यमाह—‘ दासा ’ इत्यादि,  
दासाः—दासीपुत्रादयः । भृतका—वेतनेन कर्मकराः । ‘ भाइल्लग ’ ति भागिकाः  
भागो विद्यते कृष्यादौ येषां ते भागिनः, तत्र भागिकाः शुद्धचातुर्थिकादि  
भागवन्त इत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

उक्तं मनुष्यपुरुषाणां त्रिविध्यं साम्प्रतं सामान्यतस्तिरश्चां जलचरस्थलचर-  
खरविशेषाणां त्रिविध्यं द्वादशमूत्र्या, तिर्यगादिस्त्रीपुंनपुंसवानां च दशमूत्र्या, एवं  
द्वाविंशतिमूत्र्यातद्वाह—

मूलम्—तिविहा सच्छा पणत्ता, तं जहा--अंडया पोयया  
संमुच्छ्रिया १ । अंडया सच्छा तिविहा पणत्ता, तं जहा--इत्थी  
पुरिसा नपुंसगा २ । पोयया सच्छा तिविहा पणत्ता, तं जहा--  
इत्थी पुरिसा नपुंसगा ३ । तिविहा पक्खी पणत्ता, तं जहा--

होते है । कण्टकोद्धाररूप कर्म में परायण जो पुरुष होते है वे कर्मपुरुष  
हैं, ऐसे कर्मपुरुष वासुदेव होते है, मध्यमपुरुष के भेदों में जो उग्र  
पुरुष कहे गये है वे भगवान् ऋषभदेवस्वामी के राज्यकालमें जो आर-  
क्षक ( रक्षा करनेवाले ) ये वे हैं । कुलगुरु भोग पुरुष है, राजमित्र  
पुरुष है । जघन्य पुरुषों की त्रिविधता में दासी पुत्रादिरूप दास, वेतन  
से काम करनेवाले भृतक, और खेती किसानी आदि में जिनका भाग  
होता है वे भागिक पुरुष है ॥ सू० ९ ॥

એવા ભોગપુરુષો ચક્રવર્તીઓ હોય છે. કટકોદ્ધાર (શત્રુરૂપી કાટાને કહાડનાર) રૂપ  
કર્મમાં પરાયણ જે પુરુષો હોય છે તેમને કર્મપુરુષો કહે છે. એવાં કર્મપુરુષ  
વાસુદેવ હોય છે. મધ્યમ પુરુષોનો એક ભેદ જે ઉગ્રપુરુષ કહેવામાં આવ્યો  
છે તેના દષ્ટાન્ત રૂપે ઋષભદેવ સ્વામીના. રાજકાળમાં જે આરક્ષકો ( રક્ષા  
કરનારા ) હતા, તેમને ગણાવી શકાય છે. કુલગુરુને ભોગપુરુષ, રાજમિત્રને  
રાજન્ય પુરુષ કહે છે ભૂતક અને ભાગિક આ ત્રણ પ્રકારના જઘન્ય પુરુષો  
હોય છે. દાસીપુત્રને દાસ કહે છે, વેતન લઇને કામ કરનારને ભૂતક કહે છે  
અને ખેતી, વાડી આદિમાં જેમનો ભાગ હોય છે તેમને ભાગિકપુરુષો કહે છે ॥ સૂ. ૬ ॥

अद्वया पोयया समुच्छिन्ना ४ । अद्वया पक्खी तिविहा पणत्ता,  
 त जहा इत्थी पुरिसा नपुसगा ५ । पोयया पक्खी तिविहा  
 पणत्ता, तं जहा-इत्थी पुरिसा नपुसगा ६ । एवमेतेण अभिलावेणं  
 उरपरिसप्पावि भाणियद्धा ९, भुयपरिसप्पा वि भाणियद्धा १२ ।  
 एव चैव तिविहा तिरिक्खजोणिया पणत्ता, त जहा-इत्थी  
 पुरिसा नपुसगा १ । तिविहा इत्थीओ पणत्ताओ, त जहा  
 तिरिक्खजोणत्थीओ, मणुस्सित्थीओ, देवित्थीओ २ । तिरिक्ख  
 जोणित्थीओ तिविहाओ पणत्ताओ, त जहा जलचरीओ थल-  
 चरीओ, खहचनीओ ३ । मणुस्सित्थीओ तिविहाओ पणत्ताओ,  
 त जहा-कम्मभूमियाओ, अकम्मभूमियाओ, अतरदीवियाओ ४ ।  
 तिविहा पुरिसा पणत्ता, त जहा तिरिक्खजोणियपुरिसा, मणु  
 स्सपुरिसा, देवपुरिसा ५ । तिरिक्खजोणियपुरिसा तिविहा पणत्ता,  
 त जहा जलयरा, थलयरा, खहयरा ६ । मणुस्सपुरिसा तिविहा  
 पणत्ता, त जहा कम्मभूमिया, अकम्मभूमिया, अतरदीवया ७ ।  
 तिविहा नपुसगा पणत्ता, त जहा णेरइयनपुसगा, तिरिक्ख  
 जोणियनपुसगा, मणुस्सनपुसगा ८ । तिरिक्खजोणियनपुसगा  
 तिविहा पणत्ता, त जहा जलयरा, थलयरा, खहयरा ९ ।  
 मणुस्सनपुसगा तिविहा पणत्ता, त जहा-कम्मभूमिया अकम्म  
 भूमिया अतरदीवया १० ॥ सू०१० ॥

इस तरह से मनुष्य पुरुषों की त्रिविधता फली भय मानापतः  
 तिर्यग्यो की जलचर, थलचर और खेचर विद्योषों की त्रिविधता सूत्रकार

आ रीते मनुष्य पुरुषोन्नी त्रिविधतानु प्रतिपादन करीने दये सूत्रकार  
 तिम धोन्नी-जलचर, थलचर अने खेचरन्नी-त्रिविधतानु आर सूत्रो द्वारा

छाया—त्रिविधा मत्स्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अण्डजाः, पोतजाः, संमूर्च्छिमाः १।  
 अण्डजा मत्स्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाः २। पोतजा  
 मत्स्यास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाः ३। त्रिविधाः पक्षिणः  
 प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—अण्डजा पोतजा संमूर्च्छिमाः ४। अण्डजाः पक्षिणस्त्रिविधाः  
 प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकाः ५। पोतजाः पक्षिणस्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः,  
 तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकानि ६। एवमेतेनाभिलापेन उरःपरिसर्पा अपि  
 भणितव्याः ९, भुजपरिसर्पा अपि भणितव्याः १२ ॥ एवमेव त्रिविधास्तिर्यग्यो-  
 निकाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—स्त्रियः पुरुषा नपुंसकानि १। त्रिविधा स्त्रियः प्रज्ञप्ताः,  
 तद्यथा—तिर्यग्योनिकस्त्रियः, मनुष्यस्त्रियः, देवस्त्रियः २। तिर्यग्योनिकस्त्रियस्त्रिविधाः  
 प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचर्यः, स्थलचर्यः, खचर्यः ३। मनुष्यस्त्रियस्त्रिविधा प्रज्ञप्ताः,  
 तद्यथा—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः, अन्तरद्वीपजाः ४। त्रिविधाः पुरुषाः  
 प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तिर्यग्योनिकपुरुषाः, मनुष्यपुरुषाः, देवपुरुषाः ५। तिर्यग्यो-  
 निकपुरुषास्त्रिविधा प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः, स्थलचराः, खचरा ६। मनुष्य-  
 पुरुषास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमिजाः अकर्मभूमिजाः, अन्तरद्वीपजाः ७।  
 त्रिविधाः नपुंसकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—नैरपिकनपुंसकाः, तिर्यग्योनिकनपुंसकाः,  
 मनुष्यनपुंसकाः ८। तिर्यग्योनिकनपुंसकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—जलचराः,  
 स्थलचराः, खचराः ९। मनुष्यनपुंसकास्त्रिविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—कर्मभूमिजाः,  
 अकर्मभूमिजाः, अन्तरद्वीपजाः १० ॥ सु० १० ॥

टीका—‘ त्रिविधा मच्छा ’ इत्यादि द्वादशसूत्री सुगमा ।

नवरं—अण्डे—पक्ष्यादि प्रादुर्भावककोषे जायन्ते—उत्पद्यन्ते इत्यण्डजाः ।

पोता एव जाता न जराश्वादिना वेष्टिताः पूर्णावयवा योनिनिर्गतमात्रा एव

द्वादशसूत्र द्वारा और तिर्यगादि स्त्रीपुंनपुंसकों की त्रिविधता दशसूत्र  
 द्वारा कहते हैं—‘ त्रिविधा मच्छा पणत्ता ’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जलचर जीवरूप जो मत्स्य हैं वे तीन प्रकारके कहे गये हैं—जैसे  
 अण्डज, पोतज और संमूर्च्छिम १, अण्डज मत्स्य—स्त्री, पुरुष और  
 नपुंसक के भेद से तीन प्रकारके कहे गये हैं । खचर पक्षी भी तीन

कथन करे छे अने तिर्यगादि स्त्री, पुंनपुंसकेनी त्रिविधतानु दश सूत्रे द्वारा  
 कथन करे छे—“ त्रिविधा मच्छा पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—जलचर जीवरूप जे मत्स्य छे तेना नीचे प्रमाणे त्रय प्रकार कहे छे.  
 (१) अण्डज, (२) पोतज अने (३) संमूर्च्छिम. अण्डज मत्स्यना पक्षु स्त्री,  
 पुरुष अने नपुंसक जेवां त्रय भेद कहे छे जेथरपक्षीना पक्षु नीचे प्रमाणे

પ્રકાર કે કહે ગયે છે—જેસે-અણ્ડજ, પોતજ ઓર સમુર્ચ્છિમ, હનમેં જો અણ્ડજ પક્ષી છે તે સ્ત્રી પુરુષ ઓર નપુમક કે મેદ સે ત્રીન પ્રકારકે કહે ગયે છે—પોતજ પક્ષી મી ત્રીન પ્રકારકે કહે ગયે છે—સ્ત્રી, પુરુષ ઓર નપુંમક હસ તરફકે હસ અભિલાપદારા ડર પરિસ્પર્ષ ઓર મુજ પરિસ્પર્ષકે વિષયમેં મી કથન કરના ઘાહિયે । હસી તરફ સે ત્રિવિધ તિર્યગ્યોનિક કહે ગયે છે—જેસે—સ્ત્રી, પુરુષ ઓર નપુંસક હનમેં સ્ત્રિયાં ત્રીન પ્રકાર કી કહી ગઈ છે । જેસે તિર્યગ્યોનિક સ્ત્રિયાં, મનુષ્યસ્ત્રિયાં ઓર દેવસ્ત્રિયાં તિર્યગ્યોનિકસ્ત્રિયાં મી ત્રીન પ્રકારકી કહી ગઈ છે—જલચરી, સ્પલચરી ઓર લેચરી મનુષ્યસ્ત્રિયાં—કર્મભૂમિજા, અકર્મભૂમિજા ઓર અન્તરદ્વીપજા કે મેદ સે ત્રીન પ્રકારકી હોતી છે, તિર્યગ્યોનિક પુરુષ, મનુષ્ય પુરુષ ઓર દેવપુરુષ કે મેદ સે પુરુષ ત્રીન તરફકે હોતે છે । તિર્યગ્યોનિકપુરુષ મી ત્રીન પ્રકાર કે હોતે છે । જેસે જલચર, સ્પલચર ઓર લેચર, મનુષ્ય પુરુષ કર્મભૂમિજ, અકર્મભૂમિજ અન્તરદ્વીપજ એસે ત્રીન મેદઘાળે છે । નપુમક મી ત્રીન પ્રકારકે હોતે છે—નૈરયિક નપુંમક, તિર્યગ્ નપુંસક ઓર મનુષ્યનપુસક, તિર્યગ્યોનિ નપુમક મી ત્રીન પ્રકાર છે । જલચર,

ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) અકર્મ, પોતજ અને (૨) સમુર્ચ્છિમ તેમાંથી જે અકર્મ પક્ષી છે તેના નર નારી (માદા) અને નપુસક એવા ત્રણ લેહ કહ્યા છે પોતજ પક્ષીના ત્રણ નર માદા અને નપુસક એવા ત્રણ પ્રકાર છે આ રીતે જ—આ પ્રકારના અભિલાષ દ્વારા ડર પરિસ્પર્ષ અને મુજ પરિસ્પર્ષના લેહોતું કથન પણ સમજવું એટલે એજ પ્રમાણે ત્રિવિધતા પણ ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) સ્ત્રી (૨) પુરુષ અને (૩) નપુસક તિર્યગ્યોનિક સ્ત્રીના ત્રીણ પ્રમાણે ત્રણ પ્રકાર છે—(૧) તિર્યગ્યોનિક સ્ત્રીઓ (૨) મનુષ્યોનિક સ્ત્રીઓ અને (૩) દેવસ્ત્રીઓ (દેવીઓ) તિર્યગ્યોનિક સ્ત્રીઓના ત્રણ પ્રકાર છે—(૧) જલચરી, (૨) સ્પલચરી અને (૩) લેચરી મનુષ્ય સ્ત્રીઓના ત્રણ ત્રણ પ્રકાર છે (૧) કર્મભૂમિજા (૨) અકર્મભૂમિજા (૩) અન્તરદ્વીપજા પુરુષના ત્રણ ત્રણ પ્રકાર હોય છે—(૧) તિર્યગ્યોનિક પુરુષ (૨) મનુષ્યપુરુષ અને (૩) દેવપુરુષ તિર્યગ્યોનિક પુરુષના ત્રણ આ પ્રમાણે ત્રણ લેહ છે—(૧) જલચર, (૨) સ્પલ ચર અને (૩) લેચર મનુષ્ય પુરુષના ત્રણ ત્રણ પ્રકાર કહ્યા છે—(૧) કર્મ ભૂમિજા (૨) અકર્મભૂમિજા અને (૩) અન્તરદ્વીપજા નપુસકના ત્રણ ત્રણ પ્રકાર છે—(૧) નપુસક નારકો, (૨) નપુસક તિર્યગ્યો અને (૩) નપુસક મનુષ્યો નપુ સક તિર્યગ્યોના ત્રણ ત્રીણ પ્રમાણે ત્રણ લેહ છે—(૧) જલચર, (૨) સ્પલચર અને

परिस्पन्दादि सामर्थ्योपेताः पोतजाः। यद्वा-पोतो वक्ष तेन तत्समार्जिता लक्ष्यन्ते। तथा च-पोता इव-वक्षसमार्जिता इव गर्भवेष्टनचर्माऽनावृतत्वात् जायन्ते-उत्पद्यन्ते इति, तथा-पोतात्-गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भात् जायन्त इति वा पोतजाः।

स्थलचर और खेचर, मनुष्य नपुंसक भी तीन के हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तरद्वीपज।

पक्षी आदि जिसमें से प्रादुर्भूत होकर बाहर निकलते हैं। ऐसे कोष का नाम अण्ड है, इस अण्ड से जिनकी उत्पत्ति होती है वे अण्डज हैं, गर्भ जन्म का यह एक भेद है। अर्थात् संसृच्छिम जन्म गर्भजन्म और उपपाद जन्म इस तरह से जन्म के तीन भेद होते हैं, इनमें पोतजन्मवालों के अण्डे से जो पैदा होते हैं उनका और जो जरायु से पैदा होते हैं उनका गर्भजन्म होना है, अतः अण्डे से पैदा होनेवाले जितने जीव हैं वे सब गर्भजन्मवाले होते हैं। इसी तरह जो जरायु आदि से वेष्टित नहीं होते हैं किन्तु माताके उदर से बाहर निकलते ही परिस्पन्दादि ( हलनचलनक्रिया ) सहित होते हैं वे पोतज हैं अथवा पोत नाम वक्ष का है। उत्पन्न होते ही जो ऐसे ज्ञात हों कि मानों वे वक्ष से ही पुछे हुए उत्पन्न हुए हैं। अतः ये पोत जन्मवाले गर्भवेष्टनचर्म से अनावृत रहने के कारण वक्षसे संमार्जित हुए

(३) ज्येथर मनुष्य नपुंसकना पणु त्रणु प्रकार छे(१)-कर्मभूमिज, (२) अकर्म भूमिज, अने (३) अन्तरद्वीपज पक्षी आदि जेमा पेदा थअने षडार नीकणे छे, जेवा केअने अउ (धडुं) कडे छे. धडाभाथी जे अुवनी उत्पत्ति थाय छे, ते अुवने अउज कडे छे

गर्भजन्मना ते अेक लेद छे. अेटले के सभूच्छम जन्म, गर्भजन्म अने उपपाद जन्म, आ रीते पणु जन्मना त्रणु प्रकार पडे छे पोतजन्म वाणाना धडाभाथी पेदा थतार अुवे अने जरायुभाथी पेदा थतार अुवे। गर्भजन्मवाणा डोय छे ते कारणे धडाभाथी पेदा थतारा जे जे अुवे डोय छे, ते अथा गर्भजन्मवाणा ज डोय छे अेज प्रमाणे जे अुवे जरायु आदिथी वेष्टित ( वीटणायेदा ) डोता नथी पणु माताना गर्भभाथी षडार नीकणतानी साथे ज परिस्पन्दादि ( हलनचलन क्रिया ) क्रियाथी युक्ता डोय छे, ते अुवेने पोत ज कडे छे अथवा-पोत अेटले वक्ष जन्मतानी साथे ज जे अुवे पक्षथी लूछया डोय जेवा निर्माण लागे छे ते अुवेने ये नर कडे छे पोत जन्मवाणा अुवे। गर्भवेष्टन चर्मथी अनावृत रहने के कारणे पक्षथी संमार्जित

प्रकार के कहे गये हैं—जैसे—अण्डज, पोतज और समूर्च्छिम, इनमें जो अण्डज पक्षी हैं वे स्त्री पुरुष और नपुंसक के भेद से तीन प्रकारके कहे गये हैं—पोतज पक्षी भी तीन प्रकारके कहे गये हैं—स्त्री, पुरुष और नपुंसक इस तरहके इस अभिलाषद्वारा उर' परिस्पर्ष और मुञ्ज परिमर्षके विषयमें भी कथन करना चाहिये । इसी तरह से त्रिविध तिर्यग्योनिक कहे गये हैं—जैसे—स्त्री, पुरुष और नपुंसक इनमें स्त्रियां तीन प्रकार की कही गई हैं । जैसे तिर्यग्योनिक स्त्रियां, मनुष्यस्त्रियां और देवस्त्रियां तिर्यग्योनिकस्त्रियां भी तीन प्रकारकी कही गई हैं—जलचरी, स्थलचरी और खेचरी मनुष्यस्त्रिया—कर्मभूमिजा, अकर्मभूमिजा और अन्तरद्वीपजा के भेद से तीन प्रकारकी होती है, तिर्यग्योनिक पुरुष, मनुष्य पुरुष और देवपुरुष के भेद से पुरुष तीन तरहके होते हैं । तिर्यग्योनिकपुरुष भी तीन प्रकार के होते हैं । जैसे जलचर, स्थलचर और खेचर, मनुष्य पुरुष कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज अन्तरद्वीपज ऐसे तीन भेदवाले हैं । नपुंसक भी तीन प्रकारके होते हैं—नैरयिक नपुंसक, तिर्यग् नपुंसक और मनुष्यनपुंसक, तिर्यग्योनि नपुंसक भी तीन प्रकार है । जलचर,

त्रय प्रकार कहे हैं—(१) अण्डज, पोतज और (२) समूर्च्छिम तेषां भी अण्डज पक्षी है तेषां नर, नारी (भावा) और नपुंसक जेवा त्रय वेद कहे हैं पोतज पक्षीना पञ्च नर, भावा, और नपुंसक जेवा त्रय प्रकार है आरीते अ—आ प्रकारना अभिलाष द्वारा उर परिस्पर्ष और मुञ्ज परिस्पर्षना वेदोक्त कथन पञ्च समस्त जेधजे जेध प्रभावे तिर्यग्योनिकना पञ्च त्रय प्रकार कहे हैं—(१) स्त्री (२) पुरुष और (३) नपुंसक तिर्यग्योनिक स्त्रीना नीचे प्रभावे त्रय प्रकार है—(१) तिर्यग्योनिक स्त्रीना, (२) मनुष्योनिक स्त्रीना और (३) देवस्त्रीना (देवीना) तिर्यग्योनिक स्त्रीना पञ्च प्रकार है—(१) जलचरी, (२) स्थलचरी और (३) खेचरी, मनुष्य स्त्रीना पञ्च त्रय प्रकार है (१) कर्मभूमिज (२) अकर्मभूमिज (३) अन्तरद्वीपज पुरुषना पञ्च त्रय प्रकार कहे हैं—(१) तिर्यग्योनिक पुरुष (२) मनुष्यपुरुष और (३) देवपुरुष तिर्यग्योनिक पुरुषना पञ्च आ प्रभावे त्रय वेद है—(१) जलचर, (२) स्थल चर और (३) खेचर मनुष्य पुरुषना पञ्च त्रय प्रकार कहे हैं—(१) कर्म भूमिज, (२) अकर्मभूमिज और (३) अन्तरद्वीपज नपुंसकना पञ्च त्रय प्रकार है—(१) नपुंसक नारिके (२) नपुंसक तिर्यग्योनि और (३) नपुंसक मनुष्योनिक पञ्च तिर्यग्योनि पञ्च नीचे प्रभावे त्रय वेद है—(१) जलचर, (२) स्थलचर और

परिस्पन्दादि मामर्थ्योपेताः पोतजाः। यद्वा-पोतो वस्त्र तेन तत्समार्जिता लक्ष्यन्ते। तथा च-पोता इव-वस्त्रसंमार्जिता इव गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भात् जायन्ते-उत्पद्यन्ते इति, तथा-पोतात्-गर्भवेष्टनचर्मरहितगर्भात् जायन्त इति वा पोतजाः।

स्थलचर और खेचर, मनुष्य नपुंसक भी तीन के हैं—कर्मभूमिज, अकर्मभूमिज और अन्तरहीपज।

पक्षी आदि जिन्में से प्रादुर्भूत होकर बाहर निकलते हैं। ऐसे कोप का नाम अण्ड है, इस अण्ड से जिनकी उत्पत्ति होती है वे अण्डज हैं, गर्भ जन्म का यह एक भेद है। अर्थात् संसृच्छिम जन्म गर्भजन्म और उपपाद जन्म इस तरह से जन्म के तीन भेद होते हैं, इनमें पोतजन्मवालों के अण्डे से जो पैदा होते हैं उनका और जो जरायु से पैदा होते हैं उनका गर्भजन्म होना है, अतः अण्डे से पैदा होनेवाले जितने जीव हैं वे सब गर्भजन्मवाले होते हैं। इसी तरह जो जरायु आदि से वेष्टित नहीं होते हैं किन्तु माताके उदर से बाहर निकलते ही परिस्पन्दादि ( हलनचलनक्रिया ) सहित होते हैं वे पोतज हैं अथवा पोत नाम वस्त्र का है। उत्पन्न होते ही जो ऐसे ज्ञात हों कि मानों ये वस्त्र से ही पुछे हुए उत्पन्न हुए हैं। अतः ये पोत जन्मवाले गर्भवेष्टनचर्म से अनावृत रहने के कारण वस्त्रसे संमार्जित हुए

(३) जेथर मनुष्य नपुंसकना पशु त्रशु प्रधार छे(१)-कर्मभूमिज, (२) अकर्म भूमिज, अने (३) अन्तर्द्वीपज पक्षी आदि जेमा पैदा थडने षडार नीप्रजे छे, जेवा कोषने अउ (धडुं) कडे छे. धडामाथी जे लवनी उत्पत्ति थाय छे, ते लवने अउज कडे छे

गर्भजन्मना ते अेक लेह छे. अेटले के समूहम जन्म, गर्भजन्म अने उपपाद जन्म, आ रीते पशु जन्मना त्रशु प्रधार पडे छे पोतजन्म वाणाना धडामाथी पैदा थनार लवे अने जरायुमाथी पैदा थनार लवे। गर्भजन्मवाणा डोय छे ते डारणे धडामाथी पैदा थनारा जे जे लवे डोय छे, ते अथा गर्भजन्मवाणा ज डोय छे अेज प्रमाणे जे लवे जरायु आदिथी वेष्टित ( वीटणायेदा ) होता नथी पशु माताना गर्भमाथी षडार नीकणतानी साथे च परिस्पन्दादि ( हलनचलन आदि ) क्रियाथी युक्त डोय छे, ते लवने पोत ज कडे छे अथवा-पोत अेटले वस्त्र जन्मनानी साथे ज जे लवे। वस्त्रथी लूछया डोय जेवा निर्माण लागे छे ते लवने ये नच कडे छे पोत जन्मवाणा लवे। गर्भवेष्टन चर्मथी अनावृत रहेगने डरणे वस्त्रथी संमार्जित



समृच्छिमा -समृच्छेन समृच्छ -गर्भाधानमन्तरेणैव स्वयं समुत्पत्तिस्तेन, यद्वा-  
सम-उता ददस्म मूर्च्छेनम् अथयवसयोगत्वेन निर्वृत्ता समृच्छिमा -अगर्भमा माता  
पितृसंयोग विनैव स्वयं समुत्पत्त्या इत्यर्थः । समृच्छिमानां स्त्र्यादिभेदो नास्ति,  
नपुंसकत्वाद्येपामिति न सूत्रे दर्शितः। अण्डमाः पक्षिण -हंसादयः पोतजाः कुंजर-  
शङ्ख-शश-नकुल मृपिक चर्म चट्का-वरागुप्ती प्रसृतयः, समृच्छिमाः सज्जनकादयः  
एषामुद्भिज्जन्तस्वेऽपि समृच्छिमस्त्वध्यपदेशो भवति, उद्भिज्जन्तादीनां समृच्छिमविशयत्वा  
दिति ६ । ' एवं ' इत्यादि, एवं-पश्चिषत् एतन् पक्षिषुभोक्तेनाभिलाषेन 'विशिष्टा

की तरह गर्भ से उत्पन्न होते हैं । अथवा गर्भसे ये उत्पन्न होते हैं यह  
गर्भ, गर्भभेष्टनगर्भसे रहित होता है इस लिये भी ये पोतज कहे जाते हैं ।  
गर्भाधानके बिनाही जिनकी स्वयं उत्पत्ति हो जाती है वे जीव समृच्छिम हैं ।  
अथवा सय तरफ से जो देहका मूर्च्छेन है-अथयव संयोग है-इस अथयव  
संयोग से जो निर्वृत्ता होते हैं वे समृच्छिम हैं । ये अगर्भज होते हैं ।  
माता पिता के संयोग के बिना ही ये स्वयं उत्पन्न होते हैं । इन समृ  
च्छिम जीवों में स्त्री आदिका भेद नहीं है क्योंकि ये नपुंसक ही होते  
हैं । इस लिये सूत्र में इसे नहीं दिखलाया गया है, अण्डे से उत्पन्न  
पक्षी-हंसादिक हैं, पोतज-कुंजर ( हाथी), शङ्खक, शश, नकुल, मृपक  
और चर्मगादक आदि हैं और समृच्छिम चट्कजनक आदि हैं । इनमें  
उद्भिज्जता होने पर भी समृच्छिमत्व व्यपदेश होता है । क्योंकि उद्भि  
ज्जन्त समृच्छिम विशेष होते हैं । इस पक्षी सूत्रोक्त अभिलाष से ऐसा

कथा होय जेवी शीते अन्नमांसी अद्वार आवे छे अथवा के जन्मां तेजे  
उत्पन्न भय छे ते गन्ध गन्धवेष्टनमांसी रक्षित होय छे तेही पक्षु तेमने  
पोतज कहे छे गर्भाधान विना न लवोनी आपोआप उत्पत्ति भय भय छे  
ते लवोने समृच्छिम कहे छे अथवा अधी प्रधारना अथयव संयोगही के  
निवृत्त होय छे जेवा लवोने समृच्छिम कहे छे ते लवो अगर्भज होय  
छे-मातापिताना संयोग सिधाय न तयो स्वयं उत्पन्न भय भय छे ते  
समृच्छिम लवोमां नर जने नारी जनिना केर होय नभी कानलु के ते  
लवो नपुंसक न होय छे ते कानले सूत्रमा समृच्छिम लवोना त्रय भेद  
अतापवांमां आव्या नभी कस वनेर पक्षी छेमांसी उत्पन्न यता होय छे  
तेही तेमने अठ न कहे छे कानी सबलां नेजिषां उर आभासीदिषां  
आदि लवोने पोत न कहे छे अजन्तक आदि लवो समृच्छिम न भवाण्य  
अजाय छे तेमनामां उद्भिज्जता देवा छता पत्र समृच्छिमतरनेो व्यपदेश  
( व्यपदेश ) थाय छे कानलु के उद्भिज्ज न समृच्छिमविशेष होय छे अ पक्षि

उरपरिसर्पा पणना ' इत्यादिरूपेण उरः परिसर्पाः भुजपरिसर्पाश्च भणितव्याः-  
वाच्याः । उरसा-वक्षसा परिसर्पन्ति चलन्तीति-उरः-परिसर्पाः-सर्पादयः ९ ।  
भुजाभ्यां=बाहुभ्यां परिसर्पन्तीति भुजपरिसर्पाः-गोधा नकुलादयः २२ । अथ-स्त्री  
पुरुषनपुंसकानां त्रिविध्यमाह-' एवं चैव ' इत्यादि-दशसूत्री मुगसा, नवरम्-  
एवमेव=यथा पक्षिगस्तथैव तिर्यग्योनिकास्त्रिधिधा प्रज्ञाः, तद्यथा-स्त्रियः पुरुषा  
नपुसका इति । कृष्यादि कर्मप्रधाना भूमिः कर्मभूमिः-भरतादिका पञ्चदशविधा,  
तत्र ज्ञाताः कर्मभूमिजाः । एतू-अकर्मभूमिः-भोगभूमिः देवकुर्वादिका त्रिद्विधा,

भी जान लेना चाहिये कि उरः परिसर्प-सर्पादिक वगैरह और भुज-  
परिसर्प-जो दोनों भुजाओं से चलते हैं ऐसे गोधानकुल आदि ये सब  
भी स्त्री, पुरुष और नपुंसक के भेद से तीन भेदवाले होते हैं । उरः  
परिसर्पमें जो छानीके चलते चलते हैं वे लिये गये हैं-जैसे सर्प आदि,  
कृष्यादि प्रधानभूमि का नाम कर्मभूमि है । ये कर्मभूमियां भरत आदिके  
भेद से-पांच भरत पांच एरवत और पांच महाविदेह, इस तरह से १५  
होती है । इन कर्मभूमियों में जो उत्पन्न होते हैं वे कर्मभूमिज हैं ।  
अकर्मभूमि-भोगभूमि में जो उत्पन्न होते हैं वे अकर्मभूमिज हैं ।  
अद्वैत द्वीपमें भोगभूमियों की संख्या तीस ३० है । हैमवत, हरिवर्ष,  
रम्यकवर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु और हैरण्यवत ये ६ जम्बूद्वीप में भोग-  
भूमियां हैं धानकी खण्ड में ये नारह हैं और पुष्करार्ध में भी इसी नाम  
की है । इस प्रकार से ये कुल भोगभूमियां तीस ३० हो जानी है ।

सूत्रोक्त अलिख्य द्वरा ये पशु समञ्जसुं जेधये के उरपरिसर्प ( सर्प  
वगैरे ) अने भुजपरिसर्प ( भन्ने भुजयेना अर्थात् आलनारा नोजिया  
वगैरे ) ना पशु नर, नारी अने नपुंसक अत्रां त्रयु जतिसेह डोय छे  
छातीना अर्थात् आलनारा सर्प आदि जेवनेना उरपरिसर्पना त्रिभागमा  
समावेश थाय छे कृष्यदिप्रधान भूमितु नाम कर्मभूमि छे पंच भरत, पांच  
एरवत अने पांच महाविदेह, जे रीते कुल १५ कर्मभूमियो छे ते कर्म-  
भूमिमां जे जेवने उत्पन्न थाय छे तेमने कर्मभूमिज कहे छे अकर्मभूमि-  
योमां ( लोग भूमियोमा ) उत्पन्न थता जेवने अकर्मभूमिज कहे छे.  
अद्वैत द्वीपमां कुल ३० लोगभूमियो छे हैमवत, हरिवर्ष, रम्यकवर्ष, देवकुरु,  
उत्तरकुरु अने हैरण्यवत, अ ६ जम्बूद्वीपमा आवेली लोगभूमियो छे धातडी-  
पठमा १२ अने पुष्करार्धमा पशु अत्र नामनी १२ लोगभूमियो छे. आ  
रीते कुल ३० लोगभूमियो ( अकर्मभूमियो ) छे. समुद्रनी मध्यमा जे द्वीप

तमे जाता अकर्मभूमिजाः । अन्तरे-मध्ये समुद्रस्य द्वीपा य ते अन्तरद्वीपाः, तेषु  
जाता अन्तरद्वीपजाः ॥ सू० १० ॥

सुधादिपरिणतिषु नीवानां छेदपावसतो भवतीति छेद्या प्ररूपयन् वण्ड  
केषु ता आह—

पूष्म्—नेरइयाण तओ लेस्साओ पण्णत्ताओ, तं जहा  
कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्सा १ । असुरकुमाराणं तओ  
लेस्साओ सक्किलिट्ठाओ पण्णत्ताओ, त जहा-कण्हलेस्सा, नील  
लेस्सा, काउलेस्सा २ । एव जाव थणियकुमाराण ११ । एव  
पुडविकाइयाण १२ । आउ-वणस्तइकाइयाणवि १३ १४, तेउ  
काइयाण १५, वाउकाइयाण १६, वेइदियाण १७, तेदियाण १८,  
चउरिंदियाणवि तओ लेस्साओ जहा नेरइयाण १९ । पचिदि  
यतिरिक्खजोणियाण तओ लेस्साओ सक्किलिट्ठाओ पण्णत्ताओ,  
त जहा-कण्हलेस्सा, नीललेस्सा, काउलेस्साओ २० । पचिदिय  
तिरिक्खजोणियाण तओ लेस्साओ असक्किलिट्ठाओ पण्णत्ताओ,  
त जहा तेउलेस्सा, पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा २१ । एव मणुस्साणवि  
२३ । वाणमताराण जहा असुरकुमाराण २४ । वेमाणियाण तओ  
लेस्साओ पण्णत्ताओ त जहा तेउलेस्सा पम्हलेस्सा,  
सुक्कलेस्सा २५ ॥ सू ११ ॥

समुद्र के मध्य में जो द्वीप हैं वे अन्तरद्वीप हैं । इन अन्तरद्वीपों में जो  
उत्पन्न होते हैं वे अन्तरद्वीपजा हैं । ये अन्तरद्वीप केवल लयणसमुद्र में  
ही हैं इनकी संख्या छप्पन है ॥ सू० १० ॥

ॐ तेमने अन्तरद्वीपा ४६ छे ते अन्तरद्वीपाभा के छेदे केपन्ना वाय छे  
तेमने अन्तरद्वीप ४६ छे एवण समुद्रमां ४ ओणां अन्तरद्वीपा आवेदा  
छे अने तेमनी संख्या ५६ नी छे ॥ सू० ११ ॥

छाया-नैरयिकाणां तिस्रो लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोत-  
लेश्या १। असुरकुमाराणां तिस्रो लेश्याः संक्लिष्टाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कृष्णलेश्या,  
नीललेश्या, कापोतलेश्या २। एवं यावत् स्तनितकुमाराणाम् ११। एवं पृथिवीका-  
यिकानाम् १२, अग्नि-वनस्पतिकायिकानामपि १३-१४। तेजस्कायिकानां १५,  
वायुकायिकानां १६, द्वीन्द्रियाणां १७, त्रीन्द्रियाणां १८, चतुरिन्द्रियाणामपि  
तिस्रो लेश्या यथा नैरयिकाणाम् १९। पञ्चेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां तिस्रो लेश्याः  
संक्लिष्टाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या २०। पञ्चेन्द्रि-  
तिर्यग्योनिकानां तिस्रो लेश्या असंक्लिष्टाः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-तेजोलेश्या, पद्मलेश्याः,  
शुक्ललेश्याः २१। एव मनुष्याणामपि २२। वानव्यन्तराणां यथा असुरकुमाराणां-  
२४। वैमानिकानां तिस्रो लेश्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ल-  
लेश्या २५ ॥ सू० ११ ॥

जीवोंको स्त्री आदिके विषय में परिणति ( आसक्ति ) लेश्या के  
वश से होती है इसलिये लेश्याकी प्रखण्डना करते हुए सूत्रकार दण्ड कों  
में उनका कथन करते हैं— ' नैरय्याणं तओ लेश्याओ पण्णत्ताओ ' इ०  
सूत्रार्थ-नैरयिकों के तीन लेश्याएँ कही गई हैं जो इस प्रकार से हैं—  
कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या। असुरकुमारों के भी वे ही  
तीन लेश्याएँ संक्लिष्टरूपमें कही गई हैं इसी तरह का कथन यावत्  
स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये, पृथिवीकायिकों के अप्कायिकों के  
और वनस्पतिकायिकों के तथा तेजस्कायिकों के, वायुकायिकों के, द्वी-  
न्द्रियों के, त्रीन्द्रियों के एवं चौरिन्द्रियों के भी नैरयिकों की तरह से ही  
तीनों कृष्णादि लेश्याएँ जाननी चाहिये, तथा जो पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च है  
उनको संक्लिष्ट रूपमें ये कृष्णादि तीन लेश्याएँ और असंक्लिष्ट रूपमें

अथवा स्त्री आदिना विषयमां न् परिणति ( आसक्ति ) होय छे, ते  
लेश्याने लीधे होय छे तेथी उवे सूत्रकार २४ उडकेना अथवा लेश्याओनी  
प्रक्षुपण्णु करे छे— ' नैरय्याणं तओ लेश्याओ पण्णत्ताओ धत्थादि—

सूत्रार्थ-नारकेमां कृष्णलेश्या, नीललेश्या अने कापोतलेश्या, आत्रणु लेश्याओनी  
सद्भाव होय छे. असुरकुमारोमां पणु अणु त्रणु लेश्याओनी संक्लिष्ट रूपे  
सद्भाव कछो छे. आ प्रकारतु कथन स्तनितकुमारो पर्यन्तना भवनपति हेवो  
विधे पणु समजवुं पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक, तेजस्कायिक,  
वायुकायिक, द्वीन्द्रियो, त्रीन्द्रियो अने चतुरिन्द्रियोमां पणु नारकेनी न्मे कृष्ण,  
नील अने कापोत लेश्याने सद्भाव होय छे. पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोमां कृष्णादि  
लेश्याओनी संक्लिष्टरूपे सद्भाव समजवे अने तेजोलेश्या, पद्मलेश्या अने

टीका—' नैरग्याण ' इत्यादि ऋण्यग्राणि गुणमानि । पिश्रममाह—  
 नैरगिकाणा ऋण्यनीलजापोतलेइया सर्गिटादि विजोगरदिता उक्ताः, वप्वता  
 सामेर तिग्या मद्रायादिनि । अमुररुमारु स क्लृष्टतेमाले या सदितामवस्रो  
 लेइया मवती यप्र विस्थानकावतारात् मलिष्टा इति रिशाण प्रोक्तम् २। एष स्त-  
 नितवृभारपर्यन्त विग्यम् १' । ' ण ' इति-भननैव प्रघरण अगुरकुमारविदेवे

तेजोलेइया, पलेइया, और शुफललेइया ये तीन लेइयाएँ फही गईं  
 जाननी चाहिये । इसी तरह का कथन लेइयाओं के मन्वथ में मनुष्यों  
 के भी जानना चाहिये, वानव्यन्तारों के लेइयाओं का कथन असुरकु-  
 मारोंके फही गइ लेइयाओं के कथन जैसा जानना चाहिये, धैमानिकों  
 में ये तीन लेइयाएँ होतीं हैं। अस-तमोलेइया पप्रलेइया और शुक्ललेइया।

टीका २—नैरगियोंमें जो ऋण्य, नील और जापोव च तीन लेइयाएँ संकलिष्ट  
 विशेषण से रहिन फही गईं हैं सो उमरा कारण ऐसा है कि यहा पर  
 से ही तीनों लेइयाएँ होतीं हैं और दृमरी नहीं । तथा असुरकुमारों में  
 असकिल्ष्ट तेजोलेइयासहित चार लेइयाएँ होगी हैं, परन्तु यहा प्रित्या  
 मक के प्रकरण होन से उनमें कृपणादि तीन लेइयाएँ संकलिष्ट रूप में  
 होतीं हैं इसीप्रिय " असकिल्ष्ट " ऐसा विशेषण दिया है इसी तरह  
 का कथन स्तनिमकुमार तक के भवनपतिवों में इही लेइयाओं के होने

शुक्ल वैश्याने। अस क्लिष्ट इरे सद्रुताव समजवे। मनुष्यनी वैश्याओ विवेत  
 कथन पथेन्द्रिय तिय बोनी वैश्याओना कथन प्रभावे समजवु वानव्यन्तरोनी  
 वैश्याओनु कथन असुरकुम रोनी वैश्याओना उपयुजा कथन प्रभावे समजवु  
 वैमानिकोमां नीषे प्रभावे त्रषु वैश्याओना सद्रुताव होम थे-तेलेवैश्या,  
 पप्रवैश्या अने शुक्लवैश्या

टीका ३—नारकोमां के कृषु नील अने कापीत, जे त्रषु वैश्याओना सद्रुताव  
 स क्लिष्ट विशेषवुधी रहित पत्रापनामां आओ थे—अन्ते के ते त्रषु वैश्या  
 ओना अस क्लिष्ट रूपे सद्रुताव होम थे-तेनुं कालु ओं थे के वेओमां जे  
 त्रषु वैश्याओन होम थे आधीनी ओके लेस्या होनी नधी असुरकुमारोमां  
 अस क्लिष्ट तेलेवैश्या सहित चार वैश्याओ होम थे परन्तु अर्धी त्रिस्था  
 नकोना अधिकार पावतो होवाधी तेमनामां कृषु के त्रषु वैश्याओना सद्रुताव  
 स क्लिष्ट रूपे समजवानो थे अने तेलेवैश्याना सद्रुताव अस क्लिष्ट रूपे  
 समजवानो थे आ प्रभावे कथन स्तनिमकुमार पपन्तारा देवा विरे पवु

त्यर्थः पृथिव्यन् वनस्पतियु 'संक्लिष्टाः' इति सविशेषणास्तिस्रो लेश्याः प्रोक्ताः, तेषु देवोत्पत्तिसम्भवात्पर्यातावस्थायां चतुर्थ्या असंक्लिष्टतेजोलेख्याया अपि सद्भावात् १२। तेजोवायुद्वित्रिचतुरिन्द्रियेषु नैरयिक्यन्निर्विशेषगारितस्रो लेश्या उक्ताः, तेषु देवोत्पादस्यासद्भावात् ११। पञ्चेन्द्रियतिरश्चां मनुष्याणां च संक्लिष्टा-संक्लिष्टरूपाः षडपिलेश्या भवन्तीति सविशेषणा चतुःसूत्री २३। व्यन्तरागामसुाकु-मारवत्संक्लिष्टास्तिस्रो लेश्याः वाच्याः २४। वैमानिकेषु निर्विशेषणास्तिस्रोऽस-क्लिष्टा लेश्याः सन्ति, तत्र तामामेव सद्भावात्, विशेषणं तु व्यवच्छेदसद्भावा एव

के संबंध में भी जानना चाहिये । जिस प्रकारसे संक्लिष्टरूपमें कृष्णादि लेश्याएँ असुरकुमारों को कही गई हैं उसी प्रकार से ये ही तीनों कृष्णादि लेश्याएँ संक्लिष्टरूप में पृथिवीकायिक में, अप्कायिक में और वनस्पतिकायिकों में कही गई जानना चाहिये । क्यों कि इनमें देवो-त्पत्ति की सम्भवासे अपर्यातावस्था में असंक्लिष्ट चौथी तेजोलेख्याका भी सद्भाव हो सकता है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चों को और मनुष्यों को संक्लिष्ट और असंक्लिष्ट रूप छहों भी लेश्याएँ होती हैं इसलिये यह सविशे-षणा चतुःसूत्री है । अर्थात्—सविशेषण चार सूत्र हैं । असुरकुमारों की तरह व्यन्तरों को संक्लिष्ट कृष्णादि तीन लेश्याएँ होनी हैं । वैमानिकों में निर्विशेषण जो तेजो आदि तीन लेश्याएँ कही गई हैं उसका कारण उनमें इन्हीं तीनों का होना है । व्यवच्छेद के सद्भाव में ही विशेषण सफल होता है, इसी कारण—'वैमाणियाणं तओ लेस्साओ पणत्ताओ'

समञ्जसु ओटवे के लवनपति देवोमा कृष्णादि त्रयु लेश्याओ संक्लिष्ट रूपे अने तेजोवेश्या असंक्लिष्ट रूपे होय छे ओज प्रमाणे पृथिवीकायिके, अप्-कायिके अने वनस्पतिजायिकेमां पणु कृष्णादि त्रयु लेश्याओ संक्लिष्ट रूपे अने तेजोवेश्या असंक्लिष्ट रूपे होय छे ओम समञ्जसु करणु के तेजोमां देवोत्पत्तिनी सलावनाने क्षीपे अपर्यातावस्थामा असंक्लिष्ट तेजोवेश्याने सदभाव पणु होय शके छे, पञ्चेन्द्रिय तिर्यश्चो अने मनुष्येमा संक्लिष्ट अने असंक्लिष्ट रूप छे, लेश्याओ होय छे, तेथी तेमने विषे सविशेषणु यर सूत्र आप्ता छे असुरकुमारोनी जेम व्यन्तरोमा पणु संक्लिष्ट कृष्णादि त्रयु लेश्याओ होय छे वैमानिकोमा आ विशेषणुथी रक्षित जे तेजे, पन्न अने शुक्ल लेश्याओने सदभाव कस्यो छे तेनु कारणु जे छे के तेमनामां जे त्रयु लेश्याओ जे होय छे व्यवच्छेदना सदभावमा जे विशेषणु सक्षण थाय छे, ते कारणु " वैमाणियाणं तओ लेस्साओ पणत्ताओ " आ प्रकारने सूत्रपाठ

युज्यते २५। ज्यातिष्केषु तेजोश्रयाया एकस्या एव सद्भावेन त्रिस्थानकावतारा  
ज्योतिष्मसूत्र नोक्तमिति ॥ सू० ११ ॥

पूर्व वैमानिकानां लेशया द्वारणेह त्रिस्थानकावतार उक्तः, ज्यातिष्कानां तु  
यथा तदसम्भवापठनधर्मेण त्रिस्थानकावतारमाह—

मूष्म्-तीर्हिं ठाणेर्हिं तारास्ते चछिन्ना त जहा विकुघ  
माणे वा परियारेमाणे वा ठाणाओ वा ठाण सकममाणे  
तारास्ते चलेज्जा । तीर्हिं ठाणेर्हिं देव विज्जुयार करेज्जा, त  
जहा-विकुघमाणे वा परियारेमाणे वा तहास्तेवस्स समणस्स  
वा माहणस्स वा इर्हिं जुइ जस पल वीरिय पुरिमस्कार  
परक्कमे उवदसेमाणे देवे विज्जुयार करेज्जा । तीर्हिं ठाणेर्हिं  
देवे थणियसद्द करेज्जा त जहा-विकुघमाणेवा, एव जहा  
विज्जुयारे तद्देव थणियसद्दपि ॥ सू० १२॥

छाया-भिभि स्थानैस्तरारूप चक्षति, तद्यथा-विद्वर्षद्वा परिवारस्यमाण वा स्या  
नाथ वा स्थानं सकामत् तारास्ते चक्षति । भिभि स्थानैर्देशो विद्युत्कारं कुर्वात्,  
तद्यथा, विद्वर्षद्वा परिवारस्यमाणं वा तथा रूपस्य भ्रमणस्य वा माहनस्य वा श्रद्धिं  
घुतिं यशोयसं धीर्यं पुण्यकारणकामम् उपदर्शयन् देवो विद्युत्कारं कराति ।  
भिभिः स्थानैर्देशः स्तनितवचनं कराति, तद्यथा-विद्वर्षद्वा, एवं यथा विद्युत्कारं  
तथैव स्तनितवचनमपि ॥ सू० १२ ॥

ऐसा पाठ कहा गया है ज्योतिष्कदेशो में केवल एक तेजोछेद्या का  
ही सङ्गाथ है—अतः यहाँ त्रिस्थानकके प्रकरण का सम्पन्न होने से  
ज्योतिष्कसूत्र सूत्रकारने नहीं कहा है ॥ सू० ११ ॥

पहिले वैमानिकों के छेद्याद्वारको लेकर त्रिस्थानकका प्रकरण  
कहा, परन्तु ज्योतिष्कों के एक ही तेजोछेद्या होने के कारण इस

इसो छे ज्योतिष्क देशोर्भा मात्र तेजोदेश्याने एव सद्भावेन दोषो छे ज्योतिष्क  
नक्तं प्रकरणं आस्तुं दोषाधी सूत्रकारे ज्योतिष्क सूत्रं स्थानं उक्तं नथी ॥ सू० ११ ॥

पठेत्तान्ना सूत्रं वैमानिकानां देश्याद्वारं च अरेक्ष्यते त्रिस्थानकना प्र-  
करणं इयत्त इत्थं परन्तु ज्योतिष्कोर्भा मात्र तेजोदेश्याने एव सद्भावेन दोषाधी

टीका—' तीर्हि ठाणेर्हि ' इत्यादि । त्रिभिः स्थानैः—कारणैः तागस्पं तारकामात्रं चलति—स्वस्थानं त्यजति । तदेव स्थानत्रयं दर्शयति—वैक्रियं कुर्वन्, परिचारयमाणं—मैथुनार्थं संरम्भयुक्तं सत् स्थानाद्—स्वस्थानात् स्थानान्तरम्—अन्यस्थानं संक्रामत्—गच्छत्, यथा—अचिन्महर्द्विके देवादी चमरवद्वैक्रियादि कुर्वति सति तन्मार्गदानार्थमपि चलतीति ।

उक्तंच—“ तत्थणं जे से वावाइए अंतरे से जहन्नेणं दोन्नि छावट्टे जोयणसए, उक्कोसेणं वारसजोयणसहस्साइं ” इति ।

छाया—उत्र खलु यनद्व्याघातिक्रमन्तरं तज्जघन्येन द्वे पट्टपट्टिः योजनशते ( पट्टपट्टचभिके द्वे योजनशते ) । उत्कर्षेण द्वादशयोजनसहस्राणि ।

सम्बन्ध में त्रिस्थानकावतार नहीं कहा—इसलिये अब सूत्रकार उनमें चलनधर्मको लेकर त्रिस्थानकके अवतार का कथन करते हैं—' तीर्हि ठाणेर्हि ताराखवे चलिज्जा ' इत्यादि ।

टीकार्थ—तीन स्थानोंसे तीन कारणोंसे-तारे चलतेहैं अर्थात् अपने स्थान को छोड़ते हैं—वे तीन कारण इस प्रकारसे हैं—एक कारण है विक्रिया करने का अर्थात् जब वे विक्रिया करने लगते हैं । तब अपने स्थान को वे छोड़कर विक्रिया करते हैं । तथा जब वे मैथुन सेवन के अभिलाषी होते हैं—तब वे अपने स्थान को छोड़ कर ही मैथुन सेवन करते हैं । तथा जब कोई महर्द्विक देव चमर की तरह वैक्रिय आदि करता है, तब उसे रास्ता देने के लिये वे अपने स्थान को छोड़ देते हैं । कहा भी है—“ तत्थणं जे से वावाइए ” इत्यादि ।

त्रिस्थानकनी वक्ष्यन्त्यामां तेमनी देश्याओनु प्रतिपादन करायु नथी परन्तु तेओ यत्नधर्मथी युक्त होय छे ते यत्नधर्मनी अपेक्षाओ सूत्रकार हुवे त्रषु स्थानकानुं निष्पणु करे छे—“ तीर्हि ठाणेर्हि ताराखवे चलिज्जा ” इत्यादि—

टीकार्थ—नीचे दर्शावेला त्रणु स्थानोथी—त्रणु काण्णोने लीधे—ताराओ आदे छे, ओट्टे छे पोतानु स्थान छोडे छे—(१) न्यारे तेओ विक्रिया करे छे त्यारे पोतानु स्थान छोडे छे. (२) न्यारे तेओ मैथुन सेवानी धण्ठा करे छे, त्यारे तेओ पोताना स्थानने छोडीने न मैथुन सेवन करे छे (३) न्यारे तेओ महर्द्विक देव यमग्नी जेम विक्रिया आदि करे छे, त्यारे तेने मार्ग आपवाने आटे तेओ पोतानु स्थान छोडे छे कहु पणु छे छे—

“ तत्थणं जे से वावाइए ” इत्यादि—



તત્ત્વ ગ્યાયાતિ અન્તર મહદ્વિક્રમેવેત્ય માર્ગદાનાત્ મત્તવેભવેતિ કારાશિત્કમન્તર  
 તુ સ્વપયોનનારિમિતમપિ મત્તવિ ષમરાવાગમે ઇથેતિ । પૂર્વે તારકાદેવચરુનક્રિયા  
 પારણાનિ પ્રોક્તાનિ, મામ્પત દેવસ્યૈવ વિદ્યુસ્તનિતક્રિયયો કારણાનિ સુષ્ટ્રપનાદ-  
 'તોદિ' ઇત્યાદિ સુગમ નગ-વિદ્યુન્-વિદ્યુન્તા સેષ ક્રિયત ઇતિમાઃ-કાર્ય,  
 વિદ્યુતો વા કારણ કાર -ક્રિયા- ષ્પુ કારણ-વિદ્યુત કુર્યાંતિત્પર્યઃ । વૈક્રિયકર  
 ણાદીનિ ઠિ મામિમાનસ્ય મત્તવિ તમ પ્રગ્ભસ્ય ચ દુર્પોહ્યામવતશ્ચન્નવિદ્યુદર્ગર્જના  
 દીન્યપિ મત્તવનીતિ ષ્મન્નવિદ્યુત્કારાદીનાં વૈક્રિયાદિત્ કારણતયાક્ષમિતિ । શ્દ્ધિ-

યહાં જો વ્યાપાતિક અન્તર છે વહ જવ્ય સં રવે વ યોજનકા છે,  
 ઓર વટાષ્ટ સે વાર હજાર યોજન કા છે । મેરુ પથન કી અપેક્ષા સે,  
 યહ મહદ્વિક્ર દેવ કો માર્ગદાન વેતે સમય વ્યાપાતિક અન્તર હોના છે ।  
 તથા વાદાશિત્ક જો અન્તર છે વહ તો ઇક લાગ્ય યોજન વા ઓ હોના  
 છે । હસ તરહ સે યે તારા દેવોં કે ચલનક્રિયા કે કારણ કહે ગયે છે ।

અમ સૂત્રકાર દેષકે હી વિદ્યુત્ ઓર સ્તનિત ક્રિયાકે કારણોંકા કથન  
 કરતે ઇવ કહતે છે-કિ-“ ત દિ ઠાણેદિં વેવે વિજ્જુવાર કરેગા ” ૬૦  
 તીન કારણોં વો છેકર દેવ વિદ્યુત્કાર કરતે છે યે તીન કારણ હસ  
 પ્રકાર સે છે -જય વેવ વિક્રિયા કરતા છે તત્ત્વ યહ વિદ્યુત્કાર કરતા છે ।  
 જ્ય વહ મેયુન સેવનમે પ્રવૃત્તા હોતા છે તપ યહ વિદ્યુત્કાર કરતા છે તથા  
 જ્ય વહ તથાત્વપચાલે અમણ ઓર માહણ કો અવની શ્દ્ધિ, ઘુતિ, યશ,  
 વલ, વીર્ય, પુરુષકાર પરાક્રમ દિલ્લાના છે । તથ વહ વિદ્યુત્કાર કરતા છે  
 યે વૈક્રિયકરણ આદિરૂપ વાર્ય સામિમાન ( અમિમાનસહિત ) દેષકે

શ્દ્ધિ જે વ્યાપાતિક અન્તર છે તે જ્યોષાનાં જ્યોષુ ૨૬૬ યોજનનું અને  
 વધારેમા વધારે વાર હજાર યોજનનું દેષ છે મેરુ પર્વતની અપેક્ષાએ વ્યા  
 મહદ્વિક્ર દેવને માત્ર આપવી વખતે આ વ્યાપાતિક અન્તર થાય છે  
 તે અન્તર ક્યારેક એક લાખ યોજનનું પણ હોય છે તારા રૂપ દેવોના અક-  
 નના આ કારણે કહેવ મા આત્રાં છે હવે સૂત્રકાર દેવની વિદ્યુત્ અને સ્તનિત  
 (અન્તર) ક્રિયાઓના કારણેનું નિરૂપણ કરતા કહે છે કે—

તિદિ ઠાણેદિં વેવે વિજ્જુવાર કરેગા ઇત્યાદિ—

નીચે હસ વ્યા પ્રમાણેના ત્રણ કારણોને લીધે દેવ વિદ્યુત્કાર કરે છે (૧)  
 વ્યારે દેવ વિક્રિયા કરે છે ત્યારે વિદ્યુત્કાર કરે છે વ્યારે દેવ મેયુન સેવનમાં  
 પ્રવૃત્ત હોય છે ત્યારે વિદ્યુત્કાર કરે છે (૨) વ્યારે તે તથાવૃખવાળા શગણ  
 અથવા માહણને પીતાની શ્દ્ધિ, ઘુતિ યશ વગે, વીર્ય અને પુરુષકાર પરાક્રમ  
 બતાવે છે ત્યારે પણ તે વિદ્યુત્કાર કરે છે આ વૈક્રિયકરણ આદિ કાવ અભિ

विमानवस्त्राभूषणादिमृद्धिं द्युतिं-शरीराभरणादिदीप्तिं, यशः-ख्यातिं, बलं-शरीरं  
सामर्थ्यं, वीर्यं-जीवाभवं वच, तथा पुरुषकारः-पुरुषाभिमान विशेषश्च पराक्रमः-  
निष्पादितस्वविषयः पुरुषकार एव चेति पुरुषकारपराक्रमं, तत् सर्वम् उपदर्शयमानो  
देवो विद्युत्कारं स्तनितशब्दं मेघगर्जितशब्दं च करोतीति सम्बन्धः ॥ सू० १२ ॥

अनन्तरमुत्पातरूपौ विद्युत्कारस्तनितशब्दौ प्रौक्तौ, साम्प्रतमुत्पातरूपाण्येव  
लोकान्धकारादीनि षोडशमूत्र्या प्राह—

मूलम्-तीहिं ठागेहिं लोगंधयारे सिया, तं जहा-अरिहं-  
तेहिं वोच्छिज्जमाणेहिं, अरिहंतपन्नत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे,  
पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे १ । तीहिं ठाणेहिं लोगुज्जोए सिया, तं  
जहा-अरिहंतेहिं जायमाणेहिं, अरिहंतेसु पव्वयमाणेसु अरिहं-

होते हैं. तथा इस क्रिया में प्रवृत्त जो देव होता है उसके दर्प  
(अहंकार) और उल्लास भी होते हैं। अतः ऐसे देव के स्वस्थान से  
चलनक्रिया और विद्युत्कार तथा गर्जनादि क्रियाएँ भी होती हैं। इसी  
से इन चलन, विद्युत्कार आदिकों का वैक्रियादिकरण को कारणरूप से  
कहा गया है। विमान वस्त्र आभूषण आदि समृद्धि का नाम ऋद्धि है,  
शरीर आभरण आदि की दीप्ति का नाम द्युति है, ख्याति का नाम  
यश है। शारीरिक सामर्थ्य का नाम बल है, जीव से उद्भूत बल का  
नाम वीर्य है, पुरुषार्थ का नाम पुरुषकार है। यह पुरुषप्रकार ही पराक्रम  
है. इन ऋद्धि आदि को दिखाता हुआ देव विद्युत्कार और स्तनित  
शब्द को मेघ की गर्जना जैसे शब्द को करता है ॥ सू०२ ॥

मानयुक्ता देव न करे छे. आ क्रियाभां प्रवृत्त थनार ने देव डोय छे ते  
देवभां दर्प (अहंकार) अने उल्लास पणु डोय छे तेथी ओवे। देव पोताने  
स्थानेथी चलनक्रिया, विद्युत्कार तथा गर्जनादि क्रियाओ पणु करे छे तेथी न ओवु  
कहुं छे के आ चलन, विद्युत्कार अ.दि क्रियाओ वैक्रियकरणु आदिने कारणु थाय छे.

विमान, वस्त्र, आभूषणु आदि. समृद्धितुं नाम ऋद्धि छे. शरीर, आभ-  
रणु आदिनी दीप्ति तुं नाम द्युति छे. ख्यातितुं नाम यश छे शारीरिक साम-  
र्थ्य तुं नाम बल छे आत्मगण तुं नाम वीर्य छे. पुरुषार्थ तुं नाम पुरुषकार  
छे. ते पुरुषकार न पराक्रमरूप डोय छे. पोतानी आ ऋद्धि आदितुं प्रदर्शन करतो  
देव विद्युत्कार अने स्तनितशब्द-मेघनी गर्जना नेवे अवा न करे छे. ॥ सू. १२ ॥

તત્ર વ્યાપ્તિરૂપન્તર મહદ્વિક્રમે રસ્ય માર્ગદાનાત્ મર્ત્યેષ્વયેતિ ક્ષાદાધિરુમન્તર  
 તુ સ્વયમનપરિમિતવપિ મરતિ વમરાયાગમે ઇષેતિ । પૂર્વે તારકાદેવચન્નક્રિયા  
 પારણાનિ પ્રોક્તાનિ, સામ્પત્ત્યેવ્યેવ વિદ્યુસ્તનિતક્રિયયોઃ કારણાનિ સુષ્ણુવ્યનાદ-  
 'તીર્થિ' ઇત્યાદિ સુગમ નર-વિદ્યુત્-વિદ્યુષ્ટતા સૈવ ક્રિયત્ ઇતિમાઃ-કાર્ય,  
 વિદ્યુતો વા કારણ કાર્ય-ક્રિયા-વ્યુત્કારણ-વિદ્યુત કુર્વાંતિત્યયઃ । વૈક્રિયકર  
 વાદીનિ ઠિ માભિમાનસ્ય મરતિ તત્ર મરત્યસ્ય ય દર્પાહ્લામવતશ્ચન્નવિદ્યુદગર્જના  
 દીન્યપિ મયન્તીતિ વપનવિદ્યુત્કારાદીનાં વૈક્રિયાદિક કારણતયાક્તમિતિ । મહદ્વિ-

યદાં જો વ્યાપ્તિક અન્તર છે ત્યહ જગન્ન્ય સે ૨૬૬ યોજનકા છે,  
 ઓર વરદષ્ટ સે પાર હજાર યોજન કા છે । મેરુ પથન કી અપેક્ષા સે,  
 યદ મહદ્વિક્ર દેવ કો માર્ગદાન દેતે સમય વ્યાપ્તિક અન્તર હોના છે ।  
 તથા ક્ષાદાધિરુ જો અન્તર છે ત્યહ તો એક લાગ્ર યોજન કા 'મો' હોના  
 છે । ઇસ તરહ સે યે તારા દેવોં કે વલનક્રિયા કે કારણ કહે ગયે છે ।

અથ સૂત્રકાર દેવકે હી વિદ્યુત્ ઓર સ્નનિત ક્રિયાકે કારણોંકા કવન  
 કરતે સુષ્ણુ કહતે હૈ-કિ-" ત ઠિ ઠાણેઠિ દેવે વિજ્ઞુપાર કરેવ્શા " ૬૦  
 તીન કારણોં કો છેકર દેવ વિદ્યુત્કાર કરતે છે યે તીન કારણ ઇસ  
 પ્રકાર સે છે-જવ દેવ વિક્રિયા કરતા છે તત્ર યદ વિદ્યુત્કાર કરતા છે ।  
 જવ ઘદ મૈથુન સેવનમેં પ્રવૃષ્ઠા હોતા છે તપ ઘદ વિદ્યુત્કાર કરતા છે તથા  
 જવ ઘદ તથાસ્વવાલે શ્રમણ ઓર માહુણ કો અવની મહદ્વિ, યુતિ, વશ,  
 વલ, વીર્ય, પુરુષકાર પરાક્રમ દિશ્વાના છે । તપ ઘદ વિદ્યુત્કાર કરતા છે  
 યે વૈક્રિયકરણ આવિસ્વ કાર્ય સાભિમાન ( અભિમાનસહિત ) દેવકે

મહદ્વિક્રમે વ્યાપ્તિક અન્તર છે ત વ્યાપ્તાનાં વ્યાપ્ત ૨૬૬ યોજનનું અને  
 વધારેમા વધારે બાર હજાર યોજનનું કોષ છે મેરુ પવતની અપેક્ષાએ આ  
 મહદ્વિક્ર દેવને માર્ગ આપતી વપને આ વ્યાપ્તિક અન્તર માય છે  
 તે અન્તર ક્ષારેક એક લાગ્ર યોજનનું પણ કોષ છે તારા રૂપ દેવોના અક-  
 નતા આ કારણે કહેવામા આગ્યા છે કહે સૂત્રકાર દેવની વિદ્યુત્ અને સ્નનિત  
 (અજન) ક્રિયાઓના કારણેનું નિરૂપણ કરતા કહે છે કે—

તિર્થિ ઠાણેઠિ દેવે વિજ્ઞુપાર કરેવ્શા " ઇત્યાદિ—

નીચે દર્શાવ્યા પ્રમાણેના ત્રણ કારણોને લીધે દેવ વિદ્યુત્કાર કરે છે (૧)  
 વધારે દેવ વિક્રિયા કરે છે ત્યારે વિદ્યુત્કાર કરે છે વધારે દેવ મૈથુન સેવનમાં  
 પ્રવૃત્ત હોય છે ત્યારે વિદ્યુત્કાર કરે છે (૩) વધારે તે તથાશ્રવણા શ્રમણ  
 અથવા મહદ્વુને પેતાની મહદ્વિ, યુતિ અથ અત્ર વીશ અને પુરુષકાર પરાક્રમ  
 બતાવે છે ત્યારે પણ તે વિદ્યુત્કાર કરે છે આ વૈક્રિયકરણ આદિ કાર્ય અભિ

विमानवस्त्राभूषणादिमृद्धि द्युति-शरीराभरणादिदीप्ति, यशः-ख्याति, बलं-शरीरं सामर्थ्यं, वीर्यं-जीवाभवं बलं, तथा पुरुषकारः-पुरुषाभिमान विशेषश्च पराक्रमः-निष्पादितस्वविषयः पुरुषकार एव चेति पुरुषकारपराक्रमं, तत् सर्वम् उपदर्शयमानो देवो विद्युत्कारं स्तनितशब्दं मेघगर्जितशब्दं च करोतीति सम्बन्धः ॥ सू० १२ ॥

अनन्तरमुत्पातरूपी विद्युत्कारस्तनितशब्दौ प्रौक्तौ, साम्प्रतमुत्पातरूपाण्येव लोकान्धकारादीनि षोडशमूल्या प्राह—

मूलम्-तीर्हिं ठागेर्हिं लोमंघयारे सिया, तं जहा-अरिहं-तेर्हिं वोच्छिज्जमाणेर्हिं, अरिहंतपन्नत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे १ । तीर्हिं ठागेर्हिं लोयुज्जोए सिया, तं जहा-अरिहंतेर्हिं जायमाणेर्हिं, अरिहंतेसु पव्वयमाणेसु अरिहं-

होते हैं. तथा इस क्रिया में प्रवृत्त जो देव होता है उसके दर्प (अहंकार) और उल्लास भी होते हैं। अतः ऐसे देव के स्वस्थान से चलनक्रिया और विद्युत्कार तथा गर्जनादि क्रियाएँ भी होती हैं। इसी से इन चलन, विद्युत्कार आदिकों का वैक्रियादिकरण को कारणरूप से कहा गया है। विमान वस्त्र आभूषण आदि समृद्धि का नाम ऋद्धि है, शरीर आभरण आदि की दीप्ति का नाम द्युति है, ख्याति का नाम यश है। शारीरिक सामर्थ्य का नाम बल है. जीव से उद्भूत बल का नाम वीर्य है, पुरुषार्थ का नाम पुरुषकार है। यह पुरुषप्रकार ही पराक्रम है. इन ऋद्धि आदि को दिखाता हुआ देव विद्युत्कार और स्तनित शब्द को मेघ की गर्जना जैसे शब्द को करता है ॥ सू०२ ॥

अन्युक्त देव न करे छे. आ क्रियाभां प्रवृत्त थनार ने देव डोय छे ते र्भां दर्प ( अहंकार ) अने उल्लास पणु डोय छे तेथी ओवे। देव पोताने मानेथी चलनक्रिया, विद्युत्कार तथा गर्जनादि क्रियाओ पणु करे छे तेथी न ओवुं क्यु छे के आ चलन, विद्युत्कार अ.दि क्रियाओ वैक्रियकरणु आदिने कारणु थाय छे.

विमान, वस्त्र, आभूषणु आदि. समृद्धिनुं नाम ऋद्धि छे. शरीर, आभूषणु आदिनी दीप्तिनुं नाम द्युति छे. ख्यातिनुं नाम यश छे. शारीरिक सामर्थ्यनुं नाम बल छे आत्मभणुनुं नाम वीर्य छे. पुरुषार्थनुं नाम पुरुषकार . ते पुरुषकार न पराक्रमरूप डोय छे. पोतानी आ ऋद्धि आदिनुं प्रदर्शन करतो । विद्युत्कार अने स्तनितशब्द-मेघनी गर्जना ओवे अवाण करे छे. ॥ सू. १२ ॥

ताण्णाणुप्पायमहिमासु २ । तीहि ठाणेहि देवधयारे सिया, त जहा अरिहतेहि वोच्छिज्जमाणेहि, अरिहतपन्नत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे ३ । तीहि ठाणेहि देवुज्जोए सिया, त जहा-अरिहतेहि जायमाणेहि, अरिहतेहि पव्वयमाणेहि, अरिहताण्णाणुप्पायमहिमासु ४ । तीहि ठाणेहि देवसनिवाए सिया, त जहा-अरिहतेहि जायमाणेहि, अरिहतेहि पव्वयमाणेहि, अरिहताण्णाणुप्पायमहिमासु ५ । एव देवुक्कलिया ६, देवकहकहए ७ । तीहि ठाणेहि देविंदामाणुस्स लोग हव्वमागच्छति, त जहा-अरिहतेहि जायमाणेहि, अरिहतेहि पव्वयमाणेहि अरिहताण्णाणुप्पायमहिमासु ८ । तीहि ठाणेहि लोगतिया देवा माणुस्स लोग हव्वमागच्छति त जहा-अरिहतेहि जायमाणेहि, अरिहतेहि पव्वयमाणेहि अरिहताण्णाणुप्पायमहिमासु ९ । एव सामाणिया १०, तायचीसगा ११, लोगपाला देवा १२, अग्गमहिस्सीओ देवीओ १३, परिसोषवन्नगा देवा १४, अणियाहिवई देवा १५, आयरक्खगा देवा माणुस्स लोग हव्वमागच्छति १६ ।

तीहि ठाणेहि देवाअम्भुट्टिजा, त जहा-अरिहतहि जायमाणेहि जाव त चेष १ । एवमासणाइ चलेज्जा २, सीहणाय फरेज्जा ३, चेलुम्सेव फरेज्जा ४ । तीहि ठाणेहि देवाण चेइ यरुक्खा चलेज्जा, त जहा-अरिहतेहि त चेष ५ ॥ सू० १३ ॥

छाया—त्रिभिः स्थानैर्लोकान्धकारः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्युच्छिद्यमानेषु अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्युच्छिद्यमाने, पूर्वगते व्युच्छिद्यमाने १। त्रिभिः स्थानैर्लोकोद्घोतः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु २। त्रिभिः स्थानैर्देवान्धकारं स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्युच्छिद्यमानेषु, अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्युच्छिद्यमाने, पूर्वगते व्युच्छिद्यमाने ३। त्रिभिः स्थानैर्देवोद्घोतः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु

उत्पातरूप विद्युत्कार और स्तनित शब्द देव करता है ऐसा कथन किया । अब उत्पातरूप ही लोकान्धकार आदि का सूत्रकार षोडशसूत्र द्वारा कहते हैं—‘ तीर्हि ठाणेहिं लोगंधयारे सिघा ’ इत्यादि । सूत्रार्थ—तीन कारणोंसे लोकान्धकार—लोकमें अन्धकार होता है, वे कारण इस प्रकार से हैं—एक जब अर्हन्त भगवन्त—निर्वाण को प्राप्त होते हैं तब लोकमें अन्धकार हो जाता है, दूसरा कारण ऐसा है कि जब अर्हन्त प्ररूपित धर्मकी व्युच्छित्ति होती है—तीर्थ व्यवच्छेदकाल होता है—तब लोक में अन्धकार होता है, तथा उत्पाद आदि षोडहपूर्व जब व्युच्छेद होते हैं तब लोक में अन्धकार होता है ।

तीन कारणों से लोक में उद्योत होता है, वे तीन कारण ऐसे हैं—एक जब अर्हन्त प्रभु उत्पन्न होते हैं तब तथा अर्हन्त भगवान् जब दीक्षा धारण करते हैं तब, और जब अर्हन्त प्रभुके ज्ञानोत्पाद की महिमा होती है तब ।

देव द्वारा उत्पातरूप विद्युत्कार अने स्तनित शब्द—मेघनी गर्जना जेवा अवाज कराय छे, जेवु कथन पडेलाना सूत्रमां करवामां आव्यु. डेवे उत्पातरूप लोकान्धकार आदिनु सूत्रकार १६ सूत्रो द्वारा कथन करे छे—

“ तीर्हि ठाणेहिं लोगंधयारे सिघा ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—त्रयु कारणेने दीधे लोकमां अंधकार थछ जय छे ते कारणे आ प्रभावे छे—(१) न्यारे अर्हंत भगवान् निर्वाणु पावे छे, त्यारे लोकमां अंधकार व्यापी जय छे (२) न्यारे अर्हंत प्ररूपित धर्मनी व्युच्छित्ति ( विनाश ) थछ जय छे जेटले के न्यारे तीर्थ—व्यवच्छेदकाल आवे छे, त्यारे लोकमां अंधकार व्यापी जय छे. (३) न्यारे उत्पाद आदि चौडे पूर्वे व्युच्छिद्यमान ( विनष्ट ) थाय छे, त्यारे लोकमां अंधकार व्यापी जय छे

त्रयु कारणेने दीधे लोकमां उद्योत ( प्रकाश ) व्यापी जय छे—(१) न्यारे अर्हंत प्रभु उत्पन्न थाय छे, (२) न्यारे अर्हंत प्रभु दीक्षा अंगीकार करे छे, अने (३) न्यारे अर्हंत प्रभुना ज्ञानोत्पादने महिमा थाय छे, त्यारे लोकमां प्रकाश व्यापी रडे छे.

ताण्णानुप्पायमहिमासु २ । तीहि ठाणेहि देवधयारे सिया, त जहा अरिहतेहि<sup>१</sup> वोच्छिज्जमाणेहि, अरिहतपन्नत्ते धम्मे वोच्छिज्जमाणे, पुव्वगए वोच्छिज्जमाणे ३ । तीहि ठाणेहि देवुज्जोए सिया, त जहा-अरिहतेहि<sup>२</sup> जायमाणेहि, अरिहतेहि<sup>३</sup> पव्वयमाणेहि, अरिहताण्णानुप्पायमहिमासु ४ । तीहि ठाणेहि देवसनिवाए सिया, त जहा-अरिहतेहि<sup>४</sup> जायमाणेहि, अरिहतेहि<sup>५</sup> पव्वयमाणेहि, अरिहताण्णानुप्पायमहिमासु ५ । एव देवुक्कलिया ६, देवकहकहए ७ । तीहि ठाणेहि देविंदामाणुस्स लोग हव्वमागच्छति, त जहा-अरिहतेहि<sup>६</sup> जायमाणेहि, अरिहतेहि<sup>७</sup> पव्वयमाणेहि अरिहताण्णानुप्पायमहिमासु ८ । तीहि ठाणेहि लोगतिया देवामाणुस्स लोग हव्वमागच्छति त जहा-अरिहतेहि<sup>८</sup> जायमाणेहि, अरिहतेहि<sup>९</sup> पव्वयमाणेहि अरिहताण्णानुप्पायमहिमासु ९ । एव सामाणिया<sup>१०</sup> १०, तायत्तीसगा ११, लोगपाला देवा १२, अग्गमहिस्सीओ देवीओ १३, परिसोववन्नगा देवा १४, अणियाहिर्वेई देवा १५, आयरक्खगा देवा माणुस्स लोगं हव्वमागच्छति १६ ।

तीहि ठाणेहि देवाअम्मुट्टिजा, त जहा-अरिहतेहि जायमाणेहि जाय त चेष १ । एवमासणाइ चलेज्जा २, सीहणाय करेज्जा ३, चेलुक्खेव करेज्जा ४ । तीहि ठाणेहि देवाण चेइ यरुक्खा चजेज्जा, त जहा-अरिहतेहि त चेष ५ ॥ सू० १३ ॥

छाया—त्रिभिः स्थानैर्लोकान्धकारः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्युच्छिद्यमानेषु अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्युच्छिद्यमाने, पूर्वगते व्युच्छिद्यमाने १। त्रिभिः स्थानैर्लोकोद्घोतः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु २। त्रिभिः स्थानैर्देवान्धकार स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु व्युच्छिद्यमानेषु, अर्हत्प्रज्ञप्ते धर्मे व्युच्छिद्यमाने, पूर्वगते व्युच्छिद्यमाने ३। त्रिभिः स्थानैर्देवोद्घोतः स्यात्, तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रव्रजत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु

उत्पातरूप विद्युत्कार और स्तनित शब्द देव करता है ऐसा कथन क्रिया । अब उत्पातरूप ही लोकान्धकार आदि को सूत्रकार षोडशसूत्र द्वारा कहते हैं—‘ तीर्हि ठाणेहिं लोगंधयारे सिया ’ इत्यादि । सूत्रार्थ—तीन कारणोंसे लोकान्धकार—लोकमें अन्धकार होता है, वे कारण इस प्रकार से हैं—एक जब अर्हन्त भगवन्त निर्वाण को प्राप्त होते हैं तब लोकमें अन्धकार हो जाता है, दूसरा कारण ऐसा है कि जब अर्हन्त प्ररूपित धर्मकी व्युच्छिस्ति होती है—तीर्थ व्यवच्छेदकाल होता है—तब लोक में अन्धकार होता है, तथा उत्पाद आदि चौदहपूर्व जब व्युच्छिदे होते हैं तब लोक में अन्धकार होता है ।

तीन कारणों से लोक में उद्योत होता है, वे तीन कारण ऐसे हैं—एक जब अर्हन्त प्रभु उत्पन्न होते हैं तब तथा अर्हन्त भगवान् जब दीक्षा धारण करते हैं तब, और जब अर्हन्त प्रभुके ज्ञानोत्पाद की महिमा होती है तब ।

देव द्वारा उत्पातरूप विद्युत्कार अने स्तनित शब्द—मेघनी गजना जेवे अवाज कराय छे, जेवुं कथन पडेलाना सूत्रमां करवामां आण्युं. डवे उत्पातरूप लोकान्धकार आदितुं सूत्रकार १६ सूत्रा द्वारा कथन करे छे—

“ तीर्हि ठाणेहिं लोगंधयारे सिया ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—त्रयु कारखाने तीर्थे लोकमां अंधकार थछ नय छे ते कारखो आ प्रमाखे छे—(१) न्यारे अर्हंत भगवान् निर्वाण पाये छे, त्यारे लोकमां अंधकार व्यापी नय छे (२) न्यारे अर्हंत प्ररूपित धर्मनी व्युच्छिस्ति ( विनाश ) थछ नय छे जेवले के न्यारे तीर्थ—व्यवच्छेदकाल आवे छे, त्यारे लोकमां अंधकार व्यापी नय छे. (३) न्यारे उत्पाद आदि चौदह पूर्वे व्युच्छिद्यमान ( निनय ) थय छे, त्यारे लोकमां अंधकार व्यापी नय छे

त्रयु कारखाने तीर्थे लोकमा उद्योत ( प्रकाश ) व्यापी नय छे—(१) न्यारे अर्हंत प्रभु उत्पन्न थय छे, (२) न्यारे अर्हंत प्रभु दीक्षा अंगीकार करे छे, अने (३) न्यारे अर्हंत प्रभुना ज्ञानोत्पादने महिमा थय छे, त्यारे लोकमां प्रकाश व्यापी रहे छे.



२। त्रिमि स्यान्निर्वेदसनिगतः स्यात्, तद्यथा-अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रवृत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु ५। एष देवोत्कलिका ६, देवकहकहक ७। त्रिमिः स्यान्निर्वेदोन्ना मानुष्य लोक इव्यमागच्छन्ति, तद्यथा अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रवृत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु ८। त्रिमिः स्यान्निर्वेदोन्ना देवा मानुष्य लोक इव्यमागच्छन्ति, तद्यथा-अर्हत्सु जायमानेषु अर्हत्सु प्रवृत्सु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु ९। एवं सामानिकाः १० प्रायस्त्रिंशकाः ११, लोक

तीन कारणों से देवलोक में अघेरा हो जाता है, ये तीन कारण इस प्रकार से हैं-एक जय अर्हन्तप्रभु निर्वाणगत होते हैं तय, तथा अर्हन्तप्ररूपित धर्म जब न्युच्छिन्न होता है तय, तथा पूर्वगत भूत जब न्युच्छिन्न होता है-तय ।

तीन कारणों से देवोद्योत होता है-जैसे-जय अर्हन्तप्रभुका जन्म होता है तय, तथा जय अर्हन्तप्रभु दीक्षा धारण करते हैं तय, और जब अर्हन्तप्रभु के ज्ञानोत्पादकी महिमा की जाती है तय ।

तीन कारणों से देव समागम होता है-जैसे जय अर्हन्तप्रभु का जन्म होता है तय, तथा जय अर्हन्तप्रभु दीक्षा धारण करते हैं तय, और जब अर्हन्तप्रभुके ज्ञानोत्पाद की महिमा की जाती है तय, इसी तरह से देवोत्कलिका देवोंका एक जगह एकत्रित होना होता है, इसी तरह से देवों का कहकहत होता है । आनन्दातिरेक से देवों का कलकल शब्द होता है ।

त्रयु कारयेने वीपि देवतोऽहमां अ धार न्यापी न्यय छे ते त्रयु कारये। नीपि प्रभाये समन्वा-(१) अर्हन्त प्रभु निर्वाण पापे छे त्वारे (२) अर्हन्त प्रवृत्त धर्म न्यारे न्युच्छिन्न धर्म न्यय छे त्वारे, (३) पूर्वगत भूत न्यारे न्युच्छिन्न धर्म न्यय छे त्वारे।

त्रयु कारयेने वीपि देवतोऽहमां उद्योत न्यापी न्यय छे-(१) न्यारे अर्हन्त प्रभुने जन्म बाध छे त्वारे, (२) न्यारे अर्हन्त प्रभु दीक्षा धारण करे छे त्वारे अने (३) न्यारे अर्हन्त प्रभुना ज्ञानोत्पादकी महिमा बाध छे त्वारे।

त्रयु कारये देवसमागम बाध छे-(१) न्यारे अर्हन्त प्रभुने जन्म बाध छे त्वारे, (२) न्यारे अर्हन्त प्रभु दीक्षा ले छे त्वारे अने (३) न्यारे अर्हन्त प्रभुना ज्ञानोत्पादनने ( देवग्यान प्राप्तिने ) भडोत्सव करवाभा आवे छे न्य त्रयु कारयेने वीपि देवोत्कलिका ( देवोत्कलिका न्यारे न्यारे न्यारे ) बाध छे न्य त्रयु कारयेने वीपि देवोने अतिशय आनन्द बाध छे, अने ते आनन्दातिरेकने वीपि तेन्ये जठभडार हसे छे।

पाला देवाः १२,—, अग्रमहिष्यो देव्यः १३ परिषदुपपन्नका देवाः १४, अनिकाधिपतयोदेवाः १५, आत्मरक्षका देवा मानुष्यं लोकं हव्यमागच्छन्ति १६ ।

त्रिभिः स्थानैर्देवा अभ्युत्तिष्ठन्ति तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, यावत् तदेव १ । एवमासनानि चलन्ति २, सिंहनादं कुर्वन्ति ३, चेलोत्क्षेपं कुर्वन्ति ४ । त्रिभिः स्थानैर्देवानां चैत्यवृक्षाश्चलन्ति, तद्यथा—अर्हत्सु तदेव ५ ॥ सू० १३ ॥

तीन कारणों को लेकर देवेन्द्र मनुष्यलोक में शीघ्रता के साथ आते हैं । जैसे जब अर्हन्तप्रभु का जन्म होता है तब, तथा अर्हन्तप्रभु जब दीक्षा धारण करते हैं तब, और जब अर्हन्तप्रभुके ज्ञानोत्पाद की अहिमा की जाती हैं तब—इन्हीं तीन कारणों से लोकान्तिक देव भी बहुत जल्दी मनुष्यलोक में आते हैं । इन्हीं तीन कारणों को लेकर सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशकदेव, लोकपाल देव, अग्रमहिषियां—दंबियां, पारिषत्क देव, अनिकाधिपतिदेव और आत्मरक्षकदेव भी इस मनुष्यलोक में बहुत जल्दी आते हैं । इन्हीं तीन कारणों को लेकर देव अपने २ आसनों से सिंहासनों से उठ बैठते हैं । इन्ही तीन कारणों से लेकर शक्रादि देवों के आसन चलायमान होते हैं । इन्हीं कारणों से लेकर वे सिंहनाद करते हैं और चेलोत्क्षेप भी करते हैं । ये सब कार्य प्रमोद के चशवर्ती होकर वे करते हैं । तथा इन्हीं तीन कारणों को लेकर चैत्यवृक्ष—देववृक्ष विशेष चलायमान होते हैं ।

नीचेना त्रयु कारणोने लीधे देवेन्द्रो धष्ठी न शीघ्रताथी मनुष्यलोकमा आवे छे—(१) न्यारे अर्हत्त प्रभुने जन्म थाय छे त्यारे, (२) न्यारे अर्हत्त प्रभु दीक्षा ले छे त्यारे, अने (३) न्यारे अर्हत्त प्रभुना ज्ञानोत्पादने मंडोत्सव करवाभां आवे छे, त्यारे देवेन्द्रो धष्ठी न शीघ्रताथी मनुष्यलोकमा आवे छे आ त्रयु कारणोने लीधे लोकान्तिक देवो पणु धष्ठी न उडपथी मनुष्यलोकमा आवे छे आ त्रयु कारणोने लीधे सामानिक देवो, त्रायस्त्रिंशक देवो, अग्रमहिषी देवीओ, पारिषत्क देवो, अनिकाधिपती देवो अने आत्मरक्षक देवो पणु धष्ठी न उडपथी आ मनुष्यलोकमां आवे छे. आ त्रयु कारणोने लीधे न देवो पोतपोताना सिंहासनोपरथी उठे छे. आ त्रयु कारणोने लीधे न शक्रादि देवोना आसने चलायमान थाय आ त्रयु कारणोने लीधे न तेओ सिंहाद करे छे अने चेलोत्क्षेप पणु करे छे. आ यथा कार्ये आनदने कारणु न तेओ करे छे आ त्रयु कारणु न चैत्यवृक्ष ( देववृक्ष विशेष ) चलायमान थाय छे.

१। त्रिभिः स्थानैर्देवतानिगतः स्यात्, तद्यथा-अर्हत्सु जायमानेषु अर्हत्सु प्रथमं ब्रह्म, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु ५। एव देवोत्कलिका ६, देवकहकह ७। त्रिभिः स्थानैर्देवेन्द्रा मानुष्य लोक इत्यगागच्छन्ति, तद्यथा अर्हत्सु जायमानेषु, अर्हत्सु प्रथमसु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु ८। त्रिभिः स्थानैर्लोकान्तिका दशा मानुष्य लोक इत्यगागच्छन्ति, तद्यथा-अर्हत्सु जायमानेषु अर्हत्सु प्रथमसु, अर्हतां ज्ञानोत्पादमहिमासु ९। एवं सामानिकाः १० प्रापस्त्रिभुकाः ११ लोक

तीन कारणों से देवलोक में अचेरा हो जाता है, ये तीन कारण इस प्रकार से हैं-एक जय अर्हन्तप्रभु निर्वाणगत होते हैं तब, तथा अर्हन्तप्ररूपित घम जय व्युच्छिन्न होता है तब, तथा पूर्वगत धृत जय व्युच्छिन्न होता है-तब ।

तीन कारणों से देवोद्योत होता है-जैसे-जय अर्हन्तप्रभुका जन्म होता है तब, तथा जय अर्हन्तप्रभु दीक्षा धारण करते हैं तब, और जय अर्हन्तप्रभु के ज्ञानोत्पादकी महिमा की जाती है तब ।

तीन कारणों से देव समागम होता है-जैसे जय अर्हन्तप्रभु का जन्म होता है तब, तथा जय अर्हन्तप्रभु दीक्षा धारण करते हैं तब, और जय अर्हन्तप्रभुके ज्ञानोत्पाद की महिमा की जाती है तब, इसी तरह से देवोत्कलिका देवोंका एक जगह एकध्रित होना होता है, इसी तरह से देवों का कहकहत होता है। आनन्दातिरेक से देवों का कलकल शब्द होता है ।

त्रयु क्षरत्वेने वीपे देवलोकाभां ज प्रसार वापी जय छ ते त्रयु क्षरत्वेने वीपे प्रभावे समन्वा-(१) जद त प्रभु निर्वाण पापे छ त्वारे (२) जद त प्ररूपित धर्म ज्वारे व्युच्छिन्न धर्म जय छ त्वारे, (३) पूर जत भुत ज्वारे व्युच्छिन्न धर्म जय छ त्वारे.

त्रयु क्षरत्वेने वीपे देवलोकाभां उद्योत व्यापी व्यय छ-(१) ज्वारे जदंत प्रभुने ज्म वाय छ त्वारे, (२) ज्वारे जदंत प्रभु दीक्षा धारण करे छ त्वारे जने (३) ज्वारे जदंत प्रभुना ज्ञानोत्पादना महिमा वाय छ त्वारे

त्रयु क्षरत्वे देवसमागम वाय छ-(१) ज्वारे जदंत प्रभुने ज्म वाय छ त्वारे, (२) ज्वारे जदंत प्रभु दीक्षा ले छ त्वारे जने (३) ज्वारे जदंत प्रभुना ज्ञानोत्पादनेना (देवगज्ञान प्राप्तिने) भदोत्सव करवाभां जाये छ. ज्म त्रयु क्षरत्वेने वीपे देवोत्कलिका (देवोनु लोक ज्मवाजे ज्मकप्र वधानु) वाय छ ज्म त्रयु क्षरत्वेने वीपे देवोने ज्मतिशय ज्ञानद वाय छ, जने ते ज्ञानदातिरेकने वीपे तेजो ज्मज्मद छसे छ

पाला देवाः १२,—, अग्रमहिष्यो देव्यः १३ परिपदुपन्नका देवाः १४, अनिकाधिपतयोदेवाः १५, आत्मरक्षका देवा मानुष्यं लोकं हव्यमागच्छन्ति १६ ।

त्रिभिः स्थानैर्देवा अभ्युत्तिष्ठन्ति तद्यथा—अर्हत्सु जायमानेषु, यावत् तदेव १। एवमासनानि चलन्ति २, सिंहादं कुर्वन्ति ३, चेलोत्क्षेपं कुर्वन्ति ४। त्रिभिः स्थानैर्देवानां चैत्यवृक्षाश्चलन्ति, तद्यथा—अर्हत्सु तदेव ५ ॥ सू० १३ ॥

तीन कारणों को लेकर देवेन्द्र मनुष्यलोक में शीघ्रता के साथ आते हैं। जैसे जब अर्हन्तप्रभु का जन्म होता है तब, तथा अर्हन्तप्रभु जब दीक्षा धारण करते हैं तब, और जब अर्हन्तप्रभुके ज्ञानोत्पाद की बहिमा की जाती हैं तब—इन्हीं तीन कारणों से लोकान्तिक देव भी बहुत जल्दी मनुष्यलोक में आते हैं। इन्हीं तीन कारणों को लेकर सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशकदेव, लोकपाल देव, अग्रमहिषियाँ—देवियाँ, पारिपत्क देव, अनिकाधिपतिदेव और आत्मरक्षकदेव भी इस मनुष्यलोक में बहुत जल्दी आते हैं। इन्हीं तीन कारणों को लेकर देव अपने २ आसनो से सिंहासनो से उठ बैठते हैं। इन्हीं तीन कारणों से लेकर शक्रादि देवों के आसन चलायमान होते हैं। इन्हीं कारणों से लेकर वे सिंहानाद करते हैं और चेलोत्क्षेप भी करते हैं। ये सब कार्य प्रमोद के वशवर्ती होकर वे करते हैं। तथा इन्हीं तीन कारणों को लेकर चैत्यवृक्ष—देववृक्ष विशेष चलायमान होते हैं।

नाथेना त्रयु कारणाने लीधे देवेन्द्रो धृषी न शीघ्रताथी मनुष्यलोकमा आवे छे—(१) न्यारे अर्द्धत प्रभुने जन्म थाय छे त्यारे, (२) न्यारे अर्द्धत प्रभु दीक्षा ले छे त्यारे, अने (३) न्यारे अर्द्धत प्रभुना ज्ञानोत्पादने महेत्सव करनामा आवे छे, त्यारे देवेन्द्रो धृषी न शीघ्रताथी मनुष्यलोकमा आवे छे. आ त्रयु कारणाने लीधे लोकान्तिक देवो पणु धृषी न अउपथी मनुष्यलोकमा आवे छे आ त्रयु कारणाने लीधे सामानिक देवो, त्रायस्त्रिंशक देवो, अग्रमहिषी देवीयो, पारिपत्क देवो, अनिकाधिपती देवो अने आत्मरक्षक देवो पणु धृषी न अउपथी आ मनुष्यलोकमा आवे छे. आ त्रयु कारणाने लीधे न देवो पातपोताना सिंहासनोपरथी ठे छे. आ त्रयु कारणाने लीधे न शक्रादि देवोना आसनो चलायमान थाय आ त्रयु कारणाने लीधे न तेयो सिंहानाद करे छे अने चेलोत्क्षेप पणु करे छे. आ यथां कार्यो आनदने कारणु न तेयो करे छे. आ त्रयु कारणु न चैत्यवृक्ष ( देववृक्ष विशेष ) चलायमान थाय छे.

ટીકા—‘ ઠિરિ ઠાણેરિ ’ ઇત્યાદિ—પોહણમ્બ્રી મુગમા । નવરં-પ્રિમિ  
સ્થાને-ઠારણે સોકે-ક્ષેત્રલોક-ઠર્ણાઘસ્તિર્યગ્ સ્વેઽઘકાર સ્થોકાન્ધકારં  
દ્રવ્યતો દ્વિટિ વિષાત્તાનુમાયરૂપ, માયત મકાશકમ્બમાત્રજ્ઞાનાયાવસ્થરૂપ મયતિ ।  
ક્ષેત્રલોક સ્વરૂપમાહ—

“ આગાસસ્ત પપ્સા, ઉરહ ચ અદે ચ ઠિરિયલોર ય ।

ખાણાદિ ચેત્તલોર્યં, ઘણતઘ્નિણદસિય સમ્મ ॥ ૧ ॥ ” -

છાયા—આકાશસ્વ પ્રદેશા કર્ષ્ણમચ્ચ ઠિર્યગ્જોકે ષ ।

જાનીરિ ક્ષેત્રલોકમ્, અન્તઘ્નિણદશ્ચિતં સમ્મજ્ઞ ॥

શાયેન્ન કારણાપાદ—‘ ઘરિહંધેરિ ’ ઇત્યાદિ, અરીન્-જ્ઞાનાવરણીય-દર્શ  
નાવરણીયમોહનીયા તરાપરૂપાણિ ઘાતિકર્માણિ ઘ્નન્તિ નાશયન્તીતિ અરિહન્તસ્તપુ,  
અસ્ય ત્રિશેષવ્યાખ્યા-આવ્યકપૂમસ્ય મત્કૃતાયાં મુનિતોપિઠી ઠીકાયાં ચિલોક  
નીયા । વ્યુચ્છિષ્યમાનેષુ નિર્ણય મષ્ટ્વત્સુ ઇતિ પ્રયમં કારણમ્ ૧, તયા અદ ત્મદ્રવ્યે પર્મે

ટીકાર્થ—ઠર્ણલોક, અઘોલોક ઓર ઠિર્યગ્લોક યે સ્ત્રીન લોક લોક દ્વાન્દ્વસે  
યદ્દાં ગૃહીત દુષ્ટ ઈ । દ્રવ્યાઘકાર ઓર આયાઘકારકે મેવસે દ્વો પ્રકારકા  
અઘકાર હોતા હૈ, જિસસે દ્વિટિ ઠા વિષાત્ હોતા હૈ વહ દ્રવ્યાઘકાર  
હૈ । તથા પ્રકાશક સ્થમાયરૂપ જ્ઞાન ઠા જો અમાય હૈ વહ આયાઘકાર  
હૈ, ક્ષેત્રલોકકા સ્થરૂપ હસ પ્રકાર સે કહા ગયા હૈ—‘ આગાસસ્ત પપ્સા  
લઙ્કુ ષ ’ ઇત્યાદિ । જ્ઞાનાવરણીય વહાનાવરણીય, મોહનીય ઓર અન્ત  
રાપરૂપ ચાર ઘાતિયા કર્મે ઠા જો નાશ પર ઘેતે હૈ યે અરિહન્ત હૈ ।  
હસકી ઘિશેષ વ્યાખ્યા આઘદ્યક સૂત્ર ઠી મુનિતોપિઠી ઠીકા મેં ઘેલની  
આરિયે । વ્યુચ્છિષ્યમાન દાન્દ ઠા અથ હૈ જપ ઘે નિર્ણય જાને લગતે  
હૈ ઘેસા । પૂર્વ દાન્દ સે ઠ્ઠાં ઉત્પાદપૂર્વ સે હેકર લોકયિન્દુમાર તક

ટીકા—લોક શબ્દથી ઉપલોક, અધિલોક અને તિષ્ઠલોક અર્થો અલ્પ કરાયા  
છે અઘકારના બે ભેદ છે—(૧) દ્રવ્યા ઘકાર અને (૨) આયા ઘકાર જેના  
દ્વારા દ્વિટિને વિષાત્ ઘાય છે, તેનું નામ દ્રવ્યા ઘકાર છે, તથા પ્રકાશક સ્થમા  
વરૂપ જ્ઞાનને જે અમાય છે તેનું નામ આયા ઘકાર છે ક્ષેત્રલોકનું સ્વરૂપ અ  
પ્રમાણે કહ્યું છે—‘ આગાસસ્ત પપ્સા ઉરહ ષ ” ઈત્યાદિ—

જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, મોહનીય અને અન્તરાય, આ ચાર ઘાતિયા  
કર્મિણા જેમણે ક્ષય કરી નાખ્યો છે, તેમને અહ ત કહે છે આ પઠની વિસ્તૃત  
વ્યાખ્યા આવસ્થક સૂત્રની મુનિતોપિઠી ઠીકામાં આપશાખાં આવેલ છે  
“ વ્યુચ્છિષ્યમાન ” એટલે “ કર્મિણા ક્ષય કરીને નિર્વાણ માત્રે વિચરતા ”

व्युच्छिद्यमाने तीर्थव्यवच्छेदकाले इत्यर्थः इति द्वितीयं कारणम् २, पूर्वाणि-  
उत्पादादीनि लोकविन्दुसारपर्वन्तानि चतुर्दश, तेषु गत-प्रविष्टं तदभ्यन्दरीभूतं  
यच्छतं तत्पूर्वगतं दृष्टिवादान्तर्गतश्रुताधिकारविशेष, तस्मिन् व्युच्छिद्यमाने  
सतीति तृतीयं कारणम् ३ लोकान्धकार स्यादिति सारग्रन्थः ।  
अर्हदादियु व्युच्छिद्यमानेषु कथं लोकान्धकारं स्या ? इति नाश  
ङ्खनीयम्, राजमरणदेशनगरादि भङ्गे दिशां रजस्वलतया च दृश्यते जगति लोका-  
न्धकारं, यत्पुनर्निष्विलम्बुवनभूतमात्रानवद्यनयनसमानेषु (त्रिलोकचक्षुः सहजे  
ष्वित्यर्थः) भगवदर्हदादियु व्युच्छिद्यमानेषु लोकान्धकार भवति तत्क्रिमाश्रयमिति  
। १ । त्रिभिः स्थानैर्लोकोद्योतः स्यात्-लोकत्रये प्रकाशो भवति, द्रव्यतो घटपटादि-  
प्रकाशकरूपः, भावतो लोकत्रयेऽपि सुखोत्पादकहेतुरूपः । अर्हज्जन्म १-पत्र-

के चौदह पूर्व लिखे जये हैं इन पूर्वी में प्रविष्ट जो श्रुत है वह पूर्वगत  
श्रुत है । यह पूर्वगत श्रुत दृष्टिवाद के अन्तर्गत श्रुताधिकार विशेषरूप  
है, “ अर्हदादिकों के व्युच्छिद्यमान होने पर लोक में अन्धकार कैसे हो  
सकता है ” ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये । क्योंकि राजाके मरने  
पर एवं देशभंग तथा नगर आदिके भङ्ग होने पर दिशाओं के धूमिल  
रूप हो जाने से जब जगत में लोकान्धकार दिखलाई पड़ता है तो फिर  
समस्त सुवनवर्ती लोकमात्र के निर्मल नयनों में जो समभावी दिग्बते  
हों ऐसे भगवान् अर्हत आदि के व्युच्छिद्यमान होनेपर लोकमें अंधकार  
हो जावे तो इसमें आश्चर्य जैसी क्या बात है ? उद्योत शब्दका अर्थ-  
प्रकाश है यह प्रकाश भी द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है  
घटपट आदिकों को प्रकाश देनेवाला जो होता है वह द्रव्यप्रकाश है-

‘पूर्व’ शब्दना प्रयोग द्वारा उत्पाद पूर्वथी लघने लोकविन्दुसार सुधीना  
१४ पूर्व अर्हणु करवाना छे ते पूर्वीमां प्रविष्ट जे श्रुत छे तेने पूर्वगत श्रुत  
कडे छे पूर्वगत श्रुत दृष्टिवादान् अन्तर्गत श्रुताधिकार इय छे, “ अर्हतादिके  
न्यारे निर्वाणु पथे विचरे छे, त्यारे लोकमां अन्धकार केवी नीते थय शके  
छे, ” आ प्रकारनी शका अस्थाने छे, कारणु के राज् आदिनुं मृत्यु यतां  
अने देश तथा नगरादिने नाश यतां त्यारे दिशाओमां धुधणु वातावरणु  
थय नवाथी जे जगतमां अन्धकार व्यापी जय छे, तो समस्त सुवनवर्ती  
लोकाना निर्मल नयनेमा जे समभावी हेमाय छे, ओवा अर्हत भगवान्  
आदिना निर्वाणु कणे लोकमां अन्धकार व्यापी जय, तेमां नवाथ पाववा जेनुं  
थु छे ? उद्योत ओटले प्रकाश. ते प्रकाश पणु द्रव्य अने भावना लेहथी जे  
प्रकारने कहे छे. घट, पट आदि वस्तुओने प्रकाश आपनारी जे वस्तुओ

ટીકા—‘ વિહિ ઠાણેહિ ’ इत्यादि,—पोडशसुभी सुगमा । नवर-प्रिमि-  
 स्यात्—कारणै लोके-क्षेत्रलोक-ऊर्ध्वस्थितेभ्य रूपेऽधकार लोकाधकारं  
 द्रव्यतो दृष्टि विधातानुमात्ररूपं, भाषत प्रकाशस्वभावज्ञानामावस्वरूपं भवति ।  
 क्षेत्रलोक स्वरूमाह—

“ आगासस्त पपसा, उद् च अद् य विरियलो ए य ।

जाणाहि खेतलोयं, अणतक्षिणदक्षिय मम्म ॥ १ ॥ ” -

છાયા—માકાશસ્વ મદશા ઊર્ધ્વગમ્ય તિર્યગ્લોકે ચ ।

જાનીહિ ક્ષેત્રલોકમ્, અનંતજિનદક્ષિત સમ્યક્ ॥

શાંચક કારણાયાહ—‘ ચરિહંતેદિ ’ इत्यादि, अतीन्-ज्ञानावरणीय-दक्ष  
 नावरणीयमोहनीया वरायरूपाणि घातिकर्माणि घनत्व-नाशयन्तीति अरिहन्तस्तेषु,  
 अस्य निशब्धव्याख्या—मात्रद्रव्यद्रव्यस्य मस्तुतायां मुनितापिणी गीतायां विलोक  
 नीया । व्युत्थित्यमानेषु निर्वाण गच्छन्तु इति प्रथम कारणम् १, तथा भर त्पत्रत्वे परमे

ટીકાર્થ—ઊર્ધ્વલોક, અષોલોક ઓર તિર્યગ્લોક એ ત્રીન લોક, લોક શબ્દસે  
 યહાં ગૃહીત દ્રવ્ય દિ । દ્રવ્યાધકાર ઓર આયાધકારકે મેદસે દો પ્રકારકા  
 અધકાર હોતા હૈ, જિસસે દૃષ્ટિ જા વિધાત હોતા હૈ વહ દ્રવ્યાધકાર  
 હૈ । તથા પ્રકાશક સ્વભાવરૂપ જ્ઞાન કા જો અભાવ હૈ વહ આયાધકાર  
 હૈ, ક્ષેત્રલોકકા સ્વરૂપ હસ પ્રકાર સે કહા ગયા હૈ—‘ આગસસ્ત પપસા  
 ઇદુ ચ ’ इत्यादि । જ્ઞાનાવરણીય, વર્ધનાવરણીય, મોહનીય ઓર અન્ત  
 રાવરૂપ ચાર ઘાતિયા કમૈ જા જો નાશ કર લેતે હૈ એ અરિહન્ત હૈ ।  
 હસકી વિશેષ વ્યાખ્યા આશ્ચર્યક શૂદ્ર કી મુનિતાપિણી ટીકા મેં લેલની  
 જાહિયે । વ્યુત્થિત્યમાન શબ્દ કા અર્થ હૈ જપ ઘે નિર્વાણ જાને લગતે  
 હૈ પેસા । પૂર્વ શબ્દ સે યહાં ઉત્પાદપૂર્વ સે હેકર લોકવિન્દુસાર તક

ટીકા—લોક શબ્દથી ઉચ્ચલોક અષોલોક અને તિર્યગ્લોક અહીં પ્રદલ્ય કરાયા  
 છે અધકારતા બે લોક છે—(૧) દ્ર વા ધકાર અને (૨) આવા ધકાર. જેના  
 દ્વારા દૃષ્ટિનો વિધાત થાય છે, તેનું નામ દ્રવ્યા ધકાર છે, તથા પ્રકાશક સ્વભા  
 વરૂપ જ્ઞાનનો જે અભાવ છે તેનું નામ આવા ધકાર છે ક્ષેત્રલોકનું સ્વરૂપ આ  
 પ્રભાણે કહ્યું છે—‘ આગાસસ્ત પપસા ઇદુ ચ ’ ઇત્યાદિ—

જ્ઞાનાવરણીય, વર્ધનાવરણીય, મોહનીય અને અન્તરાય, આ ચાર ઘાતિયા  
 ક્રમિણી જેમણે ક્ષય કરી નાખ્યો છે, તેમને અર્હન્ત કહે છે આ પદની વિસ્તૃત  
 વ્યાખ્યા આવશ્યક સૂત્રની મુનિતાપિણી ટીકામાં આજવામાં આવેલ છે  
 ‘ વ્યુત્થિત્યમાન ’ એટલે “ ક્રમિણી ક્ષય કરીને નિર્વાણ માર્ગે વિચરતા ”

व्युच्छिद्यमाने तीर्थव्यवच्छेदकाले इत्यर्थः इति द्वितीयं कारणम् २, पूर्वाणि-  
 उत्पादादीनि लोकविन्दुसारपर्यन्तानि चतुर्दश, तेषु गतं-प्रविष्टं तदभ्यन्तरीभूतं  
 यच्छ्रुतं तत्पूर्वगतं दृष्टिवादान्तर्गतश्रुताधिकारविशेषः, तस्मिन् व्युच्छिद्यमाने  
 सतीति तृतीयं कारणम् ३ लोकान्धकार स्यादिति सरान्धः ।  
 अर्हदादिषु व्युच्छिद्यमानेषु कथं लोकान्धकारं स्या ? इति नाश  
 इनीयम्, राजमरणदेशनगरादि भङ्गे दिशां रजस्वलतया च दृश्यते जगति लोकान्-  
 न्धकारं, यत्पुनर्निखिलभुवनभूतमात्रानवद्यनयनसमानेषु ( त्रिलोकचक्षुः सदृशे  
 प्वित्यर्थः ) भगवदर्हदादिषु व्युच्छिद्यमानेषु लोकान्धकारं भवति तत्किमाश्चर्यमिति  
 । १ । त्रिभिः स्थानैर्लोकोद्योतः स्यात्-लोकत्रये प्रकाशो भवति, द्रव्यतो घटपटादि-  
 प्रकाशकरूपः, भावतो लोकत्रयेऽपि सुखोत्पादकहेतुरूपः । अर्हजन्म १-प्रव-

के चौदह पूर्व लिये गये हैं इन पूर्वी में प्रविष्ट जो श्रुत है वह पूर्वगत  
 श्रुत है । यह पूर्वगत श्रुत दृष्टिवाद के अन्तर्गत श्रुताधिकार विशेषरूप  
 है, " अर्हदादिकों के व्युच्छिद्यमान होने पर लोक में अन्धकार कैसे हो  
 सकता है " ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये । क्योंकि राजाके मरने  
 पर एवं देशभंग तथा नगर आदिके भङ्ग होने पर दिशाओं के घुमिल  
 रूप हो जाने से जब जगत में लोकान्धकार दिखलाई पड़ता है तो फिर  
 समस्त भुवनवर्ती लोकमात्र के निर्मल नयनों में जो समभावी दिखते  
 हैं ऐसे भगवान् अर्हत आदि के व्युच्छिद्यमान होनेपर लोकमें अंधकार  
 हो जावे तो इसमें आश्चर्य जैसी क्या बात है ? उद्योत शब्दका अर्थ-  
 प्रकाश है यह प्रकाश भी द्रव्य और भाव के भेद से दो प्रकार का है  
 घटपट आदिकों को प्रकाश देनेवाला जो होता है वह द्रव्यप्रकाश है-

'पूर्व' शब्दना प्रयोग द्वारा उत्पाद पूर्वशी लधने लोकविन्दुसार सुधीना  
 १४ पूर्व अर्हद्व्युच्छेदकाले ते पूर्वेभ्यो प्रविष्टं श्रुतं तेने पूर्वगत श्रुत  
 कहे छे. पूर्वगत श्रुत दृष्टिवादान् अन्तर्गत श्रुताधिकार रूप छे. " अर्हतादिडे  
 न्यारे निर्वाणु पथे विचरे छे, त्यारे लोकमां अन्धकार डेवी गीते थड शके  
 छे," आ प्रकारनी शंका अस्थाने छे, कारणु डे राज आदिनुं मृत्यु थतां  
 अने देश तथा नगरादिने नाश थतां त्यारे दिशाओमां धुंधणु वातावरणु  
 थड नवाथी ले नगतमां अन्धकार व्यापी जय छे, तो समस्त भुवनवर्ती  
 लोकाना निर्मल नयनोमां ले समभावी हेभाय छे, जेवा अर्हत भगवान्  
 आदिना निर्वाणु काले लोकमां अंधकार व्यापी जय, तेमां नवाथ पाभवा जेबु  
 शु छे ? उद्योत अटवे प्रकाश. ते प्रकाश पणु द्रव्य अने भावना लेहथी जे  
 प्रकारने कही छे. घट, पट आदि वस्तुओने प्रकाश आपनारी जे वस्तुओ



ટીકા—‘ વિહિ ઠાણેહિ ’ ઇત્યાદિ—પોદ્ગલુત્રી સુગમા । નવર-ત્રિમિઃ  
 સ્યનૈ-શરણૈ’ લોકે-ક્ષેત્રલોક-કર્માધસ્તિર્યગ્ રુપેઽઘશર સ્લોકાન્બકારં  
 દ્રુપ્તો દ્વિષ્ટિ ધિયાતાનુમાચરુપં, માષતા પ્રકાશકન્વમાવજ્ઞાનામાષસ્વરુપ મયતિ ।  
 ક્ષેત્રલોક સ્વરુપમાહ—

“ આગાસસ્ત પપ્સા, ઉદ્ઠ ષ ઘદે ય તિરિયલોપ ય ।

નાનાહિ સ્વેચ્છોય, અણત્ત્રિણદેસિય સન્મ ॥ ૧ ॥ ” -

છાયા—પ્રાકાશસ્ય પ્રદક્ષા કર્ણમયમ તિર્યગ્લોકે ચ ।

જાનીદિ ક્ષેત્રલોકમ્, અનન્તજિનદસિવ સમ્પકૃ ॥

સાચવ કારણાયાહ—‘ અરિહલેહિ ’ ઇત્યાદિ, યરીન્-જ્ઞાનાવરણીય-વર્ણ  
 નાવરણીયમોહનીયા તરાયરુપાધિ ધાતિકર્માગિ ઘનતિ-નાશપન્તીધિ અરિહન્તસ્તેપુ,  
 અસ્ય વિશેષવ્યાખ્યા-આવશ્યકપૂર્વસ્ય મત્કૃતાયાં મુનિતોપિણી ટીકાયાં ત્રિલોક  
 નીયા । મ્યુચ્છિચમાનેપુ નિર્ણય મચ્છત્સુ ડિવિ પ્રયન કારણમ્ ૧, તથા અદ્દમ્પત્તે પર્મે

ટીકાર્થ-ઉર્ધ્વલોક, અધોલોક ઓર તિર્યગ્લોક એ ત્રીન લોક, લોક શબ્દસે  
 યહાં મુદીત દુષ્ટ ઈં । દ્રુપ્યાઘશર ઓર આના ઘકારકે મેવસે કો પ્રકારકા  
 અઘકાર હોતા હૈ, જિસસે દ્વિષ્ટિ કા યિધાત હોતા હૈ ઘહ દ્રુપ્યાઘકાર  
 હૈ । તથા પ્રકાશક સ્વભાવરુપ જ્ઞાન કા ઓ અભાવ હૈ ઘદ્દ માષાઘકાર  
 હૈ, ક્ષેત્રલોકકા સ્વરુપ ઇસ પ્રકાર સે કદા ગયા હૈ-‘ આગાસસ્ત પપ્સા  
 વહું ષ ’ ઇત્યાદિ । જ્ઞાનાવરણીય, વર્ણનાવરણીય, મોહનીય ઓર અન્ત  
 રાયરુપ ચાર ધાતિયા કર્મે પા જો નાશ કર વેતે હૈ યે અરિહન્ત હૈ ।  
 ઇસકી વિશેષ વ્યાખ્યા આવશ્યક સૂત્ર કી મુનિતોપિણી ટીકા મેં વેમ્બની  
 ચાહિયે । મ્યુચ્છિચમાન શબ્દ કા અર્થ હૈ જપ યે નિયાણ જાને લગતે  
 હૈ પેસા । પૂર્વ શબ્દ સે ગર્હા વત્પાદપૂર્વ સે લેકર લોકમિન્દુસાર તક

ટીકાય-લોક શબ્દથી ઉર્ધ્વલોક અધોલોક અને તિર્યગ્લોક અર્થે પ્રયુક્ત કરાયા  
 છે અંબકારના બે ભેદ છે-(૧) દ્રુપ્યા ઘકાર અને (૨) ભાવા ઘકાર જેના  
 દ્વારા દ્વિષ્ટિના વિષાદ યાવ છે, તેનું નામ દ્રુપ્યા ઘકાર છે, તથા પ્રકાશક સ્વભા  
 વરુપ જ્ઞાનને જે અભાવ છે તેનું નામ ભાવા ઘકાર છે ક્ષેત્રલોકનું સ્વરુપ આ  
 પ્રભાવે કહ્યું છે-‘ આગાસસ્ત પપ્સા ઉદ્ઠ ષ ” ઈત્યાદિ—

જ્ઞાનાવરણીય, વર્ણનાવરણીય, મોહનીય અને અન્તરાય, આ ચાર ધાતિયા  
 કર્મેના જેમણે લખ કરી નાખ્યો છે, તેમને અર્હત કહે છે આ પદની વિસ્તૃત  
 વ્યાખ્યા આપસક સૂત્રની મુનિતોપિણી ટીકામાં આપવામાં આવેલ છે  
 “ મ્યુચ્છિચમાન ” એટલે “ કર્મેના લખ કરીને નિર્ણય માટે વિવરતા ”

मनुष्यलोकागमनं त्रिभिरेव पूर्वोक्तेः कारणै र्भवति, हव्यमिति शीघ्रम् । ८। देव-  
लोकस्य ब्रह्मलोकस्य अन्तः समीपं कृष्णराजीलक्षणं क्षेत्रनिवासो येषांते लोका-  
न्तिकाः, यद्वा-लोकान्ते-औदयिकभावलोकावसाने भवा अनन्तरभवे मुक्तिग-  
मनादिति लोकान्तिकाः सारस्वतादयः । एतेऽपिपूर्वो क्तैस्त्रिभिः स्थानैर्मनुष्यलोकं  
हव्यमागच्छन्ति । ९। एवं-पूर्वोक्तेनैवालापकेन सामानिकाः-इन्द्रसमानर्द्धयः १०,  
त्रायस्त्रिंशका महत्तरकल्पाः पूज्यादेवाः ११, लोकपालाः-सोमादयः पूर्वादिदिक्  
नियुक्तादेवाः १२, अग्रमहिष्यः-अग्रभूताः प्रधाना महिष्यः-भार्यादेवेन्द्रपट्टराश्य  
इत्यर्थः १३, परिपदुपपन्नकाः-परिवारोपपन्नका देवाः १३, अनीकाधिपतयः-

द्योत, देवसंनिपात, देवोत्कलिका-देवसमूह का एक जगह एकत्रित  
होना, देवकहकहक देवों का प्रमोदोत्पन्न कलकलशब्द, यह सब भी  
पूर्वोक्त तीन कारणों के होने पर होता है “हव्यम्” यह शीघ्र अर्थ का  
वाचक अव्यय है देवलोक और ब्रह्मलोक के पास कृष्णराजीरूप  
क्षेत्र जिनका निवास स्थान है वे लोकान्तिक हैं अथवा औदयिक भाव  
लोक के अवसान में जो हैं वे लोकान्तिक हैं क्यों कि अनन्तरभव में  
इनका मुक्ति में गमन अवश्यंभावी होता है । सारस्वत आदि इनके नाम  
हैं सामानिक देव-इन्द्र के जैसी ऋद्धि वाले देवों का नाम सामानिक  
देव है, महत्तरतुल्य जो देव पूज्य होते हैं वे त्रायस्त्रिंशक देव हैं पूर्वादि-  
दिशाओं में नियुक्त जो सोम आदि देव हैं वे लोकपाल हैं देवेन्द्रों  
की जो मुख्यदेवियां हैं वे अग्रमहिषियां हैं परिवारोपपन्नक जो देव हैं

देवोद्योत, देवसंनिपात (देवानुं पोताना देवलोकाभाथी नीकणवानुं),  
देवोत्कलिका देवाना समूहानुं ओक जग्याओ ओकत्र थवानुं, अने देवानुं  
भडभडाट डार्य, पणु उपयुंक्त (अडंत लगवाननो जन्म) आदि त्रणु  
कारणु ज थाय छे. “हव्यम्” आ पद शीघ्र अर्थनुं वाचक अव्यय छे  
देवलोका अने ब्रह्मलोकांनी पासै कृष्णराज्य क्षेत्र नामनुं निवासस्थान छे,  
तेमने दोकान्तिक कडे छे.

अथवा—औदयिक भावलोकांना अवसानमां जेओ छे, तेमने दोकान्तिक  
कडे छे, कारणु के अनन्तर लवमां (पधीना लवमां) तेओ थोडस मुक्ति  
पासे ज छे सारस्वत आदि तेमनां नाम छे इन्द्रना जेवी ऋद्धिवाणा जे  
देवो छे तेमने सामानिक देवो कडे छे शुरुस्थानीय जे देवो छे तेमने त्राय-  
स्त्रिंशक देवो कडे छे. पूर्वादि दिशाओमां नियुक्त जे सोम आदि देवो छे तेमने  
लोकपालो कडे छे. देवोन्द्रोनी सुभ्य देवीओने अग्रमहिषीओ कडे छे. परि-

उप २-ज्ञानोत्पादसमये ३ देवकृतमहोत्सवैर्लोकोद्योतो भवतीति । २। अथ दे  
 वाचकारसूत्रमाह- 'विहि' इत्यादि त्रिभिः स्यान्देशाचकारं स्यात् देवानां  
 भवनादियु वाचकार देवाचकार, उत्सुर्वोक्तकारणप्रथमैव भवति । ननु उपवेऽपि  
 लोकान्तराकारे किं पुनर्वेवाचकारसूत्रं देवानामपि लोकान्तर्गतत्वादेवेति चेदाह-  
 उत्सर्वेषाचकारव्याप्तिं प्रदर्शयति ३। तथा-देवोद्घातः-देवप्रकाश ४। देव  
 सन्निपातः-देवसमागमो भवति, सुवि देवसमसारात् । ५। 'पञ्च' इत्यादि,  
 एवम्-पूर्ववत् देवोत्कलिका-देवसमस्यस्यैकत्री गणनम् ६, देवकइकइक. देवानां  
 प्रमादोत्सवः कलकलम् । पूर्वोक्तैस्त्रिभिरेव कारणैर्जायन्त । ७। देवेन्द्राणां

तथा लोकत्रय में भी जा सुखोत्पादक का हेतुरूप होता है वह भावप्र  
 काश है अहंत प्रभु का जप जम होना है और जप वे प्रव्रज्या ग्रहण  
 करते हैं तथा उन्हें जप कैवल्य की प्राप्ति होती है, उस समय देवकृत  
 महोत्सवों द्वारा लोक में उद्योत होता है; देवों के भवनादिकों में जो  
 अन्वकार होता है वह देवाचकार है यह देवाचकार भी पूर्वोक्त कारण  
 त्रय से ही होता है ।

शका-जय आपने लोकाचकार का कथन कर दिया है तो फिर  
 स्वतंत्ररूप से देवाचकार के कहने की क्या आवश्यकता थी, क्यों कि  
 देव तो लोकान्तर्गत ही होते हैं ।

उत्तर-ऐसा जो कथन किया गया है सो अचकार की सर्वप्र  
 व्याप्ति हो जाती है इस पान को दिव्याने के लिये किया है की देवो

ॐ तेभ्यो प्रकाशने इत्यप्रकाश कहे ॐ परन्तु त्रये लोकमां सुप्र उपभवना  
 ने प्रकाश होय ॐ ते प्रकाशने भावप्रकाश कहे ॐ नेभके .....

अहंत प्रभुने न्यारे व म थाय ॐ, न्यारे तेजो प्रवचना अनीकार  
 कहे ॐ तथा न्यारे तेभ्यो देवगहाननी प्राप्ति थाय ॐ त्वारे देवकृत महोत्सवो  
 द्वारा लोकमां प्रकाश थाय ॐ आ प्रकाशना प्रकाशने भावप्रकाश कहे ॐ  
 देवोना भवनादिकमां ने अ प्रकार थाय ॐ तेनुं नाम देवाचकार ॐ अहंत  
 निवायु अदि पूर्वोक्त त्रय कारणोने बीपि ते देवाचकार थाय ॐ

शका-ले आपी लोकप्रकारनुं कथन करी दीधु ॐ तो देवाचकारना  
 स्वतंत्र कथननी शी आवश्यकता ॐ ? लोकमां व देवलोकोना पत्र समावेश थ  
 अतो दोषाधी सु अहंत कथन करी ॐ अ ?

उत्तर-अचकार सुत्र आपी अय ॐ जेम दर्शयवा म ॐ व आ  
 कथन करवामां आभुं ॐ

मनुष्यलोकगमनं त्रिभिरेव पूर्वोक्तैः कारणै र्भवति, इव्यमिति शीघ्रम् । ८। देव-  
लोकस्य ब्रह्मलोकस्य अन्तः समीपं कृष्णराजीलक्षणं क्षेत्रनिवासो येषांते लोका-  
न्तिकाः, यद्वा-लोकान्ते-औदयिकभावलोकान्तिकाने भवा अनन्तरभवे मुक्तिग-  
मनादिति लोकान्तिकाः सारस्वतादयः । एतेऽपिपूर्वो क्तैस्त्रिभिः स्थानैर्मनुष्यलोकं  
हव्यमागच्छन्ति । ९। एवं-पूर्वोक्तेनैवालापकेन सामानिकाः-इन्द्रसमानर्द्धयः १०,  
त्रायस्त्रिंशत् महात्तरकल्पाः पूज्यादेवाः ११, लोकपालाः-सोमादयः पूर्वादिदिक्  
नियुक्तादेवाः १२, अग्रमहिष्यः-अग्रभूताः प्रधाना महिष्यः-भार्यादेवेन्द्रपट्टराश्य  
इत्यर्थः १३, परिपदुपपन्नकाः-परिवारोपपन्नका देवाः १३, अनीकाधिपतयः-

द्योत, देवसंनिपात, देवोत्कलिका-देवसमूह का एक जगह एकत्रित  
होना, देवकहकहक देवों का प्रमोदोत्पन्न कलकलशब्द, यह सब भी  
पूर्वोक्त तीन कारणों के होने पर होता है “हव्यम्” यह शीघ्र अर्थ का  
वाचक अव्यय है देवलोक और ब्रह्मलोक के पास कृष्णराजीरूप  
क्षेत्र जिनका निवास स्थान है वे लोकान्तिक हैं अथवा औदयिक भाव  
लोक के अवसान में जो हैं वे लोकान्तिक हैं क्यों कि अनन्तरभव में  
इनका मुक्ति मेंगमन अवश्यभावी होता है । सारस्वत आदि इनके नाम  
हैं सामानिक देव-इन्द्र के जैसी ऋद्धि वाले देवों का नाम सामानिक  
देव है, महत्तरतुल्य जो देव पूज्य होते हैं वे त्रायस्त्रिंशत्क देव हैं पूर्वादि-  
दिशाओं में नियुक्त जो सोम आदि देव हैं वे लोकपाल हैं देवेन्द्रों  
की जो मुख्यदेवियां है वे अग्रमहिषियां हैं परिवारोपपन्नक जो देव हैं

देवोद्योत, देवसंनिपात ( देवोत्तुं पोताना देवलोकभाथी नीकणवानुं ),  
देवोत्कलिका देवोना समूहत्तुं अक जग्याअे अकत्र थवानुं, अने देवोनु  
अडभडाट हास्य, पणु उपयुक्त ( अर्द्धंत लगवाननो जन्म ) आदि त्रश्च  
कारणु ज थाय छे “ हव्यम् ” आ पद शीघ्र अर्थत्तुं वाचक अव्यय छे.  
देवलोक अने ब्रह्मलोकनी पासे कृष्णराश्य क्षेत्र नामत्तुं निवासस्थान छे,  
तेमने लोकान्तिक कडे छे.

अथवा-औदयिक लावलोकना अवसानमां जेओ छे, तेमने लोकान्तिक  
कडे छे, कारणु के अनन्तर लवमा ( पछीना लवमां ) तेओ योअस मुक्ति  
पासे ज छे सारस्वत आदि तेमनां नाम छे इन्द्रना जेवी ऋद्धिवाणा जे  
देवो छे तेमने सामानिक देवो कडे छे शुरुस्थानीय जे देवो छे तेमने त्राय-  
स्त्रिंशत्क देवो कडे छे पूर्वादि दिशाओमां नियुक्त जे सोम आदि देवो छे तेमने  
लोकपालो कडे छे. देवोन्द्रोनी सुभ्य देवीओने अग्रमहिषीओ कडे छे. परि-

गजादिसैन्याधिपतयो देवा १४, आत्मरक्षकाः—राजामिवाह्वररक्षा देवा मनुष्यलोकं ह्यपमागच्छन्तीति प्रतिघृत्रे सयोजनीयम् १५।

मनुष्यलोकगमने देवानां यानि भीणि कारणानि सन्ति ता-येव देवाभ्युत्था नोदीनां कारणानि सूत्रप्रत्ययेनाह—‘तीर्हि’ इत्यादि, सुगम, नवरं—भूम्युचि षन्ति—सिंहासनादुचिष्यन्ति । १। एष—पूर्वोक्तामिच्छापेन आसनानि—शक्रादीनां सिंहासनानि वदन्ति । २। सिंहनारवेलोत्सेषी प्रमोदकायौ कुर्वन्ति । ३। एभिरेव त्रिभिः स्यान्ते चैत्यवृद्धाः—देववृत्तविशेषावदन्ति । ५। सू० १३।

किमर्थं मद् त । शक्रादिदेवा मनुष्यलोकमागच्छन्ति ? अथाह—भर्माचार्य तथा महोपकारित्वात्सेवापर्यमागच्छन्ति, अशक्यपत्सुपकाराच्च भगवन्तो भर्माचार्याः इति सद्यष्टान्त मद्दर्शयन् सूत्रप्रयमाह—

मूलम्—तिष्ठ दुष्पट्टियार समणाउसो !, त जहा—अम्मा पिउणो १, भट्टिस्स, धम्मायरियस्स । सपाओवि य ण केइपु रिसे अम्मापियर सयपागसहस्सपागेहि तेछेहि अच्चभगेत्ता सुरभिणा गंधट्टण उव्वट्टित्ता सिद्धि उदगेहि मज्जावित्ता सव्वा

वे परिवपुपपन्नक देव है । गजादिसेना के अधिपति जो देव हैं वे अनी काधिपति देव हैं, राजाओं के अङ्गरक्षकों की तरह जो देव होते हैं वे आत्मरक्षक देव हैं । ये सब भी इन कारणों को लेकर मनुष्यलोक में शीघ्र आते हैं ऐसा कथन प्रत्येक सूत्र में लगाना चाहिये मनुष्यलोक में आने के जो ये कारण प्रकट किये गये हैं वे ही कारण देवाभ्युत्था नादि के भी हैं, यही बात सूत्रकार ने “तीर्हि” इत्यादि पांच सूत्रों द्वारा प्रकट की है ॥ सू० १३ ॥

वाशेषपन्नक के देवा ३ तेमने परिपट्टपन्नक देवा ३डे ३ गजदिसेना  
ओना अधिपति के देवा ३ तेमने अनीकाधिपति देवा ३डे ३, के देवा  
पालओना अजरक्षकेनी केम ईन्त्रीना अजरक्षके समान डाय ३, तेमने  
आत्मरक्षक देवा ३डे ३ आ जथा देवा पूर्वोक्त कारणेने तीपे मनुष्यलोकमा  
शीघ्र आवे ३, आ प्रकारेण कथन प्रत्येक सूत्रमा समल वेत्त के कारणे  
तेज्जे मनुष्यलोकमा आवे ३ ते कारणेने तीपे के तेज्जे पोतना सिद्धासन  
परमी छे ३, जउअउट दसे ३, इत्यादि बात सूत्रकारे “तीर्हि” इत्यादि  
पाच सूत्रे दारा प्रकट करी ३ ॥ सू० १३ ॥

लंकारविभूषियं करेत्ता मणुन्नं थालीपागसुद्धं अट्टारसवंजणाउलं  
 भोयणं भोयावेत्ता जावज्जीवं पिट्टिवडेंसियाए परिवहेज्जा तेणावि  
 तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडियारं भवइ, अहेणं से तं अम्मापि-  
 यरं केवलिपन्नत्ते धम्ममे आघवित्ता पन्नवित्ता परूवित्ता ठावित्ता  
 भवइ तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुप्पडियारं भवइ समणा  
 उसो ? ॥ १ ॥

केइ महच्चे दरिहं समुक्कसेज्जा, तएणं से दरिहे समुक्किडे  
 समाणे पच्छा पुरं च णं विउलभोगसम्मिइसन्नगए यावि  
 विहरेज्जा, तएणं से महच्चे अन्नया कयाइं दरिद्रीहूए समाणे  
 तस्स दरिदस्स अंतिए हवमागच्छेज्जा, तएणं से दरिहे तस्स  
 भट्टिस्स सव्वस्समवि दलयमाणे तेणावि तस्स दुप्पडियारं भवइ  
 अहे णं से तं भट्टिं केवलिपन्नत्ते धम्ममे आघवित्ता पन्नवित्ता परूवित्ता  
 ठावित्ता भवइ तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियारं भवइ ॥२॥

केइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एगं-  
 मवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म कालमासे कालं  
 किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने, तएणं से देवे तं  
 धम्मायरियं दुब्बिक्खाओ देसाओ सुभिव्वं देसं साहरेज्जा,  
 कंताराओ वा णिक्कंतारं करेज्जा, दीहकालिएणं वा रोगायं-  
 केणं अभिभूयं समाणं विमोएज्जा, तेणावि तस्स धम्मायरियस्स  
 दुप्पडियारं भवइ, अहे णं से तं धम्मायरियं केवलिपन्नत्ताओ  
 धम्माओ भट्टं समाणं भुज्जोवि केवलिपन्नत्ते धम्ममे आघवित्ता  
 पन्नवित्ता परूवित्ता ठावित्ता भवइ, तेणामेव तस्स धम्मायरि-  
 यस्स सुप्पडियारं भवइ ॥ सू० १४ ॥

ગમાદિસૈન્યાધિપત્યો દેવા ૧૪, આત્મરક્ષકાઃ-રાજામિનાહુરક્ષકા દેવા મનુષ્ય  
લોકે દૃશ્યમાગચ્છન્તીતિ મતિઘૃષ્ટે સયોજનીયમ્ ૧૫।

મનુષ્યલોકાગમને દેવાનાં યાત્રિ પ્રીણિ કારણાનિ સન્તિ તા-યેવ દેવામ્યુત્થા  
નાદીનાં કારણાનિ સૂત્રપચ્ચકેનાહ-‘તીર્હિ’ ઇત્યાદિ, સુગમ, નવર-અમ્યુષિ  
છન્તિ-સિંહાસનાદુષિછન્તિ ।૧। ૫૫-પૂર્વસ્કાભિલાષેન આસનાનિ-શક્રાદીનાં સિંહા  
સનાનિ ચલન્તિ ।૨। સિંહનાસ્વેલોત્ક્ષેપો પ્રમોદકાયૌ કુર્વતિ ।૩। ઈમિરેવ ત્રિમિઃ  
સ્થાનેઃ ચૈત્યદૃષ્ટાઃ-દેવદૃષ્ટરિશેપાઘલન્તિ ।૫। સુ૦ ૧૩।

કિમર્થ મદ-ત ! શક્રાદિદેવા મનુષ્યલોકમાગચ્છન્તિ ? અમાહ-પર્માચાર્ય  
તયા મહોપકારિત્વાત્સેવાર્ચયમાગચ્છન્તિ, અચક્યમત્યુપકારાથ મગવન્તો પર્મા  
ચાર્યાઃ ઇતિ સદ્દાન્ત મદર્શયન્ સૂત્રત્રયમાહ-

મૂઝ્મ-—તિણ્હ વુપ્પહિયાર સમણાઠસો !, ત જહા-અમ્મા  
પિઝ્ણો ૧, મદ્દિસ્સ, ધમ્માયરિયસ્સ । સપામોષિ ય ણ કેહ્પુ  
રિસે અમ્માપિયર સયપાગસહસ્સપાગેહિ તેહ્હેહિ અઠ્ઠમ્હેત્તા  
સુરભિણા મંઘદ્દણ્ણ ડવ્વદ્દિત્તા તિહિ ડદગેહિ મજ્ઝાવિત્તા સઠ્ઠા

યે પરિવદ્ધુપપલ્લક દેવ હૈ । ગજાદિસેના કે અધિપતિ જો દેવ હૈ યે અની  
કાધિપતિ દેવ હૈ, રાજાઓ કે અક્ષરક્ષકોં કી તરહ જો દેવ હોતે હૈ તે  
આત્મરક્ષક દેવ હૈ । યે સય મી હન કારણોં કો હેકર મનુષ્યલોક મેં  
શીઘ આતે હૈ યેસા કપન પ્રત્યેક સૂત્ર મેં લગાના ચાહિયે મનુષ્યલોક  
મેં આને કે જો યે કારણ પ્રકટ કિયે ગયે હૈ યે હી કારણ દેવામ્યુત્થા  
નાદિ કે મી હૈ, યદી યાત્ર સૂત્રકાર ને “તીર્હિ” ઇત્યાદિ પાંચ સૂત્રોં  
દ્વારા પ્રકટ કી હૈ ॥ સુ૦ ૧૩ ॥

વાર્યપવન્તઃ કે દેવો છે તેમને પરિવદ્ધુપવન્તઃ દેવો કહે છે અમાદિ સેના  
ઓના અધિપતિ ને દેવો છે તેમને અનીકાધિપતિ દેવો કહે છે, કે દેવો  
રાજાઓના અક્ષરક્ષકોની જેમ ઈન્દ્રોના અક્ષરક્ષકો સમાન હોય છે, તેમને  
આત્મરક્ષક દેવો કહે છે આ અર્થાં દેવો પૂર્વોન્ત કારણેને કીપ મનુષ્યલોકમાં  
શીઘ આવે છે, આ પ્રકારે કપન પ્રત્યેક સૂત્રમાં સમજાવેલું કે કારણે  
તેઓ મનુષ્યલોકમાં આવે છે તે કારણેને કીપ તેઓ યાત્રના સિદ્ધાન્ત  
પરથી કહે છે, ખરખાર હસે છે ઇત્યાદિ યાત્ર સૂત્રકારે ‘તીર્હિ’ ઇત્યાદિ  
પાંચ સૂત્રો દ્વારા પ્રકટ કરી છે ॥ સુ ૧૩ ॥

लंकारविभूसियं करेत्ता मणुन्नं थालीपागसुद्धं अट्टारसवंजणाउल्लं  
 भोयणं भोयावेत्ता जावज्जीवं पिट्टिवडेंसियाए परिवहेज्जा तेणावि-  
 तस्स अम्मापिउस्स दुप्पडियारं भवइ, अहेणं से तं अम्मापि-  
 यरं केवल्लिपन्नत्ते धम्ममे आघवित्ता पन्नवित्ता परूवित्ता ठाविता  
 भवइ तेणामेव तस्स अम्मापिउस्स सुप्पडियारं भवइ समणा  
 उसो ? ॥ १ ॥

केइ महच्चे दरिहं समुक्कसेज्जा, तएणं से दरिहे समुक्किट्ठे  
 समाणे पच्छा पुरं च णं विउलभोगसम्मिइसमन्नागए यावि  
 विहरेज्जा, तएणं से महच्चे अन्नया कयाइं दरिद्वीहूए समाणे  
 तस्स दरिइस्स अंतिए हवभागच्छेज्जा, तएणं से दरिहे तस्स  
 भट्टिस्स सव्वस्समवि दलयमाणे तेणावि तस्स दुप्पडियारं भवइ  
 अहे णं से तं भट्टिं केवल्लिपन्नत्ते धम्ममे आघवित्ता पन्नवित्ता परूवित्ता  
 ठाविता भवइ तेणामेव तस्स भट्टिस्स सुप्पडियारं भवइ ॥२॥

केइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतिए एग-  
 मवि आरियं धम्मियं सुवयणं सोच्चा निसम्म कालमासे कालं  
 किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने, तएणं से देवे तं  
 धम्मायरियं दुब्भिव्खाओ देसाओ सुभिव्खं देसं साहरेज्जा,  
 कंताराओ वा णिकंतारं करेज्जा, दीहकालिएणं वा रोगायं-  
 केणं अभिभूयं समाणं विमोएज्जा, तेणावि तस्स धम्मायरियस्स  
 दुप्पडियारं भवइ, अहे णं से तं धम्मायरियं केवल्लिपन्नत्ताओ  
 धम्माओ भट्टं समाणं भुज्जोवि केवल्लिपन्नत्ते धम्ममे आघवित्ता  
 पन्नवित्ता परूवित्ता ठाविता भवइ, तेणामेव तस्स धम्मायरि-  
 यस्स सुपडियारं भवइ ॥ सू० १४ ॥



छाया—श्रयाणां दुष्प्रतिकारं धमणायुष्मन् । तद्यथा—अम्बापितुः १, मर्तुः २, धर्माचार्यस्य ३। समांतरपि च खलु कोऽपि पुरुष अम्बापितरं श्रतपाक सख्यपाकेस्तैरभ्यज्य सुरमिणा गघाटकन उदस्य त्रिमिरदकैर्मज्जपित्वा सषौल झारविभूषित कृत्वा मनाह स्याम्बीपाकगुदम् अष्टादशव्यञ्जनाकुलं मोजनं मोज यित्वा याषज्जीव पृष्टपत्रतंसिकायां परिवहेत्, तेनापि तस्य-अम्बापितृदुष्प्रतिकारं भवति, अथ खलु स तम् अम्बापितरं केषलिप्रहृष्टे घर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य मरुप्य स्यापयिता भवति तेनैव तस्याम्बापितु सुप्रतिकारं भवति धमणायुष्मन् ? १। कोऽपि महार्थः दरिद्रं समुत्कर्षयेत्, ततः खलु स दरिद्रः समुत्कृष्टः [सन्] पश्चात् पुरा च खलु विपुलमोगसमितिसमन्वागतमापि विहरेत्, ततः खलु स महार्थं अन्यदा कदाचित् दरिद्रीभूतः सन् तस्य दरिद्रस्यान्तिके इत्यमागच्छेत्, ततः खलु स दरिद्रस्तस्मै मर्त्रं सर्वस्वमपि ददत् तेनापि तस्य दुष्प्रतिकारं भवति । अथ खलु स त मर्तारं केषलिप्रहृष्टे घर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य मरुप्य स्यापयिता भवति तेनैव तस्य मर्तुः सुप्रतिकारं भवति २।

कोऽपि तयारूपस्य धमणस्य वा माह्नस्य वाऽऽजिके एकमपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा निश्चम्य काश्चमासे कालं कृत्वाऽन्यतमेपु देवसोऽकेषु देवतया उप पन्न, ततः खलु स देवस्त धर्माचार्यं दुर्मिणाद् दशत् सुमिध दधं सखरेत्, कान्तारात् वा निष्कान्तारं कुर्यात्, दीर्घकालिकेन वा रोगावहनेन अभिमूर्तं सन्त विमोघयेत्, तेनापि तस्य धर्माचार्यस्य दुष्प्रतिकारं भवति, अथ खलु स त धर्माचार्यं केषलिप्रहृष्टात्, धर्माद् भ्रष्टं सन्तं मूयोऽपि केषलिप्रहृष्टे घर्मे आख्याय प्रज्ञाप्य मरुप्य स्यापयिता भवति तेनैव तस्य धर्माचार्यस्य सुप्रतिकारं भवति । ३ । ॥ सू० १४ ॥

हे भदन्त ! शक्रादि देव मनुष्यलोक में क्यों आते हैं ? तो इसका उत्तर ऐसा है कि धर्माचार्यरूप होने से भगवान् समस्त जीवों का बहुत बड़ा उपकारक होते हैं इसलिये वे उनकी सेवादि करने के निमित्त से आते हैं । भगवान् धर्माचार्य अशक्य प्रत्युपकारवाले होते हैं सो अब इसी बात को सूत्रकार दृष्टान्तसहित प्रकट करते हुए तीन सूत्रों से कहते हैं—' तिण्डु दुष्प्रचियोरं समणाजसो ' इत्यादि ।

प्रश्न—हे भदन्त ! शक्रादि देवो मनुष्यलोकमें आते आते हैं ?

उत्तर—धर्माचार्य रूप देवाधी अर्थात् भगवानो समस्त जीवोना बड़ा उपकारक होय ते तेनी तेमनी सेवादि करवाने भाडे तेको आवे छे । तेमना उपकारने भाडे वाणी शक्य तेम नथी । तेथी तेमने अशक्य प्रत्युपकारवाण भव्यां छे तेमना उपकारने भाडे वाणी आपनोत काम हेतुं जपु अशक्य छे ते सूत्रादे नीचेनी सूत्रो द्वारा द्वायत उचित प्रकट हुनु छे—

सूत्रार्थ—हे श्रमणायुष्मन् ! इन तीनका प्रत्युपकार करना अशक्य है, एक माता पिता का, दूसरे भर्त्ता-पोषक का और तीसरे धर्माचार्य का, कोई सुपुत्र अपने मातापिता की प्रातः होते ही शतपाक, सहस्रपाक तैलों से मालिश कर सुगंधित गंधचूर्ण से उनका उबटन कर गंधोदक से, उष्णउदक से, और शीत उदक से उन्हें स्नान कराकर फिर सर्वा लङ्कारों से विभूषित कर मनोज्ञ, तथा स्थालीपाक से शुद्ध एवं अठारह प्रकार के व्यंजन से युक्त ऐसे भोजन जिमा कर जीवनपर्यन्त अपने कंधों पर रख कर फिरता है तो भी वह अपने मातापिताके ऋण से उक्लण नहीं हो सकता है। अर्थात् उनके कृत उपकारों का बदला वह नहीं चुका सकता है. यदि वह अपने मातापिता को केवलि प्रज्ञप्त धर्म कहकर अच्छी तरह से उसे समझा कर और प्ररूपित कर स्थापित कर देता है तो अवश्य ही वह उनके उपकार का बदला चुकाना है। अच्छी तरह से उनका प्रत्युपकार करता है, इसी तरह यदि कोई ऐश्वर्यगानी मनुष्य किसी दरिद्र पुरुष को धनादिप्रदानद्वारा उत्कृष्ट बना देता है और वह उस दाताके परोक्ष में या समक्षमें विपुल भोगों को भोगने लग जाता है, अब दाता भाग्यवशात् किसी समय दुर्भाग्य के चक्करमें

“ तिण्हं दुप्पडियार समणाउसो ” धत्त्यादि—

सूत्रार्थ—हे श्रमणायुष्मन् ! आ त्रणुना उपकारेना षड्वेदा वाणवानुं काम अशक्य गणाय छे—(१) मातापितानो, (२) भर्त्तानो ( पोषकनो ) अने (३) धर्माचार्याना धारो के कोछ सुपुत्र पोताना मातापितानां अ गाने दररो ज प्रातःकाणे शतपाक अने सहस्रपाक तैलो वडे मालिश करे, पछी सुगंधिहार गंधचूर्ण वडे तेमना शरीरनुं उवटन करे ( शरीरने चोणे ), पछी गरम अने ठंडा पाणीथी तेमने स्नान करावे, पछी सधणा अलंकारोथी विभूषित करीने तेमने मनोज्ञ तथा शुद्ध उर प्रकारना आहार अने १८ प्रकारना व्यंजनोथी युक्त लोअन जमाडे अने लवन पर्यन्त पोताना अभापर लधने कर्या करे, तो पणु ते माता पिताना ऋणुने इडी शकतो नथी, अेटवे के तेमना उपकारेना षड्वेदा वाणी शकतो नथी. जे ते तेमने केवलिप्रज्ञप्त धर्म कडे, ते धर्मनुं प्रतिपादन करे, ते धर्मनी तेमनी पासे प्रश्णु करीने तेमने ते धर्म तरई वाणी वे—ते धर्मना उपासक बनावी हे, तो ज तेमना उपकारेना षड्वेदा ते चुकवी शके छे, आ अधु कश्वाथी ज ते मातापितानुं ऋणु इडी शके छे.

अज प्रमाणे धारो के कोछ ऐश्वर्यसंपन्न मनुष्य कोछ दरिद्र आदमीने धन वगैरानी मदद करीने तेनी उन्नति करी नाये छे. धारो के ते दातानुं नसीज

छाया—प्रयाणां दुष्प्रतिकारं धमणायुष्मन् । तद्यथा—अम्बापितुः १, मर्षुः २, धर्माचार्यस्य ३। संघातरवि च खलु कोऽपि पुरुष अम्बापितरं छतपाक सहस्रपाकेस्त्रैलैरभ्यग्य सुरभिणा गण्पाटकेन उद्वर्त्य त्रिभिकरकैर्मज्जपित्वा सर्वालं हारनिभूषित कृत्वा मनोह्रं स्यात्कीपाकशुद्धम् अष्टादशज्यम्जनाकुल भोजनं भोजयित्वा यावज्जीवं पृष्णचरतंसिकायां परिवर्द्धत, तेनापि तस्य-अम्बापितुर्दुष्प्रतिकारं भवति, अथ खलु स तम् अम्बापितरं केवलप्रहृष्टे धर्मे आश्रयाय प्रज्ञाप्य मरुष्य स्यापयिता भवति तेनैव तस्याम्बापितुः सुप्रतिकारं भवति धमणायुष्मन् । १। कोऽपि महार्चः दरिद्रं समुत्कर्षयेत्, तत खलु स दरिद्रं समुत्कृष्ट [सन्] पश्चात् पुरा च खलु त्रिपुल्लमोगसमिति स मन्वागतभापि विहरेत्, ततः खलु स महार्चं अन्यथा कदाचित् दरिद्रीभूतं सन् तस्य दरिद्रस्यान्तिके इष्यमाणन्ध्रेत्, ततः खलु स दरिद्रस्वस्मै मर्षं सर्वस्वमपि ददत् तेनापि तस्य दुष्प्रतिकारं भवति । अथ खलु स तं भर्षारं केवलप्रहृष्टे धर्मे आश्रयाय प्रज्ञाप्य मरुष्य स्यापयिता भवति तेनैव तस्य मर्षुः सुप्रतिकारं भवति २।

कोऽपि तया रूपस्य धमणस्य वा माह्नस्य घाऽऽजिके एकमपि आर्यं धार्मिकं सुवचनं श्रुत्वा निश्चम्य काष्ठमासे कालं कृत्वाऽऽपतयेषु दंश्लोकपु दशतया उपपन्नः, ततः खलु स देवस्तु धर्माचार्यं दुर्मिताद् देशात् सुमिषं देशं सङ्गरेत्, कान्तारात् वा निष्कान्तारं कुर्यात्, दीर्घकालिकेन वा रोगातङ्केन अभिमूढसन्तं विमोघयेत्, तेनापि तस्य धर्माचार्यस्य दुष्प्रतिकारं भवति, अथ खलु स तं धर्माचार्यं केवलप्रहृष्टात्, धर्मात् भ्रष्टं सन्तं भूयोऽपि केवलप्रहृष्टे धर्मे आश्रयाय प्रज्ञाप्य मरुष्य स्यापयिता भवति तेनैव तस्य धर्माचार्यस्य सुप्रतिकारं भवति । ३। ॥ सू० १४ ॥

हे भदन्त ! शकादि देव मनुष्यलोक में क्यों आते हैं ? तो इसका उत्तर ऐसा है कि धर्माचार्यरूप होने से भगवान् समस्त जीवों का बहुत बड़ा उपकारक होते हैं इसलिये वे उनकी सेवादि करने के निमित्त से आते हैं । भगवान् धर्माचार्य अशक्य प्रत्युपकारवाले होते हैं सो अब इसी बात को सूत्रकार दृष्टान्तमद्वित प्रकट करते हुए तीन सूत्रों से कहते हैं—' तिष्ठ दुष्प्रतिकारं समणाश्चसो ' इत्यादि ।

प्रश्न—हे भगवन् ! शकादि देवो मनुष्यलोकमां शा भाटे आवे छ ?

उत्तर—धर्माचार्य रूप होवाधी अर्द्धत समवानो समस्त जिवाना बन्दा

उपकारक होय छ, तेधी तेमनी सेवादि करवाने भाटे तेज्यो आवे छ. तेमना

उपकारने जखे वाणी शक्य तेम नथी. तेधी तेमने अशक्य प्रत्युपकारवाले

हवां छ तेमना उपकारने जखे वाणी आपवानु शक्य हेतुं ज्यु अशक्य

छ ते सूत्रारे नीबेनां सूत्रे द्वारा द्वात शकित प्रकट करुं छ—

टीका—' तिष्ठ ' इत्यादि । भगवानाह—हे श्रमणायुष्मन् । हे आयुष्मन् श्रमण । इति कोमलायन्त्रणम् । त्रयाणामनुपदं वक्ष्यमाणानां दुष्प्रतिकरं-दुः-दुःखेन प्रतिक्रियते कृतोपकारेण पुंसां प्रत्याक्रियत इति दुष्प्रतिकरं-प्रत्युपकर्तुं मशक्यमित्यर्थः भवति । तदेवाह-अम्बापितुः-मातापित्रोरित्यर्थः १, भर्तुः-पोषकस्य २, धर्माचार्यस्य धर्मगुरोः धर्मदातुः धर्मसहायकस्येत्यर्थः ।

देश में ले आता है, अथवा जब वह धर्माचार्य किसी गहन कान्तार में फंस जाता है तो वह उसे उस कान्तार जंगलसे बाहर निकाल लेता है, अथवा वह धर्माचार्य जब किसी रोगातंक से अभिभूत हो जाता है तो वह उसे उस रोगातंक से अपनी प्रबल शक्तिसे मुक्त करा देता है । तब भी वह ऐसी हालतमें उसका प्रत्युपकारक नहीं हो सकता है, किसी कारणवश यदि वह धर्माचार्य केवल प्रज्ञप्त धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है और वह उसे उस केवल प्रज्ञप्त धर्म को कह कर, प्रज्ञापित कर और प्ररूपित कर पुनः स्थापित कर देता है तो इस से वह उस धर्माचार्यका प्रत्युपकार कर्त्ता हो जाता है ।

टीकार्थ-इस सूत्रका भावार्थ ऐसा है-प्रभु कहते हैं हे आयुष्मन् श्रमण ! इन तीन जनोका का प्रत्युपकार करना जीव के लिये बड़ा मुश्किल से भरा हुआ काम है । अर्थात् इनका प्रत्युपकार करना बहुत भारी कठिन है, यही बात यहां सूत्रकारने दृष्टान्त देकर समझाई है वे तीन ये हैं-माता पिता पोषक जन और गुरु धर्म देनेवाले, धर्म में सहायक होने-

ते धर्माचार्यं कोष्ठं गहनं वनमा भागं भूलीने अट्वाय छे, तो ते तेमने ते गहनं वनमाथी अडार लछं न्य छे, अथवा-न्यारे ते धर्माचार्यं कोष्ठं सयं कर रोगथी पीडाता डोय त्यारे ते चोतानी प्रणज शक्तिथी तेमने ते रोग इर करी नापे छे, आटवा आटवां उपकारे करवा छतां पशु ते देव तेमनुं ऋषु इडी शकवाने सभयं थतो नथी. परन्तु कोष्ठं पशु कारणे ते धर्माचार्यं केवलिप्रज्ञप्त धर्मथी अष्ट थछं न्य अने त्यारे ते देव जे तेने केवलिप्रज्ञप्त धर्म कडीने, ते ते धर्मनी प्रज्ञापना अने प्रपणुा करीने, ते धर्माचार्यने इरीथी केवलिप्रज्ञप्त धर्ममां स्थापित करी दे तो ज ते धर्माचार्यना उपकारनेो अद्वैता वाणी शके छे.

टीकार्थ-आ सूत्रनेो भावार्थ नीचे प्रमाणे छे-प्रभु कडे छे के छे आयुष्मन् श्रमणु । आ त्रषु उपकार कर्त्ताओनेो उपकारनेो अद्वैता वाणवानुं काम धणुं मुश्केल गणुाय छे. सूत्रकारे जे ज वातने त्रषु दृष्टान्तेो द्वारा प्रकट करी छे. (१) मातापिता, (२) पोषणकर्त्ता अने (३) धर्ममां सहायक थनारा धर्माचार्यो,

आ जाता है और विल्कुल दरिद्र हो जाता है, इस तरह से सर्वथा दरिद्र बनी हुई अवस्था में वह अपने द्वारा घनी बनाये गये उस पुरुष के समीप आ जाता है और यह पुरुष अपने इस उपकार कर्त्ता के लिये यदि अपना सघस्य भी अर्पण कर देता है, तो ऐसी स्थिति में भी वह अपने उपकार करने वाले उस मनुष्य के ऋण से उन्मुक्त नहीं हो सकता है अर्थात् उसके उपकार का बदला नहीं चुका सकता है, यदि वह उसे केवलप्रसन्न धर्म की छत्रछाया में उसका फयन करके, उसे समझा करके और उसकी प्ररूपणा करके पहुँचा देता है—स्थापित कर देता है तो अवश्य ही वह उस अपने स्वामी का प्रत्युपकारक हो जाता है। इसी तरह कोई भग्य तपारूप घारी अमण अथवा माहण के पास एक भी आर्य धार्मिक बचन का पान कर और उस पर अच्छी तरह से विचार कर काल मास में काल करता है और कालकर वह किसी एक देवलोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हो जाता है अथ वह धर्माचार्य किसी बुद्धिवाले देश में विहार करता २ आ जाता है जहाँ भिक्षा की प्राप्ति उसे सर्वथा असंभव जैसी हो जाती है ऐसी स्थिति देखकर वह दब उस धर्माचार्य को अपनी देवशक्ति के प्रभाव से सुनिश्चित

पहटाये छे, कभनसीछि ते दरिद्रावस्थाभां आवी नय छे त्वारमाह ते पीतानी भइसी बननने जनेछा ते भयसनी पासे नय छे धारे छे ते भावस पीताना उपर उपकार करनार ते भावसने पीतानु सर्वस्व धन आवी छे छे आभ कस्या छतां यक्षु ते तेना उपकारने, जइछे वाणी शक्ते नथी, परन्तु जे ते तेनी समक्ष केजिप्रसन्न धर्मनु कबन करीने, तेने केजिप्रसन्न धर्म समझवीने, ते धमनी तेनी पासे प्ररूपणा करीने तेने ते धमने आराधक बनवी छे ते तेना उपकारने जइछे अवस्थ वाणी शक्ते छे

जेअ प्रभावे डोर्ध नय तमारुपधारी समक्ष अवस्था भाइवनी पासे जेके पक्ष आवे धार्मिक वचननु शरयु करीने जने तेना पर सारी श्रुते विचार करीने—तेमना द्वारा उपदिष्ट भावे आलीने किलने अवसर आवे कालधर्म पाणीने डोर्ध भावस जेध जेके देवलोकाभां देवनी पर्याये उत्पन्न भई नय छे, छे धारे छे ते धर्माचार्य जेध जेवा देशमां जेध जेके छे ते जेध तेमने बुद्धि ( बुधण ) ने शरयु उपकार प्राप्ति करवातु सवया जसकवित यध नय छे आ परिस्थिति जेधने ते देव ते धर्माचार्यने पीतानी देव शक्तितना अभावधी जेध सुनिश्चित ( सुधण ) देशमां लई नय छे, नयवा जे

टीका—‘ तिष्ठ ’ इत्यादि । भगवानाह—हे श्रमणायुष्मन् । हे आयुष्मन् श्रमण ! इति कोमलामन्त्रणम् । त्रयाणामनुपदं वक्ष्यमाणानां दुष्प्रतिकर-दुः-दुःखेन प्रतिक्रियते कृतोपकारेण पुंसां प्रत्याक्रियत इति दुष्प्रतिकरं-प्रत्युपकर्तुं मशक्यमित्यर्थः भवति । तदेवाह-अम्वापितुः-मातापित्रोरित्यर्थः १, भर्तुः-पोषकस्य २, धर्माचार्यस्य धर्मगुरोः धर्मदातुः धर्मसहायकस्येत्यर्थः ।

देश में ले आता है, अथवा जब वह धर्माचार्य किसी गहन कान्तार में फंस जाना है तो वह उसे उस कान्तार जंगलसे बाहर निकाल लेता है, अथवा वह धर्माचार्य जब किसी रोगांतक से अभिभूत हो जाना है तो वह उसे उस रोगांतक से अपनी प्रबल शक्तिसे मुक्त करा देता है । तब भी वह ऐसी हालतमें उसका प्रत्युपकारक नहीं हो सकता है, किसी कारणवश यदि वह धर्माचार्य केवल प्रज्ञप्त धर्मसे भ्रष्ट हो जाना है और वह उसे उस केवल प्रज्ञप्त धर्म को कह कर, प्रज्ञापित कर और प्ररूपित कर पुनः स्थापित कर देता है तो इस से वह उस धर्माचार्यका प्रत्युपकार कर्त्ता हो जाता है ।

टीकार्थ—इस सूत्रका भावार्थ ऐसा है—प्रभु कहते हैं हे आयुष्मन् श्रमण ! इन तीन जनोंका का प्रत्युपकार करना जीव के लिये बड़ा मुश्किल से भरा हुआ काम है । अर्थात् इनका प्रत्युपकार करना बहुत भारी कठिन है, यही बात यहां सूत्रकारने दृष्टान्त देकर समझाई है वे तीन ये हैं—माता पिता पोषक जन और गुरु धर्म देनेवाले, धर्म में सहायक होने-

ते धर्माचार्यं कौष्ठं गहनं वनमा भागं भूलीने अट्वाय छे, तो ते तेमने ते गहन वनमांथी ञ्छार लछं लय छे, अथवा-ल्यारे ते धर्माचार्यं कौष्ठं लयं कर रोगथी पीडाता छेय त्यारे ते पोतानी प्रणण शक्तिथी तेमने ते रोग दर करी नाछे छे. आट्वा आट्वां उपकारे करवा छतां पणु ते देव तेमनुं ऋणु देडी शकवाने समथं थतो नथी परन्तु कौष्ठं पणु कारणु ते धर्माचार्यं केवलिप्रज्ञप्त धर्मंथी प्रष्ट थछं लय अने त्यारे ते देव जे तेने केवलिप्रज्ञप्त धर्मं कडीने, ते ते धर्मनी प्रज्ञापना अने प्रज्ञपणु करीने, ते धर्माचार्यने करीथी केवलिप्रज्ञप्त धर्मंमां स्थापित करी हे तो ज ते धर्माचार्यना उपकारने अद्वेो वाणी शके छे.

टीकार्थ—आ सूत्रनेो भावार्थ नीचे प्रमाछे छे—प्रभु कडे छे के छे आयुष्मन् श्रमण ! आ त्रणु उपकार कर्त्ताओनेो उपकारनेो अद्वेो वाणवानुं काम धणु सुशकैल गणुय छे. सूत्रकारे जे ज वातने त्रणु दृष्टान्तेो द्वारा प्रकट करी छे. (१) मातापिता, (२) पोषणुकर्त्ता अने (३) धर्मंमां सहायक थनारा धर्माचार्यो,

उक्तं च—“ दुष्पट्टियात् माया पियरो सामी गुरु य लोपत्य ।

तस्य गुरु दुष्लोप अद्गुकरतरणीयारो ॥१॥ इति ।

छाया—दुष्पट्टिकारो मातापितरौ स्वामी गुरुश्च लोकेऽत्र ।

तत्र गुरु द्वंपलोके—मति दुष्करतरमतीकारः ॥१॥

तत्र प्रथम मातापित्रोर्दुष्पट्टिकरतां प्रदर्शयति—कोऽपि पुरुषः=सुपुत्र इत्यर्थः ।  
अम्बापितरम्—अम्बया—माया सदितं पितरं मातापितराभित्यर्थः, सपातरपि-स-  
सम्पक् मातः सगतः—अरुमोक्षसमकालमेवेत्यर्थः अम्बापितरं—स्वजननीजनक  
शतशाकसहस्रपाकतैलैः सम्पग्न्य—तैलाभ्यङ्ग शरीरसंवाहनं कृत्वा सुरमिणा—सुग-  
न्धियुक्तन गन्धाङ्गकेन गन्धपूर्णोत्त उद्गर्ष्य—उद्गर्षणं ‘ उचटना ’ इति प्रसिद्ध इत्या  
पुनस्त्रिमिरुदकैः—गन्धोदकेन उष्णोदकेन शीतोदकेन च मञ्जयित्वा—स्वहस्तेन  
स्नपयित्वा तथा सर्वाङ्गकारविभूषित कृत्वा पश्चात् मनोह—सुस्वादुकं स्यामीपाक  
शुद्ध—पाकपात्रे सुसिद्ध विनाशाकपात्रेण केवलाग्निना पाको न मुनिष्पन्नो  
भवतीति विशेषणमेतत् । पुनः कीदृशमित्याह—‘ अद्गुकरस० ’ इत्यादि, अष्टादश  
व्यञ्जनानि रसपठमकवस्तुनि सूपादीनि, अष्टादशव्यञ्जनानि यथा—

वाछे, ऐसे धर्मगुरु के यहा धर्माचार्य कहा गया है । कहा भी है—  
‘ दुष्पट्टियारा मायापियरो ’ इत्यादि ।

माता पिता के प्रत्युपकार करने के पाठ में जो मनोज्ञ विशेषण  
भाहारका आया है उसका तात्पर्य सुस्वादु भोजन से है । स्थालीपाक  
शब्द से यह प्रकट किया गया है कि पाकपात्रमें पकाया गया भोजन  
अच्छी तरह से पक जाता है, विना पाक पात्रके केवल अग्निसे निष्पन्न  
भोजन मुनिष्पन्न नहीं होता है जिन अठारह प्रकार के व्यञ्जनों से यह  
भोजन सहित होता है उनके नाम इस प्रकार से हैं यहाँ व्यंजन शब्द

आ त्रयेना उपहार अटवो अपि डोष छे के तेमनेः अटवो वाजवानु कायं  
दुःखर धर्ष च्छे छे अर्धु नक्ष छे के—“ दुष्पट्टियारा मायापियरो ” इत्यादि ।  
मातापिताना उपहारने अटवो वाजवाना कथनमा आदाएनी साथे ने  
मनोज्ञ विशेषण चरशक्तुं छे, तेना दाश सुस्वादु कोजन सुखित कथयुं छे  
‘ स्थालीपाक ’ शब्द द्वारा जे बात प्रकट करवायां आवी छे के पाकपात्रमां  
पकाववायां आवेतुं कोजन सारी रीते पात्री ( रघाड ) अथ छे, पाकपात्रने  
उपयोग कथां विना मात्र अग्निथी तैवार धयेतुं कोजन मुनिष्पन्न ( सारी रीते  
तैवार धयेतुं ) डोतुं नथी ते कोजननी साथे ने १- प्रकारना व्यञ्जने  
धीरसवा ॥ बात करी छे, ते व्यञ्जनानां नाम नीचे आपवायां आयां छे

“ सूओ १ निट्टनं २ चिय, करव ३ कंजी ४ य भज्जिया ५ रव्वा ।  
दुविहा ७ जूसो ८ ओपा-मणयं ९ अंवगरमो दसमं १० ॥ १ ॥  
पाणगदव्वं तिविहं १३, कयन्नीफलमेव १४, सेचणं दव्वं १५ ।  
गोरसदव्वाइ तिवि य १८, वंजणदव्वाइं एयाइं ” ॥२॥ इति ।

छाया—सूपो १ निष्ठान्नं २ च व करम्बः ३ कंजी ४ च भर्जिका ५ रव्वा ।  
द्विविधा ७ यूपः ८ अवस्त्रावणं ९ आम्रकरसो दशमम् (व्यञ्जनम्) १० ॥१॥  
पानकद्रव्यं त्रिविधं १३ कदलीफलमेव १४ सेचनं १५ द्रव्यम् ।  
गोरसद्रव्याणि त्रीणि च १८, व्यञ्जनद्रव्याणि-एतानि ॥२॥

तत्र सूपः—हिंवादि संस्कृता सुद्गादिदालिः १, निष्ठान्नं—‘ कढी ’ इति  
भाषाप्रसिद्धं द्रव्यम् । करम्बः—सुसंस्कृतं भक्तद्राक्षादिमिश्रं मिष्टं दधि ३ । कंजी—  
व्याघारितम्लिकादिपानीयं ‘ कांजी ’ इति प्रसिद्धम् ४ ।

भर्जिका—पत्रशार्कं ‘ भाजी-तरकारी ’ इति प्रसिद्धम् ५ । रव्वा द्विविधा—  
गुडरव्वा तक्ररव्वा च ‘ रावडी ’ इति प्रसिद्धम् ७ । यूपः—जीरकादि व्याघारितो  
सुद्गादि रसः ८ । अवस्त्रावणं—व्याघारित सिद्धतन्दुलपानीयं ‘ कट-ओसामण ’

से सूपदिक रसरूप व्यंजन लिये गये हैं—‘ सूओ निट्टनंचिय ’ इत्यादि  
हिंगु आदि से संस्कृत सू ग आदिकी दालका नाम सूप है, ‘ कढीका  
नाम निष्ठान्न है, भक्त द्राक्षा आदिसे मिश्र मीठे दही का नाम करम्ब है  
जिसमें वघार दिया गया है ऐसे इमली आदिके पानी का नाम कांजी  
है, भाजी पत्र शाकका नाम भर्जिका है, गुडरव्वा और तक्र रव्वाके भेद  
से रव्वा दो प्रकारकी होती है, तक्र रव्वा का नाम रावडी-महेरी है ।  
जीरे आदिके वघारसे युक्त सुद्गादि का जो रस है उसका नाम यूप है,  
वघारसे युक्त मांडका नाम ओसामण है, आमके रस का नाम आम-

अर्डी व्यंजन पदथी सूपदिक रसरूप व्यंजन गृहीत थयेल छे—

“ सूओ निट्टनं चिय ” इत्यादि—

हिंगु आदि नाष्णीने भग आदिनी, दाणने सूप कडे छे—कढीने निष्ठान्न  
कडे छे. द्राक्षादिथी मिश्रिन मीडा कढीने करम्ब कडे छे, वघारेला आणवली  
आदिना पाष्णीने डांछ कडे छे सांछ ( पाइडांवाणां मेथी, भूणा, तांढजियो )  
ने भर्जिका कडे छे. रणडी मे प्रकारनी छे—(१) गोजनी रणडी अने (२)  
भडेरी ( छाशमां रांधेला अनाजनी अेक वानगी-वे'श ) एरा आदिना वघारथी  
युक्त भग आदिनुं ने ओसामण डेय छे तेने यूप कडे छे, वघारथी युक्त  
माड ( बातनुं ओसामण ) ने ओसामण कडे छे. डेरीना रसने आमरस कडे



इति मसिद्धम् १। आन्नकरसः—‘आमरस’ इति मसिद्धम् १०, पानक द्रव्य त्रिविधं—  
मिष्टपानक ‘शर्बत’ इति मसिद्धम् ११, तिक्तपानकं मरीचादि संयुक्तम् १२,  
अम्लपानकम्—अम्लिकादिनिष्पन्नम् १३। बदलीफल ‘केला’ इति मसिद्धम् १४।  
सेचन द्रव्यं ‘चटनी’ इति मसिद्धम् १५। शीघ्रि गोरसद्रव्याभि दधिदुग्धवत्क  
रुपाङ्गिति १८। एतैरष्टादशव्यञ्जनैः संयुक्तं भोजनं द्वाविंशद्विधं, तद्यदि—

“मसतं १ शीघ्रतपूरक २ च वटिका ३ चूरी ४ तथा पूरिका ५,  
श्रीशुद्ध ६ खल्लमोदकं ७ च लपसी ८ श्री कुण्डली ९ पिष्टिका १०।  
खयाः ११ सूत्रक्रीणिका १२ च पुष्टिका १३ वातादपस्तापुटी १४,  
पूपाः १५ पर्पटिका १६ तथा दधिवत् १७ गुग्गा १८ करञ्जा १९ मवाः ॥१॥  
पिष्टाः २० पायसभोजनं २१ यदुसितायुक्ता च नाम्नुदिका २२,  
मिष्टा पूरणपोषिका २३ च परकी २४ सुर्मा २५ च सजूरिका २६।  
मसतं केशरशर्करा समधिकं २७ यूपं २८ तथा जाम्बुनम् २९,  
कषोरी ३० कलकन्दको ३१ रसगुला ३२ द्वाविंशकं भोजनम्” ॥२॥ —  
तत्र—मसतं—‘भात’ इति मसिद्धम् १, शीघ्रतपूरक—‘चेर’ इति मसि  
द्धम् २। वटिका—‘बडी’ इति मसिद्धम् ३। चूरी—‘नुकतीदाना’ इति मसि-

रस है, पानक द्रव्य तीन प्रकारका है—जैसे मिष्टपानक शर्बत, तिक्त  
पानक—कालीमिर्च आदिसे युक्त पेय, और अम्लपानक—खटाई आदि  
शालकर तैयार किया गया पेय, बदलीफल केला, सेचनद्रव्य—चटनी  
और दधि, वृष और तम्र ये तीन गोरसद्रव्य, इस प्रकार से ये अठारह  
व्यञ्जन पदार्थ हैं, इन अठारह व्यञ्जन पदार्थों से युक्त भोजन ३२ प्रकारका  
होता है। जैसे—“मसतं शीघ्रतपूरक च वटिका” इत्यादि।

१ मसतं—भात, २ चेर, ३ वटिका—बडी, ४ चूरी—नुकतीदाना, ५ पूरिका,  
६ श्रीशुद्ध, ७ मोदक, ८ लपसी, ९ श्री कुण्डली, जछेपी १० पिष्टिका—येठा,

११, पानक द्रव्य (पीडा) तत्र प्रकारनां छे—(१) मिष्टपानक (शर्बत) (२)  
तिक्तपानक (मरी आदिसे युक्त पेय), अने (३) अम्लपानक—खटाई आदि  
नाशीने बनावेहुं पेय। इताने बदलीफल कडे छे अन्वेषीने सेचनद्रव्य कडे छे,  
१५, इदी अने ताशने गोरसद्रव्य कडे छे आ प्रभावे आ १८ व्यञ्जन  
पदार्थों समग्रता आ १८ व्यञ्जनोंसे युक्त भोजन ३२ प्रकारनुं होय छे  
जेमके—‘मसतं शीघ्रतपूरक च वटिका’ इत्यादि—

(१) मसतं—भात, (२) चेर (३) वटिका—बडी, (४) चूरी—नुकतीदाना,  
(५) पूरिका (६) श्रीशुद्ध, (७) खल्ल (मोदक), (८) लपसी, (९) श्रीकुण्डली

द्धम् ४। पूरिका-‘ पूडी ’ इति प्रसिद्धम् ५। श्रीखंड-( शीखंड ) इति प्रसिद्धम्  
 ६। मोदकं-लड्डु ’ इति प्रसिद्धम् ७। लपसी-प्रसिद्धा ८। श्रीकुण्डली-‘ जलेबी ’  
 इति प्रसिद्धम् ९। पिष्टिका-‘ पेठा ’ इति ख्यातम् १०। खाद्याः-‘ खाजा ’ इति  
 प्रसिद्धम् ११। सूत्रकफीणिका-‘ सूतरफीणी ’ इति प्रसिद्धम् १२। पुटिकासंपुट  
 युक्ता ‘ पूडी ’ इति प्रसिद्धम् १३। वातादपस्तापुटी-‘ बादामपुडी-पिस्तापुडी ’  
 इति ख्याता १४। पूपाः ‘ मालपुवा ’ इति प्रसिद्धम् १५। पर्पटिका-‘ तिलपा-  
 पडी ’ इति प्रसिद्धा १६। दधिबटा-‘ दहीबडा ’ इति प्रसिद्धम् १७। गुञ्जा-  
 प्रसिद्धाः, सितोपलगर्भा-कूर्चिकानिष्पन्नं द्रव्यम् १८। करञ्जाः-देशविशेषप्रसिद्धं  
 मधुरद्रव्यम् १९। पिण्डाः ‘-पेडा ’ इति प्रसिद्धाः २०। पायसभोजनं ‘ खीर ’  
 इति प्रसिद्धम् २१। बहुसितायुक्ता वासुंदिका-शर्करा बहुलागाढ दुग्धरूपा ‘वासुन्दी’  
 इति प्रसिद्धा २२। मिष्टा पूरणपोलिका-मिष्टद्रव्यगर्भापुटिका ‘ पूरणपोली ’ इति  
 प्रसिद्धा २३। बरफी लोकप्रसिद्धा-दुग्धविकाररूपा २४। खुर्मा-देशविशेषप्रसिद्धं  
 मिष्टद्रव्यम् २५, खजूरिका-मिष्टद्रव्यगर्भा गोधूमपिष्टनिष्पन्ना ‘ खिजूरी ’  
 इति भाषा प्रसिद्धा २६। केशरशर्करामधिकं भक्तं ‘ केशरिया भात ’ इति,  
 ख्यातम् २७। यूषं-‘ मावा ’ ‘ खोमा ’ इति प्रसिद्धम् २८। जामुनम्-‘ गुलाब-  
 जामुन ’ इति प्रसिद्धम् २९। कचौरी-तिक्तद्रव्यसंपुटा पिष्टनिष्पन्ना ‘ कचौरी ’

११ खाद्या-खाजा, १२ सूत्रकफीणिका-सूतरफीणी, १३ पुटिका-पुडी, १४  
 वातादपस्तापुटी-बादामपुडी-पिस्तापुडी, १५ पूपा-मालपूवा, १६ पर्पटिका  
 -तिलपापडी, १७ दधिबटा-दहीबडा, १८ गुंजा-गोज्जा, १९ करंज-  
 देशप्रसिद्ध, मधुरद्रव्यविशेष, २० पिण्ड-पेडा, २१ पायसभोजन-खीर,  
 २२ अधिक शर्करा सेयुक्त-वासुंदिका रबडी, २३ मिष्ट पूरण पोलिका  
 पूरणपुडी, २४ बरफी, २५ खुर्मा-शर्करापारे, २६ खजूरिका शर्करा-  
 डालकर गेहूं की पिटी से निष्पन्न किया गया एक जात का हलुवा  
 खिजूरी सोहन हलुवा, २७ केशरिया भात २८ यूष-मावा-खोवा, २९  
 जामुन-गुलाबजामुन, ३० कचौड़ी ३१ कलाकन्द और ३२ रसगुल्ला यह

जलेबी (१०) पिष्टिका, (११) आम, (१२) सूतरक्षेणी, (१३) पुटिका (पुडी),  
 (१४) बादाम अने पिस्तानी पुरी, (१५) मालपूवा, (१६) तिलपापडी, (१७)  
 दहीबडा, (१८) गुंजा, (१९) करंज, (२०) पेडा, (२१) पायसभोजन-दुग्धपाक  
 भीर, (२२) जामुनी, (२३) पूरणपोली, (२४) भरडी, (२५) शर्करापारे; (२६)  
 खजूरिका, (अथ लानेने घडता मेदाभांथी भनते डेलवे), (२७) केशरिया  
 भात, (२८) यूष-मावानी अथ मिठाई, (२९) गुलाबलपू, (३०) कचौड़ी,  
 (३१) कलाकन्द अने (३२) रसगुल्ला, आ भत्रीस प्रकारनी गो...

इति प्रसिद्धा ३०। कसकन्दकम्—' कलाकद ' इति स्यात् ३१। रसगुला—रस  
 मृत गोलाकारद्रव्य स्वनाम्ना प्रसिद्धम् ३२। इति द्वात्रिंशद्विध मोजनम् मोजयित्वा,  
 पुनः किम् ? इत्याह—' यावज्जीव ' इत्यादि, यावज्जीवम्—जीवनपर्यन्त पृष्ठय  
 पर्वसिक्रया—पृष्ठो—स्कन्धे अवतस इनावतस पृष्ठिभूपमिष, तस्य करणम् अवतसिका  
 पृष्ठयवतसिका, तथा पृष्ठयवतसिक्रया परिषेत् स्वाम्भापितरीं पृष्ठघारोपितौ कृत्वा  
 यदि गच्छेत् तेनापि परिवहनेन तस्याम्भापितुर्दम्पतिकर—प्रत्युपकार कर्तुमशक्य  
 मवति, मनुसूतोपकारितया प्रत्युपकारकरणोद्यतोऽप्युक्तकार्येण प्रत्युपकर्तुं न शक्नो

३२ प्रकार का भोजन है । १८ व्यंजनों से युक्त ३२ प्रकार के भोजन को  
 कोई सुपुत्र अपने मातापिता को प्रतिदिन खिलाये तो भी वह उनका  
 प्रत्युपकारक नहीं बन सकता है—ऐसा सम्पन्न लगा लेना चाहिये ऐसा  
 सप कुछ करता हुआ भी वह सुपुत्र इतना और करे कि वह उन्हें  
 अपने पैरों से भी न चलने दे किन्तु अपने दोनों कर्षों पर रखकर जहाँ  
 वे जाना चाहें वहाँ उन्हें ले जाये ऐसी यह प्रक्रिया यह उनके साथ एक  
 दो दिन आदि समयक लगाकर ही न करे किन्तु " यावज्जीव " अपने  
 जीवन पर्यन्त लगातार करता रहे इतना करता हुआ भी यह यदि  
 ऐसा समझे कि मैं इनके उपकार से रहित हो गया हूँ तो ऐसा सम-  
 झना उसका ठीक नहीं है क्योंकि जो उपकार माता पिता के द्वारा  
 किया गया है उसका पदला तो किसी भी पदति से चुकावा ही नहीं  
 जा सकता है यही याम सूत्रकार ने—' दुष्प्रतिकरं ' शब्द द्वारा प्रकट  
 की है यद्यपि ऐसी सेवा माता पिता की कोई करता नहीं है परन्तु

१८ प्रकारतां भोजनोद्यो मुद्रा आ ३२ प्रकारतां भोजन मातापिताने  
 दृश्यते अवशवधार्मा भवेत् तो पञ्च तेमना उपकारने लक्ष्ये वाणी शकते  
 नधी, ज्येते स मध जर्दी आत्रगना वाश्य साधे समञ्ज देवे। वशी ते सुपुत्र  
 तेना मातापिताने एवम पयन्त पोताने भजे व्यङ्गवीने तेमनी उभ्यानुसार  
 हेरवे—ज्येते के तेमने पने आलव ल दे नर्दी भने तेमनी उभय दोष त्यां  
 तेमने भजे ज्येतीने ल/ लध तो पञ्च तेमना उपकारने लक्ष्ये ते वाणी  
 शकते नधी। ( जर्दी ज्ये ते विवध भजे व्यङ्गवीने हेरववाणी वात करी नधी,  
 एवम पयन्त ज्येम करवानु कर्षुं उ उभय मातापिताना उपकारने लक्ष्ये  
 पूरेपूरे वाणी शकते नधी ज्येम कर्देवार्मा, आ युं उ )

मातापिताना उपकारने लक्ष्ये केषु पञ्च रीते वाणी शकते नधी,  
 ज्येम वान सूत्रकार ' दुष्प्रतिकर ' पर द्वारा प्रकट करी उ ज्ये के मातापितानी  
 आदधी लधी सेवा करनार ज्येमे ल केषु स लयी सके उ, परन्तु धार्य के

तीति भावः । एवं तर्हि कथमम्बापितुः सुप्रतिकरं भवती ? त्याह— 'अहेणं से' इत्यादि, अथचेत् स सुपुत्रस्तम्—अम्बापितरं धर्मे जिनपणीते श्रुतचारित्ररूपे स्थापयिता—स्थापनशीलो भवेत्तदा सुप्रतिकरं भवतीति सम्बन्धः । किंकृत्वा स्थापयिता भवतीत्याह आख्याय—स्वमातापित्रे जिनधर्म कथयित्वा, प्रज्ञाप्य—सोदाहरणं बोधयित्वा, प्ररूप्य—भेदानुभेदतो निरूप्य स्थापयिता भवति तेनैव धर्मस्थापनेनैव

यदि कोई भाग्यशाली पुत्र ऐसी भी सेवा उनकी करे तो भी वह उनके कृत उपकार के बदले में उनका प्रत्युपकारक नहीं हो सकता है—यही बात यहां "परिवहेत्" इस विध्यर्थक प्रयोग से प्रकट की गई है ।

तो फिर उनके उपकार का प्रत्युपकार कैसे किया जा सकता है ? इसके उत्तर में प्रभु ने कहा है कि—(अहे णं से) इत्यादि—उनके उपकार का प्रत्युपकार इसी से हो सकता है कि वह उन्हें जिनपणीत श्रुतचारित्ररूप धर्म में स्थापित कर दें, सब से पहिले वह उन्हें यह समझावे कि यह जिनधर्म जिनेन्द्र द्वारा प्रणीत है अतः इससे हिनकारकता के सिवाय अहितकारता कथमपि नहीं है जन्म जन्मान्तर से छूटने की यही परमौषधिप्राप्त हो सकती है अन्यत्र नहीं जन्म, जरा और मरण रूप रोग का सच्चा इलाज सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र के सेवन से ही जीव को प्राप्त हो सकता है इस प्रकार से उन्हें समझाकर फिर इसके सेवनसे किनर जीवोंने आत्मलाभ प्राप्त किया है, कौन र जीव

એવો કોઈ સુપુત્ર હોય કે જે પોતાના માતાપિતાની ઉપર દર્શાવેલી પદ્ધતિથી સેવા કરતો હોય, તો પણ તે તેના માતાપિતાએ તેના ઉપર જે ઉપકારો કર્યા હોય છે તેનો પ્રત્યુપકાર વાળી આપવાને સમર્થ થઈ શકતો નથી. એજ વાત "પરિવહેત" આ વિધ્યર્થક પ્રયોગ દ્વારા વ્યક્ત કરવામાં આવી છે.

તો તેમના ઉપકારનો બદલો તે કેવી રીતે વાળી શકે ? આ પ્રશ્નના ઉત્તર રૂપે મહાવીર પ્રભુ કહે છે કે "અહેણં સે", ઇત્યાદિ તેમના ઉપકારનો બદલો વાગવાનો માત્ર એક જ ઉપાય છે, તે ઉપાય નીચે પ્રમાણે છે—

તેણે તેમને શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મ તરફ વાળી લેવો, જોઈએ. તેણે તેમને સમજાવવું જોઈએ કે જૈન ધર્મ જિનેન્દ્ર લગવાનો દ્વારા પ્રરૂપિત થયેલો છે તે ધર્મ જ સસારી જીવોનું હિત કરનારો છે, આ ધર્મમાં બતાવવામાં આવેલા ભાગે આલવાથી સસારી જીવોનું કોઈ અહિત થતું નથી, જન્મમરણની જંજાળમાંથી છૂટવાની આ એક જ પરમૌષધિ છે. જન્મ, મરણ અને જરા રૂપ રોગનો ખરો ઈલાજ સમ્યગ્દર્શન, જ્ઞાન અને ચારિત્રના સેવનથી જ જીવને સાંપડી શકે છે આ પ્રકારે તેમને સમજાવીને તેણે તેમને એવાં જીવોનાં ઈલાજનો આપવા જોઈએ કે જેમણે કેવલ પ્રરૂપિત ધર્મની સમ્યક્ રીતે આરા-

नस्वभ्यङ्गादिभि तस्याम्भापितु सुप्रतिकर-सु-सुखेन प्रतिक्रियते-प्रभ्युरक्रियत इति सुप्रतिकर-प्रत्युपकारं कर्तुं शक्य भवति प्रत्युपकारः कृतो भवतीत्यर्थ धर्मस्याप नस्यैव महोपकारत्वात्,

उक्तञ्च — "समसशयगाण, दुष्पट्टिवारं भवेत्सु बहुपसु ।

सम्पगुणमलिया द्विभि, उपकारसदस्रकोटीभि ॥२॥

छापा—सम्पत्तवदायकानां, दुष्पट्टिवारं भवत्सु बहुकेपु ।

सर्वगुणमोक्षितामिरपि, उपकारसदस्रकोटीभि ॥२॥

अनेकमवकृतसर्वगुणसुकोपकारसदस्रकोट्यपेक्षया सम्पत्तवर्षदान

श्रेष्ठमिति भाव ।

निरामय (कर्मरोग रहित) यनेहैं इत्यादि रूपसे और समझावे और मेदानु मेदसे उम धर्मका निरूपण करे यदि वह इस तरहसे उन्हें समझा बुझा कर जिनप्रणीत धर्म में स्थापित कर देता है तो अयद्य ही वह उनके उपकार का प्रत्युपकार कर्ता हो जाता है क्योंकि जिनधर्म में स्थापित वह एक बहुत बड़ा उपकार है भले ही अभ्यङ्गादि लगाने से, सप्तमोक्षम भोज्यवस्तुओं के खिलाने से शरीर का पोषण हो जाय परन्तु आत्मा का पोषण नहीं होता है आत्मा का पोषण तो जिनधर्म के सेवन से ही होता है और जो ऐसा करता है वह अपना, पर का और दोनों का वहन बड़ा उपकार करता है—यही बात इस कथन से सूत्रकार ने प्रदर्शित की है । कहा भी है—(सम्मत्तशयगाण दुष्पट्टिवारं) इत्यादि । तात्पर्य इसका यही है कि सम्पत्तवदायक पुरुषोंका अनेकधर्ममें सर्वगुण-

धना इरीने आत्मलाभ ( मोक्ष ) प्राप्त कर्षो होय तेव्हे वेदानुसंगेपूर्वक तेमनी पासे आ धमनुं निरूपण करतुं शक्ये आ रीते तेमने समझणीने जे ते तेमने जिनप्रणीत धर्ममां स्थापित करी शके छे तो ने रीते ते अक्षर तेमना उचरारनेना' जस्टो' काजी-शके छे अक्षर के अर्थ सव् व्यक्तिते जिन धर्ममां स्थापित करवी जेव तेनार्ये मोक्षमा मोटे उपकार कर्षो गव् य छे जेव अक्षर आदि सत्राववाधी अने उत्तम कोजन अवसाववाधी शरीरनु पोषण यतुं होय, पव् तेना द्वारा आदर्मानु पोषण तो नहीं ज यतुं आत्मानु पोषण तो देवजि-प्रक्षपित जिन-समनी आशयनाधी ज याव छे तेधी जेवुं करनार व्यक्तित पोदानु अन-यतुं अने उमयतुं कस्याव् करी शके छे जे ज याव आ कथनधी सूत्रकारे अर्धी प्रकट करी छे कहुं पव् छे ई—

“सम्मत्तशयगाणं दुष्पट्टिवारं” इत्यादि.

आ कथनने भावार्थ नीचे प्रभावे छे—जनेक भवमां सर्वशुभमुक्त कशयेना कर्षोते उपकारेधी पव् सम्पत्तवदायक पुरुषोना उचरारनेना जस्टो

अथ भर्तुर्दुष्प्रतिकरतां प्रदर्शयति—‘ केइ महच्चे ’ इत्यादि, कोऽपि न सर्वः, महती अर्चा—ऐश्वर्यादिरूपं तेजो यस्य स महार्चः । यद्वा—महौंश्यासौ अर्च्यश्च—अर्च्यपतितया पूज्य इति महार्च्यः । अथवा महात्यं—महस्त्रं, तद् योगान्माहत्यः, ऐश्वर्यसंपन्न इत्यर्थः, दरिद्रं—कश्चिद् दरिद्रपुरुषं समुत्कर्षयेत् धनादि दानेनोत्कृष्ट कुर्यात् । ततः स समुत्कृष्टः धनादिसमृद्धः सन् पश्चात्—स्वपोषकस्य परोक्षे पुरश्च—तत्समक्षं त्रिपुलानाम्—उदारणां भोगानां—शब्दादिविषयानां समितिः—समुद्रयः सामग्रीत्यर्थः, तथा समन्वागतः—युक्तश्चापि विहरेत्—तिष्ठेत् । ततः पश्चात् खलु स महार्च्यः—दरिद्रपोषकः स्वामी अन्यदा कदाचित् दरिद्रीभूतः दुर्भाग्यवशादति दु स्थितो जातःसन् तस्य स्वपोषितस्य दरिद्रस्य अन्तिके—समीपे हव्यम्—अनन्यशरणतया शरणस्य तत्र शक्यत्वाभिसन्धेः आगच्छेत् तदा स दरिद्रः—

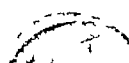
युक्त किये गये करोड़ो उपकार से भी प्रत्युपकार नहीं किया जा सकता है क्यों कि सम्यक्त्व दान से आत्मा की भवपरम्परा विध्वस्त (नष्ट) होजाती है अन्य उपकारों से नहीं ।

अब सूत्रकार स्वामीका उपकार अन्य प्रत्युपकारों द्वारा अशक्य है यह प्रकट करते हैं—“ केइ महच्चे ” इत्यादि—जिसके पास ऐश्वर्यादि तेजरूप अर्चा महती है, अथवा लोक में जो विशिष्ट सम्पत्ति शाली होने से जनता से मान्य हुआ है अथवा—जो सब प्रकार के ऐश्वर्य से सम्पन्न है ऐसा कोई मनुष्य किसी दरिद्रपुरुष को धनादिप्रदान द्वारा उत्कृष्ट कर देता है, इस तरह वह दरिद्र पुरुष अपनी दरिद्रता से छूटकर धनसंपन्न बन जाता है और कालान्तर में दरिद्रता के चक्र में पड़े हुए अपने पोषक को प्रत्यक्ष और परोक्ष में हर तरह से सहायता

वाणी शकतो नथी, कारणु के सम्यक्त्व दानथी आत्मानी लवपरंपरा नष्ट थनी नथ छे—अन्य दानथी ( उपकारथी ) अेवुं अनंतुं नथी.

इवे सूत्रकार अे वात प्रकट करे छे के लतां ( पोषणुक्ततां ) ना उपकारने प्रत्युपकार करवानुं कार्यं पणु दुष्कर छे—“ केइ महच्चे ” इत्यादि.

जेनी पासे अैश्वर्यादि तेज्ज्ञपं अर्या भइती ( धणी न ) छे, अथवा जे विशिष्ट सम्पत्तिशाली होवाथी संसारमां जनता द्वारा माननीय गणाय छे, अथवा जे सधना प्रकारना अैश्वर्यथी संपन्न छे अेवो केछ मनुष्य, केछ दरिद्र मनुष्यने धनादि अर्पणु करीने तेनी उन्नति करवामां महदइय थाय छे. आ रीते ते दरिद्र मनुष्य पोतानी दरिद्रतामाथी मुक्त थधने धनवानं जनी नथ छे इवे कमनसीये चेवो दाता दरिद्रं जनी नथ छे तेनी सहायताथी धनवानं जनेद माणुस तेने प्रत्यक्ष अने परोक्ष रीते दरेक प्रकारनी महद करे



भूतपूर्वदरिद्र तस्मै-पूर्वोपकारिणे स्वामिने यदि सर्वस्वमपि-स्वपार्श्वस्थितसर्व  
 पनादिकमपि ददत्, तेनापि एवं सर्वस्वदानेनापि तस्य-सर्वस्वदातुः दुष्पतिकर  
 प्रत्युपकारं कर्तुमक्षयं भवति । एवं तर्हि कथं सुमतिकरं भवती ? त्याह- 'अहेयं'  
 इत्यादि, यमेति प्रकारान्तरघोतकाः, अथ-प्रकारान्तरण स्वतः यदि स भूतपूर्व  
 दरिद्रः स स्वोपकारकं स्वामिनं 'केवलप्रज्ञप्तं धर्मं तत्स्वरूपकथनादिना स्वाप  
 यिवा' भवति तन्नैव-धर्मस्यापनेनैव न तु सर्वस्वदानादिना तस्योपकारिणः स्वा  
 मिनः सुमतिकरं भवति प्रत्युपकारः कृषो भवतीत्यर्थः ॥ २ ॥

प्रदान करने लगता है इत्यादि सब कथन मूलार्थ की तरह से यहाँ  
 'लगाना चाहिये तो क्या वह इस प्रक्रिया का कर्ता पुरुष अपने स्वामी  
 के उपकार का प्रत्युपकार कर सकता है ? अर्थात् नहीं कर सकता ।

यदि ससार से परे कोई क्रिया है तो वह अपने को और पर को  
 धर्म में शुभचारिणरूप में स्थापन करने रूप है यही वाच सूत्रकार ने  
 इस रूप से कही है कि वह दरिद्र होकर धनसंपन्न हुआ व्यक्ति यदि  
 अपने उपकारक को समझा गुहाकर के केवलप्रज्ञप्त धर्म में स्थापन कर  
 देता है तो इसके समान उसके उपकारक का प्रत्युपकार और कोई  
 नहीं है । यही सब श्रेष्ठ मार्ग उसके कृत उपकार से छूटने का है सर्व  
 स्वप्रदान आदि द्वारा वह उसका प्रत्युपकारक नहीं होता है । आत्मा को  
 सच्चिदी शान्ति प्रदान करने वाला एक धर्म ही है और जो इस धर्म में  
 अपने उपकारक को निरत कर देता है उसके जैसा उसका और कोई  
 प्रत्युपकारक नहीं होता है' २ ।

छे धारो के ते पीतानी सधणी संपत्ति तेने अपंखु करी डे छे तेा गुं आ  
 रीते ते तेनु कखु हेथी शके छे भरो ? जेनु करवा छतां पखु ते पीतानी  
 उपकारक व्यक्तिना उपकारनेो जइवेो वाणी शकतेो नथी,

कोछ पखु प्रकारना सांसाधिके दास करवावाथी तेना उपकारनेो जइवेो  
 वाणी शकतेो नथी, परन्तु जे ते भाजुस पीतानी उपकारकतनि कुतब रित्ररूप  
 धर्मभां कोछ पखु रीते स्थापित करी शके छे तेा तेना उपकारनेो जइवेो  
 करवा वाणी शके छे पीतना सधजा द्रवना अपखु दाश, तेना उपकारनेो  
 जइवेो वाणी शकतेो नथी, पखु तेने दाजवा इलीवेो द्वारा समजवायेने केवलि  
 प्रज्ञपित धमनेो आपनास भमंज छे तेतेनु कखु हेथी शके छे. आत्माने  
 साथी शान्ति आपनास धर्मंज छे तेथी ते धर्मभां पीतानी उपकारने  
 स्थापित करानी रेवा जेवेो जीजे करेो उपकार केता शके ?

अथ धर्माचार्यस्य दुष्प्रतिकरतामाह—‘ केइ इत्यादि । कोऽपि-कश्चित् न सर्वः तथारूपस्य=द्रव्यतो धृतसदोरकमुखवस्त्रिकादिमुनिवेषस्य, भावतो धर्मोचितस्वभावस्य श्रमणस्य-संसारविषयविरक्तस्य मुनेः, वा-अथवा माहनस्य-‘माहन’ इत्येवं योऽन्यं प्रत्युपदिशति स माहन’-मूलोत्तरगुणवान् संयतः, तस्य अन्तिके समीपे एकमपि आर्यम्-पापकर्मभ्य आराद्-दूरयातमार्यम्-आर्यसम्बन्धिकं तीर्थकरसम्बन्धिकमित्यर्थः, अतएव धार्मिकं-धर्मसम्बन्धिकं सुवचनं-वाक्यं श्रुत्वा-श्रोत्रपुटाभ्यां पीत्वा निशम्य-हृद्यवधार्य कालमासे कालं कृत्वा अन्यतमेषु-देवलोकेषु-देवलोकानां मध्येऽन्यतमै कस्मिंश्चिद्देवलोके इत्यर्थं देवतया-देवपर्यायेण उपपन्नः, ततःखञ्जु देवोपपत्त्यनन्तरं रा स्वपूर्वभवे आर्यधार्मिकसुवचनश्रोता देव-

अथ धर्माचार्य को जीव प्रत्युपकार कर्ता कैसे हो सकता है इस बात को सूत्रकार प्रदर्शित करने के अभिप्राय से कहते हैं—“ केइ ” इत्यादि । कोई एक भव्य जीव द्रव्य की अपेक्षा से सदोरकमुखवस्त्रिका आदि मुनिवेष वाले और भाज की अपेक्षा धर्मोचितस्वभाव वाले श्रमण जन के अथवा “ मन मारो ” इस प्रकार से दूसरों को उपदेश देने वाले संयत के समीप एक भी पाप कर्म से जो दूर जा चुके हैं ऐसे आर्यसम्बन्धिक-तीर्थकर सम्बन्धिक धार्मिक सुवचन को-वाक्य को सुनकर और हृदय में उसे अवधारण कर किसी एक देवलोक में देव की पर्याय से उत्पन्न हो जाना है और फिर उत्पत्ति के बाद वह अपने अधिज्ञान से उन धर्माचार्य के वचन से मेरी यह पर्याय हुई है अतः वे मेरे महोपकारी हैं इस प्रकार से उनके उपकार के बराबर्ती हुआ

इसे सूत्रकार ने बात समझवे छे के एव धर्माचार्यना प्रत्युपकारकर्ता केवी रीते भनी शके छे—“ केइ ” इत्यादि.

टीकार्य-कोई एक भव्य जीव द्रव्यनी अपेक्षासे सदोरकमुखवस्त्रिका आदि मुनिवेषवाणा अने भावनी अपेक्षासे धर्मोचित स्वभाववाणा श्रमणनी पासे अथवा “ मा हलो, मा हलो ” अथवा उपदेश आपनार संयतनी पासे, पापकर्मथी नेओ निवृत्त थई गया छे ओवां आर्यसंभन्धिक-तीर्थकर संभन्धिक-धार्मिक सुवचनने श्रवणु करीने अने तेने हृदयमां अवधारणु करीने कोई एक देवलोकमां देवनी पर्याये उपपन्न थई जय छे आ रीते देवलोकमां उत्पन्न थया आह ते पोताना अधिज्ञान द्वारा जाली ले छे के ते धर्माचार्यना उपदेश अनुसार आलवाथी न भने आ देवगति प्राप्त थई छे, तेथी तेमणु मारा उपर भडान उपकार कर्यो छे. मारे तेमना उपकारने भदो वाणवे न नेछे.



સ્ત-સુવચનમદાતારં ધર્માચાર્યં યદિ દુર્મિસાદ્-દુષ્કાલપીડિતાદ્ દેશાત્ નિષ્કાસ્ય  
 સુમિસ્ર સુકાલ સસ્યાદિ સંપન્ન વેશે સહરેત્વેચક્ષ્માઽઽનયત્, યા-અયથા કાન્તા  
 રાત્-નિર્મનાટવીતઃ નિષ્કાન્તારં જનાકુલં મદેષ્ઠ કુર્યાત્-નયેદિત્યર્થઃ, યા-અયથા  
 દીર્ઘકાલિકેન ચિરકાલાવસ્થાયિના રોગાસક્તેન રોગઃ-કાલસહઃ કુષ્ટાદિઃ, આતઙ્ક  
 સયોપાતિ શૂલાદિઃ, તયોર્દ્વિત્વે રોગાસક્તે, તેન, યદ્વા-રોગાસક્તેનેત્યેકપદં-  
 રોગદુઃખેનેત્યર્થઃ અભિભૂત-પીડિત સન્ત વિમોચયત્ દેવશક્ત્યા સુક્ત કુર્યાત્,  
 તેનાપિ-પ્ત્વ કરणेનાપિ તસ્ય ધર્માચાર્યસ્ય દુષ્પતિઠ્ઠ મવતિ સ પ્રત્યુપકર્તા ન  
 મપતીત્યર્થઃ । તર્હિ કય પ્રત્યુપકર્તા મપતી ? ત્યાહ-‘ અહેળ ’ ઇત્યાદિ, અય  
 યદિ સ્વલુ સ ય ધર્માચાર્ય કેચલ્પિમહાદર્માદ્ ઘ્ન્ટ-પતિત સન્ત સૂયોઽપિ-પુન

વહ દેવ યદિ એ સમય કદાચિત્ કિસી દુષ્કાલ પીડિત દેશ મેં વિહાર  
 કરતે છુપ આ જાતે હૈં, ઔર ઘહ દેવ ડાહૈં ઉસ દુષ્કાલ પીડિત દેશ  
 સે બાહર નિકાલકર સુમિશ્રવાલે દેશ મેં અપની દેવશક્તિ કે પ્રમાણ  
 સે છે આતા હૈં અયથા જય એ કિસી દુર્ગમ ગહન કાન્તાર મેં પતિત હો  
 જાતે હૈં તપ ઘહ દેવ ઉસ સ્થાન સે ડાહૈં નિકાલ કર જનસમુદાય બાલે  
 પ્રદેશ મેં પહુંચા દેતા હૈં યા જય એ રોગાતંક સે-રોગ સે-કાલસહ  
 કુષ્ટાદિ સે ઇથ સયોપાતિ શૂલાદિરૂપ આતંક સે અયથા રોગદુઃખ સે  
 પીડિત હો જાતે હૈં, તપ ઘહ અપની દેવશક્તિ સે ડાહૈં નિરોગ કર દેતા  
 હૈં, તો ઇસ પ્રકાર સે ડાહૈં સમાલ કરને બાલા ઘહ દેવ ડાહૈં ફૂલ  
 ઉપકાર કા વદલા નહીં જુકા સકતા હૈં-ડાહૈં પ્રત્યુપકર્તા નહીં હો  
 સકતા હૈં તો ફિર ઘહ પ્રત્યુપકારકર્તા કેસે હો સકતા હૈં ? તો ઇસકે  
 સ્તર મેં સૂત્રકાર કહ્તે હૈં-“ અહેળ ” ઇત્યાદિ-યદિ ઘહ દેવ ડાહૈં

આ આવનાથી પ્રેરાઈને ક્યારેક કોઈ દુર્ગમ પીડિત દેશમાં વિજયતા તે ધર્મા  
 ચાર્યને તે દેવ પોતાની દેવશક્તિના પ્રમાણથી સુમિશ્રવાળા (સુકાળવાળા)  
 દેશમાં કોઈ જાણ છે અથવા ન્યારે તે ધર્માચાર્ય કોઈ જહન અટવીમાં રહ્યાઈ  
 જાય છે-માર્ગ મૂલીને અટવાતા હોય છે, ત્યારે તે તેમને ત્યાંથી જનસમુદાય  
 વાળા કોઈ સ્થાનમાં પહોંચાડી દે છે અથવા ન્યારે તેઓ કોઈ રાજાતંક  
 (જવર, કોઈ આદિ રાજાથી અને અધ્યાનક ઉત્પન્ન થયેલા શૂલાદિ રૂપ આતંક)  
 થી પીડાતા હોય છે ત્યારે પોતાની દેવીશક્તિથી તે તેમને નીરાગી બનાવી  
 દે છે આ પ્રકારે તેમની સમાજ રાખવા છતાં પણ તે દેવ તેમના ઉપકારને  
 બહો વાળી શકતો નથી. હવે સૂત્રકાર એ જતાવે છે કે તે દેવ તેમને  
 ઉપકાર કેવી રીતે વાળી શકે છે-‘ અહેળ ’ ઇત્યાદિ.

रपि तस्मिन् धर्मे उपदेशदानादिना स्थिरीकर्त्ता भवति तदा स तस्य धर्माचार्यस्य प्रत्युपकर्त्ता भवतीत्यर्थः । एवं करणेनैव स धर्माचार्यस्य निर्करणो भवतीति भावः, उक्तञ्च—

“ जो जेण जम्मि ठाणम्मि ठाव्विओ दंसणे व चरणे वा ।

सो तं तओचुयं तम्मिचेव काउं भवे निरिणो ॥१॥ ” इति ।

छाया—यो येन यस्मिन् स्थाने स्थापितः दर्शने वा चरणे वा ।

स तं ततश्च्युतं तस्मिन्नेव कृत्वा भवेद् निर्करणः ॥ सू० १४ ॥

धर्मे स्थापनेन चास्य भवच्छेदरूपः प्रत्युपकारः कृतःस्यादिति धर्मस्य भवच्छेदकारणतामाह—

मूलम्—तीहिं ठाणेहि संपण्णे अणगारे अणादियं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवएज्जा, तं जहा—अणिदा-  
णयाए, दिट्टिसंपन्नयाए जोगवाहियाए ॥ सू० १५ ॥

छाया—त्रिभिः स्थानैः संपन्नोऽनगारः अनादिकमनवदग्रं दीर्घाद्धं चातुरन्तं संसारकान्तारं व्यतिव्रजति, तद्यथा—अनिदानतया दृष्टिसंपन्नतया, योगवाहितया ॥ ॥ सू० १५ ॥

प्रत्युपकारकर्त्ता होना चाहता है तो वह देव जय वे धर्माचार्य केवल-  
प्रज्ञस धर्म से पतित हो जावे फिर से उन्हें उस जिनप्रणीत धर्म में  
स्थिर कर देता है, तो इस प्रकार से वह उनके कृत उपकार का प्रत्युप-  
कार कर्त्ता हो जाता है अर्थात् उनके कृत उपकार से वह उद्दण हो  
जाता है । कहा भी है—“जो जेण जम्मि ठाणम्मि ” इत्यादि ॥ सू० १४ ॥

धर्म में स्थापित करने से जीव का भवच्छेद रूप प्रत्युपकार हो  
सकता है—इस तरह धर्म भवच्छेद का कारण होता है यही बात अब

कहाय कोष्ठ कारणे ते धर्माचार्यं केवलप्रज्ञस धर्मधी पतित थधं नय,  
अने ते देव कोष्ठ पणु उपाये तेमने इरीथी ते धर्मां स्थिर करी दे, तो ज  
तेना द्वारा तेना उपकारने। अहलो वाणी शक्य छे केवलीप्रज्ञस धर्माने मागे  
तेमने वाणी लधने ज .ते तेमना आत्मानुं कल्याणु करी शके छे अने जे  
रीते ज ते तेमनुं ऋणु इडी शके छे. कहुं पणु छे डे—“ जो जेण जम्मि  
ठाणम्मि ” इत्यादि. ॥ सू. १४ ॥

धर्मां स्थापित करवाथी एवने। लवच्छेदरूप प्रत्युपकार थधं शके छे.  
आ रीते धर्म लवच्छेदमां कारणुभूत अने छे. जे वात उवे सूत्रकार प्रह-

स्व-सुवचनमदातारं धर्माचार्यं यदि दुर्मिज्ञाद्-दुष्कालपीडिताद् देशात् निष्कास्य  
 सुमिक्ष सुकाल सस्यादि सपन्नं देशसहरेत्देशसञ्चरत्याऽऽनयत्, वा-अथवा कान्ता  
 रात्-निर्भनाटवीतः निष्कान्तार जनाकुलं प्रवेश कुर्यात्-नयेदित्यर्थः, वा-अथवा  
 दीर्घकालिकेन विरकालावस्यापिना रोगातङ्गेन-रोगः-कालसहः कृष्णादिः, भातङ्क  
 सघोपाति शूलादि, तयोर्द्वैकस्वे रोगातङ्क, तेन, यद्वा-रोगातङ्केनेत्येकपदं-  
 रोगदुःखेनेत्यर्थं अमिमूर्तं-पीडित सन्त निमोचयेत् देवशक्त्या सुकृतं कुर्यात्,  
 तेनापि-एव करणेनापि तस्य धर्माचार्यस्य दृष्टतिष्ठर भवति स प्रत्युपकर्त्ता न  
 भवतीत्यर्थः । तर्हि कथं प्रत्युपकर्त्ता भवती ? त्याह—' अहेण ' इत्यादि, अथ  
 यदि स्वलु स त धर्माचार्यं केषश्चिद्भ्रष्टाद्मौद् भ्रष्ट-पतितं सन्तं भूयोऽपि-पुन

वह देव यदि वे सयत कदाचित् किसी दुष्काल पीडित देश में विहार  
 करते हुए आ जाते हैं, और वह देव उन्हें उस दुष्काल पीडित देश  
 से बाहर निकालकर सुमिक्षवाले देश में अपनी देवशक्ति के प्रभाव  
 से ले आता है अथवा जय वे किसी दुर्गम गहन कान्तार में पतित हो  
 जाते हैं तब वह देव उस स्थान से उन्हें निकाल कर जनसमुदाय वाले  
 प्रदेश में पहुँचा देता है या जय वे रोगातक से-रोग से-कालसह  
 कृष्णादि से एव सघोपाति शूलादिरूप भातक से अथवा रोगदुःख से  
 पीडित हो जाते हैं, तब वह अपनी देवशक्ति से उन्हें निरोग कर देता  
 है, तो इस प्रकार से उनकी सुभाल करने वाला वह देव उनके कृत  
 उपकार का बदला नहीं चुका सकता है-उनका प्रत्युपकर्त्ता नहीं हो  
 सकता है तो फिर वह प्रत्युपकारकर्त्ता कैसे हो सकता है ? तो इसके  
 उत्तर में सूत्रकार कहते हैं-" अहेण " इत्यादि-यदि वह देव उनका

आ भावनाधी प्रेराधने द्वारेक ईर्ष दुष्काल पीडित देशमा विचरता ते धर्मा  
 चायने ते देव पीतानी देवशक्तिना प्रभावधी सुमिक्षवाण्य (सुभक्षणवाण्य)  
 देशमा लर्ष जाय छे अथवा न्यारे ते धर्माचार्य ईर्ष अह्न अटवीमा इसाध  
 जाय छे-भाज भूलीने अटवाता डोय छे, त्वारे ते तेमने त्वाधी अनधमुदाय  
 वाण्य ईर्ष स्थानमा पडोव्याधी दे छे अथवा न्यारे तेज्य ईर्ष शार्त्तक  
 (अवर, ईर्ष आदि शार्त्तधी अने अथानक उत्पन्न भयेला शूलादि इप आवक)  
 थी पीडिता डोय छे त्वारे पीतानी देवीशक्तिधी ते तेमने नीशानी जनानी  
 दे छे आ प्रकारे तेमनी सुभाल राअवा छवां पणु ते देव तेमना उपकारने  
 अटवे वाणी शकते नथी इवे सूत्रकार जे अवावे छे ई ते देव तेमना  
 उपकार देवी रीते वाणी शक छे-" अहेण " इत्यादि.

तया भोगसमृद्धिप्रार्थना रहिततयेत्यर्थः १। दृष्टिसंपन्नतया - दृष्टिः - सम्यग्दृष्टिस्तया संपन्नः युक्तः, तद्भावस्तत्ता, तया सम्यग्दृष्टितयेत्यर्थः २। योगवाहितया - योगेन - चित्तसमाधिना सर्वत्रानुत्सुकत्वलक्षणेन वहतीत्येवं शीलो योगवाही, समाधिस्थायीत्यर्थः, उक्तञ्च - योगवाहिलक्षणम् -

दृष्टिसंपन्नतारूप कारण और तीसरा योगवाहितारूप कारण है अन्वया-  
बाध सुखरूप रस से युक्त और मुक्तिरूप फलवाली ज्ञानादि आराधनारूप  
लता जिस कुठारतुल्य दिव्यमानुषऋद्धि अथवा देवलोक की ऋद्धि की  
चाहना से काट दी जाती है वह निदान है चारित्र की आराधना करता  
हुआ जीव परभव में स्वर्ग, मर्त्य आदि के भोगों की चाहना करता है  
इससे चारित्र मोहनीय कर्म उदय को प्राप्त होता है अर्थात् निदान  
(नियाना) करने वाला जीव परभव में भोगादिकों की चाहना से  
प्रेरित होकर चारित्राराधन करता है इससे तपस्या उसकी निष्फल हो  
जाती है क्यों कि ऐसा करने से उस जीव को चारित्रमोहनीय कर्म का  
उदय होता है यद्यपि चारित्र की प्राप्ति जीव को चारित्रमोहनीय कर्म  
के क्षय क्षयोपशम से होती है परन्तु निदान बन्ध सहित चारित्राराधन  
सम्पक् चारित्राराधनरूप न होकर वह एक प्रकार का ढोंगरूप होता है -  
द्रव्यचारित्ररूप होता है इससे कर्म की निर्जरा और संवर न होकर  
प्रत्युत उससे चारित्रमोहनीय आदि कर्मों का बंध और उदय होता  
रहता है अतः ऐसे जीव का संसार घटता नहीं है उल्टा घटता रहता

अन्वयाबाध सुखरूप रसधी युक्त अने मुक्तिरूप इणवाणी ज्ञानादि आरा-  
धनारूप लता जे कुठार (कुडाडी) तुल्य दिव्य मनुष्य सजधी ऋद्धि अथवा  
देवलोकनी ऋद्धिनी आडनाथी छेदाथ लय छे, ते आडनानुं नाम 'निदान' छे  
चारित्रनी आराधना करतो एव जे परभवमां स्वर्ग, मर्त्य आदिना लोगोनी  
आमना करे छे, तो तेना कारणे चारित्र मोहनीय कर्मोना उदय थाय छे अएदे  
के निदान (नियानुं) करनारे एव परभवना लोगादि कोनी आडनाथी प्रेरा-  
धने चारित्राराधना करे छे, ते कारणे तेनी तपस्या निष्फल लय छे, कारणे  
के अंबुं करवाथी ते एवना चारित्रमोहनीय कर्मोना उदय थाय छे. जे के  
चारित्रमोहनीय कर्मोना क्षय अने क्षयोपशमथी ज एवने चारित्रनी प्राप्ति  
थाय छे, परन्तु निदानबन्ध सहितनी चारित्राराधना सम्पक् चारित्राराधन  
रूप छोटी नथी-ने तो अेक ढोंगरूप ज होय छे-द्रव्य चारित्ररूप होय छे,  
तेथी कर्मोनी निर्जरा अने संवर थवाने अडेदे चारित्रमोहनीय आदि कर्मोना  
बंध अने उदय थतो रहे छे. तेथी अेवा एवने संसार घटवाने अडेदे

टीका—' तीर्हि ' इत्यादि सुगम, नवरम्-भनादिकम्-न विद्यते भादि-  
 प्रथमोपचिर्यस्यति-भनादिक तद्-आदिरहितमित्यर्थः, अनवरम्-न विद्यते  
 अवदम्-पर्यन्तो यस्य तदनवदम् तद्यथा अपर्यवसानम् अन्तमित्यर्थः । दीर्घाद्-  
 दीर्घा अद्वा कान्ठो यस्य तद् दीर्घाद्-तद्यथा दीर्घा लगम्पमित्यर्थः, यद्वा-दीर्घ  
 अष्ठा भागो यस्य तद् दीर्घाश्च, तद्यथा दीर्घमार्गगम्पमित्यर्थ चातुरन्त-चत्वा  
 रोऽन्ता -गतयो यस्य तद्यथा चतुरन्तगत्र चातुरन्त चतुर्गतिमित्यर्थः, एतादृश  
 सप्तारकान्तार-सप्तार एव कान्तार-निर्जलघ्राणरहितो दुर्गमोऽरण्यप्रदेशः,  
 तद्विन कात्वार-सप्ताराट्टीमित्यर्थः व्यतिव्रत्ति-समुद्भूते पार माप्नोतीत्यर्थः ।  
 तदेव स्थानत्रयमाह—अनिदानतया निश्चित दान निदान यद्वा-निशयते-छपते  
 ज्ञानाधाराद्यनालता अयाभापसुखरक्षोपेतमोक्षकला यत्र परशुनेत्र दिव्यमानुष  
 श्चदि प्रायनाप्पत्रमायेन तन्निदान चारिभाराद्यनेन स्वर्गमर्गादि भोगमार्थनेत्यर्थः  
 पदाभित्य मोक्षोप क्रमोदयमेतीति भावः, तस्य भावस्तथा, तद्वर्तनम् अनिदानता,

सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—( तीर्हि टाणेहि संपण्णे अगगारे ) इत्यादि ।

टीका—जिसकी प्रथमोत्पत्ति प्रारंभ नहीं है वह अनादि है अर्थात् जो  
 भादि रहित है तथा अवदम्-पर्यन्त ( अन्त ) जिसका नहीं है वह  
 अनवदम् है अर्थात् जो अनन्त है तथा जिसका काल दीर्घ है वह  
 दीर्घाद् है अर्थात् जो दीर्घकालगम्य है अथवा-जिसका मार्ग दीर्घ है—  
 वह दीर्घाश्च है अर्थात् जिसका मार्ग रास्ता बहुत बड़ा लम्बा है और जो  
 चार गति वाला है ऐसा वह सप्तारक कान्तार है इस दीर्घकान्तार को-  
 निर्जल घ्राणरहित दुर्गम अरण्यप्रदेश क जैसे सप्तार को-जीव तीन  
 कारणों से पार कर देता है—इनमें एक अनिदानरूप कारण है दूसरा-

श्रित ४३ उ- ' तीर्हि टाणेहि संपण्णे अगगारे ' इत्यादि—

टीका—जैसी प्रथमोत्पत्ति ( प्रारंभ ) नहीं होने अनादि कहे उ अन्तरे के के  
 भादि रहित उ तेने अनादि कहे उ अवदम्-पर्यन्त ( अन्त ) ने जेभा  
 अन्तरे कहे उ तेने अनवदम् अथवा अनन्त कहे उ जेना भाग दीर्घ उ  
 तेने दीर्घाद् कहे उ अन्तरे के जेने पार करवाभा दीर्घाग्य अर्थात् य उ अथ  
 उ अथवा जेना भाग दीर्घ उ तेने दीर्घाश्च कहे उ अन्तरे के जेने भाग  
 अतिशय लामे उ अने जे पार अतिशय उ जेना भा सप्तार रूप  
 कान्तारने ( अन्त अन्तरे ) निर्जल घ्राणरहित दुर्गम अरण्य प्रदेश जेना  
 सप्तारने छप त्रय कारणे ( उपाये ) द्वारा पार करी शके उ ते त्रय  
 उपाये नीचे प्रमाणे उ—(१) अनिदानरूप कारण, (२) इतिव्रत्तित्वरूप कारण  
 अने (३) मोक्षवादितारूप कारण

તયા મોગસમૃદ્ધિપ્રાર્થના રહિતતયેત્યર્થઃ ૧। દૃષ્ટિસંપન્નતયા-દૃષ્ટિઃ- સમ્યગ્દૃષ્ટિસ્તયા સંપન્નઃ યુક્તઃ, તદ્ભાવસ્તત્તા, તયા સમ્યગ્દૃષ્ટિતયેત્યર્થઃ ૨। યોગવાહિ- તયા--યોગેન -ચિત્તસમાધિના સર્વત્રાનુત્સુક્ત્વલક્ષણેન વહતીત્યેવં શીલો યોગવાહી, સમાધિસ્થાયીત્યર્થઃ, ઉક્તઞ્ચ—યોગત્રાહિલક્ષણમ્—

દૃષ્ટિસંપન્નતારૂપ કારણ ઓર તીસરા યોગવાહિતારૂપ કારણ હૈ અઞ્ચા- વાધ સુખરૂપ રસ સે યુક્ત ઓર મુક્તિરૂપ ફલવાલી જ્ઞાનાદિ આરાધનારૂપ લતા જિસ કુઠારતુલ્ય દિવ્યમાનુષ્યઋદ્ધિ અથવા દેવલોક કી ઋદ્ધિ કી ઇાહના સે કાટ ડી જાતી હૈ વહ નિદાન હૈ ઇારિત્ર કી આરાધના કરતા હુઆ જીવ પરભવ મેં સ્વર્ગ, મર્ત્ય આદિ કે મોગોં કી ઇાહના કરતા હૈ હસસે ઇારિત્ર મોહનીય કર્મ ઉદય કો પ્રાપ્ત હોતા હૈ અર્થાત્ નિદાન (નિયાણા) કરને વાલા જીવ પરભવ મેં મોગાદિકોં કી ઇાહના સે પ્રેરિત હોકર ઇારિત્રારાધન કરતા હૈ હસસે તપસ્યા ઉસકી નિષ્ફલ હો જાતી હૈ ક્યોં કિ એસા કરને સે ઉસ જીવ કો ઇારિત્રમોહનીય કર્મ કા ઉદય હોતા હૈ ઇચ્છપિ ઇારિત્ર કી પ્રાપ્તિ જીવ કો ઇારિત્રમોહનીય કર્મ કે ક્ષય, ક્ષયોપશમ સે હોતી હૈ પરન્તુ નિદાન બન્ધ સહિત ઇારિત્રારાધન સમ્યક્ ઇારિત્રારાધનરૂપ ન હોકર વહ એક પ્રકાર કા ઢોંગરૂપ હોતા હૈ— દ્રવ્યઇારિત્રરૂપ હોતા હૈ હસસે કર્મ કી નિર્જરા ઓર સંવર ન હોકર પ્રત્યુત ઉસસે ઇારિત્રમોહનીય આદિ કર્મોં કા બંધ ઓર ઉદય હોતા રહતા હૈ અતઃ એસે જીવ કા સંસાર ઘટતા નહીં હૈ ઉલ્ટા ઘટતા રહતા

અઞ્ચાવાધ સુખરૂપ રસથી યુક્ત અને મુક્તિરૂપ ફળવાળી જ્ઞાનાદિ આરા- ધનારૂપ લતા જે કુઠાર (કુઠાડી) તુલ્ય દિવ્ય મનુષ્ય સંબંધી ઋદ્ધિ અથવા દેવલોકની ઋદ્ધિની આધનાથી છેદાઈ બાય છે, તે આધનાનું નામ 'નિદાન' છે ઇારિત્રની આરાધના કરતો જીવ જે પરભવમા સ્વર્ગ, મર્ત્ય આદિના ભોગોની કામના કરે છે, તે તેના કારણે ઇારિત્ર મોહનીય કર્મને ઉદય થાય છે એટલે કે નિદાન (નિયાણું) કરનારો જીવ પરભવના ભોગાદિકોની આધનાથી પ્રેરા- ધને ઇારિત્રારાધના કરે છે, તે કારણે તેની તપસ્યા નિષ્ફળ બાય છે, કારણ કે એવું કરવાથી તે જીવના ઇારિત્રમોહનીય કર્મને ઉદય થાય છે. જે કે ઇારિત્રમોહનીય કર્મના ક્ષય અને ક્ષયોપશમથી જ જીવને ઇારિત્રની પ્રાપ્તિ થાય છે, પરન્તુ નિદાનબન્ધ સહિતની ઇારિત્રારાધના સમ્યક્ ઇારિત્રારાધન રૂપ હોતી નથી—તે તે એક ઢોંગરૂપ જ હોય છે—દ્રવ્ય, ઇારિત્રરૂપ હોય છે, તેથી કર્મની નિર્જરા અને સંવર થવાને બદલે ઇારિત્રમોહનીય આદિ કર્મોના બંધ અને ઉદય થતો રહે છે. તેથી એવા જીવનો સંસાર ઘટવાને બદલે

“गीयाविशी अचवळे अमाई अकुळाले, पिणीपणिणए दते भोगव उवरा  
गर्ब” ॥ (उच अच्य ३४ गा २७)

क्रिञ्च—“पयणुकोहमाणेय, मायालोमपयणुए ।

पसतधिचे दंतप्या, भोगव उवराणव ॥” (उच अच्य ३४ गा २९)

छाया—नीचवृत्तिरचपञ्चः प्रमायी अकुतूरुळः । विनीतविपयो दान्तो

योगवान् उपधानवान् । तया-प्रतनुकोपमानघ, मायालोमपतनुकः ।

प्रश्नान्तविचो दाहात्मा, योगवान् उपधानवान् । तस्य भावस्वत्वा तया समाधि  
स्थापितयस्यैः ३ ॥ सू० १५ ॥

हे इसीलिये ससार से परे होने के लिये अनिदान को एक कारण रूप  
से यहाँ गिनाया गया है। संसार से परे होने के लिये एक दूसरा  
और भी कारण है जिसका नाम इष्टिसपन्नता है सम्पददर्शन से युक्त  
होना इसका नाम इष्टिसपन्नता है इसी तरह से एक तीसरा कारण  
योगवाहिता है चित्त को समाधिस्थ रखना योगवाहिता चित्त यदि  
सांसारिक पदार्थों में उत्सुकता से युक्त बना रहता है तो वह चारिषा  
राघन में बाधक होता है अतः निमेल और अतीचारों से रहित चारि  
प्राराधन हो इसके लिये चित्त का समाधिस्थ होना परमावश्यक है  
इससे भी जीव ससार को पार कर देता है योगवाही का लक्षण इस  
प्रकार का कहा गया है—“गीयाविशी अचवळे अमाई” इत्यादि,  
(उत्तराच्य ३४ गा २९) ‘पयणुकोहमाणे य’ इत्यादि ॥ सू० १५ ॥

बधतो च शब्दे उ ते शब्दे ससार पार करवाने भाटे अनिदानने अके शब्द  
रूपे अर्थात् अज्ञानवर्मा आवेष्ट उ ससार पार करवाने भाटेने। नीले उपाय  
इष्टिसपन्नता उ सम्पददर्शनशी मुक्त यत्नं तेनुं नाम च इष्टिसपन्नता उ  
ससार पार करवाने अके नीले उपाय नीचे प्रभावे उ भोजवाहिताशी पक्ष  
एव तरी व्यव उ चित्तने सम चित्त शब्दं तेनुं नाम भोजवाहिता उ  
सांसारिक पदार्थोंमा अे चित्त हीन शब्दे उ तो चारित्राशधना यथ शब्दी  
नशी निर्भण अने अतिचाराशी रहित चारित्राशधन भाटे चित्तनुं समाधिस्थ  
होनुं अत्यन्त अवश्यक उ आ शीते भोजवाहिता द्वारा पक्ष एव ससार  
हंतारने पार करी नाये उ भोजवाहितुं आ प्रभावे लक्ष्यं कर्तुं उ—  
“गीयाविशी अचवळे अमाई” इत्यादि— (उत्तराच्य ३४ गा २९)  
“पयणुकोहमाणे य” इत्यादि ॥ सू० १५ ॥

भवव्यतिव्रजनं च कालविशेष एव स्यादिति कालविशेषप्ररूपणामाह—

मूलम्—तिविहा ओसपिणी पणत्ता, तं जहा—उक्कोसा,  
मज्झिमा, जहन्ना १ । एवं छपि समाओ भाणियव्वाओ जाव  
दूसमदूसमा २ । तिविहा उस्सपिणी पणत्ता, तं जहा—उक्कोसा  
मज्झिमा जहन्ना ८ । एवं छपि समाओ भाणियव्वाओ जाव  
सुसमसुसमा १४ ॥ सू० १६ ॥

छाया—त्रिविधा अवसर्पिणी प्रज्ञप्ता, तद्यथा—उत्कृष्टा, मध्यमा, जघन्या १।  
एवं पडपि समा भणितव्याः, यावत् दुष्पमदुष्पमा ६। त्रिविधा उत्सर्पिणी प्रज्ञप्ता,  
तद्यथा—उत्कृष्टा, मध्यमा जघन्या च एवं पडपि समा भणितव्या यावत् सुसम-  
सुसमा १४ ॥ सू० १६ ॥

टीका—' तिविहा ' इत्यादि—चतुर्दशसूत्री सुगमा । नवरम्—अवसर्पिणी-  
प्रथमेऽरके उत्कृष्टा, त्रि चतुःपञ्चमरूपेषु चतुष्वरकेषु मध्यमा, चरमेपण्ठेऽरके जघ-  
न्या १। एवं सुषमसुषमादिषु पदस्वपि समासु प्रत्येकमुत्कृष्ट-मध्यमजघन्यरूपं त्रयं  
त्रयं कल्पनीयं यावत्—दुष्पमदुष्पमा ७। तथा—उत्सर्पिण्याः, दुष्पमदुष्पमादितद्-

संसार से पार जीव कालविशेष में ही होता है अतः अब सूत्रकार  
कालविशेष की प्ररूपणा करते हैं—(तिविहा ओसपिणी पणत्ता) इत्यादि ।  
टीकार्थ—अवसर्पिणी तीन प्रकार की कही गई गई है एक उत्कृष्ट अवस-  
र्पिणी, दूसरी मध्यम अवसर्पिणी और तीसरी जघन्य अवसर्पिणी  
इनमें प्रथम अरक में उत्कृष्ट अवसर्पिणी होती है, द्वितीय, तृतीय और  
चौथे तथा पांचवें अरक में मध्यम अवसर्पिणी होती है और छठे अरक  
में जघन्य अवसर्पिणी होती है इसी तरह से सुषमसुषमा आदि छहों  
कालों में भी प्रत्येक काल में उत्तम, मध्यम और जघन्यरूप तीन २

कालविशेषमां न एव संसार पार करे छे. तेथी सूत्रकार हुवे काल-  
विशेषनी प्ररूपणु करे छे—“ तिविहा ओसपिणी पणत्ता ” इत्यादि—

टीकार्थ—अवसर्पिणी त्रयु प्रकारनी कही छे—(१) उत्कृष्ट अवसर्पिणी, (२) मध्यम  
अवसर्पिणी अने (३) जघन्य अवसर्पिणी पडेता आरांमां उत्कृष्ट अवसर्पिणी  
होय छे, भील, त्रील, योथा अने पांचमां आरांमां मध्यम अवसर्पिणी होय  
छे अने छहां आरांमां जघन्य अवसर्पिणी होय छे. ओन प्रमाणे सुषमसुषमा



मेदानां चानसर्पिष्युक्तविपर्ययेणोत्कृष्टमध्यमजघन्यस्व प्राग्बद् योज्य तथाहि—  
उत्सर्पिणी पश्चिमेऽरके उत्कृष्टा, चतुर्षु मध्यमा, प्रथमे मघन्या । एव दुष्यमदुष्य-  
मादिषु पट्टसु समासुत्कृष्टमध्यमजघ-  
न्यरूपं प्रथमं प्रथमवत्सर्पिष्युक्तविपर्ययेण वाच्य-  
मिति ॥ सू० १६ ॥

कालश्रवणा मधेसन्द्रशयमां प्रायुक्ताः, तत्साधर्म्यान् पुद्गलधर्मान् निरूप-  
यन् पञ्च सूत्राणि सङ्गोक्तान्याह—

मूलम्—ताहिं ठाणेहि अच्छिन्ने पोग्गले चलेज्जा, त  
जहा—आहारिज्जमाणे वा पोग्गले चलेज्जा, विकुखमाणे वा पोग्गले  
चलेज्जा, ठाणाओ वा ठाण सकामिज्जमाणे पोग्गले चलेज्जा ।  
तिविहा उवही पण्णत्ता, त जहा-कम्मोवही, सरीरोवही, घाहि  
रभडमत्तोवही । एव असुरकुमारोणं भाणियध्व । एव एग्गिदिय  
नेरइयवज्ज जाव वेमाणियाणं १ । अहवा तिविहा उवही पण्णत्ता  
त जहा सच्चित्ता अच्चित्ता मीसया । एव णेरइयाण निरतर जाव

मेद कल्पित कर लेना चाहिये तथा उत्सर्पिणी के दुष्यमदुष्यमादि जो  
मेद हैं उनमें, अपसर्पिणी में जो उत्तम मध्यम आदि कहे गये हैं उनसे  
विपरीतरूप में उत्कृष्टादि मेद कहना चाहिये जैसे—उत्सर्पिणी का जो  
पश्चिम अरक है उसमें उत्कृष्ट उत्सर्पिणी है, पार अरकों में मध्यम  
उत्सर्पिणी है और प्रथम अरक में जघन्य उत्सर्पिणी है इसी तरह से  
दुष्यमदुष्यमादि ६ काशों में उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्यरूप तीन २  
मेद अपसर्पिणी में कथन के उल्टेरूप में कहना चाहिये ॥ सू० १६ ॥

आदि छन्दे कायोभा यत्तु प्रत्येक काणनां उत्तम, मध्यम अने जघन्यरूप त्रय  
वेदो समञ्च वेवा नेधजे तथा उत्सर्पिणीना दुष्यमदुष्यमादि ने वेदो छे तेमां,  
अपसर्पिणीना ने उत्तम, मध्यम आदि वेदो क्खया छे तेना इत्ता विपरीत  
रूपे उत्कृष्ट वेदोनुं कथन करुनुं नेधजे अन्ते के उत्सर्पिणीना छेत्ता आशामां  
उत्कृष्ट उत्सर्पिणी देय छे, पश्चिमेना पार आशामां मध्यम उत्सर्पिणी देय  
छे अने पडेटा आशामां जघन्य उत्सर्पिणी देय छे अने समञ्चुं अने  
प्रमादे दुष्यमदुष्यमादि छे कायोभां उत्कृष्ट, मध्यम अने जघन्यरूप त्रय वेदोनुं  
कथन अपसर्पिणीना कथन इत्तां उग्गी शीते करुनुं नेधजे ॥ सू० १६ ॥

वेमाणियाणं २ । तिविहे परिग्गहे पणत्ते, तं जहा-कम्मपरिग्गहे, सरीरपरिग्गहे, वाहिरभंडमत्तपरिग्गहे । एवं असुरकुमाराणं । एवं एगिंदियनेरइयवज्जं जाव वेमाणियाणं ३ । अहवा तिविहे परिग्गहे पणत्ते, तं जहा-सचित्ते अचित्ते मीसए । एवं नेरइयाणं निरंतरं जाव वेमाणियाणं ४ ॥ सू० १७ ॥

छाया—त्रिभिः स्थानैरच्छिन्नः पुद्गलश्चलति, तद्यथा—आहार्यमाणो वा पुद्गलश्चलति, विक्रियमाणो वा पुद्गलश्चलति, स्थानाद्वा स्थानं संक्रमन् पुद्गलश्चलति । त्रिभिः उपधिः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—कर्मोपधिः, शरीरोपधिः, बाह्यभाण्डामत्रोपधिः । एवमसुरकुमाराणां भगितव्यम् । एवमेकेन्द्रियनैरयिकवर्जं यावद् वैमानिकानाम् १ । अथवा त्रिविध उपधिः प्रज्ञप्तस्तद्यथा सचित्तः अचित्तः मिश्रकः । एवं नैरयिकाणां निरन्तरं यावद् वैमानिकानाम् । त्रिविधः परिग्रहः प्रज्ञप्तः तद्यथा—कर्मपरिग्रहः, शरीरपरिग्रहः, बाह्यभाण्डामत्रपरिग्रहः । एवमसुरकुमाराणाम् । एवमेकेन्द्रियनैरयिकवर्जं यावद् वैमानिकानाम् ३ । अथवा—त्रिविधः परिग्रहः प्रज्ञप्तः, तद्यथा सचित्तः, अचित्तः, मिश्रकः । एव नैरयिकाणां निरन्तरं यावद् वैमानिकानाम् ४ ॥ सू० १७ ॥

टीका—‘ तीहिं ठाणेहिं ’ इत्यादि ।

खड्गादिना छिन्नः पुद्गलः समुदायाच्चलत्येवेत्यत आह—‘ अच्छिन्ने पुग्गले ’ इति । त्रिभिः कारणैः खड्गादिभिरच्छिन्न एव पुद्गलश्चलति । तान्येव कारणा-

अचेतन द्रव्यरूप जो काल है उसके धर्म इस प्रकार से कहे अब उसके साधर्म्य से सूत्रकार पुद्गल धर्मों की निरूपणा करने के निमित्त सदण्डक पांचसूत्रों का कथन करते हैं—( तीहिं ठाणेहिं अच्छिन्ने पुग्गले ) इत्यादि ।

टीकार्थ—खड्ग आदि द्वारा छिन्न हुआ पुद्गल समुदाय से चलायमान होती ही है अतः सूत्रकार ने यहाँ ऐसा कहा है कि खड्ग आदि से छिन्न नहीं हुआ पुद्गल जिन कारणों से चलायमान होता है वे कारण इस प्रकार

अचेतन द्रव्यरूप के कारण छे तेना धर्मन्तु आ प्रमाणे कथन करीने हवे सूत्रकार तेना साधर्म्यनी अपेक्षाओ पुद्गल, धर्मोनी प्रपञ्चा करवा निमित्ते सदण्डक पांचसूत्रोनु कथन करे छे—“ तीहिं ठाणेहिं अच्छिन्ने पुग्गले ’ इत्यादि. टीकार्थ—अद्ग आदि द्वारा छिन्न थयेतु पुद्गल समुदायमाथी चलायमान थाय छे, तेथी सूत्रकारे अर्धी ओतु कहु छे के अद्ग आदिथी छिन्न न थयुं होय ओतु पुद्गल नीयेना त्रयु कारणोने दीधे चलायमान थाय छे—(१) उपना

न्याह-भाहार्यपाम-भाहारतया जीवन श्रवमाण पुद्गलो नीचेनाऽऽर्कणगत स्वस्थानाच्चनति १। एव विक्रियमाण पुद्गल वैक्रियकरणवशरचितया चलति २। तथा स्थानास्थानान्तरं इस्वाग्निना सनाम्पमाणमवति ३। 'विरिहा उररी' इत्यादि, उपशोषते-शोष्यते, समार स्याप्यत वा जीवोऽनेनेत्युपधि । स प्रिधि पस्थपादि-कर्मोपधिः कर्मोपधि १, शरीरमनोपधि शरीरापधिः २, मण्डानि-माननानि, अमषाणि-कांस्यादिमाननानि भाण्डामप्राणि, तान्येवोपधि भाण्डा मशोपधि, वाय-शरीरपदिर्वर्त्तवासी माण्डामशोपधिन्वेति-वायभाण्डामशोपधिः।

से हैं-जीव के द्वारा जो पुद्गल आहाररूप से ग्रह्यमाण होता है उस पुद्गल का जीव के द्वारा आकर्षण होता है इसलिए यह अपने स्थान से चलायमान होता है यह प्रथम कारण है। इसी तरह से जो पुद्गल विक्रियमाण होता है वह पुद्गल विक्रिया करनेरूप प्रिया के द्वारा पशयती होने के कारण अपने स्थान से चलायमान होता है यह दूसरा कारण है तथा एव स्थान से दूसरे स्थान पर जब पुद्गल जाता है-तब यह चलायमान होता है यह तीसरा कारण है, समार में जिसके द्वारा जीव रखा जाता है उसका नाम उपधि है यह उपधि तीन प्रकार की है एक कर्मोपधि, दूसरी शरीरोपधि और तीसरी भाण्डमशोपधि कर्म रूप जो उपधि है यह कर्मोपधि है शरीररूप जो उपधि है यह शरीरोपधि है तथा भाजनरूप एव वास्यादिभाजन रूप जो उपधि है यह वायमाणमशोपधि है यह भाण्डमशोपधि शरीर स भिन्न होती है इस

वाक्य में प्रकृत करने के लिए यहाँ वायुवाह का प्रयोग हुआ है अथवा द्वारा जो पुद्गलने आहार रूपे प्रदत्त करवाया आये है ते पुद्गलने एवम द्वारा आगत वायु है तेषी ते वायुने स्थानेधी अतावधान वायु है (२) जो पुद्गल विक्रियमाण वायु है ते पुद्गल विक्रिया करवाएष क्रिया द्वारा-विक्रियाने अधीन ए ने-वायुने स्थानेधी अतावधान वायु है (३) न्याहरे पुद्गलने न्येव स्थानेधी कोने एव ने एव न्यायाभां आये है त्वारे एव ते अतावधान वायु है

म अर्थां नेना द्वारा एवने वायुवाभां अने ते नेनु न म उपधि है त उपधि ननु प्रा रदी है (१) उपधि शरीरोपधि अने (२) काण्डमशोपधि अमशु के उपधि है तने कर्मोपधि है (३) शरीरोपधि के उपधि है तेने शरीरोपधि है (४) न्याहरे एवने वायु (५) अदि (६) अकर्मोपधि के उपधि है तेने अत काण्डमशोपधि है (७) अ काण्डमशोपधि शरीरोपधि अदि (८) अ एवने अत वायुने अरे अदी अ ए अने अने अ

અથવા 'વાહ્ય માણ્ડમાત્રોપધિઃ' ઇતિચ્છાયા, તત્ર માણ્ડ-વસ્ત્રાભરણાદિ, તદેવ માત્રા-પરિચ્છેદઃ, સૈવોપધિઃ, વાહ્યશ્વાસૌ, ઇતિ કર્મધારયઃ । એવમ્-અનેન પ્રકારેણ ચતુર્વિંશતિદ્વંડકચિન્તાયામસુરકુમારાદીનાં ત્રયોડ્વયુપધયો વાન્યાઃ । એવમેકેન્દ્રિયનારકવર્જ યાવદ્ વૈમાનિકાનાં ત્રયોડ્વયુપધયો વિજ્ઞેયાઃ, નારકૈકેન્દ્રિયાણામુપકરણસ્યાભાવાત્તન્નિપેધઃ ૧ । દ્વીન્દ્રિયાદીનાં તુ-કેપાશ્ચિદુપકરણં દૃશ્યતએત્ર, અથ-વેતિ પ્રકારાન્તરઘ્યોતકઃ, અથવા પ્રકારાન્તરેણોપધિસ્ત્રિવિધઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ-સચિત્તોડચિત્તો મિશ્ર ઇતિ સચિત્તોપધિઃ શૈલહરિતપત્રાદિભાજનમ્, અચિત્તો વસ્ત્રાદિઃ મિશ્રઃ-

વસ્ત્રાભરણાદિક્ રૂપમાણ્ડ કા જો પ્રમાણ કર લિયા જાતા હૈ વહ માણ્ડ-મત્રોપધિ હૈ ઓર વહ માણ્ડમત્રોપધિ વાહ્યરૂપ હૈ અન્તરંગ રૂપ નહીં હૈ, હસ તરહ સે ચતુર્વિંશતિદ્વંડક કી ચિન્તા મેં અસુરકુમાર આદિકોં કે વહ તીનોં પ્રકાર કી ઉપધિ હોતી હૈ એકેન્દ્રિય ઓર નારકોં કો છોડકર યાવત્ વૈમાનિકોં કે મી વહ તીનોં પ્રકાર કી ઉપધિ હોતી હૈ નારક ઓર એકેન્દ્રિયોં કે ઉપકરણ કે અભાવ સે તીન પ્રકાર કી ઉપધિ નહીં હોતી હૈ હસીલિયે હનકા વહાં નિષેધ કિયા ગયા હૈ કિતનેક દ્વીન્દ્રિય આદિકોં કે તો ઉપકરણ દેખા હી જાતા હૈ અથવા પ્રકારાન્તર સે મી ઉપધિ તીન પ્રકાર કી હૈ-જૈસે સચિત્ત અચિત્ત ઓર મિશ્ર જો ઉપધિ સચિત્ત હોતી હૈ વહ સચિત્તોપધિ હૈ જૈસે-શૈલ, હરિતપત્રાદિ કા વનાયા ભાજન, જો ઉપધિ અચિત્ત હોતી હૈ વહ અચિત્તોપધિ હૈ જૈસે શરીરાદિ ઓર જો ઉપધિ મિશ્રરૂપ હોતી હૈ વહ મિશ્રોપધિ હૈ જૈસે

કરાયો છે. અથવા વસ્ત્રાભરણુ આદિરૂપ ભાડતું જે પ્રમાણુ કરી લેવામાં આવે છે તેને ભાડમત્રોપધિ કહે છે, અને તે ભાડમત્રોપધિ બાહ્યરૂપ હોય છે-અન્તરંગ રૂપ હોતી નથી. ૨૪ ઠંડકના અસુરકુમાર આદિ જીવોને તે ત્રણે પ્રકારની ઉપધિનો સદ્ભાવ હોય છે એકેન્દ્રિય જીવો અને નારકો સિવાયના બાકીના વૈમાનિક પર્યન્તના જીવોમાં પણ આ ત્રણે પ્રકારની ઉપધિનો સદ્ભાવ હોય છે નારકો અને એકેન્દ્રિયોમાં ઉપકરણના અભાવને લીધે ત્રણે પ્રકારની ઉપધિનો સદ્ભાવ હોતો નથી, તે કારણે અહીં તેમનો નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે કેટલાક દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવોના ઉપકરણુ તો બેઈ શકાય છે અથવા અન્ય રીતે પણ ઉપધિના ત્રણુ પ્રકાર પડે છે-(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર. જે ઉપધિ સચિત્ત હોય છે તેને સચિત્તોપધિ કહે છે. જેમકે શૈલ, હરિત પત્રાદિતુ બનાવેલુ ભાજન ( પાત્ર ) જે ઉપધિ સચિત્ત હોય છે તેને અચિત્તોપધિ કહે છે જેમકે શરીર વગેરે જે ઉપધિ મિશ્રરૂપ હોય છે તેને મિશ્રોપધિ કહે છે. જેમકે પરિણુતપ્રાય શૈલભાજન.

પરિણતમાય શૈલમાજનમેવેતિ । एषम्-अन्नं प्रकारं दण्डचिन्ताया नैरयिष्णाणां  
निरन्तरं प्रय उपचयो बाह्याः यावत्-वैमानिकानां वैमानिकपर्यन्तमित्यर्थः । तत्र  
नारकाणां सच्चिदोपधिः शरीरम्, अचेतनउत्पत्तित्वानम्, मिथ शरीरमेषोच्छ्वा  
सादिपुद्गलपुक्तम्, उच्छ्वासादीनां सचेतन चेतनत्वेन मिश्रणस्य विवक्षणात् ।  
एष श्लेषाद्यामपि मिश्रत्व विद्येयमिति ३। परिग्रहप्ररूपणामाह- त्रिविधे परिग्रहे  
इत्यादि परिग्रहवै-स्वीक्रियते इति परिग्रहः-मूर्च्छाविषय इति । इहैव ' एषाम  
यम् ' इति उपपदैश्चमागत्राद्य । स त्रिविधः-कर्मपरिग्रह षाष्ट भाण्डामश्रपरि

પરિણતપ્રાય શૈલમાજન ચતુર્વિદ્યશક્તિવૃણકની ચિન્તા મેં નૈરયિકોં કો  
નિરન્તર યે તીનોં ઉપચયાં હોતી હેં-યાવત્ વૈમાનિકોં યો મી યે તીનોં  
ઉપચયાં હોતી હેં, નારકોંકો સચ્ચિદોપધિ શરીર હેં અચ્ચિત્તોપધિ ઠનકી  
ઉત્પત્તિ કા સ્થાન હેં ઓર ઉચ્છ્વાસ આદિ સે યુક્ત શરીર હી મિશ્ર  
ઉપચિ હેં કયોં કિ ઉચ્છ્વાસ આદિકોં કો સચેતન ઓર અચેતન ડોનોં  
રૂપ સે વિવક્ષિત કિયા ગયા હેં હસી પ્રકાર સે શેષોં મેં મી મિશ્રતા  
જાનમી આહિયે ।

પરિગ્રહ મો ત્રીન પ્રકાર કા કહા ગયા હેં-જો સ્વોકાર કિયા જાતા  
હે, વહ પરિગ્રહ હેં અર્થાત્ મૂર્છા કા જો વિષય ડોના હેં વહ પરિગ્રહ હેં  
વૈસે તો પરિગ્રહ મૂર્છાંભાવ હી હેં વહ પરિગ્રહ કર્મપરિગ્રહ, શરીર પરિ  
ગ્રહ ઓર ષાષ્ટભાણ્ડામશ્રપરિગ્રહ કે મેડ સે ત્રીન પ્રકાર કા કહા ગયા  
હેં-इनमें जीव को जो ये मेर हें ऐसा परिणाम होना है वही परिग्रह है  
परन्तु मूर्च्छाभाव के निमित्त होने से शरीरादिकों को भी परिग्रहरूप

૨૪ કલકોની અપેક્ષાએ વિચાર કરવામાં આવે તો નારકોમાં આ ત્રણે  
ઉપધિઓનો સહ સદ્ભાવ રહે છે વૈમાનિક પર્યંતના સંબંધા હવેમાં પણ  
આ ત્રણે ઉપધિઓનો સદ્ભાવ હોય છે નરકોમાં સચ્ચિદોપધિ રૂપ શરીર  
હોય છે, અચ્ચિદોપધિ તેમજ ઉત્પત્તિ સ્થાન હોય છે અને ઉચ્છ્વાસ આદિથી  
યુક્ત શરીર જ મિશ્રે પધિ રૂપ હોય છે, કારણ કે ઉચ્છ્વાસ આદિને સચેતન  
અને અચેતન બે બન્ને રૂપે વિવક્ષિત કરવામાં આવેલ છે એજ રીતે બાહી  
નામા પણ મિશ્રતા સમજી લેવી

પરિગ્રહ પણ ત્રણ પ્રકારનો ઠહો છે એનો સ્વીકાર કરવામાં આવે છે  
તેને પરિગ્રહ કહે છે એટલે કે મૂર્છાના જે વિષય છે તેને પરિગ્રહ કહે છે  
આમ તો પરિગ્રહ મૂર્છાંભાવ રૂપ જ ત્રણાય છે તે પરિગ્રહના ત્રીણ પ્રમાણે  
ત્રણ પ્રકાર ઠહો છે-(૧) કર્મ પરિગ્રહ, (૨) શરીર પરિગ્રહ અને (૩) બાહી  
બાંધમત્ર પરિગ્રહ. ' આ માટે છે, એવાં હવેના પરિણામને પરિગ્રહ કહે  
છે, પરન્તુ મૂર્છાંભાવના નિમિત્ત રૂપ રોજાને લીધે શરીર વગેરેને પણ

ग्रहः । एवम्—अनेन प्रकारेण त्रिविधोऽपि परिग्रहोऽसुरकुमारणां भवति । एवमे-  
केन्द्रियनैरयिकर्जम्, एकेन्द्रियान् नैरयिकांश्च वर्जयित्वा यावद्वैमानिकानां—वैमा-  
निकपर्यन्तं त्रिविधोऽपि परिग्रहो भवति । एकेन्द्रियाणां नारकाणां च कर्मादिवेव  
संभवति न तु भाण्डादिरिति ॥ सू० १७ ॥

पुद्गलधर्माणां त्रित्व निरूप्य संपति जीवधर्माणां त्रित्वं सदण्डकैस्त्रिभिः  
सूत्रैराह —

मूलम्—तिविहे पणिहाणे पणत्ते, तं जहा—मणपणिहाणे,  
वयपणिहाणे, कायपणिहाणे । एवं पंचिंदियाणं जाव वैमाणियाणं ।  
तिविहे सुप्पणिहाणे पणत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्प-  
णिहाणे, कायसुप्पणिहाणे । संजयमणुस्साणं तिविहे सुप्पणिहाणे  
पणत्ते, तं जहा—मणसुप्पणिहाणे, वयसुप्पणिहाणे, कायसुप्पणि-  
हाणे । तिविहे दुप्पणिहाणे पणत्ते, तं जहा—मणदुप्पणिहाणे,  
वयदुप्पणिहाणे, कायदुप्पणिहाणे । एवं पंचिंदियाणं जाव  
वैमाणियाणं ॥ सू० १८ ॥

छाया—त्रिविध प्रणिधानं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—मनःप्रणिधानं, वचःप्रणिधानं,  
कायप्रणिधानम् । एवं पञ्चेन्द्रियाणां यावद् वैमानिकानाम् । त्रिविधं सुप्रणिधानं  
प्रज्ञप्तं, तद्यथा—मनःसुप्रणिधानं, वचः सुप्रणिधानं, कायसुप्रणिधानम् । संयतम-  
जुष्याणां त्रिविधं सुप्रणिधानं प्रज्ञप्तं, तद्यथा—मनःसुप्रणिधानं, वच सुप्रणिधानं,

कह दिया गया है । यह तीनों प्रकार का परिग्रह एकेन्द्रिय और नैरयिक  
को छोड़कर यावत् वैमानिकों तक होता है एकेन्द्रियों में और नैरयिकों  
में कर्मादिरूप परिग्रह ही होता है भाण्डादिरूप परिग्रह नहीं इसलिये  
यहां इनको छोड़ दिया गया है ॥ सू० १७ ॥

परिग्रह रूपे प्रकट करवायां आवेत्त छे. आ त्रये प्रकारना परिग्रहोने। सदूलाव  
नारको अने ऐकेन्द्रिय सिवायना वैमानिक पर्यन्तना समस्त लोकोमां डोय  
छे ऐकेन्द्रियो अने नारकोमां कर्मादिरूप परिग्रहोने न सदूलाव डोय छे.  
भाण्डि रूप परिग्रहोने सदूलाव डोयो नथी, ते कारणे तेमने अर्डी छोडी  
हेवातुं कहुं छे. ॥ सू. १७ ॥

कायसुप्रणिधानम् । त्रिविधं दुष्प्रणिधानं प्रवृत्तं तद्यथा-मनोदुष्प्रणिधानं, चक्षुः  
दुष्प्रणिधानं, कायदुष्प्रणिधानम् । एवंपञ्चेन्द्रियाणां यावद् वैमानिकानाम् ॥ सू० १८ ॥

टीका—' त्रिविधे पणिहाणे ' इत्यादि, सुगम, नवरम्-प्रणिहितः-प्रणिधा-  
नम् एकाग्रम्, तस्य मनोवाक्यायमेवात्रिविधम् । तत्र मनसः प्रणिधानं मनः-  
प्रणिधानम्, परमितरे अपि । तस्य चतुर्विधत्विदण्डके पञ्चेन्द्रियाणां भवति ।

इस प्रकार से पुद्गलधर्मों में त्रिरूपता का कथन करके अब सूत्रकार  
जीव धर्मों में दण्डकसहित तीनसूत्रों द्वारा त्रिविधता का कथन करते हैं  
( त्रिविधे पणिहाणे पण्यसे ) इत्यादि ।

सूत्रार्थ-प्रणिधान तीन प्रकारका कहा गया है एक मनः प्रणिधान, दूसरा  
चक्षुः प्रणिधान, और तीसरा कायप्रणिधान इसी तरह का कथन  
पञ्चेन्द्रियों से लेकर यावत् वैमानिक देवों तक करना चाहिये

सुप्रणीधान भी तीन प्रकार का कहा गया है एक मनः सुप्रणि-  
धान, दूसरा चक्षुःसुप्रणिधान, और तीसरा काय सुप्रणिधान, संपत्त  
मनुष्यों को यह तीनों प्रकार का सुप्रणिधान होता है दुष्प्रणिधान भी  
तीन प्रकार का कहा गया है जैसे-मनः दुष्प्रणिधान, चक्षुः दुष्प्रणिधान  
और कायदुष्प्रणिधान यह दुष्प्रणिधान भी पञ्चेन्द्रिय जीवों से लेकर  
यावत् वैमानिक जीवों तक होता है

टीकाथ— एकाग्रता का नाम प्रणिधान है यह प्रणिधान,  
मनः, चक्षुः और काय के भेद से तीन प्रकार का कटा

भा रीते पुद्गल धर्मोभां त्रिविधत्वात् चक्षुः करीने इवे सूत्रार ७५  
धर्मोभा इ इ इ त्रिविधत्वात् चक्षुः करवाने भाटे त्रय सूत्रोत्तुं चक्षुः करे ऐ  
' त्रिविधे पणिहाणे पण्यसे ' इत्यादि—

सूत्रार्थ-प्रणिधानना नीचे प्रमाणे त्रय प्रकार कथा ऐ-(१) मनः प्रणिधान, (२)  
चक्षुः प्रणिधान अने (३) काय प्रणिधान. भा प्रकारत्तुं चक्षुः पञ्चेन्द्रियोषी  
कथने वैमानिके पञ्चतना लयो रिषे समत्तुं

सुप्रणिधानत्वा पञ्च त्रय प्रकार कथा ऐ (१) मनः सुप्रणिधान, (२)  
चक्षुः सुप्रणिधान अने (३) काय सुप्रणिधान सवत् मनुष्योभां भा त्रये  
प्रकारत्वा सुप्रणिधानेनाः सइभाप डोष ऐ दुष्प्रणिधानना पञ्च त्रय प्रकार  
कथा ऐ-(१) मनः दुष्प्रणिधान, (२) चक्षुः दुष्प्रणिधान अने (३) काय दुष्प्र-  
णिधान भा दुष्प्रणिधानेनाः सइभाप पञ्च पञ्चेन्द्रियोषी कथने वैमानिके पञ्च  
तना लयोभा देय ऐ

टीकाथ—येकाग्रत्वात् नाम प्रणिधान ऐ ते प्रणिधानने मनः,  
चक्षुः अने कायाना सेषी त्रय प्रकारत्तुं कथुं ऐ मननी येकाग्रत्वाने भना

एक द्वित्रिचतुरिन्द्रियाणां तु न भवति तेषां सामस्त्येन योगाभावात् । यावद् वैमानिकानां वैमानिकपर्यन्तं त्रिविधमपि प्रणिधानं भवति । प्रणिधानं हि शुभा-शुभभेदाद् द्विविध, तत्र प्रथमं शुभप्रणिधानमाह—‘ त्रिविधे ’ इत्यादि, मनोवा-कायभेदात्सुप्रणिधानं त्रिविधम् । सामान्यमूत्रमेतत् । विशेषमाश्रित्य तु चतुर्विंश-तिदण्डकचिन्तायां त्रिविधं सुप्रणिधानं मनुष्याणामेव तत्रापि संयतानामेवेदं भवति, चारित्रपरिणामरूपत्वा दस्येति । अथाशुभमाह—‘ त्रिविधे ’ इत्यादि, दुष्ट प्रणि-

गया है इनमें जो मन की एकाग्रता है वह मनः प्रणिधान है इसी प्रकार से वचन की और काय की एकाग्रता को लेकर वचनप्रणिधान और कायप्रणिधान जानना चाहिये यह तीनों प्रकार का प्रणिधान चतुर्विं-शतिदण्डक में पचेन्द्रियजीवों को होता है एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों को यह नहीं होता है क्यों कि इनको तीनों योग नहीं होते हैं । इसी प्रकार से यावत् वैमानिक जीवों तक में यह तीनों प्रकार का प्रणिधान होता है । प्रणिधान शुभ और अशुभ के भेद से दो प्रकार का होता है इनमें शुभप्रणिधान मनः सुप्रणिधान और वचन एवं काय के सुप्रणिधान को लेकर तीन प्रकार का है यह कथन सामान्य कथन है विशेष कथन की अपेक्षा लेकर जब चतुर्विंशतिदण्डक में इस त्रिविध सुप्रणिधान की चिन्ता की जाती है तब यह त्रिविध सुप्र-णिधान संयत मनुष्यों को ही होता है क्यों कि यह सुप्रणिधान चारित्र परिणामरूप होता है अशुभप्रणिधान-दुष्टप्रणिधान अशुभ में प्रवृत्ति-

प्रणिधान कडे छे, वचननी अेकाग्रताने वचन प्रणिधान कडे छे अने हायानी अेकाग्रताने कायप्रणिधान कडे छे आ त्थे प्रकारना प्रणिधानेने सदृभाव पचेन्द्रियथी लधने वैमानिके पर्यन्तना लुवोभां ल डोय छे. अेकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय अने चतुरिन्द्रिय लुवोभां त्थे प्रणिधानेने सदृभाव डोतो नथी, कारणु के ते लुवोभा त्थे योगेने सदृभाव डोतो नथी

अे ल प्रभात्ते वैमानिके पर्यन्तना लुवोभां आ त्थे प्रकारना प्रणिधान डोय छे. प्रणिधान शुभ अने अशुभना लेदथी अे प्रकारनु डोय छे तेमाथी शुभ प्रणिधानना नीचे प्रभात्ते त्थे लेद छे—(१) मन सुप्रणिधान, (२) वचन सुप्रणिधान अने (३) काय सुप्रणिधान. आ कथन सामान्य कथन छे. विशेष कथननी अपेक्षाअे न्यारे २४ दडकेना लुवोभां तेना विचार करवामां आवे, तो संयत मनुष्येभा ल आ त्थे सुप्रणिधानेने सदृभाव डोय शके छे, कारणु के आ सुप्रणिधान चारित्र परिणाम रूप डोय छे अशुभ प्रणिधान ( दुष्ट प्रणिधान ) अशुभ प्रवृत्ति रूप डोय छे. ते पणु मन, वचन अने



धान दुष्प्रणिधानम्, अशुभप्रवृत्तिरूपम्, तदपि मनोवाक्कायमेशान्निविष्टम् । एतदपि सामान्यप्रणिधानत्वं पञ्चेन्द्रियाणां यावद् वैमानिकानां भवतीति ॥ सू० १८ ॥

। श्रीपर्यायाधिकाराद् योनिस्वरूपमाह—

मूम्—तिविहा जोणी पणत्ता, त जहा सीया उसिणा सीओसिणा।  
एव एगिंदियाणं विगलिंदियाण तेउकाइयवजाण समुच्छिमप  
चिंदियतिरिक्खजोणियाण समुच्छिममणुस्साण य । तिविहा  
जोणी पणत्ता, त जहा-सच्चित्ता, अचित्ता मीसया । एव एगिं  
दियाणं विगलिंदियाण समुच्छिमपचिंदियतिरिक्खजोणियाण  
समुच्छिममणुस्साण य । तिविहा जोणी पणत्ता, त जहा-  
सबुद्धा वियढा सबुद्धियढा । तिविहा जोणी पणत्ता, त जहा-  
कुम्मुनया सखावत्ता वसीपत्तिया । कुम्मुनया णं जोणी  
उत्तमपुरिममाऊण । कुम्मुन्न याएण जोणीए तिविहा उत्तम  
पुरिसा गन्म वक्कमति, त जहा-अरहता चक्कवट्टीधलदेववा  
सुदेवा । सखावत्ता जोणी इत्थीरयणस्म । सखावत्ताए णं  
जोणीए घहवे जीशा य पोगगला य वक्कमति, विउक्कमति,  
घयति, उववज्जति, नो चेष णं निष्फउजति ।

रूप होता है यह भी मम ध्वन और काय की अशुभप्रवृत्ति को लेकर  
तीन प्रकार का होता है यह प्रणिधान भी सामान्यप्रणिधान की तरह  
पञ्चेन्द्रिय जीवों से लेकर यावत् वैमानिकों तक होता है ॥ सू० १८ ॥

शब्दानी अशुभ प्रवृत्तिनी अपेक्षाके तलु प्रकारनु दोष छे आ तले प्रकारनु  
दुष्प्रणिधानोना सदृशाए सामान्य प्रणिधाननी अम पञ्चेन्द्रियणी वैमानिको  
पणत्तना लोपोभां छेय छे ॥ सू १८ ॥

वंसीपत्तियाणं जोणी पिहज्जणस्स । वंसीपत्तियाणं जोणीए  
बहवे पिहज्जणा गढयं वक्कमंति ॥ सू० १९ ॥

छाया—त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—शीता, उष्णा, शीतोष्णा । एवमे-  
केन्द्रियाणां विकलेन्द्रियाणां तेजस्कायिकवर्जानां संमूर्च्छिमपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां  
संमूर्च्छिममनुष्याणां च । त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—सचित्ता, अचित्ता,  
मिश्रका एवमेकेन्द्रियाणां विकलेन्द्रियाणां संमूर्च्छिमपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां  
संमूर्च्छिममनुष्याणां च । त्रिविधा योनिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—संवृतविवृतता संवृत-

जीवपर्याय के अधिकार को लेकर अब सूत्रकार योनि के स्वरूप  
का कथन करते हैं— (त्रिविधा जोणी पणत्ता) इत्यादि ।

सूत्रार्थ—योनि-जीवों का उत्पत्ति स्थान तीन प्रकार की कही गयी है जैसे  
शीतयोनि, उष्णयोनि, और शीतोष्णयोनि यह योनि तेजस्कायिक  
वर्ज एकेन्द्रियोंको, विकलेन्द्रियोंको, संमूर्च्छिमपंचेन्द्रियतिर्यग्योनोंको और  
संमूर्च्छिममनुष्योंको होती है । इस प्रकार से भी योनि तीन प्रकार की  
कही गई है—सचित्त, अचित्त और मिश्र यह योनि एकेन्द्रियों को,  
विकलेन्द्रियों को, संमूर्च्छिमपंचेन्द्रियतिर्यग्योनोंको और संमूर्च्छिम  
मनुष्यों को होती है । तथा इस प्रकार से भी योनि तीन प्रकार की कही  
गई है—संवृत, विवृत, और संवृतविवृत यह योनि देव, नारक, एके-  
न्द्रिय, गर्भजपचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य, विकलेन्द्रिय, अगर्भज  
पचेन्द्रिय मनुष्य और तिर्यग्य । अथवा—कूर्मोन्नत, शङ्खावर्त और

शुवपर्यायना अधिकारनी अपेक्षाये हवे सूत्रकार योनिना स्वरूपनु कथन  
करे छे—“ त्रिविधा जोणी पणत्ता ” इत्यादि—

सूत्रार्थ—शुवोना उत्पत्ति स्थानने योनि कडे छे. ते योनिना त्रय प्रकार कक्षा  
छे—(१) शीतयोनि, (२) उष्णयोनि, अने (३) शीतोष्णयोनि. तेजस्कायिक  
सिवायना एकेन्द्रिय शुवोने, विकलेन्द्रिय शुवोने, संमूर्च्छिमपंचेन्द्रिय तिर्यग्य-  
योने अने संमूर्च्छिम मनुष्योने आ योनि डोय छे योनिना नीचे प्रमाणे  
त्रय प्रकार पणु पडे छे—(१) सचित्त, (२) अचित्त अने (३) मिश्र. आ  
योनिने एकेन्द्रियोमा, विकलेन्द्रियोमां, संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यग्य योनि-  
कोमा अने संमूर्च्छिम मनुष्योमा सदृसाव डोय छे. योनिना नीचे प्रमाणे त्रय  
प्रकार पणु पडे छे—(१) संवृत, (२) विवृत अने (३) संवृतविवृत आ योनिने  
सदृसाव देव, नारक, एकेन्द्रिय, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यग्य अने मनुष्य,  
विकलेन्द्रिय, अगर्भज पंचेन्द्रिय मनुष्य अने तिर्यग्यमा डोय छे.

विद्वता । त्रिविधा योनि महता, तद्यथा—कूर्मोभता, स्रद्धावर्षा, वशीपत्रिका । कूर्मोभता खलु योनि उत्तमपुरुषमातृणाम् । कूर्मोभतायां खलु योनी त्रिविधा उत्तमपुरुषा गर्भं व्युत्क्रामन्ति, तद्यथा—अर्हन्तः, चक्रवर्तिनः, बलदेववासुदेवा । स्रद्धावर्षा योनिः स्त्रीरत्नस्य । स्रद्धावर्षायां खलु योनी बहवो जीवाश्च पुत्रगणश्च व्युत्क्रामन्ति व्ययक्रामन्ति व्ययते उपपद्यन्ते, नो नैव खलु निष्पद्यन्ते । वशीपत्रिका खलु योनिः पृथग्जनस्य । वशीपत्रिकायां खलु योनी बहवः पृथग्जना गर्भं व्युत्क्रामन्ति ॥ सू० १९ ॥

टीका—' त्रिविधा योनि ' इत्यादि ।

पुषन्ति—वैवसकार्मणशरीरबन्ध सन्तो जीवा औदारिकादिशरीरेषु मिथी भवन्त्यस्यामिति योनिः—जीवस्योत्पत्तिस्यानम् । सा त्रिविधा क्षीता, उष्णा, वशीपत्रिका के भेद से भी योनि तीन प्रकार की कही गई है—उत्तम पुरुषों का जन्म कूर्मोभतयोनि से होता है अर्थात् उत्तमपुरुषों की माताओं की कूर्मोभत योनि होती है कूर्मोभत योनि में त्रिविधता उत्तम पुरुष गर्भमें आते हैं । तीन प्रकारके उत्तमपुरुष इस प्रकारसे हैं—अर्हन्त, चक्रवर्ती और बलदेव वासुदेव, स्त्री रत्नकी शङ्खावर्त योनि होती है, शङ्खावर्त योनि में कोई भी जीव निष्पन्न नहीं होता है । यद्यपि शङ्खावर्तयोनि में अनेक जीव और पुद्गल आते हैं और मरते हैं इससे अन्ययोनि में भी जाते हैं और यहां से उरपन्न होते हैं पर गर्भरूप में वे यहां निष्पन्न नहीं होते हैं, वदापन्न योनि सामान्यजन की होती है वदा पत्रिका योनि में अनेक पृषक् जन गर्भ में अवतरित होते हैं ।

टीकाय—तैजस और कार्मण शरीरधारी जीव औदारिक आदि शरीर के

अथवा योनिना नीचे प्रभाषे त्रय प्रकार पक्ष पठे छ—(१) कूर्मोभत, (२) शङ्खावर्त अने (३) वशीपत्रिका उत्तम पुरुषोने जन्म कूर्मोभत योनि भांभी याव छ ज्येष्ठे के उत्तम पुरुषोनी माताज्योनी योनि कूर्मोभत होय छ अर्हन्त चक्रवर्ती अने बलदेव वासुदेव, आ त्रये उत्तम पुरुषो गच्छुष छ आ त्रिविध उत्तम पुरुषो कूर्मोभत योनिभां ज्योनीने उत्प न याव छ स्त्रीरत्ननी योनि शङ्खावर्त होय छ शङ्खावर्त योनिभां होछ एव उत्पन्न यतो नधी-जे के शङ्खावर्त योनिभां अनेक एव अने पुद्गल आवे छ अने भरे छ त्वांभी अन्य योनिभां पक्ष तेजो ज्ये छ अने त्वां उत्पन्न याव छ परन्तु तेजो त्वां जलरूपे निष्पन्न यता नधी वदपन्न योनिने स्रद्धावर्षा सामान्यजनाभां होय छ वशीपत्रिका योनिभां अनेक पृषक् जन ( एव ) जल भां अवतरित याव छ ( आवे छ )

टीकाय—तैजस गर्भं शरीरधारी एव औदारिक आदि शरीरनी यावे ज्यो

शीतोष्णा । तत्र शीता-शीतस्पर्शपरिणामा, उष्णा-उष्णस्पर्शपरिणामा, शीतोष्णा-उभयस्पर्शपरिणामा । एवं-यथा सामान्यतस्त्रिविधा योनिस्तथा चतुर्विंशतिदण्डक-चिन्तायां तेजस्कायिकवर्जानां तेजस्कायिकान् मुक्त्वा, तेषामुष्णयोनिक्त्वात्,

साथ जहां मिश्रित होते हैं उसका नाम योनि है अर्थात् जीवों की उत्पत्ति स्थान का नाम योनि है यह योनि नौ प्रकार की कही गई है सचित्त, अचित्त और सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण और शीतोष्ण, संवृत, विवृत और संवृतविवृत यद्यपि ८४ लाख योनियां विस्तार से कही गई है इनमें पृथिवीकाय आदि जिस २ काय वाले जीवों के स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण वाले जितने २ उत्पत्ति स्थान हैं वे सब मिलाकर चौरासी लाख हो जाते हैं यथा-पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इनकी सात २ लाख, प्रत्येक वनस्पति की १० लाख, साधारण वनस्पति के १४ लाख, द्वीन्द्रिय तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय इनकी दो दो लाख, देव, नारकी और तिर्यच इनकी चार २ लाख और मनुष्य की १४ लाख योनियां होती हैं । इन्हीं के यहां संक्षेप में विभाग करके ये नौ भेद प्रकट किये गये हैं ।

शीतस्पर्शपरिणामवाली शीत योनि होती है उष्णस्पर्शपरिणाम-वाली उष्ण योनि होती है और उभयस्पर्शपरिणामवाली शीतोष्ण योनि होती है, यह सामान्यतः योनिविषयक कथन है परन्तु चतुर्विंशति

मिश्रित थाय छे, ते स्थानतु नाम योनि छे अष्टत्रे के श्रवोना उत्पत्तिस्थानने योनि कहे छे. ते योनी नव प्रकारनी कही छे-सचित्त, अचित्त अने सचि-त्ताचित्त, शीत, उष्ण अने शीतोष्ण, संवृत, विवृत अने संवृतविवृत. जे के विस्तारपूर्वक ८४ लाख योनिओ कही छे, तेमाथी पृथ्वीकाय आदि जे जे कायवाणा श्रवोना स्पर्श, रस, गंध अने वर्णवाणां जेट जेटला उत्पत्तिस्थानो छे ते सौना सरवाणो ८४ लाख थछ जय छे. जेभके पृथ्वी, जल, अग्नि, अने वायुनी सात सात लाख, प्रत्येक वनस्पतिनी १० लाख, साधारण वन-स्पतिनी १४ लाख द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अने चतुरिन्द्रियनी जणजे लाख, देव, नारकी अने तिर्यचनी चार चार लाख, अने मनुष्यनी १४ लाख योनिओ डाय छे. तेमनां ज अर्धी सक्षिप्तमां विसाग करीने नव भेद प्रकट करवामां आव्या छे.

शीतस्पर्श परिष्णामवाणी शीत योनि डाय छे, उष्णस्पर्श परिष्णामवाणी उष्ण योनि डाय छे अने उभयस्पर्श परिष्णामवाणी शीतोष्ण योनि डाय छे. योनिविषयक आ सामान्य कथ

विद्यता । त्रिविधा योनिः प्रज्ञा, तृपया-कूर्माभता, अज्ञावर्त्ता, वशीपत्रिका ।  
 कूर्माभता स्वल्प योनि उत्तमपुरुषमातृणाम् । कूर्माभतायां स्वल्प योनौ त्रिविधा  
 उत्तमपुरुषा गर्भं व्युत्क्रामन्ति, तृपया-मर्हन्तः, चक्रवर्तिनः, बलदेववासुदेव ।  
 अज्ञावर्त्ता योनिः स्त्रीरस्तस्य । अज्ञावर्त्तायां स्वल्प योनौ बहवो जीवाश्च पुद्गलाश्च  
 व्युत्क्रामन्ति व्यपक्रामन्ति स्वयन्ते उपपद्यन्ते, नो पैश् स्वल्प निष्पद्यन्ते । वशीप  
 त्रिका स्वल्प योनिः पृथग्जनस्य । वशीपत्रिकायां स्वल्प योनौ बहवः पृथग्जना  
 गर्भं व्युत्क्रामन्ति ॥ सू० १९ ॥

टीका—' त्रिविधा जीवी ' इत्यादि ।

युवन्ति-तैजसकर्मणश्चरीरवन्तः सन्तो जीवा औदारिकादिश्चरीरेषु मिथी  
 भवन्त्यस्यामिति योनिः-जीवस्योत्पत्तिस्थानम् । सा त्रिविधा स्त्रीता, उष्णा,  
 वशीपत्रिका के भेद से भी योनि तीन प्रकार की कही गई है-उत्तम  
 पुरुषों का जन्म कूर्माभतयोनि से होता है अर्थात् उत्तमपुरुषों की माताओं  
 की कूर्माभत योनि होती है कूर्माभत योनि में त्रिविधता उत्तम पुरुष  
 गर्भमें आते हैं । तीन प्रकारके उत्तमपुरुष इस प्रकारसे हैं-अर्हन्त, चक्र  
 वर्ती और बलदेव वासुदेव, स्त्री रत्नकी शास्त्रावर्त योनि होती है, शास्त्रा-  
 वर्त योनि में कोई भी जीव निष्पन्न नहीं होता है । यद्यपि शास्त्रावर्तयोनि  
 में अनेक जीव और पुद्गल आते हैं और मरते हैं इससे अन्ययोनि में  
 भी जाते हैं और वहाँ से उत्पन्न होते हैं पर गर्भरूप में वे वहाँ निष्पन्न  
 नहीं होते हैं, वक्ष्यत्र योनि सामान्यजन की होती है वक्ष्यत्र पत्रिका योनि  
 में अनेक पृथक् जन गर्भ में अवतरित होते हैं ।

टीकाय-तैजस और कर्मण शरीरधारी जीव औदारिक आदि शरीर के

अथवा योनिना नीचे प्रभाषे तत्र प्रकार पक्ष पठे छ-१) कूर्माभत,  
 (२) शशावत અને (३) वशीपत्रिका उत्तम पुरुषोनी जन्म कूर्माभत योनि  
 भाषी याय छे ज्येष्ठे के उत्तम पुरुषोनी माताज्योनी योनि कूर्माभत दोष  
 छे अर्हन्त, चक्रवर्ती અને बलदेव वासुदेव, ज्ञा त्रये उत्तम पुरुषो गणुय  
 छे ज्ञा त्रिविध उत्तम पुरुषो कूर्मान्तत योनिभां ज्ञातीने उत्पन्न याय छे  
 स्त्रीरस्तनी योनि शशावत दोष छे शशावत योनिभां ज्ञा छे एव उत्पन्न  
 यतो नथी-जे के शशावत योनिभां ज्ञेक एव અને पुद्गल आवे छे અને  
 भरे छे त्र्यथी ज्ञेय योनिभां पक्ष तेजो ज्ञय छे અને त्रां उत्पन्न याय छे  
 परन्तु तेजो त्रां ज्ञेय निष्पन्न यता नथी वक्ष्यत्र योनिने सदृशय  
 सामान्यजोभा दोष छे वक्ष्यत्र योनिभां ज्ञेक पृथक्जन ( एव ) ज्ञेभां  
 अवतरित याय छे ( आवे छे )

टीकाय-तैजस कर्मण शरीरधारी एव औदारिक आदि शरीरनी साथे ज्ञां

दण्डकचिन्तायामेकेन्द्रियादीनां पूर्वोक्तानां सचित्तादित्त्रिविधाऽपि योनिर्भवति ।  
शेषाणामन्यप्रकारा, उक्तञ्च—

“ अचित्ता खलु जोणी, नेरइयाणं तहेव देवाणं ।

मीसा य गर्भवसही, तिविहा जोणी य सेसाणं ॥ १ ॥ इति ।

छाया—अचित्ता खलु योनिः, नैरयिकाणां तथैव देवानाम् ।

मिश्रा च गर्भवसतीनां, त्रिविधा योनिश्च शेषाणाम् ॥ १ ॥ इति ।

पुनरन्यथा योनि त्रैविध्यमाह—‘ त्रिविहा ’ इत्यादि, सुगमम् । नवरसू-

संवृता-घटिकालयम्, विवृता-तद्विपरीता, संवृतविवृता — उभयरूपेति । का  
योनिःक्रेपा भवतीति तद्विभागो यथा—

प्रकारसे है-पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और संसृच्छिम पंचेन्द्रिय  
निर्यञ्च तथा मनुष्य इनको तीनों प्रकारकी योनि होती है. बाकी के जीवों  
को अन्य प्रकार की योनि होती है—अर्थात्-नारक और देवके अचित्त  
योनि होती है, गर्भज मनुष्य और तिर्यञ्चों के सचित्ताचित्त ( मिश्र )  
योनि होती है । कहा भी है—‘ अचित्ता खलु जोणी ’ इत्यादि ।

संवृत्त, विवृत्त और संवृत्तविवृत्त के भेद से भी योनि तीन  
प्रकार की कही गई है, इनमें नारक, देव और एकेन्द्रियों के संवृत्त योनि  
होती हैं । गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य इनको संवृत्त विवृत्त  
( मिश्र ) योनि होती है. तीनों विकलेन्द्रियोंको और संसृच्छिम पंचे  
न्द्रिय तिर्यञ्च मनुष्योंको विवृत्त योनि होती है, घटिकालयकी तरह जो  
योनि ढकी रहती है वह संवृत्त योनि है, जो योनि खुली रहती है

ववामा आवे छे-पाय स्थावर, त्रयु विकलेन्द्रियो, अने संसृच्छिम पंचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च तथा मनुष्यने आ त्रये प्रकारनी योनि डोय छे, भाडीना जेवने  
अन्य प्रकारनी ये नि डोय छे. अटके के नारक अने देवने अचित्त योनि  
डोय छे, गर्भज मनुष्य अने तिर्यञ्चोने सचित्ताचित्त ( मिश्र ) योनि डोय  
छे कर्षु पशु छे के—“ अचित्ता खलु जोणी ” इत्यादि—

संवृत, विवृत अने संवृतविवृतना लेहथी पशु योनि त्रयु प्रकारनी  
कडी छे नारक देव अने एकेन्द्रियोने संवृत योनि डोय छे गर्भज पंचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च अने मनुष्यने संवृतविवृत ( मिश्र ) योनि डोय छे त्रयु विकलेन्द्रि-  
योने ( द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अने चतुरिन्द्रियोने ) अने संसृच्छिम पंचेन्द्रिय  
तिर्यञ्चो अने मनुष्योने विवृत योनि डोय छे. घटिकालयनी जेभ जे योनि  
ढंकायेली ( आच्छादित ) रहे छे, ते योनिने संवृत योनि कडे छे. जे योनि

एकेन्द्रियाणां-पृथिवीहायिकादीनां, त्रिकलेन्द्रियाणां-द्विप्रिधत्तुरिन्द्रियाणां सम्  
 च्छिद्यमपचेन्द्रियतिर्यग्योनिकानां समृच्छिद्यमनुष्णाणां च त्रिविधाऽपि योनिर्भवति,  
 शेषाणां तदन्यप्रकारा, उक्तञ्च—

“सीभोसिण जोणीया, सञ्च देवा य गम्भवकांती ।

उसिणा य सेउकाए, दुहणिरए विविहसेसाण ॥ १ ॥ इति ।

उाया—श्रीतोष्मयोनिका सर्व देवाश्च गर्भव्युष्मायिका ।

उष्णा च संजस्काय द्विधा नरके त्रिविधा शेषाणाम् ॥ १ ॥ इति ।

अय प्रकारान्तरेण योनिर्भविष्यमाह—‘ त्रिविधा जोणी ’ इत्यादि, सचिषा  
 विषमिभ्रमेदाव् योनिस्त्रिविधा प्रकृता । एव—सामान्यतया योनित्रैविष्यत्

दण्डकों में जय इमका विचार किया जाता है तो यह इम प्रकार से है  
 -तेजस्कायिकों के केवल उष्णयोनि होती है, इसलिये इस कथन में  
 उन्हें छोड़कर पृथिवीहायिकादिक एकेन्द्रियों को, चिक्लेन्द्रियों को द्वीन्द्रिय,  
 तेइन्द्रिय और चौइन्द्रियों को समृच्छिद्यमपचेन्द्रियतिर्यग्यों को और समृ  
 च्छिद्यम मनुष्यों को तीनों प्रकार को योनि होती है । पाती के जीवों को  
 अय प्रकारकी योनि होती है । कहा भी है—“ सीभोसिण जोगिजा ”  
 इत्यादि ।

समस्त देव और गर्भज-मवाले जीव शीत और उष्ण योनिवाले  
 होते हैं, तेजस्कायिक जीव उष्ण योनिवाले होते हैं । नारक जीव भी  
 शीत और उष्ण योनिवाले होते हैं, पाती के और सब जीव पूर्वोक्त  
 रूपसे शीत, उष्ण और मिश्ररूप योनिवाले होते हैं ।

सचिष, अचिष और मिभ्रके भेद से भी योनि जो तीन प्रकार  
 की कही गई है उमका विचार चौथीत दण्डकों की अपेक्षा से इस

हाके योनिने विचार करवाया आवे है-तेजस्कायिकों भात्र उष्ण योनि  
 ने अ समस्त देव है तेजस्कायिक सिवायना पृथ्वीहायिक आदि द्वेन्द्रिय  
 लोकां द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अने अनुरिन्द्रिय अने चिक्लेन्द्रिय लोकां,  
 समृच्छिद्यमपचेन्द्रिय लोकां अने समृच्छिद्यम मनुष्यों भा त्रये प्रका  
 रनी योनिनेना समस्त देव है पातीना लोकां अन्म प्रकाशनी योनि  
 देव है इत्यु पत्रु है है- सीभोसिण जोगिजा इत्यादि—

समस्त देवो अने गर्भज भराणा लोकां शीत अने उष्णयोनिवाणा देव  
 है तेजस्कायिक लोकां उष्ण योनिवाणा देव है नारका पत्रु शीत अने उष्ण  
 योनिवाणा देव है पातीना समस्त लोकां पूर्वोक्त इये शीत, उष्ण अने  
 मिश्र योनिवाणा देव है

योनिना सचिष, अचिष अने मिश्र इम ने त्रय प्रकारा कहेवाया  
 आवेया है, तेमनी अपेक्षाके लये १४ इहना लोकां योनिनुं १५५५ अवा

दण्डकचिन्तायामेकेन्द्रियादीनां पूर्वोक्तानां सचित्तादिस्त्रिविधाऽपि योनिर्भवति ।  
शेषाणामन्यप्रकारा, उक्तञ्च—

“ अचित्ता खलु जोणी, नेरइयाणं तहेव देवाणं ।

मीसा य गवभवसही, त्रिविहा जोणी य सेसाणं ॥ १ ॥ इति ।

छाया—अचित्ता खलु योनिः, नैरयिकाणां तथैव देवानाम् ।

मिश्रा च गर्भवसतीनां, त्रिविधा योनिश्च शेषाणाम् ॥ १ ॥ इति ।

पुनरन्यथा योनि त्रैविध्यमाह—‘ त्रिविहा ’ इत्यादि, सुगमम् । नवरम्—  
संवृता—घटिकालयत्न, विवृता—तद्विपरीता, संवृतविवृता — उभयरूपेति । का  
योनिःक्रेपां भवतीति तद्विभागो यथा—

प्रकारसे हैं—पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और संसृष्टिम पंचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च तथा मनुष्य इनको तीनों प्रकारकी योनि होती है। बाकी के जीवों  
को अन्य प्रकार की योनि होती है—अर्थात्—नारक और देवके अचित्त  
योनि होती है, गर्भज मनुष्य और तिर्यञ्चों के सचित्ताचित्त ( मिश्र )  
योनि होती है । कहा भी है—‘ अचित्ता खलु जोणी ’ इत्यादि ।

संवृत्त, विवृत्त और संवृत्तविवृत्त के भेद से भी योनि तीन  
प्रकार की कही गई है, इनमें नारक, देव और एकेन्द्रियों के संवृत्त योनि  
होती हैं । गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य इनको संवृत्त विवृत्त  
( मिश्र ) योनि होती है। तीनों विकलेन्द्रियोंको और संसृष्टिम पंचे  
न्द्रिय तिर्यञ्च मनुष्योंको विवृत्त योनि होती है, घटिकालयकी तरह जो  
योनि ढकी रहती है वह संवृत्त योनि है, जो योनि खुली रहती है

पवामां आवे छे—पाच स्थावर, त्रयु विकलेन्द्रियो, अने संसृष्टिम पंचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च तथा मनुष्यने आ त्रये प्रकारनी योनि डोय छे, बाकीना जीवने  
अन्य प्रकारनी ये नि डोय छे. अटवे के नारक अने देवने अचित्त योनि  
डोय छे, गर्भज मनुष्य अने तिर्यञ्चोने सचित्ताचित्त ( मिश्र ) योनि डोय  
छे कर्षु पशु छे के—“ अचित्ता खलु जोणी ” इत्यादि—

संवृत, विवृत अने संवृतविवृतना लेखी पशु योनि त्रयु प्रकारनी  
कही छे नारक देव अने एकेन्द्रियोने संवृत योनि डोय छे गर्भज पंचेन्द्रिय  
तिर्यञ्च अने मनुष्यने संवृतविवृत ( मिश्र ) योनि डोय छे त्रये विकलेन्द्रि-  
योने ( द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय अने यतुसिन्द्रियोने ) अने संसृष्टिम पंचेन्द्रिय  
तिर्यञ्चो अने मनुष्योने विवृत योनि डोय छे. घटिकालयनी जेभ जे योनि  
ढंकायेली ( आच्छादित ) रहे छे, ते योनिने संवृत योनि कहे छे. जे योनि



“ एगिंदिय नेरइया, सधुडजोणी इषति दवा य ।

त्रिगलिंदियाण विपटा, सधुडविपटा य गम्ममि ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—एकेन्द्रियनैरपिकाः सहृतयोनिना भवन्ति देवाम् ।

विकलेन्द्रियाणां विकटा, सहृत-चिद्वता च गर्म ॥ १ ॥ इति ।

पुनरपि योनिर्गोविष्यमाह—‘ त्रिषिद्धा ’ इत्यादि । त्रिषिद्धायोनिस्तथाहि-  
कूर्मोभता अद्धारता, वक्षीपत्रिका चेति । तत्र कूर्म-कच्छप, तद्वत्-तत्पृष्ठवत्  
उभता कूर्मोन्नता । अद्धार-स्येवावर्षो यस्या सा अद्धारवर्षा । अस्या-त्रयत्रयास्या  
पत्रकमित्र या सा वक्षी पत्रिका । कूर्मोन्नता योनि काष्ठा स्त्रीणां मन्वरीत्याह—  
‘ कुम्मुअया ’ इत्यादि, कूर्मोभता योनिरुत्तमपुरुषमातृणां भवति । तदेव स्पष्टयति  
—‘ कुम्मुन्नयाए ण ’ इत्यादि कूर्मान्तरायां योनी त्रिषिद्धा उत्तमपुरुषा गर्म  
भ्युत्क्रामन्ति—प्राप्नुवन्ति गर्मे उत्तमन्त इत्ययम् । तद्यथा—उत्तमपुरुषा यथा अहन्त,  
चक्रवर्तिन, ब्रह्मदेवामुदेवा । एतयोर्ब्रह्मदेवामुदेवयो सहचरत्वादेकस्वविषय  
णम् । अद्धारवर्षा योनि स्त्रीरत्नस्य भवति । स्त्रीरत्न-पञ्चेन्द्रियरत्नविशेषः, यस्य  
स्पर्शमात्रेण लोहनिर्मितपुरुषो गमति द्रवितो भवति, उत्कृष्टातिशयितकामभिहार  
जनितममजोप्यतापविशेषत्वादस्पति । अत एवास्यां जीवान् निष्पद्यन्ति इत्याह—

यह विषुस योनि है, और जो दोनो प्रकारकी होती है वह मिश्र योनि  
है । अर्थात् कुछ बकी होती है और कुछ खुली होती है यह सधुस  
विषुस योनि है । बौन योनि किनको होती है । यही इस गाथा द्वारा  
प्रकट किया गया है—“ एगिंदिय नेरइया सधुडजोणी ” इत्यादि ।

इस प्रकार से भी योनि तीन प्रकार की होती है—कूर्मोन्नत, अद्धार  
वर्षा, और वक्षपत्रिका जो योनि कूर्म-कच्छप के पृष्ठ की तरह उभत  
होती है यह कूर्मोन्नत योनि है, जिसमें शस्त्रकी तरह आवरण होते हैं  
यह अम्बावर्षा योनि है, अद्धारवर्षा के पत्रकी तरह जो योनि होती है

पुष्पी रहे छ ते योनिने विवृण योनि कहे छ येठे अये अहमेही अने  
येठे अये पुष्पी होय अये योनिने सधुवविधुव (मिश्र) योनि कहे छ  
अया छवने अया प्रकारनी योनि होय छ ते नीशेनी आशामां अमनाम्नु छ  
‘ एगिंदिय नेरइया सधुडजोणी ’ इत्यादि—

योनिना आ भ्रमात्वे पशु तस्य प्रकार यठे छ (१) कूर्मोन्नत (२) अद्धार  
वर्षा, अने (३) वक्षपत्रिका के योनि अम्बावर्षा नीशेना समान कृतत होय  
छ, ते योनिने कूर्मोन्नत योनि कहे छ के योनिमां अश्वता अनां अनावत्  
(वर्षा) होय छ ते योनिने अम्बावर्षा योनि कहे छ वक्षपत्रिका वचना  
अये के योनि होय छ, ते योनिने वक्षपत्रिका योनि कहे छ अ योनिने

‘संखावत्ताएणं’ इत्यादि । शङ्खावत्तीयां योनौ बहवो जीवा पुद्गलाश्च व्युत्क्रामन्ति-आगच्छन्ति, तथा-व्यवक्रामन्ति-विनश्यन्ति । व्यवन्ते-तदयोनितो योन्यन्तरं गच्छन्ति, उत्पद्यन्ते-योन्यन्तरे समुत्पद्यन्ते, किन्तु नो चैव-नैव निष्पद्यन्ते-तत्रोत्पन्ना जीवाः परिनिष्ठिता न भवन्तीत्यर्थः । वंशीपत्रिका योनिः पृथग्जनस्य सामान्यजनस्य भवति । वंशीपत्रिकायां योनौ बहवः पृथग्जनाः-सामान्यजना गर्भं व्युत्क्रामन्ति-प्राप्नुवन्ति गर्भे उत्पद्यन्त इत्यर्थः ॥ सू० १९ ॥

अनन्तरं योनिप्ररूपणतो मनुष्याः प्ररूपिताः, अधुना मनुष्यस्य सधर्मिणो वादरवनस्पतिकायिकान् प्ररूपयति—

मूलम्-तिविहा तणवणस्सइकाइया पणत्ता, तं जहा-संखेज्ज जीवया, असंखेज्जजीवया, अणंतजीवया ॥ सू० २० ॥

छाया—त्रिविधा तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा संख्येयजीवकाः, असंख्येयजीवकाः, अनन्तजीवकाः ॥ सू० २० ॥

वह वंशपत्रिका योनि है, ये योनियां किन २ को होती है यह सब मूलार्थ में लिख दिया गया है । टीका के ही अनुसार स्त्रीरत्न के शंखावर्त योनि होनी है, स्त्रीरत्न यह पंचेन्द्रिय रत्न विशेष है, इस रत्नके स्पर्श मात्र से लोहनिर्मित पुरुष भी गल जाता है-द्रवित हो जाता है, क्यों कि यह उत्कृष्ट एवं अतिशयित काम के विकार से जनित प्रबल उष्णताप विशेषवाला होता है “न निष्पद्यन्ते” का तात्पर्य ऐसा होता है कि वहां उत्पन्न हुए जीव परिनिष्ठित ( जीते ) नहीं होते हैं । वंशी पत्रिका योनिमें सामान्य जन जन्म धारण करता है ॥ सू० १९ ॥

योनि की प्ररूपणा से मनुष्यों का प्ररूपण हो जाता है अब मनुष्यके सधर्मो वादर वनस्पतिकायिकों की सूत्रकार प्ररूपणा करते हैं—

क्या लोकोत्तरे डोय छे ते भूदार्थभां अताववाभां आवेव छे त्या लब्धा अनु सार स्त्रीरत्नने शंखावर्त योनि डोय छे. स्त्रीरत्न अे पंचेन्द्रिय रत्नविशेष छे आ रत्नना स्पर्श मात्रथी लोहनिर्मित पुरुष पणु द्रवी ( पीगणी ) नय छे, कारणु के ते उत्कृष्ट अने अतिशयित कामना विकारथी जनित प्रबल उष्णताप विशेषणवाणो डोय छे. “ननिष्पद्यन्ते” आ पहनो भावार्थ अे छे के त्या उत्पन्न थयेला लोको परिनिष्ठित ( लवित ) रहता-नथी. वंशपत्रिका योनिभां सामान्यजन जन्म धारणु करे छे. ॥ सू. १९ ॥

योनिनी प्ररूपणा द्वारा मनुष्यनी प्ररूपणा थर्ष नय छे डेवे मनुष्यना सधर्मो वादर वनस्पतिकायिकेनी सूत्रकार प्ररूपणा करे छे—

“ एगिदिय नेरइया, स बुडजोणी इवति देवा य ।

विगलिदियाण वियडा, स बुडवियडा य गम्ममि ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—एकेन्द्रियनैरविका सहृद्योनिना भवन्ति देवाय ।

विकलेन्द्रियाणां विकटा, सहृद्य-विहृता च गर्म ॥ १ ॥ इति ।

पुनरपि योनिर्निर्दिष्यमाह—‘ त्रिविधा ’ इत्यादि । त्रिविधायोनिस्थयादि-  
 कूर्मोन्नता, शङ्खावर्ता, वशीपत्रिका चेति । तत्र कूर्म—कच्छपः, तद्वत्-तत्पृष्ठद्  
 उन्नता कूर्मोन्नता । शङ्खस्वेषावर्त्ता यस्यां सा शङ्खावर्त्ता । वश्या—वश्यास्याः  
 पत्रकमिव या सा वशी पत्रिका । कूर्मोन्नता योनि फासा स्त्रीणां मन्वीत्याह—  
 ‘ कुम्भमया ’ इत्यादि, कूर्मोन्नता योनिरुचमपुरुषमातृणां भवति । तदेव स्पष्टमिति  
 —‘ कुम्भन्नया ए ण ’ इत्यादि कूर्मोन्नतायां योनीं त्रिविधा उचमपुरुषा गर्म  
 प्युत्कामन्ति—प्राप्नुवन्ति गर्मे उत्तमघट इत्यर्थः । तद्यथा—उचमपुरुषा यथा मर्हन्ता,  
 चक्रवर्तिन, बभ्रुवरासुदवाः । एतयोर्बभ्रुवरासुदवयो सहचरत्वाद्दक्षप्रवित्त  
 णम् । शङ्खावर्त्ता योनिः स्त्रीरस्तस्य भवति । स्त्रीरस्त-पञ्चेन्द्रियरस्तविशेषः, यस्य  
 स्पर्शमात्रेण लोहनिर्मितपुरुषो मन्वति द्रवितो भवति, उत्कृष्टातिशयितकामविहार  
 भनितमपलोप्यतापविशेषत्वाद्भवति । अत एवास्यां भीवान निष्पद्यन्ते इत्याह—

यह विपुल योनि है, और जो दोनों प्रकारकी होती है यह मिश्र योनि  
 है । अर्थात् कुछ ठकी होती है और कुछ खुली होती है यह सपूरा  
 विपुल योनि है । कौन योनि किमको होती है । यही इस गाथा द्वारा  
 प्रकट किया गया है—“ एगिदिय नेरइया स बुडजोणी ” इत्यादि ।

इस प्रकार से भी योनि तीन प्रकार की होती है—कूर्मोन्नत, शङ्खा  
 वर्त, और वश्यापत्रिका जो योनि कूर्म-कच्छप के पृष्ठ की तरह उन्नत  
 होती है यह कूर्मोन्नत योनि है, जिसमें शस्त्रकी तरह आवर्त्त होते हैं  
 यह शङ्खावर्त्त योनि है, वश्याजाली के पत्रकी तरह जो योनि होती है

पुंस्त्री बडे छ ते नोनिने विपुल योनि बडे छ योनि नये बडायेली नने  
 योनि नये पुंस्त्री डोय नोनि योनिने सवुतविपुल (मिश्र) योनि बडे छ  
 ब्या छवने ब्या प्रशरनी योनि डोय छ ते नीयेनी आधाभां समनभ्यु छ

“ एगिदिय नेरइया स बुडजोणी ” इत्यादि—

योनिना आ प्रभादे पयु मय प्रशर पडे छ—(१) कूर्मोन्नत (२) शङ्खा  
 वर्त, नने (३) वश्यापत्रिका । ये योनि शङ्खावर्त्ता पीडना समान उत्तत डोय  
 छ, ते योनिने कूर्मोन्नत योनि बडे छ न ये योनिभां शङ्खना नोवां आवर्त्त  
 (वशीका) डोय छ ते योनिने वश्यावर्त्ता योनि बडे छ वश्यावर्त्ता पत्रना  
 नोनी न ये योनि डोय छ, ते योनिने वश्यापत्रिका योनि बडे छ आ योनिना

‘संखावत्ताएणं’ इत्यादि । शङ्खावर्त्तायां योनीं बहवो जीवा पुद्गलाश्च व्युत्क्रामन्ति-भागच्छन्ति, तथा-व्यवक्रामन्ति-विनश्यन्ति । च्यवन्ते-तद्योनितो योन्यन्तरं गच्छन्ति, उत्पद्यन्ते-योन्यन्तरे समुत्पद्यन्ते, किन्तु नो चैव-नैव निष्पद्यन्ते-तत्रोत्पन्ना जीवाः परिनिष्ठिता न भवन्तीत्यर्थः । वंशीपत्रिका योनिः पृथग्जनस्य सामान्यजनस्य भवति । वंशीपत्रिकायां योनीं बहवः पृथग्जनाः-सामान्यजना गर्भं व्युत्क्रामन्ति-प्राप्नुवन्ति गर्भं उत्पद्यन्त इत्यर्थः ॥ सू० १९ ॥

अनन्तरं योनिप्ररूपणतो मनुष्याः प्ररूपिताः, अधुना मनुष्यस्य सधर्मिणो वादरवनस्पतिकायिकान् प्ररूपयति—

मूलम्-त्रिविधा तृणवनस्सङ्काइया पण्णत्ता, तं जहा-संखेज्ज जीवया, असंखेज्जजीवया, अणंतजीवया ॥ सू० २० ॥

छाया—त्रिविधा तृणवनस्पतिकायिकाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा संख्येयजीवकाः, असंख्येयजीवकाः, अनन्तजीवकाः ॥ सू० २० ॥

बह वंशपत्रिका योनि है, ये योनियां किन २ को होती है यह सध मूलार्थ में लिख दिया गया है । टीका के ही अनुसार स्त्रीरत्न के संखावर्त योनि होनी है, स्त्रीरत्न यह पंचेन्द्रिय रत्न विशेष है, इस रत्नके स्पर्श मात्र से लोहनिर्मित पुरुष भी गल जाता है-द्रवित हो जाता है, क्यों कि यह उत्कृष्ट एवं अतिशयित काम के विकार से जनित प्रबल लक्ष्णताप विशेषवाला होता है-“न निष्पद्यन्ते” का तात्पर्य ऐसा होता है कि वहां उत्पन्न हुए जीव परिनिष्ठित ( जीते ) नहीं होते है । वंशी पत्रिका योनिमें सामान्य जन जन्म धारण करता है ॥ सू० १९ ॥

योनि की प्ररूपणा से मनुष्यों का प्ररूपण हो जाता है अब मनुष्यके सधर्मी वादर वनस्पतिकायिकों की सूत्रकार प्ररूपणा करते हैं—

क्या लुवेने डोय छे ते भूलाथर्भां षताववाभां आवेल छे त्यां लण्णया अनु-सार स्त्रीरत्नने शंखावर्त योनि डोय छे. स्त्रीरत्न ओ पंचेन्द्रिय रत्नविशेष छे आ रत्नना स्पर्श मात्रथी दोहनिर्मित पुरुष पण्णु द्रवी ( पीगणी ) लय छे, कारणु के ते उत्कृष्ट अने अतिशयित कामना विकारथी जनित प्रबल लक्ष्णताप विशेषणुवाणेो डोय छे “न निष्पद्यन्ते” आ पढनेो भावार्थ ओ छे के त्या उत्पन्न थयेला लुवेो परिनिष्ठित ( लुवित ) रहेता तथी. वंशपत्रिका योनिभां सामान्यजन जन्म धारणु करे छे. ॥ सू. १९ ॥

योनिनी प्ररूपणा द्वारा मनुष्यनी प्ररूपणा थर्छ लय छे डवे मनुष्यना सधर्मी वादर वनस्पतिकायिकोनी सूत्रकार प्ररूपणा करे छे—

“ एगिदिय नेरइया, स बुडजोणी इवंति देवा य ।

विगलिदियाम् त्रियडा, स बुडवियडा य गम्ममि ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—एकेन्द्रियनैरयिकाः सवृत्तयोनिना भवन्ति देवाश्च ।

विकलेन्द्रियाणां विकटा, सवृत्त-विद्वता च गर्म ॥ १ ॥ इति ।

पुनरपि योनिशैषिष्यमाह—‘ त्रिविधा ’ इत्यादि । त्रिविधायोनिस्तथाहि-  
कूर्मोन्नता, शङ्खावर्ता, वक्षीपत्रिका चेति । तत्र कूर्मः—कच्छपः, शङ्ख-तत्पृष्ठवद्  
उन्नता कूर्मोन्नता । शङ्खस्वेषावर्त्तो यस्यां सा शङ्खावर्त्ता । वक्ष्या—वक्ष्यास्याः  
पत्रकमिव या सा वक्षी पत्रिका । कूर्मोन्नता योनि कासा स्त्रीणां भवतीत्याह—  
‘ कुम्मुन्नया ’ इत्यादि, कूर्मोन्नता योनिरुचमपुरुषमातृणां भवति । तदेव स्पष्टयति  
—‘ कुम्मुन्नया ए ण ’ इत्यादि, कूर्मोन्नतायां योनी त्रिविधा उचमपुरुषा गर्म  
भ्युत्कामन्ति—प्राप्नुवन्ति गर्मे उत्तरघन्त इत्यर्थः । तद्यथा—उचमपुरुषा यथा अहन्ताः,  
वक्रशक्ति, वक्रदेशवासुदेवाः । एतयोर्ब्रह्मदेवास्तद्वयो सवृत्तवत्कल्पविषय  
णम् । शङ्खावर्त्ता योनि स्त्रीरस्नस्य भवति । स्त्रीरस्न—पञ्चेन्द्रियरस्नविज्ञापः, यस्य  
स्पर्शमात्रेण सोऽनिर्मितपुरुषो गसति त्रिविधो भवति, उत्कृष्टातिशयितकामविकार  
जनितमपबोध्यतापविशेषस्वादस्येति । अथ एवास्यां जीवान् निष्पन्त इत्याह—

यह विपुल योनि है, और जो दोनें प्रकारकी होती है वह विश्व योनि  
है । अर्थात् कुछ डकी होती है और कुछ खुली होती है वह सवृत्त  
विपुल योनि है । कौन योनि किनहो होती है । यही इस गाथा द्वारा  
प्रकट किया गया है—“ एगिदिय नेरइया स बुडजोणी ” इत्यादि ।

इस प्रकार से भी योनि तीन प्रकार की होती है—कूर्मोन्नत, शङ्खा  
वर्त, और वक्षपत्रिका जो योनि कूर्म-कच्छप के पृष्ठ की तरह उन्नत  
होती है यह कूर्मोन्नत योनि है, जिसमें शखकी तरह आवर्त्त होते हैं  
यह शङ्खावर्त्त योनि है, वक्षजाली के पत्रकी तरह जो योनि होती है

पुंश्री षडे छे ते नोनिने विपुल योनि षडे छे षोडे अथे षोडे अथे अथे अथे अने  
षोडे अथे पुंश्री षोडे अथे योनिने सवृत्तविपुल ( विश्व ) योनि षडे छे ।  
अथा लपने अथा प्रशरणी योनि षोडे छे ते नीशनी आधामां समअनुं छे

‘ एगिदिय नेरइया स बुडजोणी ’ इत्यादि—

योनिना आ प्रभावे पञ्च त्रय प्रकार षडे छे (१) कूर्मोन्नत, (२) शङ्खा  
वर्त, अने (३) वक्षपत्रिका जे योनि अथपानी पीडना समान उन्नत षोडे  
छे, ते योनिने कूर्मोन्नत योनि षडे छे जे योनिमां समान अथे अथे अथे  
( वक्षिका ) षोडे छे ते योनिने शङ्खावर्त्त योनि षडे छे वक्षपत्रिका पत्रिका  
अथे जे योनि षोडे छे, ते योनिने वक्षपत्रिका योनि षडे छे आ योनिने

दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्रवर्तिविजये तओ तित्था पण-  
त्ता, तं जहा-सागेहे, वरदामे, प्रभासे ३ । एवं धागुइसंडे दीवे  
पुरत्थिसद्धे वि ६, पच्चत्थिसद्धे वि ९, पुण्णखरवरदीवद्धे पुरत्थि-  
सद्धे वि १२, पच्चत्थिसद्धे वि १५ ॥ सू० २१ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे त्रीणि तीर्थानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा मा-  
गधं, वरदाम, प्रभामम् १। एवमैरवतेऽपि २। जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे  
एकैरुस्मिन् चक्रवर्तिविजये त्रीणि तीर्थानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-मागधं, वरदाम,  
प्रभासम् ३। एवं घातकीखण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्द्धेऽपि ६, पाश्चात्यार्द्धेऽपि ९, पुष्क-  
रवरद्वीपार्द्धे पौरस्त्यार्द्धेऽपि १२, पाश्चात्यार्द्धेऽपि १५ ॥ सू० २१ ॥

टीका—‘जंबूद्वीवे’ इत्यादि पञ्चदशमूत्री सुगमा, नवरं-तीर्थानि जलतीर्थानि ।  
तानि जम्बूद्वीपस्य भारते वर्षे भरतक्षेत्रे पूर्वादिक्रमेण स्वनामख्यातानि त्रीणि

पञ्चदशसूत्री का कथन करते हैं—‘जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे’ इत्यादि  
सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें स्थित भरतक्षेत्रमें तीन तीर्थ कहे गये हैं  
जैसे—मागध १, वरदाम २, प्रभास ३, इसी तरह से ऐरवत क्षेत्र में  
भी तीन तीर्थ कहे गये हैं, इसी तरह से जम्बूद्वीप में स्थित जो महा-  
विदेह क्षेत्र है उसमें एक चक्रवर्ति के विजय में तीन तीर्थ कहे गये हैं  
—जैसे मागध, वरदाम और प्रभास इसी तरह से घातकी खण्डद्वीप  
में पूर्वार्ध में भी ३, पश्चिमार्ध में भी ३, पुष्कर वर द्वीपार्ध में पूर्वार्ध में  
भी ३ और पश्चिमार्ध में भी ३ हैं ऐसा समझना चाहिये ।

टीकार्थ—यहां तीर्थशब्दसे जलतीर्थ कहे गये हैं ये जलतीर्थ जम्बूद्वीपके

सूत्रोक्तं कथन करे छे—“जंबूद्वीवे दीवे भारहे वासे” इत्यादि—

सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामना द्वीपमां आवेला भरतक्षेत्रमां नीचे प्रभाणु त्रयु तीर्थ  
कथां छे—(१) मागध, (२) वरदाम अने (३) प्रभास. अत्र प्रभाणु ऐरवत  
क्षेत्रमां पणु त्रयु तीर्थ कथां छे. अत्र प्रभाणु जम्बूद्वीपमां आवेला महा-  
विदेह क्षेत्रना अत्र अत्र चक्रवर्तिना विजयमां त्रयु तीर्थ कथां छे, जेभके  
मागध, वरदाम अने प्रभास. अत्र प्रभाणु घातकीखण्ड द्वीपना पूर्वार्धमां पणु  
त्रयु अने पश्चिमार्धमां पणु त्रयु तीर्थ छे अत्र प्रभाणु पुष्करवर द्वीपार्धना  
पूर्वार्धमां पणु त्रयु अने पश्चिमार्धमां पणु त्रयु तीर्थ छे

टीकार्थ—अर्द्धी तीर्थ शब्दना जलतीर्थना अर्थमां प्रयोग थये छे. जम्बूद्वीपना

टीका—' तिबिहा तण०' इत्यादि । तृणवनस्पतिकारिकाः वादरवनस्पतय इत्यर्थः । ते त्रिविधाः, तथाहि—संन्याता जीवा येषु ते संन्यातजीवाः, त एव सख्यातजीवका—नालिकाबद्धकुसुमानि भात्यादीनि १ । असख्यातजीवकाः—निम्बाम्नादीना मूलकन्दस्कृषत्वक् क्षाखाप्रवाला २ । अनन्तजीवका—पनकादय इति । एषां विशेषवर्णनं प्रज्ञापनासूत्रस्य प्रथमपश्चात्तन्मिचप्रज्ञापनाप्रकरणतोऽ षसेयम् ॥ सू० २० ॥

पूर्व शिस्थानकाप्रकारेण वनस्पतयो वर्जिताः, ते च ब्रह्माभया वश्यो मम लीति सम्प्रवाजप्रलाभयभूतानां तीर्थानां प्ररूपणाय पञ्चदशसूत्रीमार—

मूलम्—जबुहीवे दीवे भारहे वासे तओ तिस्था पण्णत्ता त जहा मागहे, वरदामे, पभासे १ । एव परवय वि २ । जबुहीवे

“ तिबिहा तणघणस्तइकाइया पण्णत्ता ” इत्यादि ।

मृण वनस्पतिकारिक से तात्पर्य पादरवनस्पतिकारिक से है, वादर वनस्पतिकारिक जीव तीन प्रकार के होते हैं—जैसे—सख्यात जीवका—अर्थात् जिनमें सख्यात जीव होते हैं वे, तथा असख्यात जीव जिनमें होते हैं वे असख्यात जीवक—जैसे निम्ब आदिकों के मूल, कन्द स्क्रुषत्वक्, क्षाखाप्रवाल तथा अनन्त जीव जिनमें होते हैं वे अनन्त जीवक—जैसे—पनक फूलन आदि इनका विशेष वर्णन प्रज्ञापना सूत्रके प्रथम पत्र जीव प्रज्ञापना प्रकरण से जानना चाहिये ॥ सू०२०॥

तीन स्थानों के प्रकरण से वनस्पति का वर्णन किया, वनस्पतिकारिक जीव अधिकतर रूपमें जलाभयवाले होते हैं अतः इसी सम्बन्धको लेकर अथ सूत्रकार जलाभयमून तीर्थों को प्ररूपण करने के लिये

तिबिहा तणघणस्तइकाइया पण्णत्ता' इत्यादि—

वादर वनस्पतिकारिकने तुल्य वनस्पतिकारिक ठहरे छे ते वादर वनस्पतिकारिक एव त्रय प्रकारना होय छे—(१) सख्यात एवक—नेमां सख्यात एवो होय छे ते, (२) असख्यात एवक—नेमां असख्यात एवो होय छे ते नेमके तीमअ अदिना भूय, कन्द, स्क्रुषत्वक् छाल शाखा अने कुपा (३) अनन्त एवक—नेमां अनन्त एवो होय छे तेने अनन्त एवक ठहरे छे नेमके पनक कृष आदि आ नियमनुं विसृत पर्वन प्रज्ञापना सूत्रना एवप्रज्ञापना नामना पढेवा पढमांथी पाथी वेनुं ॥ सू० २० ॥

त्रय स्थानेना अविहारनी अपेक्षाजे वनस्पतिनुं वसुन करवभा आनुं वनस्पतिकारिक एवो आस करीने अज्ञापनाया होय छे आ सूत्रने अनन्तकीने दवे सूत्रकार अज्ञापनभूत तीर्थेनी प्ररूपणा करवा निमित्ते १५

दीवे महाविदेहे वासे एगमेगे चक्रवर्तिविजये तओ तित्था पण-  
त्ता, तं जहा-मागेहे, वरदामे, पथासे ३ । एवं धायइसंडे दीवे  
पुरत्थिसद्धे वि ६, पच्चत्थिसद्धे वि ९, पुष्करवरदीवद्धे पुरत्थि-  
सद्धे वि १२, पच्चत्थिसद्धे वि १५ ॥ सू० २१ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे भारते वर्षे त्रीणि तीर्थानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा मा-  
गधं, वरदाम, प्रभामम् १। एवमैरवतेऽपि २। जम्बूद्वीपे द्वीपे महाविदेहे वर्षे  
एकैरुस्मिन् चक्रवर्तिविजये त्रीणि तीर्थानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-मागधं, वरदाम,  
प्रभासम् ३। एवं घातकीखण्डे द्वीपे पौरस्त्यार्द्धेऽपि ६, पाश्चात्यार्द्धेऽपि ९, पुष्क-  
रवरद्वीपार्द्धे पौरस्त्यार्द्धेऽपि १२, पाश्चात्यार्द्धेऽपि १५ ॥ सू० २१ ॥

टीका—‘जंबुद्वीपे’ इत्यादि पञ्चदशसूत्री सुगमा, नवरं-तीर्थानि जलतीर्थानि ।  
तानि जम्बूद्वीपस्य भारते वर्षे भरतक्षेत्रे पूर्वादिक्रमेण स्वनामख्यातानि त्रीणि

पञ्चदशसूत्री का कथन करते हैं—‘जंबूद्वीपे दीवे भारहे वासे’ इत्यादि  
सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें स्थित भरतक्षेत्रमें तीन तीर्थ कहे गये हैं  
जैसे—मागध १, वरदाम २, प्रभास ३, इसी तरह से ऐरवत क्षेत्र में  
भी तीन तीर्थ कहे गये हैं, इसी तरह से जम्बूद्वीप में स्थित जो महा-  
विदेह क्षेत्र है उसमें एक चक्रवर्ति के विजय में तीन तीर्थ कहे गये हैं  
—जैसे मागध, वरदाम और प्रभास इसी तरह से घातकी खण्डद्वीप  
में पूर्वार्ध में भी ३, पश्चिमार्ध में भी ३, पुष्कर वर द्वीपार्ध में पूर्वार्ध में  
भी ३ और पश्चिमार्ध में भी ३ हैं ऐसा समझना चाहिये ।

टीकार्थ—यहां तीर्थशब्दसे जलतीर्थ कहे गये हैं ये जलतीर्थ जम्बूद्वीपके

सूत्रानुं कथन करे छे—“जंबूद्वीपे दीवे भारहे वासे” इत्यादि—

सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामका द्वीपमां आवेला भरतक्षेत्रमां नीचे प्रभाखे त्रयु तीर्थ  
कह्यां छे—(१) मागध, (२) वरदाम अने (३) प्रभास. अने प्रभाखे ऐरवत  
क्षेत्रमां पणु त्रयु तीर्थ कह्यां छे. अने प्रभाखे जम्बूद्वीपमा आवेला महा-  
विदेह क्षेत्रमा अके अके चक्रवर्तिना विजयमा त्रयु तीर्थ कह्यां छे, जेभके  
मागध, वरदाम अने प्रभास. अने प्रभाखे घातकीखंड द्वीपमा पूर्वार्धमां पणु  
त्रयु अने पश्चिमार्धमां पणु त्रयु तीर्थ छे अने प्रभाखे पुष्करवर द्वीपार्धमा  
पूर्वार्धमा पणु त्रयु अने पश्चिमार्धमा पणु त्रयु तीर्थ छे

टीकार्थ—अही तीर्थ शब्दना जलतीर्थना अर्थमां प्रयोग थयो छे. जम्बूद्वीपमा



वर्षते । तयानि-मागपम् १, वरदाम २, प्रभासम् ३। एषम् ऐरवतेऽपि श्रीभि  
 तीर्थानि सन्ति । एव जम्बूद्वीपे महाविदेहे वर्षे चक्रवर्तिनामैकस्मिन् विमये  
 एषामामायेव श्रीणि तीर्थानि मन्ति । अत्राय विशेष-विजयक्षेत्रेषु क्षेत्रमध्यमा  
 गेषु वर्षते । तीर्थानि चक्रवर्तिन शीतादि महानवद्यवतरणरूपानि तन्नामकदव  
 निवासभूतानि १५ । पञ्चदशसूत्राणि धेत्यम्-जम्बूद्वीपस्य भरतैरवतमहाविदेहचक्र  
 वर्ति विजयविजयाणि श्रीभि सूत्राणि १। एव घातकीस्वण्डस्य पूर्वार्द्धे भरतैरवतम-  
 हाविदेहचक्रवर्तिविजयविषयं सूत्रप्रथमम् ६ पश्चिमाद्धेऽप्येवमेव सूत्रप्रथमिति नव  
 सूत्राणि ९। तथा-पुष्करवल्लीपार्श्वस्यापि पूर्वार्द्धे विषयाणि श्रीभि पश्चिमाद्धे वि  
 पयाणि च श्रीणीत्येवं पद सूत्राणि । एव सर्वसकलनया पञ्चदश सूत्राणि मन्ति  
 १५ ॥ सू० २१ ॥ -

भरतक्षेत्र में पूर्वादिक्रम से अपने २ नाम से प्रसिद्ध तीन हैं । इसी तरह  
 से ऐरवतक्षेत्र में भी तीन क्षेत्र हैं महाविदेह में भी चक्रवर्तियों के एक  
 २ विजय में इन्हीं नामवाले तीन तीर्थक्षेत्र हैं । विजयक्षेत्र से वहाँ क्षेत्र  
 का मध्यभाग गूहीत हुआ है इस तरह विजयक्षेत्रों में-क्षेत्र के मध्य  
 भागों में ये तीर्थक्षेत्र हैं ये चक्रवर्तियों के तीर्थक्षेत्र शीता भादि महान  
 दिव्यों के अवतरण रूप होते हैं और जैसा-तीर्थों का नाम है उसी नाम  
 के देव वहाँ रहते हैं ।

पंचमदशसूत्र वहाँ इस प्रकार से हैं—जम्बूद्वीप के भरत, ऐरवत,  
 महाविदेह और चक्रवर्तिविजय इनके तीन सूत्र, घातकीस्वण्ड के पूर्वार्ध  
 में भरत ऐरवत, महाविदेह और चक्रवर्तिविजय इनके तीनसूत्र,  
 पश्चिमाध में भी इसी तरह से तीनसूत्र, पुष्करवल्लीपार्श्व के भी

भरत क्षेत्रमां भजध आदि पूर्वाध्ता नामवाण्यं तेषु अर्द्धतीर्थो छे ज्येष्ठ प्रभावे  
 ज्येष्ठत क्षेत्रमां पक्षु तेषु अर्द्धतीर्थो छे महाविदेहमां पक्षु चक्रवर्तिधेना ज्येष्ठ ज्येष्ठ  
 विजयमां ज्येष्ठ नामवाण्यं तेषु तीर्थक्षेत्रो छे विजयक्षेत्र ज्येष्ठे क्षेत्रनो मध्य  
 भाग अर्द्धो अर्द्धेषु कस्यो छे आ शीते विजयक्षेत्रेमां-क्षेत्रना मध्य भागोमां  
 ते तेषु तीर्थक्षेत्रो छे ते चक्रवर्तिना तीर्थक्षेत्र शीता आदि महानदीज्येष्ठाना  
 अवतरणरूप कोष छे जने जेनां तीर्थानां नाम छे, ज्येष्ठ नामनां देवो त्यां एते छे

अर्द्धो १५ सूत्र आ प्रभावे छे-जम्बूद्वीपना भरत, ज्येष्ठत महाविदेह  
 जने चक्रवर्ति विजयना तेषु सूत्रे, घातकीस्वण्डना पूर्वार्धमां आवेता भरत,  
 ऐरवत महाविदेह जने चक्रवर्ति विजयना तेषु सूत्रे, पश्चिमाधमां पक्षु  
 ज्येष्ठ प्रभावे तेषु सूत्रे, पुष्करवल्लीपार्श्वना पूर्वार्धमां आवेता भरतदिना

जम्बूद्वीपादौ मनुष्यक्षेत्रे तीर्थानि प्ररूपितानि, सम्प्रति तत्रैव त्रिस्थानोप-  
योगिनं कालं सूत्रपञ्चदशकेन, तथा कालधर्माश्च सूत्रद्वान्निगकेनाह—

मूलम्--जम्बुद्वीवे दीवे भरहेरवणसु वासेसु तीयाए उस्सप्पि-  
णीए सुसमाए समाए तिञ्चि सागरोवमकोडाकोडीओ कालो  
होत्था १ । एवं ओसप्पिणीए, नवरं पणत्ते २, आगमिस्साए  
उस्सप्पिणीए भविस्सइ ३ । एवं धायइसंडे पुरत्थिमद्धे ६ ।  
पच्चत्थिमद्धे वि९ । एवं पुक्खरवरदीवद्धे, पुरत्थिमद्धे पच्चत्थिमद्धे  
वि ३ कालो भाणियव्वो १५ ।

जम्बुद्वीवे दीवे भरहेरवणसु वासेसु तीयाए उस्सप्पिणीए  
सुसमसुसमाए समाए मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्डं उच्चत्तेणं  
तिन्नि पलिओवसाइं परमाउं पालइत्थाट । एवं इमीसे ओस-  
प्पिणीए २, आगमिस्साए उस्सप्पिणीए ३ । जम्बुद्वीवे दीवे  
देवकुरु उत्तरकुरासु मणुया तिण्णि गाउयाइं उड्डं उच्चत्तेणं,  
तिन्नि पलिओवसाइं परमाउं पालयंति ४ । एवं जाव पुक्खर-  
वरदीवद्धपच्चत्थिमद्धे २० । जम्बुद्वीवे दीवे भरहेरवणसु वासेसु  
एगमेगाए ओसप्पिणी उस्सप्पिणीए तओ वंसा उप्पज्जिसु वा  
उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा, तं जहा-अरहंतवंसे, चक्कव-  
ट्ठिवंसे, दसारवंसे २८ । एवं जाव पुक्खरवरदीवद्ध पच्चत्थिमद्धे  
२५, जम्बुद्वीवे दीवे भरहेरवणसु वासेसु एगमेगाए ओसप्पिणी

पूर्वार्ध में भरतादिकों के तीन सूत्र और पश्चिमार्ध में भी भरतादिकों  
के तीन सूत्र इस प्रकारसे, ये सब मिलकर १५ सूत्र होते हैं ॥ सू२१ ॥

त्रयु सूत्रो अने पश्चिमार्धमा आवेदा भरतादिकेना त्रयु सूत्रो आ रीते  
अर्धा भूमीने १५ सूत्रो थर्ध न्यथे ॥ सू. २१ ॥

वर्षते । तयारि-भागवम् १, परबाम २, प्रमासम् ३। एवम् ऐरवतेऽपि श्रीणि तीर्थानि सन्ति । एष जम्बूद्वीपे महाविदेहे वर्षे चक्रवर्तिनामैकैकस्मिन् विजये एतन्नामा येय श्रीणि तीर्थानि सन्ति । अत्राय विशेष-विजयक्षेत्रेषु क्षेत्रमध्यमा-नेषु वर्षते । तीर्थानि चक्रवर्तिन् शीतादि महानवधवतरणलक्षानि तन्नामकदेव निवासभूतानि १५ । पञ्चदशसूत्राणि खेत्यम्-जम्बूद्वीपस्य भरतैरवतमहाविदेहचक्रवर्ति विजयविजयाणि श्रीणि सूत्राणि १। एष घातकीखण्डस्य पूर्वार्द्धे भरतैरवतमहाविदेहचक्रवर्तिविजयत्रिपय सूत्रप्रथम् १ पश्चिमाद्धेऽप्येवमेव सूत्रप्रथमिति नवसूत्राणि ०। तथा-पुष्करवर्दीपार्द्धस्यापि पूर्वार्द्धविजयाणि श्रीणि पश्चिमाद्धे विजयाणि च श्रीणीत्येव पट्ट सूत्राणि । एष सर्वसंछलनया पञ्चदश सूत्राणि मपन्ति १५ ॥ सू० २१ ॥

भरतक्षेत्र में पूर्वादिक्रम से अपने २ नाम से प्रसिद्ध तीन हैं । इसी तरह से ऐरवतक्षेत्र में भी तीन क्षेत्र हैं महाविदेह में भी चक्रवर्तियों के एक २ विजय में इन्हीं नामवाले तीन तीर्थक्षेत्र हैं । विजयक्षेत्र से यहां क्षेत्र का मध्यभाग गृहीत हुआ है इस तरह विजयक्षेत्रों में-क्षेत्र के मध्य भागों में ये तीर्थक्षेत्र हैं ये चक्रवर्तियों के तीर्थक्षेत्र शीता आदि महानदियों के अवतरण रूप होते हैं और जैसा-तीर्थों का नाम है उसी नाम के देव यहां रहते हैं ।

पचमदशसूत्र यहां इस प्रकार से हैं-जम्बूद्वीप के भरत, ऐरवत, महाविदेह और चक्रवर्तिविजय इनके तीन सूत्र, घातकीखण्ड के पूर्वार्ध में भरत ऐरवत, महाविदेह और चक्रवर्तिविजय इनके तीनसूत्र, पश्चिमाध में भी इसी तरह से तीनसूत्र, पुष्करवर्दीपार्ध के भी

भरत क्षेत्रमां भगव आदि पूर्वोक्त नामवाणां त्रयु लक्षणीयो ॐ ज्ञेय प्रभावे ऐरवत क्षेत्रमां पञ्च त्रयु लक्षणीयो ॐ भद्राविदेहमां पञ्च चक्रवर्तिनेना ज्ञेय ज्ञेय विजयमां ज्ञेय नामवाणां त्रयु तीर्थक्षेत्रे ॐ विजयक्षेत्र ज्ञेयते क्षेत्रना मध्य भाग अर्द्धे प्रदणु कराये ॐ आ शीते विजयक्षेत्रेमां क्षेत्रना मध्य भागोमां ते त्रयु तीर्थक्षेत्रे ॐ ते चक्रवर्तिना तीर्थक्षेत्र यीना आदि महानदीनेना अवतरणरूप ढोव ॐ अने जेनां तीर्थानां नाम ॐ, ज्ञेय नामनां देवा तथा रहते ॐ

अर्द्धे १५ सूत्र आ प्रभावे ॐ-जम्बूद्वीपना भरत, ऐरवत, भद्राविदेह अने चक्रवर्ति विजयना त्रयु सूत्रे। घातकीखण्डना पूर्वार्धमां अथवेता भरत, ऐरवत भद्राविदेह अने चक्रवर्ति विजयना त्रयु सूत्रे। पश्चिमाधमां पञ्च ज्ञेय प्रभावे त्रयु सूत्रे, पुष्करवर्दीपार्धना पूर्वार्धमां आवेता भरतानि

६। पाश्चात्यार्द्धेऽपि ९। एव पुष्करवरद्वीपार्द्धे पौरस्त्यार्द्धे पाश्चात्यार्द्धेऽपि ३ कालो भणितव्यः १५।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोर्वर्षयोरतीतायामुत्सर्पिण्यां सुषम-सुषमायां समायां मनुजा त्रीणि गव्यूतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, त्रीणि पल्योपमानि परमायुरपालयन् १ । एवमस्याभवसर्पिण्याम् २, आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्याम् ३ । जम्बूद्वीपे द्वीपे

अतीत उत्सर्पिणी काल में सुषमा आरक में तीन सागरोपम कोडाकोडी प्रमाण काल था और वर्तमान अवसर्पिणी में भी सुषमा आरक में तीन सागरोपम कोडाकोडी प्रमाण काल है तथा आगामी उत्सर्पिणी में भी सुषमा आरक में तीन सागरोपम कोडाकोडी प्रमाण काल होगा "पञ्चत्थिमद्वे वि" पश्चिमार्ध में भी ऐसा ही कथन जानना चाहिये "पुष्करवरदीवद्वे पुरत्थिमद्वे ३ पञ्चत्थिमद्वे वि ३ कालो भाणियव्वो" और ऐसा ही कथन पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में भी जानना चाहिये ।

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी में सुषमसुषमा नामके आरकमें मनुष्य तीन गव्यूतिप्रमाण ऊँचे शरीरवाले थे उनकी उत्कृष्ट आयु भी तीन पल्योपम की थी, इसी तरह से इस वर्तमान अवसर्पिणी में भी सुषमसुषमा नाम के आरक में भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में मनुष्य तीन गव्यूति प्रमाण शरीरवाले हुए हैं, तथा तीन पल्योपम की उनकी आयु हुई है, इसी प्रकारका कथन आगामी उत्सर्पिणी में भी जानना चाहिये ।

उत्सर्पिणीकालेनो सुषमा आरो त्रयु सागरोपम कोडाकोडी प्रमाणे कालेनो न हतो, त्यां वर्तमान अवसर्पिणीमां पण्य सुषमा आरो त्रयु सागरोपम कोडा कोडी प्रमाणे कालेनो न छे, तथा आगामी उत्सर्पिणीमां पण्य त्या सुषमा आरो त्रयु सागरोपम कोडाकोडी प्रमाणे कालेनो न हथे "पञ्चत्थिमद्वे वि" धातुश्रीषंडना पश्चिमार्धमां पण्य पूर्वार्ध प्रमाणे न कालविषयक कथन समञ्जसुं "पुष्करवरदीवद्वे पुरत्थिमद्वे ३ पञ्चत्थिमद्वे वि ३ कालो भाणियव्वो" अत्रुं न कथन पुष्करवरद्वीपार्धना पूर्वार्धमां अने पश्चिमार्धमां पण्य समञ्जसुं न जम्बूद्वीप नामना द्वीपना भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्रमां अतीत उत्सर्पिणीना सुषमसुषमा नामना आरामां मनुष्य त्रयु गव्यूतिप्रमाणे गत्या शरीरवणा हता, तेमसुं उत्कृष्ट आयुष्य पण्य त्रयु पद्वे पमनु हतुं अत्र प्रमाणे वर्तमान अवसर्पिणीना सुषमसुषमा नामना आरामां पण्य भरतक्षेत्र अने ऐरवतक्षेत्रना मनुष्यो त्रयु गव्यूतिप्रमाणे गत्या शरीरवणा अने त्रयु पद्वेपमना आयुष्य-वणा न होय छे, अत्र प्रः

उस्तपिणीए तओ उचमपुरिसा उप्पज्जिसु वा, उप्पज्जति वा,  
उप्पज्जिस्सति वा, त जहा-अरहता, चक्कवट्ठी, वलदेववासु  
देवा २६ । एव जाव पुक्खवरदीशद्वयच्चरिथमद्धे ३० । तओ  
अहाउय पालयति, त जहा-अरहता चक्कवट्ठी वलदेव वासु  
देवा ३१ । तओ मज्झिमाउय पालयति, त जहा-अरहता,  
चक्कवट्ठी, वलदेववासुदेवा ३२ ॥ सू० २२ ॥

छाया—जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोर्वर्षयोस्तीतायाम्बुत्सर्पिण्यां सुपमार्यां  
समार्यां त्रयः सागरोपमकोटि कोटयः काल आसीत् १ । एवमवसर्पिण्यां, नवर  
प्रज्ञप्तः २ । आगमिष्यन्त्याम्बुत्सर्पिण्यां भविष्यति ३ । एव घातकीत्वण्डे पौरस्त्यार्द्धे

जम्बूद्वीप आदि मनुष्यक्षेत्र में तीर्थप्ररूपित किये जा चुके हैं अब  
सूत्रकार वहीं पर त्रिस्थानोपयोगी काल का कथन १५ सूत्रों से तथा  
कालधर्मों का कथन २२ सूत्रों से करते हैं—( जम्बूद्वीपे दीप भरतैरवतसु  
वासेसु ) इत्यादि

सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में स्थित भरतक्षेत्र और ऐरवतक्षेत्र में  
अतीत उत्सर्पिणी में सुपमा आरक में तीन सागरोपम कोडाकोडीय  
माण काल था इसी तरह से वर्तमान अवसर्पिणी में सुपमा आरक में  
भी जानना चाहिये आगामी उत्सर्पिणी में भी भरतक्षेत्र और ऐरवत  
क्षेत्र में सुपमा आरक में तीन सागरोपम कोडाकोडी प्रमाण काल होगा  
“एवं चायइसद्धे पुरस्त्रिमद्धे” घातकीत्वण्ड में भी पूर्वार्द्ध भाग में

जम्बूद्वीप आदि मनुष्यक्षेत्रमा आवेतां तीर्थानि प्रज्ञप्ता पूरी यथ ६वे  
सुत्रकार त्राना त्रिस्थानोपयोगी काल १५ सूत्रे द्वारा अने कालधर्मोनु ३२  
सूत्रे द्वारा कथन करे छे— जम्बूद्वीपे दीपे भरतैरवतसु वासेसु’ इत्यादि—  
सूत्रार्थ—जम्बूद्वीप नामना द्वीपना भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्रमा अतीत ( अतीत  
यथ सुक्तेषु ) उत्सर्पिणीना सुपमा आरक तत्र सागरोपम के कोडाकोडी प्रमाण  
कालना ६वो अथ प्रमाणे वर्तमान अवसर्पिणीना सुपमा आरकना काल त्रिरे  
पञ्च समस्तु आगामि ( भविष्यता ) उत्सर्पिणीमां पञ्च अतीत अने  
ऐरवत क्षेत्रना सुपमा आरक तत्र सागरोपम के कोडाकोडी प्रमाण कालना ६  
वो, “एवं चायइसद्धे पुरस्त्रिमद्धे” घातकीत्वण्डे पूर्वाध भागमां पञ्च अतीत

६। पाश्चात्यार्द्धेऽपि ९। एव पुष्करवरद्वीपार्द्धे पौरस्त्यार्द्धे पाश्चात्यार्द्धेऽपि ३ कालो भणितव्यः १५।

जम्बूद्वीपे द्वीपे भरतैरवतयोर्वर्षयोरतीतायामुत्सर्पिण्यां सुषम-सुषमायां समायां मनुजा त्रीणि गन्धूतानि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, त्रीणि पल्योपमानि परमायुरपालयन् १। एवमस्याभवसर्पिण्याम् २, आगमिष्यन्त्यामुत्सर्पिण्याम् ३। जम्बूद्वीपे द्वीपे

अतीत उत्सर्पिणी काल में सुषमा आरक में तीन सागरोपम कोडाकोडी प्रमाण काल था और वर्तमान अवसर्पिणी में भी सुषमा आरक में तीन सागरोपम कोडाकोडी प्रमाण काल है तथा आगामी उत्सर्पिणी में भी सुषमा आरक में तीन सागरोपम कोडाकोडी प्रमाण काल होगा "पञ्चत्थिमद्वे वि" पश्चिमार्ध में भी ऐसा ही कथन जानना चाहिये "पुष्करवरदीवद्वे पुरत्थिमद्वे ३ पञ्चत्थिमद्वे वि ३ कालो भाणियन्वो" और ऐसा ही कथन पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध में और पश्चिमार्ध में भी जानना चाहिये।

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में अतीत उत्सर्पिणी में सुषमसुषमा नामके आरकमें मनुष्य तीन गन्धूतिप्रमाण ऊँचे शरीरवाले थे उनकी उत्कृष्ट आयु भी तीन पल्योपम की थी, इसी तरह से इस वर्तमान अवसर्पिणी में भी सुषमसुषमा नामके आरक में भरतक्षेत्र और ऐरवत क्षेत्र में मनुष्य तीन गन्धूति प्रमाण शरीरवाले हुए हैं, तथा तीन पल्योपम की उनकी आयु हुई है, इसी प्रकारका कथन आगामी उत्सर्पिणी में भी जानना चाहिये।

उत्सर्पिणीकालने सुषमा आरके त्रयु सागरोपम कोडाकोडी प्रमाणे कालने न डतो, त्या वर्तमान अवसर्पिणीमां पण सुषमा आरके त्रयु सागरोपम कोडाकोडी प्रमाणे कालने न छे, तथा आगामी उत्सर्पिणीमां पण त्या सुषमा आरके त्रयु सागरोपम कोडाकोडी प्रमाणे कालने न छे "पञ्चत्थिमद्वे वि" धातडीभंडना पश्चिमार्धमां पण पूर्वार्ध प्रमाणे न कालविषयक कथन समजतुं.

"पुष्करवरदीवद्वे पुरत्थिमद्वे ३ पञ्चत्थिमद्वे वि ३ काळो भाणियन्वो" अतुं न कथन पुष्करवरद्वीपार्धना पूर्वार्धमां अने पश्चिमार्धमां पण समजतुं न जम्बूद्वीप नामना द्वीपना भरतक्षेत्र अने ऐरवत क्षेत्रमां अतीत उत्सर्पिणीना सुषमसुषमा नामना आरामां मनुष्य त्रयु गन्धूतिप्रमाणे उंचा शरीरवाणा हुता. तेमवु उत्कृष्ट आयुष्य पण त्रयु पल्येपमतुं छेतु अतुं प्रमाणे वर्तमान अवसर्पिणीना सुषमसुषमा नामना आरामां पण भरतक्षेत्र अने ऐरवतक्षेत्रना मनुष्यां त्रयु गन्धूतिप्रमाणे उंचा शरीरवाणा अने त्रयु पल्येपमना आयुष्यवाणा न होय छे, अतुं प्रकारतुं कथन आगामी उत्सर्पिणीमां पण समजतुं.

देवकुरुवरकुरुपु मनुजासीणि गव्युतानि ऊर्ध्वमुन्नत्वेन, श्रीणि पल्पोपमानि पर  
मायु पालयति ४ । एव यावत् पुष्करवरीपार्द्धपाधात्पार्द्धे २० । जम्बूद्वीपे द्वीपे  
भतैरवतयोरेकैस्स्यामवसर्पिष्युत्सर्पिण्यां प्रपोषद्वा उदपयन्त वा, उत्पद्यन्ते वा,  
उत्पत्स्यन्ते वा, तद्यथा-अर्द्धदश, चक्रवर्तिनश्च, दशारवश्च २१ । एव यावत्  
पुष्करवरीपार्द्धपाधात्पार्द्धे २१ । जम्बूद्वीप द्वीप भतैरवतयार्धयोरैकैस्स्याम  
वसर्पिष्युत्सर्पिण्यां प्रय उत्तमपुरुषा उदपयन्त वा उत्पद्यन्त वा उत्पत्स्यन्त वा तद्यथा  
-अर्द्ध, चक्रवर्तिना, वसुदेववासुदेवा २६ । एव यावत् पुष्करवरीपार्द्धपा

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें जो देवकुरु और उत्तरकुरु हैं उनमें रहने  
वाले मनुष्य तीन गव्युति प्रमाण ऊँचे शरीरवाले होते हैं, उनकी आयु  
तीन पल्पोपम की होती है, इसी तरह से यावत् पुष्करवरीपार्द्ध के  
पश्चिमार्द्ध में भी कथन जानना चाहिये, इस जम्बूद्वीप नाम के द्वीप में  
भरत और ऐरवत क्षेत्र में एक अवसर्पिणी में और एक उत्सर्पिणी में  
तीन वश उत्पन्न हुए हैं होते हैं, आगे भी उत्पन्न होंगे । जैसे-अर्द्धदश  
चक्रवर्ति वश और दशारवदश, इसी तरह का कथन यावत् पुष्करवरी  
द्वीपार्द्ध के पश्चिमार्द्ध में भी जानना चाहिये ।

जम्बूद्वीप नामके द्वीपमें एक २ अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में  
तीन उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए हैं, उत्पन्न होते हैं और आगे उत्पन्न होंगे  
जैसे अर्द्धदश चक्रवर्ति और वसुदेव वासुदेव, इसी तरह का कथन यावत्  
पुष्करवरीपार्द्ध के पश्चिमार्द्ध में जानना चाहिये । ये तीन अपनी

जम्बूद्वीप नामका द्वीपमें जो देवकुरु और उत्तरकुरु नामकी क्षेत्रों में  
तेमें रहते हैं मनुष्यो त्रय गव्युतिप्रमाण ऊँचा शरीरवाला उन्नत है और तेमनु  
जसुभ्य त्रय पश्योपमनु कोष है जो प्रमाणे पुष्करवरीपार्द्धना पश्चि  
मार्द्ध पश्चिमतना द्वीपाना क्षेत्रोंमें वसता मनुष्यो उन्नत और आयुष्यनु  
कथन पश्य समञ्जसु आ जम्बूद्वीपना वसत और उत्पन्न क्षेत्रमा जो वस  
सर्पिणीमा और जो उत्सर्पिणीमा त्रय वश उत्पन्न यथा कृता थाय है  
अने कविभ्यमां पश्य उत्पन्न यथे जेभके अर्द्धदश वश, चक्रवर्ति वश और  
दशार वश (वासुदेव) जो प्रमाणे कथन पुष्करवरीपार्द्धना पश्चिमार्द्ध  
पयन्तना द्वीपवर्ती क्षेत्रो विषे पश्य समञ्जसु ।

जम्बूद्वीप नामका द्वीपमें जो उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीमां  
त्रय उत्तम पुरुष उत्पन्न यथा कृता, थाय है और कविभ्यमां पश्य यथे  
जेभके अर्द्धदश वशवर्ती और वसुदेव वासुदेव जो प्रमाणे कथन पुष्करवरी  
द्वीपार्द्धना पश्चिमार्द्ध पयन्तना द्वीपाना विषे पश्य समञ्जसु, आ त्रय पिताना

શ્રાત્યાદ્દે ૩૦ । ત્રયો યથાયુષ્કં પાલયન્તિ, તદ્વથા-અર્હન્તઃ, ચક્રવર્તિનઃ, વલ-  
દેવવાસુદેવાઃ ૩૧ । ત્રયો મધ્યમાયુઃ પાલયન્તિ, તદ્વથા-અર્હન્તઃ, ચક્રવર્તિનઃ,  
વલદેવવાસુદેવાઃ ૩૨ ॥ ૨૨ ॥

ટીકા—‘ જંબુદ્વીવે ’ इत्यादि सर्वं सुगमम् । नवरम्—‘पन्नत्त’ इति प्रज्ञप्तः,  
इत्यनेन — अवसर्पिणीकालस्य वर्तमानत्व सूचितम् । अत्र ‘ होत्था ’ इति  
व्यपदेशो न कार्यः ।

‘ જંબુદ્વીવે ’ इत्यादीनि ‘ वलदेववासुदेवा ’ इत्यन्तानि द्वात्रिंशत् कालधर्म-  
सूत्राणि सुगमानि, नवरम्—‘ अहाउयं पालयन्ति ’ यथायुष्कं पालयन्ति निरूपक-  
मायुष्कत्वात्, ‘ मञ्जिमाउयं पालयन्ति ’ मध्यमायुः पालयन्ति वृद्धत्वाभावादिति

પૂરી આયુ કા પાલન કરતે હૈં—અર્હન્ત, ચક્રવર્તી ઓર વલદેવ વાસુદેવ,  
યે ત્રીન મધ્યમાયુ કા પાલન કરતે હૈં — અર્હન્ત, ચક્રવર્તી ઓર  
વલદેવ વાસુદેવ ।

ટીકાર્થ—“नवरं प्रज्ञप्तः” ऐसा जो कहा गया है सो उसका तात्पर्य ऐसा  
है कि सूत्रकारने अवसर्पिणी कालमें वर्तमानता सूचित की है, इसलिये  
यहां “ होत्था ” ऐसा भूतकालका निर्देश नहीं करना चाहिये ।

“ यथायुष्कं का पालन करते हैं ” इस कथन का तात्पर्य ऐसा है  
कि ये निरूपक्रम आयु वाले होते हैं अतः जितनी आयु का बंध इन्हें  
होता है उसे पूरी २ पालते हैं इनको अकालमरण नहीं होता है ।

“ मध्यमायु का पालन करते हैं ” इसका तात्पर्य ऐसा है कि ये सब  
वृद्धावस्था से परे रहते हैं—अर्थात् इनको वृद्धता नहीं आती है ।

પૂરેપૂરા આયુનું પાલન કરે છે—અર્હન્ત, ચક્રવર્તી અને વલદેવવાસુદેવ—“ નવ  
પ્રજ્ઞપ્ત ” આ કથનનો ભાવાર્થ નીચે પ્રમાણે છે—સૂત્રકારે અવસર્પિણી કાળમા  
વર્તમાનતા સૂચિત કરી છે, તેથી અહીં “ હોત્યા ” આ પ્રકારનો ભૂતકાળનો  
નિર્દેશ કરવો ભેદજ નહીં.

“ यथायुष्कतुं पालन करे છે ” આ કથનનું તાત્પર્ય આ પ્રમાણે છે—  
તેઓ નિરૂપક્રમ આયુવાળા હોય છે. તેથી તેમણે બેટલા આયુનો બંધ કર્યો  
હોય છે એટલું આયુ પૂરેપૂરું લોગવે છે, તેમનું અકાલે મરણ થતું નથી.  
“ તેઓ મધ્યમ આયુ લોગવે છે ” આ કથનનો ભાવાર્થ એવો છે કે તેઓ  
વૃદ્ધાવસ્થા પ્રાપ્ત કરતા નથી. તેમનું જીવન વૃદ્ધાવસ્થાથી રક્ષિત હોય છે.



३२। द्वाविंशत्सूत्राणि चेत्यम्-जम्बूद्वीपस्य भरतैरवतपोरतीतोत्सर्पिणी-वर्षमाना  
 षसर्पिण्यनागतोत्सर्पिणीकालविषयाणि प्रीणि सूत्राणि, एक च देवकुरुचरकुरु  
 षविषयमिति चत्वारि ४, एव घातकीम्वण्डस्य पूर्वार्धविषयाणि चत्वारि, पश्चिमार्ध  
 विषयाणि च चत्वारित्यष्ट, एव पुष्करवल्लीपार्धस्य पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध विषयाणि  
 षाष्ट, इत्यत्र षोडश, एव पूर्वोक्तसूत्रचतुष्टयेन सह सफलनेन विंशत्सूत्राणि  
 भवन्ति २०। भरतैरवतपोर्वंशविषयमेक सूत्रम् १। एव घातकीम्वण्डस्य पूर्वार्धपश्चि  
 मार्धविषयं द्वयम् ३। पुन पुष्करवल्लीपार्धस्य पूर्वार्धपश्चिमार्धविषयं द्वयम्  
 मिति षड् ६। एव पूर्वोक्तविंशत्सूत्रैः सह सफलनेन पञ्चविंशत्सूत्राणि भवन्ति  
 २५। जम्बूद्वीपस्य भरतैरवतपोरवतपुत्रोत्पत्तिविषयमेकम् १, पुनघातकीम्वण्ड  
 स्य पूर्वार्धपश्चिमार्धविषयं द्वयम् २, पुष्करवल्लीपार्धस्य पूर्वार्ध-पश्चिमार्ध  
 विषयं द्वयम् २ चेति षड् ६। एवं पूर्वोक्तपञ्चविंशत्सूत्रैः सह सफलनेन विंश

पहां ३२ सूत्र इस प्रकार से हैं-जम्बूद्वीप सवषी भरत और ऐर  
 वतक्षेत्र के अतीत उत्सर्पिणी, वर्षमान अवसर्पिणी, एव अनागत  
 उत्सर्पिणीकालविषयक तीन सूत्र तथा उत्तर कुरु एव देवकुरु विषयक  
 एकसूत्र, तथा घातकी म्वण्ड के पूर्वार्धविषयक ४ सूत्र और पश्चिमार्ध  
 विषयक ४ सूत्र, इसी तरह से पुष्कर वर द्वीपार्ध के पूर्वार्ध और पश्चि  
 मार्ध विषयक ८ सूत्र कुल इन सोलह सूत्रों में पहिले चार ४ सूत्र  
 मिला देने से २० सूत्र हो जाते हैं भरत और ऐरवत क्षेत्र के चंदावि  
 षयक एक सूत्र तथा घातकीम्वण्ड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध विषयक २  
 सूत्र, तथा पुष्करवल्लीपार्ध के पूर्वार्ध, पश्चिमार्ध के २ सूत्र इस प्रकार  
 ५ पांच सूत्र ये पूर्वोक्त २० सूत्रों में मिला देने से २५ सूत्र हो जाते हैं

अर्थात् ३२ सूत्र नीचे प्रमाणों से-जम्बूद्वीपना भरत और ऐरवत क्षेत्रना  
 उत्सर्पिणी, वतमान अवसर्पिणी और आभागी उत्सर्पिणी कालविषयक त्रय  
 सूत्रा, उत्तरकुरु और देवकुरु विषयक ज्येष्ठ सूत्र, घातकीम्वण्डना पूर्वार्ध विषयक  
 चार सूत्रा और पश्चिमार्ध विषयक चार सूत्रा ज्येष्ठ प्रमाणों पुष्करवल्लीपार्ध  
 पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध विषयक आठ सूत्रा आ रीते ३+१+४+४+८  
 =२० सूत्राना बहुसुभीमां जताव्यो जर्भा(३)७

भारतक्षेत्र और भरतक्षेत्र पश्चिमविषयक ज्येष्ठ सूत्र घातकीम्वण्डना पूर्वार्ध  
 और पश्चिमार्ध विषयक ज्येष्ठ सूत्र तथा पुष्करवल्लीपार्धना पूर्वार्ध और  
 पश्चिमार्धना ज्येष्ठ सूत्र भगिने ये पांच सूत्रा पांच छे तेमने पूर्वोक्त २०  
 सूत्रां अमेरतां २५ सूत्र पांच छे भरत और ऐरवतक्षेत्रना उत्तम पुष्करनी  
 उत्पत्ति विषयं ज्येष्ठ सूत्र घातकीम्वण्डना पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध विषयक ज्ये  
 सूत्र, और पुष्करवल्लीपार्धना पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध विषयक ज्येष्ठ सूत्र भगिने

सूत्राणि भवन्ति ३०। पुनरायुर्विषयकं सूत्रद्वयमिति सर्वसंकलनया द्वात्रिंशत्सूत्राणि भवन्ति ३२ ॥ सू० २२ ॥

आयुष्काधिकारास्थितिसूत्रमाह—

मूलम्—वायरतेउकाइयाणं उक्कोसेणं तिन्नि राइंदि-  
याइं ठिई पणत्ता । वायरवाउकाइयाणं उक्कोसेणं तिन्नि  
वाससहस्साइं ठिई पणत्ता । अह भंते ! सालीणं वीहीणं  
गोधूमाणं जवाणं जवजवाणं, एएसि णं धन्नाणं कोट्टा उत्ताणं  
पह्हा उत्ताणं मंचा उत्ताणं मालाउत्ताणं ओलित्ताणं लित्ताणं  
लंछियाणं मुहियाणं पिहियाणं केवइयं कालं जोणी संचिट्ठिइ ?  
गोयसा ! जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि संवच्छराइं,  
तेण परं जोणी पमिलायइ, तेण परं जोणी पविद्धंसइ, तेण  
परं जोणी विद्धंसइ, तेण परं वीए अवीए भवइ, तेण परं  
जोणी वोच्छेओ पणत्तो । दोच्चाए णं सक्करप्पभाए पुढवीए  
णेइयाणं उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं ठिई पणत्ता ।  
तच्चाए णं वालुयप्पभाए पुढवीए णेइयाणं जहन्नेणं तिन्नि  
सागरोवमाइं ठिई पणत्ता ॥ सू० २३ ॥

भरत ऐरवतक्षेत्र में उत्तमपुरुषोत्पत्तिविषयक १ सूत्र, तथा घातकीखण्ड  
के पूर्वार्ध पश्चिमार्ध विषयक २ सूत्र और पुष्करवरद्वीपार्ध के पूर्वार्ध  
और पश्चिमार्ध के २ सूत्र—ये ५ सूत्र, २५ सूत्रों के साथ मिलाने से ३०  
सूत्र हो जाते हैं। तथा आयु विषयक २ सूत्र और इनमें जोड़ देने से  
कुल ३२ सूत्र होते हैं ॥ सू० २२ ॥

ये पात्र सूत्रे थाय छे तेमने पूर्वोक्त २५ सूत्रेमां उभेस्वाथी ३० सूत्र थाय  
छे. ते ३० सूत्रेमां आयुविषयक ये सूत्र उभेस्वाथी कुल ३२ सूत्रे  
थय नय छे. ॥ सू. २२ ॥



ततः परं योनिः प्रविध्वंसते, ता पर योनिर्विध्वंसते, ततः परं बीजम् अबीजं भवति, ततः परं योनिव्युच्छेदः प्रज्ञप्तः । द्वितीयायां खलु गर्कराप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकाणामुत्कर्षेण त्रीणि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता । तृतीयायां खलु बालुकाप्रभायां पृथिव्यां नैरयिकाणां जघन्येन त्रीणि सागरोपमाणि स्थितिः प्रज्ञप्ता ॥ सू० २३ ॥

टीका—‘ वायरतेउ० ’ इत्यादि । वादरतेजस्कायिकानां स्थितिरुत्कर्षेण त्रीणि रात्रिन्दिवानि, वादरवायुकायिकानां च त्रीणि वर्षसहस्राणि-वर्षाणां सहस्रत्रयं स्थिति भवतीति । अथ स्थित्यधिकारात् शाल्यादि धान्यानां योनिस्थितिं प्रश्नोत्तरेण प्राह—‘ अह भंते ’ इत्यादि, ‘ अथ ’ परिप्रश्नार्थः ‘ भंते ’ इति हे भदन्त । हे-भगवन् ! भदन्तगवदस्य विशेषव्याख्या आवश्यकसूत्रस्य मत्कृतायां मुनितोषिणी टीकायां ‘ करेमि भंते सामाडय ’ इत्यत्र विलोकनीया । शाल्यादि-धान्यानाम्, कीदृशानाम् ? इत्याह—लोष्ठागुप्तानां-कुशूले सरशिनाना, पलयांगु-

रहती है इसके बाद अङ्गुरोत्पादन शक्ति उनमें से नष्ट हो जाती है अर्थात् बीज अबीज हो जाता है उसकी योनि विच्छिन्न हो जाती है । वर्ण गंध रस स्पर्श आदि से वह हीन हो जाती है, “ विनश्यति, विध्वंसते, ” आदि क्रियापद इसी अर्थ का समर्थन करते हैं द्वितीय गर्करा प्रभापृथिवी में नैरयिकों की उत्कृष्टस्थिति तीन सागरोपम की कही गई है तीसरी बालुकाप्रभा पृथिवी में नैरयिकों की जघन्य स्थिति तीन सागरोपम की कही गई है ।

टीकार्थ—यहां सूत्रकारके तीन स्थानकका प्रकरण होनेसे संबंध रखने-वाली वादर तेजस्कायिक आदिकों की स्थिति के विषय में कथन क्रिया है इसमें कहा गया है कि वादर तेजस्कायिकों की स्थिति उत्कृष्ट से तीन अहोरात्र ( तीन दिनरात ) की है तथा वादर वायुकायिक जीवों

सारभाह तेनी अङ्गुरोत्पादन शक्ति अवश्य नाश पाभी नय छे अष्टले के त्रयु वर्षमा तो भीज अभीज रूप थर्ष नय छे—तेनी योनि विच्छिन्न थर्ष नय छे, गंध, रस, स्पर्श आदिथी ते रक्षित थर्ष नय छे “ विनश्यति, विध्वंसते ” आदि क्रियापदो आ अर्थतु न समर्थन करे छे. शर्कराप्रभा नामनी भी७ नरकना नारकोनी उत्कृष्टस्थिति त्रयु सागरोपमनी कही छे. बालुकाप्रभा नामनी त्री७ नरकना नारकोनी जघन्यस्थिति त्रयु सागरोपमनी कही छे

टीकार्थ—त्रयु स्थानकोनो अधिकार आलतो डोवाथी सूत्रकारे अर्ही त्रयु स्थानो साथे संभध राभता आदर तेजस्कायिक आदिनी स्थिति विषे कथन कथुं छे अर्ही अेषु कहेवामां आ०युं छे के आदर तेजस्कायिकोनी उत्कृष्टस्थिति त्रयु दिनरातनी डोय छे, तथा आदर वायुकायिक त्रयोनी उत्कृष्टस्थिति त्रयु डेनर

सानां, पर्य-वशकृत्कादिकृत्वो घान्याधारविशेष', तत्राग्रतानां-संरक्षितानाम् । मञ्चापुप्तानां-मञ्च-स्यूगानामुपरिस्यापितो वशकृत्कादिनिर्मितो मिचिरहितो लोकमसिद्धः, तत्र संरक्षितानाम् । मालायुप्तानां-मालसंरक्षितानां-मालक'-गृहस्योपरितनभाग, उक्तञ्च—

'अङ्कुरो होइ मवो, मालो य घरोवरि होइ' इति ।

छाया—भ्रुकुडयो मवति मञ्चः, मालञ्च गृहोपरि मवति । भवलिप्तानां-द्वारपेश पिभाय गोमयमृत्तिकादिछेपेनाऽऽच्छादितानाम् । लिप्तानां-सर्वतोमृत्तिकादिनाऽऽच्छादितानाम् । लाञ्छितानां-रेखादिकरणेन कृतछाञ्छनानाम् । मृत्तितानां-आसादिमुद्रावताम् । पिहितानां-लोष्टमृत्कादिना स्यगितानां शस्यादिधान्यानां कियत्काम यावत् योनिः-अङ्कुरोत्पत्तिसामर्थ्यं सतिष्ठते ? उत्तरमाह—हे गौतम ! जपयेन भन्तर्मुहूर्त्त-गृहर्चाभ्यन्तरकाल यावत् सतिष्ठते,

की वल्कूष्ठ स्थिति तीन हजार वर्ष की है तथा फोष्ठगुप्त-कोठी में भर कर रखे गये, पल्प में बंशनिर्मित घान्याधारविशेष में रखे गये तथा मञ्च-संभे आदि के ऊपर लटकोकर घास आदि के बने हुए पिटारे में रखे गये, मालक गृह के उपरितनभाग में राशी करके रखे गये अब लिप्त-कोठि आदि का मुह गोपर आदि से बन्द करके उसमें रखे गये, लिप्त-मिटी आदि के द्वारा ढंक कर रखे गये, लाञ्छित करके रखे गये, अर्थात्-एक ही जगह पार्टीशन करके पडा आदि में भरे गये तथा लाञ्छ आदि की मुहर करके किमी वर्तन में भर कर रखे गये ऐसे घान्यादिक घानों में अङ्कुरोत्पत्ति करने की शक्ति कथमक रहती है ? तो इसके उत्तर में प्रभु कहते हैं कि इन में अङ्कुरोत्पत्ति करने की शक्ति

वर्षनी देव उ तथा डोडीमां लरीने राजेशा पश्यमां-वाञ्छनिर्मित घान्याधार विशेषमां (पात्रमां) राजेशा, मञ्च उपर राजेशा-स्थल आदि उपर लटकावेसी वास आदिनी पेटिमां राजेशा मालकानां (परना सोपी उपरना भाजे) दमशो डरीने राजेशा अरक्षितडोडी आदिना मुपने छाल, माटी आदिनी लध डरीने तेमां राजेशा, लिप्त-माटी आदि द्वारा डरीने राजेशा लञ्छित डरीने राजेशा जेटवे के जेठ व जन्मावे पार्टीशन डरीने पडा (वभाए) आदिमां लरेशा तथा लाञ्छ आदि वटे श्रील लत्रावीने डोड पात्रमां लरी राजेशा शास्त्रादि (दागर वजेरे) धा योमां अङ्कुरोत्पत्ति करवानी शक्ति देवता काज मुपी रहे उ ?

आ प्रश्नो उत्तर आपता मद्दानीर प्रभु बडे उ के 'ते धान्यामां अङ्कुरोत्पत्ति करवानी शक्ति योछामां योछा जेठ अन्तमुद्रां मुपी जने

ઉત્કર્ષેણ ત્રીણિ સંવત્સરાણિ-વર્ષત્રયંયાત્તદ્ અહુકુરોત્પત્તિસામર્થ્યં સતિષ્ઠતે, ઇતિ । તતઃ ક્રિમ્ ? ઇત્યાહ—‘ તેણપરં ’ ઇત્યાદિ, તતઃ પરં-તદનન્તરં વર્ષત્રયાનન્તરં-યોનિઃ પ્રમ્લાયતિ-વર્ણગન્ધરસસ્પર્શાદિના હીયતે । પ્રવિધ્વંસતે-વિનશ્યતિ, વિધ્વંસતે-ક્ષીયતે । एवं ચ સતિ તદ્વીજ-શાલ્યાદિ વીજમ્ અવીજં ભવતિ, ઉક્તપિ તદ્વીજં નાહુકુરમ્પ્રત્યાદયતીત્પર્યઃ, કિમુક્તં ભવતિ ? તતઃ પર-વર્ષત્રયાનન્તરં શાલ્યાદીનાં યોનિવ્યવચ્છેદઃ-ઉત્પાદનશક્તિવિનાશઃ પ્રજ્ઞપ્તઃ, મયાડન્યૈશ્ચ કેવલિ-ભિરિતિ । ત્રિસ્થાનકાવતારેણ નારકાણાં સ્થિતિમાહ—‘ દોષાણાં ’ ઇત્યાદિ સ્પષ્ટ-નરરં-શર્કર. પ્રાણ્યાયાયાં દ્વિતીયા નારકાણાં ત્રીણિ સાગરોપમાણિ સાગ-રોપમત્રાયપરિમિતેત્યર્થઃ સ્થિતિઃ પ્રજ્ઞપ્તા । एवं તૃતીયાયાં વાલુકાપ્રમાયામપિ પૃથિવ્યાં નારકાણાં સ્થિતિર્વિજ્ઞેયા ॥ સૂ ૦ ૨૩ ॥

કમ સે કમ એક અન્મુહૂર્તં તક રહતી હૈ ઓર અધિક સે અધિક તીન વર્ષતક રહતી હૈ ઇસકે વાદ ડનમેં અહુગોત્વાદન શક્તિ કા વર્ણ, ગંધ, રસ ઓર સ્પર્શ આદિ કી અપેક્ષા હ્રાન હો જાના હૈ ડમ શક્તિ કા ડનમેં વિનાશ હો જાતા હૈ વહ શક્તિ ડનમેં સે નષ્ટ હો જાતી હૈ અર્થાત્ પીછે યે સવ અચિત્ત હો જાતે હૈ ઇસ તરહ કી અવસ્થા મેં વહ વીજ અવીજ હો જાના હૈ અર્થાત્ અહુર કો ઉત્પન્ન કરને કી શક્તિ સે રહિત હો જાતા હૈ ઇસલિયે વહ યોનિ રૂપ નહીં રહતા હૈ એસા મેરા ઓર અન્ય કેવલિયોં કા કહના હૈ મંચ આદિ કે અર્થ કે વિષય મેં એસા લિખા હૈ—“ અકુહો હોહ મંચો ” ઇત્યાદિ । શાસ્ત્રકારોં ને એસા લિખા હૈ ક્રિ પહિલે ૨ નરકોં મેં જો ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ હૈ વહ આગે ૨ કે નરકોં મેં જઘન્ય હો ગઈ હૈ અતઃ ઇસ કથન કે અનુ-સાર વાલુકાપ્રમા નામ કી જો તૃતીય પૃથિવી હૈ ડસમેં નારકિયોં કી

વધારેમા વધારે ત્રણ વર્ષ સુધી રહે છે ત્યારબાદ તેમા અહુરોત્પાદન શક્તિનો વર્ણ, ગંધ, રસ અને સ્પર્શની અપેક્ષાએ હાસ થઇ જાય છે-તે પીઝેની તે શક્તિનો વિનાશ થઈ જાય છે આ પ્રકારની પરિસ્થિતિમા તે પીઝ અપીઝ બની જાય છે એટલે કે તે અહુરને ઉત્પન્ન કરવાની શક્તિથી રહિત થઈ જાય છે, તે કારણે તે યોનિરૂપ રહેતું નથી આ પ્રકારનું માર કથન છે અને અન્ય કેવલીઓના કથનથી આ વાતને સમર્થન મળે છે મંચ આદિનો અર્થ આ પ્રમાણે લખ્યો છે—“ અકુહો હોહ મંચો ” ઇત્યાદિ શાસ્ત્રકારોએ એણે લખ્યું છે કે પહેલી નરકમા જે ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ હોય છે, એજ પછીની નરકમાં જઘન્ય-સ્થિતિ હોય છે આ સિદ્ધાંત પ્રમાણે પીછ પૃથ્વીના નારકોની જે ઉત્કૃષ્ટસ્થિતિ ઠહી છે, એજ જઘન્યસ્થિતિ ઠહી છે. તેથી પીછ

નરકપૃથિવ્યધિકારાનરક—નારક વિશેષસ્વરૂપ મરૂપયન્ સૂત્રમયીમાદ—

મૂલ્—પચમાણ ધૂમપ્પમાણ પુઢવીણ તિન્નિ નિરયાત્રા  
સસયસહસ્તા પળ્લતા ૧ । તિસુણ પુઢવીસુ ણેરહ્યાણં ડસિણ  
વેયણા પળ્લતા, ત જહા—પઢમાણ, ડોચ્ચાણ, તચ્ચાણ ૨ ।  
તિસુણ પુઢવીસુ ણેરહ્યા ડસિણવેયણપચ્ચણુમચમાણા ત્રિહરતિ,  
ત જહા—પઢમાણ ડોચ્ચાણ તઠ્ઠાણ ૩ ॥ સૂ૦ ૨૪ ॥

છાયા—પચ્ચમ્પાં સલુ ધૂમપમાયાં પૃથિવ્યા પ્રીણિ નિરયાત્રાસઞ્જતસહસ્તાણિ  
મહ્પ્પાણિ ૧ । ત્રિપુ સલુ પૃથિવીપુ નૈરયિકાણામ્પ્પાવેદના મહ્પ્પા, ઠયયા—મય  
માયા, ઢ્વિતીયાયાં, ઠ્વતીયાયામ્ ૨ । ત્રિપુ સલુ પૃથિવીપુ—નૈરયિકા ડપ્પવેદનાં  
મત્પનુમરન્તો ત્રિહરન્તિ, ઠયયા મયમાયાં ઢ્વિતીયાયામ્ ઠ્વતીયાયામ્ ૩ ॥ સૂ૦ ૨૪ ॥

ટીકા—‘ પંચમાણ ’ ઇત્યાદિ નવર—પચ્ચમ્પાં ધૂમપમાપૃથિવ્યાં  
નરકાત્રાસાનાં પ્રીણિ ઞ્જતસહસ્તાણિ—ખિન્નનરકાવાસાઃ સન્તીતિ ૧ । ‘ તિસુણ ’  
ઇત્યાદિ, તિસુણુ—મયમ—ઢ્વિતીય—ઠ્વતીયાસુ પૃથિવીપુ નૈરયિકાણામ્પ્પાવેદના મહ્પ્પા,  
આસાં તિસુણામ્પ્પાસ્વમાપ્પત્ત્વાટ ૨ । તે નૈરયિકાસ્તામ્પ્પાવેદનામન્નુમવત્રિપયી

જગત્પ સ્થિતિ ત્રીજ સાગરોપમ કી હો ગહ્ હૈ ક્યોં કિ યહ્ ત્રીજ સાગરો  
પમ કી ડલ્કૂટસ્થિતિ ડાકરોપમા કે નારકિયોં ક્ષી હૈ ॥ સૂ૦ ૨૩ ॥

નરકપૃથિવી કે સયંત્ર કો છેકર અપ મૂત્રકાર નરક ઓર નારક  
કે ધિશેષ સ્વરૂપ કા કથન કરને કે લિપે સૂત્રત્રયી પઢતે હૈ—( પચમા  
ણ ધૂમપ્પમાણ પુઢવીણ ) ઇત્યાદિ ।

ટીકાર્થ—વાચર્થો ધૂમપ્રમા પૃથિવીમેં ત્રીજ સામ્વ નરકાવાસહૈ, પ્રથમ નરક,  
ઢ્વિતીયનરક ઓર તૃતીય નરક ઇન ત્રીજ નરકોં મેં સળ્લવેદના હૈ ક્યોં  
કિ યે ત્રીજ નરક ડપ્પ સ્વમાપ્પાણે હૈ, ઇન ત્રીજ નરકોં મેં રહ્મે યાલે

ચક્રાપ્રમા નરકના નારકોની ડલ્કૂટસ્થિતિ ત્રણ સાગરોપમની ડોવાથી ત્રીજ  
વાતુકાપ્રમા નરકના નારકોની જ્ઞાન્યસ્થિતિ ત્રણ ત્રણ સાગરોપમની ઢહી છે સૂ ૨૩

નરક પૃથ્વીના સલંખને અનુલક્ષીને ઢવે સૂત્રકાર નરક અને નારકના  
સ્વરૂપનુ વિશેષ કથન કરતાં ત્રણ સૂત્રોનું પ્રતિપાદન કરે છે

“ પચમાણ ધૂમપ્પમાણ પુઢવીર ” ઇત્યાદિ—

ટીકાર્થ—ધૂમપ્રમા નામની પચમી નરકમાં ત્રણ લાખ નરકાવાસ છે પઢેલી,  
ત્રીજ અને ત્રીજ, આ ત્રણ નરકોમાં ડપ્પવેદનાનો સહમાપ ડોવ છે, કારણ  
કે તે ત્રણ નરકો ડપ્પસ્વમાપવાળી છે તે ત્રણ નરકોમાં રહેનારા નારકો ડપ્પ

कुर्वन्ति नवा ? इत्यत्राह—‘ तिस्रुणं ’ इत्यादि, आस्वेव पूर्वोक्तासु तिस्रुषु पृथिवीपु नैरयिका उष्णवेदनां प्रत्यनुभवन्तः । उष्णवेदनाया अनुभवं कुर्वाणास्तिष्ठन्ति । अत्र यन्-नारकाणामुष्णवेदनां कथयित्वा पुनर्वेदनानुभवकथनं तद्वेदनायाः सात-त्यमदक्षनार्थमिति ३ ॥ सू० २४ ॥

क्षेत्राधिकारात् क्षेत्रविशेषस्वरूपं निरूपयन् सूत्रद्वयमाह—

मूलम्—तत्रो लोके समा सपक्खिं सप्पडिदिसिं पणत्ता, तं जहा—अप्पइट्ठाणे णरए, जंबुद्वीवे दीवे, सबट्टसिद्धे महावि-  
माणे ? । तत्रो लोके समा सपक्खिं सप्पडिदिसिं पणत्ता, तं  
जहा—सीमंतएणं णरए, समयखेत्ते ईसीपवभारा पुट्ठी ॥सू०२५

श्याया—त्रीणि लोके समानि सपक्ष सप्रतिदिक् प्रज्ञप्तानि, तद्यथा अप्रतिष्ठानो नरकः, जम्बूद्वीपो द्वीपः, सर्वार्थसिद्ध महाविमानम् । त्रीणि लोके समानि सपक्षं सप्रतिदिक् प्रज्ञप्ता, तद्यथा-सीमान्तकः खलु नरक, समयक्षेत्रं, ईपत्प्रा-  
भभाग पृथिवी ॥ सू० २५ ॥

टीका—‘ तत्रो ’ इत्यादि । लोके त्रीणि वस्तूनि समानि-तुल्यानि त्रया-  
णामपि योजनलक्षप्रमाणत्वात्, सपक्ष-पक्षाणां-दक्षिणवामादिपार्श्वानां सदृशता-  
समता सपक्षमित्यव्ययीभावस्तेन समपार्श्वतया समानीत्यर्थः । सप्रतिदिक्-प्रति-  
नैरयिक उष्णवेदना का अनुभव करते हैं । यहां नारकों के उष्णवेदना  
का कथन करके जो पुनः इस वेदना का अनुभव उनमें कहा गया है  
उसका कारण उस वेदना का वहां सातत्य दिखलाना है ॥ सू०२४ ॥

क्षेत्राधिकार को लेकर अब सूत्रकार क्षेत्रविशेष के स्वरूप का  
निरूपण करते हैं—( तत्रो लोके समा सपक्खिं इत्यादि ।  
टीकार्थ-लोकमें तीन वस्तुएँ तुल्य कही गई हैं यह तुल्यता योजनलक्षण-  
प्रमाण की अपेक्षा से जाननी चाहिये तथा पार्श्व भागों में समानता

वेदनानो अनुभव करे छे. अही नारकोनी उष्णवेदनानु कथन करीने करीथी  
ते वेदनानो अनुभव करवानी ने वात करी छे तेनुं कारण अे छे के सूत्रकार  
ते वेदनानु त्या सातत्य प्रकट करवा भागे छे ॥ सू २४ ॥

क्षेत्राधिकारना सपक्षने लक्षने उवे सूत्रकार क्षेत्रविशेषना स्वक्षपनुं निश-  
पथु करे छे—“ तत्रो लोके समा सपक्खिं ” इत्यादि—

टीकार्थ-दोअभा त्रथु वस्तुअो तुल्य (समान) कही छे. आ तुल्यता योजनलक्ष  
प्रमाणनी अपेक्षाअे, तथा पार्श्वभागोभा समानता अने दिशाअो अने विधि-



नरकपृथिव्यधिकाराभरक-नारक विशेषस्वरूप प्रकल्पयन् सूत्रप्रथीमाह—

मूलम्—पञ्चमाएण धूमपमाए पुढवीए तिनन्ति निरयावा  
ससयसहस्सा पणत्ता १ । तिसुण पुढवीसु णेरइयाणं उसिण  
वेयणा पणत्ता, त जहा—पढमाए, दोच्चाए, तच्चाए २ ।  
तिसुण पुढवीसु णेरइया उसिणवेयणपच्चणुभवमाणा विहरति,  
त जहा—पढमाए दोच्चाए तच्चाए ३ ॥ सू० २४ ॥

छाया—पञ्चम्यां खलु धूमपमायां पृथिव्यां श्रीणि निरयानासञ्जसहसाभि  
प्रह्वगनि १। त्रिषु खलु पृथिवीषु नैरयिकाणामुष्णवेदना प्रह्वता, तपया-प्रय  
मायां, द्वितीयायां, तृतीयायाम् २। त्रिषु खलु पृथिवीषु-नैरयिका उष्णवेदनां  
प्रत्यनुमगन्तो विहरन्ति, तपया प्रयमायां द्वितीयायाम् तृतीयायाम् ३ ॥ सू० २४ ॥

टीका—‘ पञ्चमाएण ’ इत्यादि नवरं-पञ्चम्यां धूमपमापृथिव्यां  
नरकावासानां श्रीणि अजसहसाणि-त्रिलस्रनरकायासाः सन्वीति १। ‘ तिसुण ’  
इत्यादि तिसृषु-प्रथम-द्वितीय-तृतीयासु पृथिवीषु नैरयिकाणामुष्णवेदना प्रह्वता,  
आसां तिसृणामुष्णस्त्रमावशात् २। ये नैरयिकास्तामुष्णवेदनामनुभवन्निपयो

जगत् स्थिति तीन सागरोपम की हो गई है क्योंकि यह तीन सागरो  
पम की उत्कृष्टस्थिति नारकाप्रमा के नारकियों की है ॥ सू० २३ ॥

नरकपृथिवी के सपत्त को लेकर अथ सूत्रकार नरक और नारक  
के विशेष स्वरूप का कथन करने के लिये सूत्रप्रथी कहते हैं—( पञ्चमा  
एणं धूमपमाए पुढवीए ) इत्यादि ।

टीकार्थ—पाचवीं धूमपमापृथिवीमें तीन एतन्त्र नरकावास हैं, प्रथम नरक,  
द्वितीयनरक और तृतीय नरक इन तीन नरकों में उष्णवेदना है क्योंकि  
कि ये तीन नरक उष्ण स्वभाववाले हैं, इन तीन नारकों में रहने वाले

शक शमना नरकना नारकोनी उत्कृष्टस्थिति त्रय सागरोपमनी डोनाधी त्रीण  
वाजुशमना नरकना नारकोनी अथ-वस्थिति त्रय त्रय सागरोपमनी कदी उ सू २३  
नरक पृथ्वीना सलभने अनुपक्षीने द्वे सुत्रकार नरक अने नारकना  
अथपुन विधीय कथन करता त्रय सूत्रोत्त प्रतिपादन करे उ

“ पञ्चमाएणं धूमपमाए पुढवीए ” इत्यादि—

टीकाय—धूमपमा नामनी पचमी नरकमां त्रय साग नरकावास उ पदेवी,  
त्रीण अने त्रीण, आ त्रय नरकोमां उष्णवेदानो सहसाए देव उ, शरण  
ह ते त्रय नरको उष्णस्वभाववाणी उ ते त्रय नरकोमां रहनेवासा नारको उष्ण

षयो यस्याः सा ईषत्प्राग्भारा-अष्टमीपृथिवीत्यर्थः, अस्या ईषत्प्राग्भारत्वं रत्नप्रभा  
दिशेषपृथिवीनामशीत्यादि सहस्राधिकं योजनरक्षवाहृत्येन महाप्राग्भारत्वात् । एषां  
सीमन्तकादीनां समन्वं पञ्चवत्वारिंशद् योजनलक्षममाणत्वात् ॥ सू० २५ ॥

है इस नरकावास का प्रमाण ४५ लाख योजन का है । समयक्षेत्र का  
प्रमाण और ईषत्प्राग्भारापृथिवी का प्रमाण भी इतना ही है समय नाम  
काल का है इस काल की सत्ता से उपलक्षित जो क्षेत्र है वह समय-  
क्षेत्र-मनुष्यलोक है प्राग्भार शब्द का अर्थ पुद्गलनिचय है अन्य पृथि-  
वियों की अपेक्षा से यह प्राग्भार जिसका अल्प है-अर्थात् बाहृत्य की  
अपेक्षा आठ योजन का है ऐसी वह " ईषत्प्राग्भारा " नामकी आठवीं  
पृथिवी है इसका प्राग्भार इसलिये अल्प कहा गया है कि रत्नप्रभा  
आदि जो और पृथिवियां हैं वे मोटाई में इसकी अपेक्षा बहुत अधिक  
हैं जैसे-प्रथमपृथिवी की मोटाई १ एक लाख अस्सी हजार योजन की  
है, दूसरी पृथिवी की मोटाई बाहृत्य एक १ लाख बत्तीस हजार योजन  
की है, तीसरी की मोटाई १ एक लाख अठ्ठाइस हजार योजन की है,  
चौथी की मोटाई एक १ लाख बीस हजार योजन की है पांचवी की  
मोटाई एक १ लाख अठारह हजार योजन की है छठी की मोटाई एक  
लाख सोलह हजार योजन की है और सातवीं की मोटाई एक लाख  
आठ हजार योजन की है ॥ सू० २५ ॥

ते नरकावासनु प्रमाण ४५ लाख योजननु छे समयक्षेत्र अने ईषत्प्राग्भारा  
पृथ्वीनु प्रमाण पञ्च अष्टौ ज छे समय अष्टौे काण ते काणनी सत्ताथी  
उपलक्षित जे क्षेत्र छे तेने समयक्षेत्र कडे छे मनुष्यलोक ज ते समयक्षेत्र ३५  
छे " प्राग्भार " अष्टौे ' पुद्गलनिचय " अन्य पृथ्वीओ करतां आ प्राग्भार  
जेनो अल्प छे अष्टौे के बाहृत्यनी अपेक्षाओ आठ योजननो छे, ओवी ते  
" ईषत्प्राग्भारा " नामनी आठमी पृथ्वी छे. तेनो प्राग्भार अल्प कडेवानुं  
कारणु ओ छे के रत्नप्रभा आदि जे अन्य पृथ्वीओ छे, तेमनो विस्तार ४५  
प्राग्भारा करतां धनुे वधारे छे जेमके पडेली रत्नप्रभा पृथ्वीनो विस्तार  
१ लाख ८० हजार योजननो छे, भीजु शर्कराप्रभानो विस्तार १ लाख ३२  
हजार योजननो छे, नीजु बालुकाप्रभानो विस्तार १ लाख २८ हजार योज-  
ननो छे, ओथी पत्रप्रभानो विस्तार १ लाख २० हजार योजननो छे,  
पांचमी धूमप्रभानो विस्तार १ लाख १८ हजार योजननो छे, छठी तमः  
प्रभानो विस्तार १ लाख १६ हजार योजननो छे अने सातमी तमस्तमप्रभा  
पृथ्वीनो विस्तार १ लाख ८ हजार योजननो छे ॥ सू० २५ ॥

વિદ્યાં ચિદિદ્યાં સદશઠા સપત્તિદિક્ષ, તેન સમપત્તિદિક્ષતપાડપિ સમાનીતપર્થ ।  
 તદેવ દર્શપતિ-અપતિષ્ઠાન-સપ્તમ્યાં પૃથિવ્યાં પશ્ચાનાં નરકાવાસાનાં મધ્યમો  
 નરકાવાસ ૧, જમ્બૂદ્વીપો દ્વીપઃ-સકલદ્વીપમધ્યમો દ્વીપઃ ૨, સર્વાર્થસિદ્ધ  
 વિમાન-પશ્ચાનામનુવરવિમાનાનાં મધ્યમં વિમાનમિતિ ૩। ૧।-૩પા-‘ ૩પ્રો ’  
 રૂપાદિ સર્વે પૂર્વેવત્ , નવર સીમન્તકઃ-પ્રથમપૃથિવ્યાં પ્રથમપ્રસ્તટે તદ્વિષાનો નર  
 કાવાસઃ ૨, સમય -ક્રાડઃ, ત્સત્ત્વોપલક્ષિત્ત્વે ક્ષેત્ર સમપક્ષેત્ર મનુષ્યલોકે ઇત્યર્થઃ,  
 ૨। રૂપ-મરુવોઽપૃથિવ્યપેક્ષયા યોમનાટ્ટરુવાદૃત્વત્વાત્-પ્રાગ્માર-પુટ્ગગ્નિ

ઔર વિદ્યાઓં ઇવ ચિદિદ્યાઓં કી સદશઠા સ જાનની બાહિયે વે તીન  
 વસ્તુરૂં રૂસ પ્રકાર સે હું-૧ક અપતિષ્ઠાન, જૂમરા જમ્બૂદ્વીપ ઔર તીસરા  
 સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાન અર્થાત્ તે તીનોં ૧ક ૨ લાભ યોજન કે પ્રમાણ  
 ઘાટે હું રૂનકે પ્રત્યેક કે દક્ષિણ ઘામાદિ પાર્શ્વભાગ સમાન હૈ ઔર  
 પ્રતિવિદ્યા મેં ઇવ ચિદિદ્યા મેં યે સદશ હું અપતિષ્ઠાન યહ નરકાવાસ હૈ  
 યહ સાતવોં પૃથિવી મેં હૈ ઔર પાંચ નરકાવાસોં કે મધ્ય મેં સ્થિત હૈ  
 જમ્બૂદ્વીપ યહ સકલદ્વીપોં કે મધ્ય મેં રૂહા જુઆ દ્વીપ હૈ સર્વાર્થસિદ્ધ  
 વિમાન પાંચ અનુસ્તર વિમાનોં કે ઘોચ મેં હું લોક મેં યે તીન સમાન હું ।  
 યહ સમાનતા પ્રમાણ કી અપેક્ષા પાર્શ્વભાગોં કી અપેક્ષા ઔર વિદ્યા  
 ઔર ચિદિદ્યાઓં કી સદશઠા કી અપેક્ષા સે હું ઇમા જાનના બાહિયે  
 વે તીન વે હું-૧ક સીમન્તક નરક, સમય ક્ષેત્ર ઔર રૂપપ્રાગ્મારાપૃ  
 થિવી, પ્રથમપૃથિવી મેં પ્રથમપ્રસ્તટ મેં સીમતક નામ કા યહ નરકાવાસ

શાએની સમાનતાની અપેક્ષાએ સમજવી એઇએ જે તલુ વસ્તુઓ નીચે  
 પ્રમાણે છે (૧) અપતિષ્ઠાન (૨) જમ્બૂદ્વીપ અને (૩) સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાન.  
 એટલે કે તે તલુ એક એક લાખ યોજનના પ્રમાણવાળાં છે તે પ્રત્યેકના  
 જમણા ઠાળા આદિ પાશ્ચાત્ય સમાન છે અને પ્રતિવિદ્યાઓં અને વિદિદ્યાઓં  
 સદશ (સમાન) છે અપતિષ્ઠાન નામનો નરકાવાસ સ્વતઃમી નરકમાં આવેલો છે  
 તે પાંચ નરકાવાસોની મધ્યમાં આવેલો છે જમ્બૂદ્વીપ સપ્તમ દ્વિપોની મધ્યમાં  
 આવેલો એક દ્વીપ છે સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાન પાંચ અનુસ્તર વિમાનોની વચ્ચે  
 રહેલું છે અપતિષ્ઠાન જમ્બૂદ્વીપ અને સર્વાર્થસિદ્ધ વિમાન આ તલુ વસ્તુઓ  
 લોકમાં સમાન છે તે સમાનતા પ્રમાણની અપેક્ષાએ પાશ્ચાત્યોની અપેક્ષાએ,  
 વિદ્યાઓની અપેક્ષાએ અને વિદિદ્યાઓની અપેક્ષાએ છે એમ સમજવું એઇએ.  
 એજ પ્રમાણે નીચેના તલુમાં પણ સમાનતા પ્રકટ કરવામાં આવી છે-(૧)  
 સીમન્તક નરક, (૨) સમયક્ષેત્ર અને (૩) રૂપપ્રાગ્મારા પૃથ્વી પહેલી પૃથ્વી  
 (નરક) ના પહેલા પ્રસ્તટમાં સીમતક નામનો આ નરકાવાસ આવેલો છે

स्यो यस्याः सा ईपत्प्राग्भारा-अष्टमीपृथिवीत्यर्थः, अस्या ईपत्प्राग्भारत्वं रत्नप्रभा  
 दिशेषपृथिवीनामशीत्यादि सहस्राधिक योजनलक्षवाहल्येन महाप्राग्भारत्वात् । एषां  
 सोमन्तक्रादीनां मन्त्रं पञ्चवत्वारिंशद् योजनलक्षमाणात्वात् ॥ सू० २५ ॥

है इस नरकावास का प्रमाण ४५ लाख योजन का है । समयक्षेत्र का  
 प्रमाण और ईपत्प्राग्भारापृथिवी का प्रमाण भी इतना ही है समय नाम  
 काल का है इस काल की सत्ता से उपलक्षित जो क्षेत्र है वह समय-  
 क्षेत्र-मनुष्यलोक है प्राग्भार शब्द का अर्थ पुद्गलनिचय है अन्य पृथि-  
 वियों की अपेक्षा से यह प्राग्भार जिमका अल्प है-अर्थात् वाहल्य की  
 अपेक्षा आठ योजन का है ऐसी वह " ईपत्प्राग्भारा " नामकी आठवीं  
 पृथिवी है इसका प्राग्भार इसलिये अल्प कहा गया है कि रत्नप्रभा  
 आदि जो और पृथिवियां हैं वे मोटाई में इसकी अपेक्षा बहुत अधिक  
 हैं जैसे-प्रथमपृथिवी की मोटाई १ एक लाख अरसी हजार योजन की  
 है, दूसरी पृथिवी की मोटाई वात्स्य एक १ लाख बत्तीस हजार योजन  
 की है, तीसरी की मोटाई १ एक लाख अठ्ठाठ्ठस हजार योजन की है,  
 चौथी की मोटाई एक १ लाख बीस हजार योजन की है पांचवी की  
 मोटाई एक १ लाख अठारह हजार योजन की है छठी की मोटाई एक  
 लाख सोलह हजार योजन की है और सातवीं की मोटाई एक लाख  
 आठ हजार योजन की है ॥ सू०२५ ॥

ते नरकावासतु प्रमाण ४५ लाख योजनतु छे समयक्षेत्र अने धिपत्प्राग्भारा  
 पृथ्वीतु प्रमाण पणु अष्टलुज छे समय अष्टले काण ते काणी सत्ताथी  
 उपलक्षित ने क्षेत्र छे तेने समयक्षेत्र कडे छे मनुष्यलोक ज ते समयक्षेत्र ३५  
 छे " प्राग्भार " अष्टले ' पुद्गलनियय " अन्य पृथ्वीओ करतां आ प्राग्भार  
 नेनो अल्प छे अष्टले के भाडव्यनी अपेक्षाओ आठ योजननो छे, अषी ते  
 " धिपत्प्राग्भारा " नामनी आठमी पृथ्वी छे तेनो प्राग्भार अल्प कडेवानुं  
 कारणु अ छे के रत्नप्रभा आदि ने अन्य पृथ्वीओ छे, तेमनो विस्तार धि-  
 प्राग्भारा करतां घणो वधारे छे नेमके पडेली रत्नप्रभा पृथ्वीनो विस्तार  
 १ लाख ८० डनर योजननो छे, भीणु शर्कराप्रभानो विस्तार १ लाख ३२  
 डनर योजननो छे, गीणु वालुकाप्रभानो विस्तार १ लाख २८ डनर योज-  
 ननो छे, श्रेथी पत्रप्रभानो विस्तार १ लाख २० डनर योजननो छे,  
 पांचमी धूमप्रभानो विस्तार १ लाख १८ डनर योजननो छे, छठी तमः  
 प्रभानो विस्तार १ लाख १६ डनर योजननो छे अने सातमी तमस्तमप्रभा  
 पृथ्वीनो विस्तार १ लाख ८ डनर योजननो छे ॥ सू. २५ ॥

अत्राधिकारादेव येऽप्रतिष्ठाने नरकक्षेत्रे, ये चाऽनतिष्ठानस्य स्थित्यादिभिः समाने सर्वार्थसिद्धमहाविमाने उत्पद्यन्ते तानार—

मूलम्—तत्रो लोके गिस्सीला गिठ्वया गिग्गुणा गिम्मेरा गिप्पच्चक्खाणपोसहोववासा कालमासे काल किच्चा अहे सत्तमाप पुठ्ठीए अप्पइट्टाणे णरए णेरइयत्ताए उववज्जति, त जहा—रायाणो, मडलिया, जे य महारभा कोडुधी । तत्रोलोए ससीला सखया सगुणा समेरा सपच्चक्खाणपोसहोववासा काल मासे काल किच्चा सव्वट्टसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवति, त जहा रायाणो परिवत्तकामभोगा, सेणावई पसत्थारो । सू २ २६॥

छाया—प्रयो लोके निग्गीला निर्वाहा निग्गुणा निर्मयादा निप्पत्त्याम्मान पौपपोपवासा कालमासे काल कृत्वा अथः सत्तर्मा पृथिव्यामप्रतिष्ठाने नरके नैरयिकत्वा उपपद्यन्ते, तद्यथा—राजन, माण्डलिका, येच महारम्मा कुटुम्बिनः । प्रयो

क्षेत्र के अधिकार को लेकर ही सूत्रकार अथ यह प्रकट करते हैं कि जो अप्रतिष्ठान नरकक्षेत्र में और जो स्थिति आदि की अपेक्षा से अप्रतिष्ठान के समान सर्वार्थसिद्ध महाविमान में उत्पन्न होते हैं वे ये हैं ( तत्रो लोके गिस्सीला गिठ्वया गिग्गुणा ) इत्यादि ।

सुप्रार्थ—लोकमें ये तीन पुरुष अथः सप्तमी पृथिवीमें अप्रतिष्ठान नामके नरकावास में नैरयिकरूप से उत्पन्न होते हैं क्योंकि ये हील से रहित होते हैं व्रत से रहित होते हैं मर्यादा से हीन होते हैं प्रत्याख्यान और पौपपोपवास से रहित होते हैं । अतः अथ ये कालमाम में काल करते हैं तथ ये सप्तम नरक में अप्रतिष्ठान नाम के नरकावास में नारक की पर्याय से उत्पन्न होते हैं । ये तीन ये हैं—१ राजा, २ माण्डलिक और

क्षेत्रनेः अधिकार खाती रह्यो छे तेथी इवे सुप्रकार अप्रतिष्ठान नरक-क्षेत्रमां अने सर्वार्थसिद्ध महा विमानेमां ठवा क्वा लोके उत्पन्न थाय छे, ते प्रयो करे छे— तत्रो लोके गिस्सीला गिठ्वया गिग्गुणा' इत्यदि—

सुप्रार्थ—राजा माण्डलिक अने महारसवाणा कुटुम्बीजन आ प्रयो अप्रतिष्ठान नामना नरकावासमां नारको करे उत्पन्न थाय छे कारण के तेको शीलथी रहित मनथी रहित अने मर्याद थी विहीन होय छे तेको प्रत्याख्यान अने पौपपोपवासी पण रहित होय छे ते कारणे कारणो अप्रत्यक्ष आवदा काज

लोके सशीलाः सव्रताः सगुणाः समर्यादाः सप्रत्याख्यानपौषधोपवासाः काल-  
मासे कालं कृत्वा सर्वार्थसिद्धे महाविमाने देवतया उपपत्तारो भवन्ति, तद्यथा-  
राजानः परित्यक्तकामभोगाः,—१ सेनापतयः,—२ प्रशास्तारः ॥ सू० २६ ॥

टीका—‘ तथो ’ इत्यादि । लोके—मनुष्यलोके त्रयः—त्रिसख्यकावक्ष्यमाणाः  
पुरुषाः, कीदृशाः ? निःशीलाः—शीलरहिताः ब्रह्मचर्यपरिणामरहिता इत्यर्थः, नि-  
व्रताः—स्थूलप्राणातिपातचिरमणाऽनुव्रतरहिताः, निर्गुणाः—गुणेभ्यः—दर्शनचारि-

जो महारंभ वाले कृद्दुग्धीजन हैं वे, तथा ये तीन मनुष्यलोकमेंसे सर्वार्थ  
सिद्ध महाविमान में देव की पर्याय से उत्पन्न होते हैं—क्यों कि ये शील  
सहित होते हैं, व्रत सहित होते हैं, गुण सहित होते हैं, मर्यादा युक्त  
होते हैं, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से सहित होते हैं, इसलिये  
कालमास में ये जब मरते हैं तो सर्वार्थसिद्ध महाविमान से देव पर्याय  
से उत्पन्न हो जाते हैं । वे तीन ये हैं जिन्होंने ने कामभोग छोड़ दिया है  
ऐसे राजा, सेनापति और अच्छे शासक ।

टीकार्थ—इस सूत्रद्वारा सूत्रकार ने अप्रतिष्ठान नरक में और सर्वा-  
र्थसिद्ध महाविमान में किस परिस्थिति से युक्त हुए मनुष्य  
मरकर नारक रूप में और देवपर्यायरूप में उत्पन्न होते हैं  
यह कहा है कि नरक में—अप्रतिष्ठान नारकावास में वे ही जीव  
जाते हैं जो चक्रवर्ती आदि पद पाकर ब्रह्मचर्य परिणाम से रहित होते

धर्म पाभीने तेज्यो सातमी नरकमा आवेला अप्रतिष्ठान नामना नरकावासमा  
नारकनी पर्याये उत्पन्न थर्ष लय छे

नीचे जतावेला त्रष्टु ज्यो मनुष्यलोकमाथी काणने अवसर आवता  
काण करीने सर्वार्थसिद्ध नामना महाविमानमा देवनी पर्याये उत्पन्न थाय छे  
(१) जेभष्टु कामभोगने परित्याग करी दीघो छे ज्येवा राब्द, (२) सेनापति  
अने (३) सारा शासके ते त्रष्टु त्या उत्पन्न थवानु कारष्टु ज्ये छे के तेज्यो  
शीलवान डोय छे, व्रतसडिग डोय छे, शुष्टयुक्त डोय छे, मर्यादाथी युक्त  
डोय छे, अने प्रत्याख्यान तथा पौषधोपवासथी युक्त डोय छे आ प्रकारना  
पुरुषो काणने अवसर आवे काणधर्म पाभीने सर्वार्थसिद्ध महाविमानमा  
देवनी पर्याये उत्पन्न थर्ष लय छे.

टीकार्थ—आ सूत्रमां सूत्रकारे ज्ये वात प्रकट करी छे के केवां ज्यो भरीने अप्र-  
तिष्ठान नामना सातमी नरकना नरकावासमा उत्पन्न थाय छे, अने केवा  
पुरुषो भरीने सर्वार्थसिद्ध नामना महाविमानमा देवनी पर्याये उत्पन्न थाय  
छे अप्रतिष्ठान नामना नरकावासमा ज्ये ज्ये ज्यो लय छे के ज्ये ज्यो चक्रवर्ती  
आदि पद प्राप्त करीने ब्रह्मचर्य परिष्ठाभथी रहित डोय छे ज्ये ज्ये प्राणुति-

ક્ષેત્રાધિકારાદેવ યેઽપતિષ્ઠાને નરકક્ષેત્રે, યે ષાઽપતિષ્ઠાનસ્ય સ્થિત્યાદિમિઃ  
સમાને સર્વાર્થસિદ્ધમહાવિમાને ઉત્પન્નતે તાનાદ—

મૂલમ્—તઓ લોગે ગિસ્સીલા ગિવ્વયા ગિગ્ગુણા ગિમ્મેરા  
ગિપ્પચ્ચક્ષ્ણાણપોસહોવવાસા કાલમાસે કાલ કિચ્ચા અહ  
સત્તમાપ્પ પુઢ્ઘીપ્પ અપ્પહ્ઢ્ઢાણે ણરપ્પ ણેરહ્ઢ્ઢપ્પાપ્પ ઉવવજ્જતિ, ત  
જહા—રાયાણો, મહલિયા, જે ય મહારભા ફોહ્ઢ્ઢયી । તઓલોપ્પ  
સસીલા સઘ્ઘયા સગ્ગુણા સમેરા સપ્પચ્ચક્ષ્ણાણપોસહોવવાસા કાલ  
માસે કાલ કિચ્ચાસવ્વહ્ઢ્ઢસિદ્ધ મહાવિમાણે દેવત્તાપ્પ ઉવવત્તારો  
ભવતિ, ત જહા રાયાણો પરિવત્તકામભોગો, સેણાવર્ધ  
પસરથારો । સૂ ૨ ૨૬॥

છાયા—પ્રયો લોકે નિશ્ચીલા નિર્મીતા નિષ્ઠા નિર્મયાદા નિષ્પત્ત્યાસ્થાન  
પૌષ્ણોપવાસા કાલમાસ કાલ કૃત્વા મધઃ સપ્તમ્યાં પૃથિવ્યામપતિષ્ઠાને નરકે નૈરચિ-  
ક્તયા ઉપપન્નતં, ઠત્થયા—રાગ્ગ, માણ્ઢ્ઢલિકા, યેચ મહારમ્માઃ કુદુમ્મિનઃ । પ્રયો

ક્ષેત્ર કે અધિકાર કો ઠેકર હી સૂત્રકાર અથ યહ પ્રકટ કરતે હૈ  
કિ જો અપતિષ્ઠાન નરકક્ષેત્ર મેં ઓર જો સ્થિતિ આદિ કી અપેક્ષા સે  
અપતિષ્ઠાન કે સમાન સર્વાર્થસિદ્ધ મહાવિમાન મેં ઉત્પન્ન હોતે હૈ યે યે હૈ  
( તઓ લોગે ગિસ્સીલા ગિવ્વયા ગિગ્ગુણા ) ઇત્યાદિ ।

મુપાર્થ—લોકમેં યે ત્રીન પુરુષ મધઃ સપ્તમી પૃથિવીમેં અપતિષ્ઠાન નામકે  
નરકાવાસ મેં નૈરચિક્તરૂપ સે ઉત્પન્ન હોતે હૈ ક્યોં કિ યે શીલ સે રહિત  
હોતે હૈ ઘત સે રહિત હોતે હૈ મયાદા સે હીન હોતે હૈ પ્રત્યાહવાન ઓર  
પૌષ્ણોપવાસ સે રહિત હોતે હૈ । ઘત જય યે કાલમાસ મેં કાલ કરતે  
હૈ તથ યે સપ્તમ નરક મેં અપતિષ્ઠાન નામ કે નરકાવાસ મેં મારક કી  
પયાય સે ઉત્પન્ન હોતે હૈ । યે ત્રીન યે હૈ—૧ રાજા, ૨ માણ્ઢ્ઢલિક ઓર

ક્ષેત્રનેા અધિકાર આલી રહી છે તેથી હવે સૂત્રકાર અપતિષ્ઠાન નરક  
ક્ષેત્રમાં અને સર્વાર્થસિદ્ધ મહા વિમાનેમાં કયા કયા છવેા ઉપત્ત યાચ છે,  
તે પ્રકટ કરે છે— તઓ લોગે ગિસ્સીલા ગિવ્વયા ગિગ્ગુણા ” ઇત્ય ણિ—

સુત્રાર્થ—રાજા, માણ્ઢ્ઢલિક અને મહારાજવાળા કુટુંબીજન આ ત્રણે અપતિષ્ઠાન  
નામના નરકાવાસમાં નારકો રૂપે ઉપત્ત યાચ છે કારણ કે તેઓ શીલથી  
રહિત, ઘતથી રહિત અને મયાદથી વિહીન હોય છે તેઓ પ્રત્યાહવાન અને  
પૌષ્ણોપવાસથી પણ રહિત હોય છે તે કારણે કાળનેા અવસર આવવા કાળ-

वासे इत्यर्थः, नैरयिकृतया—नारकत्वेन उपपद्यन्ते । ते त्रयः के ? इत्याह—‘तंजहे-  
 ’ त्यादि, तद्यथा—ते यथा राजानः, चक्रवर्त्यादयः, माण्डलिकाः—मण्डलाधिप-  
 तयः, ये च पुन मंहारम्भाः—पञ्चेन्द्रियादि व्यपरोपणप्रभृतिरुर्मकारिणः—पञ्चेन्द्रिय  
 घातकेत्यर्थः ॥ कुटुम्बिन इति । एतद्विषयमाह—‘तत्रो’ इत्यादि । लोके त्रयः पुरुषाः,  
 कीदृशाः ? इत्याह ‘ससीला’ सशीला शीलसंपन्नाः, सन्नताः प्राणानिपातविरमणाद्यणु-  
 व्रतयुक्ताः, सगुणाः—दर्शनचारित्र्यरूपगुणमहिताः क्षान्त्यादिरूपगुणमहिता वा,  
 समर्थादाः—प्रतिपन्नपरिपालनादि मर्यादा संपन्नाः, धर्मनियमव्यवस्थायुक्ता वा,  
 सप्रत्याख्यानपौषधोपवासा - पूर्वोक्तस्वरूपप्रत्याख्यानपौषधोपवाससहिताः,

मे सप्तमीत्व की निवृत्ति के लिये दिया है यदि यह पद इस पृथिवी के  
 साथ नहीं दिया जाता तो इस तमस्तमा के ऊपर की रत्नप्रभापृथिवी  
 भी सातवीं हो सकती है अतः यह सातवीं न मानी जावे इसीलिये  
 इसके साथ अथः पद प्रयुक्त किया गया है । अप्रतिष्ठान यह नरकावास  
 पांच नरकावासों के मध्य में स्थित है माण्डलिक पद से मण्डलाधिप-  
 तियों का ग्रहण हुआ है तथा जो जीव रातदिन महारभवाले होते हैं,  
 —पञ्चेन्द्रियादि जीवों के व्यपरोपण आदि कार्य से लगे रहते हैं, ऐसे  
 जीव भी मरकर अप्रतिष्ठान नरकावास से नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न  
 हो जाते हैं । तथा जो जीव इन पूर्वोक्त मनुष्यों की अपेक्षा शीलसंपन्न  
 होते हैं, प्राणानिपात विरमण आदि व्रतों के आराधक होते हैं, दर्शन  
 चारित्र्यरूप गुणों से अथवा क्षान्त्यादि रूप गुणों से युक्त होते हैं प्रत्या-  
 ख्यान सहित पौषधोपवास करते हैं ऐसे पुरुष कालमास में मरणकर  
 सर्वार्थसिद्ध नामके महाविमान में देव की पर्याय से उत्पन्न हो जाते

प्रभा पृथ्वीने पञ्च सातमी पृथ्वी गणुवाने प्रसंगे लोके थाय छे जे सातमी  
 तमस्तमा पृथ्वीने अधःसप्तमी न कडेवामा आवे तो सौथी उपगनी रत्नप्रभा  
 पृथ्वीने पञ्च सातमी पृथ्वी कडी शक्य छे अप्रतिष्ठान नामने नरकावास  
 अधःसप्तमीना पांच नरकावासोनी मध्यमां छे माण्डलिक पञ्ची मंडलाधिपति  
 जेने अडण्ड करवामा आवेद छे तथा जे जेवे मंडा आरंभवाणा छेय छे,  
 पञ्चेन्द्रियादि जेवोना वध जिनी प्रवृत्तिमां रातदिन रव्यापय्या रहे छे, ते जेवे  
 पञ्च मरीने अप्रतिष्ठान नरकावासमा नारकनी पर्याये उत्पन्न थाय छे  
 जे जेवे शीलयुक्त छेय छे, प्राणानिपात विरमण आदि व्रतोना  
 आराधक छेय छे, दर्शन चारित्र्यरूप गुणोथी अथवा क्षान्त्यादि रूप गुणोथी  
 युक्त छेय छे, प्रत्याख्यानथी जेने पौषधोपवासथी युक्त छेय छे, जेवा जेवे  
 मनुष्यत्व सब धीनु तेमनु आयुष्य पूर करीने सर्वार्थसिद्ध नामना मंडा  
 जेना देवनी पर्याये उत्पन्न थाय छे जेवा जेने ... वर्ती आदि



प्ररूपेभ्य सान्त्वाविलक्षणेषु वा निष्क्रान्ताः । निर्मर्यादाः-प्रतिपक्षपरिपालनादि मर्यादा रहिता, धर्मनियमव्यवस्था रहिता वा, निष्प्रत्याख्यानपौषपोषवासाः-प्रत्याख्यान-परिहरणीयवस्तुपरित्यागः, नमस्कारसहितादि वा, पौषवः-अष्टम्यादि पर्वदिनानुष्ठयः शास्त्रविहितोऽनश्ननादिद्वयविशेष, तत्रोपवसनमुपवासः पौषपोषवासाः तौ प्रत्याख्यानपौषपोषवासां निष्क्रान्ती येषां त तत्रा, यद्रहिता इत्यर्थः, एता दृशाः पुरुषा कालमास-कालावसरे काल कृत्वा-भूत्वत्यर्थः, अथ सप्तम्याम्-अधोभागस्वितायां सप्तम्यां पृथिव्यां तमस्तमायामित्यर्थ, अपाग्रहण विना सप्तमी उपरिष्ठाच्चिन्त्यमाना रत्नप्रमाऽपि स्यादित्युपग्रहणम्, तत्र-अप्रतिष्ठाने-अप्रतिष्ठाननामके नरके-नरकावासे पञ्चानां नरकावासानां मध्यस्थिते नरक

हैं, तथा स्पूलप्राणातिपात विरमण आदि अणुवर्तों से रहित होते हैं तथा वर्धन चरित्र रूप अथवा क्षान्ति आदि रूप गुणों से रहित होते हैं तथा स्वीकृत व्रतादिगों के परिपालनादि रूप मर्यादा से रहित होते हैं अथवा धर्मनियमों की व्यवस्था से रहित होते हैं, परिहरणीयवस्तु का त्याग करना सो प्रत्याख्यान है और अष्टमी आदि पर्वदिनों में शास्त्र विहित अनश्ननादिद्वयों का पालन करना पौष है, इन प्रत्याख्यान और अनश्ननादिद्वयोंका जो पालन नहीं करते हैं। क्योंकि ये इसी तरह की परिस्थिति में वर्तमान रहकर अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। अतः ऐसे चक्रवर्ती आदि पुरुष अथ सप्तमी पृथिवी में स्थित अप्रतिष्ठान नाम के नरकावास में नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न होते हैं सप्तमी पृथिवी के माय जो अधः पद् दिपा है वह रत्नप्रमा पृथिवी

पात विरमण आदि अणु वर्तों से रहित होय है तथा वर्धन चरित्ररूप अथवा क्षमा आदिरूप गुणों से रहित होय है तथा स्वीकृत व्रतादिगों का परिपालन आदिरूप मर्यादा से रहित होय है अथवा धर्मनियमों की व्यवस्था से रहित होय है त्याग कृत्वा योग्य वस्तुने त्याग करके तनु नाम प्रत्याख्यान है आठम आदि पर्वदिनों में शास्त्रविहित अनश्नन अर्थात् पावन करने तनु नाम पौष है तन्मुद्रा लये ते प्रत्याख्यान अने अनश्ननादिगुणों तनु पावन करता नहीं, कारण है तेजो कामलोयोर्मां व रम्यापम्या रदीने पावन अणु लयन समप्त करी नामे है तेषी जेरां अर्धवर्ती आदि पुरुषे अपासप्तमी पृथिवी में आवेला अप्रतिष्ठान नामका नरकावासमा नरकी पर्याय उत्पन्न करे लय है अर्थात् सातमी पृथिवी नामे 'अधः पदने प्रयोग करवानु कारण जे है ते जे अर्धी जा 'अधः' पदने प्रयोग न करणमा आवे ता रत्न

वासे इत्यर्थः, नैरयिकनया-नारकन्वेन उच्यन्ते । ते त्रयः के ? इत्याह- ' तंजहे-  
 ' त्यादि, तद्यथा-ते यथा राजानः, चक्रवर्त्यादयः, माण्डलिकाः-माण्डलाधिप-  
 तयः, ये च पुन मंहारम्भाः-पञ्चेन्द्रियादि व्यपरोपणप्रभृतिऋमकारिणः-पञ्चेन्द्रिय  
 घातकेत्यर्थः ॥ कुटुम्बिन इति । एतद्विपर्ययमाह- तत्रो' इत्यादि । लोके त्रयः पुरुषाः,  
 कीदृशाः ? इत्याह 'समीला' समीला शीलसंपन्नाः, सत्रनाः प्राणानिपातविरमगाद्यणु-  
 व्रतयुक्ताः, सगुणाः-दर्शनचारित्ररूपगुणमहिताः क्षान्त्यादिरूपगुणमहिता वा,  
 समर्यादाः-प्रतिपन्नपरिपालनादि मर्यादा संपन्नाः, धर्मनियमव्यवस्थायुक्ता वा,  
 सप्रत्याख्यानपौषधोपवासा - पूर्वोक्तमन्त्ररूपमन्त्राख्यानपौषधोपवासासहिताः,

में सप्तमीत्व की निवृत्ति के लिये दिया है यदि यह पद इस पृथिवी के  
 साथ नहीं दिया जाता तो इस तस्मस्तमा के अन्तर् की रत्नप्रभापृथिवी  
 भी सातवीं हो सकती है अतः यह सातवीं न जानी जावे इसीलिये  
 इसके साथ अधः पद प्रयुक्त किया गया है । अप्रतिष्ठान यह नरकावास  
 पांच नरकावासों के मध्य में स्थित है माण्डलिक पद से माण्डलाधिप-  
 तियों का ग्रहण हुआ है तथा जो जीव रातदिन महारंभवाले होते हैं,  
 -पञ्चेन्द्रियादि जीवों के व्यपरोपण आदि कार्य से लगे रहते हैं, ऐसे  
 जीव भी मरकर अप्रतिष्ठान नरकावास से नैरयिक की पर्याय से उत्पन्न  
 हो जाते हैं । तथा जो जीव इन पूर्वोक्त मनुष्यों की अपेक्षा शीलसंपन्न  
 होते हैं, प्राणानिपात विरमग आदि व्रतों के आराधक होते हैं, दर्शन  
 चारित्ररूप गुणों से अथवा क्षान्त्यादि रूप गुणों से युक्त होते हैं प्रत्या-  
 ख्यान सहित पौषधोपवास करते हैं ऐसे पुरुष कालमास में मरणकर  
 सर्वार्थसिद्ध नामके महाविमान में देव की पर्याय से उत्पन्न हो जाते

प्रभा पृथ्वीने पञ्च सातमी पृथ्वी गणुवानो प्रमग भुक्ते धाय छे ने सातमी  
 तमस्तमा पृथ्वीने अधःसप्तमी न कडेवाभां आवे तो सौथी उपरनी रत्नप्रभा  
 पृथ्वीने पञ्च सातमी पृथ्वी कडी शक्य छे अप्रतिष्ठान नामने नरकावास  
 अधःसप्तमीना पांच नरकावासोनी मध्यमा छे मांडलिक पंथी मांडलाधिपति  
 ओने ग्रहण करवामा आवेस छे तथा ने एवो मडा आरंभवाणा छेय छे.  
 पञ्चेन्द्रियादि एवोना वध किनी प्रवृत्तिमां रातदिन रथ्यापर्याय रहे छे, ते एवो  
 पञ्च भरीने अप्रतिष्ठान नरकावासमा नारकनी पर्याये उत्पन्न धाय छे

ने एवो शीलयुक्त डाय छे, प्राणानिपात विरमणु आदि मतोना  
 आराधक डाय छे, दर्शन चारित्ररूप शुभोथी अथवा क्षान्त्यादि रूप शुभोथी  
 युक्त डाय छे, प्रत्याख्यानथी अने पौषधोपवासथी युक्त डाय छे, एवो एवो  
 मनुष्यत्व स भंधीनु तेमवु आयुष्य पूर करीने सर्वार्थसिद्ध नामना मडा  
 विमानमा देवनी पर्याये उत्पन्न थरु जाय छे एवां एवो अकवतीं आदि

१, तथा पूर्वाषाढासु माघकृष्ण द्वादश्यामुत्पन्नः २, तस्मिन्नेव नक्षत्रे तत्रैव मासे  
 त्रिंशो व माघकृष्णद्वादश्यामेव निष्कान्तः ३, तस्मिन्नेव नक्षत्रे पौषकृष्णचतु-  
 र्दश्यां केरलज्ञान मासः ४, तस्मिन्नेव नक्षत्रे च वैशाखकृष्णद्वितीयायां निर्वृतः  
 ५। तथा-विमलस्य त्रयोदशतीर्थकरस्य च्यवनादि-पञ्चकस्याणकनक्षत्रम् उत्तरा  
 । माद्रपदाः । अनन्तजिनस्य चतुर्दशतीर्थकरस्य च्यवनादि-पञ्चकस्याणकनक्षत्र  
 रेवती भवति । धर्मनायस्य पञ्चहरयाणकनक्षत्र-पुष्यः । शान्तिनायस्य भरणी ।  
 पुनायस्य कृत्तिकाः । भरनायस्य रेवत्यः । सुवतनायस्य अश्लेषा । नमिनायस्य

देवीके गर्भमें आये पूर्वाषाढा नक्षत्रमें ही ये माघकृष्ण द्वादशीके दिन  
 उत्पन्न हुए उसी नक्षत्रमें वे माघकृष्ण द्वादशीके दिन ही वीक्षित हुए  
 उसी नक्षत्रमें पौषकृष्ण चतुर्दशीके दिन ही च-हेनि केवलधरज्ञान  
 प्राप्त किये और उसी नक्षत्रमें ही उ-होनी निर्वाणपद वैशाखकृष्ण  
 द्वितीयाके दिन प्राप्त किया है । तथा १३ वे तीर्थकर विमलनाय भग-  
 वान्के पाँचों कल्याणकोंमें उत्तरामाद्रपदा नक्षत्र था तथा १४ वे तीर्थ-  
 कर अनन्त जिनके भी पाँचों कल्याणक रेवती नक्षत्रमें हुए हैं,  
 धर्मनाय के भी पाँचों कल्याणक पुष्य नक्षत्र में हुए हैं शान्ति-  
 नायके पाँचों कल्याणक भरणी नक्षत्रमें हुए हैं । कुन्धुनायके पाँचों क-  
 ल्याणक कृत्तिका नक्षत्रमें हुए हैं, भरनाय भगवान्के पाँचों कल्याणक  
 रेवती नक्षत्रमें हुए हैं, सुवतनाय भगवान्के पाँचों कल्याणक अश्लेषा  
 नक्षत्रमें हुए हैं, नमिनाय भगवान्के पाँचों कल्याणक अश्विनी नक्षत्रमें

अर्धमां पूर्वषाढा नक्षत्रमां च उपल यथा इत्ता ज्येष्ठ नक्षत्रमां भद्रा वदी  
 ज्येष्ठे तेमते च म यथे इत्ता. ज्येष्ठ नक्षत्रमां भद्रा वदी ज्येष्ठे तेमते  
 प्रमलया ज्येष्ठे इति इत्ता. ज्येष्ठ नक्षत्रमां पौष वदी ज्येष्ठे तेमते इवत  
 वर ज्ञानदयान प्राप्त इति इत्ता जने ज्येष्ठ नक्षत्रमां वैशाख वर ज्येष्ठे  
 तेमते निर्वाण पायां इत्ता.

१३ मां तीर्थकर विमलनाय भगवानना पाँचि हरयाणुके उत्तरामाद्र  
 पदानक्षत्रमां च यथा इत्ता १४ मा तीर्थकर अनन्त जिनेश्वरना पाँच  
 इत्याणुके रेवती नक्षत्रमां यथा इत्ता धर्मनाय जिनेश्वरना पाँचि इत्याणुके  
 पुष्य नक्षत्रमां यथा इत्ता. शान्तिनाय भगवानना पाँचि इत्याणुके भरणी  
 नक्षत्रमां यथा इत्ता भरनाय भगवानना पाँचि इत्याणुके रेवती नक्षत्रमां  
 यथा इत्ता सुवतनाय भगवानना पाँचि इत्याणुके अश्लेषा नक्षत्रमां यथा इत्ता  
 इत्ता नमिनाय भगवानना पाँचि इत्याणुके अश्विनी नक्षत्रमां यथा इत्ता.  
 नमिनायना पाँचि इत्याणुके अश्विनी नक्षत्रमां यथा इत्ता.

अश्विनी-नेमिनाथस्य चित्रा । पार्श्वनाथस्य विशाखाः । तथा-वीरः=अन्तिमती-  
र्थङ्करो वर्द्धमानस्वामी पञ्चक हस्तोत्तरः-हस्तोपलक्षिता उत्तराः-हस्तोत्तराः, उत्तरा-  
फाल्गुन्य इत्यर्थः, च्यवनादि पञ्चकल्याणकत्वेन पञ्चकाः=पञ्चसख्यका हस्तोत्तरा  
यस्य स तथाऽभवत् । भगवतो महावीरस्य च्यवनादि पञ्चकल्याणकमभिलापपूर्व-  
कमाह-‘समणे भगवं.’ इत्यादिना । श्रमणो भगवान् महावीरः पञ्चहस्तोत्तरोऽ  
भवत् । यथा पञ्चहस्तोत्तरोऽभवत्तथाह-‘हस्त्युत्तरार्हि’ इत्यादिना । हस्तोत्तरासु-  
च्युत्, च्युत्वा गर्भेऽवतीर्णः १, तस्मिन्नेव नक्षत्रे गर्भात्=ब्राह्मणीगर्भात् गर्भा-  
न्तरं=क्षत्रियागर्भं संहृतः=नीतः शक्राज्ञया हरिणैगमेपिदेवेन २। एवं जन्म ३  
प्रव्रज्या ४ केवलज्ञानप्राप्तिषु ५ हस्तोत्तरा बोध्याः । निर्वाणं तु भगवतः स्वाति  
नक्षत्रे कार्त्तिकामात्रस्यां बोध्यम् ॥ सू० २४ ॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितकलितकला-  
पालार्पक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक - श्रीशाहूछत्र-  
पति कोल्हापुरराजपदत्त ‘जैनशास्त्राचार्य’ पदभूषित-कोल्हापुर-  
राजगुरु बालब्रह्मचारी-जैनाचार्य - जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री -  
घासीलालव्रतिविरचितायां ‘स्थानाङ्गसूत्रस्य’ सुधाख्यायां  
व्याख्यायां पञ्चमस्थानस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ ५-१ ॥

हुए हैं । नेमिनाथके चित्रा नक्षत्रमें पांचों कल्याणक हुए हैं । पार्श्वना-  
थके पांचों कल्याणक विशाखा नक्षत्रमें हुए हैं, तथा अन्तिम तीर्थङ्कर  
वीर प्रभुके पांचों कल्याणक उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें हुए हैं । “समणे  
भगवं महावीरे” इत्यादि सूत्रका अर्थ स्पष्ट है-यही सब विषय इन  
गाथाओं द्वारा प्रकट किया गया है-“पउमप्पहस्स चित्ता” इत्यादि ।

वीरनाथ भगवान् हस्तोत्तरा नक्षत्रमें ही-उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें ही  
चवकर गर्भमें आये, उसी नक्षत्रमें वे ब्राह्मणीके गर्भसे क्षत्रियाणीके गर्भमें  
रखे गये यह कार्य इन्द्रकी आज्ञासे हरिणैगमेषी देवने किया भगवान्के

पार्श्वनाथ भगवानना पांचे कल्याणके विशाखा नक्षत्रमां तथा इतां तथा अन्तिम  
तीर्थङ्कर महावीर प्रभुना पांचे कल्याणके उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमां तथा इतां.  
ये ५ वात नीचेनी गाथाओ द्वारा स्पष्ट करवाभां आवी छे-“समणे भगवं  
महावीरे” इत्यादि. आ गाथाओना अर्थ सुगम छे

“पउमप्पहस्स चित्ता” इत्यादि-

वीरनाथ भगवान् इस्तोत्तरा नक्षत्रमां ५-उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमां ५  
अथीने माताना गर्भमां आव्या इता. ये ५ नक्षत्रमां तेभने ब्राह्मणीना  
गर्भमाथी त्रिशला क्षत्रियाणीना गर्भमां भूकवाभां आव्या इता. ते कार्य  
इन्द्रनी आज्ञाथी हरिणैगमेषी देवे कथुं इतु. भगवानना ५-५ समये, भग-  
स्था०-७८

जन्मके समय प्रव्रज्याके समय केशलज्ञान प्राप्तिके समय हस्तोपरा  
नक्षत्र था, परन्तु निर्वाण प्राप्तिके समय स्वाति नक्षत्र था कार्तिक वही  
अमावास्याके दिन इन्होंने मुक्ति प्राप्त की है ॥ सू० २४ ॥

श्री जैनाचार्य श्री घासीलालजी महाराज रचित "स्थानागसूत्र"  
की सुधा नामकी व्याख्याके पाँचवें स्थानका पहला उद्देश  
समाप्त ॥ ५-१ ॥

वाननी प्रव्रज्या समये जने अजवानने व्यारे केवलज्ञान प्राप्त यत्र त्वारे  
पञ्च हस्तोपरा नक्षत्र च स्वाति नक्षत्रं पञ्च तेमना निर्वाणभावे स्वाति नक्षत्र  
स्वाति नक्षत्रं कार्तिक वही अमावास्याने द्विपसे तेमवे निर्वाण प्राप्त  
ह्ये नक्षत्रं ॥ सू० २४ ॥

श्री जैनाचार्य श्री घासीलालजी महाराज रचित "स्थानागसूत्र" की सुधा  
नामकी व्याख्याना पाँचवाँ स्थानके  
प्रथम उद्देशक समाप्त ॥ ५-१

